अध्याय विषय पृष्ठ अध्याय विषय पृष्ठ

की प्रतिज्ञा करना २१९
३६ अभिमन्युका चक्रव्यूहमें प्रवेश २२३
३७ अभिमन्युका पराक्रम २३०
३८ कौरवोंका घबड़ाना २३६
३९ अभिमन्यु और दुःशासनका मुचैटा २३९
४० दुःशासन और कर्णका पराजय २४३
४१ कर्णके भाईका वध २४९
४२ जयद्रथका शिवजीसे वर पाना २५२
४३ जयद्रथका पांडवोंको चक्रव्यूहमें प्रवेश करनेसे रोकना २५६
४४ वसातीयका वध २५८
४५ दुर्योधनका पलायन २६१
४६ लक्ष्मण, क्राथके पुत्रका वध २६५
४७ वृहद्वलका नाश २६९
४८ अधर्मकी रचना २७३
४९ अभिमन्युका वध २७९
५० युद्धभूमिका वर्णन २८४
५१ युधिष्टिरका शोक २८७

तेरहवें दिनकी रात्रि—

५२ अकम्पनकी कथा २९१
५३ मृत्युकी उत्पत्ति २९७
५४ मृत्यु और प्रजापतिका संवाद ३००
५५ राजा मरुतकी कथा ३१०
५६ राजा सुहोत्रकी कथा ३१७
५७ राजा पौरवकी कथा ३१९
५८ शिविकी कथा ३२१
५९ दशरथपुत्र रामकी कथा ३२३
६० राजा भगीरथकी कथा ३२७
६१ राजा दिलीपकी कथा ३२९
६२ राजा मान्धाताकी कथा ३३१
६३ राजा ययातिकी कथा ३३४
६४ राजा अम्बरीषकी कथा ३३६
६५ राजा शशविन्दुकी कथा ३३८
६६ राजा गयकी कथा ३४०
६७ राजा रन्तिदेवकी कथा ३४३
६८ महाराज भरतकी कथा ३४६
६९ राजा पृथुकी कथा ३४९
७० परशुरामकी कथा ३५३
७१ सृञ्जयके मरेहुए पुत्रका जीवित होना ३५७

प्रतिज्ञा-पर्व

७२ अर्जुनका शोक ३६२
७३ अर्जुनकी प्रतिज्ञा ३७३
७४ जयद्रथका घबड़ाना ३८२
७५ श्रीकृष्णके वचन ३८७
७६ अर्जुनकी दृढ़ता ३९१
७७ सुभद्रा और श्रीकृष्ण ३९५
७८ सुभद्राका विलाप ३९९
७९ श्रीकृष्ण-दारुक-सम्वाद ४०६
८० अर्जुनका स्वप्न शिव-स्तुति ४१२

अध्याय विषय पृष्ठ
८१ पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति ४२१

चौदहवें दिनका प्रभात—

८२ युधिष्ठिरका आह्निक-कर्म ४२४
८३ युधिष्ठिर-श्रीकृष्ण-सम्वाद ४२९
८४ अर्जुनका प्रयाण ४३३

जयद्रथवध-पर्व

चौदहवाँ दिन—

८५ धृतराष्ट्रकी चिन्ता ४३८
८६ सञ्जयका धृतराष्ट्रको ताना देना ४४६
८७ शकटचक्र-पद्मसूचीव्यूहकी रचना ४५०
८८ अर्जुनका रणभूमिमें प्रवेश ४५५
८९ कौरवोंकी हस्तिसेनाका संहार ४५९
९० दु:शासनका पराजय ४६३
९१ द्रोण और अर्जुनका युद्ध ४६८
९२ श्रुतायुध और सुदक्षिणका वध ४७४
९३ अम्बष्ठका वध ४८५
९४ दुर्योधनकवचबन्धन ४९५
९५ घोरयुद्ध ५०६
९६ संकुलयुद्ध ५१३
९७ द्रोण और धृष्टद्युम्नका युद्ध ५१७
९८ द्रोण और सात्यकिका युद्ध ५२२
९९ अर्जुनका रणमें सरोवर बनाकर घोड़ोंको जल पिलाना ५३०
१०० कौरवोंका आश्चर्य ५३९
१०१ कौरवोंका घबड़ाना ५४४
अध्याय विषय पृष्ठ
१०२ दुर्योधनका अर्जुनके सामने जाना ५५१
१०३ दुर्योधनका पलायन ५५६
१०४ घोर युद्ध ५६४
१०५ ध्वजाओंका वर्णन ५६८
१०६ युधिष्ठिरका पीछे हटना ५७४
१०७ सहदेवका पराक्रम ५८०
१०८ भीम और अलम्बुष ५८५
१०९ अलम्बुषवध ५९१
११० युधिष्ठिरकी घबड़ाहट ५९७
१११ सात्यकिका उत्तर ६११
११२ सात्यकिका शत्रुसेनामें प्रवेश ६१८
११३ सात्यकि और कृतवर्मा ६३०
११४ कृतवर्माकी धूमधाम ६३९
११५ जलसन्धका वध ६५३
११६ दुर्योधनकाका पराजय ६६२
११७ सात्यकिका पराक्रम ६६९
११८ सुदर्शनका वध ६७४
११९ यवनोंका पराजय ६७७
१२० दुर्योधनका पलायन ६८५
१२१ सात्यकिका सेनामें प्रवेश ६९२
१२२ द्रोणका घमसान मचाना ७००
१२३ दु:शासनका पराजय ७१०
१२४ संकुलयुद्ध ७१५
१२५ द्रोणाचार्यका अद्भुत पराक्रम ७
१२६ युधिष्ठिरकी चिन्ता ७

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१२७	भीमका भारती सेनामें प्रवेश और पराक्रम	७४०
१२८	भीमका द्रोणके रथोंको उठाकर पटकदेना	७५१
१२९	कर्णका पराजय	७५९
१३०	दुर्योधनका युधामन्यु और उत्तमौजाके साथ युद्ध	७६४
१३१	कर्णका पराजय	७७१
१३२	भीम और कर्णका युद्ध	७७९
१३३	भीम और कर्णका युद्ध	७८५
१३४	कर्णका भागना	७९१
१३५	धृतराष्ट्रका संताप	७९६
१३६	भीमका धृतराष्ट्रके सात पुत्रोंका संहार करना	८०२
१३७	विकर्ण और चित्रसेनका वध	८०७
१३८	भीम-कर्णका भयंकर युद्ध	८१५
१३९	भीमका हाथियोंकी लोथोंमें छिपना	८१९
१४०	अलम्बुषका वध	८३६
१४१	अर्जुनका सात्यकिको देखना	८४०
१४२	सात्यकि और भूरिश्रवाका युद्ध	८४५
१४३	भूरिश्रवाका वध	८५५
१४४	सात्यकि और भूरिश्रवाके वैरका कारण	८६७

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१४५	संकुलयुद्ध	८७१
१४६	जयद्रथका वध	८८५
१४७	कृपकी मूर्च्छा	९०५
१४८	अर्जुनको अभिनन्दन	९१७
१४९	युधिष्ठिरका श्रीकृष्णके यश गाना	९२६
१५०	दुर्योधनका संताप	९३५
१५१	द्रोणके नम्र वचन	९४१
१५२	दुर्योधनका झपाटा	९४७

घटोत्कचवध-पर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१५३	दुर्योधनका पराजय	९५३

चौदहवें दिनकी रात्रि-

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१५४	पाण्डव तथा सृञ्जयोंका धावा करना	९५९
१५५	द्रोणका पाण्डवोंकी सेनामें घुसना	९६५
१५६	सात्यकि और घटोत्कचका पराक्रम	९७२
१५७	वाह्लीकका वध	१०००
१५८	कर्ण और कृपाचार्यकी झपट	१००६
१५९	कर्ण और अश्वत्थामाकी बातचीत	१०१६
१६०	अश्वत्थामाका पराक्रम	१०३१
१६१	कौरवसेनामें भागड़ पड़ना	१०३९
१६२	सोमदत्तका वध	१०४०

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१६३	दीपकोंके प्रकाशमें युद्ध	१०५०
१६४	द्रोणका युद्ध	१०५७
१६५	युधिष्ठिरका भागना	१०६२
१६६	भीम और दुर्योधन	१०६८
१६७	सहदेव और (दूसरे) अलम्बुषका भागना	१०७७
१६८	छोटे२ योधाओंका युद्ध	१०८४
१६९	मारकाट	१०९०
१७०	धृष्टद्युम्न पर बाणवृष्टि	१०९७
१७१	परस्पर संहार	११०७
१७२	कर्ण और द्रोणका पांडव सेनाको भगाना	१११४
१७३	घटोत्कचका रणमें आना	११२१
१७४	(दूसरे) अलंबुषका नाश	११३१
१७५	घटोत्कचकी धूमधाम	११३७
१७६	अलायुधका रणमें आना	११५४
१७७	भीम और अलायुध	११५७
१७८	अलायुधवध	११६४
१७९	घटोत्कचवध	११७०
१८०	श्रीकृष्णका हर्ष	११८२
१८१	श्रीकृष्णके किये पाण्डवों के हितकार्योंका वर्णन	११८८
१८२	दैवकी क्रीड़ा	११९३
१८३	युधिष्ठिरका शोक	१२०१
	द्रोणवध-पर्व	
१८४	सेनाका रणमें सोना	१२११
१८५	पिछली रात	१२१९
	प्रभात-	
१८६	विराट और द्रुपदका वध	१२२४
	पन्द्रहवाँ दिन-	
१८७	नकुलका पराक्रम	१२२३
१८८	दुःशासन और सहदेव	१२४१
१८९	दुर्योधन-सात्यकि-संवाद	१२४९
१९०	नरो वा कुञ्जरो वा	१२५९
१९१	द्रोणका खिन्न होना	१२६८
१९२	द्रोणका वध	१२७६
	नारायणास्त्रमोक्ष-पर्व	
१९३	कृपाचार्य अश्वत्थामा सम्बाद	१२८८
१९४	धृतराष्ट्रका प्रश्न	१२९८
१९५	अश्वत्थामाका कोप	१३०१
१९६	युधिष्ठिर-अर्जुन-संवाद	१३०८
१९७	भीमसेन और धृष्टद्युम्नके वाक्य	१३१६
१९८	धृष्टद्युम्न और सात्यकि की झपट	१३२३
१९९	नारायणास्त्र	१३३३
२००	नारायणास्त्रको निष्फल करना	१३४२
२०१	आग्नेयास्त्रका निष्फल जाना अश्वत्थामाका आश्चर्य	१३६२
२०२	शिवस्वरूपवर्णन	१३७७

द्रोणपर्वकी विषयसूची समाप्त ।

सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद
MORADABAD.

SHRI SANMATI LIB... JAIPUR.
श्री सन्मति पुस्तकालय जयपुर

सन्मति पुस्तक...
11436
Acc. No.
... नगर,

* श्रीहरिः *

महाभारत

द्रोणपर्व

द्रोणाभिषेक-पर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

जनमेय उवाच । तमप्रतिमसत्त्वौजोबलवीर्यसमन्वितं । हतं देवव्रतं श्रुत्वा पांचाल्येन शिखण्डिना ॥ १ ॥ धृतराष्ट्रस्ततो राजा शोकव्याकुललोचनः। किमचेष्टत विप्रर्षे हते पितरि वीर्यवान् ॥२॥ तस्य पुत्रो हि भगवान् भीष्मद्रोणमुखै रथैः । पराजित्य महेष्वासान् पांडवान् राज्यमिच्छति ॥ ३ ॥ तस्मिन् हते तु भगवन् केतौ सर्वधनुष्मताम् । यदचेष्टत कौरव्यस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच । निहतं पितरं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनाधिपः ।

पुरुषोंमें श्रेष्ठ नर, नारायण और सरस्वती देवीको प्रणाम करके जयका उच्चारण करै ॥*॥ जनमेयने बूझा कि-हे विप्रर्षे ! उन अनुपम सत्त्व (बड़ी भारी आपत्ति पड़ने पर भी दुःखरहित रहना) मानसिकबल, शरीरके बल, शत्रुओंका तिरस्कार करने की सामर्थसे युक्त भीष्मपितामहको पञ्चालवंशी शिखण्डीसे मारे गए सुनकर जिसके नेत्र शोकसे व्याकुल होगए थे उस पराक्रमी राजा धृतराष्ट्रने क्या किया ? ॥ १—२ ॥ तथा हे तपोधन ! भीष्म और द्रोण आदि मुख्य २ महारथियोंसे महाधनुर्धर पाण्डवोंको हराकर राज्य करनेकी इच्छा रखनेवाले दुर्योधनने उन सब धनुर्धरोंकी ध्वजारूप भीष्मजीके मारेजाने पर क्या २ किया, यह मुझसे कहिये ॥ ३—४ ॥ वैशम्पायनजी कहने लगे कि—हे जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र भीष्मजीको मराहुआ सुनकर,

लेभे न शान्तिं कौरव्याश्चिन्ताशोकपरायणः ॥ ५ ॥ तस्य चिन्तयतो दुःखमनिशं पार्थिवस्य तत् । आजगाम विशुद्धात्मा पुनर्गावल्गणिस्तदा ॥ ६ ॥ शिबिरात् सञ्जयं प्राप्तं निशि नागाह्वयं पुरम् । आम्बिकेयो महाराज धृतराष्ट्रोऽन्वपृच्छत ॥ ७ ॥ श्रुत्वा भीष्मस्य निधनमप्रहृष्टमना भृशम् । पुत्राणां जयमाकांक्षन्विललापातुरो यथा ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । संशोच्य तु महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् । किमकार्षुः परं तात कुरवः कालचोदिताः ॥ ९ ॥ तस्मिन्विनिहते शूरे दुराधर्षे महात्मनि । किन्नुस्वित्कुरवोऽकार्षुर्निमग्नाः शोकसागरे ॥ १० ॥ तदुदीर्णं महत् सैन्यं त्रैलोक्यस्यापि सञ्जय । भयमुत्पादयेत्तीव्रं पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ११ ॥ को हि दौर्योधने सैन्ये पुमानासीन्महारथः । यं प्राप्य समरे वीरा न त्रस्यन्ति महाभये ॥ १२ ॥ देवव्रते तु निहते कुरूणामृषभे तदा ।

चिन्ता और शोकमें डूबकर बावलासा बन गया, रातदिन उस दुःख का ही विचार करने लगा । इतनेमें विशुद्ध हृदय वाला सञ्जय कौरवोंकी छावनीमेंसे रात्रिको हस्तिनापुरमें आया । हे महाराज ! अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रने (उससे युद्धस्थलके) समाचार पूछे, उत्तरमें भीष्मकी मृत्युको सुनकर उसके मनमें बड़ा खेद हुआ, पुत्रोंकी जीत चाहनेवाला वह राजा आतुरकी समान बड़ा विलाप करने लगा ॥ ५—८ ॥ भीमपराक्रमी महात्मा भीष्मके लिये खूब रो धोकर धृतराष्ट्रने सञ्जयसे पूछा कि-हे तात सञ्जय ! शूरवीर, दुराधर्ष, महात्मा भीष्मके मारेजाने पर शोकसागरमें डूबते हुए और जो कालसे प्रेरित होकर लड़ रहे थे उन कौरवोंने क्या २ किया ॥९—१०॥ हे सञ्जय ! महात्मा पाण्डवोंका यह बड़ा भारी सेनाबल तीनों लोकोंको भी तीव्र भय देनेवाला है ॥११॥ अब दुर्योधनकी सेनामें ऐसा कौन महारथी है कि-जिसके नीचे रहकर बड़ा भारी भय पड़ने पर भी वीरपुरुष डरें नहीं ? हे सञ्जय ! कुरुकुलमें श्रेष्ठ भीष्मजीके मारे जाने पर कौरवपक्ष

किमकार्षुर्नृपतयस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १३ ॥ सञ्जय उवाच । शृणु राजन्नेकमना वचनं ब्रुवतो मम । यत्ते पुत्रास्तदाकार्षुर्हते देवव्रते मृधे ॥ १४ ॥ निहते तु तदा भीष्मे राजन् सत्यपराक्रमे । तावकाः पांडवेयाश्च प्राध्यायन्त पृथक् पृथक् ॥ १५ ॥ विस्मिताश्च महृष्टाश्च क्षत्रधर्मं निशाम्य ते । स्वधर्मं निंदमानास्ते प्रणिपत्य महात्मने ॥ १६ ॥ शयनं कल्पयामासुर्भीष्मायामितकर्मणे । सोपधानं नरव्याघ्र शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १७ ॥ विधाय रक्षां भीष्माय समाभाष्य परस्परम् । अनुमान्य च गाङ्गेयं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ १८ ॥ क्रोधसंरक्तनयनाः समवेत्य परस्परम् । पुनर्युद्धाय निर्जग्मुः क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥ १९ ॥ ततस्तूर्यनिनादैश्च

के राजाओंने क्या किया यह मुझसे कह ॥१२-१३॥ सञ्जय बोला कि--हे राजन्! तुम्हारे प्रश्नका मैं उत्तर देता हूं तुम्हारे पुत्रोंने भीष्मजीके संग्राममें मारे जाने पर जो२ किया उसको तुम ध्यान देकर सुनो ॥ १४ ॥ उस समय सत्यपराक्रमी भीष्मजी के मारे जाने पर हे राजन्! कौरव और पांडव अलग २ विचार करने लगे अर्थात् कौरव हार और पांडव विजयका ध्यान करने लगे ॥ १५ ॥ वे राजा क्षात्रधर्मको सुनकर विस्मय और आनन्दमें भरगए (विस्मित इस लिये हुए कि-युद्धमें सामने पड़ने पर बड़ेको मारनेमें दोष नहीं है तथा आनन्दित इस लियेहुए कि-(युद्धमें मरनेसे स्वर्ग मिलता है) अपने क्षात्रधर्मकी निन्दा करते हुए उन्होंने अमितपराक्रमी भीष्मजीको प्रणाम किया तदनन्तर अच्छी तरह तरह नमी हुई गांठ वाले बाणोंके तकियेवाली शय्या को रचकर तथा उनकी रक्षाके लिये रक्षकोंको बैठाकर, आपस में बातचीत कर गंगापुत्र भीष्मजीकी परिक्रमा कर तथा उनसे आज्ञा लेकर, कालके प्रेरणा करे हुए वे क्षत्रिय राजे क्रोध के कारण लाल २ नेत्रोंवाले तुम्हारे और पांडुके पुत्र एक दूसरे से मिलकर युद्धके लिये तत्पर होगए। तदनन्तर तुरही और

भेरीणां निनदेन च। तावकानामनीकानि परेषां चैव निर्ययुः॥२०॥ व्यावृत्तेऽर्यम्णि राजेन्द्र पतिते जाह्नवीसुते। अमर्षवशमापन्नाः कालोपहतचेतसः॥ २१ ॥ अनादृत्य वचः पथ्यं गाङ्गेयस्य महात्मनः। निर्ययुर्भरतश्रेष्ठाः शस्त्राण्यादाय सत्वराः ॥२२॥ मोहात्तव सपुत्रस्य वधाच्छान्तनवस्य च। कौरव्या मृत्युसाद्भूता सहिता सर्वराजभिः ॥ २३ ॥ अजावय इवागोपा वने श्वापदसंकुले। भृशमुद्विग्नमनसो हीना देवव्रतेन ते ॥ २४ ॥ पतिते भरतश्रेष्ठे बभूव कुरुवाहिनी। द्यौरिवापेतनक्षत्रा हीनं खमिव वायुना ॥२५॥ विपन्नसस्येव मही वाक् चैवासंस्कृता यथा। आसुरीव यथा सेना निगृहीते नृपे बलौ ॥ २६ ॥ विधवेव वरारोहा शुष्कतोयेव निम्नगा। वृकैरिव वने रुद्धा पृषती हतयूथपा ॥ २७ ॥ शरभा हतसिंहेव

भेरियोंकी ध्वनियोंके साथ २ छावनीयोंसे तुम्हारी और पाण्डवों की सेनाएं लड़नेके लिये निकल पड़ी ॥ १९—२० ॥ हे राजेन्द्र ! गंगापुत्र भीष्म सूर्यनारायणके छिपते समय युद्धमें गिरे थे, उन महात्मा गांगेयके हितकारी वचनका अनादर करके, कालने मूढ़ बना दिया है चित्तको जिनके ऐसे वे भरतवंशमें श्रेष्ठ क्षत्रिय क्रोधमें भरकर शीघ्र ही आयुधोंको लेकर लड़नेके लिये निकल पड़े ॥ २१-२२ ॥ तुम्हारी और तुम्हारे पुत्रकी मूर्खतासे और भीष्मके वधसे कौरव और सब राजे मृत्युके मुखमें आपड़े हैं और भीष्मके न रहनेसे वे हिंसक पशुओंसे भरे हुए वनमें विना ग्वालियेके भेड़ बकरियें जैसे मनमें उदास होजाती हैं, तैसे उदास होगए हैं ॥ २३—२४ ॥ इतना ही नहीं किन्तु नक्षत्रोंके विना जैसे आकाश, वायुके विना जैसे मेघ, धान्यसे रहित जैसे पृथ्वी, विना संस्कार (व्याकरण) के जैसे वाणी, बलीके कैद होजाने पर जैसे उसकी सेना, पतिके मरने से विधवा हुई सुन्दरी स्त्री, जलके विना नदी, भेड़ियोंसे वनमें रोकी हुई चित्रमृगी और समूह

महती गिरिकंदरा । भारती भरतश्रेष्ठे पतिते जाह्नवीसुते ॥२८॥ विष्वग्वातहतारुग्णा नौरिवासीन्महार्णवे । बलिभिः पाण्डवैर्वीरैर्लब्धलक्ष्यैर्भृशार्दिता ॥२९॥ सा तदासीद् भृशं सेना व्याकुलाश्वरथद्विपा । विपन्नभूयिष्ठनरा कृपणा ध्वस्तमानसा ॥ ३० ॥ तस्यां त्रस्ता नृपतयः सैनिकाश्च पृथग्विधाः । पाताल इव मज्जन्तो हीना देवव्रतेन ते ॥ ३१॥ कर्णं हि कुरवोऽस्मार्षुः स हि देवव्रतोपमः । सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं रोचमानमिवातिथिम् ॥ ३२ ॥ बन्धुमापद्ग-

से बिछुड़ी हुई मृगी, शरभसे* मारेहुए सिंहवाली शून्य पड़ी हुई गुफा जैसे निस्तेज होजाती है तैसे ही कुरुवंशकी सेना भी गंगापुत्र भीष्मके गिरनेसे निस्तेज होगई है ॥ २५-२८ ॥ जब बली पांडव निशाना ताक कर कौरवोंका सेनाको अच्छी प्रकार मारने लगे तब चारों ओरसे पवनके झपेटेसे डांवाडोल होती हुई नौका जैसे कांपती है, तैसे ही कौरवोंकी सेना भी कांपने लगी ॥ २९॥ उस समय कौरवोंकी सेनामें घोड़े, रथ और हाथी अत्यन्त घबड़ा गए थे, बहुतसे योधा मर गए थे तथा बहुतसे दयाजनक स्थिति में आपड़े थे और बहुतसे मूर्छित होगए थे ॥ ३० ॥ उस सेनामें भीष्मजीके न रहनेसे बहुतसे योधा और राजे डर गए थे तथा पातालमें डूबे जाते हों इस प्रकार दुःख भोग रहे थे ॥ ३१ ॥ कौरवोंने इस समय कर्णका स्मरण किया क्योंकि-वह भीष्मजी की समान बलवान् था, किसी आपत्तिके पड़ने पर, जैसे अपने बन्धु पर ध्यान जा पड़ता है तैसे उस समय सब कौरवोंका मन सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विद्या तथा तपसे शोभायमान अग्निकी समान कर्णके ऊपर ही गया, और

---

* शरभ एक प्राणी है। इसके आठ पैर होते हैं यह सिंहसे भी बलवान् होता है, और सिंहके सामने पहुँचने ही पूंछसे अपने मूत्रके छींटे सिंहकी आंखों पर उड़ाता है इससे सिंह अन्धा होजाता है और शरभ बलवान् पड़जाता है।

गतस्येव तमेवोपागमन्मनः । चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तत्र भारत पार्थिवाः ॥ ३३ ॥ राधेयं हितमस्माकं सूतपुत्रं तनुत्यजम् । स हि नायुध्यत तदा दशाहानि महायशाः ॥ ३४ ॥ सामात्यबन्धुः कर्णो वै तमानयत मा चिरम् । भीष्मेण हि महाबाहुः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ ३५ ॥ रथेषु गण्यमानेषु बलविक्रमशालिषु । संख्यातोऽर्धरथः कर्णो द्विगुणः सन्नरर्षभः ॥३६॥ रथातिरथसंख्यायां योऽग्रणीः शूरसम्मतः । सासुरानपि देवेशान् रणे यो योद्धुमुत्सहेत् ॥ ३७ ॥ स तु तेनैव कोपेन राजन् गाङ्गेयमुक्तवान् । त्वयि जीवति कौरव्य नाहं योत्स्ये कदाचन ॥ ३८ ॥ त्वया तु पाण्डवेयेषु निहतेषु महामृधे । दुर्योधनमनुज्ञाप्य वनं यास्यामि

हे भारत ! भरतवंशी राजा उस समय अपने हितैषी और युद्धमें शरीरको भी त्याग देनेवाले सूतनन्दन राधापुत्र कर्णको कर्ण ! कर्ण ! इस प्रकार चिल्ला कर बुलाने लगे, क्योंकि—भीष्मपितामह जब युद्ध करते थे तब दश दिन तक उस महायशस्वी कर्णने युद्ध नहीं किया था ॥ ३२—३४ ॥ "कर्णको उसके मंत्री तथा बांधवों सहित शीघ्र ही बुला लाओ देर मत करो" इस प्रकार कौरव राजे आज्ञा देनेलगे जब भीष्मजीने बली तथा पराक्रमी रथी और महारथियोंकी गिनतीकी थी उस समय कर्णको कि-जो द्विगुण रथी था, सब राजाओंके सामने अर्धरथी ठहराया था ! ३५-३६ कर्ण रथियोंमें तथा अतिरथियों में अगुआ और शूरवीरोंमें माननीय था , इतना ही नहीं किन्तु वह युद्धमें असुरोंसे और देवताओंके स्वामियोंसे भी युद्धकरनेके साहस वाला था तो भी भीष्मजीने उसको अर्धरथी गिना , उस समय हे राजन् ! उसने क्रोध में भर कर भीष्मजीसे यह कहा था कि—हे भीष्म ! तुम जब तक जीवित हो तबतक मैं कदापि युद्ध न करूँगा यदि महासंग्राममें तुम पाण्डवोंको मारोगे तो मैं दुर्योधनसे आज्ञा लेकर वनमें चला जाऊँगा और पाण्डवोंने तुम्हें मार डाला उस समय तुम्हारे

कौरव ॥ ३९ ॥ पाण्डवैर्वा हते भीष्मे त्वयि स्वर्गमुपेयुषि । हंतास्म्येकरथेनैव कृत्स्नान् यान्मन्यसे रथान् ॥ ४० ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुर्दशाहानि महायशाः । नायुध्यत ततः कर्णः पुत्रस्य तव सम्मतेः ॥ ४१ भीष्मः समरविक्रान्तः पाण्डवेयस्य भारत । जघान समरे योधानसंख्येयपराक्रमः ॥ ४२ ॥ तस्मिंस्तु निहते शूरे सत्यसन्धे महौजसि । त्वत्सुताः कर्णमस्मार्षुस्तर्तुकामा इव प्लवम् ॥ ४३ ॥ तावकास्तव पुत्राश्च सहिताः सर्वराजभिः । हा कर्ण इति चाक्रन्दन् कालोऽयमिति चाब्रुवन् ॥ ४४ ॥ एवं ते स हि राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् । चुक्रुशुः सहिता योधास्तत्र तत्र महाबलाः ॥ ४५ ॥ जामदग्न्याभ्यनुज्ञातमस्त्रे दुर्वारपौरुषम् ।

स्वर्ग को चले जाने पर कि-जिनको तुम रथी मानते हो उन सब रथियोंको मैं अपने एक रथकी सहायतासे ही मारूँगा ! यह कह कर महायशस्वी, महाबाहु कर्ण, तुम्हारे पुत्रकी सम्मतिके अनुसार दश दिन नहीं लड़ा था, हे भारत ! अपार युद्धमें पराक्रम करनेवाले पराक्रमी भीष्मने रणभूमिमें युधिष्ठिरके योधाओं का संहार कर डाला था ॥ ३७ - ४२ ॥ परन्तु जब शूरवीर, महाप्राण, बली और सत्य प्रतिज्ञा वाले भीष्म युद्धमें गिरे तब समुद्रको तरनेकी इच्छा वाले जैसे नौकाको चाहते हैं तैसे ही युद्ध-सागरको तरना चाहने वाले तुम्हारे पुत्र कर्णका स्मरण करने लगे, तुम्हारे पुत्र तथा दूसरे राजे इकट्ठे होकर कर्ण ! कर्ण !! इस प्रकार ऊँचे स्वरसे कर्णका आह्वान करने लगे और कहने लगे कि-कर्णके लड़नेका समय अब ही आया है, इस प्रकार जब महाबलवान् योधा इकट्ठे होकर अपने शरीरको भी छोड़ सकनेवाले सूतपुत्र कर्णको बुलाने लगे और आपसमें कहने लगे कि-परशुरामके पास सीखनेसे अस्त्रविद्यामें जिसके बलको रोकना कठिन है उस कर्णके प्रति हम सब योधाओंका मन ऐसे लगा है

अगमन् नो मनः कर्णे बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥ ४६ ॥ स हि शक्तो रणे राजंस्त्रातुमस्मान् महाभयात् । त्रिदशानिव गोविन्दः सततं सुमहाभयात् ॥ ४७ ॥ वैशम्पायन उवाच । तथा तु सञ्जयं कर्णं कीर्त्तयन्तं पुनः पुनः। आशीविषवदुच्छ्वस्य धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ४८ धृतराष्ट्र उवाच । यत्तद्वैकर्त्तनं कर्णमगमद्वो मनस्तदा । अप्यपश्यत राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ४९ ॥ अपि तन्न मृषाकार्षीत् कच्चित् सत्यपराक्रमः। संभ्रांतानां तदार्त्तानां त्रस्तानां त्राणमिच्छताम् ५० अपि तत् पूरयाञ्चक्रे धनुर्धरवरो युधि । यत्तद्विनिहते भीष्मे कौरवाणामपाकृतम् ५१ तत्खण्डं पूरयन् कर्णः परेषामादधद्भयम् । स हि वै पुरुषव्याघ्रो लोके संजय कथ्यते ॥ ५२ ॥ आर्त्तानां बांधवानां च क्रंदतां च विशेषतः। परित्यज्य रणे प्राणांस्तत्त्राणार्थं च

जैसे—आपत्ति पड़ने पर मनुष्यका सहायता करनेवालेकी ओरको मन जापड़ता है ॥४३–४६॥ हे राजन् जैसे गोविन्द देवताओंकी महाभयसे सदा रक्षा करते हैं तैसे ही वह भी हमारी बड़े भारी भयमें भी रक्षा करनेकी शक्ति रखता है ॥ ४७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इसप्रकार वारम्वार कर्णकी प्रशंसा करते हुए सञ्जयसे राजा धृतराष्ट्रने सांपकी समान श्वास लेकर यह कहा कि—॥४८॥ धृतराष्ट्रने बूझा कि-हे सञ्जय ! जब तुम्हारा मन सूतपुत्र, राधेय, संग्राममें शरीरकी भी परवाह न करने वाले कर्णकी ओर झुका था तब क्या वह आया था ? और सत्यपराक्रमी कर्णने घबड़ाए और डरे हुए तथा रक्षा चाहनेवाले तुम्हारी आशाको उसने झूंठी तो नहीं किया था ? कौरवोंके संरक्षक भीष्मके मारेजाने पर जो पद खाली होगया था क्या धनुधरोंमें श्रेष्ठ कर्णने उसको युद्धमें भरा था ? हे सञ्जय ! कर्ण मनुष्योंमें पुरुषव्याघ्र कहाता है अतः उसने रणमें रोते हुए अपने बान्धवोंकी रक्षार्थ अपने प्राणोंको और सुखको त्यागकर क्या

शर्म च । कृतवान् मम पुत्राणां जयाशां सफलामपि ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि
धृतराष्ट्रप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच । हतं भीष्ममथाधिरथिर्विदित्वा भिन्नां नावमिवात्यगाधे कुरूणाम् । सोदर्यवद्व्यसनात् सूतपुत्रः सन्तारयिष्यंस्तव पुत्रसेनाम् ॥ १ ॥ श्रुत्वा तु कर्णः पुरुषेन्द्रमच्युतं निपातितं शान्तनवं महारथम् । अथोपयायात् सहसारिकर्षणो धनुर्धराणां प्रवरस्तदा नृप ॥ २ ॥ हते तु भीष्मे रथसत्तमे परैर्निमज्जतीं नावमिवार्णवे कुरून् । पितेव पुत्रांस्त्वरितोऽभ्ययात्ततः सन्तारयिष्यंस्तव पुत्रसेनाम् ॥ ३ ॥ कर्ण उवाच । यस्मिन् धृतिर्बुद्धिपराक्रमौजः सत्यं स्मृतिर्वीरगुणाश्च सर्वे । अस्त्राणि दिव्यान्यथ संनतिर्ह्रीः प्रिया च वागनसूया च भीष्मे ॥ ४ ॥ सदा कृतज्ञे द्विजशत्रुघातके सनातनं

मेरे पुत्रोंकी विजयकी अभिलाषाकों सफल भी किया था ? ॥ ४९-५३ ॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ * ॥ * ॥

सञ्जयने कहा कि–हे राजन् ! महारथ तथा धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ और सब शत्रुओंको सहनेवाले कर्णको ज्ञात हुआ कि–भीष्म मारे गए हैं तब, जैसे अतीव अगाध समुद्रमें टूटी हुई नाव डूबनेलगती है तैसे ही रणभूमिमें भागड़ पड़नेसे डूबनेको तयार हुई तुम्हारे पुत्रकी सेनाको सहोदरकी समान, दुःखमेंसे उधारनेकी अभिलाषाकर पिता जैसे अपने पुत्रोंकी रक्षाके लिये आता है तैसे ही कर्ण भी समुद्रमें डूबती हुई नावकी समान रणभूमिमें नाश पानेको उद्यत हुई तुम्हारे पुत्रकी सेनाको तारनेकी इच्छासे शीघ्रताके साथ कौरवोंके पास आगया और कहने लगा ॥ १ ॥ कर्ण बोला कि–जैसे चन्द्रमामें चिन्ह सनातनसे है, तैसे ही कृतज्ञ और शत्रुओंका नाश करनेवाले भीष्मजीमें धैर्य, बुद्धि, पराक्रम, ओज, सत्य, स्मृति, वीरोचित सकल गुण, दिव्य अस्त्र, नम्रता, लज्जा, प्रियवाणी और अद्वेष आदि गुण भी सदासे थे, ऐसे, सदा करे हुएको

चन्द्रमसीव लक्ष्म। स चेत् प्रशान्तः परवीरहन्ता मन्ये हतानेव च सर्ववीरान् ॥ ५ ॥ नेह ध्रुवं किञ्चन जातु विद्यते लोके ह्यस्मिन् कर्मणोऽनित्ययोगात्। सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो भावं कुर्वीतार्यमहाव्रते हते ॥ ६ ॥ वसुप्रभावे वसुवीर्यसम्भवे गते वसूनेव वसुन्धराधिपे। वसूनि पुत्रांश्च वसुन्धरां तथा कुरूंश्च शोचध्वमिमाश्च वाहिनीम् ॥७॥ सञ्जय उवाच। महाप्रभावे वरदे निपातिते लोकेश्वरे शास्तरि चामितौजसि। पराजितेषु भरतेषु दुर्मनाः कर्णो भृशं न्यश्वसदश्रु वर्त्तयन् ॥ ८ ॥ इदं च राधेयवचो निशम्य सुताश्च राजंस्तव सैनिकाश्च ह। परस्परं चुक्रुशुरार्त्तिजं

मानलेवाले, ब्राह्मणद्वेषियोंके घातक भीष्मजीके युद्धमें मारे जानेपर मैं सब ही वीरोंको मरा ही समझता हूं ॥ ४—५ ॥ कर्मकी गतिके अनित्य होनेसे इस जगत्में कोई भी वस्तु अचल नहीं है हे आर्य ! जब स्वच्छन्दमृत्युवाले महाव्रत भीष्मसरीखे भी इस युद्धमें घायल होगए तब फिर सूर्योदय होगा (और हम उसे देखेंगे) इस बातका दृढ़ विश्वास कौन करसकता है ? हे राजन् ! वसुओंकी समान प्रभाववाले वसुकी समान पराक्रमवाले शान्तनुके वीर्यसे उत्पन्न हुए भीष्म भी जब वसु नामक देवताओंके पास चले गए तब तुम्हें धन, पुत्र, पृथ्वी, कौरव और इस सेनाके भी शोक करनेका समय आगया है अर्थात् यह भी बचसकेगी अथवा नहीं इसको कौन कहे? अतः अब तुम स्त्री पुत्रादिमें मोहको त्यागकर यदि मृत्यु हो तो उससे भी लड़ो ॥६—७॥ सञ्जयने कहा कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! अपारबली लोकोंके स्वामी, शत्रुओंको दण्ड देनेवाले और वरदान देनेवाले महाप्रभावशाली भीष्मजीको पाण्डवोंके गिरा देने पर और भरतवंशी राजाओंके हराये जानेपर कर्ण मनमें खिन्न हुआ और आंसुओंको गिराता हुआ लम्बे २ श्वास लेनेलगा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! कर्णके ऐसे वचनोंको सुनकर तुम्हारे पुत्र और सैनिक परस्पर शोकके उद्गार प्रकट करनेलगे और

मुहुस्तदाश्रु नेत्रैस्तु मुमुचुश्च शब्दवत् ॥ ९ ॥ प्रवर्त्तमाने तु पुनर्महाहवे विगाह्यमानासु चमूषु पार्थिवैः । अथाब्रवीद्धर्षकरं तदा वचो रथर्षभान् सर्वमहारथर्षभः ॥ १० ॥ जगत्यनित्ये सततं प्रधावति प्रचिंतयन्नस्थिरमद्य लक्षये । भवत्सु तिष्ठत्स्विह पातितो मृधे गिरिप्रकाशः कुरुपुङ्गवः कथम् ॥ ११ ॥ निपातिते शान्तनवे महारथे दिवाकरे भूतलमास्थिते यथा । न पार्थिवाः सोढुमलं धनञ्जयं गिरप्रवोढारमिवानिलं द्रुमाः ॥ १२ ॥ हतप्रधानं त्विदमार्त्तरूपं परैर्हतोत्साहमनाथमद्य वै । मया कुरूणां परिपाल्यमाहवे बलं यथा तेन महात्मना तथा ॥ १३ ॥ समाहितं चात्मनि भारमीदृशं जगत्तथानित्यमिदञ्च लक्षये । निपातितञ्चाहवशौण्डमाहवे कथं तु कुर्यामहमीदृशे भयम् ॥ १४ ॥ अहन्तु तान् कुरुवृषभानजिह्मगैः

डीख फोड़कर रोनेलगे, तदनन्तर राजाओंके अपनी २ सेनामें उपस्थित हो युद्धके दुबारा आरंभ होजाने पर सब महारथियों में श्रेष्ठ कर्ण युद्धमें बड़े २ महारथियोंसे हर्ष देनेवाले बचन बोला कि-यह जगत् सदा अनित्य है तथा मृत्युकी ओर दौड़ा करता है, इस बातको विचारने पर मैं किसी वस्तुको भी नित्य नहीं देखता तुम समीपमें खड़े हुए थे तो भी पर्वतकी समान कुरुकुलश्रेष्ठ भीष्मजी युद्धमें कैसे मारेगए ? ॥ ९-११ ॥ पृथ्वीमें सूर्यकी समान शन्तनुनन्दन महारथी भीष्मको जब शत्रुओंने गिरा दिया तब जैसे पर्वत उखाड़ने वाले वायु को वृक्ष नहीं सह सकते हैं तैसे राजे अर्जुनको नहीं सह सकेंगे, परन्तु भीष्मके गिरनेसे सेनापतिशून्य दुःखसे घबड़ाई हुई, शत्रुओंसे पीडित सेनाकी मैं भीष्मकी समान ही रक्षा करूँगा मुझ पर सेनाका भार आपड़ा है उसको मैं स्वीकार करता हूं, मैं जानता हूं कि-यह जगत् नाशवान् है और यह भी मैंने देखा है कि-रणचतुर भीष्म युद्धमें गिर पड़े हैं, तब मुझे अपना कर्तव्य बजानेमें क्यों भय करना चाहिये ? ॥ १२—१४ ॥ मैं

प्रवेशयन् यमसदनं चरन् रणे। यशः परं जगति विभाव्य वर्त्तिता परैर्हतो भुवि शयिताथ वा पुनः ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरो धृतिमतिसत्यसत्त्ववान् वृकोदरो गजशततुल्यविक्रमः। तथार्जुनस्त्रिदशवरात्मजो युवा न तद्बलं सुजयमिहामरैरपि ॥ १६॥ यमौ रणे यत्र यमोपमौ बले ससात्यकिर्यत्र च देवकीसुतः। न तद्बलं कापुरुषोऽभ्युपेयिवान् निवर्त्तते मृत्युमुखान्न चासुभृत् ॥ १७॥ तपोऽभ्युदीर्णं तपसैव बाध्यते बलं बलेनैव तथा मनस्विभिः। मनश्च मे शत्रुनिवारणे ध्रुवं स्वरक्षणे चाचलवद्व्यवस्थितम् १८ एवं चैषां बाधमानः प्रभावं गत्वैवाहं तान् जयाम्यद्य सूत। मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं भग्ने सैन्ये यः समेयात् स मित्रम् ॥ १९ ॥ कर्त्तास्म्येतत् सत्पुरुषार्य-

---

युद्धस्थलमें घूम२कर सीधे जानेवाले बाण मारता हुआ पाण्डवोंको यमपुरीमें भेजदूंगा और जगत्में अपने यशको प्रकट करके रहूंगा अथवा शत्रुओंसे मारा जाकर भूमि पर शयन करूँगा ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरमें धैर्य, बुद्धि, सत्य और सत्त्व है, भीमसेनमें सौ हाथियोंके समान बल है, अर्जुन इन्द्रपुत्र है और तरुण है, देवता भी उसके बलको सहजमें नहीं जीत सकते ॥१६॥ जहां पर यमकी समान बलवान् नकुल सहदेव हैं, और जहां सात्यकि तथा देवकीपुत्र कृष्ण भी हैं ऐसे सेनादलमें यदि कोई कायर पुरुष प्रवेश करे तो मृत्युके मुखमें प्रवेश करनेवाले प्राणीकी समान वह बच ही नहीं सकता॥१७॥ परन्तु मैं कायरपुरुष नहीं हूं, तपस्वी जैसे तपसे तपका काट करते हैं तैसे ही मनस्वी पुरुष अपनी सेनासे शत्रुसेना का पराजय करते हैं, मेरा मन भी शत्रुओंको हटानेमें जुटा हुआ है तथा अपनी रक्षामें भी पर्वतकी समान दृढ़ है ॥ १८ ॥ ओ सारथि! अब जब मेरा मन मेरे अनुकूल है मैं शत्रुओंके पास जाकर उनके प्रभावको रोकता हुआ उनको आज ही जीतूँगा और उनका पराजय करूँगा मित्रद्रोह मुझे सह्य नहीं है, सेनामें भागड़ पड़ने पर जो सामने आवे वह ही मित्र है ॥१९ ॥ अतः मैं

कर्म त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि भीष्मम्। सर्वान् संख्ये शत्रुसंघान्
हनिष्ये हतस्तैर्वा वीरलोकं प्रपत्स्ये ॥ २० ॥ सम्प्रा क्रुष्टे रुदित-
स्त्रीकुमारे पराहते पौरुषे धार्त्त राष्ट्रे । मया कृत्यमिति जानामि
सूत तस्माद्राज्ञस्त्वद्य शत्रून् विजिष्ये ॥ २१ ॥ कुरून् रक्षन् पांडु-
पुत्रान् जिघांसंस्त्यक्त्वा प्राणान् घोररूपे रणेऽस्मिन् । सर्वान्
संख्ये शत्रुसंघान्निहत्य दास्याम्यहं धार्त्तराष्ट्राय राज्यम्॥ २२॥
निबध्यतां मे कवचं विचित्रं हैमं शुभ्रं मणिरत्नावभासि। शिरस्त्राणं
चार्कसमानभासं धनुः शरांश्चाग्निविषाहिकल्पान् ॥ २३ ॥
उपासङ्गान् षोडश योजयंतु धनूंषि दिव्यानि तथाहरन्तु ।
असींश्च शक्तीश्च गदाश्च गुर्वीः शंखश्च जाम्बूनदचित्रनालम्॥२४॥

सत्पुरुषोचित सत्कर्म करूँगा और प्राणोंको त्यागकर भीष्मके
पीछे२ जाऊँगा अर्थात् यातो रणमें सकल शत्रुओंके समूहोंको नष्ट
करूँगा नहीं तो शत्रुओंसे मरण पाकर वीरपुरुषोंके लोकमें जाऊँगा॥२०॥
जब कोई भी मुझे रक्षाके लिये पुकारे, जब स्त्री और
बच्चे रोते हों और जब२ दुर्योधनका पराक्रम नष्ट होता हो तब२
मुझे युद्ध करना चाहिये ऐसा मेरा मत है, अतः हे सूत ! मैं रण
में शत्रुओं पर विजय पाऊँगा ॥ २१ ॥ मैं घोर युद्धमें प्राणों की
भी परवाह न करता हुआ कौरवोंकी रक्षा करूँगा, पाण्डवों का
संहार करूँगा और सब शत्रुओंको मारडालनेके अनन्तर दुर्योधन
को राज्य दूंगा॥२२॥ अतः अब तू मेरे लिये मणि तथा रत्नोंसे
जड़ा चमकता हुआ विचित्र जातिका कवच लाकर मुझे
पहिरा, मस्तक पर सूर्यकी समान चमकीले टोपको पहिरा, मेरे
धनुषको और अग्निकी समान तथा जहरीले सांपोंकी समान
बाणों तथा सोलह भाथोंको भी रथमें यथास्थान ठीक २ करके
रखतैसे ही और २ दिव्य धनुष, तलवार, शक्ति, बड़ी भारी गदा
सुवर्णसे मढ़े होनेसे जिनका नाल विचित्र दीखता है ऐसे

इमां रौक्मीं नागकक्ष्यां विचित्रां ध्वजं चित्रं दिव्यमिन्दीवराङ्कम्। श्लक्ष्णैर्वस्त्रैर्विप्रमृज्यानयंतु चित्रां मालाञ्चारुबद्धां सजालाम्॥२५॥ अश्वानग्र्यान् पाण्डुराभ्रप्रकाशान् पुष्टान् स्नातान् मन्त्रपूताभिरद्भिः। तप्तैर्भाण्डैः काञ्चनैरभ्युपेतान् शीघ्रान् शीघ्रं सूतपुत्रानयस्व ॥२६॥ रथं चाग्र्यं हेममालावनद्धं रत्नैश्चित्रं सूर्यचन्द्रप्रकाशैः। द्रव्यैर्युक्तं सम्प्रहारोपपन्नैर्वाहैर्युक्तं तूर्णमावर्त्तयस्व ॥२७॥ चित्राणि चापानि च वेगवन्ति ज्याश्चोत्तमाः सन्नहनोपपन्नाः। तूणांश्च पूर्णान्महतः शराणामासाद्य गात्रावरणानि चैव ॥ २८ ॥ प्रायात्रिकं चानयताशु सर्वं दध्ना पूर्णं वीर कांस्यञ्च हैमम्। आनीय मालामवबध्य चाङ्गे प्रवादयंत्वाशु जयाय भेरीः ॥ २९ ॥ प्रयाहि सूताशु यतः किरीटी वृकोदरो धर्मसुतो यमौ च। तान् वा

शंख, चान्दीकी विचित्र जंजीर, कमलके चिन्हसे विचित्र दीखती हुई ध्वजा, और अच्छी तरह गुथी हुई झालरवाली मालाको स्वच्छवस्त्रोंसे साफ करके ला ॥ २३-२५ ॥ और हे सारथिपुत्र! श्वेत मेघोंकी समान प्रकाशवाले, धौले रंगके उतावली चालके हृष्ट पुष्ट घोड़ोंको मंत्रोंसे पवित्र किये हुए जलसे स्नान कराकर और सोनेके गहने पहिरा कर शीघ्रतासे ला॥२६॥ और सूर्य तथा चन्द्रमाकी समान चमकीले रत्नोंसे विचित्र दीखते हुए सुवर्णकी मालावाले उत्तम रथको युद्धकी सब सामग्रियोंसे सजाकर, तथा उन घोड़ोंको जोड़ कर शीघ्र ही ला ॥ २७ ॥ वेगवाले विचित्र बाण, मजबूत प्रत्यञ्चायें, बाणोंसे लबालब भरे भाथे, शरीर परके कवच आदिको भी शीघ्र ला ॥ २८ ॥ युद्धयात्रामें उपयोगी सम्पूर्ण शुभ वस्तुओंको भी शीघ्र ला और दहीसे भरे कांसी तथा सोनेके पात्र भी ले आ मेरे गलेमें विजयमाला पहिरा, विजयके लिये झट पट भेरियोंका नाद करवा ॥ २९ ॥ तदनन्तर हे सूतपुत्र! तू मुझे रथमें बैठाकर जहां अर्जुन, भीमसेन, धर्मपुत्र युधिष्ठिर और नकुल सहदेव हों तहां ले चल

हनिष्यामि समेत्य संख्ये भीष्माय गच्छामि हतो द्विषद्भिः ॥३०॥
यस्मिन् राजा सत्यधृतिर्युधिष्ठिरः समास्थितो भीमसेनार्जुनौ च ।
वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च मन्ये बलं तदजय्यं महीपैः ॥३१॥
तच्चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत् सदाऽप्रमत्तः समरे किरीटिनम् ।
तथापि हन्तास्मि समेत्य संख्ये यास्यामि वा भीष्मपथा यमाय
॥ ३२ ॥ न त्वेवाहं न गमिष्यामि तेषां मध्ये शूराणां तत्र चाहं
ब्रवीमि । मित्रद्रुहो दुर्बलभक्तयो ये पापात्मानो न ममैते सहायाः
॥ ३३ ॥ सञ्जय उवाच । समृद्धिमन्तं रथमुत्तमं दृढं सकूबरं हेमपरिष्कृतं शुभम् । पताकिनं वातजवैर्हयोत्तमैर्युक्तं समास्थाय
ययौ जयाय ॥ ३४ ॥ संपूज्यमानः कुरुभिर्महात्मा रथर्षभो
देवगणैर्यथेन्द्रः । ययौ तदा योधनमुग्रधन्वा यत्रावसानं भरतर्षभस्य

जिससे कि-मैं युद्धमें उनसे भेटा करके उनका संहार करूँ अथवा
शत्रुओंसे मरण पाकर मैं ही भीष्मके पास जाऊँ ॥ ३० ॥ जिस
सेनामें सत्य और धैर्यवाले राजा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल
सहदेव, सात्यकि और श्रीकृष्ण हों उस सेनाको राजे नहीं जीत
सकते, ऐसा मेरा दृढविश्वास है ॥ ३१ ॥ सबका संहारका करने
वाला काल भी सदा सावधान होकर रणमें अर्जुनकी रक्षा करेगा
तो भी मैं रणमें अर्जुनका सामान होते ही उसको मार डालूँगा
अथवा मैं स्वयं भी भीष्मके मार्गसे यमराजके दर्शन करनेको जाऊँगा
॥३२॥ मैं उन शूरवीरोंके बीचमें अवश्य जाऊँगा और जानेसे
पहिले कहता हूं कि-जो मित्रद्रोही दुर्बल भक्तिवाले तथा पापात्मा
हैं, उनको मैं अपना सहायक नहीं मानता ॥ ३३ ॥ सञ्जयने
कहा कि-ऐसा कहनेके अनन्तर कर्ण युद्धकी सामाग्रीसे भरे
सुवर्णकी पत्तरोंसे जड़े हुए, मजबूत ध्वजा, पताका वाले तथा
पवनवेगी उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए रथमें बैठकर जय करनेके लिये
निकला ॥ ३४ ॥ देवता जैसे महात्मा इन्द्रकी पूजा करते हैं तैसे
ही कौरवोंने भी उस समय महात्मा और महारथी कर्णकी पूजा

॥ ३५ ॥ वरूथिना महता सध्वजेन सुवर्णमुक्तामणिरत्नमालिना । सदश्वयुक्तेन रथेन कर्णो मेघस्वनेनार्क इवा मितौजाः ॥ ३६ ॥ हुताशनाभः स हुताशनप्रभे शुभः शुभे वैस्वरथे धनुर्धरः । स्थितो रराजाधिरथिर्महारथः स्वयं विमाने सुरराडिवास्थितः ॥३७॥ * ॥ इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णनिर्याणे

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच । शरतल्पे महात्मानं शयानममितौजसं । महावातसमूहेन समुद्रमिव शोषितम् ॥ १ ॥ दृष्ट्वा पितामहं भीष्मं सर्वक्षत्रांतकं गुरुम् । दिव्यैरस्त्रैर्महेष्वासं पातितं सव्यसाचिना ।२। जयाशा तव पुत्राणां संभग्ना शर्म वर्म च । अपाराणामिव द्वीपमगाधे गाधमिच्छतां ॥३॥ स्रोतसा यामुनेनैव शरौघेण परिप्लुतं ।

की, तदनन्तर जहां पर भरतवंशश्रेष्ठ भीष्म पड़े थे उस रणभूमि में उग्रधनुर्धर कर्ण गया, सूर्यकी समान अपार वलवाला कर्ण ध्वजावाले, सुवर्ण, रत्न, मोती और मणियोंकी मालावाले तथा उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए श्रेष्ठ रथमें वैठा था तथा वह रथ मेघकी समान गर्जना कररहा था ॥ ३५-३६ ॥ अपने अग्निकी समान झलझलाते हुए उत्तम रथमें वैठा हुआ तथा अग्निकी समान तेजस्वी महारथी कर्ण उस समय विमानमें वैठे हुए इन्द्रकी समान शोभा पारहा था ॥ ३७ ॥ द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

सञ्जयने कहा कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! कर्ण रथमें वैठकर जहां भरतवंशके पितामह महावलशाली महात्मा भीष्म वाणशय्या पर पौढ़े हुए थे तहां पर गया और देखा तो सकल क्षत्रियोंके संहारकर्ता भीष्म सव्यसाचीके दिव्य अस्त्रोंके प्रहारोंसे घायल होकर वाणशय्या पर पौढ़े हुए हैं ॥ १-२ ॥ भीष्मके पतनसे तुम्हारे पुत्रोंकी विजयाशा, कल्याण तथा रक्षण आदि सब नष्ट होगए थे, निराधार और अगाध सैन्यसागरमें आश्रयको चाहने वाले तुम्हारे पुत्रोंके आधाररूप अकेले भीष्म ही थे ॥३॥ यमुना

महेन्द्रेणेव मैनाकमसह्यं भुवि पातितं ॥ ४ ॥ नभश्च्युतमिवादित्यं पतितं धरणीतले । शतक्रतुमिवाचिन्त्यं पुरा वृत्रेण निर्जितम् ॥५॥ मोहनं सर्वसैन्यस्य युधि भीष्मस्य पातनं । ककुदं सर्वसैन्यानां लक्ष्म सर्वधनुष्मतां ॥ ६ ॥ धनञ्जयशरैर्व्याप्तं पितरं मे महाव्रतं । तं वीरशयने वीरं शयानं पुरुषर्षभं ॥ ७ ॥ भीष्ममाधिरथिर्दृष्ट्वा भरतानां महाद्युतिः । अवतीर्य रथादार्त्तो वाष्पव्याकुलिताक्षरं च अभिवाद्यांजलिं बध्वा वंदमानोऽभ्यभाषत । कर्णोऽहमस्मि भद्रं ते वद मामभि भारत ॥ ९ ॥ पुण्यया क्षेम्यया वाचा चक्षुषा चावलोकय । न नूनं सुकृतस्येह फलं कश्चित्समश्नुते ॥ १० ॥ यत्र धर्मपरो वृद्धः शेते भुवि भवानिह । कोशसंचयने मंत्रे व्यूहे प्रहर-

---

के प्रवाहकी समान बाणोंके झुण्डसे भीष्मजी चारों ओर से विंधे हुए थे, जैसे महेन्द्रने असह्य मैनाकको भूमि पर गिराया था तैसे ही अर्जुनने भीष्मजीको रणभूमिमें ढादिया ॥ ४ ॥ भूतल पर पड़े हुए पितामह आकाशमेंसे गिरे हुए आदित्यसे मालूम होते थे, पहिले जैसे वृत्रने इन्द्रको अचानक जीत लिया था तैसे ही अर्जुनने भी पितामहको अचानक जीत लिया ॥ ५ ॥ रणमें भीष्मजीका गिरना था, कि—सब सेना घबड़ा गयी, सब सेना के नायक और धनुषधारियोंके आभूषणरूप महाव्रतधारी भीष्म जी अर्जुनके बाणोंसे विंधकर वीरशय्या पर सोगये, उनको देखकर महाकान्ति वाला तथा भरतवंशी राजाओंमें महारथी अधिरथका पुत्र कर्ण घबड़ा गया और दोनों हाथ जोड़े हुए भीष्मजीको प्रणाम करके नेत्रोंमें आंसू भर लाया और लड़खड़ाती हुई वाणीमें कहने लगा, कि—हे भरतवंशके पितामह! मैं कर्ण आपको प्रणाम करता हूं, आप मेरी ओरको कृपादृष्टि करिये, और पवित्र तथा कल्याणकारी भाषण करिये, आपका कल्याण हो, हे कुरुवंशके महापुरुष ! आपसरीखे धर्मपरायण कौरवोंके वृद्ध पुरुषको आज इसप्रकार रणभूमिमें पड़े हुए देख

द्धेषु च ॥ ११ ॥ नाहमन्यं प्रपश्यामि कुरूणां कुरुपुङ्गव । युक्त्या विशुद्धया युक्तो यः कुरूंस्तारयेद्भयात् ॥१२॥ योधांस्तु बहुधा हत्वा पितृलोकं गमिष्यति । अद्यप्रभृति संक्रुद्धा व्याघ्रा इव मृगक्षयं १३ पाण्डवा भरतश्रेष्ठ करिष्यन्ति कुरुक्षयम् । अद्य गाण्डीवघोषस्य वीर्यज्ञा सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥ कुरवः संत्रसिष्यन्ति वज्रपाणेरिवासुराः । अद्य गाण्डीवमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ॥ १५ ॥ त्रासयिष्यति बाणानां कुरूनन्यांश्च पार्थिवान् । समिद्धोऽग्निर्यथा वीर महाज्वालो द्रुमान्दहेत् ॥१६॥ धार्तराष्ट्रान्प्रधक्ष्यन्ति तथा बाणाः किरीटिनः । येन येन प्रसरतो वाय्वग्नी सहितौ वने १७ तेन तेन प्रसरतो भूरि गुल्मतृणद्रुमान् । यादृशोऽग्निः समुद्भूतस्तादृक्

कर मुझे प्रतीत होता है कि—जगत्में किसी मनुष्यको भी उसके अच्छे कर्मोंका फल नहीं मिलता, राजकीय धनभण्डारको इकट्ठा करनेमें, राज्यसम्बन्धी विचार करनेमें, व्यूहोंको रचनेमें और युद्ध करनेमें हे कुरुकुलपुङ्गव ! मैं आपकी समान किसीको भी नहीं देखता हूं, जो विशुद्ध बुद्धि वाला कौरवोंको भयसे मुक्त करे ॥ ६-१२ ॥ ऐसे आज आप रणमें अनेकों योधाओंका संहार कर पितृलोकमें जानेको तयार हुए हो, इस ही दिनसे जैसे कोपमें भरे हुए व्याघ्र मृगोंका संहार करते हैं तैसे ही पाण्डव भी कौरवोंका संहार डालेंगे और जैसे असुर इन्द्रसे डरते हैं तैसे ही हे भरतवंशके पितामह भीष्मजी ! आजसे कौरव कि-जिनको सव्यसाची अर्जुनके गाण्डीव धनुषका ज्ञान है वह भी अर्जुनसे घबड़ाने लगेंगे, और अर्जुनके गाण्डीव धनुषमेंसे छूटने वाले वज्रकी समान वाणोंकी ध्वनि सकल कौरवोंको तथा अन्य राजाओंको भी भयभीत कर डालेगी तथा जैसे अग्नि अपनी बड़ी २ लपटोंसे वृक्षोंको जलाकर भस्म कर डालता है तैसे ही अर्जुनके वाण कौरवोंका नाश कर डालेंगे । वनमें वायु और अग्नि दोनों एक साथ मिल कर जैसे २ आगे २ को बढ़ते चले

पार्थो न संशयः ॥१८॥ यथा वायुर्नरव्याघ्रतथा कृष्णो न संशयः। नदतः पाञ्चजन्यस्य रसतो गांडिवस्य च ॥१९॥ श्रुत्वा सर्वाणि सैन्यानि त्रासं यास्यन्ति भारत। कपिध्वजस्योत्पततो रथस्यामित्रकर्षिणः ॥ २० ॥ शब्दं सोढुं न शक्ष्यन्ति त्वामृते वीर पार्थिवाः । को ह्यर्जुनं योधयितुं त्वदन्यः पार्थिवोऽर्हति॥२१॥ यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः । अमानुषैश्च संग्रामस्त्र्यम्बकेण महात्मना ॥२२॥ तस्माच्चैव वरं प्राप्तो दुष्प्रापमकृतात्मभिः । कोऽन्यः शक्तो रणे जेतुं पूर्वं यो न जितस्त्वया॥२३॥जितो येन रणे रामो भवता वीर्यशालिना । क्षत्रियान्तकरो घोरो देवदानवदर्पहा ॥२४॥ तमद्याहं पाण्डवं युद्धशौण्डममृष्यमाणो भवता चानुशिष्टः । अशी-

---

जाते हैं तैसे २ ही अनेकों झाड़ झंखार और वृक्षोंको जलाते चले जाते हैं, तैसे ही धनञ्जय, बढ़े हुए अग्निकी समान है और श्रीकृष्ण वायुकी समान हैं, निःसन्देह श्रीकृष्णके रथके और अर्जुनके गाण्डीव धनुषके शब्दको सुनकर सब सेना घबड़ा जायगी और हे वीर ! तुम्हारे बिना दूसरे राजे शत्रुओंका संहार करते हुए कपिध्वज अर्जुनके वेगसे चलते हुए रथके शब्दको भी सहन नहीं कर सकते, आपके सिवाय दूसरा ऐसा कौन है जो अर्जुनके साथ युद्ध कर सकै ? ॥१९-२१॥ विद्वान् कहते हैं, कि—उसके दिव्य अस्त्र हैं, उसने निवातकवच आदिके साथ और महात्मा महादेवके साथ युद्ध किया था तथा उसने शंकरसे दुर्लभ वरदान पाया था और क्षत्रियोंका संहार करने वाले, देवता तथा दानवोंका गर्व ढाने वाले महाभयंकर परशुरामको जिन्होंने रणभूमिमें जीता था ऐसे अर्जुनको आप पहिले रणमें नहीं जीत सके थे, फिर उसको रणमें दूसरा कौन जीत सकता है ? युद्धचतुर अर्जुनको मैं भी नहीं सहसकता, तो भी आप आज्ञा दें तो आज ही विषधर सर्पकी समान दृष्टिसे हरण

विषं दृष्टिहरं सुघोरं शूरं शक्ष्याम्यस्त्रवलान्निहन्तुम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि
कर्णवाक्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच । तस्य लालप्यमानस्य कुरुवृद्धः पितामहः । देशकालोचितं वाक्यमब्रवीत्प्रीतिमानसः ॥ १ ॥ समुद्र इव सिन्धूनां ज्योतिषामिव भास्करः । सत्यस्य च यथा सन्तो वीजानामिव चोर्वरा ॥ २ ॥ पर्जन्य इव भूतानां प्रतिष्ठा सुहृदां भव । वान्धवास्त्वानुजीवन्तु सहस्राक्षमिवामराः ॥ ३ ॥ मानहा भव शत्रूणां मित्राणां नन्दिवर्द्धनः । कौरवाणां भव गतिर्यथा विष्णुर्दिवौकसाम् ॥ ४ ॥ स्ववाहुवलवीर्येण धार्तराष्ट्रजयैषिणा । कर्ण राजपुरं गत्वा काम्बोजा निर्ज्जितास्त्वया ॥ ५ ॥ गिरिव्रजगताश्चापि नग्नजित्प्रमुखा नृपाः । अम्बष्ठाश्च विदेहाश्च गान्धाराश्च

करनेवाले महाभयानक और वीर अर्जुनको वलसे मार सकूँगा ॥ २२—२५ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ * ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् धृतराष्ट्र! कुरुकुलवृद्ध भीष्मपितामह कर्णके वचनोंको वारम्वार सुनकर मनमें प्रसन्न होते हुए देशकालके अनुकूल कहने लगे, कि—जैसे समुद्र महानदियोंका, जैसे सूर्य तेजस्वी नक्षत्रोंका, जैसे सत्पुरुष सत्यका, जैसे अतिसुन्दर भूमि वीजका तथा जैसे मेघ स्थावर जङ्गम प्राणियोंका आश्रय है, तैसे ही स्नेही तेरा आश्रय लें। जैसे देवता इन्द्रके भरोसे पर जीवन धारण करते हैं तैसे ही तेरे वान्धव तेरे ऊपर आजीविका करैं ॥ १—३ ॥ तू शत्रुओंके मानको तोड़नेवाला, मित्रोंको प्रसन्न करनेवाला तथा जैसे विष्णु देवताओंके आधार हैं तैसे तू कौरवोंका आधार होगा ॥ ४ ॥ हे कर्ण! धृतराष्ट्रनन्दन दुर्योधनकी विजय चाहनेवाले तूने राजपुरमें जाकर अपनी भुजाके वल और वीरतासे कम्बोज देशके राजाओंको जीता था ॥ ५ ॥ तूने गिरिव्रजमें जाकर नग्नजित् आदि राजाओंको तथा अम्बष्ठ

जितास्त्वया ॥ ६ ॥ हिमवद्दुर्गनिलयाः किराता रणकर्कशाः । दुर्योधनस्य वशगास्त्वया कर्ण पुरा कृताः ॥७॥ उत्कला मेकलाः पौण्ड्राः कलिङ्गान्ध्राश्च संयुगे । निषादाश्च त्रिगर्त्ताश्च बाल्हीकाश्च जितास्त्वया ॥ ८ ॥ तत्र तत्र च संग्रामे दुर्योधनहितैषिणा बहवश्च जिताः कर्ण त्वया वीरा महौजसः ॥ ९ ॥ यथा दुर्योधनस्तात सज्ञातिकुलबान्धवः । तथा त्वमपि सर्वेषां कौरवाणां गतिर्भव ॥ १० ॥ शिवेनाभि वदामि त्वां गच्छ युध्यस्व शत्रुभिः । अनुशाधि कुरून् संख्ये धत्स्व दुर्योधने जयम् ॥ ११ ॥ भवान् पौत्रसमोऽस्माकं यथा दुर्योधनस्तथा । तवापि धर्मतः सर्वे यथा तस्य वयं तथा ॥ १२ ॥ यौनात्सम्बन्धकाल्लोके विशिष्टं सङ्गतं सताम् । सद्भिः सह नरश्रेष्ठ प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १३ ॥ स सत्यसङ्गतो भूत्वा ममेदमिति निश्चितः । कुरूणां पालय बलं

विदेह और गान्धारोंको जीता था ॥ ६ ॥ हे कर्ण ! तूने पहिले हिमालयके किलोंमें रहनेवाले तथा रणमें बड़े कठिन पड़नेवाले किरातोंको दुर्योधनके वशमें करदिया था ॥ ७ ॥ तूने संग्राममें उत्कल, मेकल, पौंड्र कलिङ्ग, आंध्र, निषाद, त्रिगर्त्त और बाल्हीक राजाओंको जीतलिया था ॥८॥ हे महाबली कर्ण ! तूने दुर्योधन का हित करनेकी इच्छासे जहां तहां अनेकों संग्रामोंमें बहुतसे वीरों को जीता था॥९॥ हे तात ! जैसे दुर्योधन सब कौरवोंका आधार है, तैसे ही तू भी जाति परिवार और बान्धवों सहित कौरवोंको आश्रय देना ॥ १० ॥ मैं तुझे आशीर्वाद देता हुआ कहता हूं, कि—जा, शत्रुओंके साथ युद्ध कर, कौरवोंको रण करनेकी आज्ञा दे और दुर्योधनको जय प्राप्त करा ॥ ११ ॥ जैसे दुर्योधन है तैसे ही तू भी हमारे पोतेकी समान है जैसे हम दुर्योधनके हितू हैं तैसे ही धर्मसे तेरे भी हैं ॥ १२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! विद्वान् कहते हैं, कि—जगत्में एक कुटुम्बमें उत्पन्न होना रूप यौन सम्बन्धसे सत्पुरुषों के सङ्गका सम्बन्ध विशेष है ॥ १३ ॥ इसलिये तू भी सत्यका

यथा दुर्य्योधनस्तथा ॥ १४ ॥ निशम्य वचनं तस्य चरणावभिवाद्य च । ययौ वैकर्त्तनः कर्णः समीपं सर्वधन्विनाम् ॥ १५ ॥ सोऽभिवीक्ष्य नरौघाणां स्थानमप्रतिमं महत् । व्यूढप्रहरणोरस्कं सैन्यं तत्समबृंहयत् ॥ १६ ॥ हर्षिताः कुरवः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः । उपागतं महाबाहुं सर्वानीकपुरःसरम् ॥ १७ ॥ कर्णं दृष्ट्वा महात्मानं युद्धाय समुपस्थितम् । क्ष्वेडितास्फोटितरवैः सिंहनादरवैरपि । धनुःशब्दैश्च विविधैः कुरवः समपूजयन् ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णाश्वासे
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सञ्जय उवाच । रथस्थं पुरुषव्याघ्रं दृष्ट्वा कर्णमवस्थितम् । हृष्टो दुर्योधनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥१॥ सनाथमिव मन्येऽहं भवता पालितं बलम् । अत्र किं नु समर्थं यद्धितं तत् सम्प्रधार्य-

सङ्गी होकर और यह मेरे हैं ऐसा निश्चय करके जैसे दुर्योधन तैसे ही तू कौरवसेनाकी रक्षा कर ॥ १४ ॥ भीष्मजीकी इस बातको सुनकर तथा उनके चरणोंमें प्रणाम करके विकर्त्तनका पुत्र कर्ण सब धनुषधारियोंके पास गया ॥ १५ ॥ वह वहां मनुष्यों के महाहोंके अनुपम रणस्थानको देख कर व्यूहरचनामें शस्त्र उठाये खड़े हुए सेनादलको उत्साह दिलानेलगा ॥ १६ ॥ सब सेनाके आगे २ चलते आये हुए महाबाहु कर्णको देखकर दुर्योधन आदि सब कौरव बड़े प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ युद्धके लिये आयेहुए महात्मा कर्णको देखकर कौरव भुजदण्डोंपर ताल देते हुए सिंहनाद की समान शब्दोंसे और नानाप्रकार की धनुषकी टङ्कारोंसे कर्णका स्वागत करने लगे ॥ १८ ॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ *

सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! पुरुषोंमें सिंहसमान कर्णको, रथमें बैठकर लड़नेके लिये आयाहुआ देखकर दुर्योधन ने प्रसन्न होकर यह कहा कि-जब तू रक्षा करता है तो मैं अपनी

ताम् ॥ २ ॥ कर्ण उवाच । ब्रूहि नः पुरुषव्याघ्र त्वं हि प्राज्ञतमो नृप । यथा चार्थपतिः कृत्यं पश्यते न तथेतरः ॥ ३ ॥ ते स्म सर्वे तव वचः श्रोतुकामा नरेश्वर । नान्याय्यं हि भवान् वाक्यं ब्रूयादिति मतिर्मम ॥ ४ ॥ दुर्योधन उवाच । भीष्मः सेनाप्रणेतासीद्वयसा विक्रमेण च । श्रुतेन चोपसम्पन्नः सर्वैर्योधगुणैस्तथा ॥ ५ ॥ तेनातियशसा कर्ण घ्नता शत्रुगणान्मम । सुयुद्धेन दशाहानि पालिताः स्मो महात्मना ॥ ६ ॥ तस्मिन्नसुकरं कर्म कृतवत्यास्थिते दिवम् । कं नु सेनाप्रणेतारं मन्यसे तदनन्तरम् ॥ ७ ॥ न विना नायकं सेना मुहूर्तमपि तिष्ठति । आहवेष्वहवश्रेष्ठ कर्ण हीनेव नौर्जले ॥ ८ ॥ यथा ह्यकर्णधारा

सेनाको सनाथ मानता हूं, अब हमको कौनसा हितकारी काम करना चाहिये, उसका विचार करना उचित है ॥ २ ॥ कर्णने कहा, कि-हे पुरुषसिंह दुर्योधन ! तुम बड़े बुद्धिमान् राजा हो, इसकारण तुम ही उचित संमति देसकते हो, मुख्य राजा जैसा कामको समझता है वैसा दूसरा नहीं समझता ॥३॥ हे राजन् ! अब हम सब तुम्हारी ही बात सुनना चाहते है, मेरी समझमें आप अनुचित बात कहेंगे ही नहीं ॥४॥ दुर्योधन बोला कि-हे कर्ण ! अवस्था, पराक्रम और शास्त्राभ्यास आदि गुणोंसे युक्त भीष्मजी हमारी सेनाके नायक थे, हे कर्ण ! उन महाकान्तिमान्ने सब योधाओंको साथमें लेकर मेरे शत्रुओंका संहार किया और दस दिन बराबर उत्तम सेनापतिके रूपमें संग्राम करके उन महात्माने हमारी रक्षाकी ॥ ५ ॥ ६ ॥ महाकठिन पराक्रम करनेवाले वह तो स्वर्गको पधारने वाले हैं, उनके अनन्तर हे कर्ण ! अब तुम सेनापति किसको बनाना उचित समझते हो ॥७॥ विना नायकके तो सेना एक मुहूर्त्तको भी नहीं ठहर सकती, हे युद्ध करनेवालों में श्रेष्ठ ! जैसे कि-विना मल्लाहकी नाव जलमें जरादेर भी नहीं टिकसकती ॥ ८ ॥ जैसे विना मल्लाहकी नौका और विना

नौ रथश्चासारथिर्यथा । द्रवेद्यथेष्टं तद्वत्स्यादृते सेनापतिं बलम् ॥ ९ ॥ अदेशिको यथा सार्थः सर्वंकृच्छ्रं समृच्छति । अनायका तथा सेना सर्वान् दोषान् समृच्छति ॥ १० ॥ स भवान् वीक्ष्य सर्वेषु मामकेषु महात्मसु । पश्य सेनापतिं युक्तमनुशान्तनवादिह ॥ ११ ॥ यं हि सेनाप्रणेतारं भवान् वक्ष्यति संयुगे । तं वयं सहिता सर्वे करिष्यामो न संशयः ॥ १२ ॥ कर्ण उवाच । सर्व एव महात्मान इमे पुरुषसत्तमाः । सेनापतित्वमर्हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥ कुलसंहननज्ञानैर्बलविक्रमबुद्धिभिः । युक्ताः श्रुतज्ञा धीमन्त आहवेष्वनिवर्तिनः ॥ १४ ॥ युगपन्नतु ते शक्याः कर्त्तुं सर्वे पुरःसराः । एक एव तु कर्तव्यो यस्मिन् वैशेषिका गुणाः ॥ १५ ॥ अन्योऽन्यस्पर्धिनां ह्येषां यद्येकं यं करिष्यसि ।

सारथीका रथ चाहे जिधरको जाने लगते हैं तैसे ही बिना सेनापतिकी सेनाकी दशा होती है ॥ ९ ॥ जैसे बिना नेताका सब सार्थ (गिरोह) महाकष्ट पाता है तैसे ही बिना नायककी सेना सब ही प्रकारके दुःखोंको भोगती है ॥ १० ॥ इस लिये अब तू मेरे सब महात्मा पुरुषों पर दृष्टि डालकर शान्तनुनन्दन के अनन्तर योग्य सेनापतिका चुनाव कर ॥ ११ ॥ रणमें जिसको सेनापति बनानेके लिये कहेगा, निःसन्देह हम सब मिलकर उसको ही सेनापति बनादेंगे ॥ १२ ॥ कर्णने कहा कि—ये सब ही राजे महात्मा और पुरुषोंमें परमश्रेष्ठ हैं तथा सेनापति बननेके योग्य हैं इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १३ ॥ क्योंकि—ये सब राजे कुल, शारीरिकबल, ज्ञानबल, पराक्रम तथा बुद्धिबलसे युक्त हैं, शास्त्रके ज्ञाता हैं और रणमें पीछेको नहीं हट सकते ॥ १४ ॥ परन्तु इन सबोंको ही एकसाथ नायक नहीं बनाया जासकता, अतः जिसमें विशेष गुण हों उस एकको ही नायक बनाना चाहिये ॥ १५ ॥ ये सब एक दूसरेके समान हैं, अतः इनमेंसे किसी एकको सेनापति नियत

शेषा विमनसा व्यक्तं न योत्स्यन्ति हितास्तव ॥ १६ ॥ अयञ्च सर्वयोधानमाचार्यः स्थविरो गुरुः । युक्तः सेनापतिः कर्त्तुं द्रोणः शस्त्रभृताम्बरः ॥ १७ ॥ को हि तिष्ठति दुर्धर्षे द्रोणे शस्त्रभृताम्बरे सेनापतिः स्यादन्योऽस्माच्छुक्राङ्गिरसदर्शनात् ॥ १८ ॥ न च सोऽप्यस्ति ते योधः सर्वराजसु भारत । द्रोणं यः समरे यांतमनुयास्यति संयुगे ॥ १९ ॥ एष सेनाप्रणेतॄणामेष शस्त्रभृतामपि, एष बुद्धिमतां चैव श्रेष्ठो राजन् गुरुस्तव ॥ २० ॥ एवं दुर्योधनाचार्यमाशु सेनापतिं कुरु । जिगीषन्तो सुरान् संख्ये कार्त्तिकेयमिवामराः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सञ्जय उवाच । कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।

करूँगा तो एक दूसरेकी स्पर्धाके कारण तुम्हारे हितैषी होकर भी उदास हो बैठेंगे और जी लगाकर युद्ध नहीं करेंगे ॥ १६ ॥ इसलिये इन सब राजाओंके आचार्य गुरु वृद्ध अवस्थावाले और शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यको सेनापति बनाना उचित है ॥ १७ ॥ शुक्र और बृहस्पतिकी समान, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ किसीसे न दबनेवाले तथा ब्रह्मवेत्ता द्रोणाचार्यके जीते हुए दूसरा कौन सेनापति होसकता है ? ॥ १८ ॥ हे भारत ! सब राजाओंमें दूसरा ऐसा एक भी योधा नहीं है जो युद्ध करने को चढ़ेहुए द्रोणके पीछे २ न जाय ॥ १९ ॥ हे राजन् ! द्रोण इन सेनापतियोंमें मुख्य हैं, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं, बुद्धिमानोंमें उत्तम हैं तथा तुम्हारे गुरु हैं ॥ २० ॥ इसलिये हे दुर्योधन ! जैसे देवताओंने युद्धमें विजय पानेकी इच्छासे स्वामिकार्त्तिकेयको सेनापति बनाया था तैसे ही तुम भी द्रोणाचार्यको शीघ्र ही सेनापति बनाओ ॥ २१ ॥ पांचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ * ॥

सञ्जय कहता है, कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! राजा दुर्योधन कर्ण

सेनामध्यगतं द्रोणमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ दुर्योधन उवाच । वर्णश्रैष्ठ्यात् कुलोत्पत्त्या श्रुतेन वयसा धिया । वीर्याद्दाक्ष्याद्धृष्यत्वादर्थज्ञानान्नयाज्जयात् ॥ २ ॥ तपसा च कृतज्ञत्वाद् वृद्धः सर्वगुणैरपि । युक्तो भवत्समो गोप्ता राज्ञामन्यो न विद्यते ॥ ३॥ स भवान् पातु नः सर्वान् देवानिव शतक्रतुः । भवन्नेत्राः परान् जेतुमिच्छामो द्विजसत्तम ॥ ४ ॥ रुद्राणामिव कापाली वसूनामिव पावकः । कुबेर इव यक्षाणां मरुतामिव वासवः ॥ ५ ॥ वशिष्ठ इव विप्राणां तेजसामिव भास्करः । पितॄणामिव धर्मेन्द्रो यादसामिव चाम्बुराट् ॥ ६ ॥ नक्षत्राणामिव शशी दितिजानामिवोशनाः । श्रेष्ठः सेनाप्रणेतॄणां स नः सेनापतिर्भव ॥ ७ ॥ अक्षौहिण्यो दशैका च वशगाः सन्तु तेऽनघ । ताभिः शत्रून्

की बात सुनकर उसी समय सेनाके मध्यमें खड़े हुए द्रोणाचार्य के पास जाकर यह बात कही ॥ १ ॥ दुर्योधन बोला, कि— श्रेष्ठवर्ण ब्राह्मणजाति होनेसे, उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेसे शास्त्र का ज्ञान होनेसे, तथा वृद्ध अवस्था, बुद्धि, वीरता चतुराई, निर्भीकता, बातको समझना, नीतिका ज्ञान, अनेकों बार विजय पाना, तप और कृतज्ञता होनेके कारण आप सब ही गुणोंसे सम्पन्न और वृद्ध हैं, इस कारण इन सब राजाओंमें आपकी समान सेनापति बननेकी योग्यता वाला और कोई नहीं है २-३ सो जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करता है तैसे आप हमारी रक्षा करिये, हे द्विजेन्द्र ! हम आपको अपना सेनापति बनाकर शत्रुओं को जीतना चाहते हैं ॥ ४ ॥ जैसे रुद्रोंमें कापाली, जैसे वसुओं में पावक, जैसे यक्षोंमें कुबेर, जैसे मरुतोंमें वासव ॥ ५ ॥ जैसे ब्राह्मणोंमें वशिष्ठ, जैसे तेजोंमें सूर्य, जैसे पितरोंमें धर्मराज, जैसे जलचरोंमें वरुण ॥६॥ जैसे नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, और जैसे दैत्योंमें शुक्र हैं तैसे ही आप सकल सेनापतियोंमें श्रेष्ठ हैं, इस कारण आप हमारे सेनापति बनिये ॥ ७ ॥ हे अनघ ! ये ग्यारह अक्षौ-

प्रतिव्यूह्य जहीन्द्रो दानवानिव ॥८॥ प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः । अनुयास्यामहे त्वाजौ सौरभेया इवर्षभम् ॥ ९ ॥ उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन् धनुः । अग्रे भवं त्वान्तु दृष्ट्वा नार्जुनः प्रहरिष्यति ॥ १० ॥ ध्रुवं युधिष्ठिरं संख्ये सानुबन्धं सबान्धवम् । जेष्यामि पुरुषव्याघ्र भवान् सेनापतिर्यदि ॥११॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्ते ततो द्रोणः जयेत्यूचुर्नराधिपाः । सिंहनादेन महता हर्षयन्तस्तवात्मजम् ॥ १२ ॥ सैनिकाश्च मुदा युक्ता वर्धयन्ति द्विजोत्तमम् । दुर्योधनं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्तो महद्यशः । दुर्योधनं ततो राजन् द्रोणो वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥ *

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणप्रोत्साहने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हिणी सेना आपके आधीन है, इनसे घिरकर शत्रुओंको मारडालिये, जैसे दानवोंको इन्द्रमारता है ॥ ८ ॥ हे द्रोण ! जैसे देवताओंके आगे २ स्वामिकार्त्तिकेय चलते हैं तैसे ही आप हमारे आगे २ चलिये जैसे सुरभिके पुत्र अपने दलपति वृषभके पीछे २ जाते हैं तैसे ही हम रणमें आपके पीछे २ जायँगे ॥ ९ ॥ बड़े उग्र धनुषको धारण करनेवाला अर्जुन दिव्य धनुषके ऊपर टङ्कार देता हुआ चढ़ आवेगा, परन्तु आपको आगे देखकर प्रहार नहीं करेगा ॥ १० ॥ हे पुरुषसिंह ! यदि आप सेनापति बनजायँगे तो निःसन्देह रणमें परिवार और बान्धवों सहित युधिष्ठिरको जीतलूँगा ॥ ११ ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! इसप्रकार तुम्हारे पुत्रके कहने पर कौरव सेना के राजाओंने बड़ाभारी सिंहनाद करके तुम्हारे पुत्रको हर्ष उत्पन्न करते हुए द्रोणाचार्यकी जयजयकार पुकारी ॥ १२ ॥ और सैनिक भी बड़ाभारी यश चाहते हुए दुर्योधनको आगे करके हर्षमें भरेहुए द्रोणाचार्यके उत्साहको बढ़ानेलगे, उस समय द्रोणने दुर्योधनसे इसप्रकार कहा ॥१३॥ छठा अध्याय समाप्त ६

द्रोण उवाच । वेदं षडङ्गं वेदाहमर्थविद्याञ्च मानवीम् । त्रैयम्बकमथेष्वस्त्रं शस्त्राणि विविधानि च ॥ १ ॥ ये चाप्युक्ता मयि गुणा भवद्भिर्जयकाङ्क्षिभिः चिकीर्षुस्तानहं सर्वान् योधयिष्यामि पाण्डवान् ॥ २ ॥ पार्षतन्तु रणे राजन् न हनिष्ये कथञ्चन । स हि सृष्टो वधार्थाय ममैव पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥ योधयिष्यामि सैन्यानि नाशयन् सर्वसोमकान् । न च मां पाण्डवा युद्धे योधयिष्यन्ति हर्षिताः ॥ ४ ॥ सञ्जय उवाच । स एवमभ्यनुज्ञातश्चक्रे सेनापतिं ततः । द्रोणं तव सुतो राजन् विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५ ॥ अथाभिषिषिचुर्द्रोणं दुर्योधनमुखा नृपाः । सैनापत्ये यथा स्कन्दं पुरा शक्रमुखाः सुराः ॥ ६ ॥ ततो वादित्रघोषेण शङ्खानाञ्च महास्वनैः । प्रादुरासीत् कृते द्रोणे हर्षः सेनापतौ तदा ॥ ७ ॥

द्रोणने कहा, कि- हे दुर्योधन ! मैं छः अङ्गों सहित वेदको मनुकी कही अर्थविद्याको, शिवकी दी हुई बाणविद्याको और अनेकों प्रकारके शस्त्रोंको जानता हूं ॥ १ ॥ जय चाहनेवाले तुमने जो गुण मुझमें बताये हैं उन सब गुणोंको चाहता हुआ मैं पाण्डवों के साथ युद्ध करूंगा ॥ २ ॥ परन्तु हे राजन् ! मैं रणमें धृष्टद्युम्न को कदापि नहीं मारसकूंगा, क्योंकि—वह पुरुषश्रेष्ठ मेरे ही वधके लिये उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥ मैं सब सोमकोंका नाश करताहुआ सेनाओंके साथ लडूंगा परन्तु पाण्डव रणमें मेरे साथ प्रसन्नतासे नहीं लड़ेंगे ॥४॥ सञ्जय कहता है, कि—हे राजन् ! इसप्रकार द्रोणके कहने पर तुम्हारे पुत्रने शास्त्रोक्त विधिसे द्रोणाचार्यको सेनापतिका पद देनेका निश्चय करलिया ॥ ५ ॥ जैसे पहिले इंद्र आदि देवताओंने स्वामिकार्त्तिकेयका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया था तैसे ही अब दुर्योधन आदि राजाओंने द्रोणाचार्यका अभिषेक किया ॥ ६ ॥ द्रोणको सेनापतिके पद पर स्थापित करने पर बाजोंके शब्द और शंखोंकी महाध्वनियोंसे उस समय हर्ष प्रकट किया गया और पुण्याहवाचनके घोषसे

ततः पुण्याहघोषेण स्वस्तिवादस्वनेन च । संस्तवैर्गीतशब्दैश्च सूतमागधवन्दिनाम् ॥ ८ ॥ जयशब्दैर्द्विजाग्र्याणां सुभगानर्त्तितैस्तथा । सत्कृत्य विधिना द्रोणं मेनिरे पाण्डवान् जितान् ॥ ९ ॥ सञ्जय उवाच । सैनापत्यन्तु सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः । युयुत्सुर्व्यूह्य सैन्यानि प्रायात्तव सुतैः सह ॥ १० ॥ सैन्धवश्च कलिङ्गश्च विकर्णश्च तवात्मजः । दक्षिणं पार्श्वमास्थाय समतिष्ठन्त दंशिताः ॥ ११ ॥ प्रपक्षः शकुनिस्तेषां प्रवरैर्हयसादिभिः । ययौ गान्धारकैः सार्धं विमलप्रासयोधिभिः ॥ १२ ॥ कृपश्च कृतवर्मा च चित्रसेनो विविंशतिः । दुःशासनमुखा यत्ताः सव्यं पक्षमपालयन् ॥ १३ ॥ तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः सुदक्षिणपुरःसराः । ययुरश्वैर्महावेगैः शकाश्च यवनैः सह ॥ १४ ॥ मद्रास्त्रिगर्त्ताः साम्बष्ठाः प्रतीच्योदी-

---

स्वस्तिवाचनकी ध्वनिसे, सूत मागध वन्दीजनोंकी स्तुतियोंके तथा गीतोंके शब्दोंसे, उत्तम ब्राह्मणोंके जय जय शब्दोंसे, सौभाग्यवती नर्त्तकियोंके नृत्यसे विधि पूर्वक द्रोणाचार्यका सत्कार किया तथा कौरव समझने लगे, कि—अब हमने पाण्डवोंको जीतलिया ॥ ७—९ ॥ सञ्जय कहता है, कि—महारथी द्रोण सेनापतिका अधिकार पाजाने पर लड़नेकी इच्छासे सेनाको व्यूहरचनामें गूंथकर तुम्हारे पुत्रोंको साथ लियेहुए लड़नेको चलपड़े ॥ १० ॥ उनके दाहिने बाजू पर सिन्धुराज, कलिङ्गराज, और आपका पुत्र विकर्ण कवच पहर कर चल रहे थे ॥ ११ ॥ उत्तम घुड़सवार तथा निर्मल प्रासोंसे लड़नेवाले गान्धारों सहित शकुनि, उन योधाओंके पीछे २ चलरहा था ॥ १२ ॥ कृप, कृतवर्मा, चित्रसेन और विविंशति, दुःशासनको आगे करके और युद्धकी पोशाकसे सजकर द्रोणके वामभाग की रक्षा करते हुए चलरहे थे ॥ १३ ॥ उन योधाओंके पीछेके भागमें यवन और शक कम्बोजके राजा सुदक्षिणको आगे करके बड़े वेग वाले घोड़े पर सवार हो चलरहे थे ॥ १४ ॥ मंद्र, त्रिगर्त्त, अम्बष्ठ,

च्यमालवाः । शिबयः शूरसेनाश्च शूद्राश्च मलदैः सह ॥ १५ ॥ सौवीराः कितवाः प्राच्याः दाक्षिणात्याश्च सर्वशः । तवात्मजं पुरस्कृत्य सूतपुत्रस्य पृष्ठतः ॥ १६ ॥ हर्षयन्तः स्वसैन्यानि ययुस्तव सुतैः सह । प्रवरः सर्वयोधानां बलेषु बलमादधत् ॥ १७ ॥ ययौ वैकर्त्तनः कर्णः प्रमुखे सर्वधन्विनाम् । तस्य दीप्तो महाकायः स्वान्यनीकानि हर्षयन् ॥ १८ ॥ हस्तिकक्ष्यो महाकेतुर्बभौ सूर्य्यसमद्युतिः । न भीष्मव्यसनं कश्चिद्दृष्ट्वा कर्णममन्यत ॥ १९ ॥ विशोकाश्चाभवन् सर्वे राजानः कुरुभिः सह । हृष्टाश्च बहवो योधास्तत्राजल्पन्त्वरिताः ॥ २० ॥ नहि कर्णं रणे दृष्ट्वा युधि स्थास्यन्ति पाण्डवाः । कर्णो हि समरे शक्तो जेतुं देवान् सवासवान् २१ किमु पाण्डुसुतान् युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् । भीष्मेण तु रणे

प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, शिबि, शूरसेन, शूद्र, मलद, सौवीर, कितव, प्राच्य और दक्षिणात्य आपके पुत्र दुर्योधनको आगे करके कर्णके पृष्ठरक्षक बनकर चलरहे थे ॥ १५ ॥ १६ ॥ और सूतपुत्र कर्ण सेनाओंके बलको और सेनाओंके हर्षको बढ़ाता हुआ सब धनुषधारी मण्डलके आगे ही आगे चलता था, उसका बड़े आकारका, अतिप्रकाशवान् सूर्यकी समान चमकता हुआ हस्तिकक्ष नामका बड़ाभारी झण्डा उस सेनाको हर्ष देताहुआ पवनमें फहरा रहा था, कर्णको देखकर सब लोग भीष्मजीके पतनके दुःखको भूलगये ॥ १७-१९ ॥ सब राजे और कौरव कर्णको देखकर शोकरहित होगये और बहुतसे योधा इकट्ठे होकर हर्षसे आपसमें कहनेलगे, कि—रणमें कर्णको लड़नेके लिये आया हुआ देखकर पांडव खड़े भी नहीं रहसकेंगे, कर्ण रणमें इन्द्रसहित देवताओंको भी जीतसकता है फिर वीरता और पराक्रमहीन पांडवोंको जीतना तो बात ही क्या है ? भुजबलधारी भीष्मने रणमें पार्थकी रक्षाकी है, परन्तु कर्ण तीखे बाण मारकर पांडवोंका युद्धमें नाश ही करेगा, हे राजन् ! इसप्रकार बहुतसे योधा आपस

पार्थाः पालिता बाहुशालिना ॥ २२ ॥ तांस्तु कर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्नाशयिष्यति
संयुगे। एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योऽन्यं हृष्टरूपा विशाम्पते २३
राधेयं पूजयन्तश्च प्रशंसन्तश्च निर्ययुः। अस्माकं शकटव्यूहो द्रोणेन
विहितोऽभवत् ॥२४॥ परेषां क्रौञ्च एवासीद् व्यूहो राजन् महात्मनाम्।
प्रीयमाणेन विहितो धर्मराजेन भारत ॥ २५ ॥ व्यूहप्रमुखतस्तेषां
तस्थतुः पुरुषर्षभौ। वानरध्वजमुच्छ्रित्य विष्वक्सेनधनञ्जयौ ॥ २६ ॥
ककुदं सर्वसैन्यानां धाम सर्वधनुष्मताम्। आदित्यपथगः
केतुः पार्थस्यामिततेजसः ॥ २७ ॥ दीपयामास तत्
सैन्यं कौरव्यस्य महात्मनः। यथा प्रज्वलितः सूर्यो युगान्ते वै
वसुन्धराम् ॥ २८ ॥ दीप्यन् दृश्येत हि तथा केतुः सर्वत्र धीमतः
योधानामर्जुनः श्रेष्ठो गांडीवं धनुषां वरम् ॥ २९ ॥ वासुदेवश्च

में हर्षके साथ बातें करते और राधापुत्र कर्णको मान देते हुए
तथा उसकी प्रशंसा करतेहुए लड़नेके लिये बढ़चले, इस युद्धके
समय द्रोणाचार्यने अपनी सेनाका शकटव्यूहमें गूंथा था
और हे राजन्! शत्रुपक्ष पांडवोंकी सेनाका महात्मा धर्मराजने
प्रसन्न मनसे क्रौञ्चव्यूह रचा था ॥ २०—२६ ॥ उस
व्यूहके मुहाने पर पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण तथा धनञ्जय अपने
रथ पर वानरकी ध्वजाको फहराते हुए खड़े थे ॥ २९ ॥ अपार
तेजस्वी पार्थके रथकी ध्वजाको युधिष्ठिर सब सेनामें श्रे और
सब धनुषधारियोंका आश्रयस्थान गिनते थे, वह सूर्यके मार्ग
पर्यन्त ऊँचा था ॥ २७ ॥ और महात्मा पाण्डवोंकी सेनाको
शोभायमान कररहा था, युगके प्रलयकालमें जैसे सूर्य पृथ्वीको
दीप्त करता हुआ प्रतीत होता है तैसे ही बुद्धिमान् पार्थकी ध्वजा
भी सेनाको दीप्त करती हुई दीखती थी ॥ २८ ॥ सब धनुषधारियोंमें
अर्जुन श्रेष्ठ है, सब धनुषोंमें गाण्डीव श्रेष्ठ है, प्राणिमात्रमें
वासुदेव श्रीकृष्ण श्रेष्ठ हैं और चक्रोंमें सुदर्शन श्रेष्ठ है२९
इन चारों तेजोंको धारण कियेहुए अर्जुनका सफेद घोड़ोंसे जुता

भूतानां चक्राणां च सुदर्शनम् । चत्पार्थ्येतानि तेजांसि वहन् श्वेतहयो रथः ॥ ३० ॥ परेषामग्रतस्तस्थौ कालचक्रमिवोद्यतम् । एवं तौ सुमहात्मानौ बलसेनाग्रगावुभौ ॥ ३१ ॥ तावकानां मुखे कर्णः परेषाञ्च धनञ्जयः । ततो जयाभिसंरब्धौ परस्परवधैषिणौ ॥३२॥ अवेक्षेतां तदान्योऽन्यं समरे कर्णपाण्डवौ । ततः प्रयाते सहसा भारद्वाजे महारथे ॥ ३३ ॥ आर्त्तनादेन घोरेण वसुधा समकम्पत । यतस्तुमुलमाकाशमावृणोत् सदिवाकरम् ॥ ३४ ॥ वातोद्धूतं रजस्तीव्रं कौशेयनिकरोपमम् ववर्ष द्यौरनभ्रापि मांसास्थिरुधिराप्लुत ॥ ३५ ॥ गृध्राः श्येना वकाः कङ्का वायसाश्च सहस्रशः । उपर्युपरि सेनान्ते तदा पर्यपतन्नृप ॥ ३६ ॥ गोमायवश्च प्राक्रोशन् भयदान् दारुणान् रवान् । अकार्षुरपसव्यञ्च बहुशः पृतनां तव ॥ ३७ ॥ चिखादिषन्तो मांसानि पिपासन्तश्च शोणितम् ।

रथ, उदय हुए काल चक्रकी समान शत्रुओंके आगे आकर खड़ा होगया ॥ ३० ॥ हमारी सेनाके मुहानेपर कर्ण खड़ा था, शत्रुकी सेनाके मुहाने पर धनञ्जय था, दोनों महात्मा सेनाके अग्रभाग में स्थित थे ॥ ३१ ॥ कर्ण और अर्जुन युद्धमें एक दूसरेके ऊपर जय पानेकी इच्छासे क्रोधमें भरे हुए थे, एक दूसरेका प्राणसंहार करना चाहते थे और एक दूसरेकी ओरको टकटकी लगाये देखरहे थे ॥ ३२ ॥ इतनेमें ही शीघ्रतासे एकायकी महारथी द्रोणाचार्य चढ़ आये, उस समय पृथिवी घोर आर्त्तनादसे कांप उठी ३३ तीव्र और तुमुल संग्राममेंसे रेशमके ढेरोंकी समान उड़ेहुए धूलिके ढेरोंने पहाड़की समान ऊपरको उठकर सूर्य और आकाशको छालिया, बिना ही बादलोंके आकाशमेंसे मांस हड्डी और रुधिर की वर्षा होने लगी ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ हजारों गिद्ध, शिकरे, बगले और कङ्क कौरवसेनाके ऊपर दल बाँधकर गिरने लगे ॥ ३६ ॥ गीदड़ियें भयदायक दारुण शब्द करनेलगीं, मांसखाने और रुधिर पीनेकी इच्छासे तुम्हारे पुत्रकी सेनाके दाहिने भागमें बारंबार गिरनेलगे ॥ ३७ ॥ संग्रामभूमि पर बलती हुई उल्कायें

अपतद्दीप्यमाना च सनिर्घाता सकम्पना ॥३८॥ उल्का ज्वलन्ती संग्रामे पुच्छेनावृत्य सर्वशः । परिवेषो महांश्चापि सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥ ३९ ॥ भास्करस्याभवद्राजन् प्रयाते वाहिनीपतौ । एते चान्ये च बहवः प्रादुरासन् सुदारुणाः ॥ ४० ॥ उत्पाता युधि वीराणां जीवितक्षयकारिणः । ततः प्रववृते युद्धं परस्परवधैषिणाम् ॥ ४१ ॥ कुरुपाण्डवसैन्यानां शब्देनापूरयज्जगत् । ते त्वन्योऽन्यं सुसंरब्धाः पाण्डवाः कौरवैः सह ॥ ४२ ॥ अभ्यघ्नन्निशितैः शस्त्रैर्जयगृद्धाः प्रहारिणः । स पाण्डवानां महतीं महेष्वासो महाद्युतिः ॥ ४३ ॥ वेगेनाभ्यद्रवत्सेनां किरञ्छरशितैः शतैः । द्रोणमभ्युद्यतं दृष्ट्वा पाण्डवाः सह सृञ्जयैः ॥४४॥ प्रत्यगृह्णंस्तदा

पिछले भागको संकुचित करके शब्द करतीं और कम्पायमान होतीहुईं आपकी सब सेनाके सामने(आकाशमेंसे) प्रकाशके साथ गिरनेलगीं ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जिस समय सेनापतिने युद्धके लिये यात्रा की, उस समय सूर्यके बड़ेभारी कुण्डलके ऊपर बिजलियों वाला बड़ाभारी मेघमण्डल आकर गर्जना करताहुआ छागया ३९ वे तथा और भी बहुतसे, वीर पुरुषोंके नाशकी सूचना देनेवाले महादारुण उत्पात रणभूमिमें होनेलगे ॥ ४० ॥ एक दूसरेका नाश करना चाहनेवाले कौरव और पांडवोंकी सेनामें तुमुल युद्ध आरम्भ होगया, उनके शब्दोंसे जगत् अत्यन्तही भरगया ॥ ४१ ॥ महाक्रोधमें भरेहुए प्रहार करनेवाले तथा विजय चाहनेवाले कौरव और पांडव तेज कियेहुए शस्त्रोंसे आपसमें प्रहार करनेलगे ॥ ४२ ॥ महाधनुषधारी और परमकान्तिमान् द्रोणाचार्य, सैंकड़ों तेज बाण लेकर पांडवोंकी बड़ीभारी सेनाके ऊपर बड़े वेगसे जाचढ़े और बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ४३ ॥ द्रोणाचार्यको चढकर आयेहुए देखकर पांडव सृञ्जयोंके साथ इकट्ठे होकर द्रोणाचार्यके ऊपर भाँति२के बाणोंकी तलेऊपर वर्षा करनेलगे ॥ ४४ ॥ जैसे पवन

राजञ्छरवर्षैः पृथक् पृथक् । विक्षोभ्यमाणा द्रोणेन भिद्यमाना महाचमूः ॥ ४५ ॥ व्यशीर्यत सपञ्चाला वातेनेव वलाहकाः । वहूनीह विकुर्वाणो दिव्यान्यस्त्राणि संयुगे ॥ ४६ ॥ अपीडयत्क्षणेनैव द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् । ते वध्यमाना द्रोणेन वासवेनेव दानवाः ॥ ४७ ॥ पञ्चालाः समकम्पन्त धृष्टद्युम्नपुरोगमाः । ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो याज्ञसेनिर्महारथः ॥ ४८ ॥ अभिनच्छरवर्षेण द्रोणानीकमनेकधा ।द्रोणस्य शरवर्षाणि शरवर्षेण पार्षतः॥४९ सन्निवार्य ततः सर्वान् कुरूनप्यवधीद्वली । संयम्य तु ततो द्रोणो समवस्थाप्य चाहवे ॥ ५० ॥ स्वमनीकं महेष्वासः पार्षतं समुपाद्रवत् । स वाणवर्षं सुमहदसृजत् पार्षतं प्रति ॥ ५१ ॥ मघवान् समभिक्रुद्धः सहसा दानवानिव । ते कम्पमानाः द्रोणेन वाणैः

मेघमण्डलोंको वखेरदेता है तैसेही द्रोणाचार्यकी वखेरीहुई पांचालोंकी सेना अत्यन्त व्याकुल और छिन्नभिन्न होगई ॥ ४५ ॥ द्रोणाचार्यने युद्धमें अनेकों वड़े२ दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करके क्षण भरमें पांडव और सृञ्जयोंको घवड़ाडाला४६जैसे इन्द्र दानवोंका नाश करता है तैसेही द्रोणाचार्य शत्रुओंका नाश करने लगे, उस समय धृष्टद्युम्न आदि पंचाल देशके योधा वहुतही काँपने लगे॥४७॥ इसके अनन्तर दिव्य अस्त्रोंको जाननेवाला शूर धृष्टद्युम्न वाणोंकी वर्षासे द्रोणकी सेनाको अनेकोंप्रकारसे पीड़ित करनेलगा ॥ ४८ ॥ द्रोणकी वाणोंकी वौछारको अपने वाणोंकी वौछारसे रोककर वली धृष्टद्युम्न सव कौरवोंको मारने लगा ॥ ४९ ॥ यह देख द्रोण अच्छी प्रकार तयार होकर और अपनी सेनाको भली प्रकार व्यूहरचनासे खड़ी करके पृषत्पुत्रके सामने जाचढ़े ॥५०॥ जैसे इन्द्र एकाएकी क्रोधमें भरकर दैत्योंपर वाण वरसाने लगते हैं इसीप्रकार द्रोणने द्रुपदपुत्रके ऊपर वाणोंकी वड़ी भारी वर्षा की ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार सिंहसे अन्य पशु भागने लगते हैं ऐसे

पाण्डव सृञ्जयाः ॥५२॥ पुनः पुनरभज्यन्त सिंहेनेवेतरे मृगाः । तथा पर्यचरद् द्रोणः पाण्डवानां बले बली ॥ अलातचक्रवद्राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५३ ॥ खचरनगरकल्पं कल्पितं शास्त्रदृष्ट्या चलदनिलपताकं ह्लादनं वलिताश्वं । स्फटिकविमलकेतुं त्रासनं शात्रवाणां रथवरमधिरूढः सञ्जहारारिसेनाम् ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि
द्रोणपराक्रमे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सञ्जय उवाच । तथा द्रोणमभिघ्नन्तं साश्वसूतरथद्विपान् । व्यथिताः पांडवा दृष्ट्वा न चैनं पर्यवारयन् ॥ १ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नधनञ्जयौ । अब्रवीत् सर्वतो यत्तैः कुम्भयोनिर्निवार्यताम् ॥ २ ॥ तत्रैनमर्जुनश्चैव पार्षतश्च सहानुगः । प्रत्यगृह्णास्ततः

ही द्रोणके वाणोंसे सृञ्जय और पांडव कांपनेलगे और उनकी सेना वारम्वार भागनेलगी ॥ ५२ ॥ द्रोण प्रज्वलित उल्काकी समान पाण्डवोंकी सेनामें घूमते थे, हे राजन् ! यह दृश्य आश्चर्यजनक प्रतीत होता था ॥ ५३ ॥ द्रोणाचार्य आकाशी नगरकी समान, सैनिक नियमसे रचे हुए. शास्त्रानुसार पवनसे फड़कती हुई ध्वजा वाले, नृत्यकी गतिसे चलने वाले घोड़ोंसे जुते हुए, अतीव प्रकाशवान् स्फटिक–मणिकी समान निर्मल ध्वजावाले उत्तम रथमें बैठकर शत्रुकी सेनाको त्रास देते थे और उसका संहार कररहे थे ॥ ५४ ॥ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

सञ्जयने कहा कि–द्रोणको इसप्रकार घुड़सवार, सारथी, घोड़े, रथ और हाथीसवारोंको मारते देखकर पाण्डव खिन्न होगये और उपाय करने पर भी उनको रोक न सके ॥ १ ॥ तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने अर्जुन और धृष्टद्युम्नसे कहा कि–तुम सब चारों ओरसे सावधान रहकर द्रोणको रोको ॥ २ ॥ यह सुनकर अर्जुन और अनुचरों सहित धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यके ऊपर

सर्वे समापेतुर्महारथाः ॥३॥ कैकया भीमसेनश्च सौभद्रोऽथ घटोत्कचः । युधिष्ठिरो यमौ मत्स्या द्रुपदस्यात्मजास्तथा ॥ ४ ॥ द्रौपदेयाश्च संहृष्टा धृष्टकेतुः ससात्यकिः । चेकितानश्च संक्रुद्धो युयुत्सुश्च महारथः ॥ ५ ॥ ये चान्ये पार्थिवा राजन् पांडवस्यानुयायिनः । कुलवीर्यानुरूपाणि चक्रुः कर्माण्यनेकशः ॥ ६ ॥ संरक्ष्यमाणां तां दृष्ट्वा वाहिनीं पांडवै रणे । व्यावृत्य चक्षुषी कोपाद्भारद्वाजोन्ववैक्षत ॥ ७ ॥ स तीव्रं कोपमास्थाय रथे समरदुर्जयः । व्यधमत् पांडवानीकमभ्राणीव सदागतिः ॥ ८ ॥ रथानश्वान्नरान्नागानभिधावन्नितस्ततः । चचारोन्मत्तवद् द्रोणो वृद्धोऽपि तरुणो यथा ॥ ९ ॥ तस्य शोणितदिग्धाङ्गा शोणास्ते वातरंहसः । आजानेया हया राजन्नविश्रान्ता ध्रुवं ययुः ॥१०॥ तमन्तकमिव क्रुद्ध-

---

धावा करदिया, तदनन्तर दूसरे महारथी केकय, भीम और अभिमन्यु, घटोत्कच, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव, मत्स्य देशके राजे, द्रुपदके पुत्र हर्षमें भरे द्रौपदीके पुत्र सात्यकि, धृष्टकेतु. क्रोधमें भराहुआ चेकितान और महारथी युयुत्सु तथा हे राजन् ! और भी जो राजे पाण्डवोंके पक्षमें थे, वे सब द्रोणाचार्यके ऊपर दौड़ पड़े और अपने २ कुल और वीर्यके अनुसार उन्होंने बड़े२ पराक्रम किये ॥ ३–६ ॥ जब इसप्रकार पाण्डव अपनी सेनाकी रक्षा कररहे थे उस समय द्रोणाचार्य क्रोधसे आँखे फाड़कर उनको देखने लगे ॥ ७ ॥ युद्धमें दुर्जय द्रोणाचार्य, परम क्रोधमें भरकर, वायु जैसे बादलोंको बखेर देता है तिसी प्रकार द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाका रथमें बैठे २ ही संहार करने लगे ॥ ८ ॥ द्रोण वृद्ध होने पर भी तरुणोंकी समान घूम रहे थे वह उन्मत्तसे होकर रथ, घोड़े, मनुष्य, और हाथियोंके ऊपर इधर उधर दौड़ रहे थे ॥ ९ ॥ हे राजन् ! उनके लाल रङ्गके पवनवेगी घोड़े रुधिरसे भीगेहुए विना विश्राम लिये ही रणभूमिमें

मापतन्तं यतव्रतम् । दृष्ट्वा सम्प्राद्रवन् योधाः पांडवस्य ततस्ततः ११ तेषां प्राद्रवतां भीमः पुनरापततामपि । पश्यतां तिष्ठतां चासीच्छब्दः परमदारुणः ॥ १२ ॥ शूराणां हर्षजननो भीरूणां भयवर्धनः। द्यावापृथिव्योर्विवरं पूरयामास सर्वतः ॥ १३ ॥ ततः पुनरपि द्रोणो नाम विश्रावयन् युधि । अकरोद्रौद्रमात्मानं किरञ्छरशतैः परान् ॥ १४ ॥ स तथा तेष्वनीकेषु पांडुपुत्रस्य मारिष । कालवद् व्यचरद् द्रोणो युवेव स्थविरो बली ॥ १५ ॥ उत्कृत्य च शिरांस्युग्रान् बाहूनपि सुभूषणान् । कृत्वा शून्यान् रथोपस्थानुदक्रोशन्महारथान् ॥१६॥ तस्य हर्षप्रणादेन बाणवेगेन वा विभो। प्राकम्पत रणे योधा गावः शीतार्दिता इव ॥ १७ ॥ द्रोणस्य रथघोषेण मौर्वीनिष्पेषेण च । धनुःशब्देन चाकाशे शब्दः समभ-

---

वे रोकटोकके घूम रहे थे ॥ १० ॥ व्रतधारी द्रोणको क्रोधमें भरे हुए कालकी समान चढ़कर आयाहुआ देखते ही पाण्डवोंके योधा इधर उधरको भागने लगे ॥ ११ ॥ भागते, फिर लौटते, रुककर पीछेको देखते और खड़े होतेहुए वे योधा परम भयंकर और दारुण शब्द करने लगे ॥ १२ ॥ उस शूरोंको हर्ष देनेवाले और डरपोकोंके हृदयोंको दहलाने वाले शब्दसे पृथ्वी और स्वर्गके बीचका स्थान भर गया ॥ १३ ॥ फिर द्रोणाचार्य ने रणभूमिमें अपने नामको सुनाते हुए शत्रुओंको सैंकड़ों बाणोंसे ढककर अपना भयानकरूप दिखाया ॥ १४ ॥ हे आर्य ! वह बली द्रोणाचार्य वृद्ध होने पर भी युवककी समान पाण्डुपुत्रोंकी सेनामें यमकी समान घूमने लगे ॥ १५ ॥ इन्होंने शत्रुओंके मस्तकों और गहनोंसे सजी हुई भुजाओंको काट डाला और महारथोंकी बैठकोंको खाली कर बड़ी भारी गर्जना की ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! उनकी हर्षभरी हुङ्कारसे और बाणोंके वेगके सनसन शब्दसे युद्धमें योधा, शीतसे पीड़ितहुई गौओंकी समान कांपनेलगे १७

वन्महान् ॥ १८ ॥ अथास्य धनुषो बाणा निश्चरन्तः सहस्रशः ।
व्याप्य सर्वा दिशः पेतुर्नागाश्वरथपत्तिषु ॥ १९ ॥ तं कार्मुकमहावेगमस्त्रज्वलितपावकम् । द्रोणमासादयाञ्चक्रुः पंचालाः पांडवैः
सह ॥ २० ॥ तान् सकुञ्जरपत्त्यश्वान् प्राहिणोद्यमसादनम् ।
चक्रेऽचिरेण च द्रोणो महीं शोणितकर्दमाम् ॥ २१ ॥ तन्वता
परमास्त्राणि शरान् सततमस्यता । द्रोणेन विहितं दिक्षु शरजालमदृश्यत ॥ २२ ॥ पदातिषु रथाश्वेषु वारणेषु च सर्वशः । तस्य
विद्युदिवाभ्रेषु चरन् केतुरदृश्यत ॥२३॥ स केकयानां प्रवरांश्च पञ्च
पंचालराजञ्च शरैः प्रमथ्य । युधिष्ठिरानीकमदीनसत्त्वो द्रोणोऽभ्ययात् कार्मुकबाणपाणिः ॥ २४ ॥ तं भीमसेनश्च धनञ्जयश्च

द्रोणके रथकी घरघराहटसे, प्रत्यञ्चाओंके टकरानेसे और
धनुषोंकी टङ्कारोंसे आकाशमें बड़ा शब्द होउठा ॥१८॥ द्रोणाचार्यके धनुषसे निकलते सहस्रों बाण सब दिशाओंको भर कर
हाथी घोड़े, रथ और पैदलों पर पड़ने लगे ॥ १९ ॥ इस समय
पञ्चाल राजाओंने पाण्डवोंके साथमें होकर महावेगसे धनुषोंसे
काम लेतेहुए, अस्त्रोंसे प्रज्वलित अग्नि सरीखे द्रोणाचार्यको घेर
लिया ॥ २० ॥ परन्तु द्रोणने हाथी, घोड़े, और पैदलों सहित
उन योधाओंको यमलोकमें भेज दिया । और थोड़े ही समयमें
पृथ्वी पर रुधिरकी कीच करदी ॥ २१ ॥ ऊपर नीचे दिव्य
अस्त्रोंको फैलाते हुए और सटासट बाणोंको छोड़ने वाले
द्रोणने चारों दिशाओंमें बाणोंका जालसा पूरदिया, यह दृश्य
सबोंने देखा ॥ २२ ॥ जैसे बादलोंमें बिजली चमकती हुई दीखती
है ऐसे ही उनकी घूमती हुई ध्वजा पैदल घोड़े रथ हाथी सबोंमें
दीखती थी ॥२३॥ हाथमें धनुष और बाण लिये बली द्रोणाचार्य केकयोंमें श्रेष्ठ पाँच महापुरुषोंको और राजा द्रुपदको
बाणोंसे व्यथित कर राजा युधिष्ठिरकी सेना पर टूट पड़े ॥ २४ ॥

शिनेश्च नप्ता द्रुपदात्मजश्च ॥ शैब्यात्मजः काशिपतिः शिबिश्च दृष्ट्वा नदन्तो व्यकरञ्छरौघैः ॥ २५ ॥ तेषामथ–द्रोणधनुर्विमुक्ता पतत्रिणः काञ्चनचित्रपुंखाः । भित्त्वा शरीराणि गजाश्वयूनां जग्मुर्महीं शोणितदिग्धवाजाः ॥ २६ ॥ सायोधसंघैश्च रथैश्च भूमिः शरैर्विभिन्नैर्गजवाजिभिश्च । प्रच्छाद्यमाना पतितैर्बभूव समावृता द्यौरिव कालमेघैः ॥ २७ ॥ शैनेयभीमार्जुनवाहिनीशं सौभद्रपाञ्चालसकाशिराजम् । अन्यांश्च वीरान् समरे ममर्द द्रोणः सुतानां तव भूतिकामः ॥ २८ ॥ एतानि चान्यानि च कौरवेन्द्र कर्माणि कृत्वा समरे महात्मा । प्रताप्य लोकानिव कालसूर्यो द्रोणो गतः स्वर्गमितो हि राजन् ॥ २९ ॥ एवं रुक्मरथः शूरो हत्वा शतसहस्रशः । पाण्डवानां रणे योधान् पार्षतेन निपातितः ३०

यह देख भीम, अर्जुन, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शैब्यके पुत्र, काशीपति और राजा शिवि इन सबोंने गर्जना करके बाणोंके समूहसे द्रोणाचार्यको ढकदिया ॥ २५ ॥ परन्तु द्रोणके धनुषमेंसे छूटे हुए, सुवर्णकी पूंछवाले बाण हाथी घोड़े और सैनिकोंके शरीरोंको तोडकर रुधिरसे सनेहुए पृथ्वीमें घुसगए ॥ २६ ॥ उन बाणोंसे कटकर गिरेहुए योधा, रथ, हाथी और घोडोंसे ढकी हुई भूमि प्रलयकालके मेघोंसे घिरे हुए आकाशकी समान दीखने लगी॥२७॥ तदनन्तर तुम्हारे पुत्रोंका हित चाहनेवाले द्रोणाचार्यने सात्यकि, भीम, अर्जुन, सेनापति धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, काशिराज तथा दूसरे राजाओंपर प्रहार करना आरम्भ करदिया २८ हे राजन् ! इस प्रकार यह तथा और भी वहुतसे पराक्रम करके लोगोंको प्रलय कालके सूर्यकी समान संताप देकर महात्मा द्रोणाचार्य स्वर्गलोकको प्रस्थान करगए २९ धैर्यधारी वीर सुवर्णके रथमें वैठनेवाले द्रोणाचार्य इसप्रकार सैंकड़ों और सहस्रों योधाओंका संहार करके धृष्टद्युम्नके हाथसे मारेगए, युद्धमें पीछे न हटने

अक्षौहिणीमभ्यधिकां शूराणामनिवर्त्तिनाम् । निहत्य पश्चाद् धृतिमानगच्छत्परमां गतिम् ॥ ३१ ॥ पाण्डवैः सह पञ्चालैरशिवैः क्रूरकर्मभिः । हतो रुक्मरथो राजन् कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ३२ ॥ ततो निनादो भूतानामाकाशे समजायत । सैन्यानां च ततो राजन्नाचार्ये निहते युधि ॥ ३३ ॥ द्यां धरां खं दिशो वापि प्रदिशश्चानुनादयन् । अहो धिगिति भूतानां शब्दः समभवद् भृशम् ॥३४॥ देवताः पितरश्चैव पूर्वे ये चास्य बान्धवाः । ददृशुर्निहतं तत्र भारद्वाजं महारथम् ॥ ३५ ॥ पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सिंहनादान् प्रचक्रिरे । सिंहनादेन महता समकम्पत मेदिनी ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि
द्रोणवधश्रवणे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । किं कुर्वाणं रणे द्रोणं जघ्नुः पाण्डुसृञ्जयाः ।

वाले द्रोणाचार्यने अक्षौहिणीसे अधिक सैनिकोंका संहार कर परमगति पाई ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! सुवर्णके रथमें बैठेहुए द्रोणाचार्यने बड़ाभारी पराक्रम करके क्रूरकर्मा पांचाल और पांडवोंके हाथसे मृत्यु पायी ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! रणमें द्रोणाचार्यके मारेजाने पर प्राणियों और सेनाओंका शब्द आकाशमें होनेलगा, कि–॥ ३३ ॥ "अरे धिक्कार है !" इसप्रकार पृथिवी, आकाश, स्वर्ग, दिशाएं और दिशाओंके कोनोंको प्रतिध्वनित करताहुआ प्राणियोंका बडाभारी शब्द हुआ ॥ ३४ ॥ उस समय, देवता पितर और उनके पहले कुटुम्बियोंने द्रोणको रणभूमिमें मराहुआ देखा ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पाण्डव जय पाकर सिंहकी समान गर्जना करनेलगे और उनके बडे भारी सिंहनाद से पृथ्वी काँपउठी ॥ ३६ ॥ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–सब शस्त्रधारी योधाओंमें, युद्ध करनेमें

तथा निपुणमस्त्रेषु सर्वशस्त्रभृतामपि ॥ १ ॥ रथभङ्गो बभूवास्य धनुर्वाशीर्यतास्यतः । प्रमत्तो वाभवद्द्रोणस्ततो मृत्युमुपेयिवान् २ कथं नु पार्षतस्तात शत्रुभिर्दुष्प्रधर्षणम् । किरन्तमिषुसंघातान् रुक्मपुंखाननेकशः ॥ ३ ॥ क्षिप्रहस्तं द्विजश्रेष्ठं कृतिनं चित्रयोधिनम् । दूरेषुपातिनं दान्तमस्त्रयुद्धेषु पारगम् ॥ ४ ॥ पाञ्चालपुत्रो न्यवधीद्दिव्यास्त्रधरमच्युतम् । कुर्वाणं दारुणं कर्म रणे यत्तं महारथम् ॥ ५ ॥ व्यक्तं हि दैवं बलवत्पौरुषादिति मे मतिः । यद्द्रोणो निहतः शूरः पार्षतेन महात्मना ॥ ६ ॥ अस्त्रं चतुर्विधं वीरे यस्मिन्नासीत्प्रतिष्ठितम् । तमिष्वस्त्रधराचार्यं द्रोणं शंससि मे हतम् ॥ ७ ॥ श्रुत्वा हतं रुक्मरथं वैयाघ्रपरिवारितम् ।

चतुर मानेहुए, द्रोणाचार्यने ऐसा कौनसा कर्म किया था, कि-पांडव और सृञ्जय उनका नाशकरसके ? ॥ १ ॥ युद्धमें उनका रथ टूट गया था ? या बाण छोडते समय उनका धनुष टूट गया था ? अथवा वह असावधान थे, कि-जिससे मारेगये ? ॥ २ ॥ हे तात ! इन महारथीको तो शत्रु दबा नहीं सकते थे, वह रणमें सोनेकी पूँछवाले अनेकों बाण छोडते थे, उनका हाथ बडा ही फुरतीला था और अपने काममें सावधान रहते थे, युद्धकी अनेकों रीतियें जानते थे, उनके बाण बडीदूर तक पहुँचते थे, इन्द्रियों को वशमें रखनेवाले, अस्त्रयुद्धके पारगामी, दिव्य अस्त्रोंको छोडना जाननेवाले रणमेंसे पीछेको न हटनेवाले घोर पराक्रमी, युद्धमें सावधान रहनेवाले; महारथी द्रोणाचार्यको धृष्टद्युम्नने कैसे मारडाला ? ॥ ३-५ ॥ महात्मा धृष्टद्युम्नने वीर द्रोणाचार्यको जब मारडाला तब मुझे स्पष्ट मालूम होता है, कि-पुरुषार्थसे प्रारब्ध बलवान् है और इस लिये ही जो वीर चार प्रकारकी अस्त्रविद्या जानता था, उस धनुषधारियोंके आचार्य द्रोणाचार्यके मारेजानेका समाचार तू मुझे सुनारहा है ॥ ६ ॥ ७ ॥ हाय !

जातरूपपरिष्कारं नाद्य शोकमुपाददे ॥ ८ ॥ न नूनं परदुःखेन म्रियते कोऽपि सञ्जय । यत्र द्रोणमहं श्रुत्वा हतं जीवामि मन्दधीः ॥ ९ ॥ दैवमेव परं मन्ये नन्वनर्थं हि पौरुषम् । अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ १० यच्छ्रुत्वा निहतं द्रोणं शतधा न विदीर्यते । ब्राह्मे दैवे तथेष्वस्त्रे यमुपासन् गुणार्थिनः ११ ब्राह्मणा राजपुत्राश्च स कथं मृत्युना हतः । शोषणं सागरस्येव मेरोरिव विसर्पणम् ॥ १२ ॥ पतनं भास्करस्येव न मृष्ये द्रोणपातनम् । दृप्तानां प्रतिषेद्धासीद्धार्मिकाणाञ्च रक्षिता ॥१३॥ योऽहासीत्कृपणस्यार्थे प्राणानपि परन्तपः। मन्दानां मम पुत्राणां जयाशा यस्य विक्रमे ॥१४॥ बृहस्पत्युशनस्तुल्यो बुद्ध्या स निहतः कथम्।

सोनेके रथमें बैठेहुए, बाघाम्बर ओढ़े हुए और सोनेके गहनोंसे सजेहुए द्रोणके मरणको सुनकर आज मैं अपने शोकको शान्त नहीं करसकता हूँ ॥ ८ ॥ हे सञ्जय ! निःसन्देह कोई भी पुरुष दूसरेके दुःखसे कदापि मर नहीं जाता, क्योंकि-तू देखले-मैं मन्दबुद्धि, द्रोणके मरणको सुनकर भी अभी जीवित हूँ ॥ ९ ॥ इस लिये मैं प्रारब्धको ही बढकर मानता हूँ और पुरुषार्थको निरर्थक जानता हूँ, मेरा हृदय भी निःसन्देह लोहेका बनाहुआ और बड़ा मजबूत मालूम होता है ॥ १० यदि ऐसा न होता तो द्रोणके मरणको सुनकर इसके सैंकडों टुकड़े क्यों न होगये होते ? गुणोंको सीखना चाहनेवाले ब्राह्मणोंके तथा क्षत्रियोंके पुत्र ब्रह्मास्त्र और देवास्त्र सीखनेके लिये जिनकी सेवा किया करते थे, वे द्रोणाचार्य कैसे मारेगये ? समुद्रके सूखनेकी समान, मेरु पर्वतके डगमगानेकी समान और सूर्यके टूट पडनेकी समान मैं द्रोणके नाशको नहीं सहसकता, वह तो दुष्टोंको दण्ड देनेवाले और धर्मात्माओंके रक्षक थे ॥ ११-१३ ॥ ओः शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले द्रोणने एक कृपण पुरुषके लिये अपने प्राण भी त्याग

ते च शोणा बृहन्तोऽश्वाश्छन्ना जालैर्हिरण्मयैः ॥ १५ ॥ रथे वातजवा युक्ताः सर्वशस्त्रातिगा रणे । बलिनो हेषिणो दान्ताः सैंधवाः साधुवाहिनः ॥ १६ ॥ दृढाः संग्राममध्येषु कच्चिदासन्नविह्वलाः । करिणां बृंहतां युद्धे शंखदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ १७ ॥ ज्याक्षेपशरवर्षाणां शस्त्राणाञ्च सहिष्णवः । आशंसन्तः परान् जेतुं जितश्वासा जितव्यथाः ॥ १८ ॥ हयाः पराजिताः शीघ्रा भारद्वाजरथोद्वहाः । ते स्म रुक्मरथे युक्ता नरवीरसमाहताः ९ कथं नाभ्यतरंस्तात पाण्डवानामनीकिनीम् । जातरूपपरिष्कारमास्थाय रथ उत्तमम् ॥ २० ॥ भारद्वाजः किमकरोद्युधि सत्यपराक्रमः । विद्यां यस्योपजीवन्ति सर्वलोकधनुर्धराः ॥ २१ ॥ स

दिये ! मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनको विजयकी आशा, उनके ही पराक्रमके भरोसे पर थी ! वह बृहस्पति और शुक्राचार्यकी समान बुद्धिमान् थे तो भी उनकी मृत्यु कैसे होगयी ? लालरङ्ग और बड़े शरीरवाले, सुनहरीझूलें ओढ़े और वायुकी समान वेगवाले, रणमें सब शस्त्रोंके प्रहारको भी कुछ न गिननेवाले और बलवान् हिनहिनानेवाले और शिक्षा पायेहुए ऐसे उनके रथमें जुतेहुए सिंधुदेशके मजबूत घोड़े रणभूमिमें घबड़ा तो नहींगये थे?वे घोडे तो युद्धमें हाथियोंकी चिंघाड़ोंको शङ्खोंकी और दुन्दुभियोंकी ध्वनिको, धनुषकी डोरीके शब्दको,बाणोंकी और शस्त्रोंकी वर्षाको सहलेनेवाले, शत्रुओंकी पराजयको चतानेवाले और श्वास तथा पीड़ाके विना जीतनेवाले थे क्या वे थकगये थे? या पीडित होगये थे ?॥ १४–१८ ॥ वे घोडे द्रोणाचार्यके शीघ्रताकी चाल चलनेवाले सोनेके रथमें जुतेहुए थे, अजय और नरवीर पुरुषके सावधान कियेहुए थे इसलिये उन घोड़ोंको शत्रु जीतलें, यह तो सम्भव ही नहीं था, द्रोणाचार्यके ऐसे घोड़े, हे तात ! पांडवोंकी सेनारूप समुद्रके पार क्यों नहीं पहुँचे ? ॥ १९ ॥ २० ॥

सत्यसन्धो बलवान् द्रोणः किमकरोद्युधि । दिवि शक्रमिव श्रेष्ठं महामात्रं धनुर्भृताम् ॥ २२ ॥ के नु तं रौद्रकर्माणं युद्धे प्रत्युद्ययू रथाः । ननु रुक्मरथं दृष्ट्वा प्राद्रवन्ति स्म पाण्डवाः ॥२३॥ दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं रणे तस्मिन्महाबलम् । उताहो सर्वसैन्येन धर्मराजः सहानुजः ॥ २४ ॥ पाञ्चाल्यप्रग्रहो द्रोणं सर्वतः समवारयत् । नूनमावारयत्पार्थो रथिनोऽन्यानजिह्मगैः ॥ २५ ॥ ततो द्रोणं समारोहत् पार्षतः पापकर्मकृत् । न ह्यहं परिपश्यामि वधं कञ्चन शुष्मिणः ॥ २६ ॥ धृष्टद्युम्नादृते रौद्रात्पाल्यमानात् किरीटिनः । वृतः सर्वतः शूरः पाञ्चाल्यापसदस्ततः ॥ २७ ॥ केकयैश्चेदिकारूषैर्मत्स्यैरन्यैश्च भूमिपैः । व्याकुलीकृतमाचार्यं पिपीलैरुरगं

जो युद्धमें उत्तम पराक्रम करके दिखलाते थे उन द्रोणाचार्यने सोनेसे सजेहुए उत्तम रथमें बैठकर युद्धमें कैसा पराक्रम किया था, यह तू मुझे सुना जगत्के सब धनुषधारी योधा जिनकी विद्याके आधार पर आजीविका करते हैं उन बलवान् और सच्चा पराक्रम दिखानेवाले द्रोणाचार्यने युद्धमें कैसा पराक्रम किया था ? स्वर्गमें जैसे इन्द्र श्रेष्ठ है ऐसे ही संसारमें द्रोण श्रेष्ठ है ऐसे सब धनुषधारियोंके महाभयानक और भयानक पराक्रम करनेवाले द्रोणाचार्यके पीछे युद्धमें कौन २ महारथी चढ़े ? सोनेके रथमें बैठे हुए दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करनेवाले महाबली द्रोणको देखकर इस संग्राममें पहले तो पाण्डव भागगये थे, परन्तु पीछेसे धृष्टद्युम्न के छोटे भाइयोंको और सब सेनाको साथमें लेकर धर्मराजने द्रोण को चारों ओरके कैसे घेरलिया ! मुझे मालूम होता है कि- आरम्भमें अर्जुनने हमारे पक्षके सब योधाओंको सीधे जानेवाले बाणोंसे घेर लिया होगा ॥ २१-२५ ॥ और फिर पाप कर्म करनेवाले धृष्टद्युम्नने द्रोणको घेरलिया होगा ! अर्जुनकी रक्षामें रहनेवाले धृष्टद्युम्नके सिवाय दूसरे किसीको भी मैं ऐसा नहीं

यथा ॥ २८ ॥ कर्मण्यसुकरे सक्तं जघानेति मतिर्मम । योधीत्य चतुरो वेदान् सांगानाख्यानपञ्चमान् ॥ २९ ॥ ब्राह्मणानां प्रतिष्ठासीत् स्रोतसामिव सागरः । क्षत्रं च ब्रह्म चैवेह योऽभ्यतिष्ठत् परन्तपः ॥ ३० ॥ स कथं ब्राह्मणो वृद्धः शस्त्रेण वधमाप्नुवान् । अमर्षिणा मर्षितवान् क्लिश्यमानान् सदा मया ॥ ३१ ॥ अनर्हमाणान् कौन्तेयान् कर्मणस्तस्य तत्फलम् । यस्य कर्मानुजीवन्ति लोके सर्वधनुर्भृतः ॥ ३२ ॥ स सत्यसन्धः सुकृती श्रीकामैर्निहतः कथम् । दिवि शक्र इव श्रेष्ठो महासत्त्वो महाबलः ॥३३॥

देखता, कि-जो तेजस्वी द्रोणको मारसके मुझे प्रतीत होता है, कि–पाञ्चालोंमें नीच वीर धृष्टद्युम्न, केकैय, चेदी, कुरूप, मत्स्य और दूसरे राजाओंको व्याकुल करनेवाले महापराक्रमको करनेमें द्रोणाचार्य लगरहे होंगे उस समय ही जैसे चीटियोंके समूहसे व्याकुलहुए साँपको हर कोई मार सकता है, तैसे ही उनको मार डाला होगा ॥२५-२८॥ जैसे महासागर सब नदियोंका आश्रय है तैसेही जो द्रोणाचार्य अंगों सहित चारों वेदोंको तथा इतिहासको पढ़कर ब्राह्मण आदि सबोंके आश्रयरूप होगये थे, तथा जो द्रोणाचार्य ब्राह्मण धर्म और क्षत्रिय धर्म दोनोंके आधार और शत्रुओंको संताप देनेवाले थे वह वृद्ध ब्राह्मण शस्त्रसे कैसे मरगये? मैं कुन्तीके पुत्रोंको देखकर मनमें जला करता था और उनको सदा दुःख दिया करता था, परन्तु वे दुःख देनेके योग्य नहीं हैं, ऐसा जानकर द्रोणाचार्य उनके ऊपर प्रेम रखते थे, क्या ऐसे वर्त्तावका उनको यही फल मिला? सब धनुपधारी जगत्में जिनसे शस्त्रविद्या और अस्त्रविद्या सीखकर आजीविका करते हैं उन सत्यप्रतिज्ञा और पुण्यकर्म करनेवाले द्रोणको पाण्डवोंने राज्यलक्ष्मीकी आशासे कैसे मारडाला जैसे स्वर्गमें इन्द्र श्रेष्ठ माना जाता है ऐसे ही जगत्में द्रोणाचार्य श्रेष्ठ महापराक्रमी

स कथं निहतः पार्थैः क्षुद्रमत्स्यैर्यथा तिमिः। क्षिप्रहस्तश्च वलवान् दृढधन्वारिमर्दनः ॥ ३४ ॥ न यस्य विजयाकांक्षी विजयं प्राप्य जीवति। यं द्वौ न जहतः शब्दौ जीवमानं कदाचन ॥ ३५ ॥ व्राह्मश्च वेदकामानां ज्याघोषश्च धनुष्मताम्। अदीनं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम्॥३६॥नाहं मृष्ये हतं द्रोणं सिंहद्विरदविक्रमम्। कथं सञ्जय दुर्धर्षमनाधृष्ययशोवलम् ॥ ३७ ॥ पश्यतां पुरुषेन्द्राणां सङ्गरे पार्षतोऽवधीत्। के पुरस्तादयुध्यन्त रक्षन्तो द्रोणमन्तिकात् ॥ ३८ ॥ के नु पश्चादवर्तन्त गच्छतो दुर्गमां गतिम्। केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं सव्यं के च महात्मनः ॥ ३९ ॥

और महावली माने जाते थे तो भी जैसे छोटी छोटी मछलियें एक वड़े मच्छको मारडालें, क्या ऐसे ही द्रोणाचार्य भी मारे गये ? ॥ २९–३४ ॥ फुरतीले हाथवाले, वलवान्, मजवूत धनुषको धारण करनेवाले शत्रुनाशक और कोई भी पुरुष विजयकी आशासे उनके ऊपर चढ़ाई करके आवे तो वह जीता लौटकर नहीं जासकता था ऐसे वलवान् थे तथा वेदकी इच्छावाले व्राह्मणोंकी वेदध्वनि और धनुर्वेद सीखनेकी इच्छावाले राजाओं के धनुषोंकी डोरियोंकी टंकार दोनों शब्दोंने जवतक द्रोणाचार्य जीवित रहे तवतक उनको एक दिन भी नहीं त्यागा था, ऐसे उदारचित्त, पुरुषोंमें श्रेष्ठ, लज्जाशील, अजित, सिंह और हाथीकी समान पराक्रमी द्रोणाचार्यका मरण मुझसे सहा नहीं जाता ! हे सञ्जय ! जिनको कोई दवा नहीं सकता था, जिनका कोई तिरस्कार नहीं कर सकता था ऐसे यशपानेवाले और वलवान् द्रोणको युद्धमें धृष्टद्युम्नने सव राजाओंके देखते हुए कैसे मारडाला ? द्रोणकी रक्षा करनेके लिये उनके पास खड़े होकर किस२ ने पहिले युद्ध किया था ? ॥ ३५–३८ ॥ और दुर्लभ गतिको पानेवाले किन२ पुरुषोंने उनके पीछे खड़े होकर

पुरस्तात्के च वीरस्य युध्यमानस्य संयुगे। के च तस्मिंस्तनूंस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन् ॥ ४० ॥ द्रोणस्य समरे वीराः केऽकुर्वन्त परां धृतिम्। कच्चिन्नैनं भयान्मन्दाः क्षत्रिया व्यजहन् रणे ४१ रक्षितारस्ततः शून्ये कच्चित्तैर्निहतः परैः। न स पृष्ठमरेस्त्रासाद्रणे शौर्यात्प्रदर्शयेत् ४२ परामप्यापदं प्राप्य स कथं निहतः परैः। एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु सञ्जय ॥ ४३ ॥ पराक्रमेद्यथाशक्त्या तच्च तस्मिन्प्रतिष्ठितम्। मुह्यते मे मनस्तात कथा तावन्निवार्यताम् ॥४४॥ भूयस्तु लब्धसञ्ज्ञस्त्वां परिपृच्छामि सञ्जय ॥४५॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि
धृतराष्ट्रशोके नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

युद्ध किया था ? किन२ पुरुषोंने उन महात्माके रथके दाँये और बाँये पहियोंकी रक्षा की थी ? जब वीर द्रोण युद्ध कररहे थे, उस समय कौन२ वीर उनके आगे आगे चले थे ? कौन२ पुरुष तहाँ अपने देहको त्यागकर प्रतिकूल मृत्युके मुखमें पड़े थे३९-४० उनके युद्धमें किन २ वीर पुरुषोंने परमगति पाई थी ? उनकी रक्षा करनेके लिये नियत कियेहुए मन्द बुद्धिवाले क्षत्रिय कहीं भयके मारे उनको रणमें छोड़कर तो नहीं भागगये थे ? क्या किसीने उनकी रक्षा की ही नहीं थी ? या रक्षकके न होने पर शत्रुओंने उनको अकेला पाकर मारडाला था ? द्रोण तो परम आपत्तिमें आपड़ने पर भी अपनी वीरताके कारणसे शत्रुसे डरकर कभी पीठ दिखानेवाले नहीं थे ! ऐसे द्रोणको शत्रुओंने कैसे मारडाला हे सञ्जय ! दुःखदायक आपत्तियोंमें आर्य पुरुषको अपनी शक्ति भर पराक्रम करना चाहिये और द्रोणाचार्य इस कर्त्तव्यको समझते थे हे तात ! अब मेरा चित्त चक्कर खाता है इसलिये अब तू कथाको बन्द कर हे सञ्जय! जब मेरा चित्त सावधान होजायगा तब तुझसे फिर बूझूँगा ॥४१-४५॥ नवम अध्याय समाप्त ॥९॥

वैशम्पायन उवाच । एतत्पृष्ट्वा सूतपुत्रं हृच्छोकेनार्दितो भृशम् । जये निराशः पुत्राणां धृतराष्ट्रोऽपतत् क्षितौ ॥ १ ॥ तं विसंज्ञं निपतितं सिषिचुः परिचारिकाः । जलेनात्यर्थशीतेन वीजन्त्यः पुण्यगन्धिना ॥ २ ॥ पतितं चैनमालोक्य समन्ताद्भरतस्त्रियः । परिवव्रुर्महाराजमस्पृशंश्चैव पाणिभिः ॥३॥ उत्थाप्य चैनं शनकै राजानं पृथिवीतलात् । आसनं प्रापयामासुर्बाष्पकण्ठ्यो वराननाः॥४॥ आसनं प्राप्य राजा तु मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः । निश्चेष्टोऽतिष्ठत सदा वीज्यमानः समन्ततः॥५॥ स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां वेपमानो महीपतिः । पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद्यथातथम् ६ धृतराष्ट्र उवाच । यः स उद्यन्निवादित्यो ज्योतिषा प्रणुदंस्तमः । अजातशत्रुमायान्तं

वैशम्पायन कहते है कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार सूतपुत्र सञ्जयसे बूझकर धृतराष्ट्रके मनमें बड़ा संताप होनेलगा और अपनेपुत्रोंके विजयकी आशा न देख निराश होकर पृथिवी पर ढहपड़े ॥ १ ॥ उनको मूर्छित हो पृथिवी पर पडा देखकर सेवकों ने उनके ऊपर शीतल जल लाकर छिड़का तथा पवित्र गन्धवाले पङ्खोंसे पवन डुलाने लगे ॥२॥ धृतराष्ट्रको पृथिवी पर पड़ाहुआ देखकर हे राजन् ! महाराजकी रानियोंनेभी उनको चारों ओरसे घेर लिया और उनके ऊपर हाथ फेरनेलगीं ॥ ३ ॥ रोते २ रानियोंने राजाको पृथिवी परसे धीरेसे उठाकर आसन पर बैठाला, तो भी राजाकी मूर्छा दूर न हुई वह विना कुछ चेष्टा किये ही बैठे रहे, तब चारों ओरसे उनकी हवा की गई, धीरे २, जब होश आया तो राजा धृतराष्ट्रने काँपते २ फिर रणमें क्या २ हुआ, यह वृत्तान्त, सूतपुत्र गावल्गणि सञ्जयसे यथोचित रीति से बूझा ॥४—६॥ धृतराष्ट्रने कहा कि—जैसे सूर्य अपने प्रकाशसे अन्धकारका नाश करके उदय होता है, तैसे ही अजातशत्रु युधिष्ठिर, द्रोणाचार्यके सामने चढ आये उससमय, मदरहित,

कस्तं द्रोणाद्वारयत् ॥ ७ ॥ प्रभिन्नमिव मातङ्गं यथा क्रुद्धं तरस्विनम् । प्रसन्नवदनं दृष्ट्वा प्रतिद्विरदगामिनम् ॥८॥ वासितासङ्गमे यद्वत् अजय्यं गजयूथपैः । निजघान रणे वीरान् वीरः पुरुषसत्तमः ॥ ९ ॥ यो ह्येको हि महावीर्यो निर्दहेद्घोरचक्षुषा । कृत्स्नं दुर्योधनबलं धृतिमान् सत्यसंगरः ॥ १० ॥ चक्षुर्हणं जये सक्तमिष्वासधरमच्युतम् । दान्तं बहुमतं लोके के शूराः पर्यवारयन् ११ के दुष्प्रधर्षं राजानमिष्वासधरमच्युतम् । समासेदुर्नरव्याघ्रं कौन्तेयं तत्र मामकाः ॥ १२ ॥ तरसैवाभिपद्याथ यो वै द्रोणमुपाद्रवत् । यः करोति महत् कर्म शत्रूणां वै महाबलः ॥ १३ ॥ महाकायो महोत्साहो नागायुतसमो बले । तं भीमसेनमायान्तं के शूराः पर्य-

क्रोधमें भरेहुए, वेगवान्, प्रदीप्त, चित्तसे काम सिद्ध करना चाहने वाले तथा ऋतुमती हथिनीके साथ समागम करनेके लिए सामनेके हाथीपर प्रहार करनेवाले और चढकर आयेहुए यूथपतिके भी जीतनेमें न आनेवाले हाथीकी समान प्रसन्नमुख युधिष्ठिरको देखकर, कौनसा योधा उनको द्रोणके पाससे दूर लेगया था? हे पुरुषश्रेष्ठ! वीर धैर्यधारी और सत्यवादी राजा युधिष्ठिरने अकेले ही सब वीरोंका नाश किया होता, वह अकेले ही यदि मनमें विचारें तो अपनी क्रोध भरी दृष्टिसे दुर्योधनकी सब सेनाको जलाकर भस्मकर सकते हैं ऐसे, विजयके उद्योगमें लगेहुए, धनुषधारी, जितेन्द्रिय और लोकोंमें प्रतिष्ठा पाये हुए युधिष्ठिरको रणमें किन २ वीरोंने घेरा था ॥ ७-११ ॥ और मेरी सेनाके कौन २ से योधा, किसीसे, न दबनेवाले मनुष्योंमें व्याघ्रसमान, अक्षय वीर तथा धनुषधारी कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरके पासगये थे? जिस महाबली, बडी कायावाले, महाउत्साही, दश हजार हाथियोंकी समान पराक्रमवाले भीमसेनने, शत्रुकी सेनामें बड़ाभारी पराक्रम करके दिखलाया था और जिसने बड़े वेगसे चढकर

वारयन् ॥ १४ ॥ यदायाज्जलदप्रख्यो रथः परमवीर्यवान् । पर्जन्य इव बीभत्सुस्तुमुलामशनिं सृजन् १५ विसृजञ्छरजालानि वर्षाणि मघवानिव । अवस्फूर्जन् दिशः सर्वास्तलनेमिस्वनेन च१६ चापविद्युत्प्रभो घोरो रथगुल्मबलाहकः । सनेमिघोषस्तनितः शरशब्दातिबन्धुरः ॥ १७ ॥ रोषनिर्जितजीमूतो मनोऽभिप्रायशीघ्रगः । मर्मातिगो बाणधरस्तुमुलः शोणितोदकैः ॥ १८ ॥ संप्लावयन् दिशः सर्वा मानवैरास्तरन् महीम् । भीमनिःस्वनितो रौद्रो दुर्योधनपुरोगमान् ॥ १९ ॥ युद्धेऽभ्यपिञ्चद्विजयो गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः । गांडीवं धारयन् धीमान् कीदृशं वो मनस्तदा ॥ २० ॥ इषुसम्बाधमाकाशं कुर्वन् कपिवरध्वजः । यदायात् कथमासीत्तु तदा पार्थं

द्रोणाचार्यके ऊपर धावाकिया था, उस भीमसेनको आताहुआ देखकर हमारी सेनाके किन २ वीरोंने उसको घेरलिया था ? ॥ १२-१४ ॥ रथी, परम पराक्रमी, धनुषरूपी विजयकी कांति वाला, भयानक, रथके गुल्मरूप मेघका आश्रय लेनेवाला, रथके पहियोंके शब्दरूप गर्जनावाला, बाणोंके शब्दोंसे सब दिशाओंको भरता और भयानक शब्द करता, बुद्धिमान् क्रोधरूप पवनसे मेघको भी बखेरदेनेवाला, मनके सङ्कल्पकी समान शीघ्रगामी, मर्मस्थानमें प्रहार करनेवाला गाँडीव और बाणधारी अर्जुनरूप मेघ, जिस समय जैसे इन्द्र जल बरसाता है तैसे बाणोंकी वर्षा करता हथेली और रथके पहियोंके शब्दोंसे सब दिशाओंको भरता रुधिररूप जलसे सब दिशाओंको सराबोर करता और मनुष्योंसे पृथिवीको ढकता हुआ, गिद्ध पक्षीके परोंवाले और सान पर धरकर तेजकियेहुए, बाण, दुर्योधन आदिके मारनेलगा उस समय तुम्हारे मनमें क्या २ विचार उठे थे ? ॥ १५-२० जिसकी ध्वजामें उत्तम वानर है ऐसा अर्जुन, जब बाणोंसे आकाशको ढकता हुआ चढ़ आया उस समय उसको देखनेसे तुम्हारे मनमें क्या

समीक्षताम् ॥ २१ ॥ कच्चिद्गांडीवशब्देन न प्रणश्यति वै बलम् । यद्वः स भैरवं कुर्वन्नर्जुनो भृशमन्वयात् ॥ २२ ॥ कच्चिन्नापानुदत् प्राणानिषुभिर्वो धनञ्जयः। वातो वेगादिवाध्यन् मेघाञ्छरगणैर्नृपान् ॥ २३ ॥ को हि गाण्डीवधन्वानं रणे सोढुं नरोऽर्हति । यमुपश्रुत्य सेनाग्रे जनः सर्वो विदीर्यते ॥२४॥ यत्सेनाः समकम्पन्त यद्वीरानस्पृशद्भयम् । के तत्र नाजहुर्द्रोणं के क्षुद्राः प्राद्रवन् भयात् ॥ २५ ॥ के वा तत्र तनूस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन् । अमानुषाणां जेतारं युद्धेष्वपि धनञ्जयम् ॥ २६ ॥ न च वेगं सिताश्वस्य विसहिष्यन्ति मामकाः । गाण्डीवस्य च निर्घोषं प्रावृड्जलदनिःस्वनम् ॥ २७ ॥ विश्वक्सेनो यस्य यन्ता

विचार उठा था ? अर्जुनने गांडीव धनुषके शब्दसे तो हमारी सेनाका नाश नहीं करडाला था ? अर्जुन गांडीवका महाभयानक शब्द करता करता तुम्हारी सेनाके पास आया था और जैसे पवन अपने वेगसे मेघमंडलके टुकडे करडालता तैसे ही अर्जुनने बाणोंके प्रहारसे तो तुम्हारा नाश नहीं करडाला था?॥२१-२३॥ ऐसा कौनसा पुरुष रणमें था कि—जो गांडीव धनुषधारी अर्जुनके बाणोंकी मारको सहसके ? अर्जुनका नाम सुनते ही सेनाके मुहाने पर खड़ेहुए सब मनुष्य भागने लगते हैं उस अर्जुनको सेनाके मुहाने पर देखकर सेना काँप उठी होगी और वीरपुरुषों को डरलगा होगा ! युद्धके समय कौन २ से योधा रणमें द्रोण को छोडकर नहीं गए थे और कौन २ से क्षुद्रयोधा डरके मारे रणमेंसे भागगये थे तथा कौन २ से योधा देवताओंको भी जीतने वाले अर्जुनके सामने युद्ध करके शरीरकी परवाह न करते हुए कटमरे थे ? ॥ २४-२६ ॥ मेरे पुत्र अर्जुनके वेगको तथा उसके गांडीव धनुषकी वर्षाको और कालके मेघकीसी गर्जनाको सहसकें ऐसे नहीं हैं २७ कृष्ण जिसका सारथी है और अर्जुन जिसका

यस्य योद्धा धनञ्जयः। अशक्यः स रथो जेतुं मन्ये देवासुरैरपि २८ सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः। मेधावी निपुणो धीमान् युधि सत्यपराक्रमः ॥ २९ ॥ आरावं विपुलं कुर्वन् व्यथयन् सर्वसैनिकान्। यदायान्नकुलो द्रोणं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३० ॥ आशीविष इव क्रुद्धः सहदेवो यदाभ्ययात्। कदनं करिष्यन् शत्रूणां तेजसा दुर्जयो युधि ॥ ३१ ॥ आर्यव्रतममोघेषुं ह्रीमन्तमपराजितम्। सहदेवं तमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३२ ॥ यस्तु सौवीराजस्य प्रमथ्य महतीं चमूम्। आदत्त महिषीं भोजां काम्यां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ ३३ ॥ सत्यं धृतिश्च शौर्यञ्च ब्रह्मचर्यं च केवलम्। सर्वाणि युयुधानेऽस्मिन्नित्यानि पुरुषर्षभे॥३४॥

योधा हैं ऐसे रथको तो मेरी समझमें देवता और असुरभी नहीं जीत सकते ॥ २८ ॥ अतिसुकुमार तरुण, वीर, देखने योग्य, बुद्धिमान्, निपुण, युद्धमें सच्चापराक्रम दिखानेवाला और बुद्धिमें प्रबल नकुल जिस समय बडी भारी गर्जना करके सब योधाओं को व्याकुल करता हुआ द्रोणाचार्यके ऊपर चढआया उस समय कौन २ से वीरोंने उसको घेरलिया था ? ॥ २९ ॥ ३० ॥ विषैले साँपकी समान क्रोधमें भराहुआ, तेजके कारण जिसको युद्धमें कोई नहीं जीतसकता ऐसा, आर्यव्रतधारी, सफल बाण वाला, लज्जाशील और अजित सहदेव जिस समय शत्रुओंका संहार करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यके ऊपर चढ आया उस समय कौन २ से वीरोंने उसको घेर लिया था ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जिसने सौवीरराजकी बडीभारी सेनाका संहार करके सर्वांगसुन्दरी और चाहने योग्य भोजाको अपनी पटरानी बनाया था, जिस महात्मामें सत्य, धीरता, शूरता, और ब्रह्मचर्य आदि निवास किये रहते हैं, जो बलवान्, सत्य कर्म करनेवाला, अदीन, अजित श्रीकृष्णकी समान युद्ध करनेमें प्रवीण है, जिसने अर्जुनके उप-

बलिनं सत्यकर्माणमदीनमपराजितम् । वासुदेवसमं युद्धे वासुदेवा-
दनन्तरम् ॥ ३५ ॥ धनञ्जयोपदेशेन श्रेष्ठमिष्वस्त्रकर्मणि । पार्थेन
सममस्त्रेषु कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ३६ ॥ वृष्णीनां प्रवरं शूरं
वीरं सर्वधनुष्मताम् । रामेण सममस्त्रेषु यशसा विक्रमेण च ३७
सत्यं धृतिर्मतिः शौर्यं ब्राह्मं चास्त्रमनुत्तमम् । सात्वते तानि सर्वाणि
त्रैलोक्यमिव केशवे ॥ ३८ ॥ तमेवं गुणसम्पन्नं दुर्वारमपि दैवतैः॥
समासाद्य महेष्वासं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३९ ॥ पञ्चालेषूत्तमं
वीरमुत्तमाभिजनप्रियम् । नित्यमुत्तमकर्माणमुत्तमौजसमाहवे ४०
युक्तं धनञ्जयहिते ममानर्थायमुत्थितम् । यमवैश्रवणादित्यमहेन्द्र-
वरुणोपमम् ॥ ४१ ॥ महारथं समाख्यातं द्रोणायोद्यतमाहवे ।
त्यजन्तं समरे प्राणान् के शूराः समवारयन् ॥ ४२ ॥ एकोपसृत्य

देशसे बाणविद्या और अस्त्रविद्यामें बडी चतुरता पाई है और
जो अस्त्रविद्यामें अर्जुनकी समान है उस युयुधान सात्यकीको
द्रोणके ऊपर चढाई करतेमें किसने रोका था ? ३५ ॥ ३६ ॥
वह सात्यकी वृष्णिवंशमें श्रेष्ठ, वीर, और सब धनुषधारियोंमें
शूर गिनाजाता है, अस्त्रविद्या, यश और पराक्रममें रामकी
समान है, जैसे कृष्णमें तीनोंलोक रहते हैं तैसे ही सात्यकीमें सत्य,
धीरज बुद्धि वीरता और परम उत्तम ब्रह्मास्त्र विद्यमान है ३७-३८
देवता भी जिसको पीछेको नहीं हटा सकते ऐसे बलवान् महा-
धनुषधारी सात्यकीको रणमें किन २ वीरोंने घेरा था ? ३९
पञ्चाल राजाओंमें उत्तम, वीर बान्धवोंको अत्यन्त प्यारा, नित्य
उत्तम पराक्रम करनेवाला, युद्धमें श्रेष्ठ ओज दिखाने वाला,
अर्जुनके हितमें तत्पर और मेरा अशुभ करनेके लिए
उत्पन्न हुआ, यम कुबेर आदित्य, महेन्द्र और वरुणकी
समता रखनेवाला और रणमें प्राण त्यागनेको तयारहुआ महा-
रथी धृष्टद्युम्न जिस समय रणमें द्रोणाचार्यके ऊपर चढकर आया

चेदिभ्यः पाण्डवान् यः समाश्रितः । धृष्टकेतुं समायान्तं द्रोणं कस्तं न्यवारयत् ॥ ४३ ॥ योऽवधीत् केतुमान् वीरो राजपुत्रं दुरासदम् । अपरान्तगिरिद्वारे कस्तं द्रोणान्न्यवारयत् ॥ ४४ ॥ स्त्रीपुंसयोर्नरव्याघ्रो यः स वेद गुणागुणान् । शिखण्डिनं याज्ञसेनिमम्लानमनसं युधि ॥४५॥ देवव्रतस्य समरे हेतुं मृत्योर्महात्मनः । द्रोणायाभिमुखं यान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ४६ ॥ यस्मिन्नभ्यधिका वीरे गुणाः सर्वे धनञ्जयात् । यस्मिन्नस्त्राणि सत्यञ्च ब्रह्मचर्यञ्च सर्वदा ॥ ४७ ॥ वासुदेवसमं वीर्ये धनञ्जयसमं बले । तेजसादित्यसदृशं बृहस्पतिसमम्मतौ ॥ ४८ ॥ अभिमन्युं महात्मानं व्यात्ताननमिवांतकम् । द्रोणायाभिमुखं यांतं के शूराः सम-

था उस समय कौन२ से वीरोंने उसको रोका था ? ॥ ४०-४२ ॥ जिस अकेलेने अपने बान्धव चेदियोंको त्याग कर पाण्डवोंका आश्रय लिया था वह धृष्टकेतु जब द्रोणाचार्यकेऊपर चढ़ कर आया तब उसको किसने रोका था ? ॥ ४३ ॥ जिस शूर केतुमानने अपरान्त नामके गिरिद्वारमें जिसको कोई न जीत सके ऐसे दुर्जय राजपुत्रको मारडाला था, वह द्रोणके ऊपर चढ़ कर आया तब उसको किसने रोका था ? ॥ ४४ ॥ जो नरव्याघ्र अपनेमें रहनेवाले स्त्रीके और पुरुषके गुण और अवगुण को जानता है तथा जो युद्धका उत्साही है और जिसने रणमें महात्मा भीष्मको मारडाला वह यज्ञसेनका पुत्र शिखण्डी जब द्रोणाचार्यके ऊपर चढकर आया तो रणमें कौन २ से शूरोंने उसको रोका था ? ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिस वीरमें सकल गुण अर्जुनसे भी अधिक हैं, जिसमें अस्त्रोंका ज्ञान, सत्य और ब्रह्मचर्य सदा रहता है, जो पराक्रममें कृष्णकी समान, बलमें अर्जुनकी समान, तेजमें सूर्यकी समान और बुद्धिमें बृहस्पतिकी समान है, वह कालके खुलेहुए मुखकी समान महात्मा अभिमन्यु जब द्रोणा-

वारयन् ४९ तरुणस्तरुणप्रज्ञः सौभद्रः परवीरहा। यदाभ्यधावद्वै द्रोणं तदासीद्वो मनः कथम् ॥ ५० ॥ द्रौपदेया नरव्याघ्रा समुद्रमिव सिन्धवः। यद् द्रोणमाद्रवन् संख्ये के शूरास्तान्न्यवारयन् ५१ एते द्वादशवर्षाणि क्रीडामुत्सृज्य बालकाः। अस्त्रार्थमवसन् भीष्मं बिभ्रतो व्रतमुत्तमम् ॥ ५२ ॥ क्षत्रञ्जयः क्षत्रदेवः क्षत्रवर्मा च मानदः। धृष्टद्युम्नात्मजा वीराः के तान् द्रोणादवारयन् ॥ ५३ ॥ शताद्विशिष्टं यं युद्धे सममन्यन्त वृष्णयः। चेकितानं महेष्वासं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ५४ ॥ वार्धक्षेमिः कलिङ्गानां यः कन्यामाहरद् युधि। अनाधृष्टिरदीनात्मा कस्तं द्रोणादवारयत् ॥५५॥ भ्रातरः

चार्यके ऊपर चढकर आया तब उसको किसने रोका था ? ४७ ॥ ४९ ॥ शत्रुका नाश करनेवाला और बुद्धिमान् सुभद्राका जवान पुत्र जब द्रोणाचार्यके ऊपर चढकर आया तब तुम्हारे मनमें कैसा विचार उठा था ? ॥ ५० ॥ पुरुषोंमें सिंह समान द्रौपदीके पुत्र, जैसे बड़े२ नद समुद्रकी ओरको दौड़े चलेजाते हैं तैसे ही जब युद्धमें द्रोणाचार्यकी ओरको झपटकर आए उस समय उनको कौनसे शूरोंने रोका था ? ॥ ५१ ॥ धृष्टद्युम्नका सन्मान करनेवाले क्षत्रञ्जय, क्षत्रदेव, तथा क्षत्रवर्मा नामवाले जो पुत्र बारह वर्षतक क्रीडाके आनन्दको छोडकर उत्तम ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करतेहुए अस्त्रविद्या सीखनेके लिए भीष्मजीके पास रहे थे वे जब द्रोणके ऊपर चढकर आये तो उनको किसने रोका था ? ॥५२ ॥ ५३॥ वृष्णिवंशके राजे जिसको युद्धमें सब योधाओंसे श्रेष्ठ गिनते थे उस महाधनुषधारी चेकितानको द्रोणके ऊपर चढाई करते समय किसने रोका था ? ॥५४ ॥ जिसने युद्धमें कलिङ्ग राजाओंसे कन्या छीनली थी वह वृद्धसेनका अनाधृष्टि नामवाला उदारचित्त पुत्र जब द्रोणके ऊपर चढ आया तब उसको कौन २ से शूरोंने रोका था ? धर्मात्मा सच्चा पराक्रम दिखाने

पञ्च कैकेया धार्मिकाः सत्यविक्रमाः । इन्द्रगोपकसङ्काशा रक्तवर्मायुधध्वजाः ॥ ५६ ॥ मातृष्वसुः सुता वीराः पाण्डवानां जयार्थिनः । तान् द्रोणं हन्तुमायातान् के वीराः पर्यवारयन् ॥ ५७ ॥ यं योधयन्तो राजानो नाजयन् वारणावते । षण्मासानपि संरब्धा जिघांसन्तो युधां पतिम् ॥ ५८ ॥ धनुष्मतां वरं शूरं सत्यसन्धं महाबलम् । द्रोणात् कस्तं नरव्याघ्रं युयुत्सुं पर्यवारयत् ॥ ५९ ॥ यः पुत्रं काशिराजस्य वाराणस्यां महारथम् । समरे स्त्रीषु गृध्यन्तं भल्लेनापाहरद्रथात् ॥ ६० ॥ धृष्टद्युम्नं महेष्वासं पार्थानां मन्त्रधारिणम् । युक्तं दुर्योधनानर्थे सृष्टं द्रोणवधाय च ।६१। निर्दहन्तं रणे योधान् दारयन्तञ्च सर्वतः । द्रोणाभिमुखमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ६२ ॥ उत्सङ्ग इव संवृद्धं द्रुपदस्यास्त्रवित्तमम् ।

वाले, लाल २ कवच शस्त्र और ध्वजाको धारण करनेसे इन्द्रगोप कीड़ेकी समान दीखनेवाले, पांडवोंकी मौसीके पुत्र पाँच केकय भाई पांडवोंको विजय दिलानेकी इच्छासे द्रोणाचार्यको मारनेके लिए चढ़कर आये उस समय उनको किसने रोका था ? ॥ ५५—५७ ॥ वारणावत नगरमें जिसको मार डालनेकी इच्छासे छः महीने तक राजे क्रोधमें भरकर लड़े थे, परन्तु जिसको जीत नहीं सके थे, वह धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ, वीर, सत्यप्रतिज्ञावाला, महाबली, नरव्याघ्र युयुत्सु जब द्रोणके ऊपर चढ़कर आया, उस समय कौनसे वीरने उसको घेरलिया था?॥५८॥५९॥ जिसने बनारसमें कन्याका हरण करनेके लिये,कन्याको चाहनेवाले महारथी काशिराजके पुत्रको भाला मारकर रथमेंसे नीचे गिरादिया था, वह पांडवोंका मंत्री महाधनुषधारी, दुर्योधनका अशुभ करनेके लिये तत्पर रहनेवाला और द्रोणको मारनेके लिये उत्पन्न हुआ धृष्टद्युम्न रणमें चारों ओर योधाओंका संहार करताहुआ द्रोणके ऊपर चढ़आया, उस समय किन२ वीरोंने उसको चारों ओरसे रोका था? ॥६०-६२॥

शैखण्डिनं शस्त्रगुप्तं के च द्रोणादवारयन् ॥ ६३ ॥ य इमां पृथिवीं कृत्स्नां चर्मवत्समवेष्टयेत् । महता रथघोषेण मुख्यारिघ्नो महारथः ॥ ६४ ॥ दशाश्वमेधानाजह्रे स्वन्नपानाप्तदक्षिणान् । निरर्गलान् सर्वमेधान् पुत्रवत् पालयन् प्रजाः ॥६५॥ गङ्गास्रोतसि यावत्यः सिकता अप्यशेषतः । तावतीर्गा ददौ वीर उशीनरसुतोऽध्वरे ॥ ६६ ॥ न पूर्वे नापरे चक्रुरिदं केचन मानवाः । इतीदं चुक्रुशुर्देवाः कृते कर्मणि दुष्करे ॥ ६७ ॥ पश्यामस्त्रिषु लोकेषु न तं संस्थास्नु चारिषु । जातं चापि जनिष्यन्तं द्वितीयञ्चापि साम्प्रतम् ॥ ६८ ॥ अन्यमौशीनराच्छैब्याद्धुरो वोढारमित्युत । गतिं यस्य न यास्यन्ति मानुषा लोकवासिनः ॥ ६९ ॥ तस्य नमार-

---

द्रुपदकी गोदमें पलकर बड़ा हुआ अस्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, शस्त्रों से रक्षा कियाहुआ शिखण्डी जब द्रोणके ऊपर चढ़कर आया तब उसको किसने रोका था ? ॥ ६२ ॥ जिस शत्रुओंका संहार करनेवाले महारथीने बड़ेभारी रथकी घरघराहटसे सब पृथिवीको चमड़ेकी समान लपेटलिया था ॥ ६४ ॥ जिसने प्रजाका पुत्रकी समान पालन करके, बड़े उत्तम अन्नपानवाले तथा पूरी२ दक्षिणावाले दश अश्वमेध यज्ञ और सर्वमेध नामके यज्ञ किये थे ६५ उस उशीनर राजाके पुत्रने, गङ्गाके प्रवाहमें जितनी रेतियें हैं उतनी गौओंका ब्राह्मणोंको दान दिया था और जिसके महादुष्कर कर्मों को देखकर देवता भी कहनेलगे, कि—पहले किसीभी मनुष्यने ऐसा कर्म नहीं किया था, और अब आगेको भी कोई मनुष्य ऐसा कर्म नहीं करसकेगा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस शिविवंशके राजा उशीनरकी समान धर्मकी धुराको धारण करनेवाला त्रिलोकीभर के स्थावर जङ्गमोंमें दूसरा कोई उत्पन्नही नहीं हुआ और न कोई आगेको ऐसा उत्पन्न होगा तथा लोकमें रहनेवाले मनुष्य उसकीसी गति भी नहीं पावेंगे, ऐसे उशीनरका पोता शैब्य, कालकी समान

मायान्तं शैब्यं कः समवारयत् । द्रोणायाभिमुखं यत्तं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ७० ॥ विराटस्य रथानीकं मत्स्यस्यामित्रघातिनः । प्रेप्सन्तं समरे द्रोणं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ७१ ॥ सद्यो वृकोदराज्जातो महाबलपराक्रमः । मायावी राक्षसो वीरो यस्मान्मम महद्भयम् ॥ ७२ ॥ पार्थानां जयकामं तं पुत्राणां मम कण्टकम् । घटोत्कचं महात्मानं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ७३ ॥ एते चान्ये च बहवो येषामर्थाय सञ्जय । त्यक्तारः संयुगे प्राणान् किन्तेषामजितं युधि ॥ ७४ ॥ येषाञ्च पुरुषव्याघ्रः शार्ङ्गधन्वा व्यपाश्रयः । हितार्थी चापि पार्थानां कथं तेषां पराजयः ॥ ७५ ॥ लोकानां गुरुरत्यर्थं लोकानां लोकनाथः सनातनः । नारायणो

मुख फाड़कर युद्धकी सब सामग्रीके साथ द्रोणके ऊपर चढ़कर आया तब उसको किसने रोका था?६८-७०शत्रुका नाश करने वाले विराटदेशके मत्स्यराजकी रथसेना रणमें द्रोणके ऊपर चढ़ कर आयी, उस समय कौन२से शूरोंने उसको घेरलिया था? ७१ भीमसेनसे तुरन्तही हिडिम्बाके पेटमें उत्पन्न हुआ * महाबली और परमपराक्रमी, वीर, मायावी राक्षस घटोत्कच, कि-जिससे मुझे बड़ा भय लगता है, जो पांडवोंकी विजय करवाना चाहता है और जो मेरे पुत्रोंका शत्रु है, वह महात्मा घटोत्कच जब द्रोणके ऊपर चढकर आया तब उसको किसने पीछेको हटाया था?७२-७३ हे सञ्जय ! ये और दूसरे जो योधा पाँडवोंकी विजयके लिये युद्धमें प्राण देनेको तयार हुए थे वे पांडव युद्धमें किसको नहीं जीत सकते थे? ॥७४॥ लोकोंके गुरु, लोकोंके नाथ, सनातन, नारायण, दिव्यमूर्त्ति और शार्ङ्ग-धनुषधारी (श्रीकृष्ण) जब पांडवों

---

(१) पुराणोंमें लिखा है, कि-राक्षसी अप्सरा आदि अलौकिक स्त्रियें गर्भ धारण करनेके साथही सन्तान उत्पन्न करदेती हैं, और वह सन्तान उत्पन्न होतेही तरुण होजाती है।

रणे नाथो दिव्यो दिव्यात्मकः प्रभुः ॥ ७६ ॥ यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः । तान्यहं कीर्त्तयिष्यामि भक्त्या स्थैर्यार्थमात्मनः ॥ ७७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि
धृतराष्ट्रवाक्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र उवाच । शृणु दिव्यानि कर्माणि वासुदेवस्य सञ्जय। कृतवान् यानि गोविन्दो यथा नान्यः पुमान् क्वचित् ॥ १ ॥ संवर्धता गोपकुले बालेनैव महात्मना । विख्यापितं बलं बाहोस्त्रिषु लोकेषु सञ्जय ॥२॥ उच्चैःश्रवस्तुल्यबलं वायुवेगसमं जवे । जघान हयराजं तं यमुनावनवासिनम् ॥ ३ ॥ दानवं घोरकर्माणं गवां

के आधार हैं तब पांडवोंकी पराजय कैसे होसकती है? ।७५ ७६ । वासुदेवके जिन दिव्य कर्मोंका विद्वान् गान करते हैं, उन दिव्य कर्मोंका मैं अपने मनको स्थिर करनेके लिये भक्तिके साथ कीर्त्तन करूँगा ॥ ७७ ॥ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय ! मैं तुझे वासुदेव (कृष्ण) के दिव्य कर्म सुनाता हूँ, तू उनको सुन, श्रीकृष्णने जो कर्म किये हैं, उन कर्मोंको दूसरा कोई भी पुरुष कभी नहीं कर सकेगा ॥१॥ हे सञ्जय ! महात्मा श्रीकृष्णने बालकपनमें गोपके कुलमें (नन्दके घर) पलते समय अपना भुजबल तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध करदिया था ॥ २ ॥ इन्होंने उच्चैःश्रवा नामक दिव्य घोड़ेके समान बलवान् वेगमें वायुकी समान, यमुनाके वनमें रहने वाले, मायावी हयराजका*नाश किया था ॥ ३ ॥ मानो गौओंका

---

* हयराज अश्वोंका राजा असुर था, जिसका दूसरा नाम केशी दैत्य था, वह अपनी आसुरी मायासे महाबली घोड़ेका रूप धर लिया करता था और कंसका मित्र था ।

मृत्युमिवोत्थितम् । वृषरूपधरं वाल्ये भुजाभ्यां निजघान ह ४ प्रलम्बं नरकं जम्भं पीठं चापि महासुरम् । मुरुञ्चान्तकसङ्काशमवधीत् पुष्करेक्षणः ॥ ५ ॥ तथा कंसो महातेजा जरासन्धेन पालितः । विक्रमेणैव कृष्णेन सगणः पातितो रणे ॥६॥ सुनामा रणविक्रान्तः समग्राक्षौहिणीपतिः । भोजराजस्य मध्यस्थो भ्राता कंसस्य वीर्यवान् ॥ ७ ॥ वलदेवद्वितीयेन कृष्णेनामित्रघातिना । तरस्वी समरे दग्धः ससैन्यः शूरसेनराट् ॥ ८ ॥ दुर्वासा नाम विप्रर्षिस्तथा परमकोपनः । आराधितः सदारेण स चास्मै प्रददौ वरान् ॥९॥ तथा गान्धारराजस्य सुतां वीरः स्वयम्वरे । निर्जित्य पृथिवीपालानावहत् पुष्करेक्षणः ॥ १० ॥ अमृष्यमाणा राजानो

नाश करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ हो ऐसे वृषभरूपधारी घोर कर्म करनेवाले वृषभासुरको इन्होंने वालक अवस्थामें ही दोनों हाथोंसे पकड कर मारडाला था ॥ ४ ॥ कमलकी समान नेत्र वाले श्रीकृष्णने प्रलम्ब, नरक, जम्भ, महादैत्य पीठ तथा काल समान मुरुको भी वालक अवस्थामें ही मारडाला था ॥ ५ ॥ और जरासन्धकी रक्षामें राज्य करनेवाले महातेजस्वी कंसको भी उसके योधाओंके सहित लड़ाईमें अपने वलसे ही (विना शस्त्रके) मारडाला था ॥ ६ ॥ शत्रुनाशी श्रीकृष्णने वलरामकी सहायतासे भोजराज कंसके वन्धु, महापराक्रमी, पूरी अक्षौहिणी सेनाके स्वामी, युद्धमें महावेगसे लड़नेवाले शूरसेन देशके सुनामा राजाको भी सेनाके सहित मारडाला था ।७–८। श्रीकृष्णने अपनी स्त्रीको साथमें लेकर महाक्रोधी विप्रर्षि दुर्वासा की आराधना की थी, इस पर दुर्वासाने उनको वरदान दिया ९ उन ही कमलनयन वीर कृष्णने स्वयंवरमेंसे गान्धारराजकी कन्याको हरकर राजाओंको जीता था और उस कन्याके साथ विवाह किया था ॥१०॥ उच्चजातिके घोडोंकी समान श्रीकृष्णके

यस्य जात्या हया इव । रथे वैवाहिके युक्ताः प्रतोदेन कृतव्रणाः ११ जरासन्धं महाबाहुमुपायेन जनार्दनः । परेण घातयामास समग्राक्षौहिणीपतिम् ॥१२॥ चेदिराजञ्च विक्रान्तं राजसेनापतिं बली । अर्धे विवदमानञ्च जघान पशुवत्तदा ॥ १३ ॥ सौभं दैत्यपुरं खस्थं शाल्वगुप्तं दुरासदम् । समुद्रकुक्षौ विक्रम्य पातयामास माधवः ॥ १४ ॥ अङ्गान् वङ्गान् कलिङ्गांश्च मागधान् काशिकोसलान् । वात्स्यगार्ग्यकरूषांश्च पौण्ड्रांश्चाप्यजयद्रणे ॥ १५ ॥ आवन्त्यान् दाक्षिणात्यांश्च पार्वतीयान् दशेरकान् । काश्मीरकानौरसिकान् पिशाचांश्च समुद्गलान्।१६ काम्बोजान् वाटधानांश्च चोलान् पाण्ड्यांश्च सञ्जय । त्रिगर्त्तान्मालवांश्चैव दरदांश्च सुदुर्जयान् ७१

उत्कर्षको तहाँ आयेहुए राजे सह नहीं सके, इसलिये उस समय श्रीकृष्णने उनको विवाह में लायेहुए रथमें (घोडोंकी जगह) जोतकर चाबुककी मारसे घायल करदिया था ॥ ११ ॥ और इन्होंने महाबाहु-जरासन्धको उसकी सम्पूर्ण अक्षौहिणी सेनाके सहित युक्ति करके दूसरेसे मरवाडाला था ॥१२॥ इन ही महापराक्रमी श्रीकृष्णने राजसूय यज्ञमें राजाओंके सेनापति और पराक्रमी चेदिराज (शिशुपाल) को अर्घ देते समय विवाद करने पर पशुकी समान मारडाला था ॥ १३ ॥ आकाशमें फिरनेवाले सौभनामक दैत्योंके नगरकी रक्षा शाल्व किया करता था और उसको कोई भी वशमें नहीं करसकता था उसको भी कृष्णने पराक्रम करके समुद्रमें डुबादिया था ॥ १४ ॥ और अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, मगध, काशि,कोसल, वात्स्य, गार्ग्य, करूष पौंड्र, अवन्ती, दक्षिणवासी, पर्वतवासी, दशेरक, काश्मीर, अनौरसिक, पिशाच, मुद्गल, काम्बोज, बाटधान, चोल, पांड्य, त्रिगर्त्त, मालव, अरिदुर्जय-दरद तथा दूसरे अनेकों दिशाओंसे आयेहुए राजे, खश शक आदि देशोंके तथा जातियोंके

नानादिग्भ्यश्च सम्प्राप्तान् खशांश्चैव शकांस्तथा। जितवान् पुण्डरीकाक्षो यवनश्च सहानुगम् ॥ १८ ॥ प्रविश्य मकरावासं यादोगणनिषेवितम्। जिगाय वरुणं संख्ये सलिलान्तर्गतं पुरा ॥ १९ ॥ युधि पञ्चजनं हत्वा दैत्यं पातालवासिनम्। पाञ्चजन्यं हृषीकेशो दिव्यं शंखमवाप्तवान् ॥ २० ॥ खाण्डवे पार्थसहितस्तोषयित्वा हुताशनम्। आग्नेयमस्त्रं दुर्द्धर्षं चक्रं लेभे महाबलः ॥ २१ ॥ वैनतेयं समारुह्य त्रासयित्वामरावतीम्। महेन्द्रभवनाद्वीरः पारिजातमुपानयत् ॥ २२ ॥ तच्च मर्षितवान् शक्रो जानंस्तस्य पराक्रमम्। राज्ञां चाप्यजितं कञ्चित् कृष्णेनेह न शुश्रुम ॥ २३ ॥ यच्च तन्महदाश्चर्यं सभायां मम सञ्जय। कृतवान् पुण्डरीकाक्षः कस्तदन्य इहार्हति ॥ २४ ॥ यच्च भक्त्या प्रसन्नोहमद्राक्षं कृष्ण-

---

भिन्न२ राजाओंको तथा भाइयों सहित कालयवनको कमलनयन श्रीकृष्णने जीतलिया था ॥ १५-१८ ॥ पहले समयमें इन्होंनेही जलचरोंके समूहोंसे भरेहुए समुद्रमें घुसकर जलमें रहनेवाले वरुणदेवको भी युद्धमें जीतलिया था ॥ १९ ॥ युद्धमें पातालवासी पञ्चजन नामके दैत्यको मारकर हृषीकेशने पांचजन्य नामका दिव्य शङ्ख पाया था ॥ २० ॥ इन महाबली केशवने अर्जुनके साथमें होकर खाण्डव वनमें अग्निको तृप्त कर उससे दुराधर्ष अग्न्यस्त्र सरीखा सुदर्शनचक्र पाया था ॥ २१ ॥ और वीर श्रीकृष्ण विनताके पुत्र गरुड़के ऊपर चढ़कर अमरावतीको भयभीत करते हुए महेन्द्रके भवनमेंसे (देवताओंके वृक्ष) पारिजातको लाये थे ॥ २२ ॥ इन्द्र श्रीकृष्णके पराक्रमको जानता था, इसलिये वह श्रीकृष्णके इस पराक्रमको सहन करगया था, राजाओंमें कोई ऐसा राजा हमने सुनाही नहीं जिसको श्रीकृष्णने न जीता हो २३ हे संजय ! कमलनेत्र श्रीकृष्णने हमारी राजसभामें जो आश्चर्यमें डालनेवाला काम किया था, ऐसा कर्म दूसरा कौन करसकता

मीश्वरम् । तन्मे सुविदितं सर्वं प्रत्यक्षमिव चागमम् ॥२५॥ नान्तो विक्रमयुक्तस्य बुद्ध्या युक्तस्य वा पुनः । कर्मणां शक्यते गन्तुं हृषीकेशस्य सञ्जय ॥ २६ ॥ तथा गदश्च शाम्बश्च प्रद्युम्नोथ विदूरथः । अगावहोनिरुद्धश्च चारुदेष्णः ससारणः ॥ २७ ॥ उल्मुको निशठश्चैव झिल्लीबभ्रुश्च वीर्यवान् । पृथुश्च विपृथुश्चैव शमीकोथारिमेजयः । २८ ॥ एतेऽन्ये बलवन्तश्च वृष्णिवीराः प्रहारिणः । कथञ्चित् पाण्डवानीकं श्रयेयुः समरे स्थिताः ॥ २९ ॥ आहूता वृष्णिवीरेण केशवेन महात्मना । ततः संशयितं सर्वं भवेदिति मतिर्मम ॥३०॥ नागायुतबलो वीरः कैलासशिखरोपमः । वनमाली हली रामस्तत्र यत्र जनार्दनः ॥ ३१ ॥ यमाहुः सर्वपितरं वासुदेवं द्विजातयः । अपि वा ह्येष पाण्डूनां योत्स्यतेर्थाय सञ्जय ३२

है ? ॥ २४ ॥ उस समय मैंने भक्तिके साथ श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर उन परमात्माके दर्शन किये थे तबसे शास्त्रमें लिखीहुई सब बातें मुझे प्रत्यक्षसी दीखने लगी हैं ॥ २५ ॥ हे संजय ! पराक्रमी और बुद्धिमान् हृषीकेश श्रीकृष्णके कर्मोंका पार पाया ही नहीं जासकता ॥ २६ ॥ गद, साम्ब, प्रद्युम्न, विदूरथ, अवगाह, अनिरुद्ध, चारुदेष्ण, सारण॥२७॥ उल्मुक, निशठ, पराक्रमी झिल्ली, बभ्रु, पृथु, विपृथु, शमीक, अरिमेजय, ॥ २८ ॥ ये बलवान् और प्रहार करनेमें चतुर वृष्णिवंशमें वीर पुरुष, वृष्णियोंमें वीर महात्मा श्रीकृष्णके निमन्त्रणसे पांडवोंकी सेनाका आश्रय लेकर युद्ध करें तो मेरी समझमें हमारी सब सेना भयभीत होजाय।२९।३०। जहाँ श्रीकृष्ण होंगे तहाँही दशहजार हाथियोंकी समान बलवाले, वीर, कैलास पर्वतके शिखरकी समान ऊँचे, वनमालाधारी हलधर बलराम भी होंगेही ।।३१।। हे सञ्जय ! ब्राह्मण, वासुदेव श्रीकृष्णको सबका पिता कहते हैं वासुदेवभी पाण्डवोंके लिये युद्ध करेंगे ही ?। ३२।

स यदा तात सन्नह्येत् पाण्डवार्थाय सञ्जय । न तदा प्रतिसंयोद्धा
भविता तत्र कश्चन ॥ ३३ ॥ यदि स्म कुरवः सर्वे जयेयुर्नाम
पाण्डवान् । वार्ष्णेयोर्थाय तेषां वै गृह्णीयाच्छस्त्रमुत्तमम् ॥ ३४ ॥
ततः सर्वान्नरव्याघ्रो हत्वा नरपतीन् रणे । कौरवांश्च महाबाहुः
कुन्त्यै दद्यात् स मेदिनीम् ॥ ३५ ॥ यस्य यन्ता हृषीकेशो योद्धा
यस्य धनञ्जयः । रथस्य तस्य कः संख्ये प्रत्यनीको भवेद्रथः ३६
न केनचिदुपायेन कुरूणां दृश्यते जयः । तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व
यथा युद्धमवर्त्तत ॥ ३७ ॥ अर्जुनः केशवस्यात्मा कृष्णोऽप्यात्मा
किरीटिनः । अर्जुने विजयो नित्यं कृष्णे कीर्त्तिश्च शाश्वती ३८
सर्वेष्वपि च लोकेषु बीभत्सुरपराजितः । प्राधान्येनैव भूयिष्ठममेयाः
केशवे गुणाः ॥ ३९ ॥ मोहाद् दुर्योधनः कृष्णं यो न वेत्तीह

हे तात संजय ! जब श्रीकृष्ण पाण्डवोंके लिये शस्त्र धारण करेंगे
उस समय उनके सामने युद्ध करनेके लिये हममेंसे कोई पुरुषभी
बाहर नहीं निकलेगा ॥ ३३ ॥ जब सब कौरव संग्राममें पांडवोंको
हरा देंगे तब वृष्णिवंशी श्रीकृष्ण पांडवोंके लिये उत्तम शस्त्र उठावेंगे
और रणमें महाबाहु तथा पुरुषोंमें सिंह समान श्रीकृष्ण सब
राजे और कौरवोंको रणमें मारकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको सब
पृथिवी अर्पण करदेंगे ॥ ३४॥ ३५ ॥ जिसके सारथी श्रीकृष्ण हैं
और जिसका योधा धनञ्जय है उस रथके सामने रणमें लड़नेको
कौनसा महारथी आगे बढ़ सकता है ? ॥ ३६ ॥ किसीभी उपायसे
कौरवोंकी विजय होती नहीं दीखती, तो भी कौरव पांडवोंका युद्ध
किस प्रकार हुआ था, वह सब तू मुझे सुना ॥ ३७ ॥ अर्जुन
श्रीकृष्णका आत्मा है और श्रीकृष्ण अर्जुनके आत्मा हैं, अर्जुन
में नित्य विजयका निवास है और श्रीकृष्णमें सनातनकालसे
कीर्त्ति विद्यमान है ॥ ३८ ॥ सब लोकोंमें अर्जुनको कोई नहीं जीत
सकता और श्रीकृष्णमें प्रधानरूपसे सकल अमेय गुण रहते

केशवम् । मोहितो दैवयोगेन मृत्युपाशपुरस्कृतः ।। ४० ।। न वेद कृष्णं दाशार्हमर्जुनं चैव पाण्डवम् । पूर्वदेवौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ ।। ४१ ।। एकात्मानौ द्विधा भूतौ दृश्येते मानवैर्भुवि । मनसापि हि दुर्धर्षौ सेनामेतां यशस्विनौ ।। ४२ ।। नाशयेतामिहेच्छन्तौ मानुषत्वाच्च नेच्छतः । युगस्येव विपर्यासो लोकानामिव मोहनम् ।। ४३ ।। भीष्मस्य च वधस्तात द्रोणस्य च महात्मनः । न ह्येव ब्रह्मचर्येण न वेदाध्ययनेन च ।। ४४ ।। न क्रियाभिर्न चास्त्रेण मृत्योः कश्चिन्निवार्यते । लोकसम्भावितौ वीरौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ।। ४५ ।। भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा किन्नु जीवामि सञ्जय । यान्तीं श्रियमसूयामः पुरा दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ४६

हैं ।। ३९ ।। मूर्ख दुर्योधन प्रारब्धवश मोहमें फँसाहुआ और मृत्युकी फाँसीमें बँधाहुआ था इसलियेही वह श्रीकृष्णको नहीं पहिचान सका ।। ४० ।। दाशार्हवंशी श्रीकृष्ण और अर्जुन पूर्वकालके देवता महात्मा नरनारायण हैं, इस बातको दुर्योधन नहीं जानता था ।। ४१ ।। वे दोनों एक रूपही हैं, परन्तु मृत्युलोकके मनुष्य उनको दो रूपमें देखते हैं इन दोनोंका कोई मनसेभी पराजय नहीं करसकता, यह दोनों कीर्त्तिमान् पुरुष यदि चाहें तो इस सेनाका संहार करडालें परन्तु मनुष्यके रूपमें प्रकट होरहे हैं इसलिये ऐसा करना नहीं चाहते, हे तात ! महात्मा भीष्मकी मृत्यु और महात्मा द्रोणका जो संहार हुआ है यह युगके उलट फेरको दिखलाता है और मनुष्योंको मोहमें डालता है, कोई भी मनुष्य ब्रह्मचर्य वेदपाठ, यज्ञ यागकी क्रिया अथवा अस्त्रसे मृत्युको पीछेको नहीं लौटा सकता भीष्म और द्रोण सब लोकोंके मान्य, वीर, अस्त्रविद्यामें चतुर और युद्धमें दुर्मद थे, उनके मरणको सुनकर मैं क्यों जीरहा हूँ? हम युधिष्ठिरकी राजलक्ष्मीको देखकर डाह किया करते थे परन्तु भीष्म और द्रोणके मरणसे पराधीन हुए हमको

अद्य तामनुजानीमो भीष्मद्रोणवधेन ह । मत्कृते चाप्यनुप्राप्तः कुरूणामेष संक्षयः ॥ ४७ ॥ पक्वानां हि वधे सूत वज्रायन्ते तृणान्युताः । अनन्तमिदमैश्वर्यं लोके प्राप्तो युधिष्ठिरः ॥ ४८ ॥ यस्य कोपान्महात्मानौ भीष्मद्रोणौ निपातितौ । प्राप्तः प्रकृतितो धर्मो न धर्मो मामकान् प्रति ॥४९॥ क्रूरः सर्वविनाशाय कालोसौ नातिवर्त्तते । अन्यथा चिन्तिता ह्यर्था नरैस्तात मनस्विभिः ॥ ५० ॥ अन्यथैव प्रपद्यन्ते दैवादिति मतिर्मम । तस्मादपरिहार्येऽर्थे सम्प्राप्ते कृच्छ्र उत्तमे । अपारणीये दुश्चिन्त्ये यथाभूतं प्रचक्ष्व मे ॥ ५१॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि
धृतराष्ट्रविलापे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सञ्जय उवाच । हन्त ते कथयिष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।

यह लक्ष्मी पांडवोंके अर्पण करना आवश्यक होरही है, निःसन्देह कौरवोंका नाश मेरे कारणसेही हुआ है ॥ ४२-४७ ॥ हे सूत ! जब मनुष्योंका काल आता है तब तिनके भी उनका नाश करनेके लिये वज्र बनजाते हैं, जिसके क्रोधसे महात्मा भीष्म और द्रोणका नाश हुआ है उस राजा युधिष्ठिरने लोकमें अनन्त ऐश्वर्य पाया है और धर्मका पालनभी स्वाभाविक रीतिसे उसनेही किया है, इधर मेरे पुत्रोंमें अधर्मकी लता फैली है, इसलिये क्रूरकाल हम सबोंका नाश करनेके लिये हमारे पास आपहुँचा है। हे तात! मेरी समझमें समझदार पुरुष स्वयं कुछ और ही विचार करते हैं परन्तु दैवयोगसे उसका फल कुछ और ही होता है ४८-५० इसकारणही जिसको कोई टालही नहीं सकता था और जिसका पार कोई पाही नहीं सकता था ऐसी यह महादुःखदायक और अचिन्तनीय घटना होगई है, अब आगेको रणमें जिसप्रकार जो२ बात हुई हो वह तू मुझे सुना ॥५१॥ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ११

संजय कहता है कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! मैंने सब प्रत्यक्ष देखा है

यथा सन्यपतद् द्रोणः सूदितः पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १ ॥ सेनापतित्वं सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः । मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पुत्रं ते वाक्यमब्रवीत् ॥२॥ यत् कौरवाणामृषभादापगेयादनन्तरम् । सैनापत्येन यद्राजन्मामद्य कृतवानसि ॥ ३ ॥ सदृशं कर्मणस्तस्य फलं प्राप्नुहि भारत । करोमि कामं कन्तेद्य प्रवृणीष्व यमिच्छसि॥ ४ ॥ ततो दुर्योधनो राजा कर्णदुःशासनादिभिः । समन्त्र्योवाच दुर्धर्षमाचार्यं जयतां वरम् ॥ ५ ॥ ददासि चेद्वरं मह्यं जीवग्राहं युधिष्ठिरम् । गृहीत्वा रथिनां श्रेष्ठ मत्समीपमिहानय ॥ ६॥ ततः कुरूणामाचार्यः श्रुत्वा पुत्रस्य ते वचः। सेनां प्रहर्षयन् सर्वामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ धन्यः कुन्तीसुतो राजन् यस्य ग्रहणमिच्छसि ।

और मैं आपको युद्धकी सब कथा सुनाऊँगा, पांडव और सृंजयों के प्रहारसे रणमें द्रोणाचार्य कैसे मारेगये यह कथाभी कहूँगा।१। महारथी द्रोणाचार्यने सेनापतिका पद स्वीकार करलेनेपर सब सेनाके बीचमें तुम्हारे पुत्रसे कहा कि—।।२।। हे राजन् ! कौरवों के पितामह समुद्रगामिनी गंगाके पुत्र भीष्मजीके बाद मुझे सेनापतिका पद दिया गया है इसलिये मैं भी अपने अधिकारके अनुसार काम करके तुझे संतुष्ट करूँगा, वता अबमें तेरी कौनसी इच्छा पूरी करूँ, जो इच्छा हो वह वर माँगले ॥ ३ ॥ ४ ॥ इस पर राजा दुर्योधनने कर्ण दुःशासन आदि राजाओंके साथ खूब विचार करके विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ और किसीसे न दबने वाले आचार्यसे कहा कि—यदि आप मुझे वरदेना चाहते हैं तो महारथी युधिष्ठिरको मेरे पास जीताहुआ पकड़कर लेआइये५-६ तुम्हारे पुत्रकी इस बातको सुनकर कौरवोंके आचार्य सब सेना को प्रसन्न करतेहुए कहने लगे कि—।।७।। हे राजन् ! तू धर्मराज को मारनेके लिये महाकठिन वर नहीं माँगरहा है किन्तु इनको कैद करनेकी इच्छा दिखारहा है, इसलिये कुन्तीपुत्र धर्मराज

न वधार्थं सुदुर्धर्षं वरमद्य प्रयाचसे ॥ ८ ॥ किमर्थञ्च नरव्याघ्र न वधं तस्य कांक्षसे। नाशंससि क्रियामेतां मत्तो दुर्योधन ध्रुवम् आहोस्वित्धर्मराजस्य द्वेष्टा तस्य न विद्यते। यदीच्छसि त्वं जीवन्तं कुलं रक्षसि चात्मनः ॥ १० ॥ अथवा भरतश्रेष्ठ निर्जित्य युधि पाण्डवान्। राज्यं सम्प्रति दत्त्वा च सौभ्रात्रं कर्तुमिच्छसि ११ धन्यः कुन्तीसुतो राजा सुजातश्चास्य धीमतः। अजातशत्रुता सत्या तस्य यत् स्निह्यते भवान् ॥१२॥ द्रोणेन चैवमुक्तस्य तव पुत्रस्य भारत। सहसा निःसृतो भावो योऽस्य नित्यं हृदि स्थितः ॥१३॥ नाकारो गूहितुं शक्यो बृहस्पतिसमैरपि। तस्मात्तव सुतो राजन् प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥१४॥ वधे कुन्तीसुतस्याजौ नाचार्य विजयो मम। हते युधिष्ठिरे पार्था हन्युः सर्वान् हि नो ध्रुवम् ॥ १५ ॥

भाग्यवान् हैं ॥८॥ हे दुर्योधन ! तू युधिष्ठिरको मेरे हाथसे मरवा डालना क्यों नहीं चाहता ? अथवा जब उनका कोई शत्रुही नहीं है तो फिर उनको क्यों मारना चाहिये ? तू राजा युधिष्ठिरको जीवित पकड़कर कैद करके रखना चाहता है, यह तू अपने कुल की रक्षा कररहा है ॥ ९ ॥ १० ॥ अथवा हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तू युद्धमें पांडवोंको जीतनेके अनन्तर युधिष्ठिरको राज देकर भ्रातृप्रेम दिखाना चाहता है क्या ? ॥ ११ ॥ तेरा धर्मराज के ऊपर स्नेह है, इसलिये कुन्तीपुत्र धर्मराज भाग्यशाली हैं उस का जन्म भी कृतार्थ है तथा उसका अजातशत्रु नाम भी सत्यही है॥१२॥ हे भरतवंशी राजन् ! तुम्हारे पुत्रसे द्रोणाचार्यने ज्योंही ऐसा कहा कि—उसके हृदयमें नित्य रहनेवाला भाव एकायकी बाहर निकल पड़ा ॥ १३ ॥ बृहस्पति भी अपने हृदयके भावको नहीं छिपासकता इसलिये हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र प्रसन्न होकर बोल उठा कि—॥१४॥ हे आचार्य ! रणमें कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको मारडालनेसे मेरी विजय नहीं होसकती ! यदि युधिष्ठिरको मार

न च शक्या रणे सर्वे निहन्तुममरैरपि । य एव तेषां शेषः स्यात् स एवास्मान्न शेषयेत् ॥ १६ ॥ सत्यप्रतिज्ञे त्वानीते पुनर्द्यूतेन निर्जिते । पुनर्यास्यंत्यरण्याय पाण्डवास्तमनुव्रताः ॥ १७ ॥ सोयं मम जयो व्यक्तं दीर्घकालं भविष्यति । अतो न वधमिच्छामि धर्मराजस्य कर्हिचित् ॥ १८॥ तस्य जिह्ममभिप्रायं ज्ञात्वा द्रोणोऽर्थतत्त्ववित् । तं वरं सान्तरं तस्मै ददौ सञ्चिन्त्य बुद्धिमान् १९ द्रोण उवाच । न चेद्युधिष्ठिरं वीर पालयत्यर्जुनो युधि । मन्यस्व पाण्डवश्रेष्ठमानीतं वशमात्मनः ॥ २० ॥ न हि शक्यो रणे पार्थः सेन्द्रैर्देवासुरैरपि । प्रत्युद्यातुमतस्तात नैतदामर्षयाम्यहम् ॥ २१॥ असंशयं स मे शिष्यो मत्पूर्वश्चास्त्रकर्मणि । तरुणः सुकृतैर्युक्त

दिया जायगा तो अर्जुन हम सबोंको अवश्यही मारडालेगा १५ रणमें देवताभी पांडवोंको नहीं मारसकते, ऐसे पांडवोंमेंसे जो पुरुषभी जीवित रहजायगा, वह हममेंसे किसीको भी जीता नहीं छोड़ेगा ॥ १६ ॥ राजा युधिष्ठिर सत्यप्रतिज्ञावाले हैं, उनको यहाँ लाकर फिर जुआ खिलाकर जीतलूँगा, तब उनकी आज्ञा में चलनेवाले पांडव फिर युधिष्ठिरके साथ वनमें चलेजायँगे १७ इसप्रकार चिरकाल तक स्पष्टरीतिसे मेरी विजय होजायगी, इस कारणही मैं किसीप्रकार भी धर्मराजको मारडालना नहीं चाहता १८ व्यवहारकुशल और बुद्धिमान् द्रोण, दुर्योधनके कपटभरे अभिप्रायको जानकर विचारपूर्वक दुर्योधनको विघ्नभरा वरदान देते हुए बोले ॥ १९ ॥ द्रोणाचार्यने कहा, कि-यदि वीर अर्जुन युधिष्ठिरको नहीं बचावेगा तो तू पांडव-श्रेष्ठ युधिष्ठिरको अपने वशमें आयाही समझ ॥ २० ॥ हे तात ! देवताओं सहित इन्द्र और असुर भी अर्जुनके ऊपर चढ़ायी नहीं करसकते यह काम करनेका साहस मुझमें नहीं है ॥ २१ ॥ निःसन्देह अर्जुन मेरा शिष्य और मैं उसका गुरु हूँ, परन्तु वह अवस्थामें तरुण,

एकायनगतश्च ह ॥ २२ ॥ अस्त्राणीन्द्राच्च रुद्राच्च भूयः स समवाप्तवान् । अमर्षितश्च ते राजंस्ततो नामर्षयाम्यहम् ॥ २३ ॥ स चापक्रम्यतां युद्धाद्येनोपायेन शक्यते । अपनीते ततः पार्थे धर्मराजो जितस्त्वया ॥ २४ ॥ ग्रहणे हि जयस्तस्य न वधे पुरुषर्षभ । एतेन चाप्युपायेन ग्रहणं समुपैष्यसि ॥२५॥ अहं गृहीत्वा राजानं सत्यधर्मपरायणम् । आनयिष्यामि ते राजन् वशमद्य न संशयः ॥ २६ ॥ यदि स्थास्यति संग्रामे मुहूर्तमपि मेऽग्रतः । अपनीते नरव्याघ्रे कुन्तीपुत्रे धनञ्जये ॥ २७ ॥ फाल्गुनस्य समीपे तु न हि शक्यो युधिष्ठिरः । ग्रहीतुं समरे राजन सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥२८॥ सञ्जय उवाच । सान्तरं तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे । गृहीतं तममन्यन्त तव पुत्राः सुबालिशाः ॥२९ ॥ पांडवे-

---

पुण्यात्मा और जीतना या मरना इन दोनोंमेंसे एक बातका दृढ़ निश्चय कियेहुए है ॥ २२ ॥ फिर उसने इन्द्रसे और शिवजीसे पूरी२ अस्त्रविद्या सीखी हैं तथा तेरे ऊपर क्रोधमें भराहुआ है, अतः हे राजन् ! (उसके सामने) यह काम मुझसे नहीं होसकेगा ॥ २३॥ अतः जिस उपायसे भी होसके उसको युद्धसे दूरले जाना चाहिये, अर्जुनके हटजाने पर तू युधिष्ठिरको जीतसकेगा २४ हे पुरुषसत्तम ! युधिष्ठिरके कैद होजानेसेही जय हैं मारेजानेमें नहीं, और इस उपायसे तू उनको पकड़ सकेगा ॥२५॥ हे राजन् ! आज मैं सत्य और धर्ममें तत्पर रहनेवाले राजा युधिष्ठिरको पकड़कर निःसन्देह तुम्हारे अधीन करदूँगा ॥ २६ ॥ कुन्तीपुत्र नरव्याघ्र अर्जुनको हटाकर दूर लेजानेपर यदि युधिष्ठिर संग्राममें क्षण भरको भी मेरे पास खड़े रहेंगे तो मैं उन्हें पकड़लूँगा ॥२७॥ अर्जुनके समीप होनेपर हे राजन्! युधिष्ठिरको देवता और दानवों सहित इन्द्रभी समरमें नहीं पकड़सकते ॥२८॥ सञ्जयने कहा, कि–द्रोणाचार्यके राजा युधिष्ठिरको कैद करनेके लिये इसप्रकार विघ्नभरी

येषु सापेक्षं द्रोणं जानाति ते सुतः । ततः प्रतिज्ञास्थैर्यार्थं स मन्त्रो बहुलीकृतः ॥ ३० ॥ ततो दुर्योधनेनापि ग्रहणं पाण्डवस्य तत् । सैन्यस्थानेषु सर्वेषु सुघोषितमरिन्दम ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि
द्रोणप्रतिज्ञायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सञ्जय उवाच । सान्तरे तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे । ततस्ते सैनिकाः श्रुत्वा तं युधिष्ठिरनिग्रहम् ॥ १ ॥ सिंहनादरवांश्चक्रुर्बाहुशब्दांश्च कृत्स्नशः । तच्च सर्वं यथान्यायं धर्मराजेन भारत ॥ २॥ आप्तैराशु परिज्ञातं भारद्वाजचिकीर्षितम् । ततः सर्वान् समानाय्य भ्रातॄनन्यांश्च सर्वशः ॥ ३॥ अब्रवीद् धर्मराजस्तु धनञ्जयमिदं वचः । श्रुतन्ते पुरुषव्याघ्र द्रोणस्याद्य चिकीर्षितम् ॥ ४ ॥ यथा तन्न भवेत् सत्यं तथा नीतिर्विधीयताम् । सान्तरं हि प्रतिज्ञातं द्रोणं-

---

प्रतिज्ञा करनेपर, तुम्हारे मूर्ख पुत्र राजा युधिष्ठिरको पकड़ाहुआ ही समझने लगे ॥ २९ ॥ तुम्हारा पुत्र द्रोणाचार्यको पांडवों पर प्रीति रखनेवाले जानता था अतः, उसने द्रोण प्रतिज्ञा पर स्थिर रहैं इसलिये बहुतसे मनुष्योंको इस प्रतिज्ञाका समाचार देदिया ३० हे शत्रुदमन ! तदनन्तर दुर्योधनने, युधिष्ठिरके द्रोणाचार्य द्वारा पकड़े जानेकी बात सेनाओंके सब लश्करोंमें प्रकट करादी ॥ ३१ ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! द्रोणने अमुक नियमके अनुसार राजा युधिष्ठिरको कैद करनेकी प्रतिज्ञा की है, यह सुनकर सेनाके योधा सिंहकी समान गर्जना करनेलगे और बार२ ताल ठोकनेलगे, हे भारत ! राजा युधिष्ठिरने द्रोणकी इस प्रतिज्ञाको विश्वासपात्र दूतोंसे सुनकर सब भाइयों और राजाओंको बुलवाया और ॥ १-३ ॥ धर्मराज अर्जुनसे यह कहनेलगे, कि-हे नरव्याघ्र ! तूने द्रोणकी आजकी प्रतिज्ञाको सुना ? ॥ ४ ॥ शत्रु-

नामित्रकर्षिणा ॥ ५ ॥ तच्चान्तरं महेष्वास त्वयि तेन समाहितम् । स त्वमद्य महाबाहो युध्यस्व मदनन्तरम् ॥६॥ यथा दुर्योधनः कामं नेमं द्रोणादवाप्नुयात् । अर्जुन उवाच । यथा मे न वधः कार्य्यश्चाचार्य्यस्य कदाचन ॥७॥ तथा तव परित्यागो न मे राजंश्चिकीर्षितः । अप्येवं पाण्डव प्राणानुत्सृजेयमहं युधि ॥ ८ ॥ प्रतीपो नाहमाचार्य्ये भवेयं वै कथञ्चन । त्वां निगृह्याहवे राज्यं धार्त्तराष्ट्रो यदिच्छति ९ न स तं जीवलोकेस्मिन् कामं प्राप्येत् कथञ्चन प्रपतेत् द्यौः सनक्षत्रा पृथिवी शकली भवेत् ॥ १० ॥ न त्वां द्रोणो निगृहणीयाज्जीवमाने मयि ध्रुवम् । यदि तस्य रणे साह्यं कुरुते वज्रभृत् स्वयम् ॥११॥ विष्णुर्वा सहितो देवैर्न्न त्वां प्राप्स्यत्यसौ मृधे । मयि जीवति राजेन्द्र न भयं कर्त्तुमर्हसि ॥ १२ ॥ द्रोणा-

---

पीड़क द्रोणने अन्तराय भरी प्रतिज्ञा की है, अतः अब ऐसी नीतिसे चलना चाहिये जिससे उनकी प्रतिज्ञा सत्य न हो ॥ ५ ॥ वह अन्तराय (बहाना) द्रोणाचार्यने तेरे ऊपर रख छोड़ा है, अतः हे महाभुज ! आज तू मेरे पास खड़ा होकर युद्ध कर ॥ ६ ॥ जिससे कि–दुर्योधन अपनी अभिलाषाको द्रोणाचार्यके द्वारा पूरी न कर सके, अर्जुनने उत्तर दिया कि–मैं जैसे किसी प्रकारभी द्रोणका वध करना नहीं चाहता, तैसेही हे राजन् ! मुझै आपको छोड़कर जानेकी इच्छाभी नहीं है, हे पांडव ! ऐसा करनेमें चाहे मुझै प्राण भी छोड़ने पड़ें ॥ ७ ॥ ८ ॥ मैं आचार्यके विरुद्ध किसी प्रकारभी नहीं होऊँगा और जो दुर्योधन युद्धमें आपको कैद करना चाहता है, यह उसकी कामना भी कभी पूरी नहीं होगी, चाहे नक्षत्रों सहित आकाश गिरपड़े और चाहे पृथिवीके टुकड़े२ होजायँ ९-१० तथापि जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक द्रोणाचार्य आपको कैद नहीं करसकते चाहे युद्धमें स्वयं इन्द्रभी आकर उनकी सहायता करे ११ अथवा विष्णुभी देवताओंके सहित आकर द्रोणाचार्यकी सहायता

दस्त्रभृतां श्रेष्ठात् सर्वशस्त्रभृतामपि । अन्यच्च ब्रूयां राजेन्द्र प्रतिज्ञां मम निश्चलाम् ॥ १३ ॥ न स्मराम्यनृतन्तावन् न स्मरामि पराजयम् । न स्मरामि प्रतिश्रुत्य किञ्चिदप्यनृतं कृतम् ॥ १४ ॥ सञ्जय उवाच । ततः शङ्खाश्च भेर्य्यश्च मृदाङ्गाश्चानकैः सह । प्रावाद्यन्त महाराज पाण्डवानां निवेशने ॥ १५ ॥ सिंहनादश्च सञ्जज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम् । धनुर्ज्यातलशब्दश्च गगनस्पृक् सुभैरवः ॥ १६ ॥ श्रुत्वा शङ्खस्य निर्घोषं पांडवस्य महौजसः । त्वदीयेष्वप्यनीकेषु वादित्राण्यभिजघ्निरे ।१७। ततो व्यूढान्यनीकानि तव तेषां च भारत । शनैरुपेयुरन्योन्यं योध्यमानानि संयुगे १८ ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । पाण्डवानां कुरूणाञ्च द्रोणपांचाल्ययोरपि ॥ १९ ॥ यतमानाः प्रयत्नेन द्रोणानीकविशातने ।

करें तो भी द्रोणाचार्य आपको नहीं पकड़ सकेंगे, हे राजन् ! जब तक मैं जीवित हूँ तब तक सब शस्त्रास्त्रधारियोंसे श्रेष्ठ द्रोणसे आपको डरना नहीं चाहिये, अधिक क्या कहूँ तुम मेरी प्रतिज्ञा को अटल जानना ! ॥१२॥१३॥ मुझे ऐसा स्मरण नहीं आता कि, मैंने कभी झूठ बोला हो अथवा पराजय पाई हो और इस बातका भी मुझे स्मरण नहीं आता कि-कभी मैंने प्रतिज्ञा करके उसको मिथ्या किया हो॥१४॥सञ्जय कहता है, कि-हे महाराज ! तदनंतर पांडवोंकी छावनीमें भी शंख भेरी मृदङ्ग और नगाड़े बजने लगे ॥ १५ ॥ महात्मा पांडव सिंहनाद करने लगे, उनके धनुष की टंकारका शब्द और हाथकी तालियोंका भयानक शब्द आकाशमें टकराने लगा ॥ १६ ॥ महातेजस्वी पांडवोंकी छावनी के शंखघोषको सुनकर तुम्हारी सेनाओंमें भी बाजे बजनेलगे ॥१७॥ तदनन्तर हे भारत ! व्यूहरचनासे खड़ीहुई तुम्हारी और पांडवोंकी सेनाएँ धीरे २ युद्धभूमि में पहुँकर लड़नेलगीं ॥ १८ ॥ तदनन्तर कौरव पांडवोंका तथा द्रोण और पांचालोंका रोंगटे खड़े

न शेकुः सृञ्जया युद्धे तद्धि द्रोणेन पालितम् ॥ २० ॥ तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिण । न शेकुः पाण्डवीं सेनां पाल्यमानां किरीटिना ॥ २१ ॥ आस्तान्ते स्तिमिते सेने रक्ष्यमाणे परस्परम् । सम्प्रसुप्ते यथा नक्तं वनराजी सुपुष्पिते ॥ २२ ॥ ततो रुक्मरथो राजन् अर्केणेव विराजता । वरूथिनो विनिष्पत्य व्यचरत् पृतनामुखे ॥ २३ ॥ तमुद्यंतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे । अनेकमिव सन्त्रासान्मेनिरे पाण्डुसृंजयाः ॥ २४ ॥ तेन मुक्ताः शरा घोरा विचेरुः सर्वतो दिशम् । त्रासयन्तो महाराज पाण्डवेयस्य वाहिनीं २५ मध्यंदिनमनुप्राप्तो गभस्तिशरसंवृतः । यथा दृश्येत घर्मांशुस्तथा द्रोणोऽप्यदृश्यत ॥ २६ ॥ न चैनं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति भारत ।

करनेवाला घोर युद्ध होनेलगा ॥ १९ ॥ सृञ्जय द्रोणकी सेनाको नष्ट करनेके लिये उत्कट उद्योग करते थे परन्तु द्रोण उसके रक्षक थे, अतः सृञ्जय उसका रणमें नाश न करसके २० ऐसेही तुम्हारे पुत्रके महारथी योधा इच्छा करने पर भी अर्जुनसे रक्षित पांडवोंकी सेनाको नष्ट न करसके ॥ २१ ॥ अपनी२ रक्षा करती, रुकीहुईं वे दोनों सेनाएँ पुष्पोंसे सुशोभित और पत्रोंको रात्रिमें संकुचित करनेवालीं दो वनराजियोंके स्थिर रहनेकी समान स्थिर दीखनेलगीं ॥ २२ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर सुवर्णरथी महात्मा द्रोण, सूर्यकी समान दमकते रथमें विराजमान होकर रणभूमिके मुहाने पर घूमने लगे ॥ २३ ॥ रथमें अकेले बैठे बाणोंको फुर्तीसे फैंकतेहुए द्रोणको पांडव और सृञ्जय घबड़ाकर अनेक रूप मानने लगे ॥ २४ ॥ हे महाराज ! द्रोणके छोड़ेहुए भयंकर बाण पांडवोंकी सेनाको सब दिशाओंमें त्रास देतेहुए घूमनेलगे ।२५। जैसे मध्यान्हकालमें सहस्र किरणोंसे घिरेहुए सूर्य दीखते हैं तैसेही तेजस्वी द्रोण दीखने लगे ॥ २६ ॥ हे भारत ! पांडवोंकी सेनामेंसे कोईभी द्रोणाचार्यकी ओरको न देखसका, जैसे समरमें क्रुद्ध

वीक्षितुं समरे-क्रुद्धं महेन्द्रमिव दानवाः ॥ २७ ॥ मोहयित्वा ततः सैन्यं भारद्वाजः प्रतापवान् । धृष्टद्युम्नबलं तूर्णं व्यधमन्निशितैः शरैः ॥२८॥ स दिशः सर्वतो रुध्वा संवृत्य खमजिह्मगैः । पार्षतो यत्र तत्रैव प्रमृदे पाण्डुवाहिनीम् ॥ २९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अर्जुनकृतयुधिष्ठिराश्वासने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सञ्जय उवाच । ततः स पाण्डवानीके जनयन्सुमहद्भयम् । व्यचरत् पृतनां द्रोणो दहन् कक्षमिवानलः ॥ १ ॥ निर्दहन्तमनीकानि साक्षादग्निमिवोत्थितम् । दृष्ट्वा रुक्मरथं क्रुद्धं समकम्पन्त सृञ्जयाः ॥ २ ॥ सततं कृष्यतः संख्ये धनुषो स्वाशुकारिणः । ज्याघोषं शुश्रुवेत्यर्थं विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ ३ ॥ रथिनः सादिनश्चैव नागानश्वान् पदातिनः । रौद्रा हस्तवता मुक्ताः समृद्नन्ति स्म सायकाः ॥ ४ ॥ नानद्यमानः पर्जन्यः प्रवृद्धः शुचिसंक्षये ।

हुए इन्द्रको दानव नहीं देख सकते ॥ २७ ॥ तदनन्तर प्रतापी भारद्वाज पांडवोंकी सेनाको मूर्च्छित करके, शीघ्रही तीक्ष्ण बाणों से धृष्टद्युम्नकी सेनाको बींधनेलगे ॥ २८ ॥ वह सीधे जानेवाले बाणोंसे सब दिशाओंको ढककर जहाँ धृष्टद्युम्न खड़ा था वहाँ पांडवोंकी सेनाको मसलने लगे ॥ २९ ॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जयने कहा, कि-तदनन्तर वह द्रोणाचार्य, घासको जलाने वाले अग्निकी समान पांडवोंकी सेनामें भय उपजातेहुए घूमने लगे ॥ ३० ॥ साक्षात् अग्निकी समान सोनेके रथमें बैठकर सेनाओंको भस्म करतेहुए-द्रोणाचार्यको देखकर सृञ्जय बड़ी जोरसे काँप उठे ॥ २ ॥ जब फुर्तीले द्रोणाचार्य युद्धमें निरन्तर धनुषको, खैंच रहे थे उस समय उनकी प्रत्यञ्चाका शब्द वज्रकी ध्वनिकी समान सुनाई देता था ॥ ३ ॥ द्रोणके छोड़े हुए भयङ्कर बाण रथी, घुड़सवार, हाथी घोड़े, और पैदलोंका संहार

अश्मवर्षमिवावर्षत् परेषामावहद्भयम् ॥ ५ ॥ विचरन् स तदा राजन् सेनां सङ्क्षोभयन् प्रभुः । वर्द्धयामास सन्त्रासं शात्रवाणाममानुषम् ॥६॥ तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् । भ्रमद्रथाम्बुदे चास्मिन् दृश्यते स्म पुन पुनः ॥ ७ ॥ स वीरः सत्यवान् प्राज्ञो धर्मनित्यः सदा पुनः । युगान्तकालवद् घोरां रौद्रां प्रावर्त्तयन्नदीम् ॥ ८ ॥ अमर्षवेगप्रभवां क्रव्यादगणसङ्कुलाम् । बलौघैः सर्वतः पूर्णां ध्वजवृक्षापहारिणीम् ॥ ९ ॥ शोणितोदां रथावर्त्तां हस्त्यश्वकृतरोधसम् । कवचोडुपसंयुक्तां मांसपङ्कसमाकुलाम् ॥ १० ॥ मेदामज्जास्थिसिकतामुष्णीषचयफेनिलाम् । संग्रामजलदापूर्णां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ॥ ११ ॥ नरनागाश्वकलिलां शरवेगौघवाहिनीम् । शरीरदारुसंघट्टां रथकच्छपसङ्कु-

करनेलगे ॥ ४ ॥ ग्रीष्मके अनन्तर घिराहुआ और गर्जता हुआ मेघ जैसे ओलोंको वर्षाता है तैसे ही द्रोणाचार्य बाणोंकी वर्षा से शत्रुओंको भयभीत करने लगे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! उस समय रणमें घूमते हुए द्रोणाचार्यने शत्रुकी सेनामें खलबली डालकर उनको अतीव त्रस्त करदिया ॥ ६ ॥ सुवर्णसे मढा हुआ उनका धनुष मेघोंमें बिजलीकी समान, रथरूप घनघटामें घूमता हुआ बार २ दीखनेलगा ॥ ७ ॥ सत्यवादी धर्मनिष्ठ, बुद्धिमान् और वीर द्रोणाचार्यने लडते २ प्रलयकालकी भयङ्कर नदीकी समान (रक्तकी) घोर नदी बहादी ॥ ८ ॥ यह नदी क्रोधके वेगसे उत्पन्न हुई, राक्षसोंसे भरीहुई, चारों ओर सेनाओंके पडावोंसे पूर्ण रक्तके जलवाली, ध्वजारूप वृक्षोंको उखाडने वाली, रथों के भवँर वाली, हाथी और घोड़ेरूप किनारोंवाली, कवचरूप नौकावाली, मांसरूप कीचवाली, मज्जा मेदा और हड्डियोंकी रेतीवाली, पगडियोंके समूहरूप झागवाली, संग्रामरूपी मेघसे छल २ करती हुई, प्रासरूपी मत्स्योंसे भरपूर, मनुष्य हाथी, और घोड़ेरूप, सिवारवाली, बाणोंके वेगरूप प्रवाहसे बहने वाली,

लाम् १२ उत्तमांगैः पंकजिनीं निस्त्रिंशझषसंकुलाम् । रथनाग-
ह्रदोपेतां नानाभरणभूषिताम् ॥ १३ ॥ महारथशतावर्त्तां भूमिरे-
णूर्मिमालिनीम्।महावीर्यवतां संख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् १४ शरीर-
शतसम्बाधां कंकगृध्रनिषेविताम् । महारथसहस्राणि नयन्तीं यमसा-
दनम् ॥ १५ ॥ शूलव्यालसमाकीर्णां प्राणिवाजिनिषेविताम् ।
छिन्नछत्रमहाहंसां मुकुटाण्डजसेविताम् ॥ १६ ॥ चक्रकूर्माङ्गदा-
नक्रां शरक्षुद्रझषाकुलाम् । बकगृध्रसृगालानां घोरसङ्घैर्निषे-
विताम् ॥ १७ निहतान् प्राणिनः संख्ये द्रोणेन बलिना रणे ।
वहन्तीं पितृलोकाय शतशो राजसत्तम ॥१८॥ शरीरशतसम्बाधां
केशशैवलशाद्वलाम् । नदीं प्रावर्त्तयद्राजन् भीरूणां भयवर्द्धनीम् १९
तज्जयन्तमनीकानि तानि तानि महारथः ।सर्वतोभ्यद्रवन्द्रोणं युधि-

---

शरीररूपी लकडियोंके समूहवाली,रथरूपी कछुओंसे संकुल,मस्तकरूपी कमलिनी वाली,तलवारोंरूपी नाकोंसे भयङ्कर,रथ और हाथीरूप ह्रदवाली,बहुतसे आभूषणोंसे विभूषित, महारथीरूप सैंकडों भँवरोंवाली, पृथ्वीकी धूलरूप तरंगोंवाली, युद्धमें महाबलवानोंसे सहजमें और डरपोकोंसे कठिनसे तरने योग्य, सैंकडों शरीरसे डटी, गिद्ध और कौओंसे सेवित, सहस्रों महारथियोंको यमराजके घर लेजाती हुई, भालेरूप सर्पोंसे ढकीहुई प्राणिरूप पक्षियोंसे सेवित टूटे छत्ररूप बड़े २ हंसोंवाली, मुकुटरूप पक्षियोंसे सेवित पहियेरूप कछुओंवाली और बाजूबन्दरूप नाकोंवाली, बाणोंरूप मछलियोंसे भरी, बगले गिद्ध और गीदडके भयंकर समूहोंसे सेवित, हे राजन्! बलवान् द्रोणके हाथसे युद्धमें मारेगये असंख्य प्राणियोंको पितृलोकको लेजानेवाली और सैंकडों शवोंसे व्याप्त थी हे राजन्! डरपोकोंके भयको बढानेवाली ऐसी रुधिरकी नदी द्रोणाचार्यने रणभूमिमें बहायी थी ॥ ९-१९ ॥ शत्रुकी सेनाओंका तिरस्कार करनेवाले महारथी द्रोणाचार्यके ऊपर युधिष्ठिर

ष्ठिरपुरोगमाः॥२०॥तानभिद्रवतःशूरान् तावका दृढविक्रमाः। सर्वतः प्रत्यगृह्णन्त तद्भूल्लोमहर्षणम् ॥२१॥मायस्तु शकुनिः सहदेवं समाद्रवत् । सनियन्तृध्वजरथं विव्याध निशितैः शरैः २२तस्य माद्रीसुतः केतुं धनुः सूतं हयानपि । नातिक्रुद्धः शरैश्छित्वा षष्ट्या विव्याध सौबलम्॥२३॥सौबलस्तु गदां गृह्य प्रचस्कन्द रथोत्तमात् । स तस्य गदया राजन् रथात् सूतमपातयत् ॥ २४ ॥ ततस्तौ विरथौ राजन् गदाहस्तौ महाबलौ । चिक्रीडतू रणे शूरौ सशृङ्गाविव पर्वतौ २५ द्रोणः पांचालराजानं विध्वा दशभिराशुगैः। बहुभिस्तेन चाभ्यस्तस्तं विव्याध ततोऽधिकैः ॥ २६ ॥ विविंशतिं भीमसेनो विंशत्या निशितैः शरैः । विध्वा नाकम्पयद्वीरस्तदद्भुतमिवाभवत् २७ विविंशतिस्तु सहसा व्यश्वकेतुशरासनम् । भीमं चक्रे महाराज ततः

आदि चारों ओरसे टूट पड़े ॥ २० ॥ परन्तु दृढ पराक्रमी तुम्हारे योधाओंने चढकर आयेहुए उन योधाओंको चारों ओरसे घेर लिया, वह युद्ध रोमांच खड़े करने वाला हुआ था ॥ २१ ॥ कपटोंका ज्ञाता शकुनि सहदेव पर झपटा और उसको सारथी, ध्वजा और रथसहित बाणोंसे बींधडाला २२ माद्रीनन्दन सहदेवने अधिक क्रोध न करके उसके धनुष, सारथी ध्वजा और उसको भी साठ बाणोंसे बींधडाला २३ तब शकुनि गदा लेकर श्रेष्ठ रथपरसे कूदपड़ा हे राजन् ! उसने गदासे उसके सारथीको रथपरसे गिरादिया ॥ २४ ॥ तदनन्तर रथहीन हुए वे दोनों महाबली गदाधारी योद्धा रणमें खड़े होकर शिखरवाले दो पर्वतोंकी समान लडने लगे ॥ २५ ॥ द्रोणने द्रुपदके दश बाण मारे फिर द्रुपदने द्रोणके बहुतसे बाण मारे, फिर द्रोणनें द्रुपदके उससे भी अधिक बाण मारे ॥ २६ ॥ भीमसेनने विविंशतिके बीस तेज बाण मारे, परन्तु यह अचरजसा हुआ कि—वह वीर उससे कांपा तक नहीं२७हे राजन्!विविंशतिने एकाएकी बाणोंसे भीमसेनको,

सैन्यान्यपूजयन् ॥ २८ ॥ स तं न ममृषे वीरः शत्रोर्विक्रममाहवे । ततोस्य गदया दान्तान् हयान् सर्वानपातयत् ॥ २९ ॥ हताश्वात् स रथाद्राजन् गृह्य चर्म महाबलः । अभ्ययाद्भीमसेनन्तु मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ३० ॥ शल्यस्तु नकुलं वीरः स्वस्रीयं प्रियमात्मनः । विव्याधं प्रहसन् बाणैर्लालयन् कोपयन्निव ॥ ३१ ॥ तस्याश्वानातपत्रं च ध्वजं सूतमथो धनुः । निपात्य नकुलः संख्ये शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ ३२ ॥ धृष्टकेतुः कृपेणास्तान् छित्वा बहुविधाञ्छरान् । कृपं विव्याध सप्तत्या लक्ष्म चास्याहरत्त्रिभिः ॥ ३३ ॥ तं कृपः शरवर्षेण महता समवारयत । विव्याध च रणे विप्रो धृष्टकेतुममर्षणम् ॥ ३४ ॥ सात्यकिः कृतवर्माणं नाराचेन स्तनान्तरे।

घोड़े, रथ और धनुषसे हीनकर दिया, यह देखकर सेनाएं धन्य२ कहने लगीं२८युद्धमें शत्रुका यह पराक्रम भीमसे सहा नहीं गया, इस कारण उसने गदासे उसके सब शिक्षित घोड़ोंको गिरा दिया ॥२९॥ हे राजन् ! मरे हुए घोड़ों वाले रथमेंसे कूदकर वह महाबली विविंशति ढाल लेकर, मतवाला हाथी जैसे मतवाले हाथीको मारनेके लिये जाता हो तैसेही भीमसेनके ऊपरको दौड़ा ॥ ३० ॥ वीरे शल्यने भी अपने प्यारे भाञ्जे नकुलको जैसे लाड़ करता हो इसप्रकार हँसते२ बाणोंसे बींधना आरम्भ कर दिया ॥ ३१ ॥ प्रतापी नकुलने शल्यके छत्र धनुष, घोड़े ध्वजा, सूत और धनुषको काटकर युद्धमें शंख बजाया ॥ ३२ ॥ धृष्टकेतुने कृपाचार्यके छोड़े हुए अनेकों प्रकारके बाणोंको काटकर सत्तर बाणोंसे कृपाचार्यको बींध दिया और तीन बाणोंसे उनकी ध्वजाके चिन्हको काट डाला ॥ ३३ ॥ ब्राह्मण कृपाचार्यने भी क्रोधी धृष्टकेतुको बाणोंकी वर्षा करके हटाया और रणमें उसको बाणोंसे बींध डाला ॥ ३४ ॥ सात्यकिने कृतवर्माकी छातीमें बाण मारे, फिर हँसते हुए दूसरे सत्तर बाणोंसे बींध

विध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैः स्मयन्निव ॥ ३५ ॥ तं भोजः सप्तसप्तत्या विध्वाशु निशितैः शरैः । नाकम्पयत शैनेयं शीघ्रो वायुरिवाचलम् ॥ ३६ ॥ सेनापतिः सुशर्माणं भृशं मर्मस्वताडयत् स चापि तं तोमरेण जत्रुदेशेऽभ्यताडयत् ॥ २७ ॥ वैकर्त्तनन्तु समरे विराटः प्रत्यवारयत् । सह मत्स्यैर्महावीर्य्यैस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३८ ॥ तत् पौरुषमभूत्तत्र सूतपुत्रस्य दारुणम् । यत् सैन्यं वारयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३९ ॥ द्रुपदस्तु स्वयं राजा भगदत्तेन सङ्गतः । तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाभवत् ॥ ४० ॥ भगदत्तस्तु राजानं द्रुपदं नतपर्वभिः । सनियन्तृध्वजरथं विव्याध पुरुषर्षभः ॥४१ ॥ द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो भगदत्तं महारथम् । आजघानोरसि क्षिप्रं शरेणानतपर्वणा ॥ ४२ ॥ युद्धं योधवरौ लोके

दिया ॥ ३५ ॥ भोजराजने शीघ्रताके साथ हाथ चलाकर सत्तर वाणोंसे सात्यकीको वींधडाला, परन्तु उन वाणोंसे जैसे वेगवान् वायुसे पर्वत नहीं हिलता, तैसे सात्यकि हिला तक नहीं ॥ ३६ ॥ द्रोणने सुशर्माके मर्मस्थानोंमें वड़ी पीड़ा पहुँचाई, तव सुशर्माने भी सेनापतिकी हँसलीमें तोमर मारा ॥ ३७ ॥ महावीर मत्स्यदेशवासियोंको साथमें लेकर द्रुपदराजने कर्णके ऊपर धावा किया उस समय अचरजभरा युद्ध हुआ ॥ ३८ ॥ सूतपुत्रने नमीहुई गांठोंवाले वाण मार पुरुषार्थ करके विराटकी सेनाको रोककर दारुण कर्म किया ॥ ३९ ॥ राजा द्रुपद भगदत्तसे भिड़गया हे महाराज ! उनका युद्ध भी आश्चर्यजनक हुआ ॥ ४० ॥ पुरुषश्रेष्ठ भगदत्तने नमीहुई गाँठोंवाले वाणोंसे सारथी, ध्वजा, और रथसहित राजा द्रुपदको वींधदिया ॥ ४१ ॥ तव द्रुपदने क्रोधमें भरकर शीघ्रतासे महारथी भगदत्तकी छातीमें नमीहुई गांठ वाला वाणमारा ॥ ४२ ॥ दूसरी ओर अस्त्रविद्यामें चतुर, संसारके योधाओंमें श्रेष्ठसोमदत्तका पुत्र शिखण्डी, प्राणियोंको त्रास

सौमदत्तिशिखंडिनौ। भूतानां त्रासजननं चक्रातेऽस्त्रविशारदौ ४३ भूरिश्रवा रणे राजन् याज्ञसेनिं महारथम्। महता सायकौघेनच्छादयामास वीर्यवान् ॥ ४४ ॥ शिखण्डी तु ततः क्रुद्धः सौमदत्तिं विशाम्पते। नवत्या सायकानान्तु कम्पयामास भारत ४५ राक्षसौ रौद्रकर्माणौ हैडिम्बालम्बुषावुभौ। चक्रातेऽत्यद्भुतं युद्धं परस्परजयैषिणौ ॥ ४६ ॥ मायाशतसृजौ दृप्तौ मायाभिरितरेतरम्। अन्तर्हितौ चेरतुस्तौ भृशं विस्मयकारिणौ ॥ ४७ ॥ चेकितानानुविन्देन युयुधे चातिभैरवं। यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ ॥ ४८ ॥ लक्ष्मणः क्षत्रदेवेन विमर्दमकरोद् भृशम्। यथा विष्णुः पुरा राजन् हिरण्याक्षेण संयुगे ॥ ४९ ॥ ततः प्रचलिताश्वेन विधिवत् कल्पितेन च। रथेनाभ्यपतद्राजन् सौभद्रं पौरवो नदन् ॥ ५० ॥ ततोभ्ययात् स त्वरितो युद्धाकांक्षी महा-

देनेवाला युद्ध करनेलगा ॥ ४३ ॥ हे राजन्! बलवान् भूरिश्रवाने युद्धमें महारथी धृष्टद्युम्नको बडेभारी बाणजालसे ढकदिया ।४४। हे राजन्! क्रोधमें भरेहुए द्रुपदपुत्र शिखण्डीने नब्बै बाणोंसे सोमदत्तके पुत्रको कँपादिया ॥ ४५ ॥ आपसमें एक दूसरेको जीतना चाहनेवाले भयंकर पराक्रमी दोनों राक्षस घटोत्कच और अलम्बुष अद्भुत युद्ध करने लगे ॥ ४६ ॥ वे दोनों योधा सैकड़ों मायाओंको रचनेवाले और अहंकारी थे, वे दोनों अतीव आश्चर्य उपजातेहुए अन्तर्धान होकर युद्ध करने लगे ॥ ४७ ॥ जैसे देवासुरसंग्राममें बल और महाबली इन्द्र लडे थे इसीप्रकार चेकितानने अनुविन्दके साथ भयंकर युद्ध किया ४८ जैसे पहिले हिरण्याक्ष और विष्णुका युद्ध हुआ था तैसे लक्ष्मण और क्षत्रदेवका भारी युद्ध होनेलगा ॥ ४९ ॥ पौरवराज, गर्जना करताहुआ विधिपूर्वक तयार कियेहुए और जुतेहुए घोड़ोंवाले रथमें बैठकर अभिमन्युकेऊपर चढआया ॥ ५० ॥ युद्ध चाहनेवाला

बलः । तेन चक्रे महद्युद्धमभिमन्युररिन्दमः ॥ ५१ ॥ पौरवस्त्वथ सौभद्रं शरव्रातैरवाकिरत् । तस्यार्जुनिर्ध्वजं छत्रं धनुश्चोर्व्यामपातयत् ॥५२॥ सौभद्रः पौरवं त्वन्यैर्विध्वा सप्तभिराशुगैः । पंचभिस्तस्य विव्याध हयान् सूतञ्च सायकैः ॥५३॥ ततः प्रहर्षयन् सेनां सिंहवद्विनदन्मुहुः । समादत्तार्जुनिस्तूर्णं पौरवान्तकरं शरम् ५४ तं तु सन्धितमाज्ञाय सायकं घोरदर्शनम् । द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यश्चिच्छेद सशरं धनुः ॥५५॥ तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा । उद्बबर्ह सितं खड्गमाददानः शरावरम् ॥ ५६ ॥ स तेनानेकतारेण चर्मणा कृतहस्तवत् । भ्रान्तासिना चरन्मार्गान् दर्शयन् वीर्यमात्मनः ॥ ५७ ॥ भ्रामितं पुनरुद्भ्रान्तमाधूतं पुनरुत्थितम् ।

महाबली पौरव शीघ्रतासे अभिमन्युकी ओरको बढ़ा यह देखकर शत्रुतापन अभिमन्युने उसके साथ बड़ा भयंकर युद्ध किया॥५१॥ इसके बाद पौरवने अभिमन्युको बाणोंकी वर्षासे ढकदिया, तब सुभद्रानन्दनने उसके धनुष, ध्वजा और छत्रको काटकर पृथिवीमें गिरादिया ॥ ५२ ॥ अभिमन्युने और सात बाण मारकर पौरवको बींध दिया तथा फिर पाँच बाण मारकर उसके सूत और घोड़ोंको घायल करदिया ५३ तदनन्तर बारम्बार गर्जना कर अपनी सेनाको हर्षातेहुए अभिमन्युने शीघ्रही पौरवका अन्त करनेवाला बाण उठाया ॥ ५४ ॥ उस देखनेमें भयावने बाणको चढायाहुआ देखकर हार्दिक्यने दो बाणोंसे उसके बाणसहित धनुषको काटडाला ५५ तब शत्रु वीरोंके कालरूप सुभद्रानन्दनने कटेहुए धनुषको फेंककर चमकतीहुई तलवार म्यानमेंसे खैंचली और दूसरे हाथमें ढाल लेली ॥ ५६ ॥ इसप्रकार अनेकों फुल्लियोंवाली ढाल और तलवार हाथमें लेकरही फुरतीले हाथसे ढाल तलवारको घुमातेहुए अभिमन्युने अपना पराक्रम दिखाया ॥ ५७ ॥ हे राजन्! उस समय अभिमन्युकी घुमाईहुई, फिर उठाईहुई झनझनातीहुई

चर्मनिस्त्रिंशयो राजन् निर्विशेषमदृश्यत ॥५८॥ स पौरवरथस्येषामाप्लुत्य सहसा नदन्। पौरवं रथमास्थाय केशपक्षे परामृशत् ५९ जघानास्य पदा सूतमसिनापातयद् ध्वजम्। विक्षोभ्याम्भोनिधिं तार्क्ष्यस्तन्नागमिव चाक्षिपत् ॥ ६० ॥ तमाकलितकेशान्तं ददृशुः सर्वपार्थिवाः। उक्षाणमिव सिंहेन पात्यमानमचेतसम् ॥ ६१ ॥ तमार्जुनिवशं प्राप्तं कृष्यमाणमनाथवत्। पौरवं पातितं दृष्ट्वा नामृष्यत जयद्रथः ॥ ६२ ॥ स बर्हिबर्हावततं किङ्किणीशतजालवत्। चर्म चादाय खड्गञ्च नदन् पर्यपतद्रथात् ॥ ६३ ॥ ततः सैन्धवमालोक्य कार्ष्णिरुत्सृज्य पौरवम्। उत्पपात रथात्तूर्णं श्येनवन्निपपात च ॥ ६४ ॥ प्रासपट्टिशनिस्त्रिंशाञ्छत्रुभिः सम्प्रचोदितान्।

और लपकाई हुई ढाल तथा तलवार दोनों एकाकार दीखती थीं ॥ ५८ ॥ अभिमन्यु गर्जकर एकसाथ पौरवके रथके जुएपर कूद पड़ा और तहाँ खड़े होकर उसके बालोंको पकड़ लिया ५९ और लात मारकर उसके सारथीको ढकेल दिया तथा तलवारसे ध्वजाको काटडाला, जैसे गरुड समुद्रको खलभला देता है इसी प्रकार सेनादलको खलभलाकर सर्पकी समान पौरवको घसीट लिया ६० जैसे अचेत बैलको सिंह पटक देता है, इसीप्रकार अभिमन्युने सब राजाओंके सामने पौरवको चोटी पकड़कर पटक दिया ॥ ६१ ॥ इसप्रकार अभिमन्युके वशमें आकर अनाथकी समान पौरवको घसिटतेहुए देखकर जयद्रथसे सहा नहीं गया ६२ वह मोरके पंखोंसे ढकी और सैंकड़ों घुँघरू लगीहुई ढाल और तलवारको लेकर गर्जना करताहुआ रथपरसे कूदपड़ा ॥ ६३ ॥ जयद्रथको आतेहुए देखकर अभिमन्युने पौरवको छोडदिया और रथमेंसे बाजकी समान उछलकर भूमिपर आकूदा ॥६४॥ इतनेमें शत्रुने अभिमन्युके ऊपर प्रास पट्टिश और तलवार आदिकी बौछार करडाली, उसको अभिमन्युने तलवारसे काटडाला और

चिच्छेद चासिना कार्ष्णिश्चर्मणा संरुरोध च ॥ ६५ ॥ स दर्शयित्वा सैन्यानां स्वबाहुबलमात्मनः । तमुद्यम्य महाखड्गं चर्म चाथ पुनर्बली ॥ ६६ ॥ वृद्धक्षत्रस्य दायादं पितुरत्यन्तवैरिणम् । ससाराभिमुखः शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ६७ ॥ तौ परस्परमासाद्य खड्गदन्तनखायुधौ । हृष्टवत् संप्रजहाते व्याघ्रकेसरिणाविव ॥ ६८ ॥ सम्पातेष्वभिघातेषु निपातेष्वसिचर्मणोः । न तयोरन्तरं कश्चिद्ददर्श नरसिंहयोः ॥ ६९ ॥ अवक्षेपोसिनिर्ह्रादः शस्त्रान्तरनिदर्शनम् । बाह्यान्तरनिपातश्च निर्विशेषमदृश्यत ७० बाह्यमभ्यन्तरञ्चैव चरन्तौ मार्गमुत्तमम् । ददृशाते महात्मानौ सपक्षाविव पर्वतौ ॥ ततो विक्षिपतः खड्गं सौभद्रस्य यशस्विनः । शरावरणपक्षान्ते प्रजहार जयद्रथः ॥७२॥ रुक्मपक्षान्तरे सक्तस्त-

कुक्षको ढालसे रोकलिया ॥६५॥ महाबली अभिमन्युने इसप्रकार अपने भुजबलका सेनादलको परिचय दे तलवार और ढालको हाथमें उठाया था ॥६६॥ और जैसे हाथीके सामने सिंह झपटता हो तैसे, पिताके बड़ेभारी वैरी जयद्रथके सामनेको झपटा ।६७। दाँत और नखरूप आयुधवाले बाघ और केसरी जैसे आपसमें युद्ध करते हों तैसेही वे दोनों योधा हर्षमें भरकर बड़ेही वेगसे आपसमें तलवारके प्रहार करनेलगे ॥ ६८ ॥ उन पुरुषसिंहोंका तलवार और गदाको उठातेमें प्रहार करतेमें और नीचेको झुकातेमें किसीने जराभी अन्तर नहीं देखा ॥ ६९ ॥ उन दोनोंका नीचेको गिरना, तलवार फेंकनेकी ध्वनि, शस्त्रोंका अवकाशदान और शस्त्रोंका भीतर बाहरके प्रदेशोंमें गिरना एकसा था७० वे दोनों महात्मा, युद्धकी सर्वश्रेष्ठरीतिसे भीतर और बाहर घूमतेहुए परवाले पर्वतसे दीखते थे ॥ ७१ ॥ तदनन्तर यशस्वी अभिमन्युके तलवारका प्रहार करनेके लिये समीपमें आने पर जयद्रथने ढाल पर तलवार मारी ॥ ७२ ॥ सिंधुराजके जोरसे

स्मिश्चर्मणि भास्वरे । सिन्धुराजबलोद्धूतः सोभज्यत महानसिः ७३ भग्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट् । अदृश्यत निमेषेण स्वरथं पुनरास्थितः ॥ ७४ ॥ तं कार्ष्णिं समरान्मुक्तमास्थितं रथमुत्तमम् । सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥ ७५ ॥ ततश्चर्म च खड्गञ्च समुत्क्षिप्य महाबलः । ननादार्जुनदायादः प्रेक्षमाणो जयद्रथम् ॥७६॥ सिंधुराजं परित्यज्य सौभद्रः परवीरहा । तापयामास तत्सैन्यं भुवनं भास्करो यथा ॥ ७७ ॥ तस्य सर्वायसीं शक्तिं शल्यः कनकभूषणाम् । चिक्षेप समरे घोरां दीप्तामग्निशिखामिव ॥ ७८ ॥ तामवप्लुत्य जग्राह विकोशं चाकरोदसिम् । वैनतेयो यथा कार्ष्णिः पतन्तमुरगोत्तमम् ॥ ७९ ॥ तस्य लाघवमाज्ञाय सत्त्वञ्चामिततेजसः । सहिताः सर्वराजानः सिंहनादमथानदन् ॥ ८० ॥ ततस्तामेव शल्यस्य सौभद्रः परवीरहा ।

प्रहार करनेके कारण वह तलवार सोनेकी पत्तरसे मढीहुई और चमकीली ढालमें उलझकर टूटगयी ॥ ७३ ॥ अपनी तलवारको टूटीहुई देखकर वह क्षणभरमें छः पग पीछेको कूदकर अपने रथमें बैठाहुआ दीखा ॥ ७४ ॥ इसप्रकार युद्धसे थोडासा अवकाश मिलते ही अभिमन्युभी अपने रथ पर चढ़गया, यह देखकर कौरवपक्षके सब राजाओंने उसको घेरलिया ॥ ७५ ॥ तदनन्तर महाबली अभिमन्यु जयद्रथकी ओरको घूरताहुआ तलवार और ढालको हाथमें उठा गर्जना करने लगा ७६ शत्रुनाशी अभिमन्युने जयद्रथको छोड़कर जैसे सूर्य संसारको तपाता है तैसे ही शत्रुओंकी सेनाओंको तपाना आरम्भ करदिया ॥७७ ॥ इतनेमें ही शल्यने प्रज्वलित अग्निशिखाकी समान सुवर्णके घण्टोंवाली शुद्ध लोहेकी शक्तिको अभिमन्युके ऊपर फेंका ॥७८॥ जैसे गरुड़ उड़ते हुए सर्पको पकड़ लेता है तैसे ही अभिमन्युने उस शक्तिको उछलकर पकड़लिया और म्यानमेंसे तलवार निकाल ली ॥७९॥ अभिमन्युकी फुर्ती और बलको देखकर सब राजाओंने सिंहकी

मुमोच भुजवीर्येण वैदूर्यविकृतांशिताम् ८१ सा तस्य रथमासाद्य निर्मुक्तभुजगोपमा । सूतं जघान शल्यस्य रथाच्चैनमपातयत् ८२ ततो विराटद्रुपदौ धृष्टकेतुर्युधिष्ठिरः । सात्यकिः केकया भीमो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ८३॥ यमौ च द्रौपदेयाश्च साधु साध्विति चुक्रुशुः । बाणशब्दाश्च विविधा सिंहनादाश्च पुष्कलाः ॥८४॥ प्रादुरासन् हर्षयन्तः सौभद्रमपलायिनम् । तन्नामृष्यन्त पुत्रास्ते शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ ८५ ॥ अथैनं सहसा सर्वे समन्तान्निशितैः शरैः । अभ्याकिरन् महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥८६॥ तेषां च प्रियमन्विच्छन् सूतस्य च पराभवम् । आर्त्तायनिरमित्रघ्नः क्रुद्धः सौभद्रमभ्ययात् ॥ ८७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अभिमन्यु-पराक्रमे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

समान गर्जना की ॥ ८० ॥ शत्रुनाशी अभिमन्युने उस ही वैदूर्यसे भूषित शक्तिको भुजबलसे शल्यके ऊपर फेंका ॥ ८१ ॥ बिना कैंचलीके सर्पकी समान उस शक्तिने रथमें पहुँच कर शल्यके सारथीको मार उसको रथपरसे नीचे लुढ़कादिया ॥ ८२ ॥ यह देखकर राजा विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, युधिष्ठिर, सात्यकी, पाँच केकय भाई, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, शिखण्डी, नकुल, सहदेव और द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंने साधु२ शब्दोंसे आकाशको भरदिया और युद्धमें न भागनेवाले अभिमन्युको हर्षित करतेहुए बहुतसे सिंहनाद और बाणोंके शब्द किये, तुम्हारे पुत्र, शत्रुकी उन गर्जनाओंको शत्रुकी विजयरूप मानकर सह न सके ॥ ८३—८५ ॥ परन्तु हे महाराज! जैसे पर्वत पर मेघ जलकी वर्षा करते हैं उसीप्रकार सब कौरवोंने इकट्ठे होकर इसके ऊपर चारोंओरसे बाण बरसाने आरंभ करदिये ॥८६॥ शत्रुहन्ता शल्य कौरवोंका प्रिय करनेकी इच्छासे और अपने सारथिके अपमानका ध्यान करके क्रोधमें भराहुआ अभिमन्युके सामने लड़नेको आया ८७ चौदहवाँ अध्याय समाप्त

धृतराष्ट्र उवाच । बहूनि सुविचित्राणि द्वन्द्वयुद्धानि सञ्जय । त्वयोक्तानि निशम्याहं स्पृहयामि सचक्षुषाम् ॥ १ ॥ आश्चर्यभूतं लोकेषु कथयिष्यन्ति मानवाः । कुरूणां पाण्डवानाञ्च युद्धं देवासुरोपमम् ॥ २ ॥ न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतो युद्धमुत्तमम् । तस्मादार्त्तायनेर्युद्धं सौभद्रस्य च शंस मे ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच । सादितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम् । समुत्क्षिप्य नदन् क्रुद्धः प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥ ४ ॥ तं दीप्तमिव कालाग्निं दण्डहस्तमिवान्तकम् । जवेनाभ्यपतद्भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ५ सौभद्रोऽप्यशनिप्रख्यां प्रगृह्य महतीं गदाम् । एह्येहीत्यब्रवीच्छल्यं यत्नाद्भीमेन वारितः ६ वारयित्वा तु सौभद्रं भीमसेनः प्रतापवान् । शल्यमासाद्य समरे तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥७॥ तथैव मद्रराजोपि भीमं

धृतराष्ट्रने कहा कि—हे सञ्जय ! तेरे कहेहुए बहुतसे विचित्र युद्धोंको सुनकर मैं सपाखोंको भाग्यवान् मानता हूँ, कि—वे अपने नेत्रोंसे युद्धोंको देखते होंगे ? ॥ १ ॥ मनुष्य देवासुरसंग्रामकी समान कौरवों और पाण्डवोंके संग्रामको संसारमें अचरजके साथ कहेंगे ॥ २ ॥ इस श्रेष्ठ युद्धको सुनते२ मेरा मन नहीं भरता, अतः सुभद्रानन्दन अभिमन्यु और आर्त्तायनके पुत्र शल्यके युद्धको मुझे सुना ॥ ३ ॥ सञ्जयने कहा कि—अपने सारथीको मराहुआ देख, शल्यने क्रोधमें भरकर लोहेकी ठोस गदाको उठाया और अपने बड़े भारी रथ परसे गर्जनाके साथ कूद पड़ा ॥४॥ प्रदीप्त कालाग्निकी समान और हाथमें दण्ड लियेहुए यमराजकी समान शल्यको अभिमन्युके सामने झपटता देखकर भीम बड़ीभारी गदा को लेकर शीघ्रतासे तहाँ आपहुँचा ॥ ५ ॥ अभिमन्युभी वज्रकी समान बड़ीभारी गदाको लेकर शल्यको "आओ आओ" कहकर पुकारने लगा, परन्तु भीमसेन उसको रोककर युद्धमें अचल पर्वत की समान, शल्यके सामने जा खड़ा होगया ॥ ६ ॥ ७ ॥ जैसे

दृष्ट्वा महाबलः । ससाराभिमुखस्तूर्णं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥८॥
ततस्तूर्यनिनादाश्च शंखानाञ्च सहस्रशः । सिंहनादाश्च संजज्ञुर्भे-
रीणाञ्च महास्वनाः ॥ ९ ॥ पश्यतां शतशो ह्यासीदन्योन्यमभि-
धावताम् । पाण्डवानां कुरूणाञ्च साधु साध्विति निःस्वनः १०
न हि मद्राधिपादन्यः सर्वराजसु भारत । सोढुमुत्सहते वेगं भीम-
सेनस्य संयुगे ॥ ११ ॥ तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः ।
सोढुं सहते लोके युधि कोऽन्यो वृकोदरात् ॥ १२ ॥ पट्टैर्जाम्बूनदै-
र्बद्धा बभूव जनहर्षिणी । प्रजज्वाल तदा विद्धा भीमेन महती गदा १३
तथैव चरतो मार्गान् मण्डलानि च सर्वशः । महाविद्युत्प्रतीकाशा
शल्यस्य शुशुभे गदा ॥ १४ ॥ तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि
विचेरतुः । आवर्तितगदाशृङ्गावुभौ शल्यवृकोदरौ ॥ १५ ॥ मण्ड-

हाथीको देखकर सिंह झपटता है तैसेही महाबली भीमसेनको
देखकर शल्यभी शीघ्रतासे उसके सामने जाकर डटगया ॥ ८ ॥
तदनन्तर तुरही और सैंकड़ों शंखोंके शब्द, सिंहनाद और भेरि-
योंकी महाध्वनि होनेलगी ॥ ९ ॥ युद्ध देखनेवाले और एक दूसरे
के ऊपर आक्रमण करनेवाले कौरव तथा पाण्डवपक्षके सैंकड़ों
राजे साधु२कहकर गर्जना करनेलगे ॥ १० ॥ हे भारत ! सब
राजाओंमें एक मद्रराजको छोड़कर भीमसेनके वेगको सहनेवाला
दूसरा कोई नहीं है ॥ ११ ॥ तथा युद्धमें महात्मा मद्रराज शल्य
की गदाके वेगको भी लोकमें भीमसेनके सिवाय दूसरा कौन सह
सकता है ? ॥ १२ ॥ सुनहरी वस्त्रोंसे बँधीहुई मनुष्योंको हर्षित
करनेवाली शल्यकी बड़ीभारी गदाको मण्डलाकारसे विचित्र
मार्गोंमें फिरनेवाले भीमसेनने तोड़डाला, मण्डलाकारसे घूमतीहुई
गदारूपी सींगवाले शल्य और भीमसेन, दो बैलोंकी समान युद्ध
करतेहुए गर्जना करते हुए, मण्डलाकारसे फिररहे थे, और वे
दोनों पुरुष मण्डलाकारसे गदाको घुमाते२ युद्धकररहे थे, उन

लावर्त्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च । निर्विशेषमभूद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ १६ ॥ ताडिता भीसेनेन शल्यस्य महती गदा । साग्निज्वाला महारौद्रा तदा तूर्णमशीर्यत ॥ १७ ॥ तथैव भीमसेनस्य द्विषताभिहता गदा । वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृतो वृक्ष इवाबभौ ॥१८॥ गदा क्षिप्ता तु समरे मद्रराजेन भारत । व्योम दीपयमाना सा ससृजे पावकं मुहुः १९ तथैव भीमसेनेन द्विषते प्रेषिता गदा । तापयामास तत्सैन्यं महोल्का पतती यथा ॥ २० ॥ ते गदे गदिनां श्रेष्ठे समासाद्य परस्परम् । श्वसन्त्यौ नागकन्येव ससृजाते विभावसुम् ॥ २१ ॥ नखैरिव महाव्याघ्रौ दन्तैरिव महागजौ । तौ विचेरतुरासाद्य गदाग्र्याभ्यां परस्परम् ॥ २२ ॥ ततो गदाग्राभिहतौ क्षणेन रुधिरोक्षितौ । ददृशाते महात्मानौ किंशुकाविव

दोनोंका युद्ध समानरीतिसे होरहा था, उन दोनोंमें कोई चढा वा उतरा हुआ नहीं मालूम होता था ॥ १३–१६ ॥ शल्यकी अग्निकी समान प्रज्वलित महाभयंकर और बड़ीभारी गदाके भीमसेनने टुकडे२ करडाले ॥ १७ ॥ इसीप्रकार शल्यके हाथसे टूटीहुई भीमसेनकी गदा, वर्षाकालमें सायंकालके समय पटबीजनोंसे घिरेहुए वृक्षकी समान शोभा पानेलगी ॥ १८ ॥ हे भारत ! शल्यके द्वारा वारम्वार फेंकीहुई गदाने अग्निको उत्पन्न करके आकाशको प्रकाशित करदिया ॥ १९ ॥ तथा भीमसेनके द्वारा शत्रुके ऊपर फेंकीहुई गदा, आकाशसे गिरती हुई बड़ी भारी उल्काकी समान, शत्रुकी सेनाको दुःख देनेलगी ॥२०॥ गदाधारियोंमें श्रेष्ठ उन दोनोंकी गदाएँ आपसमें टकराकर श्वासोच्छास करतीहुई नागकन्याओंकी समान अग्निको उगलने लगीं ॥ २१ ॥ जैसे दो सिंह नखोंसे युद्ध करते हों और जैसे दो हाथी दाँतोंसे लड़ते हों तैसेही वे दोनों श्रेष्ठ गदाओंसे लड़ते हुए रणाङ्गणमें घूम रहे थे ॥ २२ ॥ थोड़ी ही देर बाद

पुष्पितौ ॥ २३ ॥ शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः ।
गदाभिघातसंह्रादः शक्राशनिरवोपमः ॥ २४ ॥ गदया मद्रराजेन
सव्यदक्षिणमाहतः । नाकम्पत तदा भीमो भिद्यमान इवाचलः २५
तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो महाबलः । धैर्यान्मद्राधिपस्तस्थौ
वज्रैर्गिरिरिवाहतः ॥ २६ ॥ आपेततुर्महावेगौ समुच्छ्रितगदावुभौ ।
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ २७ ॥ अथाप्लुत्य पदान्यष्टौ
सन्निपत्य गजाविव । सहसा लोहदण्डाभ्यामन्योन्यमभिजघ्नतुः
॥ २८ ॥ तौ परस्परवेगाच्च गदाभ्याञ्च भृशाहतौ । युगपत्
पेततुर्वीरौ क्षिताविन्द्रध्वजाविव ॥ २९ ॥ ततो विह्वलमानं तं
निःश्वसन्तं पुनः पुनः । शल्यमभ्यपतत्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ३०

गदाके अग्रभागसे लोहूलुहान हुए वे दोनों महात्मा, खिले हुए पुष्पोंवाले टेसूके वृक्षोंकी समान दीखनेलगे ॥ २३ ॥ उन दोनों पुरुषसिंहोंकी गदाओंके टकरानेका शब्द इन्द्रके वज्रकी समान सब दिशाओंमें सुनाई आता था ॥ २४ ॥ तदनन्तर शल्यने भीमके दायीं और बायीं ओरसे बहुतसी गदाएं मारीं परन्तु भीमसेन उनसे घायल होकर भी पर्वतकी समान अचल खड़ा रहा ॥ २५ ॥ इसीप्रकार भीमसेनकी गदासे पिटा हुआ मद्रराज धैर्य धारण करके, वज्रासे ताड़े हुए पहाड़की समान अचल डटा रहा ॥ २६ ॥ महावेगवान् वे दोनों कुछ मार्ग देकर और गदाको घुमाकर उठाये हुए एक दूसरेसे जा भिड़े ॥२७॥ तदनन्तर दो हाथियोंकी समान आठ पग पीछेको हटकर फिर पास आने पर वे दोनों एक दूसरेको लोहेकी गदाओंसे मारने लगे ॥ २८ ॥ वे दोनों वीर पुरुष वेगमें भरजानेके कारण बहुत घायल होकर दो इन्द्रध्वजोंकी समान एकसाथ भूमि पर गिरपड़े ॥ २९ ॥ हे महाराज ! उस समय शल्य, गदाके प्रहारसे मूर्छित हो ऊर्ध्वश्वास लेनेलगा, विह्वल होगया और सर्पकी

दृष्ट्वा चैनं महाराज गदयाभिनिपीडितम् । विचेष्टन्तं यथा नागं मूर्च्छयाभिपरिप्लुतम् ॥ ३१ ॥ ततः स्वरथमारोप्य मद्राणामधिपं रणे । अपोवाह रणात्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥ ३२ ॥ क्षीबवद्विह्वलो वीरो निमेषात् पुनरुत्थितः । भीमोपि सुमहाबाहुर्गदापाणिरदृश्यत ॥ ३३ ॥ ततो मद्राधिपं दृष्ट्वा तव पुत्राः परांमुखम् । स नागपत्त्यश्वरथाः समकम्पन्त मारिष ॥ ३४ ॥ ते पाण्डवैरर्द्यमानास्तावका जितकाशिभिः । भीता दिशोन्वपद्यन्त वातनुन्ना घना इव ॥ ३५ ॥ निर्जित्य धार्त्तराष्ट्रांस्तु पाण्डवेया महारथाः । व्यरोचन्त रणे राजन् दीप्यमाना इवाग्नयः ॥ ३६ ॥ सिंहनादान् भृशं चक्रुः शंखान् दध्मुश्च हर्षिताः । भेरीश्च वादयामासुर्मृदङ्गांश्चानकैः सह ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि
शल्यापयाने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

समान तड़फने लगा, यह देख महारथी कृतवर्मा उसके पास आया और उसको अपने रथमें बैठालकर तुरंत ही रणभूमिसे बाहर लेगया ॥ ३०–३२ ॥ महाबाहु भीमसेन भी मदमत्तकी समान थोड़ी देरको विह्वल होगया, परन्तु क्षणभरमें ही फिर उठ बैठा और उसने सबके देखते हुए हाथमें गदा उठाली ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! मद्रराज शल्यको इसप्रकार भागाहुआ देखकर तुम्हारे पुत्र, और उनके हाथी, घोड़े, सवार तथा पैदल काँपने लगे ॥ ३४ ॥ तुम्हारे सैनिक विजयसे शोभायमान पाण्डवोंसे पीड़ित होकर पवनसे छिन्न भिन्न हुए बादलोंकी समान डरकर चारों दिशाओंमेंको भागनेलगे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! रणमें तुम्हारे पुत्रोंको जीतकर पांडवोंके महारथी प्रदीप्त अग्निकी समान दिपने लगे ॥ ३६ ॥ वे हर्षमें भरकर बड़े जोरसे सिंहनाद करने लगे शंखोंको बजाने लगे और नरसिंहे, मृदंग तथा नगाड़ोंको बजाने लगे ॥ ३७ ॥ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

सञ्जय उवाच। तद्बलं सुमहद्दीर्णं त्वदीयं प्रेक्ष्य वीर्यवान्। दधारैको रणे राजन् वृषसेनोऽस्त्रमायया ॥ १ ॥ शरा दश दिशो मुक्ता वृषसेनेन संयुगे। विचेरुस्ते विनिर्भिद्य नरवाजिरथद्विपान् २ तस्य दीप्ता महाबाणा विनिश्चेरुः सहस्रशः। भानोरिव महाराज घर्मकाले मरीचयः ॥ ३ ॥ तेनार्दिता महाराज रथिनः सादिनस्तथा। निपेतुरुर्व्यां सहसा वातभग्ना इव द्रुमाः ॥ ४ ॥ हयौघांश्च रथौघांश्च गजौघांश्च महारथः। अपातयद्रणे राजन् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तमेकं समरे विचरन्तमभीतवत्। सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥ ६ ॥ नाकुलिस्तु शतानीको वृषसेनं समभ्ययात्। विव्याध चैनं दशभिर्नाराचैर्मर्मभेदिभिः ७ तस्य कर्णात्मजश्चापं छित्वा केतुमपातयत्। तं भ्रातरं परीप्सन्तो

सञ्जयने कहा, कि–तुम्हारी बड़ीभारी सेनाको इसप्रकार भागती हुई देखकर अकेले वृषसेनने उसको अस्त्रबलसे रोका।१। युद्धमें वृषसेनके छोड़े हुए बाण, मनुष्य, हाथी, रथ और घोड़ोंको को छेदते हुए दशों दिशाओंमे घूमने लगे ॥ २ ॥ हे महाराज! जैसे ग्रीष्मऋतुमें सूर्यकी किरणें निकलती हैं तैसे ही उसके धनुषमेंसे प्रकाशवान् सहस्रों बाण निकलने लगे ॥ ३ ॥ उस बाणवर्षासे पीड़ित होकर हे महाराज! एकसाथ बहुतसे रथी और पैदल पवनसे तोड़ेहुए वृक्षोंकी समान भूमि पर ढहने लगे ॥ ४ ॥ हे राजन्! इस प्रकार वृषसेन रणभूमिमें सैंकड़ों और हजारों घुड़सवार, रथी और हाथियोंका चूरा करने लगा ॥ ५ ॥ इस प्रकार उसको युद्धमें निर्भयकी समान अकेला विचरता हुआ देखकर पाण्डवपक्षके सब राजाओंने चारों ओर से घेर लिया ॥ ६ ॥ नकुलपुत्र शतानीकने वृषसेनके सामने आकर मर्मभेदी दश बाणोंसे उसको घायल कर दिया ॥ ७ ॥ परन्तु कर्णपुत्र वृषसेनने उसके धनुषको काटकर ध्वजाको भी

द्रौपदेयाः समभ्ययुः ॥८॥ कर्णात्मजं शरव्रातैरदृश्यं चक्रुरञ्जसा । तान्नदन्तोऽभ्यधावन्त द्रोणपुत्रमुखा रथाः ॥ ९ ॥ छादयन्तो महाराज द्रौपदेयान् महारथान् । शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पर्वतान् जलदा इव ॥ १० ॥ तान् पांडवाः प्रत्यगृह्णंस्त्वरिताः पुत्रगृद्धिनः। पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्चोद्यतायुधाः ॥ ११ ॥ तद्युद्धमभवद् घोरं सुमहल्लोमहर्षणम् । त्वदीयैः पाण्डुपुत्राणां देवानामिव दानवैः ॥ १२ ॥ एवं युयुधिरे वीराः संरब्धाः कुरुपांडवाः । परस्परमुदीक्षन्तः परस्परकृतागसः ॥ १३ ॥ तेषां ददृशिरे कोपाद्वपूंष्यमिततेजसाम् । युयुत्सूनामिवाकाशे पतत्रिवरभोगिनाम् ॥ १४ ॥ भीमकर्णकृपद्रोणद्रौणिपार्षतसात्यकैः । बभासे स रणोद्देशः कालसूर्य इवोदितः ॥ १५ ॥ तदासीत् तुमुलं

काटडाला, उसकी रक्षा करनेकी इच्छासे द्रौपदीके पाँचों पुत्र झपट आये और उन्होंने शीघ्रताके साथ कर्णपुत्रको बाणोंके जालसे ढकदिया, यह देख द्रोण आदि रथी गरजतेहुए उनके ऊपर चढ़ आये और जैसे मेघ वर्षासे पर्वतोंको ढकदेते हैं, तैसेही महारथी द्रौपदीके पाँच पुत्रोंको बाणोंसे ढकतेहुए चढ़ आये ८-१० और पुत्रोंकी रक्षा करनेकी इच्छावाले पांडव, पाञ्चाल, कैकय, मत्स्य तथा सृञ्जयोंने उनको घेरलिया ॥ ११ ॥ इस समय तुम्हारे योधाओंमें और पांडवोंमें देवासुरसंग्रामकी समान रोंगटे खड़े करनेवाला युद्ध हुआ ॥ १२ ॥ इसप्रकार एक दूसरेका अपराध करनेवाले, क्रोधमें भरेहुए कौरव और पांडव आपसमें घूरतेहुए युद्ध करनेलगे ॥ १३ ॥ अतितेजस्वी क्रोधमें भरेसे युद्ध करनेकी इच्छावाले उन योधाओंके शरीर आकाशमें युद्ध करतेहुए उड़ने सर्प और गरुड़की समान दीखते थे ॥ १४ ॥ उस समय रणभूमि भी भीम, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न और सात्यकिके कारण, उदय हुए कालसूर्यकी समान प्रतीत होती

युद्धं निघ्नतामितरेतरम् । महावलानां वलिभिर्दानवानां यथा सुरैः ॥ १६ ॥ ततो युधिष्ठिरानीकमुद्धूतार्णवनिःस्वनम् । त्वदीयमवधीत् सैन्यं सम्प्रद्रुतमहारथम् ॥ १७ ॥ तत् प्रभग्नं वलं दृष्ट्वा शत्रुभिर्भृशमर्दितम् । अलं द्रुतेन वः शूरा इति द्रोणोभ्यभाषत१८ ततः शोणहयः क्रुद्धश्चतुर्दन्त-इव द्विपः । प्रविश्य पाण्डवानीकं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥१९॥ तमाविध्यच्छितैर्बाणैः कंकपत्रैर्युधिष्ठिरः । तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा तं द्रुतं समुपाद्रवत् ॥ २० ॥ चक्ररक्षः कुमारस्तु पञ्चालानां यशस्करः । दधार द्रोणमायान्तं वेलेव सरितां पतिम् ॥ २१ ॥ द्रोणं निवारितं दृष्ट्वा कुमारेण द्विजर्षभम् । सिंहनादरवो ह्यासीत् साधु साध्विति भाषितम् ॥ २२ ॥ कुमार-

थी ॥ १५ ॥ महावली, आपसमें एक दूसरे पर प्रहार करनेवाले कौरव पांडवोंका, वली दैत्य और देवताओंके युद्धकी समान तुमुल युद्ध होनेलगा ॥ १६ ॥ तदनन्तर ज्वारभाटेवाले समुद्रकी समान शब्द करतीहुई युधिष्ठिरकी सेना तुम्हारे सैनिकोंको मारनेलगी और तुम्हारे महारथी इधर उधरको भागनेलगे ॥ १७ ॥ शत्रुओंसे अतिपीड़ा पाकर भागतीहुई सेनाको देखकर द्रोणाचार्यने कहा, कि—अरे शूरों ! वस अव रणमेंसे मत भागो ! मत भागो!!॥१८॥ तदनन्तर लालरङ्गके घोड़ोंवाले रथमें वैठेहुए द्रोणाचार्य क्रोधमें भरकर चार दाँतोंवाले हाथीकी समान पांडवोंकी सेनामें घुसकर युधिष्ठिरके ऊपरको दौड़े ॥ १९ ॥ युधिष्ठिरने गिद्धके परोंवाले वाणोंसे द्रोणको घायल करदिया, तव द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरके धनुषको काटडाला फिर शीघ्रतासे उनके ऊपर लपके ॥ २० ॥ उस समय युधिष्ठिरके रथके पहियोंकी रक्षा करनेवाले, पञ्चालोंके यशको वढ़ानेवाले, कुमारने, किनारा जैसे समुद्रको रोके रहता है वैसेही द्रोणको आगे वढ़नेसे रोकदिया ॥ २१ ॥ कुमारके द्वारा ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यको रुकाहुआ देखकर पांडवसेनाके सव

स्तु ततो द्रोणं सायकेन महाहवे । विव्याधोरसि संक्रुद्धः सिंहवच्च नदन्मुहुः ॥ २३ ॥ संवार्य च रणे द्रोणं कुमारस्तु महाबलः । शरैरनेकसाहस्रैः कृतहस्तो जितश्रमः ॥ २४ ॥ तं शूरमार्यव्रतिनं मन्त्रास्त्रेषु कृतश्रमम् । चक्ररक्षं परामृद्नात् कुमारं द्विजपुङ्गवः ॥ २५ ॥ स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन् दिशः । तव सैन्यस्य गोप्तासीद् भारद्वाजो द्विजर्षभः ॥ २६ ॥ शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम् । नकुलं पञ्चभिर्विद्ध्वा सहदेवञ्च सप्तभिः ॥२७॥ युधिष्ठिरं द्वादशभिर्द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः । सात्यकिं पञ्चभिर्विद्ध्वा मत्स्यञ्च दशभिः शरैः॥२८॥ व्यक्षोभयद्रणे योधान् यथामुख्यमभिद्रवन् । अभ्यवर्तत सम्प्रेप्सुः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् २९ युगन्धरस्ततो राजन् भारद्वाजं महारथम् । वारयामास संक्रुद्धं

योधा धन्य है! धन्य है!।ऐसा कहकर सिंहोंकी समान गर्जनेलगे२२ फिर कुमारने क्रोधमें भरकर महायुद्धमें द्रोणको छातीमें बाण मारकर घायल करदिया, और वारम्वार सिंहकी समान गरजा २३ तथा जितश्रम महाबली कुमारने हाथकी फुर्तीसे सैंकड़ों और सहस्रों बाण छोडकर द्रोणको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ २४ ॥ द्रोणाचार्यने भी श्रेष्ठ व्रतधारी वेदविद्या और अस्त्रविद्याके पारगामी, युधिष्ठिरके चक्ररक्षक कुमारको बाणोंसे पीडित करना आरम्भ करदिया ॥ २५ ॥ और द्विजश्रेष्ठ द्रोण सेनाके मध्यमें जाकर सब दिशाओंमें फिर २ कर तुम्हारी सेनाओंकी रक्षा करनेलगे ॥ २६ ॥ तथा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको पकडनेकी इच्छासे मुख्य२ योधाओंके सामनेको झपटनेलगे, उन्होंने शिखण्डीके बारह बाण और उत्तमौजाके बीस बाण नकुलके पाँच, सहदेवके सात,युधिष्ठिरके बारह बाण,द्रौपदीके पुत्रोंके तीन२ बाण, सात्यकिके पाँच और मत्स्यराजके दश बाण मारकर बींधडाला॥२७-२९॥ हे महाराज ! युगन्धरने, पवनसे उछलतेहुए महासागरकी समान

वातोद्धूतमिवार्णवम् ॥३०॥ युधिष्ठिरं स विध्वा तु शरैः सन्नतपर्वभिः । युगन्धरन्तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ३१ ॥ ततो विराटद्रुपदौ केकयाः सात्यकिः शिविः । व्याघ्रदत्तश्च पाञ्चाल्यः सिंहसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३२ ॥ एते चान्ये च बहवः परीप्सन्तो युधिष्ठिरम् । आवव्रुस्तस्य पन्थानं किरन्तः सायकान् बहून् ३३ व्याघ्रदत्तस्तु पाञ्चाल्यो द्रोणं विव्याध मार्गणैः । पञ्चाशता शितैराजंस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३४ ॥ त्वरितं सिंहसेनस्तु द्रोणं विध्वा महारथम् । प्राहसत् सहसा हृष्टस्त्रासयन् वै महारथान् ३५ ततो विस्फार्य नयने धनुर्ज्यामवमृज्य च । तलशब्दं महत् कृत्वा द्रोणस्तं समुपाद्रवत् ॥ ३६ ॥ ततस्तु सिंहसेनस्य शिरः कायात् सकुण्डलम् । व्याघ्रदत्तस्य चाक्रम्य भल्लाभ्यामाहरद्बली ॥३७॥

क्रोधके आवेशमें भरेहुए महारथी द्रोणाचार्यको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर द्रोणाचार्यने नमीहुई गांठवाले बाणों से युधिष्ठिरको घायल करके युगन्धरको भाला मारकर रथकी बैठकसे गिरादिया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर युधिष्ठिरको चाहनेवाले, विराट द्रुपद, कैकय, सात्यकि, शिवि पांचाल, व्याघ्रदत्त, और बलवान् सिंहसेनने तथा और बहुतोंने बहुतसे बाण छोड़कर द्रोणाचार्यके मार्गको रोकदिया ॥२२॥२३॥ पांचालदेशी व्याघ्रदत्तने पचास तीक्ष्ण बाण मारकर द्रोणको घायल करदिया, यह देख मनुष्योंने कोलाहल मचादिया ॥ ३४ ॥ और सिंहसेन भी बाणोंसे द्रोणाचार्यको बींधकर महारथियोंको डराता हुआ एक साथ हर्षमें भरकर हँसनेलगा ॥३५॥ इतनेमेंही बली द्रोणाचार्य आँखें फाड़ धनुषकी प्रत्यंचाको खेंच और तालियोंका बड़ा शब्द करके फिर उसके पीछे पड़े ॥ ३६ ॥ और बलवान् द्रोणाचार्यने सिंहसेन और व्याघ्रदत्तके कुण्डलसहित मस्तकों को काटकर पृथिवीपर गिरादिया ॥ ३७॥ और पांडवों

तान् प्रमृज्य शरव्रातैः पाण्डवानां महारथान् । युधिष्ठिररथाभ्याशे तस्थौ मृत्युरिवान्तकः ॥ ३८ ॥ ततोभवन्महाशब्दो राजन् यौधिष्ठिरे बले । हतो राजेति योधानां समीपस्थे यतव्रते ॥ ३९ ॥ अब्रुवन् सैनिकास्तत्र दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रमम् । अद्य राजा धार्त्तराष्ट्रः कृतार्थो वै भविष्यति ॥ ४० ॥ अस्मिन् मुहूर्त्ते द्रोणस्तु पाण्डवं गृह्य हर्षितः । आगमिष्यति नो नूनं धार्त्तराष्ट्रस्य संयुगे ॥ ४१ ॥ एवं सञ्जल्पतां तेषां तावकानां महारथः । आयाज्जवेन कौन्तेयो रथघोषेण नादयन् ॥ ४२ ॥ शोणितोदां रथावर्त्तां कृत्वा विशसने नदीम् । शूरास्थिचयसंकीर्णां प्रेतकूलापहारिणीम् ॥ ४३ ॥ तां शरौघमहाफेनां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् । नदीमुत्तीर्य वेगेन कुरून् विद्राव्य पाण्डवः ॥ ४४ ॥ ततः किरीटी सहसा द्रोणानीकमुपा-

---

के दूसरे महारथियोंको बाणजालोंसे रोककर द्रोणाचार्य युधिष्ठिरके रथके सामने नाश करनेवाले कालकी समान जाकर खड़े होगये।३८।हे राजन्! उस समय युधिष्ठिरकी सेनामें "राजा मरेगये, राजा मारेगये" इसप्रकार बडाभारी कोलाहल होरहा था, उस समय द्रोणाचार्य युधिष्ठिरके रथके सामने खड़े थे ।३९। द्रोणाचार्यके ऐसे पराक्रमको देखकर सब सैनिक कहनेलगे, कि आज दुर्योधन निश्चयही कृतार्थ होगा ॥ ४० ॥ और युद्धमें इस ही क्षणमें द्रोण युधिष्ठिरको पकडकर हर्षित होतेहुए हमारे महाराज दुर्योधनके पास लावेंगे ॥ ४१ ॥ इसप्रकार तुम्हारी ओरके महारथी कहरहे थे, कि इतनेमेंही कुन्तीका पुत्र महारथी अर्जुन रथके शब्दसे रणभूमिको गुञ्जारताहुआ, वेगके साथ तहाँ आपहुँचा ॥ ४२ ॥ रुधिररूपी जल, रथरूपी भँवरवाली, शूरोंकी अस्थियोंसे भरीहुई, प्रेतरूपी किनारेको तोडनेवाली, बाणोंके समूहरूप झागोंवाली, मुद्गररूपी मच्छोंसे भरपूर रणनदीको शीघ्रताके साथ तर कर कौरवोंको युद्धमेंसे भगानेलगा ४३-४४

द्रवत् । छादयन्निषुजालेन महता मोहयन्निव ॥ ४५ ॥ शीघ्रमभ्यस्यतो वाणान् सन्दधानस्य चानिशम् । नान्तरं ददृशे कश्चित् कौन्तेयस्य यशस्विनः ॥ ४६ ॥ न दिशो नान्तरिक्षञ्च न द्यौर्नैव च मेदिनी । अदृश्यन्त महाराज वाणभूता इवाभवन् ॥ ४७ ॥ नादृश्यत तदा राजंस्तत्र किञ्चन संयुगे । वाणान्धकारे महति कृते गाण्डीवधन्वना ॥ ४८ ॥ सूर्ये चास्तमनुप्राप्ते तमसा चाभिसंवृते । नाज्ञायत तदा शत्रुर्न सुहृन्न च कश्चन ॥ ४९ ॥ ततोवहारं चक्रुस्ते द्रोणदुर्योधनादयः । तान् विदित्वा पुनस्त्रस्तानयुद्धमनसः परान् ॥ ५० ॥ स्वान्यनीकानि वीभत्सुः शनकैरवहारयत् । ततोभितुष्टुवुः पार्थं प्रहृष्टाः पांडुसृञ्जयाः ॥ ५१ ॥ पञ्चालाश्च मनोज्ञा-

और शत्रुओंको अचेत करताहुआ अर्जुन वाणोंके वडेभारी जालसे द्रोणकी सेनाको ढकताहुआ उनके शिरपर आपहुंचा ॥४५॥ यशस्वी अर्जुन जव शीघ्रतासे वाणोंको फेंकता और सटासट चढ़ाता था, उस समय, क्या कर रहा है, यह किसीको भी प्रतीत नहीं होता था ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! दिशाएँ, अन्तरिक्ष, आकाश, पृथ्वी ये सव वाणोंसे छाजानेके कारण नहीं दीखते थे, किन्तु सव वाणमय ही होरहा था ॥४७॥ हे राजन् ! जव अर्जुनने वाणोंसे घोर अंधकार करदिया था उस समय तहाँ कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥ ४८ ॥ इतनेमें सूर्य अस्त हुआ और आकाश धूलिके अन्धकारसे भरगया, इस कारण तहाँ शत्रु या मित्र कोई भी मालूम नहीं होता था ॥ ४९ ॥ उस समय द्रोणाचार्य और दुर्योधन आदिने अपनी सेनाको युद्ध वन्द करनेकी आज्ञा दी, शत्रुपक्षके योधाओंको त्रस्त तथा युद्ध करनेमें मन न लगाते देखकर धनञ्जय अपनी सेनाको धीरे २ छावनीकी ओरको लेचला, उस समय अतिप्रसन्न हुए पाण्डव सृञ्जय और पञ्चाल जैसे ऋषि सूर्यकी स्तुति करते हैं तैसेही

भिर्वाग्भिः सूर्यमिवर्षयः । एवं स्वशिबिरं मायाज्जित्वा शत्रून् धनञ्जयः ॥ ५२ ॥ पृष्ठतः सर्वसैन्यानां मुदितो वै सकेशवः ॥ ५३॥ मसारगल्वर्कसुवर्णरूप्यैर्वज्रप्रवालस्फटिकैश्च मुख्यैः । चित्रे रथे पाण्डुसुतो बभासे नक्षत्रचित्रे वियतीव चन्द्रः ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि
प्रथमदिवसावहारे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

समाप्तञ्च द्रोणाभिषेकपर्व

अथ संशप्तकवधपर्व

सञ्जय उवाच । ते सेने शिबिरं गत्वा न्यविशेतां विशाम्पते । यथाभागं यथान्यायं यथागुल्मञ्च सर्वशः ॥ १ ॥ कृत्वावहारं सैन्यानां द्रोणः परमदुर्मनाः । दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य सव्रीडमिदमब्रवीत् २ उक्तमेतन्मया पूर्वं न तिष्ठति धनञ्जये । शक्यो ग्रहीतुं संग्रामे

मनोहर वाणीसे पार्थकी स्तुति करनेलगे, तब शत्रुओंको जीतकर प्रसन्न होताहुआ अर्जुन, श्रीकृष्णके साथ सब सेनाके पीछे २ अपनी छावनीमें चलागया, उस समय इन्द्रनील, पद्मराग, सुवर्ण, हीरे, मूंगे तथा स्फटिकोंसे शोभायमान रथमें बैठाहुआ अर्जुन नक्षत्रोंसे विचित्र प्रतीत होतेहुए आकाशमें चन्द्रमाकी समान शोभा पारहा था ॥ ५०-५४ ॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

द्रोणाभिषेक पर्व समाप्त

* अथ संशप्तकवधपर्व *

सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् ! वे दोनों पक्षकी सेनायें और सेनापति अपनी २ छावनियोंमें जाकर विभागके अनुसार अपने २ सेनाविभागमें विश्राम लेनेलगे ॥ १ ॥ अत्यन्त खिन्न मनवाले द्रोणाचार्य सेनाको लौटाकर दुर्योधनको देख लजाते हुए यह वचन बोले, कि–॥ २ ॥ मैंने यह पहिले ही कहा था; कि-संग्राममें अर्जुनके पास रहने पर देवता भी युधिष्ठिरको नहीं पकड़

देवैरपि युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥ इति तद्वः प्रयततां कृतं पार्थेन संयुगे । मा विशङ्कीर्वचो मह्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ४ ॥ अपनीते तु योगेन केनचिच्छ्वेतवाहने । तत एष्यति ते राजन् वशमेष युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥ कश्चिदाहूय तं संख्ये देशमन्यं प्रकर्षतु । तमजित्वा न कौन्तेयो निवर्त्तेत कथञ्चन ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शून्ये धर्मराजमहं नृप । ग्रहीष्यामि चमूं भित्त्वा धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥ ७ ॥ अर्जुनेन विहीनस्तु यदि नोत्सृजते रणम् । मामुपायांतमालोक्य गृहीतं विद्धि पाण्डवम् ॥ ८ ॥ एवन्तेहं महाराज धर्मपुत्रं युधिष्ठिरं । समानेष्यामि सगणं वशमद्य न संशयः ॥ ९ ॥ यदि तिष्ठति संग्रामे मुहूर्त्तमपि पाण्डवः । अथापयाति संग्रामाद्विजयात्तद्विशिष्यते ॥ १० ॥ सञ्जय उवाच । द्रोणस्य तद्वचः श्रुत्वा त्रिगर्त्ताधि-

सकते ॥ ३ ॥ तुम सबने यत्न किया, परन्तु अर्जुनके युधिष्ठिरके पास आजाने पर वह सब निष्फल होगया, मेरे इस वचन पर सन्देह न करना, कि-कृष्ण और अर्जुन अजेय हैं ॥ ४ ॥ यदि किसी उपायसे अर्जुनको युधिष्ठिरके पाससे दूर ले जासको तो राजा युधिष्ठिर तुम्हारे वशमें आजावेंगे ॥ ५ ॥ कोई युद्धमें अर्जुनको बुलाकर उसको दूसरे स्थान पर लेजाय, तो कुन्तीपुत्र अर्जुन उसको जीते विना पीछेको लौटनेवाला नहीं है ॥ ६ ॥ इस बीचमें मैं धर्मराजको, अकेला पाकर धृष्टद्युम्नकी आँखोंके सामने सेनाको भेदकर पकड़लूँगा ॥ ७ ॥ अर्जुनके हटजाने पर यदि धर्मराज युधिष्ठिर मुझे आताहुआ देखकर रणको छोड़कर नहीं भागेगा तो तू उसको पकड़ाहुआ ही जानना ॥ ८ ॥ राजा युधिष्ठिर संग्राममें दो घड़ी खड़े रहें, भागें नहीं, तो हे महाराज! निःसन्देह सेनासहित राजा युधिष्ठिरको वशमें हुआ जान और ऐसा होने पर मैं उसको जीतसे अधिक महत्त्वकी बात मानता हूँ ॥ ९-१० ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजन्! द्रोणाचार्यकी

पतिस्तदा । भ्रातृभिः सहितो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥ वयं विनिकृता राजन् सदा गाण्डीवधन्वना । अनागःस्वपि चागस्तत् कृतमस्मासु तेन वै ॥१२॥ ते वयं स्मरमाणास्तान् विनिकारान् पृथग्विधान् । क्रोधाग्निना दह्यमाना न शेमहि सदा निशि१३ स नो दिष्ट्यास्त्रसम्पन्नश्चक्षुर्विषयमागतः । कर्त्तारः स्म वयं कर्म यच्चिकीर्षाम हृद्गतम् ॥ १४ ॥ भवतश्च प्रियं यत्स्यादस्माकञ्च यशस्करम् । वयमेनं हनिष्यामो निकृष्यायोधनाद्बहिः ॥ १५ ॥ अद्यास्त्वनर्जुना भूमिरत्रिगर्त्ताथ वा पुनः । सत्यं ते प्रतिजानीमो नैतन्मिथ्या भविष्यति ॥ १६ ॥ एवं सत्यरथश्चोक्त्वा सत्यवर्मा च भारत । सत्यव्रतश्च सत्येषुः सत्यकर्मा तथैव च ॥ १७ ॥ सहिता भ्रातरः पञ्च रथानामयुतेन च । न्यवर्त्तत महाराज कृत्वा शपथमाहवे ॥ १८ ॥ मालवास्तुण्डिकेराश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ।

इस बातको सुनकर भाइयों सहित त्रिगर्तराजने यह बात कही, कि—॥ ११ ॥ हे राजन् ! अर्जुन सदा हमारा अपमान किया करता है, हे राजन् ! हम निरपराधियोंका भी वह अनिष्ट किया करता है ॥ १२ ॥ हम उन भोगेहुए तिरस्कारोंको सोचकर क्रोधाग्निसे भस्म होरहे हैं, और हमें रात्रिमें निद्रा भी नहीं आती है ॥ १३ ॥ इसलिये यदि प्रारब्धवश अस्त्रधारी अर्जुन हमारे नेत्रोंके सामने पड़गया तो जो हमारे चित्तमें है उसको पूरा करेंगे ॥ १४ ॥ यह काम आपको प्रिय होगा और हमें यश देने वाला होगा, इसप्रकार हम अर्जुनको रणमेंसे बाहर लेजाकर उसका वध करेंगे ॥ १५ ॥ हम सत्यकी सौगन्ध खाकर कहते हैं, कि—"आज पृथ्वी या तो त्रिगर्तोंसे रहित होगी या अर्जुनसे ही रहित होगी" इसमें उलटफेर नहीं होसकता ॥ १६ ॥ हे राजन् ! सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु और सत्यकर्माने सौगन्ध खाकर कहा, कि—"हम दश हजार रथियोंको साथ लेकर

सुशर्मा च नरव्याघ्रस्त्रिगर्त्तः प्रस्थलाधिपः ॥ १९ ॥ मावेल्लकैर्ललित्थैश्च सहितो मद्रकैरपि । रथानामयुतेनैव सोऽगमत् भ्रातृभिः सह ॥ २० ॥ नानाजनपदेभ्यश्च रथानामयुतं पुनः । समुत्थितं विशिष्टानां शपथार्थमुपागमत् ॥ २१ ॥ ततो ज्वलनमानर्च्य हुत्वा सर्वे पृथक् पृथक् । जगृहुः कुशचीराणि चित्राणि कवचानि च २२ ते च बद्धतनुत्राणा घृताक्ताः कुशचीरिणः । मौर्वीमेखलिनो वीराः सहस्रशतदक्षिणाः ॥२३॥ यज्वानः पुत्रिणो लोक्याः कृतकृत्यास्तनुत्यजः । योक्ष्यमाणास्तदात्मानं यशसा विजयेन च ॥ २४ ॥ ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः । प्राप्यान् लोकान् सुयुद्धेन क्षिप्रमेव यियासवः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा च निष्कान्दत्वा पृथक् पृथक् । गाश्च वासांसि च पुनः समाभाष्य परस्प-

युद्ध करेंगे" ॥ १७-१८ ॥ मालवराज और तुण्डिकेरोंने तीस हजार रथियोंको साथमें लेकर युद्धमें जानेकी प्रतिज्ञा की; नरव्याघ्र सुशर्माने और प्रस्थलपति त्रिगर्तने मावेल्लक, ललित्थ, मद्रक और भाइयों सहित दश सहस्र रथ साथमें ले जाकर लड़नेकी प्रतिज्ञा की, तदनन्तर श्रेष्ठ २ दश सहस्र महारथी अलग २ शपथ करनेको उठे ॥ १९-२१ ॥ इसप्रकार सबोंने इकठे होनेके अनन्तर शरीरों पर शकुनके लिये घी मला, स्नान किया और शुद्ध होकर कुश तथा वस्त्र धारण करके अग्निदेवका पूजन किया, तदनन्तर शरीरके ऊपर नये २ वस्त्र, मुञ्जमेखला और कवच धारण किये तथा सैंकड़ों सहस्रों सुवर्णकी मुहरें ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दीं २२-२३ यज्ञ करनेवाले, पुत्रवान्, पवित्रलोकमें जानेयोग्य, कृतकृत्य और युद्धमें शरीरकी भी अपेक्षा न करनेवाले, यश तथा विजयको पानेकी इच्छावाले वे वीर पुरुष ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन और बड़ी बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे प्राप्त होने योग्य लोकोंको युद्धके द्वारा शीघ्र ही जानेके मनोरथ कररहे थे ॥२४-२५॥ उन त्रिगर्तदेशके

रम् ॥ २६ ॥ प्रज्वाल्य कृष्णवर्त्मानमुपगम्य रणव्रतम् । तस्मिन्नग्नौ तदा चक्रुः प्रतिज्ञां दृढनिश्चयाः ॥ २७ ॥ शृण्वतां सर्वभूतानामुच्चैर्वाचो बभाषिरे । सर्वे धनञ्जयवधे प्रतिज्ञां चापि चक्रिरे॥२८॥ये वै लोकाश्चाव्रतिनां ये चैव ब्रह्मघातिनां । मद्यपस्य च ये लोका गुरुदाररतस्य च ॥२९ ॥ ब्रह्मस्वहारिणश्चैव राजपिंडापहारिणः । शरणागतं च त्यजतो याचमानं तथा घ्नतः ३० अगारदाहिनाञ्चैव ये च गां निघ्नतामपि । अपकारिणाञ्च ये लोका ये च ब्रह्मद्विषामपि ॥३१॥ स्वभार्यामृतुकालेषु मोहाद्वै नाभिगच्छताम् । श्राद्धमैथुनिकानाञ्च ये चाप्यात्मापहारिणाम् ॥ ३२ ॥

वीरोंने ब्राह्मणोंको भोजनसे तृप्त करके दक्षिणामें सुवर्णकी मुहरें, गौएं और वस्त्र दिये, फिर आपसमें सम्भाषण किया, तदनन्तर रणव्रत (केसरिया व्रत) को धारण करके और अग्निको प्रज्वलित कर उसके सामने खडे होकर दृढनिश्चयवाले त्रिगर्तोंने सब मनुष्योंको सुनातेहुए उच्च स्वरसे प्रतिज्ञा की, कि-यदि हम अर्जुनको बिनामारे लौटें अथवा उसके पीड़ा देने पर त्रस्त होकर भागें तो व्रत न करनेवालोंको जो लोक मिलते हैं, ब्रह्मघातियोंको जो लोक मिलते हैं, जिन लोकोंमें शराबी, गुरुपत्नीगामी, ब्राह्मणके धनको छीननेवाले, राजाके पिण्डको लुप्त करनेवाले, शरणागतको त्यागनेवाले, मांगनेवालेके ऊपर प्रहार करनेवाले जाते हैं और जिन लोकों (नरकों) में मकानोंमें आग देनेवाले, गौहत्यारे, हितू पुरुषका अपकार करनेवाले और ब्रह्मद्वेषी पड़ते हैं, उन लोकोंमें हम पड़ें और जिन लोकोंमें ऋतुकालके समय अपनी स्त्रीके पास न जानेवाले और रजस्वलासे समागम करनेवाले तथा श्राद्धके दिन भी मैथुन करनेवाले, अपनी जातिको छुपानेवाले, धरोहड़को हड़प जानेवाले और वेदका उल्टा अर्थ करके उसको नष्ट करनेवाले और नपुंसकोंसे युद्ध करनेवाले, नीचोंका

न्यासापहारिणां ये च श्रुतं नाशयताञ्च ये । क्लीवेन युध्यमानानां ये च नीचानुसारिणाम् ॥ ३३ ॥ नास्तिकानाञ्च ये लोका येग्निमातृपितृत्यजाम् । तानाप्नुयामहे लोकान् ये च पापकृतामपि ३४ यद्यहत्वा वयं युद्धे निवर्त्तेम धनञ्जयम् । तेन चाभ्यर्दितास्त्रासाद्द्रवेमहि पराङ्मुखाः ॥ ३५ ॥ यदि त्वसुकरं लोके कर्म कुर्याम संयुगे । इष्टाल्लोकान् प्राप्नुयामो वयमद्य न संशयः ॥ ३६ ॥ एवमुक्त्वा तदा राजंस्तेऽभ्यवर्त्तन्त संयुगे । आह्वयन्तोऽर्जुनं वीराः पितृजुष्टां दिशं प्रति ॥ ३७ ॥ आहूतस्तैर्नरव्याघ्रैः पार्थः परपुरञ्जयः । धर्मराजमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत् ॥ ३८ ॥ आहूतो न निवर्त्तेयमिति मे व्रतमाहितम् । संशप्तकाश्च मां राजन्नाह्वयन्ति महामृधे ॥ ३९ ॥ एष च भ्रातृभिः सार्द्धं सुशर्माह्वयते रणे । वधाय सगणस्यास्य मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ४० ॥ नैतच्छक्नोमि संसोढुमाह्वानं पुरुषर्षभ । सत्यं ते प्रतिजानामि हतान् विद्धि परान् युधि ॥ ४१ ॥ युधिष्ठिर

अनुसरण करनेवाले, नास्तिक अग्निहोत्र त्यागनेवाले तथा पापी माता पिताको त्यागनेवाले, पड़ते हैं उन लोकों (नरकों) में हम पड़ें ॥ २६—३५ ॥ और यदि आज हम युद्धमें महादुष्कर कर्म करके विजय पावें तो निःसन्देह हमारा पवित्र लोकोंमें निवास हो ॥ ३६ ॥ हे राजन्! इसप्रकार कहकर वे अर्जुनको बुलातेहुए दक्षिणदिशाकी ओर युद्ध करनेके लिये चलेगये ॥ ३७ ॥ शत्रुपुरञ्जय अर्जुनने उन नरव्याघ्रोंके बुलाने पर धर्मराजसे शीघ्रताके साथ यह बात कही कि—॥ ३८ ॥ हे राजन्! मेरा यह व्रत है कि—किसीके युद्ध करनेको बुलाने पर मैं हटता नहीं हूँ, और संशप्तक मुझे बुलारहे हैं ॥३९॥ यह भाइयों सहित सुशर्मा मुझे युद्धमें बुलारहा है, अतः सेनासहित इसका वध करनेकी मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ४० ॥ हे पुरुषर्षभ! मुझे उनका यह बुलाना असह्य होरहा है, हे राजन्! यह तुम सत्य जानो, कि—मैं युद्ध

उवाच । श्रुतन्ते तत्त्वतस्तात यद्द्रोणस्य चिकीर्षितम् । यथा तद्वृतं तस्य भवेत्तत् त्वं समाचर ॥ ४२ ॥ द्रोणो हि बलवान् शूरः कृतास्त्रश्च जितश्रमः । प्रतिज्ञातञ्च तेनैतत् ग्रहणं मे महारथ ।४३। अर्जुन उवाच । अयं वै सत्यजिद्राजन्नद्य त्वां रक्षिता युधि । म्रियमाणे तु पाञ्चाल्ये नाचार्यः काममाप्स्यति ॥ ४४ ॥ हते तु पुरुषव्याघ्रे रणे सत्यजिति प्रभो । सर्वैरपि समेतैर्वा न स्थातव्यं कथञ्चन ॥ ४५ ॥ सञ्जय उवाच । अनुज्ञातस्ततो राज्ञा परिष्वक्तश्च फाल्गुनः । प्रेम्णा दृष्टश्च बहुधा ह्याशिषश्चास्य योजिताः४६ विहायैनं ततः पार्थस्त्रिगर्त्तान् प्रत्ययाद्बली । क्षुधितः क्षुद्विघातार्थं सिंहो मृगगणानिव ॥ ४७ ॥ ततो दौर्योधनं सैन्यं मुदा परमया

मैं शत्रुओंको मारडालूँगा ॥ ४१ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि—हे तात तुमने द्रोणकी इच्छाको भलीप्रकार सुनलिया है, अतः अब जैसे यह मिथ्या होजाय, वह उपाय कर ॥ ४२ ॥ द्रोण बलवान् हैं, शूर हैं, अस्त्रविद्यामें पारङ्गत हैं, परिश्रमको कुछ न समझनेवाले हैं, हे महारथ ! उन्होंने मुझे पकडनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ४३ ॥ अर्जुनने कहा कि—हे राजन् ! आज युद्धमें यह सत्यजित् तुम्हारी रक्षा करेगा, सेनाका भार जबतक सत्यजित्के हाथमें रहेगा तब तक द्रोणाचार्यका मनोरथ सिद्ध नहीं होगा ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! पुरुषव्याघ्र सत्यजित्के मारेजाने पर चाहें हमारे पक्षके सब योधा तुम्हारे पास इकट्ठे हों तो भी तुम युद्धमें कदापि न रुकना ।४५। सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् ! तदनन्तर धर्मराजने अर्जुनको हृदयसे लगाया वारम्वार प्रेमपूर्वक उसकी ओरको देखा और आशीर्वाद देकर जानेकी आज्ञा दी ॥ ४६ ॥ तदनन्तर जैसे भूँखा सिंह मृगोंके ऊपर दौडता है तैसेही बलवान् अर्जुन अपने भाइयोंके पाससे त्रिगर्तोंके ऊपर झपटा ॥ ४७ ॥ अर्जुनके चले जाने पर दुर्योधनकी सेना आनन्दमें भरगई और क्रोधमें भरकर

युतम् । ऋतेर्जुनं भृशं क्रुद्धं धर्मराजस्य निग्रहे ४८ ततोन्योन्येन ते
सैन्ये समाजग्मतुरोजसा । गङ्गायमुनवद्वेगात् प्रावृषीवोल्वणोदके ४९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
धनञ्जययाने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच । ततः संशप्तका राजन् समे देशे व्यवस्थिताः ।
व्यूह्यानीकं रथैरेव चन्द्राकारं मुदा युताः ॥ १ ॥ ते किरीटिनमा-
यान्तं दृष्ट्वा हर्षेण मारिष । उदक्रोशन्नरव्याघ्राः शब्देन महता तदा २
स शब्दः प्रदिशः सर्वा दिशः खञ्च समावृणोत् । आवृतत्वाच्च लोकस्य
नासीत्तत्र प्रतिस्वनः ॥ ३ ॥ सोऽतीव सम्प्रहृष्टांस्तानुपलभ्य धनं-
जयः । किञ्चिदभ्युत्स्मयन् कृष्णमिदं वचनमब्रवीत् ॥४॥ पश्यै-
तान् देवकीमातर्मुमूर्षूनद्य संयुगे । भ्रातृंस्त्रैगर्त्तकानेवं रोदितव्ये
प्रहर्षितान् ॥५॥ अथवा हर्षकालोयं त्रैगर्त्तानामसंशयम् । कुनरै-

---

धर्मराजको पकडनेका उद्योग करनेलगी ॥ ४८ ॥ तदनन्तर वे
दोनों सेनाएँ जैसे वर्षाकालमें भयंकर जलवालीं गङ्गा और यमुना
मिलती हैं, तैसेही एक दूसरीसे टकरागईं ॥ ४९ ॥ सत्रहवाँ
अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ ॥ छ ॥ छ

संजयने कहा, कि—हे राजन् ! तदनन्तर चौरस भूमिमें संशप्तकों
ने अपनी सेनाके रथोंको चन्द्राकारसे खडा किया और आनन्दमें
भरकर खडे होगये ॥ १ ॥ हे महाराज ! उन नरव्याघ्रोंने
अर्जुनको आताहुआ देखकर हर्षके साथ बडाभारी कोलाहल
मचाया ॥ २ ॥ उस शब्दसे दिशाएँ और दिशाओंके कोने भर
गए, संसारभरमें गूँज जानेके कारण उसकी प्रतिध्वनि भी नहीं
हुई ॥ ३ ॥ अर्जुनने उनको बडे भारी हर्षमें भराहुआ देख कुछ
हँसकर श्रीकृष्णसे कहा, कि—॥ ४ ॥ हे देवकीनन्दन ! इन मरने
वाले त्रिगर्तबन्धुओंको तो देखो, ऐसे युद्धके समयमें इनको रोना
चाहिये था परन्तु ये हर्ष मनारहे हैं ॥ ५ ॥ अथवा यह इनके

दुरवापान् हि लोकान् प्राप्स्यन्त्यनुत्तमान् ॥ ६ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुर्हृषीकेशं ततोऽर्जुनः । आससाद रणे व्यूढां त्रिगर्तानामनीकिनीम् ॥ ७ ॥ स देवदत्तमादाय शंखं हेमपरिष्कृतम् । दध्मौ वेगेन महता घोषेणापूरयन् दिशः ॥ ८ ॥ तेन शब्देन वित्रस्ता संशप्तकवरूथिनी । विचेष्टावस्थिता संख्ये ह्यश्मसारमयी यथा ९ वाहास्तेषां विवृत्ताक्षाः स्तब्धकर्णशिरोधराः । विष्टब्धचरणा मूत्रं रुधिरञ्च प्रसुस्रुवुः ॥१०॥ उपलभ्य ततः संज्ञामवस्थाप्य च वाहिनीम् । युगपत् पाण्डुपुत्राय चिक्षिपुः कङ्कपत्रिणः ११ तान्यर्जुनः सहस्राणि दशपञ्चभिराशुगैः । अनागतान्येव शरैश्चिच्छेदाशु पराक्रमी ॥ १२ ॥ ततोऽर्जुनं शितैर्बाणैर्दशभिर्दशभिः पुनः । प्राविध्यंत ततः पार्थस्तानविध्यत् त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १३ ॥ एकै-

---

हँसनेका ही समय है, क्योंकि—ये दुष्टात्मा कठिनतासे मिलनेवाले श्रेष्ठ लोकोंमें जावेंगे ॥ ६ ॥ महाबाहु अर्जुन श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहताहुआ रणमें व्यूहरचनासे खडीहुई त्रिगर्तोंकी सेनाके पास पहुँचगया ॥ ७ ॥ और उसने सुवर्णको पत्तरोंसे मढेहुए देवदत्त नामक शंखको ऐसे वेगसे बजाया कि—उस बडे भारी शब्दसे दिशाएँ गूँजने लगीं ॥ ८ ॥ संशप्तकोंकी सेना अर्जुनके शंखसे सहम कर युद्धमें निश्चेष्ट हो पत्थरकी समान रहगई । ९ । और उनके हाथी घोडोंकी आँखें फैलगईं तथा कान और केश स्तब्ध होगये, पैर सुन्न होगये और वे घबडाकर मूतनेलगे तथा रुधिर ओकनेलगे ॥ १० ॥ कुछ समयके बाद त्रिगर्तोंको भान हुआ और उन्होंने अपनी सेनाको ठीक करके एक साथ अर्जुनके ऊपर कंकपत्रवाले बाणोंकी बौछार करदी ॥ ११ ॥ फुर्तीले पराक्रमी अर्जुनने आतेहुए उन सहस्रों बाणोंको मार्गमें ही बाणोंसे काटकर फेंकदिया ॥ १२ ॥ तदनन्तर उन्होंने दश २ बाण मारकर अर्जुनको बींधडाला, तब अर्जुनने उनके ऊपर

कस्तु ततः पार्थं राजन् विव्याध पञ्चभिः । स च तान् प्रतिविव्याध द्वाभ्यां द्वाभ्यां पराक्रमी ॥ १४ ॥ भूय एव तु संक्रुद्धास्त्वर्जुनं सहकेशवम् । आपूरयन् शरैस्तीक्ष्णैस्तडागमिव वृष्टिभिः१५ ततः शरसहस्राणि प्रापतन्नर्जुनं प्रति । भ्रमराणामिव व्राताः फुल्लद्रुमगणं वने ॥ १६ ॥ ततः सुवाहुस्त्रिंशद्भिरद्रिसारमयैः शरैः । अविध्यदिषुभिर्गाढं किरीटे सव्यसाचिनम् ॥ १७ ॥ तैः किरीटी किरीटस्थैर्हेमपुङ्खैरजिह्मगैः । शातकुम्भमयापीडो बभौ सूर्य इवोत्थितः ॥ १८ ॥ हस्तावापं सुवाहोस्तु भल्लेन युधि पाण्डवः । चिच्छेद तञ्चैव पुनः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १९ ॥ ततः सुशर्मा दशभिः सुरथस्तु किरीटिनम् । सुधर्मा सुधनुश्चैव सुवाहुश्च समार्पयन् ॥ २० ॥ तांस्तु सर्वान् पृथग्वाणैर्वानरप्रवरध्वजः । प्रत्य-

---

तीन तीन वाण छोड़े ॥ १३ ॥ उनमेंसे एक२ने पाँच पाँच वाण मारकर अर्जुनको वींधदिया और अत्युत्कट बली अर्जुनने भी उनमेंसे हरएकके दो २ वाण मारे ॥ १४ ॥ जैसे तालावके ऊपर बूँदें पड़ती हैं इसीप्रकार फिर भी क्रोधमें भरेहुए त्रिगर्तोंने श्रीकृष्ण सहित अर्जुनको तीक्ष्ण वाणोंसे ढकदिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर अर्जुनके ऊपर सैंकड़ों वाण ऐसे गिरनेलगे जैसे कि—वनमें खिले हुए वृक्षोंपर भौरोंके झुण्ड टूट पड़ते हैं ॥ १६ ॥ तदनन्तर सुवाहुने पर्वतकेसे तीस वाण जोरके साथ मारकर अर्जुनके किरीटको वींधडाला ॥ १७ ॥ सीधे जानेवाले, सुवर्णकी पूँछवाले किरीटमें स्थित उन वाणोंसे अर्जुन, सुवर्णका मुकुट पहरकर उदय होतेहुए सूर्यकी समान प्रकाशित हुआ ॥ १८ ॥ तदनन्तर रणाङ्गणमें अर्जुनने सुवाहुके हाथके दस्तानेको भालेसे काटडाला और फिर उसको वाणोंकी वर्षासे ढकदिया ॥१९॥ तदनन्तर सुधन्वा, सुशर्मा, सुरथ, सुधनु और सुवाहुने अर्जुनके दश २ वाणमारे २० वानरध्वज अर्जुनने उन वाणोंको भल्ल नामक वाणोंसे अलग२

विध्यत् ध्वजांश्चैषां भल्लैश्चिच्छेद सायकान् ॥ २१ ॥ सुधन्वनो
धनुश्छित्वा हयांश्चास्यावधीच्छरैः । अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः
कायादपातयत् ॥ २२ ॥ तस्मिन्निपतिते वीरे त्रस्तास्तस्य पदा-
नुगाः । व्यद्रवन्त भयाद्भीता यत्र दौर्योधनं बलम् ॥ २३ ॥
ततो जघान संक्रुद्धो वासविस्तां महाचमूम् । शरजालैरविच्छिन्नै-
स्तमः सूर्य इवांशुभिः ॥ २४ ॥ ततो भग्ने बले तस्मिन् विप्रलीने
समन्ततः । सव्यसाचिनि संक्रुद्धे त्रैगर्त्तान् भयमाविशत् ॥ २५ ॥
ते वध्यमानाः पार्थेन शरैः सन्नतपर्वभिः । अमुह्यंस्तत्र तत्रैव त्रस्ता
मृगगणा इव ॥ २६ ॥ ततस्त्रिगर्त्तराट् क्रुद्धस्तानुवाच महारथान्।
अलं द्रुतेन वः शूरा न भयं कर्तुमर्हथ ॥ २७ ॥ शप्त्वाथ शप-

काटकर फेंकदिया और इनकी ध्वजाको भी बाणोंसे काटकर
गिरादिया ॥ २१ ॥ फिर अर्जुनने बाणोंसे सुधन्वाके धनुषके
टुकड़े २ करदिये तथा उसके घोड़ोंको मारडाला और उसके
टोपसहित मस्तकको धडसे अलग करदिया ॥ २२ ॥ वीर सुधन्वाके
गिरजाने पर उसके साथी भयभीत होगए और डरकर दुर्यो-
धनकी सेनाकी ओरको दौड़नेलगे ॥ २३ ॥ उस समय क्रोधमें
भरेहुए अर्जुनने लगातार बाण मारकर उस सेनाका इसप्रकार
नाश करदिया कि–जैसे सूर्य किरणोंसे अन्धकारको नष्ट कर
डालता है ॥ २४ ॥ तदनन्तर त्रिगर्त्तोंकी सेनामें भागड़ पड गई
चारों ओर भभड़ होगया और अर्जुन बड़े भारी क्रोधमें भरगया
यह देखकर त्रिगर्त्त भयभीत होगये अर्जुन नमी हुई गांठोंवाले
बाणोंसे त्रिगर्तोंके ऊपर प्रहार कररहा था, इसलिये वे डरेहुए
मृगोंके झुण्डकी समान जहाँके तहाँ ही मूर्छित होगए ॥ २६ ॥
यह देखकर क्रोधमें भरेहुए त्रिगर्तराजने उन महारथियोंसे कहा
कि–अरे बस बहुत भागचुके ! हे शूरों ! तुमको डरना नहीं
चाहिये ॥ २७ ॥ बताओ तो तुमने सकल सेनाके सामने घोर

थान् घोरान् सर्वसैन्यस्य पश्यतः । गत्वा दौर्योधनं सैन्यं किं वै वक्ष्यथ मुख्यशः ॥ २८ ॥ नावहास्याः कथं लोके कर्मणानेन संयुगे । भवेम सहिताः सर्वे निवर्त्तध्वं यथाबलम् ॥ २९ ॥ एवमुक्तास्तु ते राजन्नुदक्रोशन्मुहुर्मुहुः । शङ्खांश्च दध्मिरे वीरा हर्षयन्तः परस्परम् ॥ ३० ॥ ततस्ते सन्न्यवर्त्तन्त संशप्तकगणाः पुनः । नारायणाश्च गोपाला मृत्युं कृत्वाऽनिवर्त्तनम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
सुधन्ववधे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सञ्जय उवाच । दृष्ट्वा तु सन्निवृत्तांस्तान् संशप्तकगणान् पुनः । वासुदेवं महात्मानमर्जुनः समभाषत ॥ १ ॥ चोदयाश्वान् हृषीकेश संशप्तकगणान् प्रति । नैते हास्यन्ति संग्रामं जीवन्त इति मे मतिः ॥ २ ॥ पश्य मेऽस्त्रबलं घोरं बाह्वोरिष्वसनस्य च । अद्ये-

---

शपथ खाई है तो फिर अब दुर्योधनकी सेनामें जाकर उनको क्या उत्तर दोगे ? ॥ २८ ॥ अरे ! हम सब ऐसा करनेसे संसारमें हास्यके पात्र कैसे नहीं होंगे ? अतः हम सबोंको इकट्ठा होना चाहिये और शक्तिके अनुसार पराक्रम दिखाना चाहिये २९ हे राजन् ! त्रिगर्तराजके ऐसा कहनेपर वे वीर आपसमें एक दूसरेको प्रसन्न करते हुए कोलाहल मचानेलगे तथा वारम्बार शंखोंको बजानेलगे ॥ ३० ॥ तदनन्तर वे संशप्तक और नारायण नामक ग्वाले मृत्युकी परवाह न करतेहुए लडनेको लौट आए ॥ ३१ ॥ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

उन संशप्तकगणोंको फिर लौटा हुआ देखकर अर्जुनने महात्मा श्रीकृष्णसे कहा, कि-॥ १ ॥ हे हृषीकेश ! संशप्तकोंकी ओर घोड़ोंको बढ़ाइये मेरा ऐसा ध्यान है कि-ये जीते जी तो संग्रामको छोड़ेंगे नहीं ॥ २ ॥ आज आप मेरे अस्त्रबलको, भुजबलको और भयङ्कर अस्त्रोंको फेंकनेके बलको देखिये मैं इनको आज

तान् पातयिष्यामि क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ ३ ॥ ततः कृणस्मितं कृत्वा प्रतिनन्द्य शिवेन तम्। प्रावेशयत दुर्धर्षो यत्र यत्रैच्छदर्जुनः ४ स रथो भ्राजतेऽत्यर्थमुह्यमानो रणे तदा। उह्यमानमिवाकाशे विमानं पाण्डुरैर्हयैः ॥ ५ ॥ मण्डलानि ततश्चक्रे गतप्रत्यागतानि च। यथा शक्ररथो राजन् युद्धे देवासुरे पुरा ॥ ६ ॥ अथ नारायणाः क्रुद्धा विविधायुधपाणयः। छादयन्तः शरव्रातैः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥ ७ ॥ अदृश्यञ्च मुहूर्त्तेन चक्रुस्ते भरतर्षभ। कृष्णेन सहितं युद्धे कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ ८ ॥ क्रुद्धस्तु फाल्गुनः संख्ये द्विगुणीकृतविक्रमः। गाण्डीवं धनुरामृज्य तूर्णं जग्राह संयुगे ९ बध्वा च भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य प्रतिलक्षणम्। देवदत्तं महाशङ्खं

ऐसे नष्ट करूँगा जैसे रुद्र प्रलयके समय प्राणियोंका संहार करते हैं ॥ ३ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णने मुसकराकर अर्जुनको अभिनन्दन करते हुए कहा कि–तेरा कल्याण हो तदनन्तर अर्जुनने जहाँ रथ लेचलनेको कहा तहाँ रथ लेगए ॥ ४ ॥ उस समय श्वेत घोड़ोंसे शोभायमान आकाशमें चलायेहुए दैवी विमानकी समान अर्जुनका श्वेत घोड़ोंसे जुताहुआ रथ रणमें शोभा पारहा था ॥ ५ ॥ हे राजन्! जैसे पहिले देवासुर युद्धमें इन्द्रका रथ आता जाता था तैसे ही अर्जुनका रथ इस युद्धमें मण्डलाकारसे घूमनेलगा ॥ ६ ॥ तदनन्तर अनेकों आयुधोंको हाथमें ले क्रोधमें भरे और बाणोंकी बौछार करते हुए नारायणोंने चारों ओरसे अर्जुनको घेरलिया ॥ ७ ॥ हे भरतसत्तम! उन्होंने क्षण भरमें श्रीकृष्णसहित अर्जुनको युद्धमें (बाणोंसे छाकर) अदृश्य करदिया ॥ ८ ॥ तब अर्जुनको बडा क्रोध चढा और उसने दुगना पराक्रम कर क्रोधसूचक भ्रकुटि चढाई, गाण्डीव नामक धनुषको तयार किया और देवदत्त शंखको बजा, शत्रुसमूहको नष्ट करनेवाले विश्वकर्मा नामक अस्त्रको त्रिगर्तोंकी सेनाके ऊपर फैंका

पूरयामास पाण्डवः ॥ १० ॥ अथास्त्रमरिसंघघ्नं त्वाष्ट्रमभ्यस्यदर्जुनः । ततो रूपसहस्राणि प्रादुरासन् पृथक् पृथक् ॥११॥ आत्मनः प्रतिरूपैस्तैर्नानारूपैर्विमोहिताः । अन्योन्येनार्जुनं मत्वा स्वमात्मानञ्च जघ्निरे ॥१२॥ अयमर्जुनोयं गोविन्द इमौ पाण्डवयादवौ । इति ब्रुवाणाः सम्मूढा जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ १३ ॥ मोहिताः परमास्त्रेण क्षयं जग्मुः परस्परम् । अशोभन्त रणे योधाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ १४ ॥ ततः शरसहस्राणि तैर्विमुक्तानि भस्मसात् । कृत्वा तदस्त्रं तान् वीराननयद्यमसादनम् ॥ १५ ॥ अथ प्रहस्य बीभत्सुर्ललित्थान्मालवानपि । मावेल्लकांस्त्रिगर्त्तांश्च यौधेयांश्चार्दयच्छरैः ॥ १६ ॥ ते हन्यमाना वीरेण क्षत्रियाः कालचोदिताः । व्यसृजञ्छरजालानि पार्थे नानाविधानि च ॥ १७ ॥ न ध्वजो नार्जुनस्तत्र न रथो न च केशवः । प्रत्यदृश्यत घोरेण शर-

---

देखते २ उसमेंसे वासुदेव और धनञ्जयके सहस्रों भिन्न २ रूप प्रकट होगये त्रिगर्त योधा कृष्ण और अर्जुनके अनेकों रूपोंको देखकर मोहमें पडगए और परस्परमें एक दूसरेको श्रीकृष्ण तथा अर्जुन मानकर यह गोविन्द है यह अर्जुन है यह यदुवंशी है, यह पाण्डुपुत्र है इसप्रकार कहते २ युद्धमें एक दूसरेको मारने लगे और मोह पाकर एक दूसरेसे लडते २ मरगए; उस समय युद्धमें घायल हुए योधा पुष्पयुक्त लोधके पेडकी समान शोभित होरहे थे ॥ ८–१४ ॥ तदनन्तर वह अस्त्र उनके छोड़े हुए सैंकडों अस्त्रोंको भस्म करके उन वीरोंको यमलोकमें लेगया १५ तव तो अर्जुनने हँसकर ललित्थ, मावेल्लक, मालव, त्रिगर्त और यौधेयोंको भी वाणोंसे पीडित करना आरम्भ करदिया १६ उस वीरसे पीडा पाकर कालका निमन्त्रण पायेहुए वे क्षत्रिय भी अर्जुनके ऊपर नाना प्रकारकी वाणोंके जाल पूरने लगे १७ उस वाणवर्षासे ढकजाने पर तहाँ न अर्जुन दिखाई देता था न

वर्षेण सम्वृतः ॥ १८ ॥ ततस्ते लब्धलक्षत्वादन्योन्यमभिचुक्रुशुः। हतौ कृष्णाविति प्रीत्या वासांस्यादुधुवुस्तदा ॥ १९ ॥ भेरीमृदङ्गशङ्खांश्च दध्मुर्वीराः सहस्रशः। सिंहनादरवांश्चोग्रांश्चक्रिरे तत्र मारिष ॥ २० ततः प्रसिस्विदे कृष्णः खिन्नश्चार्जुनमब्रवीत्। क्वासि पार्थ न पश्ये त्वां कच्चिज्जीवसि शत्रुहन् ॥ २१ ॥ तस्य तद्भाषितं श्रुत्वा त्वरमाणो धनञ्जयः। वायव्यास्त्रेण तैरस्तां शरवृष्टिमपाहरत् ॥ २२ ॥ ततः संशप्तकव्रातान् साश्वद्वीपरथायुधान्। उवाह भगवान् वायुः शुष्कपर्णचयानिव ॥ २३ ॥ उह्यमानास्तु ते राजन् बह्वशोभन्त वायुना। प्रडीनाः पक्षिणः काले वृक्षेभ्य इव मारिष ॥ २४ ॥ तांस्तथा व्याकुलीकृत्य त्वरमाणो धनञ्जयः। जघान निशितैर्बाणैः सहस्राणि शतानि च ॥ २५ ॥ शिरांसि

श्रीकृष्ण दिखाई पडते थे और न कहीं रथ ही दिखाई पडता था ॥ १८ ॥ जब अपने मारने योग्य कृष्ण और अर्जुन बाणों के समूहसे ढकगए, उस समय त्रिगर्त बड़े हर्षसे कहने लगे कि— श्रीकृष्ण और अर्जुन मारेगए तथा आनन्दमें भरकर आपसमें वस्त्र उछालने लगे ॥ १९ ॥ हे राजन् ! वे वीर सहस्रों भेरी और मृदङ्गोंको बजानेलगे तथा सिंहनाद करनेलगे ॥ २० ॥ परिश्रमसे पसीनेमें सराबोर हो खिन्न होतेहुए श्रीकृष्णने अर्जुनको पुकार कर कहा कि—हे अर्जुन ! तू कहाँ है तू मुझे दिखाई नहीं देता, हे शत्रुनाशन ! तू जीवित तो है ? ॥ २१ श्रीकृष्णके ऐसे वचनों को सुनकर अर्जुनने शीघ्रताके साथ उनकी की हुई बाणवृष्टिको वायव्यास्त्रसे बखेर दिया ॥२२॥ उस समय भगवान् पवनदेव, हाथी घोड़े और रथसहित त्रिगर्तोंको सूखेहुए पत्तोंके ढेरकी समान उडाकर लेगये ॥ २३ ॥ हे राजन् ! उस समय वायुसे उड़े हुए त्रिगर्त वृक्षोंपरसे उडतेहुए पक्षियोंकी समान बड़े अच्छे मालूम होते थे ॥ २४ ॥ उनको इसप्रकार व्याकुल करके अर्जुनने

भल्लैरहनद्बाहूनपि च सायुधान् । हस्तिहस्तोपमांश्चोरून् शरै-
रुर्व्यामपातयत ॥ २६ ॥ पृष्ठच्छिन्नान् विचरणान् बाहुपार्श्वेक्ष-
णाकुलान् । नानाङ्गावयवैर्हीनांश्चकारारीन् धनञ्जयः ॥ २७ ॥
गन्धर्वनगराकारान् विधिवत् कल्पितान् रथान् । शरैर्विशकली
कुर्वन् चक्रे व्यश्वरथाद्विपान् ॥ २८ ॥ मुण्डतालवनानीव तत्र
तत्र चकाशिरे । छिन्ना रथध्वजव्राताः केचित्तत्र क्वचित् क्वचित् २९
सोत्तरायुधिनो नागाः सपताकाङ्कुशध्वजाः । पेतुः शक्राशनिहता
द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ ३० ॥ चामरापीडकवचाः स्रस्तान्त्रनयना-
स्तथा । सारोहास्तुरगाः पेतुः पार्थबाणहताः क्षितौ ३१ ॥ विप-
विद्धासिनखराश्छिन्नवर्मर्ष्टिशक्तयः । पत्तयश्छिन्नवर्माणः कृपणाः

शीघ्रताके साथ बाण छोडकर सहस्रों और सैंकड़ों त्रिगर्तोंको मारडाला ॥ २५ और भल्लोंमेंसे उनके शिरोंको काटलिया तथा बाणोंसे ही उनके हथियार सहित हाथोंको और हाथीकी सूँड की समान जंघाओंको पृथ्वीमें गिरादिया॥२६॥ तदनन्तर अर्जुनने शत्रुओंके हाथ पैर, पसली और नेत्र आदि शरीरके अवयवों को काटकर उनको व्याकुल करदिया ॥ ॥ २७ गंधर्व नगरोंकी समान तथा बडी चतुरतासे बनाएहुए उनके रथोंके बाणोंसे धुर्रे बखेर कर अर्जुनने त्रिगर्तोंको हाथी घोड़े और रथोंसे शून्य कर दिया ॥ २८ ॥ इधर उधर पड़ेहुए छिन्नभिन्न रथ और ध्वजाओंके समूह वनमें टूट कर पड़े हुए तालके समूहोंके समान शोभा पारहे थे ॥२९॥ हाथी और उनके ऊपर बैठेहुए योधा, पताका अंकुश और ध्वजायें भी अर्जुनके प्रहारसे रणमें ऐसे गिररहे थे, जैसे इन्द्रके वज्रका प्रहार होनेसे वृक्षोंके सहित पर्वत गिरते हैं ३० अर्जुनके बाणोंके प्रहारसे चमर, मुकुट, कवच और घुडसवारों सहित जिनकी आँते और आँखे निकलपड़ी थीं ऐसे घोड़े पृथ्वी में गिरनेलगे॥३१॥ पैदलोंकी तलवारें और बाघनखके टुकड़े २

शेरते हताः ॥ ३२ ॥ तैर्हतैर्हन्यमानैश्च पतद्भिः पतितैरपि । भ्रमद्भिर्निष्टनद्भिश्च क्रूरमायोधनं वभौ ॥ ३३ ॥ रजश्च सुमहज्जातं शान्तं रुधिरवृष्टिभिः । मही चाप्यभवद् दुर्गा कबन्धशतसंकुला ३४ तद्भभौ रौद्रवीभत्सं वीभत्सोर्यानमाहवे । आक्रीडमिव रुद्रस्य घ्नतः कालात्यये पशून् ॥ ३५ ॥ ते वध्यमानाः पार्थेन व्याकुलाश्वरथद्विपाः । तमेवाभिमुखाः क्षीणाः शक्रस्यातिथितां गताः ॥ ३६ ॥ सा भूमिर्भरतश्रेष्ठ निहतैस्तैर्महारथैः । आस्तीर्णा सम्बभौ सर्वा प्रेतीभूतैः समन्ततः ॥ ३७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे चैव प्रमत्ते सव्यसाचिनि । व्यूढानीकस्ततो द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ३८ ॥ तं

होगए शरीर परके कवच फटगये और योधा बाणोंके प्रहारसे मरकर भूमिमें ढहपड़े॥३२॥इस प्रकार अर्जुनके मारेहुए, मरकर भूमिमें पड़ेहुए, गिरतेहुए, चारों ओर घूमते और चिल्लाते हुए योधाओंसे रणस्थल भयंकर होरहा था ॥३३॥ उडती हुई धूलि भी रक्तकी वर्षासे दबगई थी और सैंकडों मनुष्योंके धडोंसे भर जानेके कारण पृथ्वी पर चलना भी कठिन होगया था ॥३४॥ प्रलयके समय प्राणियोंका संहार करतेहुए शिवकी क्रीड़ा जैसे वीभत्स और रौद्ररससे भरीहुई होती है ऐसे ही इस समय अर्जुनकी युद्धक्रीडा वीभत्स और रौद्ररससे भरीहुई थी ३५ अर्जुनके हाथसे मरे हुए वे त्रिगर्त और उनके घोड़े रथ तथा हाथी व्याकुल होगए और घबडाहटके कारण अर्जुनकी ओरको ही दौडते हुए मरकर इन्द्रके अतिथि बनगए ॥ ३६ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! रणमें मरकर प्रेतरूप पड़ेहुए महारथियोंसे ढकीहुई यह सब रणभूमि बड़ी अच्छी मालूम होती थी ॥ ३७ ॥ इसप्रकार अर्जुन मदमें भरकर त्रिगर्तोंको माररहा था, यह देख द्रोणाचार्य अपनी सेनाको व्यूहरचनामें लाकर राजा युधिष्ठिरके ऊपर टूटपड़े॥३८॥

प्रत्यगृह्णंस्त्वरिता व्यूढानीकाः प्रहारिणः । युधिष्ठिरं परीप्सन्तस्तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि अर्जुनसंशप्तकयुद्धे ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सञ्जय उवाच । परिणाम्य निशान्तां तु भारद्वाजो महारथः । उक्त्वा सुबहु राजेन्द्र वचनं वै सुयोधनम् ॥ १ ॥ विधाय योगं पार्थेन संशप्तकगणैः सह । निष्क्रान्ते च तदा पार्थे संशप्तकवधं प्रति ॥२॥ व्यूढानीकस्ततो द्रोणः पाण्डवानां महाचमूम् । अभ्ययाद्भरतश्रेष्ठ धर्मराजजिघृक्षया ॥३॥ व्यूहं दृष्ट्वा सुपर्णन्तु भारद्वाजकृतं तदा । व्यूहेन मण्डलार्द्धेन प्रत्यव्यूहद्युधिष्ठिरः । मुखमासीत् सुपर्णस्य भारद्वाजो महारथः॥४॥ शिरो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः । चक्षुषी कृतवर्मासीत् गौतमश्चास्यतां वरः ५

इतनेमेंही युधिष्ठिरकी रक्षा करनेवाले भी शीघ्रतासे व्यूहरचना करके द्रोणके सामने लड़नेको तयार होगये और उन दोनोंमें घोर युद्ध होनेलगा ॥ ३९ ॥ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे राजेन्द्र ! महारथी द्रोणाचार्यने वह रात बितादी, दूसरे दिन दुर्योधनसे बहुतसे वचन कहे ॥ १ ॥ तथा संशप्तकगणोंके साथ अर्जुनके लड़नेका ढङ्ग बनाया, जिससे कि संशप्तकोंका वध करनेके लिये अर्जुन चलागया ॥ २ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! यह अवसर पा द्रोणाचार्य अपनी बड़ीभारी सेनाको गरुड़-व्यूहमें रचकर धर्मराजको पकड़ने की इच्छासे पांडवोंकी सेना पर जाचढे ॥ ३ ॥ द्रोणाचार्यके रचे हुए गरुड़-व्यूहको देखकर राजा युधिष्ठिरने अपनी सेनाका मण्डलार्धव्यूह रचा, गरुड़व्यूहके मुखपर महारथी द्रोणाचार्य खडेहुए॥४॥ और राजा दुर्योधन अपने छोटे भाइयों और अनुयायियोंको साथ में लेकर उसके मस्तकपर खड़ा हुआ, उस व्यूहमें नेत्रोंके स्थानमें

भूतशर्मा क्षेमशर्मा करकाक्षश्च वीर्यवान् । कलिङ्गाः सिंहलाः
प्राच्याः शूरा भीरा दशेरकाः ॥ ६ ॥ शका यवनकाम्बोजास्तथा
हंसपथाश्च ये । ग्रीवायां शूरसेनाश्च दरदा मद्रकेकयाः ॥ ७ ॥
गजाश्वरथपत्योघास्तस्थुः परमदंशिताः । भूरिश्रवास्तथा शल्यः
सोमदत्तश्च बाह्लिकः ॥ ८ ॥ अक्षौहिण्या वृता वीरा दक्षिणं
पार्श्वमाश्रिताः । विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः९
वामं पार्श्वं समाश्रित्य द्रोणपुत्राग्रतः स्थिताः । पृष्ठे कलिङ्गाः
साम्बष्ठा मागधाः पौण्ड्रमद्रकाः ॥१०॥ गान्धाराः शकुनाः प्राच्याः
पार्वतीयाः वसातयः । पुच्छे वैकर्त्तनः कर्णः सपुत्रज्ञातिबांधवः ११
महत्या सेनया तस्थौ नानाजनपदोत्थया । जयद्रथो भीमरथः
सम्पातिर्ऋषभो जयः ॥ १२ ॥ भूमिञ्जयो वृषः क्राथो नैषधश्च

कृतवर्मा और वाण छोड़नेमें श्रेष्ठ कृपाचार्य खडेहुए थे और पराक्रमी भूतशर्मा, क्षेमशर्मा, करकाक्ष कलिंग, सिंहल, पुरविये, शूर देशवाले, आभीर, दाशेरक शक, यवन, काम्बोज, हंसपथ, शूरसेन, दरद, मद्र, केकय, ये परमचतुर राजे अपने२ सैंकड़ों सहस्रों हाथी, घोड़े और पैदलोंकी सेनाओंको लेकर उस व्यूहके ग्रीवास्थानमें खडे थे, ये सब वैरभावका बड़ाही डाह रखते थे, उस व्यूहकी दाहिनी करवटमें एक अक्षौहिणी सेनाको साथमें लेकर वीर भूरिश्रवा, शल्य, सोमदत्त, और वाल्हीक खडेहुए, उस व्यूहकी बाईं करवटमें उज्जैनके विन्द, अनुविन्द, कांबोज और सुदक्षिण खडे थे, उनके पीछे अश्वत्थामा खड़ा था, और पिछले भागमें कलिङ्ग, अम्बष्ठ, मागध, पौंड्र, मद्रक, गंधार, शकुन, प्राच्य, पहाड़ी और वसाति आदि खडे थे, अपने जातिवाले और कुटुम्बवालोंको और नानादेशोंकी बड़ी सेनाको साथमें लेकर कर्ण उस व्यूहके पुच्छभागमें खड़ा था, हे राजन्! ब्रह्मलोकमें मान्य, युद्धकुशल, जयद्रथ, भीमरथ, सम्पाति, ऋषभ, जय, भूमिञ्जय, वृष, क्राथ, और

महाबलः । वृता बलेन महता ब्रह्मलोकपरिष्कृताः ॥ १३ ॥ व्यूहस्योरसि ते राजन् स्थिता युद्धविशारदाः । द्रोणेन विहितो व्यूहः पदात्यश्वरथद्विपैः ॥ १४ ॥ वातोद्धूतार्णवाकारः प्रनृत्त इव लक्ष्यते । तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ॥ १५ ॥ सविद्युत्स्तनिता मेघाः सर्वदिग्भ्य इवोष्णगे । तस्य प्राग्ज्योतिषो मध्ये विधिवत् कल्पितं गजम् ॥ १६ ॥ आस्थितः शुशुभे राजन्नंशुमानुदये यथा । माल्यदामवता राजन् श्वेतच्छत्रेण धार्यता ॥ १७ ॥ कृत्तिकायोगयुक्तेन पौर्णमास्यामिवेन्दुना । नीलाञ्जनचयप्रख्यो मदान्धो द्विरदो बभौ ॥ १८ ॥ अतिवृष्टो महामेघैर्यथा स्यात् पर्वतो महान् । नानानृपतिभिर्वीरैर्विविधायुधभूषणैः ॥ १९ ॥ समन्वितः पार्वतीयैः शक्रो देवगणैरिव ।

महाबली नैषध बड़ीभारी सेनाके साथ गरुडव्यूहके हृदयभागमें खडे थे, इसप्रकार पैदल, घोडे, रथ, और हाथियोंके द्वारा द्रोणाचार्यका रचाहुआ गरुडव्यूह वायुसे झकोले खातेहुए समुद्रकी समान नाचता हुआसा प्रतीत होता था, जैसे ग्रीष्मऋतुके बीतने पर हरएक दिशा और विदिशाओंमेंसे गडगडातेहुए और बिजली चमकातेहुए मेघ उठते हैं, तैसेही उस व्यूहके पंखों और परपंखों मेंसे गर्जतेहुए योधा लडनेके लिये बाहर निकले पडते थे, उस व्यूहके मध्यभागमें अच्छीप्रकार सजाएहुए हाथीके ऊपर बैठाहुआ प्राग्ज्योतिष देशका राजा भगदत्त उदय होतेहुए सूर्यकी समान प्रकाशित होरहा था, हे राजन्! पुष्पोंकी मालावाले श्वेतछत्रसे वह राजा भगदत्त; शरदऋतुमें कृत्तिका नक्षत्रका योग होनेपर पूर्णिमा के चन्द्रमाकी समान शोभा पारहा था, काले सुरमेके पहाडकी समान उसका मदमत्त हाथी घोर वर्षा होनेसे धुलेहुए (काले) महापर्वतकी समान शोभा पारहा था, और वह राजा नानाप्रकारके गहने तथा आयुधोंको धारण करनेवाले बहुतसे देशोंके राजाओंसे

ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य व्यूहं तमतिमानुषम् ॥ २० ॥ अजय्यमरिभिः संख्ये पार्षतं वाक्यमब्रवीत् । ब्राह्मणस्य वशं नाहमियामद्य यथा प्रभो । पारावतसवर्णाश्व तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २१ ॥ धृष्टद्युम्न उवाच । द्रोणस्य यतमानस्य वशं नैष्यसि सुव्रत । अहमावारयिष्यामि द्रोणमद्य सहानुगम् ॥ २२ ॥ मयि जीवति कौरव्य नोद्वेगं कर्तुमर्हसि । न हि शक्तो रणे द्रोणो विजेतुं मां कथञ्चन ॥ २३ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वा किरन् बाणान् द्रुपदस्य सुतो बली पारावतसवर्णाश्वः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ २४ ॥ अनिष्टदर्शनं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नमवस्थितम् । क्षणेनैवाभवद् द्रोणो नातिहृष्टमना इव ॥ २५ ॥ तं तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रस्ते दुर्मुखः शत्रुकर्षणः । प्रियं चिकीर्षुर्द्रोणस्य धृष्टद्युम्नमवारयत् ॥ २६ ॥ स

तथा पहाड़ियोंसे घिरकर, देवताओंसे घिरेहुए इन्द्रकी समान शोभा पारहा था, राजा युधिष्ठिरने उस अलौकिक व्यूहको देखकर युद्धमें शत्रुओंसे अजेय पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्नसे कहा, कि–हे कबूतरोंकेसे रङ्गके घोड़ेवाले समर्थ धृष्टद्युम्न ! अब तुम ऐसा उपाय करो; कि जिससे मैं द्रोणाचार्यके हाथमें न पड़ूँ ॥ ५–२१ ॥ धृष्टद्युम्नने कहा, कि–हे सुव्रत ! द्रोण चाहैं लाख प्रयत्न करैं परन्तु मैं तुम्हें उनके वशमें नहीं पड़ने दूँगा, आज मैं स्वयं द्रोणको और उनके अनुयायियोंको आगे बढ़नेसे रोकूँगा ॥ २२ ॥ हे कुरुपुत्र ! जब तक मैं जीता हूँ, तबतक आपको घबड़ाना नहीं चाहिये, द्रोण रणमें मुझे किसीतरह नहीं जीतसकते ॥ २३ ॥ सञ्जयने कहा, कि-इतना कहकर महाबली कबूतरोंकेसे रङ्गके घोड़ोंवाला द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न स्वयंही बाणोंकी वृष्टि करता हुआ द्रोणके सामने जाचढ़ा ॥ २४ ॥ सामनेही अनिष्टरूप (अपना मारक होनेसे) धृष्टद्युम्नको देख क्षणभरमेंही द्रोण खिन्न होगये ॥ २५ ॥ ऐसी दशा देखकर तुम्हारे पुत्र दुर्मुखने द्रोणाचार्यका प्रिय करनेकी इच्छासे

संप्रहारस्तुमुलः सुघोरः समपद्यत । पार्षतस्य च शूरस्य दुर्मुखस्य च भारत ॥ २७ ॥ पार्षतः शरजालेन क्षिप्रं प्रच्छाद्य दुर्मुखम् । भारद्वाजं शरौघेण महता समवारयत् ॥ २८ ॥ द्रोणमावारितं दृष्ट्वा भृशायस्तस्तवात्मजः । नानालिंगैः शरव्रातैः पार्षतं सममोहयत् ॥ २९ ॥ तयोर्विषक्तयोः संख्ये पाञ्चाल्यकुरुमुख्ययोः । द्रोणो यौधिष्ठिरं सैन्यं वहुधा व्यधमच्छरैः ॥ ३० ॥ अनिलेन यथाभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः। तथा पार्थस्य सैन्यानि विच्छिन्नानि क्वचित् क्वचित् ॥ ३१ ॥ मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् । तत उन्मत्तवद्राजन् निर्मर्यादमवर्त्तत ॥३२॥ नैव स्वे न परे राजन्नाज्ञायन्त परस्परम् । अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तत् समवर्त्तत ॥ ३३ ॥ चूडामणिषु निष्केषु भूषणेष्वपि वर्मसु । तेषा-

---

धृष्टद्युम्नको आगे वढनेसे रोकदिया ॥ २६ ॥ हे भारत ! तव वीर धृष्टद्युम्न और दुर्मुखका महाभयंकर तुमुल युद्ध होनेलगा ।२७। धृष्टद्युम्नने शीघ्रताके साथ वाणोंके जालसे दुर्मुखको छादिया और वाणोंकी महावृष्टि करके द्रोणाचार्यको आगे वढनेसे रोक दिया ।२८ तुम्हारे पुत्रने द्रोणाचार्यको रोकाहुआ देखकर वडे परिश्रम से नाना प्रकारके वाणोंके जालोंसे धृष्टद्युम्नको महामोहमें डाल दिया॥२९॥ इसप्रकार धृष्टद्युम्न और दुर्मुखका युद्ध चलरहा था, इसी अवसरमें द्रोणने वाणोंके प्रहारसे युधिष्ठिरकी सेनाका संहार करडाला॥३०॥जैसे वायुसे वादल छिन्न भिन्न होजाते हैं, तैसे ही युधिष्ठिरकी सेनाको वहुतसी जगहोंसे छिन्न भिन्न करके व्यूहको खोलदिया ॥ ३१ ॥ वह युद्ध क्षणभरको वड़ा ही मधुर मालूम हुआ, परन्तु पीछेसे पागलोंकी समान मर्यादाको छोड़कर होने लगा ॥३२॥ वे योधा आपसमें अपने परायेको भूलकर मोहान्ध हो लड़नेलगे उनका युद्ध केवल अनुमान और नामके ऊपर ही चलनेलगा ॥ ३३ ॥ उस समय योधाओंके मुकुट, आभूषण,

मादित्यवर्णाभा रश्मयः प्रचकाशिरे ॥ ३४ ॥ तत् प्रकीर्णपताकानां
रथवारणवाजिनाम् । बलाकाशबलाभ्राभं ददृशे रूपमाहवे
॥ ३५ ॥ नरानेव नरा जघ्नुरुदग्राश्च हया हयान् । रथाश्च
रथिनो जघ्नुर्वारणा वरवारणान् ॥ ३६ ॥ समुच्छ्रितपताकानां
गजानां परमद्विपैः । क्षणेन तुमुलो घोरः संग्रामः समपद्यत ३७
तेषां संसक्तगात्राणां कर्षतामितरेतरम् । दन्तसंघातसंघर्षात्सधूमोग्निरजायत
॥ ३८ ॥ विप्रकीर्णपताकास्ते विषाणजनिताग्नयः ।
बभूवुः खं समासाद्य सविद्युत इवाम्बुदाः ॥ ३९ ॥ विक्षिपद्भिर्नदद्भिश्च
निपतद्भिश्च वारणैः । सम्बभूव मही कीर्णा मेघैर्द्यौरिव
शारदी ॥४०॥ तेषामाहन्यमानानां बाणतोमरऋष्टिभिः । वारणानां
रवो जज्ञे मेघानामिव संप्लवे ॥ ४१ ॥ तोमराभिहताः

निष्क और कवचोंकी किरणें सूर्यकी किरणोंकी समान प्रकाशित
हो रही थीं ॥ ३४ ॥ जिनके ऊपर पताकाएं फहरा रहीं थीं
ऐसे हाथी, घोड़े और रथोंका रूप बगुलियोंवाले मेघोंकी समान
शोभा पारहा था ॥ ३५ ॥ उस समय पैदलोंने पैदलोंको और
मदोत्कट हाथियोंने हाथियोंको मारा, रथियोंको रथी मारनेलगे
तथा घोड़े घोड़ोंको मारनेलगे ॥ ३६ ॥ क्षणभरमें ही बड़े बड़े
हाथियोंका झण्डियोंवाले हाथियोंके साथ तुमुल युद्ध होनेलगा ३७
युद्ध करतेमें हाथियोंके शरीर आपसमें सटगए और वे एक दूसरे
को घसीटनेलगे, तथा दांतोंको दांतोंसे टकराने लगे इससे धुएं
वाला अग्नि सुलग उठा ॥ ३८ ॥ जिनके ऊपर झण्डे फहरा
रहे थे, और जिनके दांतोंके लडनेसे अग्नि निकल रही थी ऐसे
हाथी आकाशमें बिजलीवाले मेघोंकी समान दीखते थे ॥ ३९ ॥
जैसे शरदऋतुमें आकाश बादलोंसे घिरजाता है वैसेही चिंघाडते,
प्रहार करते और मरकर गिरतेहुए हाथियोंसे पृथ्वी ढकगई ४०
बाण, तोमर और ऋष्टियोंसे घायलहुए उन हाथियोंकी चिंघाड

केचिद्वाणैश्च परमद्विपाः । विनेदुः सर्वनागानां शब्दमेवापरेऽव्रजन् ॥ ४२ ॥ विषाणाभिहताश्चापि केचित्तत्र गजा गजैः । चक्रुरार्त्तस्वनं घोरमुत्पातजलदा इव ॥ ४३ ॥ प्रतीपाः क्रियमाणाश्च वारणा वरवारणैः । उन्मथ्य पुनराजग्मुः प्रेरिताः परमांकुशैः ॥ ४४ ॥ महामात्रैर्महामात्रास्ताडिताः शरतोमरैः । गजेभ्यः पृथिवीं जग्मुर्मुक्तप्रहरणांकुशाः ॥ ४५ ॥ निर्मनुष्याश्च मातङ्गा विनदन्तस्ततस्ततः । छिन्नाभ्राणीव सम्पेतुः सम्प्रविश्य परस्परम् ॥ ४६ ॥ हतान् परिवहन्तश्च पतितान् पतितायुधान् । दिशो जग्मुर्महानागाः केचिदेकचरा इव ॥४७॥ ताडितास्ताड्यमानाश्च

प्रलयकालके मेघोंकी गडगडाहटकी समान मालूम होती थी ४१ वाणों और तोमरोंसे घायलहुए वहुतसे हाथी घवडारहे थे और वहुतसे हाथी उन हाथियोंका शब्द सुनकर भागरहे थे ॥ ४२ ॥ कितनेही दांतोंके प्रहारोंसे घायलहुए हाथी, उत्पातके समयके मेघोंकी समान चीत्कार कररहे थे ॥ ४३ ॥ कितनेही वडे हाथी दूसरे हाथियोंको अपना शत्रु बनाकर रौंदने लगे महावतोंने उनको अंकुशोंसे पीछेको हटा फिर लडादिया ॥ ४४ ॥ वडे हाथियोंके महावत छोटे२ हाथियोंके महावतोंको वाण और तोमरोंसे मारने लगे, इससे महावतोंके हाथमेंसे अंकुश और तोमर गिरनेलगे और वे हाथियों परसे जमीनपर लुढकपडे ॥ ४५ ॥ विना महावतोंके वे हाथी चिघाडते२ आपसमें लडकर छिन्न भिन्नहुए मेघों की समान पृथिवीपर गिरपडे ॥ ४६ ॥ कितनेही योधा हाथियोंके ऊपरही मरगए, कितनेही हाथियों परसे लुढकपडे कितनेही योधाओंके हथियार गिरपडे भरकर अपने ऊपर पडेहुए उन मनुष्योंको लादकर ऐसे भागे कि-मानो दूसरे हाथियोंकी मार कोन सहकर एकान्तवास करने जारहे हैं ॥ ४७ ॥ उस घोर संहार में कितनेही हाथी तोमर, ऋष्टि और फरसोंसे पीडा पाते

तोमरर्ष्टिपरश्वधैः । पेतुरार्त्तस्वनं कृत्वा तदा विशसने गजाः ४८
तेषां शैलोपमैः कायैर्निपतद्भिः समन्ततः । आहता सहसा भूमि-
श्चकम्पे च ननाद च ॥ ४९ ॥ सादितैः सगजारोहैः सपताकैः
समन्ततः । मातङ्गैः शुशुभे भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ॥ ५० ॥
गजस्थाश्च महामात्रा निर्भिन्नहृदया रणे । रथिभिः पातिता भल्लै-
र्विकीर्णाङ्कुशतोमराः ॥ ५१ ॥ क्रौञ्चवद्विनदन्तोन्ये नाराचाभि-
हता गजाः । परान् स्वांश्चापि मृद्नन्तः परिपेतुर्दिशो दश ॥५२॥
गजाश्वरथयोधानां शरीरौघसमावृता । बभूव पृथिवी राजन् मांस-
शोणितकर्दमा ॥ ५३ ॥ प्रमथ्य च विषाणाग्रैः समुत्क्षिप्ताश्च
वारणैः । सचक्राश्च विचक्राश्च रथैरेव महारथाः ॥५४॥ रथाश्च
रथिभिर्हीना निर्मनुष्याश्च वाजिनः । हतारोहाश्च मातङ्गा दिशो

हुए बडीभारी चीत्कारके साथ रणभूमिमें गिरपडे॥ ४८ ॥ पर्वत
केसे शरीरोंवाले चारों ओर गिरतेहुए उन हाथियोंसे धमाका
पाकर पृथिवी काँपने लगी और उसमेंसे शब्द निकलनेलगा ४९
झण्डोंवाले तथा सवारों सहित मरकर पडेहुये हाथियोंसे पृथ्वी
बिखरेहुये पर्वतोंवालीसी शोभा पारही थी ॥ ५० ॥ हाथियों पर
बैठेहुये महावतोंका हृदय रथियोंने भालोंसे फोड उनको गिरादिया
उनके हाथोंमेंसे अंकुश और तोमर गिरकर बिखरगये ॥ ५१ ॥
कितनेही हाथी बाणोंसे घायल होकर क्रौंचकी समान गर्जनाकर
अपने और दूसरोंको कुचलतेहुए चारों दिशाओंमें गिरनेलगे ५२
हे राजन् ! हाथी, घोडे, रथ और योधाओंकी लाशोंसे छाईहुई
पृथिवीपर मांस और रुधिरकी कींचहोगई ॥ ५३ ॥ हाथियोंके
दाँत मार२कर तोड़ हुए पहियोंसे रहित अथवा पहियों वाले
रथमें बैठेहुए महारथी, रथीरहित रथ, सवारोंसे रहित घोडे,
महावतोंसे रहित हाथी भयसे घबडाकर चारों ओरको भागने
लगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इस युद्धमें पिता पुत्रको मारनेलगा और

जग्मुर्भयातुराः ॥५५॥ जघानात्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा । इत्यासीत्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ५६ ॥ आगुल्फेभ्योवसीदन्ते नरा लोहितकर्दमैः । दीप्यमानैः परिक्षिप्ता दावैरिव महाद्रुमाः ॥ ५७ ॥ शोणितैः सिच्यमानानि वस्त्राणि कवचानि च । छत्राणि च पताकाश्च सर्वं रक्तमदृश्यत ॥ ५८ ॥ हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्च निपातिताः । संक्षुण्णाः पुनरावृत्य बहुधा रथनेमिभिः ॥५९॥ स गजौघमहावेगः परासुनरशैवलः । रथौघतुमुलावर्त्तः प्रबभौ सैन्यसागरः ॥ ६० ॥ तं वाहनमहानौभिर्योधा जयधनैषिणः । अवगाह्याथ मज्जन्तो नैव मोहं प्रचक्रिरे ६१ शरवर्षाभिवृष्टेषु योधेष्वंचितलक्ष्मसु । न तेष्वचित्ततां लेभे कश्चि-

---

पुत्र पिताको मारनेलगा तथा यह युद्ध ऐसा तुमुल हुआ, कि—क्या होरहा है यह कुछ भी नहीं मालूम होता था ॥ ५६ ॥ एड़ी तक रुधिरकी कीचमें फँसजानेसे मनुष्य इसप्रकार पीड़ा पाते थे जैसे धधकतीहुई दौंकी अग्निसे घिरजाने पर पेड़ झुलस जाते हैं ५७ लोहूसे भीगीहुई पताकाएं, वस्त्र, कवच और छत्र, सब लाल ही लाल दिखाई देते थे ॥५८॥ घोड़े, रथी रथ और योधाओंके मृत शरीरोंके ढेरके ढेर पड़े थे, वे रथोंके आनेजानेके कारण पहियोंकी धारसे दुसराकर कटजाते थे ॥५९॥ हाथियोंके समूहरूप वेगवाला, मरेहुए मनुष्योंके शरीरोंके समूहरूप सिवारवाला रथोंके समूहरूप भयंकर भँवरवाला सेनारूपी समुद्र दिपनेलगा ॥ ६० ॥ योधारूपी व्यापारी जयरूप धनको पानेकी इच्छासे घोड़ेरूप नावमें बैठकर तैरतेर उस सेनासागरमें गोते खाजाने पर भी बेहोश नहीं होते थे ॥६१॥ बाणोंकी वर्षासे योधाओंके चिन्होंका नाश हो गया था, इससे उनको यह नहीं मालूम होता था कि—अपना और पराया कौन है ? ॥ ६२ ॥ जब इसप्रकार महाभयंकर घोर

दाहतलक्षणः ॥ ६२ ॥ वर्त्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयङ्करे । मोहयित्वा परान् द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
संकुलयुद्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

संजय उवाच । ततो युधिष्ठिरो द्रोणं दृष्ट्वांतिकमुपागतम् । महता शरवर्षेण प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥१॥ ततो हलहलाशब्द आसीद्यौधिष्ठिरे बले । जिघृक्षति महासिंहे गजानामिव यूथपं ॥ २ ॥ दृष्ट्वा द्रोणं ततः शूरः सत्यजित्सत्यविक्रमः । युधिष्ठिरमभिप्सुराचार्यं समुपाद्रवत ॥ ३ ॥ तत आचार्यपांचाल्यौ युयुधाते महाबलौ । विक्षोभयन्तौ तत्सैन्यमिंद्रवैरोचनाविव ॥४॥ ततो द्रोणं महेष्वासः सत्यजित्सत्यविक्रमः । अविध्यन्निशिताग्रेण परमास्त्रं विदर्शयन्५ तथास्य सारथेः पञ्च शरान्सर्पविषोपपान। अमुंचदंतकप्रख्यान्सुमो-

---

युद्ध चल रहा था उस समय द्रोणाचार्य शत्रुओंको मोहित करके युधिष्ठिरकी ओरको बढते चलेजाते थे ॥ ६३ ॥ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि–राजा युधिष्ठिर द्रोणको समीपमें आया देखकर निडर हो बाणोंसे उनका सामना करनेलगे ॥ १ ॥ सिंह जैसे हाथियोंके यूथपति नागराजको पकड़नेको आता है तैसे ही द्रोणचार्यके युधिष्ठिरको पकड़नेके लिये आने पर,युधिष्ठिरकी सेनामें बड़ाभारी कोलाहल मचगया ॥ २॥ यह देखकर शूर सत्यपराक्रमी सत्यजित् युधिष्ठिरको बचानेकी इच्छासे द्रोणाचार्यके सामने चढ़आया ॥ ३ ॥ वे महाबली पाञ्चाल और द्रोणाचार्य सेनाको व्याकुल करतेहुए इन्द्र और विरोचनकी समान युद्ध करनेलगे ॥ ४॥ तदनन्तर महाबली सत्यपराक्रमी सत्यजित्ने अपनी अस्त्रकुशलता दिखातेहुए अस्त्रकी तेज नोकसे द्रोणको घायल करदिया ॥ ५ ॥ और उनके सारथीको भी सर्पके विषकी

हस्यसारथिः ६ अथास्य सहसाविध्यद्धयान्दशभिराशुगैः । दशभिर्दशभिः क्रुद्ध उभौ च पार्ष्णिसारथी ७ मंडलं तु समाहत्य विचरन्पृतनामुखे । ध्वजं चिच्छेद च क्रुद्धो द्रोणस्यामित्रकर्षणः ८ द्रोणस्तु तत्समालोक्य चरितं तस्य संयुगे । मनसा चिंतयामास प्राप्तकालमरिन्दमः ॥ ९ ॥ ततः सत्यजितं तीक्ष्णैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः । अविध्यच्छीघ्रमाचार्यश्छित्त्वास्य सशरं धनुः ॥ १० ॥ स शीघ्रतरमादाय धनुरन्यत्प्रतापवान् । द्रोणमभ्यहनद्राजंस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ११ दृष्ट्वा सत्यजिता द्रोणं ग्रस्यमानमिवाहवे । वृकः शरशतैस्तीक्ष्णैः पांचाल्यो द्रोणमार्दयत् ॥ १२ ॥ संछाद्यमानं समरे द्रोणं दृष्ट्वा महारथम् । चुक्रुशुः पाण्डवा राजन् वस्त्राणि दुधुवुश्च ह ॥१३॥ वृकस्तु परमक्रुद्धो द्रोणं षष्ट्या स्तनांतरे । विव्याध बलवान् राज-

---

समान तीखे और कालकी समान भयानक पाँच बाण मारकर मूर्च्छित करदिया ॥ ६ ॥ तदनन्तर उसने शत्रुनाशी द्रोणके घोड़ोंको दश बाण मारकर बींधडाला और क्रोधमें भरकर दश२ बाणोंसे दोनों पार्श्वरक्षकोंको बींधदिया और सेनाके मुहानों पर क्रोधमें भरकर उसने मण्डलाकारसे घूमकर द्रोणकी ध्वजाको काटडाला ॥ ७-८ ॥ शत्रुनाशी द्रोणाचार्यने युद्धमें उसके चरित्रको देखकर अपने मनमें यह समझा कि-इसका समय आगया है ॥ ९ ॥ और मर्मभेदी दश तीक्ष्ण बाणोंसे उसको बींधकर उसके धनुष बाणको काटडाला ॥ १० ॥ परन्तु हे राजन् ! उसने शीघ्रतासे दूसरा धनुष लेकर कङ्कपत्रवाले तीस बाण मारकर द्रोणाचार्यको बींधडाला ११ इसप्रकार द्रोणको सत्यजित्के द्वारा डूबतेहुए देखकर पांचाल वृकने भी सौ बाणोंसे द्रोणाचार्यको पीड़ित किया १२ युद्धमें द्रोणको बाणोंसे ढकाहुआ देखकर पाण्डव हर्षसे वस्त्र उछालने लगे और आनन्दध्वनि करनेलगे १३ हे राजन् ! वृकने बड़े भारी क्रोधमें भरकर द्रोणकी छातीमें साठ

स्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १४ ॥ द्रोणस्तु शरवर्षेणच्छाद्यमानो महारथः । वेगं चक्रे महावेगः क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ १५ ॥ ततः सत्यजितश्चापं छित्वा द्रोणो वृकस्य च । षड्भिः ससूतं सहयं शरैर्द्रोणोवधीद् वृकम् ॥ १६ ॥ अथान्यद्धनुरादाय सत्यजिद्वेगवत्तरम्। साश्वं ससूतं विशिखैर्द्रोणं विव्याध सध्वजम् ॥ १७ ॥ स तं न ममृषे द्रोणः पाञ्चाल्येनार्दितो मृधे । ततस्तस्य विनाशाय सत्वरं व्यसृजच्छरान् ॥ १८ ॥ हयान् ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ च पार्ष्णिसारथी । अवाकिरत्ततो द्रोणः शरवर्षैः सहस्रशः ॥ १९ ॥ तथा संछिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः । पांचाल्यः परमस्त्रज्ञः शोणाश्वं समयोधयत् ॥ २० ॥ स सत्यजितमालोक्य तथोदीर्णं महाहवे । अर्द्धचन्द्रेण चिच्छेद शिरस्तस्य महात्मनः ॥ २१ ॥ तस्मिन्

बाण मारे, यह एक अचरजसा हुआ ॥ १४ ॥ महारथी वेगवान् द्रोणाचार्य जब इसप्रकार बाणोंसे ढकगये तो उन्होंने क्रोधमें भर अपने नेत्रोंको फाड़कर पराक्रम करना आरम्भ करदिया ॥१५॥ द्रोणाचार्यने सत्यजित् और वृकके धनुषको काटडाला और छः बाणोंसे घोड़े और सारथिसहित वृकको मारडाला ॥ १६ ॥ परन्तु सत्यजित्ने वेगवान् दूसरे धनुषको लेकर द्रोणाचार्यको और उनके घोड़े, सारथी तथा ध्वजाको भी बींधदिया ॥१७॥ द्रोणाचार्य उस पाञ्चाल्यसे पीड़ित होने पर जलउठे और उसके मारनेके लिये शीघ्रताके साथ बाण छोड़नेलगे ॥ १८ ॥ द्रोणने उसके घोड़े, ध्वजा धनुष, मुट्ठी और दोनों पार्श्वरक्षकों पर नानाप्रकारसे सहस्रों बाण छोड़े ॥ १९ ॥ पञ्चालदेशी सत्यजित इसप्रकार बारम्बार धनुषोंके टुकड़े २ होजाने पर भी लाल रंगके घोड़ेवाले द्रोणाचार्यके सामने लड़ता ही रहा ॥ २० ॥ द्रोणाचार्यने उस महायुद्धमें सत्यजित्को बहुत बढ़ाहुआ देख अर्धचन्द्राकार बाणसे उसके शिरको उड़ादिया ॥ २१ ॥ पञ्चालोंमें

हते महामात्रे पंचालानां महारथे। अपायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणात् त्रस्तो युधिष्ठिरः ॥२२॥ पंचालाः केकया मत्स्याश्चेदिकारूषकोसलाः। युधिष्ठिरमभीप्सन्तो दृष्ट्वा द्रोणमुपाद्रवन् ॥ २३ ॥ ततो युधिष्ठिरं प्रेप्सुराचार्यः शत्रुपूगहा। व्यधमत्तान्यनीकानि तूलराशिमिवानलः ॥ २४ ॥ निर्दहन्तमनीकानि तानि तानि पुनः पुनः। द्रोणं मत्स्यादवरजः शतानीकोऽभ्यवर्त्तत ॥ २५ ॥ सूर्यरश्मिप्रतीकाशैः कर्मारपरिमार्जितैः। षड्भिः ससूतं सहयं द्रोणं विद्ध्वाऽनदद्भृशम् ॥ २६ ॥ क्रूराय कर्मणे युक्तश्चिकीर्षुः कर्म दुष्करम्। अवाकिरच्छरशतैर्भारद्वाजं महारथम् ॥ २७ ॥ तस्य नानदतो द्रोणः शिरः कायात् सकुण्डलम्। क्षुरेणापाहरत्तूर्णं ततो मत्स्याः प्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥ मत्स्यान् जित्वाऽजयच्चेदीन् करूषान् केकयानपि।

महारथी उस महापुरुषके मारेजाने पर द्रोणाचार्यसे डरेहुए युधिष्ठिर तेज घोड़ोंवाले रथमें बैठकर भागगए ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरको बचानेकी इच्छावाले, पंचाल, केकय, मत्स्य, चेदि, कारूष, कोसल द्रोणके ऊपर चढ़गए ॥ २३ ॥ परन्तु शत्रुओंकी पंक्तिको नष्ट करनेवाले द्रोणाचार्य युधिष्ठिरको पकड़नेकी इच्छासे शत्रुओंकी सेनाको, जैसे अग्नि रुईको जलाता है तैसे, भस्म करनेलगे २४ इसप्रकार बाणवर्षासे बारम्बार सेनाओंको भस्म करते हुए द्रोणाचार्यके सामने मत्स्यका छोटा भाई शतानीक चढ़आया ॥ २५ ॥ सूर्यकी किरणोंकी समान, कारीगरोंके तेज किये हुए छः बाणोंसे सारथी और घोड़ोंसहित द्रोणाचार्यको बींध कर शतानीक जोरसे गरजा ॥ २६ ॥ दुष्कर कर्म करना चाहनेवाले क्रूर कर्ममें तत्पर शतानीकने महारथी द्रोणको सैंकड़ों बाणोंसे ढक दिया ॥ २७ ॥ जब कि–वह इसप्रकार बारम्बार गर्जता ही जाता था तो द्रोणाचार्यने क्षुरनामक बाणसे उसके मुकुटसहित मस्तकको उड़ादिया यह देखकर मत्स्य भागने लगे ॥२८॥ द्रोणाचार्यने

पञ्चालान् सृञ्जयान् पाण्डून् भारद्वाजः पुनः पुनः ॥ २९ ॥ तं दहन्तमनीकानि क्रुद्धमग्निं यथा वनम् । दृष्ट्वा रुक्मरथं वीरं समकम्पन्त सृञ्जयाः ॥ ३० ॥ उत्तमं ह्याददानस्य धनुरस्याशुकारिणः। ज्याघोषो निघ्नतोऽमित्रान् दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे ॥ ३१ ॥ नागानश्वान् पदातींश्च रथिनो गजसादिनः । रौद्रा हस्तवता मुक्ताः प्रमथ्नन्ति स्म सायकाः ॥ ३२ ॥ नानद्यमानः पर्जन्यो मिश्रवातो हिमात्यये । अश्मवर्षमिवावर्षन् परेषां भयमादधत् ॥ ३३ ॥ सर्वा दिशः समचरत् सैन्यं विक्षोभयन्निव । बली शूरो महेष्वासो मित्राणामभयंकरः ॥ ३४ ॥ तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् । दिक्षु सर्वासु पश्यामो द्रोणस्यामिततेजसः ॥ ३५ ॥ शोभमानां ध्वजे चास्य वेदीमद्राक्ष्म भारत । हिमवच्छिखराकारां चरतः संयुगे

मत्स्योंको जीतनेके अनन्तर चेदि, कारूष, केकय, पञ्चाल, सृञ्जय और पाण्डवोंको वारम्बार जीता॥२९॥सोनेके रथमें बैठे हुए और जैसे अग्नि वनको जलाता हो तैसे ही सेनाको भस्म करते हुए द्रोणको क्रोधमें भरा देख सृञ्जय काँपने लगे ॥३०॥ इन फुर्तीले द्रोणाचार्यके श्रेष्ठ धनुषको लेकर शत्रुओंके संहार करने पर चारों दिशाओंमें प्रत्यञ्चाका ही शब्द सुनाई पड़ता था ॥ ३१ ॥ फुर्तीले द्रोणाचार्यके द्वारा छोड़े भयङ्कर वाण हाथी, घोड़े, पैदल रथी और हाथीसवारोंको मथनेलगे ॥ ३२ ॥ जैसे शिशिरऋतुमें वायुसहित गर्जना करता हुआ मेघ ओले वर्षाता है तैसे ही द्रोणाचार्य वाण वर्षाकर शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न करनेलगे॥३३॥ वली, शूरवीर, महाधनुर्धर, शत्रुओंको भयदायक द्रोणाचार्य सेनाको खलभलाते हुएसे सब दिशाओंमें घूमने लगे ॥ ३४ ॥ महातेजस्वी द्रोणाचार्यका सुवर्णसे सजा हुआ धनुष सब दिशाओंमें मेघोंमें विजलीकी समान दीखता था ॥ ३५ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! सेनामें वारम्वार घूमते हुए द्रोणाचार्यकी ध्वजामें स्थित

भृशम् ॥ ३६ ॥ द्रोणस्तु पाण्डवानीके चकार कदनं महत् । यथा दैत्यगणे विष्णुः सुरासुरनमस्कृतः ॥ ३७ ॥ स शूरः सत्यवाक् प्राज्ञो बलवान् सत्यविक्रमः । महानुभावः कल्पान्ते रौद्रां भीरुविभीषणाम् ॥ ३८ ॥ कवचोर्मिध्वजावर्त्तां मर्त्यकूलापहारिणीम् । गजवाजिमहाग्राहामसिमीनां दुरासदाम् ॥ ३९ ॥ वीरास्थिशर्करां रौद्रां भेरीमुरजकच्छपाम् । चर्मवर्मप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ॥ ४० ॥ शरौघिणीं धनुःस्रोतां बाहुपन्नगसंकुलाम् । रणभूमिवहां तीव्रां कुरुसृञ्जयवाहिनीम् ॥ ४१ ॥ मनुष्यशीर्षपाषाणां शक्तिमीनां गदोडुपाम् । उष्णीषफेनवसनां विकीर्णान्त्रसरीसृपाम् ॥ ४२ ॥ वीरापहारिणीमुग्रां मांसशोणितकर्दमाम् । हस्तिग्राहां केतुवृक्षां क्षत्रियाणां निमज्जनीम् ॥ ४३ ॥ क्रूरां शरीरसं-

---

हिमालयके शिखरकी समान शोभायमान वेदी भी हमें दिखाई दी थी ॥ ३६ ॥ देव दानवोंके वन्दनीय विष्णुने जैसे दैत्योंका संहार किया था तैसे ही द्रोणने पांडवोंकी सेनाका घोर संहार किया ॥ ३७ ॥ वीर, सत्यवादी, बुद्धिमान्, बली, सत्यपराक्रमी, महानुभाव द्रोणने प्रलयकालकी भयङ्कर नदीकी समान, डरपोकोंको डरानेवाली, कवचकी लहरोंवाली, ध्वजोंके भँवरवाली, मनुष्यरूप किनारोंको तोडनेवाली, हाथीघोड़ेरूप नाकोंवाली, तलवाररूप मछलियोंवाली, दुःखसे तरनेयोग्य, वीरोंकी हड्डियोंरूप रेतेवाली, भेरी और मुरजरूप कछुओंवाली, भयङ्कर, ढाल तथा कवचरूप नौकावाली केशरूप सिवारसे भरी भयङ्कर बाणरूप ओघवाली धनुषरूप स्रोतवाली, भुजारूपी सर्पवाली, रणभूमिमें बहनेवाली, प्रबलवेगवती, कौरव और सृञ्जयोंको बहानेवाली, मनुष्योंके शिररूप पत्थरोंसे युक्त, शक्तिरूप मछलियोंवाली, गदारूप डोंगेवाली, पगड़ियेंरूप झागवाली, चारों ओर फैलीहुई आंतोंरूप सर्पोंवाली, वीरोंको हरनेवाली, भयङ्कर, रक्त-

घट्टां सादिनक्रां दुरत्ययाम् । द्रोणः प्रावर्त्तयत्तत्र नदीमन्तकगामिनीम् ॥ ४४ ॥ क्रव्यादगणसञ्जुष्टां श्वशृगालगणायुताम् । निषेवितां महारौद्रैः पिशिताशैः समन्ततः ॥ ४५ ॥ तं दहन्तमनीकानि रथोदारं कृतान्तवत् । सर्वतोऽभ्यद्रवन् द्रोणं कुन्तीपुत्रपुरोगमाः ४६ ते द्रोणं सहिताः शूराः सर्वतः प्रत्यवारयन् । गभस्तिभिरिवादित्यं तपन्तं भुवनं यथा ॥ ४७ ॥ तन्तु शूरं महेष्वासं तावकाभ्युद्यतायुधाः । राजानो राजपुत्राश्च समन्तात् पर्य्यवारयन् ॥ ४८ ॥ शिखण्डी तु ततो द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः । क्षत्रवर्मा च विंशत्या वसुदानश्च पञ्चभिः ॥ ४९ ॥ उत्तमौजास्त्रिभिर्बाणैः क्षत्रदेवश्च सप्तभिः । सात्यकिश्च शतेनाजौ युधामन्युस्तथाष्टभिः ॥५०॥ युधिष्ठिरो द्वादशभिर्द्रोणं विव्याध सायकैः । धृष्टद्युम्नश्च दशभिश्चेकितानस्त्रिभिः शरैः ॥ ५१ ॥ ततो द्रोणः सत्यसन्धः प्रभिन्न इव

मांसकी कीचड़वाली, हाथियोंरूप नाकोंवाली, ध्वजारूप वृक्षोंवाली, क्षत्रियोंको डुबानेवाली, क्रूर, शरीरों (लोथों) से लवालव भरी हुई, घुड़सवाररूप नाकोंसे दुरत्यय, यमलोककी ओरको जानेवाली, राक्षसोंके समूह, कुत्ते, गीदड़ आदि महाभयङ्कर मांसभक्षियोंसे सेवित नदी बहादी, महारथी द्रोणाचार्यको यमराजकी समान सेनाको भस्म करते हुए देखकर युधिष्ठिर आदि बहुतसे वीरोंने उनको चारों ओरसे घेरलिया, और किरणोंसे पृथिवीको तपानेवाले सूर्यको जैसे बादल घेरलेते हैं तैसे ही शत्रुतापी द्रोणको भी सब वीरोंने इकट्ठे होकर चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३८–४८ ॥ तदनन्तर शिखण्डीने नमी हुई गांठवाले पाँच बाणोंसे द्रोणाचार्यको बींधा तथा क्षत्रवर्माने बीस और वसुदानने पाँच, उत्तमौजाने तीन, क्षत्रदेवने सात, सात्यकिने सौ, युधामन्युने आठ, युधिष्ठिरने बारह. धृष्टद्युम्नने दश और चेकितानने तीन बाणोंसे द्रोणाचार्यको युद्धमें बींध दिया ॥४९–५१॥

कुञ्जरः । अभ्यतीत्य रथानीकं दृढसेनमपातयत् ॥ ५२ ॥ ततो राजानमासाद्य प्रहरन्तमभीतवत् । अविध्यन्नवभिः क्षेमं स हतः प्रापतद्रथात् ॥ ५३ ॥ स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन् दिशः । त्राता ह्यभवदन्येषां न त्रातव्यः कथंचन ॥ ५४ ॥ शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम् । वसुदानं च भल्लेन प्रैषयद्यमसादनम् ॥ ५५ ॥ अशीत्या क्षत्रवर्माणं षड्विंशत्या सुदक्षिणम् । क्षत्रदेवन्तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५६ ॥ युधामन्युं चतुःषष्ट्या त्रिंशता चैव सात्यकिम् । विध्वा रुक्मरथस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५७ ॥ ततो युधिष्ठिरः क्षिप्रं गुरुतो राजसत्तमः । अपायाज्जवनैरश्वैः पाञ्चाल्यो द्रोणमभ्ययात् ॥ ५८ ॥ तं द्रोणः सधनुष्कन्तु साश्वयन्तारमाक्षिणोत् । स हतः प्रापतद्भूमौ रथा-

---

तब सत्यप्रतिज्ञावाले द्रोणाचार्य मदवाले हाथीकी समान रथसेनाको लाँघकर आगे बढ़े और उन्होंने बाण मारकर दृढसेनको गिरादिया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर राजा युधिष्ठिरके पास पहुँच निडर हो नौ बाणोंसे क्षेमको मारा, वह मरकर अपने रथमेंसे लुढ़कपड़ा ॥ ५३ ॥ फिर द्रोणाचार्य सेनाके मध्यमें पहुँचकर सब दिशाओंमें घूमतेहुए दूसरोंकी रक्षा करनेलगे परन्तु उनका रक्षक कोई नहीं था ॥ ५४ ॥ उन्होंने शिखण्डीके बारह, उत्तमौजाके बीस बाण मारे और भाला मारकर वसुदानको यमलोक भेज दिया ॥ ५५ ॥ फिर उन्होंने क्षत्रवर्माके अस्सी, सुदक्षिणके छब्बीस बाण मारे और क्षत्रदेवको भाला मारकर रथकी बैठकसे नीचे गिरादिया ॥ ५६ ॥ युधामन्युको चौंसठसे और सात्यकिको तीस बाणोंसे बींधकर सुवर्णरथी द्रोणाचार्य युधिष्ठिरकी ओरको बढ़गये ॥ ५७ ॥ यह देखते ही युधिष्ठिर अपने घोड़ोंको हँकवाकर वहाँसे भागगये और पाञ्चालपुत्र द्रोणके सामने आकर खड़ा होगया ॥ ५८ ॥ द्रोणाचार्यने उसका, उसके धनुष,

ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ५९ ॥ तस्मिन् हते राजपुत्रे पंचालानां यशस्करे । हत द्रोणं हत द्रोणमित्यासीन्निःस्वनो महान् ॥ ६० ॥ तांस्तथा भृशसंरब्धान् पञ्चालान् मत्स्यकेकयान् । सृञ्जयान् पाण्डवांश्चैव द्रोणो व्यक्षोभयद्बली ॥ ६१ ॥ सात्यकिं चेकितानं च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ । वार्धक्षेमिं चैत्रसेनिं सेनाविन्दुं सुवर्चसम् ६२ एतांश्चान्यांश्च सुबहून्नानाजनपदेश्वरान् । सर्वान् द्रोणोऽजयद्युद्धे कुरुभिः परिवारितः ॥ ६३ ॥ तावकाश्च महाराज जयं लब्ध्वा महाहवे । पाण्डवेयान् रणे जघ्नुर्द्रवमाणान् समन्ततः ॥ ६४ ॥ ते दानवा इवेन्द्रेण वध्यमाना महात्मना । पंचालाः केकया मत्स्याः समकंपन्त भारत ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
द्रोणयुद्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

घोड़े और सारथिका नाश किया तथा वह मरकर रथमेंसे ऐसे गिरपड़ा जैसे आकाशमेंसे नक्षत्र खस पड़ता है ॥५९॥ पञ्चालोंके यशको बढ़ानेवाले उस राजपुत्रके मारे जाने पर सेनामें "द्रोणको मारो द्रोणको मारो" इसप्रकार बड़ाभारी कोलाहल मचगया ६० महाक्रोधमें भरेहुए पंचाल, केकय, मत्स्य, सृञ्जय और पांडवों को द्रोणने घबड़ादिया ॥ ६० ॥ सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न शिखण्डी, वृद्धक्षेमके पुत्र, चित्रसेनके पुत्र, सेनाविन्दु, सुवर्चस तथा और बहुतसे देशोंके राजाओंको द्रोणने कौरवोंको साथमें लेकर जीता ॥ ६२--६३ ॥ हे महाराज ! तुम्हारे पक्षके योधा इस महायुद्धमें जय पाकर चारों ओरको भागते हुए पांडवोंके योधाओंको मारनेलगे ॥ ६४ ॥ हे भारत ! पंचाल, केकय और मत्स्य द्रोणसे ऐसे काँपनेलगे जैसे इन्द्रसे मारखाते हुए राक्षस काँपते हैं ॥ ६५ ॥ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच। भारद्वाजेन भग्नेषु पाण्डवेषु महामृधे। पञ्चालेषु च सर्वेषु कश्चिदन्योऽभ्यवर्त्तत ॥ १ ॥ आर्य्यां युद्धे मतिं कृत्वा क्षत्रियाणां यशस्करीम्। असेवितां कापुरुषैः सेवितां पुरुषर्षभैः २ स हि वीरोन्नतः शूरो यो भग्नेषु निवर्त्तते। अहो नासीत् पुमान् कश्चिद् दृष्ट्वा द्रोणं व्यवस्थितम् ॥३॥ जृम्भमाणमिव व्याघ्रं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम्। त्यजन्तमाहवे प्राणान् सन्नद्धं चित्रयोधिनम्॥४॥ महेष्वासं नरव्याघ्रं द्विषतां भयवर्धनम्। कृतज्ञं सत्यनिरतं दुर्योधनहितैषिणम् ॥ ५ ॥ भारद्वाजं तथानीके दृष्ट्वा शूरमवस्थितम्। के शूराः संन्यवर्त्तन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥६॥ सञ्जय उवाच। तान् दृष्ट्वा चलितान् संख्ये प्रणुन्नान् द्रोणसायकैः। पञ्चालान् पाण्डवान् मत्स्यान् सृञ्जयांश्चेदिकेकयान् ॥ ७ ॥ द्रोणचापवि-

---

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे सञ्जय! इस महायुद्धमें जब द्रोणने पांडव और पंचालोंकी सेनाओंको छिन्न भिन्न करडाला, तब लड़नेको आगे कौन बढ़ा था? ॥ १ ॥ जो वीर क्षत्रियोंके यशको बढ़ानेवाली, डरपोकोंकी त्यागीहुई और श्रेष्ठपुरुषोंसे सेवित युद्ध करनेकी श्रेष्ठ बुद्धिको अङ्गीकार करके रणमेंसे नहीं भागता है उसको बड़ा वीरपुरुष समझो शोक! पाण्डवोंमें एकभी ऐसा पुरुष नहीं था कि–जो द्रोणका सामना करसके सिंहकी समान जँभाई लेतेहुए और मद झरते हाथीकी समान, युद्धमें प्राणोंकी परवाह न करके युद्धमें डटनेवाले, चित्रयोधी, महाधनुषधारी, नरव्याघ्र, शत्रुभयवर्धन, कृतज्ञ, सत्यवादी, दुर्योधनका हित चाहनेवाले वीर द्रोणको देखकर कौन २ वीर रणमेंसे न भागकर लड़नेको सामने आये थे? उनको बता ॥ २–६ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि–हे धृतराष्ट्र! जैसे सिंधनदीके महावेगवाले प्रवाहमें ढोंगे बह जाते हैं, तैसेही द्रोणाचार्यके धनुषमेंसे छूटतेही नाश करनेवाले बाणोंके समूहसे चलायमान होकर भागतेहुए पञ्चाल,

मुक्तेन शरौघेणाशुहारिणा । सिन्धोरिव महौघेन ह्रियमाणान् यथा प्लवान् ॥ ८ ॥ कौरवाः सिंहनादेन नानावाद्यस्वनेन च । रथद्विपनरांश्चैव सर्वतः समवारयन् ॥ ९ ॥ तान् पश्यन् सैन्यमध्यस्थो राजा स्वजनसंवृतः । दुर्योधनोब्रवीत् कर्णं प्रहृष्टः प्रहसन्निव ॥ १० ॥ दुर्योधन उवाच । पश्य राधेय पञ्चालान् प्रणुन्नान् द्रोणसायकैः । सिंहेनेव मृगान् वन्यांस्त्रासितान् दृढधन्वना ॥ ११ ॥ नैते जातु पुनर्युद्धमीहेयुरिति मे मतिः । यथा तु भग्ना द्रोणेन वातेनेव महाद्रुमाः ॥ १२ ॥ अर्द्यमाना शरैरेते रुक्मपुङ्खैर्महात्मना । पथा नैकेन गच्छंति घूर्णमानास्ततस्ततः ॥ १३ ॥ संनिरुद्धाश्च कौरव्यैर्द्रोणेन च महात्मना । एतेऽन्ये मण्डली भूताः पावकेनेव कुञ्जराः ॥ १४ ॥ भ्रमरैरिव चाविष्टा द्रोणस्य निशितैः शरैः ।

पाण्डव, मत्स्य, सृञ्जय, चेदि और केकय भागनेलगे यह देख कौरव सिंहनाद करके तथा नानाप्रकारके बाजे बजाकर शत्रुपक्षके भागतेहुए रथ, हाथी, और मनुष्योंको चारों ओरसे रोकनेलगे ७-९ इस समय अपने इष्टमित्रोंके साथ सेनाके मध्यमें बैठाहुआ राजा दुर्योधन बड़ाही प्रसन्न हो हँसकर कर्णसे कहनेलगा ॥ १० ॥ दुर्योधनने कहा, कि–हे राधेय ! जैसे सिंहके भयसे वनके हिरन भागजाते हैं तैसेही दृढधनुषधारी द्रोणके बाणोंसे त्रास पाकर पञ्चाल भागरहे हैं ! जरा देख ! मुझै ऐसा प्रतीत होता है कि–ये पञ्चाल अब फिर लड़नेको नहीं आवेंगे, जैसे आंधीसे बड़े २ वृक्ष पृथिवीपर ढह पड़ते हैं तैसे ही महात्मा द्रोणके सुवर्ण की पूँछवाले बाणोंके प्रहारसे छिन्न भिन्न हुए ये पाण्डव विह्वल हो इधर उधरको भाग रहे हैं ॥ ११-१३ ॥ कौरवोंकी सेनाने और द्रोणने पाण्डवोंके योधाओंको रोक रक्खा है और जैसे अग्निके रोकेहुए हाथी मण्डलाकारसे खड़े होजाते हैं तैसे ही पाण्डवोंके योधा भी मण्डलाकारमें खडे हैं ॥१४॥ इनके शरीरों

अन्योन्यं समलीयन्त पलायनपरायणाः ॥ १५ ॥ एष भीमो महाक्रोधी हीनः पाण्डवसृञ्जयैः । मदीयैरावृतो योधैः कर्ण नन्दयतीव माम् ॥१६॥ व्यक्तं द्रोणमयं लोकमद्य पश्यति दुर्मतिः । निराशो जीवितान्नूनमद्य राज्याच्च पाण्डवः ॥ १७ ॥ कर्ण उवाच । नैष जातु महाबाहुर्जीवन्नाहवमुत्सृजेत् । न चेमान् पुरुषव्याघ्रः सिंहनादान् सहिष्यति ॥ १८ ॥ न चापि पाण्डवा युद्धे भज्येरन्निति मे मतिः । शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ १९ ॥ विषाग्निद्यूतसंक्लेशान् वनवासञ्च पाण्डवाः । स्मरमाणा न हास्यन्ति संग्राममिति मे मतिः ॥२०॥ निवृत्तो हि महाबाहुरमितौजा वृकोदरः । वरान् वरान् हि कौन्तेयो रथोदारान् हनिष्यति ॥२१॥ असिना धनुषा शक्त्या हयैर्नागैर्नरै रथैः । आयसेन च दण्डेन व्रातान्

में द्रोणके बाण भौंरोंकी समान लगरहे हैं तथा देख ये भागतेमें आपसमें ही एक दूसरेकी गोदीमें घुसेजाते हैं ॥ १५ ॥ हे कर्ण ! पाण्डव और सृञ्जयोंसे विलग हुआ यह महाक्रोधी भीम मेरे योधाओंसे घिरजानेके कारण मुझे आनन्द देरहा है ॥ १६ ॥ हे कर्ण ! राज्य और जीवनसे निराश हुआ दुर्मति भीम आज संसारको द्रोणमय ही देखता होगा ॥ १७ ॥ कर्णने कहा, कि–हे पुरुषव्याघ्र ! यह महाबाहु भीमसेन जीता हुआ तो युद्धमेंसे कभी नहीं भागेगा तथा यह हमारे सिंहनादोंको भी नहीं सहेगा १८ और मेरा तो यह भी निश्चय है कि–पाण्डव भी युद्धमेंसे नहीं भागेंगे वे वीर हैं, बली हैं, अस्त्रकुशल हैं तथा युद्धदुर्मद हैं १९ वे लोग विष, लाखाभवनकी अग्नि और जुएके क्लेश तथा वनवासके दुःखोंको याद करके संग्रामको कभी नहीं छोड़ेंगे १९-२० महाबाहु, परम पराक्रमी भीमसेन जब रणमें घूमेगा तब छट्टा २ महारथियोंको मारडालेगा ॥ २१ ॥ तथा तलवार, धनुष, शक्ति, घोड़े, हाथी, रथ तथा लोहदण्डसे तुम्हारी सेनाकी टोलियोंकी

व्रातान् हनिष्यति ॥ २२ ॥ तमेनमनुवर्त्तन्ते सात्यकिप्रमुखा रथाः । पञ्चाला केकया मत्स्याः पाण्डवाश्च विशेषतः ॥ २३ ॥ शूराश्च बलवन्तश्च विक्रान्ताश्च महारथाः । विनिघ्नंतश्च भीमेन संरब्धेनाभिचोदिताः ॥ २४ ॥ ते द्रोणमभिवर्त्तन्ते सर्वतः कुरुपुङ्गवाः । वृकोदरं परीप्संतः सूर्य्यमभ्रगणा इव ॥ २५ ॥ एकायनगता ह्येते पीडयेयुर्यतव्रतम् । अरक्षमाणं शलभा यथा दीपं मुमूर्षवः ॥२६॥ असंशयं कृतास्त्राश्च पर्य्याप्ताश्चापि वारणे । अतिभारमहं मन्ये भारद्वाजे समाहितम्॥ २७॥शीघ्रमनुगमिष्यामो यत्र द्रोणो व्यवस्थितः । कोका इव महानागं मा वै हन्युर्यतव्रतम् ॥ २८॥ सञ्जय उवाच । राधेयस्य वचः श्रुत्वा राजा दुर्य्योधनस्ततः । भ्रातृभिः सहितो

टोलियोंको मसल डालेगा २२ सात्यकि आदि महारथी तथा वीर-बलवान् महापराक्रमी तथा महारथी पञ्चाल,केकय,मत्स्य,पाण्डव तथा दूसरे राजे,भीमसेनका साथ देनेवाले हैं,वे भी क्रोधमें भरे भीमसेनकी आज्ञासे आपकी सेनाका नाश करना आरम्भ करेंगे और मेघ जैसे सूर्यकी रक्षा करते हैं तैसे ही वे योधा भीमकी रक्षा करेंगे और चारों ओरसे द्रोण पर टूट पड़ेंगे यदि हम व्रतधारी द्रोणाचार्यकी रक्षा न करेंगे तो मरणकी इच्छावाले पतङ्ग जैसे दीपक पर टूट पड़ते हैं तैसे ही पाण्डवोंके योधा द्रोण पर टूट पड़ेंगे और उन्हें बहुत ही दुःख देंगे ॥ २३–२४ ॥ पाण्डवपक्षके योधा वास्तवमें शस्त्रनिपुण और प्रतिपक्षियोंको रोकनेमें समर्थ हैं, यह मैं स्वीकार करता हूँ,कि–द्रोण पर युद्धका बड़ा बोझ आ पड़ा है जैसे मदमत्त हाथीको भेड़िये फाड़ डालते हैं तैसे ही जब तक पाण्डव सदाचारी द्रोणको मार न डालें,उससे पहिले ही उनके पास पहुँचजावो ॥ २७–२८ ॥ सञ्जयने कहा कि–हे धृतराष्ट्र ! राजा दुर्योधन कर्णकी इस बातको सुन भाइयोंको साथमें ले

राजन् प्रायाद् द्रोणरथं प्रति ॥२९॥ तत्रारावो महानासीदेकं द्रोणं जिघांसताम् । पाण्डवानां निवृत्तानां नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
द्रोणयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । सर्वेषामेव मे ब्रूहि रथचिन्हानि सञ्जय । ये द्रोणमभ्यवर्त्तन्त क्रुद्धा भीमपुरोगमाः ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । ऋक्षवर्णैर्हयैर्दृष्ट्वा व्यायच्छन्तं वृकोदरम् । रजताश्वस्ततः शूरः शैनेयः सन्न्यवर्त्तत ॥२॥ सारङ्गाश्वो युधामन्युः स्वयं प्रत्वरयन् हयान् । पर्य्यवर्त्तत दुर्द्धर्षः क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ३ ॥ पारावतसवर्णैस्तु हेमभाण्डैर्महाजवैः । पाञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नो न्यवर्त्तत ॥ ४ ॥ पितरन्तु परिप्रेप्सुः क्षत्रधर्मा यतव्रतः । सिद्धि-

द्रोणके रथकी ओर वढ़ा ॥ २९ ॥ उस समय अनेकों वर्णके घोड़ों पर चढ़ एक द्रोणको मारना चाहनेवाले पाण्डवोंके युद्धभूमिमें घूमने पर वड़ा द्वन्द मचगया ॥ ३० ॥ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे सञ्जय ! क्रोधमें भरे भीम आदि जो योधा द्रोणके ऊपर चढ़कर आये थे, उन सवके रथ, घोड़े और ध्वजा पताका आदि कैसे थे, यह मुझसे कह ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे भरतवंशी राजन् ! रीछ कैसे रङ्गके घोड़ों वाले भीमसेनको चढ़ता हुआ देख रुपहले घोड़ोंवाला शूर सात्यकि भी द्रोणाचार्यके ऊपर लौट पड़ा ॥ २ ॥ क्रोधमें भराहुआ युधामन्यु चितकवरे घोड़ोंवाले रथमें वैठ स्वयं ही घोड़ोंको शीघ्रतासे हाँकता हुआ द्रोणाचार्यके रथके सामने आगया ॥ ३ ॥ पञ्चालराजका पुत्र धृष्टद्युम्न कबूतरोंकेसे रङ्गवाले सुवर्णके घुँघुरुओंवाले, तेज घोड़ोंके रथमें वैठ द्रोणाचार्यकी ओरको वढ़ा ॥४॥ अपने पिताको वचानेकी इच्छासे तथा उनको महासिद्धि दिलानेकी इच्छासे

ञ्चास्य परां काङ्क्षन् शोणाश्वः सन्नयवर्त्तत ॥ ५ ॥ पद्मपत्रनिभांश्चाश्वान् मल्लिकाक्षान् स्वलङ्कृतान् । शैखण्डिः क्षत्रदेवस्तु स्वयं मत्वरयन् ययौ ॥ ६ ॥ दर्शनीयास्तु काम्बोजाः शुकपत्रपरिच्छदाः । वहन्तो नकुलं शीघ्रं तावकानभिदुद्रुवुः ॥७॥ कृष्णास्तु मेघसङ्काशा अवहन्नुत्तमौजसम् । दुर्द्धर्षायाभिसन्धाय क्रुद्धं युद्धाय भारत ॥ ८ ॥ तथा तित्तिरकल्माषा हया वातसमा जवे । अवहंस्तुमुले युद्धे सहदेवमुदायुधम् ॥ ९ ॥ दन्तवर्णास्तु राजानं कालवाला युधिष्ठिरम् । भीमवेगा नरव्याघ्रमवहन् वातरंहसः १० हेमोत्तमप्रतिच्छन्नैर्हयैर्वातसमैर्जवे । अभ्यवर्त्तन्त सैन्यानि सर्वाण्येव युधिष्ठिरम् ॥११॥ राज्ञस्त्वनन्तरो राजा पाञ्चाल्यो द्रुपदोभवत् । जातरूपमयच्छत्रः सर्वैस्तैरभिरक्षितः ॥ १२॥ ललामैर्हरि-

---

व्रतधारी क्षत्रधर्मा लाल रङ्गवाले घोडोंके रथमें बैठ रणभूमिमें दौडआया ॥ ५ ॥ शिखण्डीका पुत्र क्षत्रदेव कमलपत्रके रङ्गवाले निर्मल नेत्रोंवाले, और आभूषणोंसे सुशोभित घोडोंवाले रथको स्वयं शीघ्रतासे रणमें ले आया ॥६॥ देखने योग्य कम्बोजदेशी रङ्गकी, तोतेकेसे रङ्गकी झूलोंवाले घोड़े नकुलको तुम्हारे पुत्रकी सेनाकी ओरको ले आये ॥ ७ ॥ हे भारत ! क्रोधमें भरेहुए उत्तमौजाको मेघकेसे काले घोड़े दुर्धर्ष द्रोणके सामने ले आए ८ हाथमें शस्त्र उठायेहुए सहदेव वायुवेगी तीतरकेसे रङ्गके घोडों वाले रथमें बैठ युद्धमें आगया ॥ ९ ॥ नरव्याघ्र युधिष्ठिर दाँतों की समान श्वेत वायुवेगी, काले केशोंवाले घोडोंके रथमें बैठ युद्धस्थलमें आडटे ॥ १० ॥ युधिष्ठिरके पीछे, उनकी सेनाके मनुष्य भी वेगमें वायुकी समान सुवर्णकी झूलोंवाले घोडोंसे जुते रथोंमें बैठकर चढआये ॥ ११ ॥ राजा युधिष्ठिरके पीछे पञ्चालराज द्रुपद, सुवर्णका छत्र लगाकर चल रहा था, चारों ओरसे योधा उसको रक्षा कररहे थे.वह महाधनुषधारी पञ्चाल-

भियुक्तः सर्वशब्दक्षमैर्युधि । राज्ञां मध्ये महेष्वासः शान्तभीरभ्यवर्त्तत ॥ १३ ॥ तं विराटोऽन्वयाच्छीघ्रं सह सर्वैर्महारथैः । केकयाश्च शिखण्डी च धृष्टकेतुस्तथैव च ॥ १४ ॥ स्वैः स्वैः सैन्यैः परिवृता मत्स्यराजानमन्वयुः । तन्तु पाटलिपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः १५ वहमाना व्यराजन्त मत्स्यस्यामित्रघातिनः । हरिद्रासमवर्णास्तु जवना हेममालिनः ॥१६॥ पुत्रं विराटराजस्य सत्वरं समुदावहन् । इन्द्रगोपकवर्णैश्च भ्रातरः पञ्च केकयाः ॥१७॥ जातरूपसमाभासाः सर्वे लोहितकध्वजाः । ते हेममालिनः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः१८ वर्षन्त इव जीमूताः प्रत्यदृश्यन्त दंशिताः । आमपात्रनिकाशास्तु पांचाल्यममितौजसम् ॥ १९ ॥ दत्तास्तुम्बुरुणा दिव्याः शिखण्डिनमुदावहन् । तथा द्वादश साहस्राः पञ्चालानां महारथाः २०

राज तोप बन्दूक आदिके शब्दोंको सहनेवाले घोडोंके रथमें बैठ सब राजाओंके बीचमें निर्भय होकर चल रहा था १२-१३ पञ्चालराजके पीछे राजा विराट बहुतसे महारथियोंसे घिरकर चल रहे थे, केकय, शिखण्डी और धृष्टकेतु अपनी २ सेनाओंके साथ विराटके पीछे २ चले, शत्रुघाती मत्स्यराज विराटके रथको पाढलोंके फूलोंकी समान गुलाबी रङ्गके घोड़े खेंच रहे थे हल्दी कैसे रङ्गके फुर्तीले, सुवर्णकी मालाएँ पहिरेहुए घोड़े राजा विराटके पुत्रको लिये फिरते थे, केकय नामक पाँचों भाई इन्द्रगोपके समान लाल रङ्गके घोडोंवाले रथमें बैठ युद्धभूमिमें आये थे, इन पाँचों भाइयोंका शरीर चाँदीकी समान श्वेत था, उनकी ध्वजाएँ लाल २ थीं, वे सोनेकी हमेलें पहिन रहे थे, शूर युद्धमें चतुर और शुद्ध लोहेके कवच पहिरेहुए युद्धमें मेघोंकी समान बाण वर्षा करतेहुए घुस आये तुम्बुरुके दिय हुए कच्चे पात्रके रङ्गके से घोडोंवाले रथमें बैठकर शिखण्डी युद्धस्थलमें आया था, पञ्चालोंके बारह सहस्र महारथी युद्धमें आये थे, उनमेंसे छःसहस्र

तेषान्तु षट् सहस्राणि ये शिखण्डिनमन्वयुः । पुत्रन्तु शिशुपालस्य
नरसिंहस्य मारिष ॥ २१ ॥ आक्रीडन्तो वहन्ति स्म सारङ्गशबला
हयाः । धृष्टकेतुस्तु चेदीनामृषभोतिबलोदितः ॥ २२ ॥ काम्बोजैः
शबलैरश्वैरभ्यवर्त्तत दुर्जयः। बृहत्क्षत्रन्तु कैकेयं सुकुमारं हयोत्तमाः २३
पलालधूमसङ्काशाः सैन्धवाः शीघ्रमावहन्। मल्लिकाक्षाः पद्मवर्णा
बाल्हिजाताःस्वलंकृताः ॥ २४ ॥ शूरं शिखण्डिनः पुत्रमृक्षदेव-
मुदावहन् । रुक्मभाण्डप्रतिच्छन्नाः कौशेयसदृशा हयाः ॥ २५ ॥
क्षमावन्तोऽवहन् संख्ये सेनाबिन्दुमरिन्दमम् । युवानमवहन् युद्धे
क्रौंचवर्णा हयोत्तमाः ॥ २६ ॥ काश्यस्याभिभुवः पुत्रं सुकुमारं
महारथम् । श्वेतास्तु प्रतिविध्यन्तं कृष्णग्रीवा मनोजवाः । यन्तुः
प्रेष्यकरा राजन् राजपुत्रमुदावहन् ॥ २७ ॥ सुतसोमं तु यः सौम्यं
पार्थ पुत्रमजीजनत् । माषपुष्पसवर्णास्तमवहन् वाजिनो रणे। २८।

शिखण्डीके पीछे चलते थे, हे राजन्! पुरुषसिंह शिशुपालकुमार खेलते हुए मृगकीसी छलांगे भरनेवाले घोडोंसे जुते रथमें बैठकर आया था चेदियोंमें श्रेष्ठ महाबली, अजेय धृष्टकेतु काम्बोज देशके चितकबरे घोडोंके रथमें बैठकर युद्ध करनेको द्रोणके सामने आया था, सुकुमार केकयवंशी बृहत्क्षत्र पियालके धुएँकेसे वर्णवाले सिन्धुदेशी घोडोंके रथमें बैठकर युद्धमें आया था, शिखण्डीका पुत्र वीर ऋक्षदेव मल्लिकाकी समान नेत्रोंवाले कमलकी समान गोरे और पीले रङ्गके, बाल्हीक देशमें उत्पन्न हुए, भली प्रकार सजाएहुए घोडोंसे जुते रथमें बैठकर युद्धमें आया था ॥ १४-२५ ॥ तरुण अरिन्दम, सेनाविन्दु क्रौंचकेसे वर्णवाले घोडोंके रथमें बैठकर युद्धस्थलमें आया था ॥ २५ ॥ काशीके राजा अभिभूका सुकुमार और महारथी पुत्र प्रतिविन्ध्य, श्वेतवर्णके, काली गर्दनवाले, मनकी समान वेगवाले सारथीकी इच्छानुसार चलनेवाले घोडों के रथमें बैठकर आया था ॥२७॥ उड़दके फूलोंकी समान पीले

सहस्रसोमप्रतिमो बभूव पुरे कुरूणामुदयेन्दु नाम्नि । तस्मिन् जातः सोमसंक्रन्दमध्ये यस्मात्तस्मात् सुतसोमोभवत् सः ॥ २९ ॥ नाकुलिन्तु शतानीकं शालपुष्पनिभा हयाः । आदित्यतरुणप्रख्याः श्लाघनीयमुदावहन् ।३०।काञ्चनापिहितैर्योक्त्रैर्मयूरग्रीवसन्निभाः। द्रौपदेयं नरव्याघ्रं श्रुतकर्माणमाहवे ॥ ३१ ॥ श्रुतकीर्त्तिं श्रुतनिधिं द्रौपदेयं हयोत्तमाः । ऊहुः पार्थसमं युद्धे चाषपत्रनिभा हयाः । ३२ । यमाहुरध्यर्द्धगुणं कृष्णात् पार्थाच्च संयुगे । अभिमन्युं पिशङ्गास्तं कुमारमवहन् रणे ॥३॥ एकस्तु धार्त्तराष्ट्रेभ्यः पाण्डवान् यः समाश्रितः । तं बृहन्तो महाकाया युयुत्सुमवहन् रणे ॥ ३४ ॥ पलालकाण्डवर्णास्तु वार्द्धक्षेमिं तरस्विनम् । ऊहुः सुतुमुले युद्धे हयाः

रङ्गके घोड़ेवाले रथमें बैठकर अर्जुनका पुत्र शान्त स्वभाव सुतसोम आया था ॥ २८ ॥ ये घोड़े अर्जुनने सोम (चन्द्रमा) से पाए थे, सहस्र सोम (चन्द्रमा) की समान सौम्य अर्जुनका पुत्र कौरवोंके उदयेन्दु (इन्द्रप्रस्थ) में सोमलताके पत्रमें उत्पन्न हुआ था, इससे उसका नाम सुतसोम पड़ा था, ॥ २९ ॥ प्रशंसनीय नकुलपुत्र शतानीक सालके पुष्पकी समान रङ्गके (लाल और पीले) तथा तरुण सूर्यकी समान लाल रङ्गके घोड़ोंके रथमें बैठकर रणभूमिमें आया था ३० पुरुषव्याघ्र (भीमसेनसे उत्पन्न हुआ) द्रौपदीका पुत्र श्रुतकर्मा सुवर्णकी रासोंवाले मोरके कंठकी समान रङ्गके घोड़ोंसे जुते रथमें बैठकर युद्धमें आया था ३१ पपहियेके परोंके समान वर्णवाले घोड़े शास्त्रोंके खजानेरूप, द्रौपदीके पुत्र श्रुतकीर्त्तिको अर्जुनकी समान युद्धमें लेचले ॥ ३२ ॥ रणमें श्रीकृष्ण और अर्जुनसेभी अधिक वीर अभिमन्यु पीले वर्णके घोड़ोंवाले रथमें बैठकर रणमें आया था ॥ ३३ ॥ जो अपनी सेनामेंसे पाण्डवोंकी सेनामें चलागया था, वह आपका पुत्र युयुत्सु महाकाय घोड़ोंवाले रथमें बैठकर लड़नेको आया

कृष्णाः स्वलंकृताः ॥३५॥ कुमारं शितिपादास्तु रुक्मचित्रैरुरच्छदैः। सौचित्तिमवहन् युद्धे यन्तुः प्रेष्यकरा हयाः ॥ ३६ ॥ रुक्मपीठावकीर्णास्तु कौशेयसदृशा हयाः। सुवर्णमालिनः क्षान्ताः श्रेणिमन्तमुदावहन् ॥ ३७ ॥ रुक्ममालाधराः शूरा हेमपृष्ठाः स्वलंकृताः। काशिराजं नरश्रेष्ठं श्लाघनीयमुदावहन् ॥ ३८ ॥ अस्त्राणाञ्च धनुर्वेदे ब्राह्मे वेदे च पारगम्। तं सत्यधृतिमायान्तमरुणाः समुपावहन् ॥ ३९ ॥ यः स पाञ्चालसेनानीर्द्रोणमंशमकल्पयत्। पारावतसवर्णास्तं धृष्टद्युम्नमुदावहन् ॥ ४० ॥ तमन्वयात् सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः। श्रेणिमान् वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः ॥ ४१ ॥ युक्तैः परमकाम्बोजैर्जवनैर्हेममालिभिः। भीष-

था ॥ ३४ ॥ पिरालकी समान पीले और काले वर्णके गहनोंसे सजे घोड़े महातुमुल युद्धमें वेगवान् वृद्धक्षेमके पुत्रको लेचले॥३५॥ सारथीके वशमें रहनेवाले, काले पैरोंवाले और सुवर्णकी चित्रकारीवाले उरच्छदोंसे युक्त, बड़े२ शरीरोंवाले घोड़े सुचित्तके पुत्र राजकुमारको युद्धमें लेचले ॥ ३६ ॥ सुनहरी झूलोंवाले, रेशमी वर्णके, सोनेकी मालाएँ पहिरे, चतुर घोडे श्रेणिमन्तको चढ़ा कर लेचले ॥ ३७ ॥ नरश्रेष्ठ प्रशंसनीय काशिराजको, सुवर्णकी मालायें, सुनहरी झूलें और आभूषणोंसे सजेहुए घोड़ोंने, रणभूमिमें पहुँचाया ॥ ३८ ॥ अस्त्रविद्या, शस्त्रविद्या और वेदशास्त्रमें निपुण रणमें आतेहुए सत्यधृतिको लाल वर्णके घोडे लेचले ३९ जिस पञ्चालदेशी सेनापतिने द्रोणको अपना भाग कल्पना किया था, उस धृष्टद्युम्नको कबूतरोंकेसे रंगके घोडे युद्धमेंको लेकर चलरहे थे ॥ ४० ॥ यम और कुवेरकी समान सत्यधृति, युद्धके मदसे मत्त सुचित्तका पुत्र, श्रेणिमान्, वसुदान, काश्यका पुत्र अभिभू, सुवर्णकी मालाएँ धारण करनेवाले काम्बोजदेशी घोड़ोंसे जुते रथोंमें बैठ शत्रुओंकी सेनाओंको डरातेहुए धृष्टद्युम्नके

यन्तो द्विपत्सैन्यं यमवैश्रवणोपमाः ॥४२॥ प्रभद्रकास्तु काम्बोजाः षट्सहस्राण्युदायुधाः । नानावर्णैर्हयैः श्रेष्ठैर्हेमवर्णरथध्वजाः ॥४३॥ शरव्रातैर्विधुन्वन्तः शत्रून् विततकार्मुकाः । समानमृत्यवो भूत्वा धृष्टद्युम्नं समन्वयुः ॥४४। बभ्रुकौशेयवर्णास्तु सुवर्णवरमालिनः । ऊहुरम्लानमनसश्चेकितानं हयोत्तमाः ॥ ४५ ॥ इन्द्रायुधसवर्णैस्तु कुन्तिभोजो हयोत्तमैः । आयात् सदश्वैः पुरुजिन्मातुलः सव्यसाचिनः ॥४६॥ अन्तरिक्षसवर्णास्तु तारकाश्चित्रिता इव । राजानं रोचमानं ते हयाः संख्ये समावहन् ॥४७॥ कर्बुराः शितिपादास्तु स्वर्णजालपरिच्छदाः । जारासंधिं हयाः श्रेष्ठाः सहदेवमुदावहन् ४८ ये तु पुष्करनालस्य समवर्णा हयोत्तमाः । जवे श्येनसमाश्चित्राः सुदामानमुदावहन् ॥ ४९ ॥ शशलोहितवर्णास्तु पांडुरोद्गतराजयः । पाञ्चाल्यं गोपतेः पुत्रं सिंहसेनमुदावहन् ॥५०॥ पंचालानां

पीछे२ चलरहे थे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ काम्बोजदेशी प्रभद्रक नाम वाले छः सहस्र योधा, आयुधोंको उठाकर, सुनहरी ध्वजावाले तथा श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुते रथोंमें बैठकर रणमें आये थे, वे धनुषोंको तानकर बाणोंकी बौछार करतेहुए मृत्युसमान बनकर धृष्टद्युम्न के पीछे चलरहे थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ सुवर्णकी मालाएँ पहरे, प्रसन्न मनवाले तथा पीले और गौर वर्णके श्रेष्ठ घोडे चेकितानको ले चले ॥ ४५ ॥ अर्जुनका मामा कुन्तिभोज पुरुजित् इन्द्रधनुषकी समान तीन रङ्गके घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ युद्धमें आया ॥ ४६ ॥ राजा रोचमानको तारोंसे चितेहुए आकाशकी समान वर्णवाले घोडे युद्धमें लेचले ॥ ४७ ॥ जरासंधके पुत्र सहदेवको चितकबरे, काले पैरोंवाले और सुवर्णके भूषणोंसे शोभायमान घोडे युद्धकी ओर लेचले ॥ ४८ ॥ जो घोड़े वेगमें बाजकी समान और वर्णमें कमलनालकी समान थे, वे सुदामाको लिये जारहे थे ॥ ४९ ॥ पञ्चालके राजा गोपतिका पुत्र सिंहसेन सफेद और लाल रङ्गवाले तथा श्वेत रोमावाली वालें घोड़ोंपर युद्धमें आया

नरव्याघ्रो यः ख्यातो जनमेजयः । तस्य सर्षपपुष्पाणां तुल्यवर्णा हयोत्तमाः ॥ ५१ ॥ माषवर्णाश्च जवना बृहन्तो हेममालिनः । दधिपृष्ठाश्चित्रमुखाः पाञ्चाल्यमवहन्द्रुतम् ॥५२॥ शूराश्च भद्रकाश्चैव शरकाण्डनिभा हयाः । पद्मकिञ्जल्कवर्णाभा दण्डधारमुदावहन् ॥ ५३ ॥ रासभारुणवर्णाभाः पृष्ठतो मूषिकप्रभाः । वल्गन्त इव संयत्ता व्याघ्रदत्तमुदावहन् ॥ ५४ ॥ हरयः कालकाश्चित्राश्चित्रमाल्यविभूषिताः । सुधन्वानं नरव्याघ्रं पाञ्चाल्यं समुदावहन् ॥ ५५ ॥ इन्द्राशनिसमस्पर्शा इन्द्रगोपकसन्निभाः । काये चित्रान्तराश्चित्राश्चित्रायुधमुदावहन् ॥ ५६ ॥ बिभ्रतो हेममालास्तु चक्रवाकोदरा हयाः । कोसलाधिपतेः पुत्रं सुक्षत्रं वाजिनोऽवहन् ५७ शबलास्तु बृहन्तोऽश्वा दान्ता जाम्बूनदस्रजः । युद्धे सत्यधृतिं क्षेमि-

---

था ॥ ५० ॥ पञ्चालोंमें जनमेजय नामसे प्रसिद्ध राजाको सरसों के फूल और उड़दकी समान वर्णवाले, तेज, हमेलें पहिरेहुए, दही कीसी झूल और चितकबरे मुखोंवाले घोड़े लेकर चलरहे थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ राजा दण्डधार वीर, सुन्दर शिरवाले, चमकतेहुए सेंटोंकी समान सुन्दर, कमलके परागकी समान वर्णवाले घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ युद्ध करनेको चढा था ॥ ५३ ॥ राजा व्याघ्रदत्त फीके लालरङ्गकी समान कान्तिवाले तथा पीठमें मलिन श्वेत मजबूत घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ युद्ध करनेके लिये आया था ॥ ५४ ॥ पञ्चालदेशी नरव्याघ्र सुधन्वाको काले मस्तकवाले, चितकबरे, नानाप्रकारके फूलोंसे विभूषित घोड़े लेकर चलरहे थे ॥ ५५ ॥ छूनेमें बिजलीकी समान, इन्द्रगोपकेसे वर्णवाले विचित्रवर्णी अद्भुतदर्शनीय घोड़े चित्रायुधको लेकर चले ॥ ५६ ॥ सुवर्णकी हमेलोंको पहरे चकवेके पेटकी समान रङ्गके घोड़े कोसल देशके राजकुमार सुक्षत्रको लेकर चले ॥ ५७ ॥ चितकबरे, चतुर, सुवर्णकी मालाओंवाले बड़े २ घोड़े युद्धमें सच्चे वीर

प्रवहन् प्रांशवः शुभाः ॥ ५८ ॥ एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च । अश्वैश्च धनुषा चैव शुक्लैः शुक्लो न्यवर्त्तत ॥५९॥ समुद्रसेनपुत्रन्तु समुद्रा रुद्रतेजसम् । अश्वाः शशाङ्कसदृशाश्चन्द्रसेनमुदावहन् ॥ ६० ॥ नीलोत्पलसवर्णास्तु तपनीयविभूषिताः । शैब्यं चित्ररथं संख्ये चित्रमाल्यावहन् हयाः ॥६१॥ कलायपुष्पवर्णास्तु श्वेतलोहितराजयः । रथसेनं हयश्रेष्ठाः समूहुर्युद्धदुर्मदम् ॥ ६२ ॥ यन्तु सर्वमनुष्येभ्यः प्राहुः शूरतरं नृपम् । तं पटच्चरहन्तारं शुकवर्णावहन् हयाः ॥६३॥ चित्रायुधं चित्रमाल्यं चित्रवर्मायुधध्वजम् । ऊहुः किंशुकपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः ॥ ६४ ॥ एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च । धनुषा रथवाहैश्च नीलैर्नीलोभ्यवर्तत ॥६५॥ नानारूपै रत्नचित्रैर्वरूथरथकार्मुकैः । वाजिध्वजपता-

---

क्षेमिको लेकर चलरहे थे ॥ ५८ ॥ एकही रङ्गके ध्वजा, कवच, धनुष और सफेद घोडोंवाला राजा शुक्र युद्ध करनेको चलरहा था ॥ ५९ ॥ प्रचण्ड तेजवाले, समुद्रसेनके पुत्र चन्द्रसेनको समुद्रसे उत्पन्नहुए चन्द्रवर्णी घोड़े लेकर जारहे थे ॥ ६० ॥ नीलकमलकेसे वर्णवाले, सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित, नानाप्रकारकी चित्रविचित्र मालाओंवाले घोडोंसे जुते रथमें बैठकर शिविके पुत्र चित्ररथने युद्धमें प्रवेश किया ॥ ६१ ॥ युद्धदुर्मद रथसेन, मटरके फूलोंकी समान वर्णवाले, लाल और श्वेत ग्रीवाके केशों वाले श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ युद्ध करनेको आया था ॥६२॥ जिसको सब मनुष्योंसे अधिक शूर कहते हैं उस पटच्चरनामक असुरको मारनेवाले समुद्रदेशके स्वामीको तोतेकेसे वर्णवाले घोड़े युद्धमें लेकर चले ॥ ६३ ॥ टेसूके फूलोंकेसे वर्णवाले श्रेष्ठघोड़े, विचित्र प्रकारके, कवच, ध्वजा, आयुध तथा मालाको धारण करनेवाले चित्रायुधको लेकर चले ॥ ६४ ॥ जिसकी ध्वजा, कवच; धनुष तथा घोड़े आदि सबही एक नीले रङ्गके थे, वह राजा

काभिश्चित्रैश्चित्रोऽभ्यवर्त्तत ॥ ६६ ॥ ये तु पुष्करवर्णस्य तुल्यवर्णा हयोत्तमाः । ते रोचमानस्य सुतं हेमवर्णमुदावहन् ॥ ६७ ॥ योधाश्च भद्रकाराश्च शरदण्डानुदण्डयः । श्वेताण्डाः कुक्कुटाण्डाभा दण्डकेतुं हयावहन् ॥ ६८ ॥ केशवेन हते संख्ये पितर्यथ नराधिपे । भिन्ने कपाटे पाण्ड्यानां विद्रुतेषु च बन्धुषु ॥ ६९ ॥ भीष्मादवाप्य चास्त्राणि द्रोणाद्रामात् कृपात्तथा । अस्त्रैः समत्वं सम्प्राप्य रुक्मिकर्णार्जुनाच्युतैः ॥७०॥ इयेष द्वारकां हन्तुं कृत्स्नां जेतुञ्च मेदिनीम् । निवारितस्ततः प्राज्ञैः सुहृद्भिर्हितकाम्यया ७१ वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वराज्यमनुशास्ति यः । स सागरध्वजः पांड्यश्चन्द्ररश्मिनिभैर्हयैः ॥७२॥ वैदूर्यजालसञ्छन्नैर्वीर्यद्रविणमाश्रितः ।

नील भी युद्ध करनेको चलदिया ॥६५॥ तथा राजा चित्र, नानाप्रकारके पैदल, तथा रत्नजड़ित रथ, धनुष हाथी, घोड़े और तरह२ की ध्वजा तथा पताकाओंके साथ युद्धमें चढआया ॥६६॥ आसमानी रङ्गके श्रेष्ठ घोड़े रोचमानके पुत्र हेमवर्णको लेकर चल दिये ॥ ६७ ॥ युद्ध करनेमें समर्थ श्रेष्ठ कर्म करनेवाले, सेंटोंकी चमककी समान पृष्ठवंश और श्वेत अण्डकोशवाले, मुर्गीके अंडे केसे रङ्गके घोडे दण्डकेतुको ले जारहे थे ॥ ६८ ॥ देशके स्वामी अपने पिताके, श्रीकृष्णके हाथसे मारे जाने पर और पाण्ड्यदेशके फाटकके टूट जाने पर तथा बान्धवोंके भाग जाने पर ॥६९॥ जिसने भीष्म, द्रोण, और परशुरामसे अस्त्रविद्या सीखी और उससे रुक्मि, कर्ण तथा अर्जुन एवं श्रीकृष्णकी समानता प्राप्त कर द्वारिकाको नष्ट करना तथा समग्र भूमण्डलको जीतना चाहा था तथा जिसको हितैषी भाइयोंने ऐसा करनेसे रोका था७०-७१ तथा जो अपने देशमें (पीछे) वैरभावको छोडकर शासन करता था वह वीर्य और धनका धनी पाण्ड्य देशका राजा सागरध्वज चन्द्रमाकी किरणोंकेसे श्वेत, वैदूर्यमणिके आभूषणों वाले

दिव्यं विस्फारयंश्चापं द्रोणमभ्यद्रवद्बली ॥ ७३ ॥ आटरूषकवर्णाभा हयाः पांड्यानुयायिनाम् । अवहन् रथमुख्यानामयुतानि चतुर्दश ॥ ७४ ॥ नानावर्णेन रूपेण नानाकृतिमुखा हयाः । रथचक्रध्वजं वीरं घटोत्कचमुदावहन् ॥ ७५ ॥ भरतानां समेतानामुत्सृज्यैको मतानि यः । गतो युधिष्ठिरं भक्त्या त्यक्त्वा सर्वमभीप्सितम् ॥ ७६ ॥ लोहिताक्षं महाबाहुं बृहन्तं तमरट्टजाः । महासत्वा महाकायाः सौवर्णस्यन्दने स्थितम् ॥ ७७ ॥ सुवर्णवर्णा धर्मज्ञमनीकस्थं युधिष्ठिरम् । राजश्रेष्ठं हयश्रेष्ठाः सर्वतः पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ७८ ॥ वर्णैरुच्चावचैरन्यैः सदश्वानां प्रभद्रकाः । संन्यवर्त्तन्त युद्धाय बहवो देवरूपिणः ॥ ७९ ॥ ते यत्ता भीमसेनेन सहिताः

घोड़ोंके रथमें बैठ अपने दिव्य चापको चढ़ाता हुआ द्रोणकी ओर चढ़ आया ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ चौदह सहस्र महारथी योधा अडूसे के वर्णवाले घोड़ोंके रथोंमें बैठकर पाण्ड्यके पीछे २ चलते थे ७४ नानाप्रकारके रूप, आकृति और मुखवाले घोड़े रथियोंके मंडलमें ध्वजारूप घटोत्कचको लेकर चलरहे थे ७५ इकट्ठेहुए भरतवंशी राजाओंके मतका तथा सकल इच्छित वस्तुओंको त्यागकर जो भक्तिसे युधिष्ठिरके आश्रयमें चलागया था वह लाल नेत्रोंवाला महाबाहु महाबली, महाकाय, राजा बृहन्ता अरट्टदेशी घोड़ोंसे जुते सुनहरी रथमें बैठकर रणभूमिमें आया ॥ ७६–७७ ॥ सुनहरी रङ्गके श्रेष्ठ घोड़े सेनाके मध्यमें स्थित, राजाओंमें श्रेष्ठ, धर्मवेत्ता राजा युधिष्ठिरके पीछे उनको चारों ओरसे घेरकर चलते थे ॥ ७८ ॥ देवताओंकी समान रूप धारण करनेवाले बहुतसे प्रभद्रक भी, चढ़ते उतरते रङ्गवाले श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ कर युद्ध करनेको रणभूमिमें आये ॥ ७९ ॥ हे राजेन्द्र ! युद्धके साजसे सजेहुए, सुनहरी ध्वजाओंवाले वे प्रभद्रक वीर भीमसेन के साथमें थे और इन्द्रके साथ जैसे देवता रहते हैं तैसे भीमके

काञ्चनध्वजाः। प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र सेन्द्रा इव दिवौकसः ८०
अत्यरोचत तान् सर्वान् धृष्टद्युम्नः समागतान्। सर्वाण्यति च
सैन्यानि भारद्वाजो व्यरोचत ॥ ८१ ॥ अतीव शुशुभे तस्य ध्वजः
कृष्णाजिनोत्तरः। कमण्डलुर्महाराज जातरूपमयः शुभ. ॥ ८२ ॥
ध्वजन्तु भीमसेनस्य वैदूर्यमणिलोचनम्। भ्राजमानं महासिंहं राजतं
दृष्टवानहम् ॥ ८३ ॥ ध्वजन्तु कुरुराजस्य पांडवस्य महौजसः।
दृष्टवानस्मि सौवर्णं सोमं ग्रहगणान्वितम् ॥ ८४ ॥ मृदङ्गौ चात्र
विपुलौ दिव्यौ नन्दोपनन्दकौ। यन्त्रेणाहन्यमानौ च सुस्वनौ
हर्षवर्धनौ ॥ ८५ ॥ शरभं पृष्ठसौवर्णं नकुलस्य महा-
ध्वजम्। अपश्याम रथेत्युग्रं भीषयाणमवस्थितम् ॥ ८६ ॥ हंसस्तु
राजतः श्रीमान् ध्वजे घण्टापताकवान्। सहदेवस्य दुर्धर्षो द्विषतां
शोकवर्धनः ॥ ८७ ॥ पञ्चानां द्रौपदेयानां प्रतिमाध्वजभूषणम्।

साथ रहते थे ॥ ८० ॥ इन सब प्रभद्रकोंके आगे खड़ाहुआ
धृष्टद्युम्न उन सबसे अधिक प्रदीप्त प्रतीत होता था, तैसेही सब
सेनाके मुहाने पर खडे द्रोणाचार्य भी वडे दिपरहे थे ॥ ८१ ॥
हे महाराज! उनकी काले मृगचर्मकी ध्वजा, और पताका तथा
सुवर्णका शुभ कमण्डलु अत्यन्त शोभा देरहा था ॥ ८२ ॥
महासिंहके चित्रवाली, वैदूर्यमणिसे जड़ी भीमसेनकी ध्वजा भी
मैंने चमकती हुई देखी थी ॥ ८३ ॥ सुनहरी चन्द्रमा और तारा-
गणोंसे चित्रित महाबली कुरुराज पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी ध्वजाको
भी मैंने देखा था ॥ ८४ ॥ रणभूमिमें नन्द तथा उपनन्द नामके
दो बड़े २ मृदङ्ग रक्खे थे, जो यन्त्रसे वजाये जाते थे और वजने
पर बडा सुन्दर तथा हर्ष वढानेवाला शब्द करते थे ॥ ८५ ॥
नकुलके रथके ऊपर महाउग्र शरभके चिन्हसे चित्रित, भयङ्कर
और सुवर्णसे जडी हुई ध्वजा हमारे देखनेमें आयी ॥ ८६ ॥ शत्रुओं
के शोकको बढानेवाली, सबको असह्य, हंसके चिन्हसे चित्रित,

धर्ममारुतशक्राणामश्विनोश्च महात्मनोः ॥ ८८ ॥ अभिमन्योः कुमारस्य शार्ङ्गपक्षी हिरण्मयः । रथे ध्वजवरो राजंस्तप्तचामीकरोज्ज्वलः ॥ ८९ ॥ घटोत्कचस्य राजेन्द्र ध्वजे गृध्रो व्यरोचत । अश्वाश्च कामगास्तस्य रावणस्य पुरा यथा ॥ ९० ॥ माहेन्द्रञ्च धनुर्दिव्यं धर्मराजे युधिष्ठिरे । वायव्यं भीमसेनस्य धनुर्दिव्यमभून्नृप ॥ ९१ ॥ त्रैलोक्यरक्षणार्थाय ब्रह्मणा सृष्टमायुधम् । तद्दिव्यमजरञ्चैव फाल्गुनार्थाय वै धनुः ॥ ९२ ॥ वैष्णवं नकुलायाथ सहदेवाय चाश्विजम् । घटोत्कचाय पौलस्त्यं धनुर्दिव्यं भयानकम् ॥ ९३ ॥ रौद्रमाग्नेयकौवेरं याम्यं गिरिशमेव च । पञ्चानां द्रौपदेयानां धनूरत्नानि भारत९४ रौद्रं धनुर्वरं श्रेष्ठं

घण्टोंवाली ध्वजा सहदेवके रथपर फहरा रही थी ॥ ८७ ॥ द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी सुवर्णकी ध्वजाओं पर धर्म, मरुत, इन्द्र और आश्विनीकुमारोंके चित्र बने हुए थे, कुमार अभिमन्युकी ध्वजामें शार्ङ्ग पक्षीका चिन्ह था, यह चिन्ह तपेहुए सुवर्णकी समान चमकता था ।८८-८९। हे राजेन्द्र ! घटोत्कचकी ध्वजामें गिद्धका चिन्ह था और उसके घोड़े रावणके घोड़ोंकी समान इच्छानुकूल चलनेवाले थे ॥९०॥ हे राजन् ! धर्मराज युधिष्ठिरके पास माहेन्द्र और भीमसेनके पास वायव्य नामक धनुष था ॥ ९१ ॥ पहिले ब्रह्माने तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके लिये जिस आयुधको रचा था, वह दिव्य, अजर तथा अमर आयुध अर्जुनके पास था ९२ नकुलके लिये वैष्णव नामक धनुष और सहदेवके लिये अश्विनीकुमारका बनाया हुआ धनुष था, और घटोत्कचके लिये पौलस्त्य नामक धनुष बनाया गया था ॥ ९३ ॥ द्रौपदीके पाँचों कुमारोंके लिये रौद्र, आग्नेय, कौवेर, याम्य और गिरीश ये पाँच धनुष रचेगए थे, जो उनके पास थे ॥९४॥ रोहिणीनन्दन बलरामने जिस रौद्र और श्रेष्ठ धनुषको पाया था उसको उन्होंने

लेभे यद्रौहिणीसुतः । तत्तुष्टः प्रददौ रामः सौभद्राय महात्मने ९५ एते चान्ये च बहवो ध्वजा हेमविभूषिताः । तत्र दृश्यन्त शूराणां द्विषतां शोकवर्धनाः ।९६॥ तदभूद् ध्वजसम्बाधमकापुरुषसंवितम् । द्रोणानीकं महाराज पटे चित्रमिवार्पितम् ।९७॥ शुश्रुवुर्नामगोत्राणि वीराणां संयुगे तदा । द्रोणमाद्रवतां राजन् स्वयम्बर इवाहवे॥९८॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि हयध्वजादिकथने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । व्यथयेयुरिमे सेनां देवानामपि सञ्जय । आहवे ये न्यवर्त्तन्त वृकोदरमुखा नृपाः ॥ १ ॥ संप्रयुक्तः किलैवायं दिष्टैर्भवति पूरुषः । तस्मिन्नेव च सर्वार्थाः प्रदृश्यन्ते पृथग्विधाः ॥२॥

प्रसन्न होकर अभिमन्युको देदिया था ॥ ९५ ॥ इसप्रकार शूरवीरोंके रथोंपर फहरातीहुईं ये तथा दूसरी असंख्यों ध्वजाएँ शत्रुओंके मनमें शोकको बढारही थीं ॥ ९६ ॥ हे महाराज ! इसी प्रकार बहुतसी ध्वजा, पताका और शूरोंके समूहोंसे युक्त द्रोणकी सेना, परदे पर खिंचेहुए चित्रसी दीखती थी ॥ ९७ ॥ इस समय हे राजन् ! द्रोणके ऊपर चढ़ाई करके आनेवाले वीर राजाओंके गोत्र और नाम ऐसे सुनाई पड़ते थे, जैसे स्वयम्वरमें सुनाई आरहे हों ॥ ९८ ॥ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि–जो भीमसेनआदि राजे द्रोणाचार्यसे लडने आए थे, वे तो देवताओंकी सेनामें भी खलवली डाल सकते थे ॥ १ ॥ सचमुच पुरुष कर्मोंके भोगों (दैव) से बँधा

टिप्पणी–महाभारतके समयमें यह नियम था कि–योधा जब एक दूसरेसे लडनेको जाते थे, उस समय अपना, वंश, गोत्र एक दूसरेको सुनाकर लडते थे, अर्थात् चाहे जिसके साथ नहीं लडते थे, किन्तु अपने समानके साथ ही रण करते थे और इस प्रकार बोले हुए नामोंसे ही सञ्जयने यह वर्णन सुनाया है ।

दीर्घं विप्रोषितः कालमरण्ये जटिलोऽजिनी । अज्ञातश्चैव लोकस्य विजहार युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥ स एव महतीं सेनां समावर्त्तयदाहवे । किमन्यद्दैवसंयोगान्मम पुत्रस्य चाभवत् ॥४॥ युक्त एव हि भाग्येन ध्रुवमुत्पद्यते नरः । स तथा कृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति ५ द्यूतव्यसनमासाद्य क्लेशितो हि युधिष्ठिरः । स पुनर्भागधेयेन सहायानुपलब्धवान् ॥ ६ ॥ अद्य मे केकया लब्धाः काशिकाः कोसलाश्च ये । चेदयश्चापरे वङ्गा मामेव समुपाश्रिताः ॥ ७ ॥ पृथिवी भूयसी तात मम पार्थस्य नो तथा । इति मामब्रवीत् सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा ॥ ८ ॥ तस्य सेनासमूहस्य मध्ये द्रोणः सुरक्षितः ।

हुआ ही उत्पन्न होता है और सब कार्योंका आधार भी दैव पर ही है ॥ २ ॥ क्योंकि—जो युधिष्ठिर जटा वढा मृगचर्म ओढकर वहुत समय तक जङ्गलमें रहे थे और जो ऐसे छिपकर विचरे थे कि—उनको कोई मनुष्य पहिचान ही न सका ॥ ३ ॥ वही युधिष्ठिर आज वडीभारी सेनाको युद्धमें चला रहे हैं, इसको दैवके सिवाय और क्या कहा जाय ? तथा मेरे पुत्रको जो राज्यका लोभ हुआ था उसमें भी दैव ही कारण था ॥४॥ यह निश्चय है कि—मनुष्य प्रारब्धसे वँधा हुआ ही उत्पन्न होता है, वह अपनी इच्छासे कुछ भी नहीं करसकता, किन्तु दैवके आधीन हो, उसकी इच्छासे ही सब काम करता है ॥ ५ ॥ दुर्भाग्यके कारण युधिष्ठिरने जुएमें फँसकर कष्ट भोगा और अब सौभाग्यका उदय होने पर उसने उत्तम सहायकोंको पाया है ॥ ६ ॥ हे सूत ! पहिले मन्दबुद्धि दुर्योधनने मुझसे कहा था, कि—हे पिताजी ! आज काशी, कौसल, चेदि और वङ्गदेशके तथा दूसरे राजाओंने भी मेरा आश्रय लिया है तथा जितनी विशालभूमि मेरे अधीन है उतनी अर्जुनके वशमें नहीं है ॥ ७-८ ॥ ऐसे दुर्योधनकी सेनाके वीचमें सुरक्षित द्रोणाचार्यको द्रुपदपुत्रने

जितः । निहतः पार्षतेनाजौ किमन्यद्भागधेयतः ॥९॥ मध्ये राज्ञां महाबाहुं सदा युद्धाभिनन्दिनम् । सर्वास्त्रपारगं द्रोणं कथं मृत्युरुपेयिवान् ॥ १० ॥ समनुप्राप्तकृच्छ्रोहं मोहं परममागतः । भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥ यन्मां क्षत्ताब्रवीत्तात प्रपश्यन् पुत्रगृद्धिनम् । दुर्य्योधनेन तत्सर्वं प्राप्तं सूत मया सह १२ नृशंसन्तु परं नु स्यात् त्यक्त्वा दुर्य्योधनं यदि । पुत्रशेषं चिकीर्षेयं कृत्स्नं न मरणं व्रजेत् ॥ १३ ॥ यो हि धर्मं परित्यज्य भवत्यर्थपरो नरः । सोस्माच्च हीयते लोकात् क्षुद्रभावञ्च गच्छति ।१४। अद्य चाप्यस्य राष्ट्रस्य हतोत्साहस्य सञ्जय । अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ १५ ॥ कथं स्यादवशेषो हि धुर्य्ययोरभ्यती-

---

युद्धमें मारडाला इसे भाग्यके सिवाय क्या समझा जाय ॥ ९ ॥ सदा युद्धका अभिनन्दन करनेवाले सकलअस्त्रोंके पारगामी महाबाहु द्रोणाचार्यको सब राजाओंके मध्यमें मौत कैसे आगई ! हा ॥ १० ॥ अरेरे ! मैं बड़े कष्टमें आपड़ा हूँ, मुझै मूर्छासी आती है, ओह ! द्रोण और भीष्मको मराहुआ सुनकर मैं जीना नहीं चाहता॥११॥हे सूत ! मुझै पुत्रोंसे प्रेम करतेहुए देख विदुर ने जो२ कहा था; वह सब मुझे और दुर्योधनको भोगना पड़ा है ! ॥१२॥ यदि आज मैं दुर्योधनको त्याग दूँ तो यह अतिनिन्दनीय काम होगा, परन्तु ऐसा करनेसे मेरे पुत्र जीवित रह जायँ और सब लोगभी न मरें ॥ १३ ॥ जो मनुष्य धर्मकी ओर न देख धनकी ओरकोही देखता है, वह इस लोकसे भ्रष्ट होजाता है और मरणके अनन्तर अधोगति पाता है ॥ १४ ॥ हे सञ्जय ! मुख्यपुरुष द्रोणके मारे जानेसे हतोत्साह हुए मुझे इस राज्यका आज कल्याण नहीं दीखता ॥ १५ ॥ जिन दो क्षमावान् बोझेको सम्हालनेवाले पुरुषश्रेष्ठोंसे हम नित्य आजीविका चलाते थे वे जब परलोकको चलेगए तो इस राज्यका

तयोः । यौ नित्यमुपजीवामः क्षमिणौ पुरुषर्षभौ॥१६॥व्यक्तमेव च मे शंस यथा युद्धमवर्त्तत । केयुध्यन् के व्यपाकुर्वन् के क्षुद्राः प्राद्रवन् भयात् ॥ १७ ॥ धनञ्जयश्च मे शंस यद्यच्चक्रे रथर्षभः । तस्माद्भयं नो भूयिष्ठं भ्रातृव्याच्च वृकोदरात् ॥ १८ ॥ यथासीच्च निवृत्तेषु पाण्डवेयेषु सञ्जय । मम सैन्यावशेषस्य सन्निपातः सुदारुणः ॥ १९ ॥ कथञ्च वा मनस्तात निवृत्तेष्वभवत्तदा । मामकानाश्च ये शूराः के कांस्तत्र न्यवारयन् ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
धृतराष्ट्रवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

सञ्जय उवाच । महद्भैरवमासीन्नः संनिवृत्तेषु पाण्डुषु । दृष्ट्वा द्रोणं छाद्यमानं तैर्भास्करमिवाम्बुदैः ॥१॥ तैश्चोद्धूतं रजस्तीव्रमवचक्रे चमूं तव । ततो हतममंस्याम द्रोणं दृष्टिपथे हते॥२॥तांस्तु

कल्याण कैसे होसकता है ॥ १६ ॥ हे सञ्जय ! यह मुझे स्पष्टरूपसे बता, कि-युद्ध कैसे २ हुआ था, उसमें कौन २ लड़े थे ? किस २ ने प्रहार किया था ? और कौन २ नीच डरके मारे भाग गए थे ॥ १७॥ रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने जो २ काम किये हों उन सबको मुझे सुना क्योंकि-मुझे उससे तथा और अपने शत्रु भीमसेनसे बड़ा डर है ॥ १८ ॥ हे सञ्जय ! पाण्डवोंके युद्ध करनेको लौट पडने पर हमारी बचीखुची सेनाका घोर संहार जिस प्रकार हुआ था सो सुना ॥१९॥ तथा पांडवोंके लौट पड़ने पर तुम्हारे चित्तमें क्या २ विचार उठे थे ? तथा मेरे किन २ वीरोंने कौन २ से पांडवोंके योधाओंको रोका था ॥ २० ॥
चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

सञ्जयने कहा कि-पांडवोंने लौट कर द्रोणको, जैसे मेघ सूर्य को ढकदेता है तैसे चारों ओरसे घेरलिया यह देख हमारे मनमें बड़ा भय उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ उस समय सेनाके पैरोंसे

शूरान् महेष्वासान् क्रूरं कर्म चिकीर्षतः । दृष्ट्वा दुर्योधनस्तूर्णं स्वसैन्यं समचूचुदत्॥३॥यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं नराधिपाः । वारयध्वं यथायोगं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ४ ॥ ततो दुर्मर्षणो भीममभ्यगच्छत् सुतस्तव । आराद् दृष्ट्वा किरन् बाणैर्जिघृक्षुस्तस्य जीवितम्॥५॥ तं बाणैरवतस्तार क्रुद्धो मृत्युरिवाहवे । तञ्च भीमोऽतुदद्बाणैस्तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ६ ॥ ते ईश्वरसमादिष्टाः प्राज्ञाः शूराः प्रहारिणः । राज्यं मृत्युभयं त्यक्त्वा प्रत्यतिष्ठन् परान्युधि ७ कृतवर्मा शिनेः पौत्रं द्रोणं प्रेप्सुं विशाम्पते । पर्यवारयदायातं शूरं समरशोभिनम् ॥८॥ तं शैनेयः शरव्रातैः क्रुद्धः क्रुद्धमवारयत् ।

उडीहुई धूलिने तुम्हारी सेनाको ढकदिया और द्रोणाचार्यका दीखना भी बन्द होगया उस समय हमैं पहले ऐसा प्रतीत हुआ कि–द्रोणाचार्य मारेगए॥२॥तदनन्तर उन शूरोंको क्रूर कर्म करना चाहतेहुए देखकर दुर्योधन अपनी सेनाको शीघ्रताके साथ प्रेरणा करनेलगा कि–॥ ३ ॥ हे राजाओं ! तुम जैसे हो वैसे अपनी शक्ति उत्साह और बल लगाकर शत्रुकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोकदो ॥ ४ ॥ तदनन्तर तुम्हारे पुत्र दुर्मर्षणने भीमसेनको आगे बढता देख द्रोणाचार्यके प्राणोंको बचानेकी इच्छासे उसके ऊपर बाण वर्षाना आरम्भ करदिया ॥ ५ ॥ क्रोधमें भरे मृत्युकी समान दुर्मर्षणने रणमें उसको बाणोंसे ढकदिया तदनन्तर भीमसेनने भी उसके मर्मस्थानोंमें बहुतसे बाण मारे इसप्रकार उन दोनोंमें तुमुल युद्ध हुआ ॥ ६ ॥ इतनेमें बुद्धिमान् वीर प्रहार करनेमें कुशल कौरवपक्षके राजे, राज्य और मृत्युके भयको छोड कर दुर्योधनकी आज्ञानुसार शत्रुओंसे युद्ध करनेको व्यूहरचनासे खड़े होगए ॥ ७ ॥ हे राजन् ! वीर, समरशोभी शिनिपुत्र सात्यकी, द्रोणके पकडनेको आरहा था, उसको कृतवर्माने रोक दिया ॥ ८ ॥ क्रोधमें भरेहुए सात्यकीने क्रोधमें भरेहुए कृत-

कृतवर्मा च शैनेयं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥९॥ सैन्धवः क्षत्रवर्माण-
मायांतं निशितैः शरैः । उग्रधन्वा महेष्वासं यत्तो द्रोणादवार-
यत् ॥ १० ॥ क्षत्रवर्मा सिंधुपतेश्छित्वा केतनकार्मुके । नाराचैर्द-
शभिः क्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥११॥ अथान्यद्धनुरादाय सैन्धवः
कृतहस्तवत् । विव्याध क्षत्रवर्माणं रणे सर्वायसैः शरैः ॥ १२ ॥
युयुत्सुं पाण्डवार्थाय यतमानं महारथम् । सुबाहुर्भ्रातरं शूरं यत्तो
द्रोणादवारयत् ॥ १३॥ सुबाहोः सधनुर्बाणावस्यतः परिघोपमौ ।
युयुत्सुः शितपीताभ्यां क्षुराभ्यामच्छिनद्भुजौ ॥ १४ ॥ राजानं
पाण्डवश्रेष्ठं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् । वेलेव सागरं क्षुब्धं मद्रराट्
समवारयत्॥१५॥ तं धर्मराजो बहुभिर्मर्मभिद्भिरवाकिरत् । मद्रेशं-

---

वर्माको बाणोंकी वर्षासे रोकदिया और कृतवर्मा भी मदवाला
हाथी जैसे दूसरे मदोन्मत्त हाथीको हटाता है तैसे सात्यकीको
हटानेलगा ॥ ९॥ महाधनुषधारी क्षत्रवर्मा द्रोणके ऊपर चढा आ
रहा था उसको उग्रधन्वा डटकर खड़ेहुए सिन्धुराज जयद्रथने
तीक्ष्ण बाण मारकर रोकदिया ॥ १० ॥ क्रोधमें भरे क्षत्रवर्माने
सिंधुराजके धनुष और ध्वजाको काटकर दश बाणोंसे उसके
मर्मस्थानोंको बींधदिया ॥११॥ सिंधुराजने जैसे हाथमें ही रक्खा
था, इसप्रकार फुर्तीसे दूसरा धनुष लेकर निरे लोहेके बाणोंसे
क्षत्रवर्माको बींधना आरम्भ करदिया ॥ १२ ॥ पाण्डवोंके लिये
प्रयत्न करतेहुए भरतवंशी वीर, महारथी युयुत्सुको सुबाहुने साव-
धानीसे द्रोणके पास जानेसे रोकदिया ॥ १३ ॥ श्रेष्ठ धनुष पर
बाणोंको चढाकर फेंकते हुए सुबाहुकी परिघसमान दोनों भुजा-
ओंको युयुत्सुने काले तथा पीले रंगके दो क्षुरनामक बाणोंसे
काटडाला१४ इतनेमें पाण्डवश्रेष्ठ धर्मात्मा युधिष्ठिर द्रोणके ऊपर
चढ आए, परन्तु जैसे किनारा समुद्रको आगे बढनेसे रोकता है
तैसे ही मद्रराजने धर्मराजको आगे बढ़नेसे रोका ।१५। धर्मराजने

स्तं चतुःषष्ट्या शरैर्विध्वाऽनदद्भृशम् ॥ १६ ॥ तस्य नानदतः केतुमुच्चकर्त्त च कार्मुकम् । क्षुराभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः॥१७॥तथैव राजा बाह्लीको राजानं द्रुपदं शरैः । आद्रवन्तं सहानीकः सहानीकं न्यवारयत् १८ तद्युद्धमभवद्घोरं वृद्धयोः सहसेनयोः । यथा महायूथपयोर्द्विपयोः सम्पभिन्नयोः१९विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम् । सहसैन्यौ सहानीकं यथेन्द्राग्नी पुरा बलिम् ॥ २० ॥ तदुत्पिञ्जलकं युद्धमासीद्देवासुरोपमम् । मत्स्यानां केकयैः सार्धमभीताश्वरथद्विपम् ॥ २१ ॥ नाकुलिन्तु शतानीकं भूतकर्मा सभापतिः । अस्यन्तमिषुजालानि यांतं द्रोणादवारयत् ॥ २२ ॥ ततो नकुलदायादस्त्रिभिर्भल्लैः सुसंशितैः ।

बहुतसे मर्मभेदी बाणोंसे मद्रराजको बींधा तब मद्रराजने भी उनके चौंसठ बाण मारकर बड़ी जोरसे गर्जनाकी १६ उसके गर्जना करतेमें ही पांडवश्रेष्ठ धर्मराजने क्षुरनामक दो बाणोंसे मद्रराजकी ध्वजा और धनुषको काटदिया यह देख सैनिकोंने दुन्द मचाडाला१७ सेनाको साथमें लेकर द्रोणकी ओर बढतेहुए राजा द्रुपदको राजा बाल्हीकने अपनी सेनाके साथ बाणोंकी वर्षा करके रोकदिया१८ जैसे मदोन्मत्त गजयूथोंके स्वामी दो हाथी परस्पर युद्ध करते हैं तैसे ही सेनासहित उन दोनों वृद्ध राजाओंका घोर युद्ध होनेलगा१९पहिले जैसे इन्द्र और अग्नि बलिके ऊपर चढगए थे, तैसे ही अवन्तिदेशके स्वामी सेनासहित विन्द और अनुविन्दने सेना-सहित विराटको घेरलिया ॥ २० ॥ उन दोनोंमें देवासुर संग्रामकी समान महातुमुल युद्ध हुआ था तैसे ही मत्स्य और केकयोंका भी तुमुल युद्ध हुआ था संग्राममें हाथी, घोड़े, रथी, तथा सवार निर्भय होकर लड़ते थे॥२१॥बाणोंके जालको फैलाते हुए नकुलके पुत्र शतानीकको सभापति नामक भूतकर्माने द्रोणके पास जानेसे रोकदिया ॥ २२ ॥ यह देख नकुलने रणमें शान

चक्रे विबाहुशिरसं भूतकर्माणमाहवे ॥ २३ ॥ सुतसोमन्तु विक्रान्तमायान्तं तं शरौघिणम् । द्रोणायाभिमुखं वीरं विविंशतिरवारयत् २४ सुतसोमस्तु संक्रुद्धः स्वपितृव्यमजिह्मगैः । विविंशतिं शरैर्भित्त्वा नाभ्यवर्त्तत दंशितः ॥ २५ ॥ अथ भीमरथः शाल्वमाशुगैरायसैः शितैः । षड्भिः साश्वनियन्तारमनयद्यमसादनम् ॥ २६ ॥ श्रुतकर्माणमायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः । चैत्रसेनिर्महाराज तव पौत्रं न्यवारयत् ॥२७॥ तौ पौत्रौ तव दुर्धर्षौ परस्परवधैषिणौ । पितृणामर्थसिद्ध्यर्थं चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥ २८ ॥ तिष्ठन्तमग्रे तं दृष्ट्वा प्रतिविन्ध्यं महाहवे । द्रौणिर्मानं पितुः कुर्वन् मार्गणैः समवारयत् २९ तं क्रुद्धं प्रतिविव्याध प्रतिविन्ध्यः शितैः शरैः । सिंहलांगूललक्ष्माणं पितुरर्थे व्यवस्थितम् ॥ ३० ॥ प्रवपन्निव बीजानि बीजकाले नर-

---

पर धरेहुए तीन भालोंसे भूतकर्माको शिर और भुजाओंसे विहीन करदिया ॥ २३ ॥ महापराक्रमी वीर सुतसोम बहुतसे बाणों को लेकर द्रोणके ऊपर चढ आया उसको विविंशतिने रोकदिया ॥२४ ॥ कवचधारी क्रोधमें भरे सुतसोमने अपने चाचाको सीधे जानेवाले बाणोंसे बींधदिया और निश्चल खडा रहा ॥ २५ ॥ इतनेमेंही भीमसेनने कड़े लोहेके तेज छः बाणोंसे सारथिसहित शाल्वको यमलोकमें भेजदिया ॥२६॥ हे महाराज ! मोरकी समान वर्णवाले घोडोंके रथमें बैठ द्रोणकी ओरको बढतेहुए तुम्हारे पोते श्रुतकर्माको चित्रसेनके पुत्रने रोकलिया।२७।पिताका मनोरथ सिद्ध करनेके लिये वे दुर्धर्ष तुम्हारे दोनों पोते एक दूसरेको मारने की इच्छासे भयङ्कर युद्ध करनेलगे॥२८॥इतनेमें ही उस महायुद्धमें अर्जुनके पुत्र प्रतिविंध्यको द्रोणके सामने खड़ा देखकर अश्वत्थामा ने पिताका मान रखतेहुए प्रतिविन्ध्यको बाणोंसे रोकदिया २९ सिंहकी पूंछके चिन्हवाले, पिताके लिये लड़नेवाले अश्वत्थामा को प्रतिविंध्यने तेज बाणोंसे बींधदिया ॥ ३० ॥ हे नरश्रेष्ठ !

र्षभ । द्रौणायनिं द्रौपदेयाः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ३१ ॥ आर्जुनिं श्रुतकीर्त्तिन्तु द्रौपदेयं महारथम् । द्रोणायाभिमुखं यांतं दौःशासनिरवारयत् ॥ ३२ ॥ तस्य कृष्णसमः कार्ष्णिस्त्रिभिर्भल्लैः सुसंशितैः । धनुर्ध्वजञ्च सूतञ्च छित्वा द्रोणांतिकं ययौ ॥ ३३ ॥ यस्तु शूरतमो राजन्नुभयोः सेनयोर्मतः । तं पटच्चरहन्तारं लक्ष्मणः समवारयत् ॥ ३४ ॥ स लक्ष्मणस्येष्वसनं छित्वा लक्ष्म च भारत । लक्ष्मणे शरजालानि विसृजन् वह्वशोभत ॥ ३५ ॥ विकर्णस्तु महाप्राज्ञो याज्ञसेनिं शिखण्डिनम् । पर्यवारयदायान्तं युवानं समरे युवा ॥३६॥ ततस्तमिषुजालेन याज्ञसेनिं समावृणोत् । विधूय तद्बाणजालं बभौ तव सुतो बली ॥ ३७ ॥ अङ्गदोभिमुखं वीरमुत्तमौ-

द्रौपदीके पुत्रोंने, जैसे किसान वोते समय वीज बखेरता है तैसे वाणोंकी अविराम वर्षासे अश्वत्थामाको ढकदिया॥३१॥अर्जुनसे द्रौपदीमें उत्पन्न हुए द्रोणकी ओर बढते हुए महारथी श्रुतकीर्तिको दुःशासनके पुत्रने आगे बढनेसे रोकदिया३२कृष्णकी समान पराक्रमी अर्जुनका पुत्र श्रुतकीर्ति धारदार तीन भालोंसे उसके धनुष,ध्वजा और सारथीको काटकर द्रोणकी ओर बढ़ गया३३ हे राजन्! जो दोनों सेनाओंमें बहुत माना जाता था उस पटच्चर नामक राक्षसको मारनेवाले समुद्राधिपको लक्ष्मणने रोकलिया३४ पटच्चरको मारनेवाला लक्ष्मणके धनुष और ध्वजाको काटकर उसके ऊपर वाणवर्षा करता हुआ बड़ा सुशोभित होरहा था ॥ ३५ ॥ रणमें बढ़तेहुए द्रुपदके पुत्र तरुण शिखण्डीको महाबुद्धिमान् तरुण विकर्णने रोक लिया ॥ ३६ ॥ यज्ञसेनके पुत्र शिखण्डीने विकर्णको वाणोंके जालोंसे ढकदिया, परन्तु तुम्हारे बलवान् पुत्रने उन वाणोंको काटकर अपूर्व शोभा पायी ३७ शूर उत्तमौजा युद्धमें द्रोणके सामने बढ़ता चला जारहा था,कि-अंगदने उसके सामने पहुँच वाण वर्षा करके उसको आगे

जसमाहवे । द्रोणायाभिमुखं यान्तं शरौघेण न्यवारयत् ॥ ३८ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुलस्तयोः पुरुषसिंहयोः । सैनिकानाञ्च सर्वेषां तयोश्च
प्रीतिवर्धनः ॥ ३९ ॥ दुर्मुखस्तु महेष्वासो वीरं पुरुजितं बली ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं वत्सदन्तैरवारयत् ॥ ४० ॥ स दुर्मुखं
भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनाभ्यताडयत् । तस्य तद्धि बभौ वक्त्रं सनालमिव
पङ्कजम् ॥ ४१ ॥ कर्णस्तु केकयान् भ्रातॄन् पञ्च लोहितकध्वजान् ।
द्रोणायाभिमुखं यातान् शरवर्षैरवारयत् ॥४२॥ ते चैनं भृशसन्तप्ताः
शरवर्षैरवाकिरन् । स च तांश्छादयामास शरजालैः पुनः पुनः ४३
नैव कर्णो न ते पञ्च ददृशुर्बाणसम्वृताः । साश्वसूतध्वजरथाः पर-
स्परशराचिताः ॥ ४४ ॥ पुत्रास्ते दुर्जयश्चैव जयश्च विजयश्च
ह । नीलकाश्यजयत्सेनांस्त्रयस्त्रीन् प्रत्यवारयन् ॥ ४५ ॥ तद्युद्धम-

---

बढ़नेसे रोकदिया ॥३८॥ उन दोनोंकी वह तुमुल मारकाट सब सैनिक और उन दोनों पुरुषसिंहोंके भी हर्षको बढ़ानेवाली हुई॥३९॥ महाधनुषधारी बली दुर्मुखने वत्सदन्त नामक बाणोंसे द्रोणकी ओरको जातेहुए वीर पुरुजित्को रोकदिया ॥ ४० ॥ तदनन्तर पुरुजित्ने बाण तानकर दुर्मुखकी भौंहोंके बीचमें मारा, इससे उसका मुख नालवाले कमलसा दिपनेलगा ॥ ४१ ॥ कर्णने द्रोणकी ओर बढ़तेहुए लालध्वजा वाले पाँचों केकय भाइयोंको बाणोंकी वर्षासे रोकदिया॥ ४२ ॥ इससे उन पाँचोंने बड़े क्रोधमें भरकर बाणकी वर्षासे कर्णको ढकदिया, तब कर्ण भी उनको बारम्बार बाणोंसे ढकनेलगा ॥ ४३ ॥ परस्पर बाणोंकी इतनी मारामार हुई, कि–बाणोंके समूहसे ढकजाने पर कर्ण और पाँचों केकय तथा उनके रथ, सारथी, घोड़े और ध्वजा आदिका भी दीखना बन्द होगया ॥ ३४ ॥ तुम्हारे दुर्जय, विजय और जय नामक तीन पुत्रोंने नील, काश्य और जयत्सेन नामवाले राजाओंको बढ़नेसे रोकदिया ॥ ४५ ॥ सिंह, व्याघ्र और चीतोंका जैसे

भवद् घोरमीक्षितृप्रीतिवर्धनम् । सिंहव्याघ्रतरक्षूणां यथर्क्षमहिषर्षभैः ॥ ४६ ॥ क्षेमधूर्तिबृहन्तौ तु भ्रातरौ सात्वतं युधि । द्रोणायाभिमुखं यान्तं शरैस्तीक्ष्णैस्ततक्षतुः ॥ ४७ ॥ तयोस्तस्य च तद्युद्धमत्यद्भुतमिवाभवत् । सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥ ४८ ॥ राजानन्तु तथाम्बष्ठमेकं युद्धाभिनन्दिनम् । चेदिराजः शरानस्यन् क्रुद्धो द्रोणादवारयत् ॥ ४९ ॥ ततोम्बष्ठोस्थिभेदिन्या निरविध्यच्छलाकया । स त्यक्त्वा सशरं चापं रथात् भूमिमुपागमत् ॥ ५० ॥ वार्धक्षेमिन्तु वार्ष्णेयं कृपः शारद्वतः शरैः । अक्षुद्रः क्षुद्रकैर्बाणैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ५१ ॥ युध्यन्तौ कृपवार्ष्णेयौ येऽपश्यंश्चित्रयोधिनौ । ते युद्धासक्तमनसो नान्यां बुबुधिरे क्रियाम् ॥ ५२ ॥ सौमदत्तिस्तु राजानं मणिमन्तमतन्द्रितम् । पर्य-

---

रीछ, भैंसे और बैलोंसे युद्ध होता है तैसे ही उन छःहोंका युद्ध होरहा था, यह घोर युद्ध दर्शकोंके चावको बढ़ाता था ॥ ४६ ॥ रणाङ्गणमें द्रोणकी ओर बढ़तेहुए सात्यकिको क्षेमधूर्त्ति और बृहत् नामक भाइयोंने तीक्ष्ण बाणोंसे घायल करदिया ॥ ४७ ॥ जैसे वनमें सिंह और दो मदमत्त हाथियोंका युद्ध होता है तैसे ही सात्यकि तथा क्षेमधूर्त्ति और बृहत्में अद्भुत युद्ध होरहा था ४८ क्रोधमें भरकर बाणोंको छोड़तेहुए चेदिराजने, द्रोणाचार्यके साथ अकेले ही युद्ध करनेकी प्रतिज्ञा करनेवाले अम्बष्ठको रोक दिया ॥४९॥ यह देख अम्बष्ठने हड्डियोंको तोड़नेवाली शलाका से चेदिराजको बींधदिया, उस समय चेदिराज हाथमेंसे धनुष बाणको छोड़ रथमेंसे पृथ्वीपर कूदपड़ा ॥ ५० ॥ क्रोधकी मूर्ति, वृष्णिवंशी, वृद्धक्षेमके पुत्रको, महानुभाव शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने छोटे २ बाण मारकर रोकदिया ॥ ५१ ॥ जिन्होंने अद्भुत रीतिसे युद्ध करनेवाले इन कृप और वार्ष्णेयको युद्ध करते देखा वे युद्धमें इतने तन्मय होगए, कि– उनको किसी दूसरी बातका

वारयद्यान्तं यशो द्रोणस्य वर्धयन् ॥ ५३ ॥ स सौमदत्तेस्त्वरितश्चित्त्वेष्वसनकेतने । पुनः पताकां सूतञ्च छत्रं चापातयद्रथात् ५४ अथाप्लुत्य रथात् तूर्णं यूपकेतुरमित्रहा । साश्वसूतध्वजरथं तं चकर्त्त वरासिना ॥ ५५ ॥ रथञ्च स्वं समास्थाय धनुरादाय चापरम् । स्वयं यच्छन् हयान राजन् व्यधमत् पाण्डवीं चमूम् ॥ ५६ ॥ पाण्ड्यमिन्द्रमिवायान्तमसुरान् प्रति दुर्जयम् । समर्थः सायकौघेन वृषसेनो न्यवारयत् ॥ ५७ ॥ गदापरिघनिस्त्रिंशपट्टिशायोघनोपलैः । कडंगरैर्भुशुण्डीभिः प्रासैस्तोमरसायकैः ॥५८॥ मुसलैर्मुद्गरैश्चक्रैर्भिन्दिपालपरश्वधैः । पांसुवाताग्निसलिलैर्भस्मलोष्टतृणद्रुमैः ॥ ५९ ॥ आतुदन् प्ररुजन् भञ्जन् निघ्नन्विद्रावयन् क्षिपन् ।

ध्यान ही न रहा ॥ ५२ ॥ द्रोणकी ओर बढ़तेहुए आलस्य-रहित राजा मणिमान्‌को द्रोणकी कीर्तिको बढ़ानेवाले सोमदत्तके पुत्रने रोकदिया ॥ ५३ ॥ राजा मणिमान्‌ने सोमदत्तके पुत्रके धनुष, ध्वजा, सारथी और छत्रको काटकर उसको रथपरसे गिरा दिया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर जिसकी ध्वजामें यज्ञस्तम्भका चिन्ह है उस सोमदत्तके पुत्रने शीघ्र ही रथमेंसे कूद धारदार तलवारसे, घोड़े, सारथी, ध्वजा और रथसहित मणिमान्‌को काटडाला ५५ फिर स्वयं ही अपने रथ पर चढ़ बैठा तथा दूसरे धनुषको ले अपने आप ही घोड़ांको हाँकता हुआ पाण्डवोंकी सेनाको नष्ट करने लगा ॥ ५६ ॥ असुरों पर चढाई करतेहुए इन्द्रकी समान दुर्जय पाण्ड्यको शक्तिमान् वृषसेनने बाणोंकी वर्षा करके आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ ५७ ॥ तदनन्तर द्रोणका नाश करनेकी इच्छासे घटोत्कच हमारी सेना पर गदा, परिघ, तलवार, मूसल, मुद्गर, चक्र, भिन्दिपाल, फरसे, पट्टिश, धूलि, वायु, अग्नि, जल, भस्म, मट्टी, तिनके तथा वृक्षोंसे प्रहार करता, पीड़ा पहुँचाता, मर्मस्थलोंको बींधता, मसलता, सेनाको नष्ट करता, और भगाता तथा

सेनां विभीषयन्नायाद् द्रोणप्रेप्सुर्घटोत्कचः ॥ ६० ॥ तन्तु नानाप्रहरणैर्नानायुद्धविशेषणैः । राक्षसं राक्षसः क्रुद्धः समाजघ्ने ह्यलम्बुषः ॥ ६१ ॥ तयोस्तदभवद्युद्धं रक्षोग्रामणिमुख्ययोः । तादृग्यादृक् पुरा वृत्तं शम्बरामरराजयोः ॥ ६२ ॥ एवं द्वन्द्वशतान्यासन् रथवारणवाजिनाम् । पदातीनाञ्च भद्रन्ते तव तेषां च सङ्कुले ६३ नैतादृशो दृष्टपूर्वः संग्रामः नैव च श्रुतः । द्रोणस्याभावभावे तु प्रसक्तानां यथाभवत् ॥ ६४ ॥ इदं घोरमिदं चित्रमिदं रौद्रमिति प्रभो । तत्र युद्धान्यदृश्यंत प्रततानि बहूनि च ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
द्वन्द्वयुद्धे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तेष्वेवं सन्निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः । कथं युयुधिरे पार्था मामकाश्च तरस्विनः ॥१॥ किमर्जुनश्चाप्यकरोत्

डराता हुआ आगेको बढ़नेलगा ॥ ५८–६० ॥ तब राक्षसको राक्षस अलम्बुष ही नाना प्रकारके आयुध और युद्धकी सामग्रियोंसे मारनेलगा ॥ ६१ ॥ राक्षसोंके अधिपति उन दोनोंका घोर युद्ध शम्बर और इन्द्रके युद्धकी समान हुआ ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो ! इसप्रकार तुम्हारी तथा पांडवोंकी सेनाके रथी, हाथीसवार तथा घुड़सवारोंके इस घमासानमें सैंकड़ों युद्ध हुए ॥ ६३ । द्रोणको मारने और बचानेके लिये जैसा इन दोनों सेनाओंमें युद्ध हुआ तैसा युद्ध पहिले मैंने आँखोंसे भी नहीं देखा और कानोंसे भी नहीं सुना ॥ ६४ ॥ हे प्रभो ! कहीं घोर कहीं आश्चर्यजनक और कहीं रौद्ररससेपूर्ण इसप्रकार तहाँ असंख्यों युद्ध दिखाई पड़ते थे ॥ ६५ ॥ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे सञ्जय ! जब पांडव इसप्रकार लौटकर युद्धके लिये सन्नद्ध होगए और हमारी सेना भी यथाविभाग खड़ी होगई तब वेगसे भरे हुए कौरव पाण्डव कैसे लड़े थे ?

संशप्तकवलं प्रति । संशप्तका वा पार्थस्य किमकुर्वत सञ्जय ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । तथा तेषु निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः । स्वयमभ्यद्रवद्भीमं नागानीकेन ते सुतः ॥ ३ ॥ स नाग इव नागेन गोवृषेणेव गोवृषः । समाहूतः स्वयं राज्ञा नागानीकमुपाद्रवत् ॥४॥ स युद्धकुशलः पार्थो वाहुवीर्येण चान्वितः । अभिनत् कुंजरानीकमचिरेणैव मारिष ॥ ५ ॥ ते गजा गिरिसङ्काशाः क्षरन्तः सर्वतो मदम् । भीमसेनस्य नाराचैर्विमुखा विमदीकृताः ॥ ६ ॥ विधमेदभ्रजालानि यथा वायुः समुद्धतः । व्यधमत्तान्यनीकानि तथैव पवनात्मजः ॥ ७ ॥ स तेषु विसृजन् वाणान् भीमो नागेष्वशोभत । भुवनेष्विव सर्वेषु गभस्तीनुदितो रविः ॥ ८ ॥ ते भीम-

और अर्जुनने संशप्तकोंके साथ कैसा युद्ध किया था और संशप्तकोंने अर्जुनके साथ कैसा युद्ध किया ॥ २ ॥ सञ्जयने कहा कि—जब इस प्रकार पांडव लौटकर युद्धके लिये सन्नद्ध होगए और कौरव भी उनके सामने यथाविभाग खड़े होगए, उस समय तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने हाथियोंकी सेनाको साथमें ले स्वयं ही भीमके ऊपर धावा वोलदिया ॥३॥ उसने भीमसेनको लडनेके लिये वुलाया, हाथी हाथीके सामने और वैल वैलके सामने जैसे युद्ध करते हैं तैसे ही भीमसेन हाथियोंकी सेनाके सामने लडनेको आया ४ हे राजन् ! युद्धकुशल पृथापुत्र भीमसेनने थोड़े ही समयमें हस्तिसेनाके व्यूहको तोडदिया ॥ ५ ॥ भीमसेनके वाणोंके प्रहारसे, पहाडके समान शरीरवाले और चारों ओरसे मद टपकानेवाले, उन हाथियोंका मद उतरगया और वे मुख फेरकर भागनेलगे ६ जैसे प्रचण्ड वायु वादलोंको तित्तर वित्तर कर देता है तैसे ही भीमसेनने उन सेनाओंको छिन्न भिन्न करदिया ॥७॥ और हाथियोंके ऊपर वाणोंको छोड़ताहुआ भीमसेन, उदय होकर त्रिलोकीमें किरणोंको फैलानेवाले सूर्यकी समान शोभा पारहा था ॥ ८ ॥

वाणाभिहताः संस्यूता विवभुर्गजाः। गभस्तिभिरिवार्कस्य व्योम्नि नानावलाहकाः ॥ ९ ॥ तथा गजानां कदनं कुर्वाणमनिलात्मजम् । क्रुद्धो दुर्योधनोऽभ्येत्य प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ॥ १० ॥ ततः क्षणेन क्षितिपं क्षतजप्रतिमेक्षणः । क्षयं निनीषुर्निशितैर्भीमो विव्याध पत्रिभिः ॥ ११ ॥ स शराचितसर्वाङ्गः क्रुद्धो विव्याध पाण्डवम् । नाराचैरर्करश्म्याभैर्भीमसेनं स्मयन्निव ॥ १२ ॥ तस्य नागं मणिमयं रत्नचित्रं ध्वजे स्थितम् । भल्लाभ्यां कार्मुकञ्चैव क्षिप्रं चिच्छेद पाण्डवः ॥ १३ ॥ दुर्योधनं पीड्यमानं दृष्ट्वा भीमेन मारिष । चुक्षोभयिषुरभ्यागादङ्गो मातङ्गमास्थितः ॥ १४ ॥ तमापतन्तं नागेन्द्रमम्बुदप्रतिमस्वनम् । कुम्भान्तरे भीमसेनो नाराचैरार्दयद् भृशम् ॥ १५ ॥ तस्य कायं विनिर्भिद्य न्य-

---

भीमसेनसे मारे हुए और जिनके शरीरोंमें वाण घुस रहे थे ऐसे हाथी, आकाशमें सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे अपूर्व शोभा वाले मेघोंकी समान शोभा पारहे थे ॥ ९ ॥ पवनपुत्र भीमसेनको इस प्रकार हाथियोंका संहार करते देखकर दुर्योधनने उसको तेज वाणोंसे बींधना आरम्भ करदिया ॥ १० ॥ परन्तु क्षणभरमें ही लाल २ नेत्रोंवाले भीमसेनने दुर्योधनको मारनेकी इच्छासे उसको तेज वाणोंसे बींधना आरम्भ करदिया ॥ ११ ॥ भीमके वाणों से विंधेहुए सकल अंगोंवाले क्रोधी दुर्योधनने हँसते २ भीमसेन को सूर्यकी किरणोंकी समान वाणोंसे बींधडाला ॥ १२ ॥ भीमसेनने भी दो भाले मारकर शीघ्रतासे दुर्योधनकी मणियोंसे विचित्र दीखती हुई ध्वजामें स्थित मणिमय हाथीको और धनुष को काटडाला ॥ १३ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार दुर्योधनको भीमके द्वारा पीड़ा पाताहुआ देखकर अङ्गराज हाथी पर बैठकर सेना को दुःख देता हुआ तहाँ आगया ॥ १४ ॥ मेघकी गड़गड़ाहटकी समान शब्दवाले हाथीको आताहुआ देखकर भीमसेनने उसके

मज्जद्धरणीतले। ततः पपात द्विरदो वज्राहत इवाचलः ॥ १६ ॥ तस्यावर्जितनागस्य म्लेच्छस्याधः पतिष्यतः। शिरश्चिच्छेद भल्लेन क्षिप्रकारी वृकोदरः ॥ १७ ॥ तस्मिन्निपतिते वीरे सम्प्राद्रवत सा चमूः। सम्भ्रान्ताश्वद्विपरथा पदातीनवमृद्नती ॥ १८ ॥ तेष्वनीकेषु भग्नेषु विद्रवत्सु समन्ततः। प्राग्ज्योतिषस्ततो भीमं कुञ्जरेण समाद्रवत् ॥ १९ ॥ येन नागेन मघवानजयद्दैत्यदानवान्। तदन्वयेन नागेन भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ २० ॥ स नागप्रवरो भीमं सहसा समुपाद्रवत्। चरणाभ्यामथो द्वाभ्यां संहतेन करेण च ॥ २१ ॥ व्यावृत्तनयनः क्रुद्धः प्रमथ्नन्निव पाण्डवम्। वृकोदररथं साश्वमविशेषमचूर्णयत् ॥ २२ ॥ पद्भ्यां भीमोऽप्यथो धावंस्तस्य गात्रेष्वलीयत। जानन्नञ्जलिकावेधं नापाक्रामत

गण्डस्थलमें बाण मारकर बहुत ही पीड़ा दी ॥ १५ ॥ बाणोंके प्रहारसे उसका शरीर ऐसा बिंधगया कि—वह इन्द्रके वज्रसे टूटते हुए पर्वतकी समान अड़ड़ड़ शब्द करता हुआ पृथ्वीपर गिरपड़ा १६ गिरते हुए हाथीके साथ ही अपनेआप भी नीचेको लुढकते हुए अङ्गराजके मस्तकको फुर्तीले भीमसेनने भालेसे काटडाला ॥ १७ ॥ वीरवर अङ्गराजके गिरते ही उसकी सेना घबड़ाकर घोड़े, हाथी, रथी और पैदलोंको पीचती हुई भागने लगी ॥ १८ ॥ जब व्यूह-रचनाएं टूटकर सेनाएं भागनेलगीं उस समय प्राग्ज्योतिष देशका राजा हाथी पर बैठकर भीमसेनके ऊपरको दौड़ा ॥ १९ ॥ जिस हाथी पर बैठकर इन्द्रने असुरोंको जीता था उसी वंशके हाथीपर बैठकर प्राग्ज्योतिष देशका राजा भीमसेनके ऊपर दौड़ा ॥ २० ॥ क्रोधमें भराहुआ वह हाथी एकाएक भीमसेनके ऊपर दौड आया और मानों प्रलय ही कर डालेगा, इसप्रकार उसने आगेके दोनों चरणोंसे तथा सूंड और दाँतोंसे भीमसेनके रथके टुकडे २ कर डाले ॥ २१-२२ ॥ भीमसेन अञ्जलिकावेधको जानता था इस

पाण्डवः ॥ २३ ॥ गात्राभ्यन्तरगो भूत्वा करेणाताडयन्मुहुः । लालयामास तं नागं वधाकांक्षिणमव्ययम् ॥ २४ ॥ कुलालचक्रवन्नागस्तदा तूर्णमथाभ्रमत् । नागायुतबलः श्रीमान् कालयानो वृकोदरम् ॥ २५ ॥ भीमोपि निष्क्रम्य ततः सुप्रतीकाग्रतोभवत् । भीमं करेणावनम्य जानुभ्यामभ्यताडयत् ॥ २६ ॥ ग्रीवायां वेष्टयित्वैनं स गजो हन्तुमैहत । करवेष्टं भीमसेनो भ्रमं दत्त्वा व्यमोचयत् ॥ २७ ॥ पुनर्गात्राणि नागस्य प्रविवेश वृकोदरः । यावत् प्रतिगजायातं स्वबले प्रत्यवैक्षत ॥ २८ ॥ भीमोपि नागगात्रेभ्यो

कारण भागा नहीं किन्तु वह पैदल ही दौडकर हाथीके शरीरसे चिपटगया* ॥२३॥ उसके नीचे पहुँचकर भीमसेनने उसे हाथोंसे उत्पीडित करना आरम्भ करदिया और अपनेको मारना चाहनेवाले उस हाथीको वह मानो खेल खिलानेलगा ॥ २४ ॥ दश सहस्र हाथियोंकी समान बल रखनेवाला वह शोभावान् हाथी भीमसेनको कालकी शरणमें पहुँचानेके लिये कुँभारके चाककी समान घूमने लगा ॥ २५ ॥ इतनेमें भीमसेन उस हाथीके नीचेसे निकलकर उसके सामने आगया, तब हाथी उसके पीछे दौड उसको सूंडमें लपेटकर घुटनोंसे मसलनेलगा ॥२६॥ उस हाथीने उसके गलेको सूंडमें लपेटकर उसको मारना चाहा, परन्तु भीमसेन गोलाकारसे फिरकर सूंडसे छूटगया और तुरंत ही दूसरी वार हाथीके शरीरके नीचे घुसगया ॥ २७ ॥ और अपनी सेनामेंसे उसके समान ही बली हाथीके आनेकी बाट देखने लगा ॥२८॥

टिप्पणी–हाथीके पेटका एक भाग ऐसा है कि–उसमें दोनों मुक्के मारनेसे हाथीके गुलगुली होती है और वह उसको अच्छी लगती है फिर हाथी महावतके कितने ही मारने पर भी आगेको नहीं बढ़ता, इस विद्याका नाम अंजलिकावेध विद्या है, इस विद्याको भीमसेन जानता था ।

विनिःसृत्यापयाज्जवात् । ततः सर्वस्य सैन्यस्य नादः समभवन्महान् ॥ २९ ॥ अहो धिङ् निहतो भीमः कुञ्जरेणेति मारिष । तेन नागेन सन्त्रस्ता पाण्डवानामनीकिनी ॥ ३० ॥ सहसाभ्यद्रवद्राजन् यत्र तस्थौ वृकोदरः । ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा वृकोदरम् ॥ ३१ ॥ भगदत्तं सपाञ्चाल्यः सर्वतः समवारयत् । तं रथं रथिनां श्रेष्ठाः परिवार्य परन्तपाः ॥ ३२ ॥ अवाकिरन् शरैस्तीक्ष्णैः शतशोथ सहस्रशः । स विघातं पृषत्कानामंकुशेन समाहरन् ॥ ३३ ॥ गजेन पाण्डुपञ्चालान् व्यधमत् पर्वतेश्वरः । तदद्भुतमपश्याम भगदत्तस्य संयुगे ॥ ३४ ॥ तथा वृद्धस्य चरितं कुञ्जरेण विशाम्पते । ततो राजा दशार्णानां प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ३५ तिर्यग्यातेन नागेन समदेनाशुगामिना । तयोर्युद्धं समभवन्नागयोर्भीमरूपयोः ॥ ३६ ॥ सपक्षयोः पर्वतयोर्यथा सद्रुमयोः पुरा ।

फिर उसके शरीरसे छूटकर भीमसेन वेगसे भागा यह देखकर सकल सेनामें बडाभारी कोलाहल होनेलगा कि—॥२९॥ अरेरे ! हाय !! हाय !!! हाथीने भीमसेनको मारडाला ! पाण्डवोंकी सेना हाथीसे डरकर जहाँ भीमसेन खडा था तहाँ पहुँचगई, तदनन्तर भीमसेनको मरा हुआ समझकर युधिष्ठिर, पञ्चालदेशके राजे और दूसरे परंतप महाराजाओंने भगदत्तको चारों ओरसे घेरकर उसके ऊपर सैकडों तथा सहस्रों बाणोंकी वृष्टि करना आरंभ करदी, परन्तु पर्वतेश्वर भगदत्तने उस बाणवर्षाको अंकुशसे नष्ट करडाला और हाथीसे पाण्डव तथा पंचालोंको भी रौंदनेलगा; रणमें हाथीके द्वारा कियाहुआ वृद्ध भगदत्तका यह युद्ध आश्चर्यजनक था, हे राजन् ! तदनन्तर दशार्णराज शीघ्र चलनेवाले, मदोन्मत्त हाथीपर बैठ भगदत्त पर चढआया, उन दोनों हाथियोंका युद्ध पूर्वसमयके परोंवाले और वृक्षोंवाले दो पर्वतोंकी समान हुआ, तदनन्तर भगदत्तके हाथीने पीछेको हटकर दशार्णराजके हाथीको अपनी ओरको

प्राग्ज्योतिषपतेर्नागः सन्निवृत्यापसृत्य च ॥ ३७ ॥ पार्श्वे दशार्णाधिपतेर्भित्त्वा नागमपातयत् । तोमरैः सूर्यरश्म्याभैर्भगदत्तोथ सप्तभिः ॥ ३८ ॥ जघान द्विरदस्थं तं शत्रुं प्रचलितासनम् । व्यवच्छिद्य तु राजानं भगदत्तं युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥ रथानीकेन महता सर्वतः पर्यवारयत् । स कुञ्जरस्थो रथिभिः शुशुभे सर्वतो वृतः ॥ ४० ॥ पर्वते वनमध्यस्थो ज्वलन्निव हुताशनः । मंडलं सर्वतः श्लिष्टं रथिनामुग्रधन्विनाम् ॥ ४१ ॥ किरतां शरवर्षाणि स नागः पर्यवर्तत । ततः प्राग्ज्योतिषो राजा परिगृह्य महागजम् ४२ प्रेषयामास सहसा युयुधानरथं प्रति । शिनेः पौत्रस्य तु रथं परिगृह्य महाद्विपः ॥ ४३ ॥ अभिचिक्षेप वेगेन युयुधानस्त्वपाक्रमत् । बृहतः सैन्धवानश्वान् समुत्थाप्याथ सारथिः ॥४४॥ तस्थौ सत्या-

खैंचा तथा उसकी दाहिनी कोखको फाड़कर उसे पृथ्वीपर गिरा दिया, इतनेमें भगदत्तने सूर्यकी किरणोंकी समान चमकीले सात भालोंसे, हाथी पर बैठेहुए और जिसका आसन खसक रहा था ऐसे अपने शत्रु दशार्णराजको मारडाला तदनन्तर युधिष्ठिरने बड़ी भारी रथसेनाके द्वारा भगदत्तको चारों ओरसे घेरलिया और उसको भालोंसे बींधडाला उस समय रथियोंसे घिरा हुआ और हाथीपर बैठा हुआ भगदत्त पर्वत परके वनमें धधकती हुई अग्निकी समान दीखता था, तदनन्तर भगदत्तके हाथीने चारों ओर खचाखच भरेहुए भयङ्कर धनुषवाले और बाणोंको फैंकते हुए रथियोंके मण्डलका चक्कर देना आरम्भ करदिया फिर भगदत्तने अपने हाथीको हटाकर एक साथ युयुधानके रथके ऊपर दौड़ादिया उस हाथीने युयुधानके रथको उठाकर वेगसे फेंक दिया परन्तु युयुधान रथको पकडते ही उसमेंसे भागगया था, अतः बचगया, युयुधानका रथ दूर जापडा कुछ समयके अनन्तर सारथीने सिंधुदेशमें उत्पन्न हुए घोड़ोंको शान्त कर खड़ा किया

किमासाद्य संप्लुतस्तं रथं प्रति। स तु लब्ध्वान्तरं नागस्त्वरितो रथमण्डलात् ॥ ४५ ॥ निश्चक्राम ततः सर्वान् परिचिक्षेप पार्थिवान्। ते त्वाशुगतिना तेन त्रास्यमाना नरर्षभाः ॥ ४६ ॥ तमेकं द्विरदं संख्ये मेनिरे शतशो द्विपान्। ते गजस्थेन काल्यन्ते भगदत्तेन पाण्डवाः ॥ ४७ ॥ ऐरावतस्थेन यथा देवराजेन दानवाः। तेषां प्रद्रवतां भीमः पञ्चालानामितस्ततः ॥४८॥ गजवाजिकृतः शब्दः सुमहान् समजायत। भगदत्तेन समरे काल्यमानेषु पाण्डुषु ॥४९॥ प्राग्ज्योतिषमभिक्रुद्धः पुनर्भीमः समभ्ययात्। तस्याभिद्रवतो वाहान् हस्तमुक्तेन वारिणा ॥ ५० ॥ सिक्त्वा व्यत्रासयन्नागस्ते पार्थमहरंस्ततः। ततस्तमभ्ययात् तूर्णं रुचिपर्वा कृतीसुतः ॥ ५१ ॥ समघ्नञ्छरवर्षेण रथस्थोन्तकसन्निभः। ततः स रुचिपर्वाणं शरेणानतपर्वणा ॥ ५२ ॥ सुपर्वा पर्वतपतिर्निन्ये वैवस्वतक्षयम्।

घोड़ोंका डर निकल जाने पर उनको रथमें जोड़कर सारथी सात्यकिके पास पहुँचगया इतनेमें वह हाथी भी दम ले रथमण्डल मेंसे बाहर निकलकर घूमनेलगा और सब राजाओंको फेंकने लगा, उस शीघ्रगामी हाथीसे डरेहुए उन राजाओंने उस एक हाथीको सहस्र हाथियोंकी समान माना भगदत्त हाथीपर बैठा हुआ जैसे ऐरावत पर बैठा हुआ इन्द्र दानवोंको खदेड़ता है तैसे पांडवोंको खदेड़नेलगा पञ्चालोंकी दौड़ भागसे हाथी तथा घोड़े भयंकर शब्द करनेलगे, जब भगदत्त समरमें इस प्रकार पांडवोंको सतानेलगा तब भीमसेन क्रोधमें भर दूसरी बार भगदत्तके सामने आया भीमसेनको वेगसे आताहुआ देखकर भगदत्तके हाथीने उसके घोड़ों पर सूंडका जल छिड़क दिया, इससे घबड़ाकर घोड़े भीमसेनको बहुत दूर तक भगालेगए, तदनन्तर कुंतीपुत्र रथपर्वा शीघ्रतासे भगदत्तपर चढआया और रथमें बैठे कालकी समान रथपर्वाने बाणोंकी झड़ी लगादी, तदनन्तर सुन्दर अवयवोंवाले

तस्मिन्निपतिते वीरे सौभद्रो द्रौपदीसुतः॥५३॥चेकितानो धृष्टकेतुर्युयुत्सुश्चार्दयन् द्विपम्। त एनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदाः॥५४ सिषिचुर्भैरवान्नादान् विनदन्तो जिघांसवः। ततः पार्ष्ण्यंकुशांगुष्ठैः कृतिना चोदितो द्विपः॥ ५५ ॥ प्रसारितकरः प्रायात् स्तब्धकर्णेक्षणो द्रुतम्। सोधिष्ठाय पदा वाहान् युयुत्सोः सूतमारुजत्॥ ५६ ॥ युयुत्सुस्तु रथाद्राजन्नपाक्रमात् त्वरान्वितः। ततः पाण्डवयोधास्ते नागराजं शरैर्द्रुतम्॥ ५७ ॥ सिषिचुर्भैरवान्नादान् विनदन्तो जिघांसवः। पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तः सौभद्रस्याप्लुतो रथम्॥५८॥ स कुञ्जरस्थो विसृजन्निषूनरिषु पार्थिवः। बभौ रश्मीनिवादित्यो भुवनेषु समुत्सृजन्॥५९॥ तमार्जुनिर्द्वादशभिर्युयुत्सुर्दशभिः शरैः। त्रिभिस्त्रिभिर्द्रौपदेया धृष्टकेतुश्च विव्यधुः॥

पर्वतेश्वर भगदत्तने नमी हुई गांठोंवाले वाणसे उसको यमसदन में पहुँचादिया, उस वीरके गिरजाने पर मेघ जैसे जलधाराओंसे पर्वतको उत्पीडित करते हैं तैसे ही अभिमन्यु द्रौपदीके पुत्र चेकितान, धृष्टकेतु, युयुत्सु आदि सब योधा उस हाथीको मारनेकी इच्छासे भयङ्कर गर्जनाएँ करतेहुए उसपर अनेकों वाणोंकी वृष्टि करनेलगे भगदत्तने पार्ष्णि,अंकुश और अंगूठा मारकर हाथीको आगे वढाया, तव हाथी अपनी सूँडको ऊँची करके और नेत्र कानोंको स्थिर करके शत्रुओंके सामने जाडटा और पैरोंसे घोडों को दवाकर उसने सात्यकिके सारथीके टुकड़े २ करडाले ३०-५९ हे राजन्! युयुत्सु रथपरसे एक साथ कूदकर भागगया तदनन्तर उस महाहस्तीको मारना चाहने वाले पाण्डवोंके योधा भयङ्कर गर्जना कर वाणोंको छोडनेलगे, यह देख तुम्हारे पुत्रने क्रोधमें भर अभिमन्युके ऊपर धावाकिया५७।।५८इस समय हाथीपर वैठ शत्रुओंपर वाणोंको छोडता हुआ राजा भगदत्त संसारमें किरणों को फैलाते हुए सूर्यकी समान प्रतीत होरहा था ॥ ५९ ॥ उसको

सोऽतियत्नार्पितैर्बाणैराचितो द्विरदो बभौ। संस्यूत इव सूर्यस्य रश्मिभिर्जलदो महान् ॥ ६१ ॥ नियन्तुः शिल्पयत्नाभ्यां प्रेरितोरिशराहितः। परिक्षिप्य तान्नागः स रिपून् सव्यदक्षिणम् ६२ गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान् वने। आवेष्टयत तां सेनां भगदत्तस्तथा मुहुः ॥ ६३ ॥ क्षिप्रं श्येनाभिपन्नानां वायसानामिव स्वनः। बभूव पाण्डवेयानां भृशं विद्रवतां स्वनः ॥ ६४ ॥ स नागराजः प्रवराङ्कुशाहतः पुरा सपक्षोऽद्रिवरो यथा नृप। भयं तदा रिपुषु समादधद्भृशं वणिग्जनानां क्षुभितो यथार्णवः ६५ ततोध्वनिर्द्विरदरथाश्वपार्थिवैर्भयाद्द्रवद्भिर्जनितोऽतिभैरवः। क्षिति

अभिमन्युने बारह, सात्यकिने दश और द्रौपदीके पुत्र तथा धृष्टकेतुने तीन २ बाण मारकर बींधदिया ॥ ६० ॥ महापरिश्रमसे छोड़ेहुए बाणोंसे छिदा हुआ उसका हाथी, सूर्यकी किरणोंसे छायेहुए महामेघकी समान शोभा पारहा था ॥ ६१ ॥ शत्रुओंके बाणोंसे उत्पीडित हुआ और महावतकी चतुरता तथा परिश्रमसे बढाया हुआ वह हाथी शत्रुओंको सूँडसे उठा २ कर दाहिनी ओर फेंकनेलगा ॥ ६२ ॥ जैसे ग्वालिया जंगलमें लकड़ीसे गौओंको इकट्ठा करदेता है तैसे ही भगदत्तने भी हाथीके द्वारा सब सेनाको बारम्बार घेरघार कर एक स्थानमें इकट्ठी कर चारों ओरसे घेरलिया ॥ ६३ ॥ हाथीसे डरकर भागते हुए पांडवोंके सैनिकोंका शब्द बाजके पीछे पडजाने पर काँव २ करके भागते हुए कौओंकी समान होरहा था ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! बड़े अंकुशसे मारा हुआ वह हाथी शत्रुओंको पूर्वकालके परोंवाले पर्वतोंकी समान और समुद्रमें यात्रा करनेवाले व्यापारियोंको खलभलाहटसे डराते हुए समुद्रकी समान भय देनेलगा ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! इस क्षत्रियोंके युद्धमें डरकर भागतेहुए हाथी, घोड़े, रथी और राजाओंके चीत्कारके शब्दने भयानक रूप धारण कर

वियद्यां विदिशो दिशस्तथा समावृणोत् पार्थिवसंयुगे ततः ६६
स तेन नागप्रवरेण पार्थिवो भृशं जगाहे द्विषतामनीकिनीम् ।
पुरा सुगुप्तां विबुधैरिवाहवे विरोचनो देवरूथिनीमिव ॥ ६७ ॥
भृशं ववौ ज्वलनसखो वियद्रजः समावृणोन्मुहुरपि चैव सैनिकान्।
तमेव नागं गणशो यथा गजान् समन्ततो द्रुतमथ मेनिरे जनाः६८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे
षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

संजय उवाच । यन्मां पार्थस्य संग्रामे कर्माणि परिपृच्छसि ।
तच्छृणुष्व महाबाहो पार्थो यदकरोद्रणे ॥ १ ॥ रजो दृष्ट्वा समुद्धूतं
श्रुत्वा च गजनिःस्वनम् । भगदत्ते विकुर्वाणे कौन्तेयः कृष्णमब्रवीत् ॥ २ ॥ यथा प्राग्ज्योतिषो राजा गजेन मधुसूदन । त्वर-

---

लिया, वह पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, दिशा, उपदिशाओंमें भर
गया ॥ ६६ ॥ राजा भगदत्तने उस श्रेष्ठ हाथीके द्वारा शत्रुओं
की सेनाको इसप्रकार बींधडाला, कि—जैसे पूर्वसमयमें देवताओंकी
सुरक्षित सेनाका विरोचनने विध्वंस करडालाथा॥६७॥इस समय
वायु बड़े वेगसे चलरहा था, धूलिसे आकाश तथा सैनिक अत्यन्त
ढकगये थे और वह अद्वितीय हाथी चारों ओर इसप्रकार दौड़ता
था, कि—मनुष्य उसको एक होनेपरभी हाथियोंकी धाँगकी समान
मानते थे ॥ ६८ ॥ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे महाबाहो ! आपने मुझसे प्रश्न किया,
कि—अर्जुनने संग्राममें कैसे२ पराक्रम किये ? अतः पार्थने संग्राम
में जो किया उसको सुनिये ॥ १ ॥ अर्जुनने आकाशमें धूलि
उड़तीहुई देखकर तथा हाथीके शब्दको सुनकर और भगदत्तको
अनेकों पराक्रम करते देखकर श्रीकृष्णसे कहा, कि—॥ २ ॥ हे
मधुसूदन ! प्रतीत होता है, कि—प्राग्ज्योतिदेशका राजा भगदत्त
हाथी पर बैठ फुरतीके साथ हमारी सेनापर टूटपड़ा है, यह जो

माणो विनिष्क्रान्तो ध्रुवं तस्यैष निस्वनः ॥ ३ ॥ इन्द्रादनवरः संख्ये गजयानविशारदः । प्रथमो गजयोधानां पृथिव्यामिति मे मतिः ॥ ४ ॥ स चापि द्विरदश्रेष्ठः सदा प्रतिगजो युधि । सर्वशस्त्रातिगः संख्ये कृतकर्मा जितक्लमः ॥ ५ ॥ सहः शस्त्रनिपातानामग्निस्पर्शस्य चानघ । स पाण्डवबलं सर्वमद्यैको नाशयिष्यति६ न चावाभ्यामृतेन्योस्ति शक्तस्तं प्रतिबाधितुम् । त्वरमाणस्ततो याहि यतः प्राग्ज्योतिषाधिपः ॥ ७ ॥ दृप्तं संख्ये द्विपबलाद्वयसा चापि विस्मितम्। अथैनं प्रेषयिष्यामि बलहन्तुः प्रियातिथिम् ८ वचनादथ कृष्णस्तु प्रययौ सव्यसाचिनः । दीर्यते भगदत्तेन यत्र पाण्डववाहिनी ॥ ९ ॥ तं प्रयान्तं ततः पश्चादाह्वयन्तो महारथाः ।

कोलाहल सुनाई देरहा है यह निःसन्देह उसका ही है ॥ ३ ॥ मेरी समझमें यह युद्धमें इन्द्रकी समान, हाथीकी सवारी करनेमें चतुर और हस्तियोधाओंमें प्रथमश्रेणीका है ॥ ४ ॥ और इसका हाथी भी युद्धमें इक्कड़, सब शस्त्रोंको सहनेवाला, युद्धकुशल और परिश्रमको कुछ भी न गिननेवाला है ॥ ५ ॥ तथा हे निष्पाप कृष्ण ! उसके ऊपर चाहे जितने शस्त्र पड़ें, वह उनको सहता ही रहेगा और आग बरसती रहेगी तब भी वह पीछेको नहीं हटेगा, इसलिये आज वह अकेलाही हमारी सब सेनाको नष्ट कर डालेगा ॥ ६ ॥ हम दोनोंके सिवाय ऐसा और कोई नहीं है, जो उसको हटासके, अतः शीघ्रताके साथ उसी ओर चलिये, कि-जहाँ भगदत्त है ॥ ७ ॥ युद्धमें हाथीके बलपर अहंकार करनेवाले तथा अपनी वृद्धावस्थाके कारण अभिमानी बनेहुए इस भगदत्त को आज मैं बलनामक दैत्यके नाशक इन्द्रका प्यारा पाहुना बनानेके लिये अभी स्वर्गमें भेजदूँगा ॥ ८ ॥ तदनन्तर अर्जुनके कहनेसे श्रीकृष्णने जहाँ पर भगदत्त पाण्डवोंकी सेनाका संहार कर रहा था उधरको रथ दौड़ाया ॥ ९ ॥ जब अर्जुन उधरको

संशप्तकाः समारोहन् सहस्राणि चतुर्दश ॥ १० ॥ दशैव तु सहस्राणि त्रिगर्त्तानां महारथाः । चत्वारि च सहस्राणि वासुदेवस्य चानुगाः ॥ ११ ॥ दीर्यमाणां चमूं दृष्ट्वा भगदत्तेन मारिष । आहूयमानस्य च तैरभवद्धृदयं द्विधा ॥ १२ ॥ किं नु श्रेयस्करं कर्म भवेदद्येति चिन्तयन् । इह वा विनिवर्तेयं गच्छेयं वा युधिष्ठिरम् १३ तस्य बुद्ध्या विचार्यैवमर्जुनस्य कुरूद्वह । अभवद्भूयसी बुद्धिः संशप्तकवधे स्थिरा ॥ १४ ॥ स सन्निवृत्तः सहसा कपिप्रवरकेतनः । एको रथसहस्राणि निहन्तुं वासवी रणे ॥ १५ ॥ सा हि दुर्योधनस्यासीन्मतिः कर्णस्य चोभयोः । अर्जुनस्य वधोपाये तेन द्वैधमकल्पयत् ॥ १६ ॥ स तु दोलायमानोभूद् द्वैधीभावेन

जानेलगा उस समय उसको रोकनेके लिये चौदह सहस्र महारथी संशप्तक, दश सहस्र महारथी त्रिगर्त और चार सहस्र नारायणी सेनाके योधा अर्जुनको घेरकर उससे युद्ध करनेको कहने लगे॥१०–११॥हे राजन्! एक ओर भगदत्तके द्वारा अपनी सेना का संहार होता देख और दूसरी ओर इन योधाओंके बुलानेसे अर्जुनका मन द्विविधामें पड़गया ॥ १२ ॥ वह विचारने लगा; कि–मैं इन संशप्तकोंके ऊपर फिर चढाई करूँ या राजा युधिष्ठिर की सहायताको जाऊँ, आज इन दोनोंमें कौनसा काम कल्याणकारी होगा ॥ १३ ॥ हे कुरुकुलोत्पन्न! मनमें इसप्रकार विचार करके उसने संशप्तकोंका वध करनेका ही दृढ निश्चय किया ॥ १४ ॥ कपिकेतन अर्जुन एकसाथ अकेलाही सहस्रों रथियोंको मारने के लिये लौटपडा ॥ १५ ॥ इससमय दुर्योधन और कर्णकी इच्छाभी अर्जुनके वधका उपाय सोचनेको हुई, उन दोनोंने यह निश्चय किया, कि–एक ओर संशप्तक और अर्जुनका तथा दूसरी ओर भगदत्त और पाण्डवोंका युद्ध हो ॥ १६ ॥ शत्रुकी ओरके द्वैधीभावसे अर्जुनका मन दोलायमान होनेलगा; परन्तु

पाण्डवः । वधेन तु नराग्र्याणामकरोत्तां मृषा तदा ॥ १७ ॥ ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् । असृजन्नर्जुने राजन् संशप्तकमहारथाः ॥१८॥ नैव कुन्तीसुतः पार्थो नैव कृष्णो जनार्दनः । न हया न रथो राजन् दृश्यन्ते स्म शरैश्चिताः ॥ १९ ॥ तदा मोहमनुप्राप्तः सिष्विदे हि जनार्दनः । ततस्तान् प्रायशः पार्थो ब्रह्मास्त्रेण निजघ्निवान् ॥ २० ॥ शतशः पाणयश्छिन्नाः सेषुज्यातलकार्मुकाः । केतवो वाजिनः सूता रथिनश्चापतन् क्षितौ २१ द्रुमाचलाग्राम्बुधरैः समकायाः सुकल्पिताः । हतारोहाः क्षितौ पेतुर्द्विपाः पार्थशराहताः ॥ २२ ॥ विप्रविद्धकुथा नागाश्छिन्नभाण्डाः परासवः । सारोहास्तु रणे पेतुर्मथिता मार्गणैर्भृशम् २३

अन्तमें उसने नरश्रेष्ठ संशप्तकोंके वधका विचार करके दोलायमान बुद्धिको त्यागदिया ॥ ७ ॥ हे राजन् ! संशप्तक महारथियों ने नमीहुई गांठवाले सैंकडों और सहस्रों बाण अर्जुनके ऊपर छोडना आरम्भ करदिये ॥ १८ ॥ उन बाणोंसे ढक जानेके कारण हे राजन् ! कुन्तीपुत्र अर्जुन, जनार्दन श्रीकृष्ण, उनके घोड़े और रथ अदृश्य होगये ॥ १९ ॥ यह देखकर श्रीकृष्ण मोहित होगए, उनके शरीरमें पसीना आगया, परन्तु अर्जुनने उन बाणोंको ब्रह्मास्त्रसे नष्ट करदिया ॥ २० ॥ सहस्रों हाथ धनुष बाण और चमड़ेके मौजे सहित कटकर गिरपड़े तथा उस ब्रह्मास्त्रसे बहुतसी ध्वजाएँ, घोड़े और सारथी, कटकर पृथ्वीपर गिरनेलगे ॥ २१ ॥ अर्जुनके बाणके प्रहारसे वृक्ष, पर्वतके शिखर और मेघोंकी समान शरीरवाले बड़े २ हाथी और उनके महावत मरकर पृथिवीपर गिरनेलगे ॥२२॥ हाथियोंकी झूलोंकी धज्जिएँ उडगईं, गहने टूटगये और वे बाणोंसे अत्यन्त घायल होनेके कारण सवारों सहित प्राणोंको छोड़कर रणमें गिरपड़े ॥ २३ ॥

सर्ष्टिप्रासासिनखराः समुद्गरपरश्वधाः । विच्छिन्ना बाहवः पेतुर्नृणां भल्लैः किरीटिना ॥ २४ ॥ बालादित्याम्बुजेन्दूनां तुल्यरूपाणि मारिष । संच्छिन्नान्यर्जुनशरैः शिरांस्युर्व्यां प्रपेदिरे २५ जज्वालालंकृता सेना पत्रिभिः प्राणिभोजनैः। नानारूपैस्तदामित्रान् क्रुद्धे निघ्नति फाल्गुने ॥ २६ ॥ क्षोभयन्तं तदा सेनां द्विरदं नलिनीमिव । धनञ्जयं भूतगणाः साधु साध्वित्यपूजयन् ॥२७॥ दृष्ट्वा तत् कर्म पार्थस्य वासवस्येव माधवः । विस्मयं परमं गत्वा प्राञ्जलिस्तमुवाच ह ॥ २८ ॥ कर्मैतत् पार्थ शक्रेण यमेन धनदेन च । दुष्करं समरे यत्ते कृतमद्येति मे मतिः ॥ २९ ॥ युगपच्चैव संग्रामे शतशोथ सहस्रशः । पतिता एव मे दृष्टा संशप्तकमहारथाः ॥ ३० ॥ संशप्तकांस्ततो हत्वा भूयिष्ठा ये व्यवस्थिताः ।

अर्जुनके बाणोंसे कटकर ऋष्टि,प्रास,तलवार,मुद्गर, और फरसों वाले हाथ पृथिवीपर गिरनेलगे ।२४। हे राजन् ! बालसूर्य, कमल और चन्द्रमाकी समान शत्रुओंके मस्तक अर्जुनके बाणोंसे कटकर पृथिवीमें गिरपड़े ॥ २५ ॥ क्रोधमें भराहुआ अर्जुन जब इस प्रकार शत्रुओंको मारनेलगा, उस समय नानाप्रकारके प्राणियोंका भोजन करनेवाले पक्षियोंसे वह सेना एक साथ दमक उठी॥२६॥ जैसे हाथी कमलिनीको नष्टभ्रष्ट करडालता है तैसे ही सेनाको विलोड़तेहुए अर्जुनकी प्राणियोंने साधु, साधु शब्दसे प्रशंसा की ॥ २७ ॥ अर्जुनके इन्द्रकी समान, इस कर्मको देखकर श्रीकृष्ण भी बड़ा अचरज करनेलगे और दोनों हाथ जोड़कर बोले, कि–॥२८॥ हे पार्थ ! आज तूने मेरी समझमें इन्द्र, वरुण, कुबेर और यमसे भी कठिनतासे होनेयोग्य काम किया है ॥ २९ ॥ मैंने रणमें एकसाथ सहस्रों और सैंकड़ों संशप्तक महारथियोंको गिरतेहुए प्रत्यक्ष देखा है ॥ ३० ॥ जो तहाँ पर खड़े थे उन

भगदत्ताय याहीति कृष्णं पार्थोऽभ्यनोदयत् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
संशप्तकवधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

सञ्जय उवाच। यियासतस्ततः कृष्णः पार्थस्याश्वान् मनोजवान्। सम्प्रैषीद्धेमसञ्छन्नान् द्रोणानीकाय स त्वरन् ॥ १ ॥ तं प्रयांतं कुरुश्रेष्ठं स्वान् भ्रातॄन् द्रोणतापितान्। सुशर्मा भ्रातृभिः सार्द्धं युद्धार्थी पृष्ठतोन्वयात् ॥ २ ॥ ततः श्वेतहयः कृष्णमब्रवीदजितञ्जयः। एष मां भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माह्वयतेऽच्युत॥३॥दीर्यते चोत्तरेणैव तत् सैन्यं मधुसूदन। द्वैधी भूतं मनो मेऽद्य कृतं संशप्तकैरिदम् ॥ ४ ॥ किन्नु संशप्तकान् हन्मि स्वान् रक्षाम्यहितार्दितान्। इति मे त्वं मतं वेत्सि तत्र किं सुकृतं भवेत् ॥ ५ ॥ एवमुक्तस्तु

बहुतसे संशप्तकोंको मारकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, कि अब भगदत्तकी ओरको चलिये ॥३१॥ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त २७

सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! आगे बढ़नेकी इच्छावाले अर्जुनके, सुवर्णकी झूलें ओढ़े मनकी समान वेगवाले घोड़ोंको श्रीकृष्णने शीघ्रताके साथ द्रोणकी सेनाकी ओरको हाँकदिया १ इसप्रकार कुरुश्रेष्ठ अर्जुन, द्रोणके सतायेहुए अपने भाइयोंकी सहायताके लियेजाने लगा, यह देख सुशर्मा अपने भाइयोंको साथमें लेकर अर्जुनके पीछे दौड़ा ॥ २ ॥ तदनन्तर अजितोंको जीतने वाले और श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, कि–हे अच्युत! देखिये यह सुशर्मा अपने भाइयोंसहित मुझे लड़नेके लिये बुलारहा है ॥ ३ ॥ यह हमारा सेना उत्तरकी ओरको भागरही है और इन संशप्तकोंने मेरे मनको द्विविधामें डालदिया है ॥ ४ ॥ मैं संशप्तकोंको मारूँ या शत्रुसे पीड़ा पातेहुए अपने भाइयोंकी रक्षा करूँ मेरे मनमें यह उलट पलट होरही है, इसको आप जानते ही हैं, इनमेंसे कौनसा काम करनेसे कल्याण होगा

दाशार्हः स्यन्दनं प्रत्यवर्त्तयत् । येन त्रिगर्त्ताधिपतिः पाण्डवं समुपाह्वयत् ॥ ६ ॥ ततोऽर्जुनः सुशर्माणं विध्वा सप्तभिराशुगैः । ध्वजं धनुश्चास्य तथा क्षुराभ्यां समकृन्तत ॥ ७ ॥ त्रिगर्त्ताधिपतेश्चापि भ्रातरं षड्भिराशुगैः । साश्वं ससूतं त्वरितः पार्थः प्रैषीद्यमक्षयम् ॥ ८ ॥ ततो भुजगसङ्काशां सुशर्मा शक्तिमायसीम् । चिक्षेपार्जुनमादिश्य वासुदेवाय तोमरम् ॥९॥ शक्तिं त्रिभिः शरैश्छित्त्वा तोमरं त्रिभिरर्जुनः । सुशर्माणं शरव्रातैर्मोहयित्वा न्यवर्त्तयत् १० तं वासवमिवायान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम् । राजंस्तावकसैन्यानां नोग्रं कश्चिदवारयत् ॥ ११ ॥ ततो धनञ्जयो बाणैः सर्वानेव महारथान् । आयाद्विनिघ्नन् कौरव्यान् दहन् कक्षमिवानलः ॥ १२ ॥ तस्य वेगमसह्यं तं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः । नाशक्नुवंस्ते संसोढुं

यह मुझे बताइये ५ श्रीकृष्ण यह सुनते ही रथको लौटाकर जिधर अर्जुनको त्रिगर्तपति सुशर्मा बुलारहा था उधरको लेगये ॥ ६ ॥ तब अर्जुनने सात वाणोंसे सुशर्माको बींध दो क्षुरोंसे उसकी ध्वजा और धनुषको काटडाला ॥ ७ ॥ फिर त्रिगर्ताधिपतिके भाईको घोड़े और सारथि सहित छः बाणोंसे यमपुर भेजदिया ८ तदनन्तर सुशर्माने लक्ष्य कर सर्पकी समान लोहेकी शक्ति अर्जुन पर और तोमर श्रीकृष्णके ऊपर फेंका ॥ ९ ॥ अर्जुन तीन २ वाणोंसे शक्ति और तोमरके टुकड़े २ कर, बाणोंकी वर्षासे सुशर्माको मूर्छित करके पीछेको लौट पड़ा ॥ १०॥ महावर्षा करनेवाले इन्द्रकी समान, तुम्हारी सेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षा करते हुए भयङ्कर अर्जुनके सामने तुम्हारी सेनामेंसे कोई भी खड़ा नहीं रहसका ॥ ११ ॥ जैसे अग्नि फूँसको भस्म करडालता है तैसे ही अर्जुन बाणवृष्टिसे सब महारथियोंको मारता हुआ चला जाता था ॥ १२ ॥ जैसे मनुष्य अग्निके स्पर्शको नहीं सह सकते तैसे ही बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र अर्जुनके वेगको कोई भी नहीं सह

स्पर्शमग्नेरिव प्रजाः ॥१३॥ संवेष्टयन्ननीकानि शरवर्षेण पांडवः ।
सुपर्णपातवद्राजन्नायात् प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥ १४ ॥ यत्तदा नाम
यज्जिष्णुर्भरतानामपापिनाम् । धनुः क्षेमकरं संख्ये द्विषतामश्रुवर्धनम्
॥ १५ ॥ तदेव तव पुत्रस्य राजन् दुर्द्यूतदेविनः । कृते क्षत्रविनाशाय
धनुरायच्छदर्जुनः ॥ १६ ॥ तथा विक्षोभ्यमाणा सा
पार्थेन तव वाहिनी । व्यशीर्यत महाराज नौरिवासाद्य पर्वतम् १७
ततो दशसहस्राणि न्यवर्त्तन्त धनुष्मताम् । मतिं कृत्वा रणे क्रूरां
वीरा जयपराजये ॥ १८ ॥ व्यपेतहृदयत्रासा आवव्रुस्तं महारथाः ।
आर्च्छत्पार्थो गुरुं भारं सर्वभारसहो युधि ॥ १९ ॥ यथा नलवनं
क्रुद्धः प्रभिन्नः षष्टिहायनः । मृद्नीयात्तद्वदायस्तः पार्थोऽमृद्ना-

---

सका ॥ १३ ॥ हे राजन् ! अर्जुन भी बाणवृष्टिसे सेनाओंको
ढकता हुआ गरुडकी समान प्राग्ज्योतिषपुरके राजाके सामने जा
पहुँचा ॥ १४ ॥ और अर्जुनने युद्धमें शत्रुओंके आँसुओंको
बढाने वाले तथा निष्पाप भरतोंका कल्याण करनेवाले जिस
धनुषको नमाया था उस ही धनुषको हे राजन् ! कपटद्यूत खेलने
वाले तुम्हारे पुत्रके कारण अर्जुनने क्षत्रियोंका नाश करनेके
लिये फिर धारण किया ॥ १५–१६ ॥ तथा हे महाराज !
अर्जुनसे घबड़ायी हुई तुम्हारी सेना जैसे समुद्रमें तैरती हुई नाव
पर्वतसे टकरा कर टुकड़े २ होजाती है, तैसे ही छिन्न भिन्न
होगई ॥ १७ ॥ तदनन्तर दश सहस्र वीर धनुषधारी महारथी
हृदयमेंसे भयको त्याग कर जय तथा पराजयके विषयमें क्रूरभाव
धारण कियेहुए युद्ध करनेके लिये रणमें उतर पड़े और उन
सबोंने अर्जुनको घेरलिया परन्तु युद्धमें सब प्रकारकी टक्करोंको
सह सकनेवाला अर्जुन उस बडी भारी टक्करको झेलनेके लिये
उद्यत होगया ॥ १८–१९ ॥ जैसे मदोन्मत्त क्रोधमें भराहुआ
साठ वर्षका हाथी नलोंके वनोंको कुचलडालता है तैसे ही

न्व चमूं तत्र ॥ २० ॥ तस्मिन् प्रमथिते सैन्ये भगदत्तो नराधिपः । तेन नागेन सहसा धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥ २१ ॥ तं रथेन नरव्याघ्रः प्रत्यगृह्णाद्धनञ्जयः । स सन्निपातस्तुमुलो बभूव रथनागयोः २२ कल्पिताभ्यां यथाशास्त्रं रथेन च गजेन च । संग्रामे चेरतुर्वीरौ भगदत्तधनञ्जयौ ॥ २३ ॥ ततो जीमूतसङ्काशान्नागादिन्द्र इव प्रभुः । अभ्यवर्षच्छरौघेण भगदत्तो धनञ्जयम् ॥ २४ ॥ स चापि शरवर्षं तं शरवर्षेण वासविः । अप्राप्तमेव चिच्छेद भगदत्तस्य वीर्यवान् ॥ २५ ॥ ततः प्राग्ज्योतिषो राजा शरवर्षं निवारयत् । शरैर्जघ्ने महाबाहुं पार्थं कृष्णञ्च मारिष ॥ २६ ॥ ततस्तु शरजालेन महताभ्यवकीर्य तौ । चोदयामास तं नागं वधायाच्युतपार्थयोः ॥ २७ ॥ तमापतन्तं द्विरदं दृष्ट्वा क्रुद्धमिवान्तकम् । चक्रेऽ-

अर्जुन तुम्हारी सेनाको नष्ट करने पर फैल पडा ॥ २० ॥ जब अर्जुनने भगदत्तकी सेनाको नष्ट करडाला तब उस ही हाथी पर बैठा भगदत्त एक साथ अर्जुनके ऊपर चढ आया ॥ २१ ॥ अर्जुन भी रथ पर बैठकर उसके सामने डटगया उस समय रथ तथा हाथीमें घोर संग्राम हुआ ॥२२॥ वीर भगदत्त और अर्जुन हाथी और रथमें बैठकर शास्त्रमें लिखी रीतिसे रचीहुई रणभूमिमें युद्ध करनेलगे ॥ २३ ॥ उस समय मेघकी समान श्यामवर्णके हाथी पर बैठे हुए इन्द्रकी समान भगदत्तने अर्जुनके ऊपर वाणोंकी वर्षाकी ॥ २४ ॥ भगदत्तकी उस वाणोंकी वर्षाको पराक्रमी इन्द्रपुत्र अर्जुनने मार्गमें ही अपनी वाणवर्षा करके काट दिया ॥ २५ ॥ हे राजन् ! प्राग्ज्योतिष देशका स्वामी भगदत्त अपने वाणोंसे अर्जुनके वाणोंको पीछेको लौटाकर श्रीकृष्ण और अर्जुनको वाणोंसे बींधने लगा ॥२६॥ तदनन्तर भगदत्तने उन दोनोंको वाणवर्षासे ढककर उनका नाश करनेकी इच्छासे हाथीको उनके ऊपरको बढादिया ॥ २७ ॥ क्रोधमें भरे यमराज

प्रसव्यं त्वरितः स्यन्दनेन जनार्दनः ॥ २८ ॥ संप्राप्तमपि नेयेष परावृत्तं महाद्विपम् । सारोहं मृत्युसात् कर्तुं स्मरन् धर्मं धनञ्जयः ॥ २९ ॥ स तु नागो द्विपरथान् हयांश्चामृद्य मारिष । प्राहिणोन्मृत्युलोकाय ततः क्रुद्धो धनञ्जयः ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
भगदत्तयुद्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तथा क्रुद्धः किमकरोद्भगदत्तस्य पाण्डवः । प्राग्ज्योतिषो वा पार्थस्य तन्मे शंस यथातथम् ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । प्राग्ज्योतिषेण संसक्तावुभौ दाशार्हपाण्डवौ । मृत्युदंष्ट्रान्तिकं प्राप्तौ सर्वभूतानि मेनिरे ॥ २ ॥ तथा तु शरवर्षाणि पातयत्यनिशं प्रभो । गजस्कन्धान्महाराज कृष्णयोः स्यन्दनस्थयोः ३ अथ कार्ष्णायसैर्बाणैः पूर्णकार्मुकनिःसृतैः । अविध्यद्देवकीपुत्रं

की समान अपने ऊपर झपटकर आतेहुए हाथीको देखकर अर्जुन ने अपने रथको हाथीकी दाईं करवटमें खड़ा करदिया ॥ २८ ॥ इस समय अर्जुन यदि चाहता तो भगदत्तसहित हाथीको मार डालता, परन्तु उसने क्षत्रियके धर्मको याद करके ऐसा नहीं किया ॥ २९ ॥ हे राजन् ! उस हाथीने हाथी, घोड़े और रथियोंको रौंदकर यमलोकमें भेजदिया, तब तो अर्जुन क्रोधमें भर गया ॥ ३० ॥ अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे सञ्जय ! अर्जुनने क्रोधमें भरकर भगदत्तका क्या किया ? और भगदत्तने अर्जुनका क्या किया ? यह मुझे ठीककर सुना ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा, कि–जब श्रीकृष्ण और अर्जुन भगदत्तके साथ लड़ने लगे तब सब प्राणियोंने यह समझा, कि–अब ये दोनों मृत्युकी डाढ़में हिलगगए ॥ २ ॥ भगदत्तने हाथीके ऊपर बैठे२ ही रथमें बैठेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऊपर बाणोंकी झड़ी लगादी ॥ ३ ॥ राजा भगदत्तने सुवर्णकी

हेमपुंखैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥ अग्निस्पर्शसमाकीर्णा भगदत्तेन
चोदिताः । निर्भिद्य देवकीपुत्रं क्षितिं जग्मुः सुवाससः ॥५ ॥ तस्य
पार्थो धनुश्छित्वा परिवारं निहत्य च । लालयन्निव राजानं भगदत्तमयोधयत् ॥ ६ ॥ सोर्करश्मिनिभांस्तीक्ष्णांस्तोमरान् वै चतुर्दश ।
अप्रेषयत् सव्यसाची द्विधैकैकमथाच्छिनत् ॥ ७ ॥ ततो
नागस्य तद्वर्म व्यधमत् पाकशासनिः । शरजालेन महता तद्व्यशीर्यत भूतले ॥ ८ ॥ शीर्णवर्मा स तु गजः शरैः सुभृशमर्दितः ।
बभौ धारानिपाताक्तो व्यभ्रः पर्वतराडिव ॥ ९ ॥ ततः प्राग्ज्योतिषः शक्तिं हेमदण्डामयस्मयीम् । व्यसृजद्वासुदेवाय द्विधा तामर्जुनोच्छिनत् ॥१०॥ ततश्छत्रं ध्वजञ्चैव छित्वा राज्ञोर्ज्जुनः शरैः ।
विव्याध दशभिस्तूर्णमुत्स्मयन् पर्वतेश्वरम् ॥ ११ ॥ सोतिविद्धो-

---

पुंखवाले पाषाण पर तेज कियेहुए, लोहेके बाण कानतक
धनुषको खैंचकर श्रीकृष्णके मारे ॥ ४ ॥ भगदत्तके छोड़े हुए
अग्निके स्पर्शकी समान वे बाण श्रीकृष्णके शरीरको फोड़कर
सर्राटेके साथ पृथिवीमें घुसगए ॥ ५ ॥ उस समय अर्जुनने
उसके धनुषको काटडाला और रक्षकोंको मारडाला तथा खेल
खिलाता हुआसा भगदत्तके साथ लड़ने लगा ॥ ६ ॥ भगदत्तने
सूर्यकी किरणोंकी समान तीक्ष्ण चौदह तोमर अर्जुनके ऊपर
फेंके, परन्तु अर्जुनने उनमेंसे हरएकके दो२ टुकड़े करदिये ॥७॥
तदनन्तर अर्जुनने बाणोंकी वर्षासे हाथीके कवचको वींधदिया,
तब वह कवच टूटकर भूमिमें गिरपड़ा ॥ ८ ॥ टूटेहुए कवच
वाला वह हाथी बाणोंसे बिंधकर, जलकी धाराओंके पड़नेसे
गीले हुए, बिना मेघके पर्वतकी समान शोभा पानेलगा ॥ ९ ॥
तदनन्तर भगदत्तने सोनेके दण्डवाली लोहेकी बनीहुई शक्तिही
वासुदेवके ऊपर फैंकी, तब अर्जुनने बीचमेंही उसके दो टुकड़े
करदिये ॥ १० ॥ फिर अर्जुनने बाणोंसे भगदत्तके छत्र और

अर्जुनशरैः सुपुंखैः कङ्कपत्रिभिः । भगदत्तस्ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य जनाधिपः ॥१२॥ व्यसृजत्तोमरान्मूर्ध्नि श्वेताश्वस्योन्ननाद च । तैरर्जुनस्य समरे किरीटं परिवर्त्तितम् ॥ १३ ॥ परिवृत्तं किरीटं तद्यमयन्नेव पांडवः । सुदृष्टः क्रियतां लोक इति राजानमब्रवीत् १४ एवमुक्तस्तु संक्रुद्धः शरवर्षेण पांडवम् ॥ अभ्यवर्षद् गोविंदं धनुरादाय भास्वरं ॥१५॥ तस्य पार्थो धनुश्छित्वा तूणीरान्सन्निकृत्य च । त्वरमाणो द्विसप्तत्या सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ १६ ॥ विद्धस्ततोऽतिव्यथितो वैष्णवास्त्रमुदीरयन् । अभिमंत्र्यांकुशं क्रुद्धो व्यसृजत्पांडवोरसि ॥ १७ ॥ विसृष्टं भगदत्तेन तदस्त्रं सर्वघाति वै । उरसा प्रतिजग्राह पार्थं संच्छाद्य केशवः ॥१८॥ वैजयंत्यभवन्माला

ध्वजाको काट उसको विस्मित कर शीघ्रतासे दश बाणमारे ।११। कंकपत्र और सुन्दर पूँछवाले अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त विधकर राजा भगदत्त क्रोधमें भरगया ॥ १२ ॥ उसने अर्जुनके तोमर मारे और हँसा, इस समय तोमरोंकी गड़वड़ीमें अर्जुनका मुकुट खिसक गया ॥ १३ ॥ अर्जुननेभी उसके मुकुटको खिसकादिया और उससे कहा, कि-अब तू पवित्रलोकमें जानेके लिये तयार होजा ॥ १४ ॥ यह सुनकर भगदत्त क्रोधमें भरगया और उसने चमकीले धनुषको ले श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके ऊपर बाणवर्षा करना आरम्भ करदी ॥ १५ ॥ अर्जुनने शीघ्रताके साथ उसके धनुषको काटडाला और भाथोंको गिरादिया तथा बहत्तर बाण मारकर उसके सब मर्मस्थानोंको वींधदिया ॥ १६ ॥ विधनेके कारण अतीव पीडा पा क्रोधमें भरे भगदत्तने वैष्णवास्त्र छोड़ने के लिये अंकुशको मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके अर्जुनकी छाती की ओरको फेंका ॥ १७ ॥ भगदत्तके फेंकेहुए उस सर्वनाशी अस्त्रको श्रीकृष्णने, अर्जुनको ढककर, अपनी छातीपर ले लिया ॥ १८ ॥ वह अस्त्र श्रीकृष्णके हृदय पर कमलके कोशसे

तदस्त्रं केशवोरसि । पद्मकोशविचित्राढ्या सर्वत्र कुसुमोत्कटा ॥१९॥ ज्वलनार्केन्दुवर्णाभा पावकोज्ज्वलपल्लवा । तया पद्मपलाशिन्या वातकम्पितपत्रया ॥२०॥ शुशुभेभ्यधिकं शौरिरतसीपुष्पसन्निभः । ततोर्जुनः क्लांतमनाः केशवं प्रत्यभाषत ॥ २१ ॥ अयुध्यमानस्तुरगान्संयंतास्मीति चानघ । इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्रतिज्ञां स्वां न रक्षसि ॥ २२ ॥ यद्यहं व्यसनी वा स्यामशक्तो वा निवारणे । ततस्त्वयैवं कार्यं स्यान्न तत्कार्यं मयि स्थिते ॥ २३ ॥ सबाणः सधनुश्चाहं ससुरासुरमानुषान् । शक्तो लोकानिमान् जेतुं तच्चापि विदितं तव॥२४॥ततोऽर्जुनं वासुदेवः प्रत्युवाचार्थवद्वचः । शृणु गुह्यमिदं पार्थ पुरा वृत्तं यथानघ॥२५॥चतुर्मूर्तिरहं शश्वल्लोकत्राणार्थमु-

विचित्र दीखतीहुई सुगन्धित पुष्पोंसे महकतीहुई, अग्नि, सूर्य तथा चन्द्रमाकी समान कान्तिवाली अग्निके समान लालवर्णके पत्तोंसे शोभित वैजयन्ती मालाकी समान शोभा देने लगा और अलसीके पुष्पकी समान श्यामवर्णवाले श्रीकृष्ण भी, कमलके पत्तोंवाली और पवनसे जिसके पत्ते हिलरहे थे ऐसी मालासे अत्यंत दिपरहे थे परंतु इससे अर्जुनके चित्तको बड़ा क्लेश पहुँचा, उसने श्रीकृष्णसे कहा, कि-॥ १९-२१ ॥ हे निर्दोष कृष्ण ! हे कमलनयन ! आपने प्रतिज्ञा की थी, कि-मैं युद्ध नहीं करूँगा किन्तु आपके घोड़ोंको हाँकूँगा फिर आप अपनी प्रतिज्ञाको पालते क्यों नहीं ? ॥ २२ ॥ यदि मैं आपत्तिमें पडजाऊँ अथवा शत्रुको हरानेमें असमर्थ होजाऊँ, तब आपको ऐसा करना चाहिये था, परन्तु जब कि-मैं अच्छी दशामें हूँ तब आपको ऐसा करना उचित नहीं था ॥ २३ ॥ यह भी आप जानते हैं, कि-मैं धनुष और बाणको लेकर देवता और असुरों सहित इन लोकोंको जीत सकता हूँ ॥ २४ ॥ यह सुनकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे अर्थभरा यह वचन कहा, कि-हे अनघ अर्जुन ! मैं तुझे अति प्राचीनकाल

शतः । आत्मानं प्रविभज्येह लोकानां हितमादधे।२६।एका मूर्त्तिस्तपश्चर्यां कुरुते मे भुवि स्थिता । अपरा पश्यति जगत् कुर्वाणं साध्वसाधुनी ॥ २७ ॥ अपरा कुरुते कर्म मानुषं लोकमाश्रिता । शेते चतुर्थी त्वपरा निद्रां वर्षसहस्रिकीं॥२८॥ यासौ वर्षसहस्रांते मूर्त्तिरुत्तिष्ठते मम । वरार्हेभ्यो वरांच्छ्रेष्ठांस्तस्मिन् काले ददाति सा २९ तन्तु कालमनुप्राप्तं विदित्वा पृथिवी तदा । अयाचत वरं यन्मां नरकार्थाय तच्छृणु ॥ ३० ॥ देवानां दानवानां च अवध्यस्तनयोस्तु मे । उपेतो वैष्णवास्त्रेण तन्मे त्वं दातुमर्हसि ॥ ३१ ॥ एवं वरमहं श्रुत्वा जगत्यास्तनये तदा । अमोघमस्त्रं प्रायच्छं वैष्णवं परमं पुरा ॥ ३२ ॥ अवोचं चैतदस्त्रं वै ह्यमोघं भवतु क्षमे ।

की एक गुप्त-कथा सुनाता हूँ तू उसको सुन ॥ २५ ॥ मैं चतुर्मूर्त्ति हूँ, सर्वदा लोकोंकी रक्षामें तत्पर रहता हूँ और अपने स्वरूपका विभाग करके उन मूर्तियोंसे संसारका हित करता हूँ ॥ २६ ॥ मेरी एक मूर्ति मृत्युलोकमें रहकर तप क्रिया करती है, दूसरी मूर्त्ति मनुष्योंके शुभाशुभ कर्मोंको देखती रहती है ॥ २७ ॥ तीसरी मूर्त्ति मनुष्यलोकमें मनुष्योंमें रहकर नानाप्रकारके कर्म करती है, चौथी मूर्त्ति सहस्र वर्षकी निद्रा धारण करके शयन करती है ॥ २८ ॥ जो मेरी मूर्त्ति सहस्र वर्षके बाद उठती है उस समय वह वर पाने योग्य प्राणियोंको श्रेष्ठ वर देती है ॥ २१ ॥ उस समय जागृत होनेके समयको जानकर पृथिवीने नरकासुरके लिये जो वर मांगा था उसको सुन ॥ ३० ॥ पृथिवीने वर मांगा कि मेरा पुत्र (नरकासुर) देवता तथा असुरोंसे अवध्य हो तथा उसके पास वैष्णवास्त्र रहे यह वर आपको मुझे देना चाहिये ३१ पृथ्वीकी इस प्रार्थनाको सुनकर मैंने पहिले पृथ्वीके पुत्रको अमोघ वैष्णवास्त्र दिया था ॥३२॥ और उससे कहा था कि-"हे पृथ्वी! यह अस्त्र नरकासुरकी रक्षाके लिये समर्थ हो । अब कोई भी

नरकस्याभिरक्षार्थं नैनं कश्चिद्वधिष्यति ॥ ३३ ॥ अनेनास्त्रेण ते गुप्तः सुतः परबलार्दनः । भविष्यति दुराधर्षः सर्वलोकेषु सर्वदा ३४ तथेत्युक्त्वा गता देवी कृतकामा मनस्विनी । स चाप्यासीद् दुराधर्षो नरकः शत्रुतापनः ॥ ३५ ॥ तस्मात्प्राग्ज्योतिषं प्राप्तं तदस्त्रं पार्थ मामकम् । नास्यावध्योऽस्ति लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु मारिष ॥ ३६ ॥ तन्मया त्वत्कृते चैतदन्यथा व्यपनामि तम् । विमुक्तं परमास्त्रेण जहि पार्थ महासुरम् ॥३७। वैरिणं जहि दुर्धर्षं भगदत्तं सुरद्विषम् । यथाहं जघ्निवान्पूर्वं हितार्थं नरकं तथा ॥३८॥ एवमुक्तस्तदा पार्थः केशवेन महात्मना । भगदत्तं शितैर्बाणैः सहसा समवाकिरत् ३९ ततः पार्थो महाबाहुरसंभ्रान्तो महामनाः । कुम्भयोरन्तरे नागं नाराचेन समार्पयत् ॥ ४० ॥ स समासाद्य तं नागं बाणो वज्र इवा-

---

उसको नहीं मारेगा ॥ ३३ ॥ इस अस्त्रसे तेरे पुत्रकी रक्षा होगी तेरा पुत्र शत्रुओंकी सेनाका संहार करेगा और लोकमें सर्वदा उसकी बड़े अच्छे प्रकारसे पूजा होगी ॥ ३४ पृथ्वी 'ठीक है' यह कह कृतकाम होकर चलीगई और नरकासुर भी दुराधर्ष होकर शत्रुओंको तपानेलगा ॥ ३५ ॥ वह अस्त्र नरकासुरसे भगदत्तको मिलगया हे तात ! इस अस्त्रसे शिव और इन्द्रलोकके निवासी भी मारे जासकते हैं ॥ ३६ ॥ हे पार्थ ! तुझे बचानेके लिये मैंने इस अस्त्रको छाती पर झेला है और प्रतिज्ञा तोड़ी है इस महा-असुरके हाथसे अब वह अस्त्र निकलगया अतः अब तू इसको नष्ट कर ॥ ३७ ॥ तू इस दुराधर्ष देवद्वेषी भगदत्तको ऐसे मारदे जैसे मैंने नरकासुरको मारा था ॥ ३८ ॥ महात्मा श्रीकृष्णने अर्जुनसे यह बात कही तब अर्जुनने एकसाथ तीक्ष्ण बाणोंसे भगदत्तको ढकदिया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर उदार और शान्त मनवाले महाबाहु अर्जुनने हाथीके दोनों कुंभस्थलोंके बीचमें बाण मारा ॥ ४० ॥ वह बाण जैसे पर्वतमें वज्र प्रवेश करता है

चलम् । अभ्यगात्सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः ॥४१ ॥ स करी भगदत्तेन प्रेर्यमाणो मुहुर्मुहुः । न करोति वचस्तस्य दरिद्रस्येव योषिता ॥ ४२ ॥ स तु विष्टभ्य गात्राणि दंताभ्यामवनिं ययौ । नदन्नार्त्तस्वरं प्राणानुत्ससर्ज महाद्विपः ॥ ४३ ॥ ततो गाण्डीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः । अयं महत्तरः पार्थ पलितेन समावृतः ॥ ४४ ॥ वली संछन्ननयनः शूरः परमदुर्जयः । अक्ष्णोरुन्मीलनार्थाय वद्धपट्टो ह्यसौ नृप ॥ ४५ ॥ देववाक्यात्प्रचिच्छेद शरेण भृशमर्जुनः । छिन्नमात्रेंशुके तस्मिन् रुद्धनेत्रो वभूव सः ४६ तमोमयं जगन्मेने भगदत्तः प्रतापवान् । ततश्चंद्रार्धविंवेन वाणेन नतपर्वणा ॥ ४७ ॥ विभेद हृदयं राज्ञो भगदत्तस्य पाण्डवः ।

अथवा जैसे सर्प विलमें प्रवेश करता है तैसे पूंछसहित हाथीके कुम्भस्थलोंमें घुसगया ॥ ४१ ॥ उस समय भगदत्तने हाथीको वढानेका वारम्वार यत्न किया, परन्तु उसने जैसे दरिद्रकी स्त्री अपने पतिका कहना नहीं मानती है तैसे ही भगदत्तके यत्न पर कुछ ध्यान नहीं दिया ॥ ४२ ॥ किन्तु अपने दाँतोंको पृथ्वीमें टेक उनके ऊपर अपने शरीरका वोझा डालदिया और अन्तमें उस महागजने दयाजनक स्वरसे गर्जना करके प्राणोंको छोड़ दिया ॥ ४३ ॥ उस समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि—हे राजन् इसकी अवस्था वहुत ही अधिक है इसके शिरके वाल पकगये हैं ॥ ४४ ॥ इसके नेत्र लटकते हुए पलकोंसे ढकगये हैं, इसने नेत्रोंके खुले रहनेके लिये मस्तक पर पलकोंको पट्टीसे वाँधरक्खा है, यह वैसे वीर और परम दुर्जय है अतः तू पहले इसके मस्तककी पट्टीको नष्ट कर ॥ ४४–४५ ॥ अर्जुनने श्रीकृष्णके कहनेसे वाण मारकर माथेकी पट्टीको काटदिया, उस पट्टीके कटते ही उस राजाके नेत्र एकसाथ वन्द होगए ॥ ४६ ॥ उस समय प्रतापी भगदत्त सव जगत्को अन्धकारमय मानने लगा, फिर अर्जुनने

स भिन्नहृदयो राजा भगदत्तः किरीटिना ॥४८॥ शरासनं शरांश्चैव गतासुः प्रमुमोच ह । शिरसस्तस्य विभ्रष्टं पपात च वरांशुकम् । नालताडनविभ्रष्टं पलाशं नलिनादिव ॥ ४९ ॥ स हेममाली तपनीयभाण्डात् पपात नागाद्गिरिसन्निकाशात् । सुपुष्पितो मारुतवेगरुग्णो महीधराग्रादिव कर्णिकारः॥५०॥ निहत्य तं नरपतिमिंद्रविक्रमं सखायमिंद्रस्य तदैन्द्रिराहवे । ततो परांस्तव जयकांक्षिणो नरान्बभञ्ज वायुर्बलवान्द्रुमानिव ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
भगदत्तवधे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

सञ्जय उवाच । प्रियमिन्द्रस्य सततं सखायममितौजसम् । हत्वा प्राग्ज्योतिषं पार्थः प्रदक्षिणमवर्त्तत ॥ १ ॥ ततो गान्धार-

---

अर्धचन्द्राकर और नमीहुई गाँठवाला बाण मारकर राजा भगदत्तके हृदयको फोड़दिया भगदत्त मरगया उसने हाथमेंसे धनुष बाणको छोड़दिया और जैसे कमलकी नालको काट देनेसे कमल नीचे गिरपड़ता है तैसे ही भगदत्तके शिरपरसे उसकी पगडी पृथ्वी पर गिरपडी ॥४७-४९॥ और जैसे पुष्पोंसे भराहुआ कनेरका वृक्ष पवनके वेगसे झटका खाकर पर्वतके शिखर परसे नीचे गिर पड़ता है तैसे ही सुवर्णकी मालावाला वह राजा सुवर्णके आभूषणोंसे सजाए हुए पर्वतकी समान ऊँचे हाथीके ऊपरसे पृथिवी पर गिरपड़ा ॥ ५० ॥ इसप्रकार युद्धमें इन्द्रपुत्र अर्जुनने, इन्द्रकी समान पराक्रमी, इन्द्रके मित्र भगदत्तको मारडाला तथा बलवान् वायु जैसे वृक्षोंका नाश करता है तैसे ही अर्जुनने तुम्हारे पक्षके दूसरे विजय चाहनेवाले शत्रुओंका नाश कर डाला ॥ ५१ ॥ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन्- इन्द्रके प्रिय मित्र अतुलित बलशाली प्राग्ज्योतिष देशके राजा भगदत्तका नाश करके अर्जुन

राजस्य सुतौ परपुरञ्जयौ ॥ अर्दतामर्जुनं संख्ये भ्रातरौ वृषकाचलौ ॥ २ ॥ तौ समेत्यार्जुनं वीरौ पुरः पश्चाच्च धन्विनौ । अविध्येतां महावेगैर्निशितैराशुगैर्भृशम् ॥ ३ ॥ वृषकस्य हयान् सूतं धनुश्छत्रं रथं ध्वजम् । तिलशो व्यधमत् पार्थः सौवलस्य शितैः शरैः ॥ ४ ॥ ततोर्जुनः शरव्रातैर्नानाप्रहरणैरपि । गांधारानाकुलांश्चक्रे सौवलप्रमुखान् पुनः ॥५॥ ततः पञ्चशतान् वीरान् गांधारानुद्यतायुधान् । प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो वाणैर्धनञ्जयः ॥६॥ हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवतीर्य महाभुजः । आरुरोह रथं भ्रातुरन्यच्च धनुराददे ॥ ७ ॥ तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ वृषकाचलौ । शरवर्षेण वीभत्सुमविध्येतां मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥ श्यालौ तव महात्मानौ

दक्षिण दिशाकी ओरको घूमा ॥१॥ उधर गान्धारराजके शत्रुतापी वृषभ और अचल नामक पुत्र रणभूमिमें आए और वे दोनों भाई अर्जुनको वाणोंसे बींधने लगे ॥ २ ॥ उन दोनों धनुर्धर वीरोंने इकट्टे होकर अर्जुनको आगे पीछेसे घेरलिया और महावेगवाले तथा तेज किये हुए वाण मारकर उसको वहुत ही पीड़ित करनेलगे ॥३॥ अर्जुनने भी तेज कियेहुए वाण मारकर वृषकके घोड़े सारथि, धनुष, छत्र, रथ और ध्वजाके तिलोंकी समान टुकड़े करडाले ४ अर्जुनने तदनन्तर वहुतसे वाण तथा नानाप्रकारके शस्त्र मारकर सुवलके पुत्र आदि गान्धार देशके राजाओंको वहुतही घवड़ा दिया ५ तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए अर्जुनने वाणोंके प्रहारसे शस्त्र उठाकर लड़नेको सामने आयेहुए पाँच सौ वीरोंको यमलोकमें भेजदिया ॥ ६ ॥ मरेहुए घोड़ोंवाले रथमेंसे कूदकर महावाहु वृषक अपने भाईके रथ पर जा वैठा और उसने दूसरा धनुष उठालिया ॥ ७ ॥ एक ही रथमें वैठेहुए उन दोनों भाई वृषक और अचलने वाणोंके द्वारा अर्जुनको वारम्वार वींधा ॥८॥ तुम्हारे साले महात्मा वृषक और अचल नामक राजाओंने, अर्जुन

राजानौ वृषकाचलौ । भृशं विजघ्नतुः पार्थमिन्द्रं वृत्रबलाविव ९ लब्धलक्षौ तु गान्धारावहतां पाण्डवं पुनः । निदाघवार्षिकौ मासौ लोकं घर्मांशुभिर्यथा ॥१०॥ तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ राजानौ वृषकाचलौ । संश्लिष्टाङ्गौ स्थितौ राजन् जघानैकेषुणार्जुनः ॥११॥ तौ रथात् सिंहसंकाशौ लोहिताक्षौ महाभुजौ । राजन् संपेततुर्वीरौ सोदर्यावेकलक्षणौ ॥ १२ ॥ तयोर्भूमिं गतौ देहौ रथाद् बन्धुजनप्रियौ । यशो दश दिशः पुण्यं गमयित्वा व्यवस्थितौ ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा विनिहतौ संख्ये मातुलावपलायिनौ । भृशं मुमुचुरश्रूणि पुत्रास्तव विशाम्पते ॥ १४ ॥ निहतौ भ्रातरौ दृष्ट्वा मायाशतविशारदः । कृष्णौ सम्मोहयन्मायां विदधे शकुनिस्ततः ॥१५॥ लगुडायोगुडाश्मानः शतघ्न्यश्च सशक्तयः । गदा-

को ऐसा पीड़ित किया, कि–जैसे बल और वृत्र नामक असुरोंने इन्द्रको पीड़ित किया था ॥ ९ ॥ जैसे चैत्र तथा वैशाख मास लोकोंको प्रचण्ड किरणोंसे जलाते हैं. तैसे ही समयको ताकनेवाले गान्धारदेशके राजे भी पाण्डवोंको वाणोंके प्रहारसे दग्ध करने लगे ॥ १० ॥ हे राजन् ! मनुष्योंमें व्याघ्रसमान वृषक और अचल एक दूसरेसे सटकर रथमें वैठे हुए थे, अर्जुनने उन दोनोंको एक ही वाणसे मारडाला ॥ ११ ॥ हे राजन् ! वे दोनों सिंहकी समान बली, लाल२ नेत्रोंवाले, एक ही चिन्हवाले, महाभुज, सगे भाई रथमेंसे नीचे गिरपड़े ॥१२॥ बन्धुबान्धवोंके प्रिय वे दोनों भाई दशों दिशाओंमें अपने पवित्र यशको फैलाकर रणभूमिमें सोगए ॥१३॥ हे राजन् ! युद्धमें न भागनेवाले, अपने मामाओंको मराहुआ देख तुम्हारे पुत्र जोरसे रोनेलगे ॥१४॥ सैकड़ों माया करनेमें चतुर शकुनिने अपने भाइयोंको मराहुआ देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुनको मोहमें डालनेके लिये मायाकी रचना आरम्भ करदी ॥१५॥ तुरन्त ही दिशाओं और उपदिशाओंमेंसे लाठियें,

परिघनिस्त्रिंशशूलमुद्गरपट्टिशाः ॥१६॥ सकम्पनर्ष्टिनखरा मुसलानि परश्वधाः । क्षुराः क्षुरप्रनालीका वत्सदन्तास्थिसन्धयः १७ चक्राणि विशिखाः प्रासा विविधान्यायुधानि च । प्रपेतुः शतशो दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यश्चार्जुनं प्रति ॥ १८ ॥ खरोष्ट्रमहिषाः सिंहा व्याघ्राः सृमरचित्रकाः । ऋक्षा शालावृका गृध्राः कपयश्च सरीसृपाः ॥ १९ ॥ विविधानि च रक्षांसि क्षुधितान्यर्जुनं प्रति । संक्रुद्धान्यभ्यधावन्त विविधानि वयांसि च ॥ २० ॥ ततो दिव्यास्त्रविच्छूरः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः । विसृजन्निषुजालानि सहसा तान्यताडयत् ॥ २१ ॥ ते हन्यमानाः शूरेण प्रवरैः सायकैर्दृढैः । विरुवन्तो महारावान् विनेशुः सर्वतो हताः ॥ २२ ॥ ततस्तमः प्रादुरभूदर्जुनस्य रथं प्रति । तस्माच्च तमसो वाचः क्रूराः पार्थमभर्त्सयन् ॥ २३ ॥ तत्तमो भैरवं घोरं भयकर्तृ महाहवे । उत्त-

---

लोहेके गोले, पत्थर, तोप, शक्ति, गदा, परिघ, तलवार, शूल, मुग्दर पट्टिश, डण्डे, ऋष्टि, नखर, मूसल, छुरे, फरसे, क्षुरप्र, वन्दूकोंमें भरनेकी गोलियें, वछड़ेके दाँतोंकी समान भाले, हड्डियोंके चक्र, वाण, प्रास तथा नानाप्रकारके सहस्त्रों आयुध अर्जुनके ऊपर वरसनेलगे ॥ १६–१७॥ और भूँखसे घवड़ाए हुए, ऊँट, भैंसे, शेर, वघेरे, गवय, गुलदार, रीछ, कुत्ते, गिद्ध, वन्दर, साँप तथा नाना प्रकारके पक्षी क्रोधमें भरकर अर्जुनकी ओरको झपटनेलगे, दिव्यअस्त्रोंके प्रयोगोंको जाननेवाले कुन्तीपुत्र वीर अर्जुनने उनके ऊपर एकाएकी वाणोंकी वृष्टि करके उनको मारना आरम्भ करदिया॥१८–२१॥ अर्जुनकी दृढ़ तथा वड़े वाणोंकी मारसे सब प्राणी, वड़ी जोरसे रोर कर चारों ओरको भागने लगे ॥ २२ ॥ इतनेमें ही अर्जुनके रथमें अँधेरा छागया, उस अँधेरेमेंसे अर्जुनका तिरस्कार करतीहुई क्रूर वाणियें सुनाई आने लगीं ॥ २३ ॥ परन्तु अर्जुनने इस महासंग्राममें ज्योतिष नामक

मास्त्रेण महता ज्योतिषेणार्जुनोऽवधीत् ॥२४॥ हते तस्मिन् जलौघास्तु प्रादुरासन् भयानकाः । अम्भसस्तस्य नाशार्थमादित्यास्त्रमथार्जुनः ॥ २५ ॥ प्रायुक्ताम्भस्ततस्तेन प्रायशोस्त्रेण शोषितम् । एवं बहुविधा मायाः सौबलस्य कृताः कृताः ॥२६॥ जघानास्त्रबलेनाशु प्रहसन्नर्जुनस्तदा । तदा हतासु मायासु त्रस्तोऽर्जुनशराहतः ॥ २७ ॥ अपायाज्जवनैरश्वैः शकुनिः प्राकृतो यथा । ततोऽर्जुनोऽस्त्रविच्छैघ्र्यं दर्शयन्नात्मनोऽरिषु ॥२८॥ अभ्यवर्षच्छरौघेण कौरवाणामनीकिनीम् ।सा हन्यमाना पार्थेन तव पुत्रस्य वाहिनी २९ द्वैधी भूता महाराज गंगेवासाद्य पर्वतम् । द्रोणमेवान्वपद्यन्त केचित्तत्र नरर्षभाः ॥ ३० ॥ केचिद्दुर्योधनं राजन्नर्द्यमाना किरीटिना । नापश्यामस्ततस्त्वेनं सैन्यं वै रजसावृते ॥ ३१ ॥ गांडीव-

---

बड़ाभारी अस्त्र छोड़कर उस भयंकर और घोर अन्धकारका नाश करदिया ॥ २४ ॥ जब अँधेरा दूर होगया तो जलकी भयानक धारें गिरनेलगीं अर्जुनने जलके ओघका नाश करनेके लिये आदित्यास्त्र छोड़ा, उस अस्त्रसे सब जलको चूँसलिया, इस प्रकार शकुनिने अनेकों मायाएं रचीं और अर्जुनने अपने अस्त्रबलसे उनका नाश करदिया ॥ २५–२६ ॥ अर्जुनने अस्त्रोंके बलसे शत्रुकी मायाका नाश किया और शकुनिको भी बींधडाला, तब शकुनिके चित्तमें भय उत्पन्न होगया और वह साधारण मनुष्यकी समान, वेगवाले घोड़ोंको दौड़ाकर रणभूमिमेंसे भागगया तदनन्तर शस्त्रवेत्ता अर्जुनने शत्रुओंको फुरती दिखानेके लिये कौरवसेना पर असंख्यों बाणोंकी वर्षा करडाली, हे महाराज ! अर्जुनके बाणोंसे घायल हुई तुम्हारी सेना, जैसे गंगा पर्वतको पाकर दो भागोंमें विभक्त होजाती है तैसे ही दो भागोंमें विभक्त होगई, अर्जुनसे पीड़ा पाकर कोई वीर द्रोणके पास जा पहुँचे और कोई दुर्योधनके पास जा दुबके, इससमय सेनामें इतनी धूलि

स्य च निर्घोषः श्रुतो दक्षिणतो मया। शंखदुन्दुभिनिर्घोषं वादित्राणां च निःस्वनम् ॥३२॥ गाण्डीवस्य तु निर्घोषो व्यतिक्रम्यास्पृशद्दिवम्। ततः पुनर्दक्षिणतः सङ्ग्रामश्चित्रयोधिनाम् ॥ ३३ ॥ सुयुद्धं चार्जुनस्यासीदहन्तु द्रोणमन्वियाम्। यौधिष्ठिराण्यनीकानि प्रहरन्ति ततस्ततः ॥ ३४ ॥ नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां तव भारत। अर्जुनो व्यधमत् काले दिवीवाभ्राणि मारुतः ॥ ३५ ॥ तं वासवमिवायान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम्। महेष्वासा नरव्याघ्रा नोग्रं केचिदवारयन् ॥३६॥ ते हन्यमानाः पार्थेन त्वदीया व्यथिता भृशम्। स्वानेव बहवो जघ्नुर्विद्रवन्तस्ततस्ततः ॥ ३७ ॥ तेऽर्जुनेन शरा मुक्ताः कङ्कपत्रास्तनुच्छिदः। शलभा इव सम्पेतुः संवृण्वाना

उड़ी, कि-अर्जुनका दीखना वन्द होगया ॥ २७-३१ ॥ परन्तु कुछ ही देरमें दक्षिण दिशाकी ओर गाण्डीव, शंख, दुंदुभि और वाजोंका शब्द सुनाई दिया, अर्जुनके गाण्डीव धनुषकी ध्वनि सब शब्दोंको दवा आकाशमें जाकर गूंजने लगी तदनन्तर दक्षिण दिशामें युद्धकलामें कुशल योधाओंका अर्जुनके साथ महायुद्ध होनेलगा इससमय मैं द्रोणाचार्यके पीछे चलागया था तहाँ मैंने देखा, कि-युधिष्ठिरकी सेनाके योधा शत्रुओंको चारों ओरसे माररहे थे ॥ ३२-३४ ॥ हे भरतवंशी राजन्! जैसे समय पाकर वायु मेघोंको छित्तर वित्तर करदेता है, तैसे ही अर्जुनने अवसर पाकर तुम्हारी सेनाओंको छिन्न भिन्न करडाला ॥ ३५ ॥ वह इन्द्रकी समान वड़ीभारी वाणवर्षा करता हुआ आगेको वढ़ा, परन्तु वड़े २ धनुषधारी नरव्याघ्रोंमेंसे उसको कोई नहीं रोकसका ॥ ३६ ॥ अर्जुनकी मारसे अतीव घवड़ायेहुए तुम्हारे सैनिक इधर उधर दौड़कर अपने ही सैनिकोंको मारनेलगे ।३७। इस अवसरमें अर्जुनने कंकपत्रकी पूंछवाले वाण मारने आरम्भ किये, वे वाण टीडियोंकी समान दशों दिशाओंमें फैलकर शत्रु-

दिशो दश ॥ ३८ ॥ तुरङ्गं रथिनं नागं पदातिमपि मारिष । विनिर्भिद्य क्षितिं जग्मुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥३९॥ न च द्वितीयं व्यसृजन् कुञ्जराश्वनरेषु सः । पृथगेकशरारुग्णा निपेतुस्ते गतासवः ॥ ४० ॥ हतैर्मनुष्यैर्द्विरदैश्च सर्वतः शराभिसृष्टैश्च हयैर्निपातितैः । तदाश्वगोमायुबलाभिनादितं विचित्रमायोधशिरो बभूव तत् ॥ ४१ ॥ पिता सुतं त्यजति सुहृद्वरं सुहृत् तथैव पुत्रः पितरं शरातुरः । स्वरक्षणे कृतमतयस्तदा जनास्त्यजन्ति वाहानपि पार्थपीडिताः ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
शकुनिपलायने त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

धृतराष्ट्र उवाच । तेष्वनीकेषु भग्नेषु पाण्डुपुत्रेण सञ्जय ।

ओंके शरीरोंको छेदते हुए उनके ऊपर पटापट पड़ने लगे ॥३८॥ हे राजन् ! वे वाण घोड़े, रथी, हाथी और पैदलोंको भी भेद कर पृथ्वीमें इसप्रकार घुसगए जैसे वमईमें सर्प घुसजाते हैं ३९ अर्जुनने हाथी, घोड़े और मनुष्योंके ऊपर एकको छोड दूसरा वाण तक नहीं छोड़ा वे एक ही वाणसे छिन्न भिन्न होकर प्राणरहित हो भूमिमें गिरपड़े ॥ ४० ॥ वाणोंके प्रहारसे मरेहुए मनुष्य हाथी, और घोडोंसे तथा उनको खानेके लिये आए हुए गीदड़ों और कुत्तोंकी टोलियोंके शब्दसे वह युद्धभूमिका मुहाना बड़ा विचित्र दीखता था ॥ ४१ ॥ उस समय पिता पुत्र का ध्यान नहीं रखता था, मित्र मित्रको छोडरहा था तैसे ही–वाणकी पीड़ासे आतुर होकर पुत्र पिताको छोडरहा था अर्थात् वे सब अर्जुनके वाणोंसे पीड़ित होकर अपनी२ रक्षा करनेमें ही व्यस्त थे उन्होंने अपनी सवारियों तक का ध्यान छोडदिया ॥ ४२ ॥ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥

धृतराष्ट्रने बूझा कि–हे सञ्जय ! जब पाण्डुपुत्र अर्जुनने

चलितानां द्रुतानां च कथमासीन्मनो हि वः ॥ १ ॥ अनीकानां प्रभग्नानामवस्थानमपश्यताम् । दुष्करं प्रतिसन्धानं तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । तथापि तव पुत्रस्य प्रियकामा विशाम्पते । यशः-प्रवीरा लोकेषु रक्षन्तो द्रोणमन्वयुः ॥ ३ ॥ समुद्यतेषु चास्त्रेषु संप्राप्ते च युधिष्ठिरे । अकुर्वन्नार्यकर्माणि भैरवे सत्यभीतवत् ॥ ४ ॥ अन्तरं भीमसेनस्य प्रापतन्नमितौजसः । सात्यकेश्चैव वीरस्य धृष्टद्युम्नस्य वा विभो ॥ ५ ॥ द्रोणं द्रोणमिति क्रूराः पञ्चाला समचोदयन् । मा द्रोणमिति पुत्रास्ते कुरून् सर्वानचोदयन् ॥ ६ ॥ द्रोणं द्रोणमिति ह्येके मा द्रोणमिति

तुम्हारी सेनामें भगी डालदी उस समय तुम्हारे चित्तमें क्या विचार उठा था ? और तुम्हारी सेना जब छिन्न भिन्न होकर भागने लगी तथा उसको कहीं भी आश्रय नहीं मिला, तब उनको बड़ी कठिनतासे किसप्रकार रोकागया यह मुझे सुना ॥ १-२ ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् धृतराष्ट्र ! यद्यपि तुम्हारी सेनामें भगी पड़गई तथापि तुम्हारे पुत्रका भला चाहनेवाले और संसारमें अपने यशकी रक्षा करनेवाले शूर अपने यशको फैलानेके लिये द्रोणके पीछे २ गये और सब योधा अपने हथियारोंको ऊँचा करके, भयङ्कर रणमें, निर्भय हो आर्य पुरुषोंके योग्य पराक्रम करने लगे, राजा युधिष्ठिर, रणभूमिमें आए कि—महाबली भीमसेन, वीर सात्यकि और धृष्टद्युम्नकी भूलका लाभ पाकर कौरव योधा उनके ऊपर टूटपड़े ॥ ३-५ ॥ तुरन्त ही रणमें क्रूर स्वभाववाले पञ्चाल 'द्रोणको मारो २' इसप्रकार कहकर अपने योधाओंको उकसाने लगे और तुम्हारे पुत्रोंने अपने योधाओंसे कहा कि–द्रोणकी रक्षा करो ॥ ६ ॥ एक 'द्रोणको मारो, द्रोणको मारो' इसप्रकार कह रहे थे तो दूसरे यह कह रहे थे कि–'द्रोणको बचाओ, द्रोणको बचाओ' इसप्रकार कौरव पाण्डवोंमें

चापरे । कुरूणां पाण्डवानां च द्रोणद्यूतमवर्त्तत ॥ ७ ॥ यं यं प्रमथते द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजम् । तत्र तत्र तु पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्त्तत ॥ ८ ॥ तथा भागविपर्यासे संग्रामे भैरवे सति । वीराः समासदन वीरान् कुर्वन्तो भैरवं रवम् ॥ ९ ॥ अकम्पनीयाः शत्रूणां बभूवुस्तत्र पांडवाः । अकम्पयन्ननीकानि स्मरन्तः क्लेशमात्मनः ॥ १० ॥ तेऽमर्षवशसम्प्राप्ता ह्रीमन्तः सत्त्वचोदिताः । त्यक्त्वा प्राणान् न्यवर्त्तन्त घ्नन्तो द्रोणं महाहवे ११ अयसामिव सम्पातः शिलानामिव चाभवत् । दीव्यतां तुमुले युद्धे प्राणैरमिततेजसाम् ॥ १२ ॥ न तु स्मरन्ति संग्राममपि वृद्धास्तथाविधम् । दृष्टपूर्वं महाराज श्रुतपूर्वमथापि वा ॥ १३ ॥ प्राकम्पत च पृथिवी तस्मिन् वीरावसादने । निवर्त्तता बलौघेन महता भार-

---

द्रोणद्यूत (द्रोणके लिये युद्ध) चलरहा था ॥ ७ ॥ युद्धमें द्रोणाचार्य जहाँ पञ्चाल महारथियोंके ऊपर टूटते थे तहाँ धृष्टद्युम्न उनके सामने जाकर डटजाता था ॥ ८ ॥ इसप्रकार महाभयङ्कर युद्ध चलरहा था उस समय शूर भयङ्कर हुंकारें मारते हुए अपनी अपनी पंक्तियोंमेंसे निकल कर शरोंसे लड़रहे थे ॥ ९ ॥ उस समय पाण्डव शत्रुओंसे कम्पायमान न होकर अपने क्लेशोंको बारम्बार स्मरण करते हुए सेनाओंको कँपाने लगे ॥ १० ॥ पाण्डव लज्जाशील थे, तथापि अपने ऊपर बीते हुए दुःखोंको याद कर क्रोधमें भरजानेके कारण अपने प्राणोंको भी परवाह न करतेहुए महासंग्राममें द्रोणको मारनेकी इच्छासे युद्ध करनेलगे ११ प्राणोंका दाँव लगा कर युद्ध करनेवाले उन योधाओंकी भिड़न्त का शब्द पत्थर और लोहेके टकरानेकी समान होरहा था १२ बड़े २ वृद्धोंको भी इस बातकी याद नहीं आती कि–पहिले कभी हमने ऐसा संग्राम सुना या देखा हो ? ॥ १३ ॥ उस वीरको समाप्त करनेवाले युद्धमें योधाओंके इधर उधर घूमनेके बड़ेभारी

पीडिता ॥ १४ ॥ घूर्णतोऽपि बलौघस्य दिवस्तब्धेव निःस्वनः । अजातशत्रोस्तत् सैन्यमाविवेश सुभैरवः ॥ १५ ॥ तमासाद्य तु पाण्डूनामनीकानि सहस्रशः । द्रोणेन चरता संख्ये प्रभग्नानि शितैः शरैः ॥ १६ ॥ तेषु प्रमथ्यमानेषु द्रोणेनाद्भुतकर्मणा । पर्यवारयदायस्तो द्रोणं सेनापतिः स्वयम् ॥ १७ ॥ तदद्भुतमभूद्युद्धं द्रोणपाञ्चाल्ययोस्तदा । नैव तस्योपमा काचिदिति मे निश्चिता मतिः ॥१८॥ ततो नीलोऽनलप्रख्यो ददाह कुरुवाहिनीम् । शरस्फुलिङ्गश्चापार्चिर्दहन् कक्षमिवानलः ॥ १९ ॥ तं दहन्तमनीकानि द्रोणपुत्रः प्रतापवान् । पूर्वाभिभाषी सुश्लक्ष्णं स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ २० ॥ नील किम्बहुभिर्दग्धैस्तव योधैः शरार्चिषा । मयैकेन हि युध्यस्व क्रुद्धः प्रहर चाशु माम् ॥ २१ ॥ तं पद्मनि-

भारसे पृथ्वी डगमगाने लगी ॥१२॥ चारों ओर घूमती हुई सेना का भयंकर शब्द आकाशको छूकर युधिष्ठिरकी सेनामें जा गूँजा ॥१५॥ द्रोणने युद्धमें घूमकर पाण्डवोंकी सेनाओंको तेज वाणोंसे छिन्न भिन्न करडाला ॥ १६ ॥ अद्भुतपराक्रमी द्रोणके द्वारा इसप्रकार सेनाके नष्ट होने पर सेनापति धृष्टद्युम्न उनके सामने गया और उनको घेरलिया ॥ १७ ॥ पञ्चालदेशी धृष्टद्युम्न और द्रोणका वह युद्ध अद्भुत हुआ, मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि—उस युद्धकी कोई उपमा नहीं दीजासकती ॥ १८ ॥ ज्वालारूपी धनुष और चिनगारीरूपी वाणोंवाला अग्नि जैसे फूँसको जलाडालता है तैसे ही नील धनुष और वाणोंसे कौरवोंकी सेनाको भस्म करने लगा ॥ १९ ॥ नीलको इसप्रकार सेनाको भस्म करते हुए देख कर प्रतापी द्रोणपुत्रने मन्द २ मुसकराकर अपने आप ही पहिले बोलनेका आरम्भ कर कोमल वाणीमें नीलसे कहा कि—॥२०॥ हे नील ! तू वाणोंसे बहुतसे योधाओंको मारेडालता है, इससे तुझे क्या मिलेगा ? यदि तुझे लड़ना हो तो अकेले मेरे साथ

कराकारं पद्मपत्रनिभेक्षणम् । व्याकोशपद्माभिमुखो नीलो विव्याध सायकैः॥ २२ ॥ तेनापि विद्धः सहसा द्रौणिर्भल्लैः शितैस्त्रिभिः । धनुर्ध्वजञ्च छत्रञ्च द्विषतः समकृन्तत ॥ २३ ॥ सोऽवप्लुत्य रथात्तस्मान्नीलश्चर्मवरासिभृत् । द्रौणायनेः शिरः कायाद्धर्तुमैच्छत् पतत्रिवत् ॥२४॥ तस्योन्नतांसं सुनसं शिरः कायात् सकुण्डलम् । भल्लेनापाहरद् द्रौणिः स्मयमान इवानघ ॥ २५ ॥ सम्पूर्णचन्द्राभमुखः पद्मपत्रनिभेक्षणः । प्रांशुरुत्पलपत्राभो निहतो न्यपतत् क्षितौ ॥ २६ ॥ ततः प्रविव्यथे सेना पाण्डवी भृशमाकुला । आचार्यपुत्रेण हते नीले ज्वलिततेजसि ॥२७॥ अचिन्तयंश्च ते सर्वे पाण्डवानां महारथाः । कथं नो वासविस्त्रायाच्छत्रुभ्य इति

लड़ और मेरे ऊपर क्रोधमें भरकर प्रहार कर ॥ २१ ॥ यह सुन खिलेहुए कमलकी शोभाकी समान मुखवाले नीलने, कमलकी समान गौरवर्णी और कमलकी समान नेत्रोंवाले अश्वत्थामाको बाणोंसे बींधदिया ॥ २२ ॥ द्रोणपुत्रने भी तुरन्त ही तीन बाण मारकर उसके धनुष, छत्र और ध्वजाको काटडाला ॥२३॥ तुरन्त ही नील ढाल तलवारको हाथमें लेकर पक्षीकी समान रथमेंसे कूद पडा और यह चाहनेलगा कि—किसी प्रकार अश्वत्थामाका शिर उतार लूँ २४ हे निर्दोष राजन्! परंतु अश्वत्थामाने हँसते२ उसके कंधे और ऊँची नाक वाले कुंडलसहित मस्तकको भालेसे काटदिया २५ पूर्णिमाके चन्द्रमाकी समान मुखवाला, कमलनयन और उन्नत कमलपत्रके समान कान्तिवाला नील पृथ्वीमें गिरपड़ा ॥ २६ ॥ प्रचण्ड तेजवाले नीलके द्रोणपुत्रके हाथसे मारेजाने पर पांडवों की सेनामें घबडाहट पडगई और वह खेद करनेलगी ॥२७॥ इस समय पांडवोंके सब महारथी चिन्तामें पडगए और विचारने लगे कि—अर्जुन इस समय दक्षिणमें बचे हुए संशप्तक और नारायण

मारिष ॥ २८ ॥ दक्षिणेन तु सेनायाः कुरुते कदनं बली । संशप्तकावशेषस्य नारायणबलस्य च ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
नीलवधे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

सञ्जय उवाच । प्रतिघातन्तु सैन्यस्य नामृष्यत वृकोदरः । सोऽभ्याहनद् गुरुं षष्ट्या कर्णञ्च दशभिः शरैः ॥१॥ तस्य द्रोणः शितैर्बाणैस्तीक्ष्णधारैरजिह्मगैः । जीवितान्तमभिप्रेप्सुर्मर्मण्याशु जघान ह ॥२॥ आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः षड्विंशत्या समार्पयत् । कर्णो द्वादशभिर्बाणैरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥३॥ षड्भिर्दुर्योधनो राजा तत एनमथाकिरन् । भीमसेनोऽपि तान् सर्वान् प्रत्यविध्यन्महाबलः ॥४॥ द्रोणं पञ्चाशतेषूणां कर्णञ्च दशभिः शरैः । दुर्योधनं द्वादशभिर्द्रौणिं चाष्टभिराशुगैः ५ आरावं तुमुलं कुर्वन्नभ्यवर्त्तत तद्रणे । तस्मिन्सन्त्यजति प्राणान् मृत्युसाधारणीकृते ॥ ६ ॥ अजातशत्रुस्तान् योधान्

नामक ग्वालोंका संहार कररहा है, वह बलवान् यहाँ आकर हमारी रक्षा क्यों नहीं करता ।२८-२९। इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३१।

सञ्जयने कहा कि—भीमसेनसे सेनाका नाश न देखागया, उसने द्रोणके साठ और कर्णके दश बाण मारे ॥ १ ॥ द्रोणाचार्यने उसके प्राण लेनेकी इच्छासे उसके मर्मस्थानोंमें तीखी धारवाले और सीधे जानेवाले बाण मारे ॥ २ ॥ तथा बाणोंकी मार चलती रखनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यने फिर उसके छब्बीस बाण मारे और कर्णने बारह बाण मारे तथा अश्वत्थामाने सात बाण मारे ॥ ३ ॥ तदनन्तर दुर्योधनने भीमसेनको छः बाणोंसे वेधा, तदनन्तर महाबली भीमसेनने भी उनको बाणोंसे बींधा ४ उसने द्रोणके पचास, कर्णके दश, दुर्योधनके बारह और अश्वत्थामाके आठ बाण मारे ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर मृत्युको साधारण मानकर वह प्राणोंपर खेल भयङ्कर शब्द करताहुआ उनकी

भीमं त्रातेत्यचोदयत् । ते ययुर्भीमसेनस्य समीपममितौजसः ।७।
युयुधानप्रभृतयो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ । ते समेत्य सुसंरब्धाः
सहिताः पुरुषर्षभाः ॥८॥ महेष्वासवरैर्गुप्तं द्रोणानीकं बिभित्सवः ।
समापेतुर्महावीर्या भीमप्रभृतयो रथाः ॥ ९ ॥ तान् प्रत्यगृह्णादव्यग्रो
द्रोणोऽपि रथिनां वरः।महारथानतिबलान् वीरान् समरयोधिनः१०
बाह्यं मृत्युभयं कृत्वा तावका पाण्डवान् ययुः । सादिनः सादि-
नोऽभ्यघ्नंस्तथैव रथिनो रथान्॥११॥ आसीच्छक्त्यसिसम्पातो
युद्धमासीत् परश्वधैः । प्रकृष्टमसियुद्धञ्च बभूव कटुकोदयम्॥१२॥
कुञ्जराणाञ्च सम्पाते युद्धमासीत् सुदारुणम् । अपतत् कुञ्जरा-
दन्यो हयादन्यस्त्ववाक्शिराः॥१३॥ नरो बाणविनिर्भिन्नो रथा-
दन्यश्च मारिष । तत्रान्यस्य च संमर्दे पतितस्य विवर्मणः॥१४॥

ओरको दौड़ा ॥ ६ ॥ यह देख युधिष्ठिरने राजाओंसे भीमसेनकी रक्षाके लिये कहा, तुरत ही महावली पुरुषर्षभ, युयुधान, नकुल, सहदेव आदि बड़े क्रोधमें भर, इकट्ठे हो भीमसेनके पास पहुँचगए ॥ ७ ॥ ८ ॥ महापराक्रमी भीमसेन आदि रथी, महाधनुर्धरोंकी रक्षाकी हुई द्रोणकी सेनाका नाश करनेके लिये चढ़गए ॥ ९ ॥ उस समय महारथी द्रोण तनिक भी न घबड़ाकर उन महारथी, अतिवली मदसे भरकर युद्ध करनेवाले समरयोधी योधाओंके सामने डटगए ॥ १० ॥ पांडव भी मृत्युके भयको बाहरी भय मानकर तुम्हारे योधाओं पर टूटपडे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे तथा रथी रथियोंसे युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥ शक्ति और तलवारें एक दूसरेके ऊपर पडनेलगीं, फरसे फड़कनेलगे तथा उस समय श्रेष्ठ तलवारोंसे भी युद्ध हुआ जिसका परिणाम वडा भयङ्कर हुआ ॥ १२ ॥ हाथियोंका भी महाघोर युद्ध हुआ, उस समय कोई हाथीपरसे और कोई रथपरसे औंधा होकर गिररहा था, तथा हे राजन् ! कोई वाणोंसे

शिरः प्रध्वंसयामास वक्षस्याक्रम्य कुञ्जरः । अपरांश्चापरेऽमृद्नन्
वारणाः पतितान् नरान् ॥१५॥ विषाणैश्चावनिं गत्वा व्यभिन्दन्
रथिनो वहून् । नरान्त्रैः केचिदपरे विषाणालग्नसंश्रयैः ॥१६॥
वभ्रमुः समरे नागा मृद्नन्तः शतशो नरान् । कार्ष्णायसतनुत्रा-
णान्नराश्वरथकुञ्जरान् ॥ १७ ॥ पतितान् पोथयाञ्चक्रुर्द्विपाः
स्थूलनलानिव । गृध्रपत्राधिवासांसि शयनानि नराधिपाः ॥१८॥
ह्रीमन्तः कालसम्कोपात् सुदुःखान्यनुशेरते । हन्ति स्मात्र पिता पुत्र
रथेनाभ्येत्य संयुगे ॥ १९ ॥ पुत्रश्च पितरं मोहान्निर्मर्यादमवर्तत ।
रथो भग्नो ध्वजश्छिन्नश्छत्रमुर्व्यां निपातितम् ॥ २० ॥ युगार्धं
छिन्नमादाय प्रदुद्राव तथा हयः । सासिर्वाहुर्निपतितः शिरश्छिन्नं
सकुण्डलम् ॥२१॥ गजेनाक्षिप्य वलिना रथः संचूर्णितः क्षितौ ।

भिदकर रथपरसे गिररहा था, उस समय झपाटेमें आकर गिरेहुए एक कवचहीन पुरुषके हृदय पर पैर रखकर हाथीने उसके शिर को कुचलडाला, तैसे ही दूसरे हाथी पृथ्वीपर गिरेहुए योधाओं को खूँदने लगे ॥ १३–१५ ॥ वहुतसे हाथी दाँतोंसे पृथ्वीमें प्रहार करके रथियोंको चीरनेलगे, कितने ही हाथी मनुष्योंकी आँतडियोंसे लिपटेहुए दातोंसे सैंकडों मनुष्योंको रौंदतेहुए रणमें घूमनेलगे, वहुतसे हाथी लोहेके कवचवाले भूमिमें गिरेहुए, हाथी घोड़े, और मनुष्योंको नलोंकी समान कुचलनेलगे, वहुतसे लज्जावान् राजे कालके वशमें हो वड़े दुःखके साथ गिद्धोंके परोंके विस्तरवाली शय्याओं पर सोरहे थे, पिता रथमें वैठकर पुत्रको मारनेलगा और पुत्र भी मूर्खतासे अमर्याद हो पितासे लड़ने लगा, इस युद्धमें रथोंके टुकड़े २ होगए, ध्वजाओंकी धज्जियँ होगईं, छत्र पृथ्वीपर पटापट गिरगये, तथा घोड़े आधे उखड़ेहुए जुएको लेकर भागनेलगे, हाथ तलवारके सहित गिरपड़े और शिर मुकुटसहित गिरपड़े ॥ १६–२१ ॥ वलवान् हाथीने रथको पृथिवी

रथिना ताडितो नागो नाराचेनापतत्क्षितौ ॥ २२ ॥ सारोहश्चापतद्वाजी
गजेनाभ्याहतो भृशम् । निर्मर्यादं महद्युद्धमवर्त्तत सुदारुणम्
॥ २३ ॥ हा तात हा पुत्र सखे क्वासि तिष्ठ क्व धावसि ।
महराहर जह्येनं स्मितक्ष्वेडितगर्जिताः ॥ २४ ॥ इत्येवमुच्चरन्ति
स्म श्रूयन्ते विविधा गिरः । नरस्याश्वस्य नागस्य समसज्जत
शोणितम् ॥ २५ ॥ उपाशाम्यद्रजो भौमं भीरून् कश्मलमाविशत् ।
चक्रेण चक्रमासाद्य वीरो वीरस्य संयुगे ।२६। अतीतेषुपथे काले
जहार गदया शिरः । आसीत् केशपरामर्शो मुष्टियुद्धं च दारुणम् २७
नखैर्दन्तैश्च शूराणामद्वीपे द्वीपमिच्छताम् । तत्राच्छिद्यत शूरस्य

पर पटककर उसका चूरा २ करदिया और हाथी रथियोंके बाण
खाकर पृथ्वी पर गिरनेलगे २२ हाथियोंसे बड़ीभारी चोट खाकर
घोड़े सवारोंके सहित पृथ्वी पर गिरनेलगे, उस समय मर्यादाको
छोडकर भयङ्कर युद्ध होरहा था ॥ २३ ॥ रणमें योधा चिल्ला
रहे थे, कि–हे तात ! हे पुत्र ! हे मित्र ! तुम कहाँ हो ? खड़ेरहो
कहाँको दौडेजाते हो ? अरे ! इसे मारो, इसका संहार करो,
इसप्रकार हास्य, लीला और गर्जनावाली सैंकडों वाणियें रणमें
सुनाई आरही थीं, तहाँ हाथी, घोड़े और मनुष्योंका रुधिर मिल
कर एकाकार होगया था २४-२५ उस रुधिरके कारण पृथिवी पर
उडती हुई धूलि शान्त होगई, डरपोकोंके मनमें भय उत्पन्न होगया
वीरपुरुष अपने रथका पहिया शत्रु वीरके रथके पहियेसे अटका
कर युद्ध करनेलगे, युद्धमें जहाँ बाण छोडनेका अवसर नहीं होता
था वहाँपर योधा शत्रुके शिरको गदासे तोडदेते थे, बहुतसे वीर
परस्परमें केश खेंचरहे थे बहुतसे दारुण मुष्टियुद्ध (मुक्कामुक्की)
कररहे थे ॥२६–२७। निराधार रणस्थलमें आधार खोजनेवाले
कितने ही वीर दाँतोंसे काट रहे थे और नाखूनोंसे नोंचरहे थे,
कितनेही वीर शत्रुके खड्ग धनुष, अंकुश और बाण सहित उठाये

सखड्गो बाहुरुद्यतः ॥ २८ ॥ सधनुश्चापरस्यापि सशरः सांकुशस्तथा । आक्रोशदन्यमन्योत्र तथान्यो विमुखोऽद्रवत् ॥ २९ ॥ अन्यः प्राप्तस्य चान्यस्य शिरः कायादपाहरत् । स शब्दमद्रवच्चान्यः शब्दादन्योऽत्रसद् भृशम् ॥ ३० ॥ स्वानन्योथ परानन्यो जघान निशितैः शरैः । गिरिशृङ्गोपमश्चात्र नाराचेन निपातितः ३१ मातङ्गो न्यपतद् भूमौ नदीरोध इवोष्णगे । तथैव रथिनं नागः क्षरन् गिरिरिवारुजन् ॥ ३२ ॥ अभ्यतिष्ठत् पदा भूमौ सहाश्वं सहसा रथिम् । शूरान् प्रहरतो दृष्ट्वा कृतास्त्रान् रुधिरोक्षितान् ॥ ३३ ॥ बहूनप्याविशन्मोहो भीरून् हृदयदुर्बलान् । सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ३४ ॥ सैन्येन रजसा ध्वस्तं निर्मर्यादमवर्त्तत । ततः सेनापतिः शीघ्रमयं काल इति ब्रुवन् ॥ ३५ ॥ नित्या-

हुए हाथको काट रहे थे तहाँ बहुतसे वीर युद्ध करनेके लिये शत्रुओंको बुलारहे थे तो बहुतसे मुख फेरकर भागे जारहे थे तथा कोई पास आयेहुए दूसरेके शिरको धडसे काटरहे, थे कोई किल्ली मारकर भागरहे थे, कोई डरपोक शत्रुकी हुङ्कारको सुनकर काँप रहे थे, कोई तेज बाणोंसे अपने संबन्धियोंको तथा कोई शत्रुओंको काटरहे थे, कोई तहाँ पर्वतके शिखरकी समान ऊँचे हाथीको धनुषसे माररहे थे, वे हाथी वर्षा ऋतुमें नदीके तटकी समान गिररहे थे, पर्वतकी समान मदको टपकातेहुए कोई हाथी घोड़े रथ और सारथी सहित सवारोंको पाँवोंसे पृथ्वीमें कुचलरहे थे, अस्त्रवेत्ता शूर शत्रुओंके ऊपर भयङ्कर प्रहार कर रहे थे और स्वयं रुधिरसे भीगरहे थे यह देखकर अतिदुर्बल चित्तवाले डरपोक मूर्छित होरहे थे, सर्वत्र मार २ काट २ का ही शब्द सुनाई आ रहा था और कुछ भी सुनाई नहीं आता था, इस प्रकार मर्यादाहीन युद्ध चलरहा था, सेनाके पैरोंकी धमधमाहटसे सर्वत्र धूलि ही धूलि दिखाई पडती थी, उस समय धृष्टद्युम्नने कहा कि-यह

भित्वरितानेव त्वरयामास पाण्डवान् । कुर्वन्तः शासनं तस्य पाण्डवा बाहुशालिनः ॥ ३६ ॥ सरो हंसा इवापेतुर्घ्नन्तो द्रोणरथं प्रति । गृह्णीताद्रवतान्योन्यं विभीता विनिकृन्तत ॥ ३७ ॥ इत्यासत्तुमुलः शब्दो दुर्द्धर्षस्य रथं प्रति । ततो द्रोण कृपः कर्णो द्रौणी राजा जयद्रथः ॥ ३८ ॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ शल्यश्च तान्न्यवारयन् । ते त्वार्यधर्मसंरब्धा दुर्निवारा दुरासदः ॥३९॥ शरार्त्ता न जहुर्द्रोणं पञ्चालाः पाण्डवैः सह । ततो द्रोणोतिसंक्रुद्धो विसृजन् शतशः शरान् ॥४०॥ चेदिपञ्चालपाण्डूनामकरोत् कदनं महत् । तस्य ज्यातलनिर्घोषःशुश्रुवे दिक्षु मारिष४१ वज्रसंह्रादसङ्काशस्त्रासयन्मानवान् बहून् । एतस्मिन्नन्तरे जिष्णुर्जित्वा संशप्तकान् बहून्

समय ही द्रोणाचार्यको मारनेका है, यह कहकर उसने सदा फुर्तीले रहनेवाले पांडवोंको और भी फुर्ती दिखानेके लिये उकसाया, बाहुबली पांडव उसकी आज्ञाका पालन करके द्रोणके ऊपर इसप्रकार टूटपड़े जैसे हंस सरोवर पर टूटपडते हैं निर्भय होकर द्रोणको पकडलो उनके पीछे पडजाओ, उनके टुकड़े २ करडालो इसप्रकार प्रचण्ड द्रोणाचार्यके रथके पीछे बड़ाभारी कोलाहल होनेलगा, उस समय आगे बढतेहुए पाण्डवोंको कृपाचार्य,अश्वत्थामा; जयद्रथ, उज्जैनके विन्द, अनुविंद तथा शल्य रोकनेलगे, परन्तु श्रेष्ठ धर्मके आवेशमें भरेहुए, अडियल, दुर्जय पाण्डव और पांचालोंने बाणोंसे पीडित होकर भी द्रोणका पीछा न छोडा यह देखकर द्रोणको बडाभारी क्रोध आगया और उन्होंने सैकडों बाण छोडकर चेदि, पांचाल तथा पाण्डवोंका घोर संहार कर डाला, हे राजन् ! इस समय द्रोणके धनुषकी प्रत्यञ्चाका शब्द सब दिशाओंमें सुनाई आरहा था और उस वज्रकी समान प्रत्यञ्चाकी ध्वनिको सुन कर बहुतसे मनुष्य थर्रा गए, इतनेमें ही बहुतसे संशप्तकोंको जीतकर अर्जुन जहाँ द्रोण पांडवोंका सहार

॥ ४२ ॥ अभ्ययात्तत्र यत्रासौ द्रोणः पाण्डून् प्रमर्दति । तान् शरौघान्महावर्त्तान् शोणितोदान्महाह्रदान् ॥४३॥ तीर्णः संशप्तकान् हत्वा प्रत्यदृश्यत फाल्गुनः । तस्य कीर्त्तिमतो लक्ष्म सूर्यप्रतिमतेजसः ॥४४॥ दीप्यमानमपश्याम तेजसा वानरध्वजम् । संशप्तकसमुद्रं तमुच्छोष्यास्त्रगभस्तिभिः ॥ ४५ ॥ स पाण्डवयुगान्तार्कः कुरूनप्यभ्यतीतपत् । प्रददाह कुरून् सर्वानर्जुनः शस्त्रतेजसा ४६ युगान्ते सर्वभूतानि धूमकेतुरिवोत्थितः । तेन वाणसहस्रौघैर्गजाश्वरथयोधिनः ॥ ४७ ॥ ताड्यमानाः क्षितिं जग्मुर्मुक्तकेशाः शरार्दिताः । केचिदार्त्तस्वनं चक्रुर्विनेशुरपरे पुनः ॥ ४८ ॥ पार्थवाणहताः केचिन्निपेतुर्विगतासवः । तेषामुत्पतितान् कांश्चित् पतितांश्च पराङ्मुखान् ॥४९॥ न जघानार्जुनो योधान् योधव्रतमनुस्म

कररहे थे तहाँ आ पहुँचा, कौरवरूपी प्रलयमें सूर्यसमान अर्जुन संशप्तकोंका नाश करके वहुतसे वाणोंके ओघवाली और बड़े २ भँवरोंवाली रक्तकी धाराओंको पार करके हम सबोंको दिखाईदिया सूर्यकी समान तेजस्वी और यशस्वी अर्जुनकी वानरकी छाया वाली ध्वजाभी हमने देखी, पाण्डववंशमें सूर्यकी समान प्रकाश करताहुआ अर्जुन शस्त्रोंरूपी किरणोंसे संशप्तकसमुद्रको सोख कर कौरवसेना पर चढ़ आया, सब प्राणियोंको नष्ट करनेवाले प्रलयकालमें उदयहुए धूमकेतुकी समान अर्जुन सब कौरवोंको शस्त्रोंके तेजसे भस्म करनेलगा उसके सहस्रों वाणोंकी वर्षासे ताडना पाकर हाथी घोड़े और रथ पर चढकर युद्ध करने वाले वहुतसे वीर वाणोंसे पीडा पानेके कारण वाल विखरेहुए भूमिपर गिरपड़े, उस समय कोई डकरानेलगे, कितने ही मरगए, कितनेही अर्जुनके वाणोंके लगते ही प्राणोंको छोडकर पृथ्वी पर गिर पड़े, कितने ही खड़े हो पीठ दिखाकर भागनेलगे, इस समय योधाओंके व्रतको याद करके अर्जुनने उनको नहीं मारा, किन्तु

रन् । ते विकीर्णरथाश्चित्राः प्रायशश्च पराङ्मुखाः ॥५०॥ कुरवः कर्णं कर्णेति हा हेति च विचुक्रुशुः । तमाधिरथिराक्रन्दं विज्ञाय शरणैषिणाम् ॥५१॥ मा भैष्टेति प्रतिश्रुत्य ययावभिमुखोर्ज्जुनम् । स भारतरथश्रेष्ठः सर्वभारतहर्षणः ॥ ५२ ॥ प्रादुश्चक्रे तदाग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वरः । यस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापधरस्य च ५३ शरौघान् शरजालेन विदुधाव धनञ्जयः । तथैवाधिरथिस्तस्य बाणान् ज्वलिततेजसः ॥ ५४ ॥ अस्त्रमस्त्रेण सम्वार्य प्राणदद्विसृजन् शरान् । धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सात्यकिश्च महारथः ॥५५॥ विव्यधुः कर्णमासाद्य त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः । अर्जुनास्त्रं तु राधेयः संवार्य शरवृष्टिभिः ॥ ५६ ॥ तेषां त्रयाणां चापानि चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः । ते निकृत्तायुधाः शूरा निर्विषा भुजगा इव ५७

भागनेदिया, टूटेहुए रथवाले भागते हुए कौरव कर्णकी दुहाई देनेलगे और हाय २ करनेलगे, शरणमें आनेकी इच्छावाले कौरवोंकी इस रोदनध्वनिको सुनकर डरो मत २ इसप्रकार धैर्य देकर कर्ण अर्जुनकी ओरको बढा, तदनन्तर सकल भरतवंशी राजाओंको हर्षित करनेवाले, महारथी और बड़े अस्त्रवेत्ता कर्णने जलताहुआ आग्नेयास्त्र अर्जुनके मारा, परन्तु अर्जुनने बड़े प्रकाशवाले धनुषको धारण करनेवाले और महातेजस्वी वाणधारी कर्णके वाणोंको काटडाला, इसीप्रकार कर्णने भी अस्त्रोंका प्रहार कर अर्जुनके प्रकाशवान्, तेजस्वी वाणोंको और अस्त्रोंको रोकदिया और गरज कर शत्रुके वाण मारे, धृष्टद्युम्न, भीम और सात्यकिने भी सीधे जानेवाले तीन तीन वाण मारकर कर्णको बींधा, कर्णने अर्जुनकी वाणवर्षाको अपनी वाणवर्षासे रोककर उन तीनोंके धनुषोंको तीन वाणोंसे काटडाला, आयुधोंके कटजानेसे वे तीनों शूर विषहीन सर्पकी समान निस्तेज होगए ॥२८-५७॥ उन तीनोंने रथों

रथशक्तीः समुत्क्षिप्य भृशं सिंहा इवानदन् । ता भुजाग्रैर्महावेगा
विसृष्टा भुजगोपमाः ॥ ५८ ॥ दीप्यमाना महाशक्त्यो जग्मुराधिरथिं
प्रति । ता निकृत्य शरव्रातैस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ५९ ॥
ननाद बलवान् कर्णः पार्थाय विसृजन् शरान् । अर्जुनश्चापि
राधेयं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ॥ ६० ॥ कर्णादवरजं बाणैर्जघान
निशितैः शरैः । ततः शत्रुञ्जयं हत्वा पार्थः षड्भिरजिह्मगैः ६१
जहार सद्यो भल्लेन विपाटस्य शिरो रथात् । पश्यतां धार्त्तराष्ट्राणामेकेनैव
किरीटिना ॥ ६२ ॥ प्रमुखे सूतपुत्रस्य सोदर्या निहतास्त्रयः
। ततो भीमः समुत्पत्य स्वरथाद्वैनतेयवत् ॥ ६३ ॥ वरासिना
कर्णपक्षान् जघान दश पञ्च च । पुनस्तु रथमास्थाय धनुरादाय
चापरम् ॥ ६४ ॥ विव्याध दशभिः कर्णं सूतमश्वांश्च
पञ्चभिः । धृष्टद्युम्नोप्यसिवरं चर्म चादाय भास्वरम् ॥ ६५ ॥
जघान चन्द्रवर्माणं बृहत्क्षत्रञ्च नैषधम् । ततः स्वरथमास्थाय

पर शक्तियें फेंककर सिंहकी समान गर्जना की, उनकी भुजाओंसे छूटती हुईं सर्पकी समान महावेगवालीं चमकती हुईं वे शक्तियें कर्ण की ओरको जानेलगीं, उन शक्तियोंको बली कर्ण सीधे जानेवाले तीन २ बाणोंसे काटकर अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करताहुआ गर्जना करनेलगा, तब अर्जुनने भी कर्णके सात बाण मारे २८-६० फिर कर्णके छोटे भाईके तेज बाण मारे, तदनन्तर अर्जुनने कर्णके छोटे भाई शत्रुञ्जयको छः बाणोंसे मार शीघ्रही भाला मार कर विपाटके शिरको काटदिया, अकेले अर्जुनने सब कौरवोंके देखते हुए और कर्णके सामने कर्णके तीन भाइयोंको मारडाला तदनन्तर भीमसेन गरुड़की समान अपने रथ परसे कूदकर कर्णकी ओरके पन्द्रह मनुष्योंके शिर तलवारसे काटकर फिर अपने रथपर आगया और उसने धनुष लेकर कर्णके दश और सारथी तथा घोड़ोंके पाँच बाण मारे धृष्टद्युम्नने भी चमकतीहुई तेज तलवार और ढाल लेकर चन्द्रवर्मा और निषध देशके राजा

पाञ्चाल्योन्यच्च कार्मुकम् ॥ ६६ ॥ आदाय कर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या नदन् रणे । शैनेयोप्यन्यदादाय धनुरिन्दुसमद्युतिः ॥६७॥ सूतपुत्रञ्चतुःषष्ट्या विद्ध्वा सिंह इवानदत् । भल्लाभ्यां साधुमुक्ताभ्यां छित्वा कर्णस्य कार्मुकम् ॥ ६८ ॥ पुनः कर्णं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् । ततो दुर्योधनो द्रोणो राजा चैव जयद्रथः ॥ ६९ ॥ निमज्जमानं राधेयमुज्जह्रुः सात्यकार्णवात् । पत्यश्वरथमातङ्गास्त्वदीयाः शतशोपरे ॥ ७० ॥ कर्णमेवाभ्यधावन्त त्रास्यमाना प्रहारिणः । धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सौभद्रोर्जुन एव च ॥ ७१ ॥ नकुलः सहदेवश्च सात्यकिं जुगुपू रणे । एवमेष महारौद्रः क्षयार्थं सर्वधन्विनाम् ॥ ७२ ॥ तावकानां परेषाञ्च त्यक्त्वा प्राणानभूद्रणः।पदातिरथनागाश्वा गजाश्वरथपत्तिभिः ७३

बृहत्क्षत्रको मारडाला, तदनन्तर रथमें बैठकर हाथमें धनुष ले तिहत्तर बाणोंसे कर्णको रणमें बींधडाला और गर्जनेलगा, सात्यकि भी चन्द्रमाकी समान ज्योति वाले धनुषको ले कर्णको चौंसठ बाणोंसे बींधकर सिंहकी समान गर्जनेलगा और जोरसे दो भाले मारकर उसने कर्णके धनुषको तोडडाला, तदनन्तर सात्यकिने तीन बाण कर्णकी छाती और भुजाओंमें मारे, फिर सात्यकिरूपी समुद्रमें कर्णको डूबता हुआ देखकर दुर्योधन, जयद्रथ और द्रोणने उसको बचाया, तुम्हारी ओरके हाथीसवार घुडसवार रथी और पैदल मनमें डरते २ कर्णकी ओरको दौडनेलगे दूसरी ओर धृष्टद्युम्न, भीमसेन, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु नकुल और सहदेव सात्यकिकी रक्षा करनेको खड़े होगए, इसप्रकार सब धनुषधारियोंने महाभयानक और संहारकारी युद्ध किया था तुम्हारे और शत्रुपक्षके योधा प्राणोंकी भी अपेक्षा न करके युद्ध करनेलगे इस युद्धमें पैदल पैदलोंके साथ रथी रथियोंके साथ, घुड़सवार घुडसवारोंके साथ और हाथी सवार हाथीसवारोंके साथ युद्ध करने लगे ६१-७३ तहाँ बहुतसे रथी, हाथीसवार घुडसवार और

रथिनो नागपत्त्यश्वै रथपत्ती रथद्विपैः। अश्वैरश्वा गजैर्नागा रथिनो रथिभिः सह ॥ ७४ ॥ संयुक्ताः समदृश्यन्त पत्तयश्चापि पत्तिभिः। एवं सुकलिलं युद्धमासीत् क्रव्यादहर्षणम् ॥ महद्भिस्तैरभीतानां यमराष्ट्रविवर्द्धनम् ॥ ७५ ॥ ततो हता नररथवाजिकुञ्जरैरनेकशो द्विपरथपत्तिवाजिनः। गजैर्गजा रथिभिरुदायुधा रथै हयैर्हयाः पत्तिगणैश्च पत्तयः ॥७६॥ रथैर्द्विपा द्विरदवरैर्महाहया हयैर्नरा वररथिभिश्च वाजिनः। निरस्तजिह्वा दशनेक्षणाः क्षितौ क्षयं गताः प्रमथितवर्मभूषणाः ॥ ७७ ॥ तथापरैर्बहुकरणैर्वरायुधैर्हता गताः प्रतिभयदर्शनाः क्षितिम्। विपोथिता हयगजपाद-

पैदलोंसे रथी और पैदल रथी और हाथीसवारोंसे लड रहे थे कहीं घुडसवारोंका आपसमें युद्ध होरहा था कहीं हाथी सवारोंका, तो कहीं रथियोंका आपसमें युद्ध हो रहा था तथा कहीं पैदलोंसे पैदल भिड़ेहुए दीखते थे इसप्रकार निर्भय पुरुषोंका महापुरुषोंके साथ, मांसाहारी प्राणियोंका आनन्द देनेवाला और यमराजके राज्यको बढानेवाला युद्ध हुआ ॥ ७४–७५ ॥ इस युद्धमें मनुष्य रथी और घुडसवार तथा हाथी सवारोंसे बहुतसे हाथी घोड़े और रथोंपर बैठनेवाले तथा पैदल मारेगए, तैसे ही हाथी हाथियोंसे, आयुध लियेहुए रथी रथियोंसे घोड़े घोडोंसे और पैदलोंसे पैदल मारेगए ७६ रथियोंसे हाथी, हाथियोंसे घोड़े घोडोंसे मनुष्य और श्रेष्ठ रथियोंसे घोड़े मारेगए योधाओंके जीभ दाँत और नेत्र नष्ट होगए शरीर परके कवच और आभूषण टूटगये और वे योधा पृथ्वीमें गिरकर मरगए ॥७७॥ अनेकों प्रकारकी युद्धकी सामग्रियों वाले और बहुमूल्य शस्त्रोंवाले योधाओंने जिन सामनेके बहुतसे योधाओंको मारकर पृथ्वीपर गिरादिया था वे पड़े २ बडे भयङ्कर दीखते थे, बहुतसे योधा हाथी और घोडोंके पैरोंसे कुचलकर मरगए कितनेही रथोंके पहियोंसे दबकर मरगए थे इसप्रकार

ताडिता भृशाकुला रथमुखनेमिभिः क्षताः ॥ ७८ ॥ प्रमोदने श्वापदपक्षिरक्षसां जनक्षये वर्त्तति तत्र दारुणे। महाबलास्ते कुपिताः परस्परं निषूदयन्तः प्रविचेरुरोजसा ॥ ७९ ॥ ततो बले भृशलुलिते परस्परं निरीक्षमाणे रुधिरौघसंप्लुने । दिवाकरेऽस्तं गिरिमास्थिते शनैरुभे प्रयाते शिविराय भारत ॥ ८० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि
द्वितीयदिवसावहारे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

-समाप्तञ्च संशप्तकवधपर्व

अभिमन्यु--वधपर्व

संजय उवाच । पूर्वमस्मासु भग्नेषु फाल्गुनेनामितौजसा। द्रोणे च मोघसङ्कल्पे रक्षिते च युधिष्ठिरे ॥ १ ॥ सर्वे विध्वस्तकवचास्तावका युधि निर्जिताः । रजस्वला भृशोद्विग्ना वीक्षमाणा दिशो दश ॥ २ ॥ अवहारं ततः कृत्वा भारद्वाजस्य सम्मते । लब्धलक्षैः

कुत्ते, गिद्ध और राक्षसोंके हर्षको बढानेवाले इस दारुण युद्धके समय महाबली योधा क्रोधमें भरकर बलात्कारसे एक दूसरेको उत्पीडित करतेहुए रणमें घूमनेलगे ॥ ७८-७९ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! इतनेमें ही सूर्य अस्ताचल पर जानेको उद्यत होगए तब बहुत थकीहुई तथा लोहूलुहान हुई दोनों ओरकी सेनाएं परस्परको देखती हुई धीरे २ अपनी २ छावनियोंकी ओरको लौटने लगीं ॥ ८० ॥ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ।

अभिमन्युवधपर्व

सञ्जयने कहा कि-हे धृतराष्ट्र ! अगाधबलवाले अर्जुनने प्रथम हमारी सेनाका पराजय किया और युधिष्ठिरकी रक्षाकी तथा द्रोणके सङ्कल्पको निष्फल करदिया ॥ १ ॥ इससे रणमें तुम्हारे योधा कवचोंको फाडकर अपना पराजय माननेलगे वे धूलिमें अटरहे थे, तथा घबडाकर दशों दिशाओंमेंको देखरहे

शरैर्भिन्ना भृशावहसिता रणे ॥ ३ ॥ श्लाघमानेषु भूतेषु फाल्गुनस्यामितान् गुणान् । केशवस्य च सौहार्दे कीर्त्यमानेऽर्जुनं प्रति ४ अभिशस्ता इवाभूवन् ध्यानमूकत्वमास्थिताः । ततः प्रभातसमये द्रोणं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ प्रणयादभिमानाच्च द्विषद्वृद्ध्या च दुर्मनाः । शृण्वतां सर्वयोधानां संरब्धो वाक्यकोविदः ॥ ६ ॥ नूनं वयं वध्यपक्षे भवतो द्विजसत्तम । तथा हि नाग्रहीः प्राप्तं समीपेऽद्य युधिष्ठिरम् ॥७॥ इच्छतस्ते न मुच्येत चक्षुःप्राप्तो रणे रिपुः । जिघृक्षतो रक्ष्यमाणः सामरैरपि पाण्डवैः ॥ ८ ॥ वरं दत्त्वा मम प्रीतः पश्चाद्विकृतवानसि । आशाभङ्गं न कुर्वन्ति भक्तस्यार्याः कथंचन ॥ ९ ॥ ततोऽप्रीतस्तथोक्तः सन् भारद्वाजोऽब्रवीन्नृपम् ।

थे ॥ २ ॥ उनके शरीर बाणोंसे बिंधगए थे, तथा वे युद्धमें बहुत ही हास्यके पात्र हुए थे, उस समय द्रोणकी सम्मतिसे सब अपनी अपनी छावनियोंकी ओरको चलनेलगे ॥३॥ उस समय सेनापति अर्जुनके अपार गुणोंका बखान कररहे और श्रीकृष्णकी अर्जुनके ऊपर प्रीतिका वर्णन कररहे थे, यह सुनकर अपनी ओरके योधा शाप पाए हुएसे होगए उनके मुख सिलगए दूसरे दिन प्रातःकालके समय वक्ताओंमें श्रेष्ठ दुर्योधनने शत्रुओंकी उन्नतिको देख मनमें उदास तथा क्रुद्ध होकर सब योधाओंके सामने प्रणय तथा अभिमानके साथ द्रोणाचार्यसे कहा, कि—हे द्विजसत्तम! ॥ ४-६ ॥ हम वास्तवमें आपके शत्रु ही हैं, क्योंकि—कल युधिष्ठिरके पासमें आजाने पर भी आपने उनको नहीं पकड़ा ॥७॥ शत्रु युद्धमें सामने पड़जाय और तुम उसे पकड़ना चाहो तो पाण्डव देवताओंकी सहायतासे भी उसको बचना चाहें तो नहीं बचा सकते तो भी आप आँख बचागये ॥८॥ तुमने प्रसन्न होकर मुझे वर दिया था, कि—"मैं युधिष्ठिरको पकडूँगा" परन्तु तुम उस अपनी बातसे फिरगए महात्मा पुरुष भक्तकी आशाको तोड़ते नहीं हैं ॥ ९ ॥

नार्हसे मां तथा ज्ञातुं घटमानं तव प्रिये ॥ १० ॥ सदेवासुरगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः। नालं लोका रणे जेतुं पाल्यमानं किरीटिना ॥ ११ ॥ विश्वसृग्यत्र गोविन्दः पृतनानीस्तथार्जुनः । तत्र कस्य बलं क्रामेदन्यत्र त्र्यम्बकात् प्रभोः ॥ १२ ॥ सत्यं तात ब्रवीम्यद्य नैतज्जात्वन्यथा भवेत् । अद्यैकं प्रवरं कंचित् पातयिष्ये महारथम् ॥ १३ ॥ तञ्च व्यूहं विधास्यामि योऽभेद्यस्त्रिदशैरपि । योगेन केनचिद्राजन्नर्जुनस्त्वपनीयताम् ॥ १४ ॥ न ह्यज्ञातमसाध्यं वा तस्य संख्येस्ति किञ्चन । तेन ह्युपात्तं सकलं सर्वज्ञानमितस्ततः ॥ १५ ॥ द्रोणेन व्याहृते त्वेवं संशप्तकगणाः पुनः । आह्वयन्नर्जुनं संख्ये दक्षिणामभितो दिशम् ॥ १६ ॥ ततोऽर्जुनस्याथ परैः सार्धं समभवद्रणः । तादृशो यादृशो नान्यः श्रुतो

द्रोणने यह सुन मनमें खिन्न होकर दुर्योधनसे कहा, कि–मैं तेरा हित करनेका सदा उद्योग किया करता हूँ, अतः तुझे ऐसा नहीं समझना चाहिये ॥१०॥ परन्तु अर्जुन जिसकी रक्षा करता हो उसको देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, और नाग भी नहीं जीत सकते ॥११॥ जहाँ जगत्कर्त्ता गोविन्द और अर्जुन सेनापति हैं, तहाँ भगवान् त्र्यम्बक (शिव) को छोड़कर और किसका बल चलसकता है ? ॥ १२ ॥ हे तात ! मैं यह सत्य कहता हूँ कि–आज रणमें किसी एक बड़े महारथीका नाश करूँगा ॥१३॥ मैं आज सेनाके ऐसे व्यूहकी रचना करूँगा, कि–जिसे देवता भी भंग न कर सकेंगे; परन्तु हे राजन् ! किसी उपायसे अर्जुनको रणमेंसे दूर लेजाना चाहिये, ॥ १४ ॥ युद्धकी ऐसी कोई भी कला नहीं है जिसको अर्जुन न जानता हो, तथा उसको कुछ भी करना अशक्य नहीं है उसने मुझसे तथा दूसरोंसे सब कुछ सीखलिया है ॥ १५ ॥ द्रोणके ऐसा कहते ही संशप्तकोंने फिर अर्जुनको युद्ध करनेके लिये बुलाया, और उसको दक्खिनकी ओर लेगए १६

दृष्टोपि वा क्वचित् ॥ १७ ॥ तत्र द्रोणेन विहितो व्यूहो राजन् व्यरोचत । चरन् मध्यन्दिने सूर्यः प्रतपन्निव दुर्दृशः ॥ १८ ॥ तञ्चाभिमन्युर्वचनात् पितुर्ज्येष्ठस्य भारत । बिभेद दुर्भिदं संख्ये चक्रव्यूहमनेकधा ॥ १९ ॥ स कृत्वा दुष्करं कर्म हत्वा वीरान् सहस्रशः । षट्सु वीरेषु संसक्तो दौःशासनिवशङ्गतः ॥ २० ॥ सौभद्रः पृथिवीपाल जहौ प्राणान् परन्तपावयं परमसंहृष्टाः पांडवाः शोककर्षिताः । सौभद्रे निहते राजन्नवहारमकुर्महि ॥ २१ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । पुत्रं पुरुषसिंहस्य सञ्जयाप्राप्तयौवनम् । रणे विनिहतं श्रुत्वा भृशं मे दीर्यते मनः ॥ २२ ॥ दारुणः क्षत्रधर्मोयं विहितो

उस समय अर्जुनका शत्रुओंसे ऐसा युद्ध हुआ, कि—ऐसा युद्ध पहले कभी कहीं हुआ हो यह हमने न सुना न देखा है १७ हे राजन् ! इधर द्रोणाचार्यने भी ऐसा सुन्दर व्यूह रचा था, कि-जो शत्रुओंको ऐसा सन्ताप देता था, कि—जैसे मध्याह्नकालका सूर्य दुखती हुई आँखवालोंको महादुःख देता है॥१८॥हे भरतवंशी राजन् ! उस चक्रव्यूह’ को अभिमन्युने अपने बड़े ताऊ युधिष्ठिरके कहनेसे दुर्भेद्य होने पर भी अनेकों प्रकारसे छिन्न भिन्न करदिया था १९ हे राजन् ! उस समय अभिमन्युने सहस्रों वीरोंको मारकर बड़ा दुष्कर कर्म किया था तब द्रोण, अश्वत्थामा, कृप, कर्ण, भोज और शल्य इन छहोंने इकट्ठे होकर उसको घेर लिया और दुःशासनके पुत्रने उसको पकड़लिया था॥२०॥हे परन्तप राजन् ! तहाँ अभिमन्युने लड़ते २ अपने प्राणोंको त्यागदिया, इससे हम बड़े प्रसन्न हुए और पाण्डव शोकमें डूबगए अभिमन्युके मारेजाने पर हे राजन् ! हम विश्राम करनेको अपनी सेनाको छावनीकी ओर लेगए ॥ २१ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय ! पुरुषोंमें सिंहकी समान अर्जुनका पुत्र अभिमन्यु जिसने अभी पूरा तरुणता भी नहीं पायी थी, जो अभी बालक ही था, उसको मराहुआ

धर्मकर्तृभिः । यत्र राज्येप्सवः शूरा बाले शस्त्रमपातयन् ॥ २३ ॥
बालमत्यन्तसुखिनं विचरन्तमभीतवत् । कृतास्त्रा बहवो जघ्नुर्ब्रूहि
गावल्गणे कथम् ॥ २४ ॥ बिभित्सता रथानीकं सौभद्रेणामितौजसा ।
विक्रीडितं यथा संख्ये तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २५ ॥
सञ्जय उवाच । यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सौभद्रस्य निपातनम् । तत्ते
कार्त्स्न्येन वक्ष्यामि शृणु राजन् समाहितः ॥ २६ ॥ विक्रीडितं
कुमारेण तथानीकं बिभित्सता । आरुग्णाश्च यथा वीरा दुःसाध्याश्चापि
विप्लवे ॥ २७ ॥ दावाग्न्यभिपरीतानां भूरिगुल्मतृणद्रुमे
। वनौकसामिवारण्ये त्वदीयानामभूद्भयम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधसंक्षेपकथने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

सुनकर मेरा हृदय फटाजाता है ॥ २२ ॥ अहह ! धर्मको रचने
वालोंने क्षत्रियका धर्म बड़ा ही दारुण बनाया है, कि–जिसके
वशमें होकर राज्यके लोभी शूरोंने बालकके ऊपर शस्त्र छोड़
दिया ॥२३॥ हे सञ्जय ! अस्त्रविद्यामें प्रवीण बहुतसे योधाओंने
युद्धमें निर्भय होकर विचरतेहुए अत्यन्त सुखी बालक अभिमन्युको
किस प्रकार मारा यह मुझे सुना और हे सञ्जय ! अतुलित
बली अभिमन्युने रथसेनाको तोड़नेके लिये किसप्रकार बल
लगाया था, यह भी मुझसे कह ॥ २५ ॥ सञ्जयने कहा, कि–
हे राजेन्द्र ! सुभद्राके पुत्र अभिमन्युका संहार, रथसेनाको नष्ट
करनेके लिये अभिमन्युके कियेहुए पराक्रम और उसने वीर
दुर्धर्ष योधाओंको युद्धमें कैसे घायल किया इत्यादि जो कुछ आपने
बूझा है वह सब मैं कहता हूँ. आप ध्यान देकर सुनिये २६–२७
बहुतसी लताएं तिनुके तथा झाड़ झंकाड़वाले वनमें रहनेवाले
वनवासियोंको वनमें अग्नि लगनेसे जैसे भय लगता है, तैसे ही
अभिमन्युके युद्ध करने पर तुम्हारी ओरके योधाओंको भय लगता
था ॥ २८ ॥ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । समरेऽत्युग्रकर्माणः कर्मभिर्व्यञ्जितश्रमाः । सकृष्णाः पाण्डवाः पञ्च देवैरपि दुरासदाः ॥१॥ सत्वकर्मान्वयैर्बुद्ध्या कीर्त्या च यशसा श्रिया । नैव भूतो न भविता नैव तुल्यगुणः पुमान् ॥ २॥ सत्यधर्मरतो दान्तो विप्रपूजादिभिर्गुणैः । सदैव त्रिदिवं प्राप्तो राजा किल युधिष्ठिरः ॥३॥ युगान्ते चान्तको राजन् जामदग्न्यश्च वीर्यवान् । रथस्थो भीमसेनश्च कथ्यन्ते सदृशास्त्रयः ॥ ४ ॥ प्रतिज्ञाकर्मदक्षस्य रणे गाण्डीवधन्वनः । उपमां नाधिगच्छामि पार्थस्य सदृशीं क्षितौ ॥ ५ ॥ गुरुवात्सल्यमत्यन्तं नैभृत्यं विनयो दमः । नकुलेऽप्रातिरूप्यञ्च शौर्यञ्च नियतानि षट् ॥ ६ ॥ श्रुतगाम्भीर्यमाधुर्यसत्वरूपपराक्रमैः । सदृशो देवयोर्वीरः सहदेवः किलाश्विनोः ॥ ७ ॥ ये च कृष्णे गुणाः

सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्ण तथा पाँचों पांडव युद्धमें अतीव उग्र कर्म करनेवाले, हैं वे देवताओंसे भी नहीं हार सकते, उनका परिश्रम उनके कार्योंसे ही झलकता है, बल, कर्म, वंश, बुद्धि, कीर्त्ति, यश और लक्ष्मी ये सब गुण युधिष्ठिरमें हैं उनके समान न कोई पुरुष हुआ है और न कोई होगा ही ॥ १–२ ॥ सत्यधर्ममें परायण जितेन्द्रिय राजा युधिष्ठिर ब्राह्मणोंकी पूजा करना आदि गुणोंके कारण सदा स्वर्गमें रहनेके योग्य हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! प्रलयकालके यमराज, वीर्यवान् परशुराम और रथमें बैठाहुआ भीमसेन ये तीनों एक समान मानेजाते हैं ॥ ४ ॥ प्रतिज्ञाका पालन करनेमें कुशल गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनकी उपमा क्या पृथिवीमें किसीसे दी जा सकती है ! ॥ ५ ॥ परम गुरुभक्ति, कियेहुए और कर्त्तव्य कामको गुप्त रखना, विनय, दम, रूप और शूरता ये छः गुण नकुलमें नित्य निवास करते हैं ॥ ६ ॥ वीर सहदेव शास्त्रज्ञान, गम्भीरता, बल, रूप और पराक्रममें अश्विनीकुमारोंकी समान है ॥ ७ ॥

स्फीताः पांडवेषु च ये गुणाः । अभिमन्यौ किलैकस्था दृश्यन्ते गुणसञ्चयाः ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरस्य वीर्येण कृष्णस्य चरितेन च । कर्मभिर्भीमसेनस्य सदृशो भीमकर्मणः ॥ ९ ॥ धनञ्जनस्य रूपेण विक्रमेण श्रुतेन च । विनयात् सहदेवस्य सदृशो नकुलस्य च १० धृतराष्ट्र उवाच । अभिमन्युमहं सूत सौभद्रमपराजितम् । श्रोतुमिच्छामि कार्त्स्न्येन कथमायोधने हतः ॥ ११ ॥ सञ्जय उवाच । स्थिरो भव महाराज शोकं धारय दुर्धरम् । महान्तं बन्धुनाशन्ते कथयिष्यामि तच्छृणु ॥ १२ ॥ चक्रव्यूहो महाराज आचार्येणाभिकल्पितः । तत्र शक्रोपमाः सर्वे राजानो विनिवेशिताः ॥ १३ ॥ अरास्थानेषु विन्यस्ताः कुमाराः सूर्यवर्चसः । सङ्घातो राजपुत्राणां सर्वेषामभवत्तदा ॥१४॥ कृताभिसमयाः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः।

जो उत्तम गुण पाण्डवोंमें हैं और जो गुण श्रीकृष्णमें है, वे सब गुण एक अभिमन्युमें इकट्ठे दीखते हैं ॥ ८ ॥ अभिमन्युका बल युधिष्ठिरकी समान, चरित्र श्रीकृष्णकी समान, कर्म भयंकर कर्म करने वाले भीमकी समान, रूप पराक्रम और शास्त्रज्ञान अर्जुनकी समान, तथा विनय नकुल और सहदेवकी समान था ॥९॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सूत ! सुभद्राके पुत्र अपराजित अभिमन्युके पूरे चरित्रको सुननेकी मुझे इच्छा है अतः अभिमन्युने रणमें किस प्रकार मृत्यु पाई यह मुझे सुना ॥ ११ ॥ सञ्जयने कहा कि-हे महाराज ! सावधान हो जाइये और बड़े भारी शोकको दबाकर रखिये मैं आपको सम्बन्धियोंके घोर संहारका वृत्तान्त सुनाता हूँ उसको सुनिये ॥१२॥ हे महाराज ! द्रोणाचार्यने चक्रव्यूह रचा और उसमें इन्द्रकी समान राजाओंको यथास्थानपर खड़ा करदिया ॥१३॥ चक्रव्यूहके प्रवेशमार्गों पर सूर्यकी समान तेजस्वी राजाकुमारोंको खड़ा करदिया उन सब राजकुमारोंने इकट्ठे रहनेकी प्रतिज्ञाकी थी इन सबकी ध्वजाएँ सुवर्णसे मढ़ी

रक्तांबरधराः सर्वे सर्वे रक्तविभूषणाः ॥ १५ ॥ सर्वे रक्तपताकाश्च सर्वे वै हेममालिनः । चन्दनागुरुदिग्धाङ्गाः स्रग्विणः सूक्ष्मवाससः ॥ १६ ॥ सहिता पर्यधावन्त कार्ष्णिं प्रति युयुत्सवः । तेषां दशसहस्राणि बभूवुर्दृढधन्विनाम् ॥ १७ ॥ पौत्रं तव पुरस्कृत्य लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् । अन्योन्यसमदुःखास्ते अन्योन्यसमसाहसाः ॥ १८ ॥ अन्योन्यं स्पर्धमानाश्च अन्योन्यस्य हिते रता । दुर्योधनस्तु राजेन्द्र सैन्यमध्ये व्यवस्थितः १९ कर्णदुःशासनकृपैर्वृतो राजा महारथैः । देवराजोपमः श्रीमान् श्वेतच्छत्राभिसंवृतः ॥ २० ॥ चामरव्यजनाक्षेपैरुदयन्निव भास्करः । प्रमुखे तस्य सैन्यस्य द्रोणोवस्थितनायकः २१ सिन्धुराजस्तथाऽतिष्ठच्छ्रीमान्मेरुरिवाचलः । सिन्धुराजस्य पार्श्वस्था अश्वत्थामपुरो-

हुई थीं, वे सब लाल वस्त्र और लाल आभूषण पहिरे हुए थे, सबोंके कण्ठोंमें सुवर्णकी मालाएँ पड़ी हुई थीं,शरीरों पर चन्दन लगा हुआ था, सूक्ष्म वस्त्र पहिरे हुए थे तथा सबके कण्ठोंमें पुष्पमालाएँ पड़ी हुई थीं, ये सब योधा प्रतिज्ञाके अनुसार लड़नेकी इच्छासे अभिमन्युके ऊपर एकसाथ टूट पड़े, ये सब दृढ़ धनुषधारी योधा दश सहस्र थे ॥ १४-१७ ॥ परस्पर एकसा दुःख सहसकनेवाले, एकसे साहसवाले,परस्परमें स्पर्धा रखनेवाले तथा एक दूसरेका हित करनेवाले वे योधा तुम्हारे पोते प्रियदर्शन लक्ष्मणको आगे करके अभिमन्युके ऊपर टूटपड़े हे राजेन्द्र!श्रीमान् राजा दुर्योधन इस व्यूहके मध्यमें महारथी कर्ण कृपाचार्य और दुःशासनको साथमें लेकर खड़ाहुआ इन्द्रकी समान शोभा पारहा था उसके दोनों ओर चमर और बड़े२ पंखे ढलरहे थे उसके मस्तक पर श्वेत छत्र लगाहुआ था इस कारण वह उदय होतेहुए सूर्य की समान मालूम होता था उस व्यूहके मुहानेपर सेनापति द्रोणाचार्य और सिंधुदेशका राजा जयद्रथ सुमेरु पर्वतकी समान खड़ा

गमाः ॥ २२ ॥ सुतास्तव महाराज त्रिशत्त्रिदशसन्निभाः । गांधारराजः कितवः शल्यो भूरिश्रवास्तथा ॥ २३ ॥ पार्श्वतः सिन्धुराजस्य व्यराजन्त महारथाः । ततः प्रवृत्ते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २४ ॥ तावकानां परेषाञ्च मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् २५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
चक्रव्यूहनिर्माणे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

सञ्जय उवाच । तदनीकमनाधृष्यं भारद्वाजेन रक्षितम् । पार्थाः समभ्यवर्त्तंत भीमसेनपुरोगमाः ॥ १ ॥ सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । कुन्तिभोजश्च विक्रान्तो द्रुपदश्च महारथः ॥२॥ आर्जुनिः क्षत्रधर्मा च बृहत्क्षत्रश्च वीर्यवान् । चेदिपो धृष्टकेतुश्च माद्रीपुत्रौ घटोत्कचः ॥ ३ ॥ युधामन्युश्च विक्रान्तः शिखण्डी चापराजितः । उत्तमौजाश्च दुर्धर्षो विराटश्च महारथः४ द्रौपदेयाश्च संरब्धाः शैशुपालिश्च वीर्यवान् । केकयाश्च महा-

था हे महाराज ! देवताओंकी समान आपके तीस पुत्र अश्वत्थामाको आगेकर सिन्धुराज जयद्रथकी करवटमें खड़े थे जयद्रथ की दूसरी करवटमें मायावी गन्धार देशका जुआरी राजा शकुनि, शल्य और भूरिश्रवा ये तीन महारथी खड़े थे, तदनन्तर मृत्युको सामने रखकर तुम्हारे पुत्रोंका तथा पांडवोंका रोमाञ्चकारी तुमुल युद्ध आरम्भ होगया ॥ १८–२५ ॥ चौतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

सञ्जयने कहा, कि–द्रोणसे रक्षित तथा किसीसे दबाव न खानेवाले उस व्यूह पर भीमसेनको आगे करके पाण्डव टूटपड़े १ सात्यकि, चेकितान, पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्न, महापराक्रमी कुन्तिभोज, महारथी द्रुपद, अभिमन्यु, क्षत्रवर्मा, वीर्यवान् बृहत्क्षत्र, चेदिराज धृष्टकेतु, नकुल, सहदेव, घटोत्कच, बलवान् युधामन्यु, शिखण्डी, अपराजित उत्तमौजा दुराधर्ष और महारथी विराट, क्रोधमें भरे

वीर्या सृञ्जयाश्च सहस्रशः ॥५॥ एते चान्ये च सगणाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः । समभ्यधावन सहसा भारद्वाजं युयुत्सवः ॥ ६ ॥ समीपे वर्त्तमानांस्तान् भारद्वाजोऽतिवीर्यवान् । असम्भ्रान्तः शरौघेण महता समवारयत् ॥ ७ ॥ महौघः सलिलस्येव गिरिमासाद्य दुर्भिदम् । द्रोणं तेनाभ्यवर्त्तन्त वेलामिव जलाशयाः ॥८॥ पीड्यमानाः शरै राजन् द्रोणचापविनिःसृतैः । न शेकुः प्रमुखे स्थातुं भारद्वाजस्य पाण्डवाः ॥ ९ ॥ तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्य भुजयोर्बलम् । यदेनं नाभ्यवर्त्तन्त पञ्चालाः सृञ्जयैः सह ॥ १० ॥ तमायान्तमभिक्रुद्धं द्रोणं दृष्ट्वा युधिष्ठिरः । वहुधा चिन्तयामास द्रोणस्य प्रतिवारणम् ॥ ११ ॥ अशक्यन्तु तमन्येन द्रोणं मत्वा युधिष्ठिरः ।

हुए द्रौपदीके पाँचों पुत्र, वली शिशुपालका पुत्र,महावली कैकय, महापराक्रमी सहस्रों सृञ्जय तथा और भी वहुतसे युद्धदुर्मद शस्त्रविद्यामें निपुण योधा अपने २ नायकोंकी छाया (रक्षा) में रहकर एकसाथ द्रोणाचार्यके ऊपर टूटपड़े ॥२-६॥ उनके समीप में आनेपर अतिवली द्रोण घवडाए नहीं किन्तु उन्होंने वडीभारी वाणवर्षा कर उनको आगे वढनेसे रोकदिया ॥७॥ जलका वड़ा भारी रेला जैसे दुर्भेद्य पर्वतसे टकराकर रुकजाता है और जैसे वडाभारी जलाशय किनारेसे टकरा कर आगेको नहीं वढता है तैसे ही द्रोणके सामने पहुँचकर पाण्डव आगेको न वढसके॥८॥ हे राजन्! द्रोणके धनुषसे निकलेहुए वाणोंसे पीड़ा पाकर पाण्डव उनके सामने खड़े न रहसके ॥९॥ हमने द्रोणकी भुजाओंका ऐसा अचरज भरा वल देखा कि-सृञ्जय और पांडव मिलकर भी द्रोणके सामने टिक न सके ॥ १० ॥ अपनी ओर क्रोधमें भरकर वढते हुए द्रोणको देखकर युधिष्ठिर उनको हटानेको वड़े विचार करनेलगे ॥ ११ ॥ उन्होंने विचारा कि-अभिमन्युके सिवाय इनको और कोई रोक नहीं सकता यह मानकर उन्होंने

अविषह्यं गुरुं भारं सौभद्रे समवासृजत् ॥ १२ ॥ वासुदेवादनवरं फाल्गुनाच्चामितौजसम् । अब्रवीत् परवीरघ्नमभिमन्युमिदं वचः ॥ १३ ॥ एत्य नो नार्जुनो गर्हेद्यथा तात तथा कुरु । चक्रव्यूहस्य न वयं विद्मो भेदं कथञ्चन । १४ ॥ त्वं वार्जुनो वा कृष्णो वा भिन्द्यात् प्रद्युम्न एव वा । चक्रव्यूहं महाबाहो पञ्चमो नोपपद्यते ॥ १५ ॥ अभिमन्यो वरं तात याचतां दातुमर्हसि । पितॄणां मातुलानाञ्च सैन्यानां चैव सर्वशः ॥१६॥ धनञ्जयो हि नस्तात गर्हयेदेत्य संयुगात् । क्षिप्रमस्त्रं समादाय द्रोणानीकं विशातय ॥ १७ ॥ अभिमन्युरुवाच । द्रोणस्य दृढमत्युग्रमनीकप्रवरं युधि । पितॄणां जयमाकांक्षन्नवगाहेऽविलम्बितम् ॥ १८ ॥ उपदिष्टो हि मे पित्रा योगोनीकविशातने । नोत्सहे हि विनिर्गन्तुमहं

अभिमन्युके ऊपर यह असह्य भार रखनेका विचार किया १२ और श्रीकृष्णकी समान शुद्ध चरित्रवाले अर्जुनकी समान बली शत्रुनाशक अभिमन्युसे युधिष्ठिरसे कहा कि—॥ १३ ॥ हे तात ! जिससे कि—अर्जुन रणमेंसे आकर हमारी निन्दा न करे, ऐसा करो, चक्रव्यूहको कैसे तोडाजाय इस बातको हम जरा भी नहीं जानते ॥ १४ हे महाबाहो ! तू, कृष्ण अर्जुन और प्रद्युम्न ये चार ही चक्रव्यूहको कैसे तोडाजाता है इसको जानते हैं पाँचवाँ पुरुष इस कामको नहीं करसकता ॥ १५ ॥ अतः हे तात ! अभिमन्यु ! तुम प्रार्थना करनेवाले चाचा ताऊ मामाओंर सैनिकों के मनोरथको पूरा करो ॥ १६ ॥ और शीघ्र ही शस्त्र लेकर द्रोणके चक्रव्यूहको तोडडालो. नहीं तो अर्जुन संग्रामसे लौटकर हमें ताना देगा ॥ १७ ॥ अभिमन्युने कहा, कि—मैं अपने चाचा ताउओंकी विजय होनेकी इच्छासे दृढ और अतिभयङ्कर द्रोणकी महासेनामें घुसता हूँ ॥ १८ ॥ मुझे पिताजीने चक्रव्यूहको तोडना ही बताया है, परन्तु उसमेंसे बाहर निकलनेका उपाय नहीं

कस्याञ्चिदापदि ॥ १९ ॥ युधिष्ठिर उवाच । भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ द्वारं सञ्जनयस्व नः । वयं त्वानुगमिष्यामो येन त्वं तात यास्यसि ॥ २० ॥ धनञ्जयसमं युद्धे त्वां वयं तात संयुगे । प्रणिधायानुयास्यामो रक्षन्तः सर्वतो मुखाः ॥ २१ ॥ भीम उवाच । अहं त्वानुगमिष्यामि धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः । पञ्चालाः केकया मत्स्यास्तथा सर्वे प्रभद्रकाः ॥२२॥ सकृद्भिन्नं त्वया व्यूहं तत्र तत्र पुनः पुनः । वयं प्रध्वंसयिष्यामो निघ्नमाना वरान् वरान् ।२३। अभिमन्युरुवाच । अहमेतत् प्रवेक्ष्यामि द्रोणानीकं दुरासदम् । पतङ्ग इव संक्रुद्धो ज्वलन्तं जातवेदसम् ॥ २४ ॥ तत्कर्माद्य करिष्यामि हितं यद्वंशयोर्द्वयोः । मातुलस्य च यत्प्रीतिं करिष्यति पितुश्च मे ॥ २५ ॥ शिशुनैकेन संग्रामे काल्यमानानि संघशः । द्रक्ष्यन्ति

वताया है अतः मैं किसी प्रकारकी आपत्तिमें फँसगया तो निकल नहीं सकूँगा ॥ १९ ॥ यह सुन युधिष्ठिर कहनेलगे, कि–हे योधाओंमें श्रेष्ठ ! तू चक्रव्यूहको तोड और उसमें हमारे घुसने को द्वार वना, जिस मार्गसे तू चक्रव्यूहमें प्रवेश करेगा उस ही मार्गसे हम भी तेरे पीछे २ घुस आवेंगे ॥ २० ॥ हे तात ! तू धनञ्जयकी समान पराक्रमी है अतः हम तुझे आगे करके तेरे पीछे २ चलेंगे और मार्गमें चारों ओरसे तेरी रक्षा करेंगे २१ भीमसेन कहनेलगा कि–मैं, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, पञ्चाल, केकय, मत्स्य तथा सव प्रभद्रक तेरे पीछे २ आवेंगे और तू जहाँ २ चक्रव्यूहको एकवार तोडदेगा तहाँ २ हम प्रवेश करके वड़े २ योधाओं को नष्ट करडालेंगे ॥ २२ ॥२३॥ अभिमन्युने कहा कि क्रोधमें भरे पतंगे जैसे जलतेहुए अग्निके ऊपर जापडते हैं, तैसे ही मैं भी जिसमें घुसना कठिन है ऐसी द्रोणकी सेनामें घुसजाऊँगा २४ आज ऐसा पराक्रम करूँगा कि जिससे ननसाल और ददसाल दोनों कुलका हित होगा तथा पिताजी और मामाजी उससे प्रसन्न

सर्वभूतानि द्विषत्सैन्यानि वै मया ॥ २६ ॥ नाहं पार्थेन जातः स्यां न च जातः सुभद्रया । यदि मे संयुगे कश्चिज्जीवितो नाद्य मुच्यते ॥ २७ ॥ यदि चैकरथेनाहं समग्रं क्षत्रमण्डलम् । न करोम्यष्टधा युद्धे न भवाम्यर्जुनात्मजः ॥ २८ ॥ युधिष्ठिर उवाच । एवन्ते भाषमाणस्य बलं सौभद्र वर्धताम् । यत्समुत्सहसे भेत्तुं द्रोणानीकं दुरासदम् ॥ २९ ॥ रक्षितं पुरुषव्याघ्रैर्महेष्वासैर्महाबलैः । साध्यरुद्रमरुत्तुल्यैर्वस्वग्न्यादित्यविक्रमैः ॥ ३० ॥ सञ्जय उवाच । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स यन्तारमचोदयत् ॥ ३१ ॥ सुमित्राश्वान् रणे क्षिप्रं द्रोणानीकाय चोदय ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
अभिमन्युप्रतिज्ञायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

सञ्जय उवाच । सौभद्रस्तद्वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।

होंगे, मैं अकेला हूँ और बालक हूँ, तो भी शत्रुओंकी सेनाका संहार करडालूँगा, इसको सब प्राणी देखेंगे २५-२६ मेरे जीतेजी यदि कोई शत्रु जीता जागता बचजाय तो मैं अर्जुनका पुत्र नहीं !! और सुभद्राके पेटसे जन्मा नहीं ॥ २७ ॥ यदि एक रथमें बैठकर मैं सम्पूर्ण क्षत्रियोंके समूहके आठ टुकड़े न कर दूँ तो मैं अर्जुनसे पैदा ही नहीं हुआ ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि—हे सुभद्रानन्दन ! महाधनुषधारी साध्य, रुद्र और पवनकी समान बली सूर्यकी समान पराक्रमी पुरुषोंसे रक्षित होनेके कारण महादुर्गम द्रोणकी सेनाको तोडनेका तू उत्साह करता है और प्रतिज्ञा करता है ! ऐसा कहनेवाले तेरा बल बढे ॥ २९-३० ॥ सञ्जयने कहा कि युधिष्ठिरके ऐसे वचनोंको सुनकर अभिमन्युने सारथीसे कहा, कि—हे सुमित्र ! अपने घोडोंको द्रोणकी सेनाकी ओरको बढाओ ॥ ३१ ॥ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥

सञ्जयने कहा कि—हे भारत ! बुद्धिमान् धर्मराजकी इस बात

अचोदयत् यन्तारं द्रोणानीकाय भारत ॥ १ ॥ तेन संचोद्यमानस्तु याहि याहीति सारथिः । प्रत्युवाच ततो राजन्नभिमन्युमिदं वचः ॥ २ ॥ अतिभारोऽयमायुष्मन्नाहितस्त्वयि पाण्डवैः । सम्प्रधार्य क्षणं बुद्ध्या ततस्त्वं योद्धुमर्हसि ॥ ३ ॥ आचार्यो हि कृती द्रोणः परमास्त्रे कृतश्रमः । अत्यन्तसुखसंवृद्धस्त्वञ्चायुद्धविशारदः ४ ततोऽभिमन्युः प्रहसन् सारथिं वाक्यमब्रवीत् । सारथे कोन्वयं द्रोणः समग्रं क्षत्रमेव वा ॥ ५ ॥ ऐरावतगतं शक्रं सहामरगणैरहम् । अथवा रुद्रमीशानं सर्वभूतगणार्चितम् । योधयेयं रणमुखे न मे क्षत्रेऽद्य विस्मयः ॥ ६ ॥ न ममैतद् द्विषत्सैन्यं कलामर्हति षोडशीम् । अपि विश्वजितं विष्णुं मातुलं प्राप्य सूतज ॥ ७ पितरं

को सुनकर अभिमन्युने सारथीसे द्रोणकी सेनाकी ओरको चलने को कहा ॥ १ ॥ अभिमन्युके वारम्वार चल २ कहने पर हे राजन्! सारथिने अभिमन्युसे यह बात कही ॥२॥ हे आयुष्मन्! पाण्डवोंने आपके ऊपर बडा भारी बोझा डालदिया है अतः आप क्षण भर बुद्धिके साथ उसको विचार लो फिर युद्ध करनेके लिये चलना ॥ ३ ॥ द्रोणाचार्य बड़े शक्तिमान् हैं उन्होंने शस्त्र-विद्या में बडा भारी परिश्रम किया है और तुम बड़े सुखमें पलते रहे हो तथा युद्धमें उनको समान निपुण भी नहीं हो अभिमन्युने खिलखिलाके हँसकर सारथिसे कहा कि—अरे! यह द्रोण और क्षत्रियोंका समूह क्या है? ॥ ५ ॥ यदि ऐरावत हाथी पर चढ कर स्वयं इन्द्र भी देवताओंको साथमें लेकर लडनेको आवें अथवा भूतगणोंको साथमें लेकर ईशान शिव भी लडनेको आवें तो मैं उनसे भी लडूँगा, इन राजाओं को देखकर मुझे आश्चर्य नहीं होता है ये मेरे सोलहवें भागकी बराबर भी नहीं है, हे सूत! अधिक क्या कहूं, यदि युद्धमें विश्वजित् मामा श्रीकृष्ण और पिता अर्जुनसे भी सामना हो

चार्जुनं युद्धे न भीर्मामुपयास्यति । अभिमन्युश्च तां वाचं कदर्थीकृत्य सारथेः ॥ ८॥ याहीत्येवाब्रवीदेनं द्रोणानीकाय मा चिरम् । ततः संनोदयामास हयानाशु त्रिहायनान् ॥ ९ ॥ नातिहृष्टमनाः सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान् । ते प्रेषिताः सुमित्रेण द्रोणानीकाय वाजिनः ॥ १० ॥ द्रोणमभ्यद्रवन् राजन् महावेगपराक्रमम् । तमुदीक्ष्य तथायान्तं सर्वे द्रोणपुरोगमाः । अभ्यवर्त्तन्त कौरव्याः पांडवाश्च तमन्वयुः ॥११॥ स कर्णिकारप्रवरोच्छ्रितध्वजः सुवर्णवर्मार्जुनिरर्जुनाद्वरः । युयुत्सया द्रोणमुखान् महारथान् समासदत् सिंहशिशुर्यथा द्विपान् ॥ १२ ॥ ते विंशतिपदे यत्ताः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे । आसीद्गाङ्ग इवावर्त्तो मुहूर्त्तमुदधाविव ॥१३॥ शूराणां

जाय तो भी मैं डरनेवाला नहीं हूँ इसप्रकार अभिमन्युने सारथीकी बातका तिरस्कार कर सारथिसे द्रोणकी ओरको शीघ्रतासे रथ बढ़ानेको कहा, यह सुनकर सारथी मनमें प्रसन्न तो नहीं हुआ परन्तु सुनहरी आभूषणोंवाले तीन वर्षके घोड़ोंको द्रोणकी ओर बढाया ॥ ७–१० ॥ हे राजन् ! वे घोड़े महापराक्रमी और वेगवाले द्रोणकी सेनाकी ओरको दौड़गये इसप्रकार अभिमन्युको अपनी ओर बढता हुआ देखकर द्रोण आदि कौरवपक्षके सब योधा उसके सामने होगए, पाण्डव अभिमन्युके पीछे २ चलरहे थे ॥११॥ बड़े भारी कनेरके वृक्षकी समान ऊँची ध्वजावाला, सुवर्णके कवचको पहिरे अर्जुनसे भी बढा चढा अर्जुनका पुत्र युद्ध करनेकी इच्छासे द्रोण आदि महारथियोंके सामने इसप्रकार डटगया, जैसे हाथियोंमें सिंहका बच्चा जा डटता है १२ अभिमन्युको चक्रव्यूहमें प्रवेश करते हुए देखकर, चक्रव्यूहके रक्षक उसके ऊपर एकसाथ टूटपड़े समुद्रमें गंगाके मिलने पर जैसे क्षण भरको गङ्गामें भँवरियें पड़ती हैं तैसे ही रणमें बाणोंका प्रहार होनेलगा ॥ १३ ॥ हे राजन् ! एक दूसरेका संहार करने

युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् । संग्रामस्तुमुलो राजन् प्रावर्त्तत सुदारुणः ॥ १४ ॥ प्रवर्त्तमाने संग्रामे तस्मिन्नतिभयङ्करे । द्रोणस्य मिषतो व्यूहं भित्त्वा प्राविशदार्जुनिः ॥ १५ ॥ तं प्रविष्टं विनिघ्नन्तं शत्रुसंघान् महाबलम् । हस्त्यश्वरथपत्त्योघाः परिवव्रुरुदायुधाः १६ नानावादित्रनिनदैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टगर्जितैः । हुङ्कारैः सिंहनादैश्च तिष्ठ तिष्ठेति निःस्वनैः ॥ १७ ॥ घोरैर्हलहलाशब्दैर्मा गास्तिष्ठेहि मामिति । असावहममित्रेति प्रवदन्तो मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥ बृंहितैः शिञ्जितैर्हासैः करनेमिस्वनैरपि । सन्नादयन्तो वसुधामभिदुद्रुवुरार्जुनिम् ॥ १९ ॥ तेषामापततां वीरः शीघ्रयोधी महाबलः । क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद्राजन् मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ २० ॥ ते हन्यमाना

वाले योधाओंका आपसमें महादारुण संग्राम होनेलगा ॥ १४ ॥ महाभयङ्कर संग्राम चल रहा था, उस समय द्रोणके देखते हुए भी महाबली अभिमन्यु चक्रव्यूहको तोडकर उसके भीतर घुस गया ॥ १५ ॥ वहाँ प्रवेश कर घुडसवार रथी और पैदल शत्रुओं की बडीभारी सेनाका संहार करतेहुए अभिमन्युको हाथोंमें हथियार उठाये हुए हाथीसवार घुडसवार रथी और पैदलोंने घेरलिया ॥ १६ ॥ नानाप्रकारके शब्द उपहास तथा हाथोंके शब्द करके तथा मार डालो ऐसी गर्जना और हुङ्कारे तथा सिंहनाद करके ठहर जा २ ऐसे शब्द बोलकर तथा घोर कोलाहल करके अरे!भागमत २ मेरे सामने आ,मैं तेरा शत्रु यह खडा हूँ,, ऐसी बकवादके साथ वे अभिमन्युको लडनेके लिये बार२बुलाने लगे, गर्जना, झनझनाहट, हास्य, तालियें और रथके पहियोंके शब्दोंसे पृथ्वीको गुंजारते हुए कौरव योधा अभिमन्यु पर टूट पड़े ॥ १७-१९ ॥ हे राजन्! महाबली मर्मस्थानोंको जाननेवाले शीघ्रतासे युद्ध करनेवाले और शस्त्रोंका उपयोग जाननेवाले अभिमन्युने भी सामने आयेहुए उन योधाओंके मर्मस्थानोंमें मर्म-

विवशा नानालिङ्गैः शितैः शरैः । अभिपेतुः सुबहुशः शलभा इव पावकम् ॥ २१ ॥ ततस्तेषां शरीरैश्च शरीरावयवैश्च सः । सन्तस्तार क्षितिं क्षिप्रं कुशैर्वेदीमिवाध्वरे ॥ २२ ॥ बद्धगोधांगुलित्राणान् सशरासनसायकान् । सासिचर्मांकुशाभीषून् सतोमरपरश्वधान् ॥ २३ ॥ सगदायोगुडप्रासान् सर्ष्टितोमरपट्टिशान् । सभिन्दिपालपरिघान् सशक्तिवरकम्पनान् ॥ २४ ॥ सप्रतोदमहाशंखान् सकुन्तान् सकचग्रहान् । समुद्गरक्षेपणीयान् सपाशपरिघोपलान् ॥ २५ ॥ सकेयूराङ्गदान् बाहून् हृद्यगन्धानुलेपनान् । संचिच्छेदार्जुनिर्वृत्तां त्वदीयानां सहस्रशः ॥ २६ ॥ तैः स्फुरद्भिर्महाराज शुशुभे भूः सुलोहितैः । पञ्चास्यैः पन्नगैश्छिन्नैर्गरुडेनेव मारिष ॥ २७ ॥ सुनासाननकेशान्तैरव्रणैश्चारुकुण्डलैः । सन्दष्टौ-

---

भेदी बाण मारकर उनको बींधडाला ॥ २० ॥ तेजकियेहुए नाना प्रकारके लक्षणोंवाले बाणोंसे घायलहुए बहुतसे योधा विवश होकर जैसे पतङ्ग अग्निमें गिरते हैं, तैसे ही भूमिमें गिरनेलगे २१ अभिमन्युने थोडी ही देरमें योधाओंके शरीर और शरीरके अङ्गों से पृथ्वीको इसप्रकार ढकदिया जैसे यज्ञमें वेदीको कुशोंसे ढक देते हैं ॥ २२ ॥ चमड़ेके दस्तानेवाले, धनुष, बाण, ढाल, तलवार अंकुश, भाथे, तोमर, फरसी, मुद्गर, गोफनी, फाँसे, परिघ, पत्थर, गदा, अयोगुड, प्रास, ऋष्टि, तोमर, पट्टिस, भिन्दिपाल और परिघ शक्ति, श्रेष्ठ कम्पन, चाबुक बड़े २ शंख, भाले, अंकुश, बाजूबन्द और पहुँची धारण करनेवाले हृदय पर यथारुचि चन्दनका लेप करनेवाले तुम्हारे सैंकडों योधाओंके हाथोंको अभिमन्युने फुरतीसे काटडाला ॥ २३-२६ ॥ हे राजन् ! लोहूलुहान हुए लाल २ इधर उधर लुढकती हजारों भुजाओंसे पृथ्वी ऐसी शोभा पारही थी जैसे पाँच मुखोंवाले सर्पोंको गरुडजीने काटकर फेंकदिया हो ॥ २७ ॥ अर्जुनके पुत्र अभिमन्युने शत्रु-

ष्टपुटैः क्रोधात् क्षरद्भिः शोणितं बहु ॥ २८ ॥ स चारुमुकटोष्णीषैर्मणिरत्नविभूषितैः । विनालनलिनाकारैर्दिवाकरशशिप्रभैः २९ हितप्रियंवदैः काले बहुभिः पुण्यगन्धिभिः । द्विषच्छिरोभिः पृथिवीं स वै तस्तार फाल्गुनिः ॥ ३० ॥ गन्धर्वनगराकारान् विधिवत् कल्पितान् रथान् । ईषामुखान् द्वित्रिवेणून् न्यस्तदण्डकबन्धुरान् ३१ विजंघाकूबरांस्तत्र विनेमिदशनानपि । विचक्रोपस्करोपस्थान् भग्नोपकरणानपि ॥ ३२ ॥ प्रपातितोपस्तरणान् हतयोधान् सहस्रशः । शरैर्विशकलीकुर्वन् दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ॥ ३३ ॥ पुनर्द्विपान् द्विपारोहान् वैजयन्त्यंकुशध्वजान् । तूणान् वर्माण्यथो कक्ष्या ग्रैवेयांश्च सकम्बलान् ॥ ३४ ॥ घण्टाः शुण्डा विषाणाग्रान् छत्रमालाः

ओंके मस्तकोंसे पृथिवीको ढकदिया वे मस्तक सुन्दर नाक मुख और केशोंवाले, घावरहित सुन्दर कुण्डलोंसे शोभायमान दाँतोंसे क्रोधसे ओठोंको काटतेहुए मुखोंसे रक्त ओकनेवाले, सुन्दर मुकुट और पगड़ी धारण किये, मणि और रत्नोंसे विभूषित, डंडीरहित कमलोंकी समान, सूर्य और चन्द्रमाकी समान कान्तिवाले, हितकारी और प्यारी बातें कहनेवाले और श्रेष्ठ सुगन्धयुक्त थे ॥ २८–३० ॥ अभिमन्युने गन्धर्वनगरोंकी समान आकारवाले, शास्त्रानुसार बनायेहुए जुएके अग्रभागरूप मुखवाले, दो या तीन बाँसोंवाले, टेकनी पर टिकेहुए सैकड़ों रथोंको तोडडाला उन रथोंकी जंघा और कूबर टूटे पड़े थे(नेमि)पहियोंकी धार-रूप दाँत टूटे पड़े थे, पहिये दूसरे अवयव छज्जे तथा अन्यभाग टूट गए, गद्दियें फटगईं, और उनमें बैठनेवाले हजारों योधा मरगए थे उस समय बाणोंका प्रहार करता हुआ अभिमन्यु सब दिशाओंमें समायाहुआ सा दीखता था ॥ ३१–३२ ॥ अभिमन्युने फिर शत्रुके हाथीवान् अंकुश वैजयन्ती माला, ध्वजा, भाथे, कवच हाथियोंकी कमरपेटी, गलेके बन्धन, झूलें, घण्टे, सूँड दाँतोंके

पदानुगान् । शरैर्निशितधाराग्रैः शात्रवाणामशातयत् ॥ ३५ ॥ वनायुजान् पार्वतीयान् काम्बोजानथ बाह्लिकान् । स्थिरवालधिकर्णाक्षान् जवनान् साधुवाहिनः ॥ ३६ ॥ आरूढान् शिक्षितैर्योधैः शक्त्यृष्टिप्रासयोधिभः । विध्वस्तचामरमुखान विप्रविद्धप्रकीर्णकान् ॥ ३७ ॥ निरस्तजिह्वानयनान् निष्कीर्णान्त्रयकृद्घनान् । हतारोहांश्छिन्नघण्टान् क्रव्यादगणमोदकान् ॥३८॥ निकृत्तचर्मकवचान् शकृन्मूत्रासृगाप्लुतान् । निपातयन्नश्ववरांस्तावकान् स व्यरोचत ॥३९॥ एको विष्णुरिवाचिन्त्यं कृत्वा कर्म सुदुष्करम् । तथा निर्मथितं तेन त्र्यंगं तव बलं महत् ॥ ४० ॥ यथासुरबलं

अग्रभाग, छत्री, माला और पीछे चलनेवाले पुरुषोंको धारवाले तेज बाणोंसे काटडाला ॥ ३४-३५ ॥ वनायु, वनवासी, पर्वती, कम्बोज और बाल्हीक देशमें उत्पन्न हुए, सुन्दर अयालवाले और नेत्र तथा कानोंवाले, शीघ्रगामी अच्छी सवारी देनेवाले और जिनके ऊपर शक्ति, ऋष्टि तथा तोमरोंसे युद्ध करनेवाले चतुर योधा सवार थे तुम्हारे ऐसे घोडोंको भी अभिमन्युने काटडाला और अभिमन्युने कितने ही घोडोंकी ग्रीवाके बाल और मुखोंको काटडाला, कितने ही घोडोंके शरीरके अवयव जिह्वा तथा नेत्रोंको काटडाला, कितने ही घोडोंके शरीरोंमेंसे बाणोंके प्रहारसे आँते और जिगर निकल पड़े बहुतोंके सवार मारेगए तथा बहुतोंके कण्ठोंमेंके घुँघुरू कटगए इसप्रकार घोडोंके नाशसे मांसाहारी पक्षी और राक्षसोंको बडा हर्ष हुआ था, अभिमन्युने तुम्हारे घोडोंके चमड़ेके कवचोंको काटडाला उस समय बहुतसे घोड़े भयके मारे लीद कर रहे बहुतसे मूत रहे बहुतेरे रक्तमें न्हागये इसप्रकार अभिमन्यु बीच सेनामें घोडोंका संहार करता हुआ बडी शोभा पारहा था ॥ ३६-३९ ॥ हे राजन् ! अकेले अभिमन्युने विष्णुकी समान अचिन्तनीय और भयानक पराक्रम किया था

घोरं त्र्यम्बकेन महौजसा कृत्वा कर्म रणेऽसह्यं परैरार्जुनिराहवे ॥ ४१ ॥ अभिनच्च पदात्योघांस्त्वदीयानेव सर्वशः । एवमेकेन तां सेनां सौभद्रेण शितैः शरैः ॥ ४२ ॥ भृशं विप्रहतां दृष्ट्वा स्कन्देनेवासुरीं चमूम् । त्वदीयास्तव पुत्राश्च वीक्षमाणा दिशो दश ॥ ४३ ॥ संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना रोमहर्षिणः । पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ४४ ॥ गोत्रनामभिरन्योन्यं क्रन्दन्तो जीवितैषिणः । हतान् पुत्रान् पितॄन् भ्रातॄन् बन्धून् सम्बन्धिनस्तथा ॥ ४५ ॥ प्रातिष्ठन्त समुत्सृज्य त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
अभिमन्युपराक्रमे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सञ्जय उवाच । तां प्रभग्नां चमूं दृष्ट्वा सौभद्रेणामितौजसा ।

और असुरोंकी भयानक सेनाका नाश किया था तैसे ही अभिमन्युने भी तुम्हारी तीन अङ्गवाली सेनाका संहार करडाला और शत्रुओंसे सहा न जाय ऐसा महापराक्रम दिखाया जैसे स्वामी कातिकेयने असुरोंकी सेनाका नाश करडाला था तैसे ही अकेले ही अभिमन्युने तेज बाणोंसे पैदलोंका नाश करडाला यह देख कर तुम्हारे योधा और पुत्र दशों दिशाओंमेंको झाँकनेलगे उनके मुख सूखगए, आँखें डगमगागईं पसीना आगया, रोंगटे खड़े होगए और शत्रुओंको जीतनेमें उत्साहहीन हो भागना चाहनेलगे जीते रहनेकी इच्छासे वे मरेहुए पुत्र, पिता, भाई, बन्धु और सम्बन्धियोंको छोड, अपने नाम तथा गोत्र कह २ कर दूसरोंको भी बुलातेहुए, शीघ्रतासे घोड़े और हाथियोंको हाँक २ कर रणमेंसे भाग गए॥४०-४६॥ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६॥

सञ्जयने कहा, कि परम पराक्रमी अभिमन्युसे सेनाको तित्तर बित्तर हुई देखकर दुर्योधनको बड़ा क्रोध आया अतः वह स्वयं

दुर्योधनो भृशं क्रुद्धः स्वयं सौभद्रमभ्ययात् ॥ १ ॥ ततो राजानमावृत्तं सौभद्रं प्रति संयुगे । दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद्योधान् परीप्सध्वं नराधिपम् ॥ २ ॥ पुराभिमन्युर्लक्ष्यं नः पश्यतां हन्ति वीर्यवान् । तमाद्रवत मा भैष्ट क्षिप्रं रक्षत कौरवम् ॥ ३ ॥ ततः कृतज्ञाः वलिनः सुहृदो जितकाशिनः । त्रास्यमाना भयाद्वीरं परिवव्रुस्तवात्मजम् ४ द्रोणो द्रौणिः कृपः कर्णः कृतवर्मा च सौवलः । वृहद्वलो मद्रराजो भूरिर्भूरिश्रवा शलः ५ पौरवो वृषसेनश्च विसृजन्तः शराञ्छितान् । सौभद्रं शरवर्षेण महता समवाकिरन् ॥ ६ ॥ सम्मोहयित्वा तमथ दुर्योधनममोचयन् । आस्याद् ग्रासमिवाक्षिप्तं ममृषे नार्जुनात्मजः ॥ ७ ॥ तान् शरौघेण महता साश्वसूतान्महारथान् । विमुखीकृत्य सौभद्रः सिंहनादमथानदत् ॥ ८ ॥ तस्य नादं ततः श्रुत्वा सिंहस्येवामिषैषिणः ।

ही अभिमन्युके सामनेको जापहुँचा ॥ १ ॥ इस युद्धमें दुर्योधनको सुभद्रानन्दनकी ओरको बढ़ता हुआ देखकर द्रोणाचार्यने योधाओंसे कहा कि–तुम दुर्योधनकी रक्षा करो ॥ २ ॥ क्योंकि–वली अभिमन्यु हमारे देखते हुए पहले ही लक्ष्य वनाकर योधाओंका नाश कररहा है इसलिये दुर्योधनके पीछे २ जाकर झट उसकी रक्षा करो और डरना मत ॥ ३ ॥ यह सुनकर कृतज्ञ वली और विजय पानेवाले संवन्धी तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी भयसे रक्षा करनेके लिये उसके चारों ओर होलिये ॥ ४ ॥ इतनेमें ही द्रोण अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, सुवलपुत्र, कृतवर्मा, वृहद्वल, मद्रराज, भूरिश्रवा, पौरव, शल, वृषसेन ये अभिमन्युके ऊपर वाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ५–६ ॥ उन सवोंने इसप्रकार अभिमन्युको गडवडीमें डालकर दुर्योधनको वचालिया, मुखमेंसे निकाले हुए ग्रासकी समान दुर्योधनका छूटना अभिमन्युसे सहा नहीं गया ॥ ७ ॥ उसने वडीभारी वाणवर्षा कर सारथी और घोड़ों सहित उन महारथियोंको भगाकर सिंहनाद किया ॥ ८ ॥ मांस

नामृष्यंत सुसंरब्धाः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥९॥ त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष । व्यसृजन्निषुजालानि नानालिङ्गानि सर्वशः ॥१० तान्यन्तरिक्षे चिच्छेद पौत्रस्ते निशितैः शरैः । तांश्चैव प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाभवत् ॥११॥ ततस्ते कोपितास्तेन शरैराशीविषोपमैः । परिवव्रुर्जिघांसन्तः सौभद्रमपराजितम् ॥१२॥ समुद्रमिव पर्यस्तं त्वदीयं तं बलार्णवम् । दधारैकोऽर्जुनिर्बाणैर्वेलेव भरतर्षभ १३ शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् । अभिमन्योः परेषाञ्च नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः ॥ १४ ॥ तस्मिंस्तु घोरे संग्रामे वर्त्तमाने भयङ्करे । दुःसहो नवभिर्बाणैरभिमन्युमविध्यत ॥ १५ ॥ दुःशासनो द्वादशभिः कृपः शारद्वतस्त्रिभिः । द्रोणस्तु सप्तदशभिः शरैराशीविषोपमैः ॥ १६ ॥ विविंशतिस्तु सप्तत्या कृतवर्मा च

चाहनेवाले सिंहकी समान अभिमन्युके नादको द्रोण आदि सह न सके और वे क्रोधमें भरगए ॥९॥ हे राजन् ! वे उसको रथों से चारों ओरसे घेरकर अनेकों प्रकारके चिन्होंवाले बाणोंके जालोंको उसके ऊपर छोडनेलगे ॥ १० ॥ परन्तु तुम्हारे पौत्र अभिमन्युने तेज शस्त्रोंके प्रहारसे उस बाण-जालके टुकड़े २ करके उन महारथियों को भी घायल करदिया यह एक अद्भुतसा काम हुआ ॥ ११ ॥ अभिमन्युके सर्पोंकी समान बाणोंके प्रहारोंसे कोपमें भरेहुए उन महारथियोंने अभिमन्युको मारनेकी इच्छासे चारों ओरसे घेरलिया ॥ १२ ॥ हे भरतर्षभ ! उस समय तुम्हारी सेना समुद्रकी समान उफन पड़ी उसको अभिमन्युने बाणोंके द्वारा किनारेकी समान रोकदिया ॥ १३ ॥ एक दूसरेका वध करते हुए वीर योधा और अभिमन्यु इनमेंसे किसी ने भी पीछेको पैर नहीं रक्खा ॥ १४ ॥ उस भयानक घोर संग्रामके समय दुःसहने अभिमन्युके नौ बाण मारे ॥ १५ ॥ दुःशासनने बारह, कृपाचार्यने तीन, द्रोणने सर्पोंकी समान सत्रह बाण अभिमन्युके मारे ॥१६ ॥ और विविंशतिने सत्तर, कृतवर्मा

सप्तभिः । बृहद्बलस्तथाष्टाभिरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥ १७ ॥ भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्मद्रेशः षड्भिराशुगैः । द्वाभ्यां शराभ्यां शकुनिस्त्रिभिर्दुर्योधनो नृपः ॥ १८ ॥ स तु तान् प्रतिविव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः । नृत्यन्निव महाराज चापहस्तः प्रतापवान् ॥१९॥ ततोऽभिमन्युः संक्रुद्धस्त्रास्यमानस्तवात्मजैः । विदर्शयन् वै सुमहच्छिक्षौरसकृतं बलम् ॥ २० ॥ गरुडानिलरंहोभिर्यन्तुर्वाक्यकरैर्हयैः । दान्तैरश्मकदायादस्त्वरमाणो ह्यवारयत् ॥ २१ ॥ विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् । तस्याभिमन्युर्दशभिर्हयान् सूतं ध्वजं शरैः ॥ २२ ॥ बाहू धनुः शिरश्चोर्व्यां स्मयमानोभ्यपातयत् । ततस्तस्मिन् हते वीरे सौभद्रेणाश्मकेश्वरे॥२३॥सञ्चचाल

ने सात, बृहद्बलने आठ और अश्वत्थामाने सात बाण मारे १७ भूरिश्रवाने तीन, शल्यने शीघ्र जानेवाले छः, शकुनिने दो और राजा दुर्योधनने अभिमन्युके तीन बाण मारे ॥ १८ ॥ परन्तु हे महाराज ! प्रतापी अभिमन्युने हाथमें धनुष लेकर जैसे नाचरहा हो इसप्रकार घूम घूम कर उन सब बाणोंको सीधे जानेवाले तीन तीन बाणोंसे काटडाला ॥ १९ ॥ तथापि तुम्हारे पुत्र उसको भय दिखारहे थे, इस कारण क्रोधमें भरेहुए अभिमन्युने उनको अपनी बड़ीभारी अस्त्रशिक्षाका बल दिखाना आरंभ करदिया २० अश्मक देशका राजा सारथिके कहनेमें चलनेवाले, गरुड़ और वायुकी समान वेगवाले तथा चतुर घोड़ोंको हाँक कर शीघ्रतासे अभिमन्युके समीपमें आया और उसको रोकनेके लिये दश बाण मारकर अभिमन्युसे कहनेलगा, कि–अरे ! खड़ा रह !! खड़ा रह !!! परन्तु अभिमन्युने हँसते२ दश बाणोंसे उसके घोड़े, सारथी, ध्वजा, दोनों भुजाओं, धनुष और शिरको भूमिमें गिरादिया, उस वीर अश्मक राजाके अभिमन्युके हाथसे मारेजाने पर सब सेना विचलित होकर भागनेको उद्यत होगई । इतनेमें ही कर्ण,

बलं सर्वं पलायनपरायणम् । ततः कर्णः कृपो द्रोणो द्रौणिर्गान्धारराट् शलः ॥ २४ ॥ शल्यो भूरिश्रवाः क्राथः सोमदत्तो विविंशतिः । वृषसेनः सुषेणश्च कुण्डभेदी प्रतर्दनः ॥ २५ ॥ वृन्दारको ललित्थश्च प्रबाहुर्दीर्घलोचनः । दुर्योधनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥२६॥ सोतिविद्धो महेष्वासैरभिमन्युरजिह्मगैः । शरमादत्त कर्णाय वर्मकायावभेदिनम् ॥२७॥ तस्य भित्वा तनुत्राणं देहं निर्भिद्य चाशुगः । प्राविशद्धरणीं वेगाद् वल्मीकमिव पन्नगः॥२८ स तेनातिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव । सञ्चचाल रणे कर्णः क्षितिकम्पे यथाचलः ॥ २९ ॥ तथान्यैर्निशितैर्बाणैः सुषेणं दीर्घलोचनम् । कुण्डभेदिञ्च संक्रुद्धस्त्रिभिस्त्रीनवधीद्बली ॥ ३० ॥ कर्णस्तं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् । अश्वत्थामा च विंशत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ३१ स शराचितसर्वाङ्गः क्रुद्धः शक्रात्म-

---

कृप, द्रोण, अश्वत्थामा, शकुनि, शल, शल्य, भूरिश्रवा, क्राथ, सोमदत्त, विविंशति, वृषसेन, सुषेण, कुण्डभेदी, प्रतर्दन, वृन्दारक, ललित्थ, प्रबाहु, दीर्घलोचन और दुर्योधन क्रोधमें भरकर अभिमन्युके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ २१–२६ ॥ उन महाधनुषधारियोंके छोड़ेहुए सीधे जानेवाले उन बाणोंसे अभिमन्यु बहुतही बिंधगया परन्तु उसने कवच और शरीरको फोड़नेवाला बाण कर्णके मारा ॥ १७ ॥ वह बाण सर्पके बिलमें घुसनेकी समान कर्णके कवच और शरीरको फोड़कर बड़े वेगसे पृथ्वीमें घुसगया ॥ २८ ॥ उस महाप्रहारके कारण कर्णको बड़ी पीड़ा हुई और भूकम्पके समय पृथ्वीके डगमगानेकी समान वह रणभूमिमें काँपउठा ॥ २९ ॥ कर्णके बाण मारा तैसे ही बलवान् अभिमन्युने क्रोधमें भरकर तीन बाणोंसे सुषेण, दीर्घलोचन और कुण्डभेदीको घायल करदिया ॥ ३० ॥ कर्णने पच्चीस, अश्वत्थामाने बीस और कृतवर्माने सात नाराच बाण अभिमन्युके

जात्मजः । विचरन् ददृशे सैन्ये पाशहस्त इवान्तकः ॥ ३२ ॥ शल्यश्च शरवर्षेण समीपस्थमवाकिरत् । उदक्रोशन्महावाहुस्तव सैन्यानि भीषयन् ॥ ३३ ॥ ततः स विद्धोऽस्त्रविदा मर्मभिद्भिरजिह्मगैः । शल्यो राजन् रथोपस्थे निषसाद मुमोह च ॥ ३४ ॥ तं हि दृष्ट्वा तथा विद्धं सौभद्रेण यशस्विना । सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३५॥ संप्रेक्ष्य तं महावाहुं रुक्मपुङ्खैः समावृतम् । त्वदीयाः प्रपलायन्ते मृगाः सिंहार्दिता इव ॥३६॥ स तु रणयशसाभिपूज्यमानः पितृसुरचारणसिद्धयक्षसंघैः । अवनितलगतैश्च भूतसंघैरतिविबभौ हुतभुग्यथाज्यसिक्तः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
अभिमन्युपराक्रमे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

मारे ॥ ३१ ॥ रणमें घूमता हुआ वाणोंसे छिदे हुए सकल अङ्गोंवाला, इन्द्रके पुत्रका पुत्र, (अभिमन्यु) क्रोधमें भराहुआ पाशधारी यमकी समान दिखाई देरहा था ॥ ३२ ॥ महावाहु अभिमन्युने पासमें खड़ेहुए शल्यको वाण वरसा कर छादिया और तुम्हारी सेनाको डरानेके लिये वड़ी गर्जना की ॥ ३३ ॥ अस्त्रवेत्ता अभिमन्युके सीधे जानेवाले वाणोंसे भिदाहुआ शल्य रथका दण्डा पकड़कर वैठगया और मूर्छित होगया ॥ ३४ ॥ यशस्वी अभिमन्युने इसप्रकार वाणोंके प्रहारसे शल्यको मूर्छित करदिया, यह देखकर द्रोणाचार्यके देखते हुए ही सव सेना भागनेलगी ॥३५॥ सुवर्णकी पूँछोंवाले वाणोंसे शल्य विंधगया तव सिंहके सतायेहुए मृगोंकी समान कौरवसेना रणमेंसे भागने लगी ॥ ३६ ॥ इस समय पितर, देवता, चारण, सिद्ध, यक्ष तथा पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्य अभिमन्युके पराक्रमका गान करके उसकी पूजा करनेलगे और अग्निमें घी डालनेसे जैसी अग्नि प्रदीप्त होती है तैसे ही अभिमन्यु भी इससे अधिक शोभा पाने लगा ॥ ३७ ॥ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तथा प्रमथमानं तं महेष्वासानजिह्मगैः । आर्जुनिं मामकाः संख्ये के त्वेनं समवारयन् ॥१॥ सञ्जय उवाच । शृणु राजन् कुमारस्य रणे विक्रीडितं महत् । बिभित्सतो रथानीकं भारद्वाजेन रक्षितम् ॥२॥ मद्रेशं सादितं दृष्ट्वा सौभद्रेणाशुगै रणे । शल्यादवरजः क्रुद्धः किरन् बाणान् समभ्ययात् ॥३॥ स विध्वा दशभिर्बाणैः साश्वयंतारमार्जुनिम् । उदक्रोशन्महाशब्दं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ४ ॥ तस्यार्जुनिः शिरोग्रीवं पाणिपादं धनुर्हयान् । छत्रं ध्वजं नियन्तारं त्रिवेणुं तल्पमेव च ॥ ५ ॥ चक्रं युगं च तूणीरं ह्यनुकर्षञ्च सायकैः । पताकां चक्रगोप्तारौ सर्वोपकरणानि च ॥ ६ ॥ लघुहस्तः प्रचिच्छेद ददृशे तं न कश्चन स पपात क्षितौ क्षीणः प्रविद्धाभरणाम्बरः॥७॥ वायुनेव महाशैलः

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे सञ्जय ! इसप्रकार महाधनुषधारियों का सीधे जानेवाले बाणोंसे अभिमन्यु नाश करनेलगा, उस समय उसको रणभूमिमें कौरवोंमेंसे किस२ने रोका था ? ॥ १ ॥ सञ्जय ने कहा, कि–हे राजन् ! द्रोणाचार्य जिस रथसेनाकी रक्षा कररहे थे उस सेनाको नष्ट करनेके लिये कुमार अभिमन्युके कियेहुए पराक्रमको सुनो ॥ २ ॥ जब शल्यके छोटे भाईने सुना, कि–मेरे बड़े भाईको अभिमन्युने बाण मारकर अशक्त करदिया है, तब वह तुरन्त क्रोधमें भर बाणोंको बरसाताहुआ अभिमन्युके ऊपर चढ़आया ॥ ३ ॥ वह दश बाणोंसे अभिमन्युको सारथि और घोड़ों सहित बींधकर बडीभारी गर्जना करके कहनेलगा, कि–अरे ओ अभिमन्यु ! खडा रह, यह सुनकर फुर्तीले हाथवाले अभिमन्यु ने बाणोंसे शल्यके भाईका शिर, गला, हाथ, पैर, धनुष, घोड़े, छत्र, ध्वजा, सारथी, जुआ, बैठक, पहिये, धुरी, माथा, धनुष, प्रत्यञ्चा, बाण, ध्वजा, पहियोंके रक्षक और रथमेंकी सबप्रकार की सामग्रीको ऐसी सफाईसे काटडाला कि–उसको ऐसा करते

सम्भग्नोपिततेजसा । अनुगास्तस्य वित्रस्ताः प्राद्रवन् सर्वतो दिशः ॥ ८ ॥ आर्ज्जुनेः कर्म तद् दृष्ट्वा सम्पणेदुः समन्ततः । नादेन सर्वभूतानि साधु साध्विति भारत ॥ ९ ॥ शल्यभ्रातर्य्यथारुग्णे वहुशस्तस्य सैनिकाः । कुलाधिवासनामानि श्रावयन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ १० ॥ अभ्यधावन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः । रथैरश्वैर्गजैश्चान्ये पद्भिश्चान्ये वलोत्कटाः ॥ ११ ॥ वाणशब्देन महता रथनेमिस्वनेन च । हुङ्कारैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टैः सिंहनादैः सगर्जितैः ॥ १२ ॥ ज्यातलत्रस्वनैरन्ये गर्जन्तोऽर्जुननन्दनम् । ब्रुवन्तश्च न नो जीवन्मोक्ष्यसे जीवितादिति ॥ १३ ॥ तांस्तथा ब्रुवतो दृष्ट्वा सौभद्रः प्रहसन्निव । यो योऽस्मै प्राहरत् पूर्वं तं तं विव्याध पत्रिभिः ॥ १४ ॥ संदर्शयिष्यन्नस्त्राणि विचित्राणि

हुए कोई देखही नहीं सका, तदनन्तर महातेजस्वी अभिमन्युके द्वारा क्षीण होकर वह भूमिपर इसप्रकार गिरा, कि-जैसे वायुसे पर्वत टूटकर गिरपडता है, तव उसके अनुचर डरकर दशों दिशाओंमेंको भागगये ॥ ५-८ ॥ हे भारत ! अभिमन्युके ऐसे अद्भुत कर्मको देखकर सब ओरके मनुष्य साधुसाधु(शावास२)की गर्जना करनेलगे ॥ ९ ॥ जव शल्यका भाई मरगया तव उसकी सेनाके वहुतसे योधा क्रोधमें भरगए, वे हाथोंमें नानाप्रकारके आयुध ले रथ, हाथी और घोड़ोंपर वैठकर अपने कुल, नाम तथा निवासस्थानोंको सुनातेहुए अभिमन्युके सामने आकर खड़े होगए इनमें वहुतसे योधा पैदलही दौडकर आये थे, और वहुतसे वाणोंका वडाभारी शब्द करते, रथके पहियोंकी गड़गड़ाहट करते हुए हुम् २ करते, सिंहनाद करते, चीखते. प्रत्यञ्चा तथा तालियें वजातेहुए अभिमन्युके ऊपर चढआये और कहनेलगे, कि-अव वच्चा जीते जागते नहीं वचोगे ॥ १०-१३ ॥ अभिमन्यु उन योधाओंके वचन सुनकर हँसा और जिन्होंने इसके ऊपर

लघूनि च । आर्जुनिः समरे शूरो मृदुपूर्वमयुध्यत ॥१५॥ वासुदेवादुपात्तं यदस्त्रं यच्च धनञ्जयात् । अदर्शयत तत् कार्ष्णिः कृष्णाभ्यामविशेषवत् ॥१६॥ दूरमस्य गुरुं भारं साध्वसञ्च पुनः पुनः । सन्दधद्विसृजंश्चेषून् निर्विशेषमदृश्यत ॥१७॥ चापमण्डलमेवास्य विस्फुरद्दिक्ष्वदृश्यत । सुदीप्तस्य शरत्काले सवितुर्मण्डलं यथा १८ ज्याशब्दः शुश्रुवे तस्य तलशब्दश्च दारुणः । महाशनिमुचः काले पयोदस्येव निस्वनः ॥१९॥ ह्रीमानमर्षी सौभद्रो मानकृत् प्रियदर्शनः । सम्मिमानयिषुर्वीरानिष्वस्त्रैश्चाप्ययुध्यत॥२०॥मृदुर्भूत्वा महाराज दारुणः समपद्यत । वर्षाभ्यतीतो भगवान् शरदीव दिवाकरः ॥ २१ ॥ शरान् विचित्रान् सुबहून् रुक्मपुंखान् शिला-

प्रहार किया था उसको इसने वाणोंसे वींधडाला ॥ १४ ॥ और नानाप्रकारके शस्त्र छोडकर अपनी फुरती दिखानेके लिये आरम्भमें सुकुमारतासे लडनेलगा ॥ १५ ॥ उसने श्रीकृष्ण और अर्जुनसे जिन२ अस्त्रोंको पाया था उन अस्त्रोंका श्रीकृष्ण और अर्जुनकी समानही प्रयोग करके दिखाया ॥ १६ ॥ वड़ेभारी भार और भयको दूर करके अभिमन्यु कव वाणोंको चढाता है और कव छोडता है यह मालूमही नहीं होता था ॥ १७ ॥ जैसे शरद् ऋतुमें अत्यन्त प्रकाशवान् सूर्य दिशाओंमें घूमताहुआ दीखता है, तैसेही अभिमन्युका धनुषमण्डल भी दिशाओंमें घूमताहुआ दीखता था ॥ १८ ॥ अभिमन्युके धनुषकी टङ्कार और हथेलियों का दारुण शब्द वर्षाऋतुमें वज्रपात करनेवाले मेघकी गर्जनाकी समान सुनाई पड़ता था ॥ १९ ॥ लज्जावान्, क्रोधी, अभिमानी, देखनेवालोंके मनको लुभाने वाला और दर्शनीय अभिमन्यु वीरों को नमानेके लिये धनुष और वाणोंसे युद्ध कररहा था ॥ २० ॥ जैसे वर्षाऋतुके वीतजाने पर शरत्कालमें सूर्यनारायण प्रचण्ड होजाते हैं तैसेही अभिमन्युभी पहिले सुकुमार वनकर पीछेसे वड़ा

शितान् । मुमोच शतशः क्रुद्धो गभस्तीनिव भास्करः ॥ २२ ॥ क्षुरप्रैर्वत्सदन्तैश्च विपाठैश्च महायशाः । नाराचैरर्द्धचन्द्राभैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ॥ २३ ॥ अवाकिरद्रथानीकं भारद्वाजस्य पश्यतः ततस्तत्सैन्यमभवद्विमुखं शरपीडितम् ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । द्वैधी भवति मे चित्तं भिया तुष्ट्या च सञ्जय । मम पुत्रस्य यत्सैन्यं सौभद्रः समवारयत् ॥ १ ॥ विस्तरेणैव मे शंस सर्वं गावल्गणे पुनः । विक्रीडितं कुमारस्य स्कन्दस्येवासुरैः सह ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि विमर्दमतिदारुणं । एकस्य च बहूनाञ्च यथासीत्तुमुलो रणः ॥३॥ अभिमन्युः कृतोत्साहः कृतोत्साहानरिन्दमान् । रथस्थो रथिनः सर्वा-

दारुण होगया ॥ २१ ॥ पत्थरों पर तेज कियेहुए, सुनहरी पूँछ वाले बहुतसे विचित्र बाणोंको छोडता हुआ अभिमन्यु लोकोंपर किरणें डालनेवाले सूर्यनारायणसा प्रतीत होता था ॥ २२ ॥ उस महायशस्वी अभिमन्युने द्रोणके सामनेही उनकी रथसेना पर क्षुरप्र वत्सदन्त, विपाठ, नाराच, अर्धचन्द्राकार, भाले और अञ्जलिक नामके अनेकों बाण मारे, उन बाणोंके प्रहारसे रथसेना रणभूमिमेंसे भागगई ॥ २३-२४ ॥अड़तीसवाँ अध्या समाप्त ३८

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय ! सुभद्रानन्दनने हमारी सेना को रणमें भगादिया, इससे मेरा चित्त भय और सन्तोषसे दोलयमान होता है ॥ १ ॥ अतः हे सञ्जय! जैसे कार्त्तिकेयने असुरों के साथ युद्ध किया था, तैसेही अभिमन्युने जो कौरवोंके साथ पराक्रम दिखाया था उसको मुझै विस्तारसे सुना ॥२॥ सञ्जय ने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! जिसप्रकार अकेले अभिमन्युका बहुतों के साथ तुमुल युद्ध हुआ उस दारुण संग्रामको मैं कहता हूँ ।३।

स्तावकानभ्यवर्षयत् ॥४॥ द्रोणं कर्णं कृपं शल्यं द्रौणिं भोजं बृहद्बलं । दुर्योधनं सौमदत्तिं शकुनिञ्च महाबलम् ॥ ५ ॥ नानानृपान् नृपसुतान् सैन्यानि विविधानि च । अलातचक्रवत् सर्वांश्चरन् बाणैः समार्पयत् ॥६॥ निघ्नन्नमित्रान् सौभद्रः परमास्त्रैः प्रतापवान् । अदर्शयत तेजस्वी दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ७ ॥ तद्दृष्ट्वा चरितं तस्य सौभद्रस्यामितौजसः । समकम्पन्त सैन्यानि त्वदीयानि सहस्रशः ॥८॥ अथाब्रवीन्महाप्राज्ञो भारद्वाजः प्रतापवान् । हर्षेणोत्फुल्लनयनः कृपमाभाष्य सत्वरम् ॥ ९ ॥ घट्टयन्निव मर्माणि पुत्रस्य तव भारत । अभिमन्युं रणे दृष्ट्वा तदा रणविशारदम् ॥१०॥ एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा नन्दयन् सुहृदः सर्वान् राजानञ्च युधिष्ठिरं ॥११॥ नकुलं सहदेवञ्च भीमसेनञ्च पाण्डवम् । बंधून् सम्बन्धिनश्चान्यान्मध्यस्थान्

रथमें बैठेहुए उत्साही अभिमन्युने तुम्हारी ओरके रथमें बैठेहुए उत्साही योधाओंके ऊपर बाणवर्षा करना आरम्भ करदी ॥४॥ अभिमन्युने बरेंटीकी समान घूमकर द्रोण, कृप, कर्ण, शल्य, अश्वत्थामा, भोज, बृहद्बल, दुर्योधन, सौमदत्ति, महाबली शकुनि तथा और भी राजे राजकुमार तथा सेनाओंके ऊपर बाण बरसाये।५।६।हे भारत ! उस समय प्रतापी तेजस्वी अभिमन्यु दिव्य अस्त्रोंसे शत्रुओंको मारताहुआ चारों दिशाओंमें दीखता था ७ अमितपराक्रमी सुभद्रानन्दनके ऐसे चरितको देखकर तुम्हारे सहस्रों सेनादल काँपउठे ॥ ८ ॥ हे भारत ! प्रतापी और परमबुद्धिमान् द्रोणाचार्यके नेत्र रण-विशारद अभिमन्युको देखकर खिलगए और वे तुरत कृपाचार्यसे दुर्योधनके मर्मभागोंको काटते हुएसे कहनेलगे, कि-पाडवोंका प्रसिद्ध तरुण कुमार अभिमन्यु अपने सब मित्र राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, भीमसेन, सब बन्धुबान्धव और दूसरे मध्यस्थ मित्रोंको आनन्द देता हुआ हमारी

सुहृदस्तथा १२ नास्य युद्धे समं मन्ये कश्चिदन्यं धनुर्द्धरं। इच्छन् हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति ॥ १३ ॥ द्रोणस्य प्रीतिसंयुक्तं श्रुत्वा वाक्यं तवात्मजः। आर्जुनिं प्रति संक्रुद्धो द्रोणं दृष्ट्वा स्मयन्निव ॥ १४ ॥ अथ दुर्योधनः कर्णमब्रवीद्बाह्लिकं नृपः। दुःशासनं मद्रराजं तांस्तथान्यान्महारथान् १५ सर्वमूर्द्धाभिषिक्तानामाचार्यो ब्रह्मवित्तमः। अर्जुनस्य सुतं मूढं नायं हन्तुमिहेच्छति १६ न ह्यस्य समरे युध्येदन्तकोप्याततायिनः। किमंग पुनरेवान्यो मर्त्यः सत्यं ब्रवीमि वः ॥१७॥ अर्जुनस्य सुतं त्वेष शिष्यत्वादभिरक्षति। शिष्याः पुत्राश्च दयितास्तदपत्यञ्च धर्मिणाम् ॥ १८ ॥ संरक्ष्यमाणो द्रोणेन मन्यते वीर्य्यमात्मनः। आत्म-

---

सेनापर चढ़ा चला आरहा है ॥ ९-१२ ॥ मेरी समुझसे युद्धमें इसकी समान और कोई धनुषधारी नहीं है यह चाहे तो इस सेनाका नाश कर डाले, परन्तु न जाने यह ऐसा क्यों नहीं करता है ? ॥ १३ ॥ तुम्हारा पुत्र द्रोणके ऐसे प्रीतिभरे वाक्यको सुनकर अभिमन्युके ऊपर अतीव क्रोधमें भरगया और द्रोणको देखकर आश्चर्यसे कहनेलगा ॥ १४ ॥ और उसने कर्ण, राजा वाल्हीक, मद्रराज तथा दूसरे भी महारथियोंसे कहा, कि-सब मूर्धाभिषिक्त राजाओंके आचार्य ये द्रोण अर्जुनके मूढ पुत्रको मारना नहीं चाहते ॥ १५-१६ ॥ और कहते हैं कि-यदि यह आततायी बन जाय तो काल भी युद्धमें इसके सामने नहीं ठहर सकता, फिर मनुष्यकी तो गणना ही क्या है ? यह मैं सत्य कहता हूँ, ॥ १७ ॥ परन्तु अभिमन्यु अर्जुनका पुत्र है और अर्जुन द्रोणाचार्यका शिष्य है अतः अभिमन्युको अपना शिष्य जानकर आचार्य उसकी रक्षा करते हैं, क्योंकि-धर्मात्माओंको अपने शिष्य, पुत्र और उनकी सन्तान पर स्नेह होता है ॥१८॥ इसलिये ही द्रोण इसकी रक्षा करते हैं परन्तु अहंभाव रखने

सम्भावितो मूढस्तं प्रमथ्नीत माचिरम् ॥१९॥ एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सात्वतीपुत्रमभ्ययुः । संरब्धास्ते जिघांसन्तो भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ २० ॥ दुःशासनस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनवचस्तदा । अब्रवीत् कुरुशार्दूलो दुर्योधनमिदं वचः ॥ २१ ॥ अहमेनं हनिष्यामि महाराज ब्रवीमि ते । मिषतां पांडुपुत्राणां पञ्चालानाञ्च पश्यतां२२ ग्रसिष्याम्यद्य सौभद्रं यथा राहुर्दिवाकरं । उत्क्रुश्य चाब्रवीद्वाक्यं कुरुराजमिदं पुनः ॥२३॥ श्रुत्वा कृष्णौ मया ग्रस्तं सौभद्रमतिमानिनौ । गमिष्यतः प्रेतलोकं जीवलोकान्न संशयः ॥२४॥ तौ च श्रुत्वा मृतौ व्यक्तं पांडोः क्षेत्रोद्भवाः सुताः । एकान्हा ससुहृद्वर्गाः क्लैब्याद्धास्यन्ति जीवितम् ॥ २५ ॥ तस्मादस्मिन् हते शत्रौ हताः सर्वेहितास्तव । शिवेन ध्याहि मां राजन्नेष हन्मि

वाला मूढ़ अभिमन्यु इसमें अपना पराक्रम मानता है, तुम इसका शीघ्र ही नाश करो ॥ १९ ॥ राजा दुर्योधनसे इसप्रकार आज्ञा पा वे योधा क्रोधमें भर शत्रुको मारनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यके देखते हुए ही, अभिमन्युके ऊपर जाचढ़े ॥ २० ॥ हे कुरुशार्दूल! दुर्योधनके वचनको सुनकर दुःशासनने दुर्योधनसे यह बात कही, कि ॥ २९ ॥ हे महाराज ! मैं आपसे यह कहता हूँ, कि—"सब पाञ्चाल और पाण्डवोंके देखते हुए ही मैं इस अभिमन्युको मार डालूँगा ॥ २२ ॥ मैं अभिमन्युको ऐसे निगल जाऊँगा जैसे राहु चन्द्रमाको निगल जाता है तथा उसने फिर भी चिल्ला कर कुरुराजसे यह कहा कि—॥ २३ ॥ अभिमन्युको मेरे हाथसे मरा हुआ सुनकर अर्जुन और श्रीकृष्ण निःसन्देह जीवलोकसे प्रेतलोकमें पहुँच (मर) जायँगे ॥२४॥ उन दोनोंको मराहुआ सुनकर पाण्डुके क्षेत्रज पुत्र भी अपने सगे संबंधियों सहित नपुंसकपनेसे मर जायँगे ॥ २५ ॥ इसलिये इस एक शत्रुके मारेजाने पर तुम अपने सब ही शत्रुओंको मरा समझना अतः हे भरत-

रिपूंस्तव ॥ २६ ॥ एवमुक्त्वानदद्राजन् पुत्रः दुःशासनस्तव ।
सौभद्रमभ्ययात् क्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन्॥२७॥ तमतिक्रुद्धमायान्तं
तव पुत्रमरिन्दम।अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैः षड्विंशत्या समार्पयत्२८
दुःशासनस्तु संक्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः । अयोधयत् सौभद्रमभिमन्युश्च
तं रणे ॥ २९ तौ मण्डलानि चित्राणि रथाभ्यां सव्यदक्षिणम्
। चरमाणावयुध्येतां रथशिक्षाविशारदौ ॥ ३० ॥ अथ
पणवमृदंगदुन्दुभीनां क्रकचमहानकभेरिझर्झराणाम् निनदमतिभृशं
नराः प्रचक्रुर्लवणजलोद्भवसिंहनादमिश्रम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुश्शाशनयुद्धे
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

सञ्जय उवाच । शरविक्षतगात्रस्तु प्रत्यमित्रमवस्थितम् ।अभिमन्युः

वंशी राजन्! तुम मेरे कल्याणकी कामना करो मैं अभी तुम्हारे
शत्रुओंको मारे डालताहूँ" ॥ २६ ॥ हे राजन्! तुम्हारा पुत्र
दुःशासन यह कहकर वड़ी जोरसे गरजा और क्रोधमें भरकर
वाण वरसाता हुआ अभिमन्युके ऊपर चढ गया ॥ २७ ॥ वड़े
क्रोधमें भरकर आते हुए दुःशासनके शत्रुनाशी अभिमन्युने
छब्बीस वाण मारे२८मद झरनेवाले हाथीकी समान दुःशासन
को भी क्रोध आगया और वह अभिमन्युसे लड़ने लगा तथा अभिमन्यु
उससे लड़ने लगा॥२९॥ रथशिक्षामें निपुण दुःशासन और
अभिमन्यु रथोंसे दाहिनी और वाईं ओर विचित्र घेरा वांधतेहुए
घूम २ कर लड़ने लगे ॥ ३० ॥ इस समय मनुष्य पणव, मृदङ्ग,
दुन्दुभि, क्रकच, नगाड़े, भेरी और झर्झरोंको वड़े वेगसे वजाने
लगे और वीच२में सिंहनाद भी करने लगे ॥३१॥ उनतालीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र! वाणोंसे घायल हुए शरीर
वाला वुद्धिमान् अभिमन्यु सामने खड़ेहुए शत्रु दुःशासनसे हँसते

स्मयन् भीमान् दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे मानिनं शूरमागतम्. निष्ठुरं त्यक्तधर्माणमाक्रोशनपरायणम् २ यत् सभायां त्वया राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः । कोपितः परुषैर्वाक्यैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥ जयोन्मत्तेन भीमश्च बह्वबद्धं प्रभाषितः । अक्षकूटं समाश्रित्य सौबलस्यात्मनो बलम् ॥ ४ ॥ तत्त्वयेदमनुप्राप्तं तस्य कोपान्महात्मनः । परवित्तापहारस्य क्रोधस्याप्रशमस्य च ॥ ५ ॥ लोभस्य ज्ञाननाशस्य द्रोहस्यात्याहितस्य च । पितॄणां मम राज्यस्य हरणस्योग्रधन्विनां । ६ ॥ तत्त्वयेदमनुप्राप्तं प्रकोपाद्वै महात्मनाम् । स तस्योग्रमधर्मस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ७ शासितास्म्यद्य ते बाणैः सर्वसैन्यस्य पश्यतः । अद्याहमनृणस्तस्य

हँसते कहनेलगा कि—॥ १ ॥ मानी, शूर, क्रूरकर्मा, क्षत्रियधर्मको त्यागनेवाले और निन्दापरायण तुझे आज मैं रणमें सामने खड़ा देखता हूँ, यह अच्छा हुआ ॥ २ ॥ तूने सभामें राजा धृतराष्ट्रके सुनते हुए कठोर वचन कह कर धर्मराजको कष्ट दिया था ॥ ३ ॥ इतना ही नहीं किन्तु शकुनिके कपटद्यूतके बलका आश्रय ले विजयसे उन्मत्त हो कर तूने भीमसेनसे भी बहुतसे असम्बद्ध वचन कहकर उनको भी कुपित कर दिया था ॥ ४ ॥ उन महात्माओंके कोपके कारण, दूसरेके धनको हरनेके कारण तथा क्रोध और अशान्तिके कारण तुझे यह फल मिला है कि—तू मेरे सामने मरनेके लिये लड़नेको आया है ॥ ५ ॥ लोभ, अज्ञान, द्रोह और साहसके कारण उग्र धनुषधारी मेरे बड़ोंके राज्यको फोकटमें ही हरलेनेके कारण तथा उन महात्माओंको कुपित करनेके कारण तुझे यह दिन देखना पड़ा है ! हे दुर्मते! आज तुझे ऐसे भयङ्कर अधर्मका भयानक फल अवश्य मिलेगा ॥ ६-७ ॥ सब सेनाके सामने मैं तुझे बाणोंके प्रहारसे फल-चखाऊँगा और आज अपने पिताके कोपके ऋणको चुका-

कोपस्य भविता रणे ॥ ८ ॥ अमर्षितायाः कृष्णायाः काङ्क्षितस्य च मे पितुः । अद्य कौरव्य भीमस्य भविताऽस्म्यनृणो युधि ९ न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे रणम् । एवमुक्त्वा महाबाहुर्बाणं दुःशासनान्तकम् ॥ १० ॥ सन्दधे परवीरघ्नः कालाग्न्यनिलवर्चसम् । तस्योरस्तूर्णमासाद्य जत्रुदेशे विभिद्य तम् ॥ ११ ॥ जगाम सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः । अथैनं पञ्चविंशत्या पुनरेव समार्पयत् ॥ १२ ॥ शरैरग्निसमस्पर्शैराकर्णसमचोदितैः । स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १३ ॥ दुःशासनो महाराज कश्मलं चाविशन्महत् । सारथिस्त्वरमाणस्तु दुःशासनमचेतनम् ॥ १४ ॥ रणमध्यादपोवाह सौभद्रशरपीडितम् । पांडवा द्रौपदेयाश्च विराटश्च समीक्ष्य तम् ॥ १५ ॥ पञ्चालाः केकया-

ऊँगा ॥ ८ ॥ हे कुरुपुत्र ! आज मैं क्रोधमें भरीहुई द्रौपदी और उसके कारणसे वैरका बदला लेनेकी इच्छा वाले अपने पिता और भीमसेनके ऋणसे युद्धभूमिमें मुक्त होजाऊँगा ॥ ९ ॥ अरे ! यदि तू रणमेंसे भागेगा नहीं तो मैं आज तुझे जीता नहीं जानेदूँगा यह कह कर शत्रुनाशक महाबाहु अभिमन्युने दुःशासनका अन्त करनेवाला कालाग्नि और कालवायुकी समान तेजस्वी महाबाण ताक कर दुःशासनकी छातीमें मारा वह बाण दुःशासनकी छातीपर हो उसकी हँसलीको तोडता हुआ, सर्प जैसे बिलमें घुसता है, तैसे पूँछसहित पृथिवीमें घुसगया, अभिमन्युने फिर भी धनुषको कानतक खेंचकर अग्निकी समान प्रज्वलित पच्चीस बाण मारे उनसे दुःशासनका शरीर बहुतही बिंधगया, और वह ओं ! ओं करके रथकी बैठकमें ढह पड़ा ॥ १०-१३ ॥ जिस समय दुःशासन अभिमन्युके बाणकी पीडासे बहुतही मूर्छित होगया, और अति पीडा पानेलगा उस समय सारथी उसको युद्धमेंसे दूर लेगया, यह देखकर पाण्डव,

श्चैव सिंहनादमथानदन् । वादित्राणि च सर्वाणि नानालिङ्गानि सर्वशः ॥ १६ ॥ प्रावादयन्त संहृष्टाः पांडूनां तत्र सैनिकाः । अपश्यन स्मयमानाश्च सौभद्रस्य विचेष्टितम् ॥ १७ ॥ अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् । धर्ममारुतशक्राणामश्विनोः प्रतिमास्तथा ॥ १८ ॥ धारयन्तो ध्वजाग्रेषु द्रौपदेया महारथाः । सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ १९ ॥ केकया धृष्टकेतुश्च मत्स्या पञ्चालसृञ्जयाः । पांडवाश्च मुदा युक्ता युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ २० ॥ अभ्यद्रवन्त त्वरिता द्रोणानीकं विभित्सवः । ततोऽभवन्महायुद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ २१ ॥ जयमाकांक्षमाणानां शूराणामनिवर्तिनाम् । तथा तु वर्त्तमाने वै संग्रामेतिभयङ्करे ॥२२॥ दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् । पश्य दुःशासनं वीरमभिमन्युवशं गतम् ॥२३॥ प्रतपन्तमिवादित्यं निघ्नन्तं शास्त्र-

---

द्रौपदीके पाँचों पुत्र, विराट, पञ्चाल और केकय सिंहनाद करने लगे और पाण्डवोंके सैनिक हर्षमें भरकर नानाप्रकारके बाजे बजानेलगे, तथा हँसते२ अभिमन्युके पराक्रमको देखनेलगे १४ १७ बड़े घमण्डी। शत्रुको हराया हुआ देखकर, धर्म, पवन, इन्द्र और अश्विनीकुमारोंकी प्रतिमाओंको ध्वजामें धारण करनेवाले युधिष्ठिर आदि पाण्डव, महारथी द्रौपदीके पुत्र, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, केकय, धृष्टकेतु, मत्स्य, पञ्चाल, और सृञ्जय बड़े आनन्दमें भर द्रोणकी सेनाको नष्ट करनेकी इच्छासे शीघ्रतासे आगे बढ आये और तुम्हारे योधा तथा शत्रुओंका महायुद्ध होनेलगा ॥ १८-२१ ॥ युद्धमें पीछेको न हटनेवाले विजयाभिलाषी शूरोंका भयंकर युद्ध होनेपर ॥ २२ ॥ हे महाराज ! दुर्योधन राधापुत्र कर्णसे कहनेलगा, कि-देखो रणमें शत्रुओंका संहार करनेमें प्रचण्ड सूर्यकी समान दीखनेवाले अभिमन्युने शूर दुःशासनको हरादिया है, यह बातें कररहे थे कि

वान् रणे । अथ चैते सुसंरब्धाः सिंहा इव वलोत्कटाः ॥२४॥ सौभद्रमुद्यतास्त्रातुमभ्यधावन्त पांडवाः । ततः कर्णः शरैस्तीक्ष्णैरभिमन्युं दुरासदम् ॥ २५ ॥ अभ्यवर्षत संक्रुद्धः पुत्रस्य हितकृत्तव । तस्य चानुचरांस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥ २६ ॥ अवज्ञापूर्वकं शूरः सौभद्रस्य रणाजिरे । अभिमन्युस्तु राधेयं त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ २७ ॥ अविध्यत् त्वरितो राजन् द्रोणं प्रेप्सुर्महामनाः । तं तथा नाशकत् कश्चिद् द्रोणाद्वारयितुं रथी २८ आरुजन्तं रथव्रातान वज्रहस्तात्मजात्मजम् । ततः कर्णो जयप्रेप्सुर्मानी सर्वधनुष्मताम् ॥ २९ ॥ सौभद्रं शतशोविध्यदुत्तमास्त्राणि दर्शयन् । सोस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो रामशिष्यः प्रतापवान् ॥ ३० ॥ समरे शत्रुदुर्द्धर्षमभिमन्युमपीडयत् । स तथा पीड्यमानस्तु राधेयेनास्त्रवृष्टिभिः ॥ ३१ ॥ समरेऽमरसंकाशः सौभद्रो न व्यशीर्यत।

इतनेमेंही वलोत्कट सिंहोंकी समान क्रोधमें भरेहुए पाण्डव अभिमन्युकी रक्षा करनेको चढ़आये यह देख तुम्हारे पुत्रका हित करनेवाला कर्ण क्रोधमें भरकर दुरासद अभिमन्युके ऊपर तीक्ष्ण वाणोंकी वर्षा करनेलगा और रणमें अभिमन्युका तिरस्कार करके उसके सैनिकोंको वड़े२ वाणोंसे वींधनेलगा, द्रोणको पकड़ना चाहतेहुए उदारचेता अभिमन्युने कर्णके तिहत्तर वाण मारे और द्रोणकी ओरको बढनेलगा, उस समय द्रोणकी ओर बढतेहुए और रथोंकी पंक्तियोंको नष्ट करतेहुए, इन्द्रके पौत्र अभिमन्युको कोईभी रथी न रोकसका, तदनन्तर विजय चाहनेवाले, सकल धनुषधारियोंमें मानी, अस्त्र वेत्ताओंमें श्रेष्ठ और परशुरामके शिष्य प्रतापी कर्णने सैंकडों अस्त्रोंसे समरमें दुर्धर्ष शत्रु अभिमन्युको घायल करदिया, और दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करकेभी उसको पीड़ा दी, परन्तु अभिमन्यु समरमें कर्णकी अस्त्रवर्षाओंसे पीडित होकर भी देवताओंकी समान गभराया नहीं, किन्तु

ततः शिलाशितैस्तीक्ष्णैर्भल्लैरानतपर्वभिः ॥३२॥ छित्त्वा धनूंषि शूराणामार्जुनिः कर्णमार्दयत् । धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैः शरैराशीविषोपमैः ॥ ३३ ॥ सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव। कर्णोऽपि चास्य चिक्षेप बाणान् सन्नतपर्वणः ॥३४॥ असम्भ्रान्तश्च तान् सर्वानगृह्णात् फाल्गुनात्मजः । ततो मुहूर्तात् कर्णस्य बाणेनैकेन वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ सध्वजं कार्मुकं वीरश्छित्त्वा भूमावपातयत् । ततः कृच्छ्रगतं कर्णं दृष्ट्वा कर्णादनन्तरः ॥ ३६ ॥ सौभद्रमभ्ययात्तूर्णं दृढमुद्यम्य कार्मुकम् । तत उच्चुक्रुशुः पार्थास्तेषां चानुचरा जनाः । वादित्राणि च सञ्जघ्नुः सौभद्रञ्चापि तुष्टुवुः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुःशासनकर्णपराजये चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

शिलाओं पर तेज कियेहुए नमी हुई गांठवाले तेज भल्लोंसे शूरोंके धनुषोंको काटकर धनुर्मण्डलमेंसे निकलेहुए विषधर सर्पोंकी समान बाणोंसे कर्णको खूबही घायल किया और मुस्कराते२ उसके छत्र, ध्वजा, सारथी और घोड़ोंको भी बड़ी शीघ्रता से बींधडाला; कर्णने भी इसके ऊपर नमीहुई गांठोंवाले बाण छोड़े अर्जुननन्दन अभिमन्युने उनको बिना घबडायेहुए अपने ऊपर झेललिया और एक मुहूर्तमें ही पराक्रमी शूर अभिमन्युने एक ही बाणसे कर्णकी ध्वजा और धनुषको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया, इसप्रकार कर्णको विपत्तिमें फँसा देखकर कर्णका छोटा भाई दृढ धनुषको उठाकर अभिमन्युके ऊपर चढआया, यह देखकर पाण्डव और उनके अनुगामी हर्षसे गर्जनेलगे, बाजे बजाने लगे तथा अभिमन्युकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३२-३७ ॥ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । सोतिगर्ज्जन् धनुष्पाणिर्ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः । तयोर्महात्मनोस्तूर्णं रथान्तरमवापतत् ॥१॥ सोविध्यद्दशभिर्बाणैरभिमन्युं दुरासदम् । सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव ॥ २ ॥ पितृपैतामहं कर्म्म कुर्वाणमतिमानुषम् । दृष्ट्वार्दितं शरैः कार्ष्णिं त्वदीया हृषिताभवन् ॥ ३ ॥ तस्याभिमन्युरायम्य स्मयन्नेकेन पत्रिणा । शिरः प्रच्यावयामास तद्रथात् प्रापतद् भुवि ४ कर्णिकारमिवाधूतं वातेनापतितं नगात् । भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा राजन् कर्णो व्यथां ययौ ॥ ५ ॥ विमुखीकृत्य कर्णन्तु सौभद्रः कंकपत्रिभिः । अन्यानपि महेष्वासांस्तूर्णमेवाभिदुद्रुवे ॥ ६ ॥ ततस्तद्विततं सैन्यं हस्त्यश्वरथपत्तिमत् । क्रुद्धोभिमन्युरभिनत्तिग्मतेजा

सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् ! कर्णका छोटा भाई धनुषको हाथमें ले बडा गरजताहुआ और वारम्वार प्रत्यञ्चाको खेंचता हुआ उन दोनों महात्माओंके रथोंके वीचमें आकर खडा होगया१ तथा मुख मलकाकर उसने दुर्धर्ष अभिमन्युको छत्र, ध्वजा, सारथी और घोडों सहित दश वाणोंसे वीधडाला ॥२॥ अपने पिता और पितामहकी समान अमानुषिक (दिव्य) कर्म करनेवाले अभिमन्युको वाणोंसे पीडितहुआ देखकर तुम्हारे पुत्र प्रसन्न होने लगे ॥ ३ ॥ अभिमन्युने मुस्कुराकर धनुषको नमाया और एक ही वाणसे उसके शिरको काट गिराया, उसका शिर रथ परसे पृथिवीमें ऐसे गिरपडा जैसे वायुसे झकोला खाकर कनेरका वृक्ष पर्वत परसे गिरपडता है, हे राजन् ! भाईको मराहुआ देखकर कर्णको बडा खेद हुआ ॥ ४ ॥ ५ ॥ फिर अभिमन्युने गिद्ध पक्षीके परोंवाले वाणोंसे कर्णको रणमेंसे पीछेको हटादिया, फिर दूसरे महारथियों पर भी शीघ्रतासे टूटपड़ा ॥ ६ ॥ फिर प्रचण्ड प्रतापी महारथी अभिमन्यु क्रोधमें भरकर, रथ, घोड़े और हाथियोंवाली, फैलीहुई उस सेनाका संहार करनेलगा ॥ ७ ॥ अभि-

महारथः ॥ ७ ॥ कर्णस्तु वहुभिर्वाणैरर्द्यमानोभिमन्युना । अपायाज्जवनैरश्वैस्ततोनीकमभज्यत ॥ ८ ॥ शलभैरिव चाकाशे धाराभिरिव चावृते । अभिमन्योः शरै राजन्न प्राज्ञायत किञ्चन ९ तावकानान्तु योधानां वध्यतां निशितैः शरैः । अन्यत्र सैन्धवाद्राजन् न स्म कश्चिदतिष्ठत ॥ १० ॥ सौभद्रस्तु ततः शंखं प्रध्माप्य पुरुषर्षभः । शीघ्रमभ्यपतत् सेनां भारतीं भरतर्षभ ॥ ११ ॥ स कक्षेग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून् । मध्ये भारतसैन्यानामार्जुनिः पर्यवर्त्तत ॥ १२ ॥ रथनागाश्वमनुजानर्दयन्निशितैः शरैः । सम्प्रविश्याकरोद् भूमिं कवन्धगणसंकुलाम् ॥ १३ ॥ सौभद्रचापप्रभवैर्निकृत्ताः परमेषुभिः । स्वानेवाभिमुखान् घ्नन्तः प्राद्रवन् जीवितार्थिनः ॥ १४ ते घोरा रौद्रकर्माणो विपाठा वहवः

मन्युके वहुतसे वाणोंसे पीडित होकर कर्ण तेज चलनेवाले घोडों पर वैठकर भागगया, इतनेमें व्यूह टूटगया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उस समय आकाश टीडियोंसे अथवा मेघधाराओंसे छागया हो इसप्रकार अभिमन्युके वाणोंने ढकगया, इसलिये वहाँ कुछ भी दिखाई नहीं पडता था ॥ ९ ॥ जिस समय अभिमन्यु तीक्ष्ण वाणोंसे तुम्हारे सैनिकोंका संहार कररहा था. उस समय जयद्रथ को छोड़ वहाँ कोईभी रथी खड़ा नहीं रहा ॥ १० ॥ हे भरतर्षभ ! उस समय पुरुषश्रेष्ठ अभिमन्यु शंख वजाकर तुरन्तही भारतीसेना (चक्रव्यूह)में घुसगया ॥ ११ ॥ अभिमन्यु फूँसमें फैंकेहुए अग्निकी समान वलसे शत्रुओंको भस्म करताहुआ चक्रव्यूहमें घमनेलगा ॥ १२ ॥ उसने भारतकी चक्राकार व्यूहसेनामें घुसकर तीक्ष्ण वाणोंसे रथी, घुडसवार, हाथीसवार और पैदलोंको नष्ट करके अनेक धडोंसे पृथ्वीको ढकदिया ॥ १३ ॥ इस समय वहुतसे योधा अभिमन्युके धनुषमेंसे छूटेहुए वाणोंके लगनेसे व्याकुल हो जीवनकी आशासे भागनेलगे और उस समय मार्गमें

शिताः । निघ्नन्तो रथनागाश्वान् जग्मुराशु वसुन्धराम् ॥ १५ ॥ सायुधाः सांगुलित्राणाः सगदाः साङ्गदाः रणे । दृश्यन्ते बाहवश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १६ ॥ शराश्चापानि खड्गाश्च शरीराणि शिरांसि च । सकुण्डलानि स्रग्वीणि भूमावासन् सहस्रशः ॥ १७ ॥ सोपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डैश्च वन्धुरैः । अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्वहुधा पतितैर्युगैः ॥ ॥ १८ ॥ शक्तिचापासिभिश्चैव पतितैश्च महाध्वजैः। चर्मचापशरैश्चैव व्यपकीर्णैः समन्ततः १९ निहतैः क्षत्रियैरश्वैर्वारणैश्च विशाम्पते । अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेनासीत् सुदारुणा ॥ २० ॥ वध्यतां राजपुत्राणां क्रन्दतामितरेतरम् । प्रादुरासीन्महाशब्दो भीरूणां भयवर्द्धनः ॥ २१ ॥ स शब्दो भरतश्रेष्ठ दिशः सर्वा व्यनादयत् । सौभद्रश्चाद्रवत् सेनां घ्नन् वराश्वरथद्विपान् २२ कक्षमग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून् ।

सामने पडतेहुए अपने योधाओंको ही मारनेलगे ॥ १४ ॥ अभिमन्युके विपाठ नामक, तेज कियेहुए भयंकर कर्म करनेवाले वाण, रथी, घुडसवार और हाथीसवारोंको नष्ट कर शीघ्रतासे पृथ्वीमें घुसरहे थे ॥ १५ ॥ रणमें आयुध, चमड़ेके मोजे, गदा, और वाजूवन्दोंको धारण करनेवाले हाथ कटेहुए पड़े दीखते थे ॥ १६ ॥ पृथिवी पर वाण, धनुष, खड्ग और मुकुट तथा मालाओं सहित हजारों शिर और शरीर पड़े थे ॥ १७ ॥ टूटेहुए धुरे, पहिये, और गिरेहुए जुए, तथा शक्ति, धनुष, तलवार वडी२ ध्वजायें, ढालें, धनुष, वाण तथा मरेहुए राजे और हाथियोंसे व्याप्त होनेके कारण पृथिवी क्षणभरमें दारुण और अगम्य होगई ॥ १८–२० ॥ उस समय डरपोकोंको दहलाने वाला आपसमें मारे जानेवाले राजपुत्रोंके डकरानेका भयंकर शब्द होनेलगा ॥ २१ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! उस शब्दसे दिशाएं गूँजने लगीं और अभिमन्यु श्रेष्ठ२ घोड़े, रथ और

मध्ये भारतसैन्यानार्जुनिः प्रत्यदृश्यत ॥ २३ ॥ विचरन्तं दिशः सर्वाः प्रदिशश्चापि भारत । तं तदा नानुपश्याम सैन्येन रजसा हृते ॥ २४ ॥ आददानं गजाश्वानां नृणाञ्चायूंषि भारत । क्षणेन भूयः पश्यामः सूर्यं मध्यन्दिने यथा ॥ २५ ॥ अभिमन्युं महाराज प्रतपन्तं द्विषद्गणान् । स वासवसमः संख्ये वासवस्यात्मजात्मजः । अभिमन्युर्महाराज सैन्यमध्ये व्यरोचत ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
अभिमन्युपराक्रमे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

धृतराष्ट्र उवाच । बालमत्यन्तसुखिनं स्वबाहुबलदर्पितम् । युद्धेषु कुशलं वीरं कुलपुत्रं तनुत्यजम् ॥ १ ॥ गाहमानमनीकानि सद्-

---

हाथियोंको मारताहुआ भागतीहुई सेनाके पीछे पडगया ॥२२॥ चक्रव्यूहमें घूमकर बलात्कारसे शत्रुओंको नष्ट करताहुआ अभिमन्यु फूँसमें लगेहुए अग्निकी समान प्रतीत होरहा था ॥२३॥ हे राजन्! अभिमन्यु दिशाओं और दिशाओंके कोनों तकमें घूमरहा था, परन्तु सेनामें धूल छाजानेके कारण हम उसको देख न सके ॥ २४ ॥ हे राजन्! क्षणभरके बादही हाथी, घोड़े और पैदलोंके प्राण हरता हुआ और शत्रुमण्डलको तपाता हुआ अभिमन्यु हमे मध्यान्हके सूर्यकी समान फिर दिखाई दिया, इन्द्रकी समान बली इन्द्रके पुत्रका कुमार अभिमन्यु हे महाराज! उस समय राजाओंकी सेनाके बीचमें शोभा पारहा था ।२५-२६। इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि बालक, अत्यन्त सुखी, अपने बाहुबलका भरोसा रखनेवाला, युद्धकुशल, वीर, युद्धके समय शरीरकी परवाह न रखनेवाला अभिमन्यु जब तीन वर्षकी अवस्थावाले घोडोंसे जुते रथमें बैठकर चक्रव्यूहको तोड कौरवसेनामें घुसा, उस समय युधिष्ठिरकी सेनामेंसे कौन २ बली, वीर योधा उसके पीछे

श्वैश्च त्रिहायणैः । अपि यौधिष्ठिरात् सैन्यात् कश्चिदन्वपतद्बली २
सञ्जय उवाच । युधिष्ठिरो भीमसेनः शिखण्डी सात्यकिर्यमौ ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च द्रुपदश्च सकेकयाः ॥ ३ ॥ धृष्टकेतुश्च
संरब्धो मत्स्याश्चाभ्यपतन् रणे । तेनैव तु पथायातः पितरो
मातुलैः सह ॥ ४ ॥ अभ्यद्रवन् परीप्संतो व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
तान् दृष्ट्वा द्रवतः शूरास्त्वदीया विमुखाभवन् ॥ २ ॥ ततस्तद्विमुखं
दृष्ट्वा तव सूनोर्महद्बलम् । जामाता तव तेजस्वी संस्तम्भयिषुराद्रवत् ६
सैन्धवस्य महाराज पुत्रो राजा जयद्रथः । स पुत्रगृद्धिनः पार्थान्
सह सैन्यानवारयत्॥७॥उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ।
वार्द्धक्षत्रिरुपासेधत् प्रवणादिव कुंजरः ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्र उवाच ।
अतिभारमहं मन्ये सैन्धवे सञ्जयाहितम् । यदेकः पांडवान् क्रुद्धान्

कौरवसेनामें गये थे ॥ १-२ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज ! युधिष्ठिर, भीमसेन, शिखण्डी, सात्यकि, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, केकय, धृष्टकेतु और मत्स्य आदि योधा जो अभिमन्युके मामा और चाचा ताऊ आदि थे, वे अभिमन्य की रक्षा करनेके लिये व्यूहरचनासे सेनाको संगठित करके उसके पीछेही पीछे चलरहे थे (वे अब द्वारपर पहुँचे ही थे, कि)उनको चढ़कर आतेहुए देखकर तुम्हारे सैनिक भागनेलगे ॥३-५॥ तुम्हारे पुत्रकी बडीभारी सेनाको लौटतीहुई देखकर तुम्हारे जमाई सिन्धुराजके पुत्र तेजस्वी जयद्रथने, भागतीहुई सेनाको रोकनेकी इच्छासे, पुत्रकी रक्षाके लिये चढ़कर आतेहुए पाण्डवोंको उनकी सेना सहित बढनेसे रोकदिया ॥ ६-७ ॥ जैसे हाथी नीची भूमिमें शत्रुको आगे बढनेसे रोकदेता है. तैसेही वृद्धक्षत्रके पुत्र, उग्रधनुषधारी, जयद्रथने दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करके पाण्डवोंको आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्रने कहा. कि-हे सञ्जय ! मेरी समझमें जयद्रथके ऊपर बड़ाभारी भार डालदिया था, जो

पुत्रमेप्सूनवारयत् ॥ ९ ॥ अत्यद्भुतमहं मन्ये बलं शौर्य्यञ्च सैन्धवे । तस्य प्रब्रूहि मे वीर्यं कर्म चाग्र्यं महात्मनः ॥ १० ॥ किं दत्तं हुतमिष्टं वा किं सुतप्तमथो तपः । सिन्धुराजो हि येनैकः पांडवान् समवारयत् ॥ ११ ॥ सञ्जय उवाच । द्रौपदीहरणे यत्तद्भीमसेनेन निर्जितः । मानात् स तप्तवान् राजा वरार्थी सुमहत्तपः ॥ १२ ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः सन्निवर्त्त्य सः । क्षुत्पिपासातपसहः कृशो धमनिसन्ततः ॥ १३ ॥ देवमाराधयच्छर्वं गृणन् ब्रह्म सनातनम् । भक्तानुकम्पी भगवान् तस्य चक्रे ततो दयाम् ॥ १४ ॥ स्वप्नान्तेप्यथ चैवाह हरः सिन्धुपतेः सुतम् । वरं वृणीष्व प्रीतोऽस्मि जयद्रथ किमिच्छसि ॥ १५ ॥ एवमुक्तस्तु शर्वेण सिन्धुराजो जयद्रथः ।

अकेला होने पर भी उसने क्रोधमें भरे और पुत्रकी रक्षा करनेको आगे वढतेहुए पाण्डवोंको रोकदिया ॥ ९ ॥ मैं विश्वास करता हूँ, कि–सिन्धुराजमें वडा बल और शूरता है, उस महात्माका श्रेष्ठ कर्म और उत्तम वीरता मुझे सुना ॥ १० ॥ जयद्रथने ऐसा कौनसा तप, यज्ञ, होम अथवा दान किया था, जिसके प्रभावसे उसने अकेलेही पाण्डवोंको आगे वढनेसे रोकदिया ॥ ११ ॥ सञ्जयने कहा, कि–जिस समय जयद्रथने द्रौपदीका हरण किया था उस समय भीमसेनने उसको जीतलिया था तब जयद्रथको वहुत बुरा मालूम हुआ और उसने वर पानेकी इच्छासे वडाभारी तप किया था ॥ १२ ॥ उसने तपके आरम्भमें इन्द्रियोंको इन्द्रियोंके प्यारे विषयोंसे हटाकर तप किया था और भूँख, प्यास तथा धूप को सहा था, इससे उसका शरीर दुर्बल होगया था और नसेंही नसें रहगयी थीं, इसप्रकार वह सनातन ब्रह्मके नामका स्मरण करताहुआ शिवकी पूजा करने लगा, यह देख भक्तवत्सल शिवने उसके ऊपर कृपा की ॥ १३–१४ ॥ और स्वप्नमें शिवजीने सिंधुराजसे कहा, कि–हे जयद्रथ ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, तू क्या चाहता है ? वर माँग ॥ १५ ॥ हे भारत ! शिवजीकी इस बात

उवाच प्रणतो रुद्रं प्राञ्जलिर्नियतात्मवान् ॥ १६ ॥ पाण्डवेयानहं संख्ये भीमवीर्यपराक्रमान्। वारयेयं रथेनैकः समस्तानिति भारत १७ एवमुक्तस्तु देवेशो जयद्रथमथाब्रवीत्। ददामि ते वरं सौम्य विना पार्थं धनञ्जयम् ॥ १८ ॥ वारयिष्यसि संग्रामे चतुरः पांडुनन्दनान्। एवमस्त्विति देवेशमुक्त्वाबुध्यत पार्थिवः ॥ १९ ॥ स तेन वरदानेन दिव्येनास्त्रबलेन च। एकः संवारयामास पांडवानामनीकिनीम् ॥ २० ॥ तस्य ज्यातलघोषेण क्षत्रियान् भयमाविशत्। परांस्तु तव सैन्यस्य हर्षः परमकोऽभवत् ॥ २१ ॥ दृष्ट्वा तु क्षत्रिया भारं सैन्धवे सर्वमाहितम्। उत्क्रुश्याभ्यद्रवन् राजन् येन यौधिष्ठिरं बलम् ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
जयद्रथयुद्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

को सुनकर विनीतात्मा सिंधुराज जयद्रथने दोनों हाथ जोड़ प्रणाम करके शिवजीसे कहा कि–'मैं अकेलाही रथमें बैठ भयङ्कर पराक्रमी पाण्डवोंको सेनासहित रणमेंसे भगादूं' यह वरदान दीजिये ॥ १६–१७ ॥ जयद्रथके ऐसा कहने पर शिवजीने उससे कहा, कि–'हे सौम्य ! मैं तुझे वर देता हूँ कि तेरी अभिलाषा पूरी होगी, परन्तु धनञ्जय अर्जुनको तू नहीं जीत सकेगा ।१८। लड़ाईमें पीछेको केवल पाण्डुके चारों पुत्रोंको ही तू हटा सकेगा" शंकरकी इस बातको सुन जयद्रथने कहा, 'तथास्तु' तदनन्तर शंकर अन्तर्धान होगए और राजा जागपड़ा, ॥ १९ ॥ जयद्रथने उस वरदान और दिव्य अस्त्रोंके प्रभावसे अकेले होतेहुए भी पाण्डवोंकी सेनाको पीछेको हटादिया ॥ २० ॥ जयद्रथके धनुष की प्रत्यञ्चाके शब्दसे शत्रुके योधाओंको भय लगा और आपकी सेनाको बडाभारी हर्ष हुआ ॥२१॥ हे राजन् ! जयद्रथके ऊपर सब भारको देखकर क्षत्रिय लोग कोलाहल करतेहुए पाण्डवोंकी सेनाकी ओर टूटपड़े ॥ २२ ॥ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४२।

सञ्जय उवाच । यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सिन्धुराजस्य विक्रमम् । शृणु तत् सर्वमाख्यास्ये यथा पांडूनयोधयत् ॥ १ ॥ तमूहुर्वाजिनो वश्याः सैन्धवाः साधुवाहिनः । विकुर्वाणा बृहन्तोश्वाः श्वसनोपमरंहसः ॥ २ ॥ गन्धर्वनगराकारं विधिवत् कल्पितं रथम् । तस्याभ्यशोभयत् केतुर्वाराहो राजतो महान् ॥ ३ ॥ श्वेतच्छत्रपताकाभिश्चामरव्यजनेन च । स बभौ राजलिंगैस्तैस्तारापतिरिवाम्बरे ॥ ४ ॥ मुक्तावज्रमणिस्वर्णैर्भूषितन्तमयस्मयम् । वरूथं विबभौ तस्य ज्योतिर्भिः खमिवावृतम् ॥ ५ ॥ स विस्फार्य महच्चापं किरन्निषुगणान् बहून् । तत्खंडं पूरयामास यद्व्यदारयदार्जुनिः ॥ ६ ॥ सः सात्यकिं त्रिभिर्बाणैरष्टाभिश्च वृकोदरम् ।

सञ्जयने कहा, कि-आपने जो सिंधुराजके पराक्रमको मुझसे बूझा था, अतः जयद्रथ पाण्डवोंसे जिसप्रकार लडा था, वह सब मैं तुम्हें सुनाता हूं ॥ १ ॥ सिन्धुराजका रथ गन्धर्वनगरकी समान रमणीय और बहुतही सजाहुआ था, उस रथको वशमें रहनेवाले, विकारी, ऊंचे और पवनवेगी सिंधुदेशी घोड़े खेंचते थे, उस रथपर वराहके चिन्हवाली रुपहली ध्वजा फहरारही थी ॥ २-३ ॥ ऐसे रथमें जयद्रथ बैठा था, उसके ऊपर श्वेत छत्र लगरहा था, स्वेत झण्डी फहरारही थी, चमर और पंखे ढलरहे थे, ऐसे चिन्होंसे वह आकाशमें उदित हुए चन्द्रमाकी समान शोभा पारहा था ॥४॥ हीरे, मोती, वज्र और सुवर्णसे भूपित उसका लोहेका रथका आवरण, नक्षत्रोंसे घिरे आकाश सा शोभित होरहा था ॥ ५ ॥ जयद्रथ ऐसे रथमें बैठकर रणमें आया और उसने बड़ेभारी धनुष पर टङ्कार दे बहुतसे बाण मारकर अभिमन्युने जहाँके योधाओंको मारडाला था उस भागको योधाओंसे फिर भरदिया ॥ ६ ॥ उसने सात्यकिके तीन भीमसेनके आठ, धृष्टद्युम्नके साठ और विराटके दश बाण मारे

धृष्टद्युम्नं तथा षष्ट्या विराटं दशभिः शरैः ॥ ७ ॥ द्रुपदं पञ्चभिस्तीक्ष्णैः सप्तभिश्च शिखण्डिनम् । केकयान् पञ्चविंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरन्तु सप्तत्या ततः शेषानपानुदत् । इषुजालेन महता तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥ अथास्य शितपीतेन भल्लेनादिश्य कार्मुकम् । चिच्छेद प्रहसन् राजा धर्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ १० ॥ अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् । विव्याध दशभिः पार्थं तांश्चैवान्यांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ११ ॥ तत्तस्य लाघवं ज्ञात्वा भीमो भल्लैस्त्रिभिस्त्रिभिः । धनुर्ध्वजञ्च छत्रञ्च क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥१२॥ सोऽन्यदादाय वलवान् सज्यं कृत्वा च कार्मुकम् । भीमस्यापातयत् केतुं धनुरश्वांश्च मारिष १३ स हताश्वादवप्लुत्य छिन्नधन्वा रथोत्तमात् । सात्यकेराप्लुतो यानं गिर्यग्रमिव केसरी ॥ १४ ॥ ततस्त्वदीयाः संहृष्टाः साधु

और द्रुपदको पाँच तीक्ष्ण वाणोंसे, शिखण्डीको सातसे, केकयोंको पच्चीससे, द्रौपदीके पुत्रोंको तीन २ वाणोंसे और युधिष्ठिरको साठ वाणोंसे पीड़ा दी औरों को भी वडीभारी वाणोंकी वर्षासे पीडा दी, यह एक आश्चर्यका काम हुआ ॥ ७–९ ॥ इतनेमें प्रतापी धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने हँसते२ "अभी वाणसे तेरे वाणोंको काटे डालता हूँ" यह कहकर पानी पिएहुए तेज वाणसे उसके धनुषको काटडाला ॥ १० ॥ जयद्रथने पलक मारतेमेंही दूसरा धनुष ले युधिष्ठिरके दश और दूसरोंके तीन२ वाण मारे ॥ ११ ॥ उसके हाथकी फुरतीको देखकर भीमने तीन२ भल्लोंसे उसकी ध्वजा, धनुष और छत्रको तुरन्त भूमिमें गिरादिया ॥ १२ ॥ हे महाराज! उस वलवान्ने दूसरा धनुष ले डोरी चढा, भीमसेनकी ध्वजा, धनुष और घोड़ों को गिरादिया ।१३। धनुषके कटनेपर भीमसेन मरेहुए घोडोंवाले रथमेंसे कूदकर सात्यकिके रथपर, पर्वतके शिखर पर छलाँग मारने

साध्विति वादिनः । सिन्धुराजस्य तत् कर्म प्रेक्ष्याश्रद्धेयमद्भुतम् ॥ १५ ॥ संक्रुद्धान् पांडवानेको यद्दधारास्त्रतेजसा । तत्तस्य कर्म भूतानि सर्वाण्येवाभ्यपूजयन् ॥ १६ ॥ सौभद्रेण हतैः पूर्वं सोत्तरायोधिभिर्द्विपैः । पांडूनां दर्शितः पन्थाः सैन्धवेन निवारितः१७यतमानास्तु ते वीरा मत्स्यपञ्चालकेकयाः।पाण्डवाश्चान्वपद्यन्त प्रतिशेकुर्न सैन्धवम् ॥१८॥ यो यो हि यतते भेत्तुं द्रोणानीकं तवाहितः । तन्तमेव वरं प्राप्य सैन्धवः प्रत्यवारयत् ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
जयद्रथयुद्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

सञ्जय उवाच । सैन्धवेन निरुद्धेषु जयगृद्धिषु पांडुषु । सुघोरमभवद्युद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥१॥ प्रविश्याथार्जुनिः सेनां सत्य-

वाले सिंहकी समान, जापहुंचा॥१४॥तुम्हारे सैनिक सिन्धुराजके अद्भुत और जिसका विश्वास कठिनसे हो ऐसे कर्मको देखकर साधु२ कहने लगे ॥१५॥ अकेला जयद्रथ अस्त्रके तेजसे क्रोधमें भरेहुए पांडवोंको आगे बढनेसे रोके रहा, उसके इस कर्मकी सब लोगोंने प्रशंसा की ॥ १६ ॥ इतनेमें सुभद्रानन्दनने उत्तरकी ओर हाथीसवारोंको मारकर पांडवोंको मार्ग दिखाया, परन्तु जयद्रथने आकर उस मार्गको भी रोकलिया ॥१७॥ उस समय मत्स्य, पञ्चाल, केकय और पांडवोंने बडा उद्योग किया, परन्तु वे जयद्रथको हटा न सके ॥ १८ ॥ शत्रुपक्षका जो२ श्रेष्ठ पुरुष द्रोणकी सेनाको तोडता था, उस२को ही जयद्रथ वरदान पानेके कारण हटा देता था ॥ १९ ॥ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

सञ्जयने कहा, कि हे राजेन्द्र ! विजयके अभिलाषी पांडवोंको जब सिन्धुराजने रोकदिया तब तुम्हारे योधाओंका शत्रुओंके साथ घोर युद्ध होनेलगा ॥ १ ॥ सत्यप्रतिज्ञ दुर्धर्ष अभिमन्यु चक्रव्यूहमें घुसकर जैसे तेजस्वी मगर समुद्रको मंथोलडालता है

सन्धो दुरासदः । व्यक्षोभयत तेजस्वी मकरः सागरं यथा ॥ २ ॥ तं तथा शरवर्षेण क्षोभयन्तमरिन्दमम् । यथाप्रधानाः सौभद्रमभ्ययू रथसत्तमाः ॥ ३ ॥ तेषां तस्य च सम्मर्दो दारुणः समपद्यत । सृजतां शरवर्षाणि प्रसक्तममितौजसाम् ४ रथव्रजेन संरुद्धस्तैरमित्रैस्तथाऽर्जुनिः । वृषसेनस्य यन्तारं हत्वा चिच्छेद कार्मुकम् ५ तस्य विव्याध बलवान् शरैरश्वानजिह्मगैः । वातायमानैरथ तैरश्वैरपहृतो रणात् ॥ ६ ॥ तेनान्तरेणाभिमन्योर्यन्तापासारयद्रथम् । रथव्रजास्ततो हृष्टाः साधु साध्विति चक्रुशुः ॥ ७ ॥ तं सिंहमिव संक्रुद्धं प्रमथ्नन्तं शरैररीन् । आरादायान्तमभ्येत्य वसातीयोऽभ्ययाद् द्रुतम् ॥ ८ ॥ सोऽभिमन्युं शरैः षष्ट्या रुक्मपुङ्खैरवाकिरत् । अब्रवीच्च न मे जीवन् जीवितो युधि मोक्ष्यसे ॥ ९ ॥

तैसेही सेनाको घंघोलनेलगा ॥ २ ॥ जब शत्रुदमनकर्त्ता अभिमन्यु बाणोंसे सेनाको व्याकुल करनेलगा तब प्रधान२ श्रेष्ठ महारथी उसके ऊपर चढ़आये ॥ ३ ॥ महाबली कौरव और अभिमन्यु परस्पर बाणोंसे युद्ध करनेलगे और उन दोनोंमें दारुण युद्ध होनेलगा ॥ ४ ॥ तुम्हारे रथियोंने अभिमन्युको रथोंके घेरेमें लेलिया तब भी अभिमन्युने वृषसेनके सारथीको मारकर उसके धनुषको काटडाला ॥ ५ ॥ बली वृषसेनने अभिमन्युके घोड़ोंको सीधे जानेवाले बाणोंसे घायल करदिया, इससे वायुकी समान वेगवाले घोड़े बिदककर भागनेलगे, एकाएक इस आपत्तिको आयीहुई देखकर अभिमन्युका सारथी उसके रथको रणमेंसे दूर लेगया यह देख रथी प्रसन्न होकर कहनेलगे, कि-ठीक हुआ ठीक हुआ ॥६-७॥ फिर अभिमन्यु सिंहकी समान क्रोधमें भर बाणोंसे शत्रुओंको मारताहुआ सेनाके पास आपहुँचा, कि-तुरन्तही वसातीय उसके ऊपर चढआया ॥ ८ ॥ उसने सुनहरी पूंखवाले सौ बाण अभिमन्युके मारे और कहा, कि-यदि युद्धमें मैं

तमयस्मयवर्माणमिषुणा दूरपातिना । विव्याध हृदि सौभद्रः स पपात व्यसुः क्षितौ ॥ १० वसातीयं हतं दृष्ट्वा क्रुद्धाः क्षत्रियपुङ्गवाः । परिवव्रुस्तदा राजंस्तव पौत्रं जिघांसवः ॥११॥ विस्फारयन्तश्चापानि नानारूपाण्यनेकशः। तद्युद्धमभवद्रौद्रं सौभद्रस्यारिभिः सह ॥ १२ ॥ तेषां शरान् सेष्वसनान् शरीराणि शिरांसि च । सकुण्डलानि स्रग्वीणि क्रुद्धश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ १३ ॥ सखड्गाः सांगुलित्राणाः सपट्टिशपरश्वधाः । अपश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥१४॥ स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पातितैश्च महाभुजैः । वर्मभिश्चर्मभिर्हारैर्मुकुटैश्छत्रचामरैः ॥ १५ ॥ उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः । अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ।१६। अनुकर्षैः पताकाभिस्तथा सारथिवाजिभिः । रथैश्च भग्नैर्नागैश्च हतैः कीर्णाभवन्मही॥१७॥निहतैः क्षत्रियैः शूरैर्नाना-

---

जीता रहा तो तू मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जासकेगा ।९। लोहेका कवच पहरनेवाले वसातीयके हृदयमें अभिमन्युने दूर जानेवाला एक बाण मारा, तब तो वसातीय प्राणरहित होकर भूमिमें गिरपडा॥१०॥वसातीयको मराहुआ देखकर बड़े २ क्षत्रिय राजे क्रोधमें भरगए,और हे राजन्!उन्होंने तुम्हारे पोतेको मारने की इच्छासे उसको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ११ ॥ वे नानाप्रकारके धनुषों पर टंकारें देनेलगे और अभिमन्युके साथ उनका महाभयंकर युद्ध हुआ ॥ १२ ॥ अभिमन्युने क्रोधमें भरकर उनके बाण, धनुष, शरीर, पुष्पमाला और कुंडलों वाले मस्तक सटासट उडादिये ॥ १३ ॥ खड्ग, चमड़ेके मोजे, पट्टिश, फरसे और सोनेके आभूषणोंवाली सैंकडों भुजाएं कटीहुई दीखने लगीं १४ पुष्पमालाएँ, गहने,वस्त्र, बड़ी २ भुजाएँ, कवच, ढाल,हार,मुकुट, छत्र, चमर, सामग्री, रथोंके गद्दे, ईषा, दण्डे, धुरे, टूटेहुए पहिये. बहुतसे जुए, अनुकर्ष, झण्डे, सारथि, घोड़े, रथ, हाथी, मरेहुए

जनपदेश्वरैः । जयगृद्धैर्वृता भूमिर्दारुणा समपद्यत ॥ १८ ॥ दिशो विचरतस्तस्य सर्वाश्च प्रदिशस्तथा। रणेऽभिमन्योऽक्रुद्धस्य । रूपमन्तरधीयत ॥१९॥ काञ्चनं यद्यदस्यासीद्वर्मः चाभरणानि च । धनुषश्च शराणाञ्च तदपश्याम केवलम् ॥ २० ॥ तं तदा नाशकत् कश्चिच्चक्षुर्भ्यामभिवीक्षितुम् । आददानं शरैर्योधान् मध्ये सूर्यमिव स्थितम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्यु-पराक्रमे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

सञ्जय उवाच । आददानस्तु शूराणामायूंष्यभवदार्जुनिः । अन्तकः सर्वभूतानां प्राणान् काल इवागते ॥ १ ॥ स शक्र इव विक्रान्तः शक्रसूनोः सुतो बली । अभिमन्युस्तदानीकं लोडयन् समदृश्यत ॥२॥ प्रविश्यैव तु राजेन्द्र क्षत्रियेन्द्रान्तकोपमः । सत्यश्रवसमादत्त व्याघ्रो मृगमिवोल्वणः ॥ ३ ॥ सत्यश्रवसि चाक्षिप्ते

क्षत्रिय तथा मरेहुए भिन्न२ अनेकों देशोंके राजाओंसे छायीहुई पृथ्वी डरावनी होगई।।१५-१८।।अभिमन्यु क्रोधमें भरकर रणमें दशों दिशाओंमें घूमरहा था, उस समय उसका शरीर बिलकुल नहीं दीखता था केवल उसके धनुष, बाण और शरीरके सोनेके गहने ही दीखते थे ॥ १९-२० ॥ बाणोंसे शत्रुओंके प्राणोंको हरतेहुए, अभिमन्युको सूर्यकी समान, कोई आँखोंसे न देखसका ॥ २१ ॥ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! समय आजाने पर जैसे काल सब प्राणियोंको नष्ट करदेता है तैसेही अभिमन्यु भी समय पाते ही शूरवीरोंके प्राणोंको हरलेता था ॥ १ ॥ इन्द्रकी समान पराक्रमी इन्द्रके पुत्रका पुत्र बलवान् अभिमन्यु सेनाको घँघोलता हुआसा दीखा ॥२॥ चक्रव्यूहके प्रथमद्वारमें प्रवेशकर परशुरामकी समान पराक्रमी अभिमन्युने पहिले, जैसे भयङ्कर बाघ हिरनको

त्वरमाणा महारथाः । प्रगृह्य विपुलं शस्त्रमभिमन्युमुपाद्रवन् ४ अहं पूर्वमहं पूर्वमिति क्षत्रियपुङ्गवाः । स्पर्धमानाः समाजग्मुर्जिघांसन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ ५ ॥ क्षत्रियाणामनीकानि प्रद्रुतान्यभिधावताम् । जग्राह तिमिरासाद्य क्षुद्रमत्स्यानिवार्णवे ॥ ६ ॥ ये केचन गतास्तस्य समीपमपलायिनः । न ते प्रतिन्यवर्त्तन्त समुद्रादिव सिन्धवः ॥ ७ ॥ महाग्राहगृहीतेव वातवेगभयार्दिता । समकम्पत सा सेना विभ्रष्टा नौरिवार्णवे ॥८॥ अथ रुक्मरथो नाम मद्रेश्वरसुतो बली । त्रस्तामाश्वासयन् सेनामत्रस्तो वाक्यमब्रवीत् ९ अलं त्रासेन वः शूरा नैष कश्चिन्मयि स्थिते । अहमेनं ग्रहीष्यामि जीवग्राहं न संशयः ॥ १० ॥ एवमुक्त्वा तु सौभद्रमभिदुद्राव वीर्य-

---

दबोच लेता है तैसेही सत्यश्रवाको पकड़लिया ॥ ३ ॥ सत्यश्रवा के पकड़े जानेपर उसको छुडानेकी शीघ्रतामें भर महारथी शस्त्रों को उठा २कर अभिमन्युके ऊपर चढ़आये ॥ ४ ॥ वे क्षत्रियश्रेष्ठ पहिले, "मैं मारूँ"२कहतेहुए अर्जुनके पुत्रको मारनेकी इच्छासे उसके पास पहुँचगए ॥ ५ ॥ इस समय, जैसे महामत्स्य समुद्रकी छोटी२ मच्छियोंको पकडलेता है तैसेही अभिमन्युने भागतेहुए राजाओंकी सेनाको (झपाटेमें) पकड़लिया ॥ ६ ॥ जो भागे नहीं और उसके पास खड़े रहे वे समुद्रमें गिरनेवाली नदियोंकी समान फिर नहीं लौटे अर्थात् उस लड़ाईमें मारेगए ॥ ७ ॥ मार्ग भूलीहुई और जिसका बड़े२ ग्राह पीछा कररहे हों और जो आँधी के चलनेसे झोंटे खारही है ऐसी नौकाकी समान भारतीय सेना भी अभिमन्युरूप ग्राहके हाथमें पडजानेसे काँपनेलगी ॥ ८ ॥ रुक्मरथ नामवाला मद्रनरेशका बली पुत्र निडर होकर सेनाको आश्वासन देताहुआ कहनेलगा, कि—॥ ९ ॥ हे शूरो ! अब तुम मत डरो, मेरे जीतेहुए अभिमन्यु कौन वस्तु है ? मैं निःसन्देह इसे जीताहुआ ही पकड लूँगा ॥ १० ॥ अभिमन्युके विषयमें ऐसा

वान् । सुकल्पितेनोह्यमानः स्यन्दनेन विराजता ॥ ११ ॥ सोऽभिमन्युं त्रिभिर्वाणैर्विद्ध्वा वक्षस्यथानदत् । त्रिभिश्च दक्षिणे वाहौ सव्ये च निशितैस्त्रिभिः ॥ १२ ॥ स तस्येष्वसनं छित्त्वा फाल्गुनिः सव्यदक्षिणौ । भुजौ शिरश्च स्वक्षिभ्रु क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा रुक्मरथं रुग्णं पुत्रं शल्यस्य मानिनम् । जीवग्राहं जिघृक्षन्तं सौभद्रेण यशस्विना ॥ १४ ॥ संग्रामदुर्मदा राजन् राजपुत्राः प्रहारिणः । वयस्याः शल्यपुत्रस्य सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १५ ॥ तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महावलाः । आर्जुनिं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १६ ॥ शूरैः शिक्षावलोपेतैस्तरुणैरत्यमर्षणैः । दृष्ट्वैकं समरे शूरं सौभद्रमपराजितम् ॥ १७ ॥ छाद्यमानं शरव्रातैर्हृष्टो दुर्योधनोभवत् । वैवस्वतस्य भवनं गतं ह्येनममन्यत १८

कहकर मद्रराज अच्छीप्रकार रचेहुए शोभायमान रथमें वैठकर अभिमन्युके ऊपर दौड़ा ॥ ११ ॥ और तीन वाण अभिमन्युकी छातीमें, तीन वाण दाहिनी भुजामें, और तीन तेज वाण वाईं भुजामें मारकर गर्जनेलगा ॥ १२ ॥ अभिमन्युने फुर्तीसे रुक्मरथका, धनुष, दाहिनी वाईं भुजा, शिर, नेत्र और भौंएं काटकर उसको पृथिवीमें गिरादिया॥१३॥ और यशस्वी अभिमन्युने शल्यके अभिमानी पुत्र रुक्मरथको जीताही पकड़ना चाहा यह देखकर १४ हे राजन् ! शल्यपुत्रके मित्र राजकुमार जो संग्रामके लिये मदसे मतवाले फिरनेवाले और सुनहरी ध्वजावाले थे उन्होंने ताड़की समान धनुषों पर वाण चढ़ा उनको खेंचकर अभिमन्युके ऊपर चारों ओरसे वाणोंकी वृष्टि करके उसको घेरलिया १५-१६ अस्त्रशिक्षामें चतुर, वली और महाक्रोधी इन तरुण शूरोंने अकेले लडतेहुए अजेय अभिमन्युको वाणोंकी वृष्टिसे ढकदिया, यह देखकर दुर्योधनको वडा हर्ष हुआ और उसने समझा, कि—वस अव अभिमन्यु यमलोकमें पहुंचगया ॥ १७-१८॥ उन राजपुत्रों

सुवर्णपुंखैरिषुभिर्नानालिंगैः सुतेजनैः। अदृश्यमार्जुनिं चक्रुर्निमेषात्ते नृपात्मजाः ॥ १९ ॥ ससूताश्वध्वजं तस्य स्यन्दनं तञ्च मारिष। आचितं समपश्याम श्वाविधं शललैरिव ॥ २० ॥ स गाढविद्धः क्रुद्धश्च तोत्रैर्गज इवार्दितः। गान्धर्वमस्त्रमायच्छद्रथमायाञ्च भारत ॥ २१ ॥ अर्जुनेन तपस्तप्त्वा गन्धर्वेभ्यो यदाहृतम्। तुम्बुरुप्रमुखेभ्यो वै तेनामोहयताहितान् ॥ २२ ॥ एकधा शतधा राजन् दृश्यते स्म सहस्रधा। अलातचक्रवत् संख्ये क्षिप्रमस्त्राणि दर्शयन् ॥ २३ ॥ रथचर्यास्त्रमायाभिर्मोहयित्वा परंतपः। विभेद शतधा राजन् शरीराणि महीक्षिताम् ॥ २४ ॥ प्राणाः प्राणभृतां संख्ये प्रेषिताः निशितैः शरैः। राजन् प्रापुरमुं लोकं शरीराण्यवनिं ययुः ॥ २५ ॥ धनूंष्यश्वान्नियन्तॄंश्च ध्वजान्

ने एक निमेषमात्रमें सुवर्णकी पूँछवाले,अनेकों प्रकारके बड़े ही तेज बहुतसे बाणोंसे अभिमन्युको ढकदिया ॥ १९ ॥ हे राजन्! उस समय कांटोंसे ढकीहुई सेईकी समान सारथी, घोड़े, ध्वजा, और रथसहित अभिमन्युको बाणोंसे छायाहुआ देखा ॥ २० ॥ अभिमन्युने अत्यन्त बिंधजानेसे, अंकुशोंसे पीड़ा पानेपर क्रोधमें भरे हाथीकी समान क्रोधमें भरकर गान्धर्वास्त्र छोड़ा और वह जाननेमें न आवैं ऐसी रथको घुमानेकी युक्तियें करनेलगा २१ तप कर तुम्बुरु आदि गन्धर्वोंसे अर्जुनने इस अस्त्रको पाया था और शत्रुओंको मोहित करदिया था ॥ २२ ॥ हे राजन्! युद्धभूमिमें उसका छोड़ाहुआ वही गन्धर्व अस्त्र बरेंटीकी समान घूमता था, और वह एक, अनेक तथा सहस्रों प्रकारसे अस्त्रोंके समूहों को फुरतीसे छोड़ता दिखाई देता था ॥२३॥ हे राजन्! अभिमन्युने रथकी घुमानेकी युक्ति और अस्त्रोंकी मायासे मोहमें डालकर राजाओंके शरीरोंके सैंकड़ों टुकड़े करडाले ॥ २४ ॥ हे राजन! इस युद्धमें तेज बाणोंके प्रहारोंसे अनेकों प्राणियोंके प्राण पयान

वाहूंश्च सांगदान् । शिरांसि च सितैर्वाणैस्तेषां चिच्छेद फाल्गुनिः२६ चूतारामो यथा भग्नः पञ्चवर्षः फलोपगः । राजपुत्रशतं तद्वत् सौभद्रेण निपातितम् ॥ २७ ॥ क्रुद्धाशीविषसंकाशान् सुकुमारान् सुखोचितान् । एकेन निहतान्दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनोऽभवत् २८ रथिनः कुञ्जरानश्वान् पदातींश्चापि मज्जतः । दृष्ट्वा दुर्योधनः क्षिप्रमुपायात्तममर्षितः ॥२९॥ तयोः क्षणमिवापूर्णः संग्रामः समपद्यत । अथाभवत्ते विमुखः पुत्रः शरशताहतः ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुर्योधनपराजये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । यथा वदसि मे सूत एकस्य बहुभिः सह । संग्रामं तुमुलं घोरं जयञ्चैव महात्मनः ॥ १ ॥ अश्रद्धेयमिवाश्चर्यं

करगए और शरीर पृथ्वी पर गिरपड़े ॥ २५ ॥ अभिमन्युने उनकी ध्वजा, धनुष, घोड़े, सारथी, बाजूबन्दवाली भुजायें और शिरोंको तेज वाणोंसे काटडाला॥२६॥पाँच वर्षका फलोंसे लदा आमोंके पेड़ोंका बाग जैसे वायुसे पेड़ोंके गिरजाने पर दीखता है तैसेही अभिमन्युके गिराएहुए सैंकड़ों राजपुत्र दिखाई देते थे२७ क्रोधित विषधर सर्पोंकी समान, अत्यन्त, सुकुमार और सुख भोगने योग्य राजकुमारोंको अकेले अभिमन्युने मारडाला, यह देख कर दुर्योधन डरगया ॥ २८ ॥ रथी, घुडसवार हाथीसवार तथा पैदलोंको टपाटप गिरतेहुए देखकर दुर्योधन क्रोधमें भरगया और अभिमन्युकी ओरको झपटा ॥ २९ ॥ उन दोनोंका संग्राम क्षण भर ही हुआ,परन्तु वह अधूराही रहा,क्योंकि-तुम्हारा पुत्र सैंकड़ों वाणोंसे विंध जानेके कारण रणभूमिमेंसे पलायमान होगया ३० पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा कि-हे सूत ! तू कहता है, कि-अकेले महात्मा अभिमन्युने असंख्योंके साथ घोर संग्राम किया और उसमें

सौभद्रस्याथ विक्रमम् । किन्तु नात्यद्भुतं तेषां येषां धर्मो व्यपाश्रयः ॥ २ ॥ दुर्योधने च विमुखे राजपुत्रशते हते । सौभद्रे प्रतिपत्तिं कां प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच । संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना लोमहर्षणाः । पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ४॥ हतान् भ्रातॄन् पितॄन्पुत्रान्सुहृत्संबंधिबान्धवान् । उत्सृज्योत्सृज्य संजग्मुस्त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥ ४ ॥ तान्प्रभग्नांस्तथा दृष्ट्वा द्रोणो द्रौणिर्बृहद्बलः । कृपो दुर्योधनः कर्णः कृतवर्माथ सौबलः ॥ ६ ॥ अभ्यधावन्सुसंक्रुद्धाः सौभद्रमपराजितम् । ते तु पौत्रेण ते राजन्प्रायशो विमुखी कृताः ॥ ७ एकस्तु सुखसंवृद्धो बाल्याद्दर्पाच्च निर्भयः । इष्वस्त्रविन्महातेजा लक्ष्मणोर्जुनिमभ्ययात् ॥ ८ ॥ तमन्वगेवास्य पिता

विजय पाई, अभिमन्युके इस आश्चर्यकारी पराक्रम पर विश्वास नहीं होता, परन्तु जो धर्म पर चलते हैं उनके विषयमें ऐसा होना अधिक अचरज भी नहीं है ॥ १–२ ॥ दुर्योधनके पीठ दिखाकर भागजाने पर, और सैंकड़ों राजपुत्रोंके मारे जाने पर मेरे योधाओंने अभिमन्युको मारनेके लिये कौनसा उपाय किया था ? ॥ ३ ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् ! उनके मुख सूखगये, नेत्र डगमगाने लगे, पसीना आगया, रोंगटे खड़े होगये और वे शत्रुओंको जीतनेका उत्साह त्याग भागनेको तयार होगये ॥ ४ ॥ वे मरेहुए भाई, पिता, पुत्र, मित्र, और बन्धुबान्धवोंको छोड तेजीसे हाथी घोडोंको दौडाकर भागगए ५ उनको इसप्रकार हतोत्साह हुआ देखकर द्रोण, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा और शकुनि क्रोधमें भर अजित अभिमन्यु पर चढ़गए, हे राजन् ! तुम्हारे पोतेने उन्हें बहुत बार पीछेको हटाया ॥ ६॥७॥ अकेला लक्ष्मण, जो बालकपनसे सुखमें पलाथा और घमण्डसे निर्भय था, वह महातेजस्वी

पुत्रगृद्धी न्यवर्त्तत । अनुदुर्योधनं चान्ये न्यवर्त्तन्त महारथाः ९ तं तेऽभिपिपिचुर्बाणैर्मेघा गिरिमिवाम्बुभिः । स तु तान् प्रममाथैको विष्वग्वातो यथाम्बुदान् ॥१०॥ पौत्रं तव च दुर्धर्षं लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् । पितुः समीपे तिष्ठन्तं शूरमुद्यतकार्मुकम् ११ अत्यंतसुखसंवृद्धं धनेश्वरसुतोपमम् । आससाद रणे कार्ष्णिर्मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ १२ ॥ लक्ष्मणेन तु संगम्य सौभद्रः परवीरहा । शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥१३॥ संक्रुद्धो वै महाराज दंडाहत इवोरगः । पौत्रस्तव महाराज तव पौत्रमभाषत ॥ १४ ॥ सुदृष्टः क्रियतां लोको ह्यमुं लोकं गमिष्यसि । पश्यतां बांधवानां

लक्ष्मणही अभिमन्युके सामने डटा खड़ा रहा ॥ ८ ॥ उसके पीछे पुत्रप्रेमसे दुर्योधन भी आकर खडा होगया तथा दुर्योधनके पीछे और महारथी भी रणाङ्गणमें आकूदे ॥ ९ ॥ जैसे मेघ जलसे पर्वतको न्हवा देता है तैसेही सब महारथी अभिमन्युके ही ऊपर बाण बरसाने लगे, परन्तु चारों ओरको बहनेवाला वायु जैसे मेघोंको तितर बितर करडालता है तैसेही अभिमन्युने अकेलेही उन सबोंको छिन्न भिन्न करदिया ॥ १० ॥ उस समय दुर्धर्ष देखनेमें प्यारा लगनेवाला तुम्हारा पोता लक्ष्मण धनुषको उठाकर दुर्योधनके पास खडा था, उस बड़ेभारी सुखमें पलेहुए कुबेरके पुत्रकी समान सुन्दर लक्ष्मणके सामने अभिमन्यु इस प्रकार आया जैसे मतवाले हाथीके सामने मतवाला हाथी आता है ॥ ११-१२ ॥ शत्रुनाशक अभिमन्युने लक्ष्मणसे भिड़कर तेज धार वाले अति तेज बाण लक्ष्मणकी भुजाओंमें मारे ॥१३॥ और हे महाराज ! लकड़ीसे मारेहुए सर्पकी समान क्रोधमें भर कर तुम्हारा पोता (अभिमन्यु) तुम्हारे पोते (लक्ष्मणसे) बोला, कि—॥ १४ ॥ (इस जगत्में) तुझे जो कुछ देखना हो भली प्रकार देख ले, क्योंकि—मैं तुझे तेरे बन्धुओंके सामने ही यमलोक

त्वां नयामि यमसादनम् ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा ततो भल्लं सौभद्रः परवीरहा। उद्ववर्ह महाबाहुर्निर्मुक्तोरगसन्निभम् ॥१६॥ स तस्य भुजनिर्मुक्तो लक्ष्मणस्य सुदर्शनम्। सुनसं सुभ्रु केशांतं शिरोऽहार्षीत्सकुण्डलम् ॥ १७ ॥ लक्ष्मणं निहतं दृष्ट्वा हाहेत्युच्चुक्रुर्जनाः। ततो दुर्योधनः क्रुद्धः प्रियपुत्रे निपातिते ॥ १८ ॥ हतैनमिति चुक्रोश क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः। ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रोणपुत्रो बृहद्बलः ॥१९॥ कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड्रथाः पर्यवारयन्। तांस्तु विध्वा शितैर्बाणैर्विमुखीकृत्य चार्जुनिः ॥२०॥ वेगेनाभ्यपतत् क्रुद्धः सैन्धवस्य महद्बलम्। आवव्रुस्तस्य पन्थानं गजानीकेन दंशिताः॥२१॥कलिंगाश्च निषादाश्च क्राथपुत्रश्च वीर्यवान्। तत् प्रसक्तमिवात्यर्थं युद्धमासीद्विशाम्पते २२ ततस्तत् कुञ्जरानीकं व्यधमद्धृष्टमार्जुनिः। यथा वायुर्नित्यगतिर्जलदान् शतशोऽम्बरे २३

में भेजदूँगा ॥ १५ ॥ यह कहकर शत्रुनाशक महावाहु सुभद्रानन्दनने कैंचलीरहित सर्पकी समान भल्ल नामक वाणको धनुष पर चढाया ॥ १६ ॥ उस वाणके छूटने पर लक्ष्मणके दीखनेमें सुन्दर, सुन्दर नाक,भौं और केशोंवाला मस्तक मुकुटसहित दूर जा गिरा॥१७॥लक्ष्मणको मराहुआ देख मनुष्य हाहाकार करने लगे और प्रियपुत्रके मारेजानेसे क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ दुर्योधन भी "अरे अभिमन्युको मारडालो मारडालो"इसप्रकार चिल्लाकर क्षत्रियोंको उकसाने लगा तब द्रोण,अश्वत्थामा,कृपाचार्य,कर्ण वृहद्बल,और हार्दिक्य कृतवर्मा इन छः महारथियोंने अभिमन्युको घेरलिया, परन्तु अर्जुनका पुत्र उन सबोंको तेज वाणोंसे भगाकर क्रोधमें भर बड़े वेगसे सिन्धुराजकी सेना पर जाचढ़ा, यह देख वीर्यवान् क्राथपुत्र कलिङ्ग और निषादोंने हाथियोंकी सेनासे अभिमन्युके मार्गको रोकदिया इन सबोंने परमभयङ्कर युद्धकिया ॥ १८–२२ ॥ अर्जुनकुमारने उस ढीठ हस्तिसेनाको इसप्रकार नष्ट करदिया जैसे

ततः क्राथः शरव्रातैरार्जुनिं समवाकिरत् । अथेनरे सन्निवृत्ताः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥२४॥ परमास्त्राणि धुन्वानाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः । तान्निवार्यार्जुनिर्वाणैः क्राथपुत्रमथार्दयत ॥ २५ ॥ शरौघेणाप्रमेयेण त्वरमाणो जिघांसया । सधनुर्वाणकेयूरौ वाहू समुकुटं शिरः ॥ २६ ॥ सच्छत्रध्वजयन्तारं रथं चाश्वान्यपातयत् । कुलशीलश्रुतिवलैः कीर्त्या चास्त्रवलेन च । युक्ते तस्मिन हते वीराः प्रायशो विमुखाभवन् ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि क्राथपुत्रवधे
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तथा प्रविष्टं तरुणं सौभद्रमपराजितम् । कुलानुरूपं कुर्वाणं संग्रामेष्वपराजितम् ॥ १ ॥ आजानेयैः सुवलिभि-

---

नित्य चलनेवाला वायु आकाशमें वादलोंके सैंकड़ों टुकड़े कर डालता है ॥२३॥ तदनन्तर क्राथने वाणोंके समूहकी अभिमन्युके ऊपर वर्षा की, इतनेमें ही भागेहुए द्रोण आदि महारथी भी अपने अपने महाधनुषों पर टंकार देतेहुए फिर अर्जुनके पुत्र पर टूटपड़े अभिमन्यु उनको फिर भी वाणोंसे विमुख कर क्राथपुत्रको उत्पीड़ित करनेलगा ॥ २४-२५ ॥ अभिमन्युने उसको मारनेकी इच्छासे फुरतीके साथ असंख्यों वाणोंकी वर्षाकर उसके धनुष, वाण, और वाजूवन्दसहित दोनों भुजा, मुकुटसहित शिर, छत्र, ध्वजा, सारथी, घोड़े और रथको तथा उसको भी भूमिमें गिरादिया, कुल, कीर्ति, शास्त्र और वलवाले क्राथपुत्रके मारेजाने पर वहुतसे वीर मुँह फेरकर भागनेलगे ॥२६-२७॥ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-कुलीन, वली और तीन वर्षकी आयुवाले घोड़ोंके रथसे आकाशमें कूदते हुएसे आतेहुए, कुलके योग्य कर्म करनेवाले संग्राममें न हारेहुए अपराजित अभिमन्युके चक्रव्यूहमें

यान्तमश्वैस्त्रिहायनैः । लवमानमिवाकाशे के शूराः समवारयन् २ सञ्जय उवाच । अभिमन्युः प्रविश्यैतांस्तावकान्निशितैः शरैः । अकरोद्विमुखान् सर्वान् पार्थिवान् पाण्डुनन्दनः ॥ ३ ॥ तं तु द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिश्च सबृहद्बलः । कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड्रथाः पर्यवारयन् ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा तु सैन्धवे भारमतिमात्रं समाहितम् । सैन्यं तव महाराज युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥ सौभद्रमितरे वीरमभ्यवर्षञ्छराम्बुभिः । तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ॥ ६ ॥ तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् सर्वविद्यासु निष्ठितान् । व्यष्टम्भयद्रणे बाणैः सौभद्रः परवीरहा ॥ ७ ॥ द्रोणं पञ्चाशताविध्यत् विंशत्या च बृहद्बलम् । अशीत्या कृतवर्माणं कृपं षष्ट्या शिलीमुखैः ॥ ८ ॥ रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराकर्णसमचोदितैः । अविध्यद्दशभिर्बाणैरश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ ९ ॥ स कर्णं कर्णिना

प्रवेश करने पर किन २ वीरोंने उसको रोका था ॥ १-२ ॥ सञ्जयने कहा, कि-पाण्डुनन्दन अभिमन्यु चक्रव्यूहमें प्रवेश कर तेज बाणोंसे सब राजाओंको विमुख करनेलगा ॥ ३ ॥ तुरन्त ही द्रोण, अश्वत्थामा, कृप, कर्ण, बृहद्बल और हार्दिक्य-कृतवर्मा इन छः रथियोंने उसको घेरलिया ॥४॥ हे महाराज ! तुम्हारी सेना, जयद्रथ पर बड़ा भारी भार आपड़ा है यह देखकर युधिष्ठिर पर टूटपड़ी ॥ ५ ॥ दूसरे महावीर ताड़की समान बड़े धनुषों पर टंकार देकर वीर अभिमन्युके ऊपर बाणोंको बरसानेलगे ६ सकल विद्याओंमें निपुण शत्रुओंके सब महाधनुषधारियोंको, वीरोंको कुचलनेवाले अभिमन्युने सुन्न करदिया. ॥७॥ तदनन्तर उसने कानतक धनुषको खेंचकर द्रोणको पचास, बृहद्बलको बीस, कृतवर्माको अस्सी, कृपाचार्यको साठ और अश्वत्थामाको बड़े वेगवाले तथा सुनहरी पूंछोंवाले दश बाणोंसे घायल करदिया ॥ ८-९ ॥ अर्जुनके पुत्र अभिमन्युने शत्रुओंके

कर्णं पीतेन च शितेन च । फाल्गुनिर्द्विषतां मध्ये निर्व्याध परमेषुणा ॥ १० ॥ पातयित्वा कृपस्याश्वांस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी । अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ११ ॥ ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्द्धनम् । पुत्राणां तव वीराणां पश्यतामवधीद्बली ॥ १२ ॥ तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् । वरं वरममित्राणामारुजन्तमभीतवत् ॥ १३ ॥ स तु बाणैः शितैस्तूर्णं प्रत्यविध्यत मारिष । पश्यतां धार्त्तराष्ट्राणामश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ १४ ॥ षष्ट्या शराणां तं द्रौणिस्तिग्मधारैः सुतेजनैः । उग्रैर्नाकम्पयद्विध्वा मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १५ ॥ स तु द्रौणिं त्रिसप्तत्या हेमपुंखैरजिह्मगैः । प्रत्यविध्यन्महातेजा बलवानपकारिणम् ॥ १६ ॥ तस्मिन् द्रोणो बाणशतं पुत्रगृद्धी न्यपातयत् । अश्वत्थामा तथाष्टौ च परीप्सन्पितरं रणे ॥१७॥ कर्णो

बीचमें कर्णके कानको तेज, पानी पिलाएहुए कर्णि नामक बाणसे घायल करदिया ॥ १० ॥ तथा उसने कृपके घोड़े, पार्श्वरक्षक और सारथिको गिराकर कृपाचार्यकी छातीमें दश बाण मारे ११ तदनन्तर बली अभिमन्युने तुम्हारे पुत्रोंके देखते रहनेपर भी कौरवोंकी कीर्ति बढ़ानेवाले वीर वृन्दारकको यमलोकमें भेजदिया॥१२॥ अश्वत्थामाने शत्रुओंके छट्टार योधाओंका निर्भय हो संहार करते हुए अभिमन्युको क्षुद्रक नामक पच्चीस बाणोंसे बींधदिया॥१३॥ परन्तु हे राजन् ! अर्जुनपुत्रने तुम्हारे पुत्रोंके सामने शीघ्र ही तीक्ष्ण बाणोंसे अश्वत्थामाको बेधदिया ॥ १४ ॥ अश्वत्थामाने अत्यन्त चमचमाते साठ तेज बाणोंसे अभिमन्युको बींधडाला, परन्तु मैनाक पर्वतकी समान अटल अभिमन्युको कँपा न सका १५ बली महातेजस्वी अभिमन्युने सुनहरी पूँछवाले और सीधे जाने वाले तिहत्तर बाणोंसे अश्वत्थामाको बींधदिया ॥१६॥ पुत्रपर प्रेम रखनेवाले द्रोणने अभिमन्युके सौ बाण मारे और पिताको

द्वाविंशतिं भल्लान् कृतवर्मा च विंशतिम्। बृहद्बलस्तु पञ्चाशत् कृपः शारद्वतो दश ॥ १८ ॥ तांस्तु प्रत्यवधीत् सर्वान् दशभिर्दशभिः शरैः। तैरर्द्यमानः सौभद्रः सर्वतो निशितैः शरैः ॥ १९ ॥ तं कोसलानामधिपः कर्णिनाताडयद्धृदि। स तस्याश्वान् ध्वजं चापं सूतञ्चापातयत् क्षितौ ॥२०॥ अथ कोसलराजस्तु विरथः खड्गचर्मभृत्। इयेष फाल्गुनेः कायाच्छिरो हर्तुं सकुण्डलम् ॥ २१ ॥ स कोसलानामधिपं राजपुत्रं बृहद्बलम्। हृदि विव्याध बाणेन स भिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २२ ॥ बभञ्ज च सहस्राणि दश राज्ञां महात्मनाम्। सृजतामशिवा वाचः खड्गकार्मुकधारिणाम् ॥२३॥ तथा बृहद्बलं हत्वा सौभद्रो व्यचरद्रणे। व्यष्टम्भयन्महेष्वासान् योधांस्तव शराम्बुभिः ॥ २४ ॥ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

बचानेमें उत्सुक अश्वत्थामाने भी उसके आठ वाण मारे १७ और कर्णने वाईस, कृतवर्माने वीस, वृहद्बलने पचास और कृपाचार्यने भल्ल नामक दश वाण अभिमन्युके मारे ॥ १८ ॥ इसप्रकार सब ओरसे उन तेज वाणोंके द्वारा पीडित होतेहुए अभिमन्युने उन सबोंको दश २ वाणोंसे घायल किया १९ फिर कोसल देशके राजाने अभिमन्युके हृदयमें कर्णिनामका वाण मारा, तव तो अभिमन्युने उसके घोड़े ध्वजा, धनुष और सारथिको काटकर पृथिवी पर गिरादिया ॥२०॥ तव रथहीन हुए कोसलराजने हाथमें ढाल तलवार ले अभिमन्युके मुकुट सहित शिरको धड़से अलग करना चाहा ॥ २१ ॥ कि-इतनेमें ही अभिमन्युने कोसलेश्वर राजकुमार वृहद्बलके हृदयमें वाण मारा तव वह विदीर्ण हुए हृदयसे ढहगया २२ फिर अभिमन्युने अपवित्र वाणी कहने (गालीदेने) वाले धनुषधारी दश हजार बड़े २ राजाओंको मारडाला २३ महाधनुषधारी अभिमन्यु इसप्रकार वृहद्बलको मारनेके अनन्तर तुम्हारे योधाओंको वाणरूपी जलकी वर्षासे रोककर रणमें घूमनेलगा २४ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ४७

सञ्जय उवाच । स कर्णं कर्णिना कर्णे पुनर्विव्याध फाल्गुनिः। शरैः पञ्चाशता चैनमविध्यत्कोपयन् भृशम् ॥ १ ॥ प्रतिविव्याध राधेयस्तावद्भिरथ तं पुनः। शरैराचितसर्वांगो बह्वशोभत भारत २ कर्णञ्चाप्यकरोत् क्रुद्धो रुधिरोत्पीडवाहिनम् ॥ कर्णोपि विबभौ शूरः शरैश्छिन्नोऽसृगाप्लुतः ॥ ३ ॥ तावुभौ शरचित्रांगौ रुधिरेण समुक्षितौ । बभूवतुर्महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४ ॥ अथ कर्णस्य सचिवान् षट् शूरांश्चित्रयोधिनः । साश्वसूतध्वजरथान सौभद्रो निजघान ह ॥ ५ ॥ तथेतरान् महेष्वासान दशभिर्दशभिः शरैः । प्रत्यविध्यदसम्भ्रान्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६ ॥ मागधस्य तथा पुत्रं हत्वा षड्भिरजिह्मगैः। साश्वं ससूतं तरुणमश्वकेतुमपातयत् ॥ ७ ॥ मार्त्तिकावतकं भोजं ततः कुञ्जरकेतनम् । क्षुर-

---

सञ्जयने कहा, कि—हे भरतवंशी राजन् ! अभिमन्युने कर्णि नामक वाणसे कर्णके कानको फिर घायल करदिया और पचास वाण मारकर इसको वहुत ही कुपित करदिया ॥ १ ॥ तव राधाके पुत्र कर्णने इतनेमें ही वाणोंसे अभिमन्युको वींधदिया सव शरीरमें वाण गुभजाने पर अभिमन्यु वहुत ही शोभा पाने लगा ॥ २ ॥ अभिमन्युने वड़े क्रोधमें भर वाण मार कर्णको लोहूलुहान करदिया, रक्तमें न्हाआहुआ कर्ण तव वडा शोभायमान हुआ ॥३॥ उन दोनों महात्माओंके शरीरमें वाण छिदे हुए थे और वे लोहूलुहान होरहे थे इस कारण वे फूलोंवाले टेसूके वृक्षोंकी समान शोभा पारहे थे ॥ ४ ॥ तदनन्तर अभिमन्युने विचित्र प्रकारसे लडनेवाले कर्णके छः शूर मंत्रियोंको घोड़े सारथी और ध्वजासहित नष्टकर दिया ५ और जराभी न घवडाकर दूसरे वड़े २ धनुषधारियोंको भी दश२वाण मारकर वींधडाला यह काम आश्चर्यकारक हुआ था ६ तथा अभिमन्युने मगधराजके पुत्रको सीधे जानेवाले छःवाणोंसे मारकर घोड़े और सारथिसहित तरुण

ग्रेण समुन्मथ्य ननाद विसृजन् शरान् ॥ ८ ॥ तस्य दौःशासनिर्विध्वा चतुर्भिश्चतुरो हयान् । सूतमेकेन विव्याध दशभिश्चार्जुनात्मजम् ॥ ९ ॥ ततो दौःशासनिं कार्ष्णिर्विध्वा सप्तभिराशुगैः । संरम्भाद्रक्तनयनो वाक्यमुच्चैरथाब्रवीत् ॥ १० ॥ पिता तवाहवं त्यक्त्वा गतः कापुरुषो यथा । दिष्ट्या त्वमपि जानीषे योद्धुं न त्वद्य मोक्ष्यसे ॥ ११ ॥ एतावदुक्त्वा वचनं कर्मारपरिमार्जितम् । नाराचं विससर्जास्मै तं द्रौणिस्त्रिभिराच्छिनत् ॥ १२ ॥ तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्वा शल्यं त्रिभिरताडयत् । तं शल्यो नवभिर्बाणैर्गार्ध्रपत्रैरताडयत् ॥ १३ ॥ हृद्यसंभ्रान्तवद्राजंस्तदद्भुतमि-

---

अश्वकेतुको भी मार गिराया ७ और जिसकी ध्वजामें हाथीका चिन्ह था ऐसे मार्तिकावतक देशके राजा भोजको क्षुरम नामक बाणसे मारकर बाणोंकी वर्षा करताहुआ अभिमन्यु गर्जनेलगा ८ तुरन्तही दुःशासनके पुत्रने चार बाणोंसे अभिमन्युके चारों घोडों को घायल कर एक बाणसे उसके सारथीको तथा दश बाणोंसे अभिमन्युको घायल करदिया ॥ ९ ॥ अभिमन्युने सात बाणोंसे दुःशासनके पुत्रको बींधदिया और क्रोधसे लाल २ आँखे करके दुःशासनके पुत्रसे चिल्लाकर कहनेलगा कि- १० अरे ! ओ !! तेरा पिता तो कापुरुषोंकी समान रणको छोड़कर भागगया और अब तू लडनेको आया है यह बड़े भाग्यकी बात है, परन्तु यह जान रख, कि-आज तू जीता नहीं जासकेगा ११ इतना कह लुहारके धार चढायेहुए बाणको दुःशासनके पुत्रके ऊपर छोडा परन्तु अश्वत्थामाने सामनेसे तीन बाण मारकर उसको काटडाला ॥१२॥ अर्जुनपुत्रने अश्वत्थामाकी ध्वजाको काटकर शल्यके तीन बाण मारे, हे राजन् ! शल्यने निडर होकर अभिमन्युके हृदयमें गीधके परोंबाले नौ बाण मारे, यह अचरजसा हुआ, अभिमन्युने बाणोंके प्रहारसे उसकी ध्वजाको काटडाला और उसके

वाभवत् । तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्वा हत्वोभौ पार्ष्णिसारथी १४
तं विव्याधायसैः षड्भिः सोपाक्रामद्रथान्तरम् । शत्रुञ्जयं चन्द्रकेतुं मेघवेगं सुवर्चसम् ॥ १५ ॥ सूर्यभासञ्च पञ्चैतान् हत्वा
विव्याध सौबलम् । तं सौबलस्त्रिभिर्विध्वा दुर्योधनमथाब्रवीत्१६
सर्व एनं प्रमथ्नीमः पुरैकैकं हिनस्ति नः । अथाब्रवीत्पुनर्द्रोणं
कर्णो वैकर्त्तनो रणे ॥ १७ ॥ पुरा सर्वान् प्रमथ्नाति ब्रूह्यस्य
वधमाशु नः । ततो द्रोणो महेष्वासः सर्वांस्तान् प्रत्यभाषत १८
अस्ति वास्यान्तरं किञ्चित् कुमारस्यापि पश्यत । अण्वप्यस्यान्तरं
ह्यद्य चरतः सर्वतो दिशम् ॥ १९ ॥ शीघ्रतां नरसिंहस्य पाण्डवेयस्य पश्यत । धनुर्मण्डलमेवास्य रथमार्गेषु दृश्यते ॥ २० ॥

दोनों पार्श्वरक्षक तथा सारथीको मारकर उसको भी लोहेके छः बाणोंसे बींधदिया, शल्य तुरन्त ही दूसरे रथ पर कूदगया फिर अभिमन्युने शत्रुञ्जय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा और सूर्यभास इन पाँचोंको मारकर शकुनिको घायल करदिया, शकुनिने उसको तीन बाणोंसे घायल करके दुर्योधनसे कहा कि-१३-१६ इसको सब मिलकर कुचलदो, यदि अलग २ होकर लडोगे तो यह एक २ करके सबोंको मारडालेगा तदनन्तर वैकर्तन कर्णने द्रोणसे कहा-कि-॥१७-॥ यह पहिलेसे ही हम सबोंको मसले डालता है इसको मारनेका उपाय आप शीघ्र ही बताइये तब महाधनुषधारी द्रोणने उन सबोंसे कहा कि-१८ तुममें कोई ऐसा है जो इस कुमारको-मारनेका क्षणभरका भी अवसर देखता हो मनुष्योंमें सिंहकी समान पाण्डवपुत्र अभिमन्यु चारों दिशाओंमें घूमरहा है इसकी फुर्तीको तो देखो, यह कुमार इतनी फुर्तीसे बाणोंको चढाता और छोड़ता है,कि-रथोंके बीचमें केवल धनुष का मण्डल ही दिखाई देता है परन्तु यह कहाँ है,यह प्रतीत ही नहीं होता यह शत्रुनाशक सुभद्रानन्दन मेरे प्राणोंको पीडा दे

सन्दधानस्य विशिखान् शीघ्रञ्चैव विमुञ्चतः । आरुजन्नपि मे प्राणान् मोहयन्नपि सायकैः ॥२१॥ प्रहर्षयति मां भूयः सौभद्रः परवीरहा । अति मां नन्दयत्येष सौभद्रो विचरन् रणे ॥ २२ ॥ अन्तरं यस्य संरब्धा न पश्यन्ति महारथाः । अस्यतो लघुहस्तस्य दिशः सर्वा महेषुभिः ॥ २३ ॥ न विशेषं प्रपश्यामि रणे गांडीवधन्वनः । अथ कर्णः पुनर्द्रोणमाहार्जुनिशराहतः ॥ २४ ॥ स्थातव्यमिति तिष्ठामि पीड्यमानोभिमन्युना । तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणाः ॥ २५ ॥ क्षिण्वन्ति हृदयं मेद्य घोराः पावकतेजसः । तमाचार्योऽब्रवीत् कर्णं शनकैः प्रहसन्निव ॥ २६ ॥ अभेद्यमस्य कवचं युवा चाशुपराक्रमः । उपदिष्टा मया चास्य पितुः कवचधारणा ॥ २७ ॥ तामेष निखिलां वेत्ति ध्रुवं परपुरञ्जयः ।

रहा है और मुझे घबड़ाये देता है तो भी मुझे बहुत ही प्रसन्न कर रहा है, अभिमन्युका पराक्रम देखकर मुझे बड़ाही हर्ष होताहै, अभिमन्यु रणमें घूमकर मुझे परम प्रसन्न कररहा है १९--२२ क्षोभमें भरजानेपर भी महारथी इसका एक भी छिद्र नहीं देखपाते हैं, यह युद्धमें बड़े २ अस्त्रोंको चारों ओर फेंकरहा है, अतः अर्जुन में और इसमें मुझे कुछ भी अन्तर नहीं मालूम होता तदनन्तर अभिमन्युके बाणोंके प्रहारसे घायल हुए कर्णने द्रोणसे फिर कहा कि-॥ २३ ॥२४॥ अभिमन्युके बाणोंसे पीड़ा पाने पर मैं इस लिये ही खड़ा हूँ कि मुझे खड़ा रहना चाहिये आज तेजस्वी अभिमन्यु कुमारके परमदारुण अग्निकी समान तेजवाले बाण मेरे हृदयको चीरे डालते हैं, यह सुन द्रोणाचार्य खिल खिलाकर हँसपड़े और फिर धीरेसे कर्णसे कहा कि-॥ २५-२६ ॥ इसका कवच अभेद्य है और यह तरुण कुमार बड़ा पराक्रमी है, मैंने इसके पिताको कवच धारण करनेकी जो विद्या सिखाई थी, उस सब विद्याको यह शत्रुके नगरको जीतनेवाला कुमार भली

शक्यं त्वस्य धनुश्छेत्तुं ज्या च बाणैः समाहितैः ॥ २८ ॥ अभीषूंश्च हयांश्चैव तथोभौ पार्ष्णिसारथी । एतत् कुरु महेष्वास राधेय यदि शक्यसे ॥ २९ ॥ अथैनं विमुखीकृत्य पश्चात् प्रहरणं कुरु । सधनुष्को न शक्योयमपि जेतुं सुरासुरैः ॥३०॥ विरथं विधनुष्कञ्च कुरुष्वैनं यदीच्छसि । तदाचार्यवचः श्रुत्वा कर्णो वैकर्त्तनस्त्वरन् ॥ ३१ ॥ अस्यतो लघुहस्तस्य पृषत्कैर्धनुराच्छिनत् । अश्वानस्यावधीद्भोजो गौतमः पार्ष्णिसारथी ॥ ३२ ॥ शेषास्तु छिन्नधन्वानं शरवर्षैरवाकिरन् । त्वरमाणास्त्वराकाले विरथं षण्महारथाः ॥ ३३ ॥ शरवर्षैरकरुणा बालमेकमवाकिरन् । सच्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ३४ ॥ खड्गचर्मधरः श्रीमानुत्पपात विहायसा । मार्गैः स कौशिकाद्यैश्च लाघवेन बलेन

प्रकार जानता है, अतः हे महाधनुर्धर राधापुत्र कर्ण ! तू यदि बाणोंको स्थिर करके इसके धनुष, प्रत्यञ्चा, रथकी रास, दोनों घोड़े, पार्श्वरक्षक और सारथिको काट सकता हो तो काट डाल ॥२७-२९॥ फिर इसको रणमेंसे भगा और पीछेसे इसका नाश कर, परन्तु जबतक इसके हाथमें धनुष है तबतक देवता और असुर इकट्ठे होकर भी इसको नहीं जीतसकते, ॥३०॥ यदि तेरी इच्छा हो तो इसको रथ और धनुषहीन करदे, आचार्यकी इस बातको सुनकर सूर्यपुत्र कर्णने शीघ्रता कर, फुर्तीसे बाणोंको छोड़नेवाले अभिमन्युके धनुषको बाणोंसे काटडाला, कृतवर्माने इसके घोड़ोंको और कृपाचार्यने पार्श्वरक्षकोंको तथा सारथीको मारडाला ३१-३२ बाकी महारथी एकसाथ, रथ और धनुषरहित अभिमन्युके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करनेलगे; निर्दयी छः महारथी इकट्ठे होकर बालक पर बाण बरसानेलगे, टूटेहुए धनुषवाले रथहीन अभिमन्युने तो भी अपने धर्मको पालन किया ॥ ३३-३४ ॥ श्रीमान् अभिमन्यु ढाल तलवार ले सर्वतोभद्र आदि मण्डलोंसे, फुर्तीके साथ बलसे

च ॥ ३५ ॥ आशु निर्व्यचरद्व्योम्नि भृशं वै पक्षिराडिव । मय्येव निपतत्येष सासिरित्यूर्ध्वदृष्टयः ॥ ३६ ॥ विव्यधुस्तं महेष्वासं समरे छिद्रदर्शिनः । तस्य द्रोणोच्छिनन्मुष्टौ खड्गं मणिमयत्सरुम् ॥ ३७ ॥ क्षुरप्रेण महातेजास्त्वरमाणः सपत्नजित् । राधेयो निशितैर्बाणैर्व्यधमच्चर्म चोत्तमम् ॥ ३८ ॥ व्यसिश्चर्मेषुपूर्णाङ्गः सोन्तरिक्षात् पुनः क्षितिम् । आस्थितश्चक्रमुद्यम्य द्रोणं क्रुद्धोभ्यधावत ॥ ३९ ॥ स चक्ररेणूज्ज्वलशोभिताङ्गो बभावतीवोज्ज्वलचक्रपाणिः । रणेभिमन्युः क्षणमास रौद्रः स वासुदेवानुकृतिं प्रकुर्वन् ॥ ४० ॥ स्रुतरुधिरकृतैकरागवक्त्रो भ्रुकुटिपुटाकुटिलोतिसिंह-

गरुड़की समान, आकाशमें उड़कर घूमनेलगा, इससमय छिद्र देखनेवाले योधाओंने आकाशकी ओरको ऊँची दृष्टिकी, और यह तलवार मेरे ही ऊपर टूट पड़ेगी, ऐसा विचार कर उस महाधनुषधारीके ऊपर बाणोंका प्रहार करनेलगे शत्रुका पराजय करनेवाले महातेजस्वी द्रोणने क्षुरप्र नामक बाण मारकर उसके हाथकी मुट्ठीमें ही मणिमय मूठवाली तलवारके टुकड़े टुकड़े कर डाले ॥३५–३७॥ शत्रुजित् महातेजस्वी राधापुत्र कर्णने क्षुरप्र नामक बाणसे अभिमन्युकी उत्तम ढालको काटडाला ॥ ३८ ॥ ढाल तलवारके नष्ट होजाने पर और सब शरीरमें बाण घुसजाने पर भी अभिमन्यु आकाशसे उतरकर पृथ्वी पर खड़ा होगया और चक्र लेकर द्रोणाचार्यकी ओरको दौड़ा ॥ ३९ ॥ इससमय चक्रके प्रकाश तथा रणकी धूलिसे अभिमन्युका शरीर शोभा पारहा था, उसके हाथमें चमचमाता हुआ चक्र था और उसकी सूरत भयानक दीखरही थी उसने क्षणभरके लिये रणमें चक्रपाणि श्रीकृष्णका अनुकरण किया था ॥ ४० ॥ रुधिरसे लाल२ वस्त्रोंवाला, टेढ़ी भ्रकुटिसे व्याकुलसा प्रतीत होताहुआ, सिंहकी

नादः । प्रभुरमितबलो रणेभिमन्युर्नृपवरमध्यगतो भृशं व्यराजत् ४१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युविरथकरणे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सञ्जय उवाच। विष्णोः स्वसुर्नन्दकरः स विष्णवायुधभूषणः । रराजातिरथः संख्ये जनार्दन इवापरः ॥ १ ॥ मारुतोद्धूतकेशान्तमुद्यतारिवरायुधम् । वपुः समीक्ष्य पृथ्वीशा दुःसमीक्ष्यं सुरैरपि २ तच्चक्रं भृशमुद्विग्नाः सञ्चिच्छिदुरनेकधा । महारथस्ततः कार्ष्णिः संजग्राह महागदाम् ॥३॥ विधनुः स्यन्दनासिस्तैर्विचक्रश्चारिभिः कृतः । अभिमन्युर्गदापाणिरश्वत्थामानमार्दयत् ॥ ४ ॥ स गदामुद्यतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमशनीमिव । अपाक्रामद्रथोपस्थाद्विक्रमांस्त्रीन्नरर्षभः ॥ ५ ॥ तस्याश्वान् गदया हत्वा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।

समान गर्जता हुआ समर्थ अभिमन्यु इससमय राजाओंके मध्यमें खड़ाहुआ बड़ी ही शोभा पारहा था ॥ ४१ ॥ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि–श्रीकृष्णकी बहनका पुत्र और विष्णुके आयुध (चक्र)को धारण करनेवाला अतिरथी अभिमन्यु दूसरे चक्रपाणि (कृष्ण) सा शोभा पानेलगा ॥ १ ॥ उस समय अभिमन्युके केश उड़रहे थे वह ऊँची उठाई हुई भुजामें चक्र नामके उत्तम आयुधको धारण कियेहुए था और उस समय उसका शरीर ऐसा तपतमा रहा था, कि–देवता भी उसकी ओरको नहीं देख सकते थे, उसके ऐसे रूपको देखकर राजे घबड़ागए, परन्तु उन्होंने अभिमन्युके चक्रके सैंकड़ों टुकड़े करडाले जब शत्रुओंने धनुष, तलवार और रथ तथा चक्रके टुकड़े२ करडाले, तब महारथी अभिमन्युने हाथसे बड़ीभारी गदा उठाई और अश्वत्थामाके मारी ॥ २–४ ॥ परन्तु अश्वत्थामा, जलतेहुए वज्रकी समान गदाको अपने ऊपर आतीहुई देख रथके ऊपरसे तीन पैर पीछेको

शराचिताङ्गः सौभद्रः श्वाविद्वत्समदृश्यत ॥ ६ ॥ ततः सुबलदायादं कालिकेयमपोथयत् । जघान चास्यानुचरान् गांधारान् सप्तसप्ततिम् ॥ ७ ॥ पुनश्चैव वसातीयान् जघान रथिनो दश । केकयानां रथान् सप्त हत्वा च दश कुञ्जरान् ॥ ८ ॥ दौःशासनिरथं साश्वं गदया समपोथयत् । ततो दौःशासनिः क्रुद्धो गदामुद्यम्य मारिष ॥ ९ ॥ अभिदुद्राव सौभद्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् । तावुद्यतगदौ वीरावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥ १० ॥ भ्रातृव्यौ सम्प्रजह्राते पुरेव त्र्यम्बकान्धकौ । तावन्योन्यं गदाग्राभ्यामाहत्य पतितौ क्षितौ ॥ ११ ॥ इन्द्रध्वजाविवोत्सृष्टौ रणमध्ये परन्तपौ । दौःशासनिरथोत्थाय कुरूणां कीर्त्तिवर्धनः ॥ १२ ॥ उत्तिष्ठमानं

हटगया ॥ ५ ॥ इतने पर भी अभिमन्युने गदासे उसके घोड़े, सारथी और पार्श्वरक्षकोंको मारडाला, इससमय बाणोंसे भरेहुए शरीरवाला अभिमन्यु सेईकी समान दीखता था ॥६॥ तदनन्तर अभिमन्युने सुबलके पुत्र कालिकेयको तथा उसके अनुचर सत्तर गान्धारोंको गदासे मारडाला ॥ ७ ॥ फिर अभिमन्युने दश वसातीय महारथियोंको मारडाला. सात केकय महारथियोंका संहार करडाला और दश हाथियोंको कुचल डाला ॥ ८ ॥ तदनन्तर अभिमन्युने गदासे दुःशासनके पुत्रके रथको और घोड़ोंको मारडाला, हे राजन्! तब तो दुःशासनके पुत्रको बडा क्रोध चढा और वह गदा उठाकर अभिमन्युके ऊपर झपटा और अभिमन्युसे कहने लगा, कि—खडा रह२। वे दोनों वीर शत्रु एक दूसरेको मारने की इच्छासे गदाओंको उठाकर पहिले त्र्यम्बक (शिव) और अन्धकासुर जैसे लडे थे तैसे लडने लगे. वे दोनों आपसमें गदाके अग्रभागसे एक दूसरेको मारकर पृथिवी पर गिरपड़े ॥ ९–११ ॥ जैसे इन्द्रकी ध्वजा गिरजाय तैसे ही वे दोनों गिर पड़े, परन्तु कुरुकुलकी कीर्त्ति बढानेवाला दुःशासनका पुत्र एकसाथ

सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत् । गदावेगेन महता व्यायामेन च
मोहितः ॥ १३ ॥ विचेता न्यपतद्भूमौ सौभद्रः परवीरहा । एवं
विनिहतो राजन्नेको वहुभिराहवे ॥ १४ ॥ क्षोभयित्वा चमूं
सर्वां नलिनीमिव कुञ्जरः । अशोभत हतो वीरो व्याधैर्वनगजो
यथा ॥ १५ ॥ तं तथा पतितं शूरं तावकाः पर्यवारयन् । दावं
दग्ध्वा यथा शान्तं पावकं शिशिरात्यये ॥ १६ ॥ विमृद्य नगशृंगाणि
सन्निवृत्तमिवानिलम् । अस्तं गतमिवादित्यं तप्त्वा भारतवाहिनीम्
॥ १७ ॥ उपप्लुतं यथा सोमं संशुष्कमिव सागरम् ।
पूर्णचन्द्राभवदनं काकपक्षवृताक्षिकम् ॥ १८ ॥ तं भूमौ पतितं
दृष्ट्वा तावकास्ते महारथाः । मुदा परमया युक्ताश्चुक्रुशुः सिंहव-

उठकर खडा होगया और उसने पृथिवी परसे उठते क्षणही अभिमन्युके
शिरमें गदामारी, बड़े वेगवाली गदाके प्रचण्ड प्रहारसे और
परिश्रमके कारण शत्रुसंहारकर्त्ता अभिमन्यु व्याकुल और मूर्छित
होकर पृथिवीपर गिरपडा इसप्रकार हे राजन् ! वहुतसे योधाओं
ने मिलकर अभिमन्युको रणमें मारा था ॥ १२–१४ ॥ वनका
हाथी कमलनियोंको नष्ट करनेके अनन्तर जैसे व्याधोंके हाथसे
मारा जाकर शोभापाता है तैसेंही सब सेनाका संहार करनेके अनन्तर
योधाओंके हाथसे मराहुआ अभिमन्यु रणमें पडाहुआ शोभा
पारहा था ॥ १५ ॥ ग्रीष्म ऋतुमें वनको भस्म करके शान्तहुए
दावानलकी समान सेनाका संहार कर घिरेहुए, अभिमन्युको
तुम्हारे योधाओंने घेरलिया ॥ १६ ॥ पर्वतोंके शिखरोंको तोड़कर
शांतहुए वायु और सूर्यकी समान भारतीय सेनाको सन्ताप देकर
अस्तहुए अभिमन्युको तुम्हारे योधाओंने घेरलिया ॥ १७ ॥ राहुसे
ग्रसेहुए चन्द्रमा और सूखेहुए समुद्रकी समान पड़ेहुए पूर्ण
चन्द्रमाकी समान मुख वाले और शिरकी अलकोंसे ढकीहुई
आँखोंवाले अभिमन्युको घेरकर तुम्हारे योधा सिंहकी समान

न्मुहुः ॥१९॥ आसीत् परमको हर्षस्तावकानां विशाम्पते । इतरेषान्तु वीराणां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ २० ॥ अन्तरिक्षे च भूतानि प्राक्रोशन्त विशाम्पते । दृष्ट्वा निपतितं शूरं च्युतं चन्द्रमिवाम्बरात् ॥ २१ ॥ द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्त्तराष्ट्रैर्महारथैः । एकोयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः ॥२२॥ तस्मिन् विनिहते वीरे बह्वशोभत मेदिनी । द्यौर्यथा पूर्णचन्द्रेण नक्षत्रगणमालिनी ॥ २३ ॥ रुक्मपुङ्खैश्च सम्पूर्णा रुधिरौघपरिप्लुता । उत्तमाङ्गैश्च शूराणां भ्राजमानैः सकुण्डलैः ॥२४॥ विचित्रैश्च परिस्तोमैः पताकाभिश्च संवृता । चामरैश्च कुथाभिश्च प्रविद्धैश्चाम्बरोत्तमैः ॥२५॥ तथाश्वनरनागानामलङ्कारैश्च सुप्रभैः । खड्गैः सुनिशितैः पीतैर्निर्मुक्तैर्भुजगैरिव ॥२६॥ चापैश्च विविधैश्छिन्नैः शक्त्यृष्टिप्रासकम्पनैः । विविधैश्चायुधैश्चान्यैः संवृता भूरशोभत२७

वारम्वार गर्जनेलगे ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे राजन् ! इस समय तुम्हारे योधाओंको बड़ा हर्ष हुआ और दूसरे वीरोंके नेत्रोंमेंसे आँसू टपकनेलगे॥२०॥आकाशमेंसे टूटकर गिरेहुए चंद्रमाकी समान अभिमन्युको गिराहुआ देखकर आकाशमेंके प्राणी विलापकर कहने लगे, कि-॥२१॥धृतराष्ट्रके द्रोण कर्ण आदि छः महारथियोंने इकट्ठे होकर अकेले राजकुमारको मारडाला, यह भूमिपर पडा है, इसे हम धर्म नहीं समझते ॥ २२ ॥ इस वीर पुरुषके मारे जानेपर पूर्णचंद्रमासे नक्षत्रोंके समूहरूप मालावाला आकाश जैसे शोभापाता है तैसेही पृथिवीभी इस वीरसे शोभा पानेलगी है ॥२३॥ सुनहरी पूँछवाले बाणोंसे, रुधिरके प्रवाहोंसे, वीरोंके कुण्डलोंवाले शोभा पातेहुए मस्तकोंसे, विचित्र भाले, पताकायें, झूलें, फटेहुए उत्तम वस्त्र, घोड़े मनुष्य, हाथी, तथा उनके चमकतेहुए गहनोंसे, कैंचुली रहित सर्पकी समान तेज पानी पिलायेहुए खुले खड्गोंसे और नानाप्रकारके टूटेहुए धनुष, ऋष्टि, प्रास, कम्पन तथा नानाप्रकारके

वाजिभिश्चापि निर्जीवैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः । सारोहैर्विषमा भूमिः सौभद्रेण निपातितैः ॥ २८ ॥ साङ्कुशैः समहामात्रैः सवर्मायुधकेतुभिः । पर्वतैरिव विध्वस्तैर्विशिखैर्मथितैर्गजैः ॥ २९ ॥ पृथिव्यामनुकीर्णैश्च व्यश्वसारथियोधिभिः । ह्रदैरिव प्रक्षुभितैर्हतनागै रथोत्तमैः ॥ ३० ॥ पदातिसंघैश्च हतैर्विविधायुधभूषणैः । भीरूणां त्रासजननी घोररूपाभवन्मही ॥ ३१ ॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् । तावकानां परा प्रीतिः पाण्डूनाञ्चाभवद्व्यथा ॥ ३२ ॥ अभिमन्यौ हते राजन् शिशुकेऽप्राप्तयौवने । सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३३ ॥ दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा सौभद्रे विनिपातिते । अजातशत्रुस्तान् वीरानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३४ ॥ स्वर्गमेष गतः शूरो यो हतो न पराङ्मुखः । संस्त-

शस्त्रोंसे ढकीहुई पृथिवी शोभा पानेलगी ॥ २४-२७ ॥ अभिमन्यु के मारेहुए, जीवित श्वास लेने और लोहूलुहानहुए घोड़े और घुड़सवारोंसे पृथिवी बडी ऊँची-नीची दीखती थी ॥ २८ ॥ अभिमन्युके बाणोंसे मरेहुए पर्वताकार अंकुश हाथीवान, कवच, और पताकाओंवाले हाथियोंके प्राणरहितहुए सारथियोंसे, योधाओंसे तथा क्षुभितहुए सरोवरोंकी समान क्षोभको प्राप्तहुए बडे२ हाथियोंका नाश करनेवाले महारथियोंसे तथा भाँति२के आभूषणोंवाले पैदलोंके समूहोंसे भयानक दीखतीहुई रणभूमि डरपोकोंके मनमें डर उपजाने लगी ॥ २८-३१ ॥ चन्द्र और सूर्यकी समान कान्तिवाले अभिमन्युको इसप्रकार पृथिवीपर पडाहुआ देखकर तुम्हारे योधाओंको परम हर्ष और पाण्डवोंके मनमें परम खेदहुआ ३२ जिसको अभी पूरा२ यौवन भी प्राप्त नहीं हुआ था ऐसे बालक अभिमन्युके मारे जानेपर युधिष्ठिरके देखते२ सब सेना भागने लगी ॥ ३३ ॥ अभिमन्युके मारे जानेसे सब सेनाको भागतीहुई देखकर अजातशत्रु युधिष्ठिरने उन वीरोंसे यह बात कही, कि-३४

ऽभयत माभैष्ट विजेष्यामो रणे रिपून् ॥३५॥ इत्येवं स महातेजा दुःखितेभ्यो महाद्युतिः । धर्मराजो युधां श्रेष्ठो ब्रुवन्दुःखमपानुदत् ॥ ३६ ॥ युद्धे ह्याशीविषाकारान् राजपुत्रान् रणे रिपून् । पूर्वं निहत्य संग्रामे पश्चादार्जुनिरभ्ययात् ॥ ३७ ॥ हत्वा दशसहस्राणि कौसल्यञ्च महारथम् । कृष्णार्जुनसमः कार्ष्णिः शक्रलोकं गतो ध्रुवम् ॥ ३८ ॥ रथाश्वनरमातङ्गान् विनिहत्य सहस्रशः । अवितृप्तः स संग्रामादशोच्यः पुण्यकर्मकृत् । गतः पुण्यकृतांल्लोकान् शाश्वतान् पुण्यनिर्जितान् ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
अभिमन्युवधे एकोनपंचाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

सञ्जय उवाच । वयन्तु प्रवरं हत्वा तेषां तैः शरपीडिताः । निवेशायाभ्युपायामः सायान्हे रुधिरोक्षिताः ॥ १ ॥ निरीक्षमा-

---

रणमें मरनेका अवसर आने पर भी अभिमन्युने पीठ नहीं दिखाई इससे वह स्वर्गमें गया है, हे वीरों ! तुम डरो मत, धीरज धरो, हम शत्रुओंको जीतेंगे ॥ ३५ ॥ महातेजस्वी योधाओंमें श्रेष्ठ धर्मराजने दुःखितहुए योधाओंसे ऐसा कहकर उनके दुःखको दूर किया ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्ण और अर्जुनकी समान पराक्रमी अभिमन्यु युद्धमें जहरीले सर्पोंकी समान दशसहस्र राजकुमार और महारथी कौसलोंको मारकर मरा है अतः यह निःसन्देह स्वर्गलोकको गया है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सहस्रों रथ, घोडे, मनुष्य और हाथियोंको मारने पर भी अभिमन्युको तृप्ति नहीं हुई थी, अतः पुण्यकर्म करनेवाला अभिमन्यु, पुण्यसे प्राप्त होनेवाले, पुण्यवानोंके अक्षय लोकोंमें गया है, इसलिये वह शोक करनेके योग्य नहीं है ॥ ३९ ॥ उञ्चासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥

सञ्जयने कहा कि–हे महाराज धृतराष्ट्र ! हम उस श्रेष्ठपुरुषको मारकर शत्रुओंके बाणोंसे पीड़ित तथा लोहूलुहान होकर

णास्तु वयं परे चाप्यगमन् शनैः । अपयाताः महाराज ग्लानिं प्राप्ता विचेतसः ॥ २ ॥ ततो निशाया दिवसस्य चाशिवः शिवारुतैः सन्धिरवर्त्तताद्भुतः । कुशेशयापीडनिभे दिवाकरे विलम्बमानेऽस्तमुपेत्य पर्वतम् ॥ ३ ॥ वरासिशक्त्यृष्टिवरूथचर्मणां विभूषणानाञ्च समाक्षिपन् प्रभाः । दिवं च भूमिञ्च समानयन्निव प्रियां तनुं भानुरुपैति पावकम् ॥ ४ ॥ महाभ्रकूटाचलशृंगसन्निभैर्गजैरनेकैरिव वज्रपातितैः । सवैजयन्त्यंकुशवर्मयन्तृभिर्निपातितैर्नष्टगतिश्चिता क्षितिः ॥ ५ ॥ हतेश्वरैश्चूर्णितपत्त्युपस्करैर्हताश्वसूतैर्विपताककेतुभिः । महारथैर्भूः शुशुभे विचूर्णितैः पुरैरिवामित्रहतैर्नराधिप ॥६॥ रथाश्ववृन्दैः सहसादिभिर्हतैः प्रविद्धभाण्डाभरणैः

सायङ्कालके समय छावनीकी ओरको चलदिये ॥ १ ॥ और जाते२ हमने देखा, कि-शत्रु उदास मन और अचेतसे होकर धीरे२अपनी छावनीकी ओरको जारहे थे ॥ २ ॥ सूर्य कमलाकार मुकुटरूप होकर अस्ताचलका आश्रय लेनेलगा और अशुभ गीदडियोंका शब्द होनेलगा, इससे मालूम हुआ, कि-दिनरात्रिकी अद्भुत सन्धिरूप अमङ्गल संध्या होगई ॥ ३ ॥ सूर्यने श्रेष्ठ तलवार, शक्ति, ऋष्टि, वरूथ, ढाल और आभूषणोंकी कांतिको हरलिया है और आकाश तथा पृथिवीको एकाकार करडाला है और अपनी प्यारी मूर्त्ति अग्निमें स्वयं प्रवेश कररहा है ॥ ४ ॥ इस समय वज्रसे गिरायेहुए महामेघ और पर्वतोंके शिखरोंकी समान आकार वाले, वैजयन्ती माला, अंकुश, कवच और हाथीवानों सहित अनेकों हाथियोंसे भरजानेके कारण रणभूमि पर चलना कठिन होगया ॥ ५ ॥ हे राजन् ! मारेहुए सेनापति, चूर२हुए,पैदलोंके सामान,जिनके घोडे और सारथी मारेगये ऐसे झण्डी तथा केतुशून्य महारथ नष्ट होकर पृथिवीमें पडे थे, वे शत्रुओंके नष्ट कियेहुए नगरोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ ६ ॥

पृथग्विधैः । निरस्तजिह्वादशनान्त्रलोचनैर्धरा बभौ घोरविरूपदर्शना ॥ ७ ॥ प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधा विपन्नहस्त्यश्वरथानुगा नराः । महार्हशय्यास्तरणोचितास्तदा क्षितावनाथा इव शेरते हताः ॥८॥ अतीवहृष्टाः श्वसृगालवायसा बकाः सुपर्णाश्च वृकास्तरक्षवः । वयांस्यसृक्पान्यथ रक्षसां गणाः पिशाचसंघाश्च सुदारुणा रणे ॥ ९ ॥ त्वचो विनिर्भिद्य पिबन् वसामसृक् तथैव मज्जाः पिशितानि चाश्नुवन् । वपां विलुम्पन्ति हसन्ति गांति च प्रकर्षमाणाः कुणपान्यनेकशः ॥१०॥ शरीरसंघातवहा ह्यसृग्जला रथोडुपा कुञ्जरशैलसंकटा । मनुष्यशीर्षोपलमांसकर्दमा प्रविद्धनानाविधशस्त्रमालिनी ॥ ११ ॥ भयावहा वैतरणीव दुस्तरा प्रव-

---

जिनकी जीभ दाँत, आँतड़ियें और नेत्र बाहरको निकल रहे थे, तथा जिनके वस्त्राभूषण बिथरहे थे, ऐसे सवारों सहित मारेहुए घोडे और रथोंसे रणभूमि विकराल प्रतीत होती थी ॥७॥ छिन्न भिन्न कवच, गहने, अम्बारियें और आयुधवाले तथा विपत्तिमें फँसगए हैं हाथी, घोड़े, रथ और अनुचर जिनके ऐसे बहुमूल्य शय्याओं पर शयन करनेके योग्य पुरुष मरकर अनाथोंकी समान पृथिवी पर शयन कररहे थे ॥ ८ ॥ कुछही देरमें उनको देखकर कुत्ते, गीदड़, कौए, बगले, गीध भेड़िये, मृगोंको खानेवाले तथा दूसरे रक्त पीनेवाले पक्षी, राक्षस और महाभयङ्कर पिशाचोंके ठहके ठह अत्यन्त प्रसन्न हो खालको चीरकर रक्त पीनेलगे, वसा, मज्जा मांस और वपाको हँसते२ खानेलगे तथा लोथोंकी आपस में खेंच तान करनेलगे ॥ ९ ॥१०॥ शरीरोंकी ढेरियोंको बहानेवाली, रक्तरूप जलवाली, रथरूप नावोंवाली, हाथीरूप पर्वतों से भरी, मनुष्योंके शिररूप लुढकते पत्थरोंवाली, मांसरूप कीचडवाली, छिन्न भिन्न हुए नानाप्रकारके शस्त्रोंकी मालावाली वैतरणीकी समान कठिनसे तरने योग्य, रणके मध्यमें योधाओं

क्षिता योधवरैस्तदा नदी । उवाह मध्येन रणाजिरे भृशं भयावहा जीवमृतप्रवाहिनी ॥ १२ ॥ पिवन्ति चाश्नन्ति च यत्र दुर्दृशाः पिशाचसंघास्तु नदन्ति भैरवाः । सुनन्दिताः प्राणभृतां क्षयंकराः समानभक्षाः श्वसृगालपक्षिणः ॥ १३ ॥ तथा तदायोधनमुग्रदर्शनं निशामुखे पितृपतिराष्ट्रवर्धनम् । निरीक्षमाणाः शनकैर्जहुर्नराः समुत्थितानृत्तकवन्धसंकुलम् ॥ १४ ॥ अपेतविध्वस्तमहार्हभूषणं निपातितं शक्रसमं महावलम् । रणेऽभिमन्युं ददृशुस्तदा जनाः व्यपोढहव्यं सदसीव पावकम् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
समरभूमिवर्णने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५० ॥

सञ्जय उवाच । हते तस्मिन् महावीर्ये सौभद्रे रथयूथपे । विमुक्तरथसन्नाहाः सर्वे निक्षिप्तकार्मुकाः ॥ १ ॥ उपोपविष्टा

की वहाई हुई भयंकर रक्तकी नदी जीवित मृतक सवको वहाने लगी ॥११ ॥ १२॥ दुष्ट दृष्टिवाले भयंकर पिशाच, मनुष्योंका नाश करनेवाले और मांसाहारी कुत्ते, गीदड तथा पक्षी हर्षमें भरकर रुधिर पीरहे थे, और मांस खारहे थे ॥ १३ ॥ यमलोकको वढानेवाले और जिसमें वहुतसे धड नाचरहे थे ऐसे रणाङ्गणको देखकर योधा धीरे२ अपनी छावनियोंमें चलेगए ॥१४॥ इस समय अभिमन्युके शरीरपरके वहुमूल्य आभूषण टूटगये थे, इन्द्रकी समान महावली अभिमन्यु रणभूमिमें पड़ा था, वह देखने वालोंको, वेदी पर विराजमान आहुतिरहित महाउज्ज्वल अग्निसा मालूम होता था ॥ १५ ॥ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥

सञ्जय कहता है कि–हे धृतराष्ट्र ! महारथियोंका पति महावीर अभिमन्यु मारागया, तव सव योधा रथमेंसे नीचे उतरपड़े और धनुषोंको रखकर राजा युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर वैठगये, और वे उसही युद्ध पर ध्यान देतेहुए शोकके साथ

राजानं परिवार्य युधिष्ठिरम् । तदेव युद्धं ध्यायन्तः सौभद्रगतमानसाः २ ततो युधिष्ठिरो राजा विललाप सुदुःखितः । अभिमन्यौ हते वीरे भ्रातृपुत्रे महारथे ॥ ३ ॥ द्रोणानीकमसम्बाधं मम प्रियचिकीर्षया । भित्त्वा व्यूहं प्रविष्टोऽसौ गोमध्यमिव केसरी ॥ ४ ॥ यस्य शूरा महेष्वासाः प्रत्यनीकगता रणे । प्रभग्ना विनिवर्त्तन्ते कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ५ ॥ अत्यन्तशत्रुरस्माकं येन दुःशासनः शरैः । क्षिप्रं ह्यभिमुखः संख्ये विसंज्ञो विमुखीकृतः ॥ ६ ॥ स तीर्त्वा दुस्तरं वीरो द्रोणानीकमहार्णवम् । प्राप्य दौःशासनिं कार्ष्णिः प्राप्तो वैवस्वतक्षयम् ॥७॥ कथं द्रक्ष्यामि कौन्तेयं सौभद्रे निहतेऽर्जुनम् । सुभद्रां वा महाभागां प्रियं पुत्रमपश्यतीम् ॥ ८ ॥ किंस्विद्वयमपेतार्थमक्लिष्टमसमञ्जसम् । तावुभौ प्रतिवक्ष्यामो हृषी-

अभिमन्युको याद करनेलगे ॥ १ ॥ २ ॥ राजा युधिष्ठिर अपने भाईके पुत्र महारथी अभिमन्युके मरणसे वड़े ही खिन्न होकर विलाप करनेलगे कि—॥ ३ ॥ ओः ! जैसे केहरी सिंह गौओंके समूहमें घुसजाता है, ऐसे ही मेरा प्यारा भतीजा मेरा प्रिय करनेके लिये द्रोणकी सेनामें व्यूहको तोड़कर घुसगया और किसीके रोकनेपरभी नहीं रुका ॥४॥ और अस्त्रविद्यामें चतुर तथा युद्ध करनेमें समर्थ जो महाधनुषधारी वीर उसकी रथसेनाकी ओर लड़नेको गए थे वे सव उससे डरकर भागगये ॥ ५ ॥ और जिसने हमारे परमशत्रु दुःशासनको सामने आनेपर वाणोंसे मूर्छित कर रणमेंसे भगादिया था ॥ ६ ॥ वह वीर अभिमन्यु कठिनसे तरने योग्य द्रोणसेनारूप वड़ेभारी समुद्रको तरकर दुःशासनके पुत्रके सामने लड़ताहुआ यमलोकको चलागया ! हा ! ॥ ७ ॥ हाय ! अभिमन्युके मारे जानेपर मैं अर्जुनको कैसे मुँह दिखाऊँगा और प्यारे पुत्रको न देखतीहुई सुभद्राको किसप्रकार मुख दिखाऊँगा ॥ ८ ॥ अरेरे ! श्रीकृष्ण और अर्जुनसे मैं ऐसे असमञ्जस

केशवधनञ्जयौ ॥ ९ ॥ अहमेव सुभद्रायाः केशवार्जुनयोरपि । प्रियकामो जयाकाङ्क्षी कृतवानिदमप्रियम् ॥ १० ॥ न लुब्धो बुध्यते दोषाँल्लोभान्मोहात् प्रवर्त्तते । मधुलिप्सुर्हि नापश्यं प्रपातमहमीदृशम् ॥ ११ ॥ यो हि भोज्ये पुरस्कार्यो यानेषु शयनेषु च । भूषणेषु च सोऽस्माभिर्बालो युधि पुरस्कृतः ॥ १२ ॥ कथं हि बालस्तरुणो युद्धानामविशारदः । सदश्व इव सम्बाधे विषमे क्षेममर्हति ॥ १३ ॥ नो चेद्धि वयमप्येनं महीमनुशयीमहि । बीभत्सोः कोपदीप्तस्य दग्धाः कृपणचक्षुषा ॥ १४ ॥ अलुब्धो मतिमान् ह्रीमान् क्षमावान् रूपवान्बली । वपुष्मान्मानकृद्वीरः प्रियः सत्यपराक्रमः ॥ १५ ॥ यस्य श्लाघन्ति विबुधाः कर्माण्यूर्जितकर्मणः ।

कठोर और निरर्थक अभिमन्युके मरणके वृत्तांतको कैसे कहूँगा?९ हाय! शुभ फल और विजयकी इच्छासे मैंने ही सुभद्रा, श्रीकृष्ण और अर्जुनका अप्रिय काम किया है ॥१०॥ लोभी पुरुष अपने दोषोंको नहीं देखता और लोभ तथा मोहसे कार्यसिद्धिमें ही लगा रहता है, जैसे मनुष्य मधुके लोभसे पर्वत पर चढ़ते समय यह नहीं देखता, कि–यहाँसे गिरपड़ूँगा तो क्या होगा?अहाहा! मैंने भी अपने ऐसे अधःपातका विचार ही नहीं किया११ अरेरे! जिस बालकको भोजन, सवारी, शयन, और गहनोंसे सजानेमें आगे करना चाहियेथा उसे हमने युद्धमें आगे धरदिया (और मरवादिया)॥ १२ ॥ युद्धके विषयमें अनजान एक तरुण कुमारको भयङ्कर युद्धमें मजबूत घोड़ेकी समान लड़नेको भेजदिया फिर वह कुशलसे कैसे लौटता? ॥ १३ ॥ यदि हम भी अभिमन्युके पीछे न मर जायँगे तो अर्जुनकी क्रोधभरी क्रूरदृष्टिसे भस्म होजायँगे१४ बुद्धिमान्, निर्लोभ, लज्जावान् क्षमावान्, रूपवान्, बलवान्, गठीले शरीरवाले मान देनेवाले, वीर, प्रिय, सत्यपराक्रमी और प्रचण्डपराक्रमी जिस अर्जुनके कर्मोंकी देवता भी प्रशंसा

निवातकवचान् जघ्ने कालकेयांश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥ महेन्द्रशत्रवो येन हिरण्यपुरवासिनः । अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण पौलोमाः सगणा हताः ॥ १७ ॥ परेभ्योप्यभयार्थिभ्यो यो ददात्यभयं विभुः । तस्यास्माभिर्न शकितस्त्रातुमप्यात्मजो वली ॥ १८ ॥ भयन्तु सुमहत् प्राप्तं धार्त्तराष्ट्रान्महावलान् । पार्थः पुत्रवधात्क्रुद्धः कौरवान् शोषयिष्यति ॥ १९ ॥ क्षुद्रः क्षुद्रसहायश्च स्वपक्षक्षयकारकः । व्यक्तं दुर्योधनो दृष्ट्वा शोचन् हास्यति जीवितम् ॥ २० ॥ न मे जयः प्रीतिकरो न राज्यं न चामरत्वं न सुरैः सलोकता । इमं समीक्ष्याप्रतिवीर्यपौरुषं निपातितं देववरात्मजात्मजम् ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
युधिष्ठिरविलापे एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

करते हैं, कि–इस पराक्रमीने निवातकवच और कालकेयोंको नष्ट कर डाला और जिसने पलक मारने मात्रके समयमें ही हिरण्यपुरमें रहनेवाले इन्द्रके शत्रुओंको अनुचरों सहित मार डाला और जो अभय चाहनेवाले शत्रुओंको भी अभय देता है उस अर्जुनके पुत्रकी हमसे रक्षा न होसकी ॥ १५–१८ ॥ और महावली धृतराष्ट्रके पुत्र भी अव बड़ी आपत्तिमें फँसगए हैं,क्योंकि–पुत्रके मारेजानेसे क्रोधमें भराहुआ अर्जुन कौरवोंको सुखाडालेगा ॥ १९ ॥ नीचोंसे सहायता पानेवाला अपने ही पक्षका नाश करनेवाला नीच दुर्योधन यह सव देखकर अवश्य ही शोकके साथ अपने प्राणोंको छोडदेगा ॥ २० वीर्य और पुरुषार्थमें इक्कड इन्द्रके पुत्र अर्जुनके पुत्रको मराहुआ देखकर अव मुझे विजय अच्छी नहीं लगती और अव देवता होना वा देवताओंका सहवास भी अच्छा नहीं लगता ॥२१॥ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥

सञ्जय उवाच । अथैनं विलपन्तं तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । कृष्णद्वैपायनस्तत्र आजगाम महानृषिः ॥ १ ॥ अर्चयित्वा यथान्यायमुपविष्टं युधिष्ठिरः । अब्रवीच्छोकसन्तप्तो भ्रातुःपुत्रवधेन च ॥ २ ॥ अधर्मयुक्तैर्बहुभिः परिवार्य महारथैः । युध्यमानो महेष्वासैः सौभद्रो निहतो रणे ॥३॥ वालश्च वालबुद्धिश्च सौभद्रः परवीरहा । अनुपायेन संग्रामे युध्यमानो विशेषतः ॥ ४ ॥ मया प्रोक्तः स संग्रामे द्वारं सञ्जनयस्व नः । प्रविष्टेऽभ्यन्तरे तस्मिन् सैन्धवेन निवारिताः ॥ ५ ॥ ननु नाम समं युद्धमेष्टव्यं युद्धजीविभिः । इदञ्चैवासमं युद्धमीदृशं यत् कृतं परैः ॥ ६ ॥ तेनास्मि भृशसन्तप्तः शोकवाष्पसमाकुलः । शमं नैवाधिगच्छामि चिन्तयानः

सञ्जयने कहा, कि--कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर इसप्रकार विलाप कर रहे थे, उस समय महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास तहाँ आपहुँचे १ युधिष्ठिरने उनकी यथायोग्य पूजा की और जव वह वैठगए तव भतीजेके मरनेके शोकसे सन्तप्त युधिष्ठिरने उनसे कहा, कि–२ हे व्यासजी महाराज ! सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु महाधनुर्धारी महारथियोंके साथ लड़रहा था, उसको छः अधर्मी महारथियोंने इकट्ठे हो रणमें घेरकर मारडाला ॥ ३ ॥ अभिमन्यु वडा समर्थ था, तो भी वालक और वालबुद्धि था, इसलिये रणमें उपायको विना विचारे ही लड़रहा था, मैंने उससे कहा, कि–इस चक्रव्यूहमें घुसनेके लिये द्वार वना उसने व्यूहके एक भागको तोड़कर द्वार वनादिया और उसमें घुसनेलगा, उसके पीछे २ हम भी घुसने लगे, परन्तु उस समय जयद्रथने हमें भीतर जानेसे रोकदिया ४-५ योधाओंको अपनी वरावरी वालेसे युद्ध करना चाहिये, परन्तु कौरवोंके अधर्मी महारथियोंने विषम (अनुचित) युद्ध किया है ६ इसकारण मैं वडा दुःखित होरहा हूँ और शोकके मारे आँसू भर २ आते हैं तथा वारम्वार विचार करने पर भी मेरे मनको

पुनः पुनः ॥ ७ ॥ सञ्जय उवाच । तं तथा विलपन्तं वै शोकव्याकुलमानसम् । उवाच भगवान् व्यासो युधिष्ठिरमिदं वचः ८ व्यास उवाच । युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । व्यसनेषु न मुह्यन्ति त्वादृशा भरतर्षभ ॥ ९ ॥ स्वर्गमेष गतः शूरः शत्रून् हत्वा वहून् रणे । अवालसदृशं कर्म कृत्वा वै पुरुषोत्तमः ॥ १० ॥ अनतिक्रमणीयो वै विधिरेष युधिष्ठिर । देवदानवगन्धर्वान्मृत्युर्हरति भारत ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर उवाच । इमे वै पृथिवीपालाः शेरते पृथिवीतले । निहताः पृतनामध्ये मृतसंज्ञा महावलाः ॥ १२ ॥ नागायुतवलाश्चान्ये वायुवेगवलास्तथा । त एते निहताः संख्ये तुल्यरूपा नरैर्नराः ॥ १३ ॥ नैषां पश्यामि हन्तारं प्राणिनां संयुगे क्वचित् । विक्रमेणोपसम्पन्नास्तपोवलसमन्विताः ॥ १४ ॥ जेत-

शान्ति नहीं होती ७ सञ्जयने कहा, कि-इसप्रकार शोकसे व्याकुलचित्त हो विलाप करतेहुए युधिष्ठिरसे भगवान् व्यासजीने यह वात कही८व्यासजीने कहा कि-हे महाप्राज्ञ ! सर्वशास्त्रविशारद भरतर्षभ युधिष्ठिर ! तुम्हारे समान पुरुष आपत्ति पड़नेपर मूढ़ नहीं वनजाते हैं ॥ ९॥ पुरुषोंमें श्रेष्ठ वीर अभिमन्युने रणमें वहुतसे शत्रुओंको मारकर महान् पुरुषकेसा काम किया है और वह स्वर्गको गया है ॥१०॥ हे भरतवंशी युधिष्ठिर! मृत्यु तो देवता राक्षस तथा गन्धर्वोंको भी नाश करता है,इसको कोई टाल नहीं सकता ॥ ११ ॥ युधिष्ठिरने कहा,कि-यह महावली राजे मरकर पृथ्वीमें सोरहे हैं तथा दश सहस्र हाथियोंका वल रखनेवाले और वायुकी समान वेगवाले अन्य राजे भी रणमें पड़े हैं, इनको रणमें इनकी समान रूपधारी मनुष्योंने ही मारा है ॥ १२-१३ ॥ ये सव पराक्रमी और तपोवलसे युक्त थे, इनको संग्राममें मारने वाला कोई मनुष्य हो यह मैं नहीं देखता अर्थात् इनको कोई मनुष्य नहीं मारसकता ॥ १४ ॥ जिन योधाओंके चित्तमें नित्य

च्यमिति चान्योन्यं येषां नित्यं हृदि स्थितम् । अथ चेमे हताः प्राज्ञाः शेरते विगतायुषः ॥ १५ ॥ मृता इति च शब्दोयं वर्त्तते च ततोर्थवत् । इमे मृता महीपालाः प्रायशो भीमविक्रमाः ॥ १६ ॥ निश्चेष्टा निरभीमानाः शूराः शत्रुवशं गताः । राजपुत्राश्च संरब्धा वैश्वानरमुखं गताः ॥ १७ ॥ अत्र मे संशयः प्राप्तः कुतः संज्ञा मृता इति । कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः कथं संहरते प्रजाः १८ हरत्यमरसंकाश तन्मे ब्रूहि पितामह । सञ्जय उवाच । तन्तथा परिपृच्छन्तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । आश्वासनमिदं वाक्यमुवाच भगवानृषिः १९ व्यास उवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । अकम्पनस्य कथितं नारदेन पुरा नृप ॥ २० ॥ स चापि राजा राजेन्द्र पुत्रव्यसनमुत्तमम् । अप्रसह्यतमं लोके प्राप्तवानिति मे मतिः २१

विजय पानेकी ही धुन सवार रहती थी वे बड़े बुद्धिमान् योधा भी आयु क्षीण होजानेसे मरकर पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ १५ ॥ इनके विषयमें 'मरगए' यह शब्द सार्थक हुआ है, शूर राजकुमार क्रोधमें भरकर युद्ध करते २ शत्रुओंके वशमें पडकर मरगए और अब इनका अभिमान गलगया तथा ये हाथ पैर भी नहीं हिला सकते १६-१७ यहाँ पर मुझे सन्देह होता है कि 'मरगए' यह नाम कैसे पड़ा और किसकी मृत्यु होती है ? मृत्यु कौन है ? मृत्यु कैसे होती है और प्रजाओंका संहार किसप्रकार करती है ? १८ हे देवसमान पितामह ! और यह मृत्यु परलोकको किसप्रकार लेजाती है, यह मुझे बताइये? सञ्जयने कहा, कि-कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने इस प्रकार बूझा, तब भगवान् वेदव्यासने शोकको शान्त करनेवाले वचन कहे ॥१९॥ व्यासजीने कहा, कि-हे राजन् ! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासको लोग कहा करते हैं, उसको पहले नारदजीने राजा अकम्पनसे कहा था ॥२०॥ हे राजेन्द्र ! मेरी समझमें उस राजाको भी इस लोकमें असह्य पुत्रशोक सहना पड़ा था१२

तदहं संप्रवक्ष्यामि मृत्योः प्रभवमुत्तमम् । ततस्त्वं मोक्ष्यसे दुःखात् स्नेहवन्धनसंश्रयात् ॥ २२ ॥ समस्तपापराशिघ्नं शृणु कीर्त्तयतो मम । धन्यमाख्यानमायुष्यं शोकघ्नं पुष्टिवर्द्धनम् ॥ २३ ॥ पवित्रमरिसंघघ्नं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् । यथैव वेदाध्ययनमुपाख्यानमिदन्तथा ॥ २४ ॥ श्रवणीयं महाराज प्रातर्नित्यं द्विजोत्तमैः । पुत्रानायुष्मतो राज्यमीहमानैः श्रियन्तथा ॥ २५ ॥ पुरा कृतयुगे तात ह्यासीद्राजा ह्यकम्पनः । स शत्रुवशमापन्नो मध्ये संग्राममूर्द्धनि ॥ २६ ॥ तस्य पुत्रो हरिर्नाम नारायणसमो वले । श्रीमान् कृतास्त्रो मेधावी युधि शक्रोपमो वली ॥ २७ ॥ स शत्रुभिः परिवृतो वहुधा रणमूर्द्धनि । व्यस्यन् वाणसहस्राणि योधेषु च गजेषु च ॥ २८ ॥ स कर्म दुष्करं कृत्वा संग्रामे शत्रुतापनः । शत्रुभिर्निहतः संख्ये पृतनायां युधिष्ठिर ॥ २९ ॥ स राजा प्रेतकृत्यानि

उस मृत्युकी श्रेष्ठ उत्पत्तिको मैं तुझसे कहता हूँ जिसको सुनकर तू दुःख और मोहके वन्धनसे छूटजायगा ॥ २२ ॥ यह आख्यान सकल पापोंको नष्ट करनेवाला, सुख देनेवाला, आयु वढानेवाला, शोकहर, पुष्ट करनेवाला, शत्रुसमूहका नाशक, महामङ्गलकारी और वेदाध्ययनकी समान पवित्र तथा फलदायक है ॥ २३-२४ ॥ चिरञ्जीवी पुत्र, राज्य और लक्ष्मीको चाहनेवाले उदार राजाओंको यह कथा सर्वदा प्रातःकालमें सुननी चाहिये ॥ २५ ॥ हे तात ! पहिले सत्ययुगमें अकम्पन नामका एक राजा था, वह संग्राममें शत्रुओंके वशमें पड़गया २६ उसके हरि नामका एक पुत्र था, वह पुत्र वलमें नारायणकी समान श्रीमान् अस्त्रविद्यामें कुशल वुद्धिमान और युद्ध करनेमें इन्द्रकी समान था २७ वह रणके मुहाने पर शत्रुओंसे घिरगया, उस समय वह कुमार योधा और हाथियों पर सहस्रों वाण वरसानेलगा २८। वह शत्रुतापन रणमें दुष्करकर्म करके सेनाके वीचमें शत्रुओंके हाथसे मारा

तस्य कृत्वा शुचान्वितः । शोचन्नहनि रात्रौ च नालभत्सुखमात्मनः ॥ ३० ॥ तस्य शोकं विदित्वा तु पुत्रव्यसनसम्भवम् । आजगामाथ देवर्षिर्नारदोऽस्य समीपतः ॥३१॥ स तु राजा महाभागो दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमम् । पूजयित्वा यथान्यायं कथामकथयत्तदा ॥ ३२ ॥ तस्य सर्वं समाचष्ट यथावृत्तं नरेश्वरः । शत्रुभिर्विजयं संख्ये पुत्रस्य च वधं तथा ॥ ३३ ॥ मम पुत्रो महावीर्य इन्द्रविष्णुसमद्युतिः । शत्रुभिर्वहुभिः संख्ये पराक्रम्य हतो वली ३४ क एष मृत्युर्भगवन् किम्वीर्यवलपौरुषः । एतदिच्छामि तत्त्वेन श्रोतुं मतिमताम्वर ॥ ३५ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदो वरदः प्रभुः । आख्यानमिदमाचष्ट पुत्रशोकापहं महत् ॥ ३६ ॥ नारद उवाच ।

गया २९ इससे उसके पिताको वड़ा शोक हुआ, वह उसके प्रेतकृत्य करके शुद्ध तो होगया परन्तु तवसे रातदिन शोकमें ही रहने लगा;उसे कहीं भी सुख नहीं मिलता था३०राजा अकम्पन पुत्रशोकसे व्याकुल होरहा है,यह जानकर देवर्षि नारद उसके पास आये ॥३१॥ उस महाभाग्यवान् राजाने देवर्षियोंमें श्रेष्ठ नारदजीको देख उनकी यथायोग्य पूजा करके उनको अपना वृत्तान्त सुनाया ॥ ३२ ॥ उस राजाने जिसप्रकार शत्रुओंसे हार हुई थी और पुत्रका वध हुआ था वह सव सुनाया ॥ ३३ ॥ और कहा, कि-मेरा पुत्र इन्द्र और विष्णुकी समान कान्तिमान् और महावली था, उसको युद्धमें वहुतसे शत्रुओंने पराक्रम करके मार डाला ॥ ३४ ॥ अतः हे भगवन् ! यह मृत्यु क्या है? और इसका वल तथा वीर्य कैसा है? हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! यह वात मैं यथार्थ रीतिसे सुनना चाहता हूँ ॥ ३५ ॥ राजाकी इस वातको सुनकर वर देनेवाले शक्तिमान् नारदजीने उस राजासे इस शोकको दूर करनेवाले वड़ेभारी आख्यानको कहा था ॥ ३६ ॥ नारदजीने कहा,कि-हे महावाहु राजन्! यह वहुत लम्वा आख्यान

शृणु राजन्महाबाहो आख्यानं बहुविस्तरम् । यथावृत्तं श्रुतं चैव
मयापि वसुधाधिप ॥ ३७ ॥ प्रजाः सृष्ट्वा तदा ब्रह्मा आदिसर्गे
पितामहः । असंहृतं महातेजा दृष्ट्वा जगदिदं प्रभुः ॥ ३८ ॥ तस्य
चिन्ता समुत्पन्ना संहारं प्रति पार्थिव । चिंतयन्नह्यसौ वेद संहारं
वसुधाधिप ॥ ३९ ॥ तस्य रोषान्महाराज खेभ्योग्निरुदतिष्ठत ।
तेन सर्वा दिशो व्याप्ताः सान्तर्देशा दिधक्षता ॥ ४० ॥ ततो दिवं
भुवं चैव ज्वालामालासमाकुलम् । चराचरं जगत् सर्वं ददाह भगवान्
प्रभुः ॥४१ ॥ ततो हतानि भूतानि चराणि स्थावराणि च ।
महता क्रोधवेगेन त्रासयन्निव वीर्यवान् ॥ ४२ ॥ ततो रुद्रो जटी
स्थाणुर्निशाचरपतिर्हरः । जगाम शरणं देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ४३
तस्मिन्नापतिते स्थाणौ प्रजानां हितकाम्यया । अब्रवीत् परमो देवो

जिसप्रकार हुआ है और जिसप्रकार मैंने सुना है, वह तुझसे
कहता हूँ, सुन ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! जगत्के पितामह ब्रह्माजी
आदिसर्गमें प्रजाको रचकर उसको नष्ट न होती हुई देख, हे
पार्थिव ! उसका संहार करनेके लिये चिन्ता करने लगे; परन्तु
महातेजस्वी ब्रह्मा विचार करने पर भी उसका संहार कैसे किया
जाय, यह न जानसके ॥ ३८-३९ ॥ अतः उनको क्रोध आगया
उस क्रोधके कारण आकाशमें अग्नि उत्पन्न होगई, उस भस्म
करनेवाली अग्निसे कोने२ सहित सब दिशाएँ भरगईं ॥ ४० ॥
समर्थ ब्रह्माजीने अग्निकी लपटोंसे व्याप्त हुए आकाश और
पृथिवीमें रहनेवाले चराचर जगत्को भस्म करना आरम्भ कर
दिया ॥ ४१ ॥ वीर्यवान् ब्रह्माने त्रास दे२ कर चराचर भूतोंको
बड़ेभारी क्रोधसे भस्म करदिया ॥ ४२ ॥ यह देखकर जटाधारी,
निशाचरपति रुद्रदेव परमेष्ठी ब्रह्मदेवकी शरणमें गए ॥ ४३ ॥
शिवके आने पर प्रजाके हितकी इच्छासे अग्निकी समान दमकते

ज्वलन्निव महामुनिः ॥ ४४ ॥ किं कुर्मं कामं कामार्ह कामाज्जातोसि पुत्रक । करिष्यामि प्रियं सर्वं ब्रूहि स्थाणो यदिच्छसि ४५

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

स्थाणुरुवाच । प्रजासर्गनिमित्तं हि कृतो यत्नस्त्वया विभो । त्वया सृष्टाश्च वृद्धाश्च भूतग्रामाः पृथग्विधाः ॥१॥ तास्तवेह पुनः क्रोधात् प्रजा दह्यन्ति सर्वशः । ता दृष्ट्वा मम कारुण्यं प्रसीद भगवन् प्रभो ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच । संहर्त्तुं न च मे कामो एतदेवं भवेदिति । पृथिव्या हितकामं तु ततो मां मन्युराविशत् ॥ ३ ॥ इयं हि मां सदा देवी भारार्त्ता समचूचुदत् । संहारार्थं महादेव भारेणाभिहता सती ॥ ४ ॥ ततोहं नाधिगच्छामि तथा बहुविधं तदा ।

हुए परममुनि ब्रह्माजीने शिवजीसे कहा, कि—॥४४॥ हे पुत्र रुद्र! तू अपनी इच्छासे उत्पन्न हुआ है और वर पानेका पात्र है अतः जो तेरी इच्छा हो उसें प्रकट कर, तुझे जो अभीष्ट होगा मैं उसको पूर्ण करूँगा ॥ ४५ ॥ बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥

शिवजीने कहा, कि-हे व्यापक ब्रह्मदेव! आपने प्रजाको रचनेके लिये बड़ा परिश्रम किया है और नानाप्रकारके प्राणियोंको उत्पन्न किया है तथा उनकी अब वृद्धि भी होगई है ॥ १ ॥ अब ये सब प्रजा आपके क्रोधसे भस्म होरही है, उनको देखकर मुझे दया आती है, हे प्रभो! हे भगवन्! प्रसन्न हूजिये ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले कि—मेरी इच्छा प्रजाओंका संहार करनेकी नहीं थी किन्तु मेरी इच्छा थी कि—यह ऐसी ही बनी रहें, किन्तु पृथ्वीका हित करनेके लिये मुझे क्रोध आगया ॥ ३ ॥ हे महादेव! पृथ्वी देवीने भारसे पीड़ित होकर मुझसे संहार करनेकी प्रार्थना की थी ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर इस अनन्त और नानाप्रकारके जगत्का संहार करनेके लिये मैंने बड़ा विचार किया, परन्तु मुझे कोई

संहारमप्रमेयस्य ततो मां मन्युराविशत् ॥ ५ ॥ रुद्र उवाच। संहारार्थं प्रसीद त्वं मा रुषो वसुधाधिप। मा प्रजाः स्थावराश्चैव जङ्गमाश्च व्यनीनशः ॥ ६ ॥ तव प्रसादाद्भगवन्निदं वर्त्तेत्त्रिधा जगत्। अनागतमतीतञ्च यच्च सम्प्रतिवर्त्तते ॥ ७ ॥ भगवन् क्रोधसंदीप्तः क्रोधादग्निमवासृजत्। स दहत्यश्मकूटानि द्रुमांश्च सरितस्तथा ॥ ८ ॥ पल्वलानि च सर्वाणि सर्वे चैव तृणोलुपाः। स्थावरं जङ्गमञ्चैव निःशेषं कुरुते जगत् ॥ ९ ॥ तदेतद्भस्मसाद्भूतं जगत् स्थावरजङ्गमम्। प्रसीद भगवन् स त्वं रोषो न स्याद्वरो मम ॥ १० ॥ सर्वे हि सृष्टा नश्यन्ति तव देव कथञ्चन। तस्मान्निवर्त्त्यतां तेजस्त्वय्येवेदं प्रलीयताम् ॥ ११ ॥ तत् पश्य देव सुभृशं प्रजानां हितकाम्यया। यथेमे प्राणिनः सर्वे निवर्त्तेरं-

उपाय न सूझा तब मुझे क्रोध चढ़आया (और उस क्रोधसे उत्पन्न हुई अग्निसे यह संसार भस्म होरहा है) ॥ ५ ॥ शङ्कर बोले कि-हे वसुधाधिप ! तुम प्रजाका संहार करनेके लिये क्रोध न करो, प्रसन्न होजाओ ! तथा इस जङ्गम और स्थावर प्रजाको नष्ट न करो ॥६॥ हे भगवन् ! आपकी कृपासे भूत भविष्यत् और वर्तमान इसप्रकार तीनप्रकारसे जगत् सदा रहे ऐसा करो, उसको समूल ही नष्ट न करो ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! आप क्रोधमें भरगए थे उस क्रोधसे आपने अग्निको उत्पन्न किया वह अग्नि, पत्थर, शिखर, वृक्ष, नदियें, सब जलाशय, सकल तृण और स्थावर जङ्गमात्मक इस सब जगत्को जलारहा है ॥ ८-९ ॥ इससे यह स्थावर जंगमरूप सब जगत् भस्मसा होगया है, हे भगवन्! आप प्रसन्न हूजिये और क्रोध न करनेका मुझे वर दीजिये ॥ १० ॥ तुम्हारी रचीहुई यह सब सृष्टि नष्ट होरही है. हे देव ! कोई ऐसा उपाय करिये जिससे यह आपका तेज आपमें ही लय हो जाय ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! आप प्रजाओंके हितकी इच्छासे बहुत

स्तथा कुरु ॥ १२ ॥ अभावं नेह गच्छेयुरुत्सन्नजननाः प्रजाः । आदिदेव नियुक्तोस्मि त्वया लोकेषु लोककृत् । इमा विनश्येज्जगन्नाथ जगत् स्थावरजङ्गमम् । प्रसादाभिमुखं देव तस्मादेवं ब्रवीम्यहम् ॥ १४ ॥ नारद उवाच । श्रुत्वा हि वचनं देवः प्रजानां हितकाम्यया । तेजः सन्धारयामास पुनरेवान्तरात्मनि ॥ १५ ॥ ततोग्निमुपसंहृत्य भगवाँल्लोकसत्कृतः । प्रवृत्तिञ्च निवृत्तं च कथयामास वै प्रभुः १६ उपसंहरतस्तस्य तमग्निं रोषजं तथा । प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यो गोभ्यो नारी महात्मनः ॥ १७ ॥ कृष्णारक्ता तथा पिङ्गा रक्तजिह्वास्यलोचना । कुण्डलाभ्यां च राजेंद्र तप्ताभ्यां तप्तभूषणा ॥ १८ ॥ सा निःसृत्य तथा खेभ्यो दक्षिणां

शीघ्र ऐसे उपायको देखिये, सोचिये, जिससे ये सब प्राणी नष्ट होनेसे बचें ॥१२॥ और यह क्षीण सन्तान वाली प्रजा नष्ट न हो, हे आदिदेव! आपने लोकोंका संहार करनेका काम तो मुझे सौंपा है, अतः आपका ऐसा करना अनुचित है ॥ १३ ॥ अतः हे जगन्नाथ ! प्रसन्न हुए आपसे मैं यह कहता हूँ कि-यह स्थावरजंगमात्मक जगत् नष्ट न हो, ऐसा करिये ॥ १४ ॥ नारदजीने कहा, कि-ब्रह्माजीने शङ्करकी इस बातको सुनकर प्रजाका हित करनेके लिये फिर उस तेजको अपनेमेंही लीन कर लिया ॥ १५ ॥ लोकोंमें सत्कार पायेहुए भगवान् ब्रह्माजीने अग्निका उपसंहार कर शंकरको जगत्की उत्पत्ति और लयका वृत्तांत विस्तारसे सुनाया ॥ १६ ॥ क्रोधसे उत्पन्न हुई अग्निको अपनेमें लय करते समय महात्मा ब्रह्माजीकी सब इन्द्रियोंमेंसे एक स्त्री प्रकट हुई ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र ! उसका वर्ण काला, लाल और पीला था, तथा नेत्र, जिह्वा और मुख लाल२ थे, कानोंमें कुण्डल थे तथा उसके शरीर पर दमकतेहुए आभूषण थे ।१८। वह स्त्री ब्रह्माजीकी इन्द्रियोंमेंसे प्रकट होतेही ब्रह्माजी और शंकर

दिशमाश्रिता । स्मयमाना च सावेक्ष्य देवौ विश्वेश्वरावुभौ ॥१९॥ तामाहूय तदा देवो लोकादिनिधनेश्वरः। मृत्यो इति महीपाल जहि चेमाः प्रजा इति ॥ २० ॥ त्वं हि संहारबुद्ध्याथ प्रादुर्भूता रुषो मम । तस्मात्संहर सर्वास्त्वं प्रजाः सजडपण्डिताः ॥ २१ ॥ मम त्वं हि नियोगेन ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि । एवमुक्ता तु सा तेन मृत्युः कमललोचना ॥ २२ ॥ दध्यौ चात्यर्थमबला प्ररुरोद च सुस्वरम् । पाणिभ्यां प्रतिजग्राह तान्यश्रूणि पितामहः । सर्वभूतहितार्थाय तां चाप्यनुनयत्तदा ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युकथने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

नारद उवाच । विनीय दुःखमबला आत्मन्येव प्रजापतिम् । उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा लतेवावर्जिता पुनः ॥ १ ॥ मृत्युरुवाच ।

को देखकर हँसती२ दक्षिण दिशाकी ओरको जानेलगी ॥१९॥ लोकोंके पितामह और संहारकर्ता ब्रह्माने उसको बुलाकर कहा, कि—हे मृत्यु ! (दूसरोंके प्राणोंको वियुक्त करना चाहनेवाली) तू इस प्रजाका नाश कर ॥ २० ॥ मैंने लोकोंका संहार करनेकी इच्छासे क्रोध किया था, उससे तेरा जन्म हुआ है, अतः तू स्थावरजङ्गमात्मक सब जगत्का नाश कर ॥ २१ ॥ तू मेरी आज्ञाको मानेगी तो तेरा कल्याण होगा, ब्रह्माजीके ऐसा कहने पर कमलके समान नेत्रोंवाली वह मृत्यु वारम्वार विचार करनेके अनन्तर डीक फोडकर रोनेलगी, ब्रह्माजीने उसके आँसुओंको हाथोंमें लेलिया और सब प्राणियोंका हित करनेके लिये उससे कहनेलगे ॥ २२–२३ ॥ तरेपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥

नारदजीने कहा, कि हे महाराज! वह अबला (प्राणहारिणी मृत्युदेवी) अपने दुःखको अपने मनमेंही दवाकर दोनों हाथजोड लताकी समान नम्र हो ब्रह्माजीसे फिर कहनेलगी ॥ १ ॥ मृत्यु

त्वया सृष्टा कथं नारी ईदृशी वदताम्वर । क्रूरं कर्माहितं कुर्यां तदेव किमु जानती ॥ २ ॥ बिभेम्यहमधर्माद्धि प्रसीद भगवन् प्रभो । प्रियान् पुत्रान् वयस्यांश्च भ्रातॄन् मातॄः पितॄन् पतीन् ॥३॥ अपध्यास्यन्ति मे देव मृतेष्वेभ्यो बिभेम्यहम् । कृपणानां हि रुदतां ये पतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥ ४ ॥ तेभ्योहं भगवन् भीता शरणं त्वाहमागता । यमस्य भवने देव न गच्छेयं न सुरोत्तम ॥ ५ ॥ कायेन विनयोपेता मूर्ध्नोदग्रनखेन च । एतदिच्छाम्यहं कामं त्वत्तो लोकपितामह ॥ ६ ॥ इच्छेयं त्वत्प्रसादाद्धि तपस्तप्तुं प्रजेश्वर । प्रदिशेमम्वरं देव त्वं मह्यं भगवन् प्रभो ॥ ७ ॥ त्वया ह्युक्ता गमिष्यामि धेनुकाश्रममुत्तमम् । तत्र तप्स्ये तपस्तीव्रं तवैवाराधने रता ॥ ८ ॥ न हि शक्ष्यामि देवेश प्राणान् प्राणभृतां प्रियान् । हर्तुं विलप-

---

ने कहा, कि–हे श्रेष्ठवक्ता ! तुमने (मुझे) ऐसी (क्रूर) नारी क्यों बनाया ? मैं जानकर ऐसे अहित और क्रूर कर्मको कैसे करसकूँगी? ॥२॥ मैं अधर्मसे डरती हूँ, हे प्रभो! मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये, हे देव ! मैं यदि मनुष्योंके प्रिय पुत्र, मित्र, भाई, माता, पिता और पतियोंका नाश करूँगी, तो वे अंतःकरणसे मेरा बुरा चीतेंगे ! इससे मैं डरती हूं, लोग दुःखी होकर रोवेंगे उनके आँसुओंको याद करके मुझे फुरेरी आती है, हे भगवन् ! मैं तुम्हारी शरणमें आई हूं, तुम मुझे इस पापसे बचाओ ! हे देवोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मदेव ! मैं प्राणियोंको लेकर यमलोकमें नहीं जाऊंगी ३-५ हे पितामह ! मैं विनयपूर्वक शरीर और शिर झुका हाथ जोडकर आपसे विनय करती हूं, कि–॥ ६ ॥ हे प्रजाओंके स्वामिन् ! मैं आपकी कृपासे तप करना चाहती हूँ, हे प्रभो ! हे भगवन् ! हे देव ! तुम मुझे ऐसा वर दो ॥ ७ ॥ आपके आज्ञा देने पर हेभगवन्! मैं धेनुकाश्रममें जाकर आपकी ही आराधनामें लगकर तीव्र तप करूँगी ॥ ८ ॥ हे देव ! मैं विलाप करतेहुए प्राणियोंके

मानानामधर्मादभिरक्ष माम् ॥९॥ ब्रह्मोवाच । मृत्यो संकल्पितासि त्वं प्रजासंहारहेतुना । गच्छ संहर सर्वास्त्वं प्रजा मा ते विचारणा ॥ १० ॥ भविता त्वेतदेवं हि नैतज्जात्वन्यथा भवेत् । भवत्वनिंदिता लोके कुरुष्व वचनं मम ॥ ११ ॥ नारद उवाच । एवमुक्ताभवत् प्रीता प्राञ्जलिर्भगवन्मुखी । संहारे नाकरोद् बुद्धिं प्रजानां हितकाम्यया ॥ १२ ॥ तूष्णीमासीत्तदा देवः प्रजानामीश्वरेश्वरः । प्रसादञ्चागमत् क्षिप्रमात्मनैव प्रजापतिः ॥ १३ ॥ स्मयमानश्च देवेशो लोकान् सर्वानवेक्ष्य च । लोकास्त्वासन्यथा पूर्वं दृष्टास्तेनापमन्युना ॥ १४ ॥ निवृत्तरोषे तस्मिंस्तु भगवत्यपराजिते । सा कन्यापि जगामाथ समीपात्तस्य धीमतः ॥ १५ ॥ अपहृत्याप्रतिश्रुत्य प्रजासंहरणं तदा । त्वरमाणा च राजेन्द्र मृत्यु-

प्यारे प्राण नहीं हरसकूँगी, इस अधर्मसे मेरी रक्षा करिये ॥९॥ ब्रह्माजीने कहा, कि—हे मृत्यो ! मैंने तुझै प्रजाका नाश करनेकी इच्छासे ही रचा है, अतः तू जाकर प्रजाका संहार कर और कुछ विचार न कर ॥ १० ॥ यह ऐसा ही होगा; इस मेरे कहनेमें कुछ भी अन्तर नहीं होगा, तू मेरे कहनेके अनुसार संहार करने पर भी निन्दाकी पात्र नहीं होगी ॥ ११ ॥ नारदजी बोले, कि हे राजन् ! ब्रह्माजीके ऐसा कहने पर उनकी ओरको मुख करके हाथ जोड़े बैठी हुई मृत्युदेवी प्रसन्न होगई, परन्तु उसने प्रजाओंका हित करनेकी इच्छासे प्रजाके संहारकी इच्छा नहीं की और चुप होगई इस समय प्रजाके ईश्वरेश्वर प्रजापति ब्रह्मा स्वयं प्रसन्न होगए ॥१२ ॥१३ ॥ और कोपको शान्त कर लोकोंको देखा, तो पहिलेकी समान ही सब लोक दीखे (कोई मरा हुआ नहीं दीखा) ॥१४॥ अपराजित भगवान् ब्रह्माजीके प्रसन्न होने पर वह कन्या भी उन बुद्धिमान्के पाससे चलीगई ॥ १५ ॥ हे राजेन्द्र! वह प्रजाका संहार करनेकी प्रतिज्ञा विना किये ही वहाँ

धेनुकमभ्यगात् ॥ १६ ॥ सा तत्र परमं तीव्रं चचार व्रतमुत्तमम् । सा तदा ह्येकपादेन तस्थौ पद्मानि षोडश । १७ ॥ पञ्च चाब्दानि कारुण्यात् प्रजानां तु हितैषिणी । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः सन्निवर्त्य सा ॥१८॥ ततस्त्वेकेन पादेन पुण्यारण्यानि सप्त वै । तस्थौ पद्मानि षट् चैव सप्त चैकञ्च पार्थिव१९ततः पद्मायुतन्तात मृगैः सह चचार सा । पुनर्गत्वा ततो नन्दां पुण्यां शीतामलोदकां ॥ २० ॥ अप्सु वर्षसहस्राणि सप्त चैकञ्च सानयत् । धारयित्वा तु नियमं नन्दायां वीतकल्मषा ॥ २१ ॥ सा पूर्वं कौशिकीं पुण्यां जगाम नियमैर्धृता । तत्र वायुजलाहारा चचार नियमं पुनः ॥ २२ ॥ पञ्चगङ्गासु सा पुण्या कन्या वेतसकेषु च । तपोविशेषैर्बहुभिः कर्षयद्देहमात्मनः ॥ २३ ॥ ततो गत्वा तु सा गङ्गां महामेरुञ्च केवलम् । तस्थौ चाश्मेव निश्चेष्टा प्राणायामपरा-

---

से हटकर शीघ्रतासे धेनुकाश्रममें चली गई ॥१६॥ प्रजाकी हित चाहनेवाली मृत्युने प्रजापर करुणा कर इन्द्रियोंको इन्द्रियोंके प्रिय भोगोंसे हटाकर एक पैरसे खडीहो इक्कीस पद्म वर्ष तक तप किया.१७-१८ तदनन्तर हे राजन्! उसने फिरभी इक्कीस पद्म वर्ष तक एक पैरसे खडी होकर तप किया ॥ १९ ॥ फिर वह दशसहस्र पद्म वर्षों तक मृगोंके साथ फिरती रही;फिर वह निर्मल और ठण्डे जलवाली नन्दा नदी पर जा उत्तम.नियमोंको धारण कर आठ सहस्र वर्ष तक नन्दा नदीके जलमें खडी होकर तप करती रही२०-२१इसप्रकार नियमोंमें बढ़ी हुई मृत्युदेवी नन्दा नदीसे कौशिकीनदी परजा तहाँ वायु और जलको आहारकर नियम पालनेलगी २२ वह पुण्यवती कन्या पञ्चगङ्गा और सिंधु आदि नदियोंपर जा तहाँ बहुतसे तपकर अपने शरीरको सुखानेलगी २ फिर वह कन्या गङ्गा और मेरु पर्वत पर जा पत्थरकी समान निश्चेष्ट हो प्राणायाम चढ़ाकर तप करनेलगी ॥ २४ ॥ फिर

यणा ॥ २४ ॥ पुनर्हिमवतो मूर्ध्नि यत्र देवाः पुरायजन् । तत्रागुष्ठेन सा तस्थौ निखर्वं परमा शुभा ॥ २५ ॥ पुष्करेष्वथ गोकर्णे नैमिषे मलये तथा । अपाकर्षत् स्वकं देहं नियमैर्मनसाप्रियैः २६ अनन्यदेवता नित्यं दृढभक्त्या पितामहे । तस्थौ पितामहञ्चैव तोषयामास धर्मतः ॥ २७ ॥ ततस्तामब्रवीत् प्रीतो लोकानां प्रभवोऽव्ययः । सौम्येन मनसा राजन् प्रीतः प्रीतमनास्तदा ॥ २८ ॥ मृत्यो किमिदमत्यंतं तपांसि चरसीति ह । ततोऽब्रवीत पुनर्मृत्युर्भगवन्तं पितामहम् ॥ २९ ॥ नाहं हन्यां प्रजा देव स्वस्थाश्चाक्रोशतीस्तथा । एतदिच्छामि सर्वेश त्वत्तो वरमहं प्रभो ॥ ३० ॥ अधर्मभयभीतास्मि ततोहं तप आस्थिता । भीतायास्तु महाभाग प्रयच्छाभयमव्यय ॥ ३१ ॥ आर्त्ता चानागसी नारी याचामि भव

देवताओंने जहाँ पहिले यज्ञ किया था उस हिमवान् पर्वत पर उस परम कल्याणीने एक अगूँठेसे खड़े होकर निखर्व वर्ष तक तप किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर पुष्कर, गोकर्ण, नैमिष और मलयाचल आदि तीर्थों पर जा इच्छानुसार नियम पालकर शरीरको कृश करनेलगी ॥ २६ ॥ वह और देवताओंका आश्रय छोडकर नित्य ब्रह्माकी ही दृढ़ भक्ति करनेलगी और खडी हो धर्मानुसार तपश्चर्या कर ब्रह्माजीको सन्तुष्ट करनेलगी ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! जगत्को रचने वाले अविनाशी ब्रह्मा प्रसन्न हुए और उन्होंने शान्त मनसे उस स्त्रीसे कहा कि-॥ २८ ॥ हे मृत्यो ! इसप्रकार तू बडा भारी तप क्यों कररही है ? यह सुन मृत्युने भगवान् ब्रह्माजीसे फिर कहा कि-॥ २९ ॥ हे देव ! मैं यह वर चाहती हूँ, कि-मैं शान्त और रुदन करती हुई प्रजाका नाश न करूँ ॥ ३० ॥ अधर्मसे डरकर मैं तप कररही हूँ, हे अव्यय ! हे महाभाग ! मुझ डरीहुईको अभयदान दो ॥ ३१ ॥ हे देव ! मैं पीडा पारही हूँ और निरपराध हूँ आप मेरी गति

मे गतिः । तामब्रवीत्ततो देवो भूतभव्यभविष्यवित् ॥३२॥ अधर्मो नास्ति ते मृत्यो संहरन्त्या इमाः प्रजाः । मया चोक्तं मृषा भद्रे भविता न कथञ्चन ॥ ३३ ॥ तस्मात् संहर कल्याणि प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः । धर्मः सनातनश्च त्वां सर्वथा पावयिष्यति ॥ ३४ ॥ लोकपालो यमश्चैव सहाया व्याधयश्च ते । अहञ्च विबुधाश्चैव पुनर्दास्याम ते वरम् ॥ ३५ ॥ यथा त्वमेनसा मुक्ता विरजाः ख्यातिमेष्यसि । सैवमुक्ता महाराज कृताञ्जलिरिदं विभुम् ॥ ३६॥ पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं प्रसाद्य शिरसा तदा । यद्येवमेतत् कर्त्तव्यं मया न स्याद्विना विभो ॥३७॥ तवाज्ञा मूर्ध्नि मे न्यस्ता यत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु । लोभः क्रोधोभ्यसूर्ष्याच द्रोहो मोहश्च देहिनाम् ॥३८॥ अह्रीश्चान्योन्यपरुषा देहं भिन्द्युः पृथग्विधाः । ब्रह्मोवाच । तथा

हूजिये रत्नाकरो) यह सुन भूत भविष्यत् और वर्तमानको जानने वाले ब्रह्माजीने उससे कहा, कि—॥ ३२ ॥ हे मृत्यो ! प्रजाका संहार करने पर तुझे पाप नहीं लगेगा, हे कल्याणि ! मेरा कहा हुआ वचन किसीप्रकार मिथ्या न होगा ॥३३॥ हे कल्याणि! तू चारों प्रकारकी सकल प्रजाका संहारकर, सनातनधर्म तुझे सर्वथा पवित्र करेगा ॥३४॥ लोकपाल, यम और व्याधियें तुझे सहायता देंगी और देवता तथा मैं तुझे फिर भी वरदेंगे ॥ ३५ ॥ ऐसा होने पर तू पापसे रहित होकर प्रसिद्धि पावेगी, हे महाराज ! जब ब्रह्माजीने यह कहा, तब वह ब्रह्माजीको शिरसे प्रणाम कर हाथ जोड़ प्रसन्न करके फिर कहनेलगी, कि—हे प्रभो ! यदि यह ऐसा काम है कि—मेरे विना पूर्ण ही न होगा, तो आपकी आज्ञा मेरे शिरपर है और जो मैं आपसे कहती हूँ उसको सुनिये, लोभ, असूया, ईर्षा, द्रोह, मोह निर्लज्जता और परस्परमें तीक्ष्ण वाणी का प्रयोग, इतनी वस्तुएं मनुष्योंके देहका नाश करैं यह मुझे वरदो॥३६-३८॥ ब्रह्माजीने कहा, कि-हे मृत्यो! ऐसा ही होगा अब

भविष्यते मृत्यो साधु संहर भोः प्रजाः । अधर्मस्ते न भविता नापध्यास्याम्यहं शुभे ॥३९॥ यान्यश्रुबिन्दूनि करे ममासंस्ते व्याधयः प्राणिनामात्मजाताः । ते मारयिष्यन्ति नरान् गतासून्नाधर्मस्ते भविता मा स्म भैषीः ॥ ४० ॥ नाधर्मस्ते भविता प्राणिनां वै त्वं वै धर्मस्त्वं हि धर्मस्य चेशा । धर्म्या भूत्वा धर्मनित्या धरित्री तस्मात् प्राणान् सर्वथेमानियच्छ ॥ ४१ ॥ सर्वेषां वै प्राणिनां कामरोषौ सन्त्यज्य त्वं संहरस्वेह जीवान् । एवं धर्मस्त्वां भविष्यत्यनन्तो मिथ्यावृत्तान् मारयिष्यत्यधर्मः ॥ ४२ ॥ तेनात्मानं पावयस्वात्मना त्वं पापेत्मानं मज्जयिष्यन्त्यसत्यात् । तस्मात् कामं रोषमप्यागतं त्वं सन्त्यज्यान्तः संहरस्वेति जीवान् ॥४३ ॥ नारद उवाच । सा वै भीता मृत्युसंज्ञोपदेशाच्छापाद्भीता बाढमित्यब्रवी-

---

तू प्रजाका भलीप्रकार संहार कर हे शुभे ! प्रजाका संहार करनेसे तुझे पाप नहीं लगेगा और मैं तेरी अशुभचिन्तना नहीं करूँगा ॥३९॥ तेरे आँसुओंकी जो बूँदें मेरे हाथोंमें आई थीं वे प्राणियोंके शरीरमें व्याधि बनकर प्राणियोंको नष्ट करेंगी तू डरे मत, तुझे अधर्म नहीं होगा ॥ ४० ॥ तुझे पाप नहीं लगेगा. किन्तु तू प्राणियोंके लिये एक गुणरूप होजायगी, तू धर्मकी स्वामिनी, नित्य धर्म कर्म करनेवाली, धर्मस्वरूप और सबकी स्वामिनी होगी, जा तू सबके प्राणोंको हर ॥ ४१ ॥ तू प्राण हरते समय कामना और क्रोधको त्यागकर सब प्राणियोंके प्राणोंको हर ऐसा करनेसे तुझे अनन्त धर्मका लाभ होगा और अधर्म स्वयं ही पाप करनेवालोंको नष्ट करेगा ॥ ४२ ॥ तू स्वयं ही अपनी आत्माको पवित्र कर ! मनुष्य असत्य भाषण कर अपनी २ आत्माको पापमें डालते हैं, अतः तू चढ़े हुए क्रोध और कामको भी त्यागकर अन्तकालके समय प्राणियोंके प्राणोंको हरना ॥ ४३ ॥ नारदजीने कहा कि ब्रह्माजीके उपदेशसे, शाप

राम् । सा च प्राणं प्राणिनामन्तकाले कामक्रोधौ त्यज्य हरत्यसक्ता ॥ ४४ ॥ मृत्युस्त्वेषां व्याधयस्तत्प्रसूता व्याधी रोगो रुज्यते येन जन्तुः । सर्वेषां च प्राणिनां प्रायणान्ते तस्माच्छोकं मा कृथा निष्फलं त्वम् ॥ ४५ ॥ सर्वे देवाः प्राणिभिः प्रायणान्ते गत्वा वृत्ताः सन्निवृत्तास्तथैव । एवं सर्वे प्राणिनस्तत्र गत्वा वृत्ता देवा मर्त्यवद्राजसिंह ॥ ४६ ॥ वायुर्भीमो भीमनादो महौजा भेत्ता देहान् प्राणिनां सर्वगोऽसौ । नो वावृत्ति नैव वृत्ति कदाचित् प्राप्नोत्युग्रोऽनन्ततेजो विशिष्टः ॥४७॥ सर्वे देवा मर्त्यसंज्ञाविशिष्टास्तस्मात् पुत्रं मा शुचो राजसिंह । स्वर्गं प्राप्तो मोदते

से डरी हुई उस स्त्रीने कहा, कि—ऐसा ही करूंगी. उस दिनसे वह क्रोध और कामको त्यागकर अन्त समयमें प्राणियोंके प्राणों को हरती है और स्वयं असक्त (निष्पाप) रहती है ॥ ४४ ॥ मृत्यु जीवित प्राणियोंको हरती है और जीतेहुए प्राणियोंको ही मृत्युसे उत्पन्न होनेवाली व्याधिएं लगजाती हैं, व्याधि रोगका नाम है जिससे प्राणी पीडा पाता है, सव प्राणी कर्मभोग और आयु पूरी होनेपर मरते हैं अतः तू निष्फल शोकको न कर ४५ हे राजसिंह ! प्राणियोंके मरणके पीछे उनकी सव इन्द्रियें जैसे परलोकमें अपनी २ वृत्तियोंके साथमें जाती हैं और कर्मफलका उपभोग करके फिर इस लोकमें आती हैं तैसे ही सव प्राणी भी मरणके पीछे परलोकमें जाते हैं और तहाँसे वृत्तियोंके साथ ही इस लोकमें उतरते हैं, इन्द्रादिक देवता भी मनुष्योंकी समान परलोकमें जाते हैं और कर्मका भोग भोगनेके लिये फिर इस मृत्युलोकमें उत्पन्न होते हैं ॥४६॥ महावली भयानक शब्द करने वाला, सर्वत्र व्यापक अनन्त तेजयुक्त असाधारण वायु भयङ्कर और उग्ररूप धारण करके प्राणियोंके देहका नाश करता है वह गति प्रत्यागतिको प्राप्त नहीं होता अर्थात् स्वर्गकी समान

ते तनूजो नित्यं रम्यान् वीरलोकानवाप्य ॥४८॥ त्यक्त्वा दुःखं सङ्गतः पुण्यकृद्भिरेषा मृत्युर्दैवदिष्टा प्रजानाम्। प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत् स्वयं कृता प्राणहरा प्रजानां ॥४९॥ आत्मानं वै प्राणिनो घ्नन्ति सर्वे नैतान् मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनस्ति । तस्मान्मृतान्नानुशोचन्ति धीरा मृत्युं ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसृष्टम् । इत्थं सृष्टिं देवक्लृप्तां विदित्वा पुत्रान्नष्टाच्छोकमाशु त्यजस्व ॥ ५० ॥ द्वैपायन उवाच । एतच्छ्रुत्वार्थवद्वाक्यं नारदेन प्रकाशितम् । उवाचाकम्पनो राजा सखायं नारदन्तथा ॥ ५१ ॥ व्यपेतशोकः प्रीतोऽस्मि भगवन्नृषिसत्तम । श्रुत्वेतिहासं त्वत्तस्तु कृतार्थोऽस्म्यभिवादये ॥ ५२ ॥

पृथिवीमें भी व्याप्त है अतः कहाँको जावे और कहाँसे आवे ॥४७॥ हे राजसिंह ! सब देवता भी मर्त्य नामको धारण करनेवाले हैं अतः तू अपने पुत्रका शोक न कर, तेरा पुत्र नित्य रमणीय वीरोंके लोकमें गया है और स्वर्गमें आनन्द करता है ॥ ४८ ॥ तथा (इस लोकके) दुःखको त्यागकर पुण्यवानोंके साथ रहता है, ब्रह्मदेवने स्वयं ही मृत्युको प्रजाके प्राणोंको हरनेके लिये उत्पन्न किया है, अतः प्राणियोंका अन्तिम समय निकट आनेपर देवकी रचीहुई मृत्यु प्राणियोंके प्राणोंको हरती है ॥ ४९ ॥ बहुतसे प्राणी (पापकर्म करनेके कारण) स्वयं ही अपना नाश करते हैं, दण्डपाणि (यम) उनको नष्ट नहीं करता । ब्रह्माकी रची हुई मृत्यु ही प्राणियोंका नाश करती है, यह जानकर धीर पुरुष मरे हुओंका शोक नहीं करते हैं; इसप्रकार सृष्टिको ब्रह्माकी रचीहुई जानकर तू नष्ट हुए पुत्रके शोकको विना विलम्बके त्याग दे ॥ ५० ॥ व्यासजीने कहा, कि-नारदजीकी कही अर्थ भरी इस उपदेशकी बातको सुनकर राजा अकम्पनने मित्र नारदजीसे कहा, कि-॥ ५१ ॥ हे भगवन् ! हे ऋषिसत्तम ! मेरा शोक दूर होगया, मैं प्रसन्न हूँ, हे भगवन् ! आपसे इस आख्यानको

तथोक्तो नारदस्तेन राज्ञा ऋषिवरोत्तमः । जगाम नन्दनं शीघ्रं देवर्षिरमितात्मवान् ॥ ५३ ॥ पुण्यं यशस्यं स्वर्ग्यञ्च धन्यमायुष्यमेव च । अस्येतिहासस्य सदा श्रवणं श्रावणं तथा ॥५४॥ एतदर्थपदं श्रुत्वा तदा राजा युधिष्ठिरः । क्षत्रधर्मं च विज्ञाय शूराणां च परां गतिम् ॥ ५५ ॥ सम्प्राप्तोसौ महावीर्यः स्वर्गलोकं महारथः। अभिमन्युः परान् हत्वा प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ॥ ५६ ॥ युध्यमानो महेष्वासो हतः सोभिमुखो रणे । असिना गदया शक्त्या धनुषा च महारथः ॥ ५७ ॥ विरजाः सोमसूनुः स पुनस्तत्र प्रलीयते । तस्मात् परां धृतिं कृत्वा भ्रातृभिः सह पाण्डव । अप्रमत्तः सुसन्नद्धः शीघ्रं योद्धुमुपाक्रम ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युप्रजापतिसंवादे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

सुनकर मैं कृतार्थ होगया तथा आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥ इसप्रकार राजाने कहा तब ऋषिवर अपार ज्ञानवान् देवर्षि नारद तुरन्त ही नन्दन वनकी ओरको चलेगए ५३ हे राजन्! इस इतिहासका सुनना सुनाना पुण्य यश स्वर्ग धन और आयुका देने वाला है ॥ ५४ ॥ हे राजन्! इस सार्थक आख्यानको सुननेसे क्षत्रियके धर्मका ज्ञान होता है और शूरवीरोंकी परमगति मिलती है ५५ सर्वधनुषधारियोंके सामने महारथी महावीर्यवान् अभिमन्यु शत्रुओंका नाश करके स्वर्गमें गया है ॥ ५६ ॥ महारथी महाधनुषधारी अभिमन्यु रणमें लडता २ ही तलवार, गदा, शक्ति और धनुषसे मरणको प्राप्त हुआ है और पापरहित वह चन्द्रवंशी राजकुमार फिर चन्द्रमामें ही लीन होगया है, अतः हे पांडुपुत्र ! तू सावधान हो शस्त्रादिको धारण कर अपने भाइयोंको साथमें ले शत्रुओंसे लडनेके लिये शीघ्र ही सन्नद्ध होजा ॥५७—५८॥

चौअनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥

सञ्जय उवाच । श्रुत्वा मृत्युसमुत्पत्तिं कर्माण्यनुपमानि च । धर्मराजः पुनर्वाक्यं प्रसाद्यैनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच । गुरवः पुण्यकर्माणः शक्रप्रतिमविक्रमाः । स्थाने राजर्षयो ब्रह्मन्ननघाः सत्यवादिनः ॥ २ ॥ भूय एव तु मां तथ्यैर्वचोभिरभिबृंहय । राजर्षीणां पुराणानां समाश्वासय कर्मभिः ॥ ३॥ कियन्त्यो दक्षिणा दत्ता कैश्च दत्ता महात्मभिः । राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिस्तद्भवान् प्रब्रवीतु मे ॥ ४ ॥ व्यास उवाच । शैब्यस्य नृपतेः पुत्रः सृञ्जयो नाम नामतः । सखायौ तस्य चैवास्तां ऋषी पर्वतनारदौ ॥ ५ ॥ तौ कदाचिद् गृहं तस्य प्रविष्टौ तद्दिदृक्षया । विधिवच्चार्चितौ तेन प्रीतौ तत्रोषतुः सुखम् ॥ ६ ॥ तं कदाचित्सुखासीनं ताभ्यां सह शुचिस्मिता । दुहिताभ्यागमत् कन्या सृञ्जयस्य वरवर्णिनी ॥ ७ ॥ तयाभिवादितः कन्यामभ्यनन्दद्यथा

सञ्जयने कहा कि—हे धृतराष्ट्र ! धर्मराजने व्यासजीसे मृत्यु की उत्पत्ति तथा उसके कर्मोंको सुनकर उनको प्रणाम आदिसे प्रसन्न किया और यह कहा ॥ १ ॥ युधिष्ठिरने पूछा कि—हे भगवन् ! इन्द्रकी समान पराक्रमी, पुण्य कर्म करनेवाले, महात्मा सत्यवादी, प्राचीनकालके राजर्षियोंने जो२ कर्म किए हों, उन कर्मोंको मुझसे फिर विस्तार और यथार्थतासे कहकर मुझे आनन्द दीजिये तथा ढाढस बँधाइये ॥ २—३ ॥ किन२ महात्मा पुण्यवान् राजर्षियोंने कितनी२ दक्षिणाएं दी थीं, यह मुझसे कहिये ॥४॥ व्यासजीने कहा, कि—राजा शैब्यके सृञ्जय नामक पुत्र था तथा पर्वत और नारद ये दो ऋषि उसके मित्र थे ॥५॥ वे दोनों ऋषि एक समय उसको देखनेके लिये उसके घर गए, सृञ्जयने शास्त्रानुसार उनकी पूजा की इससे प्रसन्न होकर वे सानन्द उसके यहाँ ठहरगए ॥६॥ एक समय राजा उन दोनोंके साथ आनन्दसे बैठा था कि उसकी पवित्र हास्य और सुन्दर

विधि । तत्सलिंगाभिराशीर्भिरिष्टाभिरभितः स्थिताम् ८॥ तां निरीक्ष्याब्रवीद्वाक्यं पर्वतः प्रहसन्निव । कस्येयं चञ्चलापाङ्गी सर्वलक्षणसम्मता ॥ ९ ॥ उताहोभाः स्विदर्कस्य ज्वलनस्य शिखा त्वियम् । श्रीर्ह्रीः कीर्तिर्धृतिः पुष्टिः सिद्धिश्चन्द्रमसः प्रभा ॥१०॥ एवं ब्रुवाणं देवर्षिं नृपतिः सृञ्जयोब्रवीत् । ममेयं भगवन् कन्या मत्तो वरमभीप्सति ॥ ११ ॥ नारदस्त्वब्रवीदेनं देहि मह्यमिमां नृप । भार्यार्थं सुमहच्छ्रेयः प्राप्तुञ्चेदिच्छसे नृप ॥ १२ ॥ ददानीत्येव संहृष्टः सृञ्जयः प्राह नारदम् । पर्वतस्तु सुसंक्रुद्धो नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ हृदयेन मया पूर्वं वृतां वै वृतवानसि । यस्माद् वृता त्वया विप्र मा गाः स्वर्गं यथेप्सया ॥ १४ ॥ एव-

---

अङ्गवाली कन्या अपने पिताके पास आई ।७। सृञ्जयने, प्रणाम करके सामने खडी हुई कन्याको उसके योग्य प्रिय आशीर्वादों से सत्कार किया ८ उस कन्याको देखकर पर्वतने हँसकर बूझा कि—यह चञ्चल कटाक्षवाली सर्वलक्षणोंसे युक्त कन्या किसकी है ? ९ क्या यह सूर्यकी प्रभा है अथवा अग्निकी शिखा है? अथवा यह श्री, लज्जा, कीर्ति, धृति, पुष्टि. सिद्धि या चन्द्रमाकी प्रभा है १० इसप्रकार कहतेहुए देवर्षि पर्वतसे राजा सृञ्जयने कहा, कि—हे भगवन् ! यह मेरी कन्या है और मुझसे पतिको पानेकी इच्छा करती है ॥ ११ ॥ नारदजीने उससे कहा कि—हे राजन् ! यदि तू उत्तम कल्याण चाहता है तो इस कन्याको मेरे साथ विवाह दे ॥ १२ ॥ यह सुनते ही सृञ्जयने प्रसन्न होकर नारदजीसे कहा, कि—मैं तुम्हारे साथ इसका विवाह कर दूँगा, इतनेमें ही पर्वतने बड़े क्रोधमें भरकर नारदजीसे कहा, कि—॥ १३ ॥ अरे! मैंने तो इसको अपने हृदयसे पहिले ही वर लिया था, तो भी तू मेरी वरीहुई कन्याको वरनेके लिये तयार होगया और इसप्रकार मेरा अपमान करता है अतः तू इच्छानुसार

मुक्तो नारदस्तं प्रत्युवाचोत्तरं वचः । मनोवाग्बुद्धिसम्भाषा दत्ता चोदकपूर्वकम् ॥ १५ ॥ पाणिग्रहणमन्त्राश्च प्रथितं वरलक्षणम् । न त्वेषा निश्चिता निष्ठा निष्ठा सप्तपदी स्मृता ॥ १६ ॥ अनुत्पन्ने च कार्यार्थे मां त्वं व्याहृतवानसि । तस्मात्त्वमपि न स्वर्गं गमिष्यसि मया विना ॥ १७ ॥ अन्योन्यमेवं शप्त्वा वै तस्थतुस्तत्र तौ तदा । अथ सोपि नृपो विप्रान् पानाच्छादनभोजनैः ॥ १८ ॥ पुत्रकामः परं शक्त्या यत्नाच्चोपाचरच्छुचिः । तस्य प्रसन्ना विप्रेन्द्राः कदाचित् पुत्रमीप्सवः ॥ १९ ॥ तपःस्वाध्यायनिरता वेदवेदाङ्ग-

---

स्वर्गमें नहीं जासकेगा॥१४॥जब पर्वतने यह कहा तब नारदजीने उत्तर दिया कि-यह मेरी भार्या है ऐसा वरको ज्ञान होना, और यह मेरी भार्या है, ऐसा कहना तथा कन्यादाताका बुद्धिपूर्वक दिया हुआ दान, लौकिकाचारके अनुसार कन्यादाता और कन्याग्रहीताके संभाषणके द्वारा वरकन्याका मिलाप,जलके मोक्षणपूर्वक कन्याका दान,वरका किया पणिग्रहण और विवाहविधिके मंत्र, ये सात बातें होनेपर विवाह हुआ माना जाता है इतना ही नहीं किन्तु जबतक सप्तपदी न हो तबतक इतनी बातोंके होने पर भी वह भार्या नहीं मानीजाती,अतः इस कन्याके ऊपर तेरा भार्यारूपसे अधिकार नहीं है तो भी तूने निष्कारण मुझे शाप दिया है अतः मैं भी तुम्हें शाप देता हूँ, कि-"तुम भी मेरे विना स्वर्गको नहीं जासकोगे"॥१५-१७॥ इसप्रकार वे दोनों आपसमें शाप देकर तहाँही ठहर गए, तदनन्तर पुत्र चाहनेवाले राजा सृञ्जयने शुद्धभावसे अपनी शक्तिके अनुसार खान, पान और वस्त्रादिसे उन ऋषियोंकी सेवा करनी आरम्भ करदी, एक समय इस राजाके पुत्र होजाय ऐसी इच्छावाले वेदवेदाङ्गके पारङ्गत तप और स्वाध्यायमेंही लगे रहनेवाले उसके यहाँके ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर नारदजीसे कहा, कि-इसको इसकी इच्छानुसार पुत्र

पारगाः । सहिता नारदं प्राहुर्देह्यस्मै पुत्रमीप्सितम् ॥२०॥ तथेत्युक्त्वा द्विजैरुक्तः सृञ्जयं नारदोब्रवीत् । तुभ्यं प्रसन्ना राजर्षे पुत्रमीप्सन्ति ब्राह्मणाः ॥ २१ ॥ वरं वृणीष्व भद्रन्ते यादृशं पुत्रमीप्सितम् । तथोक्तः प्राञ्जली राजा पुत्रं वव्रे गुणान्वितम् २२ यशस्विनं कीर्त्तिमन्तन्तेजस्विनमरिन्दमम् । यस्य मूत्रं पुरीषञ्च क्लेदः स्वेदश्च काञ्चनम् ॥ २३ ॥ सुवर्णष्ठीविरित्येवं तस्य नामाभवत् कृतम् । तस्मिन् वरप्रदानेन वर्धयत्यमितं धनम् ॥ २४ ॥ कारयामास नृपतिः सौवर्णं सर्वमीप्सितम् । गृहप्राकारदुर्गाणि ब्राह्मणावसथान्यपि ॥ २५ ॥ शय्यासनानि यानानि स्थालीपिठरभाजनम् । तस्य राज्ञोपि यद्वेश्म बाह्याश्चोपस्कराश्च ये ॥२६॥

दीजिये॥१८-२०॥ब्राह्मणोंके ऐसा कहने पर नारदजीने ब्राह्मणोंसे कहा. कि—ऐसाही होगा, तदनन्तर नारदजीने राजा सृञ्जयसे कहा, कि—हे राजेन्द्र ! ब्राह्मण तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर यह चाहते हैं, कि—तुम्हारे पुत्र हो २१ हे "राजन् ! तू इच्छानुसार पुत्रका वर माँगले तेरा कल्याण हो" यह सुन राजाने हाथ जोडकर नारदजीसे कहा, कि—मुझे गुणवान्, यशस्वी, कीर्त्तिमान् तेजस्वी, शत्रुओंका दमन करनेवाले और जिसका मूत्र, पुरीष तथा पसीना सुवर्णका हो ऐसा पुत्र दीजिये ॥ २२-२३ ॥ नारदजीने कहा कि—"तथास्तु" तदनन्तर पुत्र होने पर उसका नाम सुवर्णष्ठीवी रक्खागया और वरदानके प्रभावसे राजाके यहाँ अपार धन बढने लगा ॥ २४ ॥ तब राजाने भी इच्छानुसार घर, परकोटे, किले और ब्राह्मणोंके घर तक सुवर्णके बनवादिये ॥ २५ ॥ उस राजाके पलँग, सिंहासन, थाली, टोप, बरतन, घर और बाहरकी जितनी वस्तुएँ थीं सब सुवर्णकी होगईं, कुछ समय बीत जानेपर यह सब बढ गया, इसके उपरान्त चोरोंको यह बात मालूम हुई और वे उसे अपनी आँखोंसे वैसाही पा, गोल बाँधकर उस राजाका अपकार

सर्वं तत् काञ्चनमयं कालेन परिवर्धितम् । अथ दस्युगणाः श्रुत्वा दृष्ट्वा चैनं तथाविधम् ॥ २७ ॥ सम्भूय तस्य नृपतेः समारब्धाश्चिकीर्षितुम् । केचित्तत्राब्रुवन् राज्ञः पुत्रं गृह्णीम वै स्वयम् ॥ २८ ॥ सोऽस्याकरः काञ्चनस्य तस्य यत्नञ्चरामहे । ततस्ते दस्यवो लुब्धाः प्रविश्य नृपतेर्गृहम् ॥ २९ ॥ राजपुत्रं तथा जह्रुः सुवर्णष्ठीविनं बलात् । गृह्यैनमनुपायज्ञा नीत्वारण्यमचेतसः ॥३०॥ हत्वा विशस्य चापश्यन् लुब्धा वसु न किञ्चन । तस्य प्राणैर्विमुक्तस्य नष्टन्तद्वरदं वसु ॥ ३१ ॥ दस्यवश्च तदान्योन्यं जघ्नुर्मूर्खा विचेतसः । हत्वा परस्परं नष्टाः कुमारं चाद्भुतं भुवि ॥ ३२ ॥ असम्भाव्यं गता घोरं नरकं दुष्टकारिणः । तं दृष्ट्वा निहतं पुत्रं वरदत्तं महातपाः ॥ ३३ ॥ विललाप सुदुःखार्त्तो बहुधा करुणं नृप । विलपन्तं निशम्याथ पुत्रशोकहतं नृपम् ॥ ३४ ॥ प्रत्यदृश्यत

करनेके लिये उसके ऊपर चढाई करनेको तयार होगये उनमेंसे कोई कहनेलगे. कि—हम राजपुत्रकोही उठाकर लेचलें तो ठीक है, क्योंकि—वही तो सुवर्णका भण्डार है. हमें उसको ही हाथमें करनेका यत्न करना चाहिये, तदनन्तर उन लोभी डाकुओंने राजाके भवनमें घुसकर सुवर्णष्ठीवीको बलात्कारसे पकड़लिया और वे उसे जंगलमें लेगये, उन उपायको न जाननेवाले मूर्खोंने उस राजकुमार को मारकाट डाला, परन्तु उन्हें उसमेंसे जराभी सुवर्ण न मिला, क्योंकि—प्राणरहित होजाने पर उसके शरीरमेंसे सुवर्ण निकलनेका वर नष्ट होगया था ॥ २६—३१ ॥ उस पृथिवीमें अद्भुत कुमारको मारकर वे मूर्ख डाकू भी आपसमें एक दूसरेको मारकर नष्ट होगए ॥ ३२ ॥ वे क्रूरकर्मी असंभाव्य नामक घोर नरकमें पड़े, उस वरदानसे मिलेहुए पुत्रको मराहुआ देखकर महातपस्वी राजा सृञ्जय बडा ही व्याकुल होकर बड़ा करुणाजनक रीतिसे विलाप करनेलगा,(राजा पुत्रशोकसे मूढसा होकर विलाप कररहा है,)यह

देवर्षिर्नारदस्तस्य सन्निधौ । उवाच चैनं दुःखार्त्तं विलपन्तमचेतसम् ॥ ३५ ॥ सृञ्जयं नारदोऽभ्येत्य तन्निबोध युधिष्ठिर । कामानामवितृप्तस्त्वं सृंजयेह मरिष्यसि ३६ यस्य चैते वयं गेहे उषिता ब्रह्मवादिनः । आविक्षितं मरुत्तं च मृतं सृंजय शुश्रुम ॥ ३७ ॥ सम्वर्त्तो याजयामास स्पर्द्धया वै बृहस्पतेः । यस्मै राजर्षये प्रादाद्धनं स भगवान्प्रभुः ॥ ३८ ॥ हैमं हिमवतः पादं यियक्षोर्विविधैः सवैः । यस्य सेन्द्रामरगणा बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ३९ ॥ देवा विश्वसृजः सर्वे चासन् समासते । यज्ञवाटस्य सौवर्णाः सर्वे चासन् परिच्छदाः ॥ ४० ॥ यस्य सर्वं तदा ह्यन्नमनोभिप्रायगं शुचि । कामतो बुभुजुर्विप्राः सर्वे चान्नार्थिनो द्विजाः ॥४१॥ पयोदधिघृतं क्षौद्रम्भक्ष्यम्भोज्यञ्च शोभनम् । यस्य यज्ञेषु सर्वेषु वासांस्याभर-

---

सुनकर देवर्षि नारद उसके पास आए; व्यासजी कहते हैं, कि हे युधिष्ठिर ! दुःखसे व्याकुल तथा अचेत होकर विलाप करतेहुए राजासे नारदजीने जो २ बातें कही थीं, उनको तुम सुनो, नारदजीने कहा, कि–हे सृञ्जय ! तू अपनी इच्छाओंको विना पूरी कियेही मरजायगा, हम ब्रह्मवादीभी जिसके घर रहते थे वह अविक्षित्का पुत्र मरुत्तभी मरगया, ऐसा हम सुनते हैं, तो फिर तेरी क्या विसात है, ॥३२-३७॥ सम्वर्तने बृहस्पतिसे डाह करके मरुत्तको महायज्ञ करायाथा, बहुतसे यज्ञोंको करना चाहनेवाले राजर्षि मरुत्तको शङ्करने हिमालयके उत्तम सुवर्णका एक शिखर दियाथा, उसके यज्ञमण्डप में इन्द्र आदि देवगण और बृहस्पति आदि देवता तथा सब प्रजापति बैठे थे और उसके यज्ञमण्डपकी सब वस्तुएंभी सुवर्णकी ही थीं ॥ ३८–४० ॥ उसके यज्ञमण्डपमें अन्नार्थी, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यथेच्छ मनमाना पवित्र और स्वादिष्ट भोजन पातेथे ४१ उसके सब यज्ञोंमें वेदपारङ्गत ब्राह्मणोंको हर्षसे दूध दही, घी, मधु स्वादिष्ट भक्ष्य, भोज्य तथा इच्छानुसार वस्त्र और आभू-

णानि च ॥ ४२ ॥ ईप्सितान्युपतिष्ठन्त प्रहृष्टान् वेदपारगान् । मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्याभवन् गृहे ॥४३॥ आविक्षितस्य राजर्षेर्विश्वेदेवाः सभासदः । यस्य वीर्यवतो राज्ञः सुवृष्ट्या शस्यसम्पद् ॥४४॥ हविर्भिस्तर्पिता येन सम्यक्क्लृप्तैर्दिवौकसः। ऋषीणां च पितॄणाञ्च देवानां सुखजीविनाम्॥४५॥ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः सर्वदानैश्च सर्वदा । शयनासनपानानि स्वर्णराशीश्च दुस्त्यजाः ॥ ४६ ॥ तत् सर्वममितं वित्तं दत्तं विप्रेभ्य इच्छया । सोऽनुध्यातस्तु शक्रेण प्रजाः कृत्वा निरामयाः ॥ ४७ ॥ श्रद्दधानो जितांल्लोकान् गतः पुण्यदुहोऽक्षयान् । सप्रजः सनृपामात्य सदारापत्यबान्धवः ॥४८॥ यौवनेन

पण दिये जाते थे; अविक्षितके पुत्र राजर्षि मरुत्तके घर यज्ञ होने पर मरुत् (पवन) भोजन परोसते थे, विश्वेदेवता उसके सभासद् हुए थे, और उस वीर्यवान् राजाके राज्यमें अच्छी वृष्टि होने से वहुत अन्न होता था ॥ ४२—४४ ॥ तथा उस राजाने यज्ञमें वहुतसे वलिदान देकर तथा ब्रह्मचर्य पालकर, वेदाध्ययन करके तथा सव प्रकारके दान देकर सदा सुखमय जीवनको विताया था, तैसेही देवता, ऋषि और पितरोंको यज्ञ श्राद्ध तथा स्वाध्यायसे तृप्त किया था, उसने ब्राह्मणोंको तथा दूसरोंको भी वहुतसे विछौने, आसन, जल पीनेके पात्र और सुवर्णके ढेरदिये थे४५-४६ उस राजाके पास जो अपरम्पार धन था, वह सव उसने ब्राह्मणों की इच्छानुसार ब्राह्मणोंको देदिया था, इन्द्र भी उसका भला चाहता था, उस राजाने प्रजाको वड़ा सुख दिया था और वह श्रद्धापूर्वक पुण्यवान् लोकोंको जीतकर उनमें,गया था, उस राजा मरुत्तने प्रजा, मन्त्री,स्त्री,पुत्र तथा वन्धुओंके साथ तरुणअवस्थामें एक सहस्रवर्ष तक राज्य किया था, हे सृञ्जय ! वह महाप्रतापी राजा धर्म ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य इन चारोंमें तुझसे और तेरे पुत्रसे वढ़ा चढ़ा था, तो भी मरणको प्राप्त हुआ, अतः उससे

सहस्राब्दं मरुत्तो राज्यमन्वशात् । स चेन्मार सृंजय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ४९ ॥ पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये पंचपंचाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

नारद उवाच । सुहोत्रं नाम राजानं मृतं सृंजय शुश्रुम । एकवीरमशक्यन्तममरैरभिवीक्षितुम् ॥ १ ॥ यः प्राप्य राज्यं धर्मेण ऋत्विक्ब्रह्मपुरोहितान् । अपृच्छदात्मनः श्रेयः पृष्ट्वा तेषां मते स्थितः ॥ २ ॥ प्रजानां पालनं धर्मो दानमिज्या द्विषज्जयः । एतत् सुहोत्रो विज्ञाय धर्मेणैच्छद्धनागमम् ॥ ३ ॥ धर्मेणाराधयन् देवान् बाणैः शत्रून् जयंस्तथा । सर्वाण्यपि च भूतानि स्वगुणैरप्यरंजयत् ॥ ४ ॥ यो भुक्त्वेमां वसुमतीं म्लेच्छाटविकवर्जिताम् ।

कम योग्यतावाले तथा यज्ञादि न करनेवाले और चतुरतारहित पुत्रका हे सृञ्जय ! तू शोक न कर, नारदजीने ऐसा उपदेश दिया था ॥ ४७-५० ॥ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥

नारदजीने कहा, कि-हे सृञ्जय ! हमने सुना है, कि-सुहोत्र नामक राजा भी मरगया, उस अद्वितीय वीर राजाकी ओरको देवता भी आँख उठाकर नहीं देख सकते थे ॥ १ ॥ उस राजाने धर्मसे राज्यको पाकर ऋत्विज, ब्राह्मण और पुरोहितोंसे बूझा था, कि-मेरा कल्याण किसप्रकार हो, इसपर उन्होंने उसको कल्याणका मार्ग बताया, तब यह राजा वैसाही वर्त्ताव करनेलगा२ राजा सुहोत्र प्रजापालन, धर्म, दान, यज्ञ, शत्रुओंको जीतना इतनी वस्तुएं कल्याणकारी हैं, यह जानकर धर्मसे धन प्राप्त करनेकी इच्छा रखता था ॥ ३ ॥ धर्मसे देवताओंकी पूजा करता था बाणोंसे शत्रुओंको जीतता था और सब प्राणियोंको अपने गुणोंसे प्रसन्न रखता था ॥ ४ ॥ जिसने म्लेच्छोंका और लुटेरोंका

यस्मै ववर्ष पर्जन्यो हिरण्यं परिवत्सरान् ॥ ५ ॥ हैरण्यास्तत्र वाहिन्यः स्वैरिण्यो व्यवहन् पुरा । ग्राहान् कर्कटकांश्चैव मत्स्यांश्च विविधान् बहून् ॥ ६ ॥ कामान् वर्षति पर्जन्यो रूपाणि विविधानि च । सौवर्णान्यप्रमेयाणि वाप्यश्च क्रोशसम्मिताः ॥ ७ ॥ सहस्रं वामनान् कुञ्जान् नक्रान् मकरकच्छपान् । सौवर्णान् विहितान् दृष्ट्वा ततोऽस्मयत वै तदा ॥ ८ ॥ तत् सुवर्णमपर्यन्तं राजर्षिः कुरुजाङ्गले । ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥९॥ सोश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च । पुण्यैः क्षत्रिययज्ञैश्च प्रभूतवरदक्षिणैः ॥ १० ॥ काम्यनैमित्तिकाजस्रैरिष्टाङ्गतिमवाप्तवान् । स

नाश करके शान्तिसे पृथ्वीका राज्य किया था और जिसकी प्रसन्नताके लिये मेघोंने कितनेही वर्षोंतक उसके राज्यमें सुवर्ण की वर्षा की थी ॥ ५ ॥ और जिसके देशमें सुवर्णकी नदियें इच्छानुसार बहती थीं और मनुष्य इच्छानुसार उनको काममें लाते थे तथा (जिसके राज्यमें) मेघराज सुवर्णके नाके, कछुए और नानाप्रकारके मत्स्योंको तथा दूसरी भी नानाप्रकारकी श्रेष्ठ वस्तुओंको बरसाकर उसकी कामनाको पूर्ण करता था, (उसके राज्यमें) एक२ कोस लम्बी सोनेकी बावड़ियें थीं, उनमें कुबड़े और बौने सहस्रों सुवर्णके मगर, मच्छ और कछुए घूमते थे, उनको देखकर उस समय उस राजर्षिको आश्चर्य होता था ॥ ६-८ ॥ (जिस) राजर्षिने कुरुजाङ्गल देशमें अनेकों यज्ञ करके वह अपार धन ब्राह्मणोंको दिया था ॥ ९ ॥ उस राजाने एक हजार अश्वमेधयज्ञ और सौ राजसूययज्ञ तथा बहुतसी दक्षिणा वाले पवित्र क्षत्रिययज्ञ और नित्य नैमित्तिक यज्ञ किये थे, वह धर्मात्मा राजा भी मरकर परलोकमें गया था, व्यासजीने कहा, कि–हे युधिष्ठिर ! नारदजी राजा सृञ्जय ऐसा कहकर फिर, हे शिवत्यपुत्र ! इस प्रकार सम्बोधन देकर बोले, कि–वह राजा सुहोत्र दानयुक्त धन,

चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥ पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् १२

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये षट्पंचाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

नारद उवाच । राजानं पौरवं वीरं मृतं सृञ्जय शुश्रुम । सहस्रं यः सहस्राणां श्वेतानश्वानवासृजत् ॥ १ ॥ तस्याश्वमेधे राजर्षेर्देशाद्देशात् समीयुषाम् । शिक्षाक्षरविधिज्ञानां नासीत् संख्या विपश्चिताम् ॥ २ ॥ वेदविद्याव्रतस्नाता वदान्याः प्रियदर्शनाः । सभिक्षाच्छादनगृहाः सुशय्यासनभोजनाः ॥ ३ ॥ नटनर्त्तकगन्धर्वैः पूर्णकैर्वर्धमानकैः । नित्योद्योगैश्च क्रीडद्भिस्तत्र स्म परिहर्षिताः ४

गर्वरहित ज्ञान, क्षमायुक्त, शूरता और संगरहित भोग इसप्रकार चार बातोंमें तेरे पुत्रसे श्रेष्ठ और पुण्यवान् था, हे सृञ्जय! ऐसे राजाको भी जब मृत्युने नहीं छोडा तब यज्ञ और दान आदि न करनेवाला जो तेरा पुत्र मरगया हैं, उसके लिये तू शोच मतकर ॥ १०–१२ ॥ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥

नारदजीने कहा, कि–हे सृञ्जय! सुनते हैं, वीरवर पौरवराज भी मरगया, उसने श्वेत वर्णके एक२ सहस्र घोड़ोंका सहस्र वार दान किया था ॥ १ ॥ उस राजर्षिके अश्वमेध यज्ञमें देश देशान्तरोंसे वेदपाठी और ब्रह्मानुष्ठानमें चतुर इतने विद्वान् आते थे, कि–उनकी गिनती होना असम्भव है ॥२॥ व्रतस्नान विद्यास्नान और विद्याव्रतस्नान ऐसे तीन प्रकारके तथा उदारस्वभाव और सुन्दर आकृतिवाले ब्राह्मणोंको अच्छे २ पक्वान्न, सुन्दर वस्त्र और घर तथा अच्छे२ पलंग, आसन और भोजन देकर (सन्तुष्ट किया गया था)३ तहाँ सुवर्णकी कलगीवाले पक्षीके आकारके आरतीके पात्र हाथमें लेकर नट नर्तक और गन्धर्वरूप गायक नाच गाकर आगन्तुक ब्राह्मणोंको प्रसन्न करते थे४ उस राजाने

यज्ञे यज्ञे यथाकालं दक्षिणाः सोत्यकालयत् । द्विपा दशसहस्राख्याः प्रमदाः काञ्चनप्रभाः ॥ ५ ॥ सध्वजाः सपताकाश्च रथा हेममयास्तथा । यः सहस्रं सहस्राणि कन्याहेमविभूषिताः ॥ ६ ॥ धूर्युक्ताश्वगजारूढाः स्वगृहक्षेत्रगोशताः । शतं शतसहस्राणि स्वर्णमाली महात्मनां ॥ ७ ॥ गवां सहस्रानुचरान् दक्षिणामत्यकालयत् । हेमशृंग्यो रौप्यखुराः सवत्साः कांस्यदोहनाः ॥ ८ ॥ दासीदासखरोष्ट्रांश्च प्रादादाजाविकं बहु । रत्नानां विविधानां च विविधांश्चान्नपर्वतान् ॥ ९ ॥ तस्मिन् संविततै यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् । तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥ १० ॥ अङ्गस्य यजमानस्य स्वधर्माधिगताः शुभाः । गुणोत्तरास्तु क्रतवस्तस्यासन् सार्वकामिकाः ॥ ११ ॥ स चेन्मार सृञ्जय चतुर्भद्र-

---

प्रत्येक यज्ञमें समयोचित दक्षिणा दी थी, सुवर्णकी समानकान्तिवाले दश सहस्र हाथी दश सहस्र स्त्रियें और ध्वजा,पताका दश सहस्र सुवर्णके रथ दानमें दिये थे तथा सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित एक लाख कन्याएँ हाथी, घोड़े और रथों पर बैठाकर दानमें दी थीं और उनको घर, खेत तथा सैंकडों गौएँभी दानमें दी थीं सुवर्णकी हमेलें पहिरेहुए और जिनके सींगोंपर सुवर्ण मढ़रहा था तथा जिनके खुरों पर चाँदी चढ़रही थी,ऐसी लाखों सवत्सा गौएं तथा कांसीके दुहनेके वर्त्तन भी दानमें दिये थे ॥ ५-८ ॥ और उसने बहुतसे दासी दास, खच्चर, ऊंट बकरे तथा जातिके, रत्न और अन्नके पहाड महायज्ञमें दान दिये थे, पुराण जाननेवाले मनुष्य अब भी उस राजाके विषयमें कहते हैं, कि—॥९-१०॥ यज्ञ करनेवाले राजा अङ्गके सब यज्ञ धर्मानुसार हुए थे और वे शुभसूचक,गुणशाली तथा सबकी सकल कामनाओंको पूर्ण करनेवाले थे ॥ ११ ॥ व्यासजीने कहा, कि—हे युधिष्ठिर ! नारदजीने राजा सृञ्जयसे इसप्रकार कहकर फिर कहा,कि—हे श्वित्व-

तरस्त्वया । पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

नारद उवाच । शिविमौशीनरञ्चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम । य इमां पृथिवीं सर्वाञ्चर्मवत् पर्यवेष्टयत् ॥१॥साद्रिद्वीपार्णववनां रथघोषेण नादयन् । स शिविर्वै रिपून्नित्यं मुख्यान्निघ्नन् सपत्नजित्॥२॥ तेन यज्ञैर्बहुविधैरिष्टं पर्याप्तदक्षिणैः । स राजा वीर्यवान् धीमानवाप्य वसु पुष्कलम् ॥ ३ ॥ सर्वमूर्धाभिषिक्तानां सम्मतः सोऽभवद्युधि । अयजच्चाश्वमेधैर्यो विजित्य पृथिवीमिमाम् ॥ ४ ॥

पुत्र ! वह राजर्षि पौरव दानयुक्त धनसे, गर्वरहित ज्ञानसे, क्षमायुक्त शूरता और सङ्गरहितसे भोग इन चार बातोंमें तुझसे और तेरे पुत्रसे श्रेष्ठ और पुण्यवान् था, हे सृञ्जय ! वह राजा भी जब मर गया तो यज्ञ आदिसे रहित अपने पुत्रके मरणका शोक न कर १२

सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥ ॥ छ ॥

नारदजीने कहा कि-हे सृञ्जय!जिसने इस सम्पूर्ण पृथ्वीको चमड़ेकी समान लपेट लिया था वह उशीनरका पुत्र राजा शिवि भी मर गया ऐसा हमने सुना है,कि–॥१॥शत्रुनाशक राजा शिविने रथमें बैठकर उसकी झनकारसे पर्वत, द्वीप, समुद्र और वनसहित पृथ्वीको प्रतिध्वनित कर मुख्य२ शत्रुओंको मारडाला था और जगत्में सपत्नजित् नाम पाया था॥ २॥ उस वीर्यवान् औराबुद्धिमान् राजाने बहुतसा धन पाकर भरपूर दक्षिणा वाले बहुतसे यज्ञ किये थे ॥ ३ ॥ युद्धमें सब राजाओंका पराजय कर उनमें मान्य होगया था, करोडों और सहस्रों मुहरोंको दान करने वाले उस शिविने पृथिवीको जीतकर निर्विघ्न रूपसे महाफलदायक अश्वमेध यज्ञ किये थे और उन यज्ञोंमें हाथी, घोड़े,

निरर्गलैर्बहुफलैर्निष्ककोटिसहस्रदः । हस्त्यश्वपशुभिर्धान्यैर्मृगैर्गोजाविभिस्तथा ॥ ५ ॥ विविधां पृथिवीं पुण्यां शिबिर्ब्राह्मणसात्करोत् । यावत्यो वर्षतो धारा यावत्यो दिवि तारकाः ॥ ६ ॥ यावत्यः सिकता गाङ्ग्यो यावन्मेरोर्महोपलाः । उदन्वति च यावन्ति रत्नानि प्राणिनोपि च॥तावतीरददद्गा वै शिबिरौशीनरोऽध्वरे ॥ ७ ॥ नो यन्तारं धुरस्तस्य कञ्चिदन्यं प्रजापतिः । भूतं भव्यं भवन्तं वा नाध्यगच्छन्नरोत्तमम् ॥ ८ ॥ तस्यासन् विविधा यज्ञाः सर्वकामैः समन्विताः ॥ ९ ॥ हेमयूपासनगृहा हेमप्राकारतोरणाः । शुचिस्वाद्वन्नपानाश्च ब्राह्मणाः प्रयुतायुताः ॥ १० ॥ नानाभक्ष्यैः प्रियकथाः पयोदधिमहाह्रदाः । तस्यासन् यज्ञवाटेषु नद्यः शुभ्रान्नपर्वताः ॥ ११ ॥ पिबत स्नात खादध्वमिति यत्रोच्यते

पशु, धान्य, मृग, बैल, भेड़ बकरे आदि सहित नानाप्रकारकी पवित्र पृथ्वी ब्राह्मणोंको दानमें देदी थी, वर्षाकी जितनी बूँदें हैं, आकाशमें जितने तारे हैं, गङ्गाकी रेतीके जितने कण हैं, मेरुपर्वतकी जितनी शिलाएं हैं और समुद्रमें जितने रत्न तथा (जलचर) प्राणी हैं, उतनी गौएं उशीनरके पुत्र राजा शिबिने यज्ञमें ब्राह्मणोंको दीं थीं ॥ ४-७ ॥ प्रजापतिने भी उसकी समान कार्यभारके जुएको उठानेवाला कोई दूसरा महापुरुष भूत भविष्यत् वर्तमानमें नहीं पाया अर्थात् उसकी समान कार्य करनेवाला न हुआ न होगा और न है ॥ ८ ॥ उसके सब यज्ञोंमें याचकोंकी सब इच्छाएँ पूर्ण की जाती थीं ॥९॥ उसके यज्ञोंमें यज्ञस्तम्भ, आसन, मन्दिर किले तथा द्वारोंकी चौखटें सुवर्णकी थीं, खाने पीनेके पदार्थ पवित्र और स्वादिष्ट थे, हजारों और लाखों ब्राह्मण सुन्दर बातें करतेहुए भोजन पारहे थे उसके यज्ञके वाड़ेमें दूध दहीके बड़े२ कुण्ड भरेहुए थे और उनकी नदियें वहरही थीं तथा श्वेत अन्नोंके पर्वतोंकी समान ढेरलगे हुए थे॥११॥इस राजाके यज्ञमें सबसे कहा

जनाः। यस्मै प्रादाद्वरं रुद्रस्तुष्टः पुण्येन कर्मणा ॥ १२ ॥ अक्षयं ददतो वित्तं श्रद्धां कीर्त्तिस्तथा क्रियाः। यथोक्तमेव भूतानां प्रियत्वं स्वर्गमुत्तमम् ॥१३॥ एतांल्लब्ध्वा वरानिष्टान् शिबिः काले दिवङ्गतः। स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १४ ॥ पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः। अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

नारद उवाच। रामं दाशरथिञ्चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम। यं प्रजा अन्वमोदन्त पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ १ ॥ असंख्येया गुणा यस्मिन्नासन्नमिततेजसि। यश्चतुर्दश वर्षाणि निदेशात् पितुरच्युतः२

जाता था, कि-हे मनुष्यों! स्नान करो तथा जो मनमें आवे सो खाओ पीओ, उस दानी राजाके पुण्यकर्मसे प्रसन्न होकर शिवजीने उसको वरदान दिया था कि-तू इच्छानुसार दान देगा तो भी तेरा धन कम नहीं होगा, तेरी श्रद्धा कीर्त्ति और सत्क्रिया अक्षय रहेगी, तेरे कहनेके अनुसार प्राणी तेरे ऊपर प्रीति करेंगे और तुझे उत्तम स्वर्ग मिलेगा ॥ १२-१३ ॥ इन इच्छित वरोंको पाकर राजा शिबि समय आतेही परलोकको चलागया, हे सृंजय! जब ऐसा राजा भी मरगया जो कि-तेरे पुत्रसे चार बातोंमें अधिक था, तो तू दान और यज्ञसे शून्य अपने पुत्रका शोक न कर ॥ १४ ॥ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥ ॥

नारदजीने कहा; कि-हे सृञ्जय! हमने सुना है, कि-जो प्रजाको पुत्रकी समान प्रसन्न रखते थे वे दशरथपुत्र राम भी परलोकको पधार गये॥१॥उन अमितपराक्रमी रामचन्द्रमें असंख्यों गुण थे वह दृढचित्त राम पिताकी आज्ञासे स्त्री और लक्ष्मणके साथ१४वर्ष तक वनमें रहे थे और उन पुरुषश्रेष्ठने तपस्वियोंकी रक्षाके लिये

वने वनितया सार्धमवसल्लक्ष्मणाग्रजः । जघान च जनस्थाने राक्षसान् मनुजर्षभः ॥ ३ ॥ तपस्विनां रक्षणार्थं सहस्राणि चतुर्दश । तत्रैव वसतस्तस्य रावणो नाम राक्षसः ॥ ४ ॥ जहार भार्यां वैदेहीं सम्मोह्यैनं सहानुजम् । तमागस्कारिणं रामं पौलस्त्यमजितं परैः ॥ ५ ॥ जघान समरे क्रुद्धः पुरेव त्र्यम्बकोन्धकम् । सुरासुरैरवध्यन्तं देवब्राह्मणकण्टकम् ॥ ६ ॥ जघान स महाबाहुः पौलस्त्यं सगणं रणे । स प्रजानुग्रहं कृत्वा त्रिदशैरभिपूजितः ॥ ७ ॥ व्याप्य कृत्स्नं जगत् कीर्त्या सुरर्षिगणसेवितः । स प्राप्य विविधं राज्यं सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥ आजहार महायज्ञं प्रजा धर्मेण पालयन् । निरर्गलं सजारूथ्यमश्वमेधञ्च तं विभुः ॥ ९ ॥ आजहार सुरेशस्य हविषा मुदमाहरत् । अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरीजे

जनस्थानमें रहकर चौदह सहस्र राक्षसोंको मारा था, वहाँ रहते समय ही भाई सहित इनको धोखा देकर रावण नामक राक्षस इनकी स्त्री सीताको हरकर लेगया, तब रामको क्रोध आगया और पहले जैसे देव, दानवोंसे अवध्य एवं देवता तथा ब्राह्मणोंको कांटेकी समान दुःख देनेवाले अन्धकासुरको शिवने मारा था तैसेही सुर असुरोंसे अवध्य, ब्राह्मण और देवताओंके कंटकरूप शत्रुओंके अजेय अपराधी रावणको रामने मारडाला ॥ २–६ ॥ प्रजाके ऊपर अनुग्रह कर महाबाहु रामनेमहाबली रावणको मार डाला, तब देवताओंने उनकी पूजा की थी ॥ ७ ॥ उनकी कीर्त्ति सब जगत्में फैलगयी थी, देवता और ऋषि उनकी सेवा करते थे, और वह बड़भागी राज्य पाकर सब प्राणियोंके ऊपर दया करते थे ॥ ८ ॥ धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करनेवाले उन रामने तले ऊपर जारूथ्य(दक्षिणायनके दिनोंमें जिसमें तीन बार सूर्यकी पूजा की जाती है उस कर्म) के साथ अश्वमेध नामका महायज्ञ किया था, तथा हविसे इन्द्रके मनको प्रसन्न किया था,

बहुगुणैर्नृपः ॥ १० ॥ क्षुत्पिपासेऽजयद्रामः सर्वरोगांश्च देहिनाम् । सततं गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ११ ॥ अतिसर्वाणि भूतानि रामो दाशरथिर्बभौ । ऋषीणां देवतानां च मानुषाणां च सर्वशः । पृथिव्यां सह वासोऽभूद्रामे राज्यं प्रशासति १२ नाहीयत तदा प्राणः प्राणिनां न तदन्यथा । प्राणोपानः समानश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥ १३ ॥ पर्यदीप्यन्त तेजांसि तदानर्थाश्च नाभवन् ॥ १४ ॥ दीर्घायुषः प्रजाः सर्वा युवा न म्रियते तदा । वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः प्राप्नुवन्ति दिवौकसः ॥१५॥ हव्यं कव्यञ्च विविधं निष्पूर्त्तं हुतमेव च । अदंशमशका देशा नष्टव्यालसरीसृपाः ॥ १६ ॥ नाप्सु प्राणभृतां मृत्युर्नाकाले ज्वलनो-

---

तदनन्तर और भी बहुतसे गुणोंवाले यज्ञोंसे परमात्माका पूजन किया था ॥ ९ ॥ १० ॥ रामने भूँख प्यासको जीतलिया था तथा मनुष्योंके सब रोगोंको नष्ट किया था, वे स्वयं सदा गुणवान् थे और अपने तेजसे प्रदीप्त रहते थे ॥ ११ ॥ वह दशरथ-पुत्र राम सब प्राणियोंसे अधिक तेजस्वी थे, उनके शासनकालमें देवता, ऋषि और मनुष्य पृथ्वी पर एक साथ रहते थे।१२। उनके राज्यकालमें प्राणियोंके प्राण, अपान, समान आदि प्राण रोगादिसे विकार पाकर क्षीण नहीं होते थे, तेजस्वी पदार्थ भी तेजसे दिपते थे और अनर्थ नहीं होते थे ॥ १३ ॥ १४ ॥ उस समय सब प्रजा लम्बी आयु भोगती थी, जवान नहीं मरते थे, स्वर्गवासी देवता और पितर वेदोंकी विधियोंसे प्रसन्न होकर हव्य कव्यको ग्रहण करते थे तथा तालाब बाग आदि बनवाना पुण्यकर्म और होमको ग्रहण करके उसका फल देते थे उनके राज्यमेंसे डाँस, मच्छर और जहरीले सर्प भी नष्ट होगये थे १५ उनके समयमें जलमें डूबनेसे प्राणियोंकी मृत्यु नहीं होती थी, अग्नि भी असमयमें नहीं जलाता था तथा उनके समयमें अधर्म

दहत् । अधर्मरुचयो लुब्धा मूर्खा वा नाभवंस्तदा ॥ १७ ॥ शिष्टेष्टप्राज्ञकर्माणः सर्वे वर्णास्तदाभवन् । स्वधां पूजाश्च रक्षोभिर्जनस्थाने प्रणाशिताम् ॥ १८ ॥ प्रादान्निहत्य रक्षांसि पितृदेवेभ्य ईश्वरः । सहस्रपुत्राः पुरुषा दशवर्षशतायुषः ॥१९॥ न च ज्येष्ठाः कनिष्ठेभ्यस्तदा श्राद्धान्यकारयन् । श्यामो युवा लोहिताक्षो मत्तमातङ्गविक्रमः ॥ २० ॥ आजानुबाहुः सुभुजः सिंहस्कन्धो महाबलः । दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतनि च ॥ २१ ॥ सर्वभूतमनःकान्तो रामो राज्यमकारयत् । रामो रामो राम इति प्रजानामभवत् कथा ॥ २२ ॥ रामाद्रामं जगदभूद्रामे राज्यं प्रशासति । चतुर्विधाः प्रजा रामः स्वर्गं नीत्वा दिवं गतः ॥ २३ ॥ आत्मानं

में प्रीति रखनेवाले, लोभी अथवा मूर्ख भी नहीं रहे थे ॥१७॥ उनके राज्यकालमें सब वर्ण शिष्ट और बुद्धिमान् थे, और यज्ञकर्म करते थे, जनस्थानमें जो राक्षसोंने स्वाहा स्वधारूपी देवता और पितरोंकी पूजाको नष्ट कर दिया था उन राक्षसोंका नाश करके रामने देवता तथा पितरोंको हव्य और कव्य दिलवाया था, उस समय एक २ पुरुषके सहस्र २ पुत्र होते थे और वे सहस्र वर्षकी अवस्था तक जीते थे, उस समय बडे भाइयोंको छोटोंके श्राद्ध नहीं करने पडते थे, (क्योंकि—बडोंसे पहले छोटे नहीं मरते थे) श्यामवर्ण, रक्तनयन, तरुण, मदोन्मत्त हाथीकी समान पराक्रमी, घुटनों तक लम्बी और सुन्दर भुजाओंवाले और सिंहकी समान कन्धे वाले तथा सब प्राणियोंके चित्तोंको प्रिय लगने वाले रामने ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य किया था, प्रजामें भी राम ही रामकी ही बातें होती थीं ॥ १८–२२ ॥ रामके राज्यकालमें सब जगत् सौन्दर्यमय होगया था, अन्तमें राम अपने और तीनों भाइयोंके अंशरूप दो दो पुत्रोंके द्वारा आठ प्रकारके राजवंशको जगत्में स्थापित करके चारों वर्णोंकी प्रजाको सदेह

सम्प्रतिष्ठाप्य राजवंशमिहाष्टधा । स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ २४ ॥ पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अय ज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

नारद उवाच । भगीरथञ्च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम । येन भागीरथी गङ्गा चयनैः कांचनैश्चिता ॥ १ ॥ यः सहस्रं सहस्राणां कन्या हेमविभूषिताः । राज्ञश्च राजपुत्रांश्च ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत । सर्वा रथगता कन्या रथाः सर्वे चतुर्युजः ॥२॥ रथे रथे शतं नागाः सर्वे वै हेममालिनः ॥ ३ ॥ सहस्रमश्वाश्चैकैकं राजानं पृष्ठतोऽन्वयुः । अश्वे अश्वे शतं गावो गवां पश्चादजाविकम् ॥ ४ ॥ तेनाक्रान्ता जलौघेन दक्षिणा भूयसीर्ददत् । उपह्वरेति व्यथिता

साथ ले स्वर्गको चलेगये, इतना कहकर नारदजीने कहा, कि-सृञ्जय ! चारों बातोंमें तेरे पुत्रसे श्रेष्ठ और अधिक पुण्यात्मा वह राम ही जब न रहे, तो तू यज्ञ न करनेवाले तथा दक्षिणा न देनेवाले अपने पुत्रका शोक न कर ॥ २३-२५ ॥ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥ छ ॥ छ ॥

नारदजी बोले, कि-हे सृञ्जय ! राजा भगीरथ भी मरगए, हमने सुना है, कि-उन्होंने गङ्गाके दोनों किनारे सुवर्णकी ईंटोंसे चिनवा दिये थे ॥ १ ॥ उसने राजा तथा राजपुत्रोंको कुछ न गिनकर सुवर्णसे भूषित एक लाख कन्याएँ ब्राह्मणोंको दान दी थीं, वे सब कन्याएँ रथोंमें बैठी हुई थीं, उनमें चार २ घोड़े जुत रहे थे और हरएक रथके पीछे सुवर्णकी मालाएँ पहिरे सौ सौ हाथी चलते थे और प्रत्येक हाथीके पीछे सहस्र २ घोड़े चलते थे और हरएक घोड़ेके पीछे सौ सौ गौएँ चलती थीं और और हरएक गौके पीछे बहुतसी भेड़ बकरियें चलती थीं २-४

तस्याङ्के निषसाद ह ॥५॥ तथा भागीरथी गङ्गा उर्वशी चाभवत् पुरा। दुहितृत्वं गता राज्ञः पुत्रत्वमगमत्तदा ॥६॥ तान्तु गाथां जगुः प्रीता गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः। पितृदेवमनुष्याणां शृण्वतां वल्गुवादिनः ॥ ७ ॥ भगीरथं यजमानमैक्ष्वाकुं भूरिदक्षिणम्। गङ्गा समुद्रगा देवी वव्रे पितरमीश्वरम् ॥८॥ तस्य सेन्द्रैः सुरगणैर्देवैर्यज्ञः स्वलंकृतः। सम्यक्परिगृहीतश्च शान्तविघ्नो निरामयः ९ यो य इच्छेत विप्रो वै यत्र यत्रात्मनः प्रियम्। भगीरथस्तदा प्रीतस्तत्र तत्राददद्वशी ॥ १० ॥ नादेयं ब्राह्मणस्यासीद्यस्य यत् स्यात्

इसप्रकार राजा भगीरथने गङ्गाजीके तटपर खड़े होकर यज्ञके समय बहुत सी दक्षिणाएँ दी थीं उस समय इतने मनुष्य इकट्ठे हुए थे, कि-उनकी भीड़से पीड़ा पाकर "गङ्गा मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो" इसप्रकार कहती २ भगीरथकी गोदीमें आपड़ी थी अर्थात् मनुष्योंकी भीड़से गङ्गाका किनारा नीचा होकर गङ्गा भगीरथकी गोदी तक आगई थी, गङ्गा राजाके उस प्रदेशमें बैठी थी इस कारण तहाँ उर्वशीरूप होगई अर्थात् तहाँ उर्वशी तीर्थ होगया, गङ्गाने इस राजाकी गोदमें बैठकर इसके पूर्वजोंका उद्धार किया था, इससे यह उसके पुत्र और पुत्रीपनको प्राप्त हुई ६ इसकारण सूर्यकी समान तेजस्वी प्रियभाषी गंधर्वोंने प्रसन्न होकर देवता, पितर और मनुष्योंके सुनतेहुए नीचेलिखी गाथाको गाया था॥७॥समुद्रगामिनी गंगादेवीने बहुतसी दक्षिणा देनेवाले यजमान इक्ष्वाकुके पुत्र भगीरथको पिता कहकर पुकारा था ॥८॥ उसका यज्ञ इन्द्रादि देवताओंसे शोभायमान हुआ था और उन्होंने उस यज्ञको भली भाँति स्वीकार किया था उसके यज्ञमें विघ्न शान्त होगये थे, अतः वह निर्विघ्न समाप्त हुआ था ॥ ९ ॥ जिस२ ब्राह्मणने अपनी इच्छानुसार जो२ वस्तु माँगी वह२ वस्तु योगी भगीरथने बड़ी-प्रसन्नतासे उसको दी ॥ १० ॥ जो वस्तु जिस

प्रियं धनम् । सोपि विप्रप्रसादेन ब्रह्मलोकं गतो नृपः ॥ ११ ॥ येन यातौ मखमुखौ दिशाशाविहपादपाः । तेनावस्थातुमिच्छन्ति तं गत्वा राजमीश्वरम् ॥ १२ ॥ स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया । पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ १३ ॥ अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

नारद उवाच । दिलीपं वै चैलविलं मृतं सृञ्जय शुश्रुम । यस्य यज्ञशतेष्वासन् प्रयुतायुतशो द्विजाः ॥ १ ॥ तन्त्रज्ञानार्थसम्पन्ना यज्वानः पुत्रपौत्रिणः । य इमां वसुसम्पूर्णां वसुधां वसुधाधिपः । ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २ ॥ दिलीपस्य तु

ब्राह्मणको प्यारी थी वह उसके लिये अदेय नहीं थी, वह राजा भी ब्राह्मणोंकी कृपासे ब्रह्मलोकको गया था ॥ ११ ॥ सूर्य और चन्द्रमा किरणोंके द्वारा सब दिशाओंमें फैलकर जिस मार्गसे आनाजाना किया करते हैं, उस मार्गमें यदि भूतलके दूसरे राजाओंको जानेआनेकी इच्छा हो तो उनको सब विद्याओंको जाननेवाले तेजस्वी राजा भगीरथका अनुकरण करना चाहिये ॥१२॥ हे सृञ्जय! जब वह राजा भी मरगया जो कि–तेरे पुत्रसे पूर्वोक्त चारों बातोंमें और पुण्यमें भी अधिक था तो हे श्वित्यपुत्र! तू जिसने न दक्षिणा दी थी और न यज्ञ किये थे, ऐसे पुत्रका शोक न कर ॥ १३ ॥ साठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥

नारदजीने कहा, कि—हे सृञ्जय! जिस राजाके सैंकड़ों यज्ञोंमें लाखों करोडों ब्राह्मण आते थे उस इलविलके पुत्र राजाके विषयमें हमने सुना है कि–वह भी मरगया ॥ १ ॥ उसके यज्ञोंमें आनेवाले ब्राह्मण तत्त्वज्ञानमें कुशल, यज्ञ करानेवाले तथा बेटे पोतेवाले थे, विस्तारवाले यज्ञ करते समय दिलीपने यह धन-

यज्ञेषु कृतः पन्था हिरण्मयः । तं धर्म इव कुर्वाणाः सेन्द्रा देवाः
समागमन् ॥ ३ ॥ सहस्रं यत्र मातङ्गा गच्छन्ति पर्वतोपमाः ।
सौवर्णं चाभवत्सर्वं सदः परमभास्वरम् ॥ ४ ॥ रसानां चाभव-
न्कुल्या भक्ष्याणां चापि पर्वताः । सहस्रव्यामा नृपते यूपाश्चासन्हि-
रण्मयाः ॥५॥ चषालं प्रचषालं च यस्य यूपे हिरण्मये । नृत्यन्ते-
प्सरसस्तस्य षट्सहस्राणि सप्तधा ॥ ६ ॥ यत्र वीणां वादयति
प्रीत्या विश्वावसुः स्वयम् । सर्वभूतान्यमन्यंत राजानं सत्यशालि-
नम् ॥ ७ ॥ रागखांडवभोज्यैश्च मत्ताः पथिषु शेरते । तदेतदद्भुतं
मन्ये अन्यैर्न सदृशं नृपैः ॥ ८ ॥ यदप्सु युध्यमानस्य चक्रे न
परिपेततुः । राजानं दृढधन्वानं दिलीपं सत्यवादिनम् ॥ ९ ॥

पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणोंको दे दी थी ॥ २ ॥ राजा दिलीपके यज्ञमें सोनेकी सड़क बनाई गई थी और इन्द्रादिक देवता उसको धर्म की समान मानकर उसके यहाँ आए थे॥३॥उसके यज्ञमें पर्वताकार सहस्र हाथी घूमरहे थे और उसका सभास्थल शुद्ध सोने का बनाहुआ था तथा दमक रहा था ॥ ४ ॥ उसके यज्ञमें रसों की नदियें और अन्नके पहाड़ थे तथा सहस्र कौलिया मोटे सोनेके यज्ञस्तम्भ बने थे ॥ ५ ॥ और यज्ञस्तम्भके चषाल तथा प्रचषाल सुवर्णके बने थे और उसकी यज्ञसभाके स्थानमें छः सहस्र अप्सराएँ सात प्रकारसे नृत्य करती थीं ॥ ६ ॥ और उसके यहाँ विश्वावसु प्रसन्न होकर अपने आप वीणाको बजाता था और उस राजाको सब मनुष्य सत्यवादी मानते थे ॥ ७ ॥ उसके यज्ञमें रागखाण्डव (लड्डू पापड़ रबड़ी आदि) भोजन पानेसे मत्तहुए मनुष्य सड़कों पर शयन करते थे,एक बात और आश्चर्यजनक थी कि-जो दूसरे राजाओंमें हो ही नहीं सकती ८ कि-जलमें युद्ध करने पर उसके रथके पहिये जलमें नहीं डूबते थे, सत्यवादी, दृढ़धन्वा, बहुतसी दक्षिणा देनेवाले राजा दिलीपको

येपश्यन् भूरिदाक्षिण्यं तेपि स्वर्गजितो नराः । पंच शब्दा न जीर्यन्ति खट्वांगस्य निवेशने ॥१०॥ स्वाध्यायघोषो ज्याघोषः पिबताश्नीत खादत । स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥११॥ पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

नारद उवाच । मान्धाता चेद्यौवनाश्वो मृतः सृञ्जय शुश्रुम । देवासुरमनुष्याणां त्रैलोक्यविजयी नृपः ॥ १ ॥ यं देवावश्विनौ गर्भात् पितुः पूर्वश्चकर्षतुः । मृगयां विचरन् राजा तृषितः क्लान्तवाहनः २ धूमं दृष्ट्वागमत् सत्रं पृषदाज्यमवाप सः। तं दृष्ट्वा युवनाश्वस्य

जो मनुष्य देख भी लेते थे, वे भी स्वर्गमें चलेजाते थे खट्वांग (दिलीप) के घरमें पाँच शब्द जीर्ण (कम) नहीं होते थे, वे शब्द ये हैं–स्वाध्याय, प्रत्यंचाका घोष, खाओ, पिओ और भोज्य को खाओ रस पियो, हे सृंजय ! चारों बातोंमें तेरे पुत्रसे अधिक तथा अधिक पुण्यात्मा वह राजा ही जब मरगया तो हे श्वित्यपुत्र ! तू अपने यज्ञ और दक्षिणा देनेसे शून्य पुत्रके शोकसे सन्तप्त न हो ॥ ९–१२ ॥ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥

नारदजीने कहा, कि–राजा मान्धाता मरगया, उसके विषय मैं सुना है, कि उस विजयी राजाने देवता, मनुष्य और दैत्य तथा तीन लोकोंको जीतलिया था ॥ १ ॥ अश्विनीकुमार नामक देवताओंने उस राजाको पिताके गर्भमेंसे खींचा था (इसकी कथा इसप्रकार है, कि–) राजा युवनाश्व शिकार खेलने गया, तहाँ उसका घोडा थकगया और उसको पियास लगी ॥ २ ॥ इतनेमें ही उसको यज्ञका धुआँ दीखा, वह धुएँको देखकर यज्ञस्थानमें गया और उसने तहाँ इकट्ठे कियेहुए घी दूधको पीलिया, इससे

जठरे सुततां गतम् ३ गर्भाद्धि जहतुर्देवावश्विनौ भिषजाम्वरौ । तं दृष्ट्वा पितुरुत्सङ्गे शयानं देववर्चसम् ॥४॥ अन्योन्यमब्रुवन् देवाः कमयं धास्यतीति वै । मामेवायं धयत्वग्रे इति ह स्माह वासवः ॥५॥ ततोऽङ्गुलिभ्यो हीन्द्रस्य प्रादुरासीत् पयोऽमृतम् । मां धास्यतीति कारुण्याद्यदिन्द्रो ह्यन्वकम्पयत् ॥६॥ तस्मात्तु मान्धातात्येवं नाम तस्याद्भुतं कृतम् । ततस्तु धारां पयसो घृतस्य च महात्मनः ॥ ७ ॥ तस्यास्ये यौवनाश्वस्य पाणिरिन्द्रस्य चास्रवत् । अपिबत् पाणिमिन्द्रस्य स चाप्यह्नाभ्यवर्धत ॥ ८ ॥ सोऽभवद् द्वादशसमो द्वादशाहेन वीर्यवान् । इमाञ्च पृथिवीं कृत्स्नामेकाह्ना स व्यजीजयत् ॥९॥ धर्मात्मा धृतिमान् वीरः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः । जनमेजयं सुध-

---

उसके पेटमें गर्भ रहगया, जब अश्विनीकुमारोंने यह देखा, कि-राजा युवनाश्वके गर्भ है, तब वैद्यश्रेष्ठ देवता अश्विनीकुमारोंने पेट चीरकर उसमेंसे पुत्रको निकाला, इस देवताओंकी समान कान्तिवाले पुत्रको पिताकी गोदमें लेटेहुए देखकर देवता आपसमें कहनेलगे, कि-यह कुमार किसका स्तन पियेगा, उस समय इन्द्रने कहा, कि-यह मेरा दूध पियेगा, ऐसा कह उस कुमारके मुखमें अंगुली देदी, तब इन्द्रकी अंगुलीसे दुग्ध और घीकी धारा निकलनेलगी, इन्द्रने दया करके 'मां धास्यति' मुझको (से) पियेगा; यह कह कर उस बालक पर दया की थी, इसकारण उसका मान्धाता ऐसा अद्भुत नाम पड़ा था, तदनन्तर इन्द्रकी भुजा युवनाश्वके पुत्रके मुखमें घी और दूधकी धाराको टपकानेलगी, वह बालक इन्द्रकी भुजाको चचोंडनेसे एक दिनमेंही बढ़गया ॥ २–८ ॥ तथा दूध पीने२ वह बारह दिनमें बारहवर्षकासा होगया, उस वीर्यवान् मान्धाताने एक दिनमें ही सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतलिया था ॥९॥ धर्मात्मा धैर्यधारी, वीर, सत्यप्रतिज्ञ मनुष्य जातिके मान्धाताने जनमेजय, सुधन्वा, गय, पूरु, बृहद्रथ, असित और राजा नृगको

न्वानं गयं पूरुं बृहद्रथम् ॥ १० ॥ असितञ्च नृगञ्चैव मांधाता मनुजोऽजयत् । उदेति च यतः सूर्यो यत्र च प्रतितिष्ठति ॥ ११ ॥ तत् सर्वं यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते । सोऽश्वमेधशतैरिष्ट्वा राजसूयशतेन च ॥ १२ ॥ अददद्रोहितान्मत्स्यान् ब्राह्मणेभ्यो विशाम्पते । हैरण्यान् योजनोत्सेधानायतान् शतयोजनम् ॥१३॥ बहुप्रकारान् सुस्वादून् भक्ष्यभोज्यान्नपर्वतान् । अतिरिक्तं ब्राह्मणेभ्यो भुञ्जानो हीयते जनः ॥ १४ ॥ भक्ष्यान्नपाननिचयाः शुशुभुस्त्वन्नपर्वताः । घृतह्रदाः सूपपङ्का दधिफेना गुडोदकाः १५ रुरुधुः पर्वतान् नद्यो मधुक्षीरवहाः शुभाः । देवासुरा नरा यक्षा गन्धर्वोरगपक्षिणः ॥ १६ ॥ विप्रास्तत्रागताश्चासन् वेदवेदांगपारगाः । ब्राह्मणा ऋषयश्चापि नासंस्तत्राविपश्चितः ॥ १७ ॥

जीता था, जहाँसे सूर्य उदय होता है वहाँसे लेकर अस्त होनेतक के स्थान तकराजा मान्धाताका राज्य था, हे राजन्! मान्धाताने सौ अश्वमेध यज्ञ करके पद्मरागकी और सुवर्णकी खानवाला, अन्य देशोंसे ऊँची भूमिवाला चारसौ कोस लम्बा मत्स्य देश ब्राह्मणों को दक्षिणामें दिया था ॥ १०–१२ ॥ और जाति२ के स्वादिष्ट भक्ष्य तथा भोज्य अन्नोंके पर्वत भी ब्राह्मणोंको दिये थे, वह अन्न इतना अधिक था, कि–आदमी खाते२ थकजाते थे परन्तु अन्न कम नहीं होता था खान पानसे भरे अन्नके पर्वत (उसके यज्ञमें) शोभा पारहे थे, घीके सरोवर, दालभातकी कीच, दही रूप झाग और गुडरूप जलवाली तथा शहद और दूधको बहाने वाली नदियोंने (उन) पर्वतोंको चारों ओरसे घेर रक्खा था, उसके यज्ञमें देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, सर्प और पक्षी तथा वेदवेदाङ्गके पारगामी ब्राह्मण भी आये थे, ऋषि तथा श्रेष्ठ श्रेष्ठ ब्राह्मणभी आये थे, उसकी सभामें मूर्खका चिन्ह भी नहीं था ॥ १५–१७ ॥ वह धनादिसे पूर्ण समुद्रतककी भूमि ब्राह्मणों

समुद्रान्तां वसुमतीं वसुपूर्णान्तु सर्वतः । स तां ब्राह्मणसात् कृत्वा
जगामास्तं तदा नृपः ॥ १८ ॥ गतः पुण्यकृतांल्लोकान् व्याप्य
स्वयशसा दिशः । स चेन्ममार सृंजय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १९ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति
व्याहरन् ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

नारद उवाच । ययातिं नाहुषञ्चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम । राजसूयशतैरिष्ट्वा
सोश्वमेधशतेन च ॥१॥ पुण्डरीकसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा
। अतिरात्रसहस्रेण चातुर्मास्यैश्च कामतः । अग्निष्टोमैश्च
विविधैः सत्रैश्च प्राज्यदक्षिणैः २ अब्राह्मणानां यद्वित्तं पृथिव्यामस्ति
किञ्चन । तत् सर्वं परिसंख्याय ततो ब्राह्मणसात्करोत् ३
सरस्वती पुण्यतमा नदीनां तथा समुद्राः सरितः साद्रयश्च ।

को अर्पण करके मरगया ॥१८॥ वह अपने यशसे दिशाओंको भरकर पुण्यात्माओंके लोकोंमें गया, हे सृञ्जय ! जब तेरे पुत्रसे (पूर्वोक्त) चारों बातोंमें अधिक और पुण्यात्मा राजा भी मर गया तो हे श्वित्यपुत्र ! तू जिसने न दक्षिणा दी थी, न यज्ञ किये थे ऐसे पुत्रके शोकको त्यागदे ॥१९-२०॥ बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥ छ ॥ छ ॥

नारदजीने कहा, कि-हमने सुना है, कि-नहुषका पुत्र राजा ययाति भी मरगया था, उसने सौ राजसूय, सौ अश्वमेध, सहस्र पुण्डरीक, सैंकड़ों वाजपेय, सहस्र अतिरात्रयज्ञ, चातुर्मास्य यज्ञ तथा अग्निष्टोम आदि नानाप्रकारके बहुतसे दक्षिणावाले यज्ञोंको सत्यभावसे किया था और उन यज्ञोंमें ब्राह्मणोंके द्वेषी म्लेच्छ आदिके पास जो धन था वह सब उनसे छीनकर ब्राह्मणोंको देदिया था ॥ १-३ ॥ नदियोंमें महापवित्र सरस्वतीने, समुद्रोंने तथा पर्वतों

ईजानाय पुण्यतमाय राज्ञे घृतं पयो दुदुहुर्नाहुषाय ॥ ४ ॥ व्यूढे
देवासुरे युद्धे कृत्वा देवसहायताम् । चतुर्धा व्यभजत् सर्वां चतुर्भ्यः
पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥यज्ञैर्नानाविधैरिष्ट्वा प्रजामुत्पाद्य चोत्तमाम् ।
देवयान्याञ्चौशनस्यां शर्मिष्ठायाञ्च धर्मतः ॥६॥ देवारण्येषु सर्वेषु
विजहारामरोपमः । आत्मनः कामचारेण द्वितीय इव वासवः ७
यदा नाभ्यगमच्छान्तिं कामानां सर्ववेदवित् । ततो गाथामिमां
गीत्वा सदारः प्राविशद्वनम् ॥ ८ ॥ यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं
पशवः स्त्रियः । नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ९
एवं कामान् परित्यज्य ययातिर्धृतिमेत्य च । पूरुं राज्ये प्रतिष्ठाप्य
प्रयातो वनमीश्वरः ॥ १० स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।

सहित दूसरी नदियोंने भी राजा ययातिको घी दूध दिया था॥४॥ देवताओंकी समान राजा ययातिने देवासुरसंग्रामके समय देवताओंकी सहायता करके पृथ्वीको जीता था, फिर नानाप्रकारके यज्ञोंसे परमात्माका पूजन कर उस पृथ्वीके चार विभाग करके ऋत्विज, अध्वर्यु, होता और उद्गाता इन चारोंको बाँट दिया था और उसने शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानि तथा शर्मिष्ठामें श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करके सब देववनोंमें इन्द्रकी समान इच्छानुसार विहार किया था ॥ ५-७ ॥ इतना होने पर भी जब उसे शांति नहीं मिली तब वह निम्नलिखित गाथाको गाताहुआ स्त्रीसहित जंगलमें चलागया ॥ ८ ॥ पृथ्वीमें जितने धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियें हैं उनसे एक मनुष्यको भी सन्तोष नहीं होता अर्थात् हरएक मनुष्य जितना मिलता है उससे अधिक ही चाहता है, ९ राजा ययाति इसप्रकार कामनाओंको त्यागकर और धैर्यके साथ अपने पुत्र पुरुको राजसिंहासन पर बैठा कर वनको चलागया था ॥ १० ॥ हे सृञ्जय ! तेरे पुत्रसे चारों बातोंमें अधिक श्रेष्ठ और पुण्यवान् वह राजा ययाति भी जब मरगया, तो हे श्वित्य-

पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये त्रिषष्टितमोध्यायः ॥ ६३ ॥

नारद उवाच । नाभागमम्बरीषञ्च मृतं सृञ्जय शुश्रुम । यः सहस्रं सहस्राणां राज्ञां चैकस्त्वयोधयत् १ जिगीषमाणाः संग्रामे समन्ताद्वैरिणोऽभ्ययुः । अस्त्रयुद्धविदो घोराः सृजन्तश्चाशिवा गिरः ॥ २ ॥ बललाघवशिक्षाभिस्तेषां सोस्त्रबलेन च । छत्रायुधध्वजरथांश्छित्त्वा प्रासान्गतव्यथः ॥ ३ ॥ त एनं मुक्तसन्नाहाः प्रार्थयन् जीवितैषिणः । शरण्यमीयुः शरणं तवास्म इति वादिनः ४ स तु तान् वशगान् कृत्वा जित्वा चेमां वसुन्धराम् । ईजे यज्ञशतैरिष्टैर्यथाशास्त्रं तथानघ ॥ ५ ॥ बभुजुः सत्रसम्पन्नमन्नमन्ये जनाः

पुत्र ! तू जो न यज्ञ करपाया था और न दक्षिणा देसका था ऐसे पुत्रके शोकसे सन्तप्त न हो॥११॥तिरेसठवाँ अध्याय समाप्त

नारदजीने कहा, कि–हमने सुना है, कि–हे सृञ्जय ! नाभागका पुत्र राजा अम्बरीष भी मरगया, जो अकेला ही एकलाख योधाओंसे लडा था ॥ १ ॥ संग्राममें राजा अम्बरीषको जीतनेकी इच्छासे अस्त्रविद्यामें चतुर वैरियोंने गालियें देकर उसको चारों ओरसे घेरलिया तब उसने बल, फुर्ती और अस्त्रविद्याकी कुशलता तथा शस्त्रबलसे शत्रुओंके छत्र, आयुध, ध्वजा और रथोंके टुकडे२ करडाले और स्वयं विना पीडा पाये ही रणमें खडा रहा ॥ ३ ॥ उस समय सब वैरी कवच उतारकर जीवनकी आशासे शरणागतरक्षक अम्बरीषकी शरणमें आकर उससे कहनेलगे, कि–हम तुम्हारी शरण हैं ॥ ४ ॥ राजा अम्बरीषने उनको वशमें करके इस पृथिवीको जीतलिया, हे अनघ ! उसने शास्त्रानुसार सौ यज्ञ करके ईश्वरकी पूजा की ॥ ५ ॥ उन यज्ञोंमें

सदा । तस्मिन् यज्ञे तु विप्रेन्द्राः संतृप्ताः परमार्चिताः ॥६॥ मोदकान् पूरिकापूपान्स्वादुपूर्णाश्च शष्कुलीः । करम्भान् पृथुमृद्वीका अन्नानि सुकृतानि च ॥ ७ ॥ सूपान् मैरेयकापूपान् रागखाण्डवपानकान् । मृष्टान्नानि सुयुक्तानि मृदूनि सुरभीणि च ८ घृतं मधुपयस्तोयं दधीनि रसवन्ति च । फलं मूलञ्च सुस्वादु द्विजास्तत्रोपभुञ्जते ॥९॥ मादनीयानि पापानि विदित्वा चात्मनः सुखम् । अपिवन्त यथाकामं पानपा गीतवादितैः ॥ १० ॥ तत्र स्म गाथा गायन्ति क्षीवा हृष्टाः पठन्ति च । नाभागस्तुतिसंयुक्ता ननृतुश्च सहस्रशः ॥ ११ ॥ तेषु यज्ञेष्वम्बरीषो दक्षिणामत्यकालयत् । राज्ञां शतसहस्राणि दशमयुतयाजिनाम् ॥ १२ ॥

वड़े२ ब्राह्मण तथा दूसरे पुरुष भी सव रसोंसे भरे भोजन करके वड़े प्रसन्न हुए थे, तथा राजाने वड़ा सत्कार किया था ॥ ६ ॥ उसके यज्ञमें ब्राह्मण लड्डू पूरी, गुलगुले, घीमें उतरी हुई मीठी पूरियें, दहीमें मिलेहुए सत्तू, काला जीरा मिलीहुई दाखें, और सुन्दर वनाए हुए अन्न, दाल नशीले हुए, रागखाण्डव पानक कढ़ी आदि चरपरी कोमल और सुगन्धित वस्तुएँ, घी, शहद, दूध, जल, दही, रसीले पदार्थ और सुन्दर स्वादवाले फल फूलोंको खाकर प्रसन्न होरहे थे । ७-९॥ तहाँ "मादक वस्तुएँ पापदायक होती हैं" यह जानकर भी मादक पदार्थोंके प्रेमी लोग अपने आनन्द और सुखके लिये मदकारक पानी और मादक पदार्थोंको इच्छानुसार गीत गाते और वाजे वजातेहुए खा पीरहे थे ॥१०॥ मादक वस्तुओंको पीकर हर्षमें भरेहुए सहस्रों मनुष्य नाभागकी स्तुतिगाथाको गा २ कर नाच रहे थे ॥ ११ ॥ राजा अम्वरीषने अपने इन यज्ञोंमें दश प्रयुत यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंको दश लाख माण्डलिक राजाओंके राज्य दक्षिणामें दिये थे ॥ १२ ॥ वे राजे सुवर्णका कवच पहरनेवाले, श्वेत छत्रों

हिरण्यकवचान् सर्वान् श्वेतच्छत्रप्रकीर्णकान्। हिरण्यं स्यन्दनारूढान् सानुयात्रपरिच्छदान् ॥१३॥ ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् । मूर्द्धाभिषिक्तांश्च नृपान् राजपुत्रशतानि च ॥१४॥ सदण्डकोशनिचयान् ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत । नैवं पूर्वे जनाश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ॥ १५ ॥ यदम्वरीषो नृपतिः करोत्यमितदक्षिणः । इत्येवमनुमोदन्ते प्रीता यस्य महर्षयः ॥ १६ ॥ स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया । पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् १७

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

नारद उवाच । शशविन्दुं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम । ईजे स विविधैर्यज्ञैः श्रीमान् सत्यपराक्रमः ॥ १ ॥ तस्य भार्या सह-

---

से शोभायमान थे, सुवर्णके रथोंमें वैठनेवाले थे, उन सवके पास युद्धकी सामग्री और सेवक थे, राजा अम्वरीषने सैंकडों राज्यके अङ्ग, राजकुमार राज्यदण्ड और राज्यकोष सहित उन सव राजाओंको ब्राह्मणोंको अर्पण करदिया था, उससे महर्षि उसके ऊपर प्रसन्न हो उसको अभिनन्दन देतेहुए कहनेलगे, कि–राजा अम्वरीषने अपार दक्षिणाके साथ जैसा यज्ञ किया है, ऐसा यज्ञ न कोई करसका है और न करसकेगा ॥ १३–१६ ॥ जव ऐसा राजा मरगया हे सृञ्जय ! जो तेरे पुत्रसे चारों वातोंमें अधिक और श्रेष्ठ था, तो हे श्वैत्यपुत्र ! तू उस यज्ञ न करनेवाले और दक्षिणा न देनेवाले अपने पुत्रके शोकको त्यागदे ॥ १७ ॥

चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ ॥ छ ॥

नारदने कहा, कि–हे सृञ्जय ! राजा शशविन्दु भी मरगया, जिसके विषयमें हमने सुना है, कि–उस सत्यपराक्रमी श्रीमान् शशविन्दुने वहुतसे यज्ञोंसे परमात्माकी पूजा की थी ॥१॥ उस

स्त्रीणां शतमासीन्महात्मनः । एकैकस्याश्च भार्यायां सहस्रं तनयाभवन् ॥ २ ॥ ते कुमाराः पराक्रान्ताः सर्वे नियुतयाजिनः । राजानः क्रतुभिर्मुख्यैरीजाना वेदपारगाः ॥ ३ ॥ हिरण्यकवचाः सर्वे सर्वे चोत्तमधन्विनः । सर्वेऽश्वमेधैरीजानाः कुमाराः शाशबिन्दवः ॥ ४ ॥ तानश्वमेधे राजेन्द्रो ब्राह्मणेभ्योऽददत् पिता । शतं शतं रथगजा एकैकं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ५ ॥ राजपुत्रं तदा कन्यास्तपनीयस्वलंकृताः । कन्यां कन्यां शतं नागा नागे नागे शतं रथाः ॥ ६ ॥ रथे रथे शतञ्चाश्वा बलिनो हेममालिनः । अश्वे अश्वे गोसहस्रञ्चवां पञ्चाशदाविकाः ॥ ७ ॥ एतद्धनमपर्याप्तमश्वमेधे महामखे । शशबिन्दुर्महाभागो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ८ ॥ वार्क्षाश्च यूपा यावन्तः अश्वमेधे महामखे । ते तथैव पुनश्चान्ये तावन्तः कांचनाभवन् ॥ ९ ॥ भक्ष्यान्नपाननिचयाः पर्वताः

महात्माके एक लाख स्त्रियें थीं और एक२ स्त्रीके एक २ सहस्र पुत्र हुए थे ॥ २ ॥ वे [illegible] कुमार महापराक्रमी, सहस्र यज्ञ करनेवाले, वेदवेदां[illegible] उसका [illegible] और धनुष धारण करनेवाले [illegible]के पारगामी, सोनके [illegible] ॥ २० ॥ हे राजा शशबिन्दुके और अश्वमेध यज्ञ करनेवाले थे ॥ [illegible] उतरेहुए औरोंने अश्वमेध यज्ञमें उन सबोंका ब्राह्मणोंको सङ्कल्प करदिया, इन कुमारोंमें प्रत्येक राजकुमारके पीछे२ सौ२ रथ और सौ२ हाथी चलते थे ॥ ५ ॥ प्रत्येक राजकुमारके साथ सुवर्णसे भूषित सौ२ कन्याएं और प्रत्येक कन्याके साथ सौ२ हाथी और प्रत्येक हाथीके पीछे सौ२ रथ दिएगए थे ॥ ६ ॥ और एक२ घोड़ेके साथ सहस्र२ गौ और प्रत्येक गौके साथ पचास२ भेड़ें दीगई थीं ॥ ७ ॥ महाभाग शशबिन्दुने महायज्ञ अश्वमेधमें ब्राह्मणोंको इतना धन देने पर भी यह समझा, कि-अभी कम दियागया है ॥ ८ ॥ उस महायज्ञ अश्वमेधमें जितने वृक्षोंके यज्ञस्तम्भ थे, उतने ही स्वर्णके यज्ञस्तम्भ बनाएगए थे ९

कोशमुच्छ्रिताः । तस्याश्वमेधे निर्वृत्ते राज्ञः शिष्टास्त्रयोदश ॥१०॥ तुष्टपुष्टजनाकीर्णां शान्तविघ्नामनामयाम् । शशबिन्दुरिमां भूमिं चिरं भुक्त्वा दिवं गतः ॥ ११ ॥ स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया । पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

नारद उवाच । गयञ्चामूर्त्तरयसं मृतं सृञ्जय शुश्रुम । यो वै वर्षशतं राजा हुतशिष्टाशनोऽभवत् ॥ १ ॥ तस्मै ह्यग्निर्वरं प्रादात्ततो वव्रे वरं गयः । तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च ॥ २ ॥ गुरूणाञ्च प्रसादेन वेदानिच्छामि वेदितुम् । स्वधर्मेणाविहिंस्या-

---

उस राजाके यहाँ यज्ञमें एक२ कोस ऊँचे अन्न, पान आदिके ढेर लगा दिएगए थे, यज्ञके अन्तमें उनमेंसे तेरह ढेर बचे थे १० हृष्ट पुष्ट और सन्तुष्ट मनुष्य थे, राजा भी नीरोग और शान्त-विघ्नों, [illegible]कुमार [illegible] पर बहुत दिन राज्य करके राजा शशबिंदु [illegible] चलागया ॥११॥ जब ऐसा पुण्यात्मा राजा भी मरगया जो तेरे पुत्रसे (पूर्वोक्त) चारों बातोंमें अधिक और पुण्यात्मा था तो हे सृञ्जय ! तू जिसने न दक्षिणा देपाई थी और जो न यज्ञ करसका था, ऐसे पुत्रके शोकको त्याग दे ॥ १२ ॥ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ छ ॥ छ ॥

नारदजीने कहा, कि—हे सृञ्जय ! हमने सुना है कि—अमूर्त्तरयका पुत्र राजा गय भी मरगया जिसने सौ वर्ष तक होम करनेसे बचेहुए अन्नको ही खाया था ॥ १ ॥ होम करनेसे अवशिष्ट अन्नको खानेसे अग्निदेवने उससे वर माँगनेको कहा, तब गयने वरदान माँगा कि—"मैं तप, ब्रह्मचर्य, व्रत, नियम और गुरुओंके प्रसादसे वेदोंको जानना चाहता हूँ, बिना दूसरेको

न्यान् धनमिच्छामि चाक्षयम् ॥ ३ ॥ विप्रेषु ददतश्चैव श्रद्धा
भवति नित्यशः । अनन्यासु सवर्णासु पुत्रजन्म च मे भवेत् ॥४॥
अन्नं मे ददतः श्रद्धा धर्मे मे रमतां मनः । अविघ्नं चास्तु मे
नित्यं धर्मकार्येषु पावक ॥ ५ ॥ तथा भविष्यतीत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत । गयो ह्यवाप्य तत् सर्वं धर्मेणारीनजीजयत् ॥ ६ ॥
स दर्शपौर्णमासभ्यां काले्ष्वाग्रयणेन च । चातुर्मास्यैश्च विविधैर्यज्ञैश्चावाप्तदक्षिणैः ॥ ७ ॥ अयजच्छ्रद्धया राजा परिसम्वत्सरान्
शतम् । गवां शतसहस्राणि शतमश्वशतानि च ॥ ८ ॥ शतनिष्कसहस्राणि गवाञ्चाप्ययुतानि षट् । उत्थायोत्थाय स प्रादात्
परिसम्वत्सरान् शतम् ॥६॥ नक्षत्रेषु च सर्वेषु ददन्नक्षत्रदक्षिणाः ।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्यथा सोमोऽङ्गिरा यथा ॥१०॥ सौवर्णां पृथिवीं
कृत्वा य इमां मणिशर्कराम् । विप्रेभ्यः प्राददद्राजा सोऽश्वमेधे महा-

---

मारेहुए धर्मानुसार अक्षय धन प्राप्त करना चाहता हूँ ॥ २–३ ॥
और ब्राह्मणोंको अर्क [illegible] चाह दियाकरूँ, दूसरेको न
चाहनेवाली अपनी तिकी स्त्रीसे पुत्र [illegible]
श्रद्धा हो, धर्ममें [illegible] हो और हे अग्ने ! मेरे धर्मकृत्य [illegible]
निर्विघ्न प्राप्त हुआ करें” इतने वर चाहता हूँ ॥ ४-५ ॥
अग्निदेव ‘तथास्तु’ कहकर अन्तर्धान होगए और गयने धर्मानुसार
सब वस्तुओंको पाकर शत्रुओंको हराया ॥ ६ ॥ राजा गयने सौ
वर्ष तक, दर्शपौर्णमासेष्टि, आग्रयण चातुर्मास्य आदि बहुतसी
दक्षिणावाले यज्ञोंसे परमात्माकी श्रद्धापूर्वक पूजा की थी तथा
यह राजा सौ वर्ष तक प्रतिदिन प्रातःकाल ही उठकर एक लाख
छः अयुत गौएं, दश हजार घोडे और एक लाख मुहरें दानमें
देता था ॥ ७-६ ॥ यह राजा नक्षत्रोंके निमित्तसे भी दक्षिणा
देता था और उसने सोम तथा अंगिराकी समान अनेकों यज्ञ
किये थे ॥ १० ॥ उस राजाने अश्वमेध महायज्ञमें मणियोंके

मखे ॥ ११ ॥ जाम्बूनदमया यूपाः सर्वे रत्नपरिच्छदाः । गयस्यासन् समृद्धास्तु सर्वभूतमनोहराः ॥ १२ ॥ सर्वकामसमृद्धं च प्रादादन्नं गयस्तदा । ब्राह्मणेभ्यः प्रहृष्टेभ्यः सर्वभूतेभ्य एव च ॥ १३ ॥ स समुद्रवनद्वीपनदीनदवनेषु च । नगरेषु च राष्ट्रेषु दिवि व्योम्नि च येऽवसन् ॥ १४ ॥ भूतग्रामाश्च विविधाः संतृप्ता यज्ञसम्पदा । गयस्य सदृशो यज्ञो नास्त्यन्य इति तेऽब्रुवन् ॥१५॥ षट्त्रिंशद्योजनायामा त्रिंशद्योजनमायता । पश्चात् पुरश्चतुर्विंशद्वेदी ह्यासीद्धिरण्मयी ॥ १६ ॥ गयस्य यजमानस्य मुक्तावज्रमणिस्तृता । प्रादात् स ब्राह्मणेभ्योऽथ वासांस्याभरणानि च ॥ १७ ॥ यथोक्ता दक्षिणाश्चान्या विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणः । यत्र भोजनशिष्टस्य पर्वताः पञ्चविंशतिः ॥१८॥ कुल्याः कुशलवाहिन्यो रसा-

---

रेतेवाली, सुवर्णकी पृथिवी बनाकर ब्राह्मणोंको दी थी ॥ ११ ॥ राजा गयके यज्ञमें सुवर्णके स्तम्भोंमें रत्न लगेहुए कपड़े टँगेहुए थे, वे सब प्राणियोंके चित्तके; राजा आनन्द देते थे ॥१२॥ महायज्ञमें [illegible] तथा सब मनुष्यों[illegible] भी राजा गयने [illegible] कामनायें पूरी करनेवाला श्रेष्ठ भोजन दिया था ॥ १३ ॥ समुद्र, नदी, वन, नद, द्वीप, नगर, राष्ट्र तथा आकाश [illegible] और स्वर्गमें रहनेवाले प्राणी गयके यज्ञकी सम्पत्तिसे तृप्त होकर कहते थे, कि—"गयके यज्ञसा कोई यज्ञ नहीं हुआ" ॥ १४–१५ ॥ यज्ञ करनेवाले राजा गयने मुक्ता और हीरोंसे जड़ीहुई छत्तीस योजन चौड़ी तीस योजन लम्बी पूर्व पश्चिममें चौबीस योजन लम्बी सोनेकी बनीहुई यज्ञवेदी ब्राह्मणोंको दी थी और बहुतसे कपड़े तथा गहने दिये थे ॥ १६–१७ ॥ उसने शास्त्रमें लिखी हुई और भी बहुतसी दक्षिणायें ब्राह्मणोंको दी थीं उसके यज्ञके अन्तमें अन्नके पचीस ढेर बचे थे ॥ १८ ॥ इस यज्ञके समय रसोंकी छोटी बड़ी नदियें बह रहीं थीं और वस्त्र गहने तथा सुगन्धित

नामभवंस्तदा । वस्त्राभरणगन्धानां राशयश्च पृथग्विधाः ॥ १९ ॥ यस्य प्रभावाच्च गयस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । वटश्चाक्षय्यकरणः पुण्यं ब्रह्मसरश्च तत् ॥ २० ॥ स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया । पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

नारद उवाच । सांकृतिं रन्तिदेवञ्च मृतं सृञ्जय शुश्रुम । यस्य द्विशतसाहस्रा आसन् सूदा महात्मनः ॥ १ ॥ गृहानभ्यागतान् विप्रानतिथीन् परिवेषकाः । पक्वापक्वं दिवारात्रं वरान्नममृतोपमम् ॥ २ ॥ न्यायेनाधिगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत । वेदानधीत्य धर्मेण यश्चक्रे द्विषतो वशे ॥ ३ ॥ उपस्थिताश्च पशवः स्वयं यं शंसितव्रतम् । बहवः स्वर्गमिच्छन्तो विधिवत् सत्रयाजि-

---

पदार्थोंके भी ढेर लग रहे थे ॥ १९ ॥ इन कर्मोंके प्रभावसे राजा गय तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगया था, उसका स्मारकरूप वटवृक्ष और पवित्र ब्रह्मसरोवर तीनों लोकमें प्रसिद्ध है ॥ २० ॥ हे सृञ्जय ! जब ऐसा दानी राजा मरगया तो उससे चारों बातोंमें उतरेहुए और जिसने यज्ञ-दक्षिणा आदि नहीं दी ऐसे पुत्रके शोकको त्याग दे ॥ २१ ॥ छियासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥

नारदजीने कहा कि—सुना है, कि—संकृतिका पुत्र रन्तिदेव भी मरगया, उसके यहाँ दो लाख ब्राह्मण तो रसोइये ही थे॥१॥ वे रसोइये घरपर आएहुए अतिथि ब्राह्मणोंको रातदिन अमृत समान कच्चा पक्का अन्न देते रहते थे ॥ २ ॥ उसने न्यायसे पायाहुआ द्रव्य ब्राह्मणोंके अर्पण करदिया और धर्मानुसार वेदोंको पढ़कर शत्रुओंको जीतलिया था ॥ ३ ॥ शास्त्रानुसार यज्ञ करनेवाले शंसितव्रत राजा रन्तिदेवके पास स्वर्गमें जानेकी

नम् ॥ ४ ॥ नदी महानसाद्यस्य प्रवृत्ता चर्मराशितः । तस्माच्चर्मण्वती पूर्वमग्निहोत्रेऽभवत् पुरा ॥ ५ ॥ ब्राह्मणेभ्योददन्निष्कान् सौवर्णान्स प्रभावतः । तुभ्यंनिष्कं तुभ्यन्निष्कमिति ह स्म प्रभाषते तुभ्यं तुभ्यमिति प्रादान्निष्कान् निष्कान् सहस्रशः । ततः पुनः समाश्वास्य निष्कानेव प्रयच्छति ॥ ७ ॥ अल्पं दत्तं मयाद्येति निष्ककोटिं सहस्रशः । एकाह्ना दास्यति पुनः कोन्यस्तत् सम्प्रदास्यति ॥ ८ ॥ द्विजपाणिवियोगेन दुःखं मे शाश्वतं महत् । भविष्यति न सन्देह एवं राजाददद्वसु ॥ ९ ॥ सहस्रशश्च सौवर्णान् वृषभान् गोशतानुगान् । साष्टं शतं सुवर्णानां निष्क आहुर्द्धनं तथा ॥१०॥ अध्यर्द्धमासमददद् ब्राह्मणेभ्यः शतं समाः । अग्निहोत्रोपकरणं यज्ञोपकरणञ्च यत् ॥ ११ ॥ ऋषिभ्यः करकान्

(कि-तुम यज्ञ करके हमें इस देहसे छुड़ाकर स्वर्गमें भेजो) इच्छासे बहुतसे पशु अपने आपही चले आते थे ॥ ४ ॥ और अग्निहोत्रकी शालारूप हुए उसके रसोई घरमें (यज्ञीय पशुओंके) चमड़ेका इतना ढेर लगा, कि-उसमेंसे चर्मण्वती नदी निकली थी ॥ ५ ॥ तुम्हें निष्क दूँ, तुम्हें निष्क दूँ" इसप्रकार पुकार२ कर उसने ब्राह्मणोंको सुवर्णके निष्क दिये थे ॥ ६ ॥ करोडों निष्कोंका दान करके आज तो मैंने थोड़े ही निष्क दानमें दिये हैं, ऐसा कहकर उसने सहस्रों ब्राह्मणोंको बार२ निष्कोंका दान दिया था, वह एक दिनमें जितने निष्कों (सोनेके सिक्कों) का दान करता था, उतनो दान मनुष्य पूरे जन्ममें भी नहीं दे सकता ॥ ७-८ ॥ राजा रन्तिदेव यदि दान देनेके लिये ब्राह्मण नहीं मिलता था, तो कहता था, कि-अब चिरकालको महादुःख आपड़ेगा, इसप्रकार कहते२ वह धनका दान करता था ॥ ९ ॥ यह राजा सौ वर्ष तक आधे २ महीनेमें सुवर्णसे सजाई हुई सौ गौएं, कि-जिनके पीछे एक २ सहस्र सजेहुए बैल होते थे, और

कुम्भान् स्थालीः पिठरमेव च । शयनासनयानानि प्रासादांश्च गृहाणि च ॥ १२ ॥ वृक्षांश्च विविधान् दद्यादन्नानि च धनानि च । सर्वं सौवर्णमेवासीद्रन्तिदेवस्य धीमतः ॥१३॥ तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः । रन्तिदेवस्य तां दृष्ट्वा समृद्धिमतिमानुषीम् ॥१४॥ नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुवेरसदनेष्वपि । धनञ्च पूर्यमाणं नः किं पुनर्मनुजेष्विति ॥१५॥ व्यक्तं वस्वोकसारेयमित्यूचुस्तत्र विस्मिताः । साङ्कृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत् १६ आलभ्यन्त तदा गावः सहस्राण्येकविंशतिः । तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ १७ ॥ सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य मांसं यथा पुरा । रन्तिदेवस्य यत् किञ्चित् सौवर्णमभवत्तदा ॥ १८ ॥

यज्ञ तथा अग्निहोत्रकी सामग्री ब्राह्मणोंको देता था ॥१०–११॥ इतना ही नहीं, किन्तु वह राजा ऋषियोंको कमण्डलु, घड़े, थाली, लोढ़े, पलङ्ग, आसन, सवारी, महल, घर, नानाप्रकारके वृक्ष, अन्न और धन आदि अर्पण करता था, बुद्धिमान् राजा रन्तिदेवकी सब वस्तुएँ सुवर्णकी ही थीं ॥१२–१३॥ पुराणवेत्ता लोग रन्तिदेवकी अलौकिक समृद्धिको देखकर इसप्रकार गाथा गाते हैं कि–॥ १४ ॥ इतना धन तो हमने कुवेरके भवनोंमें भी नहीं देखा, फिर मनुष्योंके पास तो राजा रन्तिदेवकी समान धन हो ही कैसे सकता है ? ॥ १५ ॥ उसके घरोंको देखकर विस्मितहुए मनुष्य कहते थे, कि–इस राजाके घर वास्तवमें सोनेके ही हैं, संकृतिके पुत्र राजा रन्तिदेवके घर जिस रातको अतिथि ठहरते थे, उस रात्रिमें इक्कीस सहस्र बैलोंका आलम्भन होता था, कानोंमें मणिजटित सुन्दर कुण्डल पहिरने वाले राजाके रसोइये, जोरसे पुकार कर कहते थे, कि–आज तुम आनन्दसे खूब खाओ आजकेसा मांस पहिले कभी नहीं बना था, राजा रन्तिदेवके यहाँ जो कुछ था वह सब सुवर्णका ही था, उसने उस

तत् सर्व वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत । प्रत्यक्षं तस्य हव्यानि प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ १९ ॥ कव्यानि पितरः काले सर्वकामान् द्विजोत्तमाः । स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ २० ॥ पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

नारद उवाच । दौष्यंतिं भरतञ्चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम । कर्माण्यसुकराण्यन्यैः कृतवान् यः शिशुर्वने ॥ १ ॥ हिमावदातान् यः सिंहान्नखदंष्ट्रायुधान् बली । निर्वीर्यांस्तरसा कृत्वा विचकर्ष बबन्ध च ॥ २ ॥ क्रूरांश्चोग्रतरान् व्याघ्रान् दमित्वा

सबको यज्ञ करने पर ब्राह्मणोंको देदिया, उसके हविको देवता प्रत्यक्ष होकर ग्रहण करते थे ॥ १६-१९ ॥ पितर प्रत्यक्ष आकर कव्य ग्रहण करते थे, उत्तम ब्राह्मण समयके अनुसार उस राजासे अपनी सब कामनायें पूरी करते थे, हे सृञ्जय ! जो तेरे पुत्रसे चारों बातोंमें अधिक था वह रन्तिदेव ही मरगया ॥ २० ॥ वह तो तेरे पुत्रसे पुण्यमें बढा चढ़ा था, तो तू अपने यज्ञ-दक्षिणा-शून्य पुत्रके शोकसे सन्तप्त न हो ॥ २१ ॥ सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥

नारदजीने कहा, कि—हे सृञ्जय ! हम दुष्यन्तके पुत्र भरतको भी मराहुआ सुनते हैं, उसने वनमें रहकर बाल्यावस्थामें दूसरोंसे न होसकें, ऐसे काम किये थे ॥ १ ॥ बली राजा भरत बाल्यावस्थामें बरफकी समान श्वेत रङ्गके और नख तथा डाढ़रूप आयुधवाले सिंहोंको बलात्कारसे पकड़कर बलहीन कर डालता था और अपनी ओरको घसीटकर बाँधलेता था ॥ २ ॥ लाख लगीहुई मेनसिलकी समान लाल२ बुन्दकीवाले लाल

चाकरोद्वशे । मनःशिलाइव शिलाः संयुक्ता जतुराजिभिः ॥ ३ ॥ व्यालादींश्चातिबलवान् सुप्रतीकान् गजानपि । दंष्ट्रासु गृह्य विमुखान् शुष्कास्यानकरोद्वशे ॥ ४ ॥ महिषानप्यतिबलो बलिनो विचकर्ष ह । सिंहानां च सुदृप्तानां शतान्याकर्षयद्बलात् ॥ ५ ॥ बलिनः सृमरान् खड्गान्नानासत्त्वानि चाप्युत । कृच्छ्रप्राणं वने बध्वा दमयित्वाप्यवासृजत् ॥ ६ ॥ तं सर्वदमनेत्याहुर्द्विजास्तेनास्य कर्मणा । तम्प्रत्यषेधज्जननी मा सत्त्वानि विजीजहि ॥७॥ सोश्वमेधशतेनेष्ट्वा यमुनामनुवीर्यवान् । त्रिशताश्वान् सरस्वत्यां गङ्गामनु चतुःशतान् ॥ ८ ॥ सोश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च । पुनरीजे महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ ९ ॥ अग्निष्टोमातिरात्रा-

---

पीले रङ्गके क्रूरस्वभाव व्याघ्रोंको दबाकर भरतने अपने वशमें करलिया था ॥ ३ ॥ अतिबली सर्प आदि और सुप्रतीक आदि हाथियोंके दाँत पकड़कर उनके मुख सुखा देता था. और उन्हें वशमें करलेता था ॥ ४ ॥ वह राजा अतिबली भैंसों (के सींगों) को पकड़कर खेंचलेता था और अतिघमण्डी सौ २ सिंहोंको खेंचकर पृथिवी पर पटक देता था ॥ ५ ॥ वह राजा वनमें अपने प्राणोंको भी जोखममें डालकर बलवान् चीते और गेंडोंको, तथा नानाप्रकारके प्राणियोंको (वृक्षोंसे) बाँध खूब पीटकर छोड़ देता था ॥ ६ ॥ उसके ऐसे कर्मोंको देखकर ब्राह्मण उसको सर्वदमन नामसे पुकारने लगे थे, उसकी माता उसे ऐसा करने से रोककर कहती थी, कि—हे बेटा ! तू—प्राणियोंको मत मार ७ महापराक्रमी राजा भरतने यमुना नदीपर सौ अश्वमेध यज्ञ करके सरस्वती नदी पर तीन सौ और गङ्गाजी पर चार सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे ॥ ८ ॥ उसने फिर भी सहस्र अश्वमेध, सौ राजसूय-महायज्ञ किये और उनमें बहुतसी दक्षिणाएं दीं ॥ ९ ॥ फिर उसने अग्निष्टोम, अतिरात्र, उक्थ, विश्वजित् और अच्छे २

भ्यामिष्ट्वा विश्वजिता अपि। वाजपेयसहस्राणां सहस्रैश्च सुसंवृतैः१० इष्ट्वा शाकुन्तलो राजा तर्पयित्वा द्विजान् धनैः। सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ ॥ ११ ॥ जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य महायशाः। यस्य यूपः शतव्यामः परिणाहेन काञ्चनः ॥ १२ ॥ समागम्य द्विजैः सार्धं सेन्द्रैर्देवैः समुच्छ्रितः। अलंकृतान् राजमानान् सर्वरत्नैर्मनोहरैः ॥ १३ ॥ हैरण्यानश्वान् द्विरदान् रथानुष्ट्रानजाविकम्। दासीदासं धनं धान्यं गाः सवत्साः पयस्विनीः १४ ग्रामान् गृहांश्च क्षेत्राणि विविधांश्च परिच्छदान्। कोटीशतायुतांश्चैव ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ १५ ॥ चक्रवर्त्ती ह्यदीनात्मा जितारिर्ह्यजितः परैः। स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १६ ॥ पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः। अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ १७ ॥ अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

मन्त्रोंसे रक्षित एक लाख वाजपेय यज्ञ किये थे, शकुन्तलाके पुत्रने इन सब यज्ञोंमें ब्राह्मणोंको धनसे तृप्त किया था इस महायशस्वी भरतने एक हजार पद्मके मूल्यका जाम्बूनद जातिका सोना कण्व मुनिको दिया था, उसका यज्ञस्तम्भ सौ कौलिया ऊँचा और ठोस सोनेका था, उसको ब्राह्मण और इन्द्र सहित देवताओंने खड़ा किया था, चक्रवर्ती, महामना, शत्रुञ्जय और शत्रुओंसे अजित राजा भरतने सब प्रकारके मनोहर रत्नोंसे सजायेहुए और शोभा पातेहुए करोड़ों तथा लाखों घोड़े, हाथी, रथ, ऊँट, मेढ़े, बकरे, दास, दासी, धन, धान्य गौ, सवत्सा दुधारी गौ, ग्राम, घर, खेत्र और नानाप्रकारके ओढ़नेके करोडों, सैंकड़ों तथा दश सहस्र वस्त्र दानमें दिये थे।१०–१५। हे सृञ्जय! तेरे पुत्रसे चारों बातोंमें अधिक श्रेष्ठ और पुण्यात्मा वह राजा भरत भी जब न बचा तो हे श्वित्यपुत्र! तू यज्ञ दक्षिणा आदिसे शून्य अपने पुत्रके वियोगसे दुःखी क्यों होता है ११६।१७ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त॥

नारद उवाच । पृथुं वैन्यञ्च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम । यमभ्यषिञ्चन् साम्राज्ये राजसूये महर्षयः ॥ १ ॥ यत्नतः प्रथितेत्यूचुः सर्वानभिभवन् पृथुः।क्षतान्नस्त्रास्यते सर्वानित्येवं क्षत्रियोऽभवत् ॥ २ ॥ पृथुं वैन्यं प्रजा दृष्ट्वा रक्ताः स्मेति यदब्रुवन् । ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥ ३ ॥ अकृष्टपच्या पृथिवी आसीद्वैन्यस्य कामधुक् । सर्वाः कामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ४ आसन् हिरण्मया दर्भाः सुखस्पर्शाः सुखावहाः।तेषां चीराणि सम्वीता प्रजास्तेष्वेव शेरते ॥ ५ ॥ फलान्यमृतकल्पानि स्वादूनि च मधूनि च । तेषामासीत्तदाहारो निराहाराश्च नाभवन् ॥ ६ ॥ अरोगाः सर्वसिद्धार्था मनुष्या ह्यकुतोभयाः । न्यवसन्त यथाकामं

नारदजीने कहा, कि-हे सृञ्जय ! जिसका महर्षियोंने राजसूयके समय साम्राज्यके सिंहासन पर अभिषेक किया था, वह राजा वेनका पुत्र पृथु भी मरगया, उसके विषयमें हमने सुना है, कि-॥ १ ॥ उसने सबका तिरस्कार करके पृथ्वीको प्रसिद्ध किया था, इसलिये लोगोंने उसका नाम पृथु रक्खा था और यह सब आपत्तियोंमें हमारी रक्षा करेगा ऐसा विचारकर उसको सब क्षत्रिय कहते थे, पृथुको देखकर प्रजा कहतीथी कि-हम इसके ऊपर बड़े प्रसन्न हैं, इसकारण तथा प्रजाके अनुरागके कारण उसका नाम "राजा" पडा था ॥ २-३ ॥ पृथ्वी वेनके पुत्र पृथुकी कामनाओंको पूर्ण करती थी, अतः उसके यहाँ विना जुते ही खेती होती थी और गौएं यथेच्छ दूध देतीं थीं, तथा उसकी कामधेनुएं प्रत्येक पात्रमें मधु टपकाती थीं ॥ ४ ॥ उसके यहाँ कुश सुख देनेवाले स्पर्शमें आनन्द देनेवाले और सुवर्णके थे, अतः प्रजा उनके ही वस्त्रोंको पहिरती थी और उन पर ही सोती थी ॥५॥ फल अमृतकी समान स्वादिष्ट और मीठे होते थे, प्रजा उनको खाती थी और उसके राज्यमें भूखा कोई नहीं रहता था ॥६॥

वृक्षेषु च गुहासु च ॥ ७ ॥ प्रविभागो न राष्ट्राणां पुराणाञ्चाभवत्तदा । यथासुखं यथाकामं तथैता मुदिताः प्रजाः ॥ ८ ॥ तस्य संस्तम्भिता ह्यापः समुद्रमभियास्यतः । पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥ ९ ॥ तं वनस्पतयः शैला देवासुरनरोरगाः । सप्तर्षयः पुण्यजना गन्धर्वाप्सरसोऽपि च ॥१०॥ पितरश्च सुखासीनमभिगम्येदमब्रुवन् । सम्राडसि क्षत्रियोसि राजा गोप्ता पितासि नः ॥ ११ ॥ देह्यस्मभ्यं महाराज प्रभुः सन्नीप्सितान् वरान् । यैर्वयं शाश्वतीस्तृप्तीर्वर्त्तयिष्यामहे सुखम् ॥ १२ ॥ तथेत्युक्त्वा पृथुर्वैन्यो गृहीत्वाजगवं धनुः । शरांश्चाप्रतिमान् घोरांश्चिन्तयित्वाब्रवीन्महीम् ॥ १३ ॥ एह्येहि वसुधे क्षिप्रं क्षरैभ्यः कांक्षितं

मनुष्य नीरोग, और सकल सफल मनोरथोंवाले थे, उनको कहीं भी भय नहीं था, अतः वे वृक्ष तथा गुफाओंमें रहते थे ॥ ७ ॥ उस समय देश और नगरोंका विभाग नहीं था अतः मनुष्य सुखपूर्वक यथेच्छ जहाँ चाहे तहाँ रहते थे ॥८॥ राजा पृथु जिस समय समुद्र पर चलता था उस समय जल स्तम्भित होजाता था, और पर्वत उसके लिये मार्ग छोडदेते थे उसकी ध्वजा कहीं भी नहीं टूटी थी ॥ ९ ॥ सुखपूर्वक बैठेहुए राजा पृथुके पास वनस्पति, पर्वत, देवता, असुर, मनुष्य, सर्प, सातों ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, अप्सराएं और पितरोंने आकर कहा, कि–तुमही चक्रवर्ती हो, क्षत्रिय हो, राजा हो, हमारे रक्षक और पिता भी तुम ही हो ॥ १०–११ ॥ हे महाराज ! आप हमें वर दें, जिससे हम अनन्तकाल तक तृप्ति और सुख पावें ॥ १२ ॥ यह सुनकर वेनपुत्र पृथुने कहा, कि "तुम्हारी इच्छानुसार ही होगा" तदनन्तर वह आजगव नामका धनुष और अप्रतिम घोर बाणोंको ले पृथिवीसे बोला, कि ॥ १३ ॥ हे वसुधे ! तू शीघ्रही मेरे पास आकर इनके मुखमें इच्छित दूधकी धार छोड, तदनन्तर मैं जिसको

पयः । ततो दास्यामि भद्रं ते अन्नं यस्य यथेप्सितम् ॥ १४ ॥ वसुधोवाच । दुहितृत्वेन मां वीर सङ्कल्पयितुमर्हसि । तथेत्युक्त्वा पृथुः सर्वं विधानमकरोद्वशी ॥१५॥ ततो भूतनिकायास्तां वसुधां दुदुहुस्तदा । तां वनस्पतयः पूर्वं समुत्तस्थुर्दुधुक्षवः ॥ १६ ॥ सातिष्ठद्वत्सला वत्सं दोग्धृपात्राणि चेच्छती । वत्सोऽभूत् पुष्पितः शालः प्लक्षो दोग्धाभवत्तदा ॥ १७ ॥ छिन्नप्ररोहणं दुग्धं पात्रमौदुम्बरं शुभम् । उदयः पर्वतो वत्सो मेरुर्दोग्धा महागिरिः १८ रत्नान्योषधयो दुग्धं पात्रमश्ममयं तदा । दोग्धा चासीत्तदा देवो दुग्धमूर्जस्करं प्रियम् ॥ १९ ॥ असुरा दुदुहुर्मायामामपात्रे तु ते तदा । दोग्धा द्विमूर्धा तत्रासीद्वत्सश्चासीद्विरोचनः ॥ २० ॥ कृषिञ्च शस्यञ्च नरा दुदुहुः पृथिवीतले । स्वायम्भुवो मनुर्वत्स-

---

जैसा अन्न अच्छा लगेगा, उसको तैसा ही अन्न दूँगा तेरा कल्याण हो ॥ १४ ॥ वसुधा बोली कि–हे वीर ! तुम मुझे दुहिता करनेकी इच्छा करते हो ? वशी पृथुने कहा, कि–"हाँ" और पृथिवीको दुहने लगे, प्रथम वनस्पति पृथ्वीको दुहनेको उद्यत हुए, परन्तु वत्सला पृथ्वी बछड़े और दुहनेवालेकी अपेक्षा करतीहुई खडी ही रही, उस समय पुष्पित शालका वृक्ष बछड़ा हुआ, पिलखन दुहनेवाला हुआ और वृक्ष कटनेपर गिरताहुआ क्षीर दूध हुआ तथा गूलड़के शुभ पात्रमें दुहागया (फिर पर्वतों ने पृथिवीको दुहा उसमें) उदयाचल वत्स हुआ महागिरि मेरु पर्वत दुहनेवाला हुआ ॥१५-१८॥ रत्न और औषधिरूप दुग्ध, पत्थररूप पात्रमें दुहागया, तदनन्तर दुहनेवाला देवहुआ, बछड़ा भी देव हुआ और देवताओंने मनरूपी पात्रमें तेजस्वी बली अमृतको दुहा ॥ १९ ॥ असुरोंने कच्चे पात्रमें मायारूपी दूध दुहा उसमें दुहनेवाला द्विमूर्धा और बछड़ा विरोचन हुआ था ॥२०॥ पृथ्वीतलमें मनुष्योंने कृषि और धान्यको दुहा. उस समय स्व-

स्तेषां दोग्धाऽभवत् पृथुः ॥ २१ ॥ अलाबुपात्रे च तथा विषंदुग्धा वसुन्धरा । धृतराष्ट्रोऽभवद्दोग्धा तेषां वत्सस्तु तक्षकः ॥ २२ ॥ सप्तर्षिभिर्ब्रह्म दुग्धा तथा चाक्लिष्टकर्मभिः । दोग्धा बृहस्पतिः पात्रं छन्दो वत्सश्च सोमराट् ॥ २३ ॥ अन्तर्धानं चामपात्रे दुग्धा पुण्यजनैर्विराट् । दोग्धा वैश्रवणस्तेषां वत्सश्चासीद् वृषध्वजः ॥ २४ ॥ पुण्यगन्धान् पद्मपात्रे गन्धर्वाप्सरसोऽदुहन् । वत्सश्चित्ररथस्तेषां दोग्धा विश्वरुचिः प्रभुः ॥ २५ ॥ स्वधां रजतपात्रेषु दुदुहुः पितरश्च ताम् । वत्सो वैवस्वतस्तेषां यमो दोग्धान्तकस्तदा ॥ २६ ॥ एवं निकायैस्तैर्दुग्धा पयोभीष्टं हि सा विराट् । यैर्वर्त्तयन्ति ते ह्यद्य पात्रैर्वत्सैश्च नित्यशः ॥ २७ ॥ यज्ञैश्च विविधैरिष्ट्वा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् । सन्तर्पयित्वा भूतानि सर्वैः कामैर्मनःप्रियैः ॥ २८ ॥

यम्भू मनु बछड़े बने और पृथु दोग्धा बने ॥ २१ ॥ सर्पोंने रामतुरई (तुम्बी)रूपी पात्रमें पृथ्वीमेंसे विषरूप दूध दुहा, उस समय धृतराष्ट्र (सर्प) दोग्धा था और तक्षक वत्स बना ॥ २२ ॥ उत्तम कर्म करनेवाले सप्तऋषियोंने ब्रह्मरूपी दूध दुहा, उस समय बृहस्पति दोग्धा, छन्द पात्र, और सोमराट् बछड़ा हुआ पुण्यजनों (विद्याधरों) ने कुबेरको दोग्धा और वृषध्वजको वत्स बनाकर आमपात्रमें अन्तर्धानरूपी दूध दुहा था ॥ २३–२४ ॥ गन्धर्व और अप्सराओंने कमलरूपी पात्रमें पवित्रगन्धरूप दुग्धको दुहा, उस समय चित्ररथ बछड़ा और प्रभु विश्वरुचि दोग्धा बने ॥ २५ ॥ पितरोंने चाँदीके पात्रोंमें सूर्यको बछड़ा और यमराजको दोग्धा बनाकर पृथ्वीमेंसे स्वधारूपी दूधको दुहा ॥ २६ ॥ इसप्रकार उन नियुक्त पुरुषोंने अपनी इच्छानुकूल पृथिवीमेंसे दूधको दुहा था और वे अब भी उन पात्र तथा बछड़ोंसे नित्य दूधको दुहा करते हैं और नित्य ऐसे ही दुहा करेंगे ॥ २७ ॥ इस प्रकार पृथ्वीको दुहकर वेनके प्रतापी पुत्र राजा पृथुने नानाप्रकारके यज्ञ

हैरण्यानकरोद्राजा ये केचित् पार्थिवा भुवि । तान् ब्राह्मणेभ्यः प्रायच्छदश्वमेधे महामखे ॥ २९ ॥ षष्टिनागसहस्राणि षष्टिनागशतानि च । सौवर्णानकरोद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तान् ददौ ॥३०॥ इमां च पृथिवीं सर्वां मणिरत्नविभूषिताम् । सौवर्णीमकरोद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तां ददौ ॥ ३१ ॥ स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया । पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्वैत्येति व्याहरन् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

नारद उवाच । रामो महातपाः शूरो वीरलोकनमस्कृतः । जामदग्न्योऽप्यतियशा अवितृप्तो मरिष्यति ॥ १ ॥ यस्मायमनुपर्येति भूमिं

कर प्राणियोंकी मनःप्रिय सब कामनाओंको पूर्ण करके सबको तृप्त किया था ॥ २८ ॥ इस राजाने पृथ्वीके सब पदार्थोंको सुवर्णके बनवाकर अश्वमेध यज्ञमें उन सबको ब्राह्मणोंके अर्पण करदिया था ॥ २९ ॥ उसने साठ सहस्र छः सौ सोनेके हाथी बनाकर ब्राह्मणोंको दानमें दिये ॥ ३० ॥ तैसेही उसने सम्पूर्ण पृथिवीको मणि रत्नोंसे विभूषित और सुवर्णमयी करके ब्राह्मणों को देदिया ॥ ३१ ॥ हे सृञ्जय ! तेरे पुत्रोंसे चारों बातोंमें अधिक और पुण्यात्मा जब वह राजा भी मरगया तब हे श्वित्यपुत्र! तू अपने दान यज्ञ आदिसे हीन पुत्रके शोकसे सन्तप्त मत हो ॥ ३२–३३ ॥ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६९ ॥

नारदजीने कहा कि–हे सृञ्जय ! जमदग्निके पुत्र परशुराम महातपस्वी हैं, शूरवीर हैं, और प्राणी उनका सत्कार करते हैं ऐसे महायशस्वी परशुराम भी अतृप्त ही मर जावेंगे ॥ १ ॥ उन्होंने पृथिवी परसे उपद्रवों को नष्ट कर शान्ति फैलाई सत्ययुगके धर्मोंका स्थापन किया तथा अनुपम लक्ष्मी पाने पर भी उनके

कुर्वन्निमां सुखाम् । न चासीद्विक्रिया यस्य प्राप्य श्रियमनुत्तमाम् २ यः क्षत्रियैः परामृष्टे वत्से पितरि चाब्रुवन् । ततोवधीत् कार्त्तवीर्यमजितं समरे परैः ॥ ३ ॥ क्षत्रियाणां चतुःषष्टिमयुतानि सहस्रशः । तदा मृत्योः समेतानि एकेन धनुषाजयत् ॥ ४ ॥ ब्रह्मद्विषाञ्चाथ तस्मिन् सहस्राणि चतुर्दश । पुनरन्यान्निजग्राह दन्तक्रूरं जघान ह ॥ ५ ॥ सहस्रं मुसलेनाहन् सहस्रमसिनावधीत् । उद्बन्धनात् सहस्रञ्च सहस्रमुदके धृतं ॥ ६ ॥ दन्तान् भंक्त्वा सहस्रस्य कर्णान्नासान्यकृन्तत । ततः सप्तसहस्राणां कटुधूममपाययत् ॥ ७ ॥ शिष्टान्बध्वा च हत्वा वै तेषां मूर्ध्नि विभिद्य च । गुणावतीमुत्तरेण खाण्डवाद्दक्षिणेन च ॥ गिर्यन्ते शतसाहस्रा हैहयाः समरे

मनमें विकार (लोभ आदि) नहीं आया ॥ २ ॥ जब क्षत्रियोंने ने उनके प्रिय पिताको मार डाला और कामदुधाको हरलिया, तब उन्होंने बिना बोलेचाले शत्रुओंसे युद्ध करके अजेय कार्तवीर्यको मारडाला ॥ ३ ॥ उन्होंने मृत्युके पास पहुँचेहुए छः लाख चालीस सहस्र शत्रुओंको एक धनुषसे ही जीतकर मारडाला था ॥४॥ परशुरामने इस युद्धमें ब्रह्मद्वेषी चौदह सहस्र राजाओंको तथा औरोंको भी कैद कर लिया था और दन्तक्रूरदेशके अधिपतिराजा को मारडाला था॥५॥और इस युद्धमें परशुरामने हजार क्षत्रियोंको मूसलसे मारडाला, हजारको तलवारसे काट डाला, एक हजार राजाओंको पेड़की शाखाओंमें टांग कर तथा एक हजार राजाओंको जलमें डुबा कर मारडाला था; एक सहस्र राजाओंके दाँत तोड़कर नाक कान काट लिये थे और सात हजारको कडुआ धुआँ पिलाकर मारडाला था तथा बाकी बचेहुओंको बाँध उनके शिर फोड़कर मारडाला था और गुणवती नगरीसे उत्तरकी ओर खाण्डव वनसे दक्षिणकी ओर पहाड़के अन्तिम भागमें हुए युद्धमें परशुरामने दश सहस्र हैहयोंको मारडाला था ॥ ६-८ ॥

हताः ॥८॥ सरथाश्वगजा वीरा निहतास्तत्र शेरते । पितुर्वधामर्षितेन जामदग्न्येन धीमता ॥ ९ ॥ निजघ्ने दशसाहस्रान् रामः परशुना तदा । न ह्यमृष्यत ता वाचो यास्तैर्भृशमुदीरिताः ॥१०॥ भृगो रामाभिधावेति यदाक्रन्दन् द्विजोत्तमाः । ततः काश्मीरदरदान् कुन्तिक्षुद्रकमालवान् ॥ ११ ॥ अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च विदेहांस्ताम्रलिप्तकान् । रक्षोवाहान् वीतिहोत्रांस्त्रिगर्तान् मार्त्तिकावतान् ॥ १२ ॥ शिबीनन्यांश्च राजन्यान् देशान्देशान् सहस्रशः । निजघान शितैर्बाणैर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥ १३ ॥ कोटीशतसहस्राणि क्षत्रियाणां सहस्रशः । इन्द्रगोपकवर्णस्य बन्धुजीवनिभस्य च ॥ १४ ॥ रुधिरस्य परीवाहैः पूरयित्वा सरांसि च । सर्वानष्टादश द्वीपान् वशमानीय भार्गवः ॥ १५ ॥ ईजे क्रतुशतैः पुण्यैःसमाप्तवरदक्षिणैः । वेदीमष्टनलोत्सेधां सौवर्णां विधिनि-

---

पिताके वधसे क्रोधमें भरे हुए परशुरामके हाथसे मरणको प्राप्त हुए हाथी, घोड़े और रथोंसहित सैंकड़ों वीर वहाँ पड़े थे ॥ ९ ॥ इन क्षत्रियोंकी गालियोंको न सह सकनेके कारण परशुरामने फरसेसे दशहजार क्षत्रियोंको मारडाला ॥ १० ॥ जब श्रेष्ठ २ ब्राह्मण यह कह कर चिल्लाने लगे, कि--(हमारी रक्षाके लियें) हे भृगुपुत्र परशुराम ! धावा करो २ ! तब जमदग्निके पुत्र प्रतापी परशुरामने तेज किये हुए बाणोंसे काश्मीर, दरद कुन्ती, क्षुद्रक, मालवा, अंग, वंग, कलिङ्ग विदेह, ताम्रलिप्त, रक्षोवाह, वीतिहोत्र, त्रिगर्त. मार्तिकावत, शिबि तथा दूसरे देशोंके सैंकड़ों, सहस्रों और अनन्त करोड़ों क्षत्रियोंको तेज बाणोंसे नष्ट कर दिया था और इन्द्रगोप (बीर बहूटी) और जपाके फूलकी समान रक्तवर्णके रुधिरप्रवाहोंसे सरोवरोंको भर कर भृगुनन्दनने अठारह द्वीपोंको अपने वशमें करलिया था ॥ ११-१५ ॥ तदनन्तर परशुरामने सौ महापवित्र यज्ञ किये, इनमें ब्राह्मणोंको

मिताम् ॥ १६ ॥ सर्वरत्नशतैः पूर्णां पताकाशतमालिनीम् । ग्राम्यारण्यैः पशुगणैः सम्पूर्णाञ्च महीमिमाम् ॥ १७ ॥ रामस्य जामदग्न्यस्य प्रतिजग्राह कश्यपः । ततः शतसहस्राणि द्विपेन्द्रान् हेमभूषणान् ॥ १८ ॥ निर्दस्युं पृथिवीं कृत्वा शिष्टेष्टजनसंकुलाम् । कश्यपाय ददौ रामो हयमेधे महामखे ॥१९॥ त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः । इष्ट्वा क्रतुशतैर्वीरो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत२० सप्तद्वीपां वसुमतीं मारीचोऽगृह्णत द्विजः । रामं प्रोवाच निर्गच्छ वसुधातो ममाज्ञया ॥२१॥ स कश्यपस्य वचनात् प्रोत्सार्य सरितां पतिम् । इषुपाते युधां श्रेष्ठः कुर्वन् ब्राह्मणशासनम् ॥ २२ ॥ अध्यावसद्गिरिश्रेष्ठं महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् । एवं गुणशतैर्युक्तो भृगूणां कीर्त्तिवर्धनः ॥ २३ ॥ जामदग्न्यो ह्यतियशा मरिष्यति महाद्युतिः ।

वड़ी २ दक्षिणायें दी थीं तथा नानाप्रकारके सैंकडों रत्नोंसे जडे हुए और सौ पताकाओंकी मालाओंसे सुशोभित तथा विधिपूर्वक वनाई हुई वत्तीस हाथ ऊँची तथा पशुओंसे भरपूर पृथ्वी कश्यप को दानमें दी थी, परशुरामने अश्वमेध महायज्ञमें सुवर्णके आभूषणोंवाले एक लाख हाथी तथा चोरोंका नाश करनेके उपरान्त इष्ट, शिष्ट लोगोंसे भरीहुई पृथ्वी कश्यपजीके अर्पण करदी थी ॥ १६-१९ ॥ महात्मा परशुरामने इक्कीस वार पृथ्वीको क्षत्रियशून्य करके सौ यज्ञ किये थे और उन यज्ञोंमें कश्यप तथा ब्राह्मणोंको सात द्वीपवाली पृथ्वी दानमें दी थी, उस समय मरीचिके पुत्र कश्यपने परशुरामसे कहा था, कि-तुम मेरी आज्ञा से इस पृथ्वी परसे चले जाओ ॥ २० ॥ २१ ॥ कश्यपजीके वचन सुन और ब्राह्मणोंकी आज्ञाको मान महायोद्धा परशुराम समुद्रको लाँघकर एक धनुपपातकी समान दूर गिरिश्रेष्ठ महेन्द्र पर्वत पर चलेगए और अव भी तहाँ ही रहते हैं, नारदजीने कहा कि-हे सृञ्जय ! सैंकड़ों गुणोंसे भरेहुए, भृगुओंकी कीर्त्तिको

त्वया चतुर्भद्रतरः पुत्रात् पुण्यतरस्तव ॥ २४ ॥ अयज्वानमदाक्षिण्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः । एते चतुर्भद्रनरास्त्वया भद्रशताधिकाः । मृता नरवरश्रेष्ठ मरिष्यन्ति च सृञ्जय ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

व्यास उवाच । पुण्यमाख्यानमायुष्यं श्रुत्वा षोडशराजिकम् । अव्याहरन्नरपतिस्तूष्णीमासीत् स सृञ्जयः ॥ १ ॥ तमब्रवीत्तथासीनं नारदो भगवानृषिः । श्रुतं कीर्तयतो मह्यं गृहीतन्ते महाद्युते२ आहोस्विदन्ततो नष्टं श्राद्धं शूद्रीपताविव । स एवमुक्तः प्रत्याह प्राञ्जलिः सृञ्जयस्तदा ॥२॥ एतच्छ्रुत्वा महाबाहो धन्यमाख्यान-

---

बढानेवाले, महायशस्वी महाकान्तिवान् परशुरामजी जो तुझसे और तेरे पुत्रसे धन, शूरता, ज्ञान और भोगमें अधिक और परम पुण्यवान् हैं, वे भी मरेंगे अतः हे श्वैत्य ! तू यज्ञ न करनेवाले और दानरहित अपने पुत्रका शोक न कर, हे राजश्रेष्ठ सृञ्जय ! ये राजे चारों गुणोंमें तुझसे श्रेष्ठ थे और दूसरे गुणोंमें भी तुझसे परमश्रेष्ठ थे परन्तु मरगए और आगेको दूसरे भी मरेंगे, (क्योंकि–सब मरनेके लिये ही जन्मे हैं) ॥ २२–२५ ॥ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥ छ ॥ छ ॥

व्यासजीने कहा, कि–हे युधिष्ठिर ! इस आयुर्वर्धक और पवित्र सोलह राजाओंके आख्यानोंको सुनकर राजा सृञ्जय कुछ न बोला, चुपचाप ही बैठा रहा ॥ १ ॥ उसे इसप्रकार बैठा देखकर देवर्षि नारदजी कहने लगे, कि हे महाद्युते ! मैंने तुझे जो सोलह राजाओंका चरित्र सुनाया, तूने उसका कुछ सार समझा अथवा शूद्र स्त्रीके पतिको श्राद्धमें जिमानेसे जैसे वह श्राद्ध व्यर्थ जाता है तैसे ही मेरा कहना भी कहीं मट्टीमें तो नहीं मिलगया? नारदजीकी इस बातको सुन राजा सृञ्जय दोनों हाथ जोड़कर

मुत्तमम् । राजर्षीणां पुराणानां यज्वनां दक्षिणावताम् ॥ ४ ॥ विस्मयेन हृते शोके तमसीवार्कतेजसा । विपाप्मास्म्यव्यथोपेतो ब्रूहि किं करवाण्यहम् ॥ ५ ॥ नारद उवाच । दिष्ट्याऽपह्नुतशोकस्त्वं वृणीष्वेह यदिच्छसि । तत्तत् प्रपत्स्यसे सर्वं न मृषावादिनो वयम् ॥ ६ ॥ सृञ्जय उवाच । एतेनैव प्रतीतोहं प्रसन्नो यद्भवान्मम । प्रसन्नो यस्य भगवान् न तस्यास्तीह दुर्लभम् ॥७॥ नारद उवाच । मृतं ददानि ते पुत्रं दस्युभिर्निहतं वृथा । उद्धृत्य नरकात् कष्टात् पशुवत् प्रोक्षितं यथा ॥ ८ ॥ व्यास उवाच । प्रादुरासीत्ततः पुत्रः सृञ्जयस्याद्भुतप्रभः । प्रसन्नेनर्षिणा दत्तः कुबेरतनयोपमः ॥ ९ ॥ ततः सङ्गम्य पुत्रेण प्रीतिमानभवन्नृपः ।

उनसे बोला कि-॥ २ ॥ ३ ॥ हे महाबाहो ! यज्ञ करनेवाले, दक्षिणा देनेवाले इन महात्मा प्राचीन राजर्षियोंके उत्तम और धन धान्य देनेवाले आख्यानोंको सुननेसे मेरा शोक इसप्रकार दूर होगया जैसे सूर्यसे अन्धकार दूर होजाता है अतः पाप और पीडारहित हुआ मैं आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ ? ४-५ नारदजी बोले कि-प्रारब्धसे तेरा शोक दूर होगया अब तुझै जो इच्छा हो उसके लिये वर माँग, तू जो कुछ भी माँगेगा वह सब ही तुझै मिलेगा और यह ध्यान रख, कि-हम झूठे लोग नहीं हैं ॥ ६ ॥ सृञ्जयने कहा, कि-आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो एव इससे ही मुझे आनन्द होता है, आप जिस पर प्रसन्न हों उसे संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होता ॥ ७ ॥ नारदजीने कहा कि-चोरोंने तेरे पुत्रको वृथा ही पशुकी समान मारडाला वह नरकमें पड़ा दुःख पारहा है इसलिये मैं प्रोक्षित पशुकी समान तेरे पुत्रको नरकमेंसे निकाल कर तुझे फिर देता हूँ ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा, कि-इतना कहते ही प्रसन्न हुए ऋषिका दिया हुआ कुबेरके पुत्रकी समान सृञ्जयका अलौकिक कान्तिवाला

ईजे च क्रतुभिः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ १० ॥ अकृतार्थश्च भीरुश्च न च सान्नाहिको हतः । अयज्वा त्वनपत्यश्च ततोऽसौ जीवितः पुनः ॥ ११ ॥ शूरो वीरः कृतार्थश्च प्रताप्यारीन् सहस्रशः । अभिमन्युर्गतो वीरः पृतनाभिमुखो हतः ॥ १२ ॥ ब्रह्मचर्येण यान् कांश्चित् प्रज्ञया च श्रुतेन च । इष्टैश्च क्रतुभिर्यान्ति तांस्ते पुत्रोऽक्षयान् गतः ॥ १३ ॥ विद्वांसः कर्मभिः पुण्यैः स्वर्गमीहन्ति नित्यशः । ननु स्वर्गादयं लोकः काम्यते स्वर्गवासिभिः १४ तस्मात् स्वर्गगतं पुत्रमर्जुनस्य हतं रणे । न चेहानयितुं शक्यं किञ्चिदप्राप्यमीहितम् ॥ १५ ॥ यां योगिनो ध्यानविविक्तदर्शनाः प्रयान्ति याश्चोत्तमयज्विनो जनाः । तपोभिरिद्धैरनुयान्ति यान्तथा

पुत्र तहाँ प्रकट होगया ॥९॥ राजा सृञ्जय पुत्रसे मिलकर बडा प्रसन्न हुआ और उसने बडी२ दक्षिणाओंवाले पुण्यदायक यज्ञ किये ॥१०॥ राजा सृञ्जयका पुत्र कृतार्थ नहीं हुआ था, भीरु था और युद्धके लिये तयार होकरभी नहीं मरा था उसने यज्ञ नहीं किया था और सन्तानहीन था, परन्तु उसको चोरोंने एकाएकी मारडाला था, इसलिये नारदजीने उसे फिर जीवित करदिया था॥११॥ और अभिमन्यु तो कृतार्थ होगया था, वह वीर सहस्रों शत्रुओंको मारकर रणांगणमें मरकर स्वर्गको गया है ॥ १२ ॥ तुम्हारा भतीजा उन अक्षय लोकोंमें गया है कि–जिनमें मनुष्य ब्रह्मचर्य, शास्त्रीय प्रज्ञा और शास्त्रानुसार यज्ञ करनेके अनन्तर जासकते हैं ॥१३॥ विद्वान् पुरुष सदा पुण्यकर्म करके स्वर्गमें ही जाना चाहते हैं स्वर्गमें रहनेवाला तो कोई भी प्राणी मृत्युलोकमें आना नहीं चाहता ॥ १४ ॥ रणमें मरण होनेके कारण अर्जुननन्दन स्वर्गमें गया है, उसको इसलोकमें लाना सहज नहीं है, किसी प्यारी और अप्राप्य वस्तुको उद्योग करदेनेसे, नहीं पायाजासकता ।१५ योगी ध्यानसे परब्रह्मका दर्शन करके जिस गतिको पाते हैं तथा

तमक्षयां ते तनयो गतो गतिम् ॥ १६ ॥ अन्तात् पुनर्भावगतो विराजते राजेव वीरो ह्यमृतात्मरश्मिभिः । तामैन्दवीमात्मतनुं द्विजोचितां गतोभिमन्युर्न स शोकमर्हति ॥ १७ ॥ एवं ज्ञात्वा स्थिरो भूत्वा जह्यरीन् धैर्यमाप्नुहि । जीवन्त एव नः शोच्या न तु स्वर्गगतानघ ॥ १८ ॥ शोचतो हि महाराज अघमेवाभिवर्द्धते । तस्माच्छोकं परित्यज्य श्रेयसे प्रयतेद्ध बुधः ॥ १९ ॥ प्रहर्षमभिमानञ्च सुखप्राप्तिञ्च चिन्तयन् । एतद् बुद्ध्वा बुधाः शोकं न शोकः शोक उच्यते ॥ २० ॥ एवं विद्वन् समुत्तिष्ठ प्रयतो भव मा शुचः । श्रुतस्ते सम्भवो मृत्योस्तपांस्यनुपमानि च ॥ २१ ॥

श्रेष्ठ यज्ञ करनेवाले पुरुष जिसगतिको पाते हैं तपस्वी बढतेहुए तपसे जिस गतिको पाते हैं उस ही अक्षयगतिको तुम्हारे पुत्रने पाया है ॥ १६ ॥ तुम्हारा वीर पुत्र अभिमन्यु क्षत्रियदेहको पाकर, मृत्युके समय उस शरीरको त्यागकर फिर द्विजोंके योग्य चन्द्रमाके शरीरको प्राप्त हुआ है और अपनी अमृतरूपी किरणों से चन्द्रमाकी समान प्रकाशित होरहा है अर्थात् वह चन्द्रमाका अंश था इसलिये चन्द्रमामें मिलगया है तुम्हें उसका शोक नहीं करना चाहिये ॥ १७ ॥ हे निर्दोष ! राजन् ! इस बातको इस प्रकार समझकर धैर्य धारण कर, अपने शत्रुओंका नाश करो हम जीवित पुरुष ही शोकके योग्य हैं स्वर्गमें गये हुए नहीं ॥ १८ ॥ हे महाराज ! शोक करते रहनेसे उलटा शोक बढता है, अतः बुद्धिमान् पुरुष हर्ष अभिमान और सुख प्राप्तिका विचार करके (मरेहुएके कल्याणके लिये) शोक नहीं करते हैं, शोक तो कोई वस्तु ही नहीं है, परन्तु उसका विचार करना ही शोक है, हे विद्वन् ! इस सबको समझ कर लड़नेके लिये तयार होजाओ, प्रयत्न करो, और शोक न करो तुमने मृत्युकी उत्पत्ति, उसका अत्युग्र तप और उसकी सब प्राणियों पर

सर्वभूतसमत्वञ्च चञ्चलाश्च विभूतयः । सृञ्जयस्य तु तं पुत्रं मृतं सञ्जीवितं पुनः ॥ २२ ॥ एवं विद्वन् महाराज मा शुचः साधयाम्यहम् । एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २३ ॥ वागीशाने भगवति व्यासे व्यभ्रनभःप्रभे । गते मतिमतां श्रेष्ठे समाश्वास्य युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥ पूर्वेषां पार्थिवेन्द्राणां महेन्द्रप्रतिमौजसाम् । न्यायाधिगतवित्तानां तां श्रुत्वा यज्ञसम्पदम् ॥ २५ ॥ सम्पूज्य मनसा विद्वान् विशोकोऽभूद्युधिष्ठिरः । पुनश्चाचिन्तयद्दीनः किंस्विद्वक्ष्ये धनञ्जयम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि
षोडशराजकीये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

समाप्तञ्चाभिमन्युवधपर्व ।

समदृष्टिकी कथा सुनी है ॥ १६–२१ ॥ मृत्युकी दृष्टिमें सब प्राणी एकसे हैं और ऐश्वर्य चञ्चल है, यह तुम्हें सृञ्जयके पुत्रकी कथासे प्रतीत हुआ ही होगा, उसको नारदजीने फिर जीवित करदिया, यह भी तुम जानते हो, अतः हे महाराज ! तुम शोक न करो, अब मैं जाऊँगा इतना कहते ही भगवान् वेदव्यास तहाँ ही अन्तर्धान होगए ॥ २२–२३ ॥ वाणीपति निर्मल आकाशकी समान प्रभाववाले भगवान् वेदव्यासजी युधिष्ठिरको ढाढ़स देकर विदा होगए तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने इन्द्रकी समान प्रतापी न्यायसे धन पैदा करनेवाले पहिले राजाओंकी यज्ञसम्पत्तिको सुनकर उनकी मनसे पूजा की और शोकको त्यागदिया, थोड़े समय बाद ही वह फिर विचारनेलगे, कि–मैं अर्जुनसे क्या कहूँगा । २४–२६। इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥ छ ॥ छ ॥

अभिमन्युवधपर्व समाप्त

अथ प्रतिज्ञापर्व ।

सञ्जय उवाच । तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते घोरे प्राणभृतां क्षये । आदित्येऽस्तङ्गते श्रीमान् सन्ध्याकाल उपस्थिते १ व्यपयातेषु वासाय सर्वेषु भरतर्षभ । हत्वा संशप्तकव्रातान् दिव्यैरस्त्रैः कपिध्वजः ॥२॥ प्रायात् स्वशिबिरं जिष्णुर्जैत्रमास्थाय तं रथम् । गच्छन्नेव च गोविन्दं साश्रुकण्ठोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥ किं नु मे हृदयं त्रस्तं वाक् च सज्जति केशव । स्पन्दन्ति चाप्यनिष्टानि गात्रं सीदति चाच्युत ॥ ४ ॥ अनिष्टञ्चैव मे श्लिष्टं हृदयान्नापसर्पति । भुवि ये दिक्षु चात्युग्रा उत्पातास्त्रासयन्ति माम् ॥ ५ ॥ बहुप्रकारा दृश्यन्ते सर्व एवाघशंसिनः । अपि स्वस्ति भवेद्राज्ञः सामात्यस्य गुरोर्मम६

अथ प्रतिज्ञापर्व ।

सञ्जयने कहा, कि हे भरतर्षभ ! उस दिन सूर्यनारायणके अस्त होने पर संध्या होगई तव भयङ्कर प्राणियोंका नाश होना वन्द होगया और सव योधा अपनी२ छावनियोंकी ओरको चले गये इस ही समय कपिध्वज श्रीमान् अर्जुन भी दिव्य अस्त्रोंसे संशप्तकोंके दलोंको मार अपने जयशील रथमें वैठ अपनी छावनीकी ओरको आनेलगा और आते२ ही नेत्रोंमें आँसू भर श्रीकृष्णसे कहनेलगा, कि—॥ १-३ ॥ हे केशव ! आज मेरा हृदय न जाने क्यों धडक रहा है, मेरी वोली वन्दसी हुई जाती है, अशुभ वाईं भुजा आदि अंग फडक रहे हैं और न जाने क्यों मेरा शरीर जलाजाता है ४ मेरे हृदयमेंसे कुछ अनिष्ट हुआ है यह वात दूर ही नहीं होती और पृथ्वी तथा दिशाओंमें होतेहुए भयङ्कर उत्पात मुझे पीडा देरहे हैं ५ यह उत्पात नाना प्रकारसे मेरे सामने आरहे हैं और इन सवोंसे वडा भारी अनिष्ट हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है, मेरे वड़े भाई राजा युधिष्ठिर भाइयों और मंत्रियोंसहित सकुशल तो होंगे ॥६॥ श्रीकृष्णजीने

वासुदेव उवाच ॥ व्यक्तं शिवं तव भ्रातुः सामात्यस्य भविष्यति ।
मा शुचः किञ्चिदेवान्यत् तत्रानिष्टं भविष्यति ॥ ७ ॥ सञ्जय
उवाच । ततः सन्ध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने । कथयन्तौ
रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ ॥ ८ ॥ ततः स्वशिबिरं
प्राप्तौ हतानन्दं हतत्विषम् । वासुदेवोऽर्जुनश्चैव कृत्वा कर्म सुदुष्करम्
॥ ९ ॥ ध्वस्ताकारं समालक्ष्य शिबिरं परवीरहा । बीभत्सुरब्रवीत्
कृष्णमस्वस्थहृदयस्ततः ॥ १० ॥ नदन्ति नाद्य तूर्याणि
माङ्गल्यानि जनार्दन । मिश्रा दुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खाश्चाडम्बरैः
सह ॥ ११ ॥ वीणा नैवाद्य वाद्यन्ते शम्यातालस्वनैः सह । मङ्गल्यानि
च गीतानि गायन्ति च पठन्ति च ॥ १२ ॥ स्तुतियुक्तानि
रम्याणि ममानीकेषु वन्दिनः । योधाश्चापि हि मां दृष्ट्वा निवर्त्तन्ते
ह्यधोमुखाः ॥ १३ ॥ कर्माणि च यथापूर्वं कृत्वा नाभिवदन्ति

कहा कि–तेरे भाई निश्चय ही मंत्रियों सहित सकुशल होंगे, तू शोक मतकर मुझे प्रतीत होता है, वहाँ और ही कुछ अनिष्ट हुआ है ७ सञ्जयने कहा कि—तदनन्तर वे दोनों वीर संध्यावन्दन करके रथमें बैठकर वीरोंके नाशक युद्धमें बनेहुए वृत्तान्त को कहतेहुए अपनी छावनीके पास आपहुँचे उस समय शत्रुओं के वीरोंको नष्ट करनेवाला अर्जुन छावनीको आनन्दशून्य, फीकी और बिगड़े हुए आकारकी देख घबडाकर श्रीकृष्ण से कहने लगा, कि–॥८–१०॥ हे जनार्दन ! आज न मांगलिक तुरहियें बज रही हैं तथा आज दुन्दुभियोंके स्वरसे मिलेहुए शंखों का बडाभारी शब्द भी सुनाई नहीं आता ॥ ११ ॥ और न आज शम्याओंके तालस्वरोंके साथ वीणाएँ ही बजरही हैं, न आज मेरी सेनामें वन्दीजन स्तुतिसे भरेहुए मांगलिक गीतोंको ही गाते हैं और न माङ्गलिक पाठोंको पढरहे हैं और योधा भी मुझे देखकर नीचेको मुख करके चले जाते हैं ॥ १२–१३ ॥

माम्। अपि स्वस्ति भवेदद्य भ्रातृभ्यो मम माधव ॥ १४ ॥ न हि शुध्यति मे भावो दृष्ट्वा स्वजनमाकुलम्। अपि पाञ्चालराजस्य विराटस्य च मानद ॥ १५ ॥ सर्वेषाञ्चैव योधानां सामग्र्यं स्यान्ममाच्युत। न च मामद्य सौभद्रः प्रहृष्टो भ्रातृभिः सह। रणादायान्तमुचितं प्रत्युद्याति हसन्निव ॥ १६ ॥ सञ्जय उवाच। एवं सङ्कथयन्तौ तौ प्रविष्टौ शिबिरं स्वकम्। ददृशाते भृशास्वस्थान् पाण्डवान्नष्टचेतसः ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा भ्रातृंश्च पुत्रांश्च विमना वानरध्वजः। अपश्यंश्चैव सौभद्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥१८॥ मुखवर्णोऽप्रसन्नो वः सर्वेषामेव लक्ष्यते। न चाभिमन्युं पश्यामि न च मां प्रतिनन्दथ ॥ १९ ॥ मया श्रुतश्च द्रोणेन चक्रव्यूहो विनिर्मितः। न च वस्तस्य भेत्तास्ति विना सौभद्रमर्भकम् ॥२०॥

वे पहिलेकी समान कामोंको करके मुझसे बातें नहीं करते हैं, हे माधव ! क्या आज मेरे भाई सकुशल हैं ? १४ अपने मनुष्यों को व्याकुल देखकर मेरा चित्त कहता है, कि-कुशल नहीं है, हे अच्युत ! हे मानद ! राजा पाञ्चाल और राजा विराट तथा मेरी सेनाके सब योधा तो कुशलसे हैं ? मैं जब रणभूमिसे लौट कर आता था उस समय सुभद्रानन्दन अभिमन्यु अपने भाइयोंके साथ हँसते २ मेरे पास आता था, वह भी आज मेरे सामने क्यों नहीं आया ॥ १५ ॥ १६ ॥ सञ्जयने कहा, कि-इस प्रकार कहते २ वे दोनों अपनी छावनीमें जाघुसे और उन्होंने पांडवों को घबडाये और अचेत दशामें देखा ॥१७॥ वानरध्वज अर्जुन अपने भाई और पुत्रोंकी ऐसी दशा देखकर मनमें घबडाया और अभिमन्युको न देखकर यह कहनेलगा, कि-॥ १८ ॥ अरे ! आज तुम सबोंके मुखोंका रङ्ग फीका क्यों पड़ रहा है ? अभिमन्यु मुझे क्यों नहीं दीखता ? तथा आज तुम मुझसे प्रेमपूर्वक बातें क्यों नहीं करते ? ॥ १९ ॥ मैंने सुना है, कि-आज

न चोपदिष्टस्तस्यासीन्मयानीकाद्विनिर्गमः । कच्चिन्न बालो युष्माभिः परानीकं प्रवेशितः ॥ २१ ॥ भित्त्वानीकं महेष्वासः परेषां बहुशो युधि । कच्चिन्न निहतः संख्ये सौभद्रः परवीरहा२२ लोहिताक्षं महाबाहुं जातं सिंहमिवाद्रिषु । उपेन्द्रसदृशं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २३ ॥ सुकुमारं महेष्वासं वासवस्यात्मजात्मजम् । सदा मम प्रियं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २४ ॥ सुभद्रायाः प्रियं पुत्रं द्रौपद्याः केशवस्य च । अम्बायाश्च प्रियं नित्यं कोऽवधीत् कालमोहितः ॥ २५ ॥ सदृशो वृष्णिवीरस्य केशवस्य महात्मनः । विक्रमश्रुतमाहात्म्यैः कथमायोधने हतः ॥ २६ ॥ वार्ष्णेयदयितं शूरं मया सततलालितम् । यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि

द्रोणाचार्यने चक्रव्यूह रचा था, तुममें बचे अभिमन्युके सिवाय ऐसा कोई नहीं है जो उस व्यूहको तोड सकता ॥२०॥ मैंने उसे चक्रव्यूहमें घुसना तो बतला दिया था परन्तु उसको तोडनेके अनन्तर उसमेंसे कैसे निकलना चाहिये, यह नहीं बताया था अरे! क्या तुमने उस बालकको शत्रुसेनामें भेजदिया था?२१वह महाधनुर्धर वीर शत्रुओंका नाशकर चक्रव्यूहको तोड़ युद्धमें बहुत से शत्रुओंको मारकरके उनके हाथसे मारा तो नहीं गया?।२२। लाल नेत्रोंवाला, महाभुज पहाडी सिंह और श्रीकृष्णकी समान अभिमन्यु बताओ तो सही कहीं रणमें मारा तो नहीं गया ?२३ अरे! रे! बोलो २ सुकुमार, महाधनुषधारी, इन्द्रके पुत्रका पुत्र सदा मेरा प्यारा अभिमन्यु क्या रणमें मारागया ? ॥ २४ ॥ वह सुभद्राका प्यारा पुत्र था, द्रौपदी, श्रीकृष्ण और माता कुन्ती का भी दुलारा था । ओः! कालसे मोहित हुए किसने उसको मारडाला ? उसका मुझे नाम बताओ ? ॥ २५ ॥ वह पराक्रम शास्त्राभ्यास और कीर्तिमें महात्मा श्रीकृष्णकी जोड़का था तो भी कैसे मारा गया ॥ २६ ॥ यदि मैं श्रीकृष्णके प्यारे और शूर

यमसादनम् ॥ २७ ॥ मृदुकुञ्चितकेशान्तं बालं बालमृगेक्षणम् । मत्तद्विरदविक्रान्तं सिंहपोतमिवोद्गतम् ॥ २८ ॥ स्मिताभिभाषिणं दान्तं गुरुवाक्यकरं सदा । बाल्येप्यतुलकर्माणं प्रियवाक्यममत्सरम् ॥ २९ ॥ महोत्साहं महाबाहुं दीर्घराजीवलोचनम् । भक्तानुकम्पिनं दान्तं न च नीचानुसारिणम् ॥ ३० ॥ कृतज्ञं ज्ञानसम्पन्नं कृतास्त्रमनिवर्त्तिनम् । युद्धाभिनन्दिनं नित्यं द्विषतां भयवर्धनम् ॥ ३१ ॥ स्वेषां प्रियहिते युक्तं पितॄणां जयगृद्धिनम् । न च पूर्वं प्रहर्त्तारं संग्रामे नष्टसम्भ्रमम् ॥ ३२ ॥ यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् । रथेषु गण्यमानेषु गणितं तं महारथम् ३३ मयाध्यर्धगुणं संख्ये तरुणं बाहुशालिनम् । प्रद्युम्नस्य प्रियं नित्यं

वीर अपने लड़के अभिमन्युको नहीं देख पाऊँगा तो (इस ही समय) यमलोकमें जाऊँगा ॥ २७ ॥ कोमल और घुँघराले केशोंवाले, मृगके बच्चेकी समान नेत्रोंवाले, मतवाले हाथीकी समान पराक्रमी, सिंहके बच्चेकी समान उठतेहुए, मुस्करा कर बोलनेवाले, चतुर, सर्वदा बड़ोंकी आज्ञाको माननेवाले, बालक होने पर भी अतुलपराक्रमी, मीठा बोलनेवाले, निष्कपट बड़े उत्साही, महाभुज, कमलकी समान विशाल नेत्रोंवाले, भक्तों पर दया करनेवाले, सरल हृदयवाले नीचोंके पास न बैठनेवाले, किये हुएको माननेवाले, ज्ञानी, अस्त्रकुशल, युद्धमें पीछेको पैर न रखनेवाले, किन्तु युद्धसे प्रसन्न होनेवाले सर्वदा शत्रुओंको भय देनेवाले, अपने मनुष्योंके प्यारे. प्रिय करनेमें तत्पर चाचा ताऊओंकी विजयके इच्छुक, संग्राममें पहले प्रहार न करनेवाले और सावधान रहनेवाले, रथियोंकी गणनाके समय महारथीरूप से मानेहुए अपने प्रियपुत्र अभिमन्युको यदि मैं न देखपाऊँगा तो यमलोकको चला जाऊँगा ॥ २८–३३ ॥ संग्राममें मुझसे बलमें ड्योढ़े, तरुण, भुजबलधारी, मेरे, प्रद्युम्नके और श्रीकृष्ण

केशवस्य ममैव च ॥ ३४ ॥ यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् । सुनसं सुललाटान्तं स्वक्षिभ्रूदशनच्छदम् ॥ ३५ ॥ अपश्यतस्तद्वदनं का शान्तिर्हृदयस्य मे । तन्त्रीस्वनसुखं रम्यं पुंस्कोकिलसमध्वनिम् ॥ ३६ ॥ अशृण्वतः स्वनं तस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे । रूपं चाप्रतिमं तस्य त्रिदशैश्चापि दुर्लभम् ॥३७॥ अपश्यतो हि वीरस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे । अभिवादनदक्षं तं पितृणां वचने रतम् ॥ ३८ ॥ नाद्याहं यदि पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे । सुकुमारः सदा वीरो महार्हशयनोचितः ॥ ३९ ॥ भूमावनाथवच्छेते नूनं नाथवतां वरः । शयानं समुपासन्ति यं पुरा परमस्त्रियः ॥४०॥ तमद्य विप्रविद्धाङ्गमुपासन्त्यशिवाः शिवाः।

के प्यारे, सुन्दर नासिका सुन्दर मस्तक, सुन्दर नेत्र, भौं और ओठोंवाले अपने पुत्र अभिमन्युको यदि मैं देख न पाऊँगा तो (अवश्य) मरजाऊँगा ॥ ३४–३५ ॥ ऐसे पुत्रके मुखको देखे विना मेरे हृदयको शान्ति कैसे मिलसकती है, वीणाके स्वरकी समान सुखदायक और रमणीय तथा कोयलकी कूककी समान पंचमस्वरमें वोलने वाले पुत्रकी वाणीको विना सुने मुझे क्या शान्ति मिलेगी ? उसका जैसा अनुपम रूप था, वैसा तो देवताओं को भी मिलना दुर्लभ है, उस वीरको विना देखे मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ? प्रणाम करनेमें चतुर और पिता, चाचा ताउओंकी आज्ञा वजानेवाले पुत्रको यदि मैं आज नहीं देखूँगा तो मेरे हृदयमें शान्ति कैसे मिलेगी ? सुकुमार, महाराजाकी समान वीर अभिमन्यु सर्वदा वहुमूल्य पलँग पर सोता था, वह आज अनाथकी समान पृथ्वीपर सोरहा है, हा ! पहिले सोतेमें जिस अभिमन्युकी वड़ी २ स्त्रियें सेवा करती थीं, आज उसका शरीर विंधगया है और अपवित्र गीदड़ियें उसकी सेवा कररही हैं ! पहिले सोते हुए जिस अभिमन्युको सूत, मागध और वन्दी-

यः पुरा वोध्यते सुप्तः सूतमागधवन्दिभिः ॥ ४१ ॥ वोधयन्त्यद्य
तं नूनं श्वापदा विकृतैः स्वनैः । छत्रच्छायासमुचितं तस्य तद्वदनं
शुभम् ॥ ४२ ॥ नूनमद्य रजोध्वस्तं रणे रेणुः करिष्यति । हा पुत्र
कावितृप्तस्य सततं पुत्रदर्शने ॥ ४३ ॥ भाग्यहीनस्य कालेन यथा
मे नीयसे वलात् । सा च संयमनी नूनं सदा सुकृतिनां गतिः ४४
स्वभाभिर्मोहिता रम्या त्वयात्यर्थं विराजते । नूनं वैवस्वतश्च
त्वां वरुणश्च प्रियातिथिम् ॥ ४५ ॥ शतक्रतुर्धनेशश्च मामपर्चन्त्यभीरुकम् ।
एवं विलप्य वहुधा भिन्नपोतो वणिग्यथा ॥ ४६ ॥
दुःखेन महताविष्टो युधिष्ठिरमपृच्छत । कच्चित् स कदनं कृत्वा
परेषां कुरुनन्दन ॥ ४७ ॥ स्वर्गतोभिमुखः संख्ये युध्यमानो नरर्षभैः ।
स नूनं वहुभिर्यत्तैर्युध्यमानो नरर्षभैः ॥ ४८ ॥ असहायः

जन जगाते थे आज उसको ही मांसाहारी जीव भयानक स्वरोंसे जगाते हैं ! उसके छत्रकी छायाके योग्य सुन्दर मुखको रणकी धूलि निश्चय ही मलिन कर रही है ! हे पुत्र ! मेरा मन तो चाहे कितनी ही देर कर तुझे देखता रहता था तव भी नहीं भरता था ! मुझ भाग्यहीनके ऐसे पुत्रको काल वलात्कारसे क्यों लिये जाता है?वास्तवमें यमराजकी सभा सत्पुरुषोंके योग्य है ३४-४४ हे पुत्र ! वह यमसभा तेरी कान्तिसे मनोहर और प्रकाशित होकर वहुत ही दिपनेलगी होगी ! यम, वरुण, इन्द्र और कुवेर भी तुझसे निडर तथा प्रिय अतिथिका अच्छा सत्कार करेंगे ! इसप्रकार जिसकी नाव टूटगई हो ऐसे वनियेकी समान वहुतही विलाप करके महादुःखमें डूवाहुआ अर्जुन युधिष्ठिरसे वोला, कि–हे कुरुनन्दन ! क्या परम श्रेष्ठ अभिमन्यु तयारहुए शत्रुओंका नाश कर वहुतसे श्रेष्ठ वीरोंसे युद्ध करताहुआ स्वर्गको चला गया ? जव वह नरश्रेष्ठ वहुतसे वीरोंसे युद्ध करते २ थकगया होगा, तव उस असहायने सहायताकी इच्छासे निश्चय ही मुझे

सहायार्थी मामनुध्यातवान् ध्रुवम् । पीड्यमानः शरैस्तीक्ष्णैः कर्ण-द्रोणकृपादिभिः॥४९॥ नानालिंगैः सुधौताग्रैर्मम पुत्रोऽल्पचेतनः । इह मे स्यात् परित्राणं पितेति स पुनः पुनः ॥ ५० ॥ इत्येवं विलपन् मन्ये नृशंसैर्भुवि पातितः । अथवा मत्प्रसूतः स स्वस्रीयो माधवस्य च ॥ ५१ ॥ सुभद्रायां च सम्भूतो न चैवं वक्तुमर्हति । वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ ५२ ॥ अपश्यतो दीर्घबाहुं रक्ताक्षं यन्न दीर्यते । कथं बाले महेष्वासा नृशंसा मर्मभेदिनः ५३ स्वस्रीये वासुदेवस्य मम पुत्रेऽक्षिपन् शरान् । यो मां नित्यमदीनात्मा प्रत्युद्गम्याभिनन्दति ॥ ५४ ॥ उपायान्तं रिपून् हत्वा सोऽद्य मां किं न पश्यति । नूनं स पातितः शेते धरण्यां रुधिरोक्षितः ५५

याद किया होगा ! कर्ण, द्रोण और कृपाचार्य आदि क्रूर योधा जब नाना प्रकारके तेज नोकवाले बाणोंसे अभिमन्युको पीडित करनेलगे होंगे, उस समय मूर्छित होतेहुए मेरे पुत्रने बार २ विचारा होगा कि-“ यदि इस समय मेरे पिता होते तो मेरी रक्षा करते”मुझे विश्वास है, कि–इसप्रकार मनमें विलाप करतेहुए मेरे पुत्रको शठोंने भूमिपर गिरादिया होगा,नहीं२ऐसा नहीं होसकता, वह मुझसे उत्पन्नहुआ है और श्रीकृष्णका भाञ्जा है तथा सुभद्राके गर्भसे उत्पन्न हुआ है,अतः वह ऐसा नहीं कहसकता,ओः!यह मेरा हृदय लोहेके सारका बना बडा ही कठोर है,जो दीर्घबाहु रक्तनेत्र अभिमन्युके न दीखने पर भी अभीतक नहीं फटा,मेरे पुत्र और श्रीकृष्णके भाञ्जे बालक अभिमन्युके ऊपर दुष्ट धनुषधारियोंने मर्मभेदी बाण क्यों छोडे?मैं प्रतिदिन जब शत्रुओंका नाश करके आताथा,उस समय उदारमनवाला अभिमन्यु मेरे पास आकर मुझे अभिनन्दन देता था,हा!वह आज मेरे पास क्यों नहीं आता?वह आवे कहाँसे उसको तो शत्रुओंने मारडाला और लोहूलुहान हुआ रणभूमिमें सोरहा है ॥ ४५–५५ ॥ (अहा हा !) उसको

शोभयन्मेदिनीं गात्रैरादित्य इव पातितः । सुभद्रामनुशोचामि या पुत्रमपलायिनम् ॥ ५६ ॥ रणे विनिहतं श्रुत्वा शोकार्त्ता वै विनंक्ष्यति । सुभद्रा वक्ष्यते किं मामभिमन्युमपश्यती ५७ द्रौपदी चैव दुःखार्त्ते ते च वक्ष्यामि किन्वहम् । वज्रसारमयं नूनं हृदयं यन्न यास्यति ॥ ५८ ॥ सहस्रधा वधूं दृष्ट्वा रुदतीं शोककर्शिताम् । हृष्टानां धार्त्तराष्ट्राणां सिंहनादो मया श्रुतः ॥ ५९ ॥ युयुत्सुश्चापि कृष्णेन श्रुतो वीरानुपालभन् । अशक्नुवन्तो बीभत्सुं बालं हत्वा महारथाः ॥ ६० ॥ किं मोदध्वमधर्मज्ञाः पाण्डवं दृश्यतां बलम् । किन्तयोर्विप्रियं कृत्वा केशवार्जुनयोर्मृधे ॥ ६१ ॥ सिंहवन्नदथ प्रीताः शोककाल उप-

---

शत्रुओंने मारगिराया तो भी वह कुमार अपने अङ्गोंसे पृथ्वीको सूर्यकी समान सुशोभित कररहा है ! मुझे अपनी तो कुछ चिन्ता नहीं है, परन्तु सुभद्राका ध्यान आते ही वडा खेद होता है, वह जव रणमें पीछेको न हटनेवाले अपने पुत्रको मारागया सुनेगी तव निश्चय ही दुःखमें डूबकर मरजायगी, हा ! अभिमन्युको न देखने पर सुभद्रा मुझसे क्या कहेगी ? अरेरे ! दुःखसे व्याकुल हुई सुभद्रा और द्रौपदीसे मैं क्या कहूँगा ? मेरा हृदय निःसन्देह वज्रका ही वना हुआ है, जो रोती हुई और शोकसे दुबली हुई अभिमन्युकी स्त्रीके रोनेका ध्यान आने पर भी फटकर हजार टुकड़े नहीं होजाता विजयसे गर्वमें भरे कौरवोंका सिंहनाद मुझे सुनाई आया था ॥५६-५९॥ तथा वीर पुरुषोंको ताने देतेहुए युयुत्सुकी वात भी श्रीकृष्णने सुनी थी, कि-अरे अधर्मियो! तुम अर्जुनको तो हरा नहींसके और अव इस वालकको मारकर क्या इतरारहे हो, अर्जुनका पराक्रम देखना अरे ! तुमने युद्धमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका अप्रिय कार्य करके अपने लिये भी शोकका समय वुलालिया है, फिर तुम सिंहकी

ष्यते । आगमिष्यति वः क्षिप्रं फलं पापस्य कर्मणः ॥ ६२ ॥ अधर्मो हि कृतस्तीव्रः कथं स्यादफलश्चिरम् । इति तान् परिभाषन् वै वैश्यापुत्रो महामतिः ॥ ६३ ॥ अपायाच्छस्त्रमुत्सृज्य कोपदुःखसमन्वितः । किमर्थमेतन्नाख्यातं त्वया कृष्ण रणे मम ६७ अधाक्न्तानहं क्रूरांस्तदा सर्वान् महारथान् । सञ्जय उवाच । पुत्रशोकार्दितं पार्थं ध्यायन्तं साश्रुलोचनम् ॥ ६५ ॥ निगृह्य वासुदेवस्तं पुत्राधिभिरभिप्लुतम् । मैवमित्यब्रवीत् कृष्णस्तीव्रशोकसमन्वितम् ॥ ६६ ॥ सर्वेषामेष वै पन्थाः शूराणामनिवर्त्तिनाम् । क्षत्रियाणां विशेषेण येषां युद्धेन जीविका ॥ ६७ ॥ एषा वै युध्यमानानां शूराणामनिवर्त्तिनाम् । विहिता सर्वशास्त्रज्ञैर्गतिर्मतिमतां वर ॥ ६८ ॥ ध्रुवं हि युद्धे मरणं शूराणामनिवर्त्तिनाम् ।

समान क्यों गरज रहे हो ? तुम्हारे पापका फल तुम्हे बहुत ही शीघ्र मिलेगा, तुमने घोर पाप किया है, वह चिरकाल तक निष्फल कैसे रहसकता है ? इसप्रकार कौरवोंसे कह कर वैश्यापुत्र युयुत्सु क्रोध और शोकसे व्याप्त होनेके कारण शस्त्रोंको फेंककर युद्धमेंसे बाहर चलागया था हे कृष्ण! उस समय तुमने मुझसे यह बात क्यों नहीं कही यदि तुम उस समय ही मुझसे यह बात कहदेते तो मैं उन सब क्रूर महारथियोंको भस्म कर डालता, सञ्जयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र! पुत्रके शोकसे पीड़ा पाताहुआ अर्जुन मनमें पुत्रका स्मरण करके रोरहा था और पुत्रके मरणसे बड़ीभारी चिन्ता कर रहा था तथा बड़ेभारी शोकमें पड़ा हुआ था, उस समय वासुदेवने उसको उपदेश देतेहुए कहा, कि—"इसप्रकार शोक न कर ६५-६६ क्योंकि—मरना तो सबको ही है और युद्धसे जीविका करनेवाले तथा संग्राममें पीछेको न हटनेवाले सब वीर क्षत्रियोंकी यह तो गति होनी ही है ॥६७॥ हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! शास्त्रको जाननेवालोंने रणमें पीठ न दिखाकर लड़नेवाले वीरोंकी यही गति बतायी है६८

गतः पुण्यकृताँल्लोकानभिमन्युर्न संशयः ॥ ६९ ॥ एतच्च सर्ववीराणां काङ्क्षितं भरतर्षभ । संग्रामेऽभिमुखो मृत्युः प्राप्नुयादिति मानद ॥ ७० ॥ स च वीरान् रणे हत्वा राजपुत्रान् महाबलान् । वीरैराकाङ्क्षितं मृत्युं सम्प्राप्तोऽभिमुखं रणे ॥ ७१ ॥ मा शुचः पुरुषव्याघ्र पूर्वैरेष सनातनः । धर्मकृद्भिः कृतो धर्मः क्षत्रियाणां रणे क्षयः ॥७२॥ इमे ते भ्रातरः सर्वे दीना भरतसत्तम । त्वयि शोकसमाविष्टे नृपाश्च सुहृदस्तव ॥ ७३ ॥ एतांश्च वचसा साम्ना समाश्वासय मानद । विदितं वेदितव्यन्ते न शोकं कर्त्तुमर्हसि ७४ एवमाश्वासितः पार्थः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा । ततोऽब्रवीत्तदा भ्रातॄन् सर्वान् पार्थः सगद्गदान् ॥ ७५ ॥ स दीर्घबाहुः पृथ्वंसो दीर्घराजीवलोचनः । अभिमन्युर्यथा वृत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा ॥७६॥

रणमें पीछेको न हटनेवाले पुरुषोंकी मृत्यु रणमें ही होती है, अभिमन्यु पवित्र लोकोंमें गया है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ६९ हे भरतर्षभ ! हे मानद! इस बातको तो सब वीर चाहते हैं, कि- संग्राममें शत्रुके सामने मरें ॥७०॥ अभिमन्यु महाबली राजपुत्रोंको मारकर वीरोंकी चाही हुई गतिको ही प्राप्त हुआ है ७१ इसलिये हे पुरुषव्याघ्र! तू शोक न कर, पूर्वकालके महात्माओंने नियम बाँध दिया है और यह सनातन नियम है, कि-क्षत्रियोंकी रणमें मृत्यु होती है ॥७२॥ हे भरतसत्तम ! तू शोक कररहा है, यह देखकर तेरे ये भाई बन्धु और राजे दीनसे होरहे हैं ॥७३॥ हे मानद ! तू इनको धीरजके वचनोंसे समझा तूने जानने योग्य वस्तुको जान लिया है, अतः तुझे शोक नहीं करना चाहिये" ॥७४॥ अद्भुत चरितवाले श्रीकृष्णके इसप्रकार समझाने पर अर्जुनने शोकसे रुँधेहुए कण्ठवाले अपने सब भाइयोंसे कहा, कि-।७५। लम्बी भुजा, पुष्ट कंधा और कमलकी समान नेत्रोंवाला अभिमन्यु किसप्रकार मरा, यह मैं प्रारम्भसे अन्ततक सुनना चाहता

सनागस्यन्दनहयान् द्रक्ष्यध्वं निहतान्मया । संग्रामे सानुबन्धांस्तान् मम पुत्रस्य वैरिणः ॥७७॥ कथञ्च वः कृतास्त्राणां सर्वेषां शस्त्रपाणिनाम् । सौभद्रो निधनं गच्छेद्वज्रिणापि समागतः॥७८॥ यद्येवमहमज्ञास्यमशक्तान्रक्षणे मम । पुत्रस्य पाण्डुपञ्चालान् मया गुप्तो भवेत्ततः ॥ ७९ ॥ कथञ्च वो रथस्थानां शरवर्षाणि मुञ्चताम् । नीतोऽभिमन्युर्निधनं कदर्थीकृत्य वः परैः ॥८०॥ अहो वः पौरुषं नास्ति न च वोस्ति पराक्रमः । यत्राभिमन्युः समरे पश्यतां वो निपातितः ८१ आत्मानमेव गर्हेयं यदहं वै सुदुर्बलान् । युष्मानाज्ञाय निर्यातो भीरूनकृतनिश्चयान् ८२ आहोस्विद्भूषणार्थाय वर्मशस्त्रायुधानि वः । वाचस्तु वक्तुं संसत्सु मम पुत्रमरक्षताम् ८३

हूँ ॥ ७६ ॥ अपने पुत्रके वैरियोंको मैं हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों सहित अभी रणमें मारडालूँगा, इसको तुम देखना ।७७। अरे ! तुम सब अस्त्रकुशल हो और तुम सब शस्त्र धारण किये खड़े थे. उस समय अभिमन्यु इन्द्रके साथ लड़ता तो भी वह मारा नहीं जासकता था, फिर वह कैसे मारागया ? ॥ ७८ ॥ शोक है यदि मैं यह जानपाता कि—पाण्डव और पाञ्चाल राजे मेरे पुत्रकी रक्षा नहीं करसकेंगे तो मैं स्वयं ही उसकी रक्षा करता ॥७९॥ तुम रथोंमें बैठकर बाणोंको छोड़ रहे थे, तुम्हारा तिरस्कार करके शत्रुओंने अभिमन्युको कैसे मारडाला ? ॥ ८० ॥ हा ! तुममें न पराक्रम है न पौरुष है, क्योंकि—तुम्हारे सामने शत्रुओंने अभिमन्युको मारडाला ॥८१॥ परन्तु इस विषयमें मुझे अपने आपको ही धिक्कार देना चाहिये, कि—"तुम डरपोक और बड़े निर्बल हो" यह जानकर भी मैं अपने पुत्रको तुम्हें सौंपकर चलागया ८२ अथवा तुम्हारे कवच, शस्त्र और आयुध क्या शोभाके ही लिये हैं ? और क्या वाणी सभामें बोलनेके ही लिये है, कि—तुम मेरे पुत्रकी रक्षा न करसके ॥ ८३ ॥ श्रेष्ठ धनुष और तलवारको

एवमुक्त्वा ततो वाक्यं तिष्ठंश्चापवरासिमान् । न स्माशक्यत बीभत्सुः केनचित् प्रसमीक्षितुम् ॥ ८४ ॥ तमन्तकमिव क्रुद्धं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः । पुत्रशोकाभिसन्तप्तमश्रुपूर्णमुखन्तदा ॥ ८५ ॥ न भाषितुं शक्नुवन्ति द्रष्टुं वा सुहृदोर्जुनम् । अन्यत्र वासुदेवाद्वा ज्येष्ठाद्वा पाण्डुनन्दनात् ॥ ८६ ॥ सर्वास्ववस्थासु हितावर्जुनस्य मनोनुगौ । बहुमानात् प्रियत्वाच्च तावेनं वक्तुमर्हतः ८७ ततस्तं पुत्रशोकेन भृशं पीडितमानसम् । राजीवलोचनं क्रुद्धं राजा वचनमब्रवीत् ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनकोपे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

युधिष्ठिर उवाच । त्वयि याते महाबाहो संशप्तकबलं प्रति । प्रयत्नमकरोत्तीव्रमाचार्यो ग्रहणे मम ॥१॥ व्यूढानीका वयं द्रोणं

बाँधनेवाला अर्जुन इतना कहकर चुप हो बैठगया, उस समय उसके सामनेको कोई भी न देखसका ॥८४॥ यमराजकी समान क्रोधमें भरकर बारम्बार साँस छोड़तेहुए और पुत्रशोकसे व्याकुल होकर आँसू बहातेहुए अर्जुनके सामने श्रीकृष्ण और बड़े भाई युधिष्ठिरके सिवाय और कोई भी देखनेका या बोलनेका साहस नहीं करसकता था,॥८५-८६॥ सब अवस्थाओंमें हितकारी होनेसे तथा प्यारे और माननीय होनेसे वे दोनों ही उससे कुछ कहसकते थे ॥ ८७ ॥ तदनन्तर पुत्रशोकसे बड़े ही दुःखी मनवाले और कोपायमान हुए राजीवलोचन अर्जुनसे राजा युधिष्ठिर बोले ॥ ८८ ॥ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥

युधिष्ठिरने कहा, कि-हे महाबाहो ! तुम्हारे संशप्तकोंकी ओरको चलेजाने पर, द्रोणाचार्य मुझे पकड़नेके लिये बड़ा प्रयत्न करने लगे ॥ १ ॥ रथसेनाको व्यूहरचनासे साथमें लेकर अपने ऊपर चढ़कर आयेहुए द्रोणको हमने भी व्यूहरचना करके चारो ओरसे

वारयामः स्म सर्वशः । प्रतिव्यूह्य रथानीकं यतमानं तथा रणे॥२॥ स वार्यमाणो रथिभिर्मयि चापि सुरक्षिते । अस्मानभिजगामाशु पीडयन्निशितैः शरैः॥३॥ते पीडयमाना द्रोणेन द्रोणानीकं न शक्नुमः। प्रतिवीक्षितुमप्याजौ भेत्तुन्तत् कुत एव तु ॥ ४ ॥ वयं त्वप्रतिमं वीर्ये सर्वे सौभद्रमात्मजम् । उक्तवन्तः स्म तं तात भिन्ध्यनीकमिति प्रभो ॥ ५ ॥ स तथा चोदितोऽस्माभिः सदश्व इव वीर्यवान् । असह्यमपि तं भारं वोढुमेवोपचक्रमे ॥६॥ स तवास्त्रोपदेशेन वीर्येण च समन्वितः । प्राविशत्तद्बलं बालः सुपर्ण इव सागरम् ॥७॥ तेऽनुयाता वयं वीरं सात्वतीपुत्रमाहवे । प्रवेष्टुकामास्तेनैव येन स प्राविशच्चमूम् ॥ ८ ॥ ततः सैन्धवको राजा क्षुद्रस्तात जयद्रथः । वरदानेन रुद्रस्य सर्वान्नः समवारयत् ॥ ९ ॥ ततो

रोकदिया ॥ २ ॥ रथी उनको रोकरहे थे तथा मेरी रक्षा भी कररहे थे, तो भी द्रोणाचार्य तेज बाणोंसे पीड़ा देतेहुए हमारी ओरको बढ़ते ही चले आते थे ॥ ३ ॥ द्रोणके बाणोंसे पीड़ित होतेहुए हमारे योधा द्रोणकी सेनाकी ओर आँख भी न उठासके, फिर उसको नष्ट तो करते ही क्या ? ॥४॥ हे भाई ! उस समय हम सबोंने वीरतामें अपनी समता न रखनेवाले अभिमन्युसे कहा, कि–हे तात ! द्रोणाचार्यके चक्रव्यूहको तोड़डाल ॥ ५ ॥ हमने इस प्रकार प्रेरणाकी तब उत्तम घोड़ेकी समान बलवान् अभिमन्युने असह्य भाररूप कार्यको भी करना आरंभ कर दिया ॥ ६ ॥ तेरा उत्साही और अस्त्रविद्या सीखा हुआ वह अभिमन्यु द्रोणकी सेनामें ऐसे घुसगया जैसे समुद्रमें गरुड घुसजाता है ॥७॥ हम भी उस वीरके बनाये हुए मार्गसे चक्रव्यूहमें घुसनेके लिये उसके पीछे २ जानेलगे, परन्तु हे तात ! सिन्धुदेशके राजा नीच जयद्रथने शिवजीके वरदानके कारण हम सबोंको सेनामें घुसनेसे रोकदिया ॥ ८–९ ॥ तदनन्तर द्रोणा-

द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिः कौसल्य एव च । कृतवर्मा च सौभद्रं षड्रथाः पर्यवारयन् ॥ १० ॥ परिकार्य तु तैः सर्वैर्युधि बालो महारथैः । यतमानः परं शक्त्या बहुभिर्विरथीकृतः ॥ ११ ॥ ततो दौशासनिः क्षिप्रं तथा तैर्विरथीकृतम् । संशयं परमं प्राप्य दिष्टान्तेनाभ्ययोजयत् ॥ १२ ॥ स तु हत्वा सहस्राणि नराश्वरथदन्तिनाम् । अष्टौ रथसहस्राणि नव दन्तिशतानि च ॥ १३ ॥ राजपुत्रसहस्रे द्वे वीरांश्चालक्षितान् बहून् । बृहद्बलञ्च राजानं स्वर्गेणाजौ प्रयोज्य ह ॥ १४ ॥ ततः परमधर्मात्मा दिष्टान्तमुपजग्मिवान् । एतावदेव निर्वृत्तमस्माकं शोकवर्धनम् ॥ १५ ॥ स चैवं पुरुषव्याघ्रः स्वर्गलोकमवाप्तवान् । ततोऽर्जुनो वचः श्रुत्वा धर्मराजेन भाषितम् ॥ १६ ॥ हा पुत्र इति निःश्वस्य व्यथितो

चार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, बृहद्बल और कृतवर्मा इन छः महारथियोंने अभिमन्युको चारों ओरसे घेरलिया॥१०॥और उस बालकको चक्रव्यूहमें बंद करलिया, जब बालक अभिमन्यु परम पराक्रमसे युद्ध कर उनका तिरस्कार करनेलगा, तब बहुतसे महारथियोंने उसका रथ तोड़कर उसको रथहीन करदिया॥११॥ तब दुःशासनके पुत्रने रथहीन होनेके कारण बड़े संकटमें फँसे हुए अभिमन्युको, अभिमन्युकी मारसे गिरकर भी फिर प्रारब्धवश मारडाला ॥ १२ ॥ परम धर्मात्मा अभिमन्युने पहिले एक सहस्र हाथी घोड़े, रथी और मनुष्योंको मारा, फिर आठ सहस्र रथी, नौ सौ हाथी, दो हजार राजकुमार बहुतसे अज्ञात वीर और राजा बृहद्बलको मारकर स्वयं मारागया; हम अभिमन्युके मरणसे शोकमें डूबरहे हैं ॥१३–१५॥ पुरुषोंमें व्याघ्रकी समान तेरा पुत्र स्वर्गमें गया है, अर्जुन धर्मराजके कहे इन वचनोंको सुनकर ॥ १६ ॥ हा ! पुत्र ! इसप्रकार साँस लेकर पीड़ित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा, उस समय सबके मुख पीले पड़गए, तथा वे सब

न्यपतद् भुवि । विषण्णवदनाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥ १७ ॥ नेत्रैरनिमिषैर्दीनाः प्रत्यवैक्षन् परस्परम् । प्रतिलभ्य ततः संज्ञां वासविः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १८ ॥ कम्पमानो ज्वरेणेव निश्वसंश्च मुहुर्मुहुः । पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य श्वसमानोऽश्रुनेत्रवान् । उन्मत्त इव विप्रेक्षन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ अर्जुन उवाच । सत्यं वः प्रतिजानामि श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् । न चेद्वधभयाद्भीतो धार्त्तराष्ट्रान् प्रहास्यति ॥ २० ॥ न चास्मान् शरणं गच्छेत् कृष्णं वा पुरुषोत्तमम् । भवन्तं वा महाराज श्वोस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २१ ॥ धार्त्तराष्ट्रप्रियकरं मयि विस्मृतसौहृदम् । पापं बालवधे हेतुं श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥२२॥ रक्षमाणाश्च तं संख्ये ये मां योत्स्यन्ति केचन । अपि द्रोणकृपौ राजन् छादयिष्यामि तान् शरैः२३

धनञ्जयको घेरकर बैठगए और एक दूसरेके सामनेको टगर २ देखनेलगे,थोडी देर पीछे क्रोध (शोक) से मूर्छित हुए अर्जुनको चेत हुआ ॥ १६-१८॥ उस समय वह ज्वरसे काँपते हुए मनुष्यकी समान बारंबार काँप रहा था तथा बारम्बार साँस छोडरहा था और हाथसे हाथको मसलकर नेत्रोंसे आँसू बहारहा था,फिर उन्मत्तकी समान चारों ओरको तिरछी दृष्टिसे देखकर कहा कि–मैं तुम्हारे सामने सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ, कि–जयद्रथ यदि मरणके भयसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंको छोडकर भागेगा नहीं तो मैं कल उसको अवश्य ही मारडालूँगा १९।२० हे महाराज! यदि वह हमारी या पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी अथवा तुम्हारी शरणमें न आया तो मैं अवश्य ही कल उसे मारडालूँगा२१कौरवोंका हित करनेके लिये उस पापीने मेरे स्नेहको भूलकर बालककी हत्या करडाली, मैं उसको कल ही मारडालूँगा ॥ २२ ॥ यदि कोई उसकी रक्षा करनेको मुझसे लड़ेगा तो चाहे वह द्रोण और कृपाचार्य ही क्यों न हों मैं इनको भी बाणोंसे ढकदूँगा ॥२३॥

यद्येतदेवं संग्रामे न कुर्यां पुरुषर्षभाः । मा स्म पुण्यकृतां लोकान् प्राप्नुयां शूरसम्मतान् ॥२४॥ ये लोका मातृहन्तॄणां ये चापि पितृघातिनाम् । गुरुदारगतानां ये पिशुनानाञ्च ये सदा ॥ २५ ॥ साधूनसूयतां ये च ये चापि परिवादिनाम् । ये च निक्षेपहर्तॄणां ये च विश्वासघातिनाम् ॥२६॥ भुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च विन्दतामघशंसिनाम् । ब्रह्मघ्नानाञ्च ये लोका ये च गोघातिनामपि॥२७॥ पायसं वायवान्नं वा शाकं कृशरमेव वा । संयावापूपमांसानि ये च लोका वृथाश्नताम् ॥ २८ ॥ तानह्नायाधिगच्छेयं न चेद्धन्यां जयद्रथम् । वेदाध्यायिनमत्यर्थं शंसितं वा द्विजोत्तमम् ॥ २९ ॥ अवमन्यमानो यान् याति वृद्धान् साधून् गुरूंस्तथा । स्पृशतो ब्राह्मणं गाञ्च पादेनाग्निञ्च या भवेत् ॥ ३० ॥ याप्सु श्लेष्मपुरीषञ्च मूत्रं वा मुञ्चतां गतिः । तां गच्छेयं गतिं कष्टां न

हे पुरुषश्रेष्ठ ! यदि मैं संग्राममें ऐसा न करूँ तो मुझे वीर और पुण्यवानोंको मिलनेवाले लोक न मिलें॥२४॥ यदि मैं जयद्रथको न मारूँ तो मातृहत्यारे, पितृहत्यारे, गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाले, चुगलखोर, साधुओंकी निन्दा करनेवाले; परनिन्दा करनेवाले, धरोहडको मार लेनेवाले, विश्वासघाती, दूसरेसे भोगीहुई स्त्रीको जानकर भी स्वीकार करनेवाले, पापी ब्रह्महत्यारे, गोहत्यारे, दूधपाक, यवान्न, शाक, खिचड़ी, गुड़ आदिके लड्डू, गुलगुले और माँसको वृथाही (विना देवार्पण किये) खानेवाले, जिन नरकोंमें पड़ते हैं,उन नरकोंमें मैं पड़ूँ, यदि मैं(कल) जयद्रथको न मारूँ तो वेदाध्ययन करनेवाले और और पवित्र व्रत धारण करनेवालेका अपमान करनेवालोंको, वृद्ध, साधु और गुरुओंका तिरस्कार करनेवालोंको जो गति मिलती है तथा ब्राह्मण, गौ और अग्निको पैरसे छूनेवालोंकी जो गति होती है तथा जलमें थूकने, मूत्र और मल त्यागनेवालोंकी जो गति होती है

चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३१ ॥ नग्नस्य स्नायमानस्य या च वन्ध्यातिथेर्गतिः । उत्कोचिनां मृषोक्तीनां वञ्चकानां च या गतिः ३२ आत्मापहारिणां या च या च मिथ्याभिशंसिनाम् । भृत्यैः सन्दिश्यमानानां पुत्रदाराश्रितैस्तथा ॥ ३३ ॥ असंविभज्य क्षुद्राणां या गतिर्मिष्टमश्नताम् । तां गच्छेयं गतिं घोरां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३४ ॥ संश्रितं चापि यस्त्यक्त्वा साधुं तद्वचने रतम् । न बिभर्त्ति नृशंसात्मा निन्दते चोपकारिणम् ॥ ३५ ॥ अर्हते प्रातिवेश्याय श्राद्धं यो न ददाति च । अनर्हेभ्यश्च यो दद्याद् वृषलीपतये तथा ॥ ३६ ॥ मद्यपो भिन्नमर्यादः कृतघ्नो भर्तृनिन्दकः । तेषां गतिमियां क्षिप्रं न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३७ ॥ भुंजानानां तु सव्येन उत्संगे चापि खादतां । पालाशमासनं चैव तिंदुकैर्दंतधावनम् ॥ ३८ ॥ ये चावर्जयतां लोकाः स्वपतां च तथोषसि ।

वही गति मेरी हो ॥ २५—३१ ॥ नङ्गा होकर स्नान करनेवालेकी, अतिथिको निराश करने वालेकी, रिश्वतखोरोंकी, झूंठ बोलने वालोंकी, ठगोंकी, अपनेको धोखा देनेवालोंकी, दूसरों पर झूंठा दोष लगाने वालोंकी; और अपने भृत्य, स्त्री, पुत्रका भाग बिना निकालेहुए स्वयं मीठा खानेवाले क्षुद्र पुरुषोंकी जो गति होती है वही गति मेरी भी हो ॥ ३२—३४ ॥ यदि मैं जयद्रथको न मारूँ तो अपने हितकारी आश्रित साधु पुरुषोंका पालन न करनेवालेकी, उपकारीकी निन्दा करनेवाले नृशंस पुरुषकी, योग्य पड़ोसीको श्राद्धमें न जिमाकर अयोग्य तथा शूद्र वा रजस्वलाके पतिको भोजन कराने वालेकी, शराबी की, मर्यादाको तोड़ने वालेकी, कृतघ्नकी, और पोषककी निन्दा करनेवालेकी जो गति है वही दशा (गति) मेरी हो ॥ ३५—३७॥ यदि मैं कल जयद्रथको न मारूँ तो बायें हाथसे और गोदमें रखकर भोजन करनेवालोंकी, ढाकके पत्तों पर बैठनेवालोंकी, आबनूसकी

शीतभीताश्च ये विप्रा रणभीताश्च क्षत्रियाः ॥ ३९ ॥ एककूपोदकग्रामे वेदध्वनिविवर्जिते । षण्मासं तत्र वसतां तथा शास्त्रविनिन्दताम् ॥ दिवा मैथुनिनां चापि दिवसेषु च शेरते । अगारदाहिनां चैव गरदानां च ये मताः ॥ ४१ ॥ अग्न्यातिथ्यविहीनाश्च गोपानेषु च विघ्नदाः । रजस्वलां सेवयंतः कन्यां शुल्केन दायिनः ॥ ४२ ॥ या च वै बहुयाजिनां ब्राह्मणानां श्ववृत्तिनाम्। आस्यमैथुनिकानाञ्च ये दिवा मैथुने रताः ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यो वै लोभाद्ददाति न । तेषां गतिं गमिष्यामि श्वो न हन्यां जयद्रथम् ॥४४॥ धर्मादपेता ये चान्ये मया नात्रानुकीर्त्तिताः। ये चानुकीर्त्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम् ॥४५॥ यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम् । इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे

दतौन करनेवालोंकी, धर्मका त्याग करनेवालोंकी, उषःकालमें सोनेवालोंकी, शीतसे डरकर स्नानादि न करनेवाले और रणसे डरनेवाले क्षत्रियोंकी, वेदकी ध्वनिसे शून्य और एक कुएवाले ग्राममें छः मास तक रहनेवालोंकी, शास्त्रकी निन्दा करनेवालोंकी, दिनमें मैथुन करनेवालोंकी, दिनमें सोनेवालोंकी. मकानमें आग लगानेवालेकी, तथा विष देनेवालोंकी. अग्नि तथा अतिथिका सत्कार न करनेवालोंकी, गौओंको जल पीनेसे रोकनेवालोंकी, रजस्वलासे समागम करनेवालोंकी, कन्यापर रुपया लेनेवालोंकी, जहाँ तहाँ यज्ञ करानेवाले और नौकरी करनेवाले श्वानवृत्तिके ब्राह्मणकी, मुख में मैथुन करनेवाले और दिनमें मैथुन करनेवाले तथा ब्राह्मणसे दान देनेकी प्रतिज्ञा करके पीछेसे लोभवश न देनेवालेकी जो गति होती है वही मेरी गति हो, यदि मैं आजकी रात्रिके अनन्तर कल जयद्रथको न मारूँ तो मैंने जिनको गिना दिया है और जिनका नाम नहीं लिया है उन सब पापियोंकी गतिको पाऊँ, अर्थात् मैं कल जयद्रथको न मारूँ तो ये लोग जिन नरकोंमें पड़ते हैं उन ही

निशोधत ॥ ४६ ॥ यद्यस्मिन्न हते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति । इहैव सम्प्रवेष्टाऽहं ज्वलितं जातवेदसम् ॥ ४७ ॥ असुरसुरमनुष्याः पक्षिणो वोरगा वा । पितृरजनिचरा वा ब्रह्मदेवर्षयो वा । चरमचरमपीदं यत् परं चापि तस्मात्तदपि मम रिपुं तं रक्षितुं नैव शक्ताः४८ यदि विशति रसातलं तदग्र्यं वियदपि देवपुरं दितेः पुरं वा । तदपि शरशतैरहं प्रभाते भृशमभिमन्युरिपोः शिरोऽभिहर्त्ता ॥४९॥ एवमुक्त्वा विचिक्षेप गाण्डीवं सव्यदक्षिणम् । तस्य शब्दमतिक्रम्य धनुःशब्दोऽस्पृशद्दिवम् ॥ ५० ॥ अर्जुनेन प्रतिज्ञाते पाञ्चजन्यं जनार्दनः । प्रदध्मौ तत्र संक्रुद्धो देवदत्तञ्च फाल्गुनः ५१ स पाञ्चजन्योऽच्युतवक्त्रवायुना भृशं सुपूर्णोदरनिःसृतध्वनिः ।

नरकोंमें मैं पड़ूँ तथा मेरी इस दूसरी प्रतिज्ञाको भी सुनो ।३८-४६। यदि (कल) बिना जयद्रथके मारेहुए सूर्य अस्त होजायगा तो मैं यहाँ ही जलतीहुई अग्निमें कूदकर जल जाऊँगा ॥४७॥ देवता, असुर, मनुष्य, पक्षी, सर्प, पितर, राक्षस, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, तथा यह चराचर जगत् तथा कोई इससे बढ़कर होगा वह भी मेरे शत्रुको न बचासकेगा ॥४८॥ जयद्रथ यदि पातालमें घुसजायगा तलातलमें चलाजायगा, आकाशमें, स्वर्गमें, तथा राक्षसोंके नगर में भी भागकर जायगा तब भी मैं कल प्रातःकाल अभिमन्युके शत्रु उस जयद्रथके मस्तकको धड़से अलग करदूँगा ॥ ४९ ॥ अर्जुन यह कहकर दाईं बाईं ओर धनुषको घुमाताहुआ उस पर टंकार देनेलगा, वह प्रत्यञ्चाका शब्द सब शब्दोंको दबाकर आकाशमें जाकर टकराया ॥ ५० ॥ अर्जुनके प्रतिज्ञा करने पर श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शङ्खको और क्रोधमें भरेहुए अर्जुनने देवदत्त नामक शंखको बजाया ॥ ५१ ॥ श्रीकृष्णके मुखकी वायुसे भरे हुए पाञ्चजन्य शंखमेंसे जो ध्वनि निकली उसने प्रलयकालकी समान पाताल, आकाश, दिशाएं और दिशाधीशोंको भी कँपा

जगत् सपातालवियद्दिगीश्वरं प्रकम्पयामास युगात्यये यथा ५२ ततो वादित्रघोषाश्च प्रादुरासन् सहस्रशः । सिंहनादाश्च पाण्डूनां प्रतिज्ञाते महात्मना ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुन-प्रतिज्ञायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

सञ्जय उवाच । श्रुत्वा तु तं महाशब्दं पाण्डूनां जयगृद्धिनाम् । चारैः प्रवेदिते तत्र समुत्थाय जयद्रथः ॥ १ ॥ शोकसंमूढहृदयो दुःखेनाभिपरिप्लुतः । मज्जमान इवागाध विपुले शोकसागरे २ जगाम समितिं राज्ञां सैन्धवो विमृशन्बहु । स तेषां नरदेवानां सकाशे पर्यदेवयत् ॥ ३ ॥ अभिमन्योः पितुर्भीतः सव्रीडो वाक्यमब्रवीत् । योऽसौ पाण्डोः किल क्षेत्रे जातः शक्रेण कामिना ॥४॥ स निनीषति दुर्बुद्धिर्मां किलैकं यमक्षयम् । तत्स्वस्तिवोस्तु यास्यामि

दिया ॥ ५२ ॥ महात्मा अर्जुनके प्रतिज्ञा करने पर तहाँ सैंकड़ों बाजे बजनेलगे और पाण्डव सिंहनाद करनेलगे ॥ ५३ ॥ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७३ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र! विजय चाहनेवाले पाण्डवोंकी इस बड़ीभारी ध्वनिको सुनकर (कौरवपक्षके पाण्डवोंकी सेनामें घूमतेहुए) दूतोंसे जयद्रथने जब यह सब समाचार सुना, उस समय जयद्रथका मन अगाध शोकसागरमें डूबगया और वह शोकसे व्याकुल होताहुआ बड़े दुःखके साथ उठकर सोचता२ राजाओंकी सभामेंको चलदिया और उसने उन नरदेवोंके पास जाकर विलाप आरम्भ करदिया१-३ अभिमन्युके पिता अर्जुनसे डरेहुए जयद्रथने लजाते२ यह बात कहा, कि-यह जो पाण्डुके क्षेत्रमें कामी इन्द्रके द्वारा उत्पन्न हुआ दुष्टात्मा अर्जुन है, वह अकेले मुझे ही यमसदनमें भेजना चाहता है, अब मैं यहाँ नहीं रहूँगा, आपका कल्याण हो, मैं तो प्राण बचानेकी इच्छासे अपने घरको

स्वगृहं जीवितेप्सया ॥ ५ ॥ अथवास्त्रबलैस्त्रात मां क्षत्रियर्षभाः । पार्थेन प्रार्थितं वीरास्ते संदत्त ममाभयम् ॥ ६ ॥ द्रोणदुर्योधनकृपाः कर्णमद्रेशबाह्लिकाः । दुःशासनादयः शक्तास्त्रातुं मामंतकार्दितम् ॥ ७ ॥ किमङ्ग पुनरेकेन फाल्गुनेन जिघांसता । न त्रायेयुर्भवंतो मां समस्ताः पतयः क्षितेः ॥८॥ प्रहर्षं पाण्डवेयानां श्रुत्वा मम महद्भयम् । सीदन्ति मम गात्राणि मुमूर्षोरिव पार्थिवाः ९ वधो नूनं प्रतिज्ञातो मम गाण्डीवधन्वना । तथा हि हृष्टाः क्रोशन्ति शोककाले स्म पाण्डवाः ॥ १० ॥ तन्न देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः । उत्सहंतेऽन्यथा कर्त्तुं कुत एव नराधिपाः ॥ ११ ॥ तस्मान्मामनुजानीत भद्रं वोऽस्तु नरर्षभाः । अदर्शनं गमिष्यामि न मां द्रक्ष्यन्ति पाण्डवाः ॥ १२ ॥ एवं विलपमानं तं भयाद्-

जाऊँगा ॥४-५॥ अथवा हे श्रेष्ठ क्षत्रियों ! तुम अस्त्र बलसे मेरी रक्षा करो और हे वीरों ! अर्जुनके विचारेहुए मेरे नाशको रोककर मुझे अभयदान दो ॥ ६ ॥ द्रोण, दुर्योधन, कृप, कर्ण, शल्य, बाल्हीक और दुःशासन आदि चाहें तो मुझे यमराजसे भी बचासकते हैं ! ॥ ७ ॥ तो क्या आप सब राजे मारना चाहनेवाले अकेले अर्जुनसे मुझे न बचासकोगे ?॥८॥ हे पार्थिवों ! पाण्डवोंकी हर्षध्वनिको सुनकर मुझे बड़ा डर लगरहा है और मेरे अङ्ग मरणासन्न पुरुषोंके अंगोंकी समान ढीले पड़ेजाते हैं ९ अर्जुनने अवश्य ही मेरे मारनेकी प्रतिज्ञा की है तब ही तो शोकके समय भी पाण्डव प्रसन्न होकर गरज रहे हैं॥१०॥ हे राजाओं ! अर्जुनकी प्रतिज्ञाको न देवता विफल करसकते हैं और न गंधर्व, असुर, सर्प, राक्षस ही मिथ्या कर सकते हैं ॥ ११ ॥ हे श्रेष्ठ पुरुषों ! तुम्हारा कल्याण हो इसलिये आप मुझे घर जानेकीही अनुमति दें; मैं यहाँसे जाकर कहीं ऐसी जगह छिपूँगा कि-पाण्डव मुझे देख ही न सकेंगे ॥ १२ ॥ ऐसे विलाप करते

व्याकुलचेतसं। आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्राजा दुर्योधनोऽब्रवीत्॥१३॥ न भेतव्यं नरव्याघ्र को हि त्वां पुरुषर्षभ। मध्ये क्षत्रियवीराणां तिष्ठन्तं प्रार्थयेद्युधि॥ १४॥ अहं वैकर्त्तनः कर्णश्चित्रसेनो विविंशतिः। भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनो दुरासदः॥ १५॥ पुरुमित्रो जयो भोजः कांवोजश्च सुदक्षिणः। सत्यव्रतो महावाहुर्विकर्णो दुर्मुखश्च ह॥१६॥ दुःशासनः सुवाहुश्च कालिङ्गश्चाप्युदायुधः। विन्दानुविन्दावावन्त्यौ द्रोणो द्रौणिश्च सौवलः १७ एते चान्ये च वहवो नानाजनपदेश्वराः। ससैन्यास्त्वाभिऽयास्यन्ति व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ १८॥ त्वं चापि रथिनां श्रेष्ठ स्वयं शूरोमितद्युते। स कथं पाण्डवेयेभ्यो भयं पश्यसि सैंधव॥ १९॥ अक्षौहिण्यो दशैका च मदीयास्तव रक्षणे। यत्ता योस्यन्ति माभै-

---

हुए और भयसे घवडायेहुए जयद्रथसे (दूसरेका कुछभी ध्यान न देकर अपने ही वड़ेभारी कार्यमें फँसेहुए) दुर्योधनने कहा, कि–॥१३॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम ऐसे न डरो, तुम शूर क्षत्रियोंके वीचमें खड़े रहना, उस समय युद्धमें तुम्हें कौन मारसकेगा ।१४। मैं सूर्यपुत्र कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल, शल्य, दुर्धर्ष वृषसेन, पुरुमित्र, जय, भोज; युद्धमें चतुर काम्वोज, सत्यव्रत, महावाहु विकर्ण. दुर्मुख, प्रसिद्ध दुःशासन, सुवाहु, हथियार उठायेहुए कलिंग देशका राजा, उज्जैनके विन्द, अनुविन्द द्रोण, अश्वत्थामा, शकुनि, और वहुतसे देशोंके राजे अपनी सेनाओंके सहित तुम्हें वीचमें करके चलेंगे अतः तुम चिन्ताको त्याग दो ॥१५–१८॥ हे अमित पराक्रमी ! तुम स्वयंभी शूरवीर हो, रथियोंमें श्रेष्ठ हो, तव हे सिंधुराज ! तुम पाण्डवोंसे क्यों डरते हो ? ॥ १९ ॥ हे जयद्रथ ! मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ भी तुम्हारी रक्षा करेंगी. और तुम्हारे लिये युद्ध करेंगी अतः हे सिन्धुराज ! डरो मत अपने मनके भयको दूर करो ॥ २० ॥

स्त्वं सैंधव व्येतु ते भयं ॥ २० ॥ सञ्जय उवाच । एवमाश्वासितो राजन् पुत्रेण तव सैंधवः । दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रावुपागमत् ॥ २१ ॥ उपसंग्रहणं कृत्वा द्रोणाय स विशाम्पते । उपोपविश्य प्रणतः पर्यपृच्छदिदं तदा ॥ २२ ॥ निमित्ते दूरपातित्वे लघुत्वे दृढवेधने । मम ब्रवीतु भगवन्विशेषं फाल्गुनस्य च ॥२३॥ विद्याविशेषमिच्छामि ज्ञातुमाचार्य तत्त्वतः । अर्जुनस्यात्मनश्चैव याथातथ्यं प्रचक्ष्व मे ॥ २४ ॥ द्रोण उवाच । सममाचार्यकं तात तव चैवार्जुनस्य च । योगाद् दुःखोषितत्वाच्च तस्मात्त्वत्तोधिकोऽर्जुनः ॥ २५ ॥ न तु ते युधि संत्रासः कार्यः पार्थात्कथञ्चन । अहं हि रक्षिता तात भयात्त्वां नात्र संशयः ॥ २६ ॥ न हि मद्बाहुगुप्तस्य प्रभवन्त्यमरा अपि । व्यूहयिष्यामि तं व्यूहं यं पार्थो न तरिष्यति ॥ २७ ॥ तस्माद्युध्यस्व मा भैस्त्वं स्वधर्ममनुपाल-

---

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! तुम्हारे पुत्रने जयद्रथको जब इसप्रकार दिलासा दिया तब वह रातमें ही दुर्योधनके साथ द्रोणाचार्यके पासगया ॥ २१ ॥ हे राजन् ! वह द्रोणके चरण छू उनके पास बैठगया और नम्र हो उनसे यह पूछनेलगा २२ हे भगवन् ! यह बताइये कि-मुझमें और अर्जुनमें दूरका लक्ष्य वेधनेमें, फुर्तीसे बाण छोडनेमें तथा दृढ निशाना लगानेमें कौन अधिक है ? ॥ २३ ॥ हे आचार्य ! अर्जुन और मैं इनमें किसमें अधिक विद्या है ? यह मैं जानना चाहता हूँ, आप ठीक२ बता दीजिये ॥२४॥ द्रोणने कहा, कि-हे तात ! तेरे और अर्जुनके गुरु एक ही हैं, परन्तु योगाभ्यास करनेसे और गुरुके घर क्लेश सहनेसे अर्जुन तुझसे विद्यामें अधिक है ॥ २५ ॥ परन्तु तुझे लड़ाईमें अर्जुनसे किसीप्रकार नहीं डरना चाहिये, क्योंकि-मैं निःसन्देह भयसे तेरी रक्षा करूँगा ॥ २६ ॥ मेरी भुजाओंसे रक्षा पायेहुएका देवता भी तिरस्कार नहीं करसकते, मैं ऐसे व्यूह

य । पितृपैतामहं मार्गमनुयाहि महारथ ॥ २८ ॥ अधीत्य विधिवद्वेदानग्नयः सुहुतास्त्वया । इष्टं च बहुभिर्यज्ञैर्न ते मृत्युर्भयङ्करः २९ दुर्लभं मानुषैर्मन्दैर्महाभाग्यमवाप्य तु । भुजवीर्यार्जितान् लोकान् दिव्यान् प्राप्स्यस्यनुत्तमान् ॥ ३० ॥ कुरवः पाण्डवाश्चैव वृष्णयोऽन्ये च मानवाः । अहञ्च सह पुत्रेण अध्रुवा इति चिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥ पर्यायेण वयं सर्वे कालेन बलिना हताः । परलोकं गमिष्यामः स्वैः स्वैः कर्मभिरन्विताः ॥ ३२ ॥ तपस्तप्त्वा तु यान् लोकान् प्राप्नुवन्ति तपस्विनः । क्षत्रधर्माश्रिता वीराः क्षत्रियाः प्राप्नुवन्ति तान् ॥ ३३ ॥ एवमाश्वासितो राजा भारद्वाजेन सैंधवः । अपानुदद्भयं पार्थाद्युद्धाय च मनो दधे ॥ ३४ ॥

को रचूँगा, कि–उसमें अर्जुन घुसही नहीं सकेगा ॥ २७ ॥ इस लिये हे महारथी ! तू भय मत कर और युद्ध कर तथा अपने बाप दादोंके मार्गका अनुसरण करता हुआ क्षत्रियधर्मका पालन कर ॥ २८ ॥ तू वेदोंको भली भाँति पढकर अग्निमें होम करता है तथा तूने बहुतसे यज्ञ किये हैं अतः तुझे मृत्युका क्या डर? २९ कदाचित् तू मरगया तो भाग्यहीन मनुष्योंको दुर्लभ बड़े भाग्यसे मिलेहुए अवसरको पाकर तू भुजाओंके बलसे जीतेहुए अत्युत्तम दिव्यलोकोंमें जायगा ॥ ३० ॥ हे सिन्धुराज ! ये कौरव, पांडव, वृष्णि, दूसरे मनुष्य तथा मैं और मेरा पुत्र ये सब नाशवान् हैं इसका भी तू विचार करले ॥ ३१ ॥ बली काल क्रम२से हम सबोंका नाश करेगा और हम अपने२ कर्मोंको साथ लेकर परलोकको जायंगे ॥ ३२ ॥ जिन लोकोंको तपस्वी तप करने पर पाते हैं, उनको वीर क्षत्रिय क्षत्रियधर्मका आश्रय करने पर ही पाजाते हैं ॥ ३३ ॥ जब इसप्रकार द्रोणाचार्यने जयद्रथको ढाढस दिया तब उसके मनमेंसे अर्जुनका डर दूर हुआ और वह अपने मनमें युद्ध करनेका विचार करनेलगा ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! उस

ततः प्रहर्षः सेनानां तवाप्यासीद्विशाम्पते। वादित्राणां ध्वनिश्चोग्रः सिंहनादरवैः सह ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि जयद्रथाश्वासे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

सञ्जय उवाच । प्रतिज्ञाते तु पार्थेन सिन्धुराजवधे तदा । वासुदेवो महाबाहुर्धनञ्जयमभाषत ॥ १ ॥ भ्रातॄणां मतमज्ञाय त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् । सैन्धवञ्चास्मि हन्तेति तत्साहसमिदं कृतम् ॥ २ ॥ असम्मन्त्र्य मया सार्द्धमतिभारोयमुद्यतः । कथं तु सर्वलोकस्य नावहास्या भवेमहि ॥ ३ ॥ धार्त्तराष्ट्रस्य शिविरे मया प्रणिहिताश्चराः । त इमे शीघ्रमागम्य प्रवृत्तिं वेदयन्ति नः ॥४ ॥ त्वया वै सम्प्रतिज्ञाते सिन्धुराजवधे प्रभो । सिंहनादः सवादित्रैः सुमहानिह तैः श्रुतः ॥५॥ तेन शब्देन वित्रस्ता धार्त्तराष्ट्राः ससै-

---

समय तुम्हारी सेनामें भी हर्षध्वनि होने लगी और सिंहनादोंके साथ नगाड़े आदिकी बड़ीभारी ध्वनि होने लगी ॥ ३५ ॥

चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७४ ॥ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा कि–हे धृतराष्ट्र ! जब अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथके वधकी प्रतिज्ञा करली, तब महाबाहु श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहनेलगे, कि–॥ १ ॥ हे अर्जुन ! तूने भाइयोंसे सलाह न करके वाणीसे सिन्धुराजके वधकी प्रतिज्ञा करली, यह तूने साहस का काम किया है ॥ २ ॥ और मेरी सम्पति भी न ली तथा इस बड़े भारी कामको करनेका वीडा उठा लिया, इससे क्या हम, सब लोगोंके हँसनेके योग्य न होंगे ? ॥ ३ ॥ दुर्योधनकी छावनीमें मैंने गुप्तचर भेजे थे, उन्होंने शीघ्रही आकर मुझसे वहाँका वृत्तांत कहा है कि–॥ ४ ॥ हे समर्थ अर्जुन ! जब तूने सिन्धुराजका वध करनेकी प्रतिज्ञा की, उस समय हमारी सेनामें नगाडोंके शब्दोंके साथ बडाभारी सिंहनाद हुआ और कौरवोंने उसको

न्धवाः । नाकस्मात् सिंहनादोयमिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ६ ॥ सुमहान् शब्दसम्पातः कौरवाणां महाभुज । आसीन्नागाश्वपत्तीनां रथघोषश्च भैरवः ॥७॥ अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा ध्रुवमार्त्तो धनञ्जयः । रात्रौ निर्यास्यति क्रोधादिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥८॥ तैर्यतद्भिरियं सत्या श्रुता सत्यवतस्तव । प्रतिज्ञा सिन्धुराजस्य वधे राजीवलोचन ॥ ९ ॥ ततो विमनसः सर्वे त्रस्ताः क्षुद्रमृगा इव । आसन् सुयोधनामात्याः स च राजा जयद्रथः ॥१०॥ अथोत्थाय सहामात्यैर्दीनः शिविरमात्मनः । आयात् सौवीरसिन्धूनामीश्वरो भृशदुःखितः ॥ ११ ॥ स मन्त्रकाले सम्मन्त्र्य सर्वा नैश्रेयसीः क्रियाः । सुयोधनमिदं वाक्यमब्रवीद्राजसंसदि ॥ १२ ॥ मामसौ

सुना । ५ ॥ उस शब्दसे सिन्धुराज जयद्रथसहित सब कौरव चौंक पड़े और यह विचारने लगे, कि—यह अकस्मात् सिंहनाद (चढाईके लिये) तो नहीं है ? ॥ ६ ॥ हे महाभुज ! इस समय कौरवोंकी सेनामें वडा कोलाहल होने लगा अर्थात् रथ, घोडे, हाथी और पैदलोंका महाभयंकर शब्द होने लगा ॥ ७ ॥ वे यह समझकर तयार होनेलगे, कि—अभिमन्युकी मृत्युसे अर्जुनको खेद हुआ होगा अतः वह आज क्रोधमें भर रातमें ही लडनेको आता है यह समझकर वे सावधान होगये ॥ ८ ॥ वे जब तयारी कररहे थे; कि—उन्हें तुझ सत्य वोलनेवालेकी प्रतिज्ञा मालूम होगई; कि—हे राजीवलोचन ! तूने सिन्धुराजको मारनेकी सत्य प्रतिज्ञाकी है ॥९॥ उस समय मन्त्रियों सहित दुर्योधन और राजा जयद्रथ भी क्षुद्रमृगोंकी समान खिन्न हो डरनेलगे१०तदनन्तर दीन वना हुआ सिन्धुराज जयद्रथ अपने मन्त्रियोंके साथ वडा दुःखी होकर शिविर (राजसभा) में गया ॥११॥ और तहाँ कल्याणकारक सब उपायोंका विचार करनेके वाद राजसभामें दुर्योधनसे यह वोला, कि—॥ १२ ॥ हे दुर्योधन ! अर्जुन यह समझ

पुत्रहन्तेति शत्रोभियाता धनञ्जयः । प्रतिज्ञातो हि सेनाया मध्ये तेन वधो मम ॥ १३ ॥ नास्य देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः । उत्सहन्तेन्यथा कर्तुं प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥ ते मां रक्षत संग्रामे मा वो मूर्ध्नि धनञ्जयः । पदं कृत्वाप्नुयाल्लक्ष्यं तस्मादत्र विधीयताम् ॥ १५ ॥ अथ रक्षा न मे संख्ये क्रियते कुरुनन्दन । अनुजानीहि मां राजन् गमिष्यामि गृहान् प्रति ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्त्ववाक्शीर्षो विमनाः स सुयोधनः । श्रुत्वा तं समयं तस्य ध्यानमेवान्वपद्यत ॥ १७ ॥ तमार्तमभिसम्प्रेक्ष्य राजा किल स सैन्धवः । मृदु चात्महितं चैव सापेक्षमिदमुक्तवान् ॥ १८ ॥ नेह पश्यामि भवतां तथावीर्यं धनुर्धरम् । योऽर्जुनस्यास्त्रमस्त्रेण प्रतिहन्यान्महाहवे ॥ १९ ॥ वासुदेवसहायस्य गाण्डीवन्धुन्वतो धनुः । कोऽर्जु-

---

रहा है, कि–मेरे पुत्रका वध जयद्रथने ही किया है, अतः वह कल मेरे ऊपर चढ़ाई करेगा, उसने अपनी सेनाके मध्यमें मेरा वध करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ १३ ॥ सव्यसाचीकी उस प्रतिज्ञाको देवता, असुर, गन्धर्व और सर्प भी मिथ्या नहीं करसकते १४ अतः आप संग्राममें चारों ओरसे मेरी रक्षा करें ऐसा न हो, कि अर्जुन तुम्हारे शिर पर पैर रखकर अपने लक्ष्यको(मुझे पाजाय (मारडाले) ॥ १५ ॥ अथवा हे कुरुनन्दन! तुमसे इस समय मेरी रक्षा न होसके तो तुम मुझे जानेकी आज्ञा दो, तो हे राजन्! मैं अपने घरको चलाजाऊँ ॥ १६ ॥ जयद्रथके ऐसा कहने पर दुर्योधन खिन्न होगया और उसको कुछ उत्तर न देकर उसके जानेके विषयमें नीचेको गर्दन डालकर विचार करनेलगा ॥१७॥ सिन्धुराज दुर्योधनको खिन्न हुआ देखकर अपना हित हो इस विचारसे दुर्योधनसे कोमलतापूर्वक कहनेलगा, कि–॥ १८ ॥ यहाँ तुम्हारी सेनामें मुझे कोई ऐसा वीर्यवान् धनुषधारी नहीं दीखता जो महायुद्धमें अपने अस्त्रोंसे अर्जुनके अस्त्रोंको रोक

नस्याग्रतस्तिष्ठेत् साक्षादपि शतक्रतुः ॥ २० ॥ महेश्वरोपि पार्थेन श्रूयते योधितः पुरा । पदातिना महावीर्यो गिरौ हिमवति प्रभुः२१ दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् । जघानैकरथेनैव देवराजप्रचोदितः ॥२२॥ समायुक्तो हि कौन्तेयो वासुदेवेन धीमता । सामरानपि लोकांस्त्रीन् हन्यादिति मतिर्मम ॥ २३ ॥ सोहमिच्छाम्यनुज्ञातुं रक्षितुं वा महात्मना । द्रोणेन सह पुत्रेण वीरेण यदि मन्यसे ॥ २४ ॥ स राज्ञा स्वयमाचार्यो भृशमभ्यर्थितोर्जुन । सन्निधानं च विहितं रथाश्च किल सज्जिताः ॥ २५ ॥ कर्णो भूरिश्रवा द्रौणिर्वृषसेनश्च दुर्जयः । कृपश्च मद्रराजश्च षडेतेस्य पुरोगमाः ॥ २६ ॥ शकटः पद्मकश्चार्धो व्यूहो द्रोणेन निर्मितः ।

सके ॥ १९ ॥ वासुदेवकी सहायता पायेहुए और गाण्डीव धनुष पर टङ्कार देतेहुए अर्जुनके सामने और तो क्या इन्द्र भी नहीं ठहर सकता ॥ २० ॥ सुना है, कि-पहले अर्जुन हिमालय पर्वत पर शिवजीके साथ पैदल ही लडा था ॥ २१ ॥ इन्द्रकी प्रेरणासे अर्जुनने एक रथसे ही हिरण्यपुरमें रहनेवाले सहस्रों राक्षसोंको मारडाला था ॥२२॥ मेरा यह निश्चय है, कि बुद्धिमान् वासुदेवकी सहायतासे अर्जुन देवताओं सहित तीनों लोकोंका संहार करसकता है ॥ २३ ॥ इसलिये आप मुझे घर जानेकी आज्ञा दें अथवा पुत्रसहित महात्मा द्रोणाचार्यसे रक्षा करनेका वचन दिलावें नहीं तो आपका जो विचार हो बताइये?२४ हे अर्जुन ! जब सिंधुराजने यह कहा, तब राजा दुर्योधन स्वयं ही आचार्यके पास गया और उनसे बड़ी विनयकी तथा उसने जयद्रथके मनका समाधान कर उसको जानेसे रोकलिया और रथ तथा घोडोंको भी युद्धकी सामग्रीसे तयार करदिया २५ कलके युद्धमें कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, दुर्जय, वृषसेन, कृपाचार्य और मद्रराज ये छः महारथी सेनाके आगे रहेंगे ॥ २६ ॥

पद्मकर्णिकमध्यस्थः सूचीपार्श्वे जयद्रथः ॥ २७ ॥ स्थास्यते रक्षितो वीरैः सिन्धुराट् स सुदुर्मदः । धनुष्यस्त्रे च वीर्ये च प्राणे चैव तथौरसे ॥ २८ ॥ अविषह्यतमा ह्येते निश्चिताः पार्थ षड्रथाः । एतानजित्वा षड्रथान् नैव प्राप्यो जयद्रथः ॥ २९ ॥ तेषामेकैकशो वीर्यं षण्णां त्वमनुचिन्तय । सहिता हि नरव्याघ्र न शक्या जेतुमञ्जसा ॥ ३० ॥ भूयस्तु मन्त्रयिष्यामि नीतिमात्महिताय वै । मन्त्रज्ञैः सचिवैः सार्द्धं सुहृद्भिः कार्यसिद्धये ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णवाक्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

अर्जुन उवाच । षड्रथान् धार्त्तराष्ट्रस्य मन्यसे यान् बलाधि-

द्रोणाचार्यने एक सेनाव्यूह बनाया है उसका अगला आधा भाग शकटके आकारका है, पिछला आधा भाग कमलके आकारका है और मध्यभाग कमलकी कलीकी समान है और उसमें सूईके आकारके बनाएहुए व्यूहमें युद्धके समय महादुर्मद सिंधुराज खड़ा रहेगा तथा छः महारथी उस व्यूहमें खड़ेहुए जयद्रथकी रक्षा करेंगे, ये छः महारथी धनुषमें, अस्त्रमें, वीर्यमें, कुलीनतामें, बलमें, बड़े ही श्रेष्ठ हैं, इनको सहना कठिन है और ये बड़े दृढ़ हैं, इन छः महारथियोंको विना जीते जयद्रथको पाना असंभव है २७–२९ हे नरव्याघ्र ! तू इन छः महारथियोंमेंसे अलग२ एक२ के पराक्रमका विचार कर, एक साथ ही इन सबोंका पराजय बलात्कारसे कोई नहीं करसकता ॥ ३० ॥ अतः अपना हित करनेके लिये और कार्यसिद्धिके लिये हमें अपने राजनीतिज्ञ मंत्रियोंसे और मित्रोंसे फिर सलाह करनी चाहिये ॥३१॥ पिचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७५ ॥　　छ　　॥　　छ　　॥

अर्जुनने कहा, कि–हे श्रीकृष्ण ! जिन छः रथियोंको तुम बड़ा बली जानते हो उन सबका बल भी मेरे आधे बलके बराबर

कान् । तेषां वीर्यं ममार्धेन न तुल्यमिति मे मतिः ॥ १ ॥ अस्त्रमस्त्रेण सर्वेषामेतेषां मधुसूदन । मया द्रक्ष्यसि निर्भिन्नं जयद्रथवधैषिणा ॥ २ ॥ द्रोणस्य मिषतश्चाहं सगणस्य विलप्यतः । मूर्धानं सिन्धुराजस्य पातयिष्यामि भूतले ॥ ३ ॥ यदि साध्याश्च रुद्राश्च वसवश्च सहाश्विनः । मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवाः सहेश्वराः ॥४॥ पितरः सहगन्धर्वाः सुपर्णाः सागरादयः । द्यौर्वियत् पृथिवी चेयं दिशश्च सदिगीश्वराः ॥ ५ ॥ ग्राम्यारण्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । त्रातारः सिन्धुराजस्य भवन्ति मधुसूदन ॥ ६ ॥ तथापि बाणैर्निहतं श्वो द्रष्टासि रणे मया । सत्येन च शपे कृष्ण तथैवायुधमालभे ॥ ७ ॥ यस्य गोप्ता महेष्वासस्तस्य पापस्य दुर्मतेः । तमेव प्रथमं द्रोणमभियास्यामि केशव ॥८॥ तस्मिन् द्यूतमिदं बद्धं मन्यते स सुयोधनः । तस्मात्तस्यैव सेनाग्रं

भी नहीं है, यह मेरा निश्चय है ॥ १ ॥ और हे मधुसूदन ! आप देखें, कि–जयद्रथका वध करना चाहनेवाला मैं, इन सबोंके अस्त्रोंको अपने अस्त्रसे कैसे काटता हूँ ॥ २ ॥ मैं द्रोणके नेत्रोंके सामने ही सेनासहित विलाप करनेवाले सिंधुराजके मस्तकको काटकर पृथ्वीपर गिरादूँगा ॥ ३ ॥ हे मधुसूदन ! कदाचित् साध्यदेवता, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, इन्द्र, वायु, ईश्वरसहित विश्वेदेवता, पितर, गन्धर्व, गरुड़, समुद्र, पृथ्वी, स्वर्ग, आकाश, दिशाएं, दिक्पाल, ग्राम्य पुरुष, जंगली पुरुष और स्थावर जंगमजगत् के प्राणी इनमेंसे कोई भी सिंधुराजकी रक्षा करेंगे तो भी, मैं आपके सामने सत्य और आयुधोंकी शपथ लेकर कहता हूँ, कि–कल आप बाणोंके द्वारा जयद्रथको मुझसे मराहुआ देखेंगे ॥४–७॥ हे केशव ! दुर्मति पापी जयद्रथके रक्षक द्रोणके ऊपर ही मैं पहिले चढ़ाई करूँगा ॥ ८ ॥ दुर्योधन समझता है, कि–इस युद्धद्यूतमें द्रोणके कारण ही विजय होगी, इसलिये मैं द्रोणकी ही सेनाके

भित्त्वा यास्यामि सैन्धवम् ॥ ९ ॥ द्रष्टासि श्वो महेष्वासान् नाराचैस्तिग्मतेजितैः । शृङ्गाणीव गिरेर्वज्रैर्दार्यमाणान्मया युधि ॥१०॥ नरनागाश्वदेहेभ्यो विस्रविष्यति शोणितम् । पतद्भ्यः पतितेभ्यश्च विभिन्नेभ्यः शितैः शरैः ॥११॥ गाण्डीवप्रेषिता बाणाः मनोऽनिलसमा जवे । नृनागाश्वान् विदेहासून् कर्त्तारश्च सहस्रशः १२ यमात् कुबेराद्वरुणादिन्द्राद्रुद्राच्च यन्मया । उपात्तमस्त्रं घोरं तद्द्रष्टारोऽत्र नरा युधि ॥ १३ ॥ ब्राह्मेणास्त्रेण चास्त्राणि हन्यमानानि संयुगे । मया द्रष्टासि सर्वेषां सैन्धवस्याभिरक्षिणाम् ॥१४॥ शरवेगसमुत्कृत्तै राज्ञां केशव मूर्द्धभिः । आस्तीर्यमाणां पृथिवीं द्रष्टाऽसि श्वो मया युधि॥१५॥ क्रव्यादांस्तर्पयिष्यामि द्रावयिष्यामि शात्रवान् । सुहृदो नन्दयिष्यामि प्रमथिष्यामि सैन्धवम् ॥ १६ ॥

अग्रभागको तोड़कर सिंधुराजको पकड़लूँगा ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! कल ही आप मेरे द्वारा बड़े२ धनुषधारियोंको तीखी धारवाले बाणोंसे जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतके शिखरोंको तोड़डालता है तैसे ही विदीर्ण हुआ देखोगे ॥ १० ॥ तेज बाणोंसे भिदकर गिरते हुए और गिरेहुए हाथी, घोड़े तथा मनुष्योंके देहोंमेंसे रक्तकी धारें बहेंगी ॥११॥ (और आप देखना कि–) मन और वायुकी समान वेगवाले गाण्डीवसे छोड़ेहुए बाण सहस्रों हाथी, घोड़े और मनुष्योंके देहोंको प्राणशून्य करदेंगे ॥ १२ ॥ इस युद्धमें मनुष्य यह देखेंगे, कि–मैंने यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र और शिवसे कैसे२ घोर अस्त्र पाये हैं ॥ १३ ॥ और मैं सिंधुराजकी रक्षा करनेवाले सब महारथियोंके अस्त्रोंको ब्रह्मास्त्रसे काटडालूँगा इसको आप देखना ॥ १४ ॥ और हे केशव ! कलको आप, बाणोंके वेगोंसे कटकर गिरेहुए राजाओंके मस्तकोंसे इस पृथ्वीको भरीहुई देखेंगे ॥ १५ ॥ (कलको) मैं रणमें शत्रुओंका संहार करके मांसभक्षक राक्षसोंको तृप्त करूँगा, शत्रुओंको भगा

वह्वागस्कृत्कुसम्बन्धी पापदेशसमुद्भवः । मया सैन्धवको राजा हतः स्वान् शोचयिष्यति॥१७॥सर्वक्षीरान्नभोक्तारं पापाचारं रणाजिरे। मया सराजकं बाणैर्भिन्नं द्रक्ष्यसि सैन्धवम् ॥ १८ ॥ तथा प्रभाते कर्त्तास्मि यथा कृष्ण सुयोधनः । नान्यं धनुर्द्धरं लोके मंस्यते मत्समं युधि ॥ १९ ॥ गाण्डीवञ्च धनुर्दिव्यं योद्धा चाहं नरर्षभ । त्वञ्च यन्ता हृषीकेश किं नु स्यादजितं मया ॥ २० ॥ तव प्रसादाद्भगवन् किं नावाप्तं रणे मम । अविषह्यं हृषीकेश किञ्जानन्मां विगर्हसे ॥ २१ ॥ यथा लक्ष्म स्थिरं चन्द्रे समुद्रे च यथा जलम् । एवमेतां प्रतिज्ञां मे सत्यां विद्धि जनार्दन ॥ २२ ॥ मावमंस्था

दूँगा, मित्रोंको आनन्दित करूँगा और जयद्रथको मारडालूँगा १६ संबंधका ध्यान न रखकर बड़ा अपराध करनेवाला,क्षुद्र पापमय देशमें उत्पन्न हुआ जयद्रथ मेरे हाथसे माराजाकर अपने संबन्धियोंको शोक देगा अर्थात् जयद्रथके मारेजाने पर उसके संबंधी शोक करेंगे ॥१७॥ हे श्रीकृष्ण ! तुम (कल ही) सबोंके भागका दूध और अन्न खानेवाले. पापी जयद्रथको साथियोंके सहित मुझसे माराहुआ देखोगे ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! कल प्रातःकाल में ऐसा (पराक्रम) करूगा, कि-जिसे देखकर दुर्योधनके मनमें यह वात बैठजावेगी. कि-अर्जुनकी समान कोई दूसरा धनुषधारी है ही नहीं ॥१९॥ हे पुरुषोत्तम ! गाण्डीवसा धनुष और मुझसा योद्धा तथा आपसा सारथी होतेहुए मैं किसको नहीं जीतसकता ? ॥ २० ॥ हे केशव ! आपकी कृपासे रणमें मुझे कौन वस्तु दुर्लभ है ? आप यह जानते हैं, कि-अर्जुन महासमर्थ है, तब भी आप मेरा तिरस्कार क्यों करते हैं ॥ २१ ॥ हे जनार्दन ! जैसे चन्द्रमामें चिन्ह और समुद्रमें जल अचल है इसीप्रकार तुम मेरी प्रतिज्ञाको भी सत्य (अटल) ही जानो ॥ २२ ॥ हे श्रीकृष्ण ! तुम मेरे अस्त्रोंको छोटे न समझो, मेरे धनुषको साधारण न

ममास्त्राणि मावमंस्था धनुर्दृढम् । मावमंस्था बलं बाह्वोर्मावमंस्था धनञ्जयम् ॥ २३ ॥ तथाऽभियामि संग्रामं न जीयेयं जयामि च । तेन सत्येन संग्रामे हतं विद्धि जयद्रथम् ॥ २४ ॥ ध्रुवं वै ब्राह्मणे सत्यं ध्रुवा साधुषु सन्नतिः । श्रीर्ध्रुवापि च यज्ञेषु ध्रुवो नारायणे जयः ॥ २५ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वा हृषीकेशं स्वयमात्मानमात्मना । सन्दिदेशार्जुनो नर्दन् वासविः केशवं प्रभुम् ॥ २६ ॥ यथा प्रभातां रजनीं कल्पितः स्याद्रथो मम । तथा कार्यं त्वया कृष्ण कार्यं हि महदुद्यतम् ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सञ्जय उवाच । तां निशां शोकदुःखार्त्तौ निःश्वसन्ताविवोरगौ । निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनञ्जयौ ॥ १ ॥ नरनारायणौ

समझो मेरी भुजाओंके बलको भी कम न समझो और मुझे भी साधारण समझकर मेरा अपमान न करो ॥ २३ ॥ मैं आजतक संग्राममें किसीसे हारा नहीं हूँ, किन्तु मैं युद्धमें जीता ही हूँ, अतः मैं जयद्रथको अवश्य मारडालूँगा, इसे आप सत्य जानिये।२४। ब्राह्मणोंमें सत्य, साधुओंमें नम्रता और यज्ञोंमें शोभा अवश्य रहती है और नारायणमें जय भी अवश्य ही रहती है ॥ २५ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! इसप्रकार इन्द्रपुत्र अर्जुनने अपना स्वरूप श्रीकृष्णको सुनाया, तदनन्तर गर्जना करके केशव से कहा, कि-हे कृष्ण ! कल रातमें प्रभात होते ही मेरा रथ तयार होजाय, ऐसी व्यवस्था करिये क्योंकि हमें बड़ा काम करना है ॥ २६-२७ ॥ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! उस रातमें दुःख और शोकसे व्याकुल हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको नींद नहीं आई, उन्होंने सर्पोंकी समान लम्बे साँस लेते२ ही रात बितादी ॥ १ ॥ नर

क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः। व्यथिताश्चिन्तयामासुः किंस्विदेतद्भविष्यति ॥ २ ॥ ववुश्च दारुणा वाता रूक्षा घोराभिशंसिनः। सकबन्धस्तथादित्ये परिघः समदृश्यत ॥ ३ ॥ शुष्काशन्यश्च निष्पेतुः सनिर्घाताः सविद्युतः। चचाल चापि पृथिवी सशैलवनकानना ॥ ४ ॥ चुक्षुभुश्च महाराज सागरा मकरालयाः। प्रतिस्रोतःप्रवृत्ताश्च तथा गन्तुं समुद्रगाः ॥ ५ ॥ रथाश्वनरनागानां प्रवृत्तामधरोत्तरम्। क्रव्यादानां प्रमोदार्थं यमराष्ट्रविवृद्धये ॥ ६ ॥ वाहनानि शकृन्मूत्रं मुमुचू रुरुदुश्च ह। तान्दृष्ट्वा दारुणान् सर्वानुत्पातान् लोमहर्षणान् ॥ ७ ॥ सर्वे ते व्यथिताः सैन्यास्त्वदीया भरतर्षभ। श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ ८ ॥ अथ कृष्णं महाबाहुरब्रवीत्पाकशासनिः। आश्वासय सुभद्रां

और नारायण क्रोधमें भरगए हैं, यह जानकर देवता खिन्न होकर विचारने लगे, कि—अब क्या होगा ? ॥२॥ उस समय घोर और रूखी आँधियें चलनेलगीं, उनसे यह प्रतीत होता था, कि—कोई दारुण उत्पात होगा, सूर्यमें धडसहित राहु दीखनेलगा ॥ ३ ॥ बिजली तथा वज्रके कडाकोंके साथ शुष्क वज्र गिरनेलगे, वन, पहाड और जङ्गलोंसहित पृथिवी काँपने लगी ॥४॥ मगर मच्छोंके भवनरूप समुद्र खलभलाने लगे और समुद्रकी ओरको बहने वाली नदियोंका प्रवाह उलटा चलने लगा ॥ ५ ॥ कच्चे मांसको खानेवाले राक्षसोंके आनन्दके लिये और यमराज्यकी वृद्धिकी सूचना देनेके लिये रथ, हाथी, घोड़े एक दूसरेके ऊपर गिरने लगे ॥६॥ घोडे आदि पशुओंका मल तथा मूत्र निकल पडा और वे स्वयंही रोनेलगे उन सब लोमहर्षण दारुण उत्पातोंको देखकर और महाबली सव्यसाचीकी भयङ्कर प्रतिज्ञाको सुनकर हे भरतर्षभ! तुम्हारे सब योधा उदास होगए ॥ ७ ॥ ८ ॥ तदनन्तर महाबाहु इन्द्रपुत्र अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, कि हे कृष्ण! तुम सुभद्रा

त्वं भगिनीं स्नुषया सह ॥९॥ स्नुषाश्चास्या वयस्याश्च विशोकाः कुरु माधव । साम्ना सत्येन युक्तेन वचसाऽऽश्वासय प्रभो ॥१०॥ ततोऽर्जुनगृहं गत्वा वासुदेवः सुदुर्मनाः । भगिनीं पुत्रशोकार्त्तामाश्वासयत दुःखिताम् ॥ ११ ॥ वासुदेव उवाच । मा शोकं कुरु वार्ष्णेयि कुमारं प्रति सस्नुषा । सर्वेषां प्राणिनां भीरु निष्ठैषा कालनिर्मिता ॥१२॥ कुले जातस्य वीरस्य क्षत्रियस्य विशेषतः । सदृशं मरणं ह्येतत्तव पुत्रस्य मा शुचः ॥ १३ ॥ दिष्ट्या महारथो धीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः । क्षात्रेण विधिना प्राप्तो वीराभिलषितां गतिम् ॥ १४ ॥ जित्वा सुबहुशः शत्रून् प्रेषयित्वा च मृत्यवे । गतः पुण्यकृतां लोकान् सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥ १५ ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन प्रज्ञयापि च । सन्तो यां गतिमिच्छन्ति तां प्राप्त-

---

और पुत्रवधू उत्तराको तो धीरज दो ॥ ९ ॥ हे माधव ! हे प्रभो ! तुम सुभद्राकी बहू और उसकी सखियोंको भी सत्यताभरे वचनोंसे समझाकर शान्त करो ॥ १० ॥ यह सुनकर श्रीकृष्ण मनमें बड़े दुःखित होतेहुए अर्जुनकी छावनीमें गए और पुत्रशोकसे तडफडाती हुई दुःखिया बहिनको धीरज देने लगे ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णने कहा, कि-अरी वार्ष्णेयि ! तू और तेरी बहू अब शोक मत करो, क्योंकि-हे भीरु बहन ! कालने सब प्राणियोंकी ऐसी ही दशा रची है ॥ १२ ॥ तेरा पुत्र कुलीन धीर वीर क्षत्रिय था उसका रणमें मरण हुआ यह उचितही है, अतः शोक मतकर १३ तेरा पुत्र महारथी धीर वीर और अपने पिताकी समान पराक्रमी था, उसने वीरोंकी अभिलषित उत्तम गति पायी है, यह बहुत अच्छा हुआ ॥ १४ ॥ अभिमन्यु बहुतसे शत्रुओंको जीत उनको मृत्युके पास भेजनेके अनन्तर सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले पुण्यवानोंके अक्षयलोकमें गया है ॥ १५ ॥ सन्त पुरुष जिस गतिको तप, ब्रह्मचर्य, शास्त्रज्ञान और बुद्धिसे पाना चाहते हैं,

स्तव पुत्रकः ॥ १६ ॥ वीरसूर्वीरपत्नी त्वं वीरजा वीरबान्धवा । मा शुचस्तनयं भद्रे गतः स परमां गतिम् ॥ १७ ॥ प्राप्स्यते चाप्यसौ पापः सैन्धवो बालघातकः । अस्यावलेपस्य फलं ससुहृद्गणबान्धवः ॥ १८ ॥ व्युष्टायान्तु वरारोहे रजन्यां पापकर्मकृत् । न हि मोक्ष्यति पार्थात् स प्रविष्टोऽप्यमरावतीम् ॥ १९ ॥ श्वः शिरः श्रोष्यसे तस्य सैन्धवस्य रणे हृतम् । समन्तपञ्चकाद् बाह्यं विशोका भव मा रुदः ॥ २० ॥ क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम् । यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चान्ये शस्त्रजीविनः ॥ २१ ॥ व्यूढोरस्को महाबाहुरनिवर्त्ती रथप्रणुत् । गतस्तव वरारोहे पुत्रः स्वर्गं ज्वरं जहि ॥ २२ ॥ अनुयातश्च पितरं मातृपक्षं च वीर्यवान् । सहस्रशो रिपून् हत्वा हतः शूरो महारथः ॥२३॥ आश्वा-

वही गति तेरे पुत्रको मिली है ॥ १६ ॥ हे कल्याणि ! तू वीरकी माता, वीरकी पत्नी, वीरकी पुत्री और वीरकी बहिन है अतः तू पुत्रका शोक न कर क्योंकि–तेरा पुत्र परलोकमें गया है और उसने सद्गति पायी है ॥ १७ ॥ और बालहत्या करनेवाला पापी जयद्रथ भी इस पापके फलको मित्रों और बन्धुबान्धवों सहित भोगेगा ॥ १८ ॥ हे सुन्दराङ्गी ! आजकी रात बीतनेपर वह पापी यदि अमरावतीमें जाकर छुपेगा, तो भी अर्जुन उसे जीवित नहीं छोड़ेगा ॥१९॥ कल तू यह सुनेगी, कि–जयद्रथका कटा हुआ शिर स्यमन्तपञ्चकसे बाहर रणभूमिमें लुढक रहा है ॥ २० ॥ क्षत्रियके धर्मका पालन कर अभिमन्युने शूर वीरोंकी गति पाई है, ऐसी गतिके लिये दूसरे शस्त्रजीवी ललचाते हैं ॥ २१ ॥ मोटे कंधेवाला, महाबाहु रणमेंसे पीछेको न हटनेवाला, रथोंको मसलनेवाला तेरा पुत्र अभिमन्यु स्वर्गको गया है, अतः हे सुन्दरांगी ! तू शोक न कर ॥ २२ ॥ अभिमन्यु माता और पिताका पक्ष लेनेवाला था, वह महारथी सहस्रों शत्रुओंको

पय स्नुषां राज्ञि मा शुचः क्षत्रिये भृशम्। श्वः प्रियं सुमहच्छ्रुत्वा विशोका भव नन्दिनि ॥ २४ ॥ यत् पार्थेन प्रतिज्ञातं तत्तथा न तदन्यथा। चिकीर्षितं हि ते भर्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम् ॥ २५ ॥ यदि च मनुजपन्नगाः पिशाचा रजनीचराः पतगाः सुरासुराश्च। रणगतमभियान्ति सिन्धुराजं न स भविता सह तैरपि प्रभाते ॥ २६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्व प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्रा-
श्वासने सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

सञ्जय उवाच। एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः। सुभद्रा पुत्रशोकार्त्ता विललाप सुदुःखिता ॥ १ ॥ हा पुत्र मम मन्दायाः कथमेत्यासि संयुगम्। निधनं प्राप्तवांस्तात पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ २ ॥ कथमिन्दीवरश्यामं सुदंष्ट्रं चारुलोचनम्। मुखं

मारकर मारागया है ॥ २३ ॥ हे राजपुत्रि ! हे क्षत्रिये ! तू बहू उत्तराको धीरज दे और बहुत शोक न कर हे नन्दिनि ! तू कल बड़ी प्रिय और आनन्दकी बात सुनकर शोकरहित होजायगी २४ अर्जुनने जैसी प्रतिज्ञा की है वैसाही होगा, उसके विपरीत नहीं होगा क्योंकि तेरे पतिका कर्त्तव्य कभी निष्फल नहीं होता है २५ यदि मनुष्य, सर्प, पिशाच, राक्षस, पक्षी, देवता और असुर भी रणमें आयेहुए जयद्रथकी रक्षा करेंगे तो उनको भी साथमें लेकर जयद्रथ कल सवेरे माराजायगा ॥ २६ ॥ सतत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७७ ॥ ॥ छ ॥ छ

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! महात्मा केशवके इन वचनोंको सुनतेही पुत्रशोकसे व्याकुल हुई दुखिया सुभद्रा करुणाजनक स्वरसे विलाप करने लगी, कि-॥ १ ॥ हे तात ! तू तो अपने पिताकी समान पराक्रमी था, तो भी मुझ मन्दभागिनीका पुत्र रणमें कैसे मरगया ॥ २ ॥ हे वत्स ! कमलकी समान श्याम,

ते दृश्यते वत्स गुण्ठितं रणरेणुना ॥ ३ ॥ नूनं शूरं निपतितं त्वां पश्यन्त्यनिवर्तिनम् । सुशिरोग्रीवबाह्वंसं व्यूढोरस्कं नतोदरम् ४ चारूपचितसर्वाङ्गं स्वक्षं शस्त्रक्षताचितम् । भूतानि त्वां निरीक्षन्ते नूनं चन्द्रमिवोदितम् ॥ ५ ॥ शयनीयं पुरा यस्य स्पर्ध्यास्तरणसंवृतम् । भूमावद्य कथं शेषे विप्रविद्धः सुखोचितः ॥ ६ ॥ योऽन्वास्यत पुरा वीरो वरस्त्रीभिर्महाभुजः । कथमन्वास्यते सोऽद्य शिवाभिः पतितो मृधे ॥ ७ ॥ योऽस्तूयत पुरा हृष्टैः सूतमागधबन्दिभिः । सोऽद्य क्रव्याद्गणैर्घोरैर्विनदद्भिरुपास्यते । पाण्डवेषु च नाथेषु वृष्णिवीरेषु वा विभो । पञ्चालेषु च वीरेषु हतः केनास्यनाथवत् ॥ ९ ॥ अतृप्तदर्शना पुत्र दर्शनस्य तवानघ । मन्दभाग्या

सुन्दर दाँतोंवाला और रमणीक नेत्रोंवाला तेरा मुख हा ! आज रणकी धूलिसे भराहुआ (कैसा) दीखता होगा ? ॥ ३ ॥ संग्राममें सामने बढ़कर लड़नेवाला सुन्दर शिर, ग्रीवा, भुजा, कंधे और पुष्ट वक्षःस्थल वाले तथा पतले पेटवाले गिरेहुए तुझ वीर अभिमन्युको निश्चय ही सब प्राणी देख रहे होंगे ॥ ४ ॥ रे रे ! सब प्राणी, पुष्ट और सुन्दरतायुक्त सब अङ्गोंवाले, सुन्दर नेत्रोंवाले, शस्त्रोंके प्रहारसे शोभा पातेहुए और उदय होतेहुए चन्द्रमाकी समान मुखचन्द्रवाले तुझे रणभूमिमें पडाहुआ देखते हैं ॥५॥ हे पुत्र ! तू पहिले स्पर्धा करने योग्य बिछौनेके पलँग पर सोता था हा ! सुखके भोगनेके योग्य तू आज शस्त्रोंसे बिधकर पृथ्वीपर कैसे सोता होगा ॥ ६ ॥ हा ! जिस महावीर महाभुज की पहिले श्रेष्ठ स्त्रियें सेवा करती थीं, आज रणमें पड़ेहुए उसकी गिदड़ियें सेवा कररही हैं ॥ ७ ॥ सूत, मागध और वन्दिजन गीत गाकर जिसकी स्तुति किया करते थे, आज भयानक राक्षस, गर्जकर उसकी उपासना कररहे हैं ॥ ८ ॥ ओ समर्थ पुत्र ! पाण्डव, वीर वृष्णि और वीर पाञ्चाल राजे आदि

गमिष्यामि यमक्षयम् ॥ १० ॥ विशालाक्षं सुकेशान्तं चारुवाक्यं सुगन्धि च । तव पुत्र कदा भूयो मुखं द्रक्ष्यामि निर्व्रणम् ॥ ११ ॥ धिग्बलं भीमसेनस्य धिक् पार्थस्य धनुष्मताम् । धिग्वीर्यं वृष्णिवीराणां पञ्चालानाञ्च धिग्बलम् ॥ १२ ॥ धिक्केकयांस्तथा चेदीन् मत्स्यांश्चैवाथ सृञ्जयान् । ये त्वां रणगतं वीरं न शेकुरभिरक्षितुम् ॥ १३ ॥ अद्य पश्यामि पृथिवीं शून्यामिव हतत्विषम् । अभिमन्युमपश्यन्ती शोकव्याकुललोचना ॥ १४ ॥ स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः । कथं त्वातिरथं वीरं द्रक्ष्याम्यद्य निपातितम् ॥ १५ ॥ एह्येहि तृषितो वत्स स्तनौ पूर्णौ पिबाशु मे । अङ्कमारुह्य मन्दाया ह्यतृप्तायाश्च दर्शने ॥ १६ ॥ हा

रक्षकोंके होतेहुए भी तुझे अनाथकी समान किसने मारडाला? हे निर्दोष पुत्र ! मैं तुझे देखते२ तृप्त नहीं हुई थी, कि-तू मरगया अब मन्दभाग्या मैं तेरे दर्शनके लिये अवश्यही यममन्दिरमें आती हूँ ॥ १० ॥ हे पुत्र ! चौंडे नेत्र, घुँघराले बाल, सुन्दर वाक्य और सुगन्धिवाले तथा घावरहित तेरे मुखको मैं फिर कब देख सकूँगी ? ॥ ११ ॥ भीमसेनके बलको धिक्कार है, अर्जुनके धनुषधारीपनेके धिक्कार है, वृष्णिवीरोंके बलको और पंचालोंके बलको धिक्कार है ॥ १२ ॥ धिक्कार है केकय, चेदि, मत्स्य और सृञ्जयोंको, कि-जो रणमें खड़ेहुए तुझसे वीरकी भी रक्षा न करसके ॥ १३ ॥ हा ! अभिमन्युके बिना देखे मुझे पृथिवी सूनी और कान्तिहीनसी लगती है और (हे भाई कृष्ण ! अभिमन्युको बिना देखे) मेरे नेत्र शोकसे व्याकुल होरहे हैं ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णकी बहनके पुत्र और अर्जुनके पुत्र अतिरथी तुझ वीरको मैं भूमिमें पडाहुआ कैसे देखूँगी ? ॥ १५ ॥ हे बेटा ! तुझे पियास लगी होगी और यहाँ आ, तुझे देखनेको ललचातीहुई अपनी मंदभागिनी माताकी गोदमें बैठकर इन दूधसे भरेहुए स्तनोंको

वीरदृष्टो नष्टश्च धनं स्वप्न इवासि मे । अहो ह्यनित्यं मानुष्यं जलबुद्बुदचञ्चलम् ॥ १७ ॥ इमां ते तरुणीं भार्यां तवाधिभिरभिप्लुताम् । कथं सन्धारयिष्यामि विवत्सामिव धेनुकाम् ॥ १८॥ अहो ह्यकाले प्रस्थानं कृतवानसि पुत्रक । विहाय फलकाले, मां सुगृद्धां तव दर्शने ॥१९॥ नूनं गतिः कृतांतस्य प्राज्ञैरपि सुदुर्विदा । यत्र त्वं केशवे नाथे सग्रामेऽनाथवद्धतः ॥२०॥ यज्वनां दानशीलानां ब्राह्मणानां कृतात्मनाम्।चरितब्रह्मचर्याणां पुण्यतीर्थावगाहिनाम् २१ कृतज्ञानां वदान्यानां गुरुशुश्रूषिणामपि । सहस्रदक्षिणानाञ्च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ २२ ॥ या गतिर्युध्यमानानां शूराणामनिवर्त्तिनाम् । हत्वारीन्निहतानां च संग्रामं ताङ्गतिं व्रज ॥ २३ ॥ गोसहस्रप्रदातृणां क्रतुदानाञ्च या गतिः । नैवेशिकं चाभिगतं ददतां

शीघ्रतासे पी ॥ १६ ॥ ओः वीरपुत्र ! स्वप्नके धनकी समान तू मुझ दर्शन देकर छिपगया, अरे ! मनुष्यका जन्म जलके बुलबुलेकी समान अस्थिर है ॥ १७ ॥ और बेटा ! बिना बछड़ेकी गौकी समान तेरे विरहके शोकसे विह्वल हुई तेरी इस तरुण भार्याको मैं कैसे शान्ति दूँ ॥ १८ ॥ अरे बेटा ! तेरी अभागिनी माता इस समय तेरे देखनेको आतुर थी, उसको कुसमयमें त्यागकर तू क्यों चलागया ? ॥ १९ ॥ वास्तवमें कालकी गतिको विद्वान् भी नहीं जानसकते, तेरे ऊपर कृष्णसे सहायक थे, तबभी तू अनाथकी समान मारागया ? ॥ २० ॥ हे पुत्र ! यज्ञ करनेवाले, आत्मज्ञानी ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले, पुण्यतीर्थोंमें स्नान करनेवाले, कृतज्ञ, उदार, गुरुसेवक और सहस्रोंकी दक्षिणा देनेवालोंकी जो गति होती है, वही गति तेरी हो ॥ २१-२२ ॥ संग्राममें पीठ न दिखाकर लड़नेवाले वीर शत्रुओंको मारनेके अनन्तर मारे जाकर जिस गतिको पाते हैं तेरी वही गति हो ॥२३॥ हे पुत्र ! तुझै वह गति मिले जो गति सहस्रों गौदान देनेवाले,

या गतिः शुभा ॥२४॥ ब्राह्मणेभ्यः शरण्येभ्यो निधिं निदधता च या। या चापि न्यस्तदण्डानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २५ ॥ ब्रह्मचर्येण यां यान्ति मुनयः संशितव्रताः। एकपत्न्यश्च यां यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २६ ॥ राज्ञां सुचरितैर्या च गतिर्भवति शाश्वती। चातुराश्रमिणां पुण्यैः पावितानां सुरक्षितैः ॥ २७ ॥ दीनानुकम्पिनां या च सततं संविभागिनाम्। पैशुन्याच्च निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २८ ॥ व्रतिनां धर्मशीलानां गुरुशुश्रूषिणामपि। अमोघातिथिनां या च तां गतिं व्रज पुत्रक ॥२९॥ कृच्छ्रेषु या धारयतामात्मानं व्यसनेषु च। गतिः शोकाग्निदग्धानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३० ॥ मातापित्रोश्च शुश्रूषां कल्पयन्तीह

यज्ञका फल देनेवाले, सामग्री सहित घरका दान करनेवाले, शरणमें आएहुए ब्राह्मणोंको धनका भण्डार सौंप देनेवाले और संन्यासियोंकी होती है ॥ २४–२५ ॥ हे पुत्र ! व्रतधारी मुनि ब्रह्मचर्यसे जो गति पाते हैं पतिव्रता स्त्रियें जिस पुण्यमयी गतिको पाती हैं, वह गति तुझे मिले ॥२६ ॥ सदाचारी राजाओंकी जो स्थिर गति होती है और पवित्र चार आश्रम वालोंको पुण्यमय सुकृत्योंके पालनेसे जो गति मिलती है, दीनों पर दया करनेवाले और नित्य समान भाग बाँटकर देनेवालोंकी जो गति होती है और चुगलीसे बचनेवाले पुरुष जिस गतिको पाते हैं, हे पुत्र ! वही गति तेरी हो ॥ २७ ॥ २८ ॥ धर्मशाली, व्रतधारी, गुरुओं की सेवा करनेवाले और जिनके द्वारसे अतिथि निराश नहीं जाता है उनकी जो गति होती हो वही गति तेरी हो ॥ २९ ॥ हे पुत्र ! आपत्तिके समय और संकटोंके समय जो शोककी अग्नि से जलने पर भी अपने आत्माको धीरजसे रोके रहते हैं उनकीसी गति तेरी भी हो ॥ ३० ॥ जो सदा माता पिताकी सेवा करते रहते हैं और अपनीही स्त्रीसे प्रेम करते हैं उनकी जो गति होती

ये सदा। स्वदारनिरतानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ ३१ ॥ ऋतुकाले स्वकां भार्यां गच्छतां या मनीषिणाम्। परस्त्रीभ्यो निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३२ ॥ साम्नाये सर्वभूतानि पश्यन्ति गतमत्सराः। नारुन्तुदानां क्षमिणां या गतिस्तामवाप्नुहि ३३ मधुमांसनिवृत्तानां मदाद्दम्भात्तथाऽनृतात्। परोपतापत्यक्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३४ ॥ ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञानतृप्ता जितेन्द्रियाः। यां गतिं साधवो यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३५ ॥ एवं विलपतीं दीनां सुभद्रां शोककर्शिताम्। अन्वपद्यत पाञ्चाली वैराटीसहिता तदा ॥ ३६ ॥ ताः प्रकामं रुदित्वा च विलप्य च सुदुःखिताः। उन्मत्तवत्तदा राजन् विसंज्ञा न्यपतन् क्षितौ ॥३७॥ सोपचारस्तु कृष्णोऽथ दुःखितां भृशदुःखितः। सिक्त्वाम्भसा समा-

---

है वही गति तेरी हो ॥ ३१ ॥ दूसरेकी स्त्रियोंसे बचे रहनेवाले और अपनी स्त्रीसे भी ऋतुकालमें ही समागम करनेवालोंकी गतिको तू प्राप्त हो ॥ ३२ ॥ मत्सरताशून्य पुरुष सबको एकसा देखनेसे जिस गतिको पाते हैं और क्षमावान् तथा दूसरोंसे मर्मभेदी बात न कहनेवाले जिस गतिको पाते हैं, उसही गतिको तू प्राप्त हो ॥ ३३ ॥ मद्य, मांस, मद, झूंठ और अहङ्कारसे दूर रहनेवाले तथा दूसरोंको कष्ट देनेका विचार भी न करनेवाले पुरुषोंकी गति तुम्हैं मिले ॥ ३४ ॥ लज्जाशील, सकल शास्त्रोंके पारगामी, ज्ञानसे ही तृप्त रहनेवाले जितेन्द्रिय साधुपुरुषकीसी तेरी गति हो ॥ ३५ ॥ शोकसे दुबलीहुई सुभद्रा तो इस प्रकार विलख रही थी कि–इतनेमें ही तहाँ विराटराजकी पुत्री उत्तरा और द्रौपदी आपहुंचीं ॥ ३६ ॥ बडे दुःखको भोगती हुईं वे तीनों बहुतही रुदन करके और उन्मत्तकी समान विलाप करके मूर्छित हो पृथ्वीमें गिरपडीं ॥ ३७ ॥ यह देखकर कृष्णको बडा दुःख हुआ और उन्होंने जल छिडककर सुभद्राको सचेत किया

श्वास्य तत्सुहृदां हितं वचः ॥ ३८ ॥ निःसंज्ञकल्पां रुदतीं मर्मविद्धां प्रवेपतीम् । भगिनीं पुण्डरीकाक्ष इदं वचनमब्रवीत् ३९ सुभद्रे मा शुचः पुत्रं पाञ्चाल्याश्वासयोत्तराम् । गतोऽभिमन्युः प्रथितां गतिं क्षत्रियपुङ्गवः ॥ ४० ॥ ये चान्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने । सर्वे ते तां गतिं यान्तु अभिमन्योर्यशस्विनः ॥ ४१ ॥ कुर्यामेतद्वयं कर्म क्रियासुः सुहृदश्च नः । कृतवान् यादृगद्यैकस्तव पुत्रो महारथः ॥ ४२ ॥ एवमाश्वास्य भगिनीं द्रौपदीमपि चोत्तराम् । पार्थस्यैव महाबाहुः पार्श्वमागादरिन्दमः ॥ ४३ ॥ ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान् कृष्णो बन्धूंस्तथार्जुनम् । विवेशान्तःपुरे राजंस्ते च जग्मुर्यथालयम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्रा-
विलापे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

और फिर हितकारी वचन कहनेलगे ॥ ३८ ॥ मूर्छितसी, और जिसको मर्मवेधी पीडा पहुंची है ऐसी रोतीहुई अपनी बहिन सुभद्रासे श्रीकृष्ण यह कहनेलगे, कि–॥ ३९ ॥ अरी सुभद्रा ! तू अब शोक न कर, हे पाञ्चाली ! तू उत्तराको धीरज दे, क्षत्रियों में श्रेष्ठ अभिमन्युने शुभगति पाई है ॥ ४० ॥ हे वरानने! मैं यह चाहता हूँ, कि–हमारे कुलमें और भी जो मनुष्य हैं, वे भी यशस्वी अभिमन्युकी गतिको पावैं ॥ ४१ ॥ तेरे महारथी अकेले पुत्र ने आज जैसा काम किया है, ऐसाही काम हमारे सब मित्र और हम करेंगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार बहिन, द्रौपदी और सुभद्राको धीरज देकर महाबाहु अरिन्दम श्रीकृष्ण अर्जुनके ही पास चले आये ॥ ४३ ॥ और राजाओंसे, बन्धुओंसे तथा अर्जुनकी आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण अर्जुनके तम्बूमें चलेगए और अन्य राजे तथा पाण्डव भी अपने २ डेरोंमें चलेगए ॥ ४४ ॥ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सञ्जय उवाच । ततोऽर्जुनस्य भवनं प्रविश्याप्रतिमं विभुः । स्पृष्ट्वाम्भः पुण्डरीकाक्षः स्थण्डिले शुभलक्षणे ॥ १ ॥ सन्तस्तार शुभां शय्यां दर्भैर्वैदूर्यसन्निभैः । ततो माल्येन विधिवल्लाजैर्गन्धैः सुमङ्गलैः ॥ २ ॥ अलञ्चकार तां शय्यां परिवार्यायुधोत्तमैः । ततः स्पृष्टोदके पार्थे विनीताः परिचारकाः ॥ ३ ॥ दर्शयन्तोन्तिके चक्रुर्नैशं त्रैयम्बकं वलिम् । ततः प्रीतमनाः पार्थो गन्धमाल्यैश्च माधवम् ॥ ४ ॥ अलंकृत्योपहारन्तं नैशं तस्मै न्यवेदयत् । स्मयमानस्तु गोविन्दः फाल्गुनं प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥ सुप्यतां पार्थ भद्रन्ते कल्याणाय व्रजाम्यहम् । स्थापयित्वा ततो द्वास्थान् गोप्तॄंश्चात्तायुधान्नरान् ॥ ६ ॥ दारुकानुगतः श्रीमान् विवेश शिविरं स्वकम् । शिश्ये च शयने शुभ्रे वहुकृत्यं विचिन्तयन् ॥ ७ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र! व्यापक तथा कमलकी समान नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण अर्जुनके अनुपम राजभवनमें गए, तहाँ पहुंच कर उन्होंने आचमन किया और शुभ लक्षणोंवाले चौंतरे पर वैदूर्यकी समान कुश विछाकर उसकी शय्या वनाई, तदनन्तर शास्त्रानुसार मांगलिक गन्धमाल्यसे और अक्षतोंसे उसकी रक्षा के लिये उसके चारों ओर उत्तम शस्त्र रखदिये, तदनन्तर अर्जुन भी आचमन करके पवित्र होगया तव विनीत स्वभाववाले सेवकोंने त्रिनेत्र महादेवजीको अर्पण करनेके लिये रक्खाहुआ वलि लाकर देदिया, अर्जुनने प्रसन्नमनसे गन्धपुष्पोंके द्वारा श्रीकृष्णको अलंकृत करके रात्रिमें दीजाने वाली वलि शिवको अर्पण करदी. तदनन्तर श्रीकृष्णने अर्जुनसे मुस्कराते२ कहा, कि-॥ १-५ ॥ हे अर्जुन! अव तू सोजा, तेरा कल्याण हो मैं अव तेरा कल्याण करनेको जाता हूँ, शस्त्रधारी रक्षकोंको अर्जुन की छावनीके द्वार पर खडा करके ॥ ६ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण दारुकको साथमें ले अपने तंवूमें चलेगए और वहुतसी वातोंको

पार्थाय सर्वं भगवाञ्छोकदुःखापहं विधिम्। व्यदधात् पुण्डरीकाक्षस्तेजोद्युतिविवर्धनम् ॥ ८ ॥ योगमास्थाय युक्तात्मा सर्वेषामीश्वरेश्वरः। श्रेयस्कामः पृथुयशा विष्णुर्जिष्णुप्रियङ्करः ॥ ९ ॥ न पाण्डवानां शिबिरे कश्चित् सुष्वाप तां निशाम्। प्रजागरः सर्वजनं ह्याविवेश विशाम्पते ॥ १० ॥ पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञातो महात्मना। सहसा सिन्धुराजस्य वधो गाण्डीवधन्वना ११ तत् कथं नु महाबाहुर्वासविः परवीरहा। प्रतिज्ञां सफलां कुर्यादिति ते समचिन्तयन् ॥ १२ ॥ कष्टं हीदं व्यवसितं पाण्डवेन महात्मना। स च राजा महावीर्यः पारयत्वर्जुनः सताम् ॥१३॥ पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञा महती कृता। भ्रातरश्चापि विक्रान्ता बहुलानि बलानि च ॥ १४ ॥ धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सर्वं तस्मै निवेदि-

---

विचारते२ शय्या पर लेटगए ॥ ७ ॥ तदनन्तर कुछ देर निद्रा लेकर सबके महेश्वर अर्जुनका कल्याण करनेकी इच्छावाले, विशालकीर्त्ति योगिराज भगवान् विष्णु (शय्या परसे) उतर कर अर्जुनके लिये योग धारणकर उसके शोक तथा दुःखको दूर करने वाले तथा प्रताप और तेजको बढ़ानेवाले कार्यको करने लगे ॥ ८–९ ॥ हे राजन् ! उस रातको पाण्डवोंकी छावनीमें कोई नहीं सोया, सबने जागते२ ही रात बिता दी ॥ १० ॥ वे विचारते थे. कि–महात्मा गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनने पुत्रशोकसे सन्तप्त होकर एकाएकी सिंधुराजका वध करनेकी प्रतिज्ञा करली है, और महाबाहु. वीर शत्रुओंका नाश करनेवाला अर्जुन उस प्रतिज्ञाको कैसे पूरी करसकेगा ? ॥ ११–१२ ॥ महात्मा अर्जुनने बडा कठिन प्रण किया है और जयद्रथ भी महाबली है, तो भी हे ईश्वर ! ऐसा करो, कि–अर्जुन उसको पूरा कर लेय ॥ १३ ॥ पुत्रशोकसे सन्तप्त होतेहुए अर्जुनने बड़ाभारी प्रतिज्ञा की है, परन्तु जयद्रथके भाई (सहायक) भी बड़े बली हैं और सेना भी बहुत

तम् । स हत्वा सैन्धवं संख्ये पुनरेतु धनञ्जयः ॥ १५ ॥ जित्वा रिपुगणांश्चैव पारयन्नर्जुनो व्रतम् । श्वोऽहत्वा सिन्धुराजं वै धूमकेतुं प्रवेक्ष्यति ॥ १६ ॥ न ह्यशक्यानृतं कर्तुमलं पार्थो धनञ्जयः ॥ धर्मपुत्रः कथं राजा भविष्यति मृतेऽर्जुने ॥ १७ ॥ तस्मिन् हि विजयः कृत्स्नः पाण्डवेन समाहितः । यदि नोस्ति कृतं किञ्चिद्यदि दत्तं हुतं यदि ॥ १८ ॥ फलेन तस्य सर्वस्य सव्यसाची जयत्वरीन् । एवं कथयतां तेषां जयमाशंसतां प्रभो ॥ १९ ॥ कृच्छ्रेण महता राजन् रजनी व्यत्यवर्त्तत । तस्या रजन्या मध्ये तु प्रतिबुद्धो जनार्दनः ॥ २० ॥ स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्यभाषत । अर्जुनेन प्रतिज्ञातमार्त्तेन हतबन्धुना ॥ २१ ॥ जयद्रथं वधिष्यामि श्वोभूत इति दारुक । तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा मन्त्रि-

है ॥ १४ ॥ धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने भी वह सब बात जयद्रथसे कहदी है, कि–कलको अर्जुन रणमें सिंधुराजका नाश करके और शत्रुओंको जीतकर अपना व्रत पूरा करके ही लौटे तो ठीक हो सकता है यदि वह कल जयद्रथको न मारसकेगा तो अग्निमें प्रवेश करके मरजायगा ॥ १५–१६ ॥ अर्जुन अपनी प्रतिज्ञाके भंगको नहीं सहसकेगा, अर्जुनके मरजाने पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर कैसे जियेंगे ?॥१७॥ युधिष्ठिरने अपनी विजयका पूरा आधार अर्जुनके ही ऊपर रक्खा है यदि हमने शुभकर्म किये हों, दान किया हो, अग्निमें होम किया हो तो उन सब पुण्योंके फलसे सव्यसाची अर्जुन शत्रुओंका पराजय करे, हे प्रभो ! उनके हितैषियोंने इसप्रकार अर्जुनकी विजयकी कामना करते२ सारी रात दुःखमें ही बितादी ॥ १८–२० ॥ अर्धरात्रिके समय अर्जुनकी प्रतिज्ञाका स्मरण कर श्रीकृष्णने दारुकसे कहा, कि–पुत्रके मारे जानेसे व्याकुलहुए अर्जुनने प्रतिज्ञाकी है, कि–॥२१॥ मैं कल सूर्यास्तसे पहिले जयद्रथको मारडालूँगा हे दारुक ! दुर्यो-

भिर्मन्त्रयिष्यति ॥२२॥ यथा जयद्रथं पार्थो न हन्यादिति संयुगे । अक्षौहिण्यो हि ताः सर्वा रक्षिष्यन्ति जयद्रथम् ॥ २३ ॥ द्रोणश्च सहपुत्रेण सर्वास्त्रविधिपारगः । एको वीरः सहस्राक्षो दैत्यदानवदर्पहा ॥ २४ ॥ सोऽपि तत्रोत्सहेताजौ हन्तुं द्रोणेन रक्षितम् । सोहं श्वस्तत् करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोर्ज्जुनः ॥ २५ ॥ अप्राप्तेऽस्तन्दिनकरे हनिष्यति जयद्रथम् । न हि दारा न मित्राणि ज्ञातयो न च बान्धवाः ॥ २६ ॥ कश्चिदन्याः प्रियतराः कुन्तीपुत्रान्मयार्जुनात् । अनर्जुनमिमं लोकं मुहूर्त्तमपि दारुक ॥ २७ ॥ उदीक्षितुं न शक्तोहं भविता न च तत्तथा । अहं विजित्य तान् सर्वान् सहसा सहयद्विपान् ॥ २८ ॥ अर्जुनार्थे हनिष्यामि सकर्णान् ससुयोधनान् । श्वो निरीक्षन्तु मे वीर्यं त्रयो लोका महाहवे ॥ २९ ॥ धनधन यह सुनकर किसप्रकार अर्जुन युद्धमें जयद्रथको न मारसके इस विषयमें मन्त्रियोंसे सलाह करेगा, उसकी सब अक्षौहिणी सेनाएं जयद्रथकी रक्षा करेंगी ॥२२–२३॥ सब प्रकारकी अस्त्रविधियोंमें पारङ्गत द्रोणाचार्य भी अश्वत्थामाको साथमें रखकर जयद्रथकी रक्षा करेंगे, दैत्य और दानवोंके घमण्डका खण्डक इक्कड वीर इन्द्रभी द्रोणकी छायामें रहनेवाले पुरुषको संग्राममें नहीं मारसकता, दूसरेकी तो बातही क्या? परन्तु कलमें ऐसी व्यवस्था करूँगा, कि–कुन्तीपुत्र अर्जुन सूर्यास्तसे पहले ही जयद्रथको मार ले ॥ २४–२५ ॥ हे दारुक! मुझे कुन्तीपुत्रकी समान स्त्री, मित्र जातिवाले और बान्धव या और कोई भी अधिक प्यारे नहीं हैं, हे दारुक! मैं अर्जुनरहित इस लोकको क्षण भरके लिये भी नहीं देख सकता अर्थात विना अर्जुनके मैं क्षण भरभी नहीं जीवित नहीं रहसकता और अर्जुन मर भी नहीं सकता, मैं अर्जुनके लिये सब शत्रुओंको हाथी घोड़े सहित जीतकर कर्णसहित और दुर्योधन सहित सबोंको मारडालूँगा, कल तीनों लोक

ञ्जयार्थे समरे पराक्रान्तस्य दारुक । श्वो नरेन्द्रसहस्राणि राजपुत्रशतानि च ॥३०॥ साश्वद्विपरथान्याजौ विद्रविष्यामि दारुक । श्वस्ताञ्चक्रप्रमथितां द्रक्ष्यसे नृपवाहिनीम् ॥ ३१ ॥ मया क्रुद्धेन समरे पाण्डवार्थे निपातिताम् । श्वः सदेवाः सगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ३२ ॥ ज्ञास्यन्ति लोकाः सर्वे मां सुहृदं सव्यसाचिनः । यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्तं चानु स मामनु ॥ ३३ ॥ इति सङ्कल्प्यतां बुद्ध्या शरीरार्धं ममार्जुनः । यथा त्वं मे प्रभातायामस्यां निशि रथोत्तमम् ॥ ३४ ॥ कल्पयित्वा यथाशास्त्रमादाय व्रज संयतः । गदां कौमोदकीं दिव्यां शक्तिं चक्रं धनुः शरान् ॥ ३५ ॥ आरोप्य वै रथे सूत सर्वोपकरणानि च । स्था-

महारणमें मेरे पराक्रमको देखें ॥ २६-२९ ॥ हे दारुक ! कल मैं अर्जुनके लिये पराक्रम करके घोड़े हाथी और रथों सहित सहस्रों राजे और सैंकड़ों राजकुमारोंको रणभूमिसे भगादूँगा, हे दारुक! कल तू यह देखेगा, कि–मैं पाण्डवोंके लिये बड़ी भारी राजाओंकी सेनाओंको क्रोधमें भर चक्रसे मार२कर भगा रहा हूँ, कल गन्धर्वों-सहित देवता, पिशाच, सर्प, राक्षस तथा सब लोग यह जानेंगे, कि–मैं अर्जुनका मित्र हूँ, जो अर्जुनसे द्वेष करते हैं वे मुझसे ही द्वेष करते हैं और जो अर्जुनके अनुकूल हैं वे मेरे अनुकूल हैं ३०-३३ इसप्रकार बात चीत करके श्रीकृष्णने कहा, कि–हे दारुक! अर्जुन तो मेरा आधा शरीर है; अतः आजकी रात बीतने पर तू प्रातःकाल शीघ्रतासे तयार होजाना और युद्धशास्त्रकी विधिके अनुसार मेरी कौमोदकी नामकी दिव्य गदा, शक्ति चक्र, धनुष, बाण और दूसरी वस्तुओंको रथमें यथास्थान पर रख देना, इसके पीछे रथको लेकर मेरे पास आना, और हे सूत ! रथके ऊपर ध्वजा पताका आदिको ठीककर लगाना और संग्राममें रथको शोभा देनेवाला गरुडका स्थान भी ठीक२ करदेना, छत्रको भी ठीक २ लगाना

तत्र कल्पयित्वाथ रथोपस्थे ध्वजस्य मे ॥ ३६ ॥ वैनतेयस्य वीरस्य समरे रथशोभिनः । छत्रं जाम्बूनदैर्जालैरर्कज्वलनसप्रभैः ॥ ३७ ॥ विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरश्वानपि विभूषितान् । बलाहकं मेघपुष्पं शैब्यं सुग्रीवमेव च ॥ ३८ ॥ युक्तान् वाजिवरान् यत्तः कवची तिष्ठ दारुक । पाञ्चजन्यस्य निर्घोषमार्षभेणैव पूरितम् ॥ ३९ ॥ श्रुत्वा च भैरवं नादमुपायास्त्वं जवेन माम् । एकान्हाहममर्षञ्च सर्वदुःखानि चैव ह ॥ ४० ॥ भ्रातुः पैतृष्वसेयस्य व्यपनेष्यामि दारुक । सर्वोपायैर्यतिष्यामि यथा बीभत्सुराहवे ॥ ४१ ॥ पश्यतां धार्त्तराष्ट्राणां हनिष्यति जयद्रथम् । यस्य यस्य च बीभत्सुर्वधे यत्नं करिष्यति । आशंसे सारथे तत्र भवितास्य ध्रुवो जयः ॥ ४२ ॥ दारुक उवाच । जय एव ध्रुवस्तस्य कुत एव पराजयः । यस्य त्वं पुरुषव्याघ्र सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ४३ ॥ एवं चैतत् करि-

तथा विश्वकर्माके बनाएहुए सूर्य और अग्निकी समान तेजस्वी दिव्य जालोंसे सजेहुए बलाहक, मेघपुष्प, शैब्य और सुग्रीव नामक घोडोंको रथमें जोतकर और स्वयंभी कवच पहरकर तयार रहना और मेरे बजाएहुए पाञ्चजन्यकी ऋषभकी समान भयानक ध्वनिको सुनतेही तू शीघ्रतासे मेरे पास चलाआना, हे दारुक ! मैं एक दिनमें अपने फुफेरे भाईके शोक और सब कष्टोंको दूर कर दूँगा मैं सब प्रकारसे यह यत्न करूँगा, कि-धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंके देखते रहने पर ही अर्जुन जयद्रथको मारडाले, हे सारथि ! अर्जुन जिस २ का वध करनेका प्रयत्न करेगा, मैं आशा करता हूँ कि उस २ शत्रुके ऊपर वह अवश्य ही विजय पावेगा ३८-४२ दारुकने कहा, कि-उसकी अवश्यही जय होगी, भला जिसके आप सारथी है, उसकी हार कहां ही कैसे सकती है ? ॥ ४३ ॥

ष्यामि यथा मामनुशाससि । सुप्रभातामिमां रात्रिं जयाय विजयस्य हि ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णदारुकसम्भाषणे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

सञ्जय उवाच । कुन्तीपुत्रस्तु तं मन्त्रं स्मरन्नेव धनञ्जयः । प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् मुमोहाचित्यविक्रमः ॥ १ ॥ तन्तु शोकेन सन्तप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम् । आससाद महातेजाः ध्यायन्तं गरुडध्वजः ॥ २ ॥ प्रत्युत्थानञ्च कृष्णस्य सर्वावस्थो धनञ्जयः । न लोपयति धर्मात्मा भक्त्या प्रेम्णा च सर्वदा ॥ ३ ॥ प्रत्युत्थाय च गोविन्दं स तस्मा आसनं ददौ । न चासने स्वयं बुद्धिं बीभत्सुर्व्यदधात्तदा ॥ ४ ॥ ततः कृष्णो महातेजा जानन् पार्थस्य निश्चयम् । कुन्तीपुत्रमिदं वाक्यमासीनः स्थितमब्रवीत् ॥ ५ ॥ मा

आपकी आज्ञाके अनुसार रात बीतकर प्रातःकाल होतेही मैं अर्जुनकी विजयके लिये प्रबन्ध करूँगा ॥ ४४ ॥ उनासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७९ ॥ ॥ छ ॥ ॥

सञ्जयने कहा; कि—अचिन्त्य पराक्रमी कुन्तीपुत्र अर्जुन द्रोण आदिके द्वारा जयद्रथकी रक्षाके विषयका विचार करता२ तथा अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेका विचार करता २ ही सोगया॥१॥ जिसकी ध्वजामें हनुमान विराजते हैं ऐसा अर्जुन शोकसे सन्तप्त होकर प्रतिज्ञा आदिका ध्यान करताहुआ सोरहा उस समय अर्जुनके पास स्वप्नमें ही गरुड़ध्वज श्रीकृष्ण आये॥२॥ धर्मात्मा अर्जुन किसी दशामें भी श्रीकृष्णको भक्ति और प्रेमपूर्वक प्रत्युत्थान दिए विना नहीं रहता था ॥३॥ अतः उसने(स्वप्नमें भी) श्रीकृष्णको खड़े होकर आसन दिया और स्वयं आसन पर बैठनेका विचार नहीं किया सामने ही खड़ा रहा ॥ ४ ॥ आसन पर बैठेहुए महातेजस्वी श्रीकृष्णने अर्जुनके विचारको जानकर खड़ेहुए

विषादे मनः पार्थ कृथाः कालो हि दुर्जयः । कालः सर्वाणि भूतानि नियच्छति परे विधौ ॥ ६ ॥ किमर्थञ्च विषादस्ते तद्ब्रूहि द्विपदां वर । न शोच्यं विदुषां श्रेष्ठ शोकः कार्यविनाशनः ॥ ७ ॥ यत्तु कार्यं भवेत् कार्यं कर्मणा तत् समाचर । हीनचेष्टस्य यः शोकः स हि शत्रुर्धनञ्जय ॥ ८ ॥ शोचन्नन्दयते शत्रून् कर्शयत्यपि वान्धवान् । क्षीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि ॥९॥ इत्युक्तो वासुदेवेन वीभत्सुरपराजितः । आबभाषे तदा विद्वानिदं वचनमर्थवत् ॥ १० ॥ मया प्रतिज्ञा महती जयद्रथवधे कृता । श्वोस्मि हन्ता दुरात्मानं पुत्रघ्नमिति केशव ॥ ११ ॥ मत्प्रतिज्ञाविघातार्थं धार्त्तराष्ट्रैः किलाच्युत । पृष्ठतः सैंधवः कार्यः सर्वैर्गुप्तो महारथैः ॥ १२ ॥ दश चैका च ताः कृष्ण अक्षौहिण्यः सुदुर्जयाः ।

अर्जुनसे कहा, कि—॥ ५ ॥ हे पार्थ ! तू मनमें खेद न कर, काल दुर्जय है, काल सव प्राणियोंको अवश्यभावी कार्यमें लगा देता है ॥ ६ ॥ हे मनुजश्रेष्ठ ! तुझे शोक क्यों होरहा है ? उसका कारण वता, हे विद्वद्वर ! तुझे शोक नहीं करना चाहिये, क्योंकि शोकसे काम नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥ हे धनञ्जय ! तुझे जो काम करना हो उसको कर, जो पुरुष उद्योग तो करते नहीं और शोक करते हैं, उनके लिये वह शोक शत्रुरूप होजाता है ॥ ८ ॥ शोक करताहुआ पुरुष शत्रुओंको प्रसन्न करता है, वन्धुओंको दुर्वल करता है और स्वयं क्षीण होजाता है. अतः तुझको शोक नहीं करना चाहिये ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णके ऐसा कहने पर अपराजित, विद्वान् अर्जुनने यह सार्थक वचन कहा, कि—॥ १० ॥ हे केशव ! मैंने जयद्रथको मारनेके लिये वड़ीभारी प्रतिज्ञाकी है कल मैं अपने पुत्र अभिमन्युके हत्यारे जयद्रथको मारडालूँगा ॥ ११ ॥ परन्तु हे अच्युत ! धृतराष्ट्रके पुत्र मेरी प्रतिज्ञाको भंग करनेके लिये जयद्रथको सवसे पीछे रक्खेंगे और सव महारथी उसकी रक्षा

हतावशेषास्तत्रेमा हन्त माधव संख्यया ॥ १३ ॥ ताभिः परिवृतः संख्ये सर्वैश्चैव महारथैः । कथं शक्येत सन्द्रष्टुं दुरात्मा कृष्ण सैन्धवः ॥ १४ ॥ प्रतिज्ञापारणं चापि न भविष्यति केशव । प्रतिज्ञायां च हीनायां कथं जीवति मद्विधः ॥ १५ ॥ दुःखोपायस्य मे वीर विकांक्षा परिवर्त्तते । द्रुतश्च याति सविता तत एतद् ब्रवीम्यहम् ॥ १६ ॥ शोकस्थानन्तु तच्छ्रुत्वा पार्थस्य द्विजकेतनः । संस्पृश्याम्भस्ततः कृष्णः प्राङ्मुखः समवस्थितः ॥१६॥ इदं वाक्यं महातेजा बभाषे पुष्करेक्षणः । हितार्थं पाण्डुपुत्रस्य सैन्धवस्य वधे कृती ॥ १८ ॥ पार्थ पाशुपतं नाम परमास्त्रं सनातनम् । येन सर्वान् मृधे दैत्यान् जघ्ने देवो महेश्वरः ॥ १९ ॥ यदि तद्विदितं तेद्य श्वो हन्तासि जयद्रथम् । अथाज्ञातं प्रपद्यस्व मनसा वृषभ-

करेंगे ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! ग्यारह अक्षौहिणीमें जो वीर मरनेसे बचे हैं उन सब महारथियोंसे घिराहुआ जयद्रथ कैसे दीखेगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ केशव ! इस दशामें मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कैसे करसकूँगा ? और मुझ सरीखा पुरुष प्रतिज्ञाको भंग करके फिर कैसे जीवित रहसकता है ? ॥१५॥ अतः मुझे कठिनतासे पूर्ण होनेवाली प्रतिज्ञाके पूरा होनेमें सन्देह होता है और (इस ऋतुमें) सूर्य भी अस्त होनेके लिये शीघ्रतासे चलता है, इसलिये भी मैं ऐसा कहता हूँ ॥ १६ ॥ गरुडध्वज श्रीकृष्ण अर्जुनके शोकका कारण सुन आचमन कर पूर्वकी ओरको मुख करके बैठगए ॥ १७ ॥ महातेजस्वी कृतकृत्य कमलनयन श्रीकृष्णने उस पाण्डुपुत्र अर्जुनका हित करनेके लिये और जयद्रथके वधके लिये अर्जुनसे इसप्रकार कहा, कि—॥ १८ ॥ हे पार्थ ! पाशुपत नामका एक प्राचीन और श्रेष्ठ अस्त्र है, उस अस्त्रसे महादेवजीने संग्राममें सब दैत्योंको मारडाला था ॥ १९ ॥ यदि तुझे उस अस्त्रका ज्ञान होजाय तो तू कल जयद्रथको अवश्यही

ध्वजम् ॥ २० ॥ तं देवं मनसा ध्यात्वा जोपमास्स्व धनञ्जय । ततस्तस्य प्रसादात्त्वं भक्तः प्राप्स्यसि तन्महत् ॥ २१ ॥ ततः कृष्णवचः श्रुत्वा संस्पृश्याम्भो धनञ्जयः । भूमावासीन एकाग्रो जगाम मनसा भवम् ॥ २२ ॥ ततः प्रणिहिते ब्राह्मे मुहूर्त्ते शुभलक्षणे । आत्मानमर्जुनोऽपश्यद्गगने सह केशवम् ॥ २३ ॥ पुण्यं हिमवतः पादं मणिमन्तञ्च पर्वतम् । ज्योतिर्भिश्च समाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम् ॥ २४ ॥ वायुवेगगतिः पार्थः खम्भेजे सहकेशवः । केशवेन गृहीतः स दक्षिणे विभुना भुजे ॥ २५ ॥ प्रेक्षमाणो बहून् भावान् जगामाद्भुतदर्शनान् । उदीच्यां दिशि धर्मात्मा सोऽपश्यच्छ्वेतपर्वतम् ॥ २६ ॥ कुबेरस्य विहारे च नलिनीं पद्मभूषिताम् । सरिच्छ्रेष्ठाञ्च ताङ्गङ्गां वीक्षमाणो बहूदकाम् ॥ २७ ॥

मार सकेगा, यदि तुझे उस अस्त्रका ध्यान न हो तो तू मनमें शिवजीका ध्यान कर ॥ २० ॥ हे धनञ्जय ! तू उन महादेवजी का ध्यान कियेहुए चुपचाप बैठा रह तो भगवान् शंकरके प्रसन्न होनेपर तुझे वह महाबाण मिलजायगा ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णकी इस बातको सुनकर अर्जुन आचमन करके भूमिमें बैठगया और एकाग्रचित्तसे शिवजीका ध्यान करनेलगा ॥ २२ ॥ तदनन्तर ध्यानावस्थामें शुभ ब्राह्ममुहूर्तके समय अर्जुनने श्रीकृष्णके साथ अपनेको आकाशमें उडतेहुए देखा ॥ २३ ॥ थोड़ीही देरमें सिद्ध और चारणोंसे सेवित प्रकाशवान् मणिमान् पर्वत और हिमाचल की तलैटी दीखी ॥ २४ ॥ आकाशमें उडते समय प्रभु श्रीकृष्णने अर्जुनका दाहिना हाथ पकड रक्खा था और धर्मात्मा अर्जुन वायुवेगसे श्रीकृष्णके साथही आकाशमें उडा चला जारहा था, अद्भुत दृश्यवाले बहुतसे अलौकिक भावोंको देखता हुआ वह उत्तर दिशाकी ओरको चला, तहाँ श्वेतपर्वत देखा ॥२५–२६॥ आगे बढ़कर कुबेरके विहारस्थानमें कमलोंसे भूषित सरोवरको

सदा पुष्पफलैर्वृक्षैरुपेतां स्फटिकोपलाम् । सिंहव्याघ्रसमाकीर्णां नानामृगसमाकुलाम् ॥२८॥ पुण्याश्रमवतीं रम्यां मनोज्ञाण्डजसेविताम् । मन्दरस्य प्रदेशांश्च किन्नरोद्गीतनादितान् ॥ २९ ॥ हेमरूप्यमयैः शृङ्गैर्नानौषधिविदीपितान् । तथा मन्दारवृक्षैश्च पुष्पितैरुपशोभितान् ॥३०॥ स्निग्धाञ्जनचयाकारं सम्प्राप्तः कालपर्वतम् । ब्रह्मतुङ्गं नदीश्चान्यास्तथा जनपदानपि ॥ ३१ ॥ सतुङ्गं शतशृङ्गं च शर्यातिवनमेव च । पुण्यमश्वशिरः स्थानं स्थानमाथर्वणस्य च ॥ ३२ ॥ वृषदंशश्च शैलेन्द्रं महामन्दरमेव च । अप्सरोभिः समाकीर्णं किन्नरैश्चोपशोभितम् ॥ ३३ ॥ तस्मिन् शैले व्रजन् पार्थः सकृष्णः समवैक्षत । शुभैः प्रस्रवणैर्जुष्टां हेमधातुवि-

---

देखकर अगाध जलवाली, सर्वदा पुष्पों और फलोंवाले वृक्षवाली, स्फटिककेसे पत्थरोंवाली, सिंह और भेड़ियोंसे वसीहुई तथा वहुतसे मृगोंसे भरीहुई, सुन्दर पक्षियोंसे सेवित और पवित्र आश्रमोंवाली गङ्गाजीको देखा और किन्नरोंके संगीतसे गुञ्जारते हुए, सुवर्ण और चान्दीके शिखरोंवाले, नानाप्रकारकी ओषधियोंसे प्रदीप्त, फूलोंसे लदेहुए मन्दारके वृक्षोंसे शोभित मन्दराचलके प्रदेशोंको देखता हुआ चिकने अञ्जनके ढेरकी समान कालपर्वत पर जापहुँचा, आगे चलकर श्रीकृष्णसहित अर्जुनने ब्रह्मतुङ्ग पर्वतको, अनेकों नदियोंको और देशोंको देखा २७-३१ तहाँसे आगे जाकर ऊँचे और सौ शिखरोंवाले पर्वतको शर्याति नाम वनको अश्वशिरा ऋषिके और आथर्वण नामक मुनिके पवित्र आश्रमको देखा ३२ वृषदेश पर्वतपर गया और तहाँसे आगे जाकर अप्सराओं तथा किन्नरोंसे शोभित और तहाँसे पर्वतेन्द्र महामन्दर परगया ३३ तहाँ उसने सुन्दर झरनेवाली, सुवर्ण तथा दूसरी धातुओंसे शोभायमान चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रकाशमान और नगररूपी मालाओंसे शोभित पृथ्वीदेवीको देखा, तथा वह अद्भुत

भूषिताम् ॥ ३४ ॥ चन्द्ररश्मिप्रकाशाङ्गीं पृथिवीं पुरमालिनीम् । समुद्रांश्चाद्भुताकारानपश्यद्बहुलाकरान् ॥ ३५ ॥ वियद्द्यां पृथिवीं चैव तथा विष्णुपदं व्रजन् । विस्मितः सह कृष्णेन क्षिप्तो बाण इवाभ्यगात् ॥ ३६ ॥ ग्रहनक्षत्रसोमानां सूर्याग्न्योश्च समत्विषम् । अपश्यत तदा पार्थो ज्वलन्तमिव पर्वतम् ॥३७॥ समासाद्य तु तं शैलं शैलाग्रे समवस्थितम् । तपोनित्यं महात्मानमपश्यद्वृषभध्वजम् ॥ ३८ ॥ सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानं स्वतेजसा । शूलिनं जटिलं गौरं वल्कलाजिनवाससम् ॥ ३९ ॥ नयनानां सहस्रैश्च विचित्राङ्गं महौजसम् । पार्वत्या सहितं देवं भूतसंघैश्च भास्वरैः ॥ ४० ॥ गीतवादित्रसन्नादैर्हास्यलास्यसमन्वि-

---

दीखने वाले समुद्रोंको बहुतसी खानोंको आकाश, स्वर्ग और पृथ्वीको देखकर विस्मित होता हुआ फेंकेहुए बाणकी समान वेगसे श्रीकृष्णके साथ आगेको बढता चलागया ॥ ३४–३६ ॥ तदनन्तर उसने ग्रह,नक्षत्र,चन्द्रमा,सूर्य और अग्निकी समान प्रकाशवान् एक पर्वतको देखा३७उस पर्वत पर पहुंचकर पर्वतके अग्रभागपर बैठेहुए, सर्वदा तपस्या करनेवाले अपनी कान्तिसे सहस्रों सूर्योंकी समान दिपतेहुए शूल और जटाधारी गोरे वर्ण वल्कल और मृगछालाके वस्त्रवाले, सहस्रों नेत्र होनेसे विचित्र अङ्गोंवाले महाबली भगवान् शिवको देखा,उनके पास पृथिवी और तेजस्वी भूतगण विराजरहे थे वे गीत गातेहुए बाजा बजारहे थे,बडी बड़ी गर्जना करके हास्य और नृत्य करके इधर उधरको गोलाकार घूमकर भुजाओं पर थाप देकर बड़ी गर्जना करतेहुए उनकी सेवा कररहे थे, उनके पवित्र चन्दन लगरहा था, ब्रह्मज्ञानी ऋषि दिव्यस्तुतियोंसे उनकी स्तुति कररहे थे, ऐसे सब प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले वृषभध्वज शंकरका दर्शन करके धर्मात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने शिवजीको देखते ही माथा टेककर प्रणाम किया,

तम् । वल्गितास्फोटितोत्कृष्टैः पुण्यैर्गन्धैश्च सेवितम् ॥ ४१ ॥ स्तूयमानं स्तवैर्दिव्यैर्ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः । गोप्तारं सर्वभूतानामिष्वासधरमच्युतम् ॥ ४२ ॥ वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा जगाम शिरसा क्षितिम् । पार्थेन सह धर्मात्मा गृणन् ब्रह्म सनातनम् ॥ ४३ ॥ लोकादिं विश्वकर्माणमजमीशानमव्ययम् । मनसः परमं योनिं खं वायुं ज्योतिषां निधिम् ॥ ४४ ॥ स्रष्टारं वारिधाराणां भुवश्च प्रकृतिं पराम् । देवदानवयक्षाणां मानवानाञ्च साधनम् ॥ ४५ ॥ योगानां च परं धाम दृष्टं ब्रह्मविदान्निधिम् । चराचरस्य स्रष्टारं प्रतिहर्त्तारमेव च ॥ ४६ ॥ कालकोपं महात्मानं शक्रसूर्यगुणोदयम् । ववन्दे तं तदा कृष्णो वाङ्मनोकर्मबुद्धिभिः ॥४७॥ यं प्रपद्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मपदैषिणः । तमजं कारणात्मानं जग्मतुः शरणं भवम् ॥ ४८ ॥ अर्जुनश्चापि तं देवं भूयो भूयोऽप्यवन्दत ।

तदनन्तर वाणी मन और बुद्धिसे उन सनातन ब्रह्मकी स्तुति करना आरम्भ करदी, कि–तुम जगत्के आदि कारण हो, विश्वकर्मा, अजन्मा, ईशान, अच्युत, मनसे भी पर, कारणमूर्त्ति, आकाश और वायुमूर्त्ति तथा तेजके भण्डाररूप हो ॥ ३८–४४ ॥ तुम मेघके सिरजनहार, पृथ्वीकी परप्रकृतिरूप हो, देव, दानव, यक्ष और मनुष्योंके साधनरूप हो, योगियोंके परम धामरूप ब्रह्मवेत्ताओं को ब्रह्मतत्त्वका खजाना प्रत्यक्ष दिखानेवाले; चराचर जगत्के बनाने और नष्ट करनेवाले हो ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कालकी समान कोप करनेवाले, महाउदार इन्द्रके गुण ऐश्वर्य आदि और सूर्यके गुण प्रताप आदिके उत्पत्तिस्थान तुम ही हो, इस प्रकार मन वाणी तथा बुद्धिसे श्रीकृष्णने स्तुति करके प्रणाम किया ।४७। सूक्ष्म अध्यात्म पदको पानेकी इच्छासे विद्वान् भी जिनकी शरण लेते हैं, उन कारणात्मा; अजन्मा श्रीशंकरकी उन दोनोंने शरण ली ॥ ४८ ॥ अर्जुन भी शिवको सब प्राणियोंका आदिकारण,

ज्ञात्वा तं सर्वभूतादिं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ ४९ ॥ ततस्तावागतौ दृष्ट्वा नरनारायणावुभौ । सुप्रसन्नमनाः शर्वः प्रोवाच प्रहसन्निव ५० स्वागतं वां नरश्रेष्ठावुत्तिष्ठेतां गतक्लमौ । किञ्च वामीप्सितं वीरौ मनसः क्षिप्रमुच्यताम् ॥ ५१ ॥ येन कार्येण सम्प्राप्तौ युवान्तत्साधयामि किम् । व्रियतामात्मनः श्रेयस्तत्सर्वं प्रददानि वाम् ॥५२॥ ततस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युत्थाय कृताञ्जली । वासुदेवार्जुनौ शर्वं तुष्टुवाते महामती ५३ भक्त्या स्तवेन दिव्येन महात्मानावनिन्दितौ ५४ कृष्णार्जुनावूचतुः । नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च । पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ॥ ५५ ॥ महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शान्तये । ईशानाय मखघ्नाय नमोस्त्वन्धकघातिने ५६ कुमारगुरवे तुभ्यं नीलग्रीवाय वेधसे । पिनाकिने हविष्याय सत्याय

तथा भूत, भविष्यत् और वर्तमानका उत्पादक जानकर वारंवार प्रणाम करनेलगा ॥ ४९ ॥ उन दोनों नर नारायणोंको आया हुआ देखकर प्रसन्न हुए शिवने हँसते२ उनसे कहा, कि-५० हे श्रेष्ठ वीरों ! तुम भले आये ! प्रवासकी थकावटको दूर करके खड़े होजाओ और तुम्हारा जो मनोरथ हो उसको शीघ्रही बताओ ॥ ५१ ॥ तुम दोनों जिस कामके लिये आये हो उस कामको मैं पूरा करूँगा, तुम अपना कल्याण करनेवाला वर माँग लो मैं तुमको तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करनेवाला सबही प्रकार का वर दूँगा॥५२॥ श्रीशंकरकी बात सुनकर पवित्र चरित्र वाले, महाबुद्धिमान् श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक दिव्यस्तोत्रसे श्रीशंकरकी स्तुति करनेलगे ॥५३॥५४॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन बोले, कि-भव, शर्व, रुद्र. वरद. पशुओंके पति उग्र और कपर्दीको हम सर्वदा प्रणाम करते हैं ॥ ५५ ॥ महादेव, भीम, त्र्यम्बक, शान्ति, ईशान. दक्षके यज्ञका, विध्वंस करनेवाले और अन्धकासुरको मारनेवाले शिवको हमारा प्रणाम

विभवे सदा ॥ ५७ ॥ विलोहिताय धूम्राय व्याधायानपराजिते । नित्यं नीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥ ५८ ॥ होत्रे पोत्रे त्रिनेत्राय व्याघ्राय वसुरेतसे । अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ॥५९॥ वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे । तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाजिताय च ॥ ६० ॥ विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते । नमो नमस्ते सेव्याय भूतानां प्रभवे सदा ॥ ६१ ॥ ब्रह्मवक्त्राय सर्वाय शङ्कराय शिवाय च । नमोस्तु वाचस्पतये प्रजानां पतये नमः ॥ ६२॥ नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः । नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमृत्यवे ॥६३॥ सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे । नमो हिरण्यवर्णाय हिरण्यकवचाय च । भक्तानुकम्पिने नित्यं सिध्यतां नो वरः प्रभो ॥ ६४ ॥ संजय

है ॥ ५६ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयके पिता, नीलकण्ठ, वेधा, पिनाकी, हविष्यमूर्त्ति, सत्य, सदा व्यापक ऐसे आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ५७ ॥ विलोहित, धूम्र, व्याध, किसीसे न हारेहुए, नीलकेश, शूलधारी, दिव्यनेत्रों वाले, होता, पोता, त्रिनेत्र, व्याघ, वसुरेता, अचिन्त्य, भवानीपति, सब देवताओंसे स्तुति पानेवाले वृषभध्वज, मुण्ड-जटाधारी, ब्रह्मचारी, जलमें तप करनेवाले, ब्रह्मवेत्ता, अजित, विश्वात्मा, विश्वस्रष्टा, विश्वव्यापक, सेवा करने योग्य प्राणियोंके मूलस्थानरूप आपको हम वारम्वार प्रणाम करते हैं ॥ ५८-६१ ॥ ब्रह्मवक्त्र, शर्व, शंकर शिवको नमस्कार है, वाचस्पति और प्रजापति को प्रणाम है ॥ ६२ ॥ विश्वके स्वामीको हम नमस्कार करते हैं, महत्तत्त्वादिके पति, सहस्र शिर और सहस्र भुजाओंवाले. मृत्युरूप शिवको हम प्रणाम करते हैं ॥ ६३ ॥ सहस्र नेत्र और चरणों वाले असंख्यों कर्म करनेवाले आपको प्रणाम है, हिरण्यवर्ण तथा हिरण्यकवचधारी आपको प्रणाम है, भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले आपको प्रणाम

उवाच ॥ एवं स्तुत्वा महादेवं वासुदेवः सहार्जुनः । प्रसादयामास भवं तदा ह्यस्त्रोपलब्धये ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुन-
स्वप्नदर्शने अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

सञ्जय उवाच । ततः पार्थः प्रसन्नात्मा प्राञ्जलिर्वृषभध्वजम् । ददर्शोत्फुल्लनयनः समस्तं तेजसां निधिम् ॥ १ ॥ तञ्चोपहारं सुकृतं नैशं नैत्यकमात्मनः । ददर्श त्र्यंबकाभ्यासे वासुदेवनिवेदितम् २ ततोभिपूज्य मनसा कृष्णं शर्वञ्च पाण्डवः । इच्छाम्यहं दिव्यमस्त्रमित्यभाषत शङ्करम् ॥ ३ ॥ ततः पार्थस्य विज्ञाय वरार्थे वचनं तदा । वासुदेवार्जुनौ देवः स्मयमानोभ्यभाषत ॥ ४ ॥ स्वागतं वां नरश्रेष्ठौ विज्ञातं मनसेप्सितम् । येन कामेन सम्प्राप्तौ भवद्भ्यां

हैं हे प्रभो ! हमारा वर नित्य सिद्ध हो ॥ ६४ ॥ सञ्जयने कहा, कि-इस प्रकार अर्जुन और श्रीकृष्णने अस्त्र पानेके लिये महादेवजीकी स्तुति कर उनको प्रसन्न किया ॥ ६५ ॥ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८० ॥ ॥ छ ॥ छ

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! तदनन्तर प्रसन्न चित्त और हर्षसे खिलरहे हैं नेत्र जिसके ऐसे अर्जुनने हाथ जोड़कर सब तेजोंके निधि भगवान् शंकरकी ओर देखा ॥१॥ नित्य नियमके अनुसार शंकरका रात्रिका बलिदान, जो श्रीकृष्णजीको चढ़ा दिया था, उसको भी श्रीशंकरके पास पड़ा हुआ देखा ॥ २ ॥ तदनन्तर अर्जुनने श्रीकृष्ण और शिवकी मनसे पूजा करके शंकरसे कहा कि-मैं आपसे दिव्य अस्त्र लेना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ अर्जुनकी शस्त्र पानेके लिये प्रार्थनाको सुनकर श्रीशंकरने मुस्कुराते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनसे कहा, कि-॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठों ! आपका आना अच्छा हुआ ! तुम जिस मनोरथकेलिये आये हो, उसको मैंने जानलिया और तुम्हारी चाहीहुई वस्तु मैं तुम्हें दूँगा॥५॥

तं ददाम्यहम् ।५। सरोऽमृतमयं दिव्यामभ्याशे शत्रुसूदनौ । तत्र मे तद्धनुर्दिव्यं शरश्च निहितः पुरा ॥ ६ ॥ येन देवारयः सर्वे मया युधि निपातिताः । तत आनीयतां कृष्णौ सशरं धनुरुत्तमम् ।७। तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ सर्वपारिषदैः सह । प्रस्थितौ तत्सरो दिव्यं दिव्यैश्वर्यशतैर्युतम् ॥ ८ ॥ निर्दिष्टं यद्वृषांकेण पुण्यं सर्वार्थसाधकम् । तौ जग्मतुरसंभ्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ९ ॥ ततस्तौ तत्सरो गत्वा सूर्यमण्डलसन्निभम् । नागमन्तर्जले घोरं ददृशातेर्जुनाच्युतौ ॥ १० ॥ द्वितीयं चापरं नागं सहस्रशिरसंवरम् । वमन्तं विपुला ज्वाला ददृशातेग्निवर्चसम् ॥ ११ ॥ ततः कृष्णश्च पार्थश्च संस्पृश्याम्भः कृताञ्जली । तौ नागावुपतस्थाते नमस्यन्तौ वृषध्वजम् ॥ १२ ॥ गृणन्तौ वेद विद्वांसौ तद् ब्रह्म

हे शत्रुओंका नाश करनेवालो ! पास ही अमृतसे भराहुआ एक दिव्य सरोवर है, पहिले मैंने उसमें दिव्य धनुष और बाण धरदिया था, ॥ ६ ॥ इस धनुष तथा बाणसे मैंने देवताओं के सब शत्रुओंको मार गिराया था, हे अर्जुन हे कृष्ण ! बाणसहित उस श्रेष्ठ धनुषको तुम सरोवरमेंसे निकाललाओ ॥ ७ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन बहुत अच्छा कहकर श्रीशंकरके सब गणोंको साथमें लेकर सैंकड़ों दिव्य ऐश्वर्योंवाले उस दिव्य सरोवरकी ओरको चले ॥ ८ ॥ शिवजीके बताएहुए उस पवित्र और सब प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाले सरोवरकी ओरको ये दोनों नर और नरायण ऋषि जानेलगे ॥ ९ ॥ सूर्यके मण्डलकी समान तेजस्वी उस सरोवर पर पहुँचकर श्रीकृष्ण और अर्जुनने जलके भीतर एक भयानक सर्पको देखा ॥ १० ॥ और दूसरे भी एक साँपको देखा, वह मुखमेंसे अग्निकी लम्बी ज्वालाओंको उगल रहा था तथा उसके सहस्र मस्तक थे ॥ ११ ॥ यह देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों हाथ जोड़कर शिवको प्रणाम करते

शतरुद्रियम् । अप्रमेयं प्रणमतौ गत्वा सर्वात्मना भवम् ॥ १३ ॥ ततस्तौ रुद्रमाहात्म्याद्धित्वा रूपं महोरगौ । धनुर्वाणश्च शत्रुघ्नं तद्द्वन्द्वं समपद्यत ॥ १४ ॥ तौ तज्जगृहतुः प्रीतौ धनुर्वाणं च सुप्रभम् । आजह्रतुर्महात्मानौ ददतुश्च महात्मने । १५॥ ततः पार्श्वाद्वृषाङ्कस्य ब्रह्मचारी न्यवर्त्तत । पिङ्गाक्षस्तपसः क्षेत्रं बलवान्नीललोहितः ॥ १६ ॥ स तद्गृह्य धनुः श्रेष्ठं तस्थौ स्थानं समाहितः । विचकर्षाथ विधिवत् सशरं धनुरुत्तमम् ॥ १७ ॥ तस्य मौर्वीञ्च मुष्टिञ्च स्थानं चालक्ष्य पाण्डवः । श्रुत्वा मन्त्रं भवप्रोक्तं जग्राहाचिन्त्यविक्रमः ॥ १८ ॥ स सरस्येव तं वाणं मुमोचातिवलः प्रभुः। चकार च पुनर्वीरस्तस्मिन् सरसि तद्धनुः ॥ १९ ॥ ततः प्रीतं

हुए उन महासर्पोंके पासगए । १२ ॥ वेदको जाननेवाले वे दोनों एकाग्र मनसे अप्रमेय शिवको प्रणाम कर शतरुद्रीका पाठ करनेलगे ॥१३॥ तब शिवजीके प्रभावसे वे दोनों महासर्प अपने रूपको छोड़कर शत्रुओंको मारनेवाले धनुष वाण वनगए ॥ १४ ॥ इस चमत्कारसे प्रसन्न हुए महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन उन कान्तिमान् धनुष और वाणको उठायेहुए महात्मा शंकरके पास आये और वह धनुष वाण उनको देदिये ॥ १५ ॥ तदनन्तर भगवान् शिवकी पसलीमेंसे नीललोहित ब्रह्मचारी निकला, उसके नेत्र पीले थे, वह तपका क्षेत्र और महाबली था ॥ १६ ॥ उस ब्रह्मचारीने वीरासनसे बैठकर धनुष और वाणको उठालिया और उस श्रेष्ठ धनुष पर वाण चढाकर विधिवत् खेंचा ॥ १७ ॥ उस समय अचिन्त्य पराक्रमी अर्जुन उस धनुषकी प्रत्यञ्चा, धनुषकी मूठ और बैठक आदि सबको ध्यानसे देखता रहा और उसने शिवजीने जो मन्त्र पढा उसको भी याद करलिया ॥ १८ ॥ तदनन्तर बली वीर प्रभुने उस धनुष और वाणको उस सरोवरमें ही फेंकदिया ॥ १९ ॥ तदनन्तर स्मरणशक्तिवाले अर्जुन

भवं ज्ञात्वा स्मृतिमानर्जुनस्तदा । वरमारण्यके दत्तं दर्शनं शङ्क-
रस्य च ॥ २० ॥ मनसा चिन्तयामास तन्मे सम्पद्यतामिति ।
तस्य तन्मतमाज्ञाय प्रीतः प्रादाद्वरम्भवः ॥ २१ ॥ तच्च पाशुपतं
घोरं प्रतिज्ञायाश्च पारणम् । ततः पाशुपतं दिव्यमवाप्य पुनरीश्व-
रात् ॥ २२ ॥ संहृष्टरोमा दुर्धर्षः कृतं कार्यममन्यत । ववन्दतुश्च
संहृष्टौ शिरोभ्यां तं महेश्वरम् ॥ २३ ॥ अनुज्ञातौ क्षणे तस्मिन्
भवेनार्जुनकेशवौ । प्राप्तौ स्वशिबिरं वीरौ मुदा परमया युतौ २४
तथा भवेनानुमतौ महासुरनिघातिना । इन्द्राविष्णू यथा प्रीतौ
जम्भस्य वधकाङ्क्षिणौ ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि पाशुपतास्त्रप्राप्तौ एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

सञ्जय उवाच । तयोः सम्वदतोरेवं कृष्णदारुकयोस्तदा ।

ने जाना कि-श्रीशंकर मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं तथा उसने शंकरके (हिमालयके) वनमें दियेहुए दर्शन और वरका स्मरण कर इच्छा की, कि-मुझे वह दिव्य अस्त्र और शिवजी के दर्शनका फल मिले, भगवान् शंकर अर्जुनका अभिप्राय जान कर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी प्रतिज्ञाको पूरी करनेवाला पाशुपत नामक घोर अस्त्र उसको देदिया, शिवसे पाशुपत अस्त्रको पाकर हर्षके कारण प्रचण्डपराक्रमी अर्जुनके रोंगटे खड़े होगए और वह अपनेको कृतकृत्य माननेलगा, महाअसुरका नाश करना चाहतेहुए इन्द्र और विष्णु जैसे शिवकी आज्ञा लेकर जम्भासुर का वध करनेको गए थे, तैसेही वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनभी महेश्वरसे आज्ञा ले तथा परमहर्षसे उनको प्रणाम करके तत्काल अपनी छावनीकी ओरको चले आये हों, ऐसा अर्जुनको स्वप्नमें प्रतीत हुआ ॥ २०-२५ ॥इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८१ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! (उधर) श्रीकृष्ण

सात्यगाद्रजनी राजन्नथ राजान्वबुध्यत ॥ १ ॥ पठन्ति पाणिस्वनिका मागधा मधुपर्किकाः । वैतालिकाश्च सूताश्च तुष्टुवुः पुरुषर्षभम् ॥ २ ॥ नर्त्तकाश्चाप्यनृत्यन्त जगुर्गीतानि गायकाः । कुरुवंशस्तवार्थानि मधुरं रक्तकण्ठिनः ॥ ३ ॥ मृदङ्गा झर्झरा भेर्यः पणवानकगोमुखाः । आडम्बराश्च शङ्खाश्च दुन्दुभ्यश्च महास्वनाः ४ एवमेतानि सर्वाणि तथान्यानपि भारत । वादयन्ति सुसंहृष्टा कुशलाः साधुशिक्षिताः ॥ ५ ॥ स मेघस्वननिर्घोषो महाशब्दोस्पृशद्दिवम् । पार्थिवप्रवरं सुप्तं युधिष्ठिरमबोधयत् ॥ ६ ॥ प्रतिबुद्धः सुखं सुप्तो महार्हे शयनोत्तमे । उत्थायावश्यकार्यार्थं ययौ स्नानगृहं नृपः ॥ ७ ॥ ततः शुक्लाम्बराः स्नातास्तरुणाः शतमष्ट

और दारुक बातें कररहे थे, कि–इतनेमें ही रात्रि बीतगयी और प्रातःकाल होगया, राजा युधिष्ठिर भी जागउठे ॥ १ ॥ उस समय पाणिस्वनिक (ताली बजाकर गानेवाले) मागध (वंशावली कीर्त्तन करनेवाले) मधुपर्किक (मधुपर्कके समय गानेवाले) वैतालिक (प्रभातके समय राजाको जगानेके लिये स्तुतिपाठ करनेवाले) और सूत (पुराणवक्ता) पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिरकी स्तुति करनेलगे, गायक और नर्तक रागरागनियोंसे मिश्रित संगीतोंको मधुर कंठसे गाने लगे, इन सब स्तुति और गानोंमें कुरुवंशकी स्तुति भरीहुई थी ॥ २ ॥ ३ ॥ भलीप्रकार सिखायेहुए चतुर पुरुष प्रसन्न होकर मृदङ्ग, झर्झर, भेरी, मुरज, पटह, नगाड़े दुन्दुभि तथा महाध्वनिके शंख इन सबोंको तथा हे भारत ! और अनेकों बाजोंको बजाने लगे ॥ ४-५ ॥ मेघके गर्जनेकी समान वह शब्द आकाशमें गूँजनेलगा उससे राजेन्द्र युधिष्ठिर जागउठे६ राजा युधिष्ठिर बहुमूल्य श्रेष्ठ शय्यापर सुखसे पौढ रहे थे, वे उठकर आवश्यक कार्य करनेको स्नानगृहकी ओर गए ॥ ७॥ तहाँ पर स्नान करके श्वेत वस्त्र पहिर एकसौ आठ तरुण पुरुष खड़े

च । स्नातकाः काञ्चनैः कुम्भैः पूर्णैः समुपतस्थिरे ॥ ८ ॥ भद्रासनेषूपविष्टः परिधायाम्बरं लघु । सस्नौ चन्दनसंयुक्तैः पानीयैरभिमन्त्रितैः ॥ ९ ॥ उत्सादितः कषायेण बलवद्भिः सुशिक्षितैः । आप्लुतः साधिवासेन जलेन सुगन्धिना ॥ १० ॥ राजहंसनिभं प्राप्य उष्णीषं शिथिलार्पितम् । जलक्षयनिमित्तं वै वेष्टयामास मूर्धनि ॥ ११ ॥ हरिणा चन्दनेनाङ्गमुपलिप्य महाभुजः । स्रग्वी चाक्लिष्टवसनः प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः स्थितः ॥१२॥ जजाप जप्यं कौन्तेयः सतां मार्गमनुष्ठितः । तत्राग्निशरणं दीप्तं प्रविवेश विनीतवत् ॥ १३ ॥ समिद्भिः सुपवित्राभिरग्निमाहुतिभिस्तथा । मन्त्रपूताभिरर्चित्वा निश्चक्राम गृहात्ततः ॥ १४ ॥ द्वितीयां पुरुषव्याघ्रः कक्षान्निर्गम्य पार्थिवः । ततो वेदविदो वृद्धानपश्यद् ब्राह्मणर्ष-

---

हुए राजा युधिष्ठिरकी बाट देखरहे थे, वे सुवर्णके घडोंमें जल लेकर राजा युधिष्ठिरके सामने आगए ॥ ८ ॥ राजा युधिष्ठिर एक छोटासा वस्त्र पहरकर एक श्रेष्ठ आसन पर बैठगए और मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किये तथा चन्दन मिलेहुए जलसे स्नान करनेलगे ॥ ९ ॥ चतुर और बली पुरुषोंने सर्वौषधिके उबटनसे राजा युधिष्ठिरका मर्दन कर उनके शरीरका मैल छुटाया और उनको सुगन्धित जलसे स्नान कराया ॥ १० ॥ तदनन्तर शिरका जल सोखनेके लिये राजहंसकी समान श्वेत उष्णीष (पगडी) धीरे२ शिर पर बाँधी ॥ ११ ॥ फिर महाभुज युधिष्ठिर अङ्गोंपर हरिचन्दन लगा माला पहिर उत्तम वस्त्र धारण कर पूर्वकी ओरको मुख करके बैठगए और हाथ जोड़कर जप करनेलगे, तदनन्तर सज्जनोंके मार्ग पर आरूढ युधिष्ठिर नम्र होकर प्रज्वलित अग्नि के पास जापहुंचे ॥ १२-१३ ॥ समिधा तथा मंत्रोंसे पवित्र हुई आहुतियें अग्निको समर्पण कर अग्निकी पूजा की, फिर वे उस घरमेंसे बाहर निकले ॥ १४ ॥ राजा युधिष्ठिरने दूसरे चौकमें

यान् ॥ १५ ॥ दान्तान् वेदव्रतस्नातान् स्नातानवभृथेषु च । सहस्रानुचरान् सौरान् सहस्रं चाष्ट चापरान् ॥ १६ ॥ अक्षतैः सुमनोभिश्च वाचयित्वा महाभुजः । तान् द्विजान्मधुसर्पिर्भ्यां फलैः श्रेष्ठैः सुमङ्गलैः ॥ १७ ॥ प्रादात् काञ्चनमेकैकं निष्कं विप्राय पाण्डवः । अलंकृतं चाश्वशतं वासांसीष्टाश्च दक्षिणाः ॥ १८ ॥ तथा गाः कपिला दोग्ध्रीः सवत्साः पाण्डुनन्दनः । हेमशृंगा रौप्यखुरा दत्त्वा तेभ्यः प्रदक्षिणम् ॥ १९ ॥ स्वस्तिकान् वर्द्धमानांश्च नन्द्यावर्त्तांश्च काञ्चनान् । माल्यञ्च जलकुम्भांश्च ज्वलितं च हुताशनम् ॥ २० ॥ पूर्णान्यक्षतपात्राणि रुचकं रोचनास्तथा । स्वलंकृताः शुभाः कन्या दधिसर्पिर्मधूदकम् ॥ २१ ॥ मङ्गल्यान् पक्षिणश्चैव यच्चान्यदपि पूजितम् । दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च कौन्तेयो बाह्यां कक्ष्यां ततोऽगमत् ॥ २२ ॥ ततस्तस्यां महाबाहोस्तिष्ठतः परिचा-

जाकर वेदवेत्ता, जितेन्द्रिय, वेदपाठी, अवभृथ स्नान करनेवाले सहस्रों सेवकोंवाले और सूर्यकी उपासना करनेवाले एक सहस्र आठ वृद्ध ब्राह्मणोंको देखा ॥ १५ ॥ १६ ॥ महाभुज युधिष्ठिरने उन ब्राह्मणोंसे अक्षत, पुष्प, मधु, घी और मांगलिक बढ़िया फलोंके द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर प्रत्येक ब्राह्मणको एक२ सुवर्णका निष्क दिया और सजेहुए सौ घोड़े कपड़े तथा इच्छानुकूल दक्षिणा दी ॥ १७ ॥ १८ ॥ तथा पाण्डुनन्दनने बछड़ोंवाली दुधारी सुवर्णसे मढे सींगों और चांदीसे मढे खुरों वाली कपिला गौएं ब्राह्मणोंको देकर उनकी परिक्रमा की॥१९। तदनन्तर उन्होंने स्वस्तिक, सकोरे, अन्नसे भरे सुवर्णके पात्र, मालायें, जलसे भरे कलश, प्रदीप्त अग्नि चावलोंसे भरेहुए पात्र, बिजौरे नीबू, गोरोचन, गहनोंसे भूषित शुभ कन्याएं दही, घी, मधु, जल और मांगलिक पक्षी तथा दूसरी भी सकल मांगलिक पूज्य वस्तुओंके दर्शन किये और उनका स्पर्श किया तदनन्तर

रकाः । सौवर्णं सर्वतोभद्रं मुक्तावैदूर्यमण्डितम् ॥ २३ ॥ परार्ध्यास्तरणास्तीर्णं सोत्तरच्छदमृद्धिमत् । विश्वकर्मकृतं दिव्यमुपजह्रुर्वरासनम् ॥ २४ ॥ तत्र तस्योपविष्टस्य भूषणानि महात्मनः । उपजह्रुर्महार्हाणि प्रेष्याः शुभ्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥ मुक्ताभरणवेषस्य कौन्तेयस्य महात्मनः । रूपमासीन्महाराज द्विषतां शोकवर्धनम् ॥२६॥ चामरैश्चन्द्ररश्म्याभैर्हेमदण्डैः सुशोभनैः । दोधूयमानैः शुशुभे विद्युद्भिरिव तोयदः २७ संस्तूयमानः सूतैश्च वन्द्यमानश्च वन्दिभिः । उपगीयमानो गन्धर्वैरास्ते स्म कुरुनन्दनः २८ ततो मुहूर्तादासीत्तु स्यन्दनानां स्वनो महान् । नेमिघोषश्च रथिनां खुरघोषश्च वाजिनाम् ॥ २९ ॥ ह्रादेन गजघण्टानां शंखानां निनदेन च ।

वे बाहरकी ड्योढी पर आए ॥ २०–२२ ॥ राजा युधिष्ठिर उस ड्योढी पर खड़ेहुए, कि–सेवक मुक्ताफल और वैदूर्योंसे शोभित अमूल्य बिछौने तथा मूल्यवान् पलँगपोशों वाले तथा विश्वकर्मा की रची विधिसे बनाएहुए सर्वतोभद्र नामक श्रेष्ठ आसनको उनके सामने लेआए ॥ २३–२४ ॥ राजा युधिष्ठिर तहाँ बैठगए, तदनन्तर सेवकोंने अमूल्य चमकीले गहने राजा युधिष्ठिरको पहरने के लिये दिये ॥ २५ ॥ महात्मा राजा युधिष्ठिरने मोतियोंके गहने पहिर लिये, उस समय उनका स्वरूप शत्रुओंके शोकको बढाने लगा ॥ २६ ॥ सोनेकी दण्डीवाले, चन्द्रमाकी किरणोंकी समान श्वेत चँवर राजा युधिष्ठिर पर ढुलनेलगे उस समय वह बिजलियोंसे घिरे मेघोंकी समान शोभा पारहे थे ॥ २७ ॥ शृंगार करनेके लिये बैठेहुए, कुरुनन्दन राजा युधिष्ठिरकी सूत स्तुति कररहे थे वन्दीजन वन्दना कररहे थे और गन्धर्व उनके गुण गारहे थे ॥ २८ ॥ एक मुहूर्त बीततेही रथोंकी झनकार, रथियोंका नेमिघोष और घोड़ोंके खुरोंकी टपाटप सुनाई देनेलगी २९ हाथियोंके गलेके घण्टोंके बजनेसे, शंखोंकी ध्वनिसे और मनुष्यों

नराणां पदशब्दैश्च कम्पतीव स्म मेदिनी ॥ ३० ॥ ततः शुद्धान्तमासाद्य जानुभ्यां भूतले स्थितः । शिरसा वन्दनीयन्तमभिवाद्य जनेश्वरम् ॥ ३१ ॥ कुण्डली बद्धनिस्त्रिंशः सन्नद्धकवचो युवा । अभिप्रणम्य शिरसा द्वाःस्थो धर्मात्मजाय वै ॥ ३२ ॥ न्यवेदयद्धृषीकेशमुपयातं महात्मने । सोब्रवीत् पुरुषव्याघ्रः स्वागतेनैव माधवम् ॥ ३३ ॥ अर्घ्यञ्चैवासनं चास्मै दीयतां परमार्चितम् । ततः प्रवेश्य वार्ष्णेयमुपवेश्य वरासने ॥ ३४ ॥ पूजयामास विधिवद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि युधिष्ठिरसज्जतायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

सञ्जय उवाच । ततो युधिष्ठिरो राजा प्रतिनन्द्य जनार्दनम् । उवाच परमप्रीतः कौन्तेयो देवकीसुतम् ॥ १ ॥ सुखेन रजनी व्युष्टा कच्चित्ते मधुसूदन । कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवाच्युत२

के पैरोंकी धमाधमरसे पृथ्वी काँपनेसी लगी ॥ ३० ॥ इतनेमेंही कुण्डल और कवच धारण करनेवाला एक तरुण द्वारपाल कमरमें तलवार लटकायेहुए महलके भीतर आया और पृथ्वीपर घुटने टेककर शिरसा वन्दनीय महात्मा राजा युधिष्ठिरको शिर झुका प्रणाम कर कहनेलगा, कि–महात्मा श्रीकृष्ण आपके पास आरहे हैं, यह सुनते ही पुरुषव्याघ्र युधिष्ठिरने कहा, कि–श्रीकृष्णको स्वागतके साथ लेआओ ॥ ३१–३३ । उनको उत्तम आसन और अर्घ दो, तदनन्तर श्रीकृष्णको सभामें बुलवाकर बढिया आसन पर बैठाया गया, तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने उनकी शास्त्रानुसार पूजा की ॥ ३४–३५ ॥ बयासीवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर परमप्रसन्न होकर देवकीपुत्र श्रीकृष्णकी प्रशंसा करतेहुए बोले, कि–॥ १ ॥ हे मधुसूदन ! तुमने आजकी रात्रि सुखमें तो बिताई ? और हे

वासुदेवोपि तद्युक्तं पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरम् । ततश्च प्रकृतीः क्षत्ता न्यवेदयदुपस्थिताः ॥ ३ ॥ अनुज्ञातश्च राज्ञा स प्रावेशयत तं जनम् । विराटं भीमसेनञ्च धृष्टद्युम्नं च सात्यकिम् ॥ ४ ॥ चेदिपं धृष्टकेतुञ्च द्रुपदञ्च महारथम् । शिखण्डिनं यमौ चैव चेकितानं सकेकयम् ॥ ५ ॥ युयुत्सुञ्चैव कौरव्यं पाञ्चाल्यं चोत्तमौजसम् । युधामन्युं सुबाहुञ्च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥ ६ ॥ एते चान्ये च बहवः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ उपतस्थुर्महात्मानं विविशुश्चासने शुभे ॥ ७ ॥ एकस्मिन्नासने वीरावुपविष्टौ महाबलौ । कृष्णश्च युयुधानश्च महात्मानौ महाद्युती ॥ ८ ॥ ततो युधिष्ठिरस्तेषां शृण्वतां मधुसूदनम् । अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षमाभाष्य मधुरं वचः ॥ ९ ॥ एकं त्वां वयमाश्रित्य सहस्राक्षमिवामराः । प्रार्थयामो

अच्युत ! तुम सब विषयोंमें सावधान तो हो ? ॥ २ ॥ श्रीकृष्णने भी इसी प्रकार युधिष्ठिरसे प्रश्न किये, तदनन्तर द्वारपालने सूचना दी, कि–प्रकृतिमण्डल (दरबारी लोग) द्वारपर खड़ा है ॥ ३ ॥ राजा युधिष्ठिरने आज्ञा दी, कि–उनको भी भीतर आने दो, वे भी तत्काल भीतर आगए. इनमें विराट, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, चेदिराज, धृष्टकेतु, महारथी द्रुपद, शिखण्डी, नकुल, सहदेव, चेकितान, केकय, कौरव्य, युयुत्सु, पाञ्चाल्य, उत्तमौजा, युधामन्यु, सुबाहु, द्रौपदीके पाँचों पुत्र और भी बहुतसे राजे क्षत्रियश्रेष्ठ महात्मा युधिष्ठिरकी सेवामें उपस्थित हुए और शुभ आसनों पर विराजमान होगए ॥ ४–७ ॥ महाबली महाकान्तिमान् महात्मा श्रीकृष्ण और युयुधान एकही आसन पर बैठगए ॥ ८ ॥ राजा युधिष्ठिरने उन सबके सुनतेहुए श्रीकृष्ण को सम्बोधन करके मधुर वाणीमें कहा ॥९॥ कि–हे कृष्ण! जैसे देवता इन्द्रका आश्रय लेते हैं तैसेही हम एक आपके आश्रयसे युद्धमें जय और चिरकाल तक रहनेवाले सुखोंको पानेकी प्रार्थना

जयं युद्धे शाश्वतानि सुखानि च ॥ १० ॥ त्वं हि राज्यविनाशं च द्विषद्भिश्च निराक्रियाम् । क्लेशांश्च विविधान् कृष्ण सर्वांस्तानपि वेद नः ॥ ११ ॥ त्वयि सर्वेश सर्वेषामस्माकं भक्तवत्सल । कुशलमायत्तमत्यर्थं यात्रा च मधुसूदन ॥ १२ ॥ स तथा कुरु वार्ष्णेय यथा त्वयि मनो मम । अर्जुनस्य यथा सत्या प्रतिज्ञा स्याच्चिकीर्षिता ॥ १३ ॥ स भवांस्तारयत्वस्माद् दुःखामर्षमहार्णवात् । पारन्तितीर्षतामद्य प्लवो नो भव माधव ॥ १४ ॥ न हि तत् कुरुते संख्ये रथी रिपुवधोद्यतः । यथा वै कुरुते कृष्ण सारथिर्यत्नमास्थितः ॥ १५ ॥ यथैव सर्वास्वापत्सु पासि वृष्णीन् जनार्दन । तथैवास्मान्महाबाहो वृजिनात्त्रातुमर्हसि ॥ १६ ॥ त्वमगाधेऽप्लवे मग्नान् पाण्डवान् कुरुसागरे । समुद्धर प्लवो भूत्वा

करते हैं ॥१०॥ हे कृष्ण ! शत्रुओंने हमारे राज्यको छीन लिया हमे राज्यमेंसे निकाल दिया, और हमे जो नानाप्रकारके क्लेश दिये वे सब बातें आपसे छिपी नहीं हैं ॥ ११ ॥ हे भक्तवत्सल! हे सर्वेश ! हे मधुसूदन ! हम सबोंका सुख और रक्षा आपके ऊपर निर्भर है ॥ १२ ॥ हे वार्ष्णेय ! आप ऐसा करें कि— मेरा मन आपमें रहे और अर्जुनकी की हुई प्रतिज्ञा सत्य हो ॥१३॥ हे आप दुःख और अमर्षरूपी समुद्रसे हमारा उद्धार करिये हे माधव! हम इस समुद्रके पार पहुँचना चाहते हैं आप इसमें नौकारूप बनिये ॥ १४ ॥ हे कृष्ण ! संग्राममें सारथी प्रयत्न करने पर जैसा काम करसकता है, वैसा काम शत्रुका वध करने को तयार हुआ रथी भी नहीं करसकता ॥ १५ ॥ हे जनार्दन ! जैसे आप वृष्णियोंकी सब आपत्तियोंसे रक्षा करते हैं हे महाबाहो ! तैसे ही इस दुःखसे हमारी रक्षा करिये ॥ १६ ॥ हे शंख चक्र गदा धारण करनेवाले ! आप कौरवरूपी अगाध समुद्रमें नौकारहित होनेके कारण डूबतेहुए पाण्डवोंको नौकारूप बनकर बचाली-

शङ्खचक्रगदाधर ॥ १७ ॥ नमस्ते देवदेवेश सनातन विशातन । विष्णो जिष्णो हरे कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम ॥ १८ ॥ नारदस्त्वां समाचख्यौ पुराणमृषिसत्तमम् । वरदं शार्ङ्गिणं श्रेष्ठं तत् सत्यं कुरु माधव ॥ १९ ॥ इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो धर्मराजेन संसदि । तोयमेघस्वनो वाग्मी प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ २० ॥ वासुदेव उवाच । सामरेष्वपि लोकेषु सर्वेषु न तथाविधः । शरासनधरः कश्चिद्यथा पार्थो धनञ्जयः ॥२१॥ वीर्यवानस्त्रसम्पन्नः पराक्रान्तो महाबलः । युद्धशौण्डः सदामर्षी तेजसा परमो नृणाम् २२॥ स युवा वृषभस्कन्धो दीर्घबाहुर्महाबलः । सिंहर्षभगतिः श्रीमान् द्विषतस्ते हनिष्यति॥२३॥ अहं च तत् करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोर्जुनः । धार्त्तराष्ट्रस्य सैन्यानि धक्ष्यत्यग्निरिवेंधनम् २४ अद्य तं पापकर्माणं क्षुद्रं सौभद्रघातिनम् ।

जिये ॥ १७ ॥ हे देव ! हे देवेश ! हे सनातन ! हे संहारकारिन् ! हे विष्णो ! हे जिष्णो ! हे हरे ! हे कृष्ण ! हे वैकुण्ठपते ! हे पुरुषोत्तम ! हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ १८ ॥ नारदजी आपको पुराणपुरुष, ऋषिश्रेष्ठ वर देनेवाले, शार्ङ्ग धनुर्धर और श्रेष्ठ देव कहते हैं, अतः हे माधव ! आप उनकी वाणीको सत्य कीजिये ॥ १९ ॥ जब धर्मराज युधिष्ठिरने यह बात कही, तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ और मेघकी समान गंभीर स्वरवाले श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे कहनेलगे, ॥ २० ॥ वासुदेवने कहा, कि–अर्जुन जैसा धनुषधारी है ऐसा धनुषधारी तो किसी लोक और देवताओंमें भी कोई नहीं है ॥२१॥ अर्जुन तो वीर्यवान्, अस्त्रविद्याका ज्ञाता पराक्रमी, महाबली, युद्धमें चतुर, सर्वदा असहनशील और मनुष्योंमें परमतेजस्वी है ॥ २२ ॥ तरुण वृषभकी समान कंधोंवाला लम्बी भुजावाला, सिंहकी समान चलनेवाला महाबली श्रीमान् अर्जुन तुम्हारे शत्रुओंको नष्ट करडालेगा ॥ २३ ॥ और मैं ऐसा उपाय करूँगा, कि–कुन्तीपुत्र अर्जुन धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सेनाको

अपुनर्दर्शनं मार्गमिषुभिः संप्रगतेर्जुनः ॥ २५ ॥ तस्याद्य गृध्राः श्येनाश्च चण्डगोमायवस्तथा । भक्षयिष्यन्ति मांसानि ये चान्ये पुरुषादकाः ॥२६॥ यद्यस्य देवा गोप्तारः सेन्द्राः सर्वे तथाप्यसौ । राजधानीं यमस्याद्य हतः प्राप्स्यति संकुले ॥ २७ ॥ निहत्य सैन्धवं जिष्णुरद्य त्वामुपयास्यति । विशोको विज्वरो राजन् भव भूतिपुरस्कृतः ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

सञ्जय उवाच । तथा तु वदतां तेषां प्रादुरासीद्धनञ्जयः । दिदृक्षुर्भरतश्रेष्ठं राजानं ससुहृद्गणम् ॥ १ ॥ तं निविष्टं शुभां कक्ष्यामभिवन्द्याग्रतः स्थितम् । समुत्थायार्जुनं प्रेम्णा सस्वजे पाण्डवर्षभः ॥ २ ॥ मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय परिष्वज्य च बाहुना ।

ऐसे नष्ट करडालेगा, जैसे अग्नि घासफूँसको जला डालता है २४ अभिमन्युके हत्यारे, पापी, नीच जयद्रथको अर्जुन आजही बाणों से यमलोक भेज देगा ॥ २५ ॥ आज उसके मांसको गीध, बाज, प्रचण्ड गीदड तथा दूसरे मांसाहारी प्राणी खायेंगे ॥ २६ ॥ यदि आज इन्द्र आदि सब देवता भी इसकी रक्षा करनेको आजायँ तो भी यह घोर युद्धमें मारा जाकर यमकी राजधानी में ही जायगा ॥ २७ ॥ हे राजन् ! अर्जुन आज जयद्रथको मारकरही तुम्हारे पास आवेगा, तुम्हें राज्य और ऐश्वर्य मिलेगा, अतः तुम चिन्ता और शोकको त्याग दो ॥ २८ ॥ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् धृतराष्ट्र ! वे ऐसा कहही रहे थे, कि अर्जुन भरतवंशमें श्रेष्ठ बड़े भाई राजा युधिष्ठिर और मित्रोंसे मिलनेके लिये वहाँ आपहुँचा ॥ १ ॥ मङ्गलमय ड्योढीमें युधिष्ठिरको प्रणाम करके वह सामने खडा होगया, पांडवोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने खड़े होकर प्रेमपूर्वक अर्जुनका आलिङ्गन किया ॥ २ ॥

आशिषः परमाः प्रोच्य स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥ व्यक्तमर्जुन संग्रामे ध्रुवस्ते विजयो महान्। यादृग्रूपा च तेच्छाया प्रसन्नश्च जनार्दनः ॥ ४ ॥ तमब्रवीत्ततो जिष्णुर्महदाश्चर्यमुत्तमम्। दृष्टवानस्मि भद्रन्ते केशवस्य प्रसादजम् ॥ ५ ॥ ततस्तत् कथयामास यथा दृष्टं धनञ्जयः। आश्वासनार्थं सुहृदां त्र्यम्बकेण समागमम्६ ततः शिरोभिरवनिं स्पृष्ट्वा सर्वे च विस्मिताः। नमस्कृत्य वृषाङ्काय साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ७ ॥ अनुज्ञातास्ततः सर्वे सुहृदो धर्मसूनुना। त्वरमाणाः सुसन्नद्धाः हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥ ८ ॥ अभिवाद्य तु राजानं युयुधानाच्युतार्जुनाः। हृष्टा विनिर्ययुस्ते वै युधिष्ठिरनिवेशनात् ॥ ९ ॥ रथेनैकेन दुर्धर्षौ युयुधानजनार्दनौ। जग्मतुः सहितौ वीरावर्जुनस्य निवेशनम्। तत्र गत्वा हृषीकेशः

उसका मस्तक सूँघा, पुनः दोनों भुजाओंसे आलिंगन कर अनेकों आशीर्वाद दे मन्दमन्द हँसतेहुए उससे कहा, कि-॥ ३ ॥ हे अर्जुन! तेरे मुखकी कान्तिको देखकर मुझे निश्चय होता है, कि-आजके युद्धमें तेरी महाविजय होगी और श्रीकृष्णभी तेरे ऊपर प्रसन्न हैं ॥ ४ ॥ यह बात सुनकर अर्जुनने कहा, कि-श्रीकृष्णके अनुग्रहसे मैंने आज रातमें एक बडा अचरज भरा दृश्य देखा है, आपका कल्याण हो ॥ ५ ॥ तदनन्तर अर्जुनने सम्बन्धियोंको धीरज देनेके लिये, श्रीशंकरका दर्शन किसप्रकार हुआ, इत्यादि जो२ स्वप्नमें देखा था वह सब कहकर सुनादिया६ यह सुनकर सबको बडा अचरज हुआ और उन्होंने पृथिवीमें मस्तक नमाकर शिवको प्रणाम किया और कहने लगे, कि-बड़ा अच्छा हुआ, बड़ा अच्छा हुआ ॥ ७ ॥ तदनन्तर वे सब संबंधी धर्मराजके आज्ञा देनेपर फुर्तीसे शस्त्र बाँध तयार होकर प्रसन्नतामें भरेहुए युद्ध करनेको चलपड़े ॥ ८ ॥ युयुधान, श्रीकृष्ण और अर्जुनभी युधिष्ठिरको प्रणाम कर उनकी छावनीमेंसे चलपड़े ९

कल्पयामास सूतवत् ॥ १० ॥ रथं रथवरस्याग्र्यं वानरर्षभलक्षणम् । स मेघसमनिर्घोषस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ॥ ११ ॥ बभौ रथवरः कॢप्तः शिशुर्दिवसकृद्यथा । ततः पुरुषशार्दूलः सज्जं सज्जपुरःसरः ॥ १२ ॥ कृताह्निकाय पार्थाय न्यवेदयत तं रथम् । तन्तु लोकवरः पुंसां किरीटी हेमवर्मभृत् ॥ १३ ॥ चापबाणधरो वाहं प्रदक्षिणमवर्त्तत । तपोविद्यावयोवृद्धैः क्रियावद्भिर्जितेन्द्रियैः १४ स्तूयमानो जयाशीर्भिरारुरोह महारथम् । जैत्रैः सांग्रामिकैर्मन्त्रैः पूर्वमेव रथोत्तमम् ॥ १५ ॥ अभिमन्त्रितमर्चिष्मानुदयं भास्करो यथा । स रणे रथिनां श्रेष्ठः काञ्चने काञ्चनावृतः ॥ १६ ॥ विबभौ विमलोऽर्चिष्मान्मेराविव दिवाकरः । अन्वारुरुहतुः पार्थं

दुर्धर्ष वीर सात्यकि और श्रीकृष्ण एक रथमें बैठकर अर्जुनकी छावनीकी ओरको गए, श्रीकृष्णने वहाँ जाकर महारथी अर्जुनके वानरके चिन्हकी ध्वजावाले रथको सूतकी समान कार्य करके तयार करदिया, मेघके गर्जनेकी समान शब्दवाला और तपेहुए सुवर्णकी समान कान्तिवाला वह श्रेष्ठ रथ प्रातःकालके सूर्यकी समान शोभा पाने लगा, पुरुषसिंह श्रीकृष्णने, युद्धकी सब सामग्रियोंको तयार किया, कि-इतनेमेंही अर्जुनभी अपना दैनिक नित्य कर्म पूराकर माथे पर मुकुट तथा शरीर पर सुवर्णका कवच धारण किये हाथमें धनुष बाण ले बाहर निकला, तुरन्तही युद्धकी सामग्रीसे भरेहुए दिव्य रथको श्रीकृष्णने अर्जुनके सामने ला खडा किया, महात्मा अर्जुनने उस रथकी परिक्रमा की इस समय तप, विद्या और अवस्थामें बड़े कर्मनिष्ठ जितेन्द्रिय ब्राह्मण विजयका आशीर्वाद देकर स्तुति करनेलगे, उनके आशीर्वादको स्वीकार करके अर्जुन पहलेसेही विजय देनेवाले सांग्रामिक मंत्रों से अभिमन्त्रित कियेहुए रथ पर उदयाचल पर चढनेवाले सूर्यकी समान सवार होगया, सुवर्णका कवच पहरे सुवर्णके दिव्य रथमें

युयुधानजनार्दनौ ॥ १७ ॥ शर्यातेर्यज्ञमायान्तं यथेन्द्रं देवमश्विनौ।
अथ जग्राह गोविन्दो रश्मीन् रश्मिविदाम्वरः ॥ १८ ॥ मातलि-
र्वासवस्येव वृत्रं हन्तुं प्रयास्यतः । स ताभ्यां सहितः पार्थो रथ-
प्रवरमास्थितः ॥ १९ ॥ सहितो बुधशुक्राभ्यां तमो निघ्नन् यथा
शशी । सैन्धवस्य वधं प्रेप्सुः प्रयातः शत्रुपूगहा ॥२०॥ सहाम्बु-
पतिमित्राभ्यां यथेन्द्रस्तारकामये । ततो वादित्रसंघोषैर्माङ्गल्यैश्च स्तवैः
शुभैः ॥२१॥ प्रयान्तमर्जुनं वीरं मागधाश्चैव तुष्टुवुः स जयाशीः
सुपुण्याहः सूतमागधनिःस्वनः ॥ २२ ॥ युक्तो वादित्रघोषेण तेषां
रतिकरोऽभवत् । तमनुप्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुभः ॥ २३ ॥
ववौ संहर्षयन् पार्थं द्विषतश्चापि शोषयन् । ततस्तस्मिन् क्षणे
राजन् विविधानि शुभानि च ॥ २४ ॥ प्रादुरासन् निमित्तानि

वैठाहुआ अर्जुन मेरुपर्वत पर स्थित विमल किरणोंवाले सूर्यसा शोभित होनेलगा, शर्यातिके यज्ञमें आतेहुए इन्द्रके आगे जैसे अश्विनीकुमार वैठे थे, तैसेही श्रीकृष्ण और युयुधान अर्जुनके आगे वैठगए, उस समय सारथियोंमें श्रेष्ठ गोविन्दने घोडोंकी लगामों को इसप्रकार पकडलिया जैसे वृत्रासुरका वध करनेको जातेहुए इन्द्रके घोड़ोंकी लगामें मातलिने पकडी थीं, अन्धकारका नाश करनेवाला चन्द्रमा जैसे वुध और शुक्रके साथ रथमें वैठता है, तथा तारकामय संग्राममें जैसे इन्द्र मित्र और वरुणके साथ रथमें वैठा था तैसेही रथियोंमें श्रेष्ठ, जयद्रथका वध करनेकी इच्छावाला शत्रुओंके समूहका नाशक अर्जुनभी उन दोनोंके साथ श्रेष्ठ रथमें वैठकर युद्ध करनेको चलदिया, अर्जुनकी चढाईके समय मागध मांगलिक वाजे वजाने लगे, शुभ स्तोत्र पढनेलगे और शूरवीर अर्जुनकी प्रशंसा करनेलगे, मागधोंके दियेहुए विजयसूचक आशीर्वादका तथा पुण्यहवाचनका शब्द वाजोंके शब्दके साथ मिलकर पाण्डवोंको आनन्ददायक हुआ अर्जुनके

विजयाय बहूनि च। पाण्डवानां त्वदीयानां विपरीतानि मारिष २५ दृष्ट्वार्जुनो निमित्तानि विजयाय प्रदक्षिणम्। युयुधानं महेष्वासमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ युयुधानाद्य युद्धे मे दृश्यते विजयो ध्रुवः। यथा हीमानि लिङ्गानि दृश्यन्ते शिनिपुङ्गव ॥ २७ ॥ सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र सैन्धवको नृपः। यियासुर्यमलोकाय मम वीर्यं प्रतीक्षते ॥ २८ ॥ यथा परमकं कृत्यं सैन्धवस्य वधो मम। तथैव सुमहत् कृत्यं धर्मराजस्य रक्षणम् ॥ २९ ॥ स त्वमद्य महाबाहो राजानं परिपालय। यथैव हि मया गुप्तस्त्वया गुप्तो भवेत्तथा ३० न पश्यामि च तं लोके यस्त्वां युद्धे पराजयेत्। वासुदेवसमं युद्धे स्वयमप्यमरेश्वरः ॥ ३१ ॥ त्वयि चाहं पराश्वस्तः प्रद्युम्ने वा

यात्रा करते समय सुगन्धित पवित्र पवन चलनेलगा, वह अर्जुनको हर्ष देनेलगा और शत्रुओंको सुखाने लगा, हे राजन्! उसही समय पाण्डवोंकी विजयको सूचित करनेवाले नाना प्रकारके शुभ शकुन होने लगे और तुम्हारे पुत्रोंके यहाँ पराजयकी सूचना देनेवाले कुशकुन होने लगे ॥१०-२५॥ अर्जुन अपने मनके अनुकूल विजयके शकुनोंको देखकर महाधनुषधारी सात्यकिसे यह कहने लगा, कि-॥ २६ ॥ हे शिनिपुङ्गव! हे युयुधान! जैसे ये शकुन होरहे हैं, इनसे तो यह स्पष्ट दीखरहा है, कि आज युद्धमें मेरी जीत अवश्य होगी ॥ २७ ॥ अतः जहाँ पर जयद्रथ हो, तुम मुझे वहांही लेचलो, क्योंकि जयद्रथ यममन्दिरमें जानेकी इच्छासे मेरे पराक्रम वाट,निहारता हुआसा ही खडा होगा ॥ २८ ॥ जैसे सिन्धुराजका वध करना मेरा परमकृत्य है तैसेही धर्मराजकी रक्षा करना भी मेरा बडाभारी काम है ॥ २९ ॥ अतः हे महाबाहो! तुम राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो, जैसे मैं उनकी रक्षा करसकता हूँ, वैसीही तुमभी करसकते हो॥३०॥मैं जगत्में ऐसा किसीको नहीं पाता जो तुम्हारा पराजय करसके, स्वयं तुम श्रीकृष्णकी समान

महारथे शक्नुयां सैन्धवं हन्तुमनपेक्षो नरर्षभ ॥ ३२ ॥ मय्यपेक्षा न कर्त्तव्या कथञ्चिदपि सात्वत । राजन्येव परा गुप्तिः कार्या सर्वात्मना त्वया ॥३३॥ न हि यत्र महाबाहुर्वासुदेवो व्यवस्थितः । किञ्चिद्व्यापद्यते तत्र यत्राहमपि च ध्रुवम् ॥ ३४ ॥ एवमुक्तस्तु पार्थेन सात्यकिः परवीरहा । तथेत्युक्त्वागमत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुन-
वाक्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

समाप्तं प्रतिज्ञापर्व

अथ जयद्रथवधपर्व ।

धृतराष्ट्र उवाच । श्वोभूते किमकार्षुस्ते दुःखशोकसमन्विताः । अभिमन्यौ हते तत्र के वायुध्यन्त मामकाः ॥ १ ॥ जानंतस्तस्य

हो, तुम्हें साक्षात् इन्द्रभी नहीं जीतसकता॥३१॥ मुझे तुम्हारे तथा महारथी प्रद्युम्नके ऊपर बड़ा भरोसा है, अतः हे नरश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे ऊपर युधिष्ठिरकी रक्षाका भार रखकर ही सावधानीसे सिंधुराजको मारसकूँगा ॥ ३२ ॥ हे सात्यकि ! तुम्हें मेरे लिये जरा भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, तुम सब प्रकारसे युधिष्ठिरकी रक्षा करते रहना ॥ ३३ ॥ जहाँ महाबाहु वासुदेव और मैं हूँ, तहाँ कोई आपत्ति नहीं आसकती अवश्य विजयही होती है ॥ ३४ ॥ अर्जुनके ऐसा कहने पर शत्रुनाशक सात्यकि बहुत अच्छा कहकर जहाँ राजा युधिष्ठिर खड़े थे, तहाँको चला गया ॥ ३५ ॥ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥

प्रतिज्ञापर्व समाप्त

जयद्रथवधपर्व

धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे सञ्जय ! अभिमन्युके मारे जानेसे दुःखित और शोकमें डूबेहुए पाण्डवोंने दूसरे दिन क्या किया ?

कर्माणि कुर्वतः सव्यसाचिनः । कथं तत् किल्बिषं कृत्वा निर्भया ब्रूहि मामकाः ॥ २ ॥ पुत्रशोकाभिसन्तप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्तकम् । आयान्तं पुरुषव्याघ्रं कथं ददृशुराहवे ॥ ३ ॥ कपिराजध्वजं संख्ये विधुन्वन्तं महद्धनुः । दृष्ट्वा पुत्रपरिधूतं किमकुर्वत मामकाः॥४ किन्नु सञ्जय संग्रामे वृत्तं दुर्योधनं प्रति । परिदेवो महानत्र श्रुतो मे नाभिनन्दनम् ॥५॥ बभूवुर्ये मनोग्राह्याः शब्दाः श्रुतिसुखावहाः । न श्रूयन्तेऽद्य सर्वे ते सैन्धवस्य निवेशने ॥ ६ ॥ स्तुवतां नाद्य श्रूयन्ते पुत्राणां शिविरे मम । सूतमागधसंघानां नर्त्तकानाञ्च सर्वशः ॥७॥ शब्देन नादिताभीक्ष्णमभवद्यत्र मे श्रुतिः । दीनानामद्य तं शब्दं न शृणोमि समीरितम् ॥ ८ ॥ निवेशने

और मेरे पुत्रकी ओरसे उस समय किस २ ने युद्ध किया ॥१॥ कौरव अर्जुनके पराक्रमको जानते थे, फिर भी वे उसका अपराध करके निर्भय कैसे रहे ? यह मुझे सुना ? ॥ २ ॥ पुत्रशोकसे सन्तापमें भरेहुए, तथा यम और मृत्युकी समान क्रोधमें भरे पुरुषव्याघ्र अर्जुनको आतेहुए देखकर मेरे पुत्र कैसे सह सके होंगे ? ॥३॥ जिसकी ध्वजामें वानरका चिन्ह है जो युद्धमें महाधनुषको घुमारहा था, ऐसे पुत्रशोकसे दुःखितहुए अर्जुनको देख कर मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ ४ ॥ हे सञ्जय ! युद्धमें दुर्योधन पर कैसी बीती ? आज मुझे हर्षनाद सुनाई नहीं देता, किन्तु खेद की ध्वनि सुनाई आरही है ॥ ५ ॥ पहिले सिंधुराज जयद्रथकी छावनीमें जैसे मनोमोहक और सुख देनेवाले शब्द सुनाई पडते थे, वे शब्द आज सुनाई नहीं देते ॥ ६ ॥ मेरे पुत्रोंकी छावनीमें सूत, मागध और नर्तकोंके समूह नित्य स्तुति किया करते थे और उनके जो शब्द सुनाई आते थे वे स्तुति और आनन्दके शब्द भी आज सुनायी नहीं आते ॥ ७ ॥ गरीबोंकी कीहुई दानकी प्रार्थनासे मेरे कान सर्वदा गूँजते रहते थे, उनका शब्द

सत्यधृतेः सोमदत्तस्य सञ्जय । आसीनोहं पुरा तात शब्दमश्रौषमुत्तमम् ॥ ९ ॥ तदद्य पुण्यहीनोहमार्त्तस्वरनिनादितम् । निवेशनं गतोत्साहं पुत्राणां मम लक्षये ॥ १० ॥ विविंशतेर्दुर्मुखस्य चित्रसेनविकर्णयोः । अन्येषां च सुतानां मे न तथा श्रूयते ध्वनिः ११ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यं शिष्याः पर्युपासते । द्रोणपुत्रं महेष्वासं पुत्राणां मे परायणम् ।१२। वितण्डालापसंलापैर्द्रुतवादित्रवादितैः । गीतैश्च विविधैरिष्टै रमते यो दिवानिशम् ॥ १३ ॥ उपास्यमानो बहुभिः कुरुपाण्डसात्वतैः । सूत तस्य गृहे शब्दो नाद्य द्रौणेर्यथा पुरा ॥ १४ ॥ द्रोणपुत्रं महेष्वासं गायना नर्त्तकाश्च ये । अत्यर्थमुपतिष्ठन्ति तेषां न श्रूयते ध्वनिः ॥ १५ ॥ विन्दानुविन्दयोः

भी आज सुनाई नहीं देता ॥८॥ और हे तात सञ्जय ! मैं पहिले जब सत्यधृति और सोमदत्तकी छावनियोंमें बैठता था तब प्रशंसा भरे शब्दोंको सुना करता था, परन्तु आज पुण्यहीन हुआ मैं आर्तनादसे भरे शब्दोंको ही सुनरहा हूँ, हा ! आज मुझे अपने पुत्रोंकी छावनी भी उत्साहशून्यसी प्रतीत होरही है ॥ ९-१० ॥ विविंशति, दुर्मुख, चित्रसेन, विकर्ण तथा मेरे दूसरे पुत्रोंके डेरों मेंसे भी पहिलीसी हर्षध्वनि सुनाई नहीं देती ॥ ११ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातिके शिष्य जिनकी सेवा करते हैं, जो महाधनुषधारी हैं, जो मेरे पुत्रोंकी इच्छाके अनुकूल चलते हैं, जो वितण्डावाद, भाषण, परस्पर भाषण, नाना प्रकारके बाजे और मनोहर संगीतोंमें रात दिन मस्त रहते हैं और कौरव, पाण्डव तथा सात्वतवंशी राजे जिनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं, ! हे सञ्जय ! उन अश्वत्थामाके घर से भी पहिलेकीसी हर्षकी ध्वनि सुनाई नहीं देती ॥ १२-१४ ॥ जो गायक और नर्तक महाधनुषधारी अश्वत्थामाकी प्रायः सेवा किया करते थे, आज उनका शब्दभी सुनाई नहीं आता ॥ १५ ॥ विन्द और अनुविन्दकी

सायं शिबिरे यो महाध्वनिः ॥ १६ ॥ श्रूयते सांप्रतं न तथा केकयानाञ्च वेश्मसु । नित्यं प्रमुदितानाञ्च तालगीतस्वनो महान् ॥ १७ ॥ नृत्यतां श्रूयते तात गणानां सोऽद्य न स्वनः । सप्त तन्तून्वितन्वाना याजका यमुपासते ॥ १८ ॥ सौमदत्तिं श्रुतनिधिं तेषां न श्रूयते ध्वनिः । ज्याघोषो ब्रह्मघोषश्च तोमरासिरथध्वनिः ॥ १९ द्रोणस्यासीदविरतो गृहे तं न शृणोम्यहम् । नानादेशसमुत्थानां गीतानां योऽभवत्स्वनः ॥ २० ॥ वादित्रनादितानां च सोऽद्य न श्रूयते महान् । यदा प्रभृत्युपप्लव्याच्छान्तिमिच्छन् जनार्दनः ॥ २१ ॥ आगतः सर्वभूतानामनुकम्पार्थमच्युतः । ततोऽहमब्रुवं सूत मन्दं दुर्योधनं तदा ॥ २२ ॥ वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः । कालप्राप्तमहं मन्ये मा त्वं दुर्योधनातिगाः ॥ २३ ॥ शमं चेद्याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम् । हितार्थमभिजल्पन्तं न तवास्ति रणे

छावनीमें तथा केकयोंके डेरोंमेंसे सायङ्कालको, सर्वदा प्रसन्न होकर नाचनेवालोंकी ताल और गीतध्वनिभी पहिलीसी नहीं सुनाई देती, जो वेदध्वनि करनेवाले याचक श्रुतनिधि सौमदत्ति के डेरेमें वेदपाठ करते थे, उनका शब्दभी आज सुनाई नहीं देता, द्रोणके घरमें सर्वदा प्रत्यञ्चा, वेद, तोमर, तलवार और रथकीही ध्वनि सुनाई देती थी, आज वहाँसे भी कोई शब्द नहीं आता, अनेकों देशोंमें बनेहुए गीतोंकी महाध्वनिभी आज पहलेकेसी नहीं सुनाई देती, जब श्रीकृष्ण कलहको शान्त करनेकी इच्छा तथा सब प्राणियों पर दया करनेके लिये उपप्लव्यमें आये थे. हे सूत! उस समय मैंने मन्दबुद्धि दुर्योधनसे कहा था, कि-॥ १६-२२ ॥ हे पुत्र! वासुदेवके बतायेहुए उपायसे पाण्डवोंसे संधि करले, मेरी समझमें संधिके लिये यह अच्छा अवसर हाथ लगा है, हे दुर्योधन! तू मेरे वचनका वा इस अवसरका अनादर न कर ॥ २३ ॥ तेरे हितके लिये ही श्रीकृष्ण संधिकी प्रार्थना करने आये हैं, यदि

जयः ॥ २४ ॥ प्रत्याचष्ट स दाशार्हमृषभं सर्वधन्विनाम् । अनुनेयानि जल्पन्तमनयान्नान्वपद्यत ॥२५॥ ततो दुःशासनस्यैव कर्णस्य च मतं द्वयोः । अन्ववर्त्तत मां हित्वा कृष्टः कालेन दुर्मतिः ॥२६॥ न ह्यहं द्यूतमिच्छामि विदुरो न प्रशंसति । सैन्धवो नेच्छति द्यूतं भीष्मो न द्यूतमिच्छति ॥ २७ ॥ शल्यो भूरिश्रवाश्चैव पुरुमित्रो जयस्तथा । अश्वत्थामा कृपो द्रोणो द्यूतं नेच्छन्ति सञ्जय ॥ २८ ॥ एतेषां मतमादाय यदि वर्त्तेत पुत्रकः । सज्ञातिमित्रः ससुहृच्चिरञ्जीवेदनामयः ॥ २९ ॥ श्लक्ष्णा मधुरसम्भाषा ज्ञातिबन्धुप्रियम्वदा । कुलीनाः सम्मताः प्राज्ञाः सुखं प्राप्स्यन्ति पाण्डवाः ।३०। धर्मापेक्षी नरो नित्यं सर्वत्र लभते सुखम् । प्रेत्य भावे च कल्याणं

तू इनसे सन्धिके लिये निषेध करदेगा तो तू युद्धमें जीत नहीं सकेगा ॥ २४ ॥ सब धनुषधारियोंमें अग्रगण्य श्रीकृष्णने, दुर्योधनसे विनय भरे वचन कहे थे, तथापि दुर्योधनने अन्यायसे उनके वचनोंका मान नहीं किया ॥ २५ ॥ मेरी मतिको न मान कर कालसे खिंचेहुए दुर्योधनने दुःशासन और कर्णकी ही बात मानी उस समय ही मैंने समझा था, कि–घोर संहार होगा २६ जब दुर्योधन जुआ खेलनेलगा, उस समय मैं ऐसा होनेदेना नहीं चाहता था, विदुर भी जुएको बुरा कहते थे, जयद्रथ और भीष्म भी जुएको नहीं चाहते थे ॥ २७ ॥ और हे सञ्जय ! शल्य, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य भी जुएको अच्छा नहीं कहते थे ॥ २८ ॥ यदि मेरा पुत्र उनकी बातको मानकर चलता तो जाति, मित्र, और सुहृदोंके साथ चिरकाल तक सुखसे जीवन बिताता ॥ २९ ॥ (मैंने कहा था, कि–) पाण्डव सरलस्वभाव मधुरभाषी जाति और बान्धवोंसे मधुर वाणीमें बोलनेवाले, कुलीन, मान्य तथा बुद्धिमान् हैं, अतः वे तो सुखही पावेंगे ॥ ३० ॥ (क्योंकि–) धर्मात्मा पुरुष यहाँ

प्रसादं प्रतिपद्यते ॥ ३१ ॥ अर्हन्ति पृथिवीं भोक्तुं समर्थाः साधनेपि च । तेषामपि समुद्रान्ता पितृपैतामही मही ॥ ३२ ॥ नियुज्यमानाः स्थास्यन्ति पाण्डवा धर्मवर्त्मनि । संति मे ज्ञातयस्तात येषां श्रोष्यन्ति पाण्डवाः ॥ ३३ ॥ शल्यस्य सोमदत्तस्य भीष्मस्य च महात्मनः । द्रोणस्याथ विकर्णस्य वाह्लीकस्य कृपस्य च ॥ ३४ ॥ अन्येषाञ्चैव वृद्धानां भरतानां महात्मनाम् । त्वदर्थं ब्रुवतां तात करिष्यन्ति वचो हितम् ॥ ३५ ॥ कं वा त्वं मन्यसे तेषां यस्तान् ब्रूयादतोन्यथा । कृष्णो धर्मं न सञ्जह्यात् सर्वे ते हि तदन्वयाः ॥ ३६ ॥ मयापि चोक्तास्ते वीरा वचनं धर्मसंहितम् । नान्यथा प्रकरिष्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥ ३७ ॥ इत्यहं विलपन् सूत बहुशः

सर्वत्र सुख पाता है और मरने पर कल्याण और मनुष्योंकी प्रीतिको पाता है ॥ ३१ ॥ पाण्डव समुद्रपर्यन्त पृथिवीको भी पा सकते हैं और उसके ऊपर राज्यभी करसकते हैं तथा समुद्र पर्यन्त की पृथ्वी उनके बापदादोंकी है ॥ ३२ ॥ यदि पाण्डवोंको राज्य से अलग भी करदिया जायगा, तो भी वे धर्मको नहीं छोडेंगे, हे पुत्र ! मेरे कितनेही ऐसे सम्बन्धी हैं. कि–जिनके कहनेको पांडव अवश्य मानेंगे ॥ ३३ ॥ हे पुत्र ! शल्य, सोमदत्त, महात्मा भीष्म द्रोण, विकर्ण, वाल्हीक, कृप तथा दूसरे भी भरतवंशी महात्मा वृद्ध पुरुष तेरे हितके लिये पाण्डवोंसे जो बातें कहेंगे, उन बातों को पाण्डव मानलेंगे अतः तू सन्धि करले ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तू पांडवोंमें ऐसा किसको देखता है, जो इन पुरुषोंके विरुद्ध चले श्रीकृष्ण कभी भी धर्मका त्याग नहीं करेंगे और वे सब श्रीकृष्ण के पीछे २ चलते हैं ॥ ३६ ॥ यदि मैं भी उन वीरोंसे धर्मकी बात कहूँगा तो वे उस बातसे फिरेंगे नहीं, क्योंकि–पांडव धर्मात्मा हैं ॥ ३७ ॥ हे सूत ! इस प्रकार गिडगिडा कर मैंने दुर्योधनको बहुत समझाया, परन्तु उसने एक न सुनी, अतः मैं

।पुत्रमुक्तवान् । न च मे श्रुतवान्मूढो मन्ये कालस्य पर्य्ययम् ।३८।
वृकोदरार्जुनौ यत्र वृष्णिवीरश्च सात्यकिः । उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो
युधामन्युश्च दुर्जयः ॥३९॥ धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्षः शिखण्डी चापरा-
जितः । अश्मकः केकयश्चैव क्षत्रधर्मा च सौमकिः ॥ ४० ॥
चैद्यश्च चेकितानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः । द्रौपदेया विराटश्च
द्रुपदश्च महारथः ॥ ४१ ॥ यमौ च पुरुषव्याघ्रौ मंत्री च मधुसूदनः ।
क एतान् जातु युध्येत लोकेस्मिन्वै जिजीविषुः ॥ ४२ ॥ दिव्य-
मस्त्रं विकुर्वाणान्प्रसहेद्वा परान्मम । अन्यो दुर्योधनात्कर्णाच्छकुने-
श्चापि सौवलात् ॥४३॥ दुःशासनचतुर्थानां नान्यं पश्यामि पंचमम् ।
येषामभीषुहस्तः स्याद्विष्वक्सेनो रथे स्थितः ॥ ४४ ॥ सन्नद्धश्चा-
र्जुनो योद्धा तेषां नास्ति पराजयः । तेषामथ विलापानां नायं दुर्यो-

समझता हूँ, कि–समयने ही पलटा खाया है ॥३८॥ (मैंने उसे फिर समझाया था, कि–) जहाँ पर भीम, अर्जुन, वृष्णिवीर सात्यकि, उत्तमौजा, पञ्चालका राजा दुर्जय युधामन्यु, दुर्धर्ष धृष्टद्युम्न, अपराजित शिखंडी, अश्मक, केकय, क्षत्रधर्मा सौमकि चैद्य, चेकितान, काश्यका पुत्र अभिभू, द्रौपदीके पाँचों पुत्र महारथी विराट और द्रुपद, पुरुषव्याघ्र नकुल तथा सहदेव हों तथा मंत्री श्रीकृष्ण हों तहाँ इतने योधाओंसे, जीवित रहनेकी इच्छा वाला कौन पुरुष लड़े ॥ ३९—४२ ॥ दिव्य अस्त्रोंको चलातेहुए इन शत्रुओंकी टक्करको सहनेवाला दुर्योधन, कर्ण, सुवलपुत्र शकुनि और चौथे दुःशासनके सिवाय कौरवसेनामें पाँचवाँ वीर मुझे नहीं दीखता, जिनकी ओर श्रीकृष्ण हाथमें घोड़ोंकी रासें लेकर रथपर बैठते हैं और जिनके पास अर्जुनसा शस्त्र बाँधकर तयार रहनेवाला योधा है, उनकी पराजय हो ही नहीं सकती, इसप्रकार मैंने दुर्योधनके सामने विलाप किये परन्तु दुर्योधनने ध्यान ही नहीं दिया ॥ ४३–४५ ॥ तू

धनः स्मरेत् ॥ ४५ ॥ हतौ हि पुरुषव्याघ्रौ भीष्मद्रोणौ निशम्य वै । तेषां विदुरवाक्यानामुक्तानां दीर्घदर्शिनात् ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वेमां फलनिर्वृत्तिं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः । सेनां दृष्ट्वाभिभूतां मे शैनेयेनार्जुनेन च ॥ ४७ ॥ शून्यान्दृष्ट्वा रथोपस्थान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः । हिमात्यये यथा कक्षं शुष्कं वातेरितो महान् ॥४८॥ अग्निर्दहेत्तथा सेनां मामिकां स धनञ्जयः । आचक्ष्व मम तत्सर्वं कुशलो ह्यसि संजय ॥ ४९ ॥ यदुपायात सायाह्ने कृत्वा पार्थस्य किल्बिषम् । अभिमन्यौ हते तात कथमासीन्मनो हि वः ॥ ५० ॥ न जातु तस्य कर्माणि युधि गाण्डीवधन्वनः । अपकृत्य महत्तात सोढुं शक्ष्यंति मामकाः ॥५१॥ किन्नु दुर्योधनः कृत्यं कर्णः कृत्यं किमब्रवीत् । दुःशासनः सौबलश्च तेषामेवं गतेष्वपि ॥ ५२ ॥ सर्वेषां

कहता है, कि-पुरुषव्याघ्र भीष्म और द्रोण मारेगए अतः दीर्घदर्शी विदुरके भविष्यको जतानेवाले वचनोंका इसप्रकार परिणाम देखकर तथा अर्जुन और सात्यकिसेहुए सेनाके तिरस्कारको देखकर मैं समझता हूँ, कि-मेरे पुत्र शोक कररहे होंगे ॥ ४६-४७ ॥ हाय ! हाय ! मुझे यह निश्चय है, कि-रथोंके भीतरी भागोंको योधाओंसे शून्य देखकर मेरे पुत्र रोरहे होंगे, ग्रीष्मऋतुमें सूखी घासको भस्मकर डालनेवाली अग्निकी समान, अर्जुन मेरी सेनाको भस्म करे डालता होगा, हे सञ्जय ! तू कथा कहनेमें चतुर है, अतः मुझे सब वृत्तान्त सुना ॥ ४८-४९ ॥ हे तात ! जब तुम अभिमन्युको मारकर अर्जुनका अपराध करके संध्याके समय छावनीमें आगए थे, उस समय तुम्हारे चित्तमें क्या उथल पुथल होरही थी ? ॥ ५० ॥ मेरे पुत्र गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनका बड़ाभारी अपराध करके उसके पराक्रमको युद्धमें नहीं सहसकते होंगे, यह मेरा निश्चय है ॥ ५१ ॥ अर्जुनका अपराध करनेके अनन्तर दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनिने क्या२

समवेतानां पुत्राणां मम संजय । यद्वृत्तं तात संग्रामे मंदस्यापनयैर्भृशम् ॥ ५३ ॥ लोभानुगस्य दुर्बुद्धेः क्रोधेन विकृतात्मनः । राज्यकामस्य मूढस्य रागोपहतचेतसः । दुर्नीतं वा सुनीतं वा तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

सञ्जय उवाच । हंत ते सम्प्रवक्ष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शवान् । शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा तव ह्यपनयो महान् ॥ १ ॥ गतोदके सेतुबन्धो यादृक् तादृगयन्तव । विलापो निष्फलो राजन मा शुचो भरतर्षभ ॥ २ ॥ अनतिक्रमणीयोयं कृतान्तस्याद्भुतो विधिः । मा शुचो भरतश्रेष्ठ दिष्टमेतत् पुरातनम् ॥३॥ यदि त्वं हि पुरा द्यूतात् कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । निवर्त्तयेथाः पुत्रांश्च न त्वां व्यसनमा-

उपाय करनेको कहा था, यह भी सुना ? मेरे मूर्ख पुत्रके अन्याय से, हे सञ्जय ! संग्राममें इकट्ठेहुए मेरे सब पुत्रोंने क्या किया ? लोभी दुर्बुद्धि, क्रोधसे व्याकुलचित्त, राज्यलिप्सु, मदसे उन्मत्त दुर्योधनके कियेहुए भले बुरे सब कर्मोंको मुझे सुना॥५२-५४॥

पिचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८५ ॥ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! मैंने सब वृत्तान्त प्रत्यक्ष देखा है, अतः मैं तुम्हें सब सुनाऊँगा, तुम स्थिर होकर सुनो, तुमने भी इस विषयमें बडा अन्याय किया है॥ १ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा अब विलाप करना, जल सूख जाने पर पुल बाँधनेकी समान, निरर्थक है अतः हे भरतश्रेष्ठ ! तुम अब शोक न करो२ हे भरतश्रेष्ठ ! इस कालकी अद्भुत घटनाको कोई नहीं पलट सकता, तुम्हारे पूर्वजन्मके कर्मोंका परिपाक ही ऐसा होगा, अतः तुम्हें शोक करना उचित नहीं है ॥३॥ यदि तुम पहिलेसे ही कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर और दुर्योधनको जुएसे हटा देते,तो तुम्हारे

व्रजेत् ॥ ४ ॥ युद्धकाले पुनः प्राप्ते तदैव भवता यदि । निगृहीताः स्युः संरब्धा न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ५ ॥ दुर्योधनं चाविधेयं बध्नीतेति पुरा यदि । कुरूनचोदयिष्यस्त्वं न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ६ ॥ न ते बुद्धिव्यभीचारमुपलप्स्यन्ति पाण्डवाः । पञ्चाला वृष्णयः सर्वे ये चान्येपि नराधिपाः ॥ ७ ॥ स कृत्वा पितृकर्म त्वं पुत्रं संस्थाप्य सत्पथे । वर्तेथा यदि धर्मेण न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ८ ॥ त्वन्तु प्राज्ञतमो लोके हित्वा धर्मं सनातनम् । दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्चान्वगामतम् ॥ ९ ॥ तत्ते विलपितं सर्वं मया राजन्निशामितम् । अर्थे निविशमानस्य विषमिश्रं यथा मधु ॥ १० ॥ नामन्यत तदा कृष्णो राजानं पाण्डवं पुरा । न भीष्मं नैव च द्रोणं यथा त्वां मन्यतेऽच्युतः ॥ ११ ॥ अमानात् स यदा तु त्वां राज-

---

ऊपर यह दुःख न पड़ता ॥ ४ ॥ युद्धका अवसर आने पर भी यदि तुमने क्रोधमें भरेहुए पुत्रोंको युद्ध करनेसे रोका होता तो तुम्हारे ऊपर यह आपत्ति न पड़ती ॥ ५ ॥ यदि तुमने पहिले ही कौरवोंको आज्ञा दी होती, कि-मर्यादाके बाहर चलनेवाले दुर्योधनको कैद करलो और उन्होंने उसको कैद करलिया होता, तो तुम्हें ऐसा दुःख न भुगतना पड़ता ॥ ६ ॥ (इनमेंका एक भी काम यदि तुमने किया होता तो) पाण्डव, पाञ्चाल, वृष्णि तथा और राजे भी तुम्हारी बुद्धिकी विषमताका अनुभव न करते ॥ ७ ॥ यदि तुम पिताके धर्मका पालन करतेहुए अपने पुत्रको सन्मार्गमें स्थापित करते तो तुम्हारे ऊपर यह दुःख न पड़ता ॥ ८ ॥ तुम परम बुद्धिमान् हो तो भी तुमने धर्मको तिलाञ्जलि देकर दुर्योधन और कर्णकी बात मानली ॥ ९ ॥ इस कारण हे राजन् ! आपका जो सब विलाप आज मैंने सुना है, यह केवल लोभसे है और विष मिले शहदकी समान है ॥ १० ॥ अच्युत श्रीकृष्ण पहिले जितना तुम्हारा मान करतेथे उतना मान

धर्माद्धश्च्युतम् । तदा प्रभृति कृष्णस्त्वां न तथा बहु मन्यते १२ परुषाण्युच्यमानांश्च यथा पार्थानुपेक्षसे । तस्यानुबन्धः प्राप्तस्त्वां पुत्राणां राज्यकामुक ॥ १३ ॥ पितृपैतामहं राज्यमपवृत्तं तदानघ । अथ पार्थैर्जितां कृत्स्नां पृथिवीं प्रत्यपद्यथाः ॥ १४ ॥ पाण्डुना निर्जितं राज्यं कौरवाणां यशस्तथा । ततश्चाप्यधिकं भूयः पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥ १५ ॥ तेषां तत्तादृशं कर्म त्वामासाद्य सुनिष्फलम् । यत् पित्र्याद् भ्रंशिता राज्यात्त्वयेहामिषगृद्धिना ॥१६॥ यत् पुनर्युद्धकाले त्वं पुमान् गर्हयसे नृप । बहुधा व्याहरन्दोषान्न तदद्योपपद्यते ॥ १७ ॥ न हि रक्षन्ति राजानो युध्यन्तो जीवितं

पहिले युधिष्ठिरका और भीष्मका भी नहीं करते थे११परन्तु जब श्रीकृष्णने जाना कि-तुम राजधर्मसे भ्रष्टहोगयेहो,तबसे वह तुम्हारा पहिलासा मान नहीं करते१२ तुम्हारे पुत्रोंने पाण्डवोंको गालियें दीं,उसकी तुमने उपेक्षा की,और उनको डाटा नहीं क्योंकि-तुम्हे तो पुत्रको राज दिलवानेकी ही इच्छा थी अब उसका ही तो फल मिला है अतः शोक क्यों करते हो ? ॥१३॥ हे अनघ ! तुमने अपने पुत्रोंको रोका नहीं, इससे ही तुम्हारे पूर्वजोंका राज्य आज संशयमें पडगया है, अब तो पाण्डव इस सब पृथिवीको अवश्य ही जीतलेंगे, चाहे पीछेसे तुम्हें ही देदें, तब तुम भलेही राज्य करना ॥ १४ ॥ राजा पाण्डुने राज्यको जीतलिया था और यशभी पाया था उसही राज्य और यशको कौरवोंने ग्रहण किया है और धर्मात्मा पाण्डवोंने यश और राज्यको और भी अधिक बढाया है ॥ १५ ॥ परन्तु उनका वह सब पराक्रम तुम्हारे सम्बन्धसे मट्टीमें मिलगया है क्योंकि-तुमने राज्यके लोभसे उनको पिताके राज्यसे हटा दिया है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! अब युद्धका अवसर आने पर तुम अपने पुत्रोंकी निन्दा करते हो और उनके बहुतसे अवगुणोंको गाते हो, परन्तु अब इससे क्या लाभ

रणे । चमूं विगाह्य पार्थानां युध्यंते क्षत्रियर्षभाः ॥ १८ ॥ यान्तु कृष्णार्जुनौ सेनां यां सात्यकिवृकोदरौ । रक्षेरन् को नु तां युध्ये-च्चमूमन्यत्र कौरवैः ॥ १९ ॥ येषां योद्धा गुडाकेशो येषां मन्त्री जनार्द्दनः। येषां च सात्यकिर्योद्धा येषां योद्धा वृकोदरः २० को हि तान् विषहेद्योद्धुं मर्त्यधर्मा धनुर्धरः । अन्यत्र कौरवेयेभ्यो ये वा तेषां पदानुगाः ॥ २१ ॥ यावत्तु शक्यते कर्त्तुमन्तरङ्गैर्जनाधिपैः । क्षत्रधर्मरतैः शूरैस्तावत् कुर्वन्ति कौरवाः ॥ २२ ॥ यथा तु पुरुष-व्याघ्रैर्युद्धं परमसङ्कटम् । कुरूणां पाण्डवैः सार्धं तत्सर्वं शृणु तत्त्वतः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संजयवाक्ये
षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

है ? आज ऐसा करना व्यर्थ है ॥ १७ ॥ इस युद्धमें लड़नेवाले राजे अपने प्राणोंकी रक्षा नहीं कररहे हैं परन्तु प्राणान्त होने तक लडरहे हैं, बड़े२ क्षत्रिय राजे पाण्डवोंकी सेनामें आकर रणमें लडरहे हैं ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण, अर्जुन, सात्यकि और भीमसेन जिस सेनाके रक्षक हों, उस सेनासे कौरवोंके सिवाय दूसरा कौन (मूढमति) लड़ेगा ? ॥ १९ ॥ जिनका सेनानायक अर्जुन है, जिनके मन्त्री श्रीकृष्ण हैं, सात्यकि और भीमसेन जिनके योधा हैं, ऐसे पाण्डवोंके साथ कौरव तथा उनके अनु-यायियोंके सिवाय और कौनसा धनुषधारी लडसकता है? २०-२१ क्षत्रियके धर्मका पालन करनेवाले और समयको पहचाननेवाले वीर राजे जितना करसकते हैं कौरव उससे कम नहीं कररहे हैं ॥ २२ ॥ पुरुषव्याघ्र पाण्डवोंका कौरवोंके साथ परमसंकट आनेवाला युद्ध जैसे हुआ है, वह सब मैं तुमको ज्योंका त्यों सुनाता हूँ, सुनिये, ॥ २३ ॥ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८६॥

सञ्जय उवाच । तस्यां निशायां व्युष्टायां द्रोणः शस्त्रभृतां वरः । स्वान्यनीकानि सर्वाणि प्राक्रामद् व्यूहितुं ततः ॥ १॥ शूराणां गर्जतां राजन् संक्रुद्धानाममर्षिणाम् । श्रूयन्ते स्म गिरश्चित्राः परस्परवधैषिणाम् ॥ २ ॥ विस्फार्य च धनूंष्यन्ये ज्याः परे परिमृज्य च । विनिःश्वसन्तः प्राक्रोशन् क्वेदानीं स धनञ्जयः ॥३॥ विकोशान् सुत्सरूनन्ये कृतधारान् समाहितान् । पीतानाकाशसंकाशानसीन् केचिच्च चिक्षिपुः ॥ ४ ॥ चरन्तस्त्वसिमार्गांश्च धनुर्मार्गांश्च शिक्षया । संग्राममनसः शूरा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ५ सघण्टाश्चन्दनादिग्धाः स्वर्णवज्रविभूषिताः । समुत्क्षिप्य गदाश्चान्ये पर्यपृच्छन्त पाण्डवम् ॥ ६ ॥ अन्ये वलमदोन्मत्ता परिघैर्वाहुशालिनः । चक्रुः सम्बाधमाकाशमुच्छ्रितेन्द्रध्वजोपमैः ॥ ७ ॥

सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् ! रात्रिके बीत जानेपर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपनी सब सेनाको चक्रशकटव्यूहाकारमें खड़ी करनेलगे ॥१॥ हे राजन् ! क्रोधमें भरे असहनशील एक दूसरेका वध चाहनेवाले गर्जते हुए शूरोंकी विचित्र प्रकारकी वाणियें सुनाई आनेलगीं ॥२॥ उस समय कोई धनुषको तानकर और कोई प्रत्यञ्चाको सूधीकर दम चढ़ाकर जोरसे चिल्लानेलगे, कि–वह धनञ्जय इस समय कहाँ है ॥ ३ ॥ उस समय कितने ही वीर सुन्दर मूँठवाली, धारदार, पानी पिलाईहुई, आकाशकी समान निर्मल, तलवारोंको घुमानेलगे ॥ ४ ॥ सहस्रों शूर युद्ध करनेकी इच्छासे अभ्यासके अनुसार तलवार चलानेकी चातुरी और धनुषधारीपन दिखानेलगे ॥ ५ ॥ उस समय कितने ही योधा घुँघरू बँधीहुई, चन्दनसे चर्चित, सुवर्ण और हीरोंसे जड़ी गदाओंको ऊँची करके बूझनेलगे, कि–पाण्डव कहाँ हैं ? ॥ ६ ॥ वल और मदसे उद्धत वहुतसे वाहुवलशाली योधा इन्द्रध्वजकी समान ऊँचे उठहुए परिघोंको लेकर चलरहे थे, उनसे आकाश

नानाप्रहरणैश्चान्ये विचित्रस्रगलंकृताः । संग्रामगतमनसः शूरास्तत्र व्यवस्थिताः ॥ ८ ॥ क्वार्जुनः क्व स गोविंदः क्व च मानी वृकोदरः । क्व च ते सुहृदस्तेषामासन्नेवं रणे तदा ॥ ९ ॥ ततः शंखमुपाध्माय त्वरयन् वाजिनः स्वयम् । इतश्चेतश्च तान् रचयन् द्रोणश्चरति वेगितः ॥ १० ॥ तेष्वनीकेषु सर्वेषु स्थितेष्वाहवनन्दिषु । भारद्वाजो महाराज जयद्रथमथाब्रवीत् ॥ ११ ॥ त्वं चैव सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव महारथः । अश्वत्थामा च शल्यश्च वृषसेनः कृपस्तथा ॥ १२ ॥ शतं च अश्वसहस्राणां रथानामयुतानि षट् । द्विरदानां प्रभिन्नानां सहस्राणि चतुर्दश ॥ १३ ॥ पदातीनां सहस्राणि दंशितान्येकविंशतिः । गव्यूतिषु त्रिमात्रासु मामनासाद्य तिष्ठत ॥ १४ ॥ तत्रस्थं त्वां न संसोढुं शक्ता देवाः सवासवाः ।

छागया था ॥७। और बहुतोंने नानाप्रकारके शस्त्रोंको ऊँचा कर लिया था ये सब वीर चित्र विचित्र पुष्पमालाएं पहिर रहे थे, और संग्राम करनेकी इच्छासे जिधर तिधर टोलियें बाँधकर खड़े थे ८ पाण्डवोंकी ओरके योधाओंको ढूंढ़के लिये बुलातेहुए वे कहरहे थे कि–अरे ! वह अर्जुन कहाँ है ? वह श्रीकृष्ण कहां है ? अभिमानी वृकोदर कहाँ है ? और तुम्हारे सगे सम्बन्धी कहाँ हैं ? इसप्रकार पुकार पड़रही थी ॥ ९ ॥ इस समय द्रोणाचार्य शंख बजाकर सेनामें घोड़ोंको वेगसे दौड़ाकर सेनाको चक्रशकटव्यूह के आकारमें खड़ी करतेहुए चारों ओर घूमरहे थे ॥ १० ॥ जब युद्धमें आनन्द देनेवाली सब सेनाएँ यथास्थान पर खड़ी होगईं, तब हे ! महाराज द्रोणाचार्यने जयद्रथसे कहा, कि ।११। तू सोमदत्ति, महारथी कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन, तथा कृपाचार्यके साथ एक लाख घोड़े, साठ हजार रथ, चौदह हजार मद टपकातेहुए हाथी, और इक्कीस सहस्र कवचधारी पैदलोंको लेकर मेरे पीछे छः कोसकी दूरी पर खड़ा होजा ॥ १२-१४ ॥

किं पुनः पाण्डवाः सर्वे समाश्वसिहि सैन्धव ॥ १५ ॥ एवमुक्तः समाश्वस्तः सिन्धुराजो जयद्रथः । सम्प्रायात् सह गान्धारैर्वृतस्तैश्च महारथैः ॥ १६ ॥ वर्मिभिः सादिभिर्यत्तैः प्रासपाणिभिरास्थितैः । चामरापीडिनः सर्वे जाम्बूनदविभूषिताः ॥१७॥ जयद्रथस्य राजेन्द्र हयाः साधुप्रवाहिनः । ते चैव सप्तसाहस्रास्त्रिसाहस्राश्च सैन्धवाः ॥ १८ ॥ मत्तानां सुविरूढानां हस्त्यारोहैर्विशारदैः । नागानां भीमरूपाणां वर्मिणां रौद्रकर्मिणाम् ॥ १९ ॥ अध्यर्धेन सहस्रेण पुत्रो दुर्मर्षणस्तव । अग्रतः सर्वसैन्यानां युध्यमानो व्यवस्थितः ॥ २० ॥ ततो दुःशासनश्चैव विकर्णश्च तवात्मजौ । सिन्धुराजार्थसिद्ध्यर्थमग्रानीके व्यवस्थितौ ॥२१॥ दीर्घो

तहाँ खडा रहने पर तुम्है इन्द्रादि देवता भी नहीं हरा सकेंगे फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है। हे सिन्धुराज! तू धीरज रखना डरना नहीं १५ जब द्रोणाचार्यने जयद्रथसे ये बातें कहकर उसको ढाढ़स दिया, तब वह गान्धारदेशके महारथियोंसे तथा कवचधारी और प्रास नामक शस्त्रको धारण करनेवाले, सावधान घुडसवारोंसे घिरकर (रणभूमिमें नियत कियेहुए स्थानको) चलदिया हे राजेन्द्र! जयद्रथके सब घोड़े सुवर्णके गहने तथा सुन्दर केशवाले चँवरोंकी कलगियोंसे विभूषित थे और खडाखडाहट न हो इसप्रकार धीमी चालसे चलनेवाले थे, ऐसे सात सहस्र और तीन सहस्र घोड़े जयद्रथके साथ चलते थे जो आगेको बढ़नेमें और पीछेको हटनेमें शिक्षा पायेहुए थे ॥ १८ ॥ तुम्हारा पुत्र दुर्मर्षण युद्ध करनेके लिये सब सेनाके अग्रभागमें खडा होगया उसके साथ मदमत्त, भयानक दीखनेवाले, तथा भयङ्कर काम करनेवाले, कवचधारी पन्द्रहसौ हाथी थे और उनके ऊपर अतिचतुर महावत बैठे थे ॥ १९ ॥ २० ॥ तदनन्तर जयद्रथका कार्य सिद्ध करनेको तुम्हारे दोनों पुत्र दुःशासन और

द्वादशगव्यूतिः पश्चार्द्धे पञ्चविस्तृतः । व्यूहस्तु चक्रशकटो भारद्वाजेन निर्मितः ॥ २२ ॥ नानानृपतिभिर्वीरैस्तत्र तत्र व्यवस्थितैः । रथाश्वगजपत्त्योघैर्द्रोणेन विहितः स्वयम् ॥ २३ ॥ पश्चार्द्धे तस्य पद्मस्तु गर्भव्यूहः सुदुर्भिदः । सूचीपद्मस्य गर्भस्थो गूढो व्यूहः कृतः पुनः ॥२४॥ एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य द्रोणो व्यवस्थितः । सूचीमुखे महेष्वासः कृतवर्मा व्यवस्थितः ॥ २५ ॥ अनन्तरञ्च काम्बोजो जलसन्धश्च मारिष । दुर्योधनश्च कर्णश्च तदनन्तरमेव च ॥२६॥ ततः शतसहस्राणि योधानामनिवर्त्तिनाम् । व्यवस्थितानि सर्वाणि शकटे मुखरक्षिणाम् ॥ २७ ॥ तेषाञ्च पृष्ठतो राजा बलेन महता वृतः । जयद्रथस्ततो राजा सूचीपार्श्वे व्यवस्थितः ॥ २८ ॥ शकटस्य तु राजेन्द्र भारद्वाजो मुखे स्थितः । अनु तस्याभवद्भोजो जुगोपैनं

विकर्ण सेनाके अग्रभागमें खड़े होगये ॥ २१ ॥ द्रोणाचार्यने अपने स्थान पर खड़ेहुए रथी, हाथीसवार और पैदलोंको तथा दूसरे अनेकों शूरवीरोंका चक्रशकटव्यूह बनाकर खड़ा करदिया यह व्यूह चौबीस कोस लम्बा था, उसके पिछले आधे भागमें दश कोस फैलावका शकट बनाया था, और अभेद्य पद्माकार चक्रशकटव्यूहके पिछले भागके मध्यमें सुईकी समान छिपाहुआ एक गुप्त सूचीव्यूह बनाया इसप्रकार महाव्यूह रचकर द्रोणाचार्य उसके अगले भागमें खड़े होगये, महाधनुषधारी कृतवर्मा पद्मगर्भमें बनेहुए सूचीव्यूह पर खड़ा होगया, उसके पीछे काम्बोज और जलसंध खड़े होगये, उनसे पीछे कर्ण और दुर्योधन खड़े हुए ॥ २२-२६ ॥ रणमेंसे पीछेको न हटनेवाले एक लाख योधा शकटव्यूहके मुखकी रक्षा करते थे. शकटव्यूहकी रक्षा करनेवाले इन योधाओंकी पिछली ओर और सूचीव्यूहके समीपमें राजा जयद्रथ बडीभारी सेनासे घिरकर खडा होगया ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे राजन् ! द्रोणाचार्य शकटव्यूहके अग्रभागमें खड़े थे, और उनके

ततः स्वयम् ॥ २९ ॥ श्वेतवर्मा वरोष्णीषो व्यूढोरस्को महाभुजः । धनुर्विस्फारयन् द्रोणस्तस्थौ क्रुद्ध इवान्तकः ॥ ३० ॥ पताकिनं शोणहयं वेदीकृष्णाजिनध्वजम् । द्रोणस्य रथमालोक्य प्रहृष्टाः कुरवोऽभवन् ॥ ३१ ॥ सिद्धचारणसंघानां विस्मयः सुमहानभूत् । द्रोणेन विहितं दृष्ट्वा व्यूहं क्षुब्धार्णवोपमम् ॥ ३२ ॥ सशैलसागरवनां नानाजनपदाकुलाम् । ग्रसेद् व्यूहः क्षितिं सर्वामिति भूतानि मेनिरे ॥ ३३ ॥ वहुरथमनुजाश्वपत्तिनागं प्रतिभयनिःस्वनमद्भुतानुरूपम् । अहितहृदयभेदनं महद्वै शकटमवेक्ष्य कृतं ननन्द राजा ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कौरवव्यूहनिर्माणे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

पीछेही कृतवर्मा खड़े हो जयद्रथकी रक्षा कररहे थे ॥ २९ ॥ द्रोणाचार्य श्वेत कवच, श्वेत वस्त्र और श्वेत पगडी धारण किये हुए थे, उनका हृदय चौडा था, और वह धनुषको टंकारतेहुए क्रोधित कालकी समान शकटव्यूहके मुहाने परही खड़े थे ॥ ३० ॥ लाल घोडोंवाले, वेदी, तथा कृष्णमृगके चमड़े के चिन्हकी ध्वजावाले द्रोणाचार्यके रथको देखकर कौरव हर्षमें भरगए ॥ ३१ ॥ सिद्धपुरुष और चारण क्षोभित महासागरकी समान द्रोणाचार्यके द्वारा व्यूहाकारमें रची हुई वड़ीभारी सेनाको देखकर वडे आश्चर्यमें होगए॥३२॥सब प्राणी यह समझने लगे कि-यह व्यूह तो पर्वत वन और अनेकों देशोंसहित समस्त पृथ्वीको ही निगल जायगा ॥ ३३ ॥ इसप्रकार द्रोणाचार्यके द्वारा वहुतसे रथ, मनुष्य, घोडे, पैदल और हाथियोंके वनाये भयङ्कर गर्जना करते आश्चर्यजनक आकारवाले और शत्रुओंके हृदयको चीरनेवाले वडेभारी शकटव्यूहको देखकर राजा दुर्योधन वडा ही प्रसन्न हुआ ॥३४॥ सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जय उवाच । ततो व्यूढेष्वनीकेषु समुत्क्रुष्टेषु मारिष । ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेषु नदत्सु च ॥१॥ अनीकानाञ्च संह्रादे वादित्राणां च निःस्वने । प्रध्मापितेषु शंखेषु सन्नादे लोमहर्षणे ॥२॥ अभिहारयत्सु शनकैर्भरतेषु युयुत्सुषु । रौद्रे मुहूर्ते संप्राप्ते सव्यसाची व्यदृश्यत ॥ ३ ॥ बकानां वायसानां च पुरस्तात् सव्यसाचिनः । बहुलानि सहस्राणि प्राक्रीडंस्तत्र भारत ॥४॥ मृगाश्च घोरसन्नादाः शिवाश्चाशिवदर्शनाः । दक्षिणेन प्रयातानामस्माकं प्राणदंस्तदा ॥ ५ ॥ सनिर्घाता ज्वलन्त्यश्च पेतुरुल्काः सहस्रशः । चचाल च मही कृत्स्ना भये घोरे समुत्थिते ॥ ६ ॥ विष्वग्वाताः सनिर्घाता रूक्षाः शर्करकर्षिणः । ववुरायाति कौन्तेये संग्रामे समुपस्थिते ॥ ७ ॥ नाकुलिश्च शतानीको धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! तदनन्तर सेनाके व्यूहरचनामें खडी होजाने पर, नगाडों पर चोट पडनेलगी और मृदङ्ग बजने लगे तथा सेनाएं गर्जने लगीं ॥ १ ॥ सेनाओंका कोलाहल होने लगा, बाजों की ध्वनि होनेलगी और शंखोंके बजनेपर लोमहर्षण नाद होनेलगा ॥ २ ॥ युद्ध करनेकी इच्छावाले भरतवंशी राजे धीरे२ प्रहार करनेकी तयारी करनेलगे, उस ही समय रुद्र मुहूर्त आने पर सव्यसाची अर्जुनने रणभूमिमें दर्शन दिया ॥३॥ हे भारत ! उस समय अर्जुनके रथके पास सहस्रों बगले और कौए उड़नेलगे ॥४॥ और घोर शब्द करनेवाले मृग तथा अशुभ दर्शनवालीं गीदड़ियें हमारी सेनाके दाहिनी ओर भयङ्कर शब्द करनेलगीं ॥ ५ ॥ तुम्हारी सेनामें कड़कड़ शब्द करतीहुई और धकधक जलतीहुई सहस्रों उल्काएं आकाशमेंसे नीचे गिरनेलगीं सम्पूर्ण पृथ्वी काँपनेलगी और चारों ओर घोरभय दीखनेलगा ६ और भयानक वज्रकेसा शब्द करताहुआ रूखा पवन चारों ओर कङ्कड़ियोंको बरसाता हुआ चलनेलगा, अर्जुनके संग्राममें

पाण्डवानामनीकानि प्राज्ञौ तौ व्यूहतुस्तदा ॥ ८ ॥ ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतेन च । त्रिभिरश्वसहस्रैश्च पदातीनां शतैः शतैः ॥ ९ ॥ अध्यर्द्धमात्रे धनुषां सहस्रे तनयस्तव । अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थित्वा दुर्मर्षणोब्रवीत् ॥ १० ॥ अद्य गाण्डीवधन्वानं तपन्तं युद्धदुर्मदम् । अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥११॥ अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनञ्जयममर्षणम् । विषक्तं मयि दुर्द्धर्षमश्मकूटमिवाश्मनि ॥१२॥ तिष्ठध्वं रथिनो यूयं संग्राममभिकांक्षिणः । युध्यामि संहतानेतान्यशो मानं च वर्द्धयन् ॥ १३ ॥ एवं ब्रुवन् महाराज महात्मा स महामतिः । महेष्वासैर्वृतो राजन् महेष्वासो व्यवस्थितः ॥ १४ ॥ ततोन्तक इव क्रुद्धः सवज्र इव वासवः ।

आते ही यह सब उपद्रव आरम्भ होगए ॥ ७ ॥ नकुलका पुत्र शतानीक और पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्न इन दोनों विद्वानोंने पांडवोंकी सेनाकी व्यूहरचना की थी ॥ ८ ॥ तुम्हारा पुत्र दुर्मर्षण एक सहस्र रथ, सौ हाथी, तीन सौ घोडे और दश सहस्र पैदलोंके साथ पाँच सौ धनुष, भूमिको घेरकर सब सेनाके आगे खड़ा होगया और बोला कि–॥ ९–१० ॥ जैसे किनारा समुद्रको रोके रहता है, तैसे ही मैं भी आज, सन्तप्त, युद्धदुर्मद गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनको आगे बढनेसे रोके रहूँगा ॥ ११ ॥ पत्थर का गोला जैसे पत्थरसे टकराता है, तैसेही क्रोधी धनञ्जयके साथ मैं युद्ध करूँगा, इसको देखना ॥ १२ ॥ ओ लडनेकी इच्छावाले रथियो ! तुम अभी खडे रहो ! अकेला मैं ही अपने मान तथा यशकी वृद्धि करताहुआ इन इकट्ठेहुए पाण्डवोंके सब योधाओंसे लडता हूँ ॥ १३ ॥ हे महाराज ! महामति महाधनुषधारी दुर्मर्षण यह कह महाधनुषधारियोंसे घिरकर रणके मुहाने पर खडा होगया ॥ १४ ॥ तुरन्त ही कोपमें भरेहुए कालकी समान वज्रधारी इन्द्रकी समान कालसे प्रेरित दण्डधारी असह्य मृत्युकी

दण्डपाणिरिवासह्यो मृत्युः कालेन चोदितः ॥ १५ ॥ शूलपाणि-
रिवाक्षोभ्यो वरुणः पाशवानिव । युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान् प्रध-
क्ष्यन् वै पुनः प्रजाः ॥ १६ ॥ क्रोधामर्षबलोद्धूतो निवातकवचां-
तकः । जयो जेता स्थितः सत्ये पारयिष्यन् महाव्रतम् ॥ १७ ॥
आमुक्तकवचः खड्गी जाम्बूनदकिरीटभृत् । शुभ्रमाल्याम्बरधरः
स्वङ्गदश्चारुकुण्डलः ॥ १८ ॥ रथप्रवरमास्थाय नरो नारायणा-
नुगः । विधुन्वन् गाण्डिवं संख्ये बभौ सूर्य इवोदितः ॥ १९ ॥
सोग्रानीकस्य महत इषुपाते धनञ्जयः । व्यवस्थाप्य रथं राजन्
शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २० ॥ अथ कृष्णोप्यसंभ्रान्तः पार्थेन
सह मारिष । प्राध्मापयत् पाञ्चजन्यं शंखप्रवरमोजसा ॥ २१ ॥
तयोः शंखप्रणादेन तव सैन्ये विशाम्पते । आसन् संहृष्टरोमाणः

समान, ॥ १५ ॥ अक्षोभ्य त्रिशूलपाणि शङ्करकी समान, पाश-
हस्त वरुणकी समान, तथा फिर प्रजाको भस्म करनेके लिये आते
हुए ज्वालावाले प्रलयकालके अग्निकी समान, प्रदीप्त क्रोध,
अमर्ष और बलसे उद्धत, निवातकवचोंका संहार करनेवाला, विज-
यकर्त्ता, सत्यवादी, महाप्रतिज्ञाको पूरी करनेवाला, कवच, खड्ग,
तथा सुवर्णके मुकुटको धारण करनेवाला, श्वेत पुष्पोंकी माला और
श्वेत वस्त्र धारण किये कानोंमें सुन्दर कुण्डल और हाथोंमें बाजू-
बन्द पहिरनेवाला नरमूर्त्ति अर्जुन, नारायणरूपी श्रीकृष्णके
साथ, बडे रथमें बैठकर गाण्डीव धनुषको घुमाताहुआ रणभूमिमें
आपहुँचा, उस समय वह उदय होतेहुए दूसरे सूर्यकी समान
शोभा पारहा था ॥ १६-१९ । हे महाराज ! प्रतापी अर्जुनने
महासेनाके अग्रभागमें एक बाणकी दूरी पर खडे होकर शंख
बजाया ॥ २० ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णने भी सावधान हो अपनी
शक्तिके अनुसार बल लगाकर पाञ्चजन्य नामक शंखको
बजाया ॥ २१ ॥ हे राजन् ! उन दोनोंकी शंखध्वनिसे तुम्हारी

कम्पिता गतचेतसः ॥ २२ ॥ यथा त्रस्यन्ति भूतानि सर्वाण्यशनिनिःस्वनात् । तथा शंखप्रणादेन वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥ २३ ॥ प्रसुस्रुवुः शकृन्मूत्रं वाहनानि च सर्वशः । एवं सवाहनं सर्वमाविग्नमभवद्बलम् ॥ २४ ॥ सीदन्ति स्म नरा राजन् शंखशब्देन मारिष । विसंज्ञाश्चाभवन् केचित् केचिद्राजन् वितत्रसुः ॥ २५ ॥ ततः कपिर्महानादं सह भूतैर्ध्वजालयैः । अकरोद्व्यादितास्यश्च भीषयंस्तत्र सैनिकान् ॥ २६ ॥ ततः शंखाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चानकैः सह । पुनरेवाभ्यहन्यन्त तव सैन्यप्रहर्षणाः ॥ २७ ॥ नानावादित्रसंह्रादैः क्ष्वेडितास्फोटिताकुलैः । सिंहनादैः समुत्कृष्टैः समाहूतैर्महारथैः २८ तस्मिंस्तु तुमुले शब्दे भीरूणां भयवर्धने । अतीवहृष्टो दाशार्हमब्रवीत् पाकशासनिः ॥२९॥ अष्टाशीतितमोऽध्यायः॥८८॥

सेनामें सब मनुष्योंके रुयें खडे होगये, शरीर काँपनेलगे और सब अचेतसे होगये ॥ २२ ॥ जैसे वज्रके गिरनेसे सब प्राणी घबड़ाजाते हैं तैसेही शंखोंके शब्दसे तुम्हारे सैनिक काँपने लगे २३ हाथी घोड़ोंके मलमूत्र निकल पडे इसप्रकार वाहनों सहित सब सेना व्याकुल होगई ॥ २४ ॥ और हे राजन् ! उन शंखोंके शब्दसे सब मनुष्य भयभीत होगए, उनमें कितनेही बेहोश होगए और कितनेही घबडागये ॥ २५ ॥ तदनन्तर तुम्हारी सेनाको डरानेके लिये अर्जुनकी ध्वजामें रहनेवाले वानरने ध्वजामें रहनेवाले सब प्राणियोंके साथ मुख फाडकर गर्जनाकी ॥ २६ ॥ दूसरी ओर तुम्हारी सेनाको हर्ष देनेवाले शंख, भेरी, मृदङ्ग, और नगाडे फिर बजनेलगे ॥ २७ ॥ अनेकों बाजोंकी ध्वनि होने लगी, भुजदण्डोंपर थपकियें पडने लगीं, सिंहनाद होनेलगे, और युद्धके लिये तुम्हारे योधा शत्रुपक्षके योधाओंको पुकारने लगे ॥ २८॥ डरपोकोंके भयको बढ़ानेवाले उस तुमुल शब्दके होने पर अर्जुनने परमप्रसन्न हो श्रीकृष्णसे कहा २९ अठासीवाँ अध्याय

अर्जुन उवाच। चोदयाश्वान् हृषीकेश यत्र दुर्मर्षणः स्थितः। एतद्भित्वा गजानीकं प्रवेक्ष्याम्यरिवाहिनीम् ॥१॥ सञ्जय उवाच। एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना। अचोदयद्धयांस्तत्र यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ॥ २ ॥ स सम्प्रहारस्तुमुलः सम्प्रवृत्तः सुदारुणः। एकस्य च बहूनाञ्च रथनागनरक्षयः ॥ ३ ॥ ततः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान्। परानवाकिरत् पार्थः पर्वतानिव नीरदः ४ ते चापि रथिनः सर्वे त्वरिताः कृतहस्तवत्। अवाकिरन् बाणजालैस्ततः कृष्णधनञ्जयौ ॥ ५ ॥ ततः क्रुद्धो महाबाहुर्वार्यमाणः परैर्युधि। शिरांसि रथिनां पार्थः कायेभ्योऽपाहरच्छरैः ॥ ६ ॥ उद्भ्रान्तनयनैर्वक्त्रैः सन्दष्टौष्ठपुटैः शुभैः। सकुण्डलशिरस्त्राणैर्वसुधा समकीर्यत ॥७॥ पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः।

अर्जुनने कहा कि–हे हृषीकेश! जहाँ दुर्मर्षण खड़ा हो उसही ओर घोड़ोंको लेचलिये कि-मैं उसकी हस्तिसेनाका संहारकर शत्रुसेनामें पहुँचजाऊँ ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् धृतराष्ट्र! इस प्रकार सव्यसाचीने कहा, तब महाबाहु भगवान् केशव जहाँ दुर्मर्षण खड़ा था तहाँ घोड़ोंको हाँककर रथको लेगए ॥ २ ॥ दोनों सेनाओंमें एक और बहुतोंके साथ दारुण और तुमुल युद्ध होनेलगा। तुरन्त ही हाथी, रथ तथा मनुष्योंका नाश होनेलगा॥३॥ जैसे जल बरसाने वाला मेघ पर्वतों पर जल बरसाता है, तैसे ही उस समय अर्जुन भी शत्रुओं पर बाण बरसाने लगा॥४॥ तुम्हारे सब रथीभी फुरतीसे चपल हाथवाले पुरुषकी समान श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने पर फैलपड़े॥५॥ जब अर्जुनको शत्रुओंने बाणवर्षा करनेसे रोका; तब महाबाहु अर्जुनने क्रोधमें भर कर बाणोंसे रथियोंके शिरोंको धड़से गिराना आरम्भ करदिया॥६॥ बाहर निकली हुई आँखोंवाले, दाँतोंसे ओठोंको पीसतेहुए, कुण्डल और पगड़ीवाले राजाओंके मस्तकोंसे पृथ्वी छागई ॥७॥ पृथ्वी

विनिकीर्णानि योधानां वदनानि चकाशिरे ॥ ८ ॥ तपनीयतनुत्राणा संसिक्ता रुधिरेण च । संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः सविद्युतः ॥ ९ ॥ शिरसां पततां राजन् शब्दोभूद्वसुधातले । कालेन परिपक्वानां तालानां पततामिव ॥ १० ॥ ततः कबन्धं किञ्चित्तु धनुरालंब्य तिष्ठति । किञ्चित् खड्गं विनिष्कृष्य भुजेनोद्यम्य तिष्ठति ॥ ११ ॥ पतितानि न जानन्ति शिरांसि पुरुषर्षभाः । अमृष्यमाणाः संग्रामे कौन्तेयं जयगृद्धिनः ॥ १२ ॥ हयानामुत्तमाङ्गैश्च हस्तिहस्तैश्च मेदिनी । बाहुभिश्च शिरोभिश्च वीराणां समकीर्यत ॥ १३ ॥ अयं पार्थः कुतः पार्थ एष पार्थ इति प्रभो । तत्र सैन्येषु योधानां पार्थभूतमिवाभवत् ॥ १४ ॥ अन्योन्यमपि चाजघ्नु-

---

पर पड़ेहुए योधाओंके मस्तक, छिन्नभिन्न हुए श्वेत कमलोंके वनोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ ८ ॥ सब योधा सुवर्णके कवच पहिर रहे थे और लोहूसे सराबोर होरहे थे, इसकारण बिजलीवाले मेघोंकी समान दीखते थे ॥ ९ ॥ हे पृथ्वीपते ! उस समय पृथ्वी पर गिरतेहुए शिरोंका ऐसा शब्द होरहा था जैसे काल पाकर पकेहुए तालके वृक्षोंके फलोंके गिरनेका टपाटप शब्द होता है १० इनमें किसी योधाका कबन्ध (धड) धनुषके सहारेसे खडा था, किसी योधाका कबन्ध म्यानसे तलवार खैंच भुजा ऊँची किये खडा था ॥ ११ ॥ अर्जुनको देखकर विजय चाहनेवाले वीर पुरुष ऐसे आवेशमें भरगए, कि-संग्राममें मस्तकोंके ढेरपडे हैं, यह भी न जानसके ॥ १२ ॥ घोडोंके शिर, हाथियोंकी सूँडें और वीरोंके शिर तथा भुजाओंसे पृथिवी भरगई ॥ १३ ॥ हे प्रभो ! तदनन्तर तुम्हारी सेनाके पुरुष मुग्ध होकर कहनेलगे, कि-अर्जुन यह है । अर्जुन कहाँ है !! अरे यह पार्थ खड़ा है !!! इसप्रकार उनकी दृष्टिमें सब जगत् अर्जुनमय होरहा था ॥ १४ ॥ कितने ही योधा कालसे मोहित हो सकल जगत्को पार्थमय जान आपसमें

रात्मानमपि चापरे । पार्थभूतममन्यन्त जगत् कालेन मोहिताः ॥१५॥ निष्टनन्तः सरुधिरा विसंज्ञा गाढवेदनाः । शयाना बहवो वीराः कीर्तयन्तः स्वबान्धवान् ॥१६॥ सभिन्दिपालाः सप्रासाः सशक्त्यृष्टिपरश्वधाः । सनिर्व्यूहाः सनिस्त्रिंशाः सशरासनतोमराः ॥१७॥ सबाणवर्माभरणाः सगदाः साङ्गदा रणे । महाभुजगसङ्काशा बाहवः परिघोपमाः ॥१८॥ उद्वेष्टन्ति विचेष्टन्ति संचेष्टन्ति च सर्वशः । वेगं कुर्वन्ति संरब्धा निकृत्ताः परमेषुभिः ॥ १९ ॥ यो यः स्म समरे पार्थं प्रतिसंचरते नरः । तस्य तस्यान्तको बाणः शरीरमुपसर्पति ॥२०॥ नृत्यतो रथमार्गेषु धनुर्व्यायच्छतस्तथा । न कश्चित्तत्र पार्थस्य ददर्शोऽन्तरमण्वपि ॥ २१ ॥ यत्तस्य घटमानस्य क्षिप्रं विक्षिपतः शरान् । लाघवात् पाण्डुपुत्रस्य व्यस्मयन्त परे जनाः ॥ २२ ॥

ही मारकाट करनेलगे, कितनेही अपनोंको आपही मारनेलगे॥१५॥ कितनेही लोहूलुहान हो मूर्छित होगए, कितनेही प्रहारके कारण चीख मारकर पृथ्वीमें लोटगए, तथा अपने पिता भाइयोंको पुकारनेलगे ॥ १६ ॥ भिंदिपाल, भाले, शक्ति, ऋष्टि, फरसे, निर्व्यूह (एक प्रकारका शस्त्र) तलवार, धनुष, बाण, कवच, गहने, गदा और बाजूबन्द आदिको धारण करनेवाली महासर्प और परिघकी समान मोटी भुजाएं बाणोंसे कटनेके कारण वेगमें भरकर ऊपरको उछलती थीं, एक दूसरीसे लिपट जाती थीं और उछलकर टेढी मेढी गिरती थीं ॥ १७-१९ ॥ अर्जुनके सामने जो योधा आते थे, उनके शरीरोंमें कालकी समान बाण प्रवेश करजाता था ॥ २० ॥ रथोंके बीचमें घूमतेहुए तथा धनुषको खेंच बाणोंका प्रहार करतेहुए अर्जुनकी जरासी भी चूक नहीं दीख पडती थी ॥ २१ ॥ पाण्डुपुत्र अर्जुन सावधान होकर धनुष पर फुरतीसे बाणको चढाता था और फुरतीसे ही उसको छोडरहा था, यह देखकर शत्रुओंको परम आश्चर्य हुआ ॥२२॥ अर्जुन

हस्तिनं हस्तियन्तारमश्वमाश्विकमेव च । अभिनत् फाल्गुनो बाणै रथिनञ्च ससारथिम् ॥ २३ ॥ आवर्त्तमानमावृत्तं युध्यमानञ्च पाण्डवः । प्रमुखे तिष्ठमानञ्च न किञ्चिन्न निहन्ति सः ॥ २४ ॥ यथोदयन् वै गगने सूर्यो हन्ति महत्तमः । तथार्जुनो गजानीकमवधीत् कङ्कपत्रिभिः ॥ २५ ॥ हस्तिभिः पतितैर्भिन्नैस्तव सैन्यमदृश्यत । अन्तकाले यथा भूमिर्व्यवकीर्णा महीधरैः ॥ २६ ॥ यथा मध्यन्दिने सूर्यो दुष्प्रेक्ष्यः प्राणिभिः सदा । तथा धनञ्जयः क्रुद्धो दुष्प्रेक्ष्यो युधि शत्रुभिः ॥ २७ ॥ तत्तथा तव पुत्रस्य सैन्यं युधि परन्तप । प्रभग्नं द्रुतमाविग्नमतीव शरपीडितम् ॥ २८ ॥ मारुतेनेव महता मेघानीकं व्यदीर्यत । प्रकाल्यमानं तत् सैन्यं नाशकत् प्रतिवीक्षितुम् ॥ २९ ॥ प्रतोदैश्चापि कोटीभिर्हुङ्कारैः साधवाहितैः ।

वाणोंके प्रहारसे हाथी और महावत, घोड़े और घुड़सवार तथा रथी और सारथियोंको एक साथ माररहा था ॥ २३ ॥ लड़नेके लिये सन्मुख आनेवाले, आयेहुए और सन्मुख खडे होकर लड़ते हुए किसीको भी वह नहीं छोड़ता था, किन्तु सबको स्वाहाही करदेता था ॥ २४ ॥ जैसे आकाशमें उदय होताहुआ सूर्य प्रभासे घोर अन्धकारका नाश करडालता है, तैसेही अर्जुनने कंकपत्रवाले वाणोंसे गजसेनाका संहार करडाला ॥ २५ ॥ घायल होकर गिरेहुए हाथियोंसे तुम्हारी सेना, प्रलयकालमें पर्वतोंसे छाईहुई पृथिवीकी समान, प्रतीत होती थी ॥ २६ ॥ जैसे मध्यान्हकालमें प्राणी सूर्यको बड़ी कठिनतासे देख सकते हैं, तैसेही शत्रुभी क्रोधित अर्जुनके सामने वडी कठिनतासे मुख उठा सकते थे ॥ २७ ॥ इसप्रकार अर्जुनके वाणोंसे बड़ीही पीड़ा पाकर तुम्हारे पुत्रकी सेना डरकर भागनेलगी ॥ २८ ॥ जोरसे चलतीहुई पवनसे छिन्न भिन्न हुए वादलोंकी समान अर्जुनके द्वारा खदेडीहुई और तित्तर वित्तरहुई वह सेना अर्जुनकी ओर मुख फिराकर भी न देखसकी २९

कशापार्ष्ण्यभिघातैश्च वाग्भिरुग्राभिरेव च ॥ ३० ॥ चोदयन्तो हयांस्तूर्णं पलायन्ते स्म तावकाः। सादिनो रथिनश्चैव पत्तयश्चार्जुनार्दिताः ॥ ३१ ॥ पार्ष्ण्यङ्गुष्ठाङ्कुशैर्नागं चोदयन्तस्तथा परे। सम्मोहिताः शरैश्चान्ये तमेवाभिमुखा ययुः ॥ ३२ ॥ तव योधा हतोत्साहा विभ्रान्तमनसस्तदा ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुन-
युद्धे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच। तस्मिन् प्रभग्ने सैन्याग्रे वध्यमाने किरीटिना। के तु तत्र रणे वीराः प्रत्युदीयुर्धनञ्जयम् ॥ १ ॥ आहोस्विच्छकटव्यूहं प्रविष्टा मोघनिश्चयाः। द्रोणमाश्रित्य तिष्ठन्तः प्राकारम-

---

अर्जुनके प्रहारसे तुम्हारे घुड़सवार, रथी और पैदल दुःखी हो कोड़ोंकी मार धनुषकी अनी, हुंकार, और साम आदि उपाय करके तथा कर्कश वाणी कहकर अपने घोड़ोंको फुरतीसे हाँकते हुए रणभूमिमेंसे पलायन करगए ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तुम्हारे दूसरे योधा बाणोंके प्रहारसे पागलसे होगए उनमेंसे उत्साह जातारहा और घबड़ागए, वे चाबुक अंगूठा और अंकुशका प्रहार कर हाथियोंको मारने लगे तथा भागनेके बदले (बुद्धिमानीसे) अर्जुनकी ही ओरको बढनेलगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८९ ॥ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्र बोले, कि–हे सञ्जय ! किरीटधारी अर्जुनने जब सेनाके मुहानेका संहार करना आरम्भ करदिया और सेनामें गड़बड़ पड़गई तब रणमें कौन २ वीर पुरुष अर्जुनके सामने गए थे ॥ १ ॥ और किन२ पुरुषोंने अपने निश्चयको छोड़कर चारों ओरसे निर्भय किलेकी समान शकटव्यूहमें प्रवेश कर द्रोणाचार्य का आश्रय लिया था ? सञ्जयने कहा, कि–हे निर्दोष राजन् ! जब इन्द्रपुत्र अर्जुनने कौरवसेनाको छिन्न भिन्नकर, वीरपुरुषों

कुतोभयम् ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । तथार्जुनेन सम्भग्ने तस्मिंस्तव बलेनघ । हतवीरे हतोत्साहे पलायनकृतक्षणे ॥ ३ ॥ पाकशासनिनाऽभीक्ष्णं वध्यमाने शरोत्तमैः । न तत्र कश्चित् संग्रामे शशाकार्जुनमीक्षितुम् ॥ ४ ॥ ततस्तव सुतो राजन् दृष्ट्वा सैन्यन्तथागतम् । दुःशासनो भृशं क्रुद्धो युद्धायार्जुनमभ्यगात् ॥ ५ ॥ स काञ्चनविचित्रेण कवचेन समावृतः । जाम्बूनदशिरस्त्राणः शूरस्तीव्रपराक्रमः ॥ ६ ॥ नागानीकेन महता ग्रसन्निव महीमिमाम् । दुःशासनो महाराज सव्यसाचिनमावृणोत् ॥ ७ ॥ ह्रादेन गजघण्टानां शंखानां निनदेन च । ज्याक्षेपनिनदैश्चैव विरावेण च दन्तिनाम् ॥ ८ ॥ भूर्दिशश्चान्तरिक्षञ्च शब्देनासीत् समावृतम् । स मुहूर्त्तं प्रतिभयो दारुणः समपद्यत ॥ ९ ॥ तान्दृष्ट्वापततस्तूर्णमंकुशैरभिचोदितान् । व्यालम्बहस्तान् संरब्धान् सपक्षा-

का नाश करडाला, तब तुम्हारी सेनाके सब योधाओंका उत्साह टूटगया और सब भागनेकी तयारी करनेलगे, अर्जुनके बडेभारी बाणोंके प्रहारसे कोई भी योधा उसके सामनेको नहीं देखसकता था ॥ ३ ॥ ४ ॥ तब हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र दुःशासन सेनाको भागतीहुई देखकर बडेही क्रोधमें भरगया और युद्ध करनेके लिये अर्जुनके सामने बढआया ॥ ५ ॥ शूरवीर, प्रबलपराक्रमी दुःशासनने सुवर्णका विचित्र कवच और टोप पहिरकर हे महाराज ! बडीभारी हस्तिसेनाके साथ मानों इस पृथिवीको निगलही जायगा इसप्रकार अर्जुनको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ६ ॥ ७ ॥ हाथियोंके घण्टोंके बजनेसे, शंखोंके नादसे, प्रत्यञ्चाको खेंचते समय होने वाली टंकोरोंसे और हाथियोंकी चिंघाडसे पृथिवी आकाश और दिशाएं गूँजगयीं, उस समय दुःशासन भी क्षण भरको महाभयंकर और क्रूर होगया ॥ ८ ॥ ९ ॥ अंकुशका प्रहार कर अर्जुनके ऊपरको दौडायेहुए बडी शूंडवाले और महापर्वतकी समान

निव पर्वतान् ॥ १० ॥ सिंहनादेन महता नरसिंहो धनञ्जयः । गजानीकममित्राणामभितो व्यधमच्छरैः ॥ ११ ॥ महोर्मिणमिवोद्भूतं श्वसनेन महार्णवम् । किरीटी तद्गजानीकं प्राविशन्मकरो यथा ॥ १२ ॥ काष्ठातीत इवादित्यः प्रतपन् स युगक्षये । ददृशे दिक्षु सर्वासु पार्थः परपुरञ्जयः ॥ १३ ॥ खुरशब्देन चाश्वानां नेमिघोषेण तेन च । तेन चोत्क्रुष्टशब्देन ज्यानिनादेन तेन च ॥ १४ ॥ नानावादित्रशब्देन पाञ्चजन्यस्वनेन च । देवदत्तस्य घोषेण गाण्डीवनिनदेन च ॥ १५ ॥ मन्दवेगा नरा नागा बभूवुस्ते विचेतसः। शरैराशीविषस्पर्शैर्निर्भिन्नाः सव्यसाचिना ॥ १६ ॥ ते गजा विशिखैस्तीक्ष्णैर्युधि गाण्डीवचोदितैः । अनेकशतसाहस्रैः सर्वाङ्गेषु समर्पिताः ॥ १७ ॥ आरावं परमं कृत्वा वध्यमानाः

दीखतेहुए क्रोधी हाथी अर्जुनकी ओरको बढनेलगे, हाथियोंको सामने आते देखकर अर्जुन बडी जोरसे गर्जा, फिर चारों ओर बाणवर्षा करताहुआ शत्रुओंकी हस्तिसेनाका संहार करने पर फैलपडा ॥ १० ॥ ११ ॥ मगर मच्छ जैसे बडी२ तरंगोंवाले और पवनसे उछालखातेहुए सागरमें निर्भय घुसजाते हैं तैसेही किरीटी अर्जुन भी हस्तिसेनामें घुसगया ॥ १२ ॥ शत्रुपुरविध्वंसक अर्जुन सब दिशाओंमें, प्रलयकालमें दिशाओंकी मर्यादा को छोड सब दिशाओंमें ताप देतेहुए सूर्यकी समान दीखता था ॥ १३ ॥ नानाप्रकारके बाजोंके शब्द घोडोंके खुरोंके शब्द, रथके पहियोंकी धारकी ध्वनि, कोलाहल, प्रत्यञ्चाके खेंचनेकी टंकार, पाञ्चजन्य और देवदत्त शंखोंकी ध्वनि तथा गाण्डीव धनुषके टंकार शब्दसे तथा सर्पोंकी समान स्पर्शवाले गाण्डीवमें से अर्जुनके छोडेहुए बाणोंके प्रहारसे मनुष्योंका वेग मन्द होगया और वे बेहोश होगए ॥ १४-१६ ॥ और वे हाथी सव्यसाची अर्जुनके छोड़ेहुए सैकड़ों सहस्रों तीक्ष्ण बाणोंसे बिधजानेके

किरीटिना । निपेतुरनिशं भूमौ छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ १८ ॥ अपरे दन्तवेष्टेषु कुम्भेषु च कटेषु च । शरैः समर्पिता नागा क्रौंचवद्व्यनदन्मुहुः ॥ १९ ॥ गजस्कन्धगतानाञ्च पुरुषाणां किरीटिना । छिद्यन्ते चोत्तमाङ्गानि भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ २० ॥ सकुण्डलानां पततां शिरसां धरणीतले । पद्मानामिव संघातैः पार्थश्चक्रे निवेदनम् ॥ २१ ॥ यन्त्रबद्धा विकवचा व्रणार्त्ता रुधिरोक्षिताः । भ्रमत्सु युधि नागेषु मनुष्या विललम्बिरे ॥ २२ ॥ केचिदेकेन बाणेन सुयुक्तेन सुपत्रिणा । द्वौ त्रयश्च विनिर्भिन्ना निपेतुर्धरणीतले ॥ २३ ॥ अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः । सारोहा न्यपतन् भूमौ द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ २४ ॥ मौर्वीं ध्वजं धनुश्चैव युगमीषां तथैव च । रथिनां कुट्टयामास भल्लैः

कारण जोरसे चिंघाडकर, कटेहुए पंखोंवाले पर्वतोंकी समान पृथ्वी में टपाटप गिरनेलगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ उस समय वहुतसे हाथी दांतोंकी जड़में, कुम्भस्थल पर और कमरमें वाणोंके गुभ जानेसे क्रौंच पक्षीकी समान वार२ वड़ी जोरसे चीखें मारनेलगे ॥ १९ ॥ हाथियोंके कंधोंपर वैठेहुए पुरुषोंके मस्तकोंको भी अर्जुनने नमी हुई गांठवाले भल्लनामक वाण मारकर उड़ादिया ॥ २० ॥ कुण्डलों सहित वे मस्तक जब भूमिपर गिरते थे तव अर्जुन कमलोंके समूहकी अंजुलि अर्पण करताहुआसा प्रतीत होता था ॥ २१ ॥ इस समय कितने ही कवचशून्य, घावोंसे पीडित और लोहूलुहान योधा मानो यंत्रोंमें कसेहुएहैं इसप्रकार इधर उधर दौडते हुए हाथियोंपर चिपटेहुए लटकरहे थे ॥ २२ ॥ तथा पानीदार एक ही वाणसे दो२ तीन२ हाथी भूमिपर गिररहे थे ॥ २३ ॥ वाणोंसे अतीव विंध जानेके कारण मुखमेंसे रुधिर ओकतेहुए हाथी सवारोंके सहित वृक्षोंवाले पर्वतोंकी समान भूमिमें गिररहे थे ॥ २४ ॥ अर्जुनने नमेहुए पर्ववाले वाणोंसे रथियोंकी प्रत्य-

सन्नतपर्वभिः ॥ २५ ॥ न सन्दधन्न चाकर्षन् न विमुञ्चन् चोद्वहन् । मण्डलेनैव धनुषा नृत्यन् पार्थः स्म दृश्यते ॥ २६ ॥ अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः । मुहूर्तान्न्यपतन्नन्ये वारणा वसुधातले ॥ २७ ॥ उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः । अदृश्यन्त महाराज तस्मिन् परमसंकुले ॥ २८ ॥ सचापाः साङ्गुलित्राणाः सखड्गाः साङ्गदा रणे । अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ २९ ॥ सूपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः । चक्रैर्विमथितैरक्षैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ ३० ॥ चर्मचापधरैश्चैव व्यवकीर्णैस्ततस्ततः । स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पतितैश्च महाध्वजैः ३१ निहतैर्वारणैरश्वैः क्षत्रियैश्च निपातितैः । अदृश्यत मही तत्र दारुणप्रतिदर्शना ॥ ३२ ॥ एवं दुःशासनबलं वध्यमानं किरीटिना ।

छत्र, ध्वजा, धनुष, रथोंकी धुरी, तथा रथोंके दण्डोंका चूरा२ करडाला ॥ २५ ॥ इसप्रकार योधाओंका संहार करताहुआ अर्जुन कब बाण चढाता था, कब खेंचता था कब छोडता था और कब भाथेमेंसे बाणोंको निकालता था, यह मालूम ही नहीं होता था, वह केवल मण्डलाकारसे धनुषको घुमाता और नाचताहुआसा ही दीखरहा था ॥ २६ ॥ उसके बाणोंके प्रहारसे बहुतही घायल हुए हाथी रुधिरको ओकतेहुए पृथिवीपर गिररहे थे ॥ २७ ॥ उस घोर युद्धमें चारों ओर असंख्यों धड खडेहुए दीखते थे २८ बाण, चमडेके मोजे, तलवार, बाजूबन्द और सुवर्णके गहनोंसे भूषित बहुतसी भुजाएँ कटीहुई रणमें पडी दीखती थीं ॥ २९ ॥ इस रणमें सामानसहित रथकी बैठकें, ईषा, दण्डक, ऊपरके टीन टूटेहुए पहिये, धुरी, जुए, ढाल तलवारवाले योधा, पुष्पमाला गहने वस्त्र, बडी२ ध्वजाएँ, मरेहुए हाथी, घोडे तथा मरेहुए क्षत्रियोंसे रणभूमि बडी भयंकर मालूम होती थी ॥ ३०–३२ ॥ अर्जुनके हाथसे नष्ट होताहुआ सेनादल छिन्न होकर अपने सेनापतिके साथ

सम्प्राद्रवन्महाराज व्यथितं सहनायकम् ॥ ३३ ॥ ततो दुःशासनस्त्रस्तः सहानीकः शरार्दितः । द्रोणं त्रातारमाकांक्षन् शकटव्यूहमभ्यगात् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुःशासनसैन्यपराभवे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

सञ्जय उवाच । दुःशासनबलं हत्वा सव्यसाची महारथः । सिन्धुराजं परीप्सन् वै द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ १ ॥ स तु द्रोणं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् । कृताञ्जलिरिदं वाक्यं कृष्णस्यानुमतेब्रवीत् ॥ २ ॥ शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन् स्वस्ति चैव वदस्व मे । भवत्प्रसादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिदां चमूम् ॥ ३ ॥ भवान् पितृसमो मह्यं धर्मराजसमोपि च । तथा कृष्णसमश्चैव सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ४ ॥ अश्वत्थामा यथा तात रक्षणीयस्त्वयानघ । तथाहमपि ते रक्ष्यः सदैव द्विजसत्तम ५ तव प्रसादा-

भाग निकला ॥ ३३ ॥ दुःशासन और उसकी सेना बाणोंकी मारसे त्रास पाकर, द्रोणसे रक्षा चाहतीहुई शीघ्रतासे शकटव्यूह में घुसगई ॥ ३४ ॥ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९० ॥ ॥

सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! महारथ अर्जुन दुःशासनकी सेनाका नाशकर जयद्रथको मारनेके लिये द्रोणकी सेनाके ऊपर दौड़पड़ा ! ॥ १ ॥ और व्यूहके मुहानेपर खड़ेहुये द्रोणके पास जाकर, कृष्णकी संमतिके अनुसार द्रोणके हाथ जोड़कर बोला २ हे ब्रह्मन् ! आप मेरा कल्याण हो ऐसी इच्छा करिये और मुझसे कहिये कि–"तेरा कल्याण हो" मैं आपकी कृपासे इस दुर्भेद्य सेनामें प्रवेश करना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ आप मेरे पिताकी समान हैं, धर्मराजकी समान हैं तथा श्रीकृष्णकी समान हैं, यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ ॥ ४ ॥ हे निर्दोष तात ! जैसे अश्वत्थामाकी रक्षा करना आपका कर्त्तव्य है, तैसे ही हे द्विजसत्तम ! आपको मेरा भी

छिन्द्यं सिन्धुराजानमाहवे । निहन्तुं द्विपदां श्रेष्ठ प्रतिज्ञां रक्ष मे प्रभो ।६। सञ्जय उवाच । एवमुक्तस्तदाचार्यः प्रत्युवाच स्मयन्निव । मामजित्वा न बीभत्सो शक्यो जेतुं जयद्रथः॥७॥एतावदुक्त्वा तं द्रोणः शरव्रातैरवाकिरत् । सरथाश्वध्वजं तीक्ष्णैः प्रहसन् वै ससारथिम् ॥८॥ ततोऽर्जुनः शरव्रातान् द्रोणस्याचार्य सायकैः । द्रोणमभ्यद्रवद्वाणैर्घोररूपैर्महाशरैः ॥ ९ ॥ विव्याध च रणे द्रोणमनुमान्य विशाम्पते । क्षत्रधर्मं समास्थाय नवभिः सायकैः पुनः ॥१०॥ तस्येषूनिषुभिश्छित्त्वा द्रोणो विव्याध तावुभौ । विषाग्निज्वलितप्रख्यैरिषुभिः कृष्णपाण्डवौ ॥ ११ ॥ इयेष पाण्डवस्तस्य वाणैश्छेत्तुं शरासनम् । तस्य चिन्तयतस्त्वेवं फाल्गुनस्य महात्मनः ॥ १२ ॥ द्रोणः शरैरसंभ्रान्तो ज्यां चिच्छेदाशु वीर्यवान् । विव्याध च

सदा रक्षा करनी चाहिये ॥५॥ हे मनुजसत्तम ! आपकी कृपासे मैं सिंधुराजको मारना चाहता हूँ क्योंकि मैंने उसको मारनेकी प्रतिज्ञा की है, इसलिये हे प्रभो ! आप मेरी प्रतिज्ञाकी रक्षा करें६ सञ्जयने कहा, कि–अर्जुनके ऐसा कहनेपर द्रोणाचार्यने मुस्करा कर कहा, कि–हे अर्जुन ! तू मुझे विना जीते जयद्रथको नहीं जीतसकता ॥ ७ ॥ इतना कहकर द्रोणाचार्यने रथ, घोड़े, ध्वजा और सारथीसहित अर्जुनको वाणोंके जालसे ढकदिया ॥ ८ ॥ तदनन्तर अर्जुनने सामनेसे वाण मारकर द्रोणाचार्यके वाणोंको पीछेको हटादिया द्रोणके ऊपर बड़े भयंकर अस्त्रोंका प्रहार करने लगा॥९॥हे राजन् ! क्षात्रधर्मका पालन करते हुए अर्जुनने द्रोणकी प्रतिष्ठाके लिये उनके चरणोंमें नौ वाण मारकर वार२ घायल किया॥१०॥तदनन्तर द्रोणाचार्यने सामनेसे वाण मारकर अर्जुनके वाणोंको काटडाला और विषाग्निकी समान धधकतेहुए वाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको बींधडाला ॥ ११ ॥ तदनन्तर अर्जुनने द्रोणाचार्यके धनुषको वाणोंसे काटना चाहा, कि–॥ १२ ॥द्रोणने

हयानस्य ध्वजं सारथिमेव च ॥ १३ ॥ अर्जुनञ्च शरैर्वीरः स्मयमानोऽभ्यवाकिरत् । एतस्मिन्नन्तरे पार्थः सज्यं कृत्वा महद्धनुः १४ विशेषयिष्यन्नाचार्यं सर्वास्त्रविदुषां वरः । मुमोच षट्शतान् वाणान् गृहीत्वैकमिवाशुगम् ॥ १५ ॥ पुनः सप्तशतानन्यान् सहस्राण्यनिवर्तिनः । चिक्षेपायुतशश्चान्यांस्तेऽघ्नन् द्रोणस्य तां चमूम् ।१६। तैःसम्यगस्तैर्वलिना कृतिना चित्रयोधिना । मनुष्यवाजिमातङ्गा विद्धाः पेतुर्गतासवः॥१७॥विधूतास्त्रध्वजाः पेतुः सञ्छिन्नायुधजीविताः । रथिनो रथमुख्येभ्यः सहसा शरपीडिताः ॥ १८ ॥ चूर्णिताक्षिप्तदग्धानां वज्रानिलहुताशनैः । तुल्यरूपा गजाः पेतुर्गिर्यग्राम्बुदवेश्मनाम् ॥१९॥ पेतुरश्वसहस्राणि प्रहतान्यर्जुनेषुभिः ।

सावधान हो वाणोंसे इसके धनुषकी डोरीको काटडाला और इसके सारथि ध्वजा तथा घोडोंको भी घायल करडाला ॥१३॥ फिर वीर द्रोणाचार्यने हँसकर अर्जुनको भी वाणोंसे ढकदिया, इतनेमें ही सकल अस्त्रोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ अर्जुनने अपने धनुष को ठीक करलिया और अपने गुरुको अधिकता देता हो इसप्रकार एक वाण उठानेकी समान (समयमें) लगातार छःसौ वाण द्रोणके मारे ॥ १४ ॥ १५ ॥ फिर पीछेको न फिरनेवाले एक सहस्र, फिर सात सौ. तथा फिर सहस्र और लाखों वाण मार कर, चित्रयुद्ध करनेवाले वली अर्जुनने द्रोणाचार्यकी सेनाका संहार करना आरम्भ करदिया, इसप्रकार विंधेहुए हाथी, घोडे और मनुष्य प्राण छोड छोड़कर भूमिमें गिरनेलगे ॥१६-१७॥ सहसा वाणोंसे पीडितहुए रथी, सारथी, घोडे और ध्वजाओंसे शून्य तथा आयुध और प्राणरहित होकर रथोंपरसे गिरनेलगे १८ वज्रसे तोड़ हुए, पर्वतके शिखर जैसे चूर्ण२ हो भूमिमें गिरते हैं, जैसे मेघ पवनसे विखर जाते हैं और जैसे घर अग्निसे भस्म होकर पृथ्वीपर ढह पडते हैं तैसेही हाथी भी अर्जुनके वाणोंसे घायल

हंसा हिमवतः पृष्ठे वारिविप्रहता इव ॥ २० ॥ रथाश्वद्विपपत्त्योघाः सलिलौघा इवाद्भुताः। युगान्तादित्यरश्म्याभैः पाण्डवास्त्रशरैर्हताः ॥ २१ ॥ तं पाण्डवादित्यशरांशुजालं कुरुप्रवीरान् युधि निष्टपन्तम् । स द्रोणमेघः शरवृष्टिवेगैः प्राच्छादयन्मेघ इवार्करश्मीन् ॥ २२ ॥ अथात्यर्थं विसृष्टेन द्विषतामसुभोजिना । आजघ्ने वक्षसि द्रोणो नाराचेन धनञ्जयम् ॥ २३ ॥ स विह्वलितसर्वाङ्गः क्षितिकम्पे यथाचलः । धैर्यमालम्ब्य बीभत्सुर्द्रोणं विव्याध पत्रिभिः ॥ २४ ॥ द्रोणस्तु पञ्चभिर्बाणैर्वासुदेवमताडयत् । अर्जुनञ्च त्रिसप्तत्या ध्वजञ्चास्य त्रिभिः शरैः ॥ २५ ॥ विशेषयिष्यन्

हो पृथिवीपर धड़ड़ करके गिरने लगे ॥१९॥ जलके तिरस्कारसे हंस जैसे हिमाचल परसे पृथिवीपर उतर पड़ते हैं, तैसेही अर्जुनके वाणोंके प्रहारसे सैंकड़ों घोड़े पृथिवी पर गिरनेलगे ॥ २० ॥ इस समय प्रलयकालके सूर्यकी किरणोंकी समान तीक्ष्ण अर्जुनके वाणोंका प्रहार होनेसे जलके आश्चर्यकारक ओघकी समान हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी टोलियें मरगईं ॥ २१ ॥ अर्जुनरूपी सूर्य, वाणरूपी किरणोंसे रणमें कौरवोंको तपारहा था, इतनेमें ही मेघकी समान द्रोणाचार्यने वाणोंकी वर्षा करके मेघ जैसे सूर्यकी किरणोंको ढक देता है इसीप्रकार अर्जुनके वाणोंको ढकदिया ॥ २२ ॥ तदनन्तर द्रोणने शत्रुओंके प्राणोंका भोजन करनेवाला वाण जोरसे खेंचकर अर्जुनके वक्षःस्थलमें मारा॥२३॥इस वाणके प्रहारसे अर्जुनके सब अङ्ग विह्वल होगए और वह भूकम्पके समय हिलने वाले पर्वतकी समान काँप उठा परन्तु फिर धीरज धरकर उसने द्रोणाचार्यको वाणोंसे बींध डाला ॥ २४ ॥ द्रोणने वासुदेवको पाँच और अर्जुनको निहत्तर वाणोंसे घायल किया और तीन वाण मारकर इसकी ध्वजाको भी तोडडाला ॥ २५ ॥ और अपने शिष्यको अधिकता देतेहुए

शिष्यश्च द्रोणो राजन् पराक्रमी । अदृश्यमर्जुनं चक्रे निमेषाच्छरवृष्टिभिः ॥ २६ ॥ प्रसक्तान् पततोऽद्राक्ष्म भारद्वाजस्य सायकान् । मण्डलीकृतमेवास्य धनुश्चादृश्यताद्भुतम् ॥ २७ ॥ तेऽभ्ययुः समरे राजन् वासुदेवधनञ्जयौ । द्रोणसृष्टाः सुबहवः कङ्कपत्रपरिच्छदाः २८ तद् दृष्ट्वा तादृशं युद्धं द्रोणपाण्डवयोस्तदा । वासुदेवो महाबुद्धिः कार्यवत्तामचिन्तयत् ॥२९॥ ततोब्रवीद्वासुदेवो धनञ्जयमिदं वचः । पार्थ पार्थ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ॥३०॥ द्रोणमुत्सृज्य गच्छामः कृत्यमेतन्महत्तरम् । पार्थश्चाप्यब्रवीत् कृष्णं यथेष्टमिति केशवः ॥ ३१ ॥ ततः प्रदक्षिणं कृत्वा द्रोणं प्रायान्महाभुजम् । परिवृत्तश्च बीभत्सुरगच्छद्विसृजन् शरान् ॥ ३२ ॥ ततोब्रवीत् स्वयं द्रोणः क्वेदं पाण्डव गम्यते । ननु नाम रणे शत्रुमजित्वा न

द्रोणने पलभरमें अर्जुनको वाणोंसे ढककर अदृश्य करदिया २६ हे राजन् ! उस समय हमें द्रोणके पाण्डवसेनाकी ओर जातेहुए वाण और उनका मण्डलाकार धनुष ही दीखता था ॥ २७ ॥ हे राजन् ! द्रोणके छोडेहुए कंकपक्षीके परोंवाले वे वाण अर्जुन और श्रीकृष्णके ऊपर पड़रहे थे ॥ २८ ॥ द्रोण और अर्जुनके ऐसे युद्धको और अपने कार्यकी अधिकताको देखकर महाबुद्धिमान् श्रीकृष्णने जयद्रथके मारनेका विचार किया और अर्जुनसे कहा कि–हे पार्थ ! हे पार्थ ! हे महावाहो ! हमारा समय वीत जाय ऐसा नहीं होना चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥ द्रोणको आगे छोडकर आगे वढ़ो हमें अभी वडा काम करना है, अर्जुनने कहा कि–हे श्रीकृष्ण ! जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करिये ॥ ३१ ॥ तदनन्तर अर्जुनने महाभुज द्रोणकी परिक्रमा की और वाणोंको छोडता२ दूसरी ओरको जानेलगा ॥ ३२ ॥ तब द्रोणाचार्य बोलउठे, कि–अरे अर्जुन ! ओ अर्जुन ! तू तो शत्रुओंको विना हराये रणमेंसे लौटता नहीं था, फिर इस समय ऐसा क्यों भागा

निवर्तसे ॥ ३३ ॥ अर्जुन उवाच । गुरुर्भवान्न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते । न चास्ति स पुमांल्लोके यस्त्वां युधि पराजयेत्॥३४ सञ्जय उवाच । एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्जयद्रथवधोत्सुकः । त्वरायुक्तो महाबाहुस्त्वत् सैन्यं समुपाद्रवत् ॥ ३५ ॥ तं चक्ररक्षौ पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ । अन्वयातां महात्मानौ विशन्तं तावकं बलम् ॥ ३६ ॥ ततो जयो महाराज कृतवर्मा च सात्वतः । काम्बोजश्च श्रुतायुश्च धनञ्जयमवारयन् ॥ ३७ ॥ तेषां दश सहस्राणि रथानामनुयायिनाम् । अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ३८ ॥ मावेल्लका ललित्थाश्च केकया मद्रकास्तथा । नारायणाश्च गोपालाः काम्बोजानाञ्च ये गणाः ॥३९॥ कर्णेन विजिताः पूर्वं संग्रामे शूरसम्मताः । भारद्वाजं पुरस्कृत्य हृष्टात्मानो-

---

जाता है ? ॥ ३३ ॥ अर्जुनने कहा, कि–आप मेरे शत्रु नहीं हैं किन्तु गुरु हैं और मैं आपका शिष्य तथा धर्मपुत्र हूँ, इस संसार में ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो युद्धमें आपको जीतसके ॥ ३४ ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! इसप्रकार कहते२ महाबाहु अर्जुन जयद्रथको मारनेके लिये तुरन्त तुम्हारी सेनाकी ओरको बढ़ा चलागया ॥ ३५ ॥ तुम्हारी सेनामें प्रवेश करते समय अर्जुनके पीछे२ उसके चक्ररक्षक पञ्चालदेशी युधामन्यु और उत्तमौजा भी चलेगये ॥ ३६ ॥ जय, कृतवर्मा, सात्वत, कांबोज तथा श्रुतायुधने अर्जुनको शकटव्यूहमें घुसनेसे रोका ॥ ३७ ॥ उनकी सहायतामें दश सहस्र अनुयायी रथी थे अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, मावेल्लक, ललित्थ, केकय, मद्रक, नारायण, गोपाल, और काम्बोज राजे, कि–जिनको पहले कर्णने संग्राममें जीतलिया था और वीर मानेजाते थे, ये सब द्रोणाचार्य को आगे करके प्रसन्न होतेहुए अर्जुनके ऊपर चढ़आये और पुत्रशोकसे सन्तप्त तथा कोपमें भरे कालकी समान दीखतेहुए,

ऽर्जुनं प्रति ॥ ४० ॥ पुत्रशोकाभिसन्तप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्तकम् । त्यजन्तं तुमुले प्राणान् सन्नद्धं चित्रयोधिनम् ॥ ४१ ॥ गाहमानमनीकानि मातङ्गमिव यूथपम् । महेष्वासं पराक्रान्तं नरव्याघ्रमवारयन् ॥ ४२ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । अन्योन्यं वै प्रार्थयतां योधानामर्जुनस्य च ॥ ४३ ॥ जयद्रथवधं प्रेप्सुमायान्तं पुरुषर्षभम् । न्यवारयन्त सहिताः क्रिया व्याधिमिवोत्थितम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणातिक्रमे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

सञ्जय उवाच । सन्निरुद्धस्तु तैः पार्थो महाबलपराक्रमः । द्रुतं समनुयातश्च द्रोणेन रथिनां वरः ॥ १ ॥ किरन्निषुगणान् तीक्ष्णान् स रश्मीनिव भास्करः । तापयामास तत्सैन्यं देहं व्या-

---

और तुमुलयुद्धमें प्राण त्यागनेको तयार हुए, शस्त्रधारी, अनेकों प्रकारके युद्ध करनेवाले, यूथप हाथीकी समान सेनामें प्रवेश करनेवाले, धनुषधारी परमपराक्रमी अर्जुनको चारों ओरसे भीतर घुसनेसे रोकनेलगे ॥ ३८-४२ ॥ इस समय विजय चाहनेवाले आमने सामने डटेहुए योधाओंके साथ अर्जुनका घोर युद्ध होने लगा ॥ ४३ ॥ जैसे उठतेहुए रोगको क्रिया (औषध)से रोकते हैं, तैसेही जयद्रथको मारनेकी इच्छासे आगे बढतेहुए अर्जुनको वे सब इकट्ठे होकर रोकने लगे ॥ ४४ ॥ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९१ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! महाबली और परम पराक्रमी अर्जुनको उन महारथियोंने रोकरक्खा, इतनेमें ही सहायता करनेको रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी शीघ्रतासे आपहुँचे ॥१॥ इस समय व्याधियें जैसे शरीरको दुःख देती हैं, और सूर्यकी किरणें जैसे जगत्को सन्ताप देती हैं तैसेही अर्जुन भी तेज

थिगणो यथा ॥ २ ॥ अश्वो विद्धो रथश्छिन्नः सारोहः पातितो गजः । छत्राणि चापविद्धानि रथाश्चक्रैर्विना कृताः ॥ ३ ॥ विद्रुतानि च सैन्यानि शरार्त्तानि समन्ततः । इत्यासीत्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ४ ॥ तेषां संयच्छतां संख्ये परस्परमजिह्मगैः । अर्जुनो ध्वजिनीं राजन्नभीक्ष्णं समकम्पयत् ॥ ५ ॥ सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां सत्यसङ्गरः । अभ्यद्रवद्रथश्रेष्ठं शोणाश्वं श्वेतवाहनः ॥ ६ ॥ तं द्रोणः पञ्चविंशत्या मर्मभिद्भिरजिह्मगैः । अन्तेवासिनमाचार्यो महेष्वासं समार्पयत् ॥ ७ ॥ तं तूर्णमिव बीभत्सुः सर्वशस्त्रभृतां वरः । अभ्यधावदिषूनस्यन्निषुवेगविघातकान् ॥ ८ ॥ तस्याशु क्षिपतो भल्लान् भल्लैः सन्नतपर्वभिः । प्रत्यविध्यदमेयात्मा ब्रह्मास्त्रं समुदीरयन् ॥ ९ ॥ तद्-

---

बाणोंसे कौरवोंकी सेनाको सन्ताप देनेलगा ॥ २ ॥ घोड़े घायल होगए, रथ टूटगये, सवारों सहित हाथी मरकर गिरने लगे, छत्र छिन्न भिन्न करदिये गये, रथोंके पहिये तोडदिये ॥ ३ ॥ सेनाके सिपाही बाणोंके प्रहारसे घायल होकर चारों ओर भागने लगे, इस प्रकार तुमुल युद्ध होनेलगे, इस समय युद्धके सिवाय और कुछ भी प्रतीत नहीं होता था ॥ ४ ॥ हे राजन् ! अर्जुनने इस युद्धमें अपनेको रोकनेवाले शत्रुओंकी सेनाको बारम्बार सूधे जाने वाले बाण मारकर कँपाडाला ५ श्वेत घोड़ोंवाला सत्यवादी अर्जुन जयद्रथको मारनेकी अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करनेकी इच्छासे लाल घोड़ोंवाले रथमें बैठेहुए द्रोणाचार्यकी ओरको गया ॥ ६ ॥ गुरु द्रोणाचार्यने अपने महाधनुषधारी शिष्य अर्जुनके मर्मभेदी सीधे जानेवाले पच्चीस बाण मारे ॥ ७ ॥ और सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने उनके बाणोंको हटानेवाले बाण छोड़ते२ द्रोणाचार्यके ऊपर चढ़ाई की ॥ ८ ॥ महामना द्रोणने ब्रह्मास्त्र छोड़कर और नमीहुई गाँठवाले भल्ल नामक बाणोंसे अर्जुनके छोड़ेहुए

अद्भुतमपश्याम द्रोणस्याचार्यकं युधि । यतमानो युवा नैनं प्रत्यविध्यदर्जुनः ॥ १० ॥ क्षरन्निव महामेघो वारिधाराः सहस्रशः । द्रोणमेघः पार्थशैलं ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥ ११ ॥ अर्जुनः शरवर्षन्तं ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष । प्रतिजग्राह तेजस्वी वाणैर्वाणान् निशातयन् ॥ १२ ॥ द्रोणस्तु पञ्चविंशत्या श्वेतवाहनमार्दयत् । वासुदेवञ्च सप्तत्या बाह्वोरुरसि चाशुगैः ॥ १३ ॥ पार्थस्तु प्रहसन् धीमानाचार्यं सशरौघिणम् । विसृजन्तं शितान् वाणानवारयत तं युधि ॥ १४ ॥ अथ तौ वध्यमानौ तु द्रोणेन रथसत्तमौ । आवर्जयेतां दुर्धर्षं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ १५ ॥ वर्जयन्निशितान् वाणान् द्रोणचापविनिःसृतान् । किरीटमाली कौन्तेयो भोजानीकं व्यशातयत् ॥ १६ ॥ सोन्तरा कृतवर्माणं काम्बोजञ्च सुदक्षि-

---

भल्ल नामक वाणोंको शीघ्रतासे चूर्ण चूर्ण करदिया ॥ ९ ॥ इस युद्धमें हमने द्रोणाचार्यका अद्भुत आचार्यपना देखा, कि— अर्जुन युवा होने पर भी इनको एक वाणसे भी न बींधसका १० सहस्रों जलधाराओंको वरसातेहुए महामेघकी समान द्रोणरूपी मेघने पार्थरूपी पर्वतपर वाणरूपी वर्षा करना आरम्भ करदी ११ हे राजन् ! तेजस्वी अर्जुनने उस वाणोंकी वर्षाको ब्रह्मास्त्रसे रोकदिया और वाणोंसे वाणोंको नष्ट करनेलगा ॥ १२ ॥ द्रोणने पच्चीस वाण मारकर श्वेत घोडोंवाले अर्जुनको पीडा दी और सत्तर वाण श्रीकृष्णके वक्षःस्थल और भुजाओंमें मारे ॥ १३ ॥ वाणोंके प्रवाहवाले और तेज वाणोंको फैंकतेहुए द्रोणाचार्यको बुद्धिमान् अर्जुनने मन्दमन्द हँसकर रोकना आरम्भ करदिया १४ प्रलयकालकी अग्निकी समान उठेहुए दुर्धर्ष द्रोणसे पीडा पातेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुन, द्रोणको तथा उनके धनुषमेंसे निकलते हुए तीक्ष्ण वाणोंको छोडकर भोजराज कृतवर्माकी सेनापर चढ गए और किरीटमाली अर्जुन उसकी सेनाको नष्ट करनेलगा १६

णम् । अभ्ययाद्वर्जयन् द्रोणं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १७ ॥ ततो भोजो नरव्याघ्रो दुर्धर्षं कुरुसत्तमम् । अविध्यत्तूर्णमव्यग्रो दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥१८॥ तमर्जुनः शतेनाजौ राजन् विव्याध पत्रिणा । पुनश्चान्यैस्त्रिभिर्बाणैर्मोहयन्निव सात्वतम् ॥ १९ ॥ भोजस्तु प्रहसन् पार्थं वासुदेवञ्च माधवम् । एकैकं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ॥२०॥ तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं त्रिसप्तभिः । शरैरग्निशिखाकारैः क्रुद्धाशीविषसन्निभैः ॥ २१ ॥ अथान्यद्धनुरादाय कृतवर्मा महारथः । पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं विव्याधोरसि भारत ॥ २२ ॥ पुनश्च निशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध पंचभिः । तं पार्थो नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा विषक्तं कौन्तेयं कृतवर्मरथं प्रति । चिन्तयामास वार्ष्णेयो न नः कालात्ययो भवेत् ॥ २४ ॥ ततः कृष्णोब्रवीत् पार्थं कृतवर्मणि

अर्जुन मैनाकपर्वतकी समान बीचमें खड़ेहुए द्रोणाचार्यको छोड़कर कृतवर्मा और काम्बोजकुमार सुदक्षिण पर टूटपड़ा ॥ १७ ॥ तदनन्तर नरव्याघ्र कृतवर्माने सावधान रहकर दुर्धर्ष कुरुश्रेष्ठ अर्जुनके दश बाण मारे ॥ १८ ॥ हे राजन् ! अर्जुनने सात्वतवंशी कृतवर्माके एकसौ तीन बाण मारकर उसको मोहितसा करके बींधदिया ॥ १९ ॥ कृतवर्माने हँसकर माधव श्रीकृष्ण और अर्जुनके इक्कीस२ बाण मारे ॥ २० ॥ अर्जुनने उसके धनुषको काटकर, क्रोधमें भरे सर्पकी और अग्निशिखाकी समान तिहत्तर बाणोंसे उसको बींधडाला ॥ २१ ॥ हे भारत ! महारथी कृतवर्माने शीघ्रतासे दूसरा धनुष लेकर अर्जुनकी छातीको पाँच बाणोंसे घायल करदिया ॥ २२ ॥ और फिर पाँच तेज बाणोंसे अर्जुनको घायल किया, अर्जुनने उसकी छातीमें नौ बाण मारे२३ इसप्रकार अर्जुनको कृतवर्माके रथके पीछे पडा देखकर श्रीकृष्ण विचारने लगे, कि-इसप्रकार समय नहीं बीतना चाहिये ॥२४॥

मा दयाम् । कुरु सम्बन्धकं हित्वा प्रमथ्यैनं विशातय ॥ २५ ॥ ततः स कृतवर्माणं मोहयित्वार्जुनः शरैः । अभ्यगाज्जवनैरश्वैः काम्बोजानामनीकिनीम् ॥ २६ ॥ अमर्षितस्तु हार्दिक्यः प्रविष्टे श्वेतवाहने । विधुन्वन् सशरं चापं पाञ्चाल्याभ्यां समागतः ॥ २७ ॥ चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यावर्जुनस्य पदानुगौ । पर्यवारयदायान्तौ कृतवर्मा तथेषुभिः ॥ २८ ॥ तावविध्यत् ततो भोजः कृतवर्मा शितैः शरैः । त्रिभिरेव युधामन्युं चतुर्भिश्चोत्तमौजसम् ॥ २९ ॥ तावप्येनं विविधतुर्दशभिर्दशभिः शरैः । त्रिभिरेव युधामन्युरुत्तमौजास्त्रिभिस्तथा ॥ ३० ॥ संचिच्छिदतुरप्यस्य ध्वजं कार्मुकमेव च । अथान्यद्धनुरादाय हार्दिक्यः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ३१ ॥ कृत्वा विधनुषौ वीरौ शरवर्षैरवाकिरत् । तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा भोजं

ऐसा विचारकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, कि-अरे ! तू कृतवर्मा के ऊपर दया न कर, सम्बन्धका ध्यान छोड़कर इसको कुचल कर मारडाल ॥ २५ ॥ तुरन्त ही अर्जुन कृतवर्माको वाणोंसे मूर्छित करके तेज चलनेवाले घोड़ोंको दौड़ाता२ काम्बोजोंकी सेनामें जाघुसा ॥ २६ ॥ अर्जुनको काम्बोजसेनामें घुसाहुआ देखकर कृतवर्माको क्रोध चढ़आया और वह अपने धनुष तथा वाणोंको घुमाता २ अर्जुनके रथकी रक्षा करनेको अर्जुनके पीछे आतेहुए पाञ्चालराजके दोनों पुत्रोंके साथ युद्ध करने लगा, और समीपमें पहुँचसकें ऐसे वाणोंसे उनको रोकनेलगा, कृतवर्माने युधामन्युको तीन और उत्तमौजाको चार तेज वाणोंसे बींधडाला ॥ २७-२८ ॥ उन दोनोंने भी इसको दश२ वाणोंसे बींधडाला और तीन२ वाण मारकर इसकी ध्वजा और धनुषको काटडाला, इससे कृतवर्मा क्रोधसे मूर्छित होगया और उसने दूसरा धनुष लेकर उनके धनुषोंको काटडाला तथा वाणोंका ताँता बाँध दिया, उन दोनोंने दूसरे धनुषको तयार करके भोजको मारना

विमर्दनः ॥ ३२ ॥ तेनान्तरेण बीभत्सुर्विवेशामित्रवाहिनीम् । न लेभाते तु तौ द्वारं वारितौ कृतवर्मणा ॥ ३३ ॥ धार्त्तराष्ट्रेष्वनीकेषु यतमानौ नरर्षभौ । अनीकान्यर्दयत् युद्धे त्वरितः श्वेतवाहनः ॥ ३४ ॥ नावधीत् कृतवर्माणं प्राप्तमप्यरिसूदनः । तं दृष्ट्वा तु तथायान्तं शूरो राजा श्रुतायुधः ॥ ३५ ॥ अभ्यद्रवत् संक्रुद्धो विधुन्वानो महद्धनुः । स पार्थं त्रिभिरानर्च्छत् सप्तत्या च जनार्दनम् ॥ ३६ ॥ क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन पार्थकेतुमताडयत् । ततोऽर्जुनो नवत्या तु शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३७ ॥ आजघान भृशं क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् । स तं न ममृषे राजन् पाण्डवेयस्य विक्रमम् ॥३८॥ अथैनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समार्पयत् । तस्या-

---

आरम्भ करदिया ॥ ३०—३२ ॥ इस अवसरका लाभ ले अर्जुन शत्रुकी सेनामें घुसगया और वे दोनों कृतवर्माके रोकलेनेके कारण सेनामें घुसनेका मार्ग न पासके ॥३३॥ परन्तु उन दोनों वीरोंने कौरवसेनामें प्रवेश करनेका बहुतही यत्न किया, उधर श्वेत घोड़ोंवाला अर्जुन सेनामें प्रवेश करनेकी शीघ्रताके कारण, युद्ध में सेनाको पीड़ित करने लगा, उसने शीघ्रताके कारण समीपमें आयेहुएभी कृतवर्माको मारनेसे छोड़दिया. अर्जुनको इसप्रकार बढ़ताहुआ देखकर वीर राजा श्रुतायुधको बड़ा क्रोध चढ़ा और वह उसकी ओर बढ़ा, धनुषको घुमातेहुए उसने अर्जुनके तीन और श्रीकृष्णके सत्तर बाण मारे ॥ ३४--३६ ॥ और उसने क्षुरप्र नामक तेज बाणसे अर्जुनकी ध्वजापर प्रहार किया यह देखकर अर्जुनको बड़ा क्रोध चढ़ा और उसने बड़ेभारी हाथी को भालोंसे मारनेकी समान उसके नमीहुई गांठवाले नब्बै बाण मारे, श्रुतायुध पाण्डवके इस पराक्रमको न सहसका ॥ ३७—३८ ॥ और अर्जुनके सत्तर बाण मारे तुरन्त ही अर्जुनने उसके धनुष और भाथेको काटडाला

र्जुनो धनुश्छित्त्वा शरावापं निकृत्य च ॥ ३९ ॥ आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तभिर्नतपर्वभिः । अथान्यद्धनुरादाय स राजा क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४० ॥ वासविं नवभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् । ततोऽर्जुनः स्मयन्नेव श्रुतायुधमरिन्दमः ॥४१॥ शरैरनेकसाहस्रैः पीडयामास भारत। अश्वांश्चास्यावधीत्तूर्णं सारथिं च महारथः ४२ विव्याध चैनं सप्तत्या नाराचानां महाबलः । हताश्वं रथमुत्सृज्य स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४३ ॥ अभ्यद्रवद्रणे पार्थं गदामुद्यम्य वीर्यवान् । वरुणस्यात्मजो वीरः स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४४ ॥ पर्णाशा जननी यस्य शीततोया महानदी । तस्य माताब्रवीद्राजन् वरुणं पुत्रकारणात् ॥ ४५ ॥ अवध्योयं भवेल्लोके शत्रूणां तनयो मम । वरुणस्त्वब्रवीत् प्रीतो ददाम्यस्मै वरं हितम् ॥ ४६ ॥ दिव्यमस्त्रं सुतस्तेयं येनावध्यो भविष्यति । नास्ति चाप्यमरत्वं वै

तथा बड़े क्रोधमें भरकर नमीहुई गाँठवाले सात बाण उसकी छातीमें मारे, उस राजाने भी उतना ही क्रोध करके, दूसरा धनुष हाथमें ले अर्जुनके हाथ तथा छाती पर नौ बाण मारे, शत्रुओंके नाशकर्त्ता महाबली अर्जुनने हँसकर श्रुतायुधको हजारों बाण मारकर पीडित किया और उस महारथी अर्जुनने इसके घोड़े तथा सारथिको भी मारडाला ॥ ३९–४२ ॥ और फिर श्रुतायुधके सत्तर बाण मारे, वीर्यवान् राजा श्रुतायुध मरेहुए घोड़ोंवाले रथमेंसे उतरकर हाथमें गदा ले अर्जुनकी ओरको युद्ध करनेको दौड़ा, वीर राजा श्रुतायुध वरुणका पुत्र था, ठण्डे जलवाली महानदी पर्णाशा इसकी माता है हे राजन् ! उसकी माता पर्णाशाने पुत्रस्नेहके कारण वरुणसे कहा, कि–॥ ४३–४५ ॥ हे वरुण ! मेरा पुत्र जगत्में शत्रुओंसे अवध्य होजाय, यह वर मुझे दीजिये, वरुणने प्रसन्न होकर कहा, "तथास्तु" मैं तुझे हितकारक वर देता हूँ ॥ ४६ ॥ यह दिव्य अस्त्र ले, इस अस्त्रसे तेरा

मनुष्यस्य कथञ्चन ॥ ४७ ॥ सर्वेणावश्यमर्त्तव्यं जातेन सरिताम्वरे । दुर्धर्षस्त्वेष शत्रूणां रणेषु भविता सदा ॥ ४८ ॥ अस्त्रस्यास्य प्रभावाद्वै व्येतु ते मानसो ज्वरः । इत्युक्त्वा वरुणः प्रादात् गदां मन्त्रपुरस्कृताम् ॥ ४९ ॥ यामासाद्य दुराधर्षः सर्वलोके श्रुतायुधः । उवाच चैनं भगवान् पुनरेव जलेश्वरः ॥ ५० ॥ अयुध्यति न मोक्तव्या सा त्वय्येव पतेदिति । हन्यादेषा प्रतीपं हि प्रयोक्तारमपि प्रभो ॥५१॥ न चाकरोत् स तद्वाक्यं प्राप्ते काले श्रुतायुधः । स तया वीरघातिन्या जनार्दनमताडयत् ॥ ५२ ॥ प्रतिजग्राह तां कृष्णः पीनेन स्वेन वीर्यवान् । नाकम्पयत शौरिं सा विन्ध्यं गिरिमिवानिलः ॥ ५३ ॥ प्रत्युद्यान्ती तमेवैषा कृत्येव दुरधिष्ठिता ।

पुत्र संसारमें अवध्य होजायगा, परन्तु हे महानदी ! मनुष्य संसारमें अमर किसी प्रकार नहीं होसकता ॥ ४७ ॥ हे नदियोंमें श्रेष्ठ पर्णाशे ! जो उत्पन्न हुआ है उसको अवश्य मरना पड़ेगा, परन्तु इस अस्त्रसे तेरा पुत्र रणमें शत्रुओंसे सदा दुर्धर्ष रहेगा, कोई भी इसका अनादर नहीं करसकेगा ॥ ४८ ॥ इस अस्त्रके प्रभावसे तेरी मानसिक चिन्ता दूर हो, ऐसा कहकर वरुणने मंत्रों से अभिमन्त्रित एक गदा उसको देदी ॥ ४९ ॥ उस गदाको पाकर श्रुतायुध सब मनुष्योंसे दुर्धर्ष होगया भगवान् जलेश्वर वरुणने फिर उससे कहा, कि—॥ ५० ॥ परन्तु इस गदाको तू युद्ध न करनेवालेके ऊपर न छोड़ना, यदि तू भूलसे ऐसा कर बैठा तो यह गदा तेरा ही नाश करदेगी, हे राजन् ! वरुणकी दीहुई यह गदा (अकारण) प्रहार करने वालेकाही नाश करने वाली थी ॥ ५१ ॥ परन्तु जब काल सिरपर बोलने लगा, तब श्रुतायुध वरुणके वचनको भूलगया और उसने वह वीरघातिनी गदा श्रीकृष्णके ऊपर फेंकी ॥ ५२ ॥ श्रीकृष्णने उस गदाको अपने पुष्ट वक्षःस्थल पर झेल लिया और पवनके आघातसे जैसे

जघान चास्थितं वीरं श्रुतायुधममर्षणम् ॥ ५४ ॥ हत्वा श्रुतायुधं वीरं धरणीमन्वपद्यत । गदां निवर्त्तितां दृष्ट्वा निहतञ्च श्रुतायुधम् ॥ ५५ ॥ हाहाकारो महांस्तत्र सैन्यानां समजायत । स्वेनास्त्रेण हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥ ५६ ॥ अयुध्यमानाय ततः केशवाय नराधिप । क्षिप्ता श्रुतायुधेनाथ तस्मात्तमवधीद्गदा ५७ यथोक्तं वरुणेनाजौ तथा स निधनं गतः । व्यसुश्चाप्यपतद्भूमौ प्रेक्षतां सर्वधन्विनाम् ॥ ५८ ॥ पतमानस्तु स बभौ पर्णाशायाः प्रियः सुतः । स भग्न इव वातेन बहुशाखो वनस्पतिः ॥ ५९ ॥ ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनामुख्याश्च सर्वशः । प्राद्रवन्त हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥ ६० ॥ ततः काम्बोजराजस्य पुत्रः शूरः

विंध्याचल नहीं डिगता है तैसेही वे भी उस गदाके प्रहारसे डिगे नहीं ॥ ५३ ॥ परन्तु दुष्ट पुरुषके पास रहनेवाली कृत्या जैसे उस दुष्टका ही नाश करती है, तैसेही वह गदाभी वहाँसे लौटकर श्रुतायुधकी ओरको चली और उसने क्रोधी श्रुतायुधका नाश करडाला ॥ ५४ ॥ और वीरवर श्रुतायुधको मारनेके अनन्तर वह पृथिवीपर गिरपड़ी, लौटतीहुई उस गदाको और श्रुतायुधको अपने ही अस्त्रसे मराहुआ देखकर कौरवसेनामें हाहाकार मचगया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्ण युद्ध नहीं कररहे थे, तो भी उसने उनके ऊपर गदा फेंकी थी, इसकारण उस गदाने श्रुतायुधका ही नाश करडाला ॥ ५७ ॥ जैसा वरुणने कहा था वैसी ही होने पर वह रणमें मारागया और सब धनुषधारियों के देखते२ भूमिमें ढहपडा ॥ ५८ ॥ पर्णाशाका पुत्र श्रुतायुध पृथिवीपर गिरकर ऐसे शोभित होरहा था, जैसे आंधीसे गिराहुआ शाखा प्रशाखाओंवाला वृक्ष पड़ा हो ॥ ५९ ॥ शत्रुनाशक श्रुतायुधको मराहुआ देखकर सब सेनाएं और सेनापति भी भागने लगे ॥ ६० ॥ तदनन्तर काम्बोजराजका शूर पुत्र सुदक्षिण तेज

सुदक्षिणः । अभ्ययाज्जवनैरश्वैः फाल्गुनं शत्रुसूदनम् ॥ ६१ ॥ तस्य पार्थः शरान् सप्त प्रेषयामास भारत । ते तं शूरं विनिर्भिद्य प्राविशन् धरणीतलम् ॥ ६२ ॥ सोऽतिविद्धः शरैस्तीक्ष्णैर्गाण्डीवप्रेषितैर्मृधे । अर्जुनं प्रतिविव्याध दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ ६३ ॥ वासुदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनः पार्थञ्च पञ्चभिः । तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा केतुं चिच्छेद मारिष ६४ भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां तञ्च विव्याध पाण्डवः । स तु पार्थं त्रिभिर्विद्ध्वा सिंहनादमथानदत् ६५ सर्वपारशवीञ्चैव शक्तिं शूरः सुदक्षिणः । सघण्टां प्राहिणोद् घोरां क्रुद्धो गाण्डीवधन्वने ॥ ६६ ॥ सा ज्वलन्ती महोल्केव तमासाद्य महारथम् । सविस्फुलिङ्गा निर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ६७ ॥ शक्त्या त्वभिहतो गाढं मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः । समाश्वास्य महातेजाः सृक्किणी

घोड़ोंवाले रथ पर बैठकर शत्रुसूदन अर्जुनके ऊपर झपटा ६१ हे भारत ! अर्जुनने उसके ऊपर सात बाण छोड़े, वे बाण उसके शरीरको फोड़कर पृथिवीमें घुसगए ॥ ६२ ॥ युद्धमें गाण्डीवमेंसे छूटेहुए बाणोंसे अतीव बिंधेहुए सुदक्षिणने अर्जुनको दश कंकपत्रवाले बाणोंसे घायल किया ॥ ६३ ॥ फिर उसने वासुदेवको तीन और अर्जुनको पाँच बाणोंसे घायल किया, हे राजन् ! अर्जुनने उसकी ध्वजाको काटकर उसके धनुषको भी काट डाला ॥ ६४ ॥ और अर्जुनने बहुतही तेज दो भल्ल नामक बाणोंसे उसको घायल करदिया, सुदक्षिण तीन बाणोंसे धनञ्जयको घायल कर सिंहकी समान गर्जनेलगा ॥ ६५ ॥ और क्रोधमें भरकर ठोस लोहेकी एक घोर शक्ति अर्जुनके ऊपर फेंकी ॥ ६६ ॥ बड़ी२ चिनगारियोंको उठातीहुई उल्काकी समान वह शक्ति महारथी अर्जुनके लगकर भूमिमें गिरपड़ी ॥ ६७ ॥ शक्ति लगनेसे अर्जुनको बड़ीभारी मूर्छा आगई, जब उसको मूर्छा दूर हुई तब अचिन्त्य पराक्रमी अर्जुन जबाड़े चाटताहुआ चुप होकर तयार

परिलेलिहन् ॥ ६८ ॥ तं चतुर्दशभिः पार्थो नाराचैः कङ्कपत्रिभिः। साश्वध्वजधनुःसूतं विव्याधाचिन्त्यविक्रमः ॥ ६९ ॥ रथञ्चान्यैः सुबहुभिश्चक्रे विशकलं शरैः। सुदक्षिणन्तं काम्बोजं मोघसंकल्पविक्रमम् ॥७०॥ विभेद हृदि वाणेन पृथुधारेण पाण्डवः। स भिन्नवर्मा स्रस्ताङ्गः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ॥७१॥ पपाताभिमुखः शूरो यन्त्रमुक्त इव ध्वजः। गिरेः शिखरजः श्रीमान् सुशाखः सुप्रतिष्ठितः ॥ ७२ ॥ निर्भग्न इव वातेन कर्णिकारो हिमात्यये। शेते स्म निहतो भूमौ काम्बोजास्तरणोचितः ॥ ७३ ॥ महार्हाभरणोपेतः सानुमानिव पर्वतः। सुदर्शनीयस्ताम्राक्षः कर्णिना स सुदक्षिणः ॥ ७४ ॥ पुत्रः काम्बोजराजस्य पार्थेन विनिपातितः।

होगया, तव उसने चौदह कंकपत्रवाले वाणोंसे सुदक्षिणकी ध्वजा घोड़े धनुष और सारथिको छिन्न भिन्न करदिया ॥ ६८–६९ ॥ तथा और वहुतसे वाण मारकर उसके रथके टुकड़े२ करदिये, तथा विफल मनोरथ हुए काम्बोजकुमार सुदक्षिणके हृदयको मोटी धारवाला वाण मारकर चीर दिया, उस वाणके प्रहारसे उसका कवच टूटगया, अंग छिन्न भिन्न होगए और उसके मस्तक परसे मुकुट तथा हाथोंमेंसे वाजूवन्द गिरपड़े ॥७०–७१॥ और यन्त्रमेंसे छूटीहुई ध्वजा तथा ग्रीष्मऋतुमें पर्वतके शिखरपर उगाहुआ शाखा प्रशाखाओंवाला कनेरका वृक्ष जैसे वायुसे पृथिवीमें गिरपड़ता है, तैसेही वीर सुदक्षिण अर्जुनके सामने पृथिवीपर गिरपड़ा, जो विछौने पर पौढ़नेके योग्य था वह इस समय पृथिवीपर पड़ाहुआ सोरहा था ॥ ७२–७३ ॥ कुमार सुदक्षिण वहुमूल्य गहिने पहिरे हुए था, उसके हाथमें धनुष था, पृथ्वीपर पड़ाहुआ वह वीर शिखरवाले पर्वतकी समान दीखरहा था, गलेमें सुवर्णकी मालाओंको डालेहुए सुन्दर देखने योग्य लाल २ नेत्रवाले काम्बोजराजके पुत्रको, अर्जुनने कर्णि नामक

धारयन्नग्निसंकाशां शिरसा काञ्चनीं स्रजम् ॥ ७५ ॥ अशोभत महाबाहुर्व्यसुर्भूमौ निपातितः । ततः सर्वाणि सैन्यानि व्यद्रवन्त सुतस्य ते । हतं श्रुतायुधं दृष्ट्वा काम्बोजञ्च सुदक्षिणम् ७६

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि श्रुतायुधसुदक्षिणवधे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

सञ्जय उवाच । हते सुदक्षिणे राजन् वीरे चैव श्रुतायुधे । जवेनाभ्यद्रवन् पार्थं कुपिताः सैनिकास्तव ॥ १ ॥ अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः । अभ्यवर्षंस्ततो राजन् शरवर्षैर्धनञ्जयम् ॥२॥ तेषां षष्टिशतानन्यान् प्रामथ्नात् पाण्डवः शरैः । ते स्म भीताः पलायन्ते व्याघ्रात् क्षुद्रमृगा इव ॥ ३ ॥ ते निवृत्ताः पुनः पार्थं सर्वतः पर्यवारयन् । रणे सपत्नान्निघ्नन्तं जिगीषन्तं परान् युधि ॥ ४ ॥ तेषामापततां तूर्णं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।

बाण मारकर पृथ्वी पर सुलादिया ॥७४-७५॥ जब वह प्राणरहित होकर पृथ्वीमें गिरा तब बहुत ही अच्छा लगता था, तदनन्तर श्रुतायुध और काम्बोजकुमार सुदक्षिणको मराहुआ देखकर तुम्हारे पुत्रकी सेनाएं भागनेलगीं ॥ ७६ ॥ बानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९२ ॥ ॥ * ॥ * ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् ! सुदक्षिण और वीर श्रुतायुधके मारे जानेपर तुम्हारे सैनिक क्रोधमें भर वेगके साथ अर्जुनके ऊपरको दौड़पड़े ॥ १ ॥ हे राजन ! अभीषाह, शूरसेन शिबि और वसाति अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ २ ॥ उनमेंके छः योधाओंको तथा दूसरे भी बहुतसे योधाओंको अर्जुनने बाणोंसे मथडाला, तब वे बघेरेसे डरतेहुए छोटे २ हिरनोंकी समान पहले तो भागने लगे ॥ ३ ॥ परन्तु वे (थोड़ीही देरमें फिर) लौटकर रणमें खड़े होगए और उन्होंने युद्धमें शत्रुओंका संहार तथा पराजय करनेवाले अर्जुनको चारों ओरसे घेरलिया ४

शिरांसि पातयामास बाहूंश्चापि धनञ्जयः ॥ ५ ॥ शिरोभिः पातितैस्तत्र भूमिरासीन्निरन्तरा । अभ्रच्छायेव चैवासीद् ध्वांक्षगृध्रबलैर्युधि ॥ ६ ॥ तेषु तूत्साद्यमानेषु क्रोधामर्षसमन्वितौ । श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च धनञ्जयमयुध्यताम् ॥७॥ बलिनौ स्पर्द्धिनौ वीरौ कुलजौ बाहुशालिनौ । तावेनं शरवर्षाणि सव्यदक्षिणमस्यताम् ॥८॥ त्वरायुक्तौ महाराज प्रार्थयानौ महद्यशः । अर्जुनस्य वधप्रेप्सू पुत्रार्थं तव धन्विनौ ॥ ९ ॥ तावर्जुनं सहस्रेण पत्रिणां नतपर्वणाम् । पूरयामासतुः क्रुद्धौ तडागं जलदौ यथा ॥ १० ॥ श्रुतायुश्च ततः क्रुद्धस्तोमरेण धनञ्जयम् । आजघान रथश्रेष्ठ पीतेन निशितेन च ॥ ११ ॥ सोतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ।

परन्तु उन आतेहुओं को अर्जुन वे जैसे २ आतेगए तैसे २ गाण्डीवमेंसे बाण छोडकर उनके मस्तक और भुजाओंको काटता ही चलागया ॥५॥ पृथिवीपर गिरेहुए शिरों और भुजाओंसे पृथ्वी खचाखच भरगई और युद्धभूमि पर उड़तेहुए कौए तथा गीधोंकी छाया, बादलोंकी छायाकी समान प्रतीत होनेलगी॥६॥ जब अर्जुन तुम्हारी सेनाको इसप्रकार नष्ट भ्रष्ट करनेलगा, उस समय श्रुतायु और अच्युतायु नामवाले योधा क्रोध और अमर्षमें भरकर अर्जुनके साथ लड़नेलगे ॥ ७ ॥ बली, डाह करनेवाले, शूर, कुलीन और बाहुबलशाली वे दोनों वीर अर्जुनकी दाहिनी और बाईं ओर बाण बरसानेलगे ॥ ८ ॥ हे महाराज! वे दोनों धनुषधारी बडे उतावले थे और अपना बड़ा यश चाहते थे; तथा तुम्हारे पुत्रके लिये अर्जुनका नाश करनेको उत्सुक होरहे थे ९ कोपमें भरेहुए दो मेघ जैसे तलावको जलसे ढकदेते हैं तैसे ही उन दोनोंने कोपमें भरकर नमीहुई गाठोंवाले सहस्रों बाणोंसे अर्जुनको ढकदिया ॥ १० ॥ तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ श्रुतायुने बड़े क्रोधमें भरकर तेज और पानी पिलाया हुआ तोमर धनञ्जय

जगाम परमं मोहं मोहयन् केशवं रणे ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु सोऽच्युतायुर्महारथः । शूलेन भृशतीक्ष्णेन ताडयामास पाण्डवम् ॥ १३ ॥ क्षते क्षारं हि स ददौ पाण्डवस्य महात्मनः । पार्थोऽपि भृशसंविद्धो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ १४ ॥ ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते । सिंहनादो महानासीत् हतं मत्वा धनञ्जयम् ॥ १५ ॥ कृष्णश्च भृशसन्तप्तो दृष्ट्वा पार्थं विचेतनम् । आश्वासयत् सुहृद्याभिर्वाग्भिस्तत्र धनञ्जयम् ॥ १६ ॥ ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ लब्धलक्षौ धनञ्जयम् । वासुदेवञ्च वार्ष्णेयं शरवर्षैः समन्ततः ॥ १७ ॥ सचक्रकूबररथं साश्वध्वजपताकिनम् । अदृश्यं चक्रतुर्युद्धे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १८ ॥ प्रत्याश्वस्तस्तु बीभत्सुः शनकैरिव भारत । प्रेतराजपुरं प्राप्य पुनः प्रत्यागतो

के मारा ॥११॥ शत्रुने बड़ी जोरसे तोमरका प्रहार किया, इससे शत्रुनाशक अर्जुन मूर्छित होगया, यह देखकर श्रीकृष्ण घबड़ा गए ॥ १२ ॥ इतनेमें ही फिर महारथी अच्युतायुने अर्जुनके ऊपर अतितीक्ष्ण शूल फेंका ॥१३॥ यह प्रहार महात्मा अर्जुनके लिये घाव पर लवण पड़नेकी समान होगया और बहुत ही घायल होजानेके कारण अर्जुन ध्वजाका दण्डा पकड़ेहुए खड़ा ही रहगया ॥ १४ ॥ हे राजन ! इस समय तुम्हारी सब सेनाने अर्जुनको मराहुआ जानकर बड़ाभारी सिंहनाद किया ॥१५॥ कृष्ण अर्जुनको मूर्छित देखकर बहुत ही दुःखित हुए और मधुर वचन कहकर अर्जुनको जगानेलगे ॥ १६ ॥ इस समय कौरव पक्षके दोनों महारथी अर्जुन और कृष्णको निशाना बनाकर चारों ओरसे बाण बरसाते रहे ॥१७॥ उन दोनोंने रथ, पहिये, कूबर, घोड़े, ध्वजा और पताका-सहित अर्जुनको बाणोंकी वर्षासे ढकदिया, यह एक अचरजसा हुआ ॥१८॥ हे भारत ! तदनन्तर यमराजके घरसे फिर लौटेहुएकी समान अर्जुन धीरे२ होशमें

यथा ॥ १९ ॥ संछन्नं शरजालेन रथं दृष्ट्वा सकेशवम्। शत्रू चाभिमुखौ दृष्ट्वा दीप्यमानाविवानलौ ॥ २० ॥ प्रादुश्चक्रे ततः पार्थः शाक्रमस्त्रं महारथः। तस्मादासन् सहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ॥ २१ ॥ ते जघ्नुस्तौ महेष्वासौ ताभ्यां मुक्ताश्च सायकाः। विचेरुराकाशगता पार्थवाणविदारिताः ॥ २२ ॥ प्रतिहत्य शरांस्तूर्णं शरवेगेन पाण्डवः। प्रतस्थे तत्र तत्रैव योधयन् वै महारथान् ॥ २३ ॥ तौ च फाल्गुनवाणौघैर्विवाहुशिरसौ कृतौ। वसुधामन्वपद्येतां वातनुन्नाविव द्रुमौ ॥ २४ ॥ श्रुतायुषश्च निधनं वधश्चैवाच्युतायुषः। लोकविस्मापनमभूत् समुद्रस्येव शोषणम् ॥ २५ ॥ तयोः पदानुगान् हत्वा पुनः पञ्चाशतं रथान्। प्रत्यगाद् भारतीं सेनां निघ्नन् पार्थो वरान् वरान् ॥ २६ ॥

आनेलगा ॥ १९ ॥ उस समय उसने कृष्णसहित अपने रथको वाणोंसे ढकाहुआ देखा और प्रज्वलित अग्निकी समान दोनों शत्रुओंको भी अपने सामने खड़ाहुआ देखा ॥२०॥ यह देखकर महारथी अर्जुनने ऐन्द्रास्त्रको प्रकट किया, उसमेंसे नमीहुई गाँठों वाले सहस्रों वाण प्रकट होगये ॥ २१ ॥ वे वाण श्रुतायु और अच्युतायु पर प्रहार करनेलगे और उनके छोड़ेहुए वाणोंका भी नाश करनेलगे, उनके वाण अर्जुनके वाणोंसे कटकर आकाशमें ही फिरनेलगे ॥२२॥ अर्जुन वाणोंके वेगसे शीघ्र ही शत्रुके वाणोंको शान्त कर, इधर उधर खड़ेहुए महारथियोंके साथ भी लड़नेलगा ॥ २३ ॥ देखते२ अर्जुनके वाणोंसे श्रुतायु और अच्युतायुके शिर और भुजा कटकर आँधीके हिलायेहुए वृक्षकी समान पृथ्वी पर ढहपड़े ॥ २४ ॥ श्रुतायुका मरण और अच्युतायु का वध समुद्रके सूखनेकी समान लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाला हुआ ॥ २५ ॥ तदनन्तर अर्जुन उनके अनुयायी पचास रथियों मारकर दूसरे श्रेष्ठ२ वीरोंको मारता २ कौरवोंकी

श्रुतायुषञ्च निहतं प्रेक्ष्य चैवाच्युतायुषम् । नियतायुश्च संक्रुद्धो दीर्घायुश्चैव भारत ॥ २७ ॥ पुत्रौ तयोर्नरश्रेष्ठौ कौन्तेयं प्रतिजग्मतुः । किरन्तौ विविधान् बाणान् पितृव्यसनकर्षितौ ॥ २८ ॥ तावर्जुनो मुहूर्त्तेन शरैः सन्नतपर्वभिः । प्रैषयत् परमक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २९ ॥ लोडयन्तमनीकानि द्विपं पद्मसरो यथा । नाशक्नुवन् वारयितुं पार्थं क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ ३० ॥ अङ्गास्तु गजवारेण पाण्डवं पर्यवारयन् । क्रुद्धाः सहस्रशो राजन् शिक्षिता हस्तिसादिनः ॥३१॥ दुर्योधनसमादिष्टाः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः । प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च कलिंगप्रमुखा नृपाः ॥ २२ ॥ तेषामापततां शीघ्रं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः । निचकर्त्त शिरांस्युग्रो बाहूनपि सुभूषणान् ॥ ३३ ॥ तैः शिरोभिर्मही कीर्णा बाहुभिश्च सहांगदैः ।

सेनाके मध्यमें घुसगया ॥ २६ ॥ श्रुतायु और अच्युतायुको मरा हुआ देख उसके पुत्र नियुतायु और दीर्घायु पिताके मरणसे खिन्न होगए और क्रोधमें भरकर अर्जुनके ऊपर अनेकों बाण छोड़तेहुए उसके सामने लड़नेको मैदानमें आगये ॥ २७-२८ ॥ उनको सामने देखते ही अर्जुनने परमक्रोधमें भरकर मुहूर्तभर में उन्हें भी नमेहुए बाणोंके प्रहारसे यमलोकमें पहुँचा दिया ॥२९॥ सरोवरको कुचलते हुए हाथीकी समान सेनाको कुचलते हुए अर्जुनको कोई भी क्षत्रिय वीर रोक न सका ॥ ३० ॥ परन्तु हे राजन्! इतनेमें ही सहस्रों हाथीसवार अंगदेशी राजाओंने क्रोधमें भरकर, अर्जुनको हाथियोंकी सेनासे घेरलिया और दुर्योधनकी आज्ञा होने पर पूर्व दक्षिण तथा कलिंग देशके राजा पर्वतकी समान ऊँचे हाथियोंपर बैठकर अर्जुनके सामने लड़नेको चढ़आये ॥३१-३२॥ महापराक्रमी अर्जुनने गाण्डीव धनुषमेंसे बाण छोड़कर उन राजाओंके शिर और सुशोभित भुजाओंको काटडाला ॥ ३३ ॥ उन मस्तक और बाजूबन्दवाली

बभौ कनकपाषाणैर्भुजगैरिव संवृता ॥ ३४ ॥ बाहवो विशिखैश्छिन्नाः शिरांस्युन्मथितानि च । पतमानान्यदृश्यन्त द्रुमेभ्य इव पक्षिणः ॥ ३५ ॥ शरैः सहस्रशो विद्धा द्विपाः प्रस्रुतशोणिताः । अदृश्यन्ताद्रयः काले गैरिकाम्बुस्रवा इव ॥ ३६ ॥ निहताः शेरते स्मान्ये बीभत्सोर्निशितैः शरैः । गजपृष्ठगता म्लेच्छा नानाविकृतदर्शनाः ॥ ३७ ॥ नानावेषधरा राजन् नानाशस्त्रौघसंवृताः । रुधिरेणानुलिप्तांगा भान्ति चित्रैः शरैर्हताः ॥ ३८ ॥ शोणितं निर्वमन्ति स्म द्विपाः पार्थशराहताः । सहस्रशश्छिन्नगात्राः सारोहाः सपदानुगाः ॥ ३९ ॥ चुक्रुशुश्च निपेतुश्च बभ्रमुश्चापरे दिशः । भृशं त्रस्ताश्च बहवः स्वानेव ममृदुर्गजाः ॥ ४० ॥ सान्त-

---

भुजाओंसे ढकीहुई पृथ्वी सर्प और सुवर्णकी शिलाओंसे ढकी हुईसी शोभा पानेलगी ॥ ३४ ॥ बाणोंसे कटी और मथीहुई भुजाएँ तथा शिर, गिरते समय वृक्षों परसे उड़तेहुए पक्षियोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ ३५ ॥ बाणोंसे घायल होनेके कारण जिनके शरीरसे रुधिर टपकरहा था ऐसे सहस्रों हाथी, वर्षाकालमें गेरुको टपकानेवाले पर्वतोंकी समान, दीखते थे ॥ ३६ ॥ इस लड़ाईमें हाथियोंकी पीठपर बैठहुए बहुतसे म्लेच्छ अर्जुनके बाणोंसे कटकर पृथ्वीपर लुढ़कगये, उस समय उनकी आकृतियें बड़ी भयंकर दीखती थीं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! नानाप्रकारके बाणोंसे छिदेहुए और नानाप्रकारके वेश धारण करनेवाले तथा बाणोंके प्रहारसे मरेहुए योधाओंके अङ्ग खूनमें लथड़ पथड़ होनेके कारण रणभूमिमें शोभा पारहे थे ॥ ३८ ॥ अर्जुनके बाणोंके प्रहारसे बहुतसे हाथी रुधिर ओकरहे थे, बहुतसे शरीर घायलहो जानेके कारण अनुचर और सवारों सहित चीख मारतेहुए पृथ्वी पर गिर रहे थे और बहुतसे हाथी अर्जुनके बाणप्रहारसे व्याकुल हो भागरहे थे तथा बहुतसे अत्यन्त भयभीत होनेके कारण अपने

रायुधिनश्चैव द्विपास्तीक्ष्णविषोपमाः । निघ्नन्त्यसुरमायां ये सुघोरा घोरचक्षुषः ॥ ४१ ॥ यवनाः पारदाश्चैव शकाश्च सह बाल्हिकैः । काकवर्णा दुराचाराः स्त्रीलोलाः कलहप्रियाः ॥ ४२ ॥ द्राविडास्तत्र युध्यन्ते मत्तमातंगविक्रमाः । गोयोनिप्रभवा म्लेच्छाः कालकल्पाः प्रहारिणः ॥ ४३ ॥ दार्वातिसारा दरदाः पुंड्राश्चैव सहस्रशः । ते न शक्याः स्म संख्यातुं व्राताः शतसहस्रशः ॥ ४४ ॥ अभ्यवर्षन्त ते सर्वे पांडवं निशितैः शरैः । अवाकिरंश्च ते म्लेच्छा नानायुद्धविशारदाः ॥ ४५ ॥ तेषामपि ससर्जाशु शरवृष्टिं धनञ्जयः । सृष्टिस्तथाविधा ह्यासीच्छलभानामिवायतिः ॥ ४६ ॥ अभ्रच्छायामिव शरैः सैन्ये कृत्वा धनञ्जयः । मुण्डार्द्धमुण्डान् जटिलानशुचीन् जटिलाननान् ॥ ४७ ॥ म्लेच्छानशातयत् सर्वान्

सवारोंको माररहे थे, ॥ ३९–४० ॥ और तीक्ष्ण विषके समान हाथी एक दूसरेसे लड़रहे थे आसुरी मायाके जाननेवाले, घोररूप, घोरनेत्र, कौओंकी समान काले, स्त्रीलम्पट, कलहप्रिय यवन, पारद, शक, बाल्हीक, मदमत्त हाथियोंकी समान पराक्रमी द्रविड़, वसिष्ठकी गौसे उत्पन्न हुए कालकी समान प्रहार करनेवाले तथा दार्वातिसार, दरद और सहस्रों पुण्ड्र म्लेच्छ अर्जुनके सामने आकर लड़नेलगे, वे व्रात (संस्काररहित) इतने थे कि-उनकी गिनती नहीं हो सकती थी ॥ ४१–४४ ॥ नानाप्रकारके युद्ध करनेमें चतुर वे सब म्लेच्छ अर्जुनके ऊपर बाण बरसाने लगे ॥ ४५ ॥ तुरन्त ही उनके ऊपर अर्जुनने भी बाण बरसाए, अर्जुनके छोड़ेहुए वे बाण आकाशमें टीड़ीदलकी समान फैल गए ॥ ४६ ॥ इस प्रकार अर्जुनने बादलोंकी छायाकी समान बाणोंके जालसे उस सेनाको ढककर सबोंके मस्तक, मुँड़ेहुए, अधमुँड़े, जटाधारी और अपवित्र डाढ़ीवाले इन सब इकट्ठेहुए म्लेच्छोंका नाश करडाला और पहाड़ी योधाओंको भी बाण

समेतानस्त्रतेजसा । शरैश्च शतशो विद्धास्ते संघा गिरिचारिणः । प्राद्रवन्त रणे भीता गिरिगह्वरवासिनः ॥ ४८ ॥ गजाश्वसादिम्लेच्छानां पतितानां शितैः शरैः । बकाः कङ्का वृका भूमावपिबन्रुधिरं मुदा । पत्त्यश्वरथनागैश्च प्रच्छन्नकृतसंक्रमाम् ॥४९॥ शरवर्षप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् । प्रावर्त्तयन्नदीमुग्रां शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥५०॥ छिन्नांगुलिक्षुद्रमत्स्यां युगान्ते कालसन्निभाम् । प्राकरोद्गजसम्बाधां नदीमुत्तरशोणिताम् ॥ ५१ ॥ देहेभ्यो राजपुत्राणां नागाश्वरथसादिनाम् । यथा स्थलञ्च निम्नञ्च न स्याद्वर्षति वासवे ॥ ५२ ॥ तथासीत् पृथिवी सर्वा शोणितेन परिप्लुता । षट्साहस्रान् हयान् वीरान् पुनर्दश शतान् वरान् ५३ प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः । शरैः सहस्रशो विद्धा

मारकर बींधडाला, तब वे पहाड़ोंकी गुफाओंमें रहनेवाले योधा रणमेंसे भागनेलगे ॥४७-४८॥ तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे गिरेहुए हाथीसवार और घुड़सवारोंके रुधिरको बगले, कौए और भेड़िये बड़ी प्रसन्नतासे पीनेलगे, इस समय पैदल, घुड़सवार, रथ और हाथियोंके पटावरूप पुलवाली, बाणरूप नौकावाली केशोंरूप सिवारसे श्यामल रक्तके प्रवाहकी तरंगोंवाली, कटीहुई अंगुलीरूप छोटी२ मछलियोंवाली और प्रलयकालकी समान उग्र नदी अर्जुनने बहादी, उस नदीमें बहुतसा रुधिर बह रहा था और वह हाथियोंसे टकरातीहुई चलरही थी ॥४९-५१॥ जैसे वर्षा होने पर पृथ्वी ऊँची नीची न रहकर सम होजाती है, तैसे ही राजपुत्र हाथीसवार, घुड़सवार, तथा रथियोंके रुधिरसे पृथ्वी ऊँची नीची न रहकर सम होगई, क्षत्रियश्रेष्ठ अर्जुनने इस युद्धमें छः सहस्र शूरवीर घुड़सवार तथा एक सहस्र बड़े २ योधाओंको यमलोकमें भेजदिया और सहस्रों हाथियोंको बाणोंसे घायल करडाला, वे वज्रसे टूटेहुए पर्वतोंकी समान पृथ्वी पर गिरनेलगे, इस समय

विधिवत् कपिना द्विपाः ॥५४॥ शेरते भूमिमासाद्य शैला वज्रहता इव । सवाजिरथमातङ्गान् निघ्नन् व्यचरदर्जुनः ॥ ५५ ॥ प्रभिन्न इव मातङ्गो मृद्नन् नलवनं यथा । भूरिद्रुमलतागुल्मं शुष्केन्धनतृणोलपम् ॥ ५६ ॥ निर्दहेदनलोऽरण्यं यथा वायुसमीरितः । सेनारण्यं तव तथा कृष्णानिलसमीरितः ॥ ५७ ॥ शरार्चिरदहत् क्रुद्धः पाण्डवाग्निर्धनञ्जयः । शून्यान् कुर्वन् रथोपस्थान् मानवैः संस्तरन्महीम् ॥ ५८ ॥ प्रानृत्यदिव सम्बाधे चापहस्तो धनञ्जयः । वज्रकल्पैः शरैर्भूमिं कुर्वन्नुत्तरशोणिताम् ॥ ५९ ॥ प्राविशद्भारतीं सेनां संक्रुद्धो वै धनञ्जयः । तं श्रुतायुस्तथाम्बष्ठो व्रजमानं न्यवारयत् ॥ ६० ॥ तस्यार्जुनः शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः । न्यपातयद्धयान् शीघ्रं यतमानस्य मारिष ॥ ६१ ॥

सहस्रों घुड़सवार, रथी और हाथियोंको नष्ट करताहुआ अर्जुन रणभूमिमें घूमनेलगा॥५४–५५॥और मदमत्त हाथी जैसे नलोंके वनका नाश करडालता है और वायुसे प्रचण्ड हुआ अग्नि जैसे बहुतसे वृक्ष, लता, गुल्म, सूखेहुए काष्ठ और नलोंवाले वनको जलाकर भस्म करडालता है, तैसे ही कृष्णरूपी पवनसे प्रेरित अर्जुनरूपी अग्निने क्रोधमें भरकर अस्त्ररूपी ज्वालासे तुम्हारी सेनाको भस्म करना आरम्भ करदिया, उसने रथोंमें बैठेहुए वीरोंको मारकर रथोंको खाली करदिया और ल्हाशोंसे पृथ्वीको ढकदिया ॥५६–५८॥ और धनुषधारी अर्जुनने मानो नाच रहा हो इसप्रकार घूम२ कर वज्रकी समान बाणोंका प्रहार करके पृथ्वी पर रुधिर ही रुधिर बहादिया ॥ ५९ ॥ फिर क्रोधमें भरकर भारती सेनामें प्रवेश करतेहुए अर्जुनको अम्बष्ठराज श्रुतायु रोकनेलगा ॥ ६० ॥ हे राजन् ! रोकनेवाले श्रुतायुके घोड़ोंको अर्जुनने कंकपत्रवाले बाण मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ६१ ॥ और दूसरे बाणोंसे उसके धनुषको काटकर

धनुश्चास्यापरैश्छित्वा शरैः पार्थो विचक्रमे । अम्बष्ठस्तु गदा गृह्य क्रोधपर्य्याकुलेक्षणः ॥ ६२ ॥ आससाद रणे पार्थं केशवञ्च महारथम् । ततः सम्प्रहरन् वीरो गदामुद्यम्य भारत ॥ ६३ ॥ रथमावार्य गदया केशवं समताडयत् । गदया ताडितं दृष्ट्वा केशवं परवीरहा ॥ ६४ ॥ अर्जुनोथ भृशं क्रुद्धः सोम्बष्ठं प्रति भारत । ततः शरैर्हेमपुंखैः सगदं रथिनां वरम् ॥ ६५ ॥ छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् । अथापरैः शरैश्चापि गदां तस्य महात्मनः ॥ ६६ ॥ अचूर्णयत्तदा पार्थस्तदद्भुतमिवाभवत् । अथ तां पतितां दृष्ट्वा गृह्यान्यां च महागदाम् ॥ ६७ ॥ अर्जुनं वासुदेवञ्च पुनः पुनरताडयत् । तस्यार्जुनः क्षुरप्राभ्यां सगदावुद्यतौ भुजौ ॥ ६८ ॥ चिच्छेदेन्द्रध्वजाकारौ शिरश्चान्येन पत्रिणा । स पपात हतो राजन्

अर्जुनने अपना पराक्रम दिखाया, इससे अम्बष्ठके नेत्र क्रोधके मारे अन्धे होगए और वह हाथमें गदा पकड़ महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुनके सामने आडटा, और हे भारत ! उसने गदाका प्रहार करके रथको आगे बढनेसे रोकदिया तथा श्रीकृष्णके तान कर एक गदा मारी, श्रीकृष्णको गदासे ताड़ित देखकर शत्रुनाशी अर्जुन अम्बष्ठ पर बड़ा ही क्रुद्ध हुआ और उसने जैसे उदय होतेहुए सूर्यको बादल ढक देता है तैसे ही रथियोंमें श्रेष्ठ अम्बष्ठको गदासहित सुनहरी पूँछवाले बाणोंसे ढक दिया और दूसरे बाणोंसे उस महात्माकी गदाका भी चूरा करडाला, यह भी एक आश्चर्यजनक दृश्य हुआ, गदाको गिरीहुई देखकर अम्बष्ठ दूसरी बडीभारी गदाको हाथमें ले श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऊपर बार बार प्रहार करनेलगा, तब अर्जुनने क्षुरप्र नामके दो बाणोंसे इन्द्रकी ध्वजाकी समान उठीहुई गदासहित उसकी दोनों भुजाओंको काटडाला और दूसरे बाणसे उसके मस्तकको भी उड़ादिया, तब हे राजन् ! यन्त्रसे छूटकर गिरीहुई इन्द्रध्वजा

वसुधामनुनादयन् ६९ इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टो यन्त्रनिर्मुक्तबन्धनः । रथानीकावगाढश्च वारणाश्वशतैर्वृतः । अदृश्यत तदा पार्थो घनैः सूर्य इवावृतः ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अम्बष्ठवधे
त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

सञ्जय उवाच । ततः प्रविष्टे कौन्तेये सिन्धुराजजिघांसया । द्रोणानीकं विनिर्भिद्य भोजानीकञ्च दुस्तरम् ॥ १ ॥ काम्बोजस्य च दायादे हते राजन् सुदक्षिणे । श्रुतायुधे च विक्रान्ते निहते सव्यसाचिना ॥ २ ॥ विप्रद्रुतेष्वनीकेषु विध्वस्तेषु समन्ततः । प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ ३ ॥ त्वरन्नेकरथेनैव समेत्य द्रोणमब्रवीत् । गतः स पुरुषव्याघ्रः प्रमथ्यैनां महाचमूम् ४ अथ बुद्ध्या समीक्षस्व किन्नु कार्यमनन्तरम् । अर्जुनस्य विघाताय

की समान वह घड़ड़ड़ करताहुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा, उस समय रथोंकी सेना तथा सैकड़ों हाथी घोड़ोंसे घिराहुआ अर्जुन मेघोंसे घिरे हुए सूर्यकी समान दीखने लगा ॥ ६९–७० ॥ तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९३ ॥ * ॥ * ॥

सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! सिंधुराजको मारनेकी इच्छा से द्रोणकी सेनाको और दुस्तर भोजकी सेनाको चीरकर अर्जुन घुसनेलगा ॥ १ ॥ और हे राजन् ! काम्बोजकुमार सुदक्षिण और पराक्रमी श्रुतायु अर्जुनके हाथसे मारेगये तथा और भी बहुतसी सेना नष्ट होगयी और बाकीकी सेना भाग निकली तब अपनी सेनाको भागतीहुई देखकर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन अकेला ही रथमें बैठकर शीघ्रतासे द्रोणाचार्यके पास पहुँचा और कहनेलगा, कि–वह पुरुषव्याघ्र अर्जुन बड़ीभारी सेनाको कुचलकर भीतर घुसगया ! ॥ २–४ ॥ आप अपनी बुद्धिसे विचार करें कि–इस सेनाके दारुण विनाशकालमें अर्जुनके मारनेके लिये

दारुणेस्मिन् जनक्षये ॥ ५ ॥ यथा स पुरुषव्याघ्रो न हन्येत जयद्रथः । तथा विधत्स्व भद्रं ते त्वं हि नः परमा गतिः ॥ ६ ॥ असौ धनञ्जयाग्निर्हि कोपमारुतचोदितः । सेनाकक्षं दहति मे वह्निः कक्षमिवोत्थितः ७ अतिक्रान्ते हि कौन्तेये भित्त्वा सैन्यं परन्तप। जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ८ स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्राणामासीद् ब्रह्मविदाम्वर । नातिक्रमिष्यति द्रोणं जातु जीवन् धनञ्जयः ९ योऽसौ पार्थो व्यतिक्रान्तो मिषतस्ते महाद्युते । सर्वं ह्यद्यातुरं मन्ये नेदमस्ति बलं मम ॥ १० ॥ जानामि त्वां महाभाग पाण्डवानां हिते रतम् । तथा मुह्यामि च ब्रह्मन् कार्यवत्तां विचिन्तयन् ॥ ११ ॥ यथाशक्ति च ते ब्रह्मन् वर्त्तये वृत्तिमुत्तमाम् । प्रीणामि च यथा

कौनसा उपाय करना चाहिये ॥ ५ ॥ जिसप्रकार वह पुरुषव्याघ्र जयद्रथ न माराजाय वही उपाय करिये, आपका भला हो हमें आपका बडाभारी भरोसा है ६ घास फूँसमें लगी हुई अग्निकी समान यह धनञ्जयरूपी अग्नि कोपरूपी वायुसे प्रचण्ड होकर, मेरी सेनाको घास फूँसकी समान जलाए डालता है ॥ ७ ॥ हे परन्तप ! कुन्तीनन्दन अर्जुन हमारी सेनाका नाश करके भीतर घुसआया, अब जयद्रथके रक्षक बड़ेभारी संशयमें पडगए हैं (वे पार्थके सामने भाग्यसे ही टिकसकेगें) ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! हमारे पक्षके राजाओंको दृढ़ विश्वास था, कि–धनञ्जय रूपी भी द्रोणको जीतकर सेनामें जीता जागता प्रवेश नहीं कर सकता ॥ ९ ॥ परन्तु हे महाकान्तिमान् ! अर्जुन तो तुम्हारे देखतेहुए ही सेनाके भीतर घुसआया, अतः अब मैं अपनी सेनाको घबड़ाई और नष्टहुईसी मानता हूँ ॥१०॥ हे महाभाग ब्रह्मन् ! मैं जानता हूँ, कि-तुम पांडवोंके हितैषी हो और अब इस महाकार्यको कैसे पूरा कियाजाय, इसका विचार करने पर मेरी बुद्धि कुछ भी काम नहीं देती ॥११॥ हे ब्रह्मन् ! मैं शक्तिके अनुसार तुम्हें धन

शक्तितः सत्त्वं नावबुध्यसे ॥१२॥ अस्मान्न त्वं सदा भक्तानिच्छस्यमितविक्रम । पाण्डवान् सततं प्रीणास्यस्माकं विप्रिये रतान् ॥१३॥ अस्मानेवोपजीवंस्त्वमस्माकं विप्रिये रतः । न ह्यहं त्वां विजानामि मधुदिग्धमिव क्षुरम् ॥ १४ ॥ नादास्यश्चेद्वरं मह्यं भवान् पाण्डवनिग्रहे । नावारयिष्यं गच्छन्तमहं सिन्धुपतिं गृहान ॥ १५ ॥ मया त्वाशंसमानेन त्वत्तस्त्राणमबुद्धिना । आश्वासितः सिन्धुपतिर्मोहाद्दत्तश्च मृत्यवे ॥१६॥ यमदंष्ट्रान्तरं प्राप्तो मुच्येतापि हि मानवः । नार्जुनस्य वशं प्राप्तो मुच्येताजौ जयद्रथः ॥ १७ ॥ स तथा कुरु शोणाश्व यथा मुच्येत सैन्धवः । मम चार्तप्रलापानां मा क्रुधः पाहि सैन्धवम् ॥ १८ ॥ द्रोण उवाच । नाभ्यसूयामि

देता हूँ और शक्तिके अनुसार तुम्हें प्रसन्न रखता हूँ, इसका तो तुम विचार ही नहीं करते । ॥१२॥ हे अमितविक्रम ! हम आपके सदाके भक्त हैं, तब भी तुम हमारे ऊपर प्रेम नहीं रखते और हमारा बुरा करनेवाले पाण्डवोंको तुम नित्य प्रसन्न किया करते हो ॥ १३ ॥ तुम हमारे ही सहारेसे जीविका करके हमारा ही बुरा चीतते हो, मैं आपको, शहद सनेहुए छुरेकी समान नहीं पहचान सका ॥ १४ ॥ यदि आप मुझे यह भरोसा नहीं देते कि-मैं पाण्डवोंको पकड़ (रोक) लूँगा, तो मैं घरको जाते हुए जयद्रथको न रोकता ॥१५॥ आपकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञाको सुनकर मैंने मूर्खताकी जो सिंधुराजको धीरज देकर घर जानेसे रोक लिया, परन्तु अब देखता हूँ, कि-मैंने मूर्खतासे सिंधुराजको मृत्युके मुखमें झोंकदिया है ॥ १६ ॥ मनुष्य चाहे यमराजकी डाढ़के नीचे पहुँचकर भी बचजाय, परन्तु अर्जुनके वशमें पड़कर जयद्रथ कभी भी जीवित नहीं बचेगा ॥ १७ ॥ इसलिये हे रक्ताश्व ! आप ऐसा उपाय करें कि जिससे, जयद्रथ अर्जुनके हाथसे बचजाय, और मेरी घबराहटकी बातों पर क्रोध न करके जयद्रथ

ते वाक्यमश्वत्थाम्नासि मे समः । सत्यं तु ते प्रवक्ष्यामि तज्जुषस्व विशाम्पते ॥ १९ ॥ सारथिप्रवरः कृष्णः शीघ्राश्चास्य हयोत्तमाः। अल्पश्च विवरं कृत्वा तूर्णं याति धनञ्जयः ॥२०॥ किन्न पश्यसि बाणौघान् क्रोशमात्रे किरीटिना । पश्चाद्रथस्य पतितान् क्षिप्तान् शीघ्रं हि गच्छतः ॥ २१ ॥ न चाहं शीघ्रयानेद्य समर्थो वयसान्वितः । सेनामुखे च पार्थानामेतद्बलमुपस्थितम् ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरश्च मे ग्राह्यो मिषतां सर्वधन्विनाम् । एवं मया प्रतिज्ञातं क्षत्रमध्ये महाभुज ॥ २३ ॥ धनञ्जयेन चोत्सृष्टो वर्त्तते प्रमुखे नृप । तस्माद् व्यूहमुखं हित्वा नाहं योत्स्यामि फाल्गुनम् ॥२४॥ तुल्याभिजनकर्माणं शत्रुमेकं सहायवान् । गत्वा योधय मा भैस्त्वं त्वं

की रक्षा करिये ॥ १८ ॥ द्रोणाचार्य बोले, कि–हे राजन् ! मुझे तेरी बातों पर क्रोध नहीं आता है, क्योंकि–मैं तुझे अश्वत्थामा की समान समझता हूँ परन्तु मैं जो सच्ची बात है वह कहता हूँ, सुन ॥ १९ ॥ अर्जुनके सारथी कृष्ण महापराक्रमी हैं और इसके घोड़े भी तेज हैं अतः सेनामें छोटासा भी मार्ग करके वह सेना के भीतर शीघ्र ही घुसजाता है ॥ २० ॥ शत्रुओंके ऊपर छोड़े हुए अर्जुनके बाण रथियोंके रथोंके पीछे कोस भर दूर जाकर गिरते हैं, यह क्या तू नहीं देखरहा है ? ॥२१॥ मैं वृद्ध अवस्था के कारण अब फुर्तीसे इधर उधर नहीं दौडसकता (परन्तु देख) पाण्डवोंकी सेना हमारी सेनाके मुहाने पर आगई है ॥ २२ ॥ हे महाभुज ! मैंने क्षत्रियोंके बीचमें प्रतिज्ञाकी थी, कि–मैं सब धनुर्धरोंके देखते हुए युधिष्ठिरको कैद करलूँगा, अब युधिष्ठिर धनञ्जयसे दूर है और युधिष्ठिर सेनाके मुहाने पर खड़ा हुआ है, अतः मैं सेनाके मुहानेको छोडकर अर्जुनसे लडनेके लिये नहीं जाऊँगा ॥ २३–२४ ॥ जा तू अपने सहायकोंको लेकर एकसे कुल और पराक्रमवाले अर्जुनसे युद्ध कर, डरे मत, तू तो इस

अस्य जगतः पतिः ॥ २५ ॥ राजा शूरः कृती दक्षो जेता परपुरञ्जयः । वीरः स्वयं प्रयाह्यत्र यत्र पार्थो धनञ्जयः ॥ २६ ॥ दुर्योधन उवाच । कथं त्वामप्यतिक्रान्तः सर्वशस्त्रभृतां वरम् । धनञ्जयो मया शक्य आचार्य प्रतिबाधितुम् ॥ २७ ॥ अपि शक्यो रणे जेतुं वज्रहस्तः पुरंदरः । नार्जुनः समरे शक्यो जेतुं परपुरञ्जयः ॥ २८ ॥ येन भोजश्च हार्दिक्यो भवांश्च त्रिदशोपमः । अस्त्रप्रतापेन जितौ श्रुतायुश्च निवर्हितः ॥ २९ ॥ सुदक्षिणश्च निहतः स च राजा श्रुतायुधः । श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च म्लेच्छाश्चायुतशो हताः ॥ ३० ॥ तं कथं पाण्डवं युद्धे दहन्तमिव पावकम् । प्रतियोत्स्यामि दुर्धर्षं तमहं शस्त्रकोविदम् ॥ ३१ ॥ क्षमञ्च मन्यसे युद्धं मम तेनाद्य संयुगे । परवानस्मि भवति प्रेष्यवद्रक्ष मे यशः ॥ ३२ ॥ द्रोण उवाच । सत्यं वदसि कौरव्य दुराधर्षो धनञ्जयः । अहन्तु

पृथ्वीका राजा है ॥ २५ ॥ इतनी ही नहीं, तू शूरवीर कृतकृत्य शत्रुको कैद करनेमें समर्थ, शत्रुके नगरोंको जीतनेवाला वीर और (महाराजा) है, अतः पृथापुत्र अर्जुनके सामने तू स्वयं जा ॥ २६ ॥ दुर्योधनने कहा, कि-हे आचार्य! जब सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आपसे ही वह बढ़गया, तो मैं उसको कैसे रोक सकूँगा?॥ २७॥ रणभूमिमें चाहे वज्रधारी इन्द्रको जीतलिया जाय, परन्तु शत्रुनगरोंको जीतनेवाले अर्जुनको समरमें नहीं जीता जा सकता ॥ २८ ॥ जिसने रणमें हृदिकके पुत्र भोज और आप सरीखे देवताको भी जीतलिया और अस्त्रके प्रतापसे श्रुतायु, सुदक्षिण, श्रुतायुध, च्युतायु, अच्युतायु और सहस्रों म्लेच्छोंका संहार करडाला, ऐसे अग्निकी समान जाज्वल्यमान, महाबली और अस्त्रकुशल अर्जुनके सामने मैं कैसे लड़ सकूँगा? क्या तुम उसके साथ मेरा लड़ना ठीक समझते हो? मैं तुम्हारे अधीन हूँ तुम इस दासके यशकी रक्षा करो॥२९-३२॥ द्रोणा-

तत् करिष्यामि यथैनं प्रसहिष्यसि ॥ ३३ ॥ अद्भुतञ्चाद्य पश्यन्तु लोके सर्वधनुर्द्धराः । विपक्तं त्वयि कौन्तेयं वासुदेवस्य पश्यतः ३४ एष ते कवचं राजंस्तथा बध्नामि काञ्चनम् । यथा न बाणा नास्त्राणि प्रहरिष्यन्ति ते रणे ॥ ३५ ॥ यदि त्वां सासुरसुराः सयक्षोरगराक्षसाः । योधयन्ति त्रयो लोकाः सनरा नास्ति ते भयम् ॥ ३६ ॥ न कृष्णो न च कौन्तेयो न चान्यः शस्त्रभृद्रणे । शरानर्पयितुं कश्चित् कवचं तव शक्ष्यति ॥ ३७ ॥ स त्वं कवचमास्थाय क्रुद्धमद्य रणेर्ज्जुनम् । त्वरमाणः स्वयं याहि न त्वासौ विसहिष्यति ॥ ३८ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वा त्वरन्द्रोणः स्पृष्ट्वाम्भो वर्म भास्वरम् । आबबन्धाद्भुततमं जपन् मन्त्रं यथाविधि ॥३९॥ रणे तस्मिन् सुमहति विजयस्य सुतस्य ते । विसि-

---

चार्यने कहा, कि–हे कुरुपुत्र ! तूने सत्य कहा, वास्तवमें अर्जुन दुराधर्ष है, परन्तु मैं ऐसा करूँगा, कि–तू उसके सामने टक्कर झेल सकेगा ॥ ३३ ॥ तू आज कृष्णके सामने अर्जुनके साथ युद्ध कर और सब मनुष्य आज अर्जुनका और तेरा आश्चर्यजनक युद्ध देखें ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! मैं इस सुवर्णके कवचको तुझे इसप्रकार पहराऊँगा, कि–जिससे युद्धके समय बाण अथवा दूसरे अस्त्र इस कवचको भेद न सकेंगे ॥ ३५ ॥ यदि तेरे साथ देवता, दैत्य, यक्ष, सर्प, राक्षस और तीनों लोक भी लड़नेको आजायँ, तो भी तुझे डर नहीं लगेगा ३६ कृष्ण, अर्जुन तथा दूसरा कोई शस्त्रधारी भी तेरे कवचको बाणों से न फोड सकेगा ॥ ३७ ॥ अतः आज तू इस कवचको धारण करके रणमें खड़े क्रोधमें भरेहुए अर्जुनके साथ लडनेको शीघ्रता से जा, आज वह तुझे सहन नहीं करसकेगा ॥ ३८ ॥ सञ्जयने कहा, कि–इसप्रकार कहकर द्रोणने तुरन्त ही आचमन कर शास्त्रानुसार मन्त्र पढकर वह प्रज्वलित तथा आश्चर्यजनक

स्मापयिष्यँल्लोकान् विस्मयं ब्रह्मवित्तमः ॥ ४० ॥ द्रोण उवाच । करोतु स्वस्ति ते ब्रह्म ब्रह्मा चापि द्विजातयः । सरीसृपाश्च ये श्रेष्ठास्तेभ्यस्ते स्वस्ति भारत ॥ ४१ ॥ ययातिर्नहुषश्चैव धुन्धुमारो भगीरथः । तुभ्यं राजर्षयः सर्वे स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ४२ स्वस्ति तेऽस्त्वेकपादेभ्यो बहुपादेभ्य एव च । स्वस्त्यस्त्वपादकेभ्यश्च नित्यं तव महारणे ॥ ४३ ॥ स्वाहा स्वधा शची चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा । लक्ष्मीररुन्धती चैव कुरुतां स्वस्ति तेऽनघ ॥ ४४ ॥ असितो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाङ्गिराः । वसिष्ठः कश्यपश्चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते नृप ॥४५॥ धाता विधाता लोकेशो दिशश्च सदिगीश्वराः । स्वस्ति तेऽद्य प्रयच्छन्तु कार्त्तिकेयश्च षण्मुखः ॥ ४६ ॥ विवस्वान् भगवान् स्वस्ति करोतु तव सर्वशः । दिग्गजाश्चैव चत्वारः क्षितिश्च गगनं ग्रहाः ॥ ४७ ॥ अधस्ता-

---

कवच दुर्योधनको पहिरादिया ॥३९॥ और महासंग्राममें तुम्हारे पुत्रकी विजय करानेकी इच्छासे, तथा विद्यासे लोकोंको विस्मित करनेकी इच्छासे ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य इसप्रकार स्वस्तिवाचन करनेलगे ४० ॥ द्रोणने कहा, कि–हे भारत ! परमात्मा, ब्रह्मा और ब्राह्मण तेरा कल्याण करें और सर्प तथा दूसरे प्राणी तेरा कल्याण करें ॥४१॥ नहुषपुत्र ययाति, धुन्धुमार, भगीरथ आदि राजर्षि तेरा नित्य कल्याण करें ॥४२॥ महारणमें एक पैरवाले बहुतसे पैरोंवाले तथा चरणशून्योंसे तेरी सर्वदा रक्षा हो ॥४३॥ हे अनघ ! स्वाहा, स्वधा, शची, लक्ष्मी और अरुन्धती तेरा सर्वदा कल्याण करें ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! असित, देवल, विश्वामित्र, अङ्गिरा, वशिष्ठ और कश्यप तेरा कल्याण करें ॥ ४५ ॥ धाता, विधाता, लोकपाल, दिशाएँ दिक्पाल और षडानन कार्त्तिकेय आज तेरा कल्याण करें ४६ भगवान् सूर्य, चारों दिशाओं के चारों दिग्गज, पृथ्वी आकाश तथा ग्रह आज तेरी सब

धरणीं योऽसौ सदा धारयते नृप । शेषश्च पन्नगश्रेष्ठः स्वस्ति तुभ्यं प्रयच्छतु ॥ ४८ ॥ गान्धारे युधि विक्रम्य निर्जिताः सुरसत्तमाः । पुरा वृत्रेण दैत्येन भिन्नदेहाः सहस्रशः ॥ ४९ ॥ हृततेजोबलाः सर्वे तदा सेन्द्रा दिवौकसः । ब्रह्माणं शरणं जग्मुर्भाद्भीता महासुरात् ॥ ५० ॥ देवा ऊचुः । प्रमर्दितानां वृत्रेण देवानां देवसत्तम । गतिर्भव सुरश्रेष्ठ त्राहि नो महतो भयात् ॥ ५१ ॥ अथ पार्श्वे स्थितं विष्णुं शक्रादींश्च सुरोत्तमान् । प्राह तथ्यमिदं वाक्यं विषण्णान् सुरसत्तमान् ॥ ५२ ॥ रक्ष्या मे सततं देवाः सहेन्द्राः सद्विजातयः । त्वष्टुः सुदुर्द्धरं तेजो येन वृत्रो विनिर्मितः ॥ ५३ ॥ त्वष्ट्रा पुरा तपस्तप्त्वा वर्षायुतशतं तदा । वृत्रो विनिर्मितो देवाः प्राप्यानुज्ञां महेश्वरात् ॥ ५४ ॥ स तस्यैव प्रसादाद्वो हन्यादेव

शत्रुओंसे रक्षा करें ॥४७॥ हे राजन्! यह जो नागराज नीचे से इस पृथ्वीको सर्वदा धारण किये रहते हैं वह शेषनाग भी तेरा कल्याण करें ॥४८॥ हे गान्धारीपुत्र! पहिले वृत्रासुरने युद्ध में सहस्रों बड़े २ देवताओंको हराकर उनके शरीरोंको शस्त्रोंसे चीरडाला था,उससे सब देवताओंका तेज और बल नष्ट होगया था, तब सब देवता महासुर वृत्रासुरसे भयभीत हो ब्रह्माजीकी शरणमें गए थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ देवताओंने कहा, कि-हे देवसत्तम! वृत्रासुरसे दुःखी हुए हम देवताओंकी आप रक्षा करें और महाभयसे हमें छुड़ावें ॥५१॥ यह सुनकर ब्रह्माजीने समीप में खड़ेहुए विष्णु और खिन्न होतेहुए सब देवताओंसे कहा, कि—॥ ५२ ॥ हे देवताओ! मुझे ब्राह्मण, इन्द्र और देवताओंकी रक्षा करनी चाहिये और यह वृत्रासुर विश्वकर्माके दुर्धर्ष तेजसे उत्पन्न हुआ है ॥५३॥ हे देवताओ! विश्वकर्माने पहिले एक लाख वर्ष तक तपस्या करके श्रीशंकरके वरदानसे इस वृत्रासुरको उत्पन्न किया है ॥ ५४ ॥ यह बलवान् वैरी

रिपुर्बली । नागत्वा शङ्करस्थानं भगवान् दृश्यते हरः ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा जेष्यथ वृत्रं तं क्षिप्रं गच्छत मन्दरम् । यत्रास्ते तपसां योनिर्दक्षयज्ञविनाशनः ॥ ५६ ॥ पिनाकी सर्वभूतेशो भगनेत्रनिपातनः । तं गत्वा सहिता देवा ब्रह्मणा सह मन्दरम् ॥ ५७ ॥ अपश्यंस्तेजसां राशिं सूर्यकोटिसमप्रभम् । सोऽब्रवीत् स्वागतं देवा ब्रूत किं करवाण्यहम् ॥ ५८ ॥ अमोघं दर्शनं मह्यं कामप्राप्तिरतोऽस्तु वः । एवमुक्तास्तु ते सर्वे प्रत्यूचुस्तं दिवौकसः ॥ ५९ ॥ तेजो हृतं नो वृत्रेण गतिर्भव दिवौकसाम् । मूर्त्तीरीक्षस्व नो देव प्रहारैर्जर्जरीकृताः । शरणं त्वां प्रपन्नाः स्म गतिर्भव महेश्वर ॥ ६० ॥ शर्व उवाच । विदितं वो यथा देवाः कृत्येयं सुमहाबला । त्वष्टुस्तेजो-

---

शिवजीके वरदानसे ही तुम्हें माररहा है, अतः तुम जहाँ शंकरके दर्शन होसकें वहाँ ही जाकर उनसे मिलो ॥ ५५ ॥ शिवजीका दर्शन पाकर तुम वृत्रासुरको जीतलोगे, तुम शीघ्र ही मन्दराचल पर जाओ, वहाँ तपके मूलरूप, दक्षके यज्ञको नष्ट करनेवाले, पिनाकपाणि, सब प्राणियोंके स्वामी, भगके नेत्रोंको फोड़नेवाले श्रीशंकर रहते हैं, यह सुन ब्रह्माजीको साथमें ले सब देवता मन्दराचल पर गए, उन्होंने वहाँ करोड़ों सूर्योंकी प्रभाकी समान कान्तिमान् तेजोंके पुञ्ज महादेवजीको देखा, देवताओंको देखते ही शंकरने कहा, कि—अहो ! आप भले पधारे, मैं आपका कौनसा काम करूँ ॥ ५६—५८ ॥ मेरा दर्शन निष्फल नहीं होता, अतः तुम्हारी कामना पूर्ण ही होगी, शिवजीके ऐसे वचनोंको सुनकर देवता कहनेलगे कि—॥५९॥ वृत्रासुरने हमारा तेज नष्ट करदिया है, आप हम देवताओंकी रक्षा करिये, हे देव ! वृत्रके प्रहारोंसे जर्जरित हुई हमारी मूर्तोंको तो देखिये ॥ ६० ॥ देवाधिपति शिव बोले कि—हे महाबली देवताओ ! मैंने तुम्हारा सब वृत्तान्त सुनलिया, तुम जिस दैत्यके विषयमें कहते हो वह तो एक भयङ्कर

भवा घोरा दुर्निवार्याऽकृतात्मभिः ॥ ६१ ॥ अवश्यन्तु मया कार्यं साह्यं सर्वदिवौकसाम् । ममेदं गात्रजं शक्र कवचं गृह्य भास्वरम् ६२ बधानानेन मन्त्रेण मानसेन सुरेश्वर । वधायासुरमुख्यस्य वृत्रस्य सुरघातिनः ॥ ६३ ॥ द्रोण उवाच । इत्युक्त्वा वरदः प्रादाद्वर्म तन्मन्त्रमेव च । स तेन वर्मणा गुप्तः प्रायाद्वृत्रचमूं प्रति ॥६४॥ नानाविधैश्च शस्त्रौघैः पात्यमानैर्महारणे । न सन्धिः शक्यते भेत्तुं वर्मबन्धस्य तस्य तु ॥ ६५ ॥ ततो जघान समरे वृत्रं देवपतिः स्वयम् । तच्च मन्त्रमयं बन्धं वर्म चाङ्गिरसे ददौ ६६ अङ्गिराः प्राह पुत्रस्य मन्त्रज्ञस्य बृहस्पतेः । बृहस्पतिरथोवाच अग्निवेश्याय धीमते ॥ ६७ ॥ अग्निवेश्यो मम प्रादात्तेन बध्नामि वर्म ते । तवाद्य

कृत्या है वह विश्वकर्माके तेजसे उत्पन्न हुई है और साधारण व्यक्ति उसका पराजय भी नहीं करसकता ॥६१॥ परन्तु सकल देवताओंकी सहायता तो मुझे अवश्य करनी चाहिये, हे इन्द्र ! तू मेरे शरीरपरके कवचको ग्रहण कर ॥६२॥ और देवताओंके घातक दैत्योंके नेता वृत्रासुरके वधके लिये मनमें इस मंत्र(जो मंत्र शिवने इन्द्रसे कहा) को पढ़कर शरीर पर कवचको धारणकर ६३ द्रोणाचार्यने कहा, कि-इसप्रकार कहकर वरदान देनेवाले शिवने वह मंत्र और कवच इन्द्रको देदिया, उस कवचसे रक्षित इन्द्र वृत्रासुरकी सेनाकी ओरको चला॥ ६४ उस कवचके जोड नाना प्रकारके शस्त्रोंके मारने पर भी नहीं टूट सकते थे ॥ ६५ ॥ उस कवचको पहिरनेके अनन्तर इन्द्रने समरमें वृत्रासुरको मार डाला, इन्द्रने मंत्रसहित वह कवच दे, उस कवचको बाँधनेकी विधि अंगिराको बतादी ॥ ६६ ॥ अंगिराने अपने मंत्रोंके ज्ञाता पुत्र बृहस्पतिको यह सब बताया और बृहस्पतिने वह मंत्रआदि बुद्धिमान् अग्निवेश्यको दिया ॥ ६७ ॥ अग्निवेश्यने मंत्र सहित यह कवच मुझे दिया और हे राजश्रेष्ठ ! आज वही कवच मैं

देहरक्षार्थं मन्त्रेण नृपसत्तम ॥६८॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वा ततो द्रोणस्तव पुत्रं महाद्युतिम् । पुनरेव वचः प्राह शनैराचार्यपुङ्गवः ॥६९॥ ब्रह्मसूत्रेण बध्नामि कवचं तव भारत । हिरण्यगर्भेण यथा बद्धं विष्णोः पुरा रणे ॥७०॥ यथा च ब्रह्मणा बद्धं संग्रामे तारकामये । शक्रस्य कवचं दिव्यं तथा बध्नाम्यहं तव ॥ ७१ ॥ बद्ध्वा तु कवचं तस्य मन्त्रेण विधिपूर्वकम् । प्रेषयामास राजानं युद्धाय महते द्विजः ॥ ७२ ॥ स सन्नद्धो महाबाहुराचार्येण महात्मना । रथानाञ्च सहस्रेण त्रिगर्त्तानां प्रहारिणाम् ॥ ७३ ॥ तथा दन्तिसहस्रेण मत्तानां वीर्यशालिनाम् । अश्वानां नियुतेनैव तथान्यैश्च महारथैः ॥ ७४ ॥ वृतः प्रायान्महाबाहुरर्जुनस्य रथं प्रति । नानावादित्रघोषेण यथा वैरोचनिस्तथा ॥ ७५ ॥ ततः शब्दो महा-

तेरे शरीरकी रक्षाके लिये मंत्र पढ़कर तुझे पहिराता हूँ॥६८॥ सञ्जयने कहा, कि-महाद्युति आचार्यपुङ्गव द्रोणाचार्य दुर्योधनसे इसप्रकार कहकर फिर उससे धीरे २ कहनेलगे कि-॥६९॥ हे भारत! पहिले जैसे ब्रह्माने विष्णुको मंत्र पढ़कर यह दिव्य कवच पहिराया था और जैसे ब्रह्माजीने तारकासुरके संग्राममें यह दिव्य कवच इन्द्रको पहिराया था उस ही प्रकार ब्रह्माके उपदेशके अनुसार यह दिव्य कवच मैं तुझे पहिराता हूँ ॥ ७०-७१ ॥ द्रोणाचार्यने उसको विधिपूर्वक कवच पहिराकर बड़ाभारी युद्ध करनेके लिये भेजदिया ॥ ७२ ॥ महाबाहु दुर्योधन इसप्रकार महात्मा द्रोणके हाथसे तयार होकर प्रहार करनेवाले सहस्रों रथी त्रिगर्त और मतवाले वीर्यवान् सहस्रों हाथी, एक लाख घोड़े तथा दूसरे भी महारथियोंको साथमें ले बाजे गाजेके साथ विरोचनपुत्र दैत्यराज बलिकी समान अर्जुनके रथकी ओरको बढ़चला ॥ ७३-७५ ॥ हे भारत ! दुर्योधनका प्रस्थान करना

नासीत् सैन्यानां तव भारत। अगाधं प्रस्थितं दृष्ट्वा समुद्रमिव कौरवम् ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनकवचबन्धने चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

सञ्जय उवाच। प्रविष्टयोर्महाराज पार्थवार्ष्णेययो रणे। दुर्योधने प्रयाते च पृष्ठतः पुरुषर्षभ ॥ १ ॥ जवेनाभ्यद्रवन्द्रोणं महता निःस्वनेन च। पाण्डवाः सोमकैः सार्द्धं ततो युद्धमवर्त्तत ॥ २ ॥ तद्युद्धमभवत्तीव्रं तुमुलं लोमहर्षणम्। कुरूणां पाण्डवानाञ्च व्यूहस्य पुरतोऽद्भुतम् ॥३॥ राजन् कदाचिन्नास्माभिर्दृष्टं तादृङ् न च श्रुतम्। यादृङ् मध्यगते सूर्ये युद्धमासीद्विशाम्पते ॥ ४ ॥ धृष्टद्युम्नमुखाः पार्था व्यूढानीकाः प्रहारिणः। द्रोणस्य सैन्यं ते सर्वे शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ५ ॥ वयं द्रोणं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रभृतां वरम्।

हुआ देखकर तुम्हारी सेनामें अगाध समुद्रके खलभलाने की समान बड़ाभारी कोलाहल होनेलगा ॥ ७६ ॥ चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९४ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज! अर्जुन और श्रीकृष्णके सेनाके भीतर घुसजाने पर और उनके पीछे पुरुषश्रेष्ठ दुर्योधनके चढ़ाई करने पर ॥ १ ॥ पांडव सोमकोंके साथ बड़ाभारी शब्द करतेहुए वेगसे द्रोणाचार्य पर झपटे ॥ २ ॥ व्यूहके मुहाने पर कौरव और पाण्डवोंका तुमुल युद्ध होनेलगा, उस युद्धको देखने पर रोंगटे खड़े होते थे तथा आश्चर्य होता था ॥ ३ ॥ हे राजन्! दुपहरके समय जैसा यह युद्ध हो रहा था, वैसा युद्ध न हमने कभी देखा और न अपने पितामह पिता आदिसे सुना था ॥४॥ धृष्टद्युम्न आदि सब योधा पाण्डवोंकी सेनाको व्यूहरचनासे गूँथ कर द्रोणाचार्यके ऊपर बाण बरसानेलगे ॥५॥ और हे महाराज! हम द्रोणको आगे करके धृष्टद्युम्न आदि सब पाण्डवोंके ऊपर

पार्थिवप्रमुखान् पार्थानभ्यवर्षत सायकैः ॥ ६ ॥ महामेघाविवोदीर्णौ मिश्रवातौ हिमात्यये । सेनाग्रे समकाशेते रुचिरे रथभूषिते ७ समेत्य तु महासेने चक्रतुर्वेगमुत्तमम् । जाह्नवीयमुने नद्यौ प्रावृषीवोल्बणोदके ॥ ८ ॥ नानाशस्त्रपुरोवातो द्विपाश्वरथसंवृतः । गदाविद्युन्महारौद्रः संग्रामजलदो महान् ॥ ९ ॥ भारद्वाजानिलोद्धूतः शरधारासहस्रवान् । अभ्यवर्षन्महासैन्यः पाण्डुसेनाग्निमुद्धतम् ॥ १० ॥ समुद्रमिव घर्मान्ते विशन् घोरो महानिलः । व्यक्षोभयदनीकानि पाण्डवानां द्विजोत्तमः ॥ ११ ॥ तेऽपि सर्वप्रयत्नेन द्रोणमेव समाद्रवन् । बिभित्सन्तो महासेतुं वार्योघा प्रबला इव ॥ १२ वारयामास तान् द्रोणो जलौघमचलो यथा । पाण्डवान् समरे

बाण छोड़नेलगे ॥ ६ ॥ जैसे शिशिर ऋतुमें पवनसे दो भागोंमें फटा हुआ बादल शोभा पाता है तैसे ही रथोंसे भूषित इन दोनों सेनाओंकी शोभा हुई ॥ ७ ॥ जैसे वर्षा ऋतुमें जल बढ़जानेके कारण गङ्गा और यमुना नदी मिलनेके स्थानपर बड़े वेगमें भर जातीहैं तैसे ही वे दोनों सेनाएँ भी आपसमें मिलकर बड़ा जोर करने लगीं ॥ ८ ॥ हाथी घोड़े और रथोंसे घिराहुआ संग्राम रूप मेघ गरजनेलगा, अनेकों प्रकारका शस्त्ररूप पवन चलनेलगा गदारूप बिजलियें चमकनेलगीं, द्रोणाचार्यरूप पवनसे उछलता हुआ महासेनारूप मेघ, बाणरूप हजारों धाराओंसे पाण्डवोंकी सेनारूप धकधकातेहुए अग्निके ऊपर बरसनेलगा ॥ ९-१० ॥ ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें समुद्रमें प्रवेश कर उसको घँघोलनेवाले झँझावातकी समान ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाको घँघोलनेलगे ॥ ११ ॥ पुलको तोड़नेकी इच्छासे भयंकर जलके महाप्रवाह जैसे समुद्रसे टकराते हैं तैसे ही वे सब पाण्डव आदि भी द्रोणसे टकराने लगे ॥ १२ ॥ जैसे जलके प्रवाहको पर्वत लौटा देता है तैसे ही क्रोधमें भरेहुए पांडव, पञ्चाल और केकय

क्रुद्धान् पञ्चालांश्च सकेकयान् ॥ १३ ॥ अथापरे च राजानः परिवृत्य समन्ततः । महावला रणे शूराः पञ्चालानन्ववारयन् १४ ततो रणे नरव्याघ्रः पार्षतः पाण्डवैः सह । सञ्जघानासकृद्द्रोणं विभित्सुररिवाहिनीम् ॥ १५ ॥ यथैव शरवर्षाणि द्रोणो वर्षति पार्षते । तथैव शरवर्षाणि धृष्टद्युम्नोऽप्यवर्षत ॥ १६ ॥ सनिस्त्रिंशपुरोवातः शक्तिप्रासर्ष्टिसंवृतः । ज्याविद्युच्चापसंह्रादो धृष्टद्युम्नवलाहकः ॥ १७ ॥ शरधाराश्मवर्षाणि व्यसृजत् सर्वतो दिशम् । निघ्नन् रथवराश्वौघान् प्लावयामास वाहिनीम् ॥ १८ ॥ यं यमार्च्छच्छरैर्द्रोणः पाण्डवानां रथव्रजम् । ततस्ततः शरैर्द्रोणमपाकर्षत पार्षतः ॥ १९ ॥ तथा तु यतमानस्य द्रोणस्य युधि भारत । धृष्टद्युम्नं समासाद्य त्रिधा सैन्यमभिद्यत ॥ २० ॥ भोज-

---

को द्रोणने ढकेलदिया १३ तथा और भी महावली शूरवीर राजे चारों ओरसे आ आकर पंचालोंको हटाने लगे ॥ १४ ॥ तदनन्तर शत्रुसेनाको भंग करनेकी इच्छासे पाण्डवों सहित नरव्याघ्र धृष्टद्युम्नने रणमें वारम्वार द्रोणके ऊपर प्रहार करना आरम्भ करदिया ॥१५॥ जैसे २ द्रोण धृष्टद्युम्नपर वाण वरसाते थे तैसे धृष्टद्युम्न भी द्रोणके ऊपर वाणोंकी वर्षा किये जारहा था १६ तलवाररूपी पवन जिसके आगे चलता था, ऐसे शक्ति, भाले तथा ऋष्टियोंसे युक्त प्रत्यञ्चारूपी विजलीको चमकाते हुए और धनुषकी टङ्काररूप गर्जना करतेहुए धृष्टद्युम्नरूप मेघने महारथियोंका तथा घुडसवारोंका संहार करके और चारों दिशाओंमें वाणरूपी ओले वरसाकर कौरवोंकी सेनाको रणमेंसे भगाकर छोड़ा ॥ १७-१८ ॥ द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी रथियोंकी जिस २ टोली पर वाण वरसाते थे, तहाँ २ ही धृष्टद्युम्न वाणोंका प्रहार करके द्रोणको हटा देता था ॥ १९ ॥ हे भारत ! द्रोणाचार्यके इसप्रकार रणमें वड़े यत्नसे लड़ते रहने पर भी धृष्टद्युम्नके कारण

मेकेऽभ्यवर्तन्त जलसन्धं तथा परे । पाण्डवैर्वध्यमानाश्च द्रोणमेवापरे ययुः ॥ २१ ॥ संघट्टयति सैन्यानि द्रोणस्तु रथिनां वरः । व्यधमच्चापि तान्यस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २२ ॥ धार्तराष्ट्रास्तथा भूता वध्यन्ते पाण्डुसृञ्जयैः । अगोपा पशवोऽरण्ये बहुभिः श्वापदैरिव ॥ २३ ॥ कालः संग्रसते योधान् धृष्टद्युम्नेन मोहितान् । संग्रामे तुमुले तस्मिन्निति संमेनिरे जनाः ॥ २४ ॥ कुनृपस्य यथा राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः । द्राव्यते तद्वदापन्ना पाण्डवैस्तव वाहिनी ॥ २५ ॥ अर्करश्मिविमिश्रेषु शस्त्रेषु कवचेषु च । चक्षूंषि प्रत्यहन्यन्त सैन्येन रजसा तथा ॥ २६ ॥ त्रिधा भूतेषु सैन्यस्य वध्यमानेषु पाण्डवैः । अमर्षितस्ततो द्रोणः पञ्चालान् व्य-

---

उनकी सेनाके तीन टुकड़े होगए ॥ २० ॥ कितने ही योधा पाण्डवोंकी मारसे डरकर भोजराजकी सेनामेंको भाग गए, कितने ही जलसन्धके पासको दौड़ गए और कितने ही द्रोणके पास ही खड़े रहे ॥ २१ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोण जैसे २ अपनी सेनाको इकट्ठी करनेका यत्न करनेलगे तैसे२ ही धृष्टद्युम्न उनकी सेनाका अधिक संहार करनेलगा ॥ २२ ॥ जैसे वनमें बिना रखवालेके पशुओंको हिंसक पशु मारडालते हैं ऐसे महापराक्रमी पाण्डव और सृञ्जय भी रक्षकरहित हुए कौरवोंका संहार करनेलगे २३ और मनुष्य ऐसा समझनेलगे कि-इस घोर संग्राममें धृष्टद्युम्नकी मारसे मोहित हुए योधाओंको कहीं काल तो नहीं निगले जाता है ॥२४॥ जैसे दुष्ट राजाका देश दुष्काल रोग और चोरोंकी पीड़ासे उजाड़ हो जाता है तैसे ही कौरवोंकी सेना भी पाण्डवोंके भयसे खिन्न होकर रणभूमिमेंसे भागगई और रणभूमि उजाड़ होगई ॥ २५ ॥ हे राजन ! योधाओंके नेत्र भी सूर्यकी किरणोंके साथ मिली हुई शस्त्रोंकी और कवचोंकी चमकसे तथा सेनाके पैरों से उड़ती हुई धूलसे बन्द होगए ॥२६॥ जब पाण्डवोंकी मारसे

धमच्छरैः ॥२७॥ मृद्नन्तस्तान्यनीकानि निघ्नतश्चापि सायकैः । बभूव रूपं द्रोणस्य कालाग्नेरिव दीप्यतः ॥ २८ ॥ रथं नागं हयञ्चापि पत्तिनञ्च विशाम्पते । एकैकेनेषुणा संख्ये निर्बिभेद महारथः ॥ २९ ॥ पाण्डवानान्तु सैन्येषु नास्ति कश्चित् स भारत । दधार यो रणे बाणान् द्रोणचापच्युतान् प्रभो ॥ ३० ॥ तत् पच्यमानमर्केण द्रोणसायकतापितम् । बभ्राम पार्षतं सैन्यं तत्र तत्रैव भारत ॥ ३१॥ तथैव पार्षतेनापि काल्यमानं बलं तव । अभवत् सर्वतो दीप्तं शुष्कं वनमिवाग्निना ॥ ३२ ॥ बाध्यमानेषु सैन्येषु द्रोणपार्षतसायकैः । त्यक्त्वा प्राणान् परं शक्त्या युध्यन्ते सर्वतो मुखाः ॥ ३३ ॥ तावकानां परेषाञ्च युध्यतां भरतर्षभ । नासीत्

द्रोणकी सेनाके तीन भाग होगए उस समय द्रोण क्रोधमें भर कर पञ्चालोंको बाणोंसे बींधनेलगे ॥ २७ ॥ पाण्डवोंकी सेना का मर्दन करतेहुए और बाणोंसे संहार करते हुए द्रोणका स्वरूप प्रदीप्त कालाग्निकी समान होगया ॥ २८ ॥ और महारथी द्रोणने इस युद्धमें एक ही बाणसे रथ हाथी घोड़े और पैदलोंको बींधदिया ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! पाण्डवोंकी सेनामें ऐसा कोई भी नहीं था, कि—जो द्रोणके धनुषमेंसे छूटेहुए बाणोंको सह सकता ॥३०॥ हे भरतवंशी राजन् ! जब द्रोणाचार्यके धनुष मेंसे बाण छूटनेलगे, तब बाणरूपी सूर्यके तापसे अत्यन्त सन्तप्त होकर धृष्टद्युम्नकी सेना इधर उधरको चक्कर काटनेलगी ३१ धृष्टद्युम्नकी खदेड़ी हुई तुम्हारी सेना भी जैसे सूखा वन अग्नि से चारों ओरसे जल उठता है तैसे ही चारों ओरसे जलनेलगी ३२ जब द्रोण और धृष्टद्युम्नके बाणोंसे सेनाएँ पीडित होनेलगी तब योधा अपने प्राणोंकी भी अपेक्षा न रखकर चारों ओर पूरी२ शक्ति लगाकर लड़नेलगे ३३॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ महाराज ! उस समय तुम्हारी और पाण्डवोंकी सेनामें ऐसा एक भी नहीं था

कश्चिन्महाराज योत्याक्षीत् संयुगं भयात् ॥ ३४ ॥ भीमसेनन्तु कौन्तेयं सोदर्याः पर्यवारयन् । विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ॥ ३५ ॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान् । त्रयाणां तव पुत्राणां त्रय एवानुयायिनः ॥ ३६ ॥ बाह्लीकराजस्तेजस्वी कुलपुत्रो महारथः । सहसेनः सहामात्यो द्रौपदेयानवारयत् ॥ ३७ ॥ शैब्यो गोवासनो राजा योधैर्दशशतावरैः । काश्यस्याभिभुवः पुत्रं पराक्रान्तमवारयत् ॥ ३८ ॥ अजातशत्रुं कौन्तेयं ज्वलन्तमिव पावकम् । मद्राणामीश्वरः शल्यो राजा राजानमावृणोत् ॥३९॥ दुःशासनस्त्ववस्थाप्य स्वमनीकममर्षणः । सात्यकिं प्रययौ क्रुद्धः शूरो रथवरं युधि ॥ ४० ॥ स्वकेनाहमनीकेन सन्नद्धः कवचावृतः । चतुःशतैर्महेष्वासैश्चेकितानमवारयम्४१

जो भयके कारण संग्रामको छोड भागा हो ॥ ३४ ॥ कुन्तीपुत्र भीमसेनको महारथी विकर्ण, विविंशति और चित्रसेन इन तीन भाइयोंने चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३५ ॥ तुम्हारे तीन पुत्रोंके पीछे खड़े होकर अवन्ति देशके राजे विन्द और अनुविन्द तथा वीर्यवान् क्षेमधूर्ति ये तीन सहायता कररहे थे ॥ ३६ ॥ महारथी तेजस्वी, कुलका पुत्र बाल्हीकराज अपनी सेना और मंत्रियोंको साथमें लेकर द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको रोकने लगा ॥ ३७ ॥ शिविका पुत्र राजा गोवाशन एक सहस्र योधाओंके साथमें खडा होकर काशिराज अभिभूके पुत्र पराक्रान्तको रोकनेलगा ॥ ३८ ॥ मद्रदेशके राजा शल्यने प्रज्वलित अग्निकी समान कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३९ ॥ क्रोधी दुःशासन अपनी सेनाको दूर खडी रखकर क्रोधमें भर महारथी सात्यकी के ऊपर चढगया ॥ ४० ॥ और मैं अपना कवच धारण कर तयार हो अपने साथ चार सौ महाधनुषधारियोंको ले चेकितान को रोकनेलगा ॥ ४१ ॥ शकुनि धनुर्धर शक्तिधर और तलवार

शकुनिस्तु सहानीको माद्रीपुत्रमवारयत् । गांधारकैः सप्तशतैश्चापशक्त्यसिपाणिभिः ॥ ४२ ॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम् । प्राणांस्त्यक्त्वा महेष्वासौ मित्रार्थेभ्युद्यतायुधौ ४३ शिखण्डिनं याज्ञसेनिं रुन्धानमपराजितम् । वाह्लीकः प्रतिसंयत्तः पराक्रान्तमवारयत् ॥ ४४ ॥ धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यं क्रूरैः सार्द्धं प्रभद्रकैः । आवंत्यः सह सौवीरैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४५ ॥ घटोत्कचं तथा शूरं राक्षसं क्रूरकर्मिणम् । अलायुधोद्रवत्तूर्णं क्रुद्धमायान्तमाहवे ॥ ४६ ॥ अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं कुन्तिभोजो महारथः । सैन्येन महता युक्तः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥४७॥ सैन्धवः पृष्ठतस्त्वासीत् सर्वसैन्यस्य भारतारक्षितः परमेष्वासैः कृपप्रभृतिभी रथैः ॥ ४८ ॥ तस्यास्तां चक्ररक्षौ द्वौ सैन्धवस्य वृहत्तमौ ।

वाले सात सौ गांधार देशी योधाओंकी सेनाको साथमें ले माद्री के पुत्रको रोकने चला ॥ ४२ ॥ मित्र दुर्योधनके लिये अस्त्रोंको हाथमें लेनेवाले महाधनुषधारी अवन्तिदेशके विन्द और अनुविन्दने प्राणपणसे विराट और मत्स्यराजको घेरलिया ॥ ४३ ॥ शस्त्रआदि धारणकर तयार हुए राजा वाल्हीकने महापराक्रमी अजेय और सन्मुख आते हुए यज्ञसेनके पुत्र शिखण्डीके ऊपर चढाईकी ॥ ४४ ॥ मूर्तिमान् क्रोधकी समान धृष्टद्युम्नको, अवन्ति देशके राजाने क्रूर प्रभद्रक और सौवीरको साथमें लेकर रोक लिया ॥ ४५ ॥ क्रूर कर्मकरनेवाले क्रोधमें भरकर आतेहुए वीर राक्षस घटोत्कचके सामने रणमें अलायुध कूदपडा ॥ ४६ ॥ और महारथी कुन्तिभोजने बडीभारी सेनाको साथमें ले क्रोधमूर्ति राक्षसोंके राजा अलम्बुषके ऊपर चढाई कर उसको घेर लिया ॥ ४७ ॥ हे भारत ! सिंधुदेशका राजा जयद्रथ सबके पीछे था और कृपाचार्य आदि महाधनुषधारी उसकी रक्षा कररहे थे ॥ ४८ ॥ उस सिंधुराजके दोनों ओर चक्ररक्षक खड़े थे,

द्रौणिर्दक्षिणतो राजन् सूतपुत्रश्च वामतः ॥ ४९ ॥ पृष्ठगोपास्तु तस्यासन् सौमदत्तिपुरोगमाः । कृपश्च वृषसेनश्च शलः शल्यश्च दुर्जयः ॥ ५० ॥ नीतिमन्तो महेष्वासा सर्वे युद्धविशारदाः । सैन्धवस्य विधायैवं रक्षां युयुधिरे ततः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि
संकुलयुद्धे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

सञ्जय उवाच । राजन् संग्राममाश्चर्यं शृणु कीर्त्तयतो मम । कुरूणां पाण्डवानाञ्च यथा युद्धमवर्त्तत ॥ १ ॥ भारद्वाजं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् । अयोधयन्रणे पार्था द्रोणानीकं बिभित्सवः ॥ २ ॥ रक्षमाणः स्वकं व्यूहं द्रोणोपि सह सैनिकैः । अयोधयद्रणे पार्थान् प्रार्थयानो महद्यशः ॥ ३ ॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं दशभिः शरैः । आजघ्नतुः सुसंक्रुद्धौ तव पुत्र-

---

उनमें दाहिनी ओर अश्वत्थामा और बाईं ओर कर्ण खडा था ॥४९ ॥ सोमदत्तके पुत्रको मुखिया बनाकर कृपाचार्य, वृषसेन, शल और दुर्जय शल्य आदि नीतिवेत्ता, महाधनुषधारी और युद्धकुशल सब योधा, सिन्धुराजकी पीठकी ओर खड़े उसकी रक्षा कररहे थे, इसप्रकार कौरवपक्षके सब योधा सिंधुराजकी चारों ओरसे रक्षा करके लडनेलगे ॥ ५०–५१ ॥ पिचानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९५ ॥

सञ्जयने कहा, कि–कौरव और पाण्डवोंका आश्चर्यजनक संग्राम जिसप्रकार हुआ उसको मैं कहता हूँ सुनिये, ॥ १ ॥ पाण्डव व्यूहके मुहानेपर खड़ेहुए द्रोणाचार्यके सामने पहुँचकर सेनाका संहार करनेकी इच्छासे रणमें उनके साथ लडनेलगे २ बडा भारी यशपानेकी इच्छावाले द्रोणाचार्य भी व्यूहकी रक्षामें तत्पर रहे और सैनिकोंको साथमें ले पाण्डवोंसे लडने भी लगे३ तुम्हारे पुत्रके हितैषी उज्जैनके विन्द और अनुविन्दने भी बड़े

हितैषिणौ ॥ ४ ॥ विराटश्च महाराज तावुभौ समरे स्थितौ । पराक्रान्तौ पराक्रम्य योधयामास सानुगौ ॥ ५ ॥ तेषां युद्धं समभवद्दारुणं शोणितोदकम् । सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥ ६ ॥ वाह्लीकं रभसं युद्धे याज्ञसेनिर्महावलः । आजघ्ने विशिखैस्तीक्ष्णैर्घोरैर्मर्मास्थिभेदिभिः ॥ ७ ॥ वाह्लीको याज्ञसेनिन्तु हेमपुंखैः शिलाशितैः । आजघान भृशं क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ८ तद्युद्धमभवद्घोरं शरशक्तिसमाकुलम् । भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्द्धनम् ॥ ९ ॥ ताभ्यां तत्र शरैर्मुक्तैरन्तरिक्षं दिशस्तथा । अभवत् संवृतं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ १० ॥ शैब्यो गोवासनो युद्धे काश्यपुत्रं महारथम् । ससैन्यो योधयामास गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥ वाह्लीकराजः संक्रुद्धो द्रौपदेयान्महा-

---

क्रोधमें भरकर राजा विराटके दश वाण मारे॥४॥ हे महाराज ! राजा विराट भी युद्धमें खड़े हुए परम पराक्रमी उन दोनों भाइयोंको जीतनेके लिये उनके साथ लडनेलगा ॥ ५ ॥ जैसे सिंह वनमें दो मदमत्त हाथियोंसे युद्ध करता हो इसप्रकार ही उनका दारुण युद्ध होनेलगा और इस युद्धमें लोहूकी धार वह निकली ॥ ६ ॥ महावली द्रुपदके पुत्रने क्रोधमें भरे वाल्हीकको हड्डी और मर्म भागोंको तोड देनेवाले वाणोंसे घायलकिया ७ इससे वाल्हीकको वडा क्रोध चढा और उसने नमी हुई गांठ तथा सुनहरी पूँछवाले सब शिलाके ऊपर तेज कियेहुए नौ वाण धृष्टद्युम्नके मारे ॥ ८ ॥ उस घोर युद्धमें वाण और शक्तियें मनुष्योंको व्याकुल कर रही थीं,तथा उनको देखकर डरपोकोंको वडा भय लगरहा था और शूरवीरोंको वडा आनन्द आरहा था ॥९॥ उनके छोड़े हुए वाण आकाश और दिशा आदि सब में भरगए, इससे तहाँ कुछ दिखाई ही नहीं देता था ॥ १० ॥ जैसे हाथी हाथीसे लडता है तैसे ही शिविपुत्र राजा गोवासन

रथान् । मनः पञ्चेन्द्रियाणीव शुशुभे योधयन् रणे ॥ १२ ॥
अयोधयंस्ते सुभृशं तं शरौघैः समन्ततः । इन्द्रियार्था यथा देहं
शश्वद्देहवतां वर ॥१३॥ वार्ष्णेयं सात्यकिं युद्धे पुत्रो दुःशासन-
स्तव । आजघ्ने सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥ सोतिविद्धो
बलवता महेष्वासेन धन्विना । ईषन्मूर्च्छां जगामाशु सात्यकिः सत्य-
विक्रमः १५ समाश्वस्तस्तु वार्ष्णेयस्तव पुत्रं महारथम् । विव्याध
दशभिस्तूर्णं सायकैः कङ्कपत्रिभिः॥ १६ ॥ तावन्योन्यं दृढं विद्धा-
वन्योन्यशरपीडितौ । रेजतुः समरे राजन् पुष्पिताविव किंशुकौ१७
अलम्बुषस्तु संक्रुद्धः कुन्तिभोजशरार्दितः । अशोभत भृशं लक्ष्म्या
पुष्पाढ्य इव किंशुकः ॥ १८ ॥ कुन्तिभोजं ततो रक्षो विध्वा

सेनाको साथमें ले महारथी काश्यपुत्रसे युद्धमें जूझ पडा ॥११॥
क्रोधमें भरा राजा बाल्हीक, द्रौपदी के महारथी पाँचों पुत्रोंसे
लडता हुआ ऐसा शोभित होरहा था जैसे पाँचों इन्द्रियोंसे मन
युद्ध कररहा हो ॥१२॥ हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ ! इन्द्रियोंके विषय
जैसे सर्वदा देहसे लडते रहते हैं तैसेही ये पाँचों बाल्हीकके ऊपर
चारों ओरसे बडीभारी वाण वर्षा करनेलगे ॥१३॥ तुम्हारे पुत्र
दुःशासनने वृष्णिवंशी सात्यकिके नमी हुई गांठवाले नौ तीक्ष्ण
वाण मारे ॥१४॥ सत्यपराक्रमी सात्यकि महाधनुषधारी बलवान्
दुःशासनके प्रहारसे बड़ा ही घायल होगया और उसको थोडी
सी मूर्छा भी आगई जब सात्यकि सचेत हुआ तब उसने तुम्हारे
महारथी पुत्रको कंकपत्रवाले दश वाणोंसे बींधदिया ॥ १६ ॥
रणमें वे दोनों आपसमें एक दूसरेके वाणोंसे बहुत ही घायल
होकर खिले हुए दो टेसूके वृक्षोंकी समान शोभा पानेलगे।१७।
कुन्तिभोजके वाणोंसे व्याकुल होकर अलम्बुष पुष्पोंके धनी
टेसूके वृक्षकी समान शोभायमान हुआ और उसे बडा क्रोध
चढा॥ १८ ॥ वह राक्षस राजा कुन्तिभोजको बहुतसे लोहेके

वहुभिरायसैः । अनदद्भैरवं नादं वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥ १६ ॥ ततस्तौ समरे शूरौ योधयन्तौ परस्परम् । ददृशुः सर्वसैन्यानि शक्रजम्भौ यथा पुरा ॥ २० ॥ शकुनिं रभसं युद्धे कृतवैरञ्च भारत । माद्रीपुत्रौ सुसंरब्धौ शरैश्चार्दयताम्भृशम् ॥ २१ ॥ तुमुलः स महान् राजन् प्रावर्त्तत जनक्षयः । त्वया सञ्जनितोत्यर्थं कर्णेन च विवर्द्धितः ॥ २२ ॥ रक्षितस्तव पुत्रैश्च क्रोधमूलो हुताशनः । य इमां पृथिवीं राजन् दग्धुं सर्वां समुद्यतः ॥ २३ ॥ शकुनिः पाण्डुपुत्राभ्यां कृतः स विमुखः शरैः । न स्म जानाति कर्त्तव्यं युद्धे किञ्चित् पराक्रमम् ॥ २४ ॥ विमुखं चैनमालोक्य माद्रीपुत्रौ महारथौ । ववर्षतुः पुनर्बाणैर्यथा मेघौ महागिरिम् ॥ २५ ॥ स

बाणोंसे घायल करके तुम्हारी सेनाके मुख पर बडी जोरसे गर्जने लगा ॥ १६ ॥ तदनन्तर सब सेनाओंने समरमें आपसमें युद्ध करनेवाले उन योधाओंको इसप्रकार युद्ध करतेहुए देखा जैसे कि-पहले इन्द्र और जम्भासुर लड़े थे ॥ २० ॥ हे भारत ! दूसरी ओर क्रोधमें भरेहुए माद्रीके पुत्र, पहिलेसे वैर करनेवाले और क्रोधमें भरेहुए शकुनिको बाणोंकी मारसे बहुत ही पीडा देने लगे॥२१॥हे राजन् ! इसप्रकार तुम्हारे कारणसे उत्पन्न हुआ, कर्णके कारणसे बढाहुआ बडा भयङ्कर जनक्षय होनेलगा है २२ क्रोध जिसकी जड़ है और तुम्हारे पुत्रोंने जिसकी रक्षा करी है ऐसा यह रणरूप अग्नि इस सम्पूर्ण पृथ्वीको भस्म करनेको उद्यत होगया है ॥ २३ ॥ पाण्डुपुत्रोंने बाण मारकर शकुनिको रणमेंसे भगादिया, उस समय शकुनि रणमें कुछ न करसका मानो वह युद्धमें पराक्रम करना ही भूलगया ॥ २४ ॥ महारथी माद्रीके पुत्र शकुनिको रणमेंसे भागताहुआ देखकर जैसे दो मेघ महापर्वतके ऊपर बाण वरसाते हैं तिसप्रकार उसके ऊपर फिर बाण वरसानेलगे॥२५॥जब नमी हुई गांठोंवाले बाणोंसे शकुनि

वध्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः । सम्प्रायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणानीकाय सौबलः ॥ २६ ॥ घटोत्कचस्तथा शूरं राक्षसं तमलायुधम् । अभ्ययाद्रभसं युद्धे वेगमास्थाय मध्यमम् ॥२७॥ तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाभवत् । यादृशं हि पुरा वृत्तं रामरावणयोर्मृधे ॥ २८ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा मद्रराजानमाहवे । विध्वा पञ्चाशता बाणैः पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ २९ ॥ ततः प्रववृते युद्धं तयोरत्यद्भुतं नृप । यथा पूर्वं महद्युद्धं शम्बरामरराजयोः ॥ ३० ॥ विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च तवात्मजः । अयोधयन् भीमसेनं महत्या सेनया वृताः ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्वंद्वयुद्धे
षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सञ्जय उवाच । तथा तस्मिन् प्रवृत्ते तु संग्रामे लोमहर्षणे । कौरवेयांस्त्रिधा भूतान् पाण्डवाः समुपाद्रवन् ॥१॥ जलसन्धं महाबाहुं

बहुत ही पीडा पानेलगा तब वह घोडोंको तेजीसे हाँककर द्रोण की सेनामेंको भागगया ॥ २६ ॥ घटोत्कच, अलायुध नामक शूर राक्षसके सामने मध्यम वेगसे युद्ध करनेको जाचढा ॥ २७ ॥ हे महाराज ! उन दोनोंका युद्ध बडीही विचित्र रीतिसे होनेलगा, ऐसा आश्चर्यजनक युद्ध पहिले राम और रावणका हुआ था॥२८॥ तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने रणमें मद्रराजके पञ्चास बाण मारे और फिर सात बाण मारे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर पूर्वकालमें जैसे इन्द्र और शम्बरासुरका महायुद्ध हुआ था तैसाही आश्चर्यजनक युद्ध उन दोनोंमें होनेलगा ॥३०॥ चित्रसेन, विविंशति और तुम्हारा पुत्र विकर्ण, बडी भारी सेनाको साथमें लेकर भीमसेनसे युद्ध करनेलगे॥३१॥छियानवेवाँ अध्याय समाप्त॥९६॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! उस लोमहर्षण संग्राम के होनेके समय तीन भागोंमें बटेहुए कौरवोंके ऊपर पांडवोंने

भीमसेनोभ्यवर्त्तत । युधिष्ठिरः सहानीकः कृतवर्माणमाहवे ॥ २ ॥
किरंस्तु शरवर्षाणि रोचमान इवांशुमान् । धृष्टद्युम्नो महाराज
द्रोणमभ्यद्रवद्रणे ॥ ३ ॥ ततः प्रववृते युद्धं त्वरतां सर्वधन्विनाम् ।
कुरूणां पाण्डवानाञ्च संक्रुद्धानां परस्परम् ॥ ४ ॥ संक्षये तु
तथाभूते वर्त्तमाने महाभये । द्वन्द्वीभूतेषु सैन्येषु युध्यमानेष्वभीतवत्
॥ ५ ॥ द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण बली बलवता सह । यदक्षिपत्
सायकौघांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६ ॥ पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि
समन्ततः । चक्राते द्रोणपांचाल्यौ नृणां शीर्षाण्यनेकशः ॥ ७
विनिकीर्णानि वीराणामनीकेषु समन्ततः । वस्त्राभरणशस्त्राणि
ध्वजवर्मायुधानि च ॥ ८ ॥ तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण
च । संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः सविद्युतः ॥ ९ ॥ कुञ्जरा-

धावा करदिया ॥१॥ युद्धमें भीमसेनने महाबाहु जलसंधके ऊपर
चढाईकी थी और युधिष्ठिरने अपनी सेनाको ले कृतवर्माके ऊपर
चढाई की थी ॥ २ ॥ किरणोंवाले सूर्यकी समान बाणोंको छोडते
हुए धृष्टद्युम्नने हे महाराज ! रणमें द्रोणके ऊपर चढाई की थी ३
तदनन्तर फुरती करतेहुए और क्रोधमें भरे सब धनुषधारी
पांडव और कौरवोंका परस्पर युद्ध आरम्भ होगया ॥ ४ ॥ अब
महाभयङ्कर युद्ध चलनेलगा, योधाओंका संहार होनेलगा और
सेनादल निर्भय हो द्वन्द्व युद्ध करनेलगे ॥ ५ ॥ उस समय बलवान्
धृष्टद्युम्नके साथ लडतेहुए बली द्रोणने जिसप्रकार बाणोंके
प्रवाह चलाये थे, वह एक आश्चर्यजनक दृश्य था ॥ ६ ॥ द्रोणाचार्य
और पञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्नने मनुष्योंके शिरोंको इसप्रकार
छिन्न भिन्न कर ढेर लगादिया कि–वे दूरसे देखने वालोंको
चारों ओरसे तोडाहुआ कमलोंका वनसा प्रतीत होता था ॥७॥
सेनाओंमें चारों ओर योधाओंके वस्त्र, गहने, शस्त्र, ध्वजा,
कवच और अस्त्र इधर उधर पडे थे ॥ ८ ॥ रुधिरसे सने सुवर्ण

श्वनरानन्ये पातयन्ति स्म पत्रिभिः । तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो
महारथाः ॥ १० ॥ असिचर्माणि चापानि शिरांसि कवचानि
च । विप्रकीर्यन्त शूराणां सम्प्रहारे महात्मनाम् ॥ ११ ॥
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः । अदृश्यन्त महाराज
तस्मिन् परमसंकुले ॥ १२ ॥ गृध्राः कङ्का बकाः श्येना वायसा
जम्बुकास्तथाः । बहुशः पिशिताशाश्च तत्रादृश्यन्त मारिष ॥१३॥
भक्षयन्तश्च मांसानि पिबन्तश्चापि शोणितम् । विलुम्पन्तश्च
केशांश्च मज्जाश्च बहुधा नृप ॥ १४ ॥ आकर्षन्तः शरीराणि
शरीरावयवांस्तथा । नराश्वगजसंघानां शिरांसि च ततस्ततः १५
कृतास्त्रा रणदीक्षाभिर्दीक्षिता रणशालिनः । रणे जयं प्रार्थयाना
भृशं युयुधिरे तदा ॥ १६ ॥ असिमार्गान् बहुविधान् विचेरुः

के कवच बिजलीवाले मेघोंकी समान दीखते थे ॥९॥ और तहाँ
महारथी, ताडकी समान धनुषोंको खेंच बाणोंसे हाथी, घोड़े और
मनुष्योंको गिरारहे थे ॥ १० ॥ प्रहारके समय शूर वीर महात्माओंके
धनुष, तलवार और कवच गिरेजाते थे तथा शिर उडे
जाते थे ॥ ११ ॥ हे महाराज ! उस परम घोर युद्धमें अगणित
कवन्ध धड उठतेहुए दीखते थे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! उस समय
तहाँ गीध, कंक, बगले, बाज, कौए, गीदड तथा बहुतसे मांसका
आहार करनेवाले प्राणी बहुतायतसे दीखनेलगे ॥ १३ ॥ हे
राजन ! वे मुरदोंके मांसको खाते हुए रुधिरको पीनेलगे, शिरके
केशोंको खींचते थे, शरीरकी मज्जाको खाते और शरीरको तथा
शरीरके अवयवोंको आपसमें खेंच रहे थे और मनुष्य, हाथी
तथा घोडोंके शिरोंको लुढ़का रहे थे ॥ १४–१५ ॥ उस समय
अस्त्रविद्यामें कुशल, योधा रणदीक्षासे दीक्षित हो, रणमें जय
चाहतेहुए बड़े ही वेगसे युद्ध करनेलगे ॥ १६ ॥ सैनिक युद्धमें
खड़े होकर तलवारके नानाप्रकारके हाथ दिखाने लगे और वे

सैनिका रणे । ऋष्टिभिः शक्तिभिः प्रासैः शूलतोमरपट्टिशैः ॥१७॥ गदाभिः परिघैश्चान्यैरायुधैश्च भुजैरपि । अन्योन्यं जघ्निरे क्रुद्धा युद्धरङ्गगता नराः ॥ १८ ॥ रथिनो रथिभिः सार्द्धं अश्वारोहाश्च सादिभिः । मातङ्गा वरमातङ्गैः पदाताश्च पदातिभिः ॥ १९ ॥ क्षीवा इवान्ये चोन्मत्ता रङ्गेष्विव च वारणाः । उच्चुक्रुशुरथान्योन्यं जघ्नुरन्योन्यमेव च ॥ २० ॥ वर्त्तमाने तथा युद्धे निर्मर्यादे विशाम्पते । धृष्टद्युम्नो हयानश्वैर्द्रोणस्य व्यत्यमिश्रयत् २१ ते हयाः साध्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः । पारावतसवर्णाश्च रक्तशोणाश्च संयुगे ॥ २२ ॥ पारावतसवर्णास्ते रक्तशोणविमिश्रिताः । हयाः शुशुभिरे राजन् मेघा इव सविद्युतः ॥ २३ ॥ धृष्टद्युम्नस्तु संप्रेक्ष्य द्रोणमभ्यासमागतम् । असिचर्माददे वीरो धनुरुत्सृज्य भारत ॥ २४ ॥ चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म पार्षतः परवीर-

---

ऋष्टि, शक्ति, तोमर, प्रास, शूल पट्टिश गदा, परिघ और दूसरे आयुध तथा भुजाओंसे एक दूसरेको मारनेलगे ॥१७-१८॥ रथी रथीके साथ,घुडसवार घुडसवारोंके साथ,हाथी श्रेष्ठ हाथियोंके साथ पैदल पैदलोंके साथ युद्धकर रहे थे और हाथी जैसे रणभूमिमें युद्ध करता हो तैसे मदिरा पीकर मदमत्त हुए योधा रणभूमिमें बडा कोलाहल कररहे थे तथा दोनों पक्षके योधा एक दूसरेका संहारकर रहे थे१९-२०हे राजन् ! इसप्रकार जब मर्यादाको छोड कर युद्ध होरहा था, उस समय धृष्टद्युम्नने अपने घोडोंको द्रोणाचार्यके घोडोंसे सटादिया ॥ २१ ॥ वायुवेगी, एक दूसरेसे भिड़े हुए वे कबूतरके रङ्गके और रुधिरसे लाल२ हुए घोड़े बहुत ही शोभा पानेलगे ॥ २२ ॥ हे राजन् ! कबूतरकेसे रंगके घोड़े रुधिरका लाल रङ्ग मिलनेसे जिसमें बिजली चमक रही हो ऐसे मेघोंकी समान दीखनेलगे ॥ २३ ॥ वीर धृष्टद्युम्नने द्रोणको पासमें आया हुआ देखकर हे भारत ! धनुषको छोड हाथमें ढाल

हा । ईषया समतिक्रम्य द्रोणस्य रथमाविशत् ॥ २५ ॥ अतिष्ठद्युगमध्ये स युगसन्नहनेषु च । जघानार्द्धेषु चाश्वानां तत्सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥२६॥ खड्गेन चरतस्तस्य शोणाश्वानधितिष्ठतः । न ददर्शान्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २७ ॥ यथा श्येनस्य पतनं वनेष्वामिषगृद्धिनः । तथैवासीदभीसारस्तस्य द्रोणं जिघांसतः ॥ २८ ॥ ततः शरशतेनास्य शतचन्द्रं समाक्षिपत् । द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य खड्गञ्च दशभिः शरैः ॥ २९ ॥ हयांश्चैव चतुःषष्ट्या शराणां जघ्निवान् वली । ध्वजं छत्रञ्च भल्लाभ्यां तथा तौ पार्ष्णिसारथी ॥ ३० ॥ अथास्मै त्वरितो वाणमपरं जीवितान्त-

---

तलवार लेली ॥ २४ ॥ वीर शत्रुओंका नाश करनेवाला धृष्टद्युम्न दुष्कर कर्म करनेकी इच्छासे अपने रथकी ईषा पर पैर रखकर द्रोणाचार्यके रथमें चढ़गया ॥ २५ ॥ और सारथीके वैठनेकी जगह पर जा, उस स्थानके दृढ़बन्धन और घोडोंकी पिछली आधी पीठ पर खडा होगया यह देखकर सब सेनाएं उसको धन्यवाद देनेलगीं ॥ २६ ॥ धृष्टद्युम्न तलवार हाथमें ले द्रोणके लाल २ घोड़ोंके ऊपर खड़ा था उस समय द्रोणाचार्यको अपने और उसके मध्यमें खाली स्थान वाण छोडनेके लिये भी न मिला, यह बडा अचरज हुआ ॥ २७ ॥ जैसे मांसलोलुप वाज जङ्गलमें अपने शिकार पर टूटता है तैसे ही धृष्टद्युम्न द्रोणको मारनेकी इच्छासे उनके ऊपर कूदपडा ॥ २८ ॥ तदनन्तर द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नकी ढालको सौ वाण मारकर फैंकदिया और उसकी तलवारको दश वाण मारकर फैंकदिया ॥ २९ ॥ और वली द्रोणने चौसठ वाणोंसे धृष्टद्युम्नके घोड़ोंको भल्ल नामके दो वाणोंसे मारडाला तथा इसकी ध्वजा, छत्र और दोनों करवटोंके रक्षक तथा सारथीका भी नाश करदिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर फुरती करतेहुए द्रोणने जैसे इन्द्र अस्त्रको उठाता हो इस

कम् । आकर्णपूर्णं चिक्षेप वज्रं वज्रधरो यथा ॥ ३१ ॥ तं चतुर्दशभिस्तीक्ष्णैर्बाणैश्चिच्छेद सात्यकिः । ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नं व्यमोचयत् ॥ ३२ ॥ सिंहेनेव मृगं ग्रस्तं नरसिंहेन मारिष । द्रोणेन मोचयामास पाञ्चाल्यं शिनिपुङ्गवः ॥ ३३ ॥ सात्यकिं प्रेक्ष्य गोप्तारं पाञ्चाल्यञ्च महाहवे । शराणां त्वरितो द्रोणः षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ ३४ ॥ ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो ग्रसन्तमपि सृञ्जयान् । प्रत्यविध्यच्छितैर्बाणैः षड्विंशत्या स्तनान्तरे ॥ ३५ ॥ ततः सर्वे रथास्तूर्णं पाञ्चाल्या जयगृद्धिनः । सात्वताभिसृते द्रोणे धृष्टद्युम्नमवाक्षिपन् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणधृष्टद्युम्नयुद्धे
सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । बाणे तस्मिन्निकृत्ते तु धृष्टद्युम्ने च मोक्षिते ।

प्रकार धनुषको कानतक खैंचकर प्राण हरण करनेवाला एक बाण धृष्टद्युम्नके मारा ॥ ३१ ॥ सात्यकिने चौदह तेज बाण मारकर उस बाणको काटदिया और द्रोणाचार्यके चुङ्गलमें फँसे हुए धृष्टद्युम्नको बचालिया ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! सिंहके चुङ्गलमें फँसे हुए मृगकी समान नरसिंह द्रोणके चुङ्गलमें फँसे हुए धृष्टद्युम्नको शिनिपुङ्गव सात्यकिने बचादिया ॥ ३३ ॥ महासंग्राममें रक्षा करनेवाले सात्यकिको तथा धृष्टद्युम्नको देख द्रोणने उन दोनोंके शीघ्रतासे छब्बीस बाण मारे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर द्रोणाचार्यने सृञ्जयोंको घेरा, तब सात्यकिने उनकी छातीमें तेज किये हुए छब्बीस बाण मारे ॥ ३५ ॥ इसप्रकार जब सात्यकिने द्रोणाचार्यके ऊपर धावा किया, कि–विजय चाहनेवाले पञ्चालोंके सब योधा एक साथ धृष्टद्युम्नको रणमेंसे दूर लेगए ॥ ३६ ॥

सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९७ ॥

धृतराष्ट्र बोले, कि-हे सञ्जय ! जब वृष्णिवंशमें श्रेष्ठ सात्यकिने

तेन वृष्णिप्रवीरेण युयुधानेन सञ्जय ॥ १ ॥ अमर्षितो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृताम्वरः । नरव्याघ्रः शिनेः पौत्रे द्रोणः किमकरोद् युधि २ सञ्जय उवाच । संप्रद्रुतः क्रोधविषो व्यादितास्यशरासनः । तीक्ष्णधारेषुदशनः शितनाराचदंष्ट्रवान् ॥ ३ ॥ संरम्भामर्षताम्राक्षो महोरग इव श्वसन् । नरवीरः प्रमुदितः शोणैरश्वैर्महाजवैः ॥४॥ उत्पतद्भिरिवाकाशे क्रामद्भिरिव पर्वतम् । रुक्मपुंखान् शरानस्यन् युयुधानमुपाद्रवत् ॥ ५॥ शरपातमहावर्षं रथघोषबलाहकम् । कार्मुकाकर्षविक्षेपं नाराचबहुविद्युतम् ॥ ६ ॥ शक्तिखड्गाशनिधरं क्रोधवेगसमुत्थितम् । द्रोणमेघमनावार्यं हयमारुतचोदितम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वैवाभिपतन्तं तं शूरः परपुरञ्जयः । उवाच सूतं शैनेयः प्रहसन्

द्रोणाचार्यके बाणको काटकर धृष्टद्युम्नको बचालिया ॥१॥ तब सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर नरव्याघ्र द्रोणने युद्धमें सात्यकिका क्या किया ? ॥ २ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया कि-उस समय क्रोधरूपी विषसे भरे धनुषरूप फैलाए हुए मुखवाले तेजधारके बाणरूप दाँतोंवाले, तेज नाराचरूप डाढ़वाले क्रोध और अमर्ष (असहनता)से लाल २ नेत्रोंवाले द्रोणरूप महासर्प लंबे २ साँस लेनेलगे और आकाशमेंको चढ़तेहुएसे अथवा द्रोण पर्वतोंको लाँघते हुएसे चरण धरने वाले लाल २ रङ्गके बड़े वेग वाले घोड़ोंसे जुतेहुए रथमें बैठकर सात्यकिके ऊपर चढ़गए और उसके ऊपर सुनहरी पूँछवाले बाण फैंकनेलगे । ३-५ ॥ बाण छोडना रूप बडी भारी वर्षा करनेवाले, तथा घर घराहट रूप गर्जना करनेवाले, धनुषको खेंचनारूप धारायें गिरानेवाले नाराचरूपी बहुत सी बिजलियोंवाले, शक्ति और खड्गरूपी उल्कापातवाले, क्रोधरूपी वेगसे उठेहुए घोड़ेरूपी वायुसे प्रेरित, और हटानेसे भी न हटनेवाले द्रोणरूप मेघको आतेहुए देखकर शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले शूरवीर युद्धदुर्मद शिनिपुत्र

युद्धदुर्मदः ॥ ८ ॥ एनं वै ब्राह्मणं शूरं स्वकर्मण्यनवस्थितम् । आश्रयं धार्त्तराष्ट्रस्य राज्ञो दुःखभयापहम् ॥ ९ ॥ शीघ्रं प्रजवितैरश्वैः प्रत्युद्याहि प्रहृष्टवत् । आचार्यं राजपुत्राणां सततं शूरमानिनम् ॥ १० ॥ ततो रजतसङ्काशा माधवस्य हयोत्तमाः । द्रोणस्याभिमुखाः शीघ्रमगच्छन् वातरंहसः ॥ ११ ॥ ततस्तौ द्रोणशैनेयौ युयुधाते परन्तपौ । शरैरनेकसाहस्रैस्ताडयन्तौ परस्परम् १२ इषुजालावृतं व्योम चक्रतुः पुरुषर्षभौ । पूरयामासतुर्वीरावुभौ दश दिशः शरैः ॥ १३ ॥ मेघयिवातपापाये धाराभिरितरेतरम् । न स्म सूर्यस्तदा भाति न ववौ च समीरणः ॥ १४ ॥ इषुजालावृतं घोरमन्धकारं समन्ततः । अनाधृष्यमिवान्येषां शूराणामभवत्तदा ॥ १५ ॥ अन्धकारीकृते लोके द्रोणशैनेययोः शरैः । तयोः

सात्यकिने मन्द२ हँसकर अपने सारथीसे कहा कि—॥६—८॥ ओ सूत ! यह वीर ब्राह्मण दुर्योधनके दुःख तथा भयका नाश करनेके लिये अपने ब्राह्मणोचित कर्मको भूलकर दुर्योधनका हिमायती बनकर चढा चला आरहा है इसलिये तू भी उत्साही पुरुषकी समान, घोड़ोंको वेगसे दौड़ाकर रथको इनके सामने ले चल, यह राजपुत्रोंके आचार्य हैं और अपनेको सदा बड़ा शूरवीर मानते हैं ॥ ९—१० ॥ तदनन्तर वायुवेगी घोड़ोंमें श्रेष्ठ सात्यकिके धौले घोड़े एक साथ द्रोणाचार्यके सामनेको दौडगये ॥११॥ और वे दोनों योधा एक दूसरेको सहस्रों बाणोंसे पीड़ा देतेहुए लडनेलगे ॥१२॥ पुरुषश्रेष्ठ, वीर द्रोण और सात्यकिने आकाशमें बाणोंका जाल पूरदिया और दशों दिशाओंको बाणोंसे भर दिया॥१३॥ग्रीष्म ऋतुके बीतने पर मेघ जैसे सबको जलधाराओंसे ढकदेते हैं तैसे ही वे दोनों एक दूसरेको बाणोंकी वर्षासे ढकने लगे, चारों ओर बाणोंके छा जानेके कारण घोर अंधेरा होगया, सूर्यका दीखना बन्द होगया तथा वायुका चलना भी बन्द होगया,

शीघ्रास्त्रविदुषोर्द्रोणसात्वतयोस्तदा ॥ १६ ॥ नान्तरं शरवृष्टीनां
ददृशे नरसिंहयोः । इषूणां सन्निपातेन शब्दो धाराविघातजः १७
शुश्रुवे शक्रमुक्तानामशनीनामिव स्वनः । नाराचैर्व्यपविद्धानां
शूराणां रूपमाबभौ ॥ १८ ॥ आशीविषविदष्टाणां सर्पाणामिव
भारत । तयोर्ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे युद्धशौण्डयोः ॥ १९ ॥
अजस्रं शैलशृङ्गाणां वज्रेणाहन्यतामिव । उभयोस्तौ रथौ राजन् ते
चाश्वस्तौ च सारथी ॥ २० ॥ रुक्मपुंखैः शरैश्छन्नाश्चित्ररूपा
बभुस्तदा । निर्मलानामजिह्मानां नाराचानां विशाम्पते ॥ २१ ॥
निर्मुक्ताशीविषाभानां सम्पातोऽभूत् सुदारुणः । उभयोः पतिते
छत्रे तथैव पतितौ ध्वजौ ॥ २२ ॥ उभौ रुधिरसिक्ताङ्गावुभौ च
विजयैषिणौ । स्रवद्भिः शोणितं गात्रैः प्रस्नुताविव वारणौ ॥२३॥
अन्योन्यमभ्यविध्येतां जीवितान्तकरैः शरैः । गर्जितोत्क्रुष्टस-

---

जिस समय द्रोण और सात्यकिने बाणोंसे संसारको अंधकारमय करदिया, उस समय शूर उसको हटा न सके, शीघ्रतासे अस्त्र छोडनेमें चतुर नरव्याघ्र द्रोण और सात्यकिके बाण बरसानेमें कुछ भी भेद नहीं मालूम होता था, निरन्तर होतीहुई बाणोंकी बौछारोंके टकरानेसे, इन्द्रकी छोडीहुई उल्काओंके टकरानेकासा शब्द होनेलगा, हे भारत ! नाराचोंसे बिंधेहुए अस्त्रोंका रूप महासर्पोंसे डसेहुए सर्पोंकी समान दीखता था, युद्धचतुर उन दोनोंकी प्रत्यञ्चाका निरन्तर होताहुआ शब्द पर्वतोंके शिखरों पर गिरेहुए वज्रोंके कडाकेकी समान होरहा था, उन दोनोंके रथ, सारथि, और वे स्वयं भी सुवर्णकी पूंछोंवाले बाणोंसे बिंधहुए विचित्र दीखते थे, उन दोनोंके छत्र और ध्वजायें गिरगईं, दोनों रुधिरमें लथड़पथड़ होगये, वे दोनों विजय चाहरहे थे, और रुधिर टपकनेसे मद टपकानेवाले हाथियोंकी समान प्रतीत होते थे और वे दोनों ऐसी दशामें भी प्राणान्तक बाणोंको छोड़रहे थे,

न्नादाः शंखदुन्दुभिनिःस्वनाः ॥ २४ ॥ अपारमन्महाराज व्या-
जहार न कश्चन । तूष्णीम्भूतान्यनीकानि योधा युद्धादुपारमन् २५
ददर्श द्वैरथं ताभ्यां जातकौतूहलो जनः । रथिनो हस्तियन्तारो
हयारोहाः पदातिनः ॥ २६ ॥ अवैक्षन्ताचलैर्नेत्रैः परिवार्य नर-
र्षभौ । हस्त्यनीकान्यतिष्ठन्त तथानीकानि वाजिनाम् ॥ २७ ॥
तथैव रथवाहिन्यः प्रतिव्यूह्य व्यवस्थिताः । मुक्ताविद्रुमचित्रैश्च
मणिकाञ्चनभूषितैः ॥ २८ ॥ ध्वजैराभरणैश्चित्रैः कवचैश्च हिर-
ण्मयैः । वैजयन्तीपताकाभिः परिस्तोमाङ्गकम्बलैः ॥ २९ ॥ विम-
लैर्निशितैः शस्त्रैर्हयानां च प्रकीर्णकैः । जातरूपमयीभिश्च राजती-
भिश्च मूर्द्धसु ॥ ३० ॥ गजानां कुम्भमालाभिर्दन्तवेष्टैश्च भारत ।
सबलाका सखद्योता सैरावतशतह्रदाः ॥ ३१ ॥ अदृश्यन्तोष्ण-
पर्याये मेघानामिव वागुराः । अपश्यन्नस्मदीयाश्च ते च यौधिष्ठि-
राः स्थिताः ॥ ३२ ॥ तद्युद्धं युयुधानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।

उस समय हाथियोंकी चिंघाड़, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, शंख और दुन्दुभियोंकी ध्वनि बन्द होगई, योधा, सेनापति, रथी, हाथीवान, घुड़सवार, और पैदल, कुतूहलसे दोनों योधाओंको घेरकर टकटकी बाँधेहुए, उनका युद्ध देखनेलगे. हाथी, घोड़े और रथियोंकी सेनायें व्यूहरचनामें ही खडी रहगईं और मोती, मूंगा, मणि, सुवर्ण आदिसे सजीहुई, चित्रविचित्र ध्वजा, नानाप्रकारके सुवर्णके कवच वैजयन्ती मालायें, रंगबिरंगी झूलें, बारीक शाल, चमकतेहुए और तेज बाण, घोडोंकी काठियें, तथा दूसरे सामान सुवर्ण और चान्दीकी हाथियोंकी हमेलें तथा दाँतों पर लगेहुए छल्ले रणभूमिमें पड़े थे इससे रणभूमि शोभा पारही थी, वर्षामें जैसे बगले, जुगनू, ऐरावत और बिजलियोंसे मेघोंकी पंक्ति शोभा पाती है तैसे ही वे वस्तुएं शोभा पारहीं थी. हमारे और युधिष्ठिरके सैनिक रणमें खड़े खड़े महात्मा द्रोण और सात्यकि

विमानाग्रगता देवा ब्रह्मसोमपुरोगमाः ॥ ३३ ॥ सिद्धचारणसंघाश्च विद्याधरमहोरगाः। गतप्रत्यागताक्षेपैश्चित्रैरस्त्रविघातिभिः ॥३४ विविधैर्विस्मयं जग्मुस्तयोः पुरुषसिंहयोः। हस्तलाघवमस्त्रेषु दर्शयन्तौ महाबलौ ॥ ३५ ॥ अन्योन्यं प्रत्यविध्येतां शरैस्तौ द्रोणसात्यकी। ततो द्रोणस्य दाशार्हः शरांश्चिच्छेद संयुगे ॥ ३६ ॥ पत्रिभिः सुदृढैराशु धनुश्चैव महाद्युते। निमेषान्तरमात्रेण भारद्वाजोऽपरन्धनुः ॥३७॥ सज्यं चकार तदपि चिच्छेदास्य स सात्यकिः। ततस्त्वरन् पुनर्द्रोणो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ॥ ३८ ॥ सज्यं सज्यं धनुश्चास्य चिच्छेद निशितैः शरैः। एवमेकशतं छिन्नं धनुषां दृढधन्विना ॥ ३९ ॥ न चान्तरं तयोर्दृष्टं संधानेच्छेदनेपि च। ततोस्य संयुगे द्रोणो दृष्ट्वा कर्मातिमानुषम् ॥ ४० ॥ युयुधानस्य

सात्यकिके युद्धको देखनेलगे, ब्रह्मा, चन्द्र आदि देवता भी विमानोंमें बैठकर महात्मा द्रोण और सात्यकिके युद्धको देखनेके लिये आये, सिद्ध, चारण, विद्याधर और महोरग भी उन महात्माओंकी अनेकों प्रकारकी युद्धकुशलता, आगेको बढना, पीछेको हटना, तथा परस्पर प्रहार करनेकी विचित्र रीतिको देखकर विस्मित होनेलगे, वे महाबली योधा अस्त्रोंको चलानेमें फुर्ती दिखाते हुए एक दूसरेको बाणोंसे बींध रहे थे इतनेमें ही सात्यकिने दृढ बाण मारकर द्रोणके बाणोंको काटडाला और महाकान्तिवान् द्रोणाचार्यके धनुषको भी तोड़डाला द्रोणाचार्यने तत्काल दूसरा धनुष चढालिया, परन्तु सात्यकिने उसके भी टुकड़े२ कर डाले, द्रोणने फिर दूसरा धनुष हाथमें लिया, कि-सात्यकिने उसे भी काटडाला, इसप्रकार द्रोण जैसे२ धनुष उठाते गए तैसे२ सात्यकि उसको काटता गया, इसप्रकार दृढ धनुषवाले सात्यकिने सौ धनुष काटडाले ॥ ३४ ॥ ३९ ॥ परन्तु द्रोण कब धनुषको उठाते थे और सात्यकि कब उसको काटदेता था, यह किसीको

राजेन्द्र मनसैनदचिन्तयत्। एतदस्त्रबलं रामे कार्त्तवीर्ये धनञ्जये ४१ भीष्मे च पुरुषव्याघ्रे यदिदं सात्वतां वरे। तच्चास्य मनसा द्रोणः पूजयामास विक्रमम् ॥ ४२ ॥ लाघवं वासवस्येव सम्प्रेक्ष्य द्विजसत्तमः। तुतोषास्त्रविदां श्रेष्ठस्तथा देवाः सवासवाः ॥ ४३ ॥ न तामालक्षयामासुर्लघुतां शीघ्रचारिणः। देवाश्च युयुधानस्य गन्धर्वाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥ सिद्धचारणसंघाश्च विदुर्द्रोणस्य कर्म तत्। ततोऽन्यद्धनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४५ ॥ अस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो योजयामास भारत। तस्यास्त्राण्यस्त्रमायाभिः प्रतिहत्य स सात्यकिः ॥ ४६ ॥ जघान निशितैर्बाणैस्तदद्भुतमिवा-

---

नहीं दीखता था, हे राजेन्द्र! युद्धमें सात्यकिके इस अमानुष पराक्रमको देखकर द्रोणाचार्य अपने मनमें विचारनेलगे, कि जो अस्त्रबल परशुराम, कार्तवीर्य अर्जुन और पुरुषव्याघ्र भीष्ममें विद्यमान है, वैसा ही अस्त्रबल इस सात्यकिमें भी है, द्विजसत्तम द्रोणाचार्य इन्द्रकी समान सात्यकिकी फुर्तीको देखकर मन ही मनमें उसकी प्रशंसा करनेलगे और बड़े सन्तुष्ट हुए, इन्द्रसहित देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण भी शीघ्रतासे बाण छोडनेवाले सात्यकिकी फुर्तीको देख न सके वे तो यही समझे, कि-यह सब काम द्रोण ही कर रहे हैं, तदनन्तर अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ क्षत्रियमर्दन द्रोणाचार्य फिर एक नया धनुष ले उसके ऊपर बाण चढ़ा सात्यकिसे युद्ध करनेलगे, सात्यकिने द्रोणके उन अस्त्रोंके भी अस्त्रोंकी मारसे टुकड़े करके द्रोणको तीक्ष्ण शस्त्रोंसे मारना आरम्भ करदिया, यह देखकर सबको बडा अचरज हुआ, दूसरोंसे न होसकनेवाले सात्यकिके इस अतिमानुष कर्मको देखकर तुम्हारे पक्षके युक्ति जाननेवाले योधा युक्तिकुशल सात्यकिकी प्रशंसा करनेलगे, इस युद्धके समय जिस अस्त्रको द्रोण छोडते थे, उस ही अस्त्रको सात्यकि भी छोड़ता था ॥ ४०-४६ ॥ इसप्रकार

भवत् । तस्यातिमानुषं कर्म दृष्ट्वान्यैरसमं रणे ॥४७॥ युक्तं योगेन
योगज्ञास्तावकाः समपूजयन् । यदस्त्रं सृजति द्रोणस्तदेवादस्यति
सात्यकिः ॥ ४८ ॥ तमाचार्योथ सम्भ्रान्तो योधयच्छत्रुतापनः ।
ततः क्रुद्धो महाराज धनुर्वेदस्य पारगः ॥ ४९ ॥ वधाय युयुधानस्य
दिव्यमस्त्रमुदैरयत् । तदाग्नेयं महाघोरं रिपुघ्नमुपलक्ष्य सः ५०
दिव्यमस्त्रं महेष्वासो वारुणं समुदैरयत् । हाहाकारो महानासीद्
दृष्ट्वा दिव्यास्त्रधारिणौ ॥ ५१ ॥ न विचेरुस्तदाकाशे
भूतान्याकाशगान्यपि । अस्त्रे ते वारुणाग्नेये ताभ्यां बाणसमाहिते
॥ ५२ ॥ न यावदभ्यपद्येतां व्यावर्त्तदथ भास्करः । ततो
युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ५३ ॥ नकुलः सहदेवश्च
पर्यरक्षन्त सात्यकिम् । धृष्टद्युम्नमुखैः सार्द्धं विराटश्च सकेकयः ५४
मत्स्याः शाल्वेयसेनाश्च द्रोणमाजग्मुरञ्जसा । दुःशासनं पुरस्कृत्य

संभ्रममें पड़ेहुए शत्रुतापन द्रोणाचार्य सात्यकिके साथ युद्ध करते
रहे, अन्तमें हे महाराज ! क्रोधमें भरेहुए धनुर्वेदमें पारङ्गत द्रोणाचार्यने
सात्यकिका वध करनेके लिये दिव्य (आग्नेय) अस्त्र
छोडा, किन्तु सात्यकिने उस शत्रुनाशक महाघोर आग्नेय अस्त्र
को अपनी ओर आताहुआ देखकर दिव्य वारुणास्त्रका प्रयोग
किया, दोनोंके हाथोंमें दिव्य अस्त्रोंको देख लोगोंमें बडा हाहाकार
मचगया ॥ ४९–५१ ॥ उन वारुण और आग्नेय अस्त्रका
प्रयोग होनेपर आकाशचारी प्राणियोंका उडना बन्द होगया,
बाणोंके साथ टकरायेहुए वारुण और आग्नेय अस्त्र अभी
निवृत्त (पराजित) नहीं हुए थे, कि–सूर्यनारायण मध्यमेंसे
नीचे उतरने लगे, (दुपहर ढलनेलगा) उस समय राजा युधिष्ठिर,
भीमसेन, नकुल, सहदेव, विराट, केकय और धृष्टद्युम्न
आदि चारों ओरसे सात्यकिकी रक्षा करनेको चलेआये ५२-५४
दूसरी ओर मत्स्य, राजे, शाल्वेयकी सेना और सहस्रों राज-

राजपुत्राः सहस्रशः ॥ ५५ ॥ द्रोणमभ्युपपद्यन्तं सपत्नैः परिवारितम् । ततो युद्धमभूद्राजंस्तेषां तव च धन्विनाम् ॥ ५६ ॥ रजसा सम्वृते लोके शरजालसमावृते । सर्वणाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किञ्चन । सैन्ये च रजसा ध्वस्ते निर्मर्यादमवर्त्तत ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि
द्रोणसात्यकियुद्धे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

सञ्जय उवाच । विवर्त्तमाने त्वादित्ये तत्रास्तशिखरं प्रति । रजसा कीर्यमाणे च मन्दीभूते दिवाकरे ॥ १ ॥ तिष्ठतां युध्यमानानां पुनरावर्त्ततामपि। भज्यतां जयताञ्चैव जगाम तदहः शनैः २ तथा तेषु विषक्तेषु सैन्येषु जयगृद्धिषु । अर्जुनो वासुदेवश्च सैन्धवायैव जग्मतुः ॥ ३ ॥ रथमार्गप्रमाणन्तु कौन्तेयो निशितैः शरैः।

कुमार दुःशासनको आगे करके एकसाथ शत्रुओंसे घिरेहुए द्रोणकी रक्षा करनेको उनके पास आगए, हे राजन् ! उस समय तुम्हारे और पाण्डवपक्षके धनुषधारियोंमें युद्ध होनेलगा, और चारों ओर धूल तथा बाणोंके जालसे अंधेरा छागया, सैनिकोंके पैरोंसे उडीहुई धूलिसे कुछ भी नहीं दीखता था, सब अंधेरेमें डूब गए और उस समय दोनों सेनाओंमें मर्यादाको छोडकर युद्ध होनेलगा ॥ ५५–५७ ॥ अट्ठानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९८ ॥

सञ्जयने कहा, कि--हे राजन् ! धृतराष्ट्र ! जब सूर्यनारायण ढलनेलगे और सूर्य धूलिधूसरित तथा मन्द होकर अस्ताचलकी ओरको जानेलगे, उस समय योधाओंमेंसे कितनेही रणमें खड़े रहे, कितने ही लौट आये और कितनेही डरकर रणभूमिमेंसे भागनेलगे और कितनेही विजयाभिलाषी योधा रणमें खड़े रहे, इसप्रकार धीरे२ दिन पूरा होनेको आगया ॥ १–२ ॥ तो भी ये जयकी लोभी सेनाएं रणभूमिमें चढ़ाई करती ही रहीं, इस समय श्रीकृष्ण और अर्जुन जयद्रथकी ओरको ही बढते जाते थे॥ ३ ॥

चकार तत्र पन्थानं ययौ येन जनार्दनः ॥ ४ ॥ यत्र यत्र रथो याति पाण्डवस्य महात्मनः । तत्र तत्रैव दीर्यन्ते सेनास्तव विशाम्पते ॥ ५ ॥ रथशिक्षान्तु दाशार्हो दर्शयामास वीर्यवान् । उत्तमाधममध्यानि मण्डलानि विदर्शयन् ॥ ६ ॥ ते तु नामाङ्किताः पीताः कालज्वलनसन्निभाः । स्नायुनद्धाः सुपर्वाणः पृथवो दीर्घगामिनः ॥७॥ वैणवाश्चायसाश्चोग्रा ग्रसन्तो विविधानरीन् । रुधिरं पतगैः सार्धं प्राणिनां पपुराहवे ॥ ८ ॥ रथस्थितोग्रतः क्रोशं यानस्यत्यर्जुनः शरान् । रथे क्रोशमतिक्रान्ते तस्य ते घ्नन्ति शात्रवान् ॥९॥ तार्क्ष्यमारुतरंहोभिर्वाजिभिः साधुवाहिभिः । तदागच्छद्ध हृषीकेशः कृत्स्नं विस्मापयन् जगत् ॥१०॥ न तथा गच्छति

कुन्तीपुत्र अर्जुन तीक्ष्ण बाणोंसे रथके जानेके योग्य मार्ग बना लेता था और उस मार्गसे श्रीकृष्ण बढ़ते चलेजाते थे ॥ ४ ॥ हे प्रजाओंके स्वामिन्! महात्मा पाण्डवनन्दन अर्जुनका रथ जिस ओर जाता था तहाँ२ही तुम्हारी सेना भागने लगती थी ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णभी रथको उत्तम, मध्यम और अधम प्रकारके मण्डलोंमें घुमाकर अपने रथ हाँकनेकी कुशलता दिखलाते थे ॥ ६ ॥ इस युद्धमें, पक्षी जैसे प्राणियोंके रुधिरको पीते हैं, तैसे ही अर्जुनके छोड़ेहुए, उसके नामसे चिन्हित, पानी पिलाहुयेए, कालाग्निकी समान भयङ्कर ताँतोंसे बाँधीहुई सुन्दर गांठोंवाले, स्थूल दूरतक जानेवाले, बाँस और लोहेके बाण शत्रुओंका संहार करके उनका रुधिर पान करनेलगे ॥७-८॥ अर्जुन रथमें बैठा२ एक कोसकी दूरी तक बाण फेंकता था, वे बाण रथमेंसे छूटकर एक कोस दूरतकके शत्रुओंको नष्ट करदेते थे ॥ ९ ॥ श्रीकृष्ण भी गरुड़ और पवनकी समान वेगवान् श्रेष्ठ घोडोंको हाँकते और जगत्को आश्चर्यित करतेहुए रथको बढ़ाते ही चलेजाते थे ॥ १० ॥ हे राजन्! अर्जुनका रथ मनके अभिप्रायकी समान शीघ्रतासे

रथस्तपनस्य विशाम्पते। नेन्द्रस्य न तु रुद्रस्य नापि वैश्रवणस्य च११ नान्यस्य समरे राजन् गतपूर्वस्तथा रथः । यथा ययावर्जुनस्य मनोभिप्रायशीघ्रगः ॥ १२ ॥ प्रविश्य तु रणं राजन् केशवः परवीरहा । सेनामध्ये हयांस्तूर्णं चोदयामास भारत ॥ १३ ॥ ततस्तस्य रथौघस्य मध्यं प्राप्य हयोत्तमाः । कृच्छ्रेण रथमूहुस्तं क्षुत्पिपासासमन्विताः ॥ १४ ॥ क्षताश्च बहुभिः शस्त्रैर्युद्धशौण्डैरनेकशः । मण्डलानि विचित्राणि विचेरुस्ते मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ हतानां वाजिनागानां रथानाञ्च नरैः सह । उपरिष्टादतिक्रान्ताः शैलाभानां सहस्रशः ॥१६॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरावावन्त्यौ भ्रातरौ नृप । सहसेनौ समार्च्छेतां पाण्डवं क्लान्तवाहनम् ॥ १७ ॥ तावर्जुनं चतुःषष्ट्या सप्तत्या च जनार्दनम् । शराणाञ्च शतेनाश्वानविध्येतां मुदान्वितौ ॥ १८ ॥ तावर्जुनं महाराज नवभिर्नतपर्वभिः।

चलता था ऐसा पहले सूर्य, इन्द्र, रुद्र और कुबेरका रथ भी नहीं चलसका था और न इतनी शीघ्रतासे पहिले और किसीका ही रथ चला था ॥ ११-१२ ॥ हे राजन् ! शत्रुओंके वीरोंको नष्ट करनेवाले श्रीकृष्ण रणके मध्यमें पहुँचकर बड़ी शीघ्रतासे घोड़ोंको बढ़ानेलगे ॥ १३ ॥ सेनाके मध्यमें पहुँचकर ये घोड़े भूँख और प्याससे व्याकुल हो बड़ी कठिनतासे रथको खेंचरहे थे ॥ १४ ॥ ऐसी दशा होनेपर तथा युद्धचतुर योधाओंके बाणोंसे अतीव घायल होजाने पर भी वे घोड़े अर्जुनके रथको नानाप्रकारके मण्डलोंसे खेंचेही जाते थे ॥ १५ ॥ वे घोड़े मार्गमें पड़ेहुए हाथी घोड़े, रथ, रथी तथा पर्वतोंकी समान सहस्रों हाथियोंके ऊपर अपना मार्ग काटते चलेजाते थे ॥ १६ ॥ इतनी ही देरमें थकेहुए घोड़ेवाले अर्जुनको हे राजन् ! सेनासहित अवन्तिदेशके दोनों राजकुमारोंने आकर घेरलिया ॥ १७ ॥ आनन्दमें भरेहुए उन दोनोंने अर्जुनके चौसठ, केशवके सत्तर और घोड़ोंके सौ बाण

आजघान रणे क्रुद्धो मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ १९ ॥ ततस्तौ तु शरौघेण वीभत्सुं सहकेशवम् । आच्छादयेतां संरब्धौ सिंहनादञ्च चक्रतुः ॥ २० ॥ तयोस्तु धनुषी चित्रे भल्लाभ्यां श्वेतवाहनः । चिच्छेद समरे तूर्णं ध्वजौ च कनकोज्ज्वलौ ॥ २१ ॥ अथान्ये धनुषी राजन् प्रगृह्य समरे तदा । पाण्डवं भृशसंक्रुद्धावर्दयामासतुः शरैः ॥ २२ ॥ तयोस्तुः भृशसंक्रुद्धः शराभ्यां पाण्डुनन्दनः। धनुषी चिच्छिदे तूर्णं भूय एव धनञ्जयः ॥ २३ ॥ तथान्यैर्विशिखैस्तूर्णं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः । जघानाश्वांस्तथा सूतौ पार्ष्णी च सपदानुगौ ॥ २४ ॥ ज्येष्ठस्य च शिरः कायात् क्षुरप्रेण न्यकृन्तत । स पपात हतः पृथ्व्यां वातरुग्ण इव द्रुमः ॥२५॥ विंदन्तु

मारकर घायल करदिया ॥ १८ ॥ मर्मभागको जाननेवाले अर्जुनने नमीहुई गाँठोंवाले, नौ वाण मारकर उन दोनोंके मर्मस्थानोंको वींधदिया ॥१९॥ इससे वे दोनों भी क्रोधमें भरगए और उन्होंने कृष्णसहित अर्जुनको वाणोंके जालसे ढकदिया और सिंहकी समान गर्जनाकी ॥ २० ॥ श्वेतवाहन अर्जुनने भल्ल जातिके दो वाण मारकर उनके विचित्र धनुषको काटडाला तथा सुवर्णकी समान चमकतीहुई उनकी ध्वजाओंको भी शीघ्रतासे काट गिरा दिया ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त उन दोनोंने दूसरे धनुषोंको ले वड़े क्रोधमें भरकर अर्जुनको वाणोंसे पीडित करना आरम्भ करदिया॥२२॥पाण्डुनन्दन अर्जुनने परमक्रोधमें भरकर फिर उन दोनोंके धनुषोंको शीघ्रतासे काटडाला ॥ २३ ॥ तथा सुवर्णकी पूँछवाले, शिलापर घिसकर तेज कियेहुए दूसरे वाण मारकर अर्जुनने शीघ्रतासे उनके घोड़े, सारथी, पार्श्वरक्षक और साथियोंको भी मारडाला ॥ २४ ॥ और क्षुरप्र नामक वाण मारकर वडे भाई विंदके शिरको धड़परसे गिरादिया, वह विंद आँधीसे उखेडेहुए पेडकी समान भूमिपर ढहपडा ॥ २५ ॥ विन्दको

निहतं दृष्ट्वा ह्यनुविन्दः प्रतापवान् । हताश्वं रथमुत्सृज्य गदां गृह्य महाबलः ॥ २६ ॥ अभ्यवर्त्तत संग्रामे भ्रातुर्वधमनुस्मरन् । गदया रथिनां श्रेष्ठो नृत्यन्निव महारथः ॥ २७ ॥ अनुविन्दस्तु गदया ललाटे मधुसूदनम् । स्पृष्ट्वा नाकम्पयत् क्रुद्धो मैनाकमिव पर्वतम् २८ तस्यार्जुन शरैः षड्भिर्ग्रीवां पादौ भुजौ शिरः । निचकर्त्त स संछिन्नः पपाताद्रिचयो यथा ॥ २९ ॥ ततस्तौ निहतौ दृष्ट्वा तयो राजन् पदानुगाः । अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः किरन्तः शतशः शरान् ३० तानर्जुनः शरैस्तूर्णं निहत्य भरतर्षभ । व्यरोचत तथा वह्निर्दावं दग्ध्वा हिमात्यये ॥ ३१ ॥ तयोः सेनामतिक्रम्य कृच्छ्रादिव धनंजयः । विबभौ जलदं हित्वा दिवाकर इवोदितः ॥ ३२ ॥ तं

मराहुआ देखकर और अपने घोडोंको भी मरा देखकर प्रतापी अनुविन्द हाथमें गदा ले रथ परसे कूद पडा और भाईके वधका स्मरण कर महारथी महाबली अनुविन्द मानों नाच रहा हो इस प्रकार गदाको घुमाताहुआ रणमें घूमनेलगा ॥ २६–२७ ॥ क्रोध में भरे अनुविन्दने उस गदाका श्रीकृष्णके ललाट पर प्रहार किया, परन्तु वह गदा मैनाकपर्वतकी समान अचल श्रीकृष्णको विचलित न करसकी ॥ २८ ॥ अर्जुनने छः बाणोंसे उसके शिर भुजा, पैर और गर्दनको काटडाला, छिन्नभिन्न हुआ अनुविन्द पर्वतके शिखरकी समान भूमिपर गिरपडा ॥ २९ ॥ हे राजन् ! उनको मराहुआ देखकर उनके साथकी पैदल सेना बड़े क्रोधमें भरकर सहस्रों बाणोंको छोडतीहुई अर्जुन और श्रीकृष्णकी ओरको झपटी ॥ ३० ॥ हे भरतर्षभ! शीघ्रतासे उन सैनिकोंको भी बाणोंसे समाप्त करके अर्जुन ऐसे शोभा पानेलगा, जैसे ग्रीष्म ऋतुमें वनको भस्म करनेके अनन्तर दावानल सुशोभित होता है ३१ महाकष्टसे उनकी सेनाको भी लाँघकर अर्जुन आगेको बढा, इस समय वह मेघोंसे मुक्त हो उदय होतेहुए सूर्यकी समान

दृष्ट्वा कुरवस्त्रस्ताः प्रहृष्टाश्चाभवन् पुनः । अभ्यवर्त्तन्त पार्थञ्च समन्ताद्भरतर्षभ ॥ ३३ ॥ श्रान्तञ्चैनं समालक्ष्य ज्ञात्वा दूरे च सैन्धवम् । सिंहनादेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३४ ॥ तांस्तु दृष्ट्वा सुसंरब्धानुत्स्मयन् पुरुषर्षभः । शनकैरिव दाशार्हमर्जुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ शरार्दिताश्च ग्लानाश्च हया दूरे च सैन्धवः । किमिहानन्तरं कार्यं ज्यायिष्ठं तव रोचते ॥ ३६ ॥ ब्रूहि कृष्ण यथा तत्त्वं त्वं हि प्राज्ञतमः सदा । भवन्नेत्रा रणे शत्रून् विजेष्यन्तीह पाण्डवाः ॥ ३७ ॥ मम त्वनन्तरं कृत्यं यद्वै तत्त्वं निबोध मे । हयान् विमुच्य हि सुखं विशल्यान् कुरु माधव ३८ एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः प्रत्युवाच तम् । ममाप्येतन्मतं पार्थ यदिदं ते प्रभाषितम् ॥ ३९ ॥ अर्जुन उवाच । अहमावारयिष्यामि

दिपनेलगा॥३२॥हे भरतश्रेष्ठ! पहले तो अर्जुनको देखते ही कौरव पक्षके योधा बड़े ही घवड़ाये, फिर अर्जुन (के घोड़ों) को थका हुआ तथा सिंधुराजको दूर देखकर वे उत्साहमें भरगए और बड़ी२ गर्जनाएँ करके उन्होंने अर्जुनको चारों ओरसे घेरलिया ३३—३४ महात्मा अर्जुन कौरवोंके योधाओंको क्रोधमें भराहुआ देख आश्चर्यमें होकर धीरे२ श्रीकृष्णसे यह कहनेलगा, कि— ॥ ३५ ॥ घोड़े वाणोंसे घायल होकर पीड़ा पारहे हैं और थक भी गए हैं तथा सिंधुराज जयद्रथ भी दूर है अतः अब आपको क्या करना ठीक मालूम होता है ॥ ३६ ॥ हे कृष्ण! तुम सदा ही परम बुद्धिमान् हो, अतः मुझे यथार्थ बात बताओ, पाण्डव आपको नेता बनाये रहकर ही इस रणमें शत्रुओंको जीतेंगे ॥ ३७ ॥ हे कृष्ण! मेरा जो मत है, वह मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो, तुम घोड़ोंको सुखसे छोड़दो और उनके शरीरमें घुसेहुए वाणोंको निकाल दो ॥३८॥ जब अर्जुनने ऐसा कहा, तब श्रीकृष्णने उत्तर दिया, कि—हे पार्थ! तुमने मुझसे जैसा कहा ऐसा ही मेरा भी विचार

सर्वसैन्यानि केशव । त्वमप्यत्र यथान्यायं कुरु कार्यमनन्तरम् ४० सञ्जय उवाच । सोवतीर्य रथोपस्थादसम्भ्रान्तो धनञ्जयः । गाण्डीवं धनुरादाय तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ४१ ॥ तमभ्यधावन् क्रोशन्तः क्षत्रिया जयकांक्षिणः । इदं छिद्रमिति ज्ञात्वा धरणीस्थं धनञ्जयम् ॥ ४२ ॥ तमेकं रथवंशेन महता पर्यवारयन् । विकर्षन्तश्च चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ४३ ॥ शस्त्राणि च विचित्राणि क्रुद्धास्तत्र व्यदर्शयन् । छादयन्तः शरैः पार्थं मेघा इव दिवाकरम् ॥४४॥ अभ्यद्रवन्त वेगेन क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् । नरसिंहं रथोदाराः सिंहं मत्ता इव द्विपाः ॥ ४५ ॥ तत्र पार्थस्य भुजयोर्महद्बलमदृश्यत । यत् क्रुद्धो बहुलाः सेनाः सर्वतः समवा-

---

है ॥ ३९ ॥ अर्जुनने कहा, कि–हे केशव ! मैं सब सेनाओंको रोके रहूँगा और इनको तुम्हारे पास न आने दूँगा, अब तुम घोड़ोंके शरीरोंमेंसे बाणोंको निकालडालो ॥ ४० ॥ सञ्जयने कहा, कि–इतना कहकर अर्जुन तुरन्त ही निश्चिन्तरूपसे रथ परसे उतर पड़ा और गाण्डीव धनुषको तानकर पर्वतकी समान अचल खड़ा होगया ॥४१॥ विजय चाहनेवाले क्षत्रिय, अर्जुनको रथपरसे उतरकर नीचे खड़ाहुआ देख "इसको मारनेका यह अच्छा अवसर है" यह विचार करके कोलाहल करतेहुए उसकी ओरको दौडपड़े ॥ ४२ ॥ और रथोंकी टोलियोंसे अकेले खड़ेहुए अर्जुनको चारों ओरसे घेरलिया और नानाप्रकारके शस्त्र तथा बाण उसके ऊपर छोडनेलगे और जैसे मेघ सूर्यको ढकदेता है तैसे ही क्रोधमें भरेहुए उन्होंने बाण बरसा कर अर्जुनको ढक दिया ॥ ४३–४४ ॥ जैसे सिंहके ऊपर मतवाले हाथी टूट पड़ते हैं ऐसे ही वे योधा क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके ऊपर वेगसे टूटपड़े ४५ इस समय अर्जुनकी दोनों भुजाओंका महाबल देखनेमें आया, कि–उसने क्रोधमें भरकर चारों ओरसे आतीहुई बहुतसी सेनाको रोक

रयत् ॥ ४६ ॥ अस्त्रैरस्त्राणि सम्वाय द्विषतां सर्वतो विभुः । इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं सर्वानेव समावृणोत् ॥ ४७ ॥ तत्रान्तरिक्षे बाणानां प्रगाढानां विशाम्पते । संघर्षेण महार्चिष्मान् पावकः समजायत ॥ ४८ ॥ तत्र तत्र महेष्वासैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः । हयैर्नागैश्च सम्भिन्नैर्नदद्भिश्चारिकर्षणैः ॥ ४९ ॥ संरब्धैश्चारिभिर्वीरैः प्रार्थयद्भिर्जयं मृधे । एकस्थैर्बहुभिः क्रुद्धैरूष्मेव समजायत ॥ ५० ॥ शरोर्मिणं ध्वजावर्तं नागनक्रं दुरत्ययम् । पदातिमत्स्यकलिलं शंखदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ५१ ॥ असंख्येयमपारञ्च रथोर्मिणमतीव च । उष्णीषकमठं छत्रपताकाफेनमालिनम् ५२ रथसागरमक्षोभ्यं मातङ्गाङ्गशिलाचितम् । वेलाभूतस्तदा पार्थः पत्रिभिः समवारयत् ॥५३॥ धृतराष्ट्र उवाच । अर्जुने धरणीं प्राप्ते

रक्खा ॥ ४६ ॥ विभु अर्जुनने शत्रुओंके अस्त्रोंको सब ओरसे हटाकर उन सबोंको तुरन्त ही बहुतसे बाणोंसे ढकदिया ॥४७॥ हे राजन् ! उन बहुतसे बाणोंके आकाशमें टकरानेसे बडी २ ज्वालाओंवाला अग्नि उत्पन्न होगया ॥ ४८ ॥ घायलहुए और लोहूलुहान हुए घोड़े हाथी आदि, तथा जिनको क्रोध आगया था वे शत्रुओंका संहार करनेवाले विजयाभिलाषी बड़े २ धनुषधारी लंबे २ श्वास लेनेलगे उन योधाओंके एक स्थानपर इकट्ठे होजानेसे बडी गरमी होगयी ॥ ४९-५० ॥ उस समय संग्राम एक न लांघने योग्य सागर बनगया कि—जिसमें बाणरूप तरङ्गें उठरही थीं, ध्वजारूप भँवर पडरहे थे, हाथीरूप मगर मच्छ तैर रहे थे, पैदलरूप मछलियें भररही थीं तथा शंख और दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे गर्जरहा था, ऐसे अपार असंख्येय रथरूपी लहरोंवाले पगडीरूप कछुओंवाले, छत्र और पताकारूपी झण्डोंवाले, हाथियोंके अंगरूप शिलाओंसे भरे सागरको, बाणोंसे अर्जुनने रोक रक्खा था ॥ ५१-५३ ॥ राजा धृतराष्ट्रने बूझा, कि—

हयहस्ते च केशवे । एतदन्तरमासाद्य कथं पार्थो न घातितः ॥५४॥ सञ्जय उवाच । सद्यः पार्थिव पार्थेन निरुद्धाः सर्वपार्थिवाः । रथस्था धरणीस्थेन वाक्यमच्छांदसं यथा ॥ ५५ ॥ स पार्थः पार्थिवान्सर्वान् भूमिस्थोपि रथस्थितान् । एको निवारयामास लोभः सर्वगुणानिव ॥ ५६ ॥ ततो जनार्दनः संख्ये प्रियं पुरुषमुत्तमम् । असंभ्रान्तो महावाहुरर्जुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५७ ॥ उदपानमिहाश्वानां नालमस्ति रणेर्जुन । परीप्सन्ते जलं चेमे पेयं न त्ववगाहनम् ॥ ५८ ॥ इदमस्तीत्यसम्भ्रान्तोब्रुवन्नस्त्रेण मेदिनीम् । अभिहत्यार्जुनश्चक्रे वाजिपानं सरः शुभम् ॥ ५९ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् । सुविस्तीर्णं प्रसन्नाम्भः प्रफुल्लवरपङ्कजम् ॥ ६० ॥ कूर्ममत्स्यगणाकीर्णमगाधमृषिसेवितम् ।

अर्जुन पृथ्वीपर खडा था और श्रीकृष्ण घोडोंको पकडे पृथ्वी पर खड़े थे, ऐसे अवसरमें अर्जुन क्यों नहीं मारागया ? ५४ सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् ! अर्जुनने पृथ्वी पर खडे होकर रथोंमें वैठेहुए सव राजाओंको अवैदिक वाक्यकी समान एकदम आगे वढनेसे रोकदिया था ॥ ५५ ॥ जैसे एक लोभ सव गुणों को रोकदेता है तैसेही भूमिपर खडेहुए अकेले ही अर्जुनने रथमें वैठेहुए सव राजाओंको आगे वढनेसे रोकदिया॥५६॥ तदनन्तर महावाहु श्रीकृष्णने जरा भी न घवडाकर महात्मा अर्जुनसे कहा, कि–॥५७॥ हे अर्जुन ! घोडे प्यासे हैं, जिससे इनकी प्यास मिटे ऐसा सरोवर रणमें नहीं है ये घोड़े जल पीना चाहते हैं परन्तु इन्हें स्नान करानेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ५८ ॥ अर्जुनने निश्चिन्तभावसे तुरन्त ही कहा कि–यह रहा सरोवर, ऐसा कह कर अस्त्रसे पृथ्वीको फोड़ घोडोंके पानी पीनेके योग्य एक सुन्दर सरोवर तयार करदिया ॥५९॥ वह सरोवर हंस, कारण्डव और चक्रवाकोंसे सुशोभित था, वड़े विस्तारवाला था और उसमें निर्मल

आगच्छन्नारदमुनिर्दर्शनार्थं कृतं क्षणात् ॥६१॥ शरवंशं शरस्थूणं शराच्छादनमद्भुतम् । शरवेश्माकरोत् पार्थस्त्वष्टेवाद्भुतकर्मकृत् ।६२। ततः प्रहस्य गोविन्दः साधु साध्वित्यथाब्रवीत् । शरवेश्मनि पार्थेन कृते तस्मिन् महात्मना ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि विन्दानुविन्दवधे अर्जुनसरोनिर्माणे एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

सञ्जय उवाच । सलिले जनिते तस्मिन् कौन्तेयेन महात्मना । निस्तारिते द्विषत्सैन्ये कृते च शरवेश्मनि ॥ १ ॥ वासुदेवो रथात्तूर्णमवतीर्य महाद्युतिः । मोचयामास तुरगान् वितुन्नान् कङ्कपत्रिभिः ॥ २ ॥ अदृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा साधुवादो महानभूत् । सिद्धचारणसंघानां सैनिकानाञ्च सर्वशः ॥ ३ ॥ पदातिनं तु कौन्तेयं

जल वह रहा था, प्रफुल्लित कमल कछुए तथा मत्स्योंसे भरपूर अगाध और ऋषियोंसे सेवित था, उस एक क्षणमें वनाएहुए सरोवरको देखनेके लिये नारदमुनि भी आए ॥ ६० ॥ ६१ ॥ विश्वकर्माकी समान अद्भुत कर्म करनेवाले अर्जुनने वाणोंके ही थंभे और छत्तवाला वाणोंका एक अद्भुत भवन वनाया ॥ ६२ ॥ महात्मा अर्जुनने जो वाणोंका घर वनाया, उसको देखकर श्रीकृष्ण हँसे और उससे कहने लगे, कि—वहुत ठीक है ॥ ६३ ॥ निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९९ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् ! धृतराष्ट्र ! कुन्तीपुत्र महात्मा अर्जुनने सरोवर उत्पन्न किया और सेनाओंको रोक दिया तथा वाणोंका घर वनादिया ॥१॥ तव महाकान्तिमान् श्रीकृष्ण शीघ्रताके साथ रथसे उतरपड़े और उन्होंने घोड़ोंको छोड तथा उनके शरीरमें गुभेहुए कंकपक्षीकी पूँछवाले वाणोंको निकाल डाला २ अर्जुनके किए ऐसे अभूतपूर्व कार्यको देख सिद्ध, चारण और सैनिक चारों ओरसे अर्जुनको धन्यवाद देनेलगे॥३॥महारथियों

युध्यमानं महारथाः । नाशक्नुवन् वारयितुं तदद्भुतमिवाभवत् ४ आपतत्सु रथौघेषु प्रभूनगजवाजिषु । नासम्भ्रमत्तदा पार्थस्तदस्य पुरुषानति ॥ ५ ॥ व्यसृजन्त शरौघांस्ते पाण्डवं प्रति पार्थिवाः । न चाव्यथत धर्मात्मा वासविः परवीरहा ॥ ६ ॥ स तानि शरजालानि गदाः प्रासांश्च वीर्यवान् । आगतानग्रसत् पार्थ सरितः सागरो यथा ॥ ७ ॥ अस्त्रवेगेन महता पार्थो वाहुवलेन च । सर्वेषां पार्थिवेन्द्राणामग्रसत्तान्शरोत्तमान् ॥ ८ ॥ तत्तु पार्थस्य विक्रान्तं वासुदेवस्य चोभयोः । अपूजयन्महाराज कौरवा महदद्भुतम् ॥ ९ ॥ किमद्भुततमं लोके भविताप्यथवा ह्यभूत् । यदश्वान् पार्थगोविन्दौ मोचयामासतू रणे ॥ १० ॥ भयं विपुलमस्मासु तावधत्तां नरोत्तमौ । तेजो विदधतुश्चोग्रं विस्रब्धौ रणमूर्धनि ११

ने इकट्ठे होकर (उसको हटानेका) प्रयत्न किया, और अर्जुन उनके सामने पैदल ही लडा, तव भी वे अर्जुनको पीछेको न हटासके, यह वडा अद्भुत कामहुआ ॥ ४ ॥ आतीहुई घोड़े और रथोंकी भीडको वह घूम २ कर हटाता ही रहा और घवडाया नहीं, क्योंकि–वह उन योधाओंसे अधिक वली था ॥ ५ ॥ वे राजे अर्जुनके ऊपर वाणोंकी वर्षा करनेलगे, परन्तु शत्रुनाशक इन्द्रपुत्र और धर्मात्मा अर्जुनको जरा भी पीडा नहीं हुई ॥ ६ ॥ जैसे नदियोंको समुद्र ग्रस लेना है ऐसे ही अर्जुनने शत्रुओंकी ओरसे आतेहुए सैकडों वाण गदा और प्रासोंको निकम्मा कर दिया ॥ ७ ॥ अर्जुनने अपने वाहुवल और वड़ेभारी अस्त्रवलसे सकल राजेश्वरोंके अस्त्रोंको नष्ट करदिया ॥ ८ ॥ हे महाराज ! अर्जुन और श्रीकृष्णके उस महा अद्भुत पराक्रमकी कौरव भी प्रशंसा करनेलगे ॥ ९ ॥ अर्जुन और गोविंदने जो रणमें घोडों को छोडदिया, इससे अधिक आश्चर्यजनक कौनसा कामहुआ होगा और होसकता है ? ॥ १० ॥ उन दोनों नरश्रेष्ठोंने हमारी

अथ स्मयन् हृषीकेशः स्त्रीमध्य इव भारत । अर्जुनेन कृते संख्ये शरगर्भगृहे तदा ॥ १२ ॥ उपावर्त्तयदव्यग्रस्तानश्वान् पुष्करेक्षणः । मिषतां सर्वसैन्यानां त्वदीयानां विशाम्पते ॥ १३ ॥ तेषां श्रमञ्च ग्लानिञ्च वमथुं वेपथुं व्रणान् । सर्वं व्यपानुदत् कृष्णः कुशलो ह्यश्वकर्मणि ॥ १४ ॥ शल्यानुद्धृत्य पाणिभ्यां परिमृज्य च तान् हयान् । उपावर्त्य यथान्यायं पाययामास वारि सः ॥ १५ ॥ स तांल्लब्धोदकान् स्नातान् जग्धान्नान् विगतक्लमान् । योजयामास संहृष्टः पुनरेव रथोत्तमे ॥ १६ ॥ स तं रथवरं शौरिः सर्वशस्त्रभृतां वरः । समास्थाय महातेजाः सार्जुनः प्रययौ द्रुतम् ॥ १७ ॥ रथं रथवरस्याजौ युक्तं लब्धोदकैर्हयैः । दृष्ट्वा कुरुबलश्रेष्ठाः पुनर्विमनसोभवन् ॥ १८ ॥ विनिःश्वसन्तस्ते राजन् भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ।

सेनामें बडाभारी भय फैलादिया और रणके मुहाने पर इन्होंने अपना उग्र पराक्रम करके दिखाया है ॥ ११ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जैसे स्त्रियोंमें निर्भय खड़े हों इसप्रकार सैनिकोंके बीचमें (निर्भय) खड़ेहुए श्रीकृष्ण मन्द २ मुस्करा कर अर्जुनके बनाएहुए बाणगृहमें घोडोंको लेगए और उन्हें लिटानेलगे १२-१३ घोडोंके काममें कुशल श्रीकृष्णने सब योधाओंके सामने घोडोंके शरीरमेंसे बाण निकालडाले और घोड़ोंके परिश्रम, ग्लानि, झाग डालना तथा कँपकँपीको दूर करदिया तथा उनको थोडासा लिटाकर पानी भी पिलादिया ॥ १४-१५ ॥ जब घोड़े, न्हाकर, पानी पीकर और घास खाकर ताजे होगए तब श्रीकृष्णने प्रसन्न हो, फिर उनको रथमें जोडदिया ॥ १६ ॥ तदनन्तर अर्जुन रथमें चढा और सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण भी उस महारथपर चढ़गए तब वह रथ बडी शीघ्रतासे आगेको बढनेलगा १७ कौरवोंकी सेनामें अगुआ पुरुष, जब अर्जुनके घोड़े पानी पीकर फिर रथमें जुतगए यह देख फिर उदास होगए ॥ १८ ॥ हे राजन् !

धिगहो धिगतः पार्थः कृष्णश्चेत्यब्रुवन् पृथक् ॥ १९ ॥ तत्सैन्यं
सर्वतो दृष्ट्वा लोमहर्षणमद्भुतम् । त्वरध्वमिति चाक्रन्दन्नैतदस्तीति
चाब्रुवन् ॥ २० ॥ सर्वक्षत्रस्य मिषतो रथेनैकेन दंशितौ । बाल-
क्रीडनकेनेव कदर्थीकृत्य नो बलम् ॥ २१ ॥ क्रोशतां यतमाना-
नामसंसक्तौ परन्तपौ । दर्शयित्वात्मनो वीर्यं प्रयातौ सर्वराजसु२२
तौ प्रयातौ पुनर्दृष्ट्वा तदान्ये सैनिकाब्रुवन् । त्वरध्वं कुरवः सर्वे
वधे कृष्णकिरीटिनोः ॥ २३ ॥ रथयुक्तो हि दाशार्हो मिषतां
सर्वधन्विनाम् । जयद्रथाय यात्येष कदर्थीकृत्य नो रणे ॥ २४ ॥
तत्र केचिन्मिथो राजन् समभाषन्त भूमिपाः । अदृष्टपूर्वं संग्रामं
तद् दृष्ट्वा महदद्भुतम् ॥ २५ ॥ सर्वसैन्यानि राजा च धृतराष्ट्रो-

---

वे टूटी डाढ वाले सर्पकी समान साँस लेनेलगे और वे अलग २
बोलउठे कि—कृष्ण और अर्जुन हमारा अपमान करके चलेगए,
हमें धिक्कार है ! धिक्कार है! ॥१९॥वे सब सेनाएं चारों ओरसे इस
अद्भुत और लोमहर्षण अर्जुनके कामको देखकर शीघ्रतासे 'अर्जुन
को पकड लो' इस प्रकार चिल्लाने लगीं और फिर कहने लगीं,
कि—अरे अर्जुनकी समान बल हममें नहीं है ॥२०॥ परन्तप और
कवचधारी कृष्ण तथा अर्जुन एक रथकी ही सहायतासे,बालक जैसे
खिलौनोंका तिरस्कार करे, इस ही प्रकार हमारी सेनाका तिरस्कार
करके सब सेनाके चिल्लाते और देखते हुए ही अपने पराक्रमको
दिखाकर सब राजाओंके बीचमेंसे चलेगए ॥ २१–२२ ॥ दूसरे
सैनिक श्रीकृष्ण और अर्जुनको आगेको जाता देखकर कहनेलगे,
कि—अरे ! तुम सब कृष्ण और अर्जुनके वधके लिये शीघ्रता
करो ॥ २३ ॥ यह कृष्ण रथमें बैठकर हम सबोंका तिरस्कार
करके जयद्रथको मारनेके लिये बढ़ा ही चला जाता है ॥ २४ ॥
हे राजन् ! उस समय कितने ही राजे कृष्ण और अर्जुनके
संग्राममें पहिले न देखेहुए, महा अद्भुत पराक्रमको देखकर बोल

त्ययं गतः । दुर्योधनापराधेन क्षत्रं कृत्स्ना च मेदिनी ॥ २६ ॥ विलयं समनुप्राप्ता तच्च राजा न बुध्यते । इत्येवं क्षत्रियास्तत्र ब्रुवन्त्यन्ये च भारत ॥ २७ ॥ सिन्धुराजस्य यत् कृत्यं गतस्य यमसादनम् । तत् करोति वृथादृष्टिर्धार्त्तराष्ट्रोनुपायवित् ॥ २८ ॥ ततः शीघ्रतरं प्रायात् पाण्डवः सैन्धवं प्रति । निवर्त्तमाने तिग्मांशौ हृष्टैः पीतोदकैर्हयैः ॥ २९ ॥ तं प्रयान्तं महाबाहुं सर्वशस्त्रभृतांवरम् । नाशक्नुवन् वारयितुं योधाः क्रुद्धमिवान्तकम् ॥ ३० ॥ विद्राव्य तु ततः सैन्यं पाण्डवः शत्रुतापनः । यथा मृगगणान् सिंहः सैन्धवार्थे व्यलोडयत् ॥ ३१ ॥ गाहमानस्त्वनीकानि तूर्णमश्वानचोदयत् । बलाकाभन्तु दाशार्हः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ३२

उठे ॥ २५ ॥ दुर्योधनके अपराधसे सब सेनाएं, सम्पूर्ण पृथ्वी और राजा धृतराष्ट्र भी नष्ट होजायँगे ॥ २६ ॥ यह बात राजा धृतराष्ट्रकी समझमें आती ही नहीं इसप्रकार योधा बातें कररहे थे, कि–दूसरे कितने ही योधा बोलउठे, कि–॥२७॥ सिधुराजके मरने पर जो काम करना चाहिये था, उसको मूर्ख दुर्योधन अभीसे करनेलगा ॥ २८ ॥ इसप्रकार कौरवपक्षके योधा बातें कररहे थे, उस समय सूर्यनारायण अस्ताचलकी ओर जानेकी तयारीमें थे, उस समय अर्जुन क्षुधा और प्याससे रहित प्रसन्न घोडोंसे जुते हुए रथमें बैठकर वेगसे जयद्रथकी ओरको बढ़रहा था, कोपायमान कालकी समान सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुनने जिस समय जयद्रथकी ओरको धावा किया, उस समय योधा उसको रोक नहीं सके, जैसे एक सिंह मृगोंकी टोलियोंको बखेर देता है, तैसे ही जयद्रथके पास जानेके लिये शत्रुतापन अर्जुनने भी योधाओंको बखेर कर भगादिया ॥२९–३१॥ श्रीकृष्ण भी वेगसे घोडोंको हाँककर नयी सेनामें जा पहुँचे और बगलेकी समान स्वेत शंखको बजानेलगे ॥ ३२ ॥ पवनकी समान वेगवान् घोड़े

कौन्तेयेनाग्रतः सृष्टा न्यपतन् पृष्ठतः शराः। तूर्णात्तूर्णतरं ह्यश्वाः प्रावहन् वातरंहसः ॥ ३३ ॥ ततो नृपतयः क्रुद्धाः परिवव्रुर्धनञ्जयम्। क्षत्रिया बहवश्चान्ये जयद्रथवधैषिणम् ॥ ३४ ॥ सैन्येषु विप्रयातेषु तिष्ठन्तं पुरुषर्षभम्। दुर्योधनोन्वयात् पार्थं त्वरमाणो महाहवे ॥ ३५ ॥ वातोद्धूतपताकन्तं रथं जलदनिःस्वनम्। घोरं कपिध्वजं दृष्ट्वा विषण्णा रथिनोभवन् ॥ ३६ ॥ दिवाकरेथ रजसा सर्वतः संवृते भृशम्। शरार्त्ताश्च रणे योधाः शेकुः कृष्णौ न वीक्षितुम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सैन्यविस्मये शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

सञ्जय उवाच। संसन्न इव मज्जा नस्तावकानां भयान्नृप।

ऐसे वेगसे रथको खेंचरहे थे, कि—रथपरसे आगेको छोड़े हुए अर्जुनके बाण रथसे पीछे गिररहे थे ॥ ३३ ॥ जयद्रथको मारनेकी इच्छासे अर्जुन आगेको बढा ही चला जारहा था, क्रोधमें भरेहुए उस समय बहुतसे राजे और क्षत्रियोंने उसको घेर लिया ॥ ३४ ॥ परन्तु अर्जुन तो आगेको बढा ही चलागया, तब उसका पीछा करनेवालीं सेनाएँ, पीछेको लौटपड़ीं परन्तु दुर्योधन बडी शीघ्रतासे अर्जुनके पीछे २ ही चलागया ॥ ३५ ॥ जिसकी पताका पवनसे फहरारही थी जिसके रथकी घरघराहट मेघके गर्जनेकीसी होरही थी और जिसकी ध्वजामें हनूमान् थे उस अर्जुनके भयङ्कर रथको देखकर शत्रुओंके योधा खिन्न होगए ३६ इस समय चारों ओरसे उडती हुई धूलिके कारण सूर्य ढक गया था और बाणोंके लगनेसे सैनिकोंको ऐसी पीडा होरही थी कि—वे श्रीकृष्ण और अर्जुनको देख भी न सके ॥ ३७ ॥ सौवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०० ॥

सञ्जयने कहा कि—हे धृतराष्ट्र ! द्रोणकी सेनाको लाँघकर

तौ दृष्ट्वा समतिक्रान्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ १ ॥ सर्वे तु प्रतिसंरब्धा ह्रीमन्तः सत्वचोदिताः । स्थिरी भूता महात्मानः प्रत्यगच्छन्धनञ्जयम् ॥ २ ॥ ये गताः पाण्डवं युद्धे रोषामर्षसमन्विताः । तेद्यापि न निवर्त्तन्ते सिन्धवः सागरादिव ॥ ३ ॥ असन्तस्तु न्यवर्त्तन्त देवेभ्य इव नास्तिकाः । नरकं भजमानास्ते प्रत्यपद्यन्त किल्विषम् ॥ ४ ॥ तावतीत्य रथानीकं विमुक्तौ पुरुषर्षभौ । ददृशाते यथा राहोरास्यान्मुक्तौ प्रभाकरौ ॥ ५॥ मत्स्याविव महाजालं विदार्य विगतक्लमौ । तथा कृष्णावदृश्येतां सेनाजालं विदार्य तत्६ विमुक्तौ शस्त्रसम्बाधाद्द्रोणानीकात् सुदुर्भिदात् । अदृश्येतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ ॥७॥अस्त्रसम्बाधनिर्मुक्तौ विमुक्तौ

आयेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखकर डरके मारे तुम्हारे योधाओंकी नसें ढीली पड़गईं और वे भागनेलगे कितने ही महापुरुष खड़ेहुए लज्जावश तथा क्रोध आजानेके कारण अपने हृदयको दृढ करके अर्जुनके सामने डटगये ॥ २ ॥ जो योधा क्रोध और चिरकालके वैरके कारण अर्जुनके सामने पड़े, वे जैसे नदिएँ समुद्रमें पहुँचकर फिर पीछेको नहीं लौटती हैं,तैसे ही आजतक न लौटे अर्थात् मारे गए ॥ ३ ॥ जैसे दुष्ट नास्तिक वेदका अनादर करनेके कारण नरकमें पडते हैं तैसे ही जो योधा अर्जुनके सामनेसे हटगए, उनको बडा पाप लगा और वे नरकमें पड़े हैं ॥४॥ इस समय रथोंका सेनाको लाँघकर मुक्तहुए पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण और अर्जुन राहुके मुखसे छूटेहुए सूर्य तथा चन्द्रमा की समान दिखाईदिये ॥ ५ ॥ बड़ेभारी सेनारूप जालको काट कर बाहर निकले हुए दुःखरहित श्रीकृष्ण और अर्जुन महाजाल को तोडकर निकलेहुए दुःखरहित दो मच्छोंकी समान दीखते थे ॥ ६ ॥ शस्त्रोंके संकट और दुर्भेद्य द्रोणाचार्यकी सेनासे छूटे हुए महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन उदय होतेहुए दो कालसूर्यों

शस्त्रसङ्कटात् । अदृश्येतां महात्मानौ शत्रुसम्बाधकारिणौ ॥ ८ ॥ विमुक्तौ ज्वलनस्पर्शान्मकरास्याज्झषाविव । अक्षोभयेतां सेनां तौ समुद्रं मकराविव ॥ ९ ॥ तावकास्तव पुत्राश्च द्रोणानीकस्थयोस्तयोः । नैतौ तरिष्यतो द्रोणमिति चक्रुस्तदा मतिम् ॥ १० ॥ तौ तु दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ द्रोणानीकं महाद्युती । नाशशंसुर्महाराज सिन्धुराजस्य जीवितम् ॥ ११ ॥ आशा बलवती राजन् सिन्धुराजस्य जीविते । द्रोणहार्दिक्ययोः कृष्णौ न मोक्ष्येते इति प्रभो ॥ १२ ॥ तामाशां विफलीकृत्य संतीर्णौ तौ परन्तपौ । द्रोणानीकं महाराज भोजानीकञ्च दुस्तरम् १३ अथ दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ ज्वलिताविव पावकौ। निराशाः सिंधुराजस्य जीवितं न शशंसिरे १४

की समान दीखते थे ॥ ७ ॥ अस्त्र और शस्त्रोंके संकटसे छूटेहुए वे महात्मा शत्रुओंको पीडित करतेहुए दीखे ॥ ८ ॥ अग्निके स्पर्शकी समान तीक्ष्ण स्पर्शवाले वाणसंकटसे छूटकर वे दोनों वीर, मगरके मुखसे छूट समुद्रको खलभलाते हुए दो मच्छोंकी समान, सेनाको खलभलानेलगे ॥ ९ ॥ जब श्रीकृष्ण और अर्जुन द्रोणकी सेनामें थे, उस समय तुम्हारे पुत्र और सैनिकों का यह विश्वास था, कि—वे द्रोणके हाथमेंसे छूट न सकेंगे १० परन्तु जब उन्होंने देखा, कि—ये महाकान्तिमान् दोनों वीर द्रोणकी सेनाको लाँघकर चलेआए, तव उन्होंने जयद्रथके जीवनकी आशा छोडदी ॥ ११ ॥ हे राजन् ! सिन्धुराज जीवित रहेगा और कृष्ण तथा अर्जुन द्रोण और हार्दिक्यके हाथसे नहीं छूटेंगे आपके पुत्रोंको यह वडी आशा थी ॥ १२ ॥ परन्तु दोनों परन्तप तुम्हारे पुत्रकी आशाको विफल करके भोज और द्रोणकी दुस्तर सेनाको लाँघकर निकलगये ॥ १३ ॥ प्रदीप्त अग्निकी समान श्रीकृष्ण और अर्जुनको पार पहुँचाहुआ देखकर, कौरव सिंधुराजके जीवनसे निराश होगए ॥ १४ ॥ निर्भय श्रीकृष्ण

मिथश्च समभाषेतामभीतौ भयवर्धनौ । जयद्रथवधे वाचस्तास्ताः कृष्णधनञ्जयौ ॥ १५ ॥ असौ मध्ये कृतः षड्भिर्धार्त्तराष्ट्रैर्महारथैः । चक्षुर्विषयसम्प्राप्तो न मे मोक्ष्यति सैन्धवः ॥ १६ ॥ यद्यस्य समरे गोप्ता शक्रो देवगणैः सह । तथाप्येनं निहंस्याव इति कृष्णावभाषताम् ॥ १७ ॥ इति कृष्णौ महाबाहू मिथः कथयतां तदा । सिन्धुराजमवेक्षन्तौ त्वत्पुत्रा बहु चुक्रुशुः ॥ १८ ॥ अतीत्य मरुधन्वानं प्रयातौ तृषितौ गजौ । पीत्वा वारि समाश्वस्तौ तथैवास्तामरिन्दमौ ॥ १९ ॥ व्याघ्रसिंहगजाकीर्णानतिक्रम्य च पर्वतान् । वणिजाविव दृश्येतां हीनमृत्यू जरातिगौ ॥ २० ॥ तथा हि मुखवर्णोयनयोरिति मेनिरे । तावका वीक्ष्य मुक्तौ तौ विक्रोशन्ति स्म

और अर्जुन द्रोणकी सेनामेंसे निकल शत्रुओंके भयको बढाते हुए जयद्रथके वधके विषयमें आपसमें बातें करनेलगे ॥ १५ ॥ जयद्रथको छः महारथी कौरवोंने अपने बीचमें रख छोडा है और उसकी खूब रक्षा करते हैं परन्तु वह मेरी दृष्टिके सामने पडा कि मैं उसको जीता नहीं छोडूंगा ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन आपसमें कहरहे थे, कि–यदि इन्द्र देवताओंको लेकर इसकी रक्षा करेगा, तो भी हम इसे मारडालेंगे ॥१७॥ महाबाहु श्रीकृष्ण और अर्जुन इसप्रकारकी बातें करतेहुए सिंधुराजकी ओरको देखनेलगे, इतनेमें ही तुम्हारे पुत्र बडाभारी कोलाहल करने लगे॥१८॥इस समय द्रोणकी सेनाको लाँघ जयद्रथको देखने पर श्रीकृष्ण और अर्जुन ऐसे प्रसन्न हुए जैसे मरुभूमिको लाँघ पानी पीकर तृप्त हुए दो हाथी प्रसन्न होते हैं ॥ १९ ॥ व्याघ्र, सिंह और हाथियोंसे भरे पर्वतको लाँघजाने पर जैसे व्यापारी मृत्यु और जराके भयसे छूट निश्चिन्त होजाता है तैसे ही सेनाको लाँघ जरा और मृत्युरहितहुए वे भी दोनों परमशान्त हुए२० श्रीकृष्ण और अर्जुनके मुखका वर्ण ऐसा दीखता था, जिससे

सर्वशः ॥ २१ ॥ द्रोणादाशीविषाकाराज्ज्वलितादिव पावकात् । अन्येभ्यः पार्थिवेभ्यश्च भास्वन्ताविव भास्करौ ॥ २२ ॥ विमुक्तौ सागरप्रख्याद् द्रोणानीकादरिन्दमौ । अदृश्येतां मुदा युक्तौ समुत्तीर्यार्णवं यथा ॥ २३ ॥ अस्त्रौघान्महतो मुक्तौ द्रोणहार्दिक्यरक्षितात् । रोचमानावदृश्येतामिन्द्राग्न्योः सदृशौ रणे ॥ २४ ॥ उद्भिन्नरुधिरौ कृष्णौ भारद्वाजस्य सायकैः । शितैश्चितौ व्यरोचेतां कर्णिकारैरिवाचलौ ॥ २५ ॥ द्रोणग्राहह्रदान्मुक्तौ शक्त्याशीविषसङ्कटात् । अयःशरोग्रमकरात् क्षत्रियप्रवराम्भसः ॥ २६ ॥ ज्याघोषतलनिर्ह्रादाद्गदानिस्त्रिंशविद्युतः । द्रोणास्त्रमेघान्निर्मुक्तौ सूर्येन्दू तिमिरादिव ॥२७॥ बाहुभ्यामिव संतीर्णौ सिन्धुषष्ठाः समुद्रगाः ।

तुम्हारे सैनिकोंमें यह विश्वास जमगया, कि–हम जयद्रथको मार ही डालेंगे, उन दोनोंको सेनासे निकलाहुआ देखकर कौरव चारों ओरसे चिल्लीपुकार मचानेलगे ॥ २१ ॥ धधकती हुई अग्नि और सर्पकी समान आकारवाले द्रोण तथा दूसरे भी अनेकों राजाओंसे वचेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुन प्रकाशवान् दो सूर्योंकी समान दीखनेलगे ॥२२॥ अरिन्दम श्रीकृष्ण और अर्जुन समुद्र सी द्रोणसेनाको लाँघकर ऐसे प्रसन्न दिखाई दिये जैसे समुद्र को ही पारकर लिया हो ॥ २३ ॥ द्रोण और कृतवर्माके वड़ेभारी वाणजालसे वचकर वे रणमें इन्द्र और अग्निकी समान प्रकाशमान् दीखनेलगे ॥ २४ ॥ द्रोणके तीक्ष्ण वाणोंसे लोहलुहान हुए और वाणोंसे विंधेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुन कनेरके वृक्षोंसे भरे दो पर्वतोंकी समान दीखते थे ॥ २५ ॥ वे द्रोणरूपी ग्राह शक्तिरूप सर्प, लोहेके वाणरूप उग्र मगर और वीर क्षत्रियरूप जलवाले सरोवरमेंसे निकलआए ॥ २६ ॥ प्रत्यञ्चाके शब्दरूप गर्जना, गदा तलवाररूप विजलीसे द्रोणके अस्त्ररूप मेघसे छूटेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुन अन्धेरेसे निकलेहुए सूर्य और चन्द्रमाकी समान

तपान्ते सरितः पूर्णा महाग्राहसमाकुलाः ॥ २८ ॥ इति कृष्णौ महेष्वासौ प्रशस्तौ लोकविश्रुतौ । सर्वभूतान्यमन्यन्त द्रोणास्त्रबलवारणात् ॥ २९ ॥ जयद्रथं समीपस्थमवेक्षन्तौ जिघांसया । रुरुं निपाने लिप्सन्तौ व्याघ्राविव व्यतिष्ठताम् ॥ ३० ॥ यथा हि मुखवर्णोयमनयोरिति मेनिरे । तव योधा महाराज हतमेव जयद्रथम् ॥ ३१ ॥ लोहिताक्षौ महाबाहू संयुक्तौ कृष्णपाण्डवौ । सिन्धुराजमभिप्रेक्ष्य हृष्टौ व्यनदतां मुहुः ॥ ३२ ॥ शौरेरभीषुहस्तस्य पार्थस्य च धनुष्मतः । तयोरासीत् प्रभा राजन् सूर्यपावकयोरिव ॥ ३३ ॥ हर्ष एव तयोरासीद् द्रोणानीकप्रमुक्तयोः । समीपे सैन्धवं दृष्ट्वा श्येनयोरामिषं यथा ॥ ३४ ॥ तौ तु सैन्धवमालोक्य

दीखनेलगे ॥ २७ ॥ लोकमें प्रसिद्ध और महाधनुषधारी कृष्ण तथा अर्जुनने जब द्रोणके अस्त्रोंको हटादिया तब जलसे भरी बड़े २ नाकोंवाली सिंधु, शतद्रु विपाशा, इरावती, चन्द्रभागा और वितस्ता नामवाली छः महानदियोंको दोनों हाथोंसे तर गए हों ऐसा तुम्हारी सेनाएं माननेलगीं ॥ २८ २९ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन समीपमें खड़े जयद्रथको मारनेकी इच्छासे ऐसे देखनेलगे जैसे जलके तालाव पर खडेहुए रुरु नामक मृगको दो बाघ घेरकर देखरहे हों ॥ ३० ॥ जैसा उनके मुखका वर्ण था, उससे हे महाराज! तुम्हारे योधाओंने समझ लियाकि-बस अब जयद्रथ मारा गया ॥ ३१ ॥ लाल २ नेत्रोंवाले महाबाहु श्रीकृष्ण और अर्जुन, सिंधुराज जयद्रथको देखकर बड़े प्रसन्नहुए तथा वारम्बार गरजनेलगे ॥ ३२ ॥ हे राजन्! उस समय रासें पकडेहुए श्रीकृष्ण और धनुष उठायेहुए अर्जुनकी कान्ति सूर्य और अग्निकी समान थी ॥ ३३ ॥ द्रोणकी सेनासे छूटेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुन जयद्रथको सामने देखकर ऐसे प्रसन्न हुए जैसे दो बाज अपने समीपमें मांसको देखकर प्रसन्न हो रहेहों ॥ ३४ ॥ जयद्रथको

वर्त्तमानमिवान्तिके। सहसा पेततुः क्रुद्धौ क्षिप्रं श्येनाविवामिषम् ३५ तौ तु दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ हृषीकेशधनञ्जयौ । सिन्धुराजस्य रक्षार्थं पराक्रान्तः सुतस्तव ॥ ३६ ॥ द्रोणेनाबद्धकवचो राजा दुर्योधनस्ततः । ययावेकरथेनाजौ हयसंस्कारवित् प्रभो ॥ ३७ ॥ कृष्णपार्थौ महेष्वासौ व्यतिक्रम्याथ ते सुतः । अग्रतः पुण्डरीकाक्षं प्रतीयाय नराधिप ॥३८॥ ततः सर्वेषु सैन्येषु वादित्राणि प्रहृष्टवत् । प्रावाद्यन्त व्यतिक्रान्ते तव पुत्रे धनञ्जयं ॥३९॥ सिंहनादरवाश्चासन् शंखशब्दविमिश्रिताः । दृष्ट्वा दुर्योधनं तत्र कृष्णयोः प्रमुखे स्थितम् ॥ ४० ॥ ये च ते सिन्धुराजस्य गोप्तारः पावकोपमाः । ते प्राहृष्यन्त समरे दृष्ट्वा पुत्रं तव प्रभो ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा दुर्योधनं कृष्णो व्यतिक्रान्तं सहानुगम् । अब्रवीदर्जुनं राजन् प्राप्तकालमिदं वचः ॥ ४२ ॥ एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

पासमें देख के दोनों क्रोधमें भरेहुए उसके ऊपर, मांसके ऊपर दो बाजोंके झपटनेकी समान, शीघ्रतासे झपटे ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुनको जयद्रथके ऊपर झपटतेहुए देख दुर्योधन सिंधुराजकी रक्षाके लिये झपट आया ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! उस समय घोडोंका हाँकना जाननेवाला और जिसके द्रोणने कवच बाँध दियाथा ऐसा राजा दुर्योधन अकेला ही रथमें बैठ युद्धके लिये दौड आया ३७ और हे राजन्! महाधनुषधारी श्रीकृष्ण तथा अर्जुनकी करवटसे निकल श्रीकृष्णसे अटकता हुआ उनके आगे आकर खड़ा होगया ॥ ३८ ॥ उस समय तुम्हारे पुत्रके धनञ्जयसे आगे निकलजाने पर सब सेनाएं हर्षमें भरकर बाजे बजानेलगीं ॥ ३९ ॥ सिंहनाद होनेलगे, शंख बजनेलगे दुर्योधनको श्रीकृष्ण और अर्जुनके आगे खड़ा देखकर हे प्रभो ! अग्निकी समान प्रतापी जयद्रथके रक्षकोंको भी बडा हर्ष होनेलगा ४० । ४१ श्रीकृष्ण अपने अनुचरों सहित दुर्योधनको सामने खडा देखकर अर्जुनसे समयानुकूल यह बात कहनेलगे ४२ एकसौ एकवाँ अध्याय समाप्त १०१

वासुदेव उवाच । दुर्योधनमतिक्रान्तमेतं पश्य धनञ्जय । अत्यद्भुतमिमं मन्ये नास्त्यस्य सदृशो रथः ॥ १ ॥ दूरपाती महेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः । दृढास्त्रश्चित्रयोधी च धार्त्तराष्ट्रो महाबलः २ अत्यन्तसुखसम्वृद्धा मानितश्च महारथः । कृती च सततं पार्थ नित्यं द्वेष्टि च बांधवान् ॥३॥ तेन युद्धमहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ । अत्र वो द्यूतमायत्तं विजयायेतराय वा ॥ ४ ॥ अत्र क्रोधविषं पार्थ विमुंच चिरसंभृतम् । एष मूलमनर्थानां पाण्डवानां महारथः ॥५॥ सोयं प्राप्तस्तवाक्षेपं पश्य साफल्यमात्मनः । कथं हि राजा राज्यार्थी त्वया गच्छेत संयुगम् ॥ ६ ॥ दिष्ट्या त्विदानीं संप्राप्त एष ते

वासुदेव बोले, कि-हे धनञ्जय ! यह दुर्योधन हमसे भी आगे निकलगया है, इसको तू देख (हमैं लाँघकर आगे निकल आया इसलिये) मैं समझता हूँ, कि-यह अद्भुत पराक्रमी है और सेना में इसकी समान दूसरा कोई रथी नहीं है ॥ १ ॥ धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन बडी दूर तक बाण फेंकनेवाला महाधनुषधारी, अस्त्रकुशल युद्धमें दुर्मद, दृढ अस्त्रोंवाला, नानाप्रकारसे युद्ध करनेवाला और महाबली है॥२॥ और यह महारथी बड़े सुखमें पलकर बडा है मान पायाहुआ और काम करनेवाला है तथा बान्धवों से सदा वैर बाँधे रहता है ॥ ३ ॥ हे अनघ ! मेरी इच्छा है, कि-इस समय तू इसके साथ युद्ध कर यह युद्ध द्यूतकि-जय पराजयकी समान तुम दोनोंमेंसे एकको जय और पराजय देगा॥४॥ हे पार्थ ! बहुत समयसे इकट्ठे कियेहुए क्रोधरूपी विषको इस दुर्योधनके ऊपर छोड यह महारथी ही पाण्डवोंके दुःखोंका मूल कारण है॥५॥ और आज यह राजा दुर्योधन स्वयं ही तेरे बाणोंके सामने आगया है, अतः तू अपनेको कृतार्थ समझ नहीं तो यह राज्यका लोभी राजा तेरे सामने लडने मरनेको क्यों आता॥६॥ बडा ही अच्छा हुआ जो आज यह तेरे सामने आकर खडा होगया,

बाणगोचरम् । यथायं जीवितं जह्यात्तथा कुरु धनञ्जय ॥ ७ ॥ ऐश्वर्यमदसम्मूढो नैव दुःखमुपेयिवान् । न च ते संयुगे वीर्यं जानाति पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥ त्वां हि लोकास्त्रयः पार्थ ससुरासुरमानुषाः । नोत्सहन्ते रणे जेतुं किमुतैकः सुयोधनः ॥ ९ ॥ स दिष्ट्या समनुप्राप्तस्तव पार्थ रथान्तिकम् । जह्येनं त्वं महाबाहो यथा वृत्रं पुरन्दरः॥१०॥एष ह्यनर्थे सततं पराक्रान्तस्तवानघ । निकृत्या धर्मराजश्च द्यूते वञ्चितवानयम् ॥ ११॥ बहूनि सुनृशंसानि कृतान्येनेन मानद । युष्मासु पापमतिना अपापेष्वेव नित्यदा॥१२॥ तमनार्यं सदा क्रुद्धं पुरुषं कामरूपिणम् । आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा जहि पार्थाविचारयन् ।१३॥निकृत्या राज्यहरणं वनवासश्च पाण्डवः ।

इसलिये हे धनञ्जय ! अब तो तू ऐसाकर कि-जिससे यह शीघ्र माराजाय ॥ ७ ॥ हे पुरुषप्रवर ! यह ऐश्वर्यके मदमें चूर होरहा है और इस दुर्योधनके ऊपर कभी दुःख नहीं पडा है इस लिये ही यह रणमें तेरे पराक्रमको नहीं जानता है ॥ ८ ॥ हे पार्थ ! देवता असुर और मनुष्यों सहित तीनों लोक भी रणमें तुझे जीतनेका उत्साह नहीं कर सकते फिर अकेला दुर्योधन तो है ही क्या ? ॥ ९ ॥ हे पार्थ ! यह दुर्योधन तेरे रथके सामने जान बूझकर चला आया, यह अच्छा ही हुआ, इस लिये हे महाबाहु ! जैसे पहिले इन्द्रने वृत्रासुरको मारडाला था तैसे ही तू दुर्योधनको मारडाल ॥ १० ॥ तू निर्दोष है तो भी यह सर्वदा तेरा बुरा चीतनेमें ही लगारहता है और इसने ही छलसे धर्मराजको जुए में जीत लिया था ॥ ११ ॥ तुम निर्दोष थे, इसका मान करते थे, तो भी इस पापीने तुम्हें घोर दुःखदिये ॥ १२ ॥ अतः हे पार्थ ! अब तू युद्ध करनेके लिये उदारबुद्धि हो जा,और कुछ विचार न करके इस कामपूर्ति दुर्योधनको मार डाल ॥ १३ ॥ हे पाण्डव ! इस अनार्य क्रोधीने कपट करके

परिक्लेशञ्च कृष्णाया हृदि कृत्वा पराक्रमम् ॥१४॥ दिष्ट्यैष तव बाणानां गोचरे परिवर्त्तते । प्रतिघाताय कार्यस्य दिष्ट्या च यततेग्रतः ॥ १५ ॥ दिष्ट्या जानाति संग्रामे योद्धव्यं हि त्वया सह । दिष्ट्या च सफलाः पार्थ सर्वे कामा ह्यकामिताः ॥ १६ ॥ तस्माज्जहि रणे पार्थ धार्त्तराष्ट्रं कुलाधमम् । यथेन्द्रेण हतः पूर्वं जम्भो देवासुरे मृधे ॥ १७ ॥ अस्मिन् हते त्वया सैन्यमनाथं भिद्यतामिदम् । वैरस्यास्यास्त्ववभृथो मूलं छिन्धि दुरात्मनाम् ॥ १८ ॥ सञ्जय उवाच-। तं तथेत्यब्रवीत् पार्थः कृत्यरूपमिदं मम । सर्वमन्यदनादृत्य गच्छ यत्र सुयोधनः ॥ १९ ॥ येनैतद्दीर्घकालं नो

तुम्हारा राज्य छीनलिया और तुम्हें राज्यमेंसे हटाकर वनवास दिया तथा द्रौपदीको बड़े २ कष्टदिये इस सबका मनमें विचार करके अब तू अपना पराक्रम दिखा ॥१४॥ यह तू अपना सौभाग्य समझ कि-यह तेरे बाणका निशाना बनकर खडा है, और यह बानक भी प्रारब्धसे ही बनगया है, कि-जो यह जयद्रथके मारनेके लिये आरम्भ कियेहुए काममें विघ्न डालनेके लिये आगे आकर प्रयत्न कररहा है॥१५॥ प्रारब्धवश ही यह तुझसे संग्राममें लडना चाहता है, हे पार्थ ! आज बिना चाहे ही सब कामनाये प्रारब्धवश सफल होती दीखती हैं ॥१६॥ हे पार्थ ! जैसे पहिले देवासुरसंग्राममें इन्द्रने जम्भासुरको मारडाला था, तैसे ही तू इस कुलाधम धृतराष्ट्रके पुत्रको मारडाल ॥ १७ ॥ इसको मारकर तू इसकी अनाथ हुई सेनाका भी नाशकर और इसके मारनेको तू वैररूपी रणयज्ञका अवभृथ स्नान समझ, अतः तू इस दुरात्माओंकी जडको आज ही काटडाल ॥ १८ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुनकर अर्जुनने कहा, कि-ठीक है यदि यह काम मुझे अवश्य करना चाहिये तो हे श्रीकृष्ण ! तुम और सबोंको छोडकर मेरा रथ

भुक्तं राज्यमकण्टकम् । अद्यास्य युधि विक्रम्यच्छिन्द्यां मूर्द्धानमाहवे ॥ २० ॥ अपि तस्या ह्यनर्हायाः परिक्लेशस्य माधव । कृष्णायाः शक्नुयां गन्तुं पदं केशप्रधर्षणे ॥२१॥ इत्येवं वादिनौ कृष्णौ हृष्टौ श्वेतान् हयोत्तमान् । प्रेषयामासतुः संख्ये प्रेप्सन्तौ तं नराधिपम् ॥ २२ ॥ तयोः समीपं सम्प्राप्य पुत्रस्ते भरतर्षभ । न चकार भयं प्राप्ते भये महति मारिष ॥ २३ ॥ तदस्य क्षत्रियास्तत्र सर्व एवाभ्यपूजयन् । यदर्जुनहृषीकेशौ प्रत्युद्यातौ न्यवारयत् २४ ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशां पते । महानादो ह्यभूत्तत्र दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥ तस्मिन् जनसमुन्नादे प्रवृत्ते भैरवे सति । कदर्थीकृत्य ते पुत्रः प्रत्यमित्रमवारयत् ॥ २६ ॥

दुर्योधनके समीप ही लेचलो १९ इसने हमारे राज्यको चिरकाल तक निष्कण्टताके साथ भोगा है, मैं रणमें पराक्रम करके आज इसके मस्तकको काटडालूँगा ॥ २० ॥ इतना ही नहीं, किन्तु हे माधव! इसने दुःखके अयोग्य द्रौपदीके केशोंको खेंचकर उसको जो दुःख दिया है आज उसका बदला भी लूँगा ॥ २१ ॥ इसप्रकार कहते २ श्रीकृष्ण और अर्जुन प्रसन्न हो अपने श्वेत घोड़ोंको उस राजाको पकड़नेकी इच्छासे उसकी ओरको बढ़ाने लगे ॥ २२ ॥ हे भरतर्षभ! तुम्हारा पुत्र उनके बहुत ही पास आगया, परन्तु ऐसे बड़ेभारी संकटमें पड़जाने पर भी हे राजन्! वह जरा भी डरा नहीं ॥२३॥ उसने सन्मुख आयेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको रोकदिया, यह देखकर सब क्षत्रिय तुम्हारे पुत्रकी प्रशंसा करनेलगे॥२४॥हे राजन्! उस समय तुम्हारी सब सेनाएँ राजा दुर्योधनको युद्धमें अर्जुनके सामने खड़ा देख बड़े नादके साथ हर्षध्वनि करनेलगी २५ मनुष्योंकी उस महाभयंकर गर्जना के समय तुम्हारे पुत्रने अर्जुनका तिरस्कार करके उसे आगे बढने से रोकलिया २६ जब तुम्हारे धनुर्धारी पुत्रने अर्जुनको आगे

आवारितस्तु कौन्तेयस्तव पुत्रेण धन्विना । संरम्भमगमद्भूयः स च तस्मिन् परन्तपः ॥ २७ ॥ तौ दृष्ट्वा प्रतिसंरब्धौ दुर्योधनधनञ्जयौ । अभ्यवैक्षन्त राजानो भीमरूपाः समन्ततः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा तु पार्थः संरब्धं वासुदेवश्च मारिष । प्रहसन्नेव पुत्रस्ते योद्धुकामः समाह्वयत् ॥ २९ ॥ ततः प्रहृष्टो दाशार्हः पाण्डवश्च धनञ्जयः । व्यक्रोशेतां महानादं दध्मतुश्चाम्बुजोत्तमौ ३० तौ हृष्टरूपौ सम्प्रेक्ष्य कौरवेयास्तु सर्वशः । निराशाः समपद्यन्त पुत्रस्य तव जीविते ॥ ३१ ॥ शोकमापुः परे चैव कुरवः सर्वे एव ते । अमन्यन्त च पुत्रन्ते वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ३२ ॥ तथा तु दृष्ट्वा योधास्ते प्रहृष्टौ कृष्णपाण्डवौ । हतो राजा हतो राजेत्यूचिरे च भयार्दिताः ॥ ३३ ॥ जनस्य सन्निनादन्तु श्रुत्वा दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

बढनेसे रोक दिया तब अर्जुन बड़े क्रोधमें भरगया यह देख दुर्योधन भी बड़े क्रोधमें भरगया ॥ २७ ॥ दुर्योधन और अर्जुनको क्रोधमें भराहुआ देख कर भयङ्कररूप वाले राजे भी चारों ओरसे उनको देखनेलगे २८ हे राजन् ! लड़नेकी इच्छावाला दुर्योधन श्रीकृष्ण और अर्जुनको क्रोधमें भरा देखकर हँसा और उन्हें लड़नेके लिये बुलानेलगा २९ तदनन्तर जब दाशार्हकुलोत्पन्न श्रीकृष्ण और पांडुपुत्र अर्जुन आनन्दमें भरकर गर्जना करनेलगे तथा शंख बजानेलगे ॥ ३० ॥ तब उनको प्रसन्नमुख देखकर सब योधा दुर्योधनके जीवनके विषयमें निराश होगये ॥ ३१ ॥ दूसरे राजे और कौरव बड़े ही शोकमें पडगए और उन्होंने समझा, कि-दुर्योधन वैश्वानर अग्निमें होम दियागया ॥ ३२ ॥ तुम्हारे योधा श्रीकृष्ण और पांडवकी खिलीहुई आकृतिको देखकर भयसे घबडातेहुए कहनेलगे कि-दुर्योधन मृत्युके मुखमें जापड़ा दुर्योधन मृत्युके मुखमें जापडा ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके कोलाहलको सुनकर दुर्योधन सैनिकोंसे कहनेलगा, कि-तुम डरो मत ! मैं

व्येतु वो भीरहं कृष्णौ प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वा सैनिकान् सर्वान् जयापेक्षी नराधिपः । पार्थमाभाष्य सरम्भादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ पार्थ यच्छिक्षितं तेस्त्रं दिव्यं पार्थिवमेव च । तद्दर्शय मयि क्षिप्रं यदि जातोसि पाण्डुना ॥ ३६ ॥ यद्बलं तव वीर्यं च केशवस्य तथैव च । तत् कुरुष्व मयि क्षिप्रं पश्याम-स्तव पौरुषम् ॥ ३७ ॥ असमत्परोक्षं कर्माणि कृतानि प्रवदन्ति ते । स्वामिसत्कारयुक्तानि यानि तानीह दर्शय ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनवचने
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वार्जुनं राजा त्रिभिर्मर्मातिगैः शरैः । अभ्यविध्यन्महावेगैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ १ ॥ वासुदेवञ्च दशभिः

अभी श्रीकृष्ण और अर्जुनको मृत्युके पास भेजे देता हूँ ३४ जय चाहनेवाला राजा दुर्योधन सब सैनिकोंसे ऐसा कहकर क्रोध में भराहुआ अर्जुनसे यह कहनेलगा, कि—॥ ३५ ॥ अरे पार्थ ! यदि तू पांडुसे उत्पन्न हुआ है और यदि तूने दिव्य और पार्थिव अस्त्रोंकी विद्या सीखी है तो शीघ्र ही उस अस्त्रविद्याके बलको दिखा ! ३६ अरे ! तुझमें और कृष्णमें यदि कुछ बल और वीरता हो तो मुझे शीघ्र ही दिखा ! तुम्हारे पुरुषार्थको जरा देखें तो सही ॥ ३७ ॥ तूने राजा युधिष्ठिरके सत्कारके लिये हमारे पीठ पीछे बहुतसे पराक्रम किये हैं ऐसा लोग कहते हैं, परन्तु यदि तूने पराक्रम किये हों तो यहाँ रणमें मेरे सामने दिखा ॥ ३८ ॥ एकसौ दोवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०२ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! दुर्योधनने इतना कहते ही तीन बाण अर्जुनके मारे और मर्मभेदी चार बाणोंसे उसके घोड़ोंको घायल करदिया ॥१॥ तथा श्रीकृष्णकी बीच छातीमें

प्रत्यविध्यत स्तनान्तरे । प्रतोदं चास्य भल्लेन छित्वा भूमावपातयत् ॥ २ ॥ तं चतुर्दशभिः पार्थश्चित्रपुंखैः शिलाशितैः । अविध्यत्तूर्णमव्यग्रस्ते चाभ्रश्यन्त वर्मणि ॥ ३ ॥ तेषां नैष्फल्यमालोक्य पुनर्नव च पञ्च च । प्राहिणोन्निशितान् बाणांस्ते चाभ्रश्यन्त वर्मणः ॥ ४ ॥ अष्टाविंशांस्तु तान् बाणानस्तान् विप्रेक्ष्य निष्फलान् । अब्रवीत् परवीरघ्नः कृष्णोऽर्जुनमिदं वचः ॥ ५ ॥ अदृष्टपूर्वं पश्यामि शिलानामिव सर्पणम् । त्वया सम्प्रेषिताः पार्थ नार्थं कुर्वन्ति पत्रिणः ॥ ६ ॥ कच्चिद्गाण्डीवजः प्राणस्तथैव भरतर्षभ । मुष्टिश्च ते यथा पूर्वं भुजयोश्च बलं तव ॥ ७ ॥ न वा कच्चिदयं कालः प्राप्तः स्यादद्य पश्चिमः । तव चैवास्य शत्रोश्च तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ८ ॥ विस्मयो मे महान् पार्थ तव दृष्ट्वा शरानि-

---

दुर्योधनने दश बाण मारकर भल्ल नामक बाणसे उनके चाबुक को पृथ्वीमें गिरादिया ॥ २ ॥ अर्जुनने भी सावधान होकर के शिला पर तेज किये हुए विचित्र पूँछवाले चौदह बाण शीघ्रता से दुर्योधनके मारे, परन्तु वे बाण दुर्योधनके कवच से टकराकर भूमिमें गिरपड़े ॥ ३ ॥ उन बाणोंको निष्फल गये देखकर फिर चौदह बाण मारे परन्तु वे भी दुर्योधनके कवचसे टकराकर पृथ्वी में गिरपड़े॥४॥ वीर शत्रुओंका नाशकरनेवाले श्रीकृष्ण अर्जुनके छोड़ेहुए अट्ठाईसके अट्ठाईस बाणोंको निष्फल गये देखकर अर्जुनसे कहनेलगे कि–॥ ५ ॥ हे पार्थ ! आज मैं पहिले कभी न देखीहुई बात देखरहा हूँ, तेरे छोड़ेहुए बाण पत्थरकी शिलासे टकरानेवाले बाणोंकी समान निष्फल होरहे हैं ॥ ६ ॥ हे भरतर्षभ ! तेरे गाण्डीव धनुषमें पहिलेकी समान बल है या नहीं ? तेरी मुट्ठी वा भुजाओंमें पहिलेकेसा बल है या नहीं ? ॥ ७ ॥ क्या शत्रुओंके साथ यह तेरा अन्तिम संग्राम है मैं तुझसे बूझता हूँ उसका तू मुझे उत्तर दे ८ हे पार्थ ! रणमें दुर्योधनके रथकी

मान् । व्यर्थान् निपतितान् संख्ये दुर्योधनरथं प्रति ॥ ९ ॥ वज्राशनिसमा घोराः परकायावभेदिनः । शराः कुर्वन्ति ते नार्थं पार्थ काद्य विडम्बना ॥ १० ॥ अर्जुन उवाच । द्रोणेनैषा मतिः कृष्ण धार्त्तराष्ट्रे निवेशिता । अभेद्या हि ममास्त्राणामेषा कवचधारणा ११ अस्मिन्नन्तर्हितं कृष्ण त्रैलोक्यमपि वर्मणि । एको द्रोणो हि वेदैतदहं तस्माच्च सत्तमात् ॥ १२ ॥ न शक्यमेतत् कवचं बाणैर्भेत्तुं कथञ्चन । अपि वज्रेण गोविन्द स्वयं मघवता युधि ॥ १३ ॥ जानंस्त्वमपि वै कृष्ण मां विमोहयसे कथम् । यद्वृत्तं त्रिषु लोकेषु यच्च केशव वर्त्तते ॥ १४ ॥ तथा भविष्यच्चैव तत् सर्वं विदितं तव । न त्विदं वेद वै कश्चित् यथा त्वं मधुसूदन ॥ १५ ॥ एष

ओरको छोड़ेहुए तेरे इन वाणोंको निष्फल होकर गिरते देखकर मुझे वडा अचरज होता है ९ वज्रपातकी समान भयङ्कर और शत्रुओंके शरीरोंको फोड देनेवाले तेरे वाण आज कुछ भी काम नहीं करते, यह कैसा दुर्दैव है ! ॥ १० ॥ अर्जुनने इसका उत्तर दिया, कि–हे कृष्ण! मेरी समझमें द्रोणाचार्यने मन्त्रोंसे अभिमंत्रित कवच इसको पहिराया है इसलिये ही मेरे वाण इसके कवचको नहीं फोड सकते हैं ॥११॥ हे कृष्ण ! इस कवचमें तीनों लोकोंकी शक्ति समायी हुई है, इसको एक द्रोणाचार्य ही जानते हैं और मैंने भी उन श्रेष्ठ गुरुसे सीखा है ॥ १२ ॥ इसलिये हे गोविन्द ! इस कवचको स्वयं इन्द्र भी वाण तथा वज्रसे नहीं तोडसकता, फिर मेरी तो वात ही क्या है ? ॥१३॥ हे कृष्ण ! तुम भी इस वातको जानते हो, फिर भी प्रश्न करके मुझे मोहमें क्यों डालते हो ? हे केशव ! तीनों लोकोंके भूत भविष्यत् और वर्तमानकालकी वातें तुम्हें मालूम हैं, तो भी तुम मुझसे क्यों पूछते हो ? हे मधुसूदन ! तुम भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानकी वातोंको जितनी जानते हो, उतनी कोई भी नहीं जानता फिर यह प्रश्न कैसा ? १४-१५

दुर्योधनः कृष्ण द्रोणेन विहितामिमाम् । तिष्ठत्यभीतवत् संख्ये बिभ्रत् कवचधारणाम् ॥ १६ ॥ यत्त्वत्र विहितं कार्यं नैष तद्वेत्ति माधव । स्त्रीवदेष बिभर्त्येतां युक्तां कवचधारणाम् ॥ १७ ॥ पश्य बाह्वोश्च मे वीर्यं धनुषश्च जनार्दन । पराजयिष्ये कौरव्यं कवचेनापि रक्षितम् ॥ १८ ॥ इदमङ्गिरसे प्रादाद्देवेशो वर्म भास्वरम् । तस्माद् बृहस्पतिः प्राप ततः प्राप पुरन्दरः ॥१९ ॥ पुनर्ददौ सुरपतिर्मह्यं वर्म सुसंग्रहम् । दैवं यद्यस्य वर्मैतद् ब्रह्मणा वा स्वयं कृतम् ॥ २० ॥ नैनं गोप्स्यति दुर्बुद्धिमद्य बाणहतं मया । सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वार्जुनो बाणानभिमन्त्र्य व्यकर्षयत् ॥ २१ ॥ मानवास्त्रेण मानार्हस्तीक्ष्णावरणभेदिना । विकृष्यमाणांस्तेनैव

हे कृष्ण ! यह दुर्योधन, द्रोणके द्वारा मंत्रपूर्वक ठीक कियेहुए इस कवचको पहिरकर रणमें निडरकी समान खडा है ॥ १६ ॥ परन्तु हे माधव ! यहाँ जो कुछ करना चाहिये उसे यह बिलकुल नहीं जानता, यह तो केवल द्रोणसे अभिमंत्रित कवचको पहिर कर स्त्रीकी समान खडा है ॥ १७ ॥ परन्तु हे जनार्दन ! अब आप मेरे धनुष और भुजाओंके बलको देखिये, अभिमंत्रित दिव्य कवच पहिराकर द्रोणने दुर्योधनकी रक्षा की है, तो भी मैं आज इसको रणमें हरादूँगा ॥१८॥ यह तेजस्वी कवच पहले देवपति ब्रह्माजीने अंगिरा ऋषिको दिया था, उनसे यह कवच बृहस्पतिने पाया, बृहस्पतिसे इन्द्रने पाया था ॥१९॥ फिर इन्द्रने यह देवनिर्मित कवच मंत्रके उपदेशसहित मुझे दिया, इस कवचको चाहे ब्रह्माने अथवा और किसी देवताने बनाया हो तो भी आज यह मेरे बाणसे घायल होतेहुए इस दुर्बुद्धिकी रक्षा नहीं कर सकेगा ॥ २० ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! मानके योग्य अर्जुनने श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर तीक्ष्ण और कवचको तोडने वाला मानवास्त्र लिया और धनुषको खेंचकर मंत्र बोलताहुआ

धनुर्मध्यगताञ्छरान् ॥ २२॥ तानस्यास्त्रेण चिच्छेद द्रौणिः सर्वास्त्रघातिना । तान्निकृत्तानिषून्दृष्ट्वा दूरतो ब्रह्मवादिना ॥२३॥ न्यवेदयत् केशवाय विस्मितः श्वेतवाहनः । नैतदस्त्रं मया शक्यं द्विः प्रयोक्तुं जनार्दन ॥ २४ ॥ अस्त्रं मामेव हन्याद्धि हन्याच्चापि बलं मम । ततो दुर्योधनः कृष्णो नवभिर्नवभिः शरैः ॥ २५ ॥ अविध्यत रणे राजन्शरैराशीविषोपमैः । भूय एवाभ्यवर्षच्च समरे कृष्णपाण्डवौ ॥ २६ ॥ शरवर्षेण महता ततोऽहृष्यन्त तावकाः । चक्रुर्वादित्रनिनदान् सिंहनादरवांस्तथा ॥ २७ ॥ ततः क्रुद्धो रणे पार्थः सृक्कणी परिसंलिहन् । नापश्यच्च ततोऽस्याङ्गं यन्न स्याद्वर्मरक्षितम् ॥ २८ ॥ ततोस्य निशितैर्बाणैः सुमुक्तैरन्तकोपमैः।

धनुपमेंसे वाणोंको छोडनेलगा, परन्तु अश्वत्थामाने सब अस्त्रोंका नाश करनेवाले अस्त्र छोडकर अर्जुनके उन वाणोंको काटना आरम्भ करदिया ब्रह्मवादी अश्वथामाके दूरसे ही छोड़े हुए वाणोंसे अपने वाणोंको कटेहुए देखकर अर्जुनको वड़ा आश्चर्य हुआ और वह श्रीकृष्णसे कहनेलगा, कि–हे जनार्दन ! मैं इस अस्त्रको दो वार नहीं छोड सकता २१–२४यदि मैं इसको दुबारा छोडूँगा,तो यह मुझे और मेरी सेनाको ही नष्ट करदेगा,हे राजन्! दोनों जने इसप्रकार वातें कररहे थे; इतनेमें ही दुर्योधनने विषधर सर्पकी समान नौ नौ वाण अर्जुन और श्रीकृष्णके फिर मारे तथा फिर भी वह समरमें कृष्ण और अर्जुनके ऊपर वहुतसे वाण वरसानेलगा, इस बडीभारी वाणोंकी वर्षाको देखकर तुम्हारे पक्षके योधा बड़े प्रसन्न होकर वाजे वजानेलगे तथा सिंहनाद करनेलगे ॥ २५–२७ ॥ इससे अर्जुनको वडा क्रोध चढ़ा और वह जवाड़े चाटता हुआ दुर्योधनको घायल करनेके लिये चारों ओरको देखनेलगा, परन्तु उसका कोई भी अङ्ग कवचकी रक्षा से शून्य नहीं दीखा ॥ २८ ॥ तव पराक्रमी अर्जुनने कालकी

हयांश्चकार निर्देहानुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ २९ ॥ धनुरस्याच्छिनत्तूर्णं हस्तावापञ्च वीर्यवान् । रथञ्च शकलीकर्तुं सव्यसाची प्रचक्रमे ॥ ३० ॥ दुर्योधनञ्च वाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यां विरथीकृतम् । आविध्यद्धस्ततलयोरुभयोरर्जुनस्तदा ॥ ३१ ॥ प्रयत्नतो हि कौन्तेयो नखमांसांतरेषुभिः । स वेदनाभिराविग्नः पलायनपरायणः ॥ ३२ ॥ तं कृच्छ्रामापदं प्राप्तं दृष्ट्वा परमधन्विनः । समापेतुः परीप्सन्तो धनञ्जयशरार्दितम् ॥ ३३ ॥ तं रथैर्बहुसाहस्रैः कल्पितैः कुञ्जरैर्हयैः । पदात्योघैश्च संरब्धैः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ३४ अथ नार्जुनगोविन्दौ न रथो वा व्यदृश्यत । अस्त्रवर्षेण महता जनौघैश्चापि संवृतौ ॥ ३५ ॥ ततोऽर्जुनोस्त्रवीर्येण निजघ्ने तां

समान विकराल और तेज वाणोंको खेंचकर दुर्योधनके घोड़ोंको काटडाला तथा पार्श्वरक्षक और सारथीको भी प्राणरहित कर दिया ॥ २९ ॥ और वीर्यवान् अर्जुनने दुर्योधनके धनुष तथा हाथके मोजोंको भी काटडाला तदनन्तर सव्यसाची अर्जुन शीघ्रही उसके रथके टुकड़े२ करनेको उद्यत होगया ॥३०॥ और तीक्ष्ण वाणोंसे उसके रथके खण्ड२ कर उसकी दोनों हथेलियोंको दो तेज वाण मारकर घायल करदिया ॥ ३१॥ और युक्ति जाननेवाले अर्जुनने उसके नखोंके भीतरके मांसको भी वाणोंसे बींध डाला, तब तो दुर्योधनको बडी पीडा होनेलगी और वह व्याकुल होकर भागनेको उद्यत होगया ॥ ३२ ॥ दुर्योधन अर्जुनके वाणोंसे पीडित होगया और बडीभारी आपत्तिमें फँसगया, यह देखकर बड़े२ धनुषधारी उसको बचानेकी इच्छासे दौडपड़े ३३ और उन्होंने क्रोधमें भरकर अनेकों सहस्र रथ, सजेहुए घोड़े, हाथी और पैदलोंसे अर्जुनको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३४ ॥ उस समय बडीभारी वाणोंकी वर्षा और मनुष्योंकी महाभीडके कारण न श्रीकृष्ण दिखाई देते थे और न अर्जुन ही दीखता

वरूथिनीम् । तत्र व्यङ्गीकृताः पेतुः शतशोथ रथद्विपाः ॥ ३६ ॥ ते हता हन्यमानाश्च न्यगृह्णंस्तं रथोत्तमम् । सरथस्तम्भितस्तस्थौ क्रोशमात्रे समन्ततः ॥३७॥ ततोर्जुनं वृष्णिवीरस्त्वरितो वाक्यमब्रवीत् । धनुर्विस्फारयात्यर्थमहं ध्मास्यामि चाम्बुजम् ३८ ततो विस्फार्य वलवत् गाण्डीवं जघ्निवान् रिपून् । महता शरवर्षेण तलशब्देन चार्जुनः ॥ ३९ ॥ पाञ्चजन्यञ्च वलवान् दध्मौ तारेण केशवः । रजसा ध्वस्तपक्ष्मान्तः प्रस्विन्नवदनो भृशम् ॥४०॥ तस्य शंखस्य नादेन धनुषो निःस्वनेन च । निःसत्त्वाश्च ससत्त्वाश्च क्षितौ पेतुस्तदा जनाः ॥ ४१ ॥ तैर्विमुक्तो रथो रेजे वाय्वीरित इवा-

---

था तथा उनका रथ भी नहीं दीखता था ॥ ३५ ॥ तदनन्तर अर्जुन अस्त्रवलसे कौरवसेनाका संहार करनेलगा, उस समय सैंकड़ों सहस्रों हाथी, घोड़े प्राणरहित होकर भूमिपर गिरने लगे ॥ ३६ ॥ वहुतसे योधा मारेगए और मारे जारहे थे, तब भी वहुतसे महारथियोंने अर्जुनके रथको घेरलिया इसप्रकार वह रथ जयद्रथके रथसे एक कोस दूरी पर रुककर खड़ा होगया ३७ तदनन्तर वृष्णिवीर श्रीकृष्णने शीघ्रताके साथ अर्जुनसे कहा, कि–तू गाण्डीव धनुषको बड़े जोरसे खेंचकर वाण मार और मैं पाञ्चजन्य शंखको वजाता हूँ ॥३८॥ कृष्णकी इस बातको सुनकर अर्जुनने गाण्डीव धनुषको बड़े जोरसे खींचा और प्रत्यञ्चाका टंकार शब्द कर, वाणवृष्टि और तालियोंका शब्द करतार शत्रुओंका संहार करनेलगा ॥३९॥ और वलवान् श्रीकृष्ण ऊँचे स्वरसे पाञ्चजन्य शंखको वजानेलगे, इस समय उनके आँखोंके पलक धूलिमें अटेहुए थे और मुख पर पसीना आरहा था ४० उस शंखके नाद और धनुषकी टंकारसे क्या निर्बल और क्या वलवान् सब ही योधा उस समय पृथ्वी पर गिरपड़े ॥ ४१ ॥ और शत्रुओंका घेराहुआ उसका रथ कौरवपक्षियोंके घिराव

म्बुदः । जयद्रथस्य गोप्तारस्ततः क्षुब्धाः सहानुगाः ॥ ४२ ॥ ते
दृष्ट्वा सहसा पार्थं गोप्तारः सैन्धवस्य तु । चक्रुर्न्नादान् महेष्वासाः
कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥ ४३ ॥ बाणशब्दरवांश्चोग्रान्
विमिश्रान्शंखनिःस्वनैः ।प्रादुश्चक्रुर्महात्मानः सिंहनादरवानपि ४४
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां समुत्थितम् । प्रदध्मतुः शंखवरौ
वासुदेवधनञ्जयौ ॥४५॥ तेन शब्देन महता पूरितेयं वसुन्धरा ।
सशैला सार्णवद्वीपा सपाताला विशाम्पते ॥ ४६ ॥ स शब्दो
भरतश्रेष्ठ व्याप्य सर्वा दिशो दश । प्रतिसस्वान तत्रैव कुरुपाण्डवयोर्बले
॥ ४७ ॥ तावका रथिनस्तत्र दृष्ट्वा कृष्णधनञ्जयौ ।
सम्भ्रमं परमं प्राप्तास्त्वरमाणा महारथाः ॥ ४८ ॥ अथ कृष्णौ

मेंसे छूटकर पवनके प्रेरणा कियेहुए मेघमण्डलकी समान स्पष्ट दीखनेलगा, महाधनुषधारी जयद्रथके रक्षक अर्जुनको एकायकी देखकर पहले तो घबडागये, परन्तु पीछेसे धीरज धर कर पृथ्वीको कँपातेहुए भयङ्कर गर्जना करनेलगे तथा महात्मा पुरुष बड़े उग्र बाणोंके शब्दोंको करनेलगे, शंख बजानेलगे और सिंहोंकी समान दहाडनेलगे॥ ४२–४४ ॥ तुम्हारे योधाओंकी उस घोर गर्जनाको सुनकर श्रीकृष्ण और अर्जुन अपने पाञ्चजन्य और देवदत्त नामक शंखोंको बड़े जोरसे बजानेलगे ।४५। हे राजन् ! उनके शंखोंके बडेभारी शब्दसे पर्वत, समुद्र, द्वीप और पातालसहित पृथ्वी गूँजगई ॥४६॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! वह शब्द सब दिशाओंमें भरगया और उसकी प्रतिध्वनि कौरव और पाण्डवोंकी सेनामें भी गूँजउठी ॥४७॥ तुम्हारे रथी और महारथी रणमें चढकर आयेहुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखते ही बडी घबडाहटमें पडगए और बडी उतावली करनेलगे ॥ ४८ ॥ तो भी तुम्हारे बली योधा कवच पहनकर चढ़कर आयेहुए महाभाग श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखकर क्रोधमें भर उनसे लडनेको

महाभागौ तावका वीक्ष्य दंशितौ । अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनपराजये
त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

सञ्जय उवाच । तावका हि समीक्ष्यैवं वृष्ण्यन्धककुरूत्तमौ । प्रागत्वरन् जिघांसन्तस्तथैव विजयः परान् ॥ १ ॥ सुवर्णचित्रैर्वैयाघ्रैः स्वनवद्भिर्महारथैः । दीपयन्तो दिशः सर्वा ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ २ ॥ रुक्मपुङ्खैश्च दुष्प्रेक्ष्यैः कार्मुकैः पृथिवीपते । कूजद्भिरतुलान्नादान् कोपितैस्तुरगैरिव ॥३॥ भूरिश्रवाः शलः कर्णो वृषसेनो जयद्रथः । कृपश्च मद्रराजश्च द्रौणिश्च रथिनाम्वरः ॥४॥ ते पिवन्त इवाकाशमश्वैरष्टौ महारथाः । व्यराजयन् दश दिशो वैयाघ्रैर्हेमचन्द्रकैः ॥५॥ ते दंशिताः सुसंरब्धा रथैर्मेघौघनिःस्वनैः ।

दौड़पड़े उनका वह काम बड़ा ही आश्चर्यजनक प्रतीत होता था ॥ ४९ ॥ एक सौ तीनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०३ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! तुम्हारे योधा कृष्ण और अर्जुनको देखते ही उनको मारनेकी इच्छासे उनके ऊपर एक साथ टूटपड़े और अर्जुन भी उनको मारनेके लिये शीघ्रता करने लगा ॥१॥ भूरिश्रवा, शल, कर्ण. वृषसेन, जयद्रथ, कृप, शल्य और अश्वत्थामा ये आठ महारथी सुवर्णसे चित्रित बाघाम्बरसे मढ़े गर्जना करतेहुए बढ़िया रथोंमें बैठकर क्रोधायमान सर्पोंकी समान घोर टंकार शब्द करते सुवर्णकी मूठवाले और जिनकी ओरको देखा न जासके ऐसे धनुषोंको लेकर प्रज्वलित अग्निकी समान सब दिशाओंको प्रकाशित करतेहुए चढ़आये, वे सुवर्णकी फुल्लियें और बाघाम्बरसे शोभित घोड़ोंसे जुते रथोंमें बैठकर आये, वे मानो आकाशको पिएजाते हों इसप्रकार चारों दिशाओंमें सुशोभित होरहे थे ॥ २-५ ॥ उन क्रोधमें भरे कवचधारी

समावृण्वन् दश दिशः पार्थस्य निशितैः शरैः ६ कौलूतका हयाश्चित्रा वहन्तस्तान् महारथान् । व्यशोभन्त तदा शीघ्रा दीपयन्तो दिशो दश ॥ ७ ॥ आजानेयैर्महावेगैर्नानादेशसमुत्थितैः । पार्वतीयैर्नदीजैश्च सैन्धवैश्च हयोत्तमैः ॥ ८ ॥ कुरुयोधवरा राजंस्तव पुत्रं परीप्सवः । धनञ्जयरथं शीघ्रं सर्वतः समुपाद्रवन् ॥ ९ ॥ ते प्रगृह्य महाशंखान् दध्मुः पुरुषसत्तमाः । पूरयन्तो दिवं राजन् पृथिवीञ्च ससागराम् ॥ १० ॥ तथैव दध्मतुः शंखौ वासुदेवधनञ्जयौ । प्रवरौ सर्वदेवानां सर्वशंखवरौ भुवि ॥ ११ ॥ देवदत्तञ्च कौन्तेयः पाञ्चजन्यञ्च केशवः । शब्दस्तु देवदत्तस्य धनञ्जयसमीरितः ॥ १२॥ पृथिवीञ्चान्तरिक्षञ्च दिशश्चैव समावृणोत्।

महारथियोंने मेघकी समान गर्जना करनेवाले रथोंसे और तीक्ष्ण बाणोंसे पार्थको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ६ ॥ फुर्तीसे चलनेवाले, कुलूतदेशी तथा भिन्न२ देशोंके विचित्र घोड़े उन महारथियोंको रणमेंको ले जातेहुए दशों दिशाओंको शोभा देरहे थे ॥७॥ कौरवपक्षके श्रेष्ठ२ योधा तुम्हारे पुत्रको बचानेकी इच्छासे महावेगवान्, पर्वत नदी और सिंधुदेश तथा और दूसरे अनेकों देशोंमें उत्पन्नहुए घोडों पर बैठ देखते२ चारों ओरसे अर्जुनके रथ पर चढगए ॥ ८-९ ॥ वे पुरुषश्रेष्ठ बड़े २ अपने शङ्खोंको हाथमें ले बजानेलगे, हे राजन्! उनके शंखोंकी ध्वनिसे आकाश और समुद्रसहित पृथ्वी व्याप्त होगई थी ॥ १० ॥ सब देवताओंमें मुख्य श्रीकृष्ण और अर्जुन भी पृथ्वीपर सब शंखोंसे श्रेष्ठ पाञ्चजन्य और देवदत्त नामक अपने२ शंखोंको बजाने लगे अर्जुनके बजाएहुए देवदत्त शङ्खका शब्द पृथ्वी, आकाश और सब दिशाओंमें भरगया इसी प्रकार वासुदेवके बजाएहुए शङ्खका शब्द भी सब शब्दोंको दबाकर स्वर्ग और पृथ्वीमें भर गया, शूरोंको हर्षित और डरपोकोंको भयभीत करनेवाला, इन

तथैव पाञ्चजन्योऽपि वासुदेवसमीरितः ॥ १३ ॥ सर्वशब्दानतिक्रम्य पूरयामास रोदसी । तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने दारुणे नादसंकुले ॥ १४ ॥ भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्द्धने । प्रवादितासु भेरीषु झर्झरेष्वानकेषु च ॥ १५ ॥ मृदङ्गेष्वपि राजेन्द्र वाद्यमानेष्वनेकशः । महारथाः समाहूता दुर्योधनहितैषिणः ॥१६॥ अमृष्यमाणास्तं शब्दं क्रुद्धाः परमधन्विनः नानादेश्या महीपालाः स्वसैन्यपरिरक्षिणः ॥ १७ ॥ अमर्षिता महाशंखान् दध्मुर्वीरा महारथाः । कृते प्रतिकरिष्यन्तः केशवस्यार्जुनस्य च ॥ १८ ॥ बभूव तव तत् सैन्यं शंखशब्दसमीरितम् । उद्विग्नरथनागाश्वमस्वस्थमिव मा विभो ॥ १९ ॥ तत् प्रविद्धमिवाकाशं शूरैः शंखविनादितम् । बभूव भृशमुद्विग्नं निर्घातैरिव नादितम् ॥ २० ॥ स शब्दः सुमहान् राजन् दिशः सर्वा व्यनादयत् । त्रासयामास तत् सैन्यं युगान्त इव सम्भृतः ॥२१॥ ततो दुर्योधनोऽष्टौ च राजा-

---

शङ्खोंका शब्द जिस समय हुआ था, उस समय साथही बहुतसी भेरी, झर्झर, नगाड़े और मृदङ्ग भी बजनेलगे थे, दुर्योधनके हितैषी और हमारी सेनाके रक्षक, प्रसिद्ध२ महाधनुषधारी महारथी, अनेकों देशोंके शूरवीर राजे उस शङ्खध्वनिको सह न सके और क्रोधमें भरकर कृष्ण और अर्जुनके काममें विघ्न डालनेके विचारसे ऊँचे स्वरसे अपने२ शङ्खोंको बजानेलगे ॥११-१८॥ हे विभो ! उन शङ्खोंके शब्दसे तुम्हारी सेनाके पैदल, घुड़सवार, हाथीसवार और रथसवार व्याकुल तथा अस्वस्थ होगए ॥१९॥ और वज्रकी ध्वनिसे जैसे आकाश गूँज उठता है तैसे ही शूरोंकी कीहुई शंखोंकी ध्वनिसे सम्पूर्ण सेना गूँजगई और व्याकुल हो गई, कृष्ण और अर्जुनके शङ्खोंकी महाध्वनि, प्रलयकालकी घोर ध्वनिकी समान थी, उसने सब दिशाओंको गुंजार दिया और सेनाको भयभीत करदिया ॥ २०-२१ ॥ तदनन्तर आठों

नस्ते महारथाः । जयद्रथस्य रक्षार्थं पाण्डवं पर्यवारयन् ॥ २२ ॥ ततो द्रौणिस्त्रिसप्तत्या वासुदेवमताडयत् । अर्जुनञ्च त्रिभिर्भल्लैर्ध्वजमश्वांश्च पञ्चभिः ॥ २३ ॥ तमर्जुनः पृषत्कानां शतैः षड्भिरताडयत् । अत्यर्थमिव संक्रुद्धः प्रतिविद्धे जनार्दने ॥ २४ ॥ कर्णञ्च दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिस्तथा । शल्यस्य सशरञ्चापं मुष्टौ चिच्छेद वीर्यवान् ॥ २५ ॥ गृहीत्वा धनुरन्यत्तु शल्यो विव्याध पाण्डवम् । भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ २६ ॥ कर्णो द्वात्रिंशता चैव वृषसेनश्च सप्तभिः । जयद्रथस्त्रिसप्तत्या कृपश्च दशभि शरैः ॥ २७ ॥ मद्रराजश्च दशभिर्विव्यधुः फाल्गुनं रणे । ततः शराणां षष्ट्या तु द्रौणिः पार्थमवाकिरत् ॥ २८ ॥ वासुदेवञ्च विंशत्या पुनः पार्थञ्च पञ्चभिः । प्रहसंस्तु नरव्याघ्रः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ २९ ॥ प्रत्यविध्यत् स तान् सर्वान्

महारथी और राजा दुर्योधनने जयद्रथकी रक्षा करनेके निमित्त से अर्जुनको आगे वढनेसे रोकनेके लिये चारों ओरसे घेरलिया २२ तदनन्तर अश्वत्थामाने कृष्णके तिहत्तर अर्जुनके तीन और ध्वजा तथा घोडोंके पाँच भल्ल नामक वाण मारे ॥२३॥ वासुदेवके घायल होनेसे अर्जुनको वहुत ही क्रोध चढा और उसने अश्वत्थामाके छः सौ वाण मारे ॥ २४ ॥ तथा कर्णको दश, वृषसेनको तीन वाणोंसे वींधकर शल्यके वाण सहित धनुषको पकडनेकी जगहसे काटडाला ॥ २५ ॥ तुरन्त ही शल्यने दूसरा धनुष लेकर अर्जुनको घायल करडाला और भूरिश्रवाने तीन, तीन, वृषसेनने सात, कर्णने वत्तीस, जयद्रथने तिहत्तर, कृपाचार्यने दश और शल्यने सुनहरी पूँछवाले तथा सान पर धरे हुए दश वाणोंसे अर्जुनको घायल करदिया तदनन्तर अश्वत्थामाने अर्जुनके ६० वाण तथा वासुदेवके वीस वाण मारे और और फिर अर्जुन पर पाँच वाण और भी मारे, यह देखकर सफेद

दर्शयन् पाणिलाघवम् । कर्णं द्वादशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिः शरैः ३०
शल्यस्य सशरञ्चापं मुष्टिदेशे व्यकृन्तत । सौमदत्तिं त्रिभिर्विद्ध्वा
शल्यं च दशभिः शरैः ॥ ३१ ॥ शितैरग्निशिखाकारैर्द्रौणिं विव्याध
चाष्टभिः । गौतमं पञ्चविंशत्या सैन्धवञ्च शतेन ह ॥ २२ ॥ पुनर्द्रौणिञ्च
सप्तत्या शराणां सोऽभ्यताडयत् । भूरिश्रवास्तु संक्रुद्धः
प्रतोदं चिच्छिदे हरेः ॥ ३३ ॥ अर्जुनञ्च त्रिसप्तत्या बाणानामाजघान
ह । ततः शरशतैस्तीक्ष्णैस्तानरीन् श्वेतवाहनः ॥ ३४ ॥
प्रत्यषेधद् द्रुतं क्रुद्धो महावातो घनानिव ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे
चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । ध्वजान् बहुविधाकारान् भ्राजमानानतिश्रिया
। पार्थानां मामकानां च तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥

घोड़ेवाला और कृष्ण जिसके सारथी हैं उस अर्जुनने हँसकर अपनी हाथकी फुर्ती दिखला उन सबोंको घायल करदिया, उसने कर्णको बारह और वृषसेनको तीन बाणोंसे घायल कर शल्यके बाणसहित धनुषके पकडनेके स्थानसे दो टुकड़े करदिये, फिर उसने सौमदत्तिको तीन और शल्यको दश बाणोंसे बींधकर अग्निकीसी लपटवाले तेज आठ बाणोंसे अश्वत्थामाको घायल करदिया, फिर कृपाचार्यको पचीस, जयद्रथको सौ, अश्वत्थामाको सत्तर बाणोंसे बींधा, तदनन्तर भूरिश्रवाने क्रोधमें भरकर श्रीकृष्ण के चाबुकके टुकड़े २ करडाले ॥ २६–३३ ॥ और अर्जुनके तिहत्तर बाण मारे, तब तो जैसे क्रोधमें भरा महावायु मेघोंको पीछेको हटा देता है तैसे ही अर्जुनने शत्रुओंको सौ बाण मार कर आगे बढ़नेसे रोकदिया ॥ ३४–३५ ॥ एकसौ चारवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०४ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे सञ्जय ! नानाप्रकारकी, बड़ीभारी

सञ्जय उवाच । ध्वजान् बहुविधाकारान् शृणु तेषां महात्मनाम् । रूपतो वर्णतश्चैव नामतश्च निबोध मे ॥ २ ॥ तेषान्तु रथमुख्यानां रथेषु विविधा ध्वजाः । प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र ज्वलिता इव पावकाः ॥ ३ ॥ काञ्चनाः कांचनापीडा कांचनस्रगलंकृताः । कांचनानीव शृंगाणि कांचनस्य महागिरेः ॥ ४ ॥ अनेकवर्णा विविधा ध्वजाः परमशोभनाः । ते ध्वजाः संवृतास्तेषां पताकाभिः समन्ततः ॥ ५ ॥ नानावर्णविरागाभिः शुशुभुः सर्वतो वृताः । पताकाश्च ततस्तास्तु श्वसनेन समीरिताः ॥ ६ ॥ नृत्यमाना व्यदृश्यन्त रङ्गमध्ये विलासिकाः । इन्द्रायुधसवर्णाभाः पताका भरतर्षभ ॥ ७ ॥ दोधूयमाना रथिनां शोभयन्ति महारथान् । सिंहलांगूलमुग्रास्यं ध्वजं वानरलक्षणम् ॥ ८ ॥ धनञ्जयस्य

शोभासे सुशोभित पांडवोंकी और कौरवोंकी ध्वजा पताकाओंका तू मुझे वर्णन करके सुना ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा कि-हे राजेन्द्र! धृतराष्ट्र युद्धमें घूमतेहुए उन महात्मा पुरुषोंकी ध्वजाएँ नानाप्रकारकी थीं मैं उनके नामरूप और रङ्गका वर्णन करता हूँ, सुनिये, उन बड़े २ महारथियोंके रथमें नानाप्रकारके ध्वजदण्ड थे वे प्रज्वलित अग्निकी समान तेजस्वी दीखरहे थे,२—३ वे केवल सुवर्णके थे और सुवर्णके वस्त्र और सुवर्णकी मालाओंसे अलंकृत थे नानाप्रकारकी रङ्ग विरङ्गी परम सुन्दर पताकाओंसे लिपटेहुए हेमाद्रि पर्वतके सुवर्णके शिखरोंकी समान सुशोभित होरहे थे, ॥४—५॥ चारों ओरसे बहुतसे रङ्गोंकी छोटी छोटी पताकायें बडी ही शोभा पारही थीं हे भरतर्षभ ! इन्द्रधनुषकी समान रङ्ग विरङ्गी, वे छोटी २ ध्वजायें पवनसे हिलकर इसप्रकार इधर उधर फहरारहीं थीं मानो रङ्गभूमिमें वेश्याएँ नृत्य कररही हों, इसप्रकार वे ध्वजाएँ घूम२ कर महारथियोंके रथोंको सुशोभित कररही थीं, सिंहकी समान पूँछ और भयङ्कर मुखवाले वानरके

संग्रामे प्रत्यदृश्यत भैरवम् । स वानरवरो राजन् पताकाभिरलंकृतः ॥ ९ ॥ त्रासयामास तत्सैन्यं ध्वजो गाण्डीवधन्वनः । तथैव सिंहलाङ्गूलं द्रोणपुत्रस्य भारत ॥ १० ॥ ध्वजाग्रं समपश्याम बालसूर्यसमप्रभम् । कांचनं पवनोद्धूतं शक्रध्वजसमप्रभम् ॥ ११ ॥ नन्दनं कौरवेन्द्राणां द्रौणेर्लक्ष्म समुच्छ्रितम् । हस्तिकक्षा पुनर्हैमी बभूवाधिरथेर्ध्वजः ॥ १२ ॥ आहवे खं महाराज ददृशे पूरयन्निव पताका कांचनी स्रग्वी ध्वजे कर्णस्य संयुगे ॥ १३ ॥ नृत्यतीव रथोपस्थे श्वसनेन समीरिता। आचार्यस्य तु पाण्डूनां ब्राह्मणस्य तपस्विनः ॥ १४ ॥ गोवृषो गौतमस्यासीत् कृपस्य सुपरिष्कृतः । स तेन भ्राजते राजन् गोवृषेण महारथः ॥ १५ ॥ त्रिपुरघ्नरथो यद्वद्गोवृषेण विराजता । मयूरो वृषसेनस्य कांचनो मणिरत्नवान्१६ व्याहरिष्यन्निवातिष्ठत् सेनाग्रमुपशोभयन् । तेन तस्य रथो भाति

चित्रसे चित्रित अर्जुनकी ध्वजा संग्राममें भयङ्कर प्रतीत होरही थी, छोटी २ पताकाओंसे घिराहुआ वानर और अर्जुनकी ध्वजा तुम्हारी सेनाको त्रस्त कररही थीं, हे भारत! तैसे ही हमने सुवर्णके दण्डेवाली, इन्द्रधनुषकी समान पँचरङ्गी प्रभावाली, पवनसे फहरातीहुई, सिंहकी पूँछकेसे चिन्हसे युक्त, बाल सूर्यकी समान प्रभावाली कौरवराजोंको आनन्द देतीहुई अश्वत्थामाकी ध्वजाको देखा, तदनन्तर हे महाराज! सुवर्णमयी हाथीके चिन्हवाली कर्णकी ध्वजा आकाशमें व्याप्तसी दीखरही थी और मालासे शोभित सुवर्णकी बनी कर्णके रथपर लगीहुई पवनसे फहराती हुई वह ध्वजा नाचती हुईसी दीखती थी, तपस्वी ब्राह्मण पांडवोंके आचार्य कृपाचार्यकी ध्वजामें बैलका चिन्ह था, उनका महारथ बैलके चित्रवाली ध्वजासे, त्रिपुरासुरनाशक शिवकी समान शोभा देरहा था, सुवर्ण मणि तथा रत्नोंसे बनाहुआ मयूर वृषसेनके रथकी ध्वजामें था, सेनाके अग्रभागको सुशोभित करता

मयूरेण महात्मनः ॥ १७॥ यथा स्कन्दस्य राजेन्द्र मयूरेण विराजता । मद्रराजस्य शल्यस्य ध्वजाग्रेऽग्निशिखामिव ॥१८॥ सौवर्णीं प्रतिपश्याम सीतामप्रतिमां शुभाम् । सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्थाय मारिष ॥ १६ ॥ सर्ववीजविरूढेव यथा सीता श्रिया वृता । वराहः सिन्धुराजस्य राजतोऽभिविराजते ॥ २० ॥ ध्वजाग्रेऽलोहितार्काभो हेमजालपरिष्कृतः । शुशुभे केतुना तेन राजतेन जयद्रथः ॥ २१ ॥ यथा देवासुरे युद्धे पुरा पूषा स्म शोभते । सौमदत्तेः पुनर्यूपो यज्ञशीलस्य धीमतः ॥२२॥ ध्वजः सूर्य इवाभाति सोमश्चात्र प्रदृश्यते । स यूपः कांचनो राजन् सौमदत्तेर्विराजते ॥ २३ ॥ राजसूये मखश्रेष्ठे यथा यूपः समुच्छ्रितः । शल्यस्य

हुआ वह मयूर ऐसा प्रतीत होता था, मानो अभी बोल उठेगा, हे राजेन्द्र! जैसे कार्तिकेयका रथ मयूरसे सुशोभित दीखता था, तैसे ही उस मयूरसे वृषसेनके रथकी भी शोभा होरही थी६-१७ हे राजन्! मद्रदेशके राजा शल्यकी ध्वजामें अग्निशिखाकी समान अनुपम तथा सुन्दर हलसे खींचीहुई सुवर्णकी रेखावाले क्षेत्रका चिन्ह था, क्षेत्रमें सव प्रकारके वीजोंके उगआने पर हलसे पडी हुई रेखाओंके सुशोभित होजानेकी समान, शल्यके रथकी ध्वजामें हलसे खिचीहुई रेखाओंका चिन्ह भी सुन्दर दीखरहा था, सिधुराज जयद्रथके रथमें स्थित ध्वजाके अग्रभागमें सुवर्णकी पत्तर पर जडाहुआ, स्वेत स्फटिककी समान आभावाला वराहका चिन्ह शोभा देरहा था, उस रुपहली ध्वजासे जयद्रथ पूर्वकालमें हुए देवासुरयुद्धमें शोभा पातेहुए पूषाकी समान, शोभा पारहा था, ॥ १८-२१ ॥ यज्ञ करनेवाले बुद्धिमान् सोमदत्तके पुत्रकी ध्वजामें यज्ञस्तम्भका चिन्ह दीखता था, वह यज्ञस्तम्भ सूर्यकी समान झमझमा रहा था तथा सुवर्णका वनाहुआ था और उसमें चन्द्रमाका चिन्हभी था राजसूय यज्ञमें जैसे ऊँचा यज्ञ-

तु महाराज राजतो द्विरदो महान् ॥२४॥ केतुः काचनचित्राङ्गैर्मयूरैरुपशोभितः । स केतुः शोभयामास सैन्यं ते भरतर्षभ ॥२५॥ यथा श्वेतो महानागो देवराजचमूं तथा । नागो मणिमयो राज्ञो ध्वजः कनकसम्वृतः ॥ २६ ॥ किङ्किणीशतसंह्रादो भ्राजंश्चित्रे रथोत्तमे । व्यभ्राजत भृशं राजन् पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ २७ ॥ ध्वजेन महता संख्ये कुरूणामृषभस्तदा । नवैते तव वाहिन्यामुच्छ्रिताः परमध्वजा ॥ २८ ॥ व्यदीपयंस्ते पृतनां युगान्तादित्यसन्निभाः । दशमस्त्वर्जुनस्यासीदेक एव महाकपिः ॥ २९ ॥ अदीप्यतार्जुनो येन हिमवानिव वह्निना । ततश्चित्राणि शुभ्राणि सुमहान्ति महारथाः ॥ ३० ॥ कार्मुकाण्याददुस्तूर्णमर्जुनार्थे परंतपाः । तथैव धनुरायच्छत् पार्थः शत्रुविनाशनः ॥ ३१ ॥ गांडीवं

स्तम्भ सुशोभित होता है, तैसे ही सोमदत्तके पुत्रकी ध्वजाका दण्ड भी सुशोभित होरहा था और हे महाराज ! सुवर्णसे चित्रित अङ्गोंवाले मयूरोंसे घिरेहुए चान्दीके हाथीसे चिन्हित शल्यकी ध्वजा, इन्द्रकी सेनाको सुशोभित करतेहुए स्वेत हाथी ऐरावतकी समान, तुम्हारी सव सेनाको सुशोभित कररही थी, और हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रकी सैंकडों घुँघुरुओंसे झन झन करतीहुई ध्वजामें सुवर्णकी पत्तर पर मणियोंसे हाथी वनायागया था, हे राजन् ! उस वडीभारी ध्वजासे कुरुश्रेष्ठ तुम्हारा पुत्र वडा ही दिपरहा था, तुम्हारी सेनामें प्रलयकालकी अग्निकी समान ये बड़े २ नौ ध्वजदण्ड खड़े हुए थे और दशवाँ एक अर्जुनका वानरके वडेभारी चित्रसे चिन्हित ध्वजदण्ड था २२-२९ उस ध्वजदंडसे अर्जुन, अग्निसे शोभायमान हिमाचलकी समान, शोभायमान होरहा था तदनन्तर शत्रुतापन महारथियोंने अर्जुनको मारनेके लिये वहुतसे बड़े२ और चमकतेहुए वाण उठाये, उधर हे राजन् ! तुम्हारे अन्यायके कारण दिव्य कर्म करनेवाले शत्रुनाशक

दिव्यकर्मा तद्राजन् दुर्मन्त्रिते तव । तवापराधाद्राराजानो निहता बहुशो युधि ।३२। नानादिग्भ्यः समाहूताः सहयाः सरथद्विपाः । तेषामासीद् व्यतिक्षेपो गर्जतामितरेतरम् ।३३॥ दुर्योधनमुखानां च पाण्डूनामृषभस्य च । तत्राद्भुतं परश्चक्रे कौन्तेयः कृष्णसारथिः३४ यदेको बहुभिः सार्द्धं समागच्छदभीतवत् । अशोभत महाबाहुर्गाण्डीवं विक्षिपन् धनुः ॥ ३५ ॥ जिगीषुस्तान्नरव्याघ्रो जिघांसुश्च जयद्रथम् । तत्रार्जुनो नरव्याघ्रः शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ॥ ३६ ॥ अदृश्यांस्तावकान् योधान् प्रचक्रे शत्रुतापनः । ततस्तेपि नरव्याघ्राः पार्थं सर्वे महारथाः ॥ ३७ ॥ अदृश्यं समरे चक्रुः सायकौघैः समन्ततः । सञ्छ्रते नरसिंहैस्तु कुरूणामृषभेर्जुने । महानासीत्समुद्भूतस्तस्य सैन्यस्य निःस्वनः३८पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः१०५

अर्जुनने भी गांडीव धनुष हाथमें उठाया,हे राजन्! सब कलहका कारण तुम्हारा उलटा विचार है, तुम्हारे ही अपराधसे इस युद्धमें बहुतसे राजे मारेगये ॥ ३०–३२ ॥ तुम्हारे पुत्रके दिशा विदिशाओंसे बुलाए हुए घोड़े रथ और हाथियोंसहित बहुतसे राजे लड़नेके लिये आये थे, उन दुर्योधन आदि राजे और पाण्डवोंमें श्रेष्ठ अर्जुनका बडी २ गर्जनाओंके साथ युद्ध होना आरम्भ होगया, इस युद्धमें कृष्ण जिसके सारथी बने थे, उस अर्जुनने परम आश्चर्यजनक पराक्रम करके दिखाया महाबाहु अर्जुन अकेला ही बहुतसे योधाओंके सामने निडर होकर घूमने लगा और नरोंमें व्याघ्रसमान अर्जुन उनको जीतनेकी तथा जयद्रथको मारनेकी इच्छासे गाण्डीव धनुषमेंसे बाण छोडने लगा, हजारों बाणोंकी मारसे तुम्हारे योधाओंको ढकदिया, तब उन नरव्याघ्र महारथियोंने भी चारों ओरसे बाणोंकी मारामार चलाकर अर्जुनको ढकदिया,जब कौरवपक्षके नरसिंहोंने कुरुश्रेष्ठ अर्जुनको ढकदिया, उस समय (तुम्हारी) सेनामें बडाभारी सिंहगर्जन होनेलगा३५–३८एकसौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त१०५

धृतराष्ट्र उवाच । अर्जुने सैन्धवं प्राप्ते भारद्वाजेन सम्वृताः । पञ्चालाः कुरुभिः सार्द्धं किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच। अपराह्णे महाराज संग्रामे लोमहर्षणे । पञ्चालानां कुरूणां च द्रोणद्यूतमवर्त्तत ॥ २ ॥ पञ्चाला हि जिघांसन्तो द्रोणं संहृष्टचेतसः । अभ्यमुञ्चन्त गर्जन्तः शरवर्षाणि मारिष ॥ ३ ॥ ततस्तु तुमुलस्तेषां संग्रामोवर्त्तताद्भुतः । पञ्चालानां कुरूणां च घोरो देवासुरोपमः ॥४ ॥ सर्वे द्रोणरथं प्राप्य पञ्चालाः पाण्डवैः सह । तदनीकं बिभित्सन्तो महास्त्राणि व्यदर्शयन्५द्रोणस्य रथपर्यन्तं रथिनो रथमास्थिताः।कम्पयन्तोभ्यवर्पन्त वेगमास्थाय मध्यमम्६ तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः। प्रवपन्निशितान् बाणान्महेन्द्राशनिसन्निभान्७तन्तु प्रत्युद्ययौ शीघ्रं क्षेमधूर्त्तिर्महायशाः।

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे सञ्जय ! जब अर्जुन सिंधुराजकी ओरको चलागया, उस समय द्रोणाचार्यके रोकेहुए पाञ्चाल सेनाके राजाओंने कौरवोंके साथ किसप्रकार युद्ध किया था? यह भी सुना ॥ १ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि–हे महाराज ! तीसरे पहरके समय द्रोणाचार्यके लिये कौरव पांचालोंमें रोमाञ्च खड़े करनेवाला युद्ध होनेलगा, ॥ २ ॥ हे राजन् ! आनन्दमें भरे पांचाल राजे द्रोणको मारनेकी इच्छासे बडीभारी गर्जना करते हुए उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३ ॥ उस समय पांचालराजे और कौरवोंमें देवासुरसंग्रामकी समान महाभयङ्कर बडा अद्भुत तुमुल युद्ध होनेलगा ॥ ४ ॥ सब पंचाल राजे पांडवोंके साथमें रहकर द्रोणके रथके पास जाने और उनकी सेनाको तोडनेके लिये बड़े २ अस्त्रोंको छोडने लगे ॥५॥ रथमें बैठेहुए वे पांचाल रथी, पृथ्वीको कँपाते हुए धीरे २ रथको दौडाकर द्रोणके समीप पहुँचगए ॥ ६ ॥ पहिले ही सपाटेमें केकयोंका महारथी बृहत्क्षत्र इन्द्रके वज्रकी समान तीक्ष्ण बाणों

विमुञ्चन्निशितान् बाणान् शतशोथ सहस्रशः ॥ ८ ॥ धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः । त्वरितोभ्यद्रवत्तूर्णं महेन्द्र इव शम्बरम् ॥ ९ ॥ तमापतन्तं सहसा व्यादितास्यमिवान्तकम् । वीरधन्वा महेष्वासस्त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ १० ॥ युधिष्ठिरं महाराजं जिगीषुं समवस्थितम् । सहानीकं ततो द्रोणो न्यवारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥ नकुलं कुशलं युद्धे पराक्रान्तं पराक्रमी । अभ्यगच्छत् समायान्तं विकर्णस्ते सुतः प्रभो ॥ १२ ॥ सहदेवं तथायान्तं दुर्मुखः शत्रुकर्षणः । शरैरनेकसाहस्रैः समवाकिरदाशुगैः ॥ १३ ॥ सात्यकिन्तु नरव्याघ्रं व्याघ्रदत्तस्त्ववारयत् । शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैः कम्पयन् वै मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥ द्रौपदेयान्नरव्याघ्रान्मुञ्चतः सायकोत्तमान् । संरब्धान् रथिनः श्रेष्ठान् सौमदत्तिरवारयत् ॥ १५ ॥

को छोडताहुआ द्रोणके सामने चढआया ॥ ७ ॥ उस ही समय शीघ्र ही महायशस्वी क्षेमधूर्ति सैंकडों सहस्रों तेजवाणोंको छोडता हुआ उसके सामने आकर डटगया ॥ ८ ॥ चेदियोंमें श्रेष्ठ अतिबली धृष्टकेतु भी, शम्बरासुरके ऊपर दौडनेवाले महेन्द्रकी समान द्रोणके ऊपर जाचढा ॥ ९ ॥ मुख फैलाएहुए कालकी समान एकायकी उसको आताहुआ देखकर, महाधनुषधारी वीरधन्वा फुर्तीसे उसके सामने डटगया ॥ १० ॥ महाराज युधिष्ठिर विजयकी इच्छासे आकर खड़े होगये, परन्तु उनको पराक्रमी द्रोणने सेनासहित आगे वढनेसे रोकदिया ॥ ११ ॥ हे प्रभो! युद्धकुशल पराक्रमी नकुलको आते देखकर तुम्हारा पराक्रमी पुत्र विकर्ण उससे लड़नेको गया ॥ १२ ॥ इसीप्रकार सहदेवको आते देख शत्रुनाशी दुर्मुख उसके सामने डटगया और सहस्रों तेज वाण वरसानेलगा ॥ १३ ॥ नरव्याघ्र सात्यकिको व्याघ्रदत्तने, खूब सानपर धरेहुए तेज वाणोंसे वारम्वार कँपाकर आगे वढनेसे रोकदिया ॥ १४ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ, क्रोधमें भरकर वाण छोड़ते

भीमसेनं तदा क्रुद्धं भीमरूपो भयानकः । प्रत्यवारयदायान्तमार्ष्यशृंगिर्महारथः ॥ १६ ॥ तयोः समभवद्युद्धं नरराक्षसयोर्मृधे । यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोर्नृप ॥ १७ ॥ ततो युधिष्ठिरो द्रोणं नवत्या नतपर्वणाम् । आजघ्ने भरतश्रेष्ठः सर्वमर्मसु भारत १८ तं द्रोणः पञ्चविंशत्या निजघान स्तनान्तरे । रोपितो भरतश्रेष्ठ कौन्तेयेन यशस्विना ॥ १९ ॥ भूय एव तु विंशत्या सायकानां समाचिनोत् । साश्वसूतध्वजं द्रोणः पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥२०॥ तान् शरान् द्रोणमुक्तांस्तु शरवर्षेण पाण्डवः । अवारयत धर्मात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥२१॥ ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य संयुगे । चिच्छेद समरे धन्वी धनुस्तस्य महात्मनः ॥ २२ ॥ अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः । शरैरनेकसाहस्रैः पूरयामास

हुए नरव्याघ्र द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको सौमदत्तिने आगे वढनेसे रोक दिया ॥१५॥ क्रोधमें भरकर आगेको वढतेहुए भीमसेनको, भयङ्कररूपवाला भीमपराक्रमी महारथी राक्षस आर्ष्यशृङ्ग रोकने लगा ॥ १६ ॥ उन राक्षस और मनुष्योंका हे राजन् ! जैसे पहिले रामरावणमें युद्ध हुआ था, तैसा ही युद्ध होनेलगा १७ हे भारत ! तदनन्तर भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिरने द्रोणके सब मर्मस्थानों में नब्भै वाण मारे ॥ १८ ॥ इसपर यशस्वी युधिष्ठिरसे रुष्टहुए द्रोणने उनके स्तनोंके वीचमें पच्चीस वाण मारे ॥ १९ ॥ द्रोणने सव धनुषधारियोंके सामने ही फिर पच्चीस वाण मारकर सारथी ध्वजा और घोड़ों सहित युधिष्ठिरको घायल करदिया ॥ २० ॥ परन्तु धर्मात्मा युधिष्ठिरने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए द्रोणके छोड़ेहुए उन वाणोंको अपनी वाणवर्षासे दूर फेंकदिया ॥२१॥ तव तो द्रोणको वड़ा क्रोध चढा और उन्होंने महात्मा युधिष्ठिर के धनुषको काटडाला ॥ २२ ॥ तदनन्तर इन टूटेहुए धनुषवाले युधिष्ठिरको द्रोणने फुर्तीसे सहस्रों वाण मारकर चारों ओरसे

सर्वतः ॥ २३ ॥ अदृश्यं वीक्ष्य राजानं भारद्वाजस्य सायकैः ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त हतमेव युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥ केचिच्चैनममन्यन्त
तथैव विमुखीकृतम् । ततो राजेति राजेन्द्र ब्राह्मणेन महात्मना २५
स कृच्छ्रं परमं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः । त्यक्त्वा तत् कार्मुकं
छिन्नं भारद्वाजेन संयुगे ॥ २६ ॥ आददेऽन्यद्धनुर्दिव्यं भास्वरं
वेगवत्तरम् । ततस्तान् सायकांस्तत्र द्रोणक्षुन्नान् सहस्रशः ॥२७॥
चिच्छेद समरे वीरस्तदद्भुतमिवाभवत् । छित्वा तु ताञ्छरान्राजन्
क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २८ ॥ शक्तिं जग्राह समरे गिरीणामपि
दारिणीम् । स्वर्णदण्डां महाघोरामष्टघण्टां भयावहाम् ॥ २९ ॥
समुत्क्षिप्य च तां हृष्टो ननाद बलवद्बली । नादेन सर्वभूतानि
त्रासयन्निव भारत ॥ ३० ॥ शक्तिं समुद्यतां दृष्ट्वा धर्मराजेन

ढकदिया ॥ २३ ॥ द्रोणके बाणोंसे युधिष्ठिरको ढकाहुआ देख
कर सब लोगोंने समझा कि–युधिष्ठिर मारेगये ॥ २४ ॥
हे राजन् ! उस समय किसीने समझा कि–राजा युधिष्ठिर हार
कर भागगये, कितनोंहीने समझा कि–महात्मा ब्राह्मण द्रोणने
उनको मारडाला ॥ २५ ॥ इससे धर्मराज युधिष्ठिरको बडा
दुःख हुआ और उन्होंने रणमें द्रोणाचार्यके काटेहुए धनुषको
फेंकदिया ॥ २६ ॥ तथा एक चमकता हुआ, वेगवान् दिव्य
धनुष हाथमें लिया, तदनन्तर उन वीर युधिष्ठिरने द्रोणके छोडे
हुए सहस्रों बाणोंको काटडाला, यह एक आश्चर्यजनक घटना
हुई, उन बाणोंको काटडालने पर हे राजन् ! क्रोधसे लाल २
नेत्रोंवाले युधिष्ठिरने पर्वतोंको भी विदीर्ण करनेवाली, सुवर्णके
दण्डे और आठ घण्टोंवाली एक महाघोर भयदायक गदाको
हाथमें लिया और बली युधिष्ठिर उस गदाको द्रोणके ऊपर फेंक
कर हे भारत ! सब भूतोंको त्रस्तसे करतेहुए बड़े बलीकी समान
गर्जनेलगे, और प्रसन्न होनेलगे ॥ २७–३० ॥ जब धर्मराजने

संयुगे । स्वस्ति द्रोणाय सहसा सर्वभूतान्यथाब्रुवन् ॥ ३१ ॥ सा राजभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसन्निभा । प्रज्वालयन्ती गगनं दिशः सप्रदिशस्तथा ॥ ३२ ॥ द्रोणान्तिकमनुप्राप्ता दीप्तास्या पन्नगी यथा । तामापतन्तीं सहसा दृष्ट्वा द्रोणो विशाम्पते ॥ ३३ ॥ प्रादुश्चक्रे ततो ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदाम्वरः । तदस्त्रं भस्मसात् कृत्वा तां शक्तिं घोरदर्शनाम् ॥ ३४ ॥ जगाम स्यन्दनं तूर्णं पाण्डवस्य यशस्विनः । ततो युधिष्ठिरो राजा द्रोणास्त्रं तत् समुद्यतम् ॥ ३५ ॥ अशामयन् महाप्राज्ञो ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष । विध्वा तञ्च रणे द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ३६ ॥ क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेदास्य महद्धनुः । तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ३७ गदां चिक्षेप सहसा धर्मपुत्राय मारिष । तामापतन्तीं सहसा गदां दृष्ट्वा युधि-

शक्ति उठायी, उस समय सब प्राणी भयभीत होकर एकसाथ बोलउठे, कि-द्रोणका कल्याण हो ॥ ३१ ॥ राजा युधिष्ठिरकी भुजाओंसे, कैंचलीसे छूटेहुए सर्पकी समान, छूटीहुई वह गदा, जलतेहुए मुखवाली सर्पिणीकी समान, आकाश तथा दिशा विदिशाओंको प्रकाशित करतीहुई द्रोणके पासको आनेलगी, परन्तु हे राजन्! अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणने उस गदाको सहसा आते देखकर ब्रह्मास्त्र प्रकटकिया, वह ब्रह्मास्त्र उस भयानक रूपवाली शक्तिको भस्म करके शीघ्रतासे यशस्वी युधिष्ठिरके रथकी ओरको चला; द्रोणके ब्रह्मास्त्रको आता देखकर हे राजन्! महाबुद्धिमान् युधिष्ठिरने उसको ब्रह्मास्त्र मारकर शान्त करदिया और स्वयं भी रणमें द्रोणको पाँच बाणोंसे बींधकर युधिष्ठिरने क्षुरप्र नामक तेज बाणसे इनके बड़ेभारी धनुषको काटडाला, क्षत्रियमर्दन द्रोणने उस टूटेहुए धनुषको फेंककर हे राजन्! धर्मपुत्र युधिष्ठिरके गदा मारी, सहसा गदाको आती देख युधिष्ठिर क्रोधमें भरगए, हे परन्तप! उन्होंने भी गदापर गदाको ही

छिरः ३८ गदामेवाग्रहीत् क्रुद्धश्चिक्षेप च परन्तप । ते गदे सहसा-
मुक्ते समासाद्य परस्परम् ३९. संघर्षात् पावकं मुक्त्वा समेयातां
महीतले । ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य मारिष ॥ ४० ॥
चतुर्भिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्हयान् जघ्ने शरोत्तमैः । चिच्छेदैकेन भल्लेन
धनुश्चेन्द्रध्वजोपमम् ॥ ४१ ॥ केतुमेकेन चिच्छेद पाण्डवञ्चार्दयत्
त्रिभिः । हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य युधिष्ठिरः ॥ ४२ ॥ तस्था-
वूर्ध्वभुजो राजा व्यायुधो भरतर्षभ । विरथं तं समालोक्य व्या-
युधञ्च विशेषतः ॥ ४३ ॥ द्रोणो व्यामोहयच्छत्रून् सर्वसैन्यानि
वा विभो । मुञ्चंश्चेषुगणांस्तीक्ष्णान् लघुहस्तो दृढव्रतः ॥ ४४ ॥
अभिदुद्राव राजानं सिंहो मृगमिवोल्बणः । तमभिद्रुतमालोक्य
द्रोणेनामित्रघातिना ॥ ४५ ॥ हाहेति सहसा शब्दः पाण्डूनां सम-

फेंका वे छूटी हुई दोनों गदाएँ आपसमें टकरानेलगीं, टकराने के कारण उनमेंसे चिनगारियें निकलनेलगीं और थोडी देरबाद वे दोनों पृथ्वीमें गिरपडीं, हे राजन् ! तब तो द्रोणाचार्यको युधिष्ठिरके ऊपर बडा ही क्रोध चढा और उन्होंने बाणोंमें उत्तम चार बाण छोडकर युधिष्ठिरके घोडोंको मारडाला और एक भल्ल नामक बाण मारकर इन्द्रध्वजकी समान युधिष्ठिरके धनुषको काटकर भूमिमें गिरादिया ॥ ३२-४१ ॥ तथा एक बाणसे युधिष्ठिरकी ध्वजाको काटडाला और तीन बाणोंसे उनको भी उत्पीडित किया, युधिष्ठिर घोडोंके मरजानेके कारण रथसे नीचे उतर पडे और शस्त्ररहित भुजाको ऊँची करके रणमें खडे होगए, राजा युधिष्ठिरको रथरहित और विशेषतः शस्त्रहीन देखकर हे राजन् ! दृढव्रतधारी तथा फुर्तीले हाथवाले द्रोणने धर्मराजकी सेना तथा दूसरी सेनाओंको तीक्ष्ण बाण मारकर व्याकुल करदिया ॥४२-४४॥ तब तो जैसे भयङ्कर सिंह मृगके ऊपर झपटता हो, इसप्रकार शत्रुनाशक द्रोण युधिष्ठिरकी

जायत । हतो राजा हतो राजा भारद्वाजेन मारिष ॥४६॥ इत्यासीत् सुमहान् शब्दः पाण्डुसैन्यस्य भारत । ततस्त्वरितमारुह्य सहदेवरथं नृपः। अपायाज्जवनैरश्वैः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरापयाने षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

सञ्जय उवाच । बृहत्क्षत्रमथायान्तं कैकेयं दृढविक्रमम् । क्षेमधूर्त्तिर्महाराज विव्याधोरसि मार्गणैः ॥ १ ॥ बृहत्क्षत्रस्तु तं राजा नवत्या नतपर्वणाम् । आजघ्ने त्वरितो राजन् द्रोणानीकं बिभित्सया ॥ २ ॥ क्षेमधूर्त्तिस्तु संक्रुद्धः कैकेयस्य महात्मनः । धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन ह ॥ ३ ॥ अथैनं छिन्नधन्वानं शरेणानतपर्वणा । विव्याध समरे तूर्णं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ॥४॥

ओरको दौडपड़े, इस समय पाण्डव एक साथ अरेरे ! ओहो ! ओहो ! करतेहुए बोल उठे, कि- द्रोणने राजा युधिष्ठिरको मार डाला, अरे ! राजाको मारडाला, हे राजन् ! इस समय पांडवोंकी सेनामें बडाभारी कोलाहल मचरहा था, और इतनेमें ही कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर घबडाकर सहदेवके रथपर चढ़गये तथा घोडोंको तेजीसे हाँककर रणमेंसे पीछेको हटआये ॥ ४५-४७ ॥ एक सौ छःवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०६ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज ! दृढ़पराक्रमी केकयराज बृहत्क्षत्रको आता देखकर क्षेमधूर्तिने बाण मार उसके हृदयको घायल करदिया ॥१॥ हे राजन् ! द्रोणकी सेनाको बखेर देनेकी इच्छासे बृहत्क्षत्रने नमीहुई गाँठवाले नब्बै बाण फुर्तीसे क्षेमधूर्तिके मारे ॥२॥ तब तो क्षेमधूर्तिको बडा क्रोध चढा और उसने तेज तथा पानी पिलाया हुआ भल्ल नामक बाण मारकर महात्मा केकयके धनुषको काटडाला ॥३॥ और फिर तुरन्त इस टूटेहुए धनुषवाले, सब रथियोंमें श्रेष्ठ बृहत्क्षत्रको नमीहुई गाँठवाले बाणसे

अथान्यद्धनुरादाय बृहत्क्षत्रो हसन्निव । व्यश्वसूतरथञ्चक्रे क्षेमधूर्त्तिं महारथम् ५ ततोऽपरेण भल्लेन पीतन निशितेन च । जहार नृपतेः कायात् शिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ ६ ॥ तच्छिन्नं सहसा तस्य शिरः कुञ्चितमूर्द्धजम् । सकिरीटं महीं प्राप्य बभौ ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ७ ॥ तं निहत्य रणे हृष्टो बृहत्क्षत्रो महारथः । सहसाभ्यपतत्सैन्यं तावकं पार्थकारणात् ॥ ८ ॥ धृष्टकेतुं तथायान्तं द्रोणहेतोः पराक्रमी । वीरधन्वा महेष्वासो वारयामास भारत ॥ ९ ॥ तौ परस्परमासाद्य शरदंष्ट्रौ तरस्विनौ । शरैरनेकसाहस्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १० ॥ तावुभौ नरशार्दूलौ युयुधाते परस्परम् । महावने तीव्रमदौ वारणाविव यूथपौ ॥ ११ ॥ गिरिगह्वरमासाद्य शार्दूलाविव रोषितौ । युयुधाते महावीर्यौ परस्पर-

---

शीघ्र ही घायल करदिया ॥ ४ ॥ बृहत्क्षत्रने हँसते हँसते दूसरा धनुष उठाकर महारथी क्षेमधूर्तिको घोड़े सारथि और रथविहीन करदिया ॥५॥ फिर दूसरा पानी पिलायाहुआ तेज भल्ल नामका बाण मारकर क्षेमधूर्तिके कुण्डलोंसे चमकतेहुए शिरको धडसे काट गिराया ॥ ६ ॥ उसका सहसा कटाहुआ घुँघराले केशोंवाला और मुकुटसे सुशोभित मस्तक पृथ्वीमें, गिरकर आकाशसे गिरेहुए तारेकी समान शोभा पानेलगा ॥७॥ क्षेमधूर्तिको रणमें मारकर वृहत्क्षत्र परम प्रसन्न हुआ, महारथी वृहत्क्षत्र, पांडवोंके हितके लिये सहसा तुम्हारी सेनापर टूटपडा ॥८॥ द्रोणको मारनेलिये आगेको बढतेहुए धृष्टकेतुको, हे भारत ! महाधनुषधारी वीरधन्वा रोकनेलगा ॥ ९ ॥ बाणरूपी डाढवाले वे दोनों वेगवान् योधा एक दूसरेके सामने पहुँचकर आपसमें सहस्रों अस्त्रोंसे एक दूसरेको मारनेलगे ॥ १० ॥ वे दोनों नरशार्दूल महावनमें तीव्र मदवाले यूथपति दो हाथियोंकी समान आपसमें लडनेलगे ॥ ११ ॥ वे दोनों महावीर एक दूसरेको मारनेकी इच्छासे पहाडकी गुफाके

जिघांसया ॥ १२ ॥ तद्युद्धमासीत्तुमुलं प्रेक्षणीयं विशाम्पते । सिद्धचारणसंघानां विस्मयाद्भुतदर्शनम् ॥ १३ ॥ वीरधन्वा ततः क्रुद्धो धृष्टकेतोः शरासनम् । द्विधा चिच्छेद भल्लेन प्रहसन्निव भारत ॥ १४ ॥ तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं चेदिराजो महारथः । शक्तिं जग्राह विपुलां हेमदण्डामयस्मयीम् ॥ १५ ॥ तान्तु शक्तिं महावीर्यां दोर्भ्यामायम्य भारत । चिक्षेप सहसा यत्तो वीरधन्वरथम्प्रति ॥ १६ ॥ तया तु वीरघातिन्या शक्त्या त्वभिहतो भृशम् । निर्भिन्नहृदयस्तूर्णं निपपात रथान्महीम् ॥ १७ ॥ तस्मिन् विनिहते वीरे त्रैगर्त्तानां महारथे । बलन्तेऽभज्यन्त विभो पाण्डवेयैः समन्ततः ॥ १८ ॥ सहदेवे ततः षष्टिं सायकान् दुर्मुखोऽक्षिपत् । ननाद च महानादं तर्जयन् पाण्डवं रणे ॥ १९ ॥ माद्रेयस्तु ततः क्रुद्धो दुर्मुखश्च शितैः शरैः । भ्राता भ्रातरमायान्तं विव्याध प्रह-

भीतर क्रोधमें भरकर लडतेहुए सिंहोंकी समान, लडनेलगे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! वह तुमुल युद्ध सिद्ध और चारणोंके देखने योग्य और अतीव आरचर्यजनक था ॥ १३ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! कुपित हुए वीरधन्वाने हँसते २ भल्ल नामक बाण मारकर धृष्टकेतुके धनुषको काटडाला ॥ १४ उस टूटेहुए धनुषको छोडकर महारथी चेदिराजने सुवर्णके दण्डेवाली, केवल लोहेकी बडीभारी शक्ति उठाई ॥ १५ ॥ धृष्टकेतुने उस महाबलवती शक्तिको दोनों हाथोंसे उचका कर वीरधन्वाके रथपर फेंका ॥ १६ ॥ उस वीरघातिनी गदाके प्रहारसे वीरधन्वाकी छाती फटगयी और वह रथपरसे पृथ्वीपर गिरपडा ॥ १७ ॥ त्रिगर्तोंके वीरवर उस महारथीके मारेजाने पर हे विभो ! पाण्डवोंके योधा तुम्हारी सेनाको चारों ओरसे तित्तर बित्तर करनेलगे १८ तदनन्तर दुर्मुखने सहदेवके ऊपर साठ बाण छोड़े और रणमें सहदेवका अनादर कर बडी भारी गर्जना करनेलगा ॥ १९ ॥ तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए सहदेवने

सन्निव ॥ २० ॥ तं रणे रभसं दृष्ट्वा सहदेवं महाबलम् । दुर्मुखो नवभिर्बाणैस्ताडयामास भारत ॥ २१ ॥ दुर्मुखस्य तु भल्लेन छित्वा केतुं महाबलः । जघान चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः२२ अथापरेण भल्लेन पीतेन निशितेन ह । चिच्छेद सारथेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ २३ ॥ क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कौरवस्य महद्धनुः । सहदेवो रणे छित्वा तञ्च विव्याध पञ्चभिः२४ हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दुर्मुखो विमनास्तदा । आरुरोह रथं राजन्निरमित्रस्य भारत ॥ २५ ॥ सहदेवस्ततः क्रुद्धो निरमित्रं महाहवे । जघान पृतनामध्ये भल्लेन परवीरहा ॥ २६ ॥ स पपात रथोपस्थान्निरमित्रो जनेश्वरः । त्रिगर्त्तराजस्य सुतो व्यथयंस्तव वाहिनीम् ॥ २७ ॥ तन्तु हत्वा महाबाहुः सहदेवो व्यरोचत ।

हँसते२ आतेहुए भाई दुर्मुखको तीक्ष्ण वाणोंसे बींधडाला ।२०। हे भारत ! उस महाबली सहदेवको रणमें क्रुद्ध हुआ देखकर दुर्मुखने भी उसके नौ वाण मारे ॥२१॥ तब महाबली सहदेवने भल्ल नामक वाणसे दुर्मुखका ध्वजाको काट चार तीक्ष्ण वाणोंसे उसके चारों घोडोंको भी मारडाला ॥२२॥ तदनन्तर एक पानी पिलायाहुआ तेज वाण मारकर दुर्मुखके सारथिका चमकतेहुए मुकुटवाला मस्तक उडादिया ॥ २३ ॥ और सहदेवने रणमें एक तेज वाण मारकर दुर्मुखके बड़ेभारी धनुषको काटडाला, फिर उसको भी पाँच वाणोंसे बींधडाला ॥२४॥ हे भरतवंशी राजन् ! इस समय दुर्मुख मनमें बहुत ही खिन्न होगया और मरेहुए घोडोंवाले रथको छोड निरमित्रके रथमें जा बैठा ॥ २५ ॥ तब तो शत्रु वीरोंको मारनेवाले सहदेवको क्रोध आगया और उसने सेनाके मध्यमें निरमित्रके भल्लनामक वाण मारा २६ इससे वह त्रिगर्तराजका पुत्र नरपति निरमित्र रथकी बैठकमेंसे नीचे गिरपड़ा, उस समय तुम्हारी सेनामें शोक व्यापगया ॥ २७ ॥ महाबाहु

यथा दाशरथी रामः खरं हत्वा महाबलम् ॥ २८ ॥ हाहाकारो महानासीत् त्रिगर्त्तानां जनेश्वर । राजपुत्रं हतं दृष्ट्वा निरमित्रं महारथम् ॥ २९ ॥ नकुलस्ते सुतं राजन् विकर्णं पृथुलोचनम् । मुहूर्त्ताज्जितवान् लोके तदद्भुतमिवाभवत् ॥३०॥ सात्यकिं व्याघ्रदत्तस्तु शरैः सन्नतपर्वभिः । चक्रेऽदृश्यं साश्वसूतं सध्वजं पृतनान्तरे ॥ ३१ ॥ तान्निवार्य शराञ्छूरः शैनेयः कृतहस्तवत् । साश्वसूतध्वजं वाणैर्व्याघ्रदत्तमपातयत् ॥ ३२ ॥ कुमारे निहते तस्मिन् मागधस्य सुते प्रभो । मागधाः सर्वतो यत्ताः युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३३ ॥ विसृजन्तः शरांश्चैव तोमरांश्च सहस्रशः । भिन्दिपालांस्तथा प्रासान् मुद्गरान् मुसलानपि ॥ ३४ ॥ अयोधयन्रणे शूराः सात्वतं युद्धदुर्मदम् । तांस्तु सर्वान् स बलवान्

सहदेव उसका वध करके, जैसे महाबली खरको मारकर रामने शोभा पाई थी तैसे ही शोभा पाने लगा ॥ २८ ॥ हे जनेश्वर ! महारथी राजकुमार निरमित्रको मराहुआ देखकर त्रिगर्तोंकी सेनामें वडाभारी हाहाकार मचगया ॥ २९ ॥ हे राजन् ! इस संग्राममें नकुलने विशाल नेत्रोंवाले तुम्हारेपुत्र विकर्णको एक क्षण भरमें ही जीत लिया, यह आश्चर्यसा हुआ ॥ ३० ॥ व्याघ्रदत्तने सेनाके वीचमें ही नमीहुई गाँठवाले वाणोंसे घोड़े और सारथी सहित सात्यकिको ढकदिया ॥ ३१ ॥ तब शिनिपुत्र सात्यकीने वाण मारकर हाथकी फुर्तीसे उन सब वाणोंको पीछेको हटादिया और दूसरे वाण मारकर घोड़े, सारथि, रथ और ध्वजासहित उसका नाश करडाला ॥ ३२ ॥ हे प्रभो ! मगधराजके पुत्र उस राजकुमारके मारेजाने पर मगधराजके योधा शस्त्रादिसे सुसज्जित हो चारों ओरसे युयुधान पर टूटपड़े ॥ ३३ ॥ वे सब वीर, युद्धदुर्मद सात्यकिके ऊपर तोमर, वाण सहस्रों भिन्दिपाल, प्रास मुद्गर और मूसल फेंककर उससे युद्ध करनेलगे, वलवान्

सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ ३५ ॥ नातिकृच्छ्राद्धसन्नेव विजिग्ये पुरुषर्षभः ।
मागधान् त्वरितो दृष्ट्वा हतशेषान् समन्ततः ॥ ३६ ॥
बलन्तेऽभज्यत विभो युयुधानशरार्दितम् । नाशयित्वा रणे सैन्यं
त्वदीयं माधवोत्तमः ॥ ३७ ॥ विधुन्वानो धनुःश्रेष्ठं व्यभ्राजत
महायशाः । भज्यमानं बलं राजन् सात्वतेन महात्मना ॥ ३८ ॥
नाभ्यवर्त्तत युद्धाय त्रासितं दीर्घबाहुना । ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धः
सहसोद्वृत्य चक्षुषी । सात्यकिं सत्यकर्माणं स्वयमेवाभिदुद्रुवे ३९

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकियुद्धे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

सञ्जय उवाच । द्रौपदेयान्महेष्वासान् सौमदत्तिर्महायशाः ।
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ १ ॥ ते पीडिता भृशं
तेन रौद्रेण सहसा विभो । प्रमूढा नैव विविदुर्मृधे कृत्यं स्म
किञ्चन ॥ २ ॥ नाकुलिश्च शतानीकः सौमदत्तिं नरर्षभम् । द्वाभ्यां

युद्धदुर्मद, पुरुषश्रेष्ठ सात्यकिने हँसकर बडी सहजमें उन
सबोंको जीतलिया, मरनेसे बचेहुए मागधोंको चारों ओरको
भागते देखकर महात्मा सात्यकिने तुम्हारी सेनाको बाणोंसे
मार२कर भगादिया उससमय महायशस्वी मधुवंशी सात्यकि हाथमें
के धनुषको घुमाताहुआ बडो ही शोभा पारहा था, हे राजन्! दीर्घबाहु
महात्मा सात्यकिके द्वारा भगाईहुई तुम्हारी व्याकुल सेनामें
कोई भी सात्यकिके सामने नहीं ठहरा यह देखकर द्रोणको बहुत
ही क्रोध चढा और वे आँखे चढा एक साथ सत्यपराक्रमी सात्यकि
के ऊपर टूटपड़े ॥३४-३९॥ एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त १०७

सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! महायशस्वी सोमदत्तके पुत्रने
महाधनुषधारी द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंमेंसे प्रत्येकको एकबारमें पाँच२
फिर सात २ बाणोंसे बींध डाला ॥ १ ॥ हे प्रभो ! सोमदत्तके
भयङ्कर पुत्रके प्रहारसे वे दिङ्मूढ होगए और रणमें क्या कर्त्तव्य है

विद्ध्वानदद्धृष्टः शराभ्यां शत्रुकर्षणः ॥ ३ ॥ तथेतरे रणे यत्तास्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः । विव्यधुः समरे तूर्णं सौमदत्तिममर्षणम् ४ स तान्प्रति महाराज चिक्षेप पञ्च सायकान् । एकैकं हृदि चाजघ्ने एकैकेन महायशाः ॥ ५ ॥ ततस्ते भ्रातरः पञ्च शरैर्विद्धा महात्मना । परिवार्य रणे वीरं विव्यधुः सायकैर्भृशम् ॥ ६ ॥ आर्जुनिस्तु हयांस्तस्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः । प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ ७ ॥ भैमसेनिर्धनुश्छित्त्वा सौमदत्तेर्महात्मनः । ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः ॥ ८ ॥ यौधिष्ठिरिर्ध्वजं तस्य छित्त्वा भूमावपातयत् । नाकुलिश्चाथ यन्तारं रथनीडादपाहरत् ९ साहदेविस्तु तं ज्ञात्वा भ्रातृभिर्विमुखीकृतम् । क्षुरप्रेण शिरो राज-

इसको भूलगए ॥२॥ शत्रुकर्षण नकुलका पुत्र शतानीक, नरश्रेष्ठ सोमदत्तके पुत्रको दो वाणोंसे वींधकर परमप्रसन्न हो गर्जने लगा३तथा दूसरे तयार हुए द्रौपदीके चारो पुत्रोंने भी सोमदत्तके क्रोधी पुत्रको तीन२ सीधे जानेवाले वाणोंसे घायल करदिया४ हे महाराज!महायशस्वी सोमदत्तके पुत्रने उनके ऊपर पाँच वाण छोड़े और एक२ वाणसे प्रत्येकके हृदयको वींधडाला५ महात्मा सोमदत्तके पुत्रके वाणोसे घायलहुए वे पाँचों भाई उसको चारों ओरसे घेर उसके ऊपर वहुतसे वाण वरसानेलगे ॥६॥ क्रोधमें भरेहुए अर्जुनके पुत्रने चार तेजवाणसे उसके चारों घोडोंको यमसदनमें भेजदिया॥७॥ भीमसेनके पुत्रने महात्मा सोमदत्तके पुत्रके धनुषको काटकर वडी जोरसे गर्जनाकी और फिर उसको तीक्ष्ण वाणोंसे वींधडाला ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरके पुत्रने उसकी ध्वजाको काटकर भूमिपर गिरादिया,फिर नकुलके पुत्र शतानीकने उसके सारथीको रथके अड्डे परसे नीचे गिरादिया ॥९॥ और सहदेवके पुत्रने जव देखा, कि–मेरे भाइयोंने शत्रुका पराजय कर उसको विमुख करदिया है, तव उसने छुरेके आकारका वाण मारकर

ञ्चिनश्चकर्त्त महात्मनः ॥ १० ॥ तच्छिरोन्यपतद्भूमौ तपनीयविभूषितम् । भ्राजयत्तं रणोद्देशं बालसूर्यसमप्रभम् ॥ ११ ॥ सौमदत्तेः शिरो दृष्ट्वा निहतं तन्महात्मनः । वित्रस्तास्तावका राजन् प्रदुद्रुवुरनेकधा ॥ १२ ॥ अलम्बुषस्तु समरे भीमसेनं महाबलम् । योधयामास संक्रुद्धो लक्ष्मणं रावणिर्यथा ॥ १३ ॥ संप्रयुद्धौ रणे दृष्ट्वा तावुभौ नरराक्षसौ । विस्मयः सर्वभूतानां प्रहर्षः समजायत १४ आर्ष्यशृङ्गिं ततो भीमो नवभिर्निशितैः शरैः । विव्याध प्रहसन् राजन् राक्षसेन्द्रममर्षणम् ॥ १५ ॥ तद्रक्षः समरे विद्धा कृत्वा नादं भयावहम् । अभ्यद्रवत्ततो भीमं ये च तस्य पदानुगाः ॥ १६ ॥ स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः । भैमान् परिजघानाशु रथांस्त्रिशतमाहवे ॥ १७ ॥ पुनश्चतुःशतान् हत्वा भीमं विव्याध

उस महात्माके शिरको काटडाला ॥ १० ॥ सुवर्णसे भूषित बालसूर्यकी समान कान्तिवाला उसका शिर रणभूमिको प्रकाशित करता हुआ पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! महात्मा सोमदत्तके पुत्रके शिरको गिरा हुआ देखकर तुम्हारे सैनिक भयभीत होगए और अनेकों मार्गोंमेंको भागनेलगे ॥ १२ ॥ जैसे लक्ष्मणसे मेघनाद लडा था, इसीप्रकार क्रोधमें भराहुआ अलम्बुष समरमें महाबली भीमसेनसे लडनेलगा ॥ १३ ॥ युद्धमें मनुष्य और राक्षसको लडते देखकर मनुष्योंको बडा ही विस्मय और हर्षहुआ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! ऋष्यशृंगके पुत्र क्रोधी राक्षस अलम्बुषने हँसकर नौ तीखे बाणोंसे भीमसेनको बींधडाला ॥ १५ ॥ तदनन्तर वह राक्षस भीमसेनको बाणोंसे बींधकर बडी भयानक गर्जना करताहुआ उसके ऊपर झपटा और उसके अनुचर भी उसके साथ २ दौड़े ॥ १६ ॥ उस राक्षसने नमीहुई गांठवाले पाँच बाणोंसे भीमसेनको बींधकर उसके तीन सौ रथियोंको युद्धमें मारडाला ॥ १७ ॥ और उसने फिर चारसौ योधाओंको

पत्रिणा । सोऽतिविद्धस्तथा भीमो राक्षसेन महावलः ॥ १८ ॥ निपपात रथोपस्थे मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः । प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मारुतिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १९ ॥ विकृष्य कार्मुकं घोरं भारसाधनमुत्तमम् । अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैरर्दयामास सर्वतः ॥ २० ॥ स विद्धो वहुभिर्वाणैर्नीलाञ्जनचयोपमः । शुशुभे सर्वतो राजन् प्रफुल्ल इव किंशुकः ॥ २१ ॥ स वध्यमानः समरे भीमचापच्युतैः शरैः । स्मरन् भ्रातृवधञ्चैव पाण्डवेन महात्मना ॥ २२ ॥ घोरं रूपमथो कृत्वा भीमसेनमभाषत । तिष्ठेदानीं रणे पार्थ पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ २३ ॥ वको नाम सुदुर्वुद्धे राक्षसप्रवरो वली । परोक्षं मम तद् वृत्तं यद् भ्राता मे हतस्त्वया ॥२४॥ एवमुक्त्वा ततो भीम-

---

मारकर भीमके एक वाण मारा, महावली राक्षसके वाणके प्रहारसे अतीव घायलहुआ भीमसेन मूर्छित होकर रथकी वैठक पर गिरपड़ा कुछ समयके अनन्तर भीमसेन सचेत हुआ और पवनपुत्र भीमसेन क्रोधमें भर एक वड़े भारी भारको सह सकने वाले वड़े धनुषको खेंचकर अलम्बुष राक्षसको चारों ओरसे वाणोंसे पीडित करनेलगा ॥ १८-२० ॥ काजलके पर्वतकी समान शरीरवाला राक्षस अलम्बुष, सव ओरसे वाणोंसे विंध कर खिलेहुए टेसूके वृक्षकी समान दीखनेलगा ॥२१॥ संग्राममें महात्मा भीमसेन धनुष पर वाण चढाकर उसको माररहा था, उस समय उसको स्मरण आया कि-इस भीमसेनने ही मेरे भाई वकको मारडाला है यह विचार कर उसने अपने भयङ्कर रूपको धारण किया और भीमसेनसे वोला, कि-अरे पार्थ! तू इस समय रणमें खड़ा रहकर और मेरे पराक्रमको देख ! हे दुर्वुद्धे ! तूने वक नामक महावली राक्षसको मारडाला था, परन्तु उस समय मैं वहाँ नहीं था, (नहीं तो तुझे वताता) परन्तु आज तू उसके फलको पावेगा ॥ २२-२३ ॥ भीमसेनसे इसप्रकार वकभक्त

मन्तर्द्धानं गतस्तदा । महता शरवर्षेण भृशं तं समवाकिरत् ॥२५॥ भीमस्तु समरे राजन्नदृश्ये राक्षसे तदा । आकाशं पूरयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २६ ॥ स वध्यमानो भीमेन निमेषाद्रथमास्थितः जगाम धरणीञ्चैव क्षुद्रः खं सहसागमत् ॥ २७ ॥ उच्चावचानि रूपाणि चकार सुबहूनि च । अणुर्बृहत् पुनः स्थूलो नादं मुञ्चन्निवाम्बुदः ॥ २८ ॥ उच्चावचास्तथा वाचो व्याजहार समन्ततः । निपेतुर्गगनाच्चैव शरधाराः सहस्रशः ॥ २९ ॥ शक्तयः कणपाः प्रासाः शूलपट्टिशतोमराः । शतघ्न्यः परिघाश्चैव भिन्दिपालाः परश्वधाः ॥ ३० ॥ शिलाः खड्गा गुडाश्चैव ऋष्टिर्वज्राणि चैव ह । सा राक्षसविसृष्टा तु शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ॥ ३१ ॥ जघान पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् रणमूर्द्धनि । तेन पाण्डवसैन्यानां

करके वह राक्षस अन्तर्धान होगया और भीमसेनके ऊपर वहुतसे वाणोंकी वरसा करनेलगा ॥ २५ ॥ हे राजन्! जव राक्षस अन्तर्धान होगया, तव भीमसेनने नमीहुई गाँठवाले वाणोंसे आकाशको भरदिया ॥ २६ ॥ इसप्रकार भीमके वाणोंका प्रहार होनेपर वह राक्षस निमेषमात्रमें ही आकाशसे अपने रथपर आगया, तहाँसे पृथ्वीपर उतरपड़ा और फिर छोटासा रूप वनाकर दुसराकर आकाशमें उडगया॥२७॥वह एक क्षणमें छोटासा वन जाता था, और दूसरे क्षणमें वड़ा वन जाता था। फिर तीसरे क्षणमें ऊँचा और क्षणभरमें नीचा होजाता था तथा क्षणभरमें सूक्ष्म और वड़ा वनजाता था और क्षणमें स्थूलरूप धारणकर वादलोंकी समान गरजने लगता था ॥ २८ ॥ चारों ओरसे अनेकों प्रकारके कटुवचन वोलता था, उस समय उसकी छोड़ीहुई आकाशमेंसे सहस्रों वाणधारायें पडनेलगीं भाले, शूल, पट्टिश, तोमर, शतघ्नी, परिघ, भिंदिपाल, कुठार, शिलाएँ, तलवार, गुड़ और ऋष्टियोंकी वज्रकी समान दारुण वर्षा करनेलगा ॥३०–३१॥

सूदिता युधि वारणाः ॥ ३२॥ हयाश्च बहवो राजन् पत्तयश्च तथा पुनः । रथेभ्यो रथिनः पेतुस्तस्य नुन्नाः स्म सायकैः ॥ ३३ ॥ शोणितोदां रथावर्त्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम् । छत्रहंसां कर्दमिनीं बाहुपन्नगसंकुलाम् ॥ ३४ ॥ नदीं प्रावर्त्तयामास रक्षोगणसमाकुलाम् । वहन्तीं बहुधा राजंश्चेदिपाञ्चालसृञ्जयान् ॥ ३५ ॥ तं तथा समरे राजन् विचरन्तमभीतवत् । पाण्डवा भृशसम्विग्नाः प्रापश्यंस्तस्य विक्रमम् ॥ ३६ ॥ तावकानान्तु सैन्यानां प्रहर्षः समजायत । वादित्रनिनदश्चोग्रः सुमहान् रोमहर्षणः ॥ ३७ ॥ तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य पाण्डवः । नामृष्यत यथा नागस्तलशब्दं समीरितम् ॥ ३८ ॥ ततः क्रोधाभिताम्राक्षो निर्दहन्निव पावकः । सन्दधे त्वाष्ट्रमस्त्रं स स्वयं त्वष्टेव मारुतिः ॥३९॥

उस राक्षसकी कीहुई शस्त्रवर्षासे पाण्डुपुत्रके सैनिक रणके मुहानेपर मरकर गिरनेलगे और उसने पाण्डवोंकी सेनाके हाथियोंको तथा हे राजन्! सहस्रों पैदलोंको भी नष्ट करडाला और उस राक्षसके बाणोंके प्रहारसे रथी रथमेंसे (टपाटप) नीचे गिरनेलगे ॥ ३२-३३ ॥ हे राजन्! उस राक्षसने रणमें रक्तरूपजल, रथरूप भँवर, हाथीरूप ग्राहोंसे भरी, छत्ररूप हंसोंसे शोभित, मांसरूप कीचडसे भरपूर, बाहुरूप सर्पोंसे व्याप्त और राक्षसोंके झुण्डोंसे घिरीहुई रुधिरकी नदी बहादी, हे राजन्! उसमें अधिकतर चेदी, पाञ्चाल और सृञ्जय बहनेलगे ३४-३५ हे राजन्! उसको समरमें निडर हो विचरते देखकर और उसके पराक्रमको देखकर पाण्डव बड़े ही दुःखी होनेलगे ॥३६॥ और तुम्हारे योधा बड़े प्रसन्न हुए तथा तुम्हारी सेनामें हर्षसूचक बाजोंका बड़ा शब्द होनेलगा ॥३७॥ परन्तु हाथी जैसे तालीका शब्द सुनते ही क्रोधमें भरजाता है, तैसे ही भीमसेन तुम्हारी सेनाके उस दारुण शब्दको सह न सका ॥ ३८ ॥ और उस

ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन् समन्ततः । तैः शरैस्तव सैन्यस्य विद्रवः सुमहानभूत् ॥ ४० ॥ तदस्त्रं प्रेरितं तेन भीमसेनेन संयुगे। राक्षसस्य महामायां हत्वा राक्षसमार्दयत् ॥ ४१ ॥ स वध्यमानो बहुधा भीमसेनेन राक्षसः । सन्त्यज्य समरे भीमं द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥ तस्मिंस्तु निर्जिते राजन् राक्षसेन्द्रे महात्मना । अनादयन् सिंहनादैः पाण्डवाः सर्वतो दिशम् ॥ ४३ ॥ अपूजयन्मारुतिञ्च संहृष्टास्तं महाबलम् । प्रह्लादं समरे जित्वा यथा शक्रं मरुद्गणाः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषपराजये अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

सञ्जय उवाच । अलम्बुषं तथा युद्धे विचरन्तमभीतवत् ।

पवनपुत्र नेभस्म करनेको उद्यतहुए अग्निकी समान क्रोधसे लाल२ नेत्र करके विश्वकर्माकी समान विश्वकर्माके अस्त्रको साधा॥३९। तव तो चारों ओरसे सहस्रों वाण प्रकट होनेलगे और उन वाणोंके कारण तुम्हारी सेनामें बड़ीभारी भागड़ पडगई ॥४०॥ भीमसेनका छोडाहुआ वह अस्त्र रणमें राक्षसकी उस बडीभारी मायाको नष्ट करके फिर उस राक्षसको भी पीडित करनेलगा ४१ जब भीमसेन उस राक्षसको बहुत ही मारनेलगा तव वह भीमसेनको छोडकर द्रोणकी सेनाकी ओरको भागा ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! जब महात्मा पाण्डुपुत्रने उस राक्षसराजको जीतलिया तो पाण्डवोंने सिंहोंकी समान गरज२कर सब दिशाओंको गुञ्जार दिया ॥ ४३ ॥ और प्रल्हादका पराजय करनेके वाद पवनोंने जैसे इन्द्रकी प्रशंसा कीथी तैसे ही प्रसन्नहुए पाण्डव भी पवनपुत्र महाबली भीमसेनकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ४४ ॥ एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०८ ॥ छ ॥ छ छ

सञ्जयने कहा, कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! जब अलम्बुष इसप्रकार

हैडिम्बिः प्रययौ तूर्णं विव्याध निशितैः शरैः ॥ १ ॥ तयोः प्रतिभयं युद्धमासीद्राक्षससिंहयोः । कुर्वतोर्विविधा मायाः शक्रशम्बरयोरिव ॥ २ ॥ अलम्बुषो भृशं क्रुद्धो घटोत्कचमताडयत् । तयोर्युद्धं समभवद्रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ॥ ३ ॥ यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोः प्रभो । घटोत्कचस्तु विंशत्या नाराचानां स्तनान्तरे ४ अलम्बुषमथो विद्ध्वा सिंहवद्व्यनदन्मुहुः । तथैवालम्बुषो राजन् हैडिम्बिं युद्धदुर्मदम् ॥ ५ ॥ विद्ध्वा विद्ध्वानदद्धृष्टः पूरयन् खं समन्ततः । तथा तौ भृशसंक्रुद्धौ राक्षसेन्द्रौ महाबलौ ॥ ६ ॥ निर्विशेषमयुध्येतां मायाभिरितरेतरम् । मायाशतसृजौ नित्यं मोहयन्तौ परस्परम् ॥ ७ ॥ मायायुद्धेषु कुशलौ मायायुद्धमयुध्यताम् ।

युद्धमें निर्भयसा घूमरहा था, उस समय हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कचने उसके सामने जाकर उसे तीक्ष्ण बाणोंसे घायल करडाला १ जिस प्रकार पहिले इन्द्र और शम्बरासुर माया रचकर लड़े थे, इसीप्रकार राक्षसोंमें सिंह समान वे दोनों नानाप्रकारकी माया रचकर महाभयङ्कर युद्ध करनेलगे ॥ २ ॥ अलम्बुष बड़े भारी क्रोधमें भरगया और उसने घटोत्कचको बहुत ही पीटा, हे प्रभो! उन दोनों मुख्य राक्षसोंका युद्ध पूर्वकालमें हुए राम रावणके संग्रामकी समान हुआ, घटोत्कच अलम्बुषकी छातीको बीस बाणोंसे घायल करके सिंहकी समान बारम्बार दहाडनेलगा, हे राजन्! इसीप्रकार अलम्बुष भी युद्धदुर्मद घटोत्कचको बारम्बार बींध कर प्रसन्न हो अपने शब्दसे आकाशको भरता हुआ दहाडनेलगा, क्रोधमें भरेहुए वे दोनों महाबली राक्षसेन्द्र माया रचकर परस्पर इसप्रकार युद्ध कररहे थे कि—उनमें कुछ भी न्यूनाधिकता नहीं दीखती थी, वे दोनों सहस्रों मायाओंको रचकर एक दूसरेको मोहित कररहे थे ॥ ३–७ ॥ मायायुद्धमें कुशल वे दोनों मायायुद्ध करनेलगे, हे राजन्! युद्धमें घटोत्कच

यां यां घटोत्कचो युद्धे मायां दर्शयते नृप ॥ ८ ॥ तां तामलम्बुषो राजन् माययैव निजघ्निवान् । तं तथा युध्यमानं तु मायायुद्धविशारदम् ॥ ९ ॥ अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं दृष्ट्वाक्रुध्यन्त पाण्डवाः । त एनं भृशसम्विग्नाः सर्वतः प्रवरा रथैः ॥ १० ॥ अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनादयो नृप । त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ॥ ११ ॥ सर्वतो व्यकिरन् बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् । स तेषामस्त्रवेगं तं प्रतिहत्यास्त्रमायया ॥ १२ ॥ तस्माद्रथव्रजान्मुक्तो वनदाहादिव द्विपः । स विस्फार्य धनुर्घोरमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ १३ ॥ मारुतिं पञ्चविंशत्या भैमसेनिञ्च पञ्चभिः । युधिष्ठिरं त्रिभिर्विध्वा सहदेवञ्च सप्तभिः ॥ १४ ॥ नकुलञ्च त्रिसप्तत्या द्रौपदेयांश्च मारिष । पञ्चभिः पञ्चभिर्विध्वा घोरं नादं ननाद ह ॥ १५ ॥ तं भीमसेनो नवभिः सहदेवस्तु पञ्चभिः ।

जिस २ मायाको दिखाता था, हे राजन् ! अलम्बुष उसको ही अपनी मायासे नष्ट करदेता था; मायावी राक्षसेन्द्र अलम्बुष को इसप्रकार युद्ध करते देखकर पाण्डवोंको बड़ा क्रोध आया और हे राजन् ! भीम आदि बड़े २ महारथी पाण्डव उद्विग्न तथा क्रुद्ध हो उसके ऊपर चारों ओरसे दौडपड़े और हे राजन् ! वे इसके चारों ओर रथोंका घेरा डालकर इसप्रकार बाणोंकी वर्षा करनेलगे जैसे हाथीके ऊपर जलतीहुई लकडियें वरसाई जाती हों, परन्तु अलम्बुष अपनी अस्त्रमायासे शत्रुओंके अस्त्रोंको नष्ट करके उस अग्निवर्षासे ऐसे वचकर निकल गया जैसे हाथी वनकी दौंमेंसे निकलजाता है, तदनन्तर उसने इन्द्रके वज्रकी समान भयङ्कर धनुषको खैंचकर भीमसेनके पच्चीस, घटोत्कचके पाँच युधिष्ठिरके तीन, सहदेवके सात, नकुलके तिहत्तर और द्रौपदीके पुत्रोंके पाँच २ बाण मारे तथा घोर गर्जना करनेलगा ८-१५ फिर उस राक्षसको भीमसेनने नौ, सहदेवने पाँच और युधि-

युधिष्ठिरः शतेनैव राक्षसं प्रत्यविध्यत ॥ १६ ॥ नकुलस्तु चतुःषष्ट्या द्रौपदेयास्त्रिभिस्त्रिभिः । हैडिम्बो राक्षसं विद्ध्वा युद्धे पञ्चाशता शरैः ॥ १७ ॥ पुनर्विव्याध सप्तत्या ननाद च महाबलः । तस्य नादेन महता कम्पितेयं वसुन्धरा ॥ १८ ॥ सपर्वतवना राजन् सपादपजलाशया । सोऽतिविद्धो महेष्वासैः सर्वतस्तैर्महारथैः ॥ १९ ॥ प्रतिविव्याध तान् सर्वान् पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः । तं क्रुद्धं राक्षसं युद्धे प्रतिक्रुद्धस्तु राक्षसः ॥ २० ॥ हैडिम्बो भरतश्रेष्ठ शरैर्विव्याध सप्तभिः । सोतिविद्धो बलवता राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥ २१ ॥ व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं रुक्मपुङ्खान् शिलाशितान् । ते शरा नतपर्वाणो विविशू राक्षसं तदा ॥ २२ ॥ हृषिताः पन्नगा यद्वद्गिरिशृंगं महाबलाः । ततस्ते पाण्डवा राजन् समन्तान्निशिताञ्छरान् ॥ २३ ॥ प्रेषयामासुरुद्विग्ना हैडिम्बश्च घटोत्कचः ।

ष्ठिरने सौ बाणोंसे बींधडाला १६ और नकुलने उस राक्षसको चौंसठ बाणोंसे तथा द्रौपदीके पुत्रोंने पाँच २ बाणोंसे बींधा और हिडिम्बाके पुत्र महाबली घटोत्कचने उस राक्षसको पचास बाणोंसे बींधकर फिर सत्तर बाणोंसे घायल किया और जोरसे गर्जनाकी,हे राजन्!उस गर्जनासे पहाड जंगल,पेड और सरोवरों सहित चारों ओरसे पृथ्वी डगमगानेलगी, इन सब महारथियोंके प्रहारोंसे घायल हुए उस अलम्बुषने उनमेंसे हरएकके पाँच २ बाण मारे, उस राक्षसको क्रोधमें भरा देखकर घटोत्कचको भी बड़ा क्रोध आगया ॥ १८-२० ॥ और हे भरतश्रेष्ठ! घटोत्कचने उसके सात बाण मारे, जब बलवान् घटोत्कचके बाणोंसे वह बहुत ही घायल होगया तब उस महाबली राक्षसराजने पत्थर पर घिसकर तेज किएहुए सुनहरी पूँछवाले बाण शीघ्रतासे छोडने आरम्भ करदिये,तब क्रोधमें भरे सर्प जैसे पर्वतके शिखरमें घुसजाते हैं, तैसे ही वे बाण घटोत्कचके शरीरमें वेगके साथ

स वध्यमानः समरे पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥ २४ ॥ मर्त्यधर्ममनुप्राप्तः कर्त्तव्यं नान्वपद्यत । ततः समरशौण्डो वै भैमसेनिर्महाबलः २५ समीक्ष्य तदवस्थं तं वधायास्य मनो दधे । वेगञ्चक्रे महान्तञ्च राक्षसेन्द्ररथम्प्रति ॥२६॥ दग्धाद्रिकूटशृंगाभं भिन्नाञ्जनचयोपमम् । रथाद्रथमभिद्रुत्य क्रुद्धो हैडिम्बिराक्षिपत्॥२७॥ उद्बबर्ह रथाच्चापि पन्नगं गरुडो यथा । समुत्क्षिप्य च बाहुभ्यामाविध्य च पुनः पुनः ॥ २८ ॥ निष्पिपेष क्षितौ क्षिप्रं पूर्णं कुम्भमिवाश्मनि । बललाघवसम्पन्नः सम्पन्नो विक्रमेण च ॥ २९ ॥ भैमसेनी रणे क्रुद्धः सर्वसैन्यान्यभीषयत्। स विस्फारिसर्वाङ्गश्चूर्णितास्थिर्विभीषणः ॥ ३० ॥ घटोत्कचेन वीरेण हतः शालकटङ्कटः । ततः सुमनसः पार्था हते तस्मिन्निशाचरे ॥ ३१ ॥ चुक्रुशुः सिंहना-

---

घुसगए हे राजन् ! उस समय घबड़ाये हुए पांडव और घटोत्कचने भी उसके ऊपर चारों ओरसे तेज बाणोंकी मारामार आरम्भ करदी, जीतकर चमकनेवाले पांडवोंके बाणोंसे घायल होते २ वह मरासा होगया और वह किङ्कर्त्तव्य विमूढ़ होगया यह दशा देखकर समरचतुर महाबली भीमसेनके पुत्र घटोत्कचने उसको मारनेका विचार किया और उसके रथपर जानेके लिए बड़ा वेग धारण किया ॥२१-२६॥ हिडिम्बाकेपुत्र घटोत्कचने अपने रथपरसे अलम्बुषके रथ पर कूदकर जलेहुए गिरिशृंग और टूटे हुए काजलके, पर्वतकी समान उस राक्षसको पकड़लिया २७ जैसे गरुड सर्पको दबोच लेना है तैसे ही घटोत्कचने उसको रथपरसे पकड़कर हाथोंसे ऊपरको उठा बारम्बार घुमाया और भरेहुए घड़ेको जैसे पत्थर पर पटक देते हैं तैसे ही उसको भूमिपर देपटका, बल फुर्ती और पराक्रमवाले घटोत्कचने इस झपाझपी में क्रोध दिखाकर सब सेनाओंको भयभीत करडाला, वीर घटोत्कचके प्रहारसे कटंकटाके पुत्र अलम्बुषके सब अंग फटगए,

दाश्च वासांस्यादुधुवुश्च ह । तावकाश्च हतं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं महावलम् ॥ ३२ ॥ अलम्वुषं तथा शूरा विशीर्णमिव पर्वतम् । हाहाकारमकार्षुश्च सैन्यानि भरतर्षभ ॥ ३३ ॥ जनाश्च तद्ददृशिरे रक्षः कौतूहलान्विताः । यदृच्छया निपतितं भूमावङ्गारकं यथा ३४ घटोत्कचस्तु तद्धत्वा रक्षो वलवतांवरः । मुमोचं वलवन्नादं वलं हत्वेव वासवः ॥ ३५ ॥ स पूज्यमानः पितृभिः सवान्धवैर्घटोत्कचः कर्मणि दुष्करे कृते । रिपुं निहत्याभिननन्द वै तदा ह्यलम्वुषं पक्वमलम्वुषं यथा ॥ ३६ ॥ ततो निनादः सुमहान् समुत्थितः सशंखनानाविधवाणघोषवान् । निशम्य तं प्रत्यनदंस्तु पाण्डवास्ततोऽध्वनिर्भुवनमथास्पृशद् भृशम् ॥ ३७ ॥

हड्डियोंका चूरा २ होगया इससे वह राक्षस भयावना दीखने लगा चूरा २ हुए पर्वतकी समान राक्षसेन्द्र अलम्वुषको मरा देखकर तुम्हारी सेनामें हाहाकार मचगया और पांडव उस राक्षसके मरनेसे मनमें प्रसन्न हो वस्त्र उड़ानेलगे और सिंहोंकी समान गरजनेलगे ॥ २८-३३ ॥ जैसे दैवगतिसे आकाशमेंसे गिरेहुए मङ्गलके तारेको मनुष्य अचम्भे ही तमाशा)सादेखते हैं, तैसे ही पृथ्वीपर पड़ेहुए उस राक्षसको देखनेके लिये मनुष्य कुतूहलके साथ दौडपड़े ॥ ३४ ॥ वलवानोंमें श्रेष्ठ राक्षस अलम्वुपको मारकर घटोत्कच, पूर्वकालमें वलासुरको मारकर गर्जने वाले इन्द्रकी समान, गर्जनेलगा ॥ ३५ ॥ महाकठिन कर्म करनेके कारण पाण्डव और सम्वन्धियोंने घटोत्कचकी प्रशंसाकी पकेहुए अलम्वुप (ताल)के फलकी समान, पकेहुए पापवाले अलम्वुप नामक शत्रुको मारकर उससमय घटोत्कच भी वड़े आनन्दमें भरगया॥३६॥ इस समय पांडवोंकी सेनामें शंख और अनेकों प्रकारका वड़ाभारी शब्द होनेलगा, उसको सुनकर कौरव भी सामने से गरजनेलगे, यह महान् शब्द सव पृथिवीमें पूर्णरूपसे फैलगया३७

धृतराष्ट्र उवाच । भारद्वाजं कथं युद्धे युयुधानो न्यवारयत् । सञ्जयाचक्ष्व तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । शृणु राजन् महाप्राज्ञ संग्रामं लोमहर्षणम् । द्रोणस्य पाण्डवैः सार्द्धं युयुधानपुरोगमैः ॥२॥ वध्यमानं बलं दृष्ट्वा युयुधानेन मारिष । अभ्यद्रवत् स्वयं द्रोणः सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ३ ॥ तमापतन्तं सहसा भारद्वाजं महारथम् । सात्यकि पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ ४ ॥ द्रोणोऽपि युधि विक्रान्तो युयुधानसमाहितः । अविध्यत् पञ्चभिस्तूर्णं हेमपुंखैः शरैः शितैः ॥ ५ ॥ ते वर्म भित्त्वा सुदृढं द्विषत्पिशितभोजनाः । अभ्ययुर्धरणीं राजन् श्वसन्त इव पन्नगाः ॥ ६ ॥ दीर्घबाहुरभिक्रुद्धस्तोत्त्रार्दित इव द्विपः । द्रोणं

धृतराष्ट्रने कहा कि–हे सञ्जय ! द्रोणाचार्यको सात्यकिने युद्धमें कैसे रोका था, यह मुझे ठीक २ सुना इसको सुननेका मुझे वड़ा कुतूहल है ॥ १ ॥ सञ्जयने उत्तरदिया, कि–हे महावुद्धिमान् राजन् ! युयुधान आदि प्रधान २ पुरुषोंवाले पांडवपक्षके योधाओंके और द्रोणाचार्यके लोमहर्षण संग्रामको सुनिये २ हे राजन् ! सात्यकि मेरी सेनाको नष्टकररहा है, यह देखकर, द्रोण अपने आप सत्यपराक्रमी सात्यकिके ऊपर चढआये ३ एकाएकी उनको आताहुआ देखकर सात्यकिने द्रोणके पच्चीस वाण मारे ॥ ४ ॥ युद्धमें विकट पराक्रम दिखानेवाले द्रोणने भी सावधान होकर फुर्तीके साथ सुवर्णकी पूँछवाले पाँच तीक्ष्ण वाण सात्यकिके मारे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! वे शत्रुओंके मांसको खाने वाले वाण सात्यकिके वड़े मजबूत कवचको फोडकर फुँकारें भरतेहुए पृथ्वीमें सर्पोंकी समान सररर करके घुसगए इससे सात्यकि अंकुशसे मारे हुए हाथीकी समान क्रोधमें भर गया और उसने अग्निकी समान स्पर्शवाले पचास वाणोंसे द्रोण

पञ्चाशताविध्यन्नाराचैरग्निसन्निभैः ॥ ७ ॥ भारद्वाजो रणे विद्धो युयुधानेन सत्वरम् । सात्यकिं बहुभिर्बाणैर्यतमानमविध्यत ॥ ८ ॥ ततः क्रुद्धो महेष्वासो भूय एव महाबलः । सात्वतं पीडयामास शरेणानतपर्वणा ॥ ९ ॥ स वध्यमानः समरे भारद्वाजेन सात्यकिः । नान्वपश्यत कर्त्तव्यं किञ्चिदेव विशाम्पते १० विषण्णवदनश्चापि युयुधानोऽभवन्नृप । भारद्वाजं रणे दृष्ट्वा विसृजन्तं शितान् शरान् ॥ ११ ॥ तन्तु सम्प्रेक्ष्य ते पुत्राः सैनिकाश्च विशाम्पते । प्रहृष्टमनसो भूत्वा सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ॥ १२ ॥ तं श्रुत्वा विनदं घोरं पीड्यमानञ्च माधवम् । युधिष्ठिरोऽब्रवीद्राजा सर्वसैन्यानि भारत ॥ १३ ॥ एष वृष्णिवरो वीरः सात्यकिः सत्य-

को घायल करदिया॥६–७॥ जब इसप्रकार शीघ्र ही सात्यकिने द्रोणाचार्यको रणमें घायलकर डाला तब तो उद्योग करतेहुए सात्यकिको द्रोणने बहुतसे बाण मारकर घायल करदिया ८ तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए द्रोणाचार्यने फिर भी नमीहुई गाँठवाला बाण मारकर सात्यकिको पीडा दी ॥ ९ ॥ हे महाराज ! जब द्रोण सात्यकिको इसप्रकार पीडा देनेलगे, तब सात्यकिको यह भी नहीं सूझा, कि–अब मैं क्या करूँ ॥ १० ॥ रणमें द्रोणको तेज बाण छोडतेहुए देखकर हे राजन् ! युयुधान (सात्यकि) का मुख उतरगया ॥ ११ ॥ हे राजन् ! उसकी इस दशाको देखकर तुम्हारे पुत्र और सैनिक मनमें प्रसन्न होकर बारम्बार सिंहनाद करनेलगे ॥ १२ ॥ उस घोर गर्जनाको सुनकर और सात्यकिको पीडा पाते देखकर हे भारत ! युधिष्ठिरने सब सेनाओंसे कहा, कि–॥ १३ ॥ (देखो) इस सत्यपराक्रमी वृष्णिप्रवीर सात्यकिको यह वीर द्रोण इसप्रकार निगलनेको उद्यत

विक्रमः । ग्रस्यते युधि वीरेण भानुमानिव राहुणा ॥ १४ ॥ अभिद्रवत गच्छध्वं सात्यकिर्यत्र युध्यते । धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यमिदमाह जनाधिपः ॥ १५ ॥ अभिद्रव द्रुतं द्रोणं किमु तिष्ठसि पार्षत । न पश्यसि भयं द्रोणाद्द घोरं नः समुपस्थितम् ॥ ६ ॥ असौ द्रोणो महेष्वासो युयुधानेन संयुगे । क्रीडते सूत्रबद्धेन पक्षिणा बालको यथा ॥ १७ ॥ तत्रैव सर्वे गच्छन्तु भीमसेनपुरोगमाः । त्वयैव सहिताः सर्वे युयुधानरथम्प्रति ॥१८॥ पृष्ठतोनुगमिष्यामि त्वामहं सहसैनिकः । सात्यकिं मा क्षमस्वाद्य यमदंष्ट्रान्तरंगतम् ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वा ततो राजा सर्वसैन्येन भारत । अभ्यद्रवद्रणे द्रोणं युयुधानस्य कारणात् ॥ २० ॥ तत्रारावो महानासीत् द्रोणमेकं युयुत्सताम् । पाण्डवानाञ्च भद्रन्ते सृञ्जया-

---

होरहे हैं, जैसे राहु चन्द्रमाको निगलना चाहता है ॥ १४ ॥ (देखो) जहाँ सात्यकि लड रहा है उस स्थान पर तुम सब दौडकर पहुँच जाओ, फिर युधिष्ठिरने पञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्नसे यह कहा कि—॥ १५ ॥ ओ द्रुपदपुत्र ! तू यहाँ क्यों खडा है ? शीघ्रतासे दौडकर द्रोणकी ओरको जा, क्या तू नहीं देखता, कि—द्रोणकी ओरसे तुम पर बडी भारी विपत्ति आपड़ी है ॥ १६ ॥ जैसे छोटासा बालक डोरेसे बँधेहुए पक्षीसे खेलता हो तैसे ही यह द्रोण सात्यकिसे खेल रहे (लडरहे) हैं ॥१७॥ तू भीमसेन आदि सबको अपने साथ लेकर सात्यकिके रथके समीप पहुँचजा ॥ १८ ॥ मैं भी सब सेनाको लेकर पीछे २ आता हूँ, आज यमराजकी डाढमें हिलगेहुए सात्यकिको बचा १९ हे भारत ! राजा युधिष्ठिर ऐसा कहकर सात्यकिकी रक्षा करनेके लिये सब सेनाको साथमें लेकर द्रोणके ऊपर टूटपड़े २० इस समय पांडव और सृञ्जयोंके सामने द्रोण अकेले ही लड रहे थे, इससे तुम्हारी सेनामें बडा कोलाहल होनेलगा ॥ २१ ॥

नाञ्च सर्वशः ॥२१॥ ते समेत्य नरव्याघ्रा भारद्वाजं महारथम् । अभ्यवर्षञ्छरैस्तीक्ष्णैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २२ ॥ स्मयन्नेव तु तान् वीरान् द्रोणः प्रत्यग्रहीत् स्वयम् । अतिथीनागतान् यद्वत् सलिलेनासनेन च ॥ २३ ॥ तर्पितास्ते शरैस्तस्य भारद्वाजस्य धन्विनः । आतिथेयं गृहं प्राप्य नृपतेरतिथयो यथा ॥ २४ ॥ भारद्वाजञ्च ते सर्वे न शेकुः परिवीक्षितुम् । मध्यन्दिनमनुप्राप्तं सहस्रांशुमिव प्रभो ॥ २५ ॥ तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् द्रोणः शस्त्रभृताम्वरः । अतापयच्छरव्रातैर्गभस्तिभिरिवांशुमान् ॥ २६ ॥ वध्यमाना महाराज पाण्डवाः सृञ्जयास्तथा । त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ॥ २७ ॥ द्रोणस्य च व्यदृश्यन्त विसर्पन्तो

वे नरव्याघ्र योधा इकट्ठे होकर आए और मोरके पंखोंवाले वाणोंको वरसातेहुए महारथी द्रोणकी ओरको वढनेलगे ॥२२॥ जैसे सज्जन पुरुष घरमें आएहुए अतिथियोंका जल और आसन देकर सत्कार करते हैं तैसे ही द्रोणने हँसकर वाणोंके द्वारा उनका सत्कार किया ॥ २३ ॥ जिसप्रकार अतिथि राजाके घरमें आकर सत्कार पाकर प्रसन्न होजाते हैं तैसे ही वे धनुषधारी भी द्रोणके वाणोंसे तृप्त होगए अर्थात् द्रोणने उनके ऊपर वहुत ही वाणछोड़े२४हे प्रभो!जैसे मध्यान्हके समय मनुष्य सूर्यको टकटकी वाँध कर नहीं देख सकते, तैसे ही वे सव द्रोणके सामनेको मुख न उठासके ॥ २५ ॥ और सूर्यकी समान द्रोण, किरणोंकी समान वाणोंकी वर्षासे उन सव महाधनुषधारियोंको सन्ताप देनेलगे ॥ २६ ॥हे महाराज ! जव द्रोण पांडव और सृञ्जयोंको घायल करनेलगे उस समय जैसे हाथीको कीचडमें फँसने पर कोई रक्षक नहीं मिलता है तैमे ही सृंजयोंको कोई रक्षक नहीं दीखा और वे निराश होगये ॥ २७ ॥ जैसे तपातेहुए सूर्यकी चारों ओर किरणें ही दीखती हैं ऐसे ही द्रोणके चारों ओर

महाशराः । गभस्तय इवार्कस्य प्रतपन्तः समन्ततः ॥ २८ ॥ तस्मिन् द्रोणेन निहताः पञ्चालाः पञ्चविंशतिः । महारथाः समाख्याता धृष्टद्युम्नस्य सम्मताः ॥ २९ ॥ पांडूनां सर्वसैन्येषु पञ्चालानां तथैव च । द्रोणं स्म ददृशुः शूरं विनिघ्नन्तं वरान् वरान् ॥ ३० ॥ कैकेयानां शतं हत्वा विद्राव्य च समन्ततः । द्रोणस्तस्थौ महाराज व्यादितास्य इवांतकः ॥ ३१ ॥ पञ्चालान् सृञ्जयान्मत्स्यान् कैकेयांश्च नराधिप । द्रोणोऽजयन्महाबाहुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३२ ॥ तेषां समभवच्छब्दो विद्धानां द्रोणसायकैः । वनौकसामिवारण्ये व्याप्तानां धूमकेतुना ॥ ३३ ॥ तत्र देवाः सगन्धर्वाः पितरश्चाब्रुवन्नृप । एते द्रवन्ति पञ्चालाः पाण्डवाश्च ससैनिकाः ॥ ३४ ॥ तं तथा समरे द्रोणं निघ्नन्तं सोमकान् रणे । न चाप्यभिययुः केचिदपरे नैव विव्यधुः ॥ ३५ ॥

बाण ही बाण दीखते थे ॥ २८ ॥ इस युद्धमें द्रोणने धृष्टद्युम्नके मान्य पच्चीस पंचाल महारथियोंको मारडाला ॥२९॥ इतना ही नहीं किन्तु हमने देखा कि-द्रोण पञ्चाल और पाण्डवोंकी सब सेनामेंसे मुख्य २ पुरुषोंको माररहे थे॥३०॥ हे महाराज! द्रोण सौ केकयोंको मारकर और चारों ओर सेनाको भगाकर रणमें मुख फाड़ेहुए सिंहकी समान खड़े होगए ॥ ३१ ॥ हे महाबाहु! महाबाहु द्रोणने सहस्रों और सैंकडों पंचाल, सृञ्जय तथा केकयोंको जीतलिया ॥ ३२ ॥ दावानल लगने पर जैसे वनवासी चीखने लगते हैं तैसे ही द्रोणके बाणोंसे घायल हुए राजे चीखें मारनेलगे ॥ ३३ ॥ हे राजन्! उस समय देवता, गन्धर्व और पितर भी कहनेलगे,कि-देखो!देखो!!पांचाल और पांडव सेनाके सहित भागेजाते हैं ॥ ३४ ॥ जब द्रोण समरमें सोमकोंको मार रहे थे, उस समय न कोई उनके पास पहुँचसके और न कोई उनको बाणोंसे घायल करसके ॥ ३५ ॥ इसप्रकार छहा २ श्रेष्ठ

वर्त्तमाने तथा रौद्रे तस्मिन् वीरवरक्षये । अशृणोत् सहसा पार्थः पाञ्चजन्यस्य निःस्वनम् ॥ ३६ ॥ पूरितो वासुदेवेन शंखराट् स्वनते भृशम् । युद्ध्यमानेषु वीरेषु सैन्धवस्याभिरक्षिषु ॥ ३७ ॥ नदत्सु धार्त्तराष्ट्रेषु विजयस्य रथम्प्रति । गाण्डीवस्य च निर्घोषे विप्रनष्टे समन्ततः ॥ ३८ ॥ कश्मलाभिहतो राजा चिन्तयामास पाण्डवः । न नूनं स्वस्ति पार्थाय यथा नदति शंखराट् ॥ ३९ ॥ कौरवाश्च यथा हृष्टा विनदन्ति मुहुर्मुहुः । एवं सञ्चिन्तयित्वा तु व्याकुलेनान्तरात्मना ॥ ४० ॥ अजातशत्रुः कौन्तेयः सात्वतं प्रत्यभाषत । वाष्पगद्गदया वाचा मुह्यमानो मुहुर्मुहुः । कृत्यस्यानन्तरापेक्षी शैनेयं शिनिपुङ्गवम् ॥ ४१ ॥ युधिष्ठिर उवाच । यः स धर्मः पुरा दृष्टः सद्भिः शैनेय शाश्वतः । साम्पराये सुहृत्कृत्ये

वीरोंका भयङ्कर संहार होरहा था, उसी समय युधिष्ठिरने एकायकी पांचजन्य शङ्खके शब्दको सुना ॥ ३६ ॥ जब कि-सिंधुराजकी रक्षा करनेवालोंके साथ युद्ध होरहा था उस समय इस महाशंखको श्रीकृष्णने जोरसे बजाया था ॥ ३७ ॥ जब धृतराष्ट्रके पुत्र अर्जुनके रथकी ओर जाकर गर्जनेलगे और गांडीव की टंकार बन्द होगई, तब पांडुपुत्र युधिष्ठिर मनमें खिन्न होकर विचारनेलगे, कि-जिसप्रकार पांचजन्यका शब्द होरहा है और कौरव हर्षमें भरकर बारबार गरजरहे हैं इससे प्रतीत होता है कि-इस समय अर्जुन पर संकट आपडा है, इसप्रकार चित्तमें घबडा कर विचार करतेहुए अजातशत्रु कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर वारम्बार मूर्छितसे होनेलगे और जयद्रथको निर्विघ्नतासे मारनेकी इच्छावाले राजा युधिष्ठिर नेत्रोंमें आँसू भरकर गद्गद कंठसे शिनिपुङ्गव सात्यकिसे कहनेलगे ॥ ३८-४१ ॥ युधिष्ठिर बोले कि हे शिनिपुत्र ! आपत्ति पडने पर मित्रोंके जिन कर्त्तव्योंको प्राचीन मनुष्योंने नियत करदिया है, उनको दिखानेका समय

तस्य कालोऽयमागतः ॥ ४२ ॥ सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयन् शिनिपुङ्गव । त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाभिजानामि सात्यके॥४३॥ यो हि प्रीतमना नित्यं यश्च नित्यमनुव्रतः । स कार्ये साम्पराये तु नियोज्य इति मे मतिः ॥ ४४ ॥ यथा च केशवो नित्यं पाण्डवानां परायणम् । तथा त्वमपि वार्ष्णेय कृष्णतुल्यपराक्रमः॥४५॥ सोऽहं भारं समाधास्ये त्वयि तं वोढुमर्हसि । अभिप्रायञ्च मे नित्यं न वृथा कर्त्तुमर्हसि ॥ ४६ ॥ स त्वं भ्रातुर्वयस्यस्य गुरोरपि च संयुगे । कुरु कृच्छ्रे सहायार्थमर्जुनस्य नरर्षभ ॥ ४७ ॥ त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयंकरः । लोके विख्यायसे वीर कर्मभिः सत्यवागिति ॥४८॥ यो हि शैनेय मित्रार्थे युध्यमानस्त्यजेत्तनुम् । पृथिवीञ्च द्विजातिभ्यो यो दद्यात् स समो

आगया है, ॥४२॥ हे सात्यके ! हे शिनिपुङ्गव ! मैं सब योधाओं की ओर देखकर विचारता हूँ,तो मुझे तुझसे अधिक कोई मित्र नहीं दीखता ॥ ४३ ॥ और मेरा यह विचार है, कि-जो अपने से सदा प्रीति रखता हो और सदा अनुकूल रहता हो उसको ही आपत्ति पडने पर काममें लगाना चाहिये ॥ ४४ ॥ हे वृष्णिपुत्र ! जैसे श्रीकृष्ण पांडवोंके सर्वदा आश्रयदाता है तैसे ही तू भी हमारा आश्रय है और तू श्रीकृष्णकी समान ही पराक्रमी है ॥ ४५ ॥ अतः मैं तेरे ऊपर एक भार रखना चाहता हूँ, आशा है तू उसे स्वीकार करेगा, क्योंकि-तू मेरी बातको कभी नहीं टालता है॥४६॥ सो हे नरश्रेष्ठ ! तू इस महादुःखदायक रणमें अपने बन्धु, मित्र और गुरु अर्जुनकी सहायता कर॥४७॥ हे वीर ! तू सत्यव्रत है, मित्रोंको अभय देनेवाला है और संसार में तू अपने कर्मोंसे सत्यवादी प्रसिद्ध है ॥ ४८ ॥ हे शैनेय ! मित्रके लिये रणमें लडकर जो शरीरको त्याग देता है और जो ब्राह्मणोंके लिये पृथ्वीका दान करदेता है उन दोनोंको एकसा

भवेत् ॥ ४९ ॥ श्रुताश्च बहवोस्माभी राजानो ये दिवं गताः । दत्त्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि ॥ ५० ॥ एवं त्वामपि धर्मात्मन् प्रयाचेऽहं कृतांजलिः । पृथिवीदानतुल्यं स्यादधिकम्वा फलं विभो ॥ ५१ ॥ एक एव सदा कृष्णो मित्राणामभयङ्करः । रणे सन्त्यजति प्राणान् द्वितीयस्त्वञ्च सात्यके ॥ ५२ ॥ विक्रांतस्य च वीरस्य युद्धे प्रार्थयतो यशः । शूर एव सहायः स्यान्नेतरः प्राकृतो जनः ॥ ५३ ॥ ईदृशे तु परामर्द्दे वर्त्तमानस्य माधव । त्वदन्यो हि रणे गोप्ता विजयस्य न विद्यते ॥ ५४ ॥ श्लाघन्नेव हि कर्माणि शतशस्तव पाण्डवः । मम सञ्जयन् हर्षं पुनः पुनरकीर्त्तयत ॥५५॥ लघुहस्तश्चित्रयोधी तथा लघुपराक्रमः । प्राज्ञः सर्वास्त्रविच्छूरो मुह्यते न च संयुगे५६ महास्कन्धो महोरस्को महाबाहुर्महाहनुः । महाबलो महावीर्यः स

फल मिलता है ॥ ४९ ॥ बहुतसे राजे शास्त्रानुसार सम्पूर्ण पृथ्वीका ब्राह्मणोंको दान करके स्वर्गमें गए हैं, ऐसा हमने सुना है ॥ ५० ॥ अतः हे धर्मात्मन् ! मैं तुझसे हाथ जोडकर प्रार्थना करता हूँ, कि–तू अर्जुनकी सहायता कर हे प्रभो ! ऐसा करनेसे तुझे पृथ्वीदान करनेका पुण्य अथवा उसमे भी अधिक पुण्य प्राप्त होगा ॥ ५१ ॥ हे सात्यकि ! एक श्रीकृष्ण ही मित्रोंको सदा अभय देते हैं और मित्रोंके लिये रणमें प्राण त्याग सकते हैं और ऐसा दूसरा तू है ऐसा तीसरा और कोई नहीं है ॥५२॥ वीर पुरुष जब युद्धमें यशको चाहता हुआ लडता है, उस समय शूरवीर ही उसको सहायता देसकता है, साधारण मनुष्य उसकी सहायता नहीं करसकता ॥ ५३ ॥ हे माधव ! यह ऐसा युद्ध चल रहा है, कि–तेरे सिवाय दूसरा कोई भी अर्जुनकी रक्षा नहीं कर सकेगा ॥ ५४ ॥ अर्जुन भी तेरे सैंकडों कामोंकी प्रशंसा करके मुझे हर्षित करताहुआ वारम्वार कहता था, कि–॥ ५६ ॥

महात्मा महारथः ५७ शिष्यो मम सखा चैव प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे । युयुधानः सहायो मे प्रमथिष्यति कौरवान् ॥ ५८ ॥ अस्मदर्थञ्च राजेन्द्र सन्नह्येद्यदि केशवः । रामो वाप्यनिरुद्धो वा प्रद्युम्नो वा महारथः ॥ ५९ ॥ गदो वा सारणो वापि साम्बो वा सह वृष्णिभिः । सहायार्थं महाराज संग्रामोत्तममूर्द्धनि ६० तथाप्यहं नरव्याघ्रं शैनेयं सत्यविक्रमम् । साहाय्ये विनियोक्ष्यामि नास्ति मेऽन्यो हि तत्समः ॥ ६१ ॥ इति द्वैतवने तात मामुवाच धनञ्जयः । परोक्षे त्वद्गुणांस्तथ्यान् कथयन्नार्यसंसदि ॥ ६२॥ तस्य त्वमेव सङ्कल्पं न वृथा कर्त्तुमर्हसि । धनञ्जयस्य वार्ष्णेय मम भीमस्य चोभयोः ॥ ६३ ॥ यच्चापि तीर्थानि चरन्नगच्छं

सात्यकि फुरतीसे हाथ चलानेवाला विचित्र प्रकारसे युद्ध करने वाला और महापराक्रमी है, वह बुद्धिमान् सब अस्त्रोंको जानता है और संग्राममें कभी भी घबडाहटमें नहीं पडता है ॥ ५६ ॥ महात्मा सात्यकि महारथी है उसके कंधे, छाती, भुजाएँ और ठोडी बहुत बडी है, उसमें बडा वीर्य है, वह महाबली है ॥५७॥ वह सात्यकि मेरा शिष्य तथा मित्र है और वह मुझसे प्रेम रखता है तथा मैं भी उससे प्रेम रखता हूँ, वह मेरी सहायता कर कौरवोंको कुचल डालेगा ॥ ५८ ॥ हे राजेन्द्र! यदि श्रीकृष्ण, बलराम, अनिरुद्ध, महारथी प्रद्युम्न, गद, सारण अथवा वृष्णियों सहित साम्ब भी संग्रामके मुहाने पर मेरी सहायता करनेके लिये तयार होंगे तो मैं भी नरोंमें वाघकी समान सत्पराक्रमी शिनिपुत्र सात्यकिको ही अपनी सहायताके लिये चुनूँगा, क्योंकि-उसके समान दूसरा कोई भी मेरा हितकारी नहीं है ५९-६१ हे तात! तेरी पीठ पीछे सज्जन पुरुषोंकी सभामें अर्जुनने तेरे इन गुणोंकी मुझसे प्रशंसाकी थी ॥ ६२ ॥ हे वार्ष्णेय! मुझे आशा है, कि-तुम मेरी, अर्जुनकी, भीमकी तथा नकुल और सहदेव

द्वारकां प्रति । तत्राहमपि ते भक्तिमर्जुनं प्रति दृष्टवान् ॥ ६४ ॥ न तत् सौहृदमन्येषु मया शैनेय लक्षितम् । यथा त्वमस्मान् भजसे वर्त्तमानानुपप्लवे ॥ ६५ ॥ सोऽभिजात्या च भक्त्या च सख्यस्याचार्यकस्य च । सौहृदस्य च वीर्यस्य कुलीनत्वस्य माधव ॥ ६६ ॥ सत्यस्य च महाबाहो अनुकम्पार्थमेव च । अनुरूपं महेष्वास कर्म त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ६७ ॥ सुयोधनो हि सहसा गतो द्रोणेन दंशितः । पूर्वमेवानुयातास्ते कौरवाणां महारथाः ॥ ६८ ॥ सुमहान्निनदश्चैव श्रूयते विजयं प्रति । स शैनेय जवेनाशु गन्तुमर्हसि मानद६९ भीमसेनो वयञ्चैव संयताः सहसैनिकाः । द्रोणमावारयिष्यामो यदि त्वां प्रतियास्यति ॥ ७० ॥ पश्य शैनेय सैन्यानि द्रवमा-

की इच्छाको विफल न करोगे ॥ ६३ ॥ जिस समय मैं तीर्थोंमें भ्रमण करता हुआ द्वारकामें पहुँचा था, उस समय भी मैंने अर्जुनके ऊपर तेरी प्रगाढ भक्ति देखी थी । ६४ ॥ हे सात्यकि! युद्धमें खड़ेहुए हम लोगोंकी तू जैसी सहायता कररहा है हे सात्यकि! ऐसा प्रेम मैं किसी दूसरेमें नहीं देखता ॥ ॥ ६५ ॥ हे महाभुज मधुकुलोत्पन्न सात्यकि ! तू जैसे कुलमें उत्पन्न हुआ है और हमसे जैसी प्रीति, मित्रता रखता है तथा अपने गुरुके ऊपर प्रेम रखता है तू अर्जुनमें जैसी सत्यनिष्ठा रखता है इन सब बातोंको विचारकर तुझे अपने स्वरूपके अनुसार काम करना चाहिये; तू हमारे ऊपर कृपा करके इस कामको कर ६६—६७ द्रोणके कवचबन्धन करने पर दुर्योधन सहसा अर्जुन पर चढ़ कर गया है, दूसरे महारथी तो पहिलेसे ही तहाँ है ॥ ६८ ॥ तथा अर्जुनके समीप (शत्रुओंके शंखोंकी) बड़ीभारी ध्वनि भी सुनाई देरही है अतः हे शैनेय ! हे मानद ! तुम्हें तहाँ शीघ्रतासे चलेजाना चाहिये ॥ ६९ ॥ हम और भीमसेन सैनिकों सहित तयार खड़े हैं, यदि द्रोण तेरा सामना करेंगे तो हम उनको रोक

णानि संयुगे । महान्तञ्च रणे शब्दं दीर्यमाणाञ्च भारतीम् ७१ महामारुतवेगेन समुद्रमिव पर्वसु । धार्त्तराष्ट्रबलं तात विक्षिप्तं सव्यसाचिना ॥ ७२ ॥ रथैर्विपरिधावद्भिर्मनुष्यैश्च हयैश्च ह । सैन्यं रजः समुद्भूतमेतत् सम्परिवर्त्तते ॥७३॥ सम्वृतः सिन्धुसौवीरैर्नखरप्रासयोधिभिः । अत्यन्तोपचितैः शूरैः फाल्गुनः परवीरहा ॥ ७४ ॥ नैतद्बलमसम्वार्य शक्यो जेतुं जयद्रथः । एते हि सैन्धवस्यार्थे सर्वे सन्त्यक्तजीविताः ॥ ७५ ॥ शरशक्तिध्वजवरं हयनागसमाकुलम् । पश्यैतद्धार्त्तराष्ट्राणामनीकं सुदुरासदम् ॥७६॥ शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शंखशब्दांश्च पुष्कलान् । सिंहनादरवांश्चैव रथनेमिस्वनांस्तथा ॥ ७७ ॥ नागानां शृणु शब्दञ्च पत्तीनां च सहस्रशः । सादिनां द्रवतां चैव शृणु कम्पयतां महीम् ॥ ७८ ॥

लगे ७० हे सात्यकि ! रणमें इन भागती हुई सेनाओंको देख ! इस कोलाहलको देख।और फटतीहुई इस सेनाको भी देख७१ हे तात ! पूर्णिमाके दिन पवनसे खलभलाते हुए समुद्रकी समान अर्जुनके द्वारा विचलित हुई इस दुर्योधनकी सेनाको देख ७२ दौडतेहुए रथ हाथी और घोडोंसे सेनामें यह धूल ही धूल उडरही है ॥ ७३ ॥ प्रतीत होता है कि—काँटेदार प्रासोंसे लडनेवाले बलमें अत्यन्त बढ़े सिधु और सौवीर देशोंके वीरोंने शत्रुनाशक अर्जुनको घेरलिया है ॥ ७४ ॥ ये सब जयद्रथके लिये प्राण देनेको तयार होगए हैं अतः इन सबोंको जीते विना जयद्रथको नहीं जीता जासकता ॥ ७५ ॥ यह बाण, शक्ति, ध्वजा, पताका, घोड़े और हाथियोंसे गछीहुई कौरवोंकी दुराधर्ष सेना खडी है, इसकी ओरको तू दृष्टि डाल ॥ ७६ ॥ दुन्दुभियोंके दुन्द, शंखोंकी ध्वनि, सिंहगर्जनाकी समान वीरोंकी गर्जना और रथोंके पहियोंकी घरघराहटका शब्द भी सुन।७७। दौड़ भागमें पृथ्वीको कँपाते हुए हाथी, पैदल और घुडसवारोंकी

पुरस्तात् सैन्धवानीकं द्रोणानीकञ्च पृष्ठतः। बहुत्वाद्धि नरव्याघ्र देवेन्द्रमपि पीडयेत् ॥ ७९ ॥ अपर्यन्ते बले मग्नो जह्यादपि च जीवितम् । तस्मिंश्च निहते युद्धे कथं जीवेत मादृशः ॥ ८० ॥ सर्वथाहमनुप्राप्तः सुकृच्छ्रं त्वयि जीवति । श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयश्च पाण्डवः ॥ ८१ ॥ लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रविष्टस्तात भारतीम् । सूर्योदये महाबाहुर्दिवसश्चातिवर्त्तते ॥ ८२ ॥ तन्न जानामि वार्ष्णेय यदि जीवति वा न वा । कुरूणाञ्चापि तत् सैन्यं सागरप्रतिमं महत् ॥८३॥ एक एव च बीभत्सुः प्रविष्टस्तात भारतीम् । अविषह्यां महाबाहुः सुरैरपि महाहवे ॥ ८४ ॥ न हि मे वर्त्तते बुद्धिरद्य युद्धे कथञ्चन । द्रोणोऽपि रभसो युद्धे मम पीड-

---

पदध्वनिकी ओर तो कान लगा ७८ इसमें सबसे आगे जयद्रथकी सेना है और उसके पीछेसे द्रोणकी सेना दीखरही है यह सेना बहुत बडी होनेके कारण इन्द्रको भी पीडित करसकती है ॥७९॥ इस अपार सेनामें मग्न होकर अर्जुन कदाचित् अपने प्राण खोबैठे यदि वह मारागया तो मुझसा पुरुष कैसे जीसकता है ॥ ८० ॥ हे अर्जुन ! तेरे जीते रहतेहुए मैं बड़े कष्टमें पड गया हूं मेरा अर्जुन शरीरके रङ्गमें साँवला और अवस्थामें तरुण है उसके बाल घुँघराले हैं तथा वह दर्शनीय है ॥८१ ॥ हे तात ! फुर्तीसे और विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाला, बडी भुजाओंवाला मेरा अर्जुन सूर्योदयके समय इस सेनामें घुसा था और अब दिन ढलरहा है ॥ ८२ ॥ हे वार्ष्णेय ! मुझे अब यह भी पता नहीं, कि-अब वह जीवित है या मरगया और हे तात ! कौरवोंकी सेना समुद्रकी समान अपार है ॥ ८३ ॥ हे तात ! देवता भी जिसको न सहसकें ऐसी इस महासेनामें महाबाहु अर्जुन अकेला ही घुसगया है ॥ ८४ ॥ उसकी चिन्ताके कारण आज मेरी बुद्धि ठीक ठिकाने नहीं है, और यह ब्राह्मण द्रोणा-

यते बलम् ॥ ८५ ॥ प्रत्यक्षन्ते महाबाहो यथासौ चरति द्विजः । युगपच्च समेतानां कार्याणां त्वं विचक्षणः ॥ ८६ ॥ महार्थं लघुसंयुक्तं कर्तुमर्हसि मानद । तस्य मे सर्वकार्येषु कार्यमेतन्मतं महत् ॥ ८७ ॥ अर्जुनस्यपरित्राणं कर्त्तव्यमिति संयुगे । नाहं शोचामि दाशार्हं गोप्तारं जगतः पतिम् ॥ ८८ ॥ स हि शक्तो रणे तात त्रीन् लोकानपि सङ्गतान् । विजेतुं पुरुषव्याघ्रः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥८९॥ किं पुनर्धार्त्तराष्ट्रस्य बलमेतत् सुदुर्बलम् । अर्जुनस्त्वेष वार्ष्णेय पीडितो बहुभिर्युधि ॥ ९० ॥ प्रजह्यात् समरे प्राणान् तस्माद्विन्दामि कश्मलम् । तस्य त्वं पदवीं गच्छगच्छे-

---

चार्य भी क्रोधमें भरके मेरी सेनाको पीडित करतेहुए जैसे रणमें घूमरहे हैं, यह भी तू प्रत्यक्ष देखरहा है, जब एकसाथ बहुतसे काम आपड़ें, उस समय कौनसा काम पहिले करना चाहिये, इसका निश्चय करनेमें तू चतुर है ॥ ८५-८६ ॥ हे मानद ! तुझे ऐसा काम करना चाहिये जो शीघ्रतासे होसके और महत्त्वपूर्ण हो और मुझे तो इन सब कामोंमें रणमें अर्जुनकी रक्षा करना ही बडा प्रयोजनीय काम प्रतीत होता है, मैं जगत्पति श्रीकृष्णकी तो चिन्ता नहीं करता क्यों कि—वह तो दूसरेके भी रक्षक हैं ॥ ८७-८८ ॥ हे तात ! तीनों लोक इकट्ठे होकर भी उनसे लडने आवें तो भी वे पुरुषव्याघ्र उनको जीत सकते हैं यह बात मैं तुझसे सर्वथा सत्य कहता हूँ ॥ ८९ ॥ फिर इस धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी दुर्बल सेनाको जीतलेना उनके लिये कौन बात है ? परन्तु हे वार्ष्णेय! अर्जुन बहुतसे योधाओंसे पीडा पाने पर मर सकता है, अतः मुझे खेद होरहा है अर्जुन सरीखे पुरुषकी सहायताके लिये मुझसरीखे पुरुषकी प्रेरणासे जैसे तुझसरीखे पुरुषको सहायता करनेके लिये जाना चाहिये तैसे ही तू जिस मार्गसे अर्जुन गया है उस ही मार्गसे उसकी सहायता करनेको

युस्वादृशा यथा ॥ ९१ ॥ तादृशस्येदृशे काले मादृशेनाभिनो-
दितः । रणे वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ स्मृतौ॥९२॥प्रद्युम्नश्च
महावाहुस्त्वञ्च सात्वत विश्रुतः । अस्त्रे नारायणसमः संकर्षण-
समो वले ॥९३॥ वीरतायां नरव्याघ्र धनञ्जयसमो ह्यसि । भीष्म-
द्रोणावतिक्रम्य सर्वयुद्धविशारदम् ॥ ९४ ॥ त्वामेव पुरुषव्याघ्रं
लोके सन्तः प्रचक्षते । नाशक्यं विद्यते लोके सात्यकेरिति माधव९५
तत्त्वां यदभिवक्ष्यामि तत् कुरुष्व महावल । सम्भावनां हि लोक-
स्य मम पार्थस्य चोभयोः ॥ ९६ ॥ नान्यथा त्वं महावाहो सम्प्र-
कर्तुमिहार्हसि । परित्यज्य प्रियान् प्राणान्रणे चर ह्यपीतवत्॥९७॥
न हि शैनेय दाशार्हा रणे रक्षन्ति जीवितम् । अयुद्धमनवस्थानं
संग्रामे च पलायनम् ॥ ९८ ॥ भीरूणामसतां मार्गो नैष दाशार्ह-

जा वृष्णिवीरोंमें युद्धके समय आजकल दो पुरुष ही अतिरथी
गिने जाते हैं, ॥ ९०—९१ एक तो महावाहु प्रद्युम्न और हे
सात्वत ! दूसरा लोक-प्रसिद्ध तू हे नरव्याघ्र ! तू अस्त्रोंके ज्ञानमें
नारायणकी समान है,वलमें वलरामकी समान है और वीरतामें
अर्जुनकी समान है और हे सात्यकि ! भीष्म तथा द्रोणको एक
ओर छोडकर पुरुषोंमें व्याघ्र समान तथा सव युद्धोंमें कुशल ऐसे
तेरा नाम लेकर सन्त पुरुष कहते हैं,कि-जगत्में ऐसा कोई काम
नहीं है जो सात्यकिसे न वनसके ॥ ९२—९५ ॥ अतः हे महा-
वली ! मैं तुझे जो काम सौंपता हूँ, उस कामको तू कर, मुझे,
भीमको, नकुलको, सहदेवको अर्जुनको तथा सम्पूर्ण जगत्को
तेरे कुल शील तथा शास्त्राभ्यास पर पूरा विश्वास है ॥ ९६ ॥
हे महावाहो ! हमारे विश्वासके प्रतिकूल तुझे कुछ न करना
चाहिये, तू अपने प्रिय प्राणोंकी भी परवाह न कर निडर होकर
रणमें घूम ॥९७॥ हे शैनेय ! दाशार्ह कुलके पुरुष रणमें आकर
अपने प्राणोंको वचातेहुए नहीं फिरते हैं, युद्ध न करना अथवा

संश्रितः । तत्रार्जुनो गुरुस्तात धर्मात्मा शिनिपुङ्गव ॥ ९९ ॥ वासुदेवो गुरुश्चापि तव पार्थस्य धीमतः । कारणद्वयमेतद्धि जानंस्त्वामहमब्रुवम् ॥ १०० ॥ मावमंस्था वचो मह्यं गुरुस्तव गुरोर्ह्यहम् । वासुदेवमतश्चैव मम चैवार्जुनस्य च ॥ १०१ ॥ सत्यमेतन्मयोक्तन्ते याहि यत्र धनञ्जयः । एतद्वचनमाज्ञाय मम सत्यपराक्रम ॥१०२॥ प्रविशैतद्बलं तात धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः । प्रविश्य च यथान्यायं सङ्गम्य च महारथैः । यथार्हमात्मनः कर्म रणे सात्वत दर्शय१०३

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

सञ्जय उवाच । प्रीतियुक्तश्च हृद्यञ्च मधुराक्षरमेव च । कालयुक्तञ्च चित्रञ्च न्याय्यं यच्चापि भाषितुम् ॥ १ ॥ धर्मराजस्य

युद्धमें आकर घबड़ाजाना या भागना, ॥ ९८ ॥ हे दाशार्ह ! ये डरपोक और दुष्टोंके काम हैं, दाशार्हवंशी पुरुष ऐसे कामोंको नहीं करते हैं और हे शिनिपुंगव ! धर्मात्मा अर्जुन तेरा गुरु है ॥ ९९ ॥ और श्रीकृष्ण बुद्धिमान् अर्जुनके तथा तेरे भी गुरु हैं, इन दोनों कारणोंका विचार करके ही मैंने तुझसे यह बात कही है ॥ १०० ॥ तुझे मेरे वचनको भी नहीं टालना चाहिये, क्योंकि–मैं तेरे गुरुका भी गुरु हूँ और मैंने जो बात कही है इसमें कृष्णका, मेरा और अर्जुनका एक मत है ॥ १०१ ॥ हे सत्यपराक्रम ! मैंने तुझसे यह सब बात सत्य ही कही है, अतः तू मेरी आज्ञा मानकर जहाँ अर्जुन खड़ा हो तहाँ पहुँचजा ॥ १०२ ॥ हे सात्यकी ! तू इस दुर्मति दुर्योधनकी सेनामें प्रवेश कर और महारथियोंके सामने जाकर रणमें अपने अनुरूप पराक्रम को दिखा ॥ १०३ ॥ एक सौ दशवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११० ॥

सञ्जयने कहा, कि–हे भरतश्रेष्ठ ! धर्मराजके प्रेम भरे हृदयमें विचार करने योग्य, समयोचित, न्याययुक्त इस विचित्र कहने

तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः । सात्यकिर्भरतश्रेष्ठ प्रत्युवाच युधिष्ठिरम्॥२॥श्रुतं ते वदतो वाक्यं सर्वमेतन्मयाच्युत । न्याययुक्तञ्च चित्रञ्च फाल्गुनार्थे यशस्करम् ॥३॥ एवं विधे तथाकाले मादृशं प्रेक्ष्य सम्मतम् । वक्तुमर्हसि राजेन्द्र यथा पार्थं तथैव माम्॥४॥ न मे धनञ्जयस्यार्थे प्राणा रक्ष्याः कथञ्चन।त्वत्प्रयुक्तः पुनरहं किं न कुर्यां महाहवे॥लोकत्रयं योधयेयं सदेवासुरमानुषम्। त्वत्प्रयुक्तो नरेन्द्रेह किमुतैतत् सुदुर्बलम् ॥६॥ सुयोधनबलन्त्वद्य योधयिष्ये समन्ततः । विजेष्ये च रणे राजन् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥७॥कुशल्यहं कुशलिनं समासाद्य धनञ्जयम् । हते जयद्रथे राजन् पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम्॥८॥ अवश्यन्तु मया सर्वं विज्ञाप्यस्त्वं नराधिप । वासुदेवस्य यद्वाक्यं

योग्य वचनको सुनकर शिनिपुङ्गव सात्यकिने युधिष्ठिरको उत्तर दिया, कि-॥ १ ॥ २ ॥ हे युधिष्ठिर ! आपने जो अर्जुनकी सहायता करनेके लिये न्याययुक्त, विचित्र और मुझे यश देने वाली जो बात कही, वह सब मैंने सुनली ॥ ३ ॥ हे राजेन्द्र ! मैं आपके कहनेको नहीं टालूँगा, आपत्ति पड़ने पर जैसे आप अर्जुनसे कहसकते हैं उसी प्रकार मुझे आज्ञा देसकते हैं ॥ ४ ॥ अर्जुनके लिये मैं अपने प्राण तक देदेना उचित समझता हूँ, फिर जब आप कहरहे हैं तो मैं इस महायुद्धमें कुछ कमी नहीं करूँगा ॥५॥ हे राजेन्द्र ! आपकी आज्ञा पाकर मैं देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोकोंसेभी लड़सकता हूँ, फिर इस बल-हीन सेनाकी तो बात ही क्या है ॥ ६ ॥ आज मैं दुर्योधनकी सेनामें चारों ओर युद्ध करूँगा और हे राजन् ! मैं तुमसे यह सत्य कहता हूँ, कि-मैं इस सेनाको जीत भी लूँगा ॥ ७ ॥ हे राजन् ! मैं कुशलपूर्वक, शस्त्रविद्यामें कुशल अर्जुनके पास पहुँच कर जयद्रथके मारे जानेके अनन्तर आपके पास आऊँगा ॥८॥ परन्तु हे नराधिप ! बुद्धिमान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने जो कुछ

फाल्गुनस्य च धीमतः ॥ ९ ॥ इदन्त्वभिपरीतोऽहमर्जुनेन पुनः
पुनः । मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ १० ॥ अद्य
माधव राजानमप्रमत्तोऽनुपालय । आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा यावद्धन्मि
जयद्रथम् ॥ ११ ॥ त्वयि चाहं महाबाहो प्रद्युम्ने वा महारथे ।
नृपं निक्षिप्य गच्छेयं निरपेक्षो जयद्रथम् ॥ १२ ॥ जानीषे हि
रणे द्रोणं कुरुषु श्रेष्ठसम्मतम् । प्रतिज्ञातं हि तेनेदं पश्यमानेन वै
प्रभो १३ ग्रहणे धर्मराजस्य भारद्वाजोऽपि गृध्यति । शक्तश्चापि रणे
द्रोणो निग्रहीतुं युधिष्ठिरम् १४ एवं त्वयि समाधाय धर्मराजं नरोत्तमम् ।
अहमद्य गमिष्यामि सैन्धवस्य वधाय हि ॥ १५ ॥ जयद्रथञ्च
हत्वाहं द्रुतमेष्यामि माधव । धर्मराजं न चेद् द्रोणो निगृह्णीयाद्रणे
बलात् ॥ १६ ॥ निगृहीते नरश्रेष्ठे भारद्वाजेन माधव ।

मुझसे कहा है, वह सब बातें मुझे आपसे अवश्य कहनी
चाहियें ॥९॥ अर्जुनने सब सेनाके बीचमें और वासुदेवके सामने
बारम्बार यह कहा था, कि–हे माधव ! मैं युद्धमें उदारबुद्धिसे
जयद्रथको मारकर आऊँ तबतक तू सावधान होकर युद्धमें युधिष्ठिरकी
रक्षा करना॥१०॥११॥ हे महाबाहो!तेरे अथवा महारथी
प्रद्युम्नके ऊपर युधिष्ठिरकी रक्षाका भार सौंपकरही मैं निश्चिन्तताके
साथ जयद्रथसे लडनेको जासकता हूँ॥१२॥हे प्रभो ! कौरव
योधाओंमें श्रेष्ठ द्रोणको तुम जानते ही हो, उन्होंने चारों ओर
दृष्टि डालकर युधिष्ठिरको जीवित ही पकडनेकी प्रतिज्ञा की है
और हे माधव ! रणमें युधिष्ठिरको पकडनेकी द्रोणमें शक्ति
भी है ॥१३–१४॥ मैं महाराज युधिष्ठिरको तेरी रक्षामें छोडकर
आज जयद्रथके वधके लिये प्रस्थान करता हूँ ॥ १५ ॥ हे माधव !
यदि रणमें द्रोणाचार्य युधिष्ठिरको बलात्कारसे न पकडसके
तो मैं शीघ्र ही जयद्रथको मारकर तेरे पास आजाऊँगा ॥ १६ ॥
और हे माधव ! यदि द्रोण नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरको पकड लेंगे तो

सैन्धवस्य वधो न स्यान्ममाप्रीतिस्तथा भवेत् ॥ १७ ॥ एवं गते नरश्रेष्ठे पाण्डवे सत्यवादिनि । अस्माकं गमनं व्यक्तं वनं प्रति भवेत् पुनः ॥ १८ ॥ सोयं मम जयो व्यक्तं व्यर्थ एव भविष्यति । यदि द्रोणो रणे क्रुद्धो निगृह्णीयाद्युधिष्ठिरम् ॥ १९ ॥ स त्वमद्य महाबाहो प्रियार्थं मम माधव । जयार्थञ्च यशोऽर्थञ्च रक्ष राजानमाहवे ॥ २० ॥ स भवान्मयि निक्षेपो निक्षिप्तः सव्यसाचिना । भारद्वाजाद्भयं नित्यं मन्यमानेन वै प्रभो ॥ २१ ॥ तस्यापि च महाबाहो नित्यं पश्यामि संयुगे । नान्यं हि प्रतियोद्धारं रौक्मिणेयादृते प्रभो ॥ २२ ॥ माञ्चापि मन्यते युद्धे भारद्वाजस्य धीमतः । सोऽहं सम्भावनाञ्चैनामाचार्यवचनन्तु तत् ॥ २३ ॥

मुझसे जयद्रथका वध नहीं हो सकेगा और मैं तेरे ऊपर अप्रसन्न भी होऊँगा ॥ १७ ॥ यदि सत्यवादी पाण्डुपुत्र कैद होगए तो फिर हम निश्चय ही वनको चले जायँगे ॥ १८ ॥ और यदि द्रोण युधिष्ठिरको पकड़ लेंगे तो यह मेरी जीत वास्तवमें व्यर्थ ही होगी ॥ १९ ॥ अतः हे महाबाहो ! हे माधव ! आज तू विजय और यश पानेके लिये तथा मेरी प्रसन्नताके लिये युधिष्ठिरको बचाये रखना ॥ २० ॥ हे प्रभो ! द्रोणाचार्यसे सर्वदा विपत्ति आ पड़नेकी शंका रखकर अर्जुनने आपकी रक्षाका भार मुझे सौंपा था ॥ २१ ॥ और हे महाराज ! मैं जो द्रोणाचार्यके पराक्रमको नित्यप्रति युद्धमें देखता हूँ उससे यह प्रतीत होता है, कि-रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नके सिवाय और कोई भी उनके सामने नहीं डटसकता ॥२२॥ और वह समझते हैं, कि-मुझमें द्रोणाचार्यका सामना करनेकी शक्ति है अतः मैं अपने गुरुके वचन और आशाके विरुद्ध काम कैसे करूँ ? हे राजन् ! मेरे चलेजानेपर अभेद्य कवचको पहरेहुए द्रोणाचार्य, फुर्तीसे तुमको पकड़कर इसप्रकार नचावेंगे, जैसे बालक पक्षीको पकड़कर खेल करता है

पृष्ठतो नोत्सहे कर्तुं त्वां वा त्यक्तुं महीपते। आचार्यो लघुहस्तत्वादभेद्यकवचावृतः ॥ २४ ॥ उपलभ्य रणे क्रीडेद्यथा शकुनिना शिशुः। यदि कार्ष्णिर्धनुष्पाणिरिह स्यान्मकरध्वजः ॥ २५ ॥ तस्मै त्वां विसृजेयं वै स त्वां रक्षेद्यथार्जुनः। कुरु त्वमात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ॥ २६ ॥ यः प्रतीयाद्रणे द्रोणं यावद्गच्छामि पाण्डवम्। मा च ते भयमद्यास्तु राजन्नर्जुनसम्भवम् २७ न स जातु महाबाहुर्भारमुद्यम्य सीदति। ये च सौवीरकाः योधास्तथा सैन्धवपौरवाः ॥२८॥ उदीच्या दाक्षिणात्याश्च ये चान्येपि महारथाः। ये च कर्णमुखा राजन् रथोदाराः प्रकीर्तिताः ॥२९॥ एतेऽर्जुनस्य क्रुद्धस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। उद्युक्ता पृथिवी सर्वा ससुरासुरमानुषा ॥ ३० ॥ सराक्षसगणा राजन् सकिन्नरमहोरगा। जङ्गमा स्थावराः सर्वे नालं पार्थस्य संयुगे ॥ ३१ ॥ एवं

यदि इस समय मकरध्वज धनुषधारी कृष्णपुत्र प्रद्युम्न यहाँ होता तो मैं तुम्हारी रक्षाका काम उसको सौंप देता और वह अर्जुनकी समान ही तुम्हारी रक्षा करता, परन्तु अब मेरे चलेजाने पर तुम्हारी रक्षा कौन करेगा? क्या तुम अपनी रक्षाका प्रबन्ध स्वयं करलोगे? ॥ २३–२६ ॥ मैं अर्जुनके पास जाऊँ उतने समय तक रणमें द्रोणके सामने युद्ध करनेवाला कौनसा योधा है? हे राजन्! आज तुम अर्जुनकी ओरसे कोई चिन्ता न करो २७ हे राजन्! महाबाहु अर्जुन शत्रुकी ओरके महासङ्कटका भार लेकर कभी थकते नहीं हैं, ये जो सौवीर और सिंधुदेशके पुरुष उत्तर और दक्खिनके योधा हैं तथा दूसरे भी जो कर्ण आदि प्रसिद्ध २ महारथी योद्धा हैं ये सब यदि अर्जुन क्रोधमें भरजाय तो उसकी सोलहवीं कलाकी बराबर भी नहीं हैं, हे राजन्! यदि पृथिवीके राक्षस, देवता, मनुष्य, दानव, किन्नर और बड़े २ सर्प भी इकट्ठे होकर अर्जुनको मारनेके लिये खड़े

ज्ञात्वा महाराज व्येतु ते भीर्धनञ्जये। यत्र वीरौ महेष्वासौ कृष्णौ सत्यपराक्रमौ ॥३२॥ न तत्र कर्मणो व्यापत् कथञ्चिदपि विद्यते। दैवं कृतास्त्रतां योगममर्षमपि चाहवे ॥ ३३ ॥ कृतज्ञतां दयाञ्चैव भ्रातुस्त्वमनुचिन्तय। मयि चाप्यपयाते वै गच्छमानेर्जुनं प्रति ३४ द्रोणे चित्रास्त्रतां संख्ये राजंस्त्वमनुचिन्तय। आचार्यो हि भृशं राजन्निग्रहे तव गृध्यति ॥ ३५ ॥ प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् सत्यां कर्त्तुञ्च भारत। कुरुष्वाद्यात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ३६ यस्याहं प्रत्ययात् पार्थ गच्छेयं फाल्गुनं प्रति। न ह्यहं त्वां महाराज अनिक्षिप्य महाहवे ॥ ३७ ॥ क्वचिद्यास्यामि कौरव्य सत्यमेतद् ब्रवीमि ते। एतद्विचार्य बहुशो बुद्ध्या बुद्धिमतां वर ॥३८॥

होजायँ तो भी वे रणमें अर्जुनका पराजय नहीं करसकते २८-३१ हे महाराज! इन सब बातोंको समझकर आप अर्जुनकी चिन्ताको छोड दीजिये. जहाँ सत्यपराक्रमी महाधनुर्धारी वीर दोनों कृष्ण (अर्जुन और कृष्ण) हैं, तहाँ पर काममें कुछ विघ्न नहीं पडसकता तुम युद्धमें अपने भाईके देवतापन अस्त्रपारगामीपन, क्रोध, शस्त्रज्ञान, कृतज्ञता तथा दयाकी ओर ध्यान कर विचारो और हे राजन्! जब मैं चला जाऊँगा, तब द्रोण युद्धमें अति-अद्भुत अस्त्रोंका प्रयोग करेंगे, इसका भी तुम ध्यान दो हे भारत। द्रोणाचार्य तुम्हैं पकडनेके लिये और अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करनेके लिये बड़े आतुर होरहे हैं, इन सब बातोंका विचार कर तुम अपनी रक्षा करनेका यत्न करो मेरे जाने के पीछे तुम्हारी रक्षा कौन करेगा ॥ ३२–३६ ॥ जिसका विश्वास करके मैं अर्जुनके पास जाऊँ, हे महाराज! हे कौरव्य! मैं तुमसे यह सच कहता हूँ, कि–मैं तुम्हारी रक्षाका भार किसीको सौंपे बिना नहीं जाऊँगा!!! हे महाबुद्धिमान् राजन्! इन सब बातोंको मनमें अच्छी तरह विचार लो और जो तुम्हें परम-

दृष्ट्वा श्रेयः परं बुद्ध्या ततो राजन् प्रशाधि माम् ॥ ३९ ॥ युधिष्ठिर उवाच । एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव । न तु मे शुध्यते भावः श्वेताश्वं प्रति मारिष ॥ ४० ॥ करिष्ये परमं यत्नमात्मनो रक्षणे ह्यहम् । गच्छ त्वं समनुज्ञातो यत्र यातो धनञ्जयः ॥४१॥ आत्मसंरक्षणं संख्ये गमनञ्चार्जुनम्प्रति । विचार्य तत् स्वयं बुद्ध्या गमनं तत्र रोचये ॥ ४२ ॥ स त्वमातिष्ठ मानाय यत्र यातो धनञ्जयः । ममापि रक्षणं भीमः करिष्यति महाबलः ॥ ४३ ॥ पार्षतश्च ससोदर्यः पार्थिवाश्च महाबलाः । द्रौपदेयाश्च मां तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ॥ ४४ ॥ केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः । विराटो द्रुपदश्चैव शिखण्डी च महारथः ॥ ४५ ॥ धृष्टकेतुश्च बलवान् कुन्तिभोजश्च मातुलः ।

कल्याणकारी प्रतीत हो उसकी मुझे आज्ञा दो ॥ ३७-३९ ॥ युधिष्ठिरने प्रत्युत्तर दिया, कि-हे महाबाहु सात्यके ! जो तुम कहते हो वह सब बात ठीक है, तब भी हे तात ! अर्जुनके लिये मेरा चित्त निश्चिन्त नहीं होता ॥ ४० ॥ मैं अपनी रक्षाके लिये अपने आप ही प्रयत्न करलूँगा और मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि-तुम जहाँ अर्जुन हो तहाँ शीघ्र ही जाओ॥४१॥मैंने अपनी बुद्धिके साथ विचार किया कि-सात्यकिको अपने पास रखना ठीक है अथवा उसको अर्जुनके पास भेजना ठीक है ? तो मुझे अर्जुनके पास भेजना ही अधिक उचित प्रतीत हुआ ॥ ४२ ॥ अतः अब तू खडा न रह और जहाँ अर्जुन हो तहाँ शीघ्रतासे पहुँच जा, और मेरी रक्षा महाबली भीमसेन करलेगा ॥ ४३ ॥ तथा हे तात ! भाई सहित धृष्टद्युम्न, अन्य महाबली राजे तथा द्रौपदी के पाँचों पुत्र मेरी रक्षा अच्छी तरह करलेंगे ॥ ४४ ॥ हे तात ! पाँचों केकय भाई, राक्षस घटोत्कच, राजा विराट और द्रुपद, तथा महारथी शिखण्डी, बली धृष्टकेतु और मामा कुन्तिभोज

नकुलः सहदेवश्च पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ॥ ४६ ॥ एते समाहितास्तात रक्षिष्यन्ति न संशयः । न द्रोणः सह सैन्येन कृतवर्मा च संयुगे ॥ ४७ ॥ समासादयितुं शक्यो न च मां धर्षयिष्यति । धृष्टद्युम्नश्च समरे द्रोणं क्रुद्धं परन्तपः ॥ ४८ ॥ वारयिष्यति विक्रम्य वेलेव मकरालयम् । यत्र स्थास्यति संग्रामे पार्षतः परवीरहा ॥ ४९ ॥ द्रोणो न सैन्यं बलवत् क्रामेत्तत्र कथञ्चन । एष द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् ॥५०॥ कवची सशरी खड्गी धन्वी च वरभूषणः । विश्रब्धं गच्छ शैनेय माकार्षीर्मयि सम्भ्रमम् ॥ धृष्टद्युम्नो रणे क्रुद्धं द्रोणमावारयिष्यति ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिर-
सात्यकिवाक्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥

सञ्जय उवाच । धर्मराजस्य तद्वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः । स पार्थाद्भयमाशंसन् परित्यागान्महीपतेः ॥ १ ॥ अपवादं

नकुल सहदेव और सृञ्जयोंसहित पांचाल ये सब सावधान होकर मेरी रक्षा करेंगे, द्रोण और कृतवर्मा सेनासहित चढ आवेंगे तो भी वे मुझे कैद नहीं कर सकेंगे, रणमें क्रोधमें भरेहुए द्रोणको धृष्टद्युम्न इसप्रकार रोकदेगा जैसे किनारा समुद्रको रोक लेता है वीर शत्रुओंका नाश करनेवाला धृष्टद्युम्न जहाँ पर खडा होगा, तहाँ द्रोणाचार्य सेनाको बलात्कारसे नहीं हरा सकेंगे क्या तुम यह बात भूलगए, कि-यह कवच, बाण, खड्ग, धनुष और श्रेष्ठ आभूषणोंको धारण कियेहुए द्रोणका नाश करनेके लिये अग्निमेंसे उत्पन्न हुआ था, अतः हे शैनेय ! तुम (इन सबके ऊपर) विश्वास रखकर अर्जुनके पास जाओ और मेरे लिये जरा भी मत घबडाओ धृष्टद्युम्न क्रोधमें भरेहुए द्रोणको रोके रहेगा ॥ ४५-५१ ॥ एकसौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१११॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! धर्मराजके वचन सुन

ह्यात्मनश्च लोकात् पश्यन् विशेषतः । ते मां भीतमिति ब्रूयुरयान्तं
फाल्गुनम्प्रति ॥ २ ॥ निश्चित्य बहुधैवं स सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
धर्मराजमिदं वाक्यमब्रवीत् पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥ कृताञ्चेन्मन्यसे
रक्षां स्वस्ति तेस्तु - विशाम्पते । अनुयास्यामि बीभत्सुं करिष्ये
वचनं तव ॥४॥ न हि मे पाण्डवात् कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
यो मे प्रियतरो राजन् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ५ ॥ तस्याहं पदवीं
यास्ये सन्देशात्तव मानद । त्वत्कृते न च मे किञ्चिदकर्त्तव्यं
कथञ्चन ॥ ६ ॥ यथा हि मे गुरोर्वाक्यं विशिष्टं द्विपदाम्वर ।
तथा तवापि वचनं विशिष्टतरमेव मे ॥ ७ ॥ प्रिये हि तव वर्त्तेते
भ्रातरौ कृष्णपाण्डवौ । तयोः प्रिये स्थितञ्चैव विद्धि मां राजपु-
ङ्गव ॥ ८ ॥ तवाज्ञां शिरसा गृह्य पाण्डवार्थमहं प्रभो । भित्त्वेदं

कर सात्यकि अपने मनमें विचारनेलगा, कि–यदि मैं धर्मराजको
छोड़कर चलाजाऊँगा तो मुझसे अर्जुन अप्रसन्न हो जायँगे ।१।
और यदि मैं अर्जुनकी सहायताके लिए नहीं जाऊँगा तो लोग
मुझे डरपोक कहेंगे तथा संसारमें मेरी निन्दा होगी।।२-३।।तब उस
ने कहा कि–हे राजन ! यदि तुम समझते हो, कि–मेरी रक्षाका
प्रबन्ध होगया, तो हे राजन ! तुम्हारा कल्याण हो मैं आपकी
आज्ञानुसार जहाँ अर्जुन होंगे तहाँ जाता हूँ।।४।।हे राजन् ! यह
मैं आपसे सत्य कहता हूँ, कि–तीनों लोकोंमें मुझे अर्जुनसे
अधिक कोई प्यारा नहीं है ।। ५ ।। हे मानद ! आपकी आज्ञासे
मैं जहाँ अर्जुन हैं तहाँ जाता हूँ, आपके लिये कैसा ही काम
क्यों न हो मैं निषेध नहीं करसकता ।। ६ ।। क्योंकि–हे मनुज-
श्रेष्ठ ! जैसे अर्जुनका वाक्य मेरे लिये मान्य है तैसे ही आप
का वाक्य मुझे उससे भी अधिक मान्य है ।। ७ ।। हे राज-
पुङ्गव ! श्रीकृष्ण और अर्जुन ये दोनों भाई तुम्हारे हितमें लगे
रहते हैं और आप मुझे उन दोनोंके हितमें लगाहुआ जानिये।८

दुर्भिदं सैन्यं मयास्ये नरपुङ्गव ॥ ९ ॥ द्रोणानीकं विशाम्येष
क्रुद्धो झष इवार्णवम् । तत्र यास्यामि यत्रासौ राजन् राजा जय-
द्रथः ॥ १० ॥ यत्र सेनां समाश्रित्य भीतस्तिष्ठति पाण्डवात् ।
गुप्तो रथवरश्रेष्ठैर्द्रौणिकर्णकृपादिभिः ॥ ११ ॥ इतस्त्रियोजनं मन्ये
तमध्वानं विशाम्पते । यत्र तिष्ठति पार्थोऽसौ जयद्रथवधोद्यतः १२
त्रियोजनगतस्यापि तस्य यास्याम्यहं पदम् । आसैन्धववधाद्राजन्
सुदृढेनान्तरात्मना ॥ १३ ॥ अनादिष्टस्तु गुरुणा को न युध्येत
मानवः । आदिष्टस्तु यथा राजन् को न युध्येत मादृशः ॥ १४ ॥
अभिजानामि तं देशं यत्र यास्याम्यहं प्रभो । हलशक्तिगदाप्रास-
चर्मखड्गर्ष्टितोमरम् ॥ १५ ॥ इष्वस्त्रतरसंबाधं क्षोभयिष्ये बला-

हे प्रभो ! अर्जुनके लिये दीहुई आपकी आज्ञाको शिरोधार्य
करके हे नरपुङ्गव ! इस दुर्भेद्य सेनाको भेद कर मैं अर्जुनके
पास जाऊँगा ॥ ९ ॥ हे राजन् ! जैसे नाका समुद्रमें प्रवेश
करता है, तैसे ही मैं द्रोणकी सेनामें प्रवेश करके जहाँ जयद्रथ
होगा तहाँ पहुँच जाऊँगा ॥ १० ॥ जहाँ अर्जुनसे डराहुआ
जयद्रथ श्रेष्ठ रथी अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्यकी रक्षामें
खड़ा होगा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! मैं समझता हूँ कि–वह स्थान
यहाँसे बारह कोस है और जहाँ अर्जुन जयद्रथको मारनेके लिये
खड़ा है, वह स्थान भी बारह कोस ही है, तब भी मैं अपने
मनको अत्यन्त दृढ़ करके जयद्रथके मारेजानेसे पहिले ही अर्जुन
के पास पहुँच जाऊँगा ॥ १२–१३ ॥ हे राजन् ! ऐसा कौन
मनुष्य होगा जो गुरुकी आज्ञाके बिना युद्ध करेगा ? तथा गुरुकी
आज्ञा पाने पर मुझसरीखा कौनसा मनुष्य युद्ध न करेगा १४
हे राजन् ! मुझे जहाँ जाना है उस स्थानको मैं भलीप्रकार
जानता हूँ, मैं तहाँ जाकर हल, शक्ति, गदा, प्रास, ढाल, तल-
वार, ऋष्टि, तोमर, बाण तथा अन्यप्रकारके अस्त्रोंसे भरेहुए

र्णवम् । यदेतत् कुञ्जरानीकं साहस्रमनुपश्यसि ॥ १६ ॥ कुलमांजनकं नाम यत्रैते वीर्यशालिनः । आस्थिता बहुभिर्म्लेच्छैर्युद्धशौण्डैः प्रहारिभिः ॥ १७ ॥ नागा मेघनिभा राजन् क्षरन्त इव तोयदाः । नैते जातु निवर्त्तेरन् प्रेषिता हस्तिसादिभिः ॥ १८ ॥ अन्यत्र हि वधादेषां नास्ति राजन् पराजयः । अथ यान्रथिनो राजन् सहस्रमनुपश्यसि ॥ १९ ॥ एते रुक्मरथा नाम राजपुत्रा महारथाः । रथेष्वस्त्रेषु निपुणा नागेषु च विशाम्पते ॥ २० ॥ धनुर्वेदे गताः पारं मुष्टियुद्धे च कोविदाः । गदायुद्धविशेषज्ञा नियुद्धकुशलास्तथा ॥ २१ ॥ खड्गप्रहरणे युक्ताः सम्पाते चासिचर्मणोः । शूराश्च कृतविद्याश्च स्पर्धन्ते च परस्परम् ॥२२॥ नित्यं

सेनासागरको अपने पराक्रमसे हिलोड डालूँगा, हे राजन् ! तुम जो इस खडी हुई सहस्रों हाथियोंकी सेनाको देख रहे हो १५-१६ इस सेनामेंके हाथी अंजन जातिके और बड़े पराक्रमी हैं, इनके शरीर मेघोंकी समान हैं तथा ये मेघोंकी समान मद टपका रहे हैं जब इनके ऊपर बैठे हुए युद्धकुशल, प्रहार करनेवाले अनेकों म्लेच्छहाथीवान् इनको बढावेंगे तब ये किसीप्रकार भी पीछेको नहीं लौटेंगे ॥ १७-१८ ॥ हे राजन् ! ये रणमें मारे भले ही जायँ, परन्तु हारकर पीछेको नहीं हटेंगे तथा हे राजन् ! तुम जो इन सामने खडे सहस्रों रथियोंको देखते हो ॥ १९ ॥ ये सब महारथी राजकुमार सुवर्णके रथोंमें बैठे हैं, अस्त्र छोडने तथा रथ और हाथियों पर चढनेमें निपुण हैं ॥ २० ॥ धनुर्वेदके पारङ्गत मुष्टियुद्धमें चतुर और गदायुद्धकी विशेष बातोंको जानते हैं, मल्लयुद्ध खड्गयुद्ध, असियुद्ध, ढालका युद्ध और संपातयुद्धमें भी ये बड़े चतुर हैं और इन शूर वीरोंने पूर्ण विद्या पढी है तथा ये परस्पर स्पर्धा रखते हैं ॥ २१—२२ ॥ हे राजन् ! ये वीर सदा ही समरमें मनुष्योंको जीतना चाहते हैं हे राजन् ! इनको कर्णने

हि समरे राजन् विजिगीषन्ति मानवान् । कर्णेन विहिता राजन् दुःशासनमनुव्रताः ॥ २३ ॥ एतांस्तु वासुदेवोऽपि रथोदारान् प्रशंसति । सततं प्रियकामाश्च कर्णस्यैते वशे स्थिताः ॥ २४ ॥ तस्यैव वचनाद्राजन् निवृत्ताः श्वेतवाहनात् । तेन क्लान्ता न च श्रान्ता दृढावरणकार्मुकाः ॥ २५ ॥ मदर्थे धिष्ठिता नूनं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् । एतान् प्रमथ्य संग्रामे प्रियार्थं तव कौरव ॥२६॥ प्रयास्यामि ततः पश्चात् पदवीं सव्यसाचिनः । यांस्त्वेतानपरान् राजन् नागान् सप्तशतानिमान् २७ प्रेक्षसे वर्मसंछन्नान् किरातैः समधिष्ठितान् । किरातराजो यान् प्रादाद् द्विरदान् सव्यसाचिनः २८ स्वलंकृतांस्तदा प्रेष्यानिच्छन् जीवितमात्मनः । आसन्नेते पुरा राजंस्तव कर्मकरा दृढम् ॥ २९ ॥ त्वामेवाद्य युयुत्सन्ते पश्य कालस्य

अस्त्रविद्यामें निपुण बनाकर तयार किया है और ये दुःशासनके शासनमें चलते हैं ॥ २३ ॥ इन रथियोंमें श्रेष्ठ वीरोंकी श्रीकृष्ण भी सराहना करते हैं और ये राजकुमार सदा कर्णका हित चाहते हैं तथा उसके वशमें रहते हैं ॥ २४ ॥ तथा ये कर्णके कहनेसे ही अर्जुनसे नहीं लड़े हैं इस लिये दृढ़ कवच और धनुष धारण करनेवाले राजकुमार जरा भी नहीं थके हैं तथा जरा भी घबड़ाए हुए नहीं हैं ॥ २५ ॥ परन्तु हे राजन्! धृतराष्ट्रके पुत्रकी आज्ञासे ये सब तयार होकर मुझसे लड़नेको खड़े हैं, हे कौरव! मैं आपका हित करनेके लिये पहिले इनको नष्ट करूँगा फिर अर्जुनकी ओरको जाऊँगा, हे राजन्! और तुम जिन सजे हुए तथा कवचधारी और जिनके ऊपर भील चढ़े हुए हैं ऐसे सात सौ हाथियोंको देख रहे हो ये वे हैं कि-जब एक समय किरातराजके प्राण संकटमें आपड़े थे तब अपने प्राणोंको बचानेकी इच्छासे उसने सेवकों सहित अर्जुनको भेंटमें दिए थे, और हे राजन्! ये पहले तुम्हारा काम काज करते थे,

पर्ययम् । एषामेते महामात्राः किराता युद्धदुर्मदाः ॥ ३० ॥ हस्तिशिक्षाविदश्चैव सर्वे चैवाग्नियोनयः । एते विनिर्जिताः संख्ये संग्रामे सव्यसाचिना ॥ ३१ ॥ मदर्थमद्य संयत्ता दुर्योधनवशानुगाः । एतान् हत्वा शरै राजन् किरातान् युद्धदुर्मदान् ॥ ३२ ॥ सैन्धवस्य वधे यत्तमनुयास्यामि पाण्डवम् । ये त्वेते सुमहानागा अञ्जनस्य कुलोद्भवाः ॥ ३३ ॥ कर्कशाश्च विनीताश्च प्रभिन्नकरटामुखाः । जाम्बूनदमयैः सर्वैर्वर्मभिः सुविभूषिताः ॥ ३४ ॥ लब्धलक्षा रणे राजन्नैरावतसमा युधि । उत्तरात् पर्वतादेते तीक्ष्णैर्दस्युभिरास्थिताः ॥ ३५ ॥ कर्कशैः प्रवरैर्योधैः कार्ष्णायसतनुच्छदैः । सन्ति गोयोनयश्चात्र सन्ति वानरयोनयः ॥ ३६ ॥ अनेकयोनयश्चान्ये तथा मानुषयोनयः । अनीकं समवेतानां धूमवर्णमुदी-

परन्तु समयके उलटफेरको देखिये, वे ही आज तुम्हारे सामने लडनेको खड़े हैं, इन हाथियोंके हाथीवान्, युद्धदुर्मद हस्तिविद्याके जाननेवाले और अग्निवंशी हैं, इनको रणमें जीतना कठिन है, परन्तु अर्जुनने इनको संग्राममें जीतलिया था॥२६–३१॥तो भी ये दुर्योधनके अधीन होनेके कारण मेरे सामने लडनेको खड़े हैं इस लिये हे राजन्। मैं इन युद्धदुर्मद किरातोंको बाणोंसे मारकर, जयद्रथके वधमें लगेहुए अर्जुनके पास जाऊँगा, हे राजन्। ये अञ्जनके कुलमें उत्पन्न हुए हाथी बड़े हठीले और सिखाये हुए हैं, इनके मुख और गंडस्थलोंमेंसे मद टपकता रहता है, इन सबोंके ऊपर सुवर्णके कवच शोभा देरहे हैं, ये अपने २ निशाने पर शीघ्र ही पहुँच जाते हैं तथा ये सङ्ग्राममें ऐरावत हाथीकी समान हैं, इनके ऊपर हिमालय पर्वतसेआएहुए दस्युजातिके उग्र स्वभाववाले, कठोर, लोहेके कवचोंको पहरे बड़े २ योधा बैठे हैं, इनमेंसे बहुतसे गौओंसे और बहुतसे बन्दरियोंसे कितने ही वर्णसङ्करोंमें तथा कितने ही मनुष्य स्त्रियोंसे उत्पन्न हुए हैं, हिमालय पर रहनेवाले

र्यते ॥ ३७ ॥ म्लेच्छानां पापकर्तॄणां हिमदुर्गनिवासिनाम् । एतद् दुर्योधनो लब्ध्वा समग्रं राजमण्डलम् ॥ ३८ ॥ कृपञ्च सौमदत्तिं च द्रोणं च रथिनां वरम् । सिन्धुराजं तथा कर्णमवमन्यत पांडवान् ॥३९॥ कृतार्थमथ चात्मानं मन्यते कालचोदितः । ते तु सर्वेऽद्य सम्प्राप्ता मम नाराचगोचरम् ॥ ४० ॥ न विमोक्ष्यन्ति कौन्तेय यद्यपि स्युर्मनोजवाः । तेन सम्भाविता नित्यं परवीर्योपजीविना ॥ ४१ ॥ विनाशमुपयास्यन्ति मच्छरौघनिपीडिताः । ये त्वेते रथिनो राजन् दृश्यन्ते कांचनध्वजाः ॥ ४२ ॥ एते दुर्वारणा नाम काम्बोजा यदि ते श्रुताः । शूराश्च कृतविद्याश्च धनुर्वेदे च निष्ठिताः ॥ ४३ ॥ संहताश्च भृशं ह्येते अन्योन्यस्य हितैषिणः । अक्षौहिण्यश्च संरब्धा धार्त्तराष्ट्रस्य भारत ॥ ४४ ॥

इकट्ठेहुए इन पापी म्लेच्छोंकी सेना धुएँके रङ्गकीसी दीखती है, कालके वशमें हुए दुर्योधनने इस सम्पूर्ण राजमण्डलको इकट्ठा किया है तथा कृपाचार्य, सोमदत्तका पुत्र वाल्हीक, महारथी द्रोण, जयद्रथ और कर्णको इकट्ठा कर पांडवोंका तिरस्कार करता हुआ वह अपनेको कृतार्थ मानता है हे कौन्तेय ! ये सब मनकी समान वेगवाले होंगे तो भी मेरे बाणोंके सामने आकर जीते नहीं बचेंगे. दूसरेके बलपर कूदनेवाले दुर्योधनके बढावा दिये हुए ये सब यदि रणको छोडकर नहीं भागे तो मेरे बाणोंकी वर्षासे पीड़ित होकर नष्ट होजायँगे और हे राजन् ! ये जो सुवर्णकी ध्वजावाले रथी दीखरहे हैं ॥३२–४२॥ आपने कदाचित् सुना हो तो इन कठिनतासे पीछेको हटायेजाने योग्य योधाओंका नाम काम्बोज है, ये शूरवीर विद्यामें कुशल और धनुर्वेदके पारङ्गत हैं, ये बहुत ही मिले जुले रहते हैं और एक दूसरेका भला चाहते हैं, और हे भारत ! कौरववीरोंकी अधीनतामें रहनेवाली क्रोधमें भरीहुई दुर्योधनकी अक्षौहिणी सेनाएं भी मेरे लिये तयार खड़ीं हैं हे

यथा मदर्थे तिष्ठन्ति कुरुवीराभिरक्षिताः । अप्रमत्ता महाराज मामेव प्रत्युपस्थिताः ॥ ४५ ॥ तानहं प्रमथिष्यामि तृणानीव हुताशनः । तस्मात् सर्वानुपासंगान्सर्वोपकरणानि च ॥ ४६ ॥ रथे कुर्वन्तु मे राजन् यथावद्रथकल्पकाः । तस्मिंस्तु किल सम्मर्दे ग्राह्यं विविधमायुधम् ॥ ४७ ॥ यथोपदिष्टमाचार्यैः कार्यः पञ्चगुणो रथः । काम्बोजैर्हि समेष्यामि तीक्ष्णैराशीविषोपमैः ॥ ४८ ॥ नानाशस्त्रसमावायैर्विविधायुधयोधिभिः । किरातैश्च समेष्यामि विषकल्पैः प्रहारिभिः ॥ ४९ ॥ लालितैः सततं राज्ञा दुर्योधनहितैषिभिः । शकैश्चापि समेष्यामि शक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ ५० ॥ अग्निकल्पैर्दुराधर्षैः प्रदीप्तैरिव पावकैः । तथान्यैर्विविधैर्योधैः कालकल्पैर्दुरासदैः ॥ ५१ ॥ समेष्यामि रणे राजन् बहुभिर्युद्धदुर्मदैः । तस्माद्दै

राजन् ! ये सेनाएँ सावधान हो मेरी ओरको बढती ही चली आरही हैं ॥ ४३–४५ ॥ जैसे अग्नि तिनकोंको जलाडालता है तैसे ही मैं इन सबोंको भस्म करडालूँगा, हे राजन् ! इसलिये रथको तैयार करनेवाले मेरे रथमें बाणोंसे भरेहुए बहुतसे भाथोंको तथा दूसरी सब सामग्रीको मेरे रथमें रक्खें, इस युद्धमें नाना प्रकारके आयुधोंको अवश्य लेना चाहिये ॥४६–४७॥ आचार्योंके उपदेशके अनुसार इस समय रथमें पचगुनी सामग्री रखनी चाहिये मैं जहरीले सर्पोंकी समान बाणोंसे काम्बोजोंके साथ युद्ध करूँगा ॥ ४८ ॥ और मैं नाना प्रकारके शस्त्रोंके समूह रखनेवाले तथा नानाप्रकारके आयुधोंसे लडनेवाले तथा विषकी समान प्रहार करनेवाले किरातोंसे मुचेटा लूँगा ॥ ४९ ॥ सर्वदा दुर्योधनसे लालित पालित होते रहनेवाले, दुर्योधनका हित चाहनेवाले इन्द्रकी समान पराक्रमी शकोंके साथ भी मैं युद्ध करूँगा ॥५०॥ तथा हे राजन् ! अग्नि की समान तीक्ष्ण दुराधर्ष, अग्निकी समान जलतेहुए कालकी समान क्रूर और भी बहुतसे दुरासद योधा-

वाजिनो मुख्या विश्रुताः शुभलक्षणाः ॥५२॥ उपावृत्ताश्च पीताश्च पुनर्युज्यन्तु मे रथे । सञ्जय उवाच । तस्य सर्वानुपासङ्गान् सर्वोपकरणानि च ॥ ५३ ॥ रथे चास्थापयद्राजा शस्त्राणि विविधानि च । ततस्तान् सर्वतो युक्तान् सदश्वांश्चतुरो जनाः ॥५४॥ रसवत् पाययामासुः पानं मदसमीरणम् । पीतोपवृत्तान् स्नातांश्च जग्धान्नान् समलंकृतान् ॥५५॥ विनीतशल्यांस्तुरगांश्चतुरो हेममालिनः। तान्युक्तान्रुक्मवर्णाभान् विनीतान् शीघ्रगामिनः ॥ ५६ ॥ संहृष्टमनसोऽव्यग्रान् विधिवत् कल्पिताञ्रथे । महाध्वजेन सिंहेन हेमकेसरमालिना ॥ ५७ ॥ संवृते केतुभिर्हैमैर्मणिविद्रुमचित्रितैः । पाण्डुराभ्रप्रकाशाभिः पताकाभिरलंकृते ॥ ५८ ॥ हेमदण्डोच्छ्रितच्छत्रे वहुशस्त्रपरिच्छदे । योजयामास विधिवद्धेमभाण्डविभूषि-

---

ओंसे तथा युद्धदुर्मद वहुतसे योधाओंसे रणमें लडूँगा, इस लिये मुख्य २ प्रसिद्ध, शुभ लक्षणोंवाले घोडोंको घास खिलाकर और पानी पिलाकर मेरे रथमें जोडो, सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र! उस ही समय राजा युधिष्ठिरने सात्यकिके रथमें भाथे तथा सब सामान और नानाप्रकारके शस्त्र रखवादिये और चार मनुष्योंने सब प्रकारसे समर्थ चार श्रेष्ठ घोडोंको मद उपजानेवाला मादक पानी पिलाया, तदनन्तर न्हवाये हुए और पानी पीकर तथा घास खाकर तृप्त हुए, गहनोंसे सजेहुए घाव-रहित, सुवर्णके हार हमेलें पहिरनेवाले, सुनहरी रङ्गके सीखेहुए तेज चालके प्रसन्न मनवाले उन चञ्चल घोडोंको रथमें जोडा उस रथमें सुवर्णके हार लटक रहे थे, सिंहकी मूर्त्ति वनीहुई थी, भारी ध्वजा लगरही थी और उसमें मणि मूँगे जडेहुए थे, सुवर्णकी लडें लटक रहीं थी और वह रथ श्वेत वादलोंकी समान प्रकाशवाली झण्डियोंसे अलंकृत होरहा था, उस सुवर्णके मोटे दण्डेकी ध्वजावाले और वहुतसे शस्त्रोंसे भरेहुए रथमें दारुकके छोटे

तान् ॥ ५९ ॥ दारुकस्यानुजो भ्राता सुतस्तस्य प्रियः सखा । न्यवेदयद्रथं युक्तं वासवस्येव मातलिः ॥ ६० ॥ ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा कृतकौतुकमङ्गलः । स्नातकानां सहस्रस्य स्वर्णनिष्कानथो ददौ ॥६१॥ आशीर्वादैः परिष्वक्तः सात्यकिः श्रीमतां वरः । ततः समधुपर्कार्हः पीत्वा कैलातकं मधु ॥६२॥ लोहिताक्षो बभौ तत्र मदविह्वललोचनः । आलभ्य वीरकांस्यञ्च हर्षेण महतान्वितः ॥ ६३ ॥ द्विगुणीकृततेजा हि प्रज्वलन्निव पावकः । उत्संगे धनुरादाय सशरं रथिनाम्वरः ॥ ६४ ॥ कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः कवची समलंकृतः । लाजैर्गन्धैस्तथा माल्यैः कन्याभिश्चाभिनन्दितः ॥ ६५ ॥ युधिष्ठिरस्य चरणावभिवाद्य कृताञ्जलिः । तेन

भाई और सात्यकिके प्रियमित्र, उसके सारथीने सुवर्णके आभूषणोंसे सजेहुए और शिक्षित घोड़ोंको विधिपूर्वक जोतकर उस ठीक कियेहुए रथको सात्यकिकी सेवामें इसप्रकार उपस्थित किया, जैसे मातलि इन्द्रकी सेवामें उपस्थित करता है ।५१-६०। तदनन्तर सात्यकिने स्नान करके पवित्र हो मंगलकर्म किया, फिर सहस्र स्नातकोंको सुवर्णके सिक्के दिये ॥६१॥ श्रीमानोंमें श्रेष्ठ सात्यकिको ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिया, तदनन्तर मधुपर्कके योग्य सात्यकिने किरातदेशकी मदिराका पान किया, इससे उसके नेत्र विह्वल तथा लाल२ होगए और वह द्विगुणित तेजस्वी तथा अग्निकी समान प्रकाशित दीखनेलगा, वह बड़े हर्षमें भरगया और उसने मांगलिक दर्पणको स्पर्श करके उसमें अपना मुख देखा तदनन्तर ब्राह्मणोंके स्वस्तिवाचनको सुनताहुआ और और कन्याओंकी खीलें, सुगन्धित द्रव्य और पुष्पोंसे अभिनन्दन पाताहुआ, रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकि हाथ जोड़ेहुए युधिष्ठिरके पास पहुँचा और उनके चरणोंको प्रणाम किया युधिष्ठिरने उसके मस्तकको सूँघा तब बाण और धनुषको गोदमें

मूर्धन्युपाघ्रात आरुरोह महारथम् ॥ ६६ ॥ ततस्ते वाजिनो हृष्टाः सुपुष्टा वातरंहसः । अजय्या जैत्रमूहुस्तं विकुर्वाणाः स्म सैंधवाः ६७ तथैव भीमसेनोपि धर्मराजेन पूजितः । प्रायात् सात्यकिना सार्द्धमभिवाद्य युधिष्ठिरम् ॥ ६८ ॥ तौ दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तौ तव सेनामरिन्दमौ । संयत्तास्तावकाः सर्वे तस्थुर्द्रोणपुरोगमाः ॥ ६९ ॥ सन्नद्धमनुगच्छन्तं दृष्ट्वा भीमं स सात्यकिः । अभिनन्द्याब्रवीद्वीरस्तदा हर्षकरं वचः ॥ ७० ॥ त्वं भीम रक्ष राजानमेतत्कार्यतमं हि ते । अहं भित्त्वा प्रवेक्ष्यामि कालपक्वमिदं बलम् ॥ ७१ ॥ आयत्याञ्च तदात्वे च श्रेयो राज्ञोभिरक्षणम् । जानीषे मम वीर्यं त्वं तव चाहमरिन्दम ॥ ७२ ॥ तस्माद्भीम निवर्त्तस्व मम चेदिच्छसि

रखकर बड़ेभारी रथपर सवार होगया ॥६२-६६॥ तुरन्त ही पवनकी समान वेगवान् हृष्ट पुष्ट अजेय सिन्धुदेशी घोड़े उसके जयशील रथको खैंचनेलगे ॥ ६७ ॥ इसीप्रकार भीमसेन भी युधिष्ठिरको प्रणाम कर और उनसे सत्कार पाकर सात्यकिके साथ चलदिया ॥ ६८ ॥ उन दोनों शत्रुनाशकोंको तुम्हारी सेनामें प्रवेश करनेके इच्छुक देख द्रोण आदि तुम्हारे योधा तयार होगए ॥६९॥ परन्तु महावीर सात्यकि कवच आदि पहिर युद्धकी तयारी कियेहुए भीमसेनको अपने पीछे आताहुआ देख हर्षसे पुलकित हो उसको अभिनन्दन दे यह हर्षजनक बात कहने लगा, कि-॥ ७० ॥ हे वीर ! तुम राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो यह काम तुम्हें और सब कामोंसे बढ़कर समझना चाहिये और मैं इस कालसे पकीहुई सेनाकी पंक्तिको तोडकर इसके भीतर घुसूँगा ॥ ७१ ॥ वर्तमान और भविष्यत् दोनों समयमें राजाकी रक्षा करना अच्छा है हे अरिन्दम ! मैं तुम्हारे पराक्रमको जानता हूँ, और तुम भी मेरे पराक्रमको जानते हो ॥ ७२ ॥ इसलिये हे भीम ! यदि तुम मेरा प्रिय काम करना चाहते हो तो लौट

प्रियम् । तथोक्तः सात्यकिं प्राहः व्रज त्वं कार्यसिद्धये ॥ ७३ ॥ अहं राज्ञः करिष्यामि रक्षां पुरुषसत्तम । एवमुक्तः प्रत्युवाच भीमसेनं स माधवः ॥ ७४ ॥ गच्छ गच्छ ध्रुवं पार्थ ध्रुवो हि विजयो मम । यन्मे गुणानुरक्तश्च त्वमद्य वशमास्थितः ॥७५॥ निमित्तानि च धन्यानि यथा भीम वदन्ति माम् । निहते सैन्धवे पापे पांडवेन महात्मना ॥ ७६ ॥ परिष्वजिष्ये राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् । एतावदुक्त्वा भीमन्तु विसृज्य च महायशाः । सम्प्रैक्षतावकं सैन्यं व्याघ्रो मृगगणानिव ॥ ७८ ॥ तं दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तं सैन्यं तव जनाधिप । भूय एवाभवन्मूढं सुभृशं चाप्यकम्पत ॥७९॥ ततः प्रयातः सहसा तव सैन्यं स सात्यकिः । दिदृक्षुरर्जुनं राजन् धर्मराजस्य शासनात् ॥ ८० ॥ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

जाओ, सात्यकिके ऐसा कहने पर भीमसेनने उत्तरदिया, कि-हे पुरुषसत्तम! मैं राजाकी रक्षाकरूँगा और तुम काम सिद्ध करनेके लिये जाओ, जब भीमसेनने ऐसा कहा तब सात्यकिने भीमसेनसे फिर कहा, कि-७३-७४हे भीम! तुम शीघ्र जाओ! तुम मेरे प्रीतिपात्र, अनुरक्त और वशवर्ती हुए हो अर्थात् तुमने मेरी बात मानली यह एक शुभ-शकुन है, अतः मेरी विजय निश्चय होगी ७५ हे भीम! जैसे शुभ-शकुन होरहे हैं उनसे प्रतीत होता है, कि-महात्मा अर्जुनके हाथसे पापी जयद्रथके मारेजाने पर मैं धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरसे मिलूँगा ॥ ७६-७७ ॥ इतना कहनेके बाद भीमको वहाँ ही छोडकर उस महायशस्वीने तुम्हारी सेनाकी ओरको इसप्रकार देखा जैसे सिंह मृगोंके झुण्डको देखता है ७८ हे राजन्! सात्यकिको घुसनेकी इच्छा करते देखकर तुम्हारी सेना फिर मूढसी होगई और बड़े जोरसे काँपनेलगी ॥ ७९ ॥ हे राजन्! तदनन्तर धर्मराजकी आज्ञासे अर्जुनको देखनेकी उत्कण्ठा वाला सात्यकि एकाएकी तुम्हारी सेनामें घुसगया ८०

सञ्जय उवाच । प्रयाते तव सैन्यन्तु युयुधाने युयुत्सया । धर्मराजो महाराज स्वेनानीकेन सम्वृतः ॥ १ ॥ प्रायाद्द्रोणरथं प्रेप्सुर्युयुधानस्य पृष्ठतः । ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः समरदुर्मदः२ प्राक्रोशत् पाण्डवानीके वसुदानश्च पार्थिवः । आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ॥ ३ ॥ यथा सुखेन गच्छेत सात्यकिर्युद्धदुर्मदः । महारथा हि बहवो यतिष्यन्त्यस्य निर्जये ॥४॥ इति ब्रुवन्तो वेगेन निपेतुस्ते महारथाः । वयम्प्रतिजिगीषन्तस्तत्र तान् समभिद्रुताः५ ततः शब्दो महानासीत् युयुधानरथम्प्रति । आकीर्यमाणा धावन्ती तव पुत्रस्य वाहिनी ॥६॥ सात्वतेन महाराज शतधाभिव्यशीर्यत । तस्यां विदीर्यमाणायां शिनेः पुत्रो महारथः ॥ ७ ॥ सप्त वीरान् महेष्वासानग्रानीकेष्वपोथयत् । अथान्यानपि राजेन्द्र नानाजनपदे-

---

सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज ! जब लड़नेकी इच्छासे सात्यकि तुम्हारी सेनाकी ओरको चला, तब धर्मराज अपनी सेनाके बीचमें हो सात्यकिके रथके पीछे जातेहुए द्रोणके रथको रोकनेकी इच्छासे चलदिये, उस समय पञ्चालराजके रणबाँकुरे पुत्र धृष्टद्युम्नने तथा राजा वसुदानने पाण्डवोंकी सेनामें पुकार कर कहा, कि-अरे ! आओ ! आओ !! प्रहार करो ! प्रहार करो !! जल्दीसे दोड़ो ! कि-जिससे युद्धदुर्मद सात्यकि सुखपूर्वक शत्रुसेनामें प्रवेश करसके वहाँ बहुतसे महारथी हैं, वे सात्यकीको जीतनेका उद्योग करेंगे ॥१-४॥ इसप्रकार पुकारते२ वे महारथी हमारी सेना पर वेगसे टूटपड़े और हम भी उनको जीतनेकी इच्छासे उनपर दौड़े ॥ ५ ॥ उस समय सात्यकीके रथकी ओर बड़ा कोलाहल होनेलगा, हे महाराज ! सात्यकिने तुम्हारी सेनाके बाण मारकर सैकड़ों टुकड़े करदिये इससे तुम्हारी सेना तित्तर वित्तर होकर भागनेलगी, इसप्रकार सेनाके तित्तर वित्तर होते ही शिनिपुत्र महारथी सात्यकिने सेनाके मुहाने पर खड़ेहुए महा-

श्वरान् ॥ ८ ॥ शरैरनलसंकाशैर्निन्ये वीरान् यमक्षयम् । शतमेकेन विव्याध शतेनैकञ्च पत्रिणाम् ॥ ९ ॥ द्विपारोहान् द्विपांश्चैव हयारोहान् हयांस्तथा । रथिनः साश्वसूतांश्च जघानेशः पशूनिव १० तं तथा द्रुतकर्माणं शरसम्पातवर्षिणम् । न केचनाभ्यधावन् वै सात्यकिं तव सैनिकाः ॥ ११ ॥ ते भीता मृद्यमानाश्च प्रमृष्टा दीर्घबाहुना । आयोधनं जहुर्वीरा दृष्ट्वा तमतिमानिनम् ॥ १२ ॥ तमेकं बहुधापश्यन्मोहितास्तस्य तेजसा । रथैर्विमथितैश्चैव भग्ननीडैश्च मारिष ॥ १३ ॥ चक्रैर्विमथितैश्छत्रैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः । अनुकर्षैः पताकाभिः शिरस्त्राणैः सकाञ्चनैः ॥ १४ ॥ बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैश्च विशाम्पते । हस्तिहस्तोपमैश्चापि भुजङ्गभोग-

धनुषधारी सात महारथियोंको मारडाला तथा हे राजेन्द्र ! और भी अनेकों देशोंके वीर राजाओंको सात्यकिने अग्निकी समान स्पर्शवाले बाणोंसे यमलोकमें पहुँचादिया सात्यकी इस युद्धमें एक बाणसे सौको और सौ बाणोंसे एकको बींधता था ६-९ जैसे शिव पशुओंका संहार करते हैं ऐसे ही उसने हाथीसवार, और हाथी, घुड़सवार और घोड़े तथा सारथियोंसहित रथियोंको मारडाला ॥ १० ॥ इसप्रकार सात्यकि अद्भुत रीतिसे बाणोंकी वर्षा करनेलगा, उस समय तुम्हारी सेनामेंसे कोई भी योधा उसका सामना न करसका ॥ ११ ॥ दीर्घबाहु सात्यकिने खूब बाण मारकर घायल किया, इससे तुम्हारे योधा ऐसे डरे, कि उस अतिमानी सात्यकिको देखते ही रणमेंसे भाग निकले ॥ १२ ॥ सात्यकि एक था तो भी उसके तेजसे वे उसको बहुत माननेलगे अर्थात् जिधरको भागते थे उधर ही उनको सात्यकि खड़ाहुआ दीखता था, हे राजन् ! टूटेहुए जुए, टूटे फूटे रथ और टूटेहुए पहियोंसे गिरेहुए छत्र, ध्वजाओंके ढाँच, पताका, सुवर्णके टोप और मनुष्योंकी चन्दनचर्चित बाजूबन्दवाली भुजाओंसे और

सन्निभैः ॥ १५ ॥ ऊरुभिः पृथिवी छन्ना मनुजानां नराधिप । शशाङ्कसन्निभैश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ १६ ॥ पतितैर्ऋषभाक्षाणां सा वभावतिमेदिनी । गजैश्च वहुधा छिन्नैः शयानैः पर्वतोपमैः ॥ १७ ॥ रराजातिभृशं भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः । तपनीयमयैर्योक्त्रैर्मुक्ताजालविभूषितैः ॥ १८ ॥ उरश्छदैर्विचित्रैश्च व्यशोभन्त तुरङ्गमाः । गतसत्त्वा महीम्प्राप्य प्रमृष्टा दीर्घवाहुना १९ नानाविधानि सैन्यानि तव हत्वा तु सात्वतः । प्रविष्टस्तावकं सैन्यं द्रावयित्वा चमूं भृशम् २० ततस्तेनैव मार्गेण येन यातो धनञ्जयः । इयेष सात्यकिर्गन्तुं ततो द्रोणेन वारितः ॥ २१ ॥ भारद्वाजं समासाद्य युयुधानश्च सात्यकिः । न न्यवर्त्तत संक्रुद्धो वेलामिव जलाशयः ॥ २२ ॥ निवार्य तु रणे द्रोणो युयुधानं महारथम् ।

हाथीकी सूँडों तथा सर्पके शरीरकी समान जंघाओंसे हे राजन्! रणभूमि पटगई, बैलकेसे नेत्रोंवाले मनुष्योंके सुन्दर कुण्डल पहिरे और चन्द्रमाकी समान शोभायमान कटकर गिरेहुए शिरोंसे पृथ्वी वहुत ही दिपनेलगी, पर्वतोंकी समान ऊँचे हाथी छिन्न भिन्न होकर पृथ्वी पर पड़ेहुए थे, इसकारण टूटकर विखरेहुए हाथियों से पृथ्वी पर्वतोंसे जैसे शोभा पाती है तैसे ही वड़ीभारी शोभा पारही थी, महावाहु सात्यकिके हाथसे प्राणरहित हो पृथ्वी पर पड़ेहुए घोड़े सोनेकी लड़ें लगीहुई सुनहरी लगामोंसे और चित्र विचित्र कवचोंसे वड़ी शोभा पारहे थे ॥ १६–१९ ॥ इसप्रकार सात्यकि तुम्हारे वहुतसे योधा आदिको मारकर तुम्हारी सेनामें घुसगया ॥ २० ॥ तदनन्तर जिस मार्गसे अर्जुन गया था, उस ही मार्गसे सात्यकि भी जानेकी इच्छा करनेलगा, कि–इतनेमें ही द्रोणाचार्यने आकर उसको आगे वढ़नेसे रोकदिया ॥ २१ ॥ परन्तु क्षुब्ध हुआ जलाशय जैसे किनारेसे टकराकर भी पीछेको नहीं हटता तैसे ही क्रोधमें भराहुआ सात्यकि द्रोणाचार्यके रोकने

विव्याध निशितैर्बाणैः पञ्चभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥ सात्यकिस्तु रणे द्रोणं राजन् विव्याध सप्तभिः । हेमपुंखैः शिलाधौतैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २४ ॥ तं षड्भिः सायकैर्द्रोणः साश्वयन्तारमार्दयत् । स तन्न ममृषे द्रोणं युयुधानो महारथः ॥ २५ ॥ सिंहनादं ततः कृत्वा द्रोणं विव्याध सात्यकिः । दशभिः सायकैश्चान्यैः षड्भिरष्टाभिरेव च ॥ २६ ॥ युयुधानः पुनर्द्रोणं विव्याध दशभिः शरैः । एकेन सारथिञ्चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् २७ ध्वजमेकेन बाणेन विव्याध युधि मारिष । तं द्रोणः साश्वयन्तारं सरथध्वजमाशुगैः ॥ २८ ॥ त्वरन् प्राच्छादयद्बाणैः शलभानामिव व्रजैः । तथैव युयुधानोपि द्रोणं बहुभिराशुगैः ॥ २९ ॥ आच्छा-

पर भी पीछेको नहीं हटा ॥ २२ ॥ महारथी सात्यकिको रोक कर द्रोणने उसको पाँच मर्मभेदी वाणोंसे बींधडाला ॥ २३ ॥ हे राजन् ! सात्यकिने भी सुवर्णकी पूँछवाले, शिला पर घिसकर चमकदार कियेहुए, कंक और मोरके पंखोंवाले सात वाणोंसे द्रोणको बींधदिया ॥२४॥ तव द्रोणने सात्यकिके, उसके घोड़ोंके और उसके सारथीके छः वाण मारे, द्रोणके इस कामको महारथी सात्यकी सह न सका ॥२५॥ और उसने सिंहनाद करके द्रोणके क्रमसे दश, छः और आठ वाण मारे ॥ २६ ॥ और फिर भी सात्यकिने द्रोणको दश वाणोंसे घायल किया और हे राजन् ! उसने एक वाणसे द्रोणके सारथीको और चार वाणोंसे चारों घोड़ोंको घायल करदिया ॥ २७ ॥ और उसने एक वाण मारकर द्रोणकी ध्वजाको रणभूमिमें काटडाला, तव तो द्रोणने घोड़े, सारथी, रथ और ध्वजासहित सात्यकिको टीडियोंके दलकी समान वाण वरसाकर शीघ्रतासे ढकदिया, इसी प्रकार सात्यकिने भी जरा भी न घवड़ाकर द्रोणके ऊपर वहुतसे वाणोंकी वर्षा करके ढकदिया, उस समय द्रोणाचार्यने पुकार कर सात्यकिसे

दयदंसंप्राप्तस्ततो द्रोण उवाच ह । तवाचार्यो रणं हित्वा गतः कापुरुषो यथा ॥३०॥ युध्यमानं च मां हित्वा प्रदक्षिणमवर्तत । त्वं हि मे युध्यतो नाद्य जीवन् यास्यसि माधव ॥ ३१ ॥ यदि मां त्वं रणे हित्वा न यास्याचार्यवद्द्रुतम् । सात्यकिरुवाच । धनञ्जयस्य पदवीं धर्मराजस्य शासनात् । ३२ ॥ गच्छामि स्वस्ति ते ब्रह्मन्न मे कालात्ययो भवेत् । आचार्यानुगतो मार्गः शिष्यैरन्वास्यते सदा ॥ ३३ ॥ तस्मादेव व्रजाम्याशु यथा मे स गुरुर्गतः । सञ्जय उवाच । एतावदुक्त्वा शैनेय आचार्यं परिवर्जयन् ॥ ३४ ॥ प्रयातः सहसा राजन् सारथिं चेदमब्रवीत् । द्रोणः करिष्यते यत्नं सर्वथा मम वारणे ॥ ३५ ॥ यत्तो याहि रणे सूत शृणु चेदं वचः परम् । एतदालोक्यते सैन्यमावन्त्यानां महाप्रभम् ॥ ३६ ॥

कहा, कि–अरे ! तेरा गुरु कायरकी समान रणभूमिको छोड़कर भागगया ॥ २८–३० ॥ मैं जिस समय उसके साथ लड़नेलगा, उस समय वह दक्खिनकी ओरको भागगया, हे सात्यकि ! यदि तू भी अपने गुरुकी समान मेरे सामनेसे शीघ्र ही न भागगया, तो आज मेरे हाथसे जीता बचकर नहीं जासकेगा, सात्यकिने उत्तर दिया, कि–हे ब्रह्मन् ! आपका कल्याण हो ! मैं धर्मराजकी आज्ञासे अर्जुनके पास जाता हूँ, अब समय निरर्थक न जाय तो अच्छा है, शिष्य सदा अपने गुरुके मार्ग पर ही चलते हैं ३१–३३ अतः जिस मार्गसे मेरे गुरु गए हैं उसी मार्गसे मैं भी शीघ्रतासे जाता हूँ, सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! शिनिवंशी सात्यकि यह कहकर द्रोणको वहीं छोड़ ॥ ३४ ॥ तुरन्त आगेको बढ़ा और सारथीसे कहनेलगा, कि–हे सारथी ! द्रोण मेरे रोकनेका सबप्रकारसे यत्न करेंगे ॥ ३५ ॥ इसलिये तू सावधान होकर रथको रणमेंको हाँके ही जाना, यह जो महातेजस्वी सेना दीख रही है, यह अवन्तिदेशके राजाओंकी है ॥ ३६ ॥ इसके पीछे

अस्यानन्तरतस्त्वेतद्दाक्षिणात्यं महद्बलम् । तदनन्तरमेतच्च वाह्लिकानां महद्बलम् ॥ ३७ ॥ वाह्लिकाभ्याशतो युक्तं कर्णस्य च महद्बलम् । अन्योऽन्येन हि सैन्यानि भिन्नान्येतानि सारथे ॥ ३८ ॥ अन्योऽन्यं समुपाश्रित्य न त्यजन्ति रणाजिरम् । एतदन्तरमासाद्य चोदयाश्वान् प्रहृष्टवत् ॥ ३९ ॥ मध्यमं जवमास्थाय वह मामत्र सारथे । वाह्लिका यत्र दृश्यन्ते नानाप्रहरणोद्यताः ॥४०॥ दाक्षिणात्याश्च बहवः सूतपुत्रपुरोगमाः । हस्त्यश्वरथसम्बाधं यच्चानीकं विलोक्यते ॥ ४१ ॥ नानादेशसमुत्थैश्च पदातिभिरधिष्ठितम् । एतावदुक्त्वा यन्तारं ब्राह्मणं परिवर्जयन् ॥ ४२ ॥ मध्यतो याहि यच्चोग्रं कर्णस्य च महद्बलम् । तं द्रोणोऽनुययौ क्रुद्धो विकिरन् विशिखान् बहून् ॥ ४३ ॥ युयुधानं महाभागं गच्छन्तमनिवर्ति-

यह बडाभारी सेनादल दक्षिणदेशी राजाओंका है और बादको जो बडीभारी सेना खडी है यह वाल्हीकदेशी राजाओंकी है ३७ और बाल्हीकोंके समीप ही जो बडीभारी सेना है, वह कर्णकी सेना है, हे सारथे ! ये सेनाएँ आपसमें एक दूसरीसे अलग २ खडी हैं ॥ ३८ ॥ परन्तु अवसर आनेपर मेरे रोकनेके लिये एक दूसरीका आश्रय लेकर दृढतासे खडी रहेंगी रणभूमिको नहीं छोडेंगी, इसलिये हे सारथे ! तू हर्षमें भरेहुए पुरुषकी समान रथको मध्यम वेगसे चलाकर इस सेनाके बीचमेंसे ले चल, जिस सेनामें वाल्हीक नानाप्रकारके शस्त्रोंको उठायेहुए खड़े हैं तथा जहाँ पर बहुतसे दाक्षिणात्य सेनापति खडे हैं तथा अनेकों देशोंके आए हुए पैदल, घोड़े और रथ जहाँ पर खड़े हैं तथा जहाँ पर कर्णकी भयङ्कर सेना खडीहुई दिखाई देरही है, उस सेनाके बीचमेंसे मेरे रथको ले चल और इस ब्राह्मण द्रोणको छोड दे, तदनन्तर न लौटनेवाले, सात्यकिको आगे जाता देखकर द्रोणको बडा क्रोध आया और वह अनेकों बाण छोडते हुए

नम् । कर्णस्य सैन्यं सुमहदभिहत्य शितैः शरैः ॥ ४४ ॥ प्राविशद्भारतीं सेनामपर्यन्तां स सात्यकिः । प्रविष्टे युयुधाने तु सैनिकेषु द्रुतेषु च ॥ ४५ ॥ अमर्षी कृतवर्मा तु सात्यकिं पर्यवारयत् । तमापतन्तं विशिखैः षड्भिराहत्य सात्यकिः ॥ ४६ ॥ चतुर्भिश्चतुरोऽस्याश्वानाजघानाशु वीर्यवान् । ततः पुनः षोडशभिर्नतपर्वभिराशुगैः ॥ ४७ ॥ सात्यकिः कृतवर्माणं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे । स ताड्यमानो विशिखैर्बहुभिस्तिग्मतेजनैः ॥ ४८ ॥ सात्वतेन महाराज कृतवर्मा न चक्षमे । स वत्सदन्तं सन्धाय जिह्मगानिलसन्निभम् ॥ ४९ ॥ आकृष्य राजन्नाकर्णाद्विव्याधोरसि सात्यकिम् । स तस्य देहावरणं भित्त्वा देहञ्च सायकः ॥ ५० ॥ सपुङ्खपत्रः पृथिवीं विवेश रुधिरोक्षितः । अथास्य बहुभिर्बाणैरच्छिनत्

सात्यकीके पीछे दौड़े, परन्तु सात्यकि लौटा नहीं तथा तेज कियेहुए बाणोंसे कर्णकी सेनाको घायल करके कौरवोंकी अपार सेनामें घुसगया, सात्यकिके घुसते ही कौरवोंकी सेनामें भागड पडगई, इतनेमें ही क्रोधी कृतवर्माने सात्यकिको घेरलिया, सात्यकिने अपने ऊपर चढकर आतेहुए कृतवर्माके छः बाण मारे ३९–४८ और वीर्यवान् सात्यकिने तुरन्त चार बाणोंसे कृतवर्माके चारों घोड़ोंको मारडाला, तदनन्तर सात्यकिने कृतवर्माके स्तनोंके बीचमें नमीहुई गांठवाले सोलह बाण मारे, हे महाराज ! इस प्रकार सात्यकिके तीखी धारवाले बाणोंसे घायलहुआ कृतवर्मा अधीर होउठा और उसने धनुषको कानतक खेंचकर तिरछा जानेवाला और पवनवेगी वत्सदन्त नामक बाण सात्यकिकी छातीमें मारा. वह बाण सात्यकिके कवच और देहको फोडकर लोहूसे सनाहुआ ही पूँछसहित पृथ्वीमें घुसगया, हे राजन् ! तदनन्तर अस्त्रोंके बडे भारी विद्वान् कृतवर्माने बहुतसे बाणोंसे सात्यकिके धनुष और बाणोंको काटडाला तथा कृतवर्माने क्रोधमें भरकर

परमास्त्रवित् ॥ ५१ ॥ समार्गणगणं राजन् कृतवर्मा शरासनम् । विव्याध च रणे राजन् सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ५२ ॥ दशभिर्विशिखैस्तीक्ष्णैरभिक्रुद्धः स्तनान्तरे । ततः प्रशीर्णे धनुषि शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥ ५३ ॥ जघान दक्षिणं बाहुं सात्यकिः कृतवर्मणः । ततोऽन्यत् सुदृढं चापं पूर्णमायम्य सात्यकिः ॥ ५४ ॥ व्यसृजद्विशिखांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः । सरथं कृतवर्माणं समंतात् पर्यवारयत् ॥ ५५ ॥ छादयित्वा रणे राजन् हार्दिक्यं स तु सात्यकिः । अथास्य भल्लेन शिरः सारथेः समकृन्तत ॥ ५६ ॥ स पपात हतः सूतो हार्दिक्यस्य महारथात् । ततस्ते यन्तृरहिताः प्राद्रवंस्तुरगा भृशम् ॥ ५७ ॥ अथ भोजस्तु सम्भ्रान्तो निगृह्य तुरगान् स्वयम् । तस्थौ वीरो धनुष्पाणिस्तत्सैन्यान्यभ्यपूजयन्५८ स मुहूर्त्तमिवाश्वस्य सदश्वान् समचोदत् । व्यपेतभीरमित्राणामावहत् सुमहद्भयम् ॥ ५९ ॥ सात्यकिश्चाभ्यगात्तस्मात् स तु भीम-

---

रणभूमिमें सात्यकिके हृदयको भी दश तेज वाणोंसे घायल करदिया जब शत्रुने धनुषको काट डाला तब शक्तिमानोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने शक्ति मारकर कृतवर्माकी दाहिनी भुजाको काटकर गिरादिया तब सात्यकिने दूसरे धनुषको ले जोरसे खेंचकर सैंकडों और सहस्रों वाण छोड कृतवर्माको रथसहित ढकदिया ॥४७—५५॥ हृदीकके पुत्र कृतवर्माको वाणोंसे ढककर सात्यकिने भल्ल नामका वाण मार कृतवर्माके सारथीका शिर काटडाला ॥ ५६ ॥ वह सारथी मरकर कृतवर्माके वडेभारी रथपरसे भूमिपर गिरपडा, सारथीरहित होनेसे घवडाये हुए घोड़े वड़े वेगसे भागनेलगे. ५७ तब तो भोजराज कृतवर्मा घवडा गया और उसने अपने आप घोडोंको सम्हाला तथा वह वीर हाथमें धनुष लेकर खडा होगया उसके इस कर्मकी सेनाओंने प्रशंसाकी ॥ ५८ ॥ कृतवर्मा कुछ ही समयमें सावधान हो निर्भीकताके साथ शत्रुओंको भयभीत

सुपाद्रवत् । युयुधानोपि राजेन्द्र भोजानीकाद्विनिःसृतः ॥ ६० ॥ प्रययौ त्वरितस्तूर्णं काम्बोजानां महाचमूम् । स तत्र बहुभिः शूरैः सन्निरुद्धो महारथैः ॥ ६१ ॥ न चचाल तदा राजन् सात्यकिः सत्यविक्रमः । सन्धाय च चमूं द्रोणो भोजे भारं निवेश्य च ६२ अभ्यधावद्रणे यत्तो युयुधानं युयुत्सया । तथा तमनुधावन्तं युयुधानस्य पृष्ठतः ॥६३॥ न्यवारयन्त संहृष्टाः पाण्डुसैन्ये बृहत्तमाः । समासाद्य तु हार्द्दिक्यं रथानां प्रवरं रथम् ॥ ६४ ॥ पञ्चाला विगतोत्साहा भीमसेनपुरोगमाः । विक्रम्य वारिता राजन् वीरेण कृतवर्म्मणा ॥ ६५ ॥ यतमानाश्च तान् सर्वानीषद्विगतचेतसः । अभितस्तान् शरौघेण क्लान्तवाहानकारयत् ॥ ६६ ॥ निगृही-

---

करता हुआ घोड़ोंको चलानेलगा ॥५९॥ हे राजन् ! इसप्रकार सात्यकि भोजराजकी सेनामेंसे बाहर निकलगया तब भोजराज कृतवर्मा भीमके ऊपर दौड़ा ॥ ६० ॥ हे राजेन्द्र ! सात्यकी भोजकी सेनामेंसे निकलकर शीघ्रतासे घोड़ोंको दौड़ाताहुआ काम्बोजकी महासेनामें पहुँचगया वहाँ घुसते ही उसको बहुतसे वीर महारथियोंने आगे बढनेसे रोकदिया ॥ ६१ ॥ सात्यकि सच्चा पराक्रमी था तो भी इस समय आगेको न बढसका इतनेमें ही द्रोण भी सेनाको यथास्थान पर ठीक करके और उस सेनाका भार कृतवर्माको सौंपकर॥६२॥स्वयं युद्ध करनेकी इच्छासे तयार होकर सात्यकिके ऊपरको दौड़े, द्रोणको सात्यकिके पीछे जाता देखकर पाण्डवोंकी सेनाके बड़े २ योधा हर्षमें भरकर द्रोणको आगे बढनेसे रोकनेलगे परन्तु दूसरी ओर भीम और उसके पीछे रहनेवाले पञ्चाल राजे महारथी कृतवर्माका सामना होते ही उत्साहहीन होगए क्योंकि—हे राजन् ! वीर कृतवर्माने उन सबोंको अपने पराक्रमसे पीछेको हटादिया था ६२—६५ तो भी उन सबोंने आगे बढनेके लिये बड़ा उद्योग किया परन्तु

तास्तु भोजेन भोजानीकेप्सवो रणे । अतिष्ठन्नार्यवद्वीराः प्रार्थयन्ता महद्यशः ॥ ९७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

धृतराष्ट्र उवाच । एवं बहुविधं सैन्यमेवं प्रविचितं बलम् । व्यूढमेवं यथान्यायमेवं बहु च सञ्जय ॥ १ ॥ नित्यं पूजितमस्माभिरभिकामश्च नः सदा । प्रौढमत्यद्भुताकारं पुरस्ताद् दृढविक्रमम् २ नातिवृद्धमबालञ्च नाकृशं नापि पीवरम् । लघुवृत्तायतप्रायं सारगात्रमनामयम् ॥ ३ ॥ आत्तसन्नाहसंछन्नं बहुशस्त्रपरिच्छदम् । शस्त्रग्रहणविद्यासु बह्वीषु परिनिष्ठितम् ॥ ४ ॥ आरोहे पर्यवस्कन्दे सरणे सान्तरप्लुते । सम्यक्प्रहरणे पाने व्यपयाने च

कृतवर्माने चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करके उनको साधारण रीतिसे अचेतसा करदिया और उनके वाहन भी बहुत देरतक समरमें इधर उधरको दौडनेके कारण थकगये ॥ ९६ ॥ इस प्रकार कृतवर्माने उनको तङ्ग करा परन्तु वे भोजकी सेनाको वश में करके आर्यपुरुषोंकी समान यश पानेकी इच्छासे रणमें अटल खड़े ही रहे ॥९७॥ एकसौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११३ ॥

धृतराष्ट्र ने बूझा, कि–हे सञ्जय ! मेरी सेना शूरता आदि गुणोंसे युक्त चुनेहुए पुरुषोंसे भरीहुई उचित रीतिसे गुँथीहुई, सर्वदा हमसे सत्कार पानेवाली और सर्वदा हमसे प्रेम करनेवाली, प्रौढ, भयानक आकारवाली और पहिलेसे ही पराक्रम दिखानेवाली थी ॥१॥२॥ हमारी सेना अतिवृद्ध बालक बहुत ही दुबले अथवा बहुत ही मोटे पुरुषोंसे रहित और ठिगने पुरुषोंसे शून्य थी और वह लम्बे चौड़े तथा गठीले देहवाले योधाओंसे भरपूर थी, धारण कियेहुए कवचोंसे रक्षित और बहुतसे शस्त्रोंसे पूर्ण, शस्त्र ग्रहण करनेकी विद्याओंमें अति चतुर, हाथीके ऊपर चढने

कोविदम् ॥५॥ नागेष्वश्वेषु वहुषु रथेषु च परिक्षितम्। परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥ ६ ॥ न गोष्ठ्या नोपकारेण न सम्बन्धनिमित्ततः। नानाहूतं नाप्यभृतं मम सैन्यं बभूव ह ॥ ७ ॥ कुलीनार्यजनोपेतं हृष्टपुष्टमनुद्धतम्। कृतमानोपचारञ्च यशस्वि च मनस्वि च ॥८॥ सचिवैश्चापरैर्मुख्यैर्बहुभिः पुण्यकर्मभिः। लोकपालोपमैस्तात पालितं नरसत्तमैः ॥ ९ ॥ बहुभिः पार्थिवैर्गुप्तमस्मत्प्रियचिकीर्षुभिः। अस्मानभिसृतैः कामात् सबलैः सपदानुगैः १० पयोदधिमिवापूर्णमापगाभिः समन्ततः। अपक्षैः पक्षिसङ्काशै रथैरश्वैश्च संवृतम् ॥ ११ ॥ प्रभिन्नकरटैश्चैव द्विरदैरावृतं महत्।

में, उतरनेमें, आगेको चढाई करनेमें विघ्नके स्थानको लाँघनेमें, अच्छीप्रकार प्रहार करनेमें, शत्रुके ऊपर चढाई करनेमें तथा पीछेको हटनेमें चतुर, हाथी, घोड़े और रथोंपर चढने आदिमें परीक्षा लेकर यथोचित वेतन देकर भर्ती की हुई थी॥३—६॥ मेरी सेनामें कोई भी प्रार्थनासे, उपकारकी इच्छासे अथवा सम्बन्धके कारणसे भर्ती नहीं किया गया था और कोई बलात्कारसे पकड कर भी नहीं बुलाया गया था तथा बिना वेतनके बेगारमें पकड़ कर किसीको लडनेके लिये नहीं बुलाया गया था॥७॥हमारी सेना कुलीन तथा श्रेष्ठ पुरुषोंसे भरी, हृष्ट पुष्ट और सरल प्रकृतिके पुरुषोंसे पूर्ण थी हम उसका मान सत्कार करते थे और उसमें यशस्वी तथा मनस्वी दिलेर पुरुष थे ॥ ८ ॥ और हे तात! लोकपालोंकी समान पुण्यात्मा नरश्रेष्ठ मुख्य २ पुरुष सेनापति बनकर उसकी रक्षा करते थे ॥ ९ ॥ अपनी इच्छासे हमारी ओर आये हुए और हमारा हित चाहनेवाले बहुतसे राजे अपने अपने अनुगामी राजे और सेनाओंके सहित मेरी सेनाकी रक्षा करते थे ॥ १० ॥ जैसे नदियोंसे समुद्र घिरा रहता है तैसे ही इन राजाओंसे मेरी सेना व्याप्त थी और पक्षरहित होनेपर भी

यदहन्यत मे सैन्यं किमन्यद्भागधेयतः ॥ १२ ॥ योधाक्षय्यजलं भीमं वाहनोर्मितरङ्गिणम् । क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरप्रासझषाकुलम् ॥ १३ ॥ ध्वजभूषणसंबाधं रत्नोपलसुसञ्चितम् । वाहनैरभिधावद्भिर्वायुवेगविकम्पितम् ॥ १४ ॥ द्रोणं गम्भीरपातालं कृतवर्ममहाह्रदम् । जलसन्धमहाग्राहं कर्णचन्द्रोदयोद्धतम् ॥ १५ ॥ गते सैन्यार्णवं भित्वा तरसा पाण्डवर्षभे । सञ्जयैकरथेनैव युयुधाने च मामकम् ॥ १६ ॥ तत्र शेषं न पश्यामि प्रविष्टे सव्यसाचिनि । सात्वते च रथोदारे मम सैन्यस्य सञ्जय ॥ १७ ॥ तौ तत्र समतिक्रान्तौ दृष्ट्वातीव तरस्विनौ । सिन्धुराजन्तु सम्प्रेक्ष्य गाण्डीवस्येषुगोचरे ॥ १८ ॥ किन्नु वा कुरवः कृत्यं विदधुः कालचोदिताः ।

पत्तियोंकी घोड़े और रथोंसे भरपूर थी गण्डस्थलोंमेंसे मद टपकानेवाले हाथियोंसे व्याप्त जो मेरी सेना मारी जारही है, इसको भाग्यके सिवाय और क्या,कहा जाय ॥ ११–१२ ॥ असंख्य (अक्षय्य) योधाओं रूप जलसे भरपूर भयङ्कर वाहनों रूप तरङ्गोंवाले, गोफनी, तलवार,गदा,शक्ति,बाण और भालेरूप नाकोंवाले ध्वजायें, गहने और रत्नादिरूप पत्थरोंसे भरेहुए, दौड़तेहुए घोडोंरूप वायुसे कंपित द्रोणरूप पातालसे गम्भीर कृतवर्मारूप बड़े २ कुण्डोंवाले जलसन्धरूप भयङ्कर नाकेवाले, कर्णरूप चन्द्रमाके उदयसे बढतेहुए मेरे सेनादलरूप समुद्रको जब पांडव श्रेष्ठ अर्जुन और सात्यकि एक रथकी सहायतासे ही वेगपूर्वक तोडते हुए निकलगए तो मैं समझता हूँ, कि अब मेरी सेना नहीं बचेगी, हे संजय ! जिस समय महारथी अर्जुन और सात्यकि मेरी सेनामें घुसकर (आगे बढगए) उस समय उन अतिवेगवालोंको सेनाके आगे जाते देखकर और सिंधुराजको गांडीवमेंसे छूटतेहुए बाणोंका निशाना बनते देखकर कालसे प्रेरित कौरवोंने क्या काम किया उस अतिदारुण

दारुणैकायने काले कथं वा प्रतिपेदिरे ॥ १९ ॥ ग्रस्तान् हि कौरवान्मन्ये मृत्युना तात सङ्गतान् । विक्रमोपि रणे तेषां न तथा दृश्यते हि वै ॥ २० ॥ अक्षतौ संयुगे तत्र प्रविष्टौ कृष्णपाण्डवौ । न च वारयिता कश्चित्तयोरस्तीह सञ्जय ॥ २१ ॥ भृताश्च बहवो योधाः परीक्ष्यैव महारथाः । वेतनेन यथायोगं प्रियवादेन चापरे ॥२२ असत्कारभृतस्तात मम सैन्ये न विद्यते । कर्मणा ह्यनुरूपेण लभ्यते भक्तवेतनम् ॥२३॥ न चायोधोऽभवत् कश्चिन्मम सैन्ये तु सञ्जय । अल्पदानभृतस्तात तथा चाभृतको नरः ॥२४॥ पूजितो हि यथाशक्त्या दानमानासनैर्मया । तथा पुत्रैश्च मे तात ज्ञातिभिश्च सबान्धवैः ॥ २५ ॥ ते च प्राप्यैव संग्रामे निर्जिताः सव्यसाचिना ।

कुसमयके आने पर कौरवोंको क्या सूझा ? ॥ १३–१९ ॥ हे तात ! मैं समझता हूँ, कि–उस समय कालने कौरवोंको ग्रस लिया था, इसलिये ही वे रणमें अपना पराक्रम जितना होना चाहिये उतना न दिखासके ॥ २० ॥ हे संजय ! मैंने बहुतसे महारथी योधाओंको परीक्षा करके यथोचित वेतन पर सेनामें भर्ती किया था और बहुतोंको मधुर भाषणोंसे प्रसन्न कर सेनामें रक्खा था, हे तात ! मेरी सेनामें ऐसा कोई भी नहीं था जिसका सत्कार न हुआ हो तथा सबोंको अपने २ कामके अनुसार वेतन मिलता था, हे संजय ! मेरी सेनामें ऐसा एक भी योधा नहीं था जिसे वेतन कम मिलता हो अथवा न मिलताहो, हे संजय ! मैंने तथा जाति और बन्धुओं सहित मेरे पुत्रोंने भी उन सबकी यथाशक्ति, दान मान और पद देकर प्रतिष्ठाकी थी, फिर भी तू कहता है कि सात्यकी और अर्जुन किंचित् भी घायल न हो उस सेनामें घुसगए हे संजय ! क्या मेरी सेनामेंका एक भी पुरुष उनको न रोकसका ? ॥ २१-२५ ॥ हा ! उन योधाओंको सामने पडते ही अर्जुनने जीतलिया और सात्यकिने

शैनेयेन परामृष्टाः किमन्यद्भागधेयतः ॥२६॥ रक्ष्यते यश्च संग्रामे ये च सञ्जय रक्षिणः । एकः साधारणः पन्था रक्ष्यस्य सह रक्षिभिः ॥ २७ ॥ अर्जुनं समरे दृष्ट्वा सैन्धवस्याग्रतः स्थितम् । पुत्रो मम भृशं मूढः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ २८ ॥ सात्यकिञ्च रणे दृष्ट्वा प्रविशन्तमभीतवत् । किन्तु दुर्योधनः कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥२९॥ सर्वशस्त्रातिगौ सेनां प्रविष्टौ रथिसत्तमौ । दृष्ट्वा कां वै मतिं युद्धे प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा कृष्णन्तु दाशार्हमर्जुनार्थे व्यवस्थितम् । शिनीनामृषभञ्चैव मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा सेनां व्यतिक्रान्तां सात्वतेनार्जुनेन च । पलायमानांश्च कुरून् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३२ ॥ विद्रुतान् रथिनो दृष्ट्वा निरुत्साहान् द्विषज्जये । पलायनकृतोत्साहान्

इनको मसलडाला, इसको भाग्यकी प्रतिकूलताके अतिरिक्त और क्या कहाजाय ? ॥ २६ ॥ हे संजय ! संग्राममें जिसकी रक्षाकी जाती है और जो रक्षा करते हैं, उन दोनोंकी एकसी गति होती है ॥ २७ ॥ अर्जुनको जयद्रथके सामने खडा देख कर हे तात ! अतीव मूढ़ हुए मेरे पुत्रने क्या किया ? ॥ २८ ॥ सात्यकिको निडरकी समान सेनामें घुसते देखकर दुर्योधनने समयोचित कौनसा विचार किया था ? ॥ २९ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन और श्रीकृष्णको सकल अस्त्रोंका तिरस्कार कर सेनामें घुसते देख मेरे पुत्रोंने समयानुसार किस कामको करनेका निश्चय किया था ? ॥ ३० ॥ मैं समझता हूँ कि-दाशार्हवंशी श्रीकृष्ण और शिनिश्रेष्ठ सात्यकिको अर्जुनकी सहायताके लिये रणमें देखकर, मेरे पुत्रोंने शोक ही किया होगा ॥ ३१ ॥ अर्जुन और सात्यकिके द्वारा सेनाके लाँघजानेको और भागतेहुए कौरवोंको देखकर मुझे विश्वास होता है कि-मेरे पुत्रोंने शोक ही किया होगा, ॥ ३२ ॥ मैं समझता हूँ, कि-अपने रथियोंको

मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३३ ॥ शून्यान् कृतान्रथोपस्थान् सात्वतेनार्जुनेन च । हतांश्च योधान् संदृश्य मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३४ ॥ अश्वनागरथान् दृष्ट्वा तत्र वीरान् सहस्रशः । धावमानान्रणे व्यग्रान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३५ ॥ महानागान् विद्रवतो दृष्ट्वार्जुनशराहतान् । पतितान् पततश्चान्यान्मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३६ ॥ विहीनांश्च कृतानश्वान् विरथांश्च कृतान्नरान् । तत्र सात्यकिपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३७ ॥ हयौघान्निहतान् दृष्ट्वा द्रवमाणांस्ततस्ततः । रणे माधवपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३८ ॥ पत्तिसंघान् रणे दृष्ट्वा धावमानांश्च सर्वशः । निराशा विजये सर्वे मन्ये शोचंति पुत्रकाः ॥ ३९ ॥ द्रोणस्य समतिक्रान्तावनीकमपराजितौ । क्षणेन

भागता हुआ और शेष रथियोंको शत्रुओंको जीतनेमें निरुत्साही हो भागनेका साहस करते देखकर मेरे पुत्र शोक करने लगे होंगे ॥ ३३ ॥ मुझे प्रतीत होता है, कि-अर्जुन और सात्यकिके हाथसे योधाओंको मारे जाते देखकर और रथोंकी गद्दियोंको खाली हुई देखकर मेरे पुत्रोंने शोक किया होगा ॥ ३४ ॥ मैं समझता हूँ, कि-घोड़े, हाथी और रथोंको छोड सहस्रों वीरोंको घबडाकर भागते देखकर मेरे पुत्रोंने शोक ही किया होगा ३५ बड़े२ हाथियोंको अर्जुनके बाणोंसे घायल होकर भागते, गिरते और गिरे हुए देखकर मेरे पुत्र शोक करनेलगे होंगे ॥ ३६ ॥ मेरी समझमें कि-जब सात्यकि और अर्जुनने हमारे योधाओंको घोडोंसे और रथोंसे हीन कर दिया होगा तो मेरे पुत्रोंने शोक ही किया होगा ॥३७॥ मैं समझता हूँ, कि-अर्जुन और सात्यकिके हाथसे सहस्रों घोडोंको मरा हुआ और भागतेहुए देखकर मेरे पुत्रोंने शोक ही किया होगा ३८ मैं समझता हूँ, कि-पैदलोंके दलको रणमें भागतेहुए देखकर मेरे पुत्रोंको विजयकी आशा नहीं रही

दृष्ट्वा तौ वीरौ मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ४० ॥ संमूढोऽस्मि भृशं तात श्रुत्वा कृष्णधनञ्जयौ । प्रविष्टौ मामकं सैन्यं सात्वतेन सहाच्युतौ ॥ ४१ ॥ तस्मिन् प्रविष्टे पृतनां शिनीनां प्रवरे रथे । भोजानीकं व्यतिक्रान्ते किमकुर्वत कौरवाः ॥ ४२ ॥ तथा द्रोणेन समरे निगृहीतेषु पाण्डुषु । कथं युद्धमभूत्तत्र तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ४३ ॥ द्रोणो हि बलवान् श्रेष्ठः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः । पञ्चालास्तं महेष्वासं प्रत्यविध्यन्कथं रणे ॥ ४४ ॥ बद्धवैरास्ततो द्रोणे धनञ्जयजयैषिणः । भारद्वाजसुतस्तेषु दृढवैरो महारथः ॥ ४५ ॥ अर्जुनश्चापि यच्चक्रे सिन्धुराजवधं प्रति । तन्मे सर्वं समाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥४६॥ सञ्जय उवाच । आत्मापराधात्

होगी और वे शोक करते होंगे ॥ ३९ ॥ मैं समझता हूँ, उन दोनों अजित वीरोंको क्षणभरमें ही द्रोणकी सेनाको लाँघकर जाते देखकर मेरे पुत्र शोक करनेलगे होंगे ॥ ४० ॥ हे तात ! अच्युत श्रीकृष्ण और अर्जुनको सात्यकिसहित अपनी सेनामें घुसाहुआ सुनकर मैं अत्यन्त मूढ़ बनगया हूँ ॥४१॥ शिनिकुलमें श्रेष्ठ महारथी सात्यकि जब सेनामें प्रवेश करके भोजकी सेनाको लाँघगया तब कौरवोंने क्या किया ॥ ४२ ॥ तथा जब द्रोणने रणमें पाण्डवोंको आगे बढ़नेसे रोकलिया, हे सञ्जय ! तब तहाँ कैसा युद्ध हुआ यह मुझे सुना ॥ ४३ ॥ द्रोण बलवान् अस्त्रविद्याके पारगामी और युद्धदुर्मद थे तो भी अर्जुनकी विजय चाहते थे, परन्तु द्रोणके साथ वैर रखनेवाले पंचालराजे उन महाधनुषधारीको कैसे लाँघगये और उनके साथ वैरभाव रखनेवाले महारथी अश्वत्थामाने क्या किया ? ॥ ४४-४५ ॥ हे सञ्जय ! सिंधुराज जयद्रथका वध करनेके लिये अर्जुनने क्या उपाय किया वह सब सुना, क्योंकि-तू कथा कहनेमें प्रवीण है ॥४६॥ सञ्जयने कहा, कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तुम्हारे ऊपर यह विपत्ति

सम्भूतं व्यसनं भरतर्षभ । प्राप्य प्राकृतवद्वीर मा त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ४७ ॥ पुरा यदुच्यते प्राज्ञैः सुहृद्भिर्विदुरादिभिः । मा हार्षीः पाण्डवान्राजन्निति तन्न त्वया श्रुतम् ॥ ४८ ॥ सुहृदां हितकामानां वाक्यं यो न शृणोति ह । स महद्व्यसनम्प्राप्य शोचते वै यथा भवान् ॥ ४९ ॥ याचितोऽसि पुरा राजन् दाशार्हेण शमम्प्रति । न च तं लब्धवान् कामं त्वत्तः कृष्णो महायशाः ॥ ५० ॥ तव निर्गुणतां ज्ञात्वा पक्षपातं सुतेषु च । द्वैधीभावं तथा धर्मे पाण्डवेषु च मत्सरम् ॥ ५१ ॥ तव जिह्ममभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान् प्रति । आर्त्तप्रलापांश्च बहून् मनुजाधिपसत्तम ॥ ५२ ॥ सर्वलोकस्य तत्वज्ञः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः । वासुदेवस्ततो युद्धं कुरूणामकरोन्महत् ॥ ५३ ॥ आत्मापराधात् सुम-

तुम्हारे अपने ही अपराधके कारण आई है, उसको तुम सहन करो, हे वीर ! अब तुम्हें साधारण मनुष्योंकी समान शोक करना उचित नहीं है॥४७॥ हे राजन् ! पहिले बुद्धिमान् और भला चाहनेवाले विदुर आदिने तुमसे कहा था, कि—"तुम पांडवोंको वनमें मत जाने दो" परन्तु तुमने उनकी बात न सुनी ॥ ४८ ॥ जो पुरुष हितैषी मित्रोंके कहनेको नहीं सुनता है, उसके ऊपर बडी भारी आपत्ति आती है और उसको आपकी समान ही पछताना पडता है ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! पहिले दाशार्हवंशी श्रीकृष्णने तुमसे सन्धिके लिए प्रार्थना की थी, परन्तु महायशस्वी श्रीकृष्णकी वह प्रार्थना तुम्हारी ओरसे पूरी न हुई५० हे राजन् ! तदनन्तर तुम्हारी निर्गुणता, अपने पुत्रोंपर पक्षपात धर्मपर अश्रद्धा, पाण्डवोंके ऊपर तुम्हारी मत्सरता, और पांडवों के प्रति तुम्हारे खोटे भावको जानकर तथा हे राजन् ! पांडवों के बहुतसे दीनवचनोंको सुनकर संसारके सब लौकिक व्यवहारोंको जाननेवाले, और सकल लोकोंके ईश्वर भगवान् वासु-

हान् प्राप्तस्ते विपुलः क्षयः । नेमं दुर्योधने दोषं कर्त्तुमर्हसि मानद ५४ न हि ते सुकृतं किञ्चिदादौ मध्ये च भारत । दृश्यते पृष्ठतश्चैव त्वन्मूलो हि पराजयः ॥ ५५ ॥ तस्मादवस्थितो भूत्वा ज्ञात्वा लोकस्य निर्णयम् । शृणु युद्धं यथावृत्तं घोरं देवासुरोपमम् ॥ ५६ ॥ प्रविष्टे तव सैन्यन्तु शैनेये सत्यविक्रमे । भीमसेनमुखाः पार्थाः प्रतीयुर्वाहिनीन्तव ॥ ५७ ॥ आयच्छतस्तान् सहसा क्रुद्धरूपान् सहानुगान् । दधारैको रणे पाण्डून् कृतवर्मा महारथः ॥ ५८ ॥ यथोद्वृत्तं वारयते वेला वै सलिलार्णवम् । पाण्डुसैन्यं तथा संख्ये हार्दिक्यः समवारयत् ॥ ५९ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम हार्दिक्यस्य पराक्रमम् । यदेनं सहिता पार्था नातिचक्रमुराहवे ॥ ६० ॥ ततो

देवने ही कौरव पांडवोंमें बड़ाभारी युद्ध ठान दिया है ५१-५३ तुम्हारे अपने अपराधसे यह बड़ाभारी संहार होरहा है, हे मान देने योग्य राजन् ! इस दोषको दुर्योधनके सिरपर रखना उचित नहीं है ॥ ५४ ॥ हे भारत ! तुमने आगे, पीछे या वीचमें कोई पुण्यका काम किया हो यह मुझे नहीं दीखता और इस पराजयकी जड़ भी तुम ही हो ॥ ५५ ॥ अतः सावधान होकर तथा मनुष्योंके नियत स्वभावको जानकर देवासुरसंग्रामकी समान यह भयङ्कर युद्ध जैसे हुआ उसका वृत्तान्त सुनो ॥ ५६ ॥ सत्यपराक्रमी सात्यकिके तुम्हारी सेनामें घुसजानेपर भीमसेन आदि पाण्डव तुम्हारी सेना पर चढआए थे ५७ क्रोधमें भरेहुए पाण्डवोंको सेनासहित सहसा अपनी सेनाके ऊपर चढकर आते देख रणमें अकेले ही महारथी कृतवर्माने आगे उनको वढनेसे रोकदिया ५८ जैसे किनारा उफनकर आतेहुए समुद्रको आगे वढनेसे रोकदेता है, तैसे ही कृतवर्माने युद्धमें पांडवोंकी सेनाको आगे बढनेसे रोक दिया ॥ ५९ ॥ इस समय हमने कृतवर्माका बडा अद्भुत पराक्रम देखा, कि इकट्ठेहुए सब पाण्डव भी युद्धमें उसको न दबा सके ॥ ६० ॥

भीमस्त्रिभिर्विध्वा कृतवर्माणमाशुगैः । शंखं दध्मौ महाबाहुर्हर्षयन् सर्वपाण्डवान् ॥६१॥ सहदेवस्तु विंशत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः । शतेन नकुलश्चापि हार्दिक्यं समविध्यत ॥ ६२ ॥ द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या सप्तभिश्च घटोत्कचः । धृष्टद्युम्नस्त्रिभिश्चापि कृतवर्माणमार्दयत् ॥ ६३ ॥ विराटो द्रुपदश्चैव याज्ञसेनिश्च पञ्चभिः । शिखण्डी चैव हार्दिक्यं विध्वा पञ्चभिराशुगैः ॥ ६४ ॥ पुनर्विव्याध विंशत्या सायकानां हसन्निव । कृतवर्मा ततो राजन् सर्वतस्तान् महारथान् ॥ ६५ ॥ एकैकं पञ्चभिर्विध्वा भीमं विव्याध सप्तभिः । धनुर्ध्वजं चास्य तदा रथाद् भूमावपातयत् ॥ ६६ ॥ अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः । आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तत्या निशितैः शरैः ॥६७॥ स गाढविद्धो बलवान् हार्दिक्यस्य

तदनन्तर महाबाहु भीमने तीन वाण मारकर कृतवर्माको घायल करदिया और पांडवोंको प्रसन्न कर अपना शंख बजाया ॥६१॥ सहदेवने वीस, धर्मराजने पाँच और नकुलने सौ वाणोंसे कृतवर्माको घायल करदिया ॥ ६२ ॥ तथा द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर, घटोत्कचने सात और धृष्टद्युम्नने तीन वाण मारकर कृतवर्माको पीडित करडाला ॥ ६३ ॥ विराट और द्रुपदने कृतवर्माके पाँच वाण मारे, तदनन्तर हँसते२ यज्ञसेनके पुत्र शिखण्डीने पाँच वाणोंसे कृतवर्माको बींधकर फिर उसको वीस वाणोंसे बींधडाला, तदनन्तर हे राजन् ! कृतवर्माने उन सव महारथियोंको पाँच २ वाणोंसे बींधडाला और भीमसेनको सात वाणोंसे घायल कर दिया और भीमके धनुष तथा ध्वजाको काटकर भूमिपर गिरा दिया ॥ ६४-६६ ॥ तदनन्तर महारथी कृतवर्माने जिसका धनुष टूटगया था ऐसे भीमसेनके सामने जाकर क्रोधमें भर उसकी छातीमें तेज किये हुए सत्तर वाण मारे॥६७॥ कृतवर्माके वाणोंके बड़ेभारी प्रहारसे बहुत ही घायल हुआ भीमसेन रथमें बैठा

आपतन्तं रणे तन्तु शंखवर्णैर्हयोत्तमैः ॥ २१ ॥ परिवव्रुस्ततः शूरा गजानीकेन सर्वतः । किरन्तो विविधांस्तीक्ष्णान् सायकान् लघुवेधिनः ॥ २२ ॥ सात्वतो निशितैर्बाणैर्गजानीकमयोधयत् । पर्वतानिव वर्षेण तपान्ते जलदो महान् ॥ २३ ॥ वज्राशनिसमस्पर्शैर्वध्यमानाः शरैर्गजाः । प्राद्रवन् रणमुत्सृज्य शिनिवीरसमीरितैः ॥ २४ ॥ शीर्णदन्ता विरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः । विशीर्णकर्णास्यकरा विनियन्तृपताकिनः ॥ २५ ॥ सम्भिन्नवर्मघण्टाश्च विनिकृत्तमहाध्वजाः । हतारोहा दिशो राजन् भेजिरे भ्रष्टकम्बलाः ॥ २६ ॥ रुवन्तो विविधान्नादान् जलदोपमनिःस्वनाः । नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भल्लैरञ्जलिकैस्तथा ॥ २७ ॥ क्षुरप्रैरर्द्धचन्द्रैश्च

पर चढकर आतेहुए सात्यकिको उन फुरतीसे बाण छोडनेवाले शूरोंने हाथियोंकी सेनासे,चारों ओरसे घेरलिया और बाणोंकी मारामार करनेलगे ॥ २०–२२ ॥ जैसे ग्रीष्मके बीतजाने पर मेघ पर्वतोंके साथ टक्कर लेता है तैसे ही सात्यकि बाणोंको चलाताहुआ हस्तिसेनाके सामने जा टक्कर लेनेलगा ॥ २३ ॥ शिनिवीर सात्यकिके छोड़ेहुए वज्रकी समान स्पर्शवाले बाणोंसे घायल होतेहुए हाथी रणको छोडकर भागनेलगे ॥ २४ ॥ थोडी ही देरमें हे राजन् ! बाणोंके प्रहारसे हाथियोंके दाँत टूटगए शरीरमेंसे बहुत ही रुधिर बहनेलगा, मस्तक तथा गण्डस्थल फटगए, कान, मुख और सूँड़ छिन्न भिन्न होगए,उनके ऊपर से हाथीवान् लुडकगये, पताकायें गिरपडीं, मर्मस्थल विंधगए घण्टे टूटगये,ध्वजायें फट गईं,उनके हाथीसवार मारेगए अम्बारी नीचे गिरपडीं और वे दिशा विदिशाओंमेंको भागनेलगे२५-२६ और सात्यकिने वत्सदन्त, भल्ल, अञ्जलिक, क्षुरप्र तथा अर्धचन्द्र नामक शस्त्र मारकर उस हस्तिसेनाको चीरडाला, उस समय मेघकी समान गम्भीर शब्द करनेवाले वे हाथी अनेकों

सात्वतेन विदारिताः । क्षरन्तोऽसृक् तथा मूत्रं पुरीषञ्च प्रसुस्रुवुः २८ बभ्रमुश्चस्खलुश्चान्ये पेतुर्मम्लुस्तथापरे । एवं तत्कुञ्जरानीकं युयुधानेन पीडितम् ॥२९॥ शरैरग्न्यर्कसंकाशैः प्रदुद्राव समन्ततः । तस्मिन् हते गजानीके जलसन्धो महाबलः ॥ ३० ॥ यत्तः संप्रापयन्नागं रजताश्वरथं प्रति।रुक्मवर्मधरः शूरस्तपनीयाङ्गदः शुचिः ३१ कुण्डली मुकुटी खड्गी रक्तचन्दनरूषितः । शिरसा धारयन् दीप्तां तपनीयमयीं स्रजम् ॥ ३२ ॥ उरसा धारयन्निष्कं कण्ठसूत्रञ्च भास्वरम् । चापञ्च रुक्मविकृतं विधुन्वन् गजमूर्द्धनि ॥ ३३ ॥ अशोभत महाराज सविद्युदिव तोयदः । तमापतन्तं सहसा मागधस्य गजोत्तमम् ॥ ३४ ॥ सात्यकिर्वारयामास वेलेव मकरालयम् । नागं निवारितं दृष्ट्वा शैनेयस्य शरो-

प्रकारसे चिंघाडनेलगे खून ओकनेलगे और मल मूत्र करतेहुए भागनेलगे ॥ २७—२८ ॥ इस समय कितने ही हाथियोंको चक्कर आगया बहुतसे ठोकरें खानेलगे, बहुतसे गिरगए और बहुतसे सुस्त होगए,अग्नि और सूर्यकी समान स्पर्शवाले बाणोंसे सात्यकिके द्वारा घायल हुई हाथीसेनाके हाथी चारों ओरको भागनेलगे, इसप्रकार हस्तिसेनाका नाश होता देखकर सुवर्ण के कवचको पहिरेहुए, सुवर्णके बाजूबन्दवाला, पवित्रचित्त वाला, कुण्डल, मुकुट और खड्ग धारण किये, लाल चन्दन लगाये,कण्ठमें चमकती हुई सुवर्णकी माला पहिरे और छातीपर मुहरोंका कण्ठा तथा चमकीला हार पहरे वीर महाबली जलसन्ध हाथीके मस्तक पर बैठ चाँदीके बने धनुषको घुमाताहुआ सावधान हो श्वेत घोडोंवाले सात्यकिके ऊपर चढ दौडा २९-३३ हे महाराज ! उस समय वह बिजलीवाले मेघकी समान शोभा पारहा था, जैसे किनारा समुद्रको आगे बढनेसे रोकदेता है, तैसे ही सात्यकिने अकस्मात् आतेहुए मगधराज जलसन्धके

त्तमैः ॥ ३५ ॥ अक्रुध्यत रणे राजन् जलसन्धो महाबलः । ततः क्रुद्धो महाराज मार्गणैर्भारसाधनैः ॥ ३६ ॥ अविध्यत शिनेः पौत्रं जलसन्धो महोरसि । ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ३७ ॥ अस्यतो वृष्णिवीरस्य निचकर्त शरासनम् । सात्यकिं छिन्नधन्वानं प्रहसन्निव भारत ॥ ३८ ॥ अविध्यन्मागधो वीरः पञ्चभिर्निशितैः शरैः । स विद्धो बहुभिर्बाणैर्जलसंधेन वीर्यवान् ३९ नाकम्पत महाबाहुस्तदद्भुतमिवाभवत् । अचिन्तयन् वै स शरान् नात्यर्थं सम्भ्रमाद्बली ॥ ४० ॥ धनुरन्यत् समादाय तिष्ठ तिष्ठेत्युवाच ह । एतावदुक्त्वा शैनेयो जलसन्धं महोरसि ॥ ४१ ॥ विव्याध षष्ट्या स भृशं शराणां प्रहसन्निव । क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन

हाथीको आगे बढनेसे रोकदिया, जब जलसन्धने सात्यकिके श्रेष्ठ बाणोंसे अपने हाथीको रुका हुआ पाया तब उस महाबलीको बडा क्रोध आया, तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए जलसन्धने हे महाराज! भारको सहनेवाले बहुतसे बाण सात्यकिकी छातीमें मारे, सात्यकि बाण छोडना चाहता था, कि–उसने पानी पिलाएहुए एक तेज भल्लसे वृष्णिवीर सात्यकिके धनुषको काटडाला, हे भारत ! फिर मानों हँसरहा हो इसप्रकार वीरवर मगधराजने टूटेहुए धनुषवाले सात्यकिको पाँच तेज बाणोंसे घायल करदिया परन्तु वीर्यवान् महाबाहु सात्यकि जलसन्धके बहुतसे बाणोंसे विंधजाने पर भी जरा नहीं डिगा यह एक आश्चर्यसा हुआ, बलवान् सात्यकिने उन बाणोंको कुछ भी नहीं गिना और उसने फुर्तीसे दूसरा धनुष ले खडा रह! खडा रह !! कहकर हँसते २ जलसन्धकी विशाल छातीमें साठ बाण मारे और क्षुरप्रनामक तीक्ष्ण बाण मारकर जलसन्धके महाधनुषके पकडनेके स्थानको काटडाला, और फिर जलसन्धके तीन बाण मारे, परन्तु हे महाराज ! जलसन्धने बाणसहित उस धनुषको फैंककर तुरन्त ही

मुष्टिदेशे महद्धनुः ॥ ४२ ॥ जलसन्धस्य चिच्छेद विव्याध च त्रिभिः शरैः । जलसन्धस्तु तत्यक्त्वा सशरं वै शरासनम् ॥४३॥ तोमरं व्यसृजत्तूर्णं सात्यकिं प्रति मारिष । स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महारणे ॥ ४४ ॥ अभ्यगाद्धरणीं घोरः श्वसन्निव महोरगः । निर्भिन्ने तु भुजे सव्ये सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥४५॥ त्रिंशद्भिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर्जलसन्धमताडयत् । प्रगृह्य तु ततः खड्गं जलसन्धो महावलः ॥ ४६ ॥ आर्षभञ्च च प्रच्चर्म शतचन्द्रसमाकुलम् । आविध्य च ततः खड्गं सात्वतायोत्ससर्ज ह ॥४७॥ शैनेयस्य धनुश्छित्त्वा सखड्गो न्यपतन्महीम् । अलातचक्रवच्चैव व्यरोचत महीं गतः ॥ ४८ ॥ अथान्यद्धनुरादाय सर्वकायावदारणम् । शालस्कन्धप्रतीकाशमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥४९॥ विस्फार्य विव्यधे क्रुद्धो जलसन्धं शरेण ह । ततः साभरणौ वाहू क्षुराभ्यां

तोमर उठाकर सात्यकिके मारा, वह घोर तोमर रणमें सात्यकिकी दाहिनी भुजाको घायल कर फुङ्कारे मारतेहुए सर्पकी समान पृथ्वी में घुसगया, अपनी दाहिनी भुजाके घायल होजाने पर सत्यपराक्रमी सात्यकिने जलसन्धको तीस तेज वाणोंसे वींधा इसके उपरान्त महावली जलसन्धने एक खड्ग उठाया और सौ फुल्लियोंसे जडी, वैलके चमडेकी वडी ढाल उठाई और तलवारको वेगसे घुमाकर सात्यकिके ऊपर फैंका ॥ ३४-४७ ॥ वह तलवार सात्यकिके धनुषको काटकर भूमिपर गिरपडी, उस समय वह आकाशमेंसे गिरतीहुई उल्काकी समान दीखती थी ॥४८॥ तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए सात्यकिने सालके गुद्देकी समान मोटा, इन्द्रवज्रकी समान शब्दकरनेवाला और सब शरीरको विदीर्ण करसकनेवाला एक दूसरा वड़ाभारी धनुष उठाया और उसको खैंचकर जलसन्धके वाण मारा, तदनन्तर हँसते २ सात्यकिने दो क्षुरप्रनामक वाण मारकर जलसन्धकी गहनोंवाली दोनों

माधवोत्तमः ॥ ५० ॥ सात्यकिर्जलसन्धस्य चिच्छेद प्रहसन्निव । तौ वाहू परिघप्रख्यौ पेततुर्गजसत्तमात् ॥ ५१ ॥ वसुन्धराधराद् भ्रष्टौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ । ततः सुदंष्ट्रं सुमहच्चारुकुण्डलमण्डितम् ॥ ५२ ॥ क्षुरेणास्य तृतीयेन शिरश्चिच्छेद सात्यकिः । तत् पातितशिरोवाहुकबन्धं भीमदर्शनम् ॥ ५३ ॥ द्विरदं जलसन्धस्य रुधिरेणाभ्यषिञ्चत। जलसन्धं निहत्याजौ त्वरमाणस्तु सात्वतः ५४ विमानं पातयामास गजस्कन्धाद्विशाम्पते । रुधिरेणावसिक्ताङ्गो जलसन्धस्य कुञ्जरः ॥ ५५ ॥ विलम्बमानमवहत् संश्लिष्टंपरमासनम् । शरार्दितः सात्वतेन मर्दमानः स्ववाहिनीम् ॥ ५६ ॥ घोरमार्त्तस्वरं कृत्वा विदुद्राव महागजः । हाहाकारो महानासीत्तत्र सैन्यस्य मारिष ॥ ५७ ॥ जलसन्धं हतं दृष्ट्वा वृष्णीनामृषभेण तु। विमुखाश्चाभ्यधावन्त तव योधाः समन्ततः ॥५८॥ पलायनकृतो-

---

भुजाओंको काटडाला पर्वत परसे गिरतेहुए पाँच मस्तकोंवाले सर्पोंकी समान वे लोहेकी भुजाएं हाथी परसे नीचे गिरपडीं तदनन्तर सात्यकिने तीसरा क्षुरप बाण मारकर जलसन्धके सुन्दर डाढ और कुण्डलोंवाले विशाल मस्तकको काटडाला, जिसकी भुजाएँ और शिर गिरादिए गये हैं ऐसे देखनेमें भयङ्कर मालूम होने वाले जलसन्धके धडने रुधिरसे हाथीको न्हवादिया, रणमें जलसन्धका संहार करके फुरती करते हुए सात्यकिने हाथीकी पीठ परसे अम्बारीको खिसका दिया, और रुधिरसे सराबोर हुआ जलसन्धका हाथी सात्यकिके बाणसे घवड़ाकर लटकती हुई अम्बारी तथा झूलको घसीटता२ और अपनी सेनाको कुचलता२ भयङ्कर चिंघाडें मारताहुआ भागनेलगा, वृष्णिप्रवर सात्यकिके हाथमें जलसन्धको मारा गया देखकर हे राजन्! तुम्हारी सेनामें बड़ाभारी हाहाकार मचगया और तुम्हारेयोधा शत्रुओंके जीतनेका उत्साहछोड बैठे और पीठ फेरकर भागनेकी तयारी करनेलगे हे राजन्! इतनेमें

त्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये । एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रोणः शस्त्रभृतांवरः ॥ ५६ ॥ अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्युयुधानं महारथम् । तमुदीर्णं तथा दृष्ट्वा शैनेयं कुरुपुङ्गवाः ॥ ६० ॥ द्रोणेनैव सह क्रुद्धाः सात्यकिं समुपाद्रवन् । ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां सात्वतस्य च । द्रोणस्य च रणे राजन् घोरं देवासुरोपमम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि जल-
सन्धवधे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

सञ्जय उवाच । ते किरन्तः शरव्रातान् सर्वे यत्ताः प्रहारिणः । त्वरमाणा महाराज युयुधानमयोधयन् ॥ १ ॥ तं द्रोणः सप्तसप्तत्या जघान निशितैः शरैः । दुर्मर्षणो द्वादशभिर्दुःसहो दशभिः शरैः ॥२॥ विकर्णश्चापि निशितैस्त्रिंशद्भिः कङ्कपत्रिभिः । विव्याध सव्ये पार्श्वे तु स्तनाभ्यामन्तरे तथा ३ दुर्मुखो दशभिर्बाणैस्तथा

ही शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोण तेज घोड़ोंवाले रथमें बैठ महारथी सात्यकिके ऊपर दौड पडे, इस समय सात्यकीभी लड़नेको तयार होगया, यह देख कौरवोंके बडे २ योधा क्रोधमें भरगए और द्रोणके साथ ही सात्यकिके ऊपर टूटपड़े हे राजन् ! फिर रणमें सात्यकिका द्रोणाचार्य और कौरवोंके साथ देवासुरसंग्राम की समान भयंकर युद्ध छिडगया ॥ ५०-६१ ॥ एकसौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११५ ॥

संजयने कहा, कि—हे महाराज ! वे सब योधा सावधान हो बाणोंकी वर्षा करतेहुए तुरन्त ही सात्यकिके ऊपर चढ आये और लडनेलगे ॥ १ ॥ हे राजन् ! इस युद्धमें सात्यकिके द्रोणने सत्तर तेज बाण, दुर्मर्षणने बारह और दुःसहने बारह बाण मारे ॥२॥ और विकर्णने कंक पक्षीके पर लगेहुए तीस बाण मारकर सात्यकिकी छातीके मध्यभाग और दाहिनी करवटको बींधडाला ॥ ३ ॥ और हे राजन् ! दुर्मुखने दश, दुःशासनने

दुःशासनोष्टभिः। चित्रसेनश्च शैनेयं द्वाभ्यां विव्याध मारिष ॥४॥ दुर्योधनश्च महता शरवर्षेण माधवम्। अपीडयद्रणे राजन् शूराश्चान्ये महारथाः ॥५॥ सर्वतः प्रतिविद्धस्तु तव पुत्रैर्महारथैः। तान् प्रत्यविध्यद्वार्ष्णेयः पृथक् पृथगजिह्मगैः ॥ ६ ॥ भारद्वाजं त्रिभिर्बाणैर्दुःसहं नवभिः शरैः। विकर्णं पञ्चविंशत्या चित्रसेनञ्च सप्तभिः ॥ ७ ॥ दुर्मर्षणं द्वादशभिरष्टाभिश्च विविंशतिम्। सत्यव्रतञ्च नवभिर्विजयं दशभिः शरैः ॥ ८ ॥ ततो रुक्माङ्गदञ्चापि विधुन्वानो महारथः। अभ्ययात् सात्यकिस्तूर्णं पुत्रं तव महारथम् ॥ ९ ॥ राजानं सर्वलोकस्य सर्वलोकमहारथम्। शरैरभ्याहनद्गाढं ततो युद्धमभूत्तयोः ॥१०॥ विमुञ्चन्तौ शरांस्तीक्ष्णान् सन्दधानौ च सायकान्। अदृश्यं समरेऽन्योन्यं चक्रतुस्तौ महा-

---

आठ और चित्रसेनने दो वाण मारकर सात्यकिको घायल कर दिया ॥ ४ ॥ दुर्योधन तथा दूसरे शूरवीर महारथियोंने वड़ी भारी वाण वर्षा करके सात्यकिको रणमें वहुत ही पीडित किया ॥ ५ ॥ तुम्हारे महारथी पुत्रोंके द्वारा चारों ओरसे विंधता हुआ भी महारथी सात्यकि अलग २ उन सवोंको सीधे जाने वाले वाणोंसे वींधनेलगा ॥ ६ ॥ सात्यकिने द्रोणको तीन वाणोंसे, दुःसहको नौ वाणोंसे, विकर्णको पचीससे और चित्रसेनको सात वाणोंसे वींधडाला ॥ ७ ॥ सात्यकिने दुमर्षणके वारह विविंशतिके आठ सत्यव्रतके नौ और विजयके दश वाण मारे ॥ ८ ॥ तदनन्तर सुवर्णके वाजूवन्दवाले धनुषको घुमाता हुआ महारथी सात्यकि तुरन्त ही तुम्हारे महारथी पुत्र दुर्योधन पर टूटपडा ॥ ९ ॥ और सव लोकोंके राजा तथा सव लोकोंमें महारथी गिनेजातेहुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके अच्छे प्रकारसे वाण मारनेलगा इसप्रकार उन दोनोंमें युद्ध होनेलगा १०दोनों महारथी वाण साध २ कर एक दूसरेको मारते थे और मारते २ आपसमें

रथौ ॥ ११ ॥ सात्यकिः कुरुराजेन निर्विद्धो व्यशोभत । अस्त्रवद्रुधिरं भूरि स्वरसं चन्दनो यथा ॥ १२ ॥ सात्वतेन च
वाणौघैर्निर्विद्धस्तनयस्तव । शातकुम्भमयापीडो वभौ यूप इवोच्छ्रितः ॥ १३ ॥ माधवस्तु रणे राजन् कुरुराजस्य धन्विनः ।
धनुश्चिच्छेद सहसा क्षुरप्रेण हसन्निव ॥ १४ ॥ अथैनं छिन्नधन्वानं शरैर्वहुभिराचिनोत् । निर्भिन्नश्च शरैस्तेन द्विषता क्षिप्रकारिणा ॥ १५ ॥ नामृष्यत रणे राजा शत्रोर्विजयलक्षणम् ।
अथान्यद्द धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ १६ ॥ विव्याध सात्यकिं
तूर्णं सायकानां शतेन ह । सोऽतिविद्धो वलवता तव पुत्रेण
धन्विना ॥ १७ ॥ अमर्षवशमापन्नस्तव पुत्रमपीडयत् । पीडितं
नृपतिं दृष्ट्वा तव पुत्रा महारथाः ॥ १८ ॥ सात्यकिं शरवर्षेण

एक दूसरेको टक्करदेते थे ॥ ११ ॥ इस युद्धमें कुरुराजने वाण मारकर सात्यकिको वहुत ही घायल करदिया, इससे लोहूलुहान हो रुधिर टपकाताहुआ सात्यकि रसको टपकानेवाले लाल चन्दनके वृक्षकी समान वहुत ही दिपनेलगा ॥ १२ ॥ सात्यकिने भी तुम्हारे पुत्रके वहुतसे वाण मारे इससे तुम्हारा पुत्र सुवर्णके मुकुटवाले ऊँचे यज्ञस्तम्भकी समान शोभा पानेलगा ॥ १३ ॥ फिर हे राजन् ! सात्यकिने हँसकर क्षुरप्र नामके वाण मारकर धनुषधारी दुर्योधनके धनुषको काटडाला ॥ १४ ॥ और धनुषको काटकर सात्यकिने दुर्योधनके तडातड वहुतसे वाण मारे, फुर्तीले शत्रुके वाणोंसे विंधाहुआ दुर्योधन शत्रुकी इस विजयको सह नहीं सका और उसने एक सुवर्णकी पीठवाला मजबूत धनुष ले तडातड सौ वाण सात्यकिके मारे, हे राजन् ! तुम्हारे वली पुत्रके हाथसे वहुत ही घायल होनेपर सात्यकिको क्रोध आगया और वह तुम्हारे पुत्रको पीड़ित करनेलगा, दुर्योधनको दवता हुआ देखकर तुम्हारे दूसरे महारथी पुत्रोंने सात्यकिके ऊपर

छादयामासुरोजसा । सञ्छाद्यमानो वहुभिस्तव पुत्रैर्महारथैः १९ एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः । दुर्योधनञ्च त्वरितो विव्याधाष्टभिराशुगैः ॥ २० ॥ प्रहसंश्चास्य चिच्छेद कार्मुकं रिपुभीषणम् । नागं मणिमयञ्चैव शरैर्ध्वजमपातयत् ॥२१॥ हत्वा तु चतुरो वाहान् चतुर्भिर्निशितैः शरैः । सारथिं पातयामास क्षुरप्रेण महायशाः ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे चैव कुरुराजं महारथम् । अवाकिरच्छरैर्हृष्टो वहुभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥ स वध्यमानः समरे शैनेयस्य शरोत्तमैः । प्राद्रवत् सहसा राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ २४ ॥ आप्लुतश्च ततो यानं चित्रसेनस्य धन्विनः । हाहाभूतं जगच्चासीत् दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥ ग्रस्यमानं सात्यकिना खे सोममिव राहुणा । तन्तु शब्दमथ श्रुत्वा कृतवर्मा महा-

---

वलके अनुसार वाणोंकी वृष्टि कर उसको ढकदिया, तुम्हारे पुत्रोंके फैंकेहुए वाणोंसे ढकेहुए सात्यकिने हरएकके पाँच पाँच वाण मारे और फिर सात वाण मारे तथा दुर्योधनको तड़ातड़ आठ वाण मारकर घायल करदिया ॥ १५-२० ॥ और शत्रुओं को भय देनेवाले दुर्योधनके धनुषको वाणोंसे काटडाला तथा जिसमें मणियोंका हाथी वनरहा था ऐसी दुर्योधनकी ध्वजाको वाणोंसे काटकर पृथ्वीमें गिरादिया ॥ २१ ॥ फिर महायशस्वी सात्यकिने चार तेज वाण मारकर दुर्योधनके चारों घोडाको मार डाला और क्षुरप्र नामक वाण मारकर इसके सारथिको मार डाला ॥ २२ ॥ इस अवसरको देखकर सात्यकिने प्रसन्न हो दुर्योधनके वहुतसे मर्मभेदी वाण मारे जब सात्यकिने तान २ कर श्रेष्ठ वाण मारे तब तो तुम्हारा पुत्र दुर्योधन एकसाथ भाग निकला ॥ २४ ॥ और तुरन्तही धनुर्धारी चित्रसेनके रथ पर चढगया, फिर सात्यकिने उसका पीछाकिया जिसप्रकार आकाश में चन्द्रमाको राहु ग्रसलेता है तैसे ही सात्यकि चारों ओरसे

रथः ॥ २६ ॥ अभ्ययात् सहसा तत्र यत्रास्ते माधवः प्रभुः । विधुन्वानो धनुःश्रेष्ठञ्चोदयंश्चैव वाजिनः ॥२७॥ भर्त्सयन् सारथिञ्चाग्रे याहि याहीति सत्वरम् । तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ २८ ॥ युयुधानो महाराज यन्तारमिदमब्रवीत् । कृतवर्मा रथेनैष द्रुतमापतते शरी ॥ २९ ॥ प्रत्युद्याहि रथेनैनं प्रवरं सर्वधन्विनाम् । ततः प्रजविताश्वेन विधिवत् कल्पितेन च ॥ ३० ॥ आससाद रणे भोजं प्रतिमानं धनुष्मताम् । ततः परमसंक्रुद्धौ ज्वलिताविव पावकौ ॥ ३१ ॥ समेयातां नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ । कृतवर्मा तु शैनेयं षड्विंशत्या समार्पयत् ३२ निशितैःसायकैस्तीक्ष्णैर्यन्तारञ्चापि पञ्चभिः।चतुरश्चतुरो वाहांश्चतुर्भिः परमेषुभिः ॥ ३३ ॥ अविध्यत् साधुदान्तान् वै सैन्धवान् सात्व-

दुर्योधनको निगलनेलगा, यह देखकर रणभूमिमें खड़े हुए सब मनुष्य हाहाकार करनेलगे, उस कोलाहलको सुनकर महारथी कृतवर्मा, जहाँ पर सात्यकि खड़ा था, तहाँ ही रथ ले चलनेके लिये सारथिसे ललकारकर कहनेलगा, कि—अरे!रथको जल्दी चला इसप्रकार कह स्वयं ही घोड़ोंको हाँकताहुआ तथा हाथके धनुषको घुमाता हुआ फुरतीसे जहाँ पर सात्यकि खडा था तहाँ एकदम दौड़आया, कृतवर्माको मुख फाड़ेहुए कालकी समान आता देखकर, हे महाराज ! सात्यकिने अपने सारथिसे कहा, कि—॥२५–२८॥ अरे सारथी यह देख ! कृतवर्मा धनुष वाण लेकर झपटा चला आरहा है ॥ २६ ॥ यह सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ है अतः तू इसके सामने रथको लेचल सात्यकि की इस बातको सुनकर जिसमें बड़े वेगवाले घोड़े जुतरहे थे, और जो अच्छीप्रकार सजाया गया था, ऐसे रथको जहाँ धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ कृतवर्मा खडा था तहाँ सारथी लेगया तदनन्तर बड़े क्रोधमें भरेहुए नरोंमें व्याघ्र समान सात्यकि और कृतवर्मा दोनों

तस्य हि । रुक्मध्वजो रुक्मपृष्ठं महद्विस्फार्य कार्मुकम् ॥ ३४ ॥ रुक्माङ्गदी रुक्मवर्मा रुक्मपुङ्खैरशातयत् । ततोशीतिं शिनेः पौत्रः सायकान् कृतवर्मणः ॥ ३५ ॥ प्राहिणोत्त्वरया युक्तो द्रष्टुकामो धनञ्जयम् । सोतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ॥ ३६ ॥ समकम्पत दुर्द्धर्षः क्षितिकम्पे यथाचलः । त्रिषष्ट्या चतुरोस्याश्वान् सप्तभिः सारथिं तथा ॥ ३७ ॥ विव्याध निशितैस्तूर्णं सात्यकिः सत्यविक्रमः । सुवर्णपुङ्खं विशिखं समाधाय च सात्यकिः । व्यसृजत्तं महाज्वालं संक्रुद्धमिव पन्नगम् । सोविध्यत् कृतवर्माणं यमदण्डोपमः शरः॥३८॥ जाम्बूनदविचित्रञ्च वर्म निर्भिद्य

दो जलतेहुए अग्नियोंकी समान तथा दो वेगमें भरे व्याघ्रोंकी समान आपसमें गुथगए, कृतवर्माने छब्बीस तीक्ष्ण वाण सात्यकिके मारे और पाँच तेज वाण सात्यकिके सारथिके मारे फिर सिंधुदेशमें उत्पन्नहुए और चतुर सात्यकिके चार घोड़ोंको कृतवर्माने चार श्रेष्ठ वाण मारकर घायल करदिया तदनन्तर सुवर्णकी ध्वजा,वाजूवन्द और कवचवाले कृतवर्माने सुवर्णकी मूठवाले वड़ेभारी धनुषको खेंचकर सुवर्णकी पूँछवाले वाण छोड़कर सात्यकिको आगे वढ़नेसे रोकदिया, तदनन्तर अर्जुनको देखनेके लिये उत्कण्ठितहुए सात्यकिने शीघ्रतासे कृतवर्माके अस्सी वाण मारे। शत्रुओंको सन्ताप देनेवाला दुर्धर्ष कृतवर्मा वलवान् शत्रु सात्यकिके हाथसे वहुत ही घायल होकर भूकम्पके समय डगमगाते हुए पर्वतकी समान, काँप उठा फिर सत्यपराक्रमी सात्यकिने तड़ातड़ तिरेसठ तेज वाण मारकर कृतवर्माके चारों घोड़ोंको और सात वाण मारकर उसके सारथिको बींधडाला और सुवर्णकी पूँछवाला, महाकान्तिमान् तथा क्रोधितहुए सर्पकी समान एकवाण धनुष पर चढ़ाकर कृतवर्माके मारा वह यमदण्डकी समान भयंकर वाण कृतवर्माको बींधकर उसके सुवर्णकी

भानुमत् । अभ्यगाद्धरणीमुग्रो रुधिरेण समुक्षितः ॥ ४० ॥ सञ्जातरुधिरश्चाजौ सात्वतेषुभिरर्दितः । सशरं धनुरुत्सृज्य न्यपतत् स्यन्दनोत्तमात् ॥ ४१ ॥ स सिंहदंष्ट्रो जानुभ्यां पतितोऽमितविक्रमः । शरार्दितः सात्यकिना रथोपस्थे नरर्षभः ॥ ४२ ॥ सहस्रबाहुसदृशमक्षोभ्यमिव सागरम् । निवार्य कृतवर्माणं सात्यकिः प्रययौ ततः ॥४३॥ खड्गशक्तिधनुःकीर्णां गजाश्वरथसंकुलाम् । प्रवर्त्तितोग्ररुधिरां शतशः क्षत्रियर्षभैः ॥ ४४ ॥ प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां मध्येन शिनिपुङ्गवः । अभ्यगाद्वाहिनीं हित्वा वृत्रहेवासुरीञ्चमूम् ४५ समाश्वस्य च हार्दिक्यो गृह्य चान्यन्महद्धनुः । तस्थौ स तत्र बलवान् वारयन् युधि पाण्डवान् ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनकृतवर्मपराजये षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥

चित्रकारीवाले प्रकाशवान् कवचको फाड़ लोहूसे सनाहुआ पृथ्वीमें घुसगया ॥३९–४०॥ सात्वतवंशी सात्यकिके बाणोंसे घायलहुए कृतवर्माके शरीरमेंसे रुधिर बहनेलगा, उस समय वह धनुष बाण छोड़कर रथमें गिरपड़ा ॥४१॥ परम पराक्रमी नरश्रेष्ठ, सिंहकी समान डाढोंवाला कृतवर्मा सात्यकिके बाणसे पीड़ित हो घुटनोंके बल रथकी बैठक पर गिरपड़ा ॥ ४२ ॥ सहस्रार्जुनकी समान बली और समुद्रकी समान अक्षोभ्य कृतवर्माका पराजय करके सात्यकि आगेको चलदिया ॥ ४३ ॥ तलवार शक्ति और धनुषोंसे व्याप्त; हाथी, घोड़े और रथोंसे खचाखच भरीहुई तथा जिसमें सैंकड़ों क्षत्रियोंने रुधिरकी नदी बहादी थी ऐसी सेनामेंसे, सब योधाओंके सामने ही, बीचमेंसे होकर शिनिपुङ्गव सात्यकि, असुरसेनाके बीचमेंसे जैसे इन्द्र निकल जाय तैसे ही निकलगया ॥ ४४-४५ ॥ कुछ समयके अनन्तर कृतवर्माकी मूर्छा छूटी तब वह बड़े भारी धनुषको ले पाण्डवोंको रणमें आगे बढ़नेसे रोकनेलगा॥४६॥ एकसौसोलहवाँ

सञ्जय उवाच । कम्पमानेषु सैन्येषु शैनेयेन ततस्ततः । भारद्वाजः शरव्रातैर्महद्भिः समवाकिरत् ॥ १ ॥ स सम्प्रहारस्तुमुलो द्रोणसात्वतयोरभूत् । पश्यतां सर्वसैन्यानां बलिवासवयोरिव २ ततो द्रोणः शिनेः पौत्रं चित्रैः सर्वायसैः शरैः । त्रिभिराशीविषाकारैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३ ॥ तैर्ललाटार्पितैर्बाणैर्युयुधानस्त्वजिह्मगैः । व्यरोचत महाराज त्रिशृंग इव पर्वतः ॥ ४ ॥ ततोऽस्य बाणानपरानिन्द्राशनिसमस्वनान् । भारद्वाजोऽन्तरप्रेक्षी प्रेषयामास संयुगे ॥ ५ ॥ तान् द्रोणचापनिर्मुक्तान् दाशार्हः पततः शरान् । द्वाभ्यां द्वाभ्यां सुपुंखाभ्यां चिच्छेद परमास्त्रवित् ॥६ ॥ तामस्य लघुतां द्रोणः समवेक्ष्य विशाम्पते । प्रहस्य सहसाविध्यत् त्रिंशता शिनिपुङ्गवम् ॥७॥ पुनः पञ्चाशतेषूणां शितेन च समा-

---

सञ्जयने कहा, कि—शिनिके पुत्र सात्यकिने जब हमारी सेनाओंको इधर उधरको खदेडना आरम्भ करदिया, उस समय द्रोणाचार्यने इसके ऊपर बाणोंकी बडीभारी मारामार आरम्भ करदी ॥ १ जैसे बलि और इन्द्रका युद्ध हुआ था तैसे ही सब सेनाके सामने द्रोण और सात्यकिका युद्ध भयंकर रूपसे होने लगा ॥ २ ॥ युद्धमें द्रोणने सर्पकी समान आकारवाले, विचित्र, लोहेके बनेहुए तीन बाण मारकर सात्यकिके मस्तकको बींध डाला ॥ ३ ॥ उस समय हे राजन् ! सात्यकि, मस्तकमें गुभे हुए सूधे जानेवाले बाणोंसे तीन शिखरोंवाले पर्वतकी समान शोभा पारहा था ॥४॥ उसकी निर्बलता को देखनेवाले द्रोणाचार्य उसके ऊपर इन्द्रके वज्रकी समान टंकार शब्द करनेवाले बाण छोडने लगे ॥५॥ परन्तु अस्त्रोंके पारगामी सात्यकिने द्रोणके धनुषसे छूटकर आतेहुए उन बाणोंको पूँछवाले दो २ बाण मारकर काटडाला ॥ ६ ॥ हे राजन् ! सात्यकिकी फुर्तीको देखकर द्रोण हँसे और उन्होंने तुरंत ही शिनिवंशमें

र्पयत् । लघुतां युयुधानस्य लाघवेन विशेषयन् ॥८॥ समुत्पतन्ति वल्मीकाद्यथा क्रुद्धा महोरगाः । तथा द्रोणरथाद्राजन्नापतन्ति तनुच्छिदः ॥ ९ ॥ तथैव युयुधानेन सृष्टाः शतसहस्रशः । अवाकिरन् द्रोणरथं शरा रुधिरभोजनाः ॥ १० ॥ लाघवात् द्विजमुख्यस्य सात्वतस्य च मारिष । विशेषं नाध्यगच्छाव समावास्तां नरर्षभौ ॥ ११ ॥ सात्यकिस्तु ततो द्रोणं नवभिर्नतपर्वभिः । आजघान भृशं क्रुद्धो ध्वजञ्च निशितैः शरैः ॥ १२ ॥ सारथिञ्च शतेनैव भारद्वाजस्य पश्यतः । लाघवं युयुधानस्य दृष्ट्वा द्रोणो महारथः ॥ १३ ॥ सप्तत्या सारथिं विध्वा तुरगांश्च त्रिभिस्त्रिभिः । ध्वजमेकेन चिच्छेद माधवस्य रथे स्थितम् ॥ १४ ॥

श्रेष्ठ सात्यकिके तीस वाण मारे ॥ ७ ॥ तदनन्तर सात्यकिसे भी अधिक फुर्ती दिखा द्रोणने फिर पचास तेज वाण सात्यकिके मारे ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उस समय क्रोधमें भरे हुए महासर्प जैसे विलमेंसे वाहर निकलते हैं तैसे ही द्रोणके रथमेंसे शरीरको काटनेवाले वाण सपासप छूटनेलगे ॥ ९ ॥ और ऐसे ही सात्यकिके छोड़ेहुए रुधिरका भोजन करनेवाले सहस्रों और सैंकडों वाणोंने द्रोणके रथको ढकदिया ॥ १० ॥ हे राजन् ! द्विजोंमें मुख्य द्रोण और सात्वतवंशी सात्यकि ये दोनों ही फुर्तीले थे, अतः इन दोनोंमें विशेष कौन है यह हम नहीं जानसकते, परन्तु ये दोनों महात्मा युद्धमें हमें एकसे ही मालूम हुए ॥११॥ इतनेमें ही सात्यकिको वडा क्रोध आया और उसने द्रोणके नमीहुई गाँठवाले नौ वाण मारे और द्रोणके सामने ही सौ वाण मारकर उनकी ध्वजा और सारथीको घायल करदिया महारथी द्रोणने सात्यकिकी फुर्तीको देखकर सत्तर वाण मारकर उसके सारथिको वींधडाला फिर तीन२ वाण मार उसके घोड़ोंको घायल करके और एक तेज वाणसे सात्य-

अथापरेण भल्लेन हेमपुंखेन पत्रिणा । धनुश्चिच्छेद समरे माधवस्य महात्मनः ॥ १५ ॥ सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धनुस्त्यक्त्वा महारथः । गदां जग्राह महतीं भारद्वाजाय चाक्षिपत् ॥ १६ ॥ तामापतन्तीं सहसा पट्टबद्धामयस्मयीम् । न्यवारयच्छरैर्द्रोणो बहुभिर्बहुरूपिभिः ॥ १७ ॥ अथान्यद्धनुरादाय सात्यकिः सत्यविक्रमः । विव्याध बहुभिर्वीरं भारद्वाजं शिलाशितैः ॥ १८ ॥ स विद्ध्वा समरे द्रोणं सिंहनादममुञ्चत । तं वै न ममृषे द्रोणः सर्वशस्त्रभृताम्वरः ॥ १९ ॥ ततः शक्ति गृहीत्वा तु रुक्मदण्डामयस्मयीम् । तरसा प्रेषयामास माधवस्य रथं प्रति ॥ २० ॥ अनासाद्य तु शैनेयं सा शक्तिः कालसन्निभा । भित्वा रथं जगामोग्रा धरणीं दारुणस्वना ॥ २१ ॥ ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो राजन्

किके रथमें लगीहुई ध्वजाको काटडाला ॥ १२–१४ ॥ फिर द्रोणने सुवर्णके पंखवाला भल्ल नामक दूसरा वाण लेकर महात्मा सात्यकिके धनुषको काटडाला ॥ १५ ॥ तब तो सात्यकिने उस धनुषको फेंकदिया और क्रोधमें भरकर गदा उठा द्रोणके मारी १६ द्रोणने एकाएक अपने ऊपर आतीहुई,सुवर्णके पत्तरोंसे जड़ी उस लोहेकी गदाके सामने अनेकों प्रकारके वाण मारकर उसको छिन्न भिन्न करके गिरादिया ॥ १७ ॥ तदनन्तर सत्यपराक्रमी सात्यकिने दूसरा धनुष ले शिला पर घिसकर तेज कियेहुए बहुतसे वाण मार द्रोणको घायल करदिया ॥ १८ ॥ समरमें द्रोणको घायल करके सात्यकि सिंहकी समान दहाड़नेलगा, परन्तु यह बात सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणसे सही नहीं गई ॥ १९ ॥ और उन्होंने सुवर्णके दण्डवाली लोहेकी वनीहुई शक्ति उठाकर वेगके साथ सात्यकिके रथकी ओरको फेंकी २० कालकी समान भयङ्कर वह शक्ति सात्यकिके पास तक न पहुँच सकी, किन्तु उसके रथके टुकड़े करके भयङ्कर शब्द करतीहुई

विव्याध पत्रिणा । दक्षिणं भुजमासाद्य पीडयन् भरतर्षभम् ॥२२॥ द्रोणोपि समरे राजन्माधवस्य महद्धनुः । अर्द्धचन्द्रेण चिच्छेद रथशक्त्या च सारथिम् ॥२३॥ मुमोह सारथिस्तस्य रथशक्त्या समाहतः । स रथोपस्थमासाद्य मुहूर्तं सन्निषीदत ॥२४॥ चकार सात्यकी राजन् सूतकर्माति मानुषम् । अयोधयच्च यद् द्रोणं रश्मीन् जग्राह च स्वयम् ॥ २५ ॥ ततः शरशतेनैव युयुधानो महारथः । अविध्यद् ब्राह्मणं संख्ये हृष्टरूपो विशाम्पते ॥२६॥ तस्य द्रोणः शरान् पञ्च प्रेषयामास भारत । ते घोराः कवचं भित्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ २७ ॥ निर्विद्धस्तु शरैर्घोरैरक्रुध्यत् सात्यकिर्भृशम् । सायकान् व्यसृजच्चापि वीरो रुक्मरथं प्रति२८

पृथ्वीमें घुसगई ॥२१॥ इस घटनाके वाद हे भरतसत्तम ! सात्यकिने वाण मारकर द्रोणकी दाहिनी भुजाको घायल कर उन्हें वडी पीडा दी ॥२२॥ हे राजन् ! द्रोणने भी समरमें अर्धचन्द्राकार वाण मारकर सात्यकिके वड़ेभारी धनुषको काटडाला और रथशक्ति अर्थात् केतकीके पत्रकेसे आकारवाली शक्तिसे सारथिको घायल करदिया ॥ २३ ॥ रथशक्तिके लगनेसे सारथिको चक्कर आनेलगा और वह रथकी वैठक पर गिरकर क्षणभर निश्चेष्टसा वनारहा ॥ २४ ॥ परन्तु हे राजन् ! उस समय सात्यकिने ऐसी अद्भुत रीतिसे सारथीका काम किया कि—वह अपने आप घोड़ोंकी लगामें पकड़ेरहा और द्रोणसे युद्ध भी करता रहा ॥ २५ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! हर्षके स्वरूप महारथी सात्यकिने समरमें ब्राह्मण द्रोणाचार्यके सौ वाण मारे ॥२६॥ हे भारत ! द्रोणने सात्यकिके पाँच वाण मारे, वे घोर वाण कवचको फोडकर सात्यकिके रुधिरको पीनेलगे ॥ २७ ॥ भयङ्कर वाणोंसे अतीव घायल होजानेके कारण सात्यकि वड़े क्रोधमें भरगया और उसने सुवर्णके रथमें वैठेहुए द्रोणके ऊपर वाणोंकी वर्षा करना आरम्भ कर

ततो द्रोणस्य यन्तारं निपात्यैकेषुणा भुवि । अश्वान् व्यद्रावयद्बाणैर्हतसूतांस्ततस्ततः ॥ २९ ॥ स रथः प्रद्रुतः संख्ये मण्डलानि सहस्रशः । चकार राजतो राजन् भ्राजमान इवांशुमान् ॥ ३० ॥ अभिद्रवत गृह्णीत हयान् द्रोणस्य धावत । इति स्म चुक्रुशुः सर्वे राजपुत्राः सराजकाः ॥ ३१ ॥ ते सात्यकिमपास्याशु राजन् युधि महारथाः । यतो द्रोणस्ततः सर्वे सहसा समुपाद्रवन् ॥ ३२ ॥ तान् दृष्ट्वा प्रद्रुतान् संख्ये सात्वतेन शरार्दितान् । प्रभग्नं पुनरेवासीत्तव सैन्यं समाकुलम् ॥ ३३ ॥ व्यूहस्यैव पुनर्द्वारं गत्वा द्रोणो व्यवस्थितः । वातायमानैस्तैरश्वैर्नीतो वृष्णिशरार्दितैः ॥ ३४ ॥ पाण्डुपाञ्चालसम्भिन्नं व्यूहमालोक्य वीर्यवान् । शैनेये नाकरोद्यत्नं व्यूहमेवाभ्यरक्षत ॥३५॥ निवार्य पाण्डुपञ्चालान् द्रोणाग्निः

दी ॥ २८ ॥ तदनन्तर उसने एक बाणसे द्रोणके सारथिको भूमिमें गिराकर बिना ही सारथिके घोडोंको बाण छोडकर इधर उधर भगाना आरम्भ करदिया ॥ २९ ॥ हे राजन् ! वे घोड़े द्रोणके रुपहले रथको लेकर रणमें सैंकडों चक्कर काटनेलगे, उस समय वह चान्दीका रथ, जैसे चन्द्रमा फिर रहा हो, ऐसा प्रतीत होता था ॥ ३० ॥ उस समय सकल राजकुमार और राजे कोलाहल मचानेलगे कि–अरे ! दौड़ो ! दौडो ! अरे ! द्रोणके भागतेहुए घोडोंको तो कोई थामो ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! वे सब महारथी सात्यकिको छोड एक साथ द्रोणकी ओरको दौड़े ३२ परन्तु सात्यकिने बाण मारकर उन सबोंको भगादिया, उस समय सात्यकिके बाणोंसे पीडित हो भागतेहुए राजकुमारोंको देखकर तुम्हारी सेना व्याकुल हो फिर भागपडी ॥३३॥ और वृष्णिप्रवीर सात्यकिके बाणोंसे पीडित हो वायुकी समान भागतेहुए घोडोंने द्रोणको व्यूहके मुहाने पर ही फिर लाकर खडा करदिया ।३४। उस समय वीर्यवान् द्रोणने देखा, कि–"पांडव और पांचालोंने

प्रदहन्निव । तस्थौ क्रोधाग्निसन्दीप्तः कालसूर्य इवोदितः ॥ ३६॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकि-
पराक्रमे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

सञ्जय उवाच । द्रोणं स जित्वा पुरुषप्रवीरस्तथैव हार्दिक्यमुखांस्त्वदीयान् । प्रहस्य सूतं वचनं बभाषे शिनिप्रवीरः कुरुपुङ्गवाग्र्यः ॥ १ ॥ निमित्तमात्रं वयमद्य सूत दग्धारयः केशवफाल्गुनाभ्याम् । हतान्निहन्मेह नरर्षभेण वयं सुरेशात्मसमुद्भवेन ॥२॥ तमेवमुक्त्वा शिनिपुङ्गवस्तदा महामृधे सोग्र्यधनुर्द्धरोऽरिहा । किरन् समन्तात् सहसा शरान् बली समापतत् श्येन इवामिषं यथा ३ ते यान्तमश्वैः शशिशंखवर्णैर्विगाह्य सैन्यं पुरुषप्रवीरम् । नाशक्नु-

व्यूहको तोडडाला है" अतः वह सात्यकिकी ओर न जाकर व्यूहकी ही रक्षा करनेलगे ॥ ३५ ॥ उस समय क्रोधरूपी काष्ठसे प्रज्वलित हुआ द्रोणरूप अग्नि, उदय होतेहुए प्रलय कालके सूर्यकी समान, व्यूहके मुहाने पर खडा हो पाण्डव और पाञ्चालोंको आगे वढ़नेसे रोकनेलगा ॥३६॥ एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११७ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि–हे कुरुवंशमें अग्रगण्य ! पुरुषोंमें परम वीर शिनिकुलमें श्रेष्ठ सात्यकि द्रोणकोऔर तुम्हारे कृतवर्मा आदि योधाओंको जीत हँसता २ अपने सारथिसे वोला कि ॥ १ ॥ हे सूत ! श्रीकृष्ण तथा अर्जुनने इन शत्रुओंको पहले ही भस्म करदिया है, हम तो केवल निमित्तमात्र हैं, हम तो इन्द्रके अंशसे उत्पन्न हुए नरश्रेष्ठ अर्जुनके मारेहुए शूरोंको ही मार रहे हैं २ सारथिसे यह कहकर धनुषधारी शत्रुसंहारक, वली शिनिपुङ्गव सात्यकि उस महायुद्धमें, मांस पर टूटतेहुए वाजकी समान सहसा वाण वरसाता हुआ शत्रुओंपर टूटपडा॥३॥सेनाको घँघोल कर, चन्द्रमा और शंखकी समान उज्ज्वल वर्णके घोड़ोंसे जुते रथमें

यन् वारयितुं समन्तादादित्यरश्मिप्रतिमं रथाग्र्यम् ॥४॥ असह्यविक्रान्तमदीनसत्त्वं सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः । सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावं दिवीव सूर्यं जलदव्यपाये ॥ ५ ॥ अमर्षपूर्णस्त्वतिचित्रयोधी शरासनी काञ्चनवर्मधारी । सुदर्शनः सात्यकिमापतन्तं न्यवारयद्राजवरः प्रसह्य ॥ ६ ॥ तयोरभूत् भारत सम्प्रहारः सुदारुणस्तं समतिप्रशंसन् । योधास्त्वदीयाश्च हि सोमकाश्च वृत्रेन्द्रयोर्युद्धमिवामरौघाः ॥ ७ ॥ शरैः सुतीक्ष्णैः शतशोऽभ्यविध्यत् सुदर्शनः सात्वतमुख्यमाजौ । अनागतानेव तु तान् पृषत्कान् चिच्छेद राजन् शिनिपुङ्गवोऽपि ॥८॥ तथैव शक्रप्रतिमोऽपि सात्यकिः सुदर्शने यान् क्षिपति स्म सायकान् । द्विधा त्रिधा तान-

---

बैठकर जातेहुए रथियोंमें अग्रगण्य, सूर्यकी किरणोंकीसमान चमकते हुए, पुरुषश्रेष्ठ सात्यकिको उस समय कोई भी न रोकसका ४ शरद्ऋतुमें जैसे सूर्यके सामने कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता तैसे ही हे राजन्! तुम्हारे जितने योधा थे उन सबोंमेंसे एक भी असह्य पराक्रमी महाबली, इन्द्रकी समान प्रभावशाली सात्यकिके सामने आँख उठाकर न देख सका ॥ ५ ॥ परन्तु सात्यकिको आगे बढताहुआ देखकर क्रोधमें भराहुआ अत्यन्त विचित्र रूपसे युद्ध करनेवाला, धनुषधारी, सुवर्णके कवचको पहिरे हुए राजाओंमें श्रेष्ठ राजा सुदर्शन उसको बलात्कारसे आगे बढनेसे रोकनेलगा ॥ ६ ॥ हे भारत! उन दोनोंका युद्ध बडा भयङ्कर हुआ, देवताओंने जैसे इन्द्र और वृत्रासुरके संग्रामकी प्रशंसाकी थी तैसे ही तुम्हारे योधा और सोमक वंशके राजे भी, इन दोनोंके युद्धकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ७ ॥ सुदर्शनने सात्वतवंशमें श्रेष्ठ सात्यकिके सैंकडों तेज बाण मारे, परन्तु हे राजन्! शिनिपुङ्गव सात्यकिने, अपने पास पहुँचनेसे पहिले ही उन बाणोंको काटडाला ॥ ८ ॥ तैसे ही इन्द्रकी समान

कृरात् सुदर्शनः शरोत्तमैः स्यन्दनवर्यमास्थितः ॥९॥ तान् वीक्ष्य बाणान् निहतांस्तदानीं सुदर्शनः सात्यकिबाणवेगैः। क्रोधाद्दिधक्षन्निव तिग्मतेजाः शरानमुञ्चत्तपनीयचित्रान ॥ १० ॥ पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैराकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः। विव्याध देहावरणं विभिद्य ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ ११ ॥ तथैव तस्यावनिपालपुत्रः सन्धाय बाणैरपरैर्ज्वलद्भिः। आजघ्निवांस्तान् रजतप्रकाशांश्चतुरोऽश्वांश्चतुरः प्रसह्य ॥ १२ ॥ तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी नप्ता शिनेरिन्द्रसमानवीर्यः। सुदर्शनस्येषुगणैः सुतीक्ष्णैर्हयान्निहत्याशु ननाद नादम् ॥ १३ ॥ अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य भल्लेन शक्राशनिसन्निभेन। सुदर्शनस्यापि शिनिप्रवीरः

सात्यकिने जिन बाणोंको मारा उन बाणोंके भी, सुदर्शनने रथमें बैठे ही बैठे बाण मारकर, दो२ तीन२ टुकड़े करदिये ॥ ९ ॥ अपने छोड़ेहुए बाणोंको सात्यकिके बाणोंसे कटेहुए देखकर सुदर्शन क्रोधमें भरगया और वह ऐसा तीखे तेजवाला दीखने लगा, कि-मानो जगत्को भस्म ही करडालेगा, उस समय उसने सुवर्णकी पत्तरोंसे विचित्र दीखतेहुए बाणोंको सात्यकिके ऊपर छोडा ॥ १० ॥ तदनन्तर उसने अच्छे परोंवाले अग्निकी समान स्पर्शवाले तीन तेज बाण, कान तक धनुष खैंच, सात्यकिके ऊपर छोड़े वे बाण सात्यकिके कवचको फोड उसके शरीरमें घुसगए ॥ ११ ॥ तैसे ही उस राजपुत्रने दूसरे चार जलतेहुए बाण चढ़ाकर, सात्यकिके रुपहले घोडों पर वेगके साथ छोड़े १२ इसप्रकार जब राजा सुदर्शनने बाण मारे तब इन्द्रकी समान वीर्यवान्, शिनिके पुत्र फुर्तीले सात्यकिने तुरन्त ही बहुतसे तेज बाण मारकर राजा सुदर्शनके चारों घोडोंको मारडाला और फिर बडीभारी गर्जनाकी ॥ १३ ॥ तदनन्तर इन्द्रके वज्र की समान भल्ल नामके बाणसे उसके सारथिका मस्तक काट

क्षुरेण कालानिलसन्निभेन ॥ १४ ॥ सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं भ्राजिष्णुवक्त्रं विचकर्त्त देहात् । यथा पुरा वज्रधरः प्रसह्य वलस्य सङ्ख्येऽतिवलस्य राजन् ॥ १५ ॥ निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं रणे यदूनामृषभस्तरस्वी । मुदा समेतः परया महात्मा रराज राजन् सुरराजकल्पः ॥ १६ ॥ ततो ययावर्जुन एव येन निवार्य सैन्यं तव मार्गणौघैः । सदश्वयुक्तेन रथेन राजन् लोकं विसिस्मापयिषुर्नृवीरः ॥ १७ ॥ तत्तस्य विस्मापयनीयमग्र्यमपूजयन् योधवराः समेताः । प्रवर्त्तमानानिषुगोचरेऽरीन् ददाह वाणैर्हुतभुग्यथैव १८

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सुदर्शन-
वधे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

सञ्जय उवाच । ततः स सात्यकिर्धीमान् महात्मा वृष्णिपुङ्गवः।

डाला, तदनन्तर शिनिप्रवीर सात्यकिने कालाग्निकी समान क्षुरप्र नामक वाण मारकर, कुण्डलोंसे शोभित पूर्ण चन्द्रमाकी समान उज्ज्वल सुदर्शनके मस्तकको, ऐसे काटडाला जैसे पहिले युद्धमें इन्द्रने वलनामक अतिवली असुरके मस्तकको काटडालाथा १५ हे राजन् ! इसप्रकार यदुश्रेष्ठ वेगवान् सात्यकि राजपुत्र अर्थात् दुर्योधनके पौत्रको रणमें मारकर बड़े हर्षमें भरगया, उस समय उस महात्माकी शोभा इन्द्रकी समान होरही थी ॥ १६ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! तुम्हारी सेनाको वाणोंसे पीछेको हटाकर लोकोंको विस्मित करना चाहताहुआ वीर सात्यकि श्रेष्ठ घोडोंसे जुते हुए रथमें बैठकर अर्जुनके पासको चलदिया ॥ १७ ॥ मार्गमें जाते समय उसके सामने जो शत्रु पडता था उनको यह अग्निकी समान, वाण मारकर नष्ट ही करता जाता था, उसके इस अचरजमें डालनेवाले श्रेष्ठ पराक्रमकी, बड़े २ योधाओंने प्रशंसा की ॥ १८ ॥ एकसौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११८ ॥

सञ्जयने कहा, कि-युद्धमें सुदर्शनको मारनेके उपरान्त वृष्णि-

सुदर्शनं निहित्याजौ यन्तारं पुनरब्रवीत् ॥ १ ॥ रथाश्वनागकलिलं शरशक्त्यूर्मिमालिनम् । खड्गमत्स्यं गदाग्राहं शूरायुधमहास्वनम् ॥ २ ॥ प्राणापहारिणं रौद्रं वादित्रोत्क्रुष्टनादितम् । योधानामसुखस्पर्शं दुर्द्धर्षमजयैषिणाम् ॥ ३ ॥ तीर्णाः सुदुस्तरं तात द्रोणानीकमहार्णवम् । जलसन्धबलेनाजौ पुरुषादैरिवावृतम् ४ अतोऽन्यत् पृतनाशेषं मन्ये कुनदिकामिव । तर्त्तव्यामल्पसलिलां चोदयाश्वानसम्भ्रमम् ॥ ५ ॥ हस्तप्राप्तमहं मन्ये साम्प्रतं सव्यसाचिनम् । निर्जित्य दुर्द्धरं द्रोणं सपदानुगमाहवे ॥६॥ हार्दिक्यं योधवर्यञ्च मन्ये प्राप्तं धनञ्जयम् । न हि मे जायते त्रासो दृष्ट्वा सैन्यान्यनेकशः ॥ ७ ॥ वह्नेरिव प्रदीप्तस्य वने शुष्कतृणोलपे ।

वीर बुद्धिमान् महात्मा सात्यकिने अपने सारथिसे फिर कहा कि-१ हे तात ! रथ, घोड़े और हाथियोंसे भयङ्कर बाण और शक्तिरूप तरङ्गोंवाले खड्गरूप मच्छ और शूरोंके आयुधोंकी खनखनाहट रूप गर्जनावाले तथा प्राणोंका नाश करनेवाले, भयङ्कर बाजोंकी ध्वनिरूप कोलाहलसे भरे जिसको योधा भी सुखसे न छूसकें और विजयकी इच्छासेशून्य जिसको पकड न सकें ऐसे जलसन्धकी सेनारूप राक्षसोंसे पूर्ण द्रोणकी सेनारूप महासागरके हम पार होगए हैं ॥ २–४ ॥ अब बाकी बचीहुई सेनाको तो मैं थोड़ेसे जलवाली साधारण नदीकी समान पार न होने योग्य समझता हूँ तू इसलिये घोड़ोंको धीरे २ चला ॥ ५ ॥ इस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि–अर्जुन मेरे पास ही है अरे ! सेनासहित दुर्धर्ष द्रोणको रणमें जीतकर और योधाओंमें श्रेष्ठ कृतवर्माका पराजय करनेसे मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि–मैं शीघ्र ही अर्जुनके पास पहुँच जाऊँगा, जैसे जलतेहुए अग्निको वनमें घास फूँसके ढेरको देखकर आगे बढनेमें भय नहीं लगता है तैसे ही मुझे इन बहुतसी सेनाओंको सामने देखने पर भी

पश्य पाण्डवमुख्येन यातां भूमिं किरीटिना ॥ ८ ॥ पत्त्यश्वरथनागौघैः पतितैर्विषमीकृताम् । द्रवते तद्यथा सैन्यं तेन भग्नं महात्मना ॥ ९ ॥ रथैर्विपरिधावद्भिर्गजैरश्वैश्च सारथे । कौशेयारुणसङ्काशमेतदुद्धूयते रजः ॥ १० ॥ अभ्याशस्थमहं मन्ये श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् । स एष श्रूयते शब्दो गाण्डीवस्यामितौजसः ११ यादृशानि निमित्तानि मम प्रादुर्भवन्ति वै । अनस्तं गत आदित्ये हन्ता सैन्धवमर्जुनः ॥१२॥ शनैर्विश्रम्भयन्नश्वान् याहि यत्रारिवाहिनी । यत्रैते सतनुत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः ॥१३॥ दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः । शरवाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ॥ १४ ॥ शकाः किराता दरदा वर्वरास्ताम्रलिप्तकाः ।

भय नहीं लगता है हे तात! जिस मार्गसे पाण्डवोंमें मुख्य किरीटी अर्जुन गया है उस पदल, घोड़े, रथ और हाथियोंके मरकर ढेर लगनेसे विकटहुए मार्गको तू देख, महात्मा अर्जुनने शत्रुकी सेनाको नष्टप्राय करदिया है इसकारण शत्रु अभीतक भागरहे हैं ॥ ६–९ ॥ हे सारथी ! रथ, घोड़े और हाथियोंके दौडनेसे आकाशमें रेशमीऔर लाल २ धूल उडरही है इसको भी तू देख ॥ १० ॥ मेरी समझमें श्वेत घोडोंवाले और कृष्ण जिनके सारथि हैं वह महात्मा अर्जुन अब कहीं निकट ही होंगे, सुन २ यह परम पराक्रमी अर्जुनके गांडीव धनुषका शब्द सुनाई देरहा है ॥ ११ ॥ जैसे २ शकुन मेरे सामने होरहे हैं उनसे निश्चय होता है,कि-सूर्यास्तसे पहिले ही अर्जुन जयद्रथको मारडालेगा १२ अब तू घोडोंको कुछ आराम देले, फिर जहाँ शत्रुकी सेना है और जहाँ चमड़ेके मोजे पहिरे हुए कवचधारी और क्रूरकर्मी दुर्योधन आदि खड़े हों और जहाँ धनुषबाण धारण कियेहुए युद्धदुर्मद काम्बोज, यवन, शक, किरात, दरद, वर्वर, ताम्रलिप्तक तथा प्रहार करनेवाले तथा अनेकोंप्रकारके आयुधोंको

अन्ये च वहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः ॥ १५ ॥ यत्रैते सतत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः । मामेवाभिमुखाः सर्वे तिष्ठन्ति समरार्थिनः ॥ १६ ॥ एतान् सरथनागाश्वान् निहत्याजौ सपत्तिनः । इदं दुर्गं महाघोरं तीर्णमेवोपधारय ॥ १७ ॥ सूत उवाच । न सम्भ्रमो मे वार्ष्णेय विद्यते सत्यविक्रम । यद्यपि स्यात्तव क्रुद्धो जामदग्न्योऽग्रतः स्थितः ॥ १८ ॥ द्रोणो वा रथिनां श्रेष्ठः कृपो मद्रेश्वरोऽपि वा । तथापि सम्भ्रमो न स्यात्त्वामाश्रित्य महाभुज १९ त्वया सुवहवो युद्धे निर्जिताः शत्रुसूदन । दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः ॥ २० ॥ शरवाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः । शकाः किराता दरदा वर्वरास्ताम्रलिप्तकाः ॥ २१ ॥ अन्ये च वहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः । न च मे सम्भ्रमः

हाथमें लियेहुए वहुतसे म्लेच्छ खड़े हों, उधरको मेरे रथको धीरे धीरे लेचलो ॥ १३–१५ ॥ ये सव दुर्योधन आदि चमड़ेके मोजे पहिन २ कर मुझसे ही लड़नेको खड़े हैं ॥ १६ ॥ इसलिये अव इस युद्धमें हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों सहित इन सवोंको मारडालूँगा तव ही तू जानना, कि–हम इस महाघोर व्यूहके पार होगये ॥ १७ ॥ सारथिने उत्तर दिया कि–हे वार्ष्णेय ! हे सत्यपराक्रम ! यदि मेरे सामने जमदग्निके पुत्र परशुराम भी क्रोधमें भरकर आखड़े हों तव भी मैं नहीं घवड़ासकता फिर इनकी तो विसात ही क्या है ? ॥ १८ ॥ और हे महाभुज ! राजन् ! द्रोण या महारथी कृपाचार्य या मद्रराज मेरे सामने आकर खड़े होजायँ तो भी मैं आपके प्रतापसे जरा भी नहीं डरूँगा ॥ १९ ॥ हे शत्रुसूदन ! तुमने युद्धमें कवच पहिरने वाले, क्रूरकर्मी काम्बोज, धनुषवाणधारी युद्धदुर्मद शक किरात दरद वर्वर, ताम्रलिप्तक तथा नानाप्रकारके आयुधोंको धारण करनेवाले वहुतसे म्लेच्छोंका नाश किया था उस समय भी मुझे

कश्चिद् भूतपूर्वः कदाचन ॥ २२ ॥ किमुतैतत् समासाद्य वीर संयुगगोष्पदम् । आयुष्मन् कतरेण त्वां प्रापयामि धनञ्जयम् २३ केषां क्रुद्धोसि वार्ष्णेय केषां मृत्युरुपस्थितः । केषां संयमनीमद्य गन्तुमुत्सहते मनः २४ के त्वां युधि पराक्रान्तं कालान्तकयमोपमम् । दृष्ट्वा विक्रमसंयुक्तं विद्रविष्यन्ति संयुगे॥२५॥केषां वैवस्वतो राजा स्मरतेद्य महाभुज । सात्यकिरुवाच । मुण्डानेतान् हनिष्यामि दानवानिव वासवः ॥ २६ ॥ प्रतिज्ञां पालयिष्यामि कांबोजानेव मां वह । अद्यैषां कदनं कृत्वा प्रियं यास्यामि पाण्डवम् ॥ २७ ॥ अद्य द्रक्ष्यन्ति मे वीर्यं कौरवाः ससुयोधनाः । मुण्डानीके हते सूत सर्वसैन्येषु चासकृत् ॥ २८ ॥ अथ कौरवसैन्यस्य दीर्यमाणस्य

जरा भी भय नहीं लगा था ॥२०–२२॥ फिर इस गौके खुरकी समान छोटेसे युद्धकी तो बात ही क्या है ? हे आयुष्मन् ! अब बताओ ! मैं तुम्हें किस मार्गसे अर्जुनके पास ले चलूँ ?॥२३॥ हे वृष्णिवंशी सात्यकि ! आज तुम किसके ऊपर कुपित हुए हो आज किसकी मृत्यु आलगी है और आज किसका मन यमकी राजधानीमें जानेके लिये उत्कण्ठित होरहा है ? ॥ २४ ॥ कौन आज तुम्हें युद्धमें प्रलयकालके यमकी समान पराक्रम करते देख रणमेंसे भागेंगे ॥ २५ ॥ हे महाभुज ! यमराज किस २ का स्मरण कर रहे हैं ? सात्यकिने कहा, कि–इन्द्र जैसे दानवोंका संहार करते हैं तैसे ही आज मैं इन मुण्डोंका संहार करूँगा और काम्बोजोंको मारकर अपनी प्रतिज्ञाको पूरीकरूँगा आज मैं इनका संहार करके अर्जुनके पास जाऊँगा, अतः मुझे तू इन योधाओं की ओरको लेचल ॥ २६–२७ ॥ आज जब मैं वारवार मुण्डोंका और सब सेनाओंका नाश करूँगा तब दुर्योधन आदि सब कौरव मेरे बलको देखेंगे ॥ २८ ॥ युद्धमें नष्ट होतीहुई कौरव सेनाके बहुतसे करुणाजनक विलापोंको सुनकर आज दुर्योधनके

संयुगे । श्रुत्वा विरावं वहुधा सन्तप्स्यति सुयोधनः ॥२९॥ अद्य पाण्डवमुख्यस्य श्वेताश्वस्य महात्मनः । आचार्यस्य कृतं मार्गं दर्शयिष्यामि संयुगे ॥ ३० ॥ अद्य मद्वाणनिहतान् योधमुख्यान् सहस्रशः । दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ ३१ ॥ अद्य मे क्षिप्रहस्तस्य क्षिपतः सायकोत्तमान् । अलातचक्रप्रतिमं धनुर्द्रक्ष्यन्ति कौरवाः ॥ ३२ ॥ मत्सायकचिताङ्गानां रुधिरं स्रवतां मुहुः । सैनिकानां वधं दृष्ट्वा सन्तप्स्यति सुयोधनः ॥ ३३ ॥ अद्य मे क्रुद्धरूपस्य निघ्नतश्च वरान् वरान् । द्विरर्जुनमिमं लोकं मंस्यतेद्य सुयोधनः ॥ ३४ ॥ अद्य राजसहस्राणि निहतानि मया रणे । दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा सन्तप्स्यति महामृधे ॥ ३५ ॥ अद्य स्नेहञ्च भक्तिञ्च पाण्डवेषु महात्मसु । हत्वा राजसहस्राणि दर्शयिष्यामि राजसु ॥ ३६ ॥ वलं वीर्यं कृतज्ञत्वं मम ज्ञास्यन्ति

मनमें बडीभारी पीड़ाहोगी ॥ २९ ॥ पाण्डवोंमें मुख्य श्वेत घोड़ों वाले गुरु अर्जुनसे मैंने जो विद्या सीखी है उसको मैं आज दिखाऊँगा ॥ ३० ॥ आज मेरे वाणसे मरेहुए बड़े २ योधाओं को देखकर राजा दुर्योधनको बड़ा सन्ताप होगा ॥ ३१ ॥ आज जब मैं फुर्ती से वाण छोडूँगा, तब कौरवोंको मेरा धनुष बनैटी की समान घूमताहुआ ही दीखेगा ॥ ३२ ॥ जब मेरे वाणोंके प्रहारसे वारम्वार लोहूके फुहारे छोडतेहुए सैनिक टपाटप गिरेंगे, तब दुर्योधन वडा दुःखी होगा ॥ ३३ ॥ आज जब मैं क्रोधमें भरकर चुने२योधाओंको मारूँगा, उस समय दुर्योधन अपने मनमें सोचेगा कि—जगत्में यह भी एक दूसरा अर्जुन ही है ॥३४॥ जब मैं महारणमें सहस्रों राजाओंको मार डालूँगा, तब उनको देखकर दुर्योधनको वडा ही पश्चात्ताप होगा ॥ ३५ ॥ पाण्डवोंके ऊपर मेरी कितनी भक्ति है और कितना स्नेह है, इसको मैं आज युद्धमें राजाओंके सामने सहस्रों

कौरवाः । सञ्जय उवाच । एवमुक्तस्तदा सूतः शिक्षितान् साधुवाहिनः ॥ ३७ ॥ शशाङ्कसन्निकाशान् वै वाजिनो व्यनुदत् भृशम् । तेपिबन्त इवाकाशं युयुधानं हयोत्तमाः ॥ ३८ ॥ प्रापयन् यवनान् शीघ्रं मनःपवनरंहसः । सात्यकिं ते समासाद्य पृतनास्वनिवर्त्तिनम् ॥ ३९ ॥ बहवो लघुहस्ताश्च शरवर्षैरवाकिरन् । तेषामिषूंस्तथास्त्राणि वेगवान्नतपर्वभिः ॥ ४० ॥ अच्छिनत् सात्यकी राजन् नैनं ते प्राप्नुवन् शराः । रुक्मपुंखैः सुनिशितैर्गार्द्धपत्रैरजिह्मगैः ॥४१॥ उच्चकर्त्त शिरांस्युग्रो यवनानां भुजानपि । शैक्यायसानि वर्माणि कांस्यानि च समन्ततः ॥ ४२ ॥ भित्त्वा देहांस्तथा तेषां शरा जग्मुर्महीतलम् । ते हन्यमाना वीरेण म्लेच्छाः सात्यकिना रणे ॥ ४३ ॥ शतशोऽभ्यपतंस्तत्र व्यसवो वसुधातले ।

योधाओंको मारकर दिखाऊँगा ॥ ३६ ॥ उस समय कौरव मेरे बल, वीर्य और कृतज्ञताको जानेंगे, सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! सात्यकिके इसप्रकार कहचुकने पर सारथिने चन्द्रमाकी समान उज्ज्वल, रथको भलीप्रकार खेंचनेवाले और चतुर घोडोंको बड़े वेगसे हाँका, वे मन और पवनकी समान वेगवाले घोड़े मानो आकाशको पीजायँगे इसप्रकार मुख उठाकर दौडनेलगे और क्षणभरमें उन्होंने सात्यकिको यवनोंके पास पहुँचादिया, पीछेको न हटनेवाले सात्यकिको सेनाओंमें घुसते देखकर वे फुर्तीले हाथवाले यवन बाणोंकी वर्षा करनेलगे, हे राजन ! परन्तु फुर्तीले सात्यकिने उनके अस्त्रोंको नमीहुई गाँठवाले बाण मारकर काट डाला, अतः वे बाण उसके पास तक न पहुँचसके, तदनन्तर सात्यकिने सुवर्णकी पूँछवाले, तेज, गीधके परलगे और सीधे जानेवाले बाण मारकर यवनोंकी भुजाएँ और शिरोंको उडाना आरम्भ करदिया, वे बाण उनके लाखर लोहेके और काँसीके कवचोंको तथा शरीरोंको फोडकर पृथ्वीमें घुसगए, वीरवर

सुपूर्णायतमुक्तैस्तानव्यवच्छिन्नपिण्डितैः ॥ ४४ ॥ पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च विभेद यवनाञ्छरैः । काम्वोजानां सहस्रैश्च शकानाञ्च विशाम्पते ॥ ४५ ॥ शवराणां किरातानां वर्वराणां तथैव च । अगम्यरूपां पृथिवीं मांसशोणितकर्दमाम् ॥ ४६ ॥ कृतवांस्तत्र शैनेयः क्षपयंस्तावकं बलम् । दस्यूनां स शिरस्त्राणैः शिरोभिर्लूनमूर्द्धजैः ॥ ४७ ॥ दीर्घकूर्चैर्मही कीर्णा विवर्हैरण्डजैरिव । रुधिरोक्षितसर्वाङ्गैस्तैस्तदायोधनं वभौ ॥ ४८ ॥ कवन्धैः संवृतं सर्वं ताम्राभ्रैः खमिवावृतम् । वज्राशनिसमस्पर्शैः सुपर्वभिरजिह्मगैः ॥ ४९ ॥ ते सात्वतेन निहताः समावव्रुर्वसुन्धराम् । अल्पावशिष्टाः सम्भग्नाः कृच्छ्रप्राणा विचेतसः ॥ ५० ॥ जिताः संख्ये महाराज युयुधानेन दंशिताः । पार्ष्णिभिश्च कशाभिश्च ताडयन्त-

---

सात्यकिके मारेहुए वहुतसे म्लेच्छ प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिरपड़े, सात्यकि रणमें धनुषको कान तक खेंचकर सटासट वाण मारता था और एक२ झपाटेमें पाँच२, छः२, सात२ और आठ२ यवनोंको मारता था, हे राजन् ! सात्यकिने सहस्रों काम्वोज, शक, शवर, किरात और वर्वरोंको मारडाला, इसप्रकार तुम्हारी सेनाका क्षय करतेहुए सात्यकिने उनके मांस और रक्तकी कीचसे पृथ्वीको अगम्य करदिया३७–४६ पंखरहित पक्षियों से ढकी हो इसप्रकार चोरोंके मुँडे शिर और वड़ी २ डाढ़ी और मूछोंवाले शिरोंसे भरी रणभूमि अपूर्व शोभा पारही थी जिनके सकल अंगोंमें रुधिर लगरहा था ऐसे धडोंसे ढकाहुआ रणाङ्गण लाल२ वादलोंसे घिरे आकाशकी समान शोभा पारहा था, सात्यकिने वज्रकी समान स्पर्शवाले अच्छी गाँठवाले और सीधे जानेवाले वाण मारकर योधाओंको प्राणहीन कर भूमिमें सुला दिया, शेष वचेहुए योधा प्राणोंके संकटमें पडजानेसे भयभीत हो रणमेंसे भागनेलगे ॥४७–५०॥ हे महाराज ! इसप्रकार सात्यकि

स्तुरंगमान् ॥ ५१ ॥ जवमुत्तममास्थाय सर्वतः प्राद्रवन् भयात् । काम्बोजसैन्यं विद्राव्य दुर्जयं युधि भारत ॥ ५२ ॥ यवनानाञ्च तत्सैन्यं शकानाञ्च महद्बलम् । ततः स पुरुषव्याघ्रः सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ५३ ॥ प्रविष्टस्तावकान् जित्वा सूतं याहीत्यचोदयत् । तच्चास्य समरे कर्म दृष्ट्वान्यैरकृतं पुरा ॥ ५४ ॥ चारणाः सह गन्धर्वाः पूजयाञ्चक्रिरे भृशम् । तं यान्तं पृष्ठगोप्तारमर्जुनस्य विशाम्पते । चारणाः प्रेक्ष्य संहृष्टास्त्वदीयाश्चाभ्यपूजयन् ॥५५॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि यवनपराजये
एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

सञ्जय उवाच । जित्वा यवनकाम्बोजान् युयुधानस्ततोऽर्जुनम् । जगाम तव सैन्यस्य मध्येन रथिनाम्वरः ॥ १ ॥ चारुदंष्ट्रो नर-

---

के जीतेहुए वे कवचधारी सैनिक भयभीत हो पैरोंकी एड़ी और चाबुकोंसे घोड़ोंको मार२कर कर बड़े वेगसे भागनेलगे हे भारत ! सात्यकि दुर्जय काम्बोज, यवन और शकोंकी वडीभारी सेनाको भगाकर तुम्हारे पुत्रोंकी सेनामें घुसगया और सत्यपराक्रमी, पुरुषव्याघ्र सात्यकि उनको भी जीतकर सारथिसे कहने लगा, कि—आगेको रथ चला, इस समय गन्धर्व और चारण, जैसा पहिले दूसरे किसीने नहीं किया था, ऐसे सात्यकिके कर्म को देखकर उसकी बहुत ही प्रशंसा करनेलगे, हे राजन् ! अर्जुनके पृष्ठरक्षक सात्यकिको अर्जुनके समीप पहुँचा देखकर चारण और तुम्हारे सैनिक भी उसकी बड़ा प्रशंसा करने लगे ॥५१-५५॥ एकसौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११९ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकि—काम्बोज और यवनोंको जीतकर तुम्हारो सेनाके बीचमें होता हुआ अर्जुनके पास जानेलगा ॥ १ ॥ मनुष्योंमें व्याघ्र समान,

व्याघ्रो विचित्रकवचध्वजः । मृगं व्याघ्र इवाजिघ्रंस्तव सैन्यमभीषयत् ॥ २ ॥ स रथेन चरन्मार्गान् धनुरभ्रामयद् भृशम् । रुक्मपृष्ठं महावेगं रुक्मचन्द्रकसंकुलम् ॥ ३ ॥ रुक्माङ्गदशिरस्त्राणो रुक्मवर्मसमावृतः । रुक्मध्वजधनुः शूरो मेरुशृंगमिवाबभौ ॥ ४ ॥ स धनुर्मण्डलं संख्ये तेजोभास्कररश्मिवान् । शरदीवोदितः सूर्यो नृसूर्यो विरराज ह ॥ ५ ॥ वृषभस्कन्धविक्रान्तो वृषभाक्षो नरर्षभः। तावकानां बभौ मध्ये गवां मध्ये यथा वृषः॥६॥मत्तद्विरदसङ्काशं मत्तद्विरदगामिनम् । प्रभिन्नमिव मातङ्गं यूथमध्ये व्यवस्थितम् ॥७॥ व्याघ्रा इव जिघांसन्तस्त्वदीयाः समुपाद्रवन् । द्रोणानीकमतिक्रांतं भोजानीकञ्च दुस्तरम् ॥ ८ ॥ जलसन्धार्णवं तीर्त्वा काम्बोजानाञ्च वाहिनीम् । हार्दिक्यमकरान्मुक्तं तीर्णं वै सैन्यसागरम् ९

विचित्र कवच और ध्वजावाला सात्यकि, सुन्दर डाढवाला सिंह जैसे मृगोंको सूँघ २ कर डराता है। तैसे ही तुम्हारी सेनाकी गन्ध लेकर उसको डरानेलगा ॥ २ ॥ रथमें बैठकर मार्गमें चलता हुआ सात्यकि सुवर्णकी बहुतसी फुल्लिएँ और पृष्ठवाले धनुषको बहुत ही घुमारहा था ॥ ३ ॥ सुवर्णके बाजूबन्द और टोपवाला सुवर्णके कवचको पहरे तथा सुवर्णकी ध्वजा और धनुषवाला सात्यकि सुमेरु पर्वतके शृङ्गकी समान प्रतीत होता था ॥ ४ ॥ धनुषरूपी मण्डलवाला, तेजोरूपी सूर्यकी किरणोंवाला, युद्धरूप शरद् ऋतुमें प्रचण्ड हुआ मनुष्योंमें सूर्यकी समान सात्यकिरूप सूर्य शोभा पानेलगा॥५॥ वृषभकी समान कन्धे और वृषभ की समान नेत्रोंवाला पराक्रमी सात्यकि तुम्हारी सेनाके बीचमें खडा हुआ ऐसा प्रतीत होता था जैसे गौओंमें वृषभ खडा हो ॥ ६ ॥ सात्यकी द्रोण, भोज, जलसन्ध और काम्बोजोंकी सेनाके पार होकर, कृतवर्मारूप मगरके चुङ्गलमेंसे छूटकर, कौरवोंकी सेनासागरके पार हो मदमत्त हाथीकी समान या मन्द २ गमन करने

परिवव्रुः सुसंक्रुद्धास्त्वदीयाः सात्यकिं रथाः । दुर्योधनश्चित्रसेनो दुःशासनविविंशती ॥ १० ॥ शकुनिर्दुःसहश्चैव युवा दुर्धर्षणः क्रथः । अन्ये च बहवः शूराः शस्त्रवन्तो दुरासदाः ॥ ११ ॥ पृष्ठतः सात्यकिं यान्तमन्वधावन्नमर्षिणः । अथ शब्दो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ॥ १२ ॥ मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि । तानभिद्रवतः सर्वान् समीक्ष्य शिनिपुङ्गवः ॥ १३ ॥ शनैर्याहीति यन्तारमब्रवीत् प्रहसन्निव । इदमेतत्समुद्धूतं धार्त्तराष्ट्रस्य यद्बलम् ॥१४॥ मामेवाभिमुखं तूर्णं गजाश्वरथपत्तिमत् । नादयन् वै दिशः सर्वा रथघोषेण सारथे ॥ १५ ॥ पृथिवीञ्चान्तरिक्षञ्च कम्पयन्सागरानपि । एतद्बलार्णवं सूत वारयिष्ये महारणे १६

वाले मद टपकातेहुए हाथीकी समान तुम्हारे योधाओंकी टोली के बीचमें जाकर खडा होगया, उसके मारनेकी इच्छासे तुम्हारे महारथी पुत्र दुर्योधन, दुःशासन, चित्रसेन, विविंशति, शकुनि, दुःशासन, युवा दुर्धर्षण तथा दूसरे भी बहुतसे शस्त्रधारी तुम्हारे पक्षके महादुर्धर्ष योधाओंको साथमें ले क्रोधमें भरकर सात्यकि को चारों ओरसे घेरने लगे, परन्तु सात्यकि बढता ही गया, तब वे शूर क्रोधमें भरकर उसके पीछे दौडनेलगे, हे राजन् ! जैसे पूर्णिमाके दिन वायुके झपाटेसे समुद्रमें घरघराहटका शब्द होनेलगता है, तैसे ही तुम्हारी सेनामें बडाभारी कोलाहल होने लगा, शिनिपुङ्गव सात्यकिने उन सबको अपने पीछे चढकर आते देखकर सारथिसे मुस्कराकर कहा, कि–हे सारथी! धीरे२ चला, हे सारथी ! हाथी, घोड़े, और पैदलोंवाला रथोंकी घरघराहटसे सब दिशाओं को प्रतिध्वनित करताहुआ और आकाश, समुद्र तथा पृथ्वीको कँपाता हुआ कौरवोंका महान् सेनादल झपाटेके साथ मेरी ओरको ही दौड़ा चला आरहा है, परन्तु हे सारथी! जैसे पूर्णिमाके दिन उफन कर आगेको बढतेहुए समुद्रको किनारा

पौर्णमास्यामिवोद्धृतं वेलेव मकरालयम् । पश्य मे सूत विक्रान्तमिन्द्रस्येव महामृधे ॥ १७ ॥ एष सैन्यानि शत्रूणां विधमामि शितैः शरैः । निहनानाहवे पश्य पदात्यश्वरथद्विपान् ॥ १८ ॥ मच्छरैरग्निसंकाशैर्विद्धदेहान् सहस्रशः । इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सात्यकेरमितौजसः ॥ १९ ॥ समीपे सैनिकास्ते तु शीघ्रमीयुर्युयुत्सवः । जह्याद्रवस्व तिष्ठेति पश्य पश्येति वादिनः ॥ २० ॥ तानेवं ब्रुवतो वीरान् सात्यकिर्निशितैः शरैः । जघान त्रिशतानश्वान् कुञ्जरांश्च चतुःशतान् ॥ २१ ॥ स सम्प्रहारस्तुमुलस्तस्य तेषाञ्च धन्विनाम् । देवासुररणप्रख्यः प्रावर्त्तत जनक्षयः ॥ २२ ॥ मेघजालनिभं सैन्यं तव पुत्रस्य मारिष । प्रत्यगृह्णाच्छिनेः पौत्रः शरैराशीविषोपमैः ॥ २३ ॥ प्रच्छाद्यमानः समरे शरजालैः स वीर्यवान् । असम्भ्रमं

पीछेको ढकेल देता है, तैसे ही मैं भी महारणमें इस सेनारूपी समुद्रको पीछेको ढकेलदूँगा, हे सूत ! आज तू इस महासंग्राम में इन्द्रकी समान मेरे पराक्रमको देखना ॥ ७-१७ ॥ इन शत्रुओंकी सेनाको मैं तीक्ष्ण बाणोंसे बींधडालूँगा और तू आज मेरे अग्निकी समान तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे सहस्रों पैदल, हाथी घोड़े और रथोंको युद्धमें छिन्न भिन्न हुए देखेगा, इसप्रकार बातें हो रही थीं, कि—मारो २ पकड़ो २, खडारह २ देखो २ यह सात्यकि खड़ा है इसप्रकार कहतेहुए युद्धकी इच्छावाले वे सैनिक जरा देरमें ही सात्यकिके पास पहुँचगए ॥ १८-२० ॥ इसप्रकार कहतेहुए उन शूरवीरोंको सात्यकिने तीक्ष्ण बाणोंसे मारना आरम्भ करदिया और तीनसौ घोडे सवार तथा चारसौ हाथीसवारोंको मारडाला ॥ २१ ॥ इन वीरोंका तथा सात्यकिका वह जनसंहारकारी युद्ध देवासुरसंग्रामकी समान बडी प्रचण्डताके साथ होनेलगा ॥ २२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रकी मेघमण्डलकी समान खडीहुई सेनाके ऊपर सात्यकि विषैले

महाराज तावकानवधीद्बहून् ॥२४॥ आश्चर्यं तत्र राजेन्द्र सुमहद्दृष्टवानहम्। न मोघः सायकः कश्चित् सात्यकेरभवत् प्रभो ॥२५॥ रथनागाश्वकलिलः पदात्यूर्मिसमाकुलः। शैनेयवेलामासाद्य स्थितः सैन्यमहार्णवः॥२६सम्भ्रान्तनरनागाश्वमावर्त्तत मुहुर्मुहुः। तत्सैन्यमिषुभिस्तेन वध्यमानं समन्ततः ॥ २७ ॥ बभ्राम तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव। पदातिनं रथं नागं सादिनं तुरगन्तथा ॥ २८ ॥ अविद्धं तत्र नाद्राक्षं युयुधानस्य सायकैः। न तादृक् कदनं राजन् कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ॥२९॥ यादृक् क्षयमनीकानामकरोत्सात्यकिर्नृप। अत्यर्जुनं शिनेः पौत्रो युध्यते पुरुषर्षभः॥ ३० ॥ वीतभीर्लाघवोपेतः कृतित्वं सम्प्रदर्शयन्। ततो दुर्योधनो राजा सात्व-

---

सर्पोंकी समान बाणोंकी वर्षा करनेलगा ॥ २३ ॥ हे महाराज ! तुम्हारे योधाओंने भी युद्धमें बाणोंकी वृष्टि करके सात्यकिको ढक दिया परन्तु सात्यकि जरा भी न घबडाकर तुम्हारे बहुतसे सैनिकोंका संहार करनेलगा ॥ २४ ॥ हे राजेन्द्र ! तहाँ मैंने एक बडाभारी अचरज देखा, कि-हे प्रभो ! सात्यकिका एक भी बाण खाली नहीं जाता था ॥ २५ ॥ रथ, हाथी तथा घोडोंसे भयङ्कर, पैदलरूपी लहरोंसे भराहुआ, कौरवसेनारूप महासागर, सात्यकिरूप किनारेसे टकराकर रुकगया ॥ २६ ॥ जब सात्यकिने उस सेनाको चारों ओरसे बाण बरसाकर मारना आरम्भ करदिया तब तो उस सेनाके मनुष्य, हाथी और घोडे घबडाकर बार बार भागनेलगे ॥२७॥ उस समय वह सेना जाडेसे काँपती हुई गौकी समान काँपतीहुई भागनेलगी, उस समय मैंने ऐसा कोई पैदल, रथ, हाथी घोडा अथवा इनका सवार नहीं देखा, कि-जो सात्यकिके बाणोंसे घायल न हुआ हो, हे राजन् ! सात्यकिने हमारी सेनाका जितना संहार किया उतना संहार तो अर्जुनने भी नहीं किया था, पुरुषोंमें श्रेष्ठ सात्यकि निडर हो

तस्य त्रिभिः शरैः ॥ ३१ ॥ विव्याध सूतं निशितैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् । सात्यकिञ्च त्रिभिर्विध्वा पुनरष्टाभिरेव च ॥ ३२॥ दुःशासनः षोडशभिर्विव्याध शिनिपुङ्गवम् । शकुनिः पञ्चविंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः ॥३३॥ दुःसहः पञ्चदशभिर्विव्याधोरसि सात्यकिम् । उत्स्मयन् वृष्णिशार्दूलस्तथा वाणैः समाहतः ॥ ३४ ॥ तानविध्यन्महाराज सर्वानेव त्रिभिस्त्रिभिः । गाढविद्धानरीन् कृत्वा मार्गणैः सोतितेजनैः ॥ ३५ ॥ शैनेयः श्येनवत्संख्ये व्यचरल्लघुविक्रमः । सौवलस्य धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च ॥ ३६ ॥ दुर्योधनं त्रिभिर्वाणैरभ्यविध्यत् स्तनान्तरे । चित्रसेनं शतेनैव दशभिर्दुःसहं तथा ॥ ३७ ॥ दुःशासनन्तु विंशत्या विव्याध शिनिपुङ्गवः । अथान्यद्धनुरादाय श्यालस्तव विशाम्पते ॥३८॥ अष्टाभिः

फुर्तीसे अपनी कृतार्थता दिखाताहुआ अर्जुनसे भी बढ़कर युद्ध करनेलगा इतनेमें ही राजा दुर्योधनने तीन वाणोंसे सात्यकिके सारथिको घायल करदिया और चार तेज वाण मारकर सात्यकिके चारों घोड़ोंको लोहूलुहान करदिया और सात्यकिको भी पहिले तीन और पीछेसे आठ वाण मारकर घायल करदिया २८–३२ शिनिपुङ्गव सात्यकिके दुःशासनने सोलह, शकुनिने पच्चीस और चित्रसेनने पाँच वाण मारे ॥ ३३ ॥ और दुःसहने पन्द्रह वाण सात्यकिकी छातीमें मारे इसप्रकार वाणोंकी चोट खानेपर हे महाराज ! वृष्णिसिंह सात्यकि मुस्कराया और उसने उन सबोंके तीन २ वाण मारे फुर्तीके साथ पराक्रम करनेवाला सात्यकि इसप्रकार बड़े ही तेज वाणोंसे शत्रुओंको बहुत ही घायल करके सेनामें बाजकी समान घूमनेलगा, उसने शकुनिके धनुष और चपड़ेके मोजोंको काटडाला; फिर तीन वाण दुर्योधनकी छातीमें मारे फिर शिनिपुङ्गव सात्यकिने चित्रसेनको सौ, दुःसहको दश और दुःशासनको दश वाण मारकर बींधडाला, हे महा-

सात्यकिं विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः । दुःशासनश्च दशभिर्दुःसहश्च त्रिभिः शरैः ॥३९॥ दुर्मुखश्च द्वादशभी राजन् विव्याध सात्यकिम् । दुर्योधनस्त्रिसप्तत्या विध्वा भारत माधवम् ॥ ४० ॥ ततोऽस्य निशितैर्बाणैस्त्रिभिर्विव्याध सारथिम् । तान् सर्वान् सहितान् शूरान् यतमानान्महारथान् ॥ ४१ ॥ पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सात्यकिः । ततः स रथिनां श्रेष्ठस्तव पुत्रस्य सारथिम् ॥ ४२ ॥ आजघानाशु भल्लेन स हतो न्यपतद्भुवि । पतिते सारथौ तस्मिंस्तव पुत्ररथः प्रभो ॥ ४३ ॥ वातायमानैस्तैरश्वैरपानीयत सङ्गरात् । ततस्तव सुतो राजन् सैनिकाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥ राज्ञो रथमभिप्रेक्ष्य विद्रुताः शतशोभवन् । विद्रुतं तत्र तत्सैन्यं दृष्ट्वा भारत सात्यकिः ॥ ४५ ॥ अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णै रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः । विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि

राज! फिर तुम्हारे साले (शकुनि)ने दूसरा धनुष हाथमें लिया और पहिले आठ फिर पाँच बाणोंसे सात्यकिको बींधडाला, और हे राजन्! दुःशासनने दश, दुःसहने तीन और हे राजन्! दुर्मुखने बारह बाण सात्यकिके मारे हे भारत! तदनन्तर दुर्योधनने सात्यकिके तिहत्तर बाण मारे फिर तीन-तेज बाण मार कर उसके सारथिको घायल करदिया, तदनन्तर सात्यकिने इन प्रयत्न करतेहुए सब महारथियोंके पाँच २ बाण मारे; तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने फुरतीसे दुर्योधनके सारथिके भल्ल बाण मारा उससे वह मरकर भूमिमें गिरगया, सारथिके गिरजाने पर हे प्रभो! तुम्हारे पुत्रके रथको घोड़े वायुवेगसे भगातेहुए युद्धभूमिसे बाहर लेगए हे राजन्! उस समय तुम्हारे पुत्रके रथको रणमेंसे भागता हुआ देखकर तुम्हारे पुत्र तथा सहस्रों सैनिक भी भागने लगे, और हे भारत! सात्यकिने सेनाको भागतीहुई देखकर उसके ऊपर सुवर्णकी पूँछवाले और शिलापर घिसेहुए बाण

सहस्रशः ॥ ४६ ॥ प्रययौ सात्यकी राजन् श्वेताश्वस्य रथं प्रति। तं शरानाददानञ्च रक्षमाणञ्च सारथिम्। आत्मानं पालयानं च तावकाः समपूजयन् ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे
दुर्योधनपलायने विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

धृतराष्ट्र उवाच। सम्प्रमृद्य महत्सैन्यं यान्तं शैनेयमर्जुनम्। निर्ह्रीका मम ते पुत्राः किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥ कथं वैषां तदा युद्धे धृतिरासीन्मुमूर्षताम्। शैनेयचरितं दृष्ट्वा यादृशं सव्यसाचिनः ॥ २ ॥ किन्नु वक्ष्यन्ति ते क्षात्रं ते च युद्धपराजिताः। कथञ्च सात्यकिर्युद्धे व्यतिक्रान्तो महायशाः ॥ ३ ॥ कथञ्च मम पुत्राणां जीवतां तत्र सञ्जय। शैनेयोऽभिययौ युद्धे तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ४ ॥ अत्यद्भुतमिदं तात त्वत्सकाशात् शृणो-

---

वरसाने आरम्भ करदिये, हे राजन्! इसप्रकार तुम्हारी सहस्रों सेनाओंको भगाकर सात्यकि श्वेत घोडोंवाले अर्जुनके रथकी ओरको चलागया, इस समय रणमें वाणोंको भाथेमेंसे खेंचते, धनुष पर चढाते और छोडते तथा अपनी और सारथिकी रक्षा करतेहुए सात्यकिको देखकर तुम्हारे योधा उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३३—४७ ॥ एकसौ बीसवाँ अध्याय समाप्त १२०

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे संजय! वडीभारी सेनाका संहार करके सात्यकिको अर्जुनके रथकी ओरको जाते देखकर मेरे निर्लज्ज पुत्रोंने क्या किया? ॥ १ ॥ अरे! उन मृतप्राय हुए मेरे पुत्रोंने जब सात्यकिके चरित्रको भी अर्जुनकी समान पाया तब उनको किसप्रकार धीरज हुआ? ॥ २ ॥ रणमें हारेहुए मेरे पुत्र क्षत्रियोंके सामने क्या कहेंगे, कि—महायशस्वी सात्यकि हमको इसप्रकार जीतकर चलागया ॥ ३ ॥ हे संजय! यह तो वता, कि—मेरे पुत्रोंके जीवित रहतेहुए भी सात्यकि आगेको

म्यहम् । एकस्य बहुभिःसार्धं शत्रुभिस्तैर्महारथैः ॥ ५ ॥ विपरीतमहं मन्ये मन्दभाग्यं सुतं प्रति । यत्रावध्यन्त समरे सात्वतेन महारथाः ॥ ६ ॥ एकस्य हि न पर्याप्तं यत्सैन्यं तस्य सञ्जय । क्रुद्धस्य युयुधानस्य सर्वे तिष्ठन्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥ निर्जित्य समरे द्रोणं कृतिनश्चित्रयोधिनम् । यथा पशुगणान् सिंहस्तद्वद्धन्ता सुतान्मम ॥ ८ ॥ कृतवर्मादिभिः शूरैर्यत्तैर्बहुभिराहवे । युयुधानो न शकितो हन्तुं यत्पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥ नैतदीदृशकं युद्धं कृतवांस्तत्र फाल्गुनः । यादृशं कृतवान् युद्धं शिनेर्नप्ता महायशाः ॥ १० ॥ सञ्जय उवाच । तव दुर्मन्त्रिते राजन् दुर्योधनकृतेन च । शृणुष्वावहितो भूत्वा यत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ ११ ॥ ते पुनः संन्यव-

---

कैसे बढ़ा चलागया ॥ ४ हे तात! मैं तुमसे यह अति आश्चर्यकी बात सुनरहा हूँ कि—वह सात्यकि अकेला ही बहुतसे महारथियों के साथ लडा था ॥ ५ ॥ मैं अपने पुत्रोंके भाग्यको वडा ही पोच समझता हूँ, कि—समरमें अकेले सात्यकिने महारथियोंको हरा दिया ॥ ६ ॥ हे संजय ! जब क्रोधमें भरे अकेले सात्यकिके लिये ही मेरी सेना पर्याप्त नहीं हुई तो सब पाण्डवोंके खड़े होने पर तो मेरी सेनाका पता भी नहीं लगेगा ॥ ७ ॥ विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेमें कुशल द्रोणको जीतकर तो वह मेरे पुत्रोंको ऐसे मारेगा जैसे सिंह पशुओंको मारता है ॥ ८ ॥ युद्धके लिये तयार होने पर कृतवर्मा आदि शूर वीर भी जिसको न मारसके वह पुरुषश्रेष्ठ निश्चय ही मेरे पुत्रोंको मारडालेगा ॥ ९ ॥ यह बात वास्तवमें ठीक है, कि—ऐसा युद्ध अर्जुनने भी नहीं किया कि—जैसा युद्ध महायशस्वी सात्यकिने किया है ॥ १० ॥ सञ्जय बोला, कि—हे भरतवंशी राजन् ! तुम्हारे खोटे विचार तथा दुर्योधनके दुष्कर्मोंका यह परिणाम है. अब जो मैं तुमसे कहता हूँ उस को तुम सावधान होकर सुनो ॥ ११ ॥ (भागते हुओंमेंसे दुर्यो-

र्त्तन्त कृत्वा संशप्तका मिथः । परां युद्धे मतिं क्रूरां तत्र पुत्रस्य शासनात् ॥ १२ ॥ त्रीणि सादिसहस्राणि दुर्योधनपुरोगमाः । शककाम्वोजवाल्हीका यवनाः पारदास्तथा ॥ १३ ॥ कुलिंदास्तङ्गणाम्वष्ठाः पैशाचाश्च सवर्वराः पार्वतीयाश्च राजेन्द्र क्रुद्धाः पाषाणपाणयः ॥ १४ ॥ अभ्यद्रवंस्ते शैनेयं शलभाः पावकं यथा। युक्ताश्च पार्वतीयानां रथाः पाषाणयोधिनाम् ॥ १५ ॥ शूराः पञ्चशता राजन् शैनेयं समुपाद्रवन् । ततो रथसहस्रेण महारथशतेन च ॥१६॥ द्विरदानां सहस्रेण द्विसाहस्रैश्च वाजिभिः । शरवर्षाणि मुञ्चन्तो विविधानि महारथाः ॥ १७ ॥ अभ्यद्रवंत शैनेयमसंख्येयाश्च पत्तयः । तांश्च सञ्चोदयन् सर्वान् हतैनमिति भारत ॥१८॥ दुःशासनो महाराज सात्यकिं पर्यवारयत् । तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं महत् ॥ १९ ॥ यदेको वहुभिः सार्द्धम-

---

धनकी आज्ञासे संशप्तक नामके योधा शत्रुके सामने लडनेका आपसमें वडा पक्का और क्रूर विचार करके फिर लौट पड़े१२ हे राजेन्द्र ! इस समय जिनमें दुर्योधन आगे था ऐसे तीन सहस्र घुडसवार और शक, कम्वोज, वाल्हीक, यवन, पारद, कुलिन्द, तङ्गण, अम्बष्ठ, पिशाच, वर्वर तथा क्रोधमें भरेहुए पर्वतवासी योधा हाथोंमें पत्थर ले भुनगे जैसे दीपककी ओरको लपकते हैं तैसे, ही सात्यकिके पीछे दौड़े, हे राजन् ! पत्थरोंसे लडनेवाले पहाडी योधाओंके पाँच सौ रथी सात्यकिके पीछे दौड़े सहस्रों रथी, सैंकडों महारथी, एक सहस्र हाथीसवार और दो सहस्र घुडसवार तथा अगणित पैदल नाना प्रकारके अस्त्रोंको छोडते हुए, सात्यकिके पीछे दौड़े, हे भरतवंशी महाराज ! सात्यकिको मारडालो २ इसप्रकार सवको उत्तेजित करतेहुए दुःशासन ने सात्यकिको घेरलिया, उस समय हमने सात्यकिके अद्भुत पराक्रमको देखा, कि वहुतोंके साथ वह विना घवड़ाये

सम्भ्रान्तमयुध्यत । अवधीच्च रथानीकं द्विरदानाञ्च तद्बलम् २० सादिनश्चैव तान् सर्वान् दस्यूनपि च सर्वशः । तत्र चक्रैर्विमथितैर्भग्नैश्च परमायुधैः ॥२१॥ अक्षैश्च बहुधा भग्नैरीषादंडकबन्धुरैः । कुञ्जरैर्मथितैश्चापि ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २२ ॥ वर्मभिश्च तथानीके व्यवकीर्णा वसुन्धरा । स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैरनुकर्षैश्च मारिष ॥ २३ ॥ संछन्ना वसुधा तत्र शरदि द्यौर्ग्रहैरिव । गिरिरूपधराश्चापि पतिताः कुञ्जरोत्तमाः ॥ २४ ॥ अञ्जनस्य कुले जाता वामनस्य च भारत । सुमतीककुले जाता महापद्मकुले तथा ॥ २५ ॥ ऐरावतकुले चैव तथान्येषु कुलेषु च । जाता दन्तिवरा राजन् शेरते बहवो हताः ॥ २६ ॥ वनायुजान् पार्वतीयान् काम्बोजान् बाल्हिकानपि । तथा हयवरान् राजन् निजघ्ने तव सात्यकिः॥२७॥ नानादेशसमुत्थांश्च नानाजातींश्च दन्तिनः। निजघ्ने तत्र शैनेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥ तेषु प्रकाल्य-

---

अकेला ही लडरहा था और रथसेना, हस्तिसेना, घुडसवार तथा सकल चोरोंका भी वध करता जाता था हे राजन् ! इस समय टूटे फूटे पहिये, अस्त्र, बहुतसे छुरे, टूटे फूटे ईषादण्ड, घायल हुए हाथी, गिरीहुई ध्वजायें, कवच, माला, गहने, वस्त्र रथके नीचेके भाग तथा मरेहुए योधाओंसे ढकीहुई रणभूमि नक्षत्रोंसे भरे आकाशकी समान शोभा पारही थी हे राजन् ! पर्वतकी समान आकारवाले अंजन, वामन, सुमतीक, महापद्म, ऐरावत तथा और २ कुलोंमें उत्पन्न हुए बहुतसे श्रेष्ठ श्रेष्ठ हाथी मरकर भूमि पर सोरहे थे ॥ १३-२६ ॥ हे राजन् ! वनायु, काम्बोज, बाल्हीक और पहाड़ोंमें उत्पन्नहुए उत्तम २ घोडोंको सात्यकिने मारडाला ॥ २७ ॥ सात्यकिने अनेकों देशोंमें उत्पन्नहुए और नाना जातियोंमें उत्पन्नहुए सैंकड़ों और सहस्रों हाथियोंका तहाँ संहार करडाला ॥ २८ ॥ सबका संहार

सम्भ्रान्तमयुध्यत । अवधीच्च रथानीकं द्विरदानाञ्च तद्बलम् २०
सादिनश्चैव तान् सर्वान् दस्यूनपि च सर्वशः । तत्र चक्रैर्विमथितैर्भग्नैश्च परमायुधैः ॥२१॥ अक्षैश्च बहुधा भग्नैरीषादंडकबन्धुरैः । कुञ्जरैर्मथितैश्चापि ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २२ ॥
वर्मभिश्च तथानीके व्यवकीर्णा वसुन्धरा । स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैरनुकर्षैश्च मारिष ॥ २३ ॥ संछन्ना वसुधा तत्र शरदि द्यौर्ग्रहैरिव । गिरिरूपधराश्चापि पतिताः कुञ्जरोत्तमाः ॥ २४ ॥ अञ्जनस्य कुले जाता वामनस्य च भारत । सुप्रतीककुले जाता महापद्मकुले तथा ॥ २५ ॥ ऐरावतकुले चैव तथान्येषु कुलेषु च । जाता
दन्तिवरा राजन् शेरते बहवो हताः ॥ २६ ॥ वनायुजान् पार्वतीयान् काम्बोजान् वाह्लिकानपि । तथा हयवरान् राजन् निजघ्ने
तव सात्यकिः ॥२७॥ नानादेशसमुत्थांश्च नानाजातींश्च दन्तिनः ।
निजघ्ने तत्र शैनेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥ तेषु प्रकाल्य-

अकेला ही लडरहा था और रथसेना, हस्तिसेना, घुडसवार तथा सकल चोरोंका भी वध करता जाता था हे राजन् ! इस समय टूटे फूटे पहिये, अस्त्र, बहुतसे छुरे, टूटे फूटे ईषादण्ड, घायल हुए हाथी, गिरीहुई ध्वजायें, कवच, माला, गहने, वस्त्र रथके नीचेके भाग तथा मरेहुए योधाओंसे ढकीहुई रणभूमि नक्षत्रोंसे भरे आकाशकी समान शोभा पारही थी हे राजन् ! पर्वतकी समान आकारवाले अंजन, वामन, सुप्रतीक, महापद्म, ऐरावत तथा और २ कुलोंमें उत्पन्न हुए बहुतसे श्रेष्ठ श्रेष्ठ हाथी मरकर भूमि पर सोरहे थे ॥ १३–२६ ॥ हे राजन् ! वनायु, काम्बोज, वाल्हीक और पहाड़ोंमें उत्पन्नहुए उत्तम २ घोडोंको सात्यकिने मारडाला ॥ २७ ॥ सात्यकिने अनेकों देशोंमें उत्पन्नहुए और नाना जातियोंमें उत्पन्नहुए सैकड़ों और सहस्रों हाथियोंका तहाँ संहार करडाला ॥ २८ ॥ सबका संहार

सात्यकिः प्रतिसन्धाय निशितान् प्राहिणोच्छरान् ॥ ३६ ॥ तामश्मवृष्टिं तुमुलां पार्वतीयैः समीरिताम् । चिच्छेदोरगसंकाशैः नाराचैः शिनिपुङ्गवः ॥ ३७ ॥ तैरश्मचूर्णैर्दीप्यद्भिः खद्योतानामिव व्रजैः । प्रायः सैन्यान्यहन्यत हाहाभूतानि मारिष ॥ ३८ ॥ ततः पञ्चशतं शूराः समुद्यतमहाशिलाः । निकृत्तबाहवो राजन् निपेतुर्धरणीतले॥३९॥ पुनर्दश शताश्चान्ये शतसाहस्रिणस्तथा । सोपलैर्बाहुभिश्छिन्नैः पेतुरप्राप्य सात्यकिम् ॥ ४० ॥ पाषाणयोधिनः शूरान्यतमानानवस्थितान् । न्यवधीद्बहुसाहस्रान् तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१ ॥ ततः पुनर्व्यात्तमुखास्तेश्मवृष्टीः समन्ततः ।

ले सब दिशाओंको रोककर खड़े होगए ॥ ३५ ॥ शिलायुद्ध करनेकी इच्छासे आतेहुए उन योधाओंको सात्यकिने तीक्ष्ण बाणोंसे मारना आरम्भ करदिया ॥ ३६ ॥ पहाड़ी योधाओंकी फैंकीहुई पत्थरोंकी वर्षाको शिनिपुङ्गव सात्यकिने सर्पकी समान आकारके बाण मारकर छिन्न भिन्न करडाला ॥२७॥ हे राजन्! तुरन्त ही पटवीजनोंकी समान चमकतेहुए पत्थरोंके टुकडोंके गिरनेसे तुम्हारी सेनाएँ ही मरनेलगीं और बडाभारी हाहाकार मचगया ॥ ३८ ॥ हे राजन्! तदनन्तर जिन्होंने हाथमें शिलाएँ उठाली थीं ऐसे पाँचसौ वीरोंकी भुजाओंको सात्यकिने काटडाला और वे प्राणहीन हो पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ ३९ ॥ फिर सात्यकिने अपने ऊपर प्रहार करनेके लिये झपटकर आतेहुए सहस्रों तथा लाखों योधाओंके शिलासहित हाथोंको बाण मारकर काटडाला और वे सात्यकिके पास पहुँचे विना मार्गमें ही मर कर पृथ्वीमें लुढक पड़े ॥ ४० ॥ सात्यकिने पाषाणयोधी, युद्ध करनेका उद्योग करतेहुए उन सहस्रों शूर वीरोंको मारडाला, यह देखकर हमें बड़ा अचरज हुआ ॥ ४१ ॥ तदनन्तर दरद, तङ्गण, खस, लम्पाक और कुलिन्द-हाथमें लोहेके भाले ले मुख

अयोहस्ताः शूलहस्ता दरदास्तङ्गणाः खशाः ॥ ४२ ॥ लम्पाकाश्च कुलिन्दाश्च चिक्षिपुस्तांश्च सात्यकिः । नाराचैः प्रतिचिच्छेद प्रतिपत्तिविशारदः ॥४३॥ अद्रीणां भिद्यमानानामन्तरिक्षे शितैः शरैः । शब्देन प्राद्रवन् संख्ये रथाश्वगजपत्तयः ॥ ४४ ॥ अश्मचूर्णैरवाकीर्णा मनुष्यगजवाजिनः । नाशक्नुवन्नवस्थातुं भ्रमरैरिव दंशिताः ॥४५॥ हतशिष्टाः सरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डकाः। कुञ्जरा वर्जयामासुर्युयुधानरथं तदा ॥४६॥ ततः शब्दः समभवत् तव सैन्यस्य मारिष । माधवेनार्द्यमानस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ ४७ तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा द्रोणो यन्तारमब्रवीत् । एष सूत रणे क्रुद्धः सात्वतानां महारथः ॥ ४८ ॥ दारयन् बहुधा सैन्यं रणे चरति

फाडकर सात्यकिके ऊपर चढआए और वे भी उसके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करनेलगे, परन्तु शस्त्र चलानेमें कुशल सात्यकिने बाण मारकर उनकी बाणवृष्टियोंको छिन्न भिन्न करना आरम्भ करदिया ॥ ४२-४३ ॥ बाणोंने आकाशमें जा पत्थरोंके टुकड़े २ करने आरम्भ करदिये, तब तो उनके टूटनेके कड कड़ शब्दसे (भयभीत हो) रथ, घोड़े और पैदल रणमेंसे भागनेलगे ॥ ४४ ॥ मनुष्य घोड़े और हाथी, आकाशमेंसे गिरते हुए पत्थरोंकी मारसे, भौंरोंके काटेहुएसे रणमें खड़े न रहसके ॥ ४५ ॥ मरनेसे बचेहुए खूनसे लथडपथड तथा जिनके जिनके मस्तकोंकी हड्डियें फूट गईं थी वे हाथी भी उस समय सात्यकिके रथको छोडकर भागगए॥४६॥ हे राजन् ! उस समय सात्यकीकी मसलीहुई तुम्हारी सेनाका शब्द पूर्णिमाके दिन बढते हुए समुद्रके शब्दकी समान होरहा था ॥४७॥ उस तुमुल शब्दको सुनकर द्रोणने अपने सारथिसे कहा, कि-हे सूत ! सात्वतवंशी महारथी सात्यकि क्रोधमें भरकर रणमें कालकी समान हमारी सेनाका बहुधा संहार करता हुआ घूमरहा है, अतः हे

कालवत् । यत्रैष शब्दस्तुमुलस्तत्र सूत रथं नय ॥४९॥ पाषाणयोधिभिर्नूनं युयुधानः समागतः । तथा हि रथिनः सर्वे ह्रियन्ते विद्रुतैर्हयैः ॥५०॥ विशस्त्रकवचा रुग्णास्तत्र तत्र पतन्ति च । न शक्नुवन्ति यन्तारः संयन्तुं तुमुले हयान् ॥ ५१ ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा भारद्वाजस्य सारथिः । प्रत्युवाच ततो द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ५२ ॥ सैन्यं द्रवति चायुष्मन् कौरवेयं समन्ततः । पश्य योधान्रणे भग्नान् धावतो वै ततस्ततः ॥ ५३ ॥ इमे च संहता शूराः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ५३ ॥ त्वामेव हि जिघांसन्त आद्रवन्ति समन्ततः ॥ ५४ ॥ अत्र कार्यं समाधत्स्व प्राप्तकालमरिन्दम । स्थाने वा गमने वापि दूरं यातश्च सात्यकिः ॥ ५५ ॥ तथैवं वदतस्तस्य भारद्वाजस्य सारथेः ।

सूत ! जहाँ यह कोलाहल होरहा है, तहाँ मेरे रथको लेचल४९ निश्चय ही पत्थरोंसे लडनेवाले पहाड़ियोंके साथ ही सात्यकि का युद्ध होरहा है, इसलिये ही सब रथियोंको घोड़े तेजीसे भगाये लिये जारहे हैं ॥ ५० ॥ शस्त्र तथा कवचहीनहुए योधा घायल होकर चारों ओरको भागरहे हैं सारथि इस तुमुल युद्धमें घोडोंको रोक नहीं सकते और भडकेहुए घोडे जोरसे दौड रहे हैं इसका भी यही कारण है ॥ ५१ ॥ सारथिने द्रोणाचार्यकी इस बातको सुनकर सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणसे कहा कि-५२ हे आयुष्मन् ! देखो ! देखो ! कौरवोंकी सेना चारों ओरको भाग रही है तथा छिन्न भिन्न हुए योधा भी चारों ओर दौड रहे हैं ॥ ५३ ॥ और इधर ये शूरवीर पाँचाल राजे तुमको मारने की इच्छासे पाँडवोंके साथ इकट्ठे हो चारों ओरसे हमारे ऊपर चढे चले आरहे हैं ॥ ५४ ॥ अतः हे शत्रुनाशक ! यहाँ रहना चाहिये अथवा आगे वढना चाहिये इसका तुम समयोचित निर्णय कर मुझे आज्ञा दो और सात्यकि भी वहुत दूर पहुँचगया है५५

प्रत्यदृश्यत शैनेयो निघ्नन् बहुविधान्रथान् ॥ ५६ ॥ ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः । युयुधानरथं त्यक्त्वा द्रोणानीकाय दुद्रुवुः ॥ ५७ ॥ यैस्तु दुःशासनः सार्द्धं रथैः पूर्वं न्यवर्त्तत । ते भीतास्त्वभ्यधावन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकि-
प्रवेशे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

सञ्जय उवाच । दुःशासनरथं दृष्ट्वा समीपे पर्यवस्थितम् । भारद्वाजस्ततो वाक्यं दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ दुःशासन रथाः सर्वे कस्माच्चैते प्रविद्रुताः । कश्चित् क्षेमन्तु नृपतेः कच्चिज्जीवति सैन्धवः ॥ २ ॥ राजपुत्रो भवानत्र राजभ्राता महारथः । किमर्थं द्रवते युद्धे यौवराज्यमवाप्य हि ॥ ३ ॥ दासी जितासि द्यूते त्वं यथा कामचरी भव । वाससां वाहिका राज्ञो भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मे

द्रोणका सारथि यह कहरहा ही था कि—बहुतसे योधाओंका संहार करताहुआ सात्यकि दीखा ॥५६॥ और युयुधानके हाथसे मरेहुए तुम्हारे सैनिक सात्यकिके रथको छोड, द्रोणकी सेनाकी ओर भागे ॥ ५७ ॥ तथा जिन रथियोंके साथ दुःशासन पहिले सात्यकिसे लड़नेके लिये गया था वे रथी भी भयभीत हो द्रोणके रथकी ओर (शरणके लिये) दौडे ॥५८॥ एकसौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२१ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हेधृतराष्ट्र ! द्रोणने दुःशासनके रथको अपने समीप खड़ाहुआ देखकर उससे कहा कि—॥१॥ओ दुःशासन! यह सब रथी क्यों भाग रहे हैं? राजा दुर्योधनका तो कुछ बाल बाँका नहीं हुआ है ? सिंधुराज जयद्रथ भी जीवित है या नहीं ॥२॥ तुम राजपुत्र हो, राजाके भाई हो और महारथी हो तथा तुमको युवराजकी पदवी मिली है तब भी तुम युद्धमेंसे कैसे भागते हो३ "तू जुएमें जीतीहुई दासी है अतः हमारी इच्छाके अनुसार काम

मेव ॥ ४ ॥ न सन्ति पतयः सर्वे तेऽद्य पण्ढतिलाः समाः। दुःशासनैवं कस्मात्त्वं पूर्वमुक्त्वा पलायसे ॥ ५ ॥ स्वयं वैरं महत् कृत्वा पञ्चालैः पाण्डवैः सह। एकं सात्यकिमासाद्य कथं भीतोसि संयुगे ॥ ६ ॥ न जानीषे पुरा त्वन्तु गृह्णन्नक्षान् दुरोदरे। शरा ह्येते भविष्यन्ति दारुणाशीविषोपमाः ॥ ७ ॥ अप्रियाणां हि वचसां पाण्डवेषु विशेषतः। द्रौपद्याश्च परिक्लेशस्त्वन्मूलो ह्यभवत् पुरा ॥ ८ ॥ क्व ते मानश्च दर्पश्च क्व ते वीर्यं क्व गर्जितम्। आशीविषसमान् पार्थान् कोपयित्वा क्व यास्यसि ॥ ९ ॥ शोच्येयं भारती सेना राज्यं चैव सुयोधनः। यस्य त्वं कर्कशो भ्राता पलायनपरायणः ॥१०॥ ननु नाम त्वया वीर दीर्यमाणा

करे और मेरे बड़े भाईके कपड़े धोनेका काम कर पाण्डवोंमेंसे कोई भी पांडव तेरा पति नहीं हैं वे तो अब बिना तेलके तिलकेसे हैं अरे दुःशासन! पहिले द्रौपदीसे तूने ऐसी कड़ी २ बातें कहीं थीं अब फिर तू कौनसा मुख लेकर भागता है ॥ ५ ॥ तूने जो स्वयं ही सब पांचाल, और पाण्डवोंसे बडाभारी वैर ठाना था अब फिर अकेले सात्यकिके सामने ही तू कैसे डरगया ॥ ६ ॥ पहिले जुएमें पाशोंको पकडते समय तुझे यह खबर नहीं थी कि-ये फाँसे ही दारुण सर्पोंकी समान बाण बन जावेंगे ॥ ७ ॥ पहिले पांडवोंको अधिकतर तूने ही अप्रिय वचन सुनाए थे उस को तू भूलगया क्या? और द्रौपदीको बडाभारी क्लेश भी तेरे ही कारणसे पहुँचा था ॥ ८ ॥ तेरा वह मान वीर्य और गर्जना अब कहाँ चलीगई? अरे! पांडवोंको सर्पकी समान क्रोधित करके अब तू कहाँको भागा जाता है? ॥ ९ ॥ यह भरतवंशी राजाकी सेना, राज्य और दुर्योधन सब ही सोचने योग्य दशा में आपड़े हैं क्यों कि-तेरी समान कठोर हृदयका भाई ऐसे आपत्तिके समयमें भागनेको तयार होगया है ॥ १० ॥ हे वीर!

भयार्दिता । स्ववाहुबलमास्थाय रक्षितव्या ह्यनीकिनी ॥ ११ ॥ स त्वमद्य रणं हित्वा भीतो हर्षयसे परान् । विद्रुते त्वयि सैन्यस्य नायके शत्रुसूदन ॥ १२ ॥ कोन्यः स्थास्यति संग्रामे भीतो भीते व्यपाश्रये । एकेन सात्वतेनाद्य युध्यमानस्य तेन वै ॥१३॥ पलायने तव मतिः संग्रामाद्धि प्रवर्त्तते । यदा गाण्डीवधन्वानं भीमसेनञ्च कौरव ॥ १४ ॥ यमौ वा युधि द्रष्टासि तदा त्वं किं करिष्यसि । युधि फाल्गुनबाणानां सूर्याग्निसमवर्चसाम् ॥ १५ ॥ न तुल्याः सात्यकिशरा येषां भीतः पलायसे । त्वरितो वीर गच्छ त्वं गांधार्युदरमाविश १६ पृथिव्यां धावमानस्य नान्यत्पश्यामि जीवनम् । यदि तावत्कृता बुद्धिः पलायनपरायणा॥१७॥पृथिवी धर्म-

---

इस समय भयभीत हो भागतीहुई कौरव सेनाकी तुझे अपने बाहुबलसे रक्षा करनी चाहिये ॥११॥ परन्तु तू तो इस समय भयसे रणको छोडकर शत्रुओंको प्रसन्न कररहा है, हे शत्रुसूदन ! जब तू सेनाका नेता और अवलंब होताहुआ डरकर भाग जायगा ॥ ॥ १२ ॥ तब फिर भयभीतहुआ दूसरा कौन इस युद्धमें खडा रहेगा ? आज अकेले जूझतेहुए सात्यकिके साथ लडतेमें तू संग्राम छोडकर भागना चाहता है तो हे कौरव ! जब गांडीवधारी अर्जुन.भीम अथवा नकुल, सहदेवको युद्धमें देखेगा तब तू क्या करेगा?सात्यकिके बाण तो सूर्य और अग्निकी समान चमकते हुए अर्जुनके बाणोंकी समान नहीं है कि-उनसे डरकर तू भागाजाता है?हे वीर ! भागना ही हो तो तू झपटकर शीघ्रता से गान्धारीके पेटमें घुस जा १३-१६क्योंकि-पृथ्वीमें और जहाँ कहीं भी तू भागकर जायगा वहाँ तेरे प्राण नहीं बचेंगे,यदि तेरा विचार भागनेका ही हो तो शान्तिके साथ ही यह पृथ्वी तू युधिष्ठिरको सौंपदे,जब तक कैंचुलीरहित सर्पकी समान छूटेहुए अर्जुनके बाण तेरे शरीरमें नहीं घुसते हैं उससे पहिले ही पांडवों

राजाय शमेनैव मदीयताम् । यावत् फाल्गुननाराचा निर्मुक्तोरगसन्निभाः॥ १८ ॥ नाविशन्ति शरीरन्ते तावत् संशाम्य पांडवैः । यावत्ते पृथिवीं पार्था हत्वा भ्रातृशतं रणे ॥ १९ ॥ नाक्षिपन्ति महात्मानस्तावत् संशाम्य पाण्डवैः । यावन्न क्रुध्यते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २० ॥ कृष्णश्च समरश्लाघी तावत् संशाम्य पाण्डवैः । यावद्भीमो महाबाहुर्विगाह्य महतीञ्चमूम् २१ सोदरांस्ते न गृह्णाति तावत् संशाम्य पाण्डवैः । पूर्वमुक्तञ्च ते भ्राता भीष्मेणासौ सुयोधनः॥ २२ ॥ अजेयाः पाण्डवाः संख्ये सौम्य संशाम्य तैः सह । न च तत् कृतवान् मन्दस्तव भ्राता सुयोधनः॥२३॥ स युद्धे धृतिमास्थाय यत्तो युध्यस्व पाण्डवैः । तवापि शोणितं भीम पास्यतीति मया श्रुतम् ॥२४॥ तच्चाप्यवितथं तस्य तत्तथैव भविष्यति । किं भीमस्य न जानासि विक्रमं त्वं सुबालिश २५ यत्त्वया वैरमारब्धं संयुगे भपलायिना । गच्छ तूर्णं रथेनैव यत्र

से सन्धि करले यह पृथ्वी तू उनके अर्पण करदे जबतक महात्मा पांडव तेरे सौ भाइयोंको मारकर तेरी पृथ्वीको नहीं जीतलेते हैं उससे पहिले ही तू सन्धि करले, महाबाहु भीमसेनके तेरी बडी भारी सेनाको विलोडित कर भाइयोंको पकडनेसे पहिले ही तू पाण्डवोंसे सन्धि करले, हे सौम्य ! भीष्मजीने पहिले तेरे भाई सुयोधनसे कहा था, कि–पांडवोंको समरमें जीतना असम्भव है परन्तु तेरे मन्दबुद्धि भ्राताने उनकी एक न सुनी ॥ १७-२३ ॥ अतः अब तू धीरज धरकर सावधान हो और पाण्डवोंसे युद्ध कर मैंने सुना है कि–भीम तेरे रुधिरको पियेगा ॥ २४ ॥ यह बात सत्य है और ऐसा ही होगा अरे ! ओ महामूर्ख ! तू क्या भीमके पराक्रमको जानता नहीं था, कि–जो तूने उसके साथ पहिले तो बडाभारी वैर बाँधा और अब युद्धमेंसे भागाजाता है ? हे भरतवंशी ! जहाँ सात्यकि खडा है, उस स्थान पर तू शीघ्र ही

तिष्ठति सात्यकिः ॥२६॥ त्वया हीनं बलं ह्येतद्विद्रविष्यति भारत। आत्मार्थं योधय रणे सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥२७॥ एवमुक्तस्तव सुतो नाब्रवीत् किञ्चिदप्यसौ। श्रुतञ्चाश्रुतवत् कृत्वा प्रायाद्येन स सात्यकिः ॥ २८ ॥ सैन्येन महता युक्तो म्लेच्छानामनिवर्त्तिनाम्। आसाद्य च रणे यत्तो युयुधानमयोधयत् ॥२९॥ द्रोणोपि रथिनां श्रेष्ठः पञ्चालान् पाण्डवांस्तथा। अभ्यद्रवत संक्रुद्धो जवमास्थाय मध्यमम् ॥ ३० ॥ प्रविश्य च रणे द्रोणः पाण्डवानां वरूथिनीम्। द्रावयामास योधान् वै शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३१ ॥ ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे। पाण्डुपाञ्चालमत्स्यानां प्रचक्रे कदनं महत् ॥ ३२ ॥ तं जयन्तमनीकानि भारद्वाजं ततस्ततः। पाञ्चालपुत्रो द्युतिमान् वीरकेतुः समभ्ययात् ३२ स द्रोणं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः। ध्वजमेकेन विव्याध

जा, तेरे बिना तो यह सब सेना भागजायगी, अतः अपने लिये नहीं तो बन्धुजनोंके लिये तो सत्यपराक्रमी सात्यकिसे रणमें लड २५–२७ ॥ इतनी बात कहलाने पर तुम्हारा पुत्र कुछ न बोला और सुनेहुएको अनसुना सा करके सात्यकिकी ओर को चला २८ पीछेको न हटनेवाले म्लेच्छोंकी बडीभारी सेना लेकर दुःशासन युद्धमें जा सात्यकिसे लडनेलगा ॥२९॥ रथियों में श्रेष्ठ द्रोण भी क्रोधमें भर मध्यम वेगसे पञ्चाल और पांडवों के ऊपर दौड़े द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनामें घुसकर सैंकडों और सहस्रों योधाओंको भगाने लगे ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! उस समय द्रोण अपने नामको सुना २ कर पांडव, पांचाल और मत्स्यसेनाका घोर संहार करनेलगे ॥ ३२ ॥ इधर उधर सेनाओं को जीतते फिरतेहुए द्रोणके सामने पञ्चालपुत्र कान्तिमान् वीरकेतु जाडटा ॥ ३३ ॥ उसने नमीहुई गाँठवाले पाँच बाणोंसे द्रोणको घायल कर एक बाणसे उनकी ध्वजाको काटडाला

सारथिञ्चास्य सप्तभिः ॥ ३४ ॥ तत्राद्भुतं महाराज दृष्टवानस्मि संयुगे । यन्न द्रोणो रभसं युद्धे पाञ्चाल्यं नाभ्यवर्त्तत ॥ ३५ ॥ सन्निरुद्धं रणे द्रोणं पञ्चाला वीक्ष्य मारिष । आवव्रुः सर्वतो राजन् धर्मपुत्रजयैषिणः ॥ ३६ ॥ तैः शरैरग्निसङ्काशैस्तोमरैश्च महाधनैः । शस्त्रैश्च विविधै राजन् द्रोणमेकमवाकिरन् ॥ ३७ ॥ निहत्य तान् वाणगणैर्द्रोणो राजन् समन्ततः । महाजलधरान् व्योम्नि मातरिश्वेव चावभौ ॥ ३८ ॥ ततः शरं महाघोरं सूर्यपावकसन्निभम् । सन्दधे परवीरघ्नो वीरकेतो रथं प्रति ॥ ३९ ॥ स भित्त्वा तु शरो राजन् पांचालकुलनन्दनं । अभ्यगाद्धरणीं तूर्णं लोहितार्द्रो ज्वलन्निव ॥ ४० ॥ ततोपतद्रथात्तूर्णं

और सात वाणोंसे सारथिको घायल करदिया ॥ ३४ ॥ तहाँ हमने एक आश्चर्य देखा, कि–द्रोण वेगसे युद्ध करनेवाले पंचालकुमारको युद्धमें दबा न सके ॥३५॥ हे राजन् ! रणमें द्रोणको रुकाहुआ देखकर, धर्मराजकी जय चाहनेवाले बहुतसे योधाओंने द्रोणको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३६ ॥ वे सबके सब अग्निकी समान स्पर्शवाले वाण तोमर, तथा विविध प्रकारके अस्त्रोंको अकेले द्रोणके ऊपर फैंकनेलगे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! द्रोणने भी वाणोंकी वर्षाकर उनके सकल अस्त्र शस्त्रोंको निष्फल कर दिया और आकाशमें बड़े २ बादलोंको तितर बित्तर कर डालनेवाले वायुकी समान शोभा पानेलगे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर शत्रुओंके वीरोंको नष्ट करदेनेवाले द्रोणने सूर्य और अग्निकी समान महाभयङ्कर वाण लेकर धनुष पर चढाया और वीरकेतुके रथकी ओरको छोडा ॥३९॥ हे राजन् ! वह वाण पांचालकुलनन्दन वीरकेतुको घायल करके रक्तसे सनाहुआ, जलता हुआसा शीघ्रताके साथ पृथ्वीमें घुसगया ॥ ४० ॥ तदनन्तर पहाड़के शिखर परसे आँधीसे उखड़ेहुए बड़े भारी चम्पेके वृक्ष

पांचालकुलनन्दनः । पर्वताग्रादिव महांश्चैत्यो वायुपीडितः ४१ तस्मिन् हते महेष्वासे राजपुत्रे महावले । पञ्चालास्त्वरिता द्रोणं समन्तात् पर्यवारयन्४२चित्रकेतुः सुधन्वा च चित्रवर्मा च भारत तथा चित्ररथश्चैव भ्रातृव्यसनकर्षिताः ॥ ४३ ॥ अभ्यद्रवन्त सहिता भारद्वाजं युयुत्सवः । मुञ्चन्तः शरवर्षाणि तपान्ते जलदा इव ४४ स वध्यमानो वहुशो राजपुत्रैर्महारथैः । क्रोधमाहारयत्तेषामभावाय द्विजर्षभः ॥ ४५ ॥ ततः शरमयं जालं द्रोणस्तेषामवासृजत् । ते हन्यमानाः द्रोणस्य शरैराकर्णचोदितैः ॥४६॥ कर्त्तव्यं नाभ्यजानन् वै कुमारा राजसत्तम । तान् विमूढान् रणे द्रोणः प्रहसन्निव भारत ॥ ४७ ॥ व्यश्वसूतरथांश्चक्रे कुमारान् कुपितो रणे । तथा शरैः सुनिशितैर्भल्लैस्तेषां महायशाः ॥ ४८ ॥ पुष्पाणीव विचि-

---

की समान वह पञ्चालकुमार रथमेंसे पृथ्वीपर गिरपडा ।४१। उस महाधनुर्धर महावली राजपुत्रके मारे जाते ही पञ्चालोंने द्रोणको घेरलिया ४२ हे भरतवंशी राजन्! भाईके मरणसे खिन्न हुए चित्रकेतु,सुधन्वा चित्रवर्मा और चित्ररथ युद्ध करनेकी इच्छासे द्रोणके ऊपर चढ़ दौडे और वर्षा ऋतुमें जलवाले मेघोंकी समान वाण वर्षा करनेलगे ॥ ४३-४४ ॥ जब सब महारथी राजपुत्र उनको वहुत ही वींधनेलगे तब तो ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणको उनका नाश करनेके लिये वडा क्रोध चढा ॥ ४५ ॥ हे भरतवंशी राजाओंमें श्रेष्ठ ! फिर द्रोण उनके ऊपर वाणोंका जालसा विछादिया, जब द्रोण कानपर्यन्त धनुषको खेंचकर वाण छोडनेलगे उस समय पंचाल राजकुमार घवडाकर यह भी भूलगये, कि-अब क्या करना चाहिये, तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए द्रोणने उन कुमारोंको घवडाया हुआ देखकर मुस्कराते २ उनके घोडे, सारथि और रथोंको नष्ट कर उनको रथहीन दिया, तदनन्तर महायशस्वी द्रोणने दूसरे भल्ल नामक तेज वाणोंसे उनके शिरोंको दण्डी

न्नन् हि सोत्तमाङ्गान्यशातयत् । ते रथेभ्यो हताः पेतुः क्षितौ राजन् सुवर्चसः ॥ ४९ ॥ देवासुरे पुरा युद्धे यथा दैतेयदानवाः । तान्निहत्य रणे राजन् भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५० ॥ कार्मुकं भ्रामयामास हेमपृष्ठं दुरासदम् । पञ्चालान्निहतान् दृष्ट्वा देवकल्पान्महारथान् ॥ ५१ ॥ धृष्टद्युम्नो भृशोद्विग्नो नेत्राभ्यां पातयञ्जलम् । अभ्यवर्त्तत संग्रामे क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ५२ ॥ ततो हाहेति सहसा नादः समभवन्नृप । पांचाल्येन रणे दृष्ट्वा द्रोणमावारितं शरैः ॥ ५३ ॥ स छाद्यमानो बहुधा पार्षतेन महात्मना । न विव्यथे ततो द्रोणः स्मयन्नेवान्वयुध्यत ॥ ५४ ॥ ततो द्रोणं महाराज पांचाल्यः क्रोधमूर्च्छितः । आजघानोरसि क्रुद्धो नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ५५ ॥ स गाढविद्धो बलिना भारद्वाजो महायशाः ।

परसे फूलोंको तोड़नेकी समान, काटना आरम्भ करदिया पहिले जैसे देवासुर संग्राममें दैत्य और दानव मरकर गिरे थे तैसे ही वे तेजस्वी कुमार भी मरकर रथोंमेंसे भूमिपर गिरगये उन राजकुमारोंको मारकर प्रतापी द्रोण अपने सुवर्णकी पीठवाले दुरासद धनुषको मण्डलाकारसे घुमाने लगे, देवताओंकी समान महारथी पंचालोंको मराहुआ देखकर धृष्टद्युम्न बहुत ही घबडागया और उसके नेत्रोंमेंसे आँसू बहनेलगे, उस समय वह क्रोधमें भरकर रणमें द्रोणके रथकी ओरको जाचढा॥४९–५२॥इतनेमें ही सहसा सेनामें हाहाकार मचगया, क्योंकि-धृष्टद्युम्नने बाण मारकर द्रोणको रोकदिया था ॥ ५३ ॥ महात्मा धृष्टद्युम्नने बाणोंकी वर्षा करके द्रोणको ढकदिया, परन्तु इससे द्रोणके मनमें कुछ भी खेद न हुआ और वह हँसते २ लडनेलगे ॥ ५४ ॥ तदनन्तर धृष्टद्युम्न क्रोधके मारे अपने आपेमें न रहा, और हे महाराज ! उसने द्रोणकी छातीमें नमीहुई गाँठवाले नब्बै बाण मारे ॥ ५५ ॥ बलवान् धृष्टद्युम्नके प्रहारसे बहुत ही घायल

निषसाद रथोपस्थे कश्मलञ्च जगाम ह ॥ ५६ ॥ तं वै तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः पराक्रमी । चापमुत्सृज्य शीघ्रन्तु असिं जग्राह वीर्यवान् ॥ ५७ ॥ अवप्लुत्य रथाच्चापि त्वरितः स महारथः । आरुरोह रथं तूर्णं भारद्वाजस्य मारिष ॥ ५८ ॥ हर्तुमिच्छन् शिरः कायात् क्रोधसंरक्तलोचनः । प्रत्याश्वस्तस्ततो द्रोणो धनुर्गृह्य महारवम् ॥५९॥ आसन्नमागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं जिघांसया । शरैर्वैतस्तिकै राजन् विव्याधासन्नवेधिभिः ॥ ६० ॥ योधयामास समरे धृष्टद्युम्नं महारथम् । ते हि वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ॥६१॥ द्रोणस्य विहिता राजन् यैर्धृष्टद्युम्नमाक्षिणोत् । स वध्यमानो वहुभिः सायकैस्तैर्महावलः ॥ ६२ ॥ अवप्लुत्य रथात्तूर्णं भग्नवेगपराक्रमी । आरुह्य स्वरथं वीरः प्रगृह्य च मह-

हुए महायशस्वी द्रोणाचार्य मूर्छित हो रथकी गद्दी पर बैठ गए ५६ पराक्रमी वीर्यवान् धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यकी दीन दशा देख हाथमेंका धनुष तुरन्त ही नीचे धरदिया और नङ्गी तलवार हाथमें लेली ॥ ५७ ॥ वह महारथी अपने सुवर्णके रथमेंसे उतरकर द्रोणके रथपर चढगया ॥ ५८ ॥ इस समय धृष्टद्युम्नके नेत्र क्रोधसे लाललाल होरहे थे और वह द्रोणका शिर काटना चाहता था, कि—हे राजन् ! द्रोणकी मूर्छा टूटगई और उनको चेतहुआ, तो उन्होंने देखा, कि—धृष्टद्युम्न उनको मारनेकी इच्छासे उनके समीप ही खड़ा है, तब तो वह महाशब्द करने वाले धनुषको ले उसके ऊपर समीपमें चोट करनेवाले वितस्त नामके बाणोंको चढा महारथी धृष्टद्युम्नके मारनेलगे, समीपमें खड़ेहुए पुरुषसे युद्ध करनेमें उपयोगी द्रोणके छोड़ेहुए वितस्त नामक बाणोंसे धृष्टद्युम्न क्षीण होनेलगा बाणोंसे बहुत ही विंधजानेके कारण महाबली धृष्टद्युम्नका उत्साह भङ्ग होगया और वह पराक्रमी द्रोणके रथके ऊपरसे कूदकर तुरन्त

द्रुतः ॥ ६३ ॥ विव्याध समरे द्रोणं धृष्टद्युम्नो महारथः । द्रोणश्चापि महाराज शरैर्विव्याध पार्षतम् ॥ ६४ ॥ तदद्भुतमभूद्युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तदा । त्रैलोक्यकाङ्क्षिणोरासीच्छक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ६५ ॥ मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च । चरन्तौ युद्धमार्गज्ञौ ततक्षतुरथेषुभिः ॥ ६६ ॥ मोहयन्तौ मनांस्याजौ योधानां द्रोणपार्षतौ । सृजन्तौ शरवर्षाणि वर्षास्विव बलाहकौ ॥ ६७ ॥ छादयन्तौ महात्मानौ शरैर्व्योम दिशो महीम् । तदद्भुतं तयोर्युद्धं भूतसंघा ह्यपूजयन् ॥ ६८ ॥ क्षत्रियाश्च महाराज ये चान्ये तत्र सैनिकाः । अवश्यं समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नेन संगतः ॥६९॥ वशमेष्यति नो राजन् पञ्चाला इति चुक्रुशुः । द्रोणस्तु त्वरितो युद्धे

ही अपने रथपर चढगया, तहाँ जाकर महारथी धृष्टद्युम्न बड़ा भारी धनुष ले समरमें द्रोणको बींधनेलगा, हे महाराज ! तथा द्रोण भी धृष्टद्युम्नको बाणोंसे बींधनेलगे ॥ ५९–६४ ॥ पहिले जैसे त्रिलोकीके अधिपति बननेकी इच्छासे प्रल्हाद और इन्द्रका युद्ध हुआ था ऐसे ही द्रोण और धृष्टद्युम्नका अद्भुत युद्ध हुआ था ॥ ६५ ॥ युद्धकी रीति जाननेवाले वे दोनों जने विचित्र प्रकारके मण्डलोंसे तथा यमकाकारसे (साधारणतया अथवा वेगसे दौडना आदि) फिरते थे और परस्परमें एक दूसरे पर बाणोंका प्रहार करते थे ॥ ६६ ॥ वर्षा ऋतुमें बूँदोंको बरसानेवाले मेघोंकी समान वे दोनों (धृष्टद्युम्न और द्रोण) बाणोंको बरसाकर योधाओंको विस्मित कर रहे थे ॥ ६७ ॥ उन महात्माओंने बाणोंसे आकाश, दिशा और पृथ्वीको भरदिया, उन दोनोंके अद्भुत युद्धकी हे महाराज ! सब क्षत्रिय, तथा तुम्हारे योधा भी प्रशंसा करनेलगे हे राजन्! उस समय पंचाल चिल्लानेलगे कि-धृष्टद्युम्नके सामने लड़ते हुए द्रोण अवश्य ही हमारे वशमें होजायँगे उस समय द्रोणने शीघ्रता करके धृष्ट-

धृष्टद्युम्नस्य सारथेः ॥ ७० ॥ शिरः प्रच्यावयामास फलं पक्वं तरोरिव । ततस्तु प्रद्रुता वाहा राजंस्तस्य महात्मनः ॥ ७१ ॥ तेषु प्रद्रवमाणेषु पञ्चालान् सृञ्जयांस्तथा । अयोधयद्रणे द्रोणस्तत्र तत्र पराक्रमी ॥ ७२ ॥ विजित्य पाण्डुपञ्चालान् भारद्वाजः प्रतापवान् । स्वं व्यूहं पुनरास्थाय स्थितोभवदरिन्दमः । न चैनं पाण्डवा युद्धे जेतुमुत्सेहिरे प्रभो ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे
द्रोणपराक्रमे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥

सञ्जय उवाच । ततो दुःशासनो राजन् शैनेयं समुपाद्रवत् । किरन् शरसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ १ ॥ स विध्वा सात्यकिं षष्ट्या तथा षोडशभिः शरैः । नाकम्पयत् स्थितं युद्धे मैनाकमिव पर्वतम् ॥२॥ तं तु दुःशासनः शूरः सायकैरावृणोद्

द्युम्नके सारथिका शिर धडसे इसप्रकार पृथक् करदिया जैसे पकाहुआ फल पेड़ परसे गिरादिया जाता है, हे राजन् ! तदन-उस महात्मा धृष्टद्युम्नके घोड़े इधर उधरको भागनेलगे ६८-७१ जब उसके घोड़े रणमेंसे भागनेलगे तब द्रोण इधर उधर खड़े पंचाल और सृञ्जयोंसे लडनेलगे॥७२॥प्रतापवान् अरिन्दम द्रोणाचार्य पाण्डव और पांचालोंको जीतकर फिर अपने व्यूहमें जाकर खड़े होगए, हे प्रभो ! इस समय द्रोणको जीतनेके लिये पांडवों को साहस नहीं हुआ ७३ एकसौ वाईसवाँ अध्याय समाप्त१२२

संजयने कहा कि—हे राजन् ! जल वरसाता हुआ मेघ जैसे आकाशमें दौड़े तैसे ही सहस्रों वाणोंकी वृष्टि करता हुआ दुःशासन सात्यकिके पीछे दौडा ॥ १ ॥ और साठ तथा सोलह वाण मारकर सात्यकिको वींधडाला, परन्तु वाणोंके प्रहार होने पर भी युद्धमें खडाहुआ सात्यकि, मैनाक पर्वतकी समान जरा भी नहीं डिगा॥२॥शूर दुःशासनने उसके ऊपर और भी वहुतसे

भृशम् । रथव्रातेन महता नानादेशोद्भवेन च ॥ ३ ॥ सर्वतो भरतश्रेष्ठो विसृजन् सायकान् बहून् । पर्ज्जन्य इव घोषेण नादयन् वै दिशो दश ॥ ४ ॥ तमापतन्तमालोक्य सात्यकिः कौरवं रणे । अभिद्रुत्य महाबाहुश्छादयामास सायकैः ॥५॥ ते छाद्यमाना बाणौघैर्दुःशासनपुरोगमाः । प्राद्रवन् समरे भीतास्तव सैन्यस्य पश्यतः ॥६॥ तेषु द्रवत्सु राजेन्द्र पुत्रो दुःशासनस्तव । तस्थौ व्यपेतभी राजन् सात्यकिञ्चार्दयच्छरैः ॥ ७ ॥ चतुर्भिर्वाजिनस्तस्य सारथिञ्च त्रिभिः शरैः । सात्यकिञ्च शतेनाजौ विध्वा नादं मुमोच सः ॥ ८ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज माधवस्तस्य संयुगे । रथं सूतं ध्वजं तञ्च चक्रेऽदृश्यमजिह्मगैः ॥ ९ ॥ स तु दुःशासनं शूरं सायकैरावृणोद्भृशम् । सशंकं समनुप्राप्तमूर्णनाभिरिवोर्णया ॥ १० ॥ त्वरन् समावृणोद्बाणैर्दुःशासनममित्रजित् ।

बाण बरसाये तथा पृथक् २ देशके रथियोंसे उसको घेर लिया ३ और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ ! चारों ओरसे उसके ऊपर बहुतसे बाण बरसाकर मेघकी समान गर्जनाकर दशों दिशाओंको गुंजार दिया ४ महाबाहु सात्यकि दुःशासनको आता देख उसकी ओरको दौडा और बहुतसे बाण मारकर उसको ढकदिया ॥ ५ ॥ जब बहुतसे बाणोंसे दुःशासन आदि योधा ढकगये तब वे भयभीत हो सेनाके सामने ही रणमेंसे भागनेलगे ॥ ६ ॥ इसप्रकार हे राजेन्द्र ! सब भागे जारहे थे, परन्तु तुम्हारा पुत्र दुःशासन निडर हो तहाँ ही खडारहा और सात्यकिको बाणोंसे पीडित करनेलगा ॥७॥ घोड़ोंके चार, सारथिके तीन और सात्यकिके सौ बाण मारकर वह युद्धमें गर्जनेलगा ॥ ८ ॥ हे महाराज ! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए सात्यकिने सूधे जानेवाले बाण मारकर रथ, सारथि, और ध्वजा सहित दुःशासनको अदृश्य करदिया ॥ ९ जैसे मकड़ी अपने जालेसे दूसरे जन्तुको ढक देती है, तैसेही सात्यकिने सन्देह

दृष्ट्वा दुःशासनं राजा तथा शरशताचितम् ॥ ११ ॥ त्रिगर्त्तांश्चोदयामास युयुधानरथं प्रति । तेगच्छन् युयुधानस्य समीपं क्रूरकर्मणः ॥ १२ ॥ त्रिगर्त्तानां त्रिसाहस्रा रथा युद्धविशारदाः । ते तु तं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ॥ १३ ॥ स्थिरां कृत्वा मतिं युद्धे भूत्वा संशप्तका मिथः । तेषां प्रयततां युद्धे शरवर्षाणि मुञ्चताम् ॥ १४ ॥ योधान् पञ्चशतान् मुख्यान् अग्रानीके व्यपोथयत् । ते पतन्ति हतास्तूर्णं शिनिप्रवरसायकैः ॥ १५ ॥ महामारुतवेगेन भग्ना इव नगाद् द्रुमाः । नागैश्च वहुधाच्छिन्नैर्ध्वजैश्चैव विशाम्पते ॥ १६ ॥ हयैश्च कनकापीडैः पतितैस्तत्र मेदिनी । शैनेयशरसंकृत्तैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥ १७ ॥ अशोभत महाराज किंशुकैरिव पुष्पितैः । ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ॥ १८ ॥ त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः । ततस्ते पर्यवर्त्तन्त सर्वे

में हो लड़तेहुए दुःशासनको वाणोंसे वहुत ही ढकदिया ॥१०॥ शत्रुजित् सात्यकिने वडी शीघ्रतासे दुःशासनको ढकदिया था, राजा दुर्योधनने दुःशासनको सैंकडों वाणोंसे ढकाहुआ देखकर सात्यकिके रथकी ओरको त्रिगर्तोंको भेजा, युद्ध करनेमें चतुर क्रूरकर्म करनेवाले, तीन सहस्र त्रिगर्त रथी युयुधानकी ओरको चले उन्होंने जमे रहकर युद्ध करनेकी आपसमें शपथ खाकर चारों ओरसे रथ लगा सात्यकिको घेरलिया सात्यकिने वाण छोडकर सेनाके मुहानेके धावा करतेहुए त्रिगर्तोंके पाँचसौ योधाओंको समाप्त करदिया, आँधीके झोंकेसे उखडकर पहाड़परसे टपाटप गिरतेहुए वृक्षोंकी समान, सात्यकिके वाणोंसे मारेहुए वे योधा धड़ाम २ गिरनेलगे, हे महाराज ! इस शिनिपुत्र सात्यकिके वाणोंसे लोहूलुहान हो भूमिपर गिरेहुए हाथियों, घोडों, ध्वजाओं और रुधिरमें सनेहुए मुकुटोंसे व्याप्त पृथ्वी टेसूके फूलोंसे छाईहुईसी अपूर्व शोभा पारही थी, सात्यकिके हाथसे समरमें मारेहुए तुम्हारे

द्रोणरथं प्रति ॥ १९ ॥ भयात् पतगराजस्य गर्त्तानीव महोरगाः हत्वा पञ्चशतान् योधान् शरैराशीविषोपमैः ॥ २० ॥ प्रायात् स शनकैर्वीरो धनञ्जयरथं प्रति । तं प्रयान्तं नरश्रेष्ठं पुत्रो दुःशासनस्तव ॥ २१ ॥ विव्याध नवभिस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः । स तु तं प्रतिविव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥ रुक्मपुंखैर्महेष्वासो गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः । सात्यकिं तु महाराज प्रहसन्निव भारत ॥ २३ ॥ दुःशासनस्त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः । शैनेयस्तव पुत्रन्तु हत्वा पञ्चभिराशुगैः ॥ २४ ॥ धनुश्चास्य रणे छित्वा विस्मयन्नर्जुनं ययौ । ततो दुःशासनः क्रुद्धो वृष्णिवीराय गच्छते ॥ २५ ॥ सर्वपारशवीं शक्तिं विससर्ज जिघांसया । तान्तु शक्तिं तदा घोरां तव पुत्रस्य सात्यकिः ॥ २६ ॥ चिच्छेद

योधाओंको कीचडमें फँसेहुए हाथियोंको जैसे कोई बचानेवाला नहीं मिलता है तैसेही कोई भी रक्षक न मिला. परन्तु जैसे गरुड़के डरसे सर्प गुफाओंमेंको भागने लगते हैं तैसेही वे सब डर कर द्रोणके रथकी ओरको दौड़े, इसप्रकार सर्पकी समान कर्म करनेवाले बाणोंसे पाँचसौ योधाओंका संहार करके वीरवर सात्यकि धीरे२ अर्जुनके रथकी ओरको बढनेलगा तब तुम्हारे पुत्र दुःशासनने आगे बढतेहुए नरश्रेष्ठ सात्यकिके फुर्तीके साथ नमीहुई गाँठवाले नौ बाण मारे, महाधनुर्धर सात्यकिने भी दुःशासनके गीधके पर और सुवर्णकी पूँछवाले तथा सीधे जानेवाले पाँच तेज बाण मारे, हे भरतवंशीमहाराज ! हँसते२ दुःशासनने तीन बाणोंसे सात्यकिको बीधकर फिर पाँच बाणोंसे बींध डाला, सात्यकिने पाँच बाण दुःशासनके मारकर उसके धनुषको काटडाला और सबको विस्मित कर अर्जुनकी ओरको बढने लगा, इससे दुःशासनको बड़ा क्रोध आया और उसने अपने शत्रुको नष्ट करनेके लिये अर्जुनकी ओरको जातेहुए वृष्णिवीर

स तदा राजन् निशितैः कङ्कपत्रिभिः । अथान्यद्धनुरादाय पुत्रस्तव जनेश्वर ॥ २७ ॥ सात्यकिञ्च शरैर्विद्ध्वा सिंहनादं ननर्द ह । सात्यकिस्तु रणे क्रुद्धो मोहयित्वा सुतं तव ॥ २८ ॥ शरैरग्निशिखाकारैराजघान स्तनान्तरे । त्रिभिरेव महाभागः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २९ ॥ सर्वायसैस्तीक्ष्णवक्त्रैरष्टाभिर्विव्यधे पुनः । दुःशासनस्तु विंशत्या सात्यकिं प्रत्यविध्यत ॥ ३० ॥ सात्वतोपि महाराज तं विव्याध स्तनान्तरे । त्रिभिरेव महाभागः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३१ ॥ ततोस्य वाहान्निशितैः शरैर्जघ्ने महारथः । सारथिश्च सुसंक्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥३२॥ धनुरेकेन भल्लेन हस्तावापञ्च पञ्चभिः । ध्वजश्च रथशक्तिश्च भल्लाभ्यां परमास्त्रवित् ॥३३॥ चिच्छेद विशिखैस्तीक्ष्णैस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।

सात्यकिके ठोस लोहेकी शक्ति फेंककर मारी, परन्तु हे राजन् ! सात्यकिने कङ्कपत्र लगेहुए तेज वाणोंसे तुम्हारे पुत्रकी उस घोर शक्तिके सैंकडों टुकड़े करडाले, तदनन्तर हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र ने दूसरा धनुष उठा सात्यकिको वाणोंसे वींधडाला और सिंहकी समान गरजने लगा, तव तो सात्यकिको क्रोध चढआया और उसने तुम्हारे पुत्रको मोहित करके अग्निशिखाकी समान दमकते हुए नमीहुई गाँठवाले तीन वाण उसके स्तनोंके मध्यभागमें मारे ॥ ११–२९ ॥ फिर पूरे लोहेके वनेहुए और तीखी नोक वाले आठ वाण मारे, तव दुःशासनने वीस वाण सात्यकिके मारे ॥ ३० ॥ तव हे महाराज ! महाभाग सात्यकिने नमीहुई गाँठवाले तीन वाण उसकी छातीमें मारे ॥ ३१ ॥ फिर परम क्रोधमें भरेहुए सात्यकिने नमीहुई गाँठवाले वाणोंसे इसके घोड़े और सारथिको वींधडाला ॥ ३२ ॥ फिर अस्त्रोंके पारगामी सात्यकिने एक भालेसे उसके धनुषको काटडाला और पाँचसे उसके हाथके मौजेको काटडाला और दो भालोंसे उसकी ध्वजा

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥ ३४ ॥ त्रिगर्त्तसेनापतिना स्वरथेनापवाहितः । तमभिद्रुत्य शैनेयो मुहूर्त्तमिव भारत ३५ न जघान महाबाहुर्भीमसेनवचः स्मरन् । भीमसेनेन तु वधः सुतानां तव भारत ॥ ३६ ॥ प्रतिज्ञातः सभामध्ये सर्वेषामेव संयुगे । ततो दुःशासनं जित्वा सात्यकिः संयुगे प्रभो ॥ जगाम त्वरितो राजन् येन यातो धनञ्जयः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुःशासनपराजये त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । किं तस्यां मम सेनायां नासन् केचिन्महारथाः । ये तथा सात्यकिं यान्तं नैवाघ्नन्नाप्यवारयन् ॥ १ ॥ एको हि

और रथशक्तिको काटडाला ॥ ३३ ॥ और तीखे बाणोंसे उसके पार्श्वरक्षक तथा सारथिको मारडाला, इसप्रकार जब तुम्हारे पुत्रका धनुष टुकड़े२ होगया, रथके घोड़े और सारथि मारेगये, तब त्रिगर्तोंका सेनापति उसको अपने रथमें बैठाकर रणमेंसे ले जानेलगा, तब हे राजन् ! सात्यकि एक मुहूर्त्त भर उसके पीछे दौड़तारहा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उसी समय उसको भीमसेनकी बात स्मरण होआयी; अतः उस महाबाहुने उसको मारा नहीं हे भरतवंशी राजन् ! भीमसेनने सभामें सबके सामने तुम्हारे सब पुत्रों का वध करनेकी प्रतिज्ञा की थी, अतएव हे राजन् ! सात्यकिने रणमें दुःशासनको हराया ही मारा नहीं, इसप्रकार उसको हराकर सात्यकि जिस मार्गसे अर्जुन गया था उसी मार्गसे शीघ्रतापूर्वक जानेलगा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ एकसौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२३ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे सञ्जय ! सात्यकि–इसप्रकार चला गया उसको न कोई मारसका, न कोई हटा सका, क्या मेरी सेनामें कोई भी महारथी ऐसा न निकला ? ॥ १ ॥

समरे कर्म कृतवान् सत्यविक्रमः । शक्रतुल्यबलो युद्धे महेन्द्रो दानवेष्विव ॥ २ ॥ अथवा शून्यमासीत्तद्येन यातः स सात्यकिः । हतभूयिष्ठमथवा येन यातः स सात्यकिः ॥ ३ ॥ यत्कृतं वृष्णिवीरेण कर्म शंससि मे रणे । नैतदुत्सहते कर्तुं कर्म शक्रोपि सञ्जय ॥ ४ ॥ अश्रद्धेयमचिन्त्यं च कर्म तस्य महात्मनः । वृष्ण्यन्धकप्रवीरस्य श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥ ५ ॥ न सन्ति तस्मात्पुत्रा मे यथा सञ्जय भाषसे । एको वै बहुलाः सेनाः प्रामृद्नात्सत्यविक्रमः ॥ ६ ॥ कथञ्च युध्यमानानामपक्रान्तो महात्मनाम् । एको बहूनां शैनेयस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ७ ॥ सञ्जय उवाच । राजन् सेनासमुद्योगो रथनागाश्वपत्तिनाम् । तुमुलस्तव

अकेला इन्द्र जैसे दानवोंमें घूमता हो तैसे ही सत्यपराक्रमी अकेले सात्यकिने रणमें काम किया है ॥ २ ॥ जिस मार्गसे सात्यकि गया था वह मार्ग खाली तो नहीं था ? अथवा जिस मार्गसे सात्यकि गया था उस मार्गके बहुतसे योधा (पहिले ही) तो नहीं मारे गए थे॥३॥हे संजय ! तू रणमें सात्यकिके कियेहुए जैसे कर्मोंका बखान करता है मेरी समझमें तो ऐसा आता है कि–ऐसा कर्म तो इन्द्र भी नहीं करसकता४वृष्णि और अन्धकों में बडे वीर महात्मा सात्यकिके अश्रद्धेय और जिसको विचारा भी न जासके ऐसे पराक्रमको सुनकर मेरा मन व्यथित होरहा है ५ हे संजय ! जैसा तू कह रहा है, उससे मुझे प्रतीत होता है, कि–मेरे पुत्र अब नहीं बचेंगे क्योंकि–अकेले सत्यपराक्रमी सात्यकिने ही बहुत सी सेनाओंका नाश करडाला (फिर सबका क्या कहना) ॥ ६ ॥ बहुतसे महात्मा उससे युद्ध कररहे थे, तब भी अकेला सात्यकि उन सबको कैसे लाँघगया ? हे संजय ! यह मुझे सुना ॥७॥ संजयने कहा, कि—हे राजन् ! तुम्हारी रथ, हाथी घोडे और पैदलोंकी सेनाने उद्योग तो प्रलयकालकेसमान ही

सैन्यानां युगान्तसदृशोऽभवत् ॥८॥ आहूतेषु समूहेषु तत्र सैन्यस्य मानद । नाभूल्लोके समः कश्चित् समूह इति मे मतिः ॥ ९ ॥ तत्र देवास्त्वभाषन्त चारणाश्च समागताः । एतदन्ताः समूहा वै भविष्यन्ति महीतले ॥ १० ॥ न च एतादृशो व्यूह आसीत् कश्चिद्विशाम्पते । यावज्जयद्रथवधे द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥११॥ चण्डवातविभिन्नानां समुद्राणामिव स्वनः । रणेऽभवद्बलौघानामन्योऽन्यमभिधावताम् ॥ १२ ॥ पार्थिवानां समेतानां बहून्यासन् नरोत्तम । त्वद्बले पाण्डवानाञ्च सहस्राणि शतानि च ॥ १३ ॥ संरब्धानां प्रवीराणां समरे दृढकर्मणाम् । तत्रासीत् सुमहान् शब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ १४ ॥ अथाक्रन्दद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च मारिष । नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च पाण्डवः ॥१५॥ आगच्छत

भयङ्कर किया था ८ हे मानद ! मेरा तो ऐसा विश्वास है कि-परदेशोंसे बुलाई हुई तुम्हारी सेनाकाओं जितना जमघट्ट था इतना समूह तो संसारमें कभी नहीं हुआ होगा ॥९॥ तहाँ पर आये हुए देवता और चारणोंने कहा था कि-बस इतना अधिक सेनाका समूह पृथ्वीमें न कभी देखनेमें आया है और न आगे को देखनेमें आवेगा ॥१०॥ हे प्रजाओंके स्वामी ! द्रोणाचार्यने जयद्रथकी रक्षा करनेके लिये जैसा व्यूह रचा था तैसा व्यूह भी आज तक किसीने नहीं रचा था ॥११॥ आँधीकी टक्करसे लहरें लेतेहुए समुद्रमें जैसे तुमुल शब्द होता है तैसे ही रणमें एक दूसरे पर दौडती हुई सेनाओंके जमघट्टोंका भयङ्कर शब्द होरहा था ॥ १२ ॥ हे नरेन्द्र ! बाहरसे आकर इकठेहुए राजाओंके सहस्रों और सैंकडों दल तुम्हारी तथा पांडवोंकी सेनामें थे १३ उस रणमें दृढ़तासे कर्म करनेवाले बहुतसे वीर जब क्रोधमें भरकर गर्जते थे तब तहाँ बडा भयङ्कर लोमहर्षण शब्द होता था ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! भीमसेन धृष्टद्युम्न नकुल

प्रहरत द्रुतं विपरिधावत । प्रविष्टावरिसेनां हि वीरौ माधवपांडवौ १६ यथा सुखेन गच्छेतां जयद्रथरथं प्रति । तथा प्रकुरुत क्षिप्रमिति सैन्यान्यचोदयन् ॥ १७ ॥ तयोरभावे कुरवः कृतार्थाः स्युर्वयं जिताः । ते यूयं सहिता भूत्वा तूर्णमेव बलार्णवम् ॥ १८ ॥ क्षोभयध्वं महावेगाः पवनः सागरं यथा । भीमसेनेन ते राजन् पाञ्चाल्येन च चोदिताः ॥ १९ ॥ आजघ्नुः कौरवान् संख्ये त्यक्त्वासूनात्मनः प्रियान् । इच्छन्तो निधनं युद्धे शस्त्रैरुत्तमतेजसः २० स्वर्गेप्सवो मित्रकार्ये नाभ्यनन्दन्त जीवितम् । तथैव तावका राजन् प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ २१ ॥ आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा युद्धायैवावतस्थिरे । तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्त्तमाने भयावहे ॥ २२ ॥ जित्वा

सहदेव और धर्मराज युधिष्ठिर जोरसे कहने लगे कि-॥ १५ ॥ अरे ! सैनिकों ! शूरवीर अर्जुन और सात्यकि शत्रुओंकी सेना में घुसगए हैं, अतः आओ ! झट दौडो और शत्रुओंका संहार करो ॥ १६ ॥ वे दोनों जिसप्रकार सुखपूर्वक जयद्रथके समीप पहुँचसकें वैसा उपाय करो इसप्रकार कहकर अपनी सेनाओंको प्रेरणा करनेलगे ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर वे बोले, कि-उन दोनों जनोंको यदि कौरवोंने मारडाला तो कौरव सफलमनोरथ होजायेंगे और हमारी हार होजायगी, अतः वेगवान् तुम सब इकट्ठे होकर पवन जैसे समुद्रको झँकोलता है तैसेही कौरवसेनारूप समुद्रको एक साथ घँघोल डालो हे राजन् ! भीमसेन और धृष्टद्युम्नके उकसाये हुए वे महातेजस्वी युद्धमें प्राण देदेनेका निश्चयकर अपने प्रिय प्राणोंकी भी परवाह न कर शस्त्रोंसे कौरवोंको मारनेलगे ॥ १८-२० ॥ स्वर्गको जाना चाहनेवाले उन वीरोंने मित्रके कार्यके लिये अपने प्राणोंकी भी परवाह न की हे राजन् ! इसीप्रकार तुम्हारे योधा भी बड़े भारी यशको पानेकी इच्छासे युद्धविषयक श्रेष्ठ बुद्धिको धारण कर युद्ध

सर्वाणि सैन्यानि प्रायात् सात्यकिरर्जुनम् । कवचानाम्प्रभास्तत्र सूर्यरश्मिविराजिताः ॥ २३ ॥ दृष्टीः संख्ये सैनिकानां प्रतिजघ्नुः समन्ततः । तथा प्रयतमानानां पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥ दुर्योधनो महाराज व्यगाहत महद्बलम् । स सन्निपातस्तुमुलस्तेषां तस्य च भारत ॥२५॥ अभवत् सर्वभूतानामभावकरणो महान् । धृतराष्ट्र उवाच । तथा यातेषु सैन्येषु तथा कृच्छ्रगतः स्वयम् २६ कच्चिद् दुर्योधनः सूत नाकार्षीत् पृष्ठतो रणम् । एकस्य च वहूनाञ्च सन्निपातो महाहवे ॥ २७ ॥ विशेषतो नरपतेर्विषमः प्रतिभाति मे । सोऽत्यन्तसुखसंवृद्धो लक्ष्म्या लोकस्य चेश्वरः२८ एको बहून् समासाद्य कच्चिन्नासीत् पराङ्मुखः । सञ्जय उवाच ।

करनेके लिये ही डटकर खड़े होगये, जब इसप्रकार इधर अत्यन्त तुमुल घोर भयदायक युद्ध होरहा था उसी समय सकल सेनाओंको जीतकर सात्यकि अर्जुनकी ओरको गया था सुवर्णके कवचों पर सूर्यकी किरणें पडरही थीं अतः कवचोंकी प्रभासे सैनिकोंके नेत्र चौंधाये जाते थे, जब इसप्रकार पाण्डव परिश्रम कररहे थे,उसी समय हे महाराज!दुर्योधनने पाण्डवोंकी बड़ीभारी सेनाको झँझोड डाला, हे भारत ! दुर्योधन और पाण्डवोंका यह सब लोकोंका बड़ाभारी नाश करनेवाला तुमुल युद्ध हुआ था, धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे सूत ! सेनाओंके भाग जाने पर महासंकटमें फँसेहुए दुर्योधनने जब पाण्डवोंकी सेना लड़नेको आई थी, तब रणमें पीठतो नहीं दिखाई थी, महायुद्धमें एकका वहुतोंसे लड़ना वडा कठिन है, फिर राजाका वहुतोंके साथ युद्ध करना तो और कठिन काम है, ऐसा मेरा विश्वास है दुर्योधन ऐश्वर्यके साथ अत्यन्त सुखमें पलकर वढाहुआ है और राजा है, वह अकेला वहुतोंके साथ लडते २ रणमेंसे भाग तो नहीं गया सञ्जयने उत्तर दिया, कि—हे

राजन् संग्राममाश्चर्यं तव पुत्रस्य भारत ॥ २९ ॥ एकस्य बहुभिः सार्द्धं शृणुष्व गदतो मम । दुर्योधनेन समरे पृतना पाण्डवी रणे ॥ ३० ॥ नलिनी द्विरदेनेव समन्तात् प्रतिलोडिता । ततस्तां महतीं सेनां दृष्ट्वा पुत्रेण ते नृप ॥३१॥ भीमसेनपुरोगास्तं पञ्चालाः समुपाद्रवन् । स भीमसेनं दशभिः शरैर्विव्याध पाण्डवम् ॥३२॥ त्रिभिस्त्रिभिर्यमौ वीरौ धर्मराजञ्च सप्तभिः । विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३३ ॥ धृष्टद्युम्नञ्च विंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः । शतशश्चापरान् योधान् सद्विपांश्च रथान् रणे ३४ शरैरवचकर्त्तोग्रैः क्रुद्धोन्तक इव प्रजाः । न सन्दधन् विमुञ्चन् वा मण्डलीकृतकार्मुकः ॥ ३५ ॥ अदृश्यत रिपून्निघ्नञ्छिक्षयास्त्र-

---

भरतवंशी राजन्! अपने अकेले पुत्रके वहुतोंके साथ हुए आश्चर्यजनक संग्रामको सुनो, जैसे हाथी तलैयामें घुस उसे घँघोल डालता है, तैसे ही रणमें दुर्योधनने पाण्डवोंकी सेनामें घुस उसको चारों ओरसे हिला दिया तदनन्तर अपनी सेनाको दुर्योधनसे पिटती देखकर हे राजन्! भीमसेन आदि पञ्चाल योधा उसके ऊपर चढ़आये, इतनेमें दुर्योधनने भीमसेनके दश वाण मारे, नकुलके तीन वाण मारे और सहदेवके तीन वाण मारकर, धर्मराजके सात वाण मारे राजा विराट और द्रुपदके छः छः वाण मारे, शिखण्डीके सौ वाण मारे और धृष्टद्युम्नके वीस वाण मारे तथा तीन२वाण मारकर द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको घायल कर दिया क्रोधमें भरेहुए यमराजके जनसंहार करनेकी समान दुर्योधनने रणमें उग्र वाणोंसे और भी वहुतसे हाथीसवारों घुडसवारों और रथियोंको काटडाला उसकी शिक्षा और वलके प्रभावसे यह किसीको नहीं दीखता था, कि-वह वाणको कव चढाता है और कव छोड़ता है, परन्तु वह मण्डलाकारसे धनुषको घुमाकर शत्रुओंको मारताहुआ ही दीखता था शत्रुओंका संहार करते

बलेन च । तस्य तान् निघ्नतः शत्रून् हेमपृष्ठं महद्धनुः ॥ ३६ ॥ अजस्रं मण्डलीभूतं ददृशुः समरे जनाः । ततो युधिष्ठिरो राजा भल्लाभ्यामच्छिनद्धनुः ॥ ३७ ॥ तव पुत्रस्य कौरव्य यतमानस्य संयुगे । विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शरोत्तमैः ॥ ३८ ॥ वर्म चाशु समासाद्य तं भग्नाः क्षितिमाविशन् । ततः प्रमुदिताः पार्था परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥ ३९ ॥ यथा वृत्रवधे देवाः पुरा शक्रं महर्षयः । ततोऽन्यद्धनुरादाय तव पुत्रः प्रतापवान् ॥ ४० ॥ तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन् पाण्डवमभ्ययात् । तमायान्तमभिप्रेक्ष्य तव पुत्रं महामृधे ॥ ४१ ॥ प्रत्युद्ययुः प्रमुदिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः । तान् द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन् युधि पाण्डवम् ४२ चण्डवातोद्धुतान् मेघान् गिरिरम्बुमुचो यथा । तत्र राजन्महा-

---

हुए दुर्योधनके सुवर्णकी पीठवाले बड़ेभारी धनुषको, समरमें मनुष्य, निरन्तर मण्डलाकारसे घूमता हुआ ही देखते थे. हे कुरुवंशी ! संग्राममें इसप्रकार प्रयत्न करतेहुए तुम्हारे पुत्रके धनुषको राजा युधिष्ठिरने दो भल्ल नामक बाण मारकर काट डाला और बड़े वेगसे दश बाण दुर्योधनकी ओरको छोड़े ३६-३८ वे शीघ्र ही कवचसे टकरा उसको फोडकर पृथ्वीमें घुसगए, यह देखकर पाण्डव बड़े ही प्रसन्न हुए पहिले वृत्रासुरका नाश करनेके अनन्तर महर्षियोंने जैसे इन्द्रको घेरलिया था तैसे ही पाण्डव सेनापतियोंने युधिष्ठिरको घेरलिया, तदनन्तर तुम्हारे प्रतापी पुत्रने तुरन्त ही दूसरा धनुषमें हाथमें उठालिया ॥ ३९-४० ॥ फिर राजा युधिष्ठिरसे खडा रह खडा रह !! कहाँजाता है !! इसप्रकार कहताहुआ उनके सामने जाचढा, महासंग्राममें तुम्हारे पुत्रको आगेको आते देखकर, विजयकी इच्छावाले पंचाल राजे इकठे होकर उसके सामने दौड आए, इतनेमें ही जैसे आँधीसे आगे बढतेहुए जल बरसानेवाले मेघोंको आगे बढ़नेसे पहाड

नासीत् संग्रामो लोमहर्षणः ॥ ४३ ॥ पाण्डवानां महाबाहो ताव-
कानां च संयुगे । रुद्रस्याक्रीडसदृशः संहारः सर्वदेहिनाम् ॥४४॥
ततः शब्दो महानासीत् पुनर्येन धनञ्जयः । अतीव सर्वशब्देभ्यो
लोमहर्षकरः प्रभो ॥ ४५ ॥ अर्जुनस्य महाबाहो तावकानां च
धन्विनाम् । मध्ये भारतसैन्यस्य माधवस्य महारणे ॥४६॥ द्रोणस्यापि
परः सार्द्धं व्यूहद्वारे महारणे । एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां
पृथिवीपते । क्रुद्धेऽर्जुने तथा द्रोणे सात्वते च महारथे ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे
संकुलयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

सञ्जय उवाच । अपराह्णे महाराज संग्रामः सुमहानभूत् ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पुनर्द्रोणस्य सोमकैः ॥ १ ॥ शोणाश्वं रथमा-

रोक देता है, तैसे ही दुर्योधनको कैद करनेकी अभिलाषावाले द्रोणने उनको आगे बढनेसे रोकदिया, हे महाभुज राजन् ! रुद्रके सकल प्राणियोंके संहारके खेलकी समान, युद्धमें पांडवोंके योधा और तुम्हारे योधाओंका रोमांच खड़े करनेवाला युद्ध होनेलगा ॥ ४१-४४ ॥ हे प्रभो ! इतनेमें ही जहाँ पर अर्जुन लड रहा था, तहाँ बड़ाभारी रोमांचजनक कोलाहल होनेलगा और उससे दूसरे सब शब्द दबगए ॥ ४५ ॥ हे महाभुज राजन् ! भारती सेनामें इस प्रकार अर्जुन और तुम्हारे धनुषधारियोंमें, सात्यकि तथा तुम्हारे सैनिकोंमें और व्यूहके मुहानेपर द्रोण तथा दूसरोंमें युद्ध होनेलगा, अर्जुन, महारथी सात्यकि और द्रोण के क्रोधित होनेपर इसप्रकार जनसंहार आरम्भ होगया ४६-४७ एकसौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२४ ॥

संजयने कहा, कि-हे महाराज ! दुपहरमें द्रोण और सोमकोंमें बडाभारी संग्राम होनेलगा, उसमें गर्जतेहुए योधाओंका शब्द मेघकी समान होरहा था ॥ १ ॥ पुरुषोंमें वीर, तुम्हारे

स्थाय नरवीरः समाहितः । समरेभ्यद्रवत् पाण्डून् जवमास्थाय मध्यमम् ॥ २ ॥ तव प्रियहिते युक्तो महेष्वासो महाबलः । चित्रपुंखैः शितैर्बाणैः कलशोत्तमसम्भवः ॥ ३ ॥ वरान् वरान् हि योधानां विचिन्वन्निव भारत । आक्रीडत रणे राजन् भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ४ ॥ तमभ्ययात् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः । भ्रातृणां नृप पञ्चानां श्रेष्ठः समरकर्कशः ॥५॥ विमुञ्चन् विशिखांस्तीक्ष्णानाचार्यं भृशमार्दयत् । महामेघो यथा वर्षं विमुञ्चन् गन्धमादने ॥ ६ ॥ तस्य द्रोणो महाराज स्वर्णपुंखाञ्छिलाशितान् । प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान् दश पञ्च च ॥ ७ ॥ तांस्तु द्रोणविनिर्मुक्तान् क्रुद्धाशीविषसन्निभान् । एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्युधि चिच्छेद हृष्टवत् ॥ ८ ॥ तदस्य लाघवं दृष्ट्वा प्रहस्य द्विज-

---

प्रिय और भला करनेवाले, महाधनुर्धर, महाबली, प्रतापी श्रेष्ठ कलशमेंसे उत्पन्न हुए, भारद्वाजके पुत्र द्रोणाचार्य, लाल रङ्गके घोडोंसे जुतेहुए रथमें बैठ मध्यम वेगसे रथको दौडाते २ पांडवों के ऊपर चढ आये और योधाओंमेंसे मानों छट्ठा २ योधाओं को बीन रहे हों इसप्रकार देख २ कर शूरवीर योधाओं पर, विचित्र पूँछवाले तेज बाण बरसातेहुए रणभूमिमें घूमनेलगे२-४ इतनेमें ही हे राजन् ! केकयोंमें महारथी, पाँचों भाइयोंमें श्रेष्ठ समरकर्कश बृहत्क्षत्र द्रोणाचार्यके ऊपर चढ दौडा ॥ ५ ॥ जैसे घनघोर घटा गन्धमादन पर्वत पर जल बरसाती हो तैसे ही द्रोणके ऊपर बाणोंकी वृष्टि कर बृहत्क्षत्र उनको अतीव पीडित करने लगा ॥ ६ ॥ द्रोणने क्रोधमें भरकर हे महाराज ! बृहत्क्षत्रके पूँछवाले और पत्थर पर घिसकर तेज कियेहुए पन्द्रह बाण मारे ॥ ७ ॥ द्रोणके फैंकेहुए क्रोधित सर्पोंकी समान बाणोंको बृहत्क्षत्रने पाँच बाण मारकर काटडाला ॥ ८ ॥ उसकी फुर्तीको देख ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य हँसे और उन्होंने नमीहुई गाँठ

पुंगवः । प्रेषयामास विशिखानष्टौ सन्नतपर्वणः ॥ ९ ॥ तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णं द्रोणचापच्युताञ्छरान् अवारयच्छरैरेव तावद्भिर्निशितैर्मृधे ॥ १० ॥ ततोऽभवन्महाराज तव सैन्यस्य विस्मयः । बृहत्क्षत्रेण तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ ११ ॥ ततो द्रोणो महाराज बृहत्क्षत्रं विशेषयन् । प्रादुश्चक्रे रणे दिव्यं ब्राह्ममस्त्रं सुदुर्जयम् ॥ १२ ॥ कैकेयोऽस्त्रं समालोक्य मुक्तं द्रोणेन संयुगे । ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ब्राह्ममस्त्रमशातयत् ॥ १२ ॥ ततोऽस्त्रे निहते ब्राह्मे बृहत्क्षत्रस्तु भारत । विव्याध ब्राह्मणं षष्ट्या स्वर्णपुंखैः शिलाशितैः ॥१४॥ तं द्रोणो द्विपदां श्रेष्ठो नाराचेन समार्पयत् । स तस्य कवचं भित्त्वा प्राविशद्धरणीतलम् ॥ १५ ॥ कृष्णसर्पो यथा मुक्तो वल्मीकं नृपसत्तम । तथाभ्यगान्महीं बाणो भित्त्वा कैकेयमाहवे ॥ १६ ॥ सोऽतिविद्धो महाराज कैकेयो द्रोणसायकैः ।

वाले आठ बाण उसके मारे ॥ ९ ॥ युद्धमें द्रोणके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंको अपनी ओर आतेहुए देखकर बृहत्क्षत्रने तुरन्त ही उतने तेज बाण मारकर उन बाणोंको नष्ट कर दिया ॥ १० ॥ हे महाराज ! बृहत्क्षत्रके कियेहुए उस अतिदुष्कर कर्मको देख तुम्हारी सेनाको बड़ाभारी आश्चर्य हुआ ११ हे महाराज ! तदनन्तर द्रोणने बृहत्क्षत्रको बढानेके लिये रणमें अतिदुर्जय ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया ॥ १२ ॥ समरमें, छोड़ेहुए द्रोणके ब्रह्मास्त्रको देखकर हे राजन् ! कैकेयने भी उसको ब्रह्मास्त्र मारकर नष्ट करदिया १३ हे भारत ! बृहत्क्षत्रने इसप्रकार द्रोणके ब्रह्मास्त्रको नष्ट कर उनके सुवर्णकी पूँखवाले और पत्थर पर तेज कियेहुए साठ बाण मारे ॥१४॥ ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ द्रोणने उसके एक बाण मारा, वह बाण उसके कवचको फोडकर पृथिवीमें घुसगया ॥१५॥ हे नृपसत्तम ! छूटाहुआ काला साँप जैसे तुरन्त बिलमें घुसजाता है तैसेही वह बाण समरमें

क्रोधेन महताविष्टो व्यावृत्य नयने शुभे ॥ १७ ॥ द्रोणं विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुंखैः शिलाशितैः । सारथिञ्चास्य वाणेन भृशं मर्मस्वताडयत् ॥ १८ ॥ द्रोणस्तु वहुभिर्विद्धो बृहत्क्षत्रेण मारिष । असृजद्विशिखांस्तीक्ष्णान् कैकेयस्य रथं प्रति ॥ १९ ॥ व्याकुलीकृत्य तं द्रोणो बृहत्क्षत्रं महारथम् । अश्वांश्चतुर्भिर्न्यवधीच्चतुरोऽस्य पतत्रिभिः ॥२०॥ सूतञ्चैकेन वाणेन रथनीडादपातयत् । द्वाभ्यां ध्वजञ्च छत्रञ्च छित्वा भूमावपातयत् ॥ २१ ॥ ततः साधुविसृष्टेन नाराचेन द्विजर्षभः । हृद्यविध्यत् बृहत्क्षत्रं स छिन्नहृदयोपतत् २२ बृहत्क्षत्रे हते राजन् कैकयानां महारथे। शैशुपालिरभिक्रुद्धो यन्ता-

---

कैकेयको घायल कर झपाटेके साथ पृथिवीमें घुसगया ॥ १६ ॥ हे महाराज ! द्रोणके वाणसे वहुतही घायल होजानेके कारण बृहत्क्षत्रको वडा क्रोध चढा, तब उसने अपने दोनों शुभ नेत्रोंको चढाकर पत्थर पर घिसकर तेज कियेहुए, सुवर्णकी पूँछवाले सत्तर वाण द्रोणके मारे और एक वाण मारकर उनके सारथिको घायल करडाला, इससे उसके मर्मस्थानोंमें वडी ही पीडा होने लगी ॥ १७-१८ ॥ हे राजन् ! जब बृहत्क्षत्र वहुतसे वाण मारकर द्रोणको घायल करने लगा, तब उन्होंने बड़े ही तीखे वाण कैकेयके रथकी ओरको छोड़े ॥ १९ ॥ इसप्रकार वाण छोड द्रोणने उसको घबड़ादिया, फिर उस महारथीके चारों घोडोंको चार वाण मारकर मारडाला ॥ २० ॥ और एक वाण मारकर उसके सारथीको रथके जुए परसे नीचे गिरादिया तथा दो वाण मारकर उसके छत्र और ध्वजाको भूमिमें गिरादिया ॥ २१ ॥ तदनंतर ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणने धनुषको पूरा २ खैंचकर एक वाण बृहत्क्षत्रके हृदयमें मारा, तब तो उसकी छाती फटगई और वह ढहपडा ॥ २२ ॥ हे राजन् ! कैकेय महारथी बृहत्क्षत्रके मारे जाने पर शिशुपालका पुत्र क्रोधमें भरकर अपने सारथिसे कहने लगा, कि- ॥ २३ ॥

रथिदमब्रवीत् ॥२३॥ सारथे याहि यत्रैष द्रोणस्तिष्ठति दंशितः । विनिघ्नन् केकयान् सर्वान् पञ्चालानाञ्च वाहिनीम् ॥ २४ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सारथी रथिनां वरम् । द्रोणाय प्रापयामास काम्बोजैर्जवनैर्हयैः ॥२५॥ धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः । वधायाभ्यद्रवत् द्रोणं पतङ्ग इव पावकम् ॥ २६ ॥ सोविध्यत तदा द्रोणं षष्ट्या साश्वरथध्वजम् । पुनश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुप्तं व्याघ्रं तुदन्निव ॥ २७ ॥ तस्य द्रोणो धनुर्मध्ये क्षुरप्रेण शितेन च । चकर्त्त गार्द्धपत्रेण पतमानस्य शुष्मिणः ॥ २८ ॥ अथान्यद्धनुरादाय शैशुपालिर्महारथः । विव्याध सायकैर्द्रोणं कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥२९॥ तस्य द्रोणो हयान् हत्वा चतुर्भिश्चतुरः शरैः । सारथेश्च शिरः कायाच्चकर्त्त प्रहसन्निव ॥ ३० ॥ अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् । अवप्लुत्य रथाच्चैद्यो गदामादाय

ओ सारथि ! ये द्रोण कवच पहरे जहाँ पर खड़े होकर कैकेय तथा सब पाञ्चालोंको माररहे हैं, उस ओर तू मेरे रथको ले चल ॥ २४ ॥ उसके वचनको सुनकर सारथिने काम्बोजदेशी तेज घोड़ोंको हाँककर रथियोंमें श्रेष्ठ शिशुपालके पुत्रको द्रोणके पास पहुँचादिया ॥२५॥ जैसे पतङ्ग अग्नि पर टूटपडता है तैसे ही महाबली चेदियोंमें श्रेष्ठ धृष्टकेतु (शिशुपालका पुत्र) द्रोणके ऊपर मारनेको दौड़ा ॥ २६ ॥ उसने द्रोण तथा उनके रथ,घोड़े और ध्वजा पर साठ बाण मारे, फिर जैसे कोई सोतेहुए सिंहको छेड़े तैसे और भी तीक्ष्ण बाण मारकर द्रोणको छेड़ा ॥ २७ ॥ द्रोणने तेज कियाहुआ क्षुरप्र नामक बाण मारकर उसके धनुषको बीचमेंसे काटडाला ॥ २८ ॥ महारथी धृष्टकेतु शीघ्रही दूसरा धनुष ले मयूरके पँखोंसे सुशोभित बाणोंसे द्रोणको बींधनेलगा २९ द्रोणने भी चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मार हँसकर उसके सारथिके शिरको धड़से काटडाला ॥ ३० ॥ फिर धृष्टकेतुने भी

सत्वरः ॥३१॥ भारद्वाजाय चिक्षेप रुषितामिव पन्नगीम् । तामापतन्तीमालोक्य कालरात्रिमिवोद्यताम् ॥ ३२ ॥ अश्मसारमयीं गुर्वीं तपनीयविभूषिताम् शरैरनेकसाहस्रैर्भारद्वाजोच्छिनच्छितैः ३३ सा छिन्ना वहुभिर्वाणैर्भारद्वाजेन मारिष । गदा पपात कौरव्य नादयन्ती धरातलम् ॥ ३४ ॥ गदां विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टकेतुरमर्षणः । तोमरं व्यसृजद्वीरः शक्तिं च कनकोज्ज्वलाम् ॥ ३५ ॥ तोमरं पञ्चभिर्भित्त्वा शक्तिञ्चिच्छेद पञ्चभिः । तौ जग्मतुर्महीं छिन्नौ सर्पाविव गरुत्मता ॥ ३६ ॥ ततोस्य विशिखं तीक्ष्णं वधाय वधकाङ्क्षिणः । प्रेषयामास समरे भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ३७ ॥ स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयञ्चामितौजसः । अभ्य गाद्धरणीं वाणो हंसः पद्मवनं यथा ॥ ३८ ॥ पतङ्गं हि ग्रसेच्चाषो

पच्चीस वाण मारे,तब तो धृष्टकेतु हाथमें गदा ले रथकेऊपरसे कूद पडा ॥ ३१ ॥ और क्रोधमें भरीहुई सर्पिणीकी समान वह गदा उसने द्रोणके मारी, कालरात्रिकी समान उठीहुई सुवर्णसे विभूषित, उस लोहेकी बडीभारी गदाको आते देखकर द्रोणने सहस्रों तेज वाण मार उसको छिन्न भिन्न करडाला ॥ ३२-३३ ॥ हे राजन् ! द्रोणके अनेकों वाणोंसे छिन्न भिन्न हुई वह गदा पृथिवीको शब्दायमान करतीहुई गिरपडी ॥ ३४ ॥ गदाको नष्ट हुई देख धृष्टकेतु बहुतही खिसियागया और उसने एक तोमर तथा सुवर्णसे चमकतीहुई एक शक्ति द्रोणके मारी, ॥ ३५ ॥ द्रोणने पाँच वाणोंसे तोमरको नष्ट कर पाँच वाणोंसे शक्तिको भी नष्ट करडाला वे दोनों तोमर और शक्ति, गरुडके काटेहुए दो सर्पोंकी समान भूमिमें गिरपड़े ॥ ३६ ॥ तदनन्तर प्रतापी द्रोणने,अपनेको मार डालना चाहनेवाले धृष्टकेतुके वधके लिये उसके एक तेज वाण मारा ॥ ३७ ॥ वह वाण अगाध बलशाली धृष्टकेतुके कवच और हृदयको चीरकर, जैसे हंस कमलके वनमें

यथा क्षुद्रं बुभुक्षितः । तथा द्रोणोऽग्रसच्छूरो धृष्टकेतुं महाहवे ३९ निहते चेदिराजे तु तत्खण्डं पित्र्यमाविशत् । अमर्षवशमापन्नः पुत्रोऽस्य परमास्त्रवित् ॥४०॥ तमपि प्रहसन् द्रोणः शरैर्निन्ये यमक्षयम् । महाव्याघ्रो महारण्ये मृगशावं यथा बली॥४१॥तेषु प्रक्षीयमाणेषु पाण्डवेयेषु भारत । जरासन्धसुतो वीरः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥ स तु द्रोणं महाबाहुः शरधाराभिराहवे । अदृश्यमकरोत्तूर्णं जलदो भास्करं यथा ॥ ४३ ॥ तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः । व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४४ ॥ छादयित्वा रणे द्रोणो रथस्थं रथिनाम्वरम् । जारासन्धिं जघानाशु मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ ४५ ॥ यो यः स्म

घुस जाय तैसे, पृथिवीमें घुसगया ॥ ३८ ॥ जैसे भूखा नीलकण्ठ पक्षी छोटे२ टीड़ी आदि कीड़ोंको निगल जाय तैसे ही शूरवीर धृष्टकेतुको रणमें द्रोणाचार्य निगल गए ॥ ३९ ॥ चेदिराजके मारे जाने पर उसका पुत्र खिसिया गया और अस्त्रोंका पारगामी वह शिशुपालका पौत्र अपने पिताके स्थान पर आकर डटगया ॥ ४० ॥ जैसे महावनमें महाबली व्याघ्र मृगके बच्चेको यमसदनमें भेजदे तैसेही द्रोणने हँसकर उसको भी बाणोंके द्वारा यमराजके घर भेजदिया ॥ ४१ ॥ हे भारत ! जब इसप्रकार पाण्डवपक्षके योधा नष्ट होनेलगे, तब जरासन्धका शूरवीर पुत्र द्रोणके सामने आकर खड़ा होगया ॥ ४२ ॥ जैसे मेघ सूर्यको ढकदेते हैं तैसेही इसने झपटके साथ बाणधारा बरसाकर द्रोणको अदृश्य करदिया ॥४३॥ क्षत्रियोंको मसलने वाले द्रोणाचार्य उसकी फुरतीको देखकर शीघ्रतासे सैकड़ों और सहस्रों बाण छोड़ने लगे ॥४४॥ रथमें बैठेहुए रथियोंमें श्रेष्ठ जरासन्धके पुत्रको रणमें बाणोंसे ढककर शीघ्रतासे सबके सामने मारडाला ॥ ४५ ॥ जिनकी आयु समाप्त होगई है ऐसे प्राणियों

नीयते तत्र तं द्रोणो ह्यन्तकोपमः । आदत्त सर्वभूतानि प्राप्तकाले यथान्तकः ॥ ४६ ॥ ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे । शरैरनेकसाहस्रैः पाण्डवेयान् समावृणोत् ॥ ४७ ॥ ते तु नामाङ्किता बाणा द्रोणेनास्ताः शिलाशिताः । नरान्नागान् हयांश्चैव निजघ्नुः शतशो मृधे ॥ ४८ ॥ ते वध्यमाना द्रोणेन शक्रेणेव महासुराः । समकम्पन्त पञ्चाला गावः शीतार्दिता इव ॥ ४९ ॥ ततो निष्टानको घोरः पाण्डवानामजायत । द्रोणेन वध्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ॥ ५० ॥ प्रताप्यमानाः सूर्येण हन्यमानाश्च सायकैः । अन्वपद्यन्त पञ्चालास्तदा संत्रस्तचेतसः ॥ ५१ ॥ मोहिता बाणजालेन भारद्वाजेन संयुगे । ऊरुग्राहगृहीतानां पञ्चालानां महारथाः ॥ ५२ ॥ चेदयश्च महाराज सृञ्जयाः काशिको-

---

को जैसे काल सटासट निगल जाता है तैसेही, द्रोण भी उनके पास जो भी क्षत्रिय आता था उसको कालकी समान बन कर निगल जाते थे (मार डालते थे) तदनन्तर हे महाराज ! द्रोणने अपना नाम सुना सुना कर सहस्रों वाणों की वर्षासे पाण्डवोंके योधाओंको ढकदिया ॥ ४७ ॥ पत्थर पर घिसेहुए और जिनके ऊपर अपना नाम लिखा था ऐसे द्रोणके छोड़ेहुए उन वाणोंसे संग्राममें सैकडों हाथी घोड़े और मनुष्य मारेगए ॥ ४८ ॥ इन्द्रके हाथसे मरते हुए बडे २ असुरोंकी समान, द्रोणके हाथसे मरतेहुए पांचाल राजे जाड़ेसे अकड़ती हुई गौकी समान काँपनेलगे ॥ ४९ ॥ हे भरतर्षभ ! द्रोण पाण्डवों की सेनाका संहार करनेलगे, उस समय पाण्डव दुःखसूचक भयङ्कर चीखें मारनेलगे ॥ ५० ॥ द्रोणके वाणोंसे मारे जाते हुए और सूर्यकी गरमीसे तपतेहुए पांचालोंका मन व्याकुल होगया ॥ ५१ ॥ वे युद्धमें द्रोणके वाणोंसे मुरझासे गए थे तथा ज्यों त्यों जाँघोंके बलसे अपने शरीरको रोके हुए खड़े थे

सलाः । अभ्यद्रवन्त संहृष्टा भारद्वाजं युयुत्सया ॥ ५३ ॥ ब्रुवन्तश्च रणेन्योन्यं चेदिपञ्चालसृञ्जयाः । हत द्रोणं हत द्रोणमिति ते द्रोणमभ्ययुः ॥ ५४ ॥ यतन्तः पुरुषव्याघ्राः सर्वशक्त्या महाद्युतिम् । निनीषवो युधि द्रोणं यमस्य सदनं प्रति ॥ ५५ ॥ यतमानांस्तु ताञ्छूरान् भारद्वाजः शिलीमुखैः । यमाय प्रेषयामास चेदिमुख्यान् विशेषतः ॥ ५६ ॥ तेषु मक्षीयमाणेषु चेदिमुख्येषु सर्वशः । पञ्चालाः समकम्पन्त द्रोणसायकपीडिताः ॥ ५७ ॥ प्राक्रोशन् भीमसेनन्ते धृष्टद्युम्नञ्च भारत । दृष्ट्वा द्रोणस्य कर्माणि तथा रूपाणि मारिष ॥ ५८ ॥ ब्राह्मणेन तपो नूनं चरितं दुश्चरं महत् । तथा हि युधि संक्रुद्धो दहति क्षत्रियर्षभान् ॥ ५९ ॥ धर्मो युद्धं क्षत्रियस्य ब्राह्मणस्य परन्तपः । तपस्वी कृतविद्यश्च प्रेक्षिते-

तो भी वे पांचालोंके, चेदियोंके कोसलोंके, सृंजयोंके और काशी के महारथी प्रसन्न हो द्रोणाचार्यके साथ लड़नेकी इच्छासे उन पर टूटपड़े ॥५२–५३॥ पांचाल और सृंजय द्रोणको मारडालो द्रोणको मारडालो ऐसा कहतेहुए द्रोणके ऊपर झपटे ॥ ५४ ॥ रणमें महाकान्तिमान् द्रोणको यमसदन भेजनेकी इच्छासे वे पुरुषव्याघ्र पूरी शक्तिसे पराक्रम करनेलगें ॥ ५५ ॥ परन्तु द्रोणने उद्योग करतेहुए उनको विशेषतः चेदियोंको वाणोंके द्वारा यमलोकमें भेजदिया ॥ ५६ ॥ जव चेदियोंके मुख्य योधा ही सव ओरसे मारे जानेलगे तव द्रोणके वाणोंसे पीड़ा पातेहुए पांचाल थर थर काँपनेलगे ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! द्रोणके ऐसे कर्मोंको देख वे भीमसेन और धृष्टद्युम्नसे चिल्ला २ कर कहनेलगे, कि-५८ इस ब्राह्मणने वास्तवमें वडा कठिन तप किया है इसीसे यह क्रोधमें भर वड़े २ क्षत्रियोंका संहार किये चलाजाता है ॥ ५९ ॥ क्षत्रियका परमधर्म युद्ध है और ब्राह्मणका परमधर्म तप है, तपस्वी और उस पर विद्यावान् तो दृष्टिमात्रसेही (दूसरेको)

नापि निर्दहेत् ॥ ६० ॥ द्रोणास्त्रमग्निसंस्पर्शं प्रविष्टाः क्षत्रियर्षभाः । वहवो दुस्तरं घोरं यत्रादह्यन्त भारत ॥ ६१ ॥ यथावलं यथोत्साहं यथासत्त्वं महाद्युतिः । मोहयन् सर्वभूतानि द्रोणो हन्ति वलानि नः॥६२॥तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्षत्रधर्मा व्यवस्थितः । अर्द्धचन्द्रेण चिच्छेद क्षत्रधर्मा महावलः ॥ ६३ ॥ क्रोधसम्मिश्रमनसो द्रोणस्य सशरं धनुः । सुसंरब्धतरो भूत्वा द्रोणः क्षत्रियमर्द्दनः६४ अन्यत् कार्मुकमादाय भास्वरं वेगवत्तरम् । तत्राधाय शरं तीक्ष्णं परानीकविशातनम् ॥ ६५ ॥ आकर्णपूर्णमाचार्यो वलवानभ्यवासृजत् । स हत्वा क्षत्रधर्माणं जगाम धरणीतलम्६६स भिन्नहृदयो वाहान्न्यपतन्मेदिनीतले। ततः सैन्यान्यकम्पन्त धृष्टद्युम्नसुते हते६७ अथ द्रोणं समारोहच्चेकितानो महावलः । स द्रोणं दशभिर्भित्त्वा

भस्म करसकता है ॥ ६० ॥ हे भारत ! वहुतसे क्षत्रिय राजे, अस्त्रकी समान तीक्ष्ण स्पर्शवाले द्रोणरूपी दुस्तर और घोर अग्निमें प्रवेश करके भस्म होगए ॥ ६१ ॥ महाप्रकाशवान् द्रोणाचार्य अपने वल, उत्साह और सत्त्वके अनुसार सव प्राणियोंको मोहित कर हमारी सेनाका संहार कररहे हैं ॥ ६२ ॥पञ्चालोंकी इस वातको सुनकर महावली क्षत्रधर्मा द्रोणके सामने आकर डटगया और अर्धचन्द्राकार वाण मारकर क्रोधसे खिन्नचित्त हुए द्रोणके धनुषको वाणसहित काटडाला, इससे क्षत्रियमर्दन द्रोणको और भी क्रोध चढ़ा ॥ ६३–६४ ॥ तव वली द्रोणने दूसरा धनुष ले, उसके ऊपर चमकता हुआ और तीव्र वेगवाला, शत्रुकी सेनाका नाशक, तीक्ष्ण वाण चढ़ाकर धनुषको कान तक खेंच क्षत्रधर्माके मारा, वह वाण क्षत्रधर्माको मार पृथिवीतलमें घुसगया ॥ ६५–६६ ॥ क्षत्रधर्माका हृदय फटगया और वह घोड़े परसे नीचे गिरपड़ा, उस समय धृष्टद्युम्नके पुत्र क्षत्रधर्माके मारे जानेपर सेनाएँ काँपने लगीं ॥ ६७ ॥ तदनन्तर महावली

प्रत्यविध्यत् स्तनांतरे ॥ ६८ ॥ चतुर्भिःसारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् । तथाचार्यस्त्रिभिर्वाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ६९ ॥ ध्वजं सप्तभिरुन्मथ्य यन्तारमरमवधीत्त्रिभिः। तस्य सूते हते तेऽश्वा रथमादाय विद्रुताः॥७०॥ समरे शरसम्वीता भारद्वाजेन मारिष । चेकितानरथं दृष्ट्वा हताश्वं हतसारथिम् ॥ ७१ ॥ तान् समेतान्रणे शूरान् चेदिपञ्चालसृञ्जयान् । समन्ताद् द्रावयन् द्रोणो बह्वशोभत मारिष ॥ ७२ ॥ आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः । रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः पोडशवर्षवत् ॥ ७३ ॥ अथ द्रोणं महाराज विचरन्तमभीतवत् । वज्रहस्तममन्यन्त शत्रवः शत्रुसूदनम् ॥७४॥ ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्द्रुपदो बुद्धिमान्नृप । लुब्धोयं

चेकितान द्रोणके ऊपर दौड़ा उसने दश बाण मारकर द्रोणको बींधडाला और एक बाण मारकर उनकी छातीको घायल कर डाला ॥ ६८ और चार बाण मारकर उनके सारथिको बींध डाला तथा चार बाण मारकर उनके चारों घोड़ोंको घायल कर डाला तब द्रोणने तीन बाण मारकर उसकी छाती और भुजाको घायल करदिया ॥ ६९ ॥ फिर सात बाणोंसे उसकी ध्वजाको तोड़कर तीन बाणोंसे उसके सारथिको समाप्त करदिया. सारथिके मारे जानेपर द्रोणके बाणोंसे छिदेहुए वे घोड़े रणमें रथको लेकर भागने लगे, चेकितानके रथके घोड़े और सारथिको मरा हुआ देखकर ॥ ७०–७१ ॥ हे राजन् ! इकट्ठे हो चढ़कर आये हुए शूरवीर, चेदि, पंचाल और सृञ्जयोंको चारों ओरको भगाते हुए द्रोण बहुतही शोभा पाने लगे ॥ ७२ ॥ श्यामवर्ण कानों तकके श्वेत केशोंवाले पिचासी वर्षके वृद्ध द्रोण रणमें सोलह वर्षके बालककी समान घूमरहे थे ॥ ७३ ॥ हे महाराज ! शत्रुसूदन द्रोणाचार्यको निडर हो रणमें घूमते देखकर, शत्रु उनको वज्रधारी इन्द्र माननेलगे ॥ ७४ ॥ हे राजन् !

क्षत्रियान् हन्ति व्याघ्रः क्षुद्रमृगानिव ॥ ७५ ॥ कृच्छ्रान् दुर्योधनो लोकान् पापः प्राप्स्यति दुर्मतिः । यस्य लोभाद्विनिहताः समरे क्षत्रियर्षभाः ॥ ७६ ॥ शतशः शेरते भूमौ निकृत्ता इव गोवृषाः । रुधिरेण परीताङ्गाः श्वसृगालादनीकृताः ॥७७॥ एवमुक्त्वा महाराज द्रुपदोऽक्षौहिणीपतिः । पुरस्कृत्य रणे पार्थान् द्रोणमभ्यद्रवद् द्रुतम् ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणपराक्रमे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

सञ्जय उवाच । व्यूहेष्वालोड्यमानेषु पाण्डवानां ततस्ततः । सुदूरमन्वयुः पार्थाः पञ्चालाः सह सोमकैः ॥ १ ॥ वर्त्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे लोमहर्षणे । संक्षये जगतस्तीव्रे युगान्त इव भारत २ द्रोणे युधि पराक्रान्ते नर्दमाने मुहुर्मुहुः । पञ्चालेषु च क्षीणेषु

तदनन्तर बुद्धिमान् महाबाहु राजा द्रुपद बोले, कि—जैसे भूखा व्याघ्र छोटे २ मृगोंको अनायासही मारडालता है तैसे ही यह राज्य अथवा यशके लोभी ब्राह्मण क्षत्रियोंका संहार करेडालता है ॥ ७५ ॥ दुर्बुद्धि पापी दुर्योधन, कि–जिसके लोभके कारणसे बड़े २ क्षत्रिय समरमें मारेगए घोर नरकमें पड़ेगा ॥ ७६ ॥ हा! सैंकड़ों राजे लोहूलुहान हो भूमिमें पड़ेहुए हैं और कुत्ते तथा गीदड उन्हें मरेहुए बैलोंकी समान खारहे हैं ॥ ७७ ॥ हे महाराज! अक्षौहिणी सेनाका स्वामी राजा द्रुपद इसप्रकार कहता २ पाण्डवोंको आगे कर शीघ्रतासे द्रोणके ऊपरको झपटा ॥७८॥

एकसौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२५ ॥

संजयने कहा कि—जब द्रोणने पांडवोंकी सेनाको चारों ओरसे रगडा, तब पांचाल, सोमक और पांडव दूर भागगए ॥१॥ हे भारत! जब इसप्रकार रोमांच खड़े करनेवाला जगत्संहारक प्रलयकालकी समान युद्ध चलरहा था ॥ २ ॥ और द्रोण युद्धमें

वध्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ३ ॥ नापश्यच्छरणं किञ्चिद्धर्मराजो युधिष्ठिरः । चिन्तयामास राजेन्द्र कथमेतद्भविष्यति ॥४॥ ततो वीक्ष्य दिशः सर्वाः सव्यसाचिदिदृक्षया । युधिष्ठिरो ददर्शाथ नैव पार्थं न माधवम् ॥५॥ सोऽपश्यन्नरशार्दूलं वानरर्षभलक्षणम् । गांडीवस्य च निर्घोषमश्रृण्वन् व्यथितेन्द्रियः ॥ ६ ॥ अपश्यन् सात्यकिं चापि वृष्णीनां प्रवरं रथम् । चिन्तयाभिपरीताङ्गो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥ नाध्यगच्छत्तदा शान्ति तावपश्यन्नरोत्तमौ । लोकोपक्रोशभीरुत्वाद्धर्मराजो महामनाः ॥ ८ ॥ अचिन्तयन्महाबाहुः शैनेयस्य रथं प्रति । पदवीं प्रेषितश्चैव फाल्गुनस्य मया रणे ९ शैनेयः सात्यकिः सत्यो मित्राणामभयङ्करः । तदिदं ह्येकमेवासीत्

पराक्रम कर वारम्वार गरज रहे थे, पंचाल क्षीण होरहे थे, तथा पांडव मारे जारहे थे ॥ ३ ॥ उस समय धर्मराजको कोई रक्षक दिखाई न दिया और हे राजेन्द्र ! वे चिन्ता करने लगे, कि–इसका क्या परिणाम निकलेगा ? ॥ ४ ॥ इसप्रकार विचार करने पर उन्होंने अर्जुनको देखनेकी इच्छासे सब दिशाओंमें दृष्टि डाली परन्तु उनको अर्जुन या सात्यकि कोई भी नहीं दीखा जिसकी ध्वजामें वानरका चिन्ह है ऐसे नरशार्दूल अर्जुनके दिखाई न देनेसे और गांडीव धनुषकी टंकार सुनाई न आनेसे, तथा वृष्णियोंमें मुख्य महारथी सात्यकिके भी दिखाई न पडने पर धर्मराज युधिष्ठिरकी इन्द्रियें व्याकुल होगईं और वे घवराहटमें पडगए ॥ ६–७ ॥ उन दोनों पुरुषोत्तमोंके न दीखने से युधिष्ठिरको चैन नहीं पडा, उदार मनवाले महाबाहु धर्मराज संसारकी निन्दासे डरकर मनमें सात्यकिके विषयमें विचारने लगे, कि–सत्यपराक्रमी, मित्रोंको अभय देनेवाले शिनिपुत्र सात्यकिको मैंने अर्जुनके पीछे उसकी सुध लेनेके लिये भेजा है पहिले तो मुझे एक की ही चिन्ता थी परन्तु अब दोनोंकी चिन्ता

द्विधा जातं प्रमाद्य वै ॥ १० ॥ सात्यकिश्च हि विज्ञेयः पाण्डवश्च धनञ्जयः । सात्यकिं प्रेषयित्वा तु पाण्डवस्य पदानुगम् ॥११ ॥ सात्वतस्यापि तां युद्धे प्रेषयिष्ये पदानुगम् । करिष्यामि प्रयत्नेन भ्रातुरन्वेषणं यदि ॥ १२ ॥ युयुधानमनन्विष्य लोको मां गर्हयिष्यति । भ्रातुरन्वेषणं कृत्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १३ ॥ परित्यजति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् । लोकापवादभीरुत्वात् सोऽहं पार्थं वृकोदरम् ॥ १४ ॥ पदवीं प्रेषयिष्यामि माधवस्य महात्मनः । यथैव च मम प्रीतिरर्जुने शत्रुसूदने ॥ १५ ॥ तथैव वृष्णिवीरेऽपि सात्वते युद्धदुर्मदे । अतिभारे नियुक्तश्च मया शैनेयनन्दनः ॥१६॥ स तु मित्रोपरोधेन गौरवात्तु महावलः । प्रविष्टो भारतीं सेनां मकरः सागरं यथा ॥ १७ ॥ असौ हि श्रूयते शब्दः

होरही है ॥ ८–१० ॥ मुझे अब सात्यकिकी सुध लेनी चाहिये और अर्जुनकी भी खबर मँगवानी चाहिये, मैंने अर्जुनका समाचार लेनेके लिये ये उसके पीछे सात्यकिको भेजदिया परन्तु अब युद्धमें सात्यकिका समाचार लेनेके लिये उसके पास किसको भेजूँ ? यदि मैं केवल भाईको खोजनेके लिये सात्यकिको भेजकर चुप होजाऊँगा और सात्यकिकी खोज नहीं करूँगा तो संसार मेरी निन्दा करेगा, कि–धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने सात्यकिको तो भाईकी खोजके लिये भेजदिया, परन्तु सत्यपराक्रमी वृष्णिवंशी सात्यकिकी कुछ सुध नहीं ली, मैं संसारकी निन्दासे बहुत ही डरता हूँ, अतः मैं महात्मा सात्यकिकी खोजके लिये भीमको भेजूँ तो ठीक हो, शत्रुसूदन अर्जुनसे मैं जितना प्रेम करता हूँ उतना ही प्रेम वृष्णिवीर युद्धदुर्मद सात्यकिसे भी करता हूँ और महावली सात्यकिको मैंने ही वडाभारी काम भी सौंपदिया है ॥ ११–१६ ॥ और वह मित्रके अनुरोध तथा अपना गौरव रखनेके लिये समुद्रमें नाकेके घुसनेकी समान, इस

शूराणामनिवर्त्तिनाम्। मिथः संयुध्यमानानां वृष्णिवीरेण धीमता १८ प्राप्तकालं सुबलवन्निश्चितं बहुधा हि मे। तत्रैवं पाण्डवेयस्य भीमसेनस्य धन्विनः ॥ १९ ॥ गमनं रोचते मह्यं यत्र यातौ महारथौ। न चापसह्यं भीमस्य विद्यते भुवि किञ्चन ॥ २० ॥ शक्तो ह्येष रणे यत्तः पृथिव्यां सर्वधन्विनाम्। स्ववाहुवलमास्थाय प्रतिव्यूहितुमञ्जसा ॥ २१ ॥ यस्य वाहुवलं सर्वे समाश्रित्य महात्मनः। वनवासान्निवृत्ताः स्म न च युद्धेषु निर्जिताः॥ २२ ॥ इतो गते भीमसेने सात्वतं प्रति पाण्डवे। सनाथौ भवितारौ हि युधि सात्वतफाल्गुनौ ॥२३॥ कामन्त्वशोचनीयौ तौ रणे सात्वतफाल्गुनौ। रक्षितौ वासुदेवेन स्वयञ्चास्त्रविशारदौ ॥ २४ ॥ अवश्यन्तु मया कार्यमात्मनः शोकनाशनम्। तस्माद्भीमं नियोक्ष्यामि सात्वतस्य

भरतराजकी सेनामें घुसगया है ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् वृष्णिवीर सात्यकिसे लड़तेहुए रणमेंसे पीछेको न हटनेवाले वीरोंका यह शब्द सुनाई देरहा है ॥ १८ ॥ इस समय कौनसा काम करना चाहिये यह विचारता हूँ तो मुझे इस समय धनुर्धर भीमसेनको भेजना ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि-संसारमें ऐसा कोई भी काम नहीं है जिसको भीमसेन न करसके ॥ १९-२० ॥ रणमें तयार होकर खडाहुआ भीमसेन अपने भुजबलके सहारेसे समस्त पृथ्वीके धनुषधारियोंके लिये पर्याप्त होसकता है ॥ २१ ॥ उस महात्माके भुजबलके आसरेसे हम वनवाससे सकुशल लौट सके थे और इस युद्धमें भी हम अभीतक पराजित नहींहुएहैं २२ यहाँसे पाण्डुपुत्र भीमसेनके सात्यकिके पास जाने पर सात्यकि और अर्जुन युद्धमें सनाथ होजायँगे ॥ २३ ॥ यद्यपि श्रीकृष्ण रणमें उन दोनोंकी रक्षा कररहे होंगे और वे दोनों अर्जुन तथा सात्यकि स्वयं भी अस्त्रविद्यामें कुशल हैं अतः उनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ २४ ॥ परन्तु मुझे तो किसीप्रकार अपनी

पदानुगम् ॥ २५ ॥ ततः प्रतिकृतं मन्ये विधानं सात्यकिं प्रति ।
एवं निश्चित्य मनसा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥ यन्तारमब्रवी-
द्राजा भीमं प्रति नयस्व माम् । धर्मराजवचः श्रुत्वा सारथिर्हयको-
विदः ॥ २७ ॥ रथं हेमपरिष्कारं भीमान्तिकमुपानयत् । भीम-
सेनमनुप्राप्य प्राप्तकालमनुस्मरन् ॥ २८ ॥ कश्मलं प्राविशद्राजा
बहु तत्र समादिशत् । स कश्मलसमाविष्टो भीममाहूय पार्थिवः २९
अब्रवीद्वचनं राजन् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । यः स देवान् सगन्ध-
र्वान् दैत्यांश्चैकरथोऽजयत् ॥ ३० ॥ तस्य लक्ष्म न पश्यामि भीम-
सेनानुजस्य ते । ततोऽब्रवीद्धर्मराजं भीमसेनस्तथागतम् ॥ ३१ ॥
नैवाद्राक्षं न चाश्रौषं तव कश्मलमीदृशम् । पुरातिदुःखदीर्णानां

चिन्ता मिटानी ही चाहिये अतः मैं भीमसेनको सुध लेनेके लिये सात्यकिके पास भेजूँगा ॥ २५ ॥ ऐसा होनेसे मैं समझता हूँ कि-मैं सात्यकिकी रक्षाकी चिन्तासे छूट जाऊँगा, धर्मपुत्र युधिष्ठिर इसप्रकार मनमें निश्चय करके ॥ २६ ॥ अपने सारथिसे कहनेलगे कि-तू मुझे भीमसेनके पास लेचल धर्मराजकी बात सुनकर अश्वशास्त्रमें चतुर सारथी ॥ २७ ॥ सुवर्णसे मढ़े हुए रथको भीमसेनके पास लेगया, धर्मराज भीमसेनको समीपमें बुलाकर क्या करना चाहिये यह विचार करनेलगे ॥२८॥ उस समय राजा युधिष्ठिरको शोकने दबालिया और वे अपने मनको बहुत प्रकारसे समझाने लगे परन्तु उनकी घबराहट दूर नहीं हुई और उन्होंने भीमसेनको बुलाकर यह बात कही हे राजन्! कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर भीमसेनसे कहनेलगे, कि-अरे भीमसेन! जिस तेरे भाई अर्जुनने एकरथमें बैठकर देवता, गन्धर्व और दैत्योंको जीतलिया था, उस तेरे छोटे भाई अर्जुनके रथका चिन्ह तक भी इससमय नहीं दीखता, धर्मराजको इसप्रकार घबड़ाते देख भीमसेन उनसे कहनेलगा कि-२९-३१ आपमें ऐसी घबडा-

भवान् गतिरभूद्धि नः ॥ ३२ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र शाधि किं करवाणि ते । न त्वकार्यमसाध्यं वा विद्यते मम मानद॥३३॥आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मन कृथाः । तमब्रवीदश्रुपूर्णः कृष्णसर्प इव श्वसन् ॥ ३४ ॥ भीमसेनमिदं वाक्यं प्रम्लानवदनो नृपः। यथा शंखस्य निर्घोषः पाञ्चजन्यस्य श्रूयते ॥ ३५ ॥ पूरितो वासुदेवेन संरब्धेन यशस्विना । नूनमद्य हतः शेते तव भ्राता धनञ्जयः ॥ ३६ ॥ तस्मिन् विनिहते नूनं युध्यतेऽसौ जनार्दनः । यस्य सत्ववतो वीर्यमुपजीवन्ति पाण्डवाः ॥ ३७ ॥ यं भयेष्वभिगच्छन्ति सहस्राक्षमिवामराः । स शूरः सैन्धवप्रेप्सुरन्वयाद्भारतीञ्चमूम् ॥ ३८ ॥ तस्य वै गमनं विद्मो भीम नावर्त्तनं पुनः ।

इट पहिले कभी न देखी थी और न कभी सुनी थी, पहिले जब हमारा चित्त बड़ेभारी दुःखसे फटाजाता था तब आप ही ने हमें आश्वासन दिया था ॥ ३२ ॥ हे राजेन्द्र ! उठो ! उठो ! सावधान होजाओ, मुझे आज्ञा दो, मैं आपका कौनसा काम करूँ ? हे मानद ! इस संसारमें ऐसा कोई भी काम नहीं है जिसे मैं सिद्ध न करसकूँ अथवा उसको अकार्य मानकर छोड बैठूँ ३३ हे कुरुश्रेष्ठ ! आप मुझे आज्ञादें और शोक न करें उस समय उतरेहुए मुखवाले राजा युधिष्ठिर काले साँपकी समान श्वास लेकर भीमसेनसे यह कहने लगे कि–यशस्वी श्रीकृष्णके क्रोधमें भरकर बजाएहुए पाँचजन्य शंखके शब्दको सुनकर और अर्जुनके शंखके शब्दको न सुनकर शंका होती है,कि–तेरा भाई अर्जुन रणभूमिमें कहीं मरणशय्या पर तो नहीं सोरहा है ? ३४–३६ उसके मारे जाने पर ही श्रीकृष्ण लडरहे हैं हा।जिस वीर्यवान्के भरोसे पर पांडव जीवन धारण कियेहुएहैं ॥ ३७ ॥ और हम आत्ति पड़ने पर, देवता जैसे इन्द्रके पास जाते हैं तैसे ही उसके पास जाते थे वह शूर वीर जयद्रथको मारनेके लिये अकेला ही

श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयो महारथः ॥ ३९ ॥ व्यूढोरस्को महाबाहुर्मत्तद्विरदविक्रमः । चकोरनेत्रस्ताम्रास्यो द्विषतां भयवर्द्धनः ॥ ४० ॥ तदिदं मम भद्रन्ते शोकस्थानमरिन्दम । अर्जुनार्थे महाबाहो सात्वतस्य च कारणात् ॥ ४१ ॥ वर्द्धते हविषेवाग्निरिध्यमानः पुनः पुनः । तस्य लक्ष्म न पश्यामि तेन विंदामि कश्मलम् ॥ ४२ ॥ तं विद्धि पुरुषव्याघ्रं सात्वतञ्च महारथम् । स तं महारथं पश्चादनुयातस्तवानुजम् ॥ ४३ ॥ तमपश्यन्महाबाहुमहं विन्दामि कश्मलम् । पार्थे तस्मिन्हते चैव युध्यते नूनमग्रणीः ॥ ४४ ॥ सहायो नास्य वै कश्चित्तेन विन्दामि कश्मलं ।

इस भारती सेनामें घुसगया है ॥ ३८ ॥ हे भीम ! मैंने उसको इस सेनामें घुसते तो देखा है, परन्तु लौटता हुआ वह दिखाई नहीं दिया, श्यामवर्ण तरुण अर्जुन महारथी कुञ्चित केशवाला और रूपमें देखने योग्य है ॥ ३९ ॥ उसकी छाती मांससे भरीहुई है, भुजाएँ बडी २ हैं और वह पराक्रममें मतवाले हाथीकी समान है उसके नेत्र चकोरके नेत्रोंकी समान लाल २ हैं और उसे देखते ही शत्रुओंको डर लगनेलगता है ॥ ४० ॥ उसको मैंने सेनामें घुसते देखा है परन्तु अभीतक वह लौटा नहीं, हे शत्रुदमन ! तेरा कल्याण हो ! इस कारण ही मुझे शोक होरहा है महाबाहो ! जैसे घी डालनेसे अग्नि अधिकाधिक प्रज्वलित होती है, तैसे ही अर्जुन और सात्यकिकी चिन्ता मेरे शोकको अधिकाधिक बढारही है, अर्जुनका इस समय कोई चिन्ह तक नहीं दीखता, इससे मुझे मूर्छासी आई जाती है ॥ ४१–४२ तू उस पुरुषव्याघ्र अर्जुनको खोज और सात्यकि महारथी अर्जुनका समाचार लानेके उसके पास गया था, अतः उस महारथी सात्यकिका भी पतालगा ॥४३॥ वह महाबाहु सात्यकि भी मुझे नहीं दीखता, इससे भी मेरे मुखका रङ्ग फीका पड़ा जारहा है,

तस्मिन्कृष्णो हते नूनं युध्यते युद्धकोविदः ॥ ४५ ॥ न हि मे शुद्ध्यने भावस्तयोरेव परन्तप । स तत्र गच्छ कौन्तेय यत्र यातो धनञ्जयः ॥ ४६ ॥ सात्यकिश्च महावीर्यः कर्त्तव्यं यदि मन्यसे । वचनं मम धर्मज्ञ भ्राता ज्येष्ठो भवामि ते ॥ ४७ ॥ न तेऽर्जुनस्तथा ज्ञेयो ज्ञातव्यः सात्यकिर्यथा । चिकीर्षुर्मत्प्रियं पार्थः स यातः सव्यसाचिनः ॥ ४८ ॥ पदवीं दुर्गमां घोरामगम्यामकृतात्मभिः । दृष्ट्वा कुशलिनौ कृष्णौ सात्वतञ्चैव सात्यकिम्॥ सम्विदश्चैव कुर्यास्त्वं सिंहनादेन पाण्डव ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरचिन्तायां षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

भीम उवाच । ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणानवहद्यः पुरा रथः । तमा-

उन दोनोंके मारेजाने पर ही श्रीकृष्ण युद्ध कररहे हैं ॥ ४४॥ उसके पास कोई भी सहायक नहीं था, इससे मुझे बडी चिन्ता होरही है मालूम होता है, युद्धचतुर श्रीकृष्ण अर्जुनके मारे जाने से युद्ध कररहे हैं ॥ ४५ ॥ हे परन्तप ! उनकी ओरसे मेरे मनको किसीप्रकारका निश्चय नहीं होता अतः हे कौन्तेय ! यदि तू मेरा कहना माने तो हे धर्मज्ञ ! जिस ओर महात्मा अर्जुन और सात्यकि गए हों, वहीं तू जा ! मैं तेरा बडाभाई हूँ ॥४६-४७॥ सात्यकिको तू अर्जुनसे भी अधिक समझ क्योंकि-हे पार्थ ! वह मेरा प्रिय करनेके लिये दुर्गम भयङ्कर और साधारण मनुष्योंसे अगम्य भारती सेनाको लाँघकर अर्जुनकी सहायता करनेके लिये गया है, हे पांडव ! यदि तुझे श्रीकृष्ण अर्जुन और सात्वतवंशी सात्यकि राजीखुशी दीखजायँ तो तू सिंहकी समान गर्जना करके उनका कुशल समाचार मुझेदेना ४८-४९

एकसौ छव्वीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२६ ॥

भीमसेनने उत्तर दिया, कि हे धर्मराज ! ब्रह्मा, शंकर और

स्थाय गतौ कृष्णौ न तयोर्विद्यते भयम् ॥ १ ॥ आज्ञान्तु शिरसा विभ्रदेष गच्छामि मा शुचः । समेत्य तान्नरव्याघ्रान् तव दास्यामि सम्विदम् ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच । एतावदुक्त्वा प्रययौ परिदाय युधिष्ठिरम् । धृष्टद्युम्नाय वलवान् सुहृद्भ्यश्च पुनः पुनः ॥३॥ धृष्टद्युम्नञ्चेदमाह भीमसेनो महावलः । विदितन्ते महावाहो यथा द्रोणो महारथः ॥४॥ ग्रहणे धर्मराजस्य सर्वोपायेन वर्त्तते । न च मे गमने कृत्यं तादृक् पार्षत विद्यते ॥ ५ ॥ यादृशं रक्षणे राज्ञः कार्यमात्ययिकं हि नः । एवमुक्तोस्मि पार्थेन प्रतिवक्तुञ्च नोत्सहे ॥ ६ ॥ प्रयास्ये तत्र यत्रासौ मुमूर्षुः सैन्धवः स्थितः । धर्मराजस्य वचने स्थातव्यमविशंकया ॥ ७ ॥ यास्यामि पदवीं

इन्द्र पहिले जिस रथमें वैठकर युद्ध करनेके लिये यात्रा करचुके हैं, उस ही रथमें बैठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन भी युद्ध करने गए हैं, अतः उनके ऊपर संकट नहीं पडसकता ॥ १ ॥ तो भी आपकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मैं उनके पास जाता हूँ, अतः तुम शोक न करो, मैं उन नरव्याघ्रोंसे मिलकर आपको उनका समाचार दूँगा ॥२॥ सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! धर्मराजसे इसप्रकार कहकर, धृष्टद्युम्न आदि स्नेहियोंसे राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करनेको वारम्वार कहकर भीमसेन चलदिया ॥ ३ ॥ और चलते२ महावली भीमसेन धृष्टद्युम्नसे कहने लगा, कि हे महाभुज ! यह तुम्हें मालूम ही है, कि–महारथी द्रोण युधिष्ठिरको पकड़नेके लिये सब तरहसे प्रयत्न कररहे हैं, हे पृषत्पुत्र ! अतः इस समय अर्जुनके पास मेरा जाना उतना आवश्यक नहीं है, कि–जैसा राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करना, क्योंकि–यह वड़े दायित्वका काम है, परन्तु धर्मराजने मुझे आज्ञा दी है, अतः मैं उनसे निषेध नहीं करसकता ॥ ४–६ ॥ मुझे धर्मराजकी आज्ञा विना सोचे विचारे मानलेनी चाहिये, अतः जहाँपर मरनेको तयार

भ्रातुः सात्वतस्य च धीमतः । सोऽत्र यत्तो रणे पार्थ परिरक्ष युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥ एतद्धि सर्वकार्याणां परमं कृत्यमाहवे । तमब्रवीन्महाराज धृष्टद्युम्नो वृकोदरम् ॥ ९ ॥ ईप्सितं ते करिष्यामि गच्छ पार्थाविचारयन् । नाहत्वा समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नं कथञ्चन १० निग्रहं धर्मराजस्य प्रकरिष्यति संयुगे । ततो निक्षिप्य राजानं धृष्टद्युम्ने च पाण्डवम् ॥ ११ ॥ अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं प्रययौ येन फाल्गुनः । परिष्वक्तश्च कौन्तेयो धर्मराजेन भारत ॥ १२ ॥ आघ्रातश्च तथा मूर्ध्नि श्रावितश्चाशिषः शुभाः । कृत्वा प्रदक्षिणं विप्रानर्चितांस्तुष्टमानसान् ॥ १३ ॥ आलभ्य मङ्गलान्यष्टौ पीत्वा कैरातकं मधु । द्विगुणद्रविणो वीरो मदरक्तान्तलोचनः १४

जयद्रथ खडा है तहाँ मैं जाता हूँ ॥ ७ ॥ जिस मार्गसे भाई अर्जुन और बुद्धिमान् सात्यकि गए हैं उस ही मार्गसे मैं भी उनके पास जाता हूँ, अतः तुम सावधान होकर युद्धमें राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करते रहना ॥ ८ ॥ संग्राममें राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करना हमारा मुख्य काम है, हे महाराज ! यह सुनकर धृष्टद्युम्नने भीमसेनसे कहा, कि ९ हे भीम ! तुम निश्चिंत होकर जाओ मैं तुम्हारी इच्छानुसार ही काम करूँगा, द्रोण रणमें धृष्टद्युम्नको मारे विना युद्धमें धर्मराजको किसी प्रकारभी कैद नहीं करसकेंगे, इसप्रकार बातें कर भीमसेनने अपने बड़े भाई युधिष्ठिरको प्रणाम किया और उनको धृष्टद्युम्नकी रक्षामें छोडदिया, हे भरतवंशी राजन्! धर्मराजने भी अर्जुनके मार्गसे ही अर्जुनके पास जानेवाले भीमसेनका आलिंगन किया और उसके शिरको सूँघा तथा उसको शुभ आशीर्वाद दिये, तदनन्तर भीमसेनने ब्राह्मणोंकी पूजा कर उनके मनको प्रसन्न किया और उनकी परिक्रमा की, फिर आठ प्रकारकी माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श किया तथा कैरातक नामकी मदिराको पीकर वह विशेष बलवान् हुआ, इस समय उस वीरके

विप्रैः कृतस्वस्त्ययनो विजयोत्पादसूचितः । पश्यन्नेवात्मनो बुद्धिं विजयानन्दकारिणीम् ॥ १५ ॥ अनुलोमानिलैश्चाशु प्रदर्शितजयोदयः । भीमसेनो महाबाहुः कवची शुभकुण्डली ॥ १६ ॥ साङ्गदः सतलत्राणः स रथी रथिनाम्वरः । तस्य कार्ष्णायसं वर्म हेमचित्रं महर्द्धिमत् ॥ १७ ॥ विबभौ सर्वतः श्लिष्टं सविद्युदिव तोयदः । पीतरक्तासितसितैर्वासोभिश्च सुवेष्टितः ॥ १८ ॥ कण्ठत्राणेन च बभौ सेन्द्रायुध इवाम्बुदः । प्रयाते भीमसेने तु तव सैन्यं युयुत्सया ॥ १९ ॥ पाञ्चजन्यरवो घोरः पुनरासीद्विशाम्पते । तं श्रुत्वा निनदं घोरं त्रैलोक्यत्रासनं महत् ॥ २० ॥ पुनर्भीमं महाबाहुं धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत । एष वृष्णिप्रवीरेण ध्मातः सलिलजो

नेत्रोंके कोप-मदसे लाल२ होगए ॥ १०-१४ ॥ ब्राह्मणोंने स्वस्तिवाचन कर यह सूचित किया कि-तुम्हारी विजय होगी, भीम भी अपनी बुद्धिको विजयके आनन्दसे भरीहुई देखरहा था १५ पवन भी अनुकूल चलकर उसकी विजयकी सूचना देरहा था, महाभुज भीमसेन कवच और सुन्दर कुण्डल पहिरे हुए तथा हाथोंमें बाजूबन्द धारण कियेहुए था और रथियोंमें श्रेष्ठ रथी वह भीमसेन हाथोंमें चमड़ेके मोजे पहिररहा था सुवर्णकी फुल्लियोंसे चिताहुआ उसका लोहेका कवच, बिजलीवाले मेघकी समान शोभा देरहा था, लाल, पीले, काले और सफेद वस्त्रोंको पहिरे हुए तथा कण्ठत्राणको धारण करनेवाले भीमसेनकी शोभा इन्द्रधनुषकी समान अपूर्व छटा दिखारही थी.तुम्हारी सेनासे लड़नेके लिये भीमसेनके यात्रा करने पर हे राजन् ! फिर पांचजन्य शंखकी घोर ध्वनि होनेलगी, उस शंखकी त्रिलोकीको त्रास देनेवाली घोर ध्वनिको सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर फिर महाबाहु भीमसेनसे कहनेलगे. कि-वृष्णिवीर श्रीकृष्णका बजाया हुआ जलसे उत्पन्न यह शंखराज आकाश और पृथिवीको प्रतिध्वनित कर

मृशम्। पृथिवीं चान्तरिक्षं च विनादयति शंखराट्। नूनं व्यसनमापन्ने सुमहत् सव्यसाचिनि ॥२२॥ कुरुभिर्युध्यते सार्द्धं सर्वैश्चक्रगदाधरः। आह कुन्ती नूनमार्या पापस्य निदर्शनम् ॥ २३ ॥ द्रौपदी च सुभद्रा च पश्यन्त्यौ सह बन्धुभिः। स भीम त्वरया युक्तो याहि यत्र धनञ्जयः ॥ २४ ॥ मुह्यन्तीव हि मे सर्वा धनञ्जयदिदृक्षया। दिशश्च प्रदिशः पार्थ सात्वतस्य च कारणात् २५ गच्छ गच्छेति गुरुणा सोऽनुज्ञातो वृकोदरः। ततः पाण्डुसुतो राजन् भीमसेनः प्रतापवान् ॥ २६ ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणः प्रगृहीतशरासनः। ज्येष्ठेन प्रहितो भ्राता भ्राता भ्रातुः प्रियङ्करः ॥ २७ ॥ आहत्य दुन्दुभिं भीमः शंखं प्रध्माप्य चासकृत्। विनद्य सिंहनादेन ज्यां विकर्षन्पुनः पुनः ॥ २८ ॥ तेन शब्देन वीराणां

रहा है, निःसन्देह अर्जुनके बड़भारी संकटमें पड़जाने पर ही श्रीकृष्ण सब कौरवोंसे युद्ध कररहे हैं (ऐसा मुझे प्रतीत होता है) पूज्य माता कुन्तीने, द्रौपदीने और सुभद्रा तथा दूसरे सम्बन्धियोंने कहा था, कि—आज अपशकुन होरहे हैं, अतः हे भीम ! तू शीघ्रतासे अर्जुनके पास जा ! १८–२४ हे पृथापुत्र ! मैं अर्जुनको और सात्यकिको देखनेके लिये सब दिशा और प्रदिशाओंमें दृष्टि डालता हूँ, परन्तु वे दिशायें मुझे मोहसे घिरीहुई प्रतीत होती हैं. अर्थात् अर्जुन और सात्यकिके न दीखने पर मेरे नेत्रों के सामने अंधेरासा छायाजाता है, अतः तू शीघ्रही जा, जब इस प्रकार बड़े भाईने आज्ञा दी, तब हे राजन् ! पाण्डुपुत्र प्रतापी भीमसेनने कि—जो अपने भाईके चित्तके अनुकूल चलने वाला था—गोहके चमड़ेके मोजे पहिने और धनुष धारण कर नगाड़ेपर दण्डा मारकर बड़ी ध्वनि की तथा बारम्बार शंखको बजाया फिर सिंहनाद कर, धनुषकी प्रत्यञ्चाको बारम्बार खींचने लगा ॥ २५–२८ ॥ उस शब्दसे वीरोंके हृदयको भयभीत कर

पातयित्वा महास्त्रवित् । दर्शयन् घोरमात्मानममित्रान् सहसाऽभ्यपात् ॥ २९ ॥ तमूहुर्जवना दान्ता विरुवन्तो हयोत्तमाः । हिंशोफेनाभिसंपन्ना मनोमारुतरंहसः ॥ ३० ॥ आरुजन् विरुजन् पार्थो ज्यां विकर्षंश्च पाणिना । संप्रकर्षन् विकर्षंश्च सेनाग्रं समलोडयत् ॥ ३१ ॥ तं प्रयान्तं महावाहुं पञ्चालाः सहसोमकाः । पृष्ठतोऽनुययुः शूरा मघवन्तमिवामराः ॥ ३२ ॥ तं समेत्य महाराज तावकाः पर्यवारयन् । दुःशलश्चित्रसेनश्च कुण्डभेदी विविंशतिः ॥ ३३ ॥ दुर्मुखो दुःसहश्चैव विकर्णश्च शलस्तथा । विन्दानुविन्दौ सुमुखो दीर्घवाहुः सुदर्शनः ॥ ३४ ॥ वृन्दारकः सुहस्तश्च सुषेणो दीर्घलोचनः । अभयो रौद्रकर्मा च सुवर्मा दुर्विमोचनः ॥ ३५ ॥ शोभन्तो रथिनां श्रेष्ठाः सहसैन्यपदानुगाः । संयत्ता समरे वीरा भीमसेनमुपाद्रवन् ॥ ३६ ॥ तैः समन्ताद् वृतः

शत्रुओंको अपनी भयङ्करता दिखाताहुआ भीमसेन एकाएकी शत्रुओंके सामनेको चलदिया ॥ २९ ॥ उसके रथको तेज चलनेवाले, चतुर, हिनहिनातेहुए, मन और वायुकी समान वेगवाले घोड़े लेकर चलदिये ॥ ३० ॥ कौरवसेनामें प्रवेश करतेही भीमसेन हाथसे धनुषकी प्रत्यञ्चाको खूब खींचकर वाणोंकी मारसे शत्रुसेनाके अग्रभागको हिलोडने लगा ॥ ३१ ॥ जैसे इन्द्रके पीछेर देवता चलते हैं, तैसेही महावाहु भीमसेनके पीछेर सोमक और पंचाल राजे भी चलदिये ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! भीमसेनने ज्योंही चढाई की, कि–पहिलेसेही तयार होकर खड़ेहुए रथियोंमें श्रेष्ठ दुःशल, चित्रसेन, कुण्डभेदी, विविंशति, दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल, विन्द, अनुविन्द, सुमुख, दीर्घवाहु, सुदर्शन, वृन्दारक, सुहस्त विशाल नेत्रोंवाला सुषेण, भयङ्कर काम करनेवाला अभय, सुवर्मा, दुर्विमोचन आदि तुम्हारे पुत्र सैनिक और पैदलोंको लेकर भीमसेनकी ओरको झपटे तथा उसको चारों

शूरः समरेषु महारथः । तान् समीक्ष्य तु कौन्तेयो भीमसेनः पराक्रमी । अभ्यवर्त्तत वेगेन सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ३७ ॥ ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र वीरा अदर्शयन् । छादयन्तः शरैर्भीमं मेघाः सूर्यमिवोदितम् ॥ ३८ ॥ स तानतीत्य वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् । अग्रतश्च गजानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३९ ॥ सोऽचिरेणैव कालेन तद्गजानीकमाशुगैः । दिशः सर्वाः समभ्यस्य व्यधमत् पवनात्मजः ४० त्रासिताः शरभस्येव गर्जितेन वने मृगाः । प्राद्रवन् द्विरदाः सर्वे नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ ४१ ॥ पुनश्चातीव वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् । तमवारयदाचार्य्यो वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ॥ ४२ ॥ ललाटे ताडयच्चैनं नाराचेन स्मयन्निव । ऊर्ध्व-

---

ओरसे घेरलिया ॥ ३३–३६ ॥ उन वीरोंके द्वारा चारों ओरसे घिरेहुए पराक्रमी महारथी भीमसेनने उन सबको देखा और फिर इस वेगसे उनके ऊपर टूटा, कि–जैसे सिंह छोटे हिरनोंके ऊपर टूट पडता है ॥ ३७ ॥ इतनेमें ही जैसे बादल उदय होतेहुए सूर्यको ढक लेते हैं तैसे ही वे वीर दिव्य अस्त्रोंका प्रयोगकर भीमसेनको ढकने लगे ३८ परन्तु भीमसेन उन सबको वेगसे पीछे छोडकर द्रोणकी सेना पर जाझपटा, बीचमें हस्तिसेना पड़ी और वह उसके ऊपर बाणवर्षा करनेलगी ॥ ३९ ॥ थोड़ेही समयमें पवनपुत्र भीमने सब दिशाओंमें घूमतेहुए बाण बरसा २ कर हस्तिसेनाका संहार करना आरम्भ करदिया ॥ ४० ॥ वनमें शरभके गर्जने पर जैसे मृग भागने लगते हैं, तैसेही उस समय सब हाथी भी घबड़ाकर चिंघाडतेहुए भागनेलगे ॥ ४१ ॥ तदनन्तर भीमसेन फिर द्रोणकी सेनाकी ओरको झपटा, उफनते हुए समुद्रको जैसे किनारा आगे बढनेसे रोकदेता है, तैसेही द्रोणाचार्य उसको आगे बढनेसे रोकनेलगे ॥ ४२ ॥ फिर द्रोणने मुस्कुरा कर उसके ललाटमें बाण मारा, उस बाणसे भीमसेन ऊपरको

रश्मिरिवादित्यो विबभौ तत्र पाण्डवः ॥ ४३ ॥ स मन्यमानस्त्वाचार्यो ममायं फाल्गुनो यथा । भीमः करिष्यते पूजामित्युवाच वृकोदरम्॥४४॥ भीमसेन न ते शक्यः प्रवेष्टुं परिवाहिनी । मामनिर्जित्य समरे शत्रुमद्य महाबलः ४५ यदि ते सोऽनुजः कृष्णः प्रविष्टोऽनुमते मम । अनीकं न तु शक्यं मे प्रवेष्टुमिह वै त्वया ४६ अथ भीमस्तु तच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यमपेतभीः । क्रुद्धः प्रोवाच वै द्रोणं रक्तताम्रेक्षणस्त्वरन् ॥४७॥ तवार्जुनो नानुमते ब्रह्मबन्धो रणाजिरम् । प्रविष्टः स-हि दुर्धर्षः शक्रस्यापि विशेद्बलम् ॥ ४८ ॥ तेन वै परमां पूजां कुर्वता मानितो ह्यसि । नार्जुनोहं घृणी द्रोण भीमसेनोस्मि ते रिपुः ॥ ४९ ॥ पिता नस्त्वं गुरुर्बन्धुस्तथा पुत्रास्तु ते वयम् । इति मन्यामहे सर्वे भवन्तं प्रणताः स्थिताः ॥५०॥

जानेवाली किरणोंवाले सूर्यकी समान शोभा पानेलगा ॥४३॥ जैसे अर्जुन मेरी पूजा करता है तैसेही भीमसेन भी मेरी पूजा करेगा, यह समझकर द्रोणाचार्यने भीमसेनसे कहा, कि–॥४४॥ हे महाबली भीम ! आज तू मुझे विना जीते इस शत्रुसेनामें घुस नहीं सकेगा ॥ ४५ ॥ तेरा भाई अर्जुन मेरी अनुमतिसे ही इस सेनामें घुससका है. परन्तु तू मेरी सेनामें न घुससकेगा ॥४६॥ गुरुकी बात सुनकर भीमसेन क्रोधमें भरगया, उसके नेत्र ताँबेकी समान लाल२ होगए, और उसने निडर हो उनसे कहा, कि-४७ हे ब्रह्मबन्धो ! अर्जुन तुम्हारी आज्ञा लेकर सेनामें नहीं घुसा होगा वह तो ऐसा दुर्धर्ष है कि-इन्द्रकी सेनामें भी घुसजायगा४८ उसने तुम्हारा मान रखनेके लिये तुम्हारी पूजाकी होगी और तुम्हारा मान किया होगा, परन्तु हे द्रोण ! मैं दयालु अर्जुन नहीं हूँ, किन्तु तुम्हारा शत्रु भीमसेन हूँ ॥ ४९ ॥ हम तुम्हें गुरु और पिता मानते हैं तथा अपनेको तुम्हारा पुत्र समझते हैं और आपको प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥ परन्तु आज तुम्हारी

अथ तद्विपरीतं ते वदनोऽस्मासु दृश्यते। यदि त्वं शत्रुमात्मानं मन्यसे तत्तथास्त्विह ॥ ५१ ॥ एष ते सदृशं शत्रोः कर्म भीमः करोम्यहम्। अथोद्भ्राम्य गदां भीमः कालदण्डमिवान्तकः ॥ ५२ ॥ द्रोणाय व्यसृजद्राजन् स रथादवपुप्लुवे। साश्वसूतध्वजं यानं द्रोणस्यापोथयत्तदा ॥ ५३ ॥ अमृद्नाच्च बहून् योधान् वायुर्वृक्षानिवौजसा। तं पुनः परिवव्रुस्ते तव पुत्रा रथोत्तमम् ॥ ५४ ॥ अन्यन्तु रथमास्थाय द्रोणः प्रहरतां वरः। व्यूहद्वारं समासाद्य युद्धाय समुपस्थितः ॥ ५५ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः पराक्रमी। अग्रतः स्यन्दनानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५६ ॥ ते वध्यमानाः समरे तव पुत्रा महारथाः। भीमं भीमबला युद्धे योधयन्ति जयैषिणः ॥ ५७ ॥ ततो दुःशासनः क्रुद्धो रथशक्तिं समा-

बातोंसे तुम्हारा वर्ताव दूसरेही प्रकारका प्रतीत होता है, अतः यदि तुम अपनेको हमारा शत्रु मानते हो तो भले ही मानिये५१ अब मैं भीमसेन तुमसे भी शत्रुकी समान ही व्यवहार करता हूँ, हे राजन्! तदनन्तर जैसे काल अपने दण्डको उठाता है, तैसे ही भीमने अपनी गदा उठायी और घुमाकर द्रोणके मारी, परन्तु द्रोण तुरन्त ही रथ परसे कूदपड़े, और उस गदाने घोड़े,सारथि तथा ध्वजासहित द्रोणके रथका चूरा २ करडाला तथा और भी बहुतसे योधाओंका, जैसे वायु वृक्षोंको नष्ट करदेता है तैसे ही नाश करडाला, उस समय तुम्हारे पुत्रोंने उस महारथीको फिर घेरलिया ॥ ५२—५४ इस समय प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ द्रोण दूसरे रथमें बैठकर व्यूहके मुहानेकी ओरको दौड़े और युद्ध करनेके लिये खड़े होगए ॥ ५५ ॥ हे महाराज! तदनन्तर क्रोधमें भराहुआ महारथी पराक्रमी भीम सामनेकी रथसेना पर बाण बरसानेलगा ॥ ५६ ॥ भयङ्कर बलवाले तुम्हारे महारथी पुत्रोंको भीमसेन मारता चलाजाता था, परन्तु वे जयकी इच्छासे

क्षिपत् । सर्वपारशवीं तीक्ष्णां जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥ ५८ ॥ आपतन्तीं महाशक्तिं तव पुत्रप्रचोदिताम् । द्विधा चिच्छेद तां भीमस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५९ ॥ अथान्यैर्निशितैर्बाणैः पाण्डवः कुण्डभेदिनम् । सुषेणं दीर्घनेत्रञ्च त्रिभिस्त्रीनवधीद्बली ॥६०॥ ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्त्तिवर्द्धनम् । पुत्राणां तव वीराणां युध्यतामवधीत् पुनः ॥६१॥ अभयं रौद्रकर्माणं दुर्विमोचनमेव च । त्रिभिस्त्रीनवधीद्भीमः पुनरेव सुतांस्तव ॥ ६२ ॥ वध्यमाना महाराज पुत्रास्तव बलीयसा । भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ६३ ॥ ते शरैर्भीमकर्माणं ववृषुः पाण्डवं युधि मेघा इवातपापाये धाराभिर्धरणीधरम् ६४ स तद्बाणमयं वर्षमश्मवर्षमिवा-

युद्ध ही करते रहे ॥ ५७ ॥ यह देखकर दुःशासनको क्रोध आगया और उसने भीमसेनको मारनेकी इच्छासे ठोस लोहेकी रथशक्ति उसके मारी ॥ ५८ ॥ तुम्हारे पुत्रकी फैंकीहुई उस आतीहुई महाशक्तिके भीमसेनने दो टुकड़े करडाले, यह आश्चर्य-जनक काम हुआ ॥ ५९ ॥ तदनन्तर बड़े क्रोधमें भरेहुए बली भीमसेनने कुण्डभेदी, सुषेण और दीर्घनेत्र, इन तीनोंको तीन तीखे बाणोंसे मारड़ाला ॥ ६० ॥ तदनन्तर तुम्हारे वीर पुत्रोंके लडते रहने पर भी भीमसेनने कौरवोंकी कीर्तिको बढानेवाले वीर वृन्दारकको मारडाला ॥ ६१ ॥ फिर भीमसेनने दुबारा तुम्हारे अभय, रौद्रकर्मा और दुर्विमोचन नामवाले तीनों पुत्रोंको तीन बाणोंसे मारडाला ॥ ६२ ॥ हे महाराज ! जब बलवान् भीमसेन इसप्रकार तुम्हारे पुत्रोंका संहार करनेलगा, तब उन्होंने प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ भीमसेनको चारोंओरसे घेरलिया ६३ जैसे ग्रीष्मऋतुके अनन्तर मेघ पर्वत पर मूसलाधार जल बरसाते हैं, तैसे ही वे युद्धमें भयङ्करकर्मा भीमसेनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ६४ ॥ जैसे पर्वत पत्थरों (ओलों) की वर्षासे नहीं

चलः । प्रतीच्छन् पाण्डुदायादो न प्राव्यथत शत्रुहा ॥ ६५ ॥ विन्दानुविन्दौ सहितौ सुवर्माणञ्च ते सुतम् । प्रहसन्नेव कौन्तेयः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥६६ ॥ ततः सुदर्शनं वीरं पुत्रन्ते भरतर्षभ । विव्याध समरे तूर्णं स पपात ममार च ॥ ६७ ॥ सोऽचिरेणैव कालेन तद्रथानीकमाशुगैः । दिशः सर्वाः समालोक्य व्यधमत् पाण्डुनन्दनः ॥ ६८ ॥ ततो वै रथघोषेण गर्जितेन मृगा इव । भज्यमानाश्च समरे तव पुत्रा विशाम्पते ॥ ६९ ॥ प्राद्रवन् सहसा सर्वे भीमसेनभयार्दिताः । अनुयायाच्च कौन्तेयः पुत्राणां ते महद्बलम् ॥ ७० ॥ विव्याध समरे राजन् कौरवेयान् समन्ततः । वध्यमाना महाराज भीमसेनेन तावकाः ॥ ७१ ॥ त्यक्त्वा भीमं रणाज्जग्मुश्चोदयन्तो हयोत्तमान् । तांस्तु निर्जित्य समरे भीमसेनो

घबडाता है तैसे ही शत्रुनाशी भीमसेनने भी उस बाणवर्षाको जरा भी न घबडाकर सहलिया ६५ और मुख मलका कर उसने तुम्हारे पुत्र विन्द, अनुविन्द और सुवर्माको बाण मारकर यमभवनको भेजदिया ॥ ६६ ॥ हे भरतर्षभ ! फिर उसने झपाटे के साथ तुम्हारे पुत्र वीर सुदर्शनको बाणोंसे बींधडाला. वह गिर पडा और मरगया ॥ ६७ ॥ भीमसेनने थोड़े ही समयमें चारों दिशाओंमें झाँक २ कर तहाँ खडीहुई रथसेनाका संहार कर डाला ॥ ६८ ॥ हे राजन् ! जैसे सिंहके दहाडनेसे हिरन भागने लगते हैं, तैसे ही उस समय भीमसेनके रथकी घरघराहटको सुन तुम्हारे पुत्र संग्राममेंसे भागनेलगे ॥ ६९ ॥ वे सब जब भीमसेनके भयसे भागनेलगे तब कुन्तीपुत्र भीमसेन उस तुम्हारी भागतीहुई सेनाके पीछे पडा ॥७०॥ हे राजन् ! और वह उसको चारों ओरसे मारनेलगा, हे महाराज ! उस भीमसेनसे पिटतेहुए तुम्हारे पुत्र शीघ्रतासे घोडोंको हाँककर रणमेंसे बाहर निकलगए महाबली भीमसेन समरमें उन सबोंको हराकर सिंहकी समान

महाबलः ॥ ७२ ॥ सिंहनादरवं चक्रे बाहुशब्दञ्च पाण्डवः । तलशब्दञ्च सुमहत् कृत्वा भीमो महाबलः ॥ ७३ ॥ भीषयित्वा रथानीकं हत्वा योधान् वरान् वरान् । व्यतीत्य रथिनश्चापि द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमप्रवेशे
भीमपराक्रमे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७॥

सञ्जय उवाच । समुत्तीर्णं रथानीकं पाण्डवं विहसन् रणे । विवारयिषुराचार्यः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १ ॥ पिबन्निव शरौघांस्तान् द्रोणचापपरिच्युतान् । सोऽभ्यद्रवत सोदर्यान् मोहयन् बलमायया ॥ २ ॥ तं मृधे वेगमास्थाय नृपाः परमधन्विनः । चोदितास्तव पुत्रैश्च सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३ ॥ स तैस्तु संवृतो भीमः प्रहसन्निव भारत । उद्यच्छद् गदां तेभ्यः सुघोरां सिंहवन्नदन्४

दहाडनेलगा और खम ठोकनेलगा, तदनन्तर भीमसेनने बडी जोरसे ताली बजा, रथसेनाको डराकर श्रेष्ठ २ योधाओंको मार डाला फिर रथियोंको लाँघकर द्रोणकी सेनाकी ओरको बढा ॥७१-७४॥ एकसौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२७ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! भीमसेन रथसेनाको लाँघकर आगेको बढा, कि-द्रोणाचार्य मुस्कुराये और उसको रोकनेके लिये उसके ऊपर बाण बरसानेलगे ॥ १ ॥ परन्तु भीमसेन मानों बाणोंकी पंक्तियोंको निगलरहा हो इसप्रकार उनको कुछ न गिनकर द्रोणके सामनेको बढा हीं चलागया उसके ऐसे बलको देखकर उसके भाई (दुर्योधन आदि) मुरझानेसेलगे २ तुम्हारे पुत्रोंकी प्रेरणासे बहुतसे महाधनुषधारी राजाओंने वेगसे दौडकर उसको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! उन सबसे घिरजाने पर भीमसेन कुछ हँसा और उनके ऊपर फैंकनेलिये भयङ्कर गदाको उठाकर सिंहकी समान दहाडने

अवासृजच्च वेगेन शत्रुपक्षविनाशिनीम् । इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रविद्धा संहतात्मना । प्रामथ्नात् सा महाराज सैनिकांस्तव संयुगे ॥ ५ ॥ घोषेण महता राजन् पूरयन्तीव मेदिनीम् । ज्वलन्ती तेजसा भीमा त्रासयामास ते सुतान् ॥ ६ ॥ तां पतन्तीं महावेगां दृष्ट्वा तेजोऽभिसंवृताम् । प्राद्रवंस्तावकाः सर्वे नदन्तो भैरवान् रवान् ७ तञ्च शब्दमसह्यं वै तस्याः संलक्ष्य मारिष । प्रापतन्मनुजास्तत्र रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ ८ ॥ ते हन्यमाना भीमेन गदाहस्तेन तावकाः ॥ ९ ॥ प्राद्रवन्त रणे भीता व्याघ्रघ्राता मृगा इव । स तान् विद्राव्य कौन्तेयः संख्येऽमित्रान् दुरासदान् । सुपर्ण इव वेगेन पक्षिराडत्यगाच्चमूम् ॥ १० ॥ तथा तु विप्रकुर्वाणं रथयूथपयूथपम् । भारद्वाजो महाराज भीमसेनं समभ्ययात् ॥११॥

लगा ४ फिर उसने शत्रुओंके पक्षके योधाओंको नष्ट करनेवाली उस गदाको वेगसे फैंका इन्द्रकी चलाई हुई शक्तिसे जैसे असुरोंका नाश होजाता है तैसे ही बली भीमसेनकी गदाने तुम्हारे सैनिकोंको मारडाला ॥ ५ ॥ हे राजन्! अपने धडाकेसे पृथ्वीको शब्दायमान करतीहुई उस तेजसे देदीप्यमान गदासे तुम्हारे पुत्र भयभीत होगए ॥ ६ ॥ धड़ाकेके साथ पृथ्वी पर गिरीहुई उस जलतीहुईसी गदाको देखकर तुम्हारे सब योधा चीख २ कर भागनेलगे ॥ ७ ॥ हे राजन्! उस गदाके असह्य धडाकेसे बहुतसे रथी रथोंमेंसे गिरपड़े ॥ ८ ॥ तदनन्तर भीमसेन हाथमें गदा लेकर तुम्हारे सैनिकोंका संहार करनेलगा, तब व्याघ्रकी गन्ध पाकर जैसे मृग भागने लगते हैं, तैसे ही तुम्हारे योधा उसको देखते ही पलायमान होगये ॥ ९ ॥ कुन्तीपुत्र भीमसेन इसप्रकार उनको भगाकर पक्षिराज गरुडकी समान वेगपूर्वक सेनाको लाँघगया १० हे महाराज! रथियोंके झुण्डोंके स्वामियोंके झुण्डका स्वामी भीमसेन जब इसप्रकार कौरवसेनाका सत्यानाश करनेलगा तब

भीमन्तु समरे द्रोणो वारयित्वा शरोर्मिभिः । अकरोत् सहसा नादं पाण्डूनां भयमादधत् ॥ १२ ॥ तद्युद्धमासीत् सुमहद्द घोरं देवासुरोपमम् । द्रोणस्य च महाराज भीमस्य च महात्मनः ॥ १३ ॥ यदा तु विशिखैस्तीक्ष्णैर्द्रोणचापविनिःसृतैः । वध्यन्ते समरे वीराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥ ततो रथादवप्लुत्य वेगमास्थाय पाण्डवः । निमील्य नयने राजन् पदातिर्द्रोणमभ्ययात् ॥ १५ ॥ अंसे शिरो भीमसेनः करौ कृत्वोरसि स्थिरौ । वेगमास्थाय वलवान् मनोऽनिलगरुत्मताम् ॥१६॥ यथा हि गोवृषो वर्षं प्रतिगृह्णाति लीलया । तथा भीमो नरव्याघ्रः शरवर्षं समग्रहीत् ॥ १७ ॥ स वध्यमानः समरे रथं द्रोणस्य मारिष । ईषायां पाणिनाऽऽगृह्य प्रचिक्षेप महावलः ॥ १८ ॥ द्रोणस्तु सत्वरो राजन् क्षिप्तो भीमेन संयुगे । रथमन्यं समारुह्य व्यूढ-

द्रोणाचार्य उसके सामने गए ॥ ११ ॥ उन्होंने वाणोंका प्रहार कर, भीमको रणभूमिमें आगे बढनेसे रोकदिया और सहसा वडीभारी गर्जना कर पाण्डवोंको भयभीत करदिया । १२ । हे महाराज ! द्रोण और महात्मा भीमका देवासुरसंग्रामकी समान बड़ा घोर युद्ध होनेलगा ॥ १३ ॥ तब द्रोणके धनुषसे छूटेहुए तीखे वाण सैंकडों और सहस्रों योधाओंका संहार करनेलगे १४ उस समय भीमसेन रथमेंसे नीचे कूदपडा और दोनों आँखे मींच मस्तकको कन्धे पर नमाकर तथा दोनों हाथोंको छातीमें स्थिर कर, मन, गरुड़ और पवनकी समान वेगसे द्रोणकी ओरको दौडा ॥ १५-१६ ॥ जैसे मदमत्त वैल जलकी वर्षाको सहजमें ही सहलेता है तैसे ही नरव्याघ्र भीम भी उस वाणवर्षाको सहनेलगा ॥ १७ ॥ महावली भीमसेन द्रोणकी वाणवर्षाको सहता २ उनके रथके समीप पहुँचगया और उसने रथके जुएके अग्रभागको पकड़कर रथको दूर फैंकदिया ॥ १८ ॥

द्वारं ययौ पुनः ॥ १९ ॥ तमायांत तथा दृष्ट्वा भग्नोत्साहं गुरुं तदा । गत्वा वेगात्पुनर्भीमो धुरं गृह्य रथस्य तु ॥ २० ॥ तमप्यतिरथं भीमश्चिक्षेप भृशरोपितः । एवमष्टौ रथाः क्षिप्ता भीमसेनेन लीलया ॥ २१ ॥ व्यदृश्यत निमेषेण पुनः स्वरथमास्थितः । दृश्यते तावकैर्योधैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनैः ॥ २२ ॥ तस्मिन् क्षणे तस्य यन्ता तूर्णमश्वानचोदयत् । भीमसेनस्य कौरव्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २३ ॥ ततः स्वरथमास्थाय भीमसेनो महाबलः । अभ्यवर्त्तत वेगेन तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ २४ ॥ स मृद्नन् क्षत्रियानाजौ वातो वृक्षानिवोद्धतः । अगच्छद्दारयन् सेनां सिन्धुवेगो

हे राजन् ! ज्यों ही युद्धमें भीमसेनने द्रोणके रथको पृथिवीपर पटका त्योंही वह दूसरे रथमें बैठकर व्यूहके मुहाने पर जाकर फिर खड़े होगए ॥ १९ ॥ कुछ देरमें भीमसेनने देखा, कि-टूटे हुए उत्साहवाले गुरुदेव रथमें बैठकर फिर आरहे हैं, तब तो उसे बडा क्रोध चढा और वह फिर दौडकर उनके रथके पास गया और धुरेको पकड उस महारथको भी उसने दूर पटक दिया, इसप्रकार भीमसेनने अनायास ही द्रोणके आठ रथोंको दूर फैंकदिया २०–२१ ॥ द्रोण भी पलक मारने मात्र समयमें दूसरे रथमें बैठे दीखते थे, यह देखकर तुम्हारे योधा आश्चर्यसे आँखें फाडकर भौंचक्केसे रहगये थे ॥२२॥ हे कुरुवंशी राजन् ! उस समय भीमसेनके सारथिने शीघ्रतासे घोडोंको हाँका (और उसके पास पहुँचगया) यह अचरजसा हुआ ॥ २३ तब महाबली भीमसेन भी अपने रथमें बैठकर शीघ्रतासे तुम्हारे पुत्रकी सेनाकी ओरको वेगसे बढा चलागया ॥२४॥ उस समय भीमसेन, जैसे आँधी पेड़ोंका नाश करदेती है, तैसे ही क्षत्रियोंको युद्धमें नष्ट करताहुआ तथा जैसे सिन्धुका वेग पर्वतोंको फाडता हुआ आगेको बढता चलाजाता है तैसे ही सेनाको चीरताहुआ आगेको

नगानिव ॥ २५ ॥ भोजानीकं समासाद्य हार्दिक्येनाभिरक्षितम् । प्रमथ्य वहुधा राजन् भीमसेनः समभ्ययात् ॥ २६ ॥ सन्त्रासयन्ननीकानि तलशब्देन मारिष । अजयत् सर्वसैन्यानि शार्दूल इव गोवृषान् ॥२७॥ भोजानीकमतिक्रम्य काम्बोजानां च वाहिनीम् । तथा म्लेच्छगणांश्चान्यान् वहून् युद्धविशारदान् ॥ २८ ॥ सात्यकिञ्चापि संप्रेक्ष्य युध्यमानं नरर्षभ । रथेन यत्तः कौन्तेयो वेगेन प्रययौ तदा ॥ २९ ॥ भीमसेनो महाराज द्रष्टुकामो धनञ्जयम् । अतीत्य समरे योधांस्तावकान् पाण्डुनन्दनः ॥३०॥ सोपश्यदर्जुनं तत्र युध्यमानं महारथम् । सैंधवस्य वधार्थं हि पराक्रांतं पराक्रमी ॥ ३१ ॥ तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रश्चुक्रोश महतो रवान् । प्रावृट्काले महाराज नर्दन्निव वलाहकः ॥ ३२ ॥ तं तस्य निनदं घोरं पार्थः शुश्राव

वढनेलगा ॥ २५ ॥ आगे उसे हृदीकके पुत्र कृतवर्माकी रक्षाकी हुई भोजसेना मिली, अतिवली भीमसेन उसको भी नष्ट भ्रष्ट कर आगेको वढगया ॥ २६ ॥ ताली वजाकर सव सेनाओंको व्याकुल करतेहुए भीमसेनने जैसे सिंह वैलोंको दवालेता है तैसे ही सकल सेनाओंको जीतलिया ॥ २७ ॥ भोजकी सेना, दरदोंकी सेना, और वहुतसे युद्धविशारद म्लेच्छोंके झुण्डोंको लाँघकर भीमसेन आगेको वढाचलागया ॥ २८ ॥ तहाँ उसे युद्ध करता हुआ सात्यकि दिखाई दिया, तव तो भीमसेन सावधानीसे रथमें वैठ, अर्जुनको देखनेके लिये, और भी जोरसे वढा, हे महाराज! इस समय तुम्हारे वहुतसे योधाओंको लाँघकर ज्योंही पाण्डुनन्दन पराक्रमी भीमसेन आगे वढा, कि-उसने सिंधुराज जयद्रथको मारनेके लिये पराक्रम करते हुए महारथी अर्जुनको युद्ध करते देखा ॥ २९-३१ ॥ हे महाराज! पुरुषव्याघ्र भीमसेन अर्जुनको देखकर वर्षा ऋतुमें गरजतेहुए मेघकी समान वारम्वार जोरसे दहाडनेलगा ॥ ३२ ॥ हे कुरुवंशी राजन्! युद्धमें गर्जना

नर्दतः । वासुदेवश्च कौरव्य भीमसेनस्य संयुगे ॥ ३३ ॥ तौ श्रुत्वा युगपद्वीरौ निनदं तस्य शुष्मिणः । पुनः पुनः प्रणदतौ दिदृक्षन्तौ वृकोदरम् ॥ ३४ ॥ ततः पार्थो महानादं मुञ्चन् वै माधवश्च ह । अभ्ययातां महाराज नदन्तौ गोवृषाविव ॥ ३५ ॥ भीमसेनरवं श्रुत्वा फाल्गुनस्य च धन्विनः । अप्रीयत महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ३६ विशोकश्चाभवद्राजा श्रुत्वा तं निनदं तयोः । धनञ्जयस्य च रणे जयमाशांस्तवान् विभुः ॥ ३७ ॥ तथा तु नर्दमाने वै भीमसेने मदोत्कटे । स्मितं कृत्वा महाबाहुर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३८ ॥ हृद्गतं मनसा प्राह ध्यात्वा धर्मभृतां वरः । दत्ता भीम त्वया सम्वित् कृतं गुरुवचस्तथा ॥ ३९ ॥ न हि तेषां जयो युद्धे येषां द्वेष्टाऽसि पाण्डव । दिष्ट्या जीवति संग्रामे सव्यसाची धनञ्जयः ॥ ४० ॥ दिष्ट्या च कुशली वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः । दिष्ट्या शृणोमि

करतेहुए भीमसेनकी उस घोर गर्जनाको अर्जुन और श्रीकृष्णने सुन लिया ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी पराक्रमी भीमकी गर्जनाको सुनकर उसको देखनेकी इच्छासे वारम्वार गर्जना की ३४ हे महाराज ! तदनन्तर श्रीकृष्ण और अर्जुन दो साँडोंकी समान गरजतेहुए भीमसे आमिले ॥३५॥ भीमसेनकी दहाड और अर्जुनकी गर्जनाको सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुनकी गर्जनाको सुनकर युधिष्ठिरका शोक दूर होगया और उन्हें अर्जुनकी जीतकी आशा होगई ॥ ३७ ॥ धर्मपुत्र धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर मदोत्कट भीमसेनकी गर्जनाको सुन मुसकुराकर मनमें कहनेलगे, कि-हे भीम ! तूने वास्तवमें समाचार दिया और बड़ोंकी बात मानी ॥ ३८-३९ ॥ हे पाण्डुपुत्र ! तू जिससे द्वेष करे वह भला युद्धमें कैसे जीतसकता है ? सुदैवसे ही सव्यसाची अर्जुन तथा सत्यपराक्रमी वीर सात्यकि संग्राममें सकुशल हैं ! कृष्ण

गर्ज्जन्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥४१॥ येन शक्रं रणे जित्वा तर्पितो हव्यवाहनः । स हन्ता द्विषतां संख्ये दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः४२ यस्य वाहुवलं सर्वे वयमाश्रित्य जीविताः । स हन्ता रिपुसैन्यानां दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥ ४३ ॥ निवताकवचा येन देवैरपि सुदुर्ज्जयाः । निर्ज्जिता धनुपैकेन दिष्ट्या पार्थः स जीवति ४४ कौरवान् सहितान् सर्वान् गोग्रहार्थे समागतान् । योऽजयन्मत्स्यनगरे दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४५ ॥ कालकेयसहस्राणि चतुर्दश महारणे। योऽवधीद् भुजवीर्येण दिष्ट्या पार्थःस जीवति४६ गन्धर्वराजं वलिनं दुर्योधनकृतेनं वै । जितवान् योऽस्त्रवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४७ ॥ किरीटमाली वलवान् श्वेता-

---

तथा अर्जुनको मैं गर्जतेहुए सुनरहा हूँ, यह मेरा अहोभाग्य है ॥ ४०॥४१ ॥ जिसने रणमें इन्द्रको जीतकर खाण्डव वनमें अग्निको तृप्त किया था वह शत्रुओंको मारनेवाला अर्जुन संग्राममें जीवित है, यह अहो भाग्य है ॥ ४२ ॥ हम सव जिसके भुजवलके आश्रयसे जीवित रहते हैं, वह शत्रुसैन्यसंहारक अर्जुन अभी जीवित है यह वड़ा सुदैव है॥ ४३ ॥ देवताओंसे भी महाकठिनतासे जीतनेमें आनेवाले निवातकवचोंको जिसने एक धनुषके सहारेसे ही जीतलिया था, वह अर्जुन अभीतक जीवित है यह अहोभाग्य है ॥ ४४ ॥ विराटनगरमें गोहरणके लिये आयेहुए सम्पूर्ण कौरवोंको अकेले ही जिसने जीतलिया था वह अर्जुन अभीतक जीवित है यह हमारा सौभाग्य है ४५ महारणमें जिस अकेले अर्जुनने चौदह सहस्र कालकेय नामक राक्षसोंको मारडालाथा वह अर्जुन जीवित है,यह अहोभाग्य है४६ जिसने दुर्योधनके लिये अपने अस्त्रवलसे गन्धर्वराज चित्रसेनको जीता था, वह अर्जुन जीवित है, यह अहोभाग्य है ॥ ४७ ॥ किरीटमाली वलशाली श्वेत घोड़ोंवाला और कृष्ण जिसके

श्वः कृष्णसारथिः । मम प्रियश्च सततं दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ४८ पुत्रशोकाभिसन्तप्तश्चिकीर्षन् कर्म दुष्करम् । जयद्रथवधान्वेषी प्रतिज्ञां कृतवान् हि यः ॥ ४९ ॥ कच्चित् स सैन्धवं संख्ये हनिष्यति धनञ्जयः । कच्चित्तीर्णप्रतिज्ञं हि वासुदेवेन रक्षितम् ५० अनस्तमित आदित्ये समेष्याम्यहमर्जुनम् । कच्चित् सैन्धवको राजा दुर्योधनहिते रतः ॥ ५१ ॥ नन्दयिष्यत्यमित्राणि फाल्गुनेन निपातितः । कच्चित् दुर्योधनो राजा फाल्गुनेन निपातितम् ॥ ५२ ॥ दृष्ट्वा सैन्धवकं संख्ये शममस्मासु यास्यति । दृष्ट्वा विनिहतान् भ्रातॄन् भीमसेनेन संयुगे । कच्चित् दुर्योधनो मन्दः शममस्मासु यास्यति ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वा चान्यान्महायोधान् पातितान् धरणीतले । कच्चित् दुर्योधनो मन्दः पश्चात्तापं करिष्यति ॥५४॥ कच्चिद्भीष्मेण नो वैरं शममेकेन यास्यति । शेषस्य रक्षणार्थञ्च

सारथी है तथा मैं जिससे सदा प्रेम करता हूँ, वह अर्जुन जीवित है, यह मेरा अहोभाग्य है ॥ ४८ ॥ जो पुत्रके शोकसे सन्तप्त है, जो महाकठिन कर्मको करना चाहता है और जिसने जयद्रथका वध करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ४९ ॥ क्या वह अर्जुन युद्धमें जयद्रथको मारसकेगा? क्या मैं सूर्यास्तसे पहिले श्रीकृष्णकी रक्षामें रहकर अपना प्रतिज्ञाको पूर्ण करके आयेहुए अर्जुनसे मिलसकूँगा ? दुर्योधनके हितमें तत्पर जयद्रथ अर्जुनके हाथसे माराजाने पर क्या शत्रुओंको आनन्दित करेगा ? राजा दुर्योधन जयद्रथको धनञ्जयके हाथसे माराहुआ देखकर क्या हमसे सन्धि करेगा ? युद्धमें भीमसेनके हाथसे अपने भाइयोंको माराहुआ देखकर मन्दबुद्धि दुर्योधन क्या हमसे सन्धि करेगा ? ॥ ५०-५३॥ और भी बहुतसे बड़े२ योधाओंको मारकर पृथिवीपर गिरेहुए देखकर क्या मन्दबुद्धि दुर्योधन पश्चात्ताप करेगा? ॥ ५४ ॥ क्या हमारा वैर एक भीष्मके मारेजाने पर शान्त होजायगा ? क्या दुर्योधन

सन्धास्यति सुयोधनः ॥ ५५ ॥ एवं बहुविधं तस्य राज्ञश्चिन्तयतस्तदा । कृपयाभिपरीतस्य घोरं युद्धमवर्त्तत ॥ ५६ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे युधिष्ठिरहर्षे अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥

धृतराष्ट्र उवाच । निनदन्तं तथा तन्तु भीमसेनं महाबलम् । मेघस्तनितनिर्घोषं के वीराः पर्यवारयन् ॥ १ ॥ न हि पश्याम्यहं तं वै त्रिषु लोकेषु सञ्जय । क्रुद्धस्य भीमसेनस्य यस्तिष्ठेदग्रतो रणे ॥२॥ गदां युयुत्समानस्य कालस्येवेह सञ्जय । न हि पश्याम्यहं युद्धे यस्तिष्ठेदग्रतः पुमान् ॥३॥ रथं रथेन यो हन्यात् कुञ्जरं कुञ्जरेण च । कस्तस्य समरे स्थाता साक्षादपि शतक्रतुः ॥ ४ ॥ क्रुद्धस्य भीमसेनस्य मम पुत्रान् जिघांसतः । दुर्योधनहिते युक्ताः

बचेहुओंकी रक्षाके लिये हमसे सन्धि करेगा ? ॥ ५५ ॥ राजा युधिष्ठिर दयार्द्र चित्तसे एक ओर इसप्रकार विचार रहे थे और दूसरी ओर भयङ्कर युद्ध होरहा था ॥ ५६ ॥ एकसौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२८ ॥ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे सञ्जय ! मेघके गरजनेकी समान गरजतेहुए महाबली भीमसेनको (हमारी सेनामेंके) किन २ वीरोंने घेरलिया था ? ॥ १ ॥ मैं ऐसा त्रिलोकीमें किसीको भी नहीं देखता, कि–जो क्रोधमें भरेहुए भीमसेनके सामने रणमें ठहर सके ॥२॥ हे संजय ! जब भीमसेन कालकी समान बनकर गदायुद्ध करना चाहता है, उस समय मुझे ऐसा कोई भी नहीं दीखता जो उसके सामने टिकसके ॥ ३ ॥ जो रथसे रथको नष्ट कर डालता है, हाथीको उठाकर हाथीके मारता है, भला उसके सामने कौन खडा रहसकता है ? उसके सामने तो साक्षात् इन्द्रभी खडा नहीं रहसकता ॥ ४ ॥ जब भीमसेन क्रोधमें भर मेरे पुत्रोंको मारनेके लिये युद्ध करनेलगा, उस समय दुर्योधनके कौन२ हितैषी

समतिष्ठन्त केऽग्रतः ॥ ५ ॥ भीमसेनदवाग्नेस्तु मम पुत्रांस्तृणोपमान् । प्रधक्षतो रणमुखे केऽतिष्ठन्नग्रणो नराः ॥ ६ ॥ काल्यमानान् हि मे पुत्रान् भीमेनावेक्ष्य संयुगे । कालेनेव प्रजाः सर्वाः के भीमं पर्यवारयन् ॥ ७ ॥ न मेऽर्जुनाद्भयं तादृक् कृष्णान्नापि च सात्वतात् । हुतभुग्जन्मनो नैव यादृग्भीमाद्भयं मम ॥ ८ ॥ भीमवह्नेः प्रदीप्तस्य मम पुत्रान् दिधक्षतः । के शूराः पर्यवर्त्तन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ९ ॥ सञ्जय उवाच । तथा तु नर्दमानं तं भीमसेनं महावलम् । तुमुलेनैव शब्देन कर्णोऽप्यभ्यपतद्वली १० व्याक्षिपन् सुमहच्चापमतिमात्रममर्षणः । कर्णस्तु युद्धमाकाङ्क्षन् दर्शयिष्यन् वलं मृधे ॥ ११ ॥ रुरोध मार्गं भीमस्य वातस्येव महीरुहः । भीमोऽपि दृष्ट्वा सावेगं पुरो वैकर्त्तनं स्थितम् ॥ १२ ॥

उसके सामने आकर डटे ॥ ५ ॥ जव भीमरूप दावानल मेरे पुत्ररूप तिनुकोंको भस्म करनेलगा, उस समय कौन२ उसको वचानेके के लिये आगे आकर खड़ेहुए थे ॥ ६ ॥ जैसे काल सकल प्रजाओंका संहार करने लगता है, तैसेही भीमसेन जव मेरे पुत्रोंको नष्ट करनेलगा, उस समय किन२ वीरोंने उसको घेरलिया था? ७ मुझे जैसा भीमका डर है, तैसा डर न अर्जुनका है, न श्रीकृष्णका है, न सात्यकिका है और न धृष्टद्युम्नका है ॥ ८ ॥ हे सञ्जय! जव भीमरूप अग्नि धकधकाकर मेरे पुत्रोंको जलाना चाहनेलगा, उस समय किन२ वीरोंने उसको रोका था? यह मुझे सुना ।९। सञ्जयने उत्तर दिया, कि—जव महावली भीमसेन इसप्रकार गर्ज रहा था कि—इतनेमें ही वली कर्ण भी वैसा ही घोर शब्द करता और क्रोधमें भर अपने वडेभारी धनुषको घुमाकर अपना वल दिखाताहुआ घोर युद्ध करनेकी इच्छासे भीमसेनके सामने चढ़ आया ॥ १०-११ ॥ कर्णने भीमके मार्गको ऐसे रोकदिया जैसे वृक्ष वायुके मार्गको रोकदेता है, वलवान् वीर भीमने शीघ्रतासे

चुकोप बलवद्वीरश्चिक्षेपास्य शिलाशितान् । तान् प्रत्यगृह्णात् कर्णोऽपि प्रतीपं प्रेषयञ्छरान् ॥ १३ ॥ ततस्तु सर्वयोधानां यततां प्रेक्षतां तदा । प्रावेपन्निव गात्राणि कर्णभीमसमागमे ॥ १४ ॥ रथिनां सादिनां चैव तयोः श्रुत्वा तलस्वनम् । भीमसेनस्य निनदं घोरं श्रुत्वा रणाजिरे ॥१५॥ खञ्च भूमिञ्च संरुद्धां मेनिरे क्षत्रियर्षभाः । पुनर्घोरेण नादेन पाण्डवस्य महात्मनः ॥ १६ ॥ समरे सर्वयोधानां धनूंष्यभ्यपतन् क्षितौ । शस्त्राणि न्यपतन् दोर्भ्यः केषांचिच्चासवोऽद्रवन् ॥ १७ ॥ वित्रस्तानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रवुः । वाहनानि च सर्वाणि बभूवुर्विमनांसि च ॥ १८ ॥ प्रादुरासन्निमित्तानि घोराणि च बहून्युत । गृध्रकङ्कबलैश्चासीदन्तरीक्षं समावृतम् ॥१९॥ तस्मिंस्तु तुमुले राजन् भीमकर्णसमागमे । ततः कर्णस्तु विंशत्या शराणां भीममार्दयत् ॥ २० ॥ विव्याध चास्य

दृष्टि डाली तो सामने कर्णको खडा देखा, तब तो उसको बडा क्रोध आया और उसने शिलापर तेज कियेहुए बाण छोड़कर कर्णको घायल करदिया उन बाणोंको सहकर कर्णने भी उसके बाण मारे॥१२-१३॥कर्ण और भीमके युद्धके समय उन दोनोंकी तालियोंके शब्दको सुनकर सब दर्शकोंके, योधाओंके और रथियोंके शरीर काँपनेलगे, रणमें भीमसेनकी भयङ्कर गर्जनाको सुन योधा अपने मनमें यह समझनेलगे कि-इस समय आकाश और पृथिवी भरगये तदनन्तर फिर भीमसेनके घोर शब्द करनेपर रणभूमिमें सकल योधाओंके धनुष पृथिवीमें गिरपड़े बहुतसे योधाओंके हाथोंमेंसे शस्त्र नीचे गिरपड़े और बहुतसोंके प्राण निकलगये ॥ १४-१७ ॥ हाथी, घोड़े आदि सब वाहन निरुत्साह और भयभीत हो मलमूत्र करनेलगे ॥ १८ ॥ उस समय आकाशमें बहुतसे गीध और कौए मँड़राने लगे तथा बहुतसे अशुभसूचक उत्पात होनेलगे ॥ १९ ॥ हे राजन्! भीम और

त्वरितः सूतं पञ्चभिराशुगैः । प्रहस्य भीमसेनश्च कर्णं प्रत्याद्रवद्रणे ॥ २१ ॥ सायकानां चतुःषष्ट्या क्षिप्रकारी महायशाः । तस्य कर्णो महेष्वासः सायकांश्चतुरोऽक्षिपत् ॥ २२ ॥ असंप्राप्तांस्तु तान् भीमः सायकैर्नतपर्वभिः । चिच्छेद वहुधा राजन् दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ २३ ॥ तं कर्णश्छादयामास शरव्रातैरनेकशः । संछाद्यमानः कर्णेन वहुधा पाण्डुनन्दनः ॥ २४ ॥ चिच्छेद चापं कर्णस्य मुष्टिदेशे महारथः । विव्याध चैव दशभिः सायकैर्नतपर्वभिः ॥ २५ ॥ अथान्यद्धनुरादाय सज्यं कृत्वा च सूतजः । विव्याध समरे भीमं भीमकर्मा महारथः ॥ २६ ॥ तस्य भीमो भृशं क्रुद्धस्त्रीन् शरान्नतपर्वणः । निचखानोरसि क्रुद्धः सूतपुत्रस्य वेगतः ॥ २७ ॥ तैः कर्णोऽराजत शरैरुरोमध्यगतैस्तदा । महीधर

कर्णके भयङ्कर युद्धमें कर्णने वीस वाण भीमसेनके मारे ॥ २० ॥ फिर उसने झपाटेसे पाँच वाण मारकर भीमसेनके सारथिको घायल करडाला तब तो भीमसेन खिलखिलाकर कर्णकी ओरको दौडा ॥ २१ ॥ और उस फुर्तीलेने कर्णके लगातार चौंसठ वाण मारे, महाधनुषधारी कर्णने उसके चार वाण मारे ॥ २२ ॥ भीमने अपनी फुर्तीको दिखलाते हुए नमीहुई गाँठवाले वाण मारकर उन वाणोंको मार्गमेंही काटडाला ॥ २३ ॥ तब तो कर्णने वहुतसे वाण छोडकर भीमको ढकदिया, जब कर्ण उसको वारम्वार वाणोंसे ढकनेलगा, तब तो पाण्डुनन्दन महारथी भीमने मूठपरसे उसके धनुषको काटडाला और फिर नमीहुई गाँठवाले वहुतसे वाण मारकर कर्णको घायल करदिया ॥ २४-२५ ॥ तदनन्तर भयङ्कर कर्म करनेवाला सूतपुत्र महारथी कर्ण दूसरे धनुषको ठीक करके भीमसेनको मारनेलगा ॥ २६ ॥ तब तो भीमसेनको वड़ा क्रोध आया और उसने नमी हुई गाँठवाले तीन वाण वड़े वेगसे सूतपुत्र कर्णकी छातीमें मारे ॥ २७ ॥

इवोदग्रस्त्रिशृंगो भरतर्षभ ॥ २८ ॥ सुस्राव चास्य रुधिरं विद्धस्य परमेषुभिः । धातुप्रस्यन्दिनः शैलाद्यथा गैरिकधातवः ॥ २९ ॥ किञ्चिद्विचलितः कर्णः सुप्रहाराभिपीडितः । आकर्णपूर्णमाकृष्य भीमं विव्याध सायकैः ॥ ३० ॥ चिक्षेप च पुनर्बाणान् शतशोऽथ सहस्रशः । स शरैरर्दितस्तेन कर्णेन दृढधन्विना । धनुर्ज्यामच्छिनत्तूर्णं भीमस्तस्य क्षुरेण ह ॥ ३१ ॥ सारथिञ्चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् । वाहांश्च चतुरस्तस्य व्यसूंश्चक्रे महारथः ३२ हताश्वात्तु रथात्कर्णमवप्लुत्य विशाम्पते । स्यन्दनं वृषसेनस्य तूर्णमापुप्लुवे भयात् ॥ ३३ ॥ निर्जित्य तु रणे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् । ननाद च वज्रवन्नादं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ३४ ॥ तस्य तन्निनदं श्रुत्वा प्रहृष्टोभूद्युधिष्ठिरः । कर्णन्तु निर्जितं मत्वा भीम-

हे भरतसत्तम ! सूतपुत्र कर्ण, हृदयमें लगेहुए उन तीन बाणोंसे तीन शिखरवाले बडे पर्वतकी समान शोभित होनेलगा ॥ २८ ॥ तीक्ष्ण बाणोंके घुस जानेसे उसके हृदयमेंसे रुधिर बहने लगा, उस समय उसकी शोभा गेरूको बहानेवाले पर्वतकी समान हुई २९ उस बड़ेभारी प्रहारसे कर्ण कुछ विचलित हुआ, परन्तु फिर वह धनुषको कानतक खैंचकर भीमसेनको बाणोंसे बींधनेलगा ३० और फिर उसने सैंकडों तथा सहस्रों बाण छोड़े, जब दृढ धनुष वाले कर्णके बाणोंसे भीमको पीड़ा पहुँचने लगी तब उसने क्षुरप्र नामक बाण मारकर उसके धनुषकी प्रत्यंचाको काटडाला ॥ ३१ ॥ और भल्ल नामका बाण मारकर कर्णके सारथिको भी उसकी बैठक परसे नीचे गिरादिया और फिर महारथी भीमने कर्णके चारों घोड़ोंको मारडाला ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! तब तो कर्ण भयभीत हो फुर्तीसे अपने मरेहुए घोडोंवाले रथ परसे कूद वृषसेनके रथपर चढगया ॥ ३३ ॥ प्रतापी और बलवान् भीमसेन रणमें कर्णको जीत मेघकी समान गर्जनेलगा ३४

सेनेन संयुगे ॥ ३५ ॥ समन्ताच्छङ्खनिनदं पाण्डुसेनाकरोत्तदा ।
शत्रुसेनाध्वनिं श्रुत्वा तावका ह्यनदन् भृशम् ॥ ३६ ॥ स शंख-
वाणनिनदैर्हर्षाद्राजा स्ववाहिनीम् । चक्रे युधिष्ठिरः संख्ये हर्ष-
नादैश्च संकुले ॥ ३७ ॥ गाण्डीवं व्याक्षिपत् पार्थः कृष्णोप्यब्जम-
वादयत् । तमन्तर्धाय निनदं ध्वनिर्भीमस्य नर्दतः । अश्रूयत
महाराज सर्वसैन्येषु दारुणः ॥ ३८ ॥ ततो व्यायच्छतामस्त्रैः
पृथक्पृथगजिह्मगैः । मृदुपूर्वञ्च राधेयो दृढपूर्वञ्च पाण्डवः॥३९॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमप्रवेशे
कर्णपराजये एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१२९॥

सञ्जय उवाच । तस्मिन् विलुलिते सैन्ये सैन्धवायार्जुने गते ।
सात्वते भीमसेने च पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ १ ॥ त्वरन्नेकरथे-

भीमकी गर्जनाको सुनकर धर्मराजने समझा, कि–भीमसेनने कर्णको हरादिया है, अतः वह बड़े प्रसन्न हुए ।३५। उस समय सम्पूर्ण पाण्डवसेना शंख बजानेलगी, तुम्हारे पुत्र शत्रुओंकी सेनाकी ध्वनिको सुनकर आप भी गर्जनेलगे ॥ ३६ ॥ राजा युधिष्ठिरने अपनी सेनामें शंखध्वनि और बाणकी टङ्कार करवाकर तथा हर्षध्वनिएँ करवाकर उसको हर्षसे व्याप्त कर दिया ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इस समय ही अर्जुनने गांडीव धनुषका टङ्कार शब्द किया और श्रीकृष्णने पांचजन्य शंख बजाया–इतनेमें तुरन्त ही भीमसेनने फिर गर्जना की, वह दारुण गर्जना दोनोंकी ध्वनिको दबाकर सम्पूर्णसेनामें गूँजगई ॥ ३८ ॥ तदनन्तर वे दोनों एक दूसरेको सूधेजानेवाले बाणोंसे ढकनेलगे, परन्तु कर्ण कोमलतासे बाण मारता था और भीमसेन कठोरतासे बाण मारता था ॥३९॥ एकसौ उनतीसवाँ अध्याय समाप्त।१२९।

संजयने कहा, कि- हे धृतराष्ट्र ! जयद्रथका वध करनेके लिये जब अर्जुन, सात्यकि और भीमसेन कौरव सेनामें घुसगए और

नैव बहु कृत्यं विचिन्तयन् । सरथस्तव पुत्रस्य त्वरया परया युतः ॥ २ ॥ तूर्णमभ्यद्रवद् द्रोणं मनोमारुतवेगवान् । उवाचैनं पुत्रस्ते संरम्भाद्रक्तलोचनः ॥ ३ ॥ ससंभ्रममिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुनन्दनः । अर्जुनो भीमसेनश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ ४ ॥ विजित्य सर्वसैन्यानि सुमहान्ति महारथाः । सम्प्राप्ताः सिन्धुराजस्य समीपमनिवारिताः ॥ ५ ॥ व्यायच्छन्ति च तत्रापि सर्व एवापराजिताः । यदि तावद्रणे पार्थो व्यतिक्रान्तो महारथः ॥६॥ कथं सात्यकिभीमाभ्यां व्यतिक्रान्तोऽसि मानद । आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन् समुद्रस्येव शोषणम् ॥ ७ ॥ निर्जयस्तव विप्राग्र्य सात्वतेनार्जुनेन च । तथैव भीमसेनेन लोकः संवदते भृशम् ॥८॥ कथं द्रोणो जितः संख्ये धनुर्वेदस्य पारगः । इत्येवं ब्रुवते योधा

हमारी सेना तित्तर वित्तर होगई है, यह देख तुम्हारा पुत्र दुर्योधन अभी मुझे बहुतसे काम करने हैं यह विचारताहुआ अकेला ही रथमें बैठ द्रोणके समीपको चला, मन और पवनकी समान गतिवाला तुम्हारे पुत्रका रथ बडी फुर्तीसे द्रोणके पास पहुँच गया। तुम्हारा पुत्र कुरुनन्दन दुर्योधन क्रोधसे लाल २ नेत्रकर गौरवके साथ द्रोणाचार्यसे कहनेलगा, कि–महारथी अर्जुन सात्यकि और भीमसेन ये तीनों किसीसे भीनहीं हारे और हमारी सकल सेनाओंको जीतकर बेरोकटोक जयद्रथके समीप पहुँच गए हैं ॥१-५॥ और वहाँ भी वे सब अपराजित हमारी सेनाका संहार ही कररहे हैं महारथी अर्जुन रणमें आपको जीतकर चलागया तो चलागया, परन्तु हे मानद ! सात्यकि और भीमने तुमको कैसे जीतलिया ? यह बात तो समुद्रको सुखा देनेकी समान संसारको आश्चर्यसे चकित करदेनेवाली है ॥ ६ ॥ ७ ॥ लोकमें अधिकतासे यही कानाफूँसी होरही है, कि–अर्जुन, सात्यकि और भीमसेनने द्रोणको हरादिया ॥ ८ ॥ योधा इस बातका

अश्रद्धेयमिदं त र्य ॥ ९ ॥ नाश एव तु मे नूनं मन्दभाग्यस्य संयुगे। यत्र त्वां । पुरुषव्याघ्र व्यतिक्रान्तास्त्रयो रथाः ॥ १० ॥ एवं गते तु कृ र्येऽस्मिन ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् । यद्गतं गतमेवेदं शेषं चिन्तय मानद ॥ ११ ॥ यत् कृत्यं सिन्धुराजस्य प्राप्तकालमनन्तरम् । तत् सम्विधीयतां क्षिप्रं साधु संचिन्त्य नो द्विज ॥ १२ ॥ द्रोण उवाच । चिन्त्यं बहुविधं तात यत्कृत्यं तच्च मे शृणु । त्रयो हि समतिक्रान्ताः पाण्डवानां महारथाः ॥ १३ ॥ यावत्तेषां भयं पश्चात्तावदेषां पुरःसरम् । तद्गरीयस्तरं मन्ये यत्र कृष्णधनञ्जयौ ॥ १४ ॥ सा पुरस्ताच्च पश्चाच्च गृहीता भारती चमूः । तत्र कृत्यमहं मन्ये सैन्धवस्याभिरक्षणम् ॥ १५ ॥ स नो रक्ष्य-

---

विश्वास न कर पूँछते हैं, कि-धनुर्वेदके पारगामी द्रोणको उन तीनोंने कैसे हरादिया ? ॥ ९ ॥ युद्धमें जब तीनों महारथी आपको लाँघकर चलेगए सो मैं समझता हूँ, कि-मुझ मन्दभाग्य का अवश्यही नाश होगा ॥ १० ॥ इसप्रकार जो कुछ होगया सो होगया, परन्तु अब आप जो कुछ हमसे कहना चाहते हों वह कहिये, हे मानदेनेवाले ! जो कुछ बीतगया उसको जाने दीजिये, परन्तु आगेकी चिन्ता कीजिये ११ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! आप भलीप्रकार विचारकर शीघ्रतासे कहिये. कि-अब हमें सिन्धुराजके लिये क्या करना चाहिये, हम वही करें॥१२॥द्रोणने कहा, कि-हे तात ! हमें बहुतसी बातोंपर विचार करना है, परन्तु इस समय जो करना चाहिये, उसको तू सुन पाण्डवोंके तीन महारथी सेनाको लाँघकर आगे बढगए हैं॥ १३ ॥ अतः शत्रुओंकी ओरसे हमें जितना भय पीछेसे है उतना ही भय आगेसे भी है, परन्तु जहाँ अर्जुन और श्रीकृष्ण गए हैं, उस ओरसे मुझे विशेष भय है ॥ १४ ॥ यह भारती सेना तो आगे पीछे दोनों ओरसे घिर गई है, अतः हे तात ! मैं सिन्धुराजकी रक्षा करना ही

तमस्तात क्रुद्धाद्भीतो धनञ्जयात् । गतौ च सैन्धवं भीमौ युयुधानवृकोदरौ ॥ १६ ॥ सम्प्राप्तं तदिदं द्यूतं यत्तच्छकुनिबुद्धिजम् । न सभायां जयो वृत्तो नापि तत्र पराजयः ॥ १७ ॥ इह नो ग्लहमानानामद्य तावज्जयाजयौ । यान् स्म तान् ग्लहते घोराञ्छकुनिः कुरुसंसदि ॥ १८ ॥ अक्षान् स मन्यमानः प्राक् शरास्ते हि दुरासदाः । यत्र ते बहवस्तात कुरवः पर्यवस्थिताः ॥ १९ ॥ सेनां दुरोदरं विद्धि शरानक्षान् विशाम्पते । ग्लहञ्च सैन्धवं राजंस्तत्र द्यूतस्य निश्चयः ॥२०॥ सैन्धवे तु महद्द्यूतं समासक्तं परैः सह । अत्र सर्वे महाराज त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ २१ ॥ सैन्धवस्य रणे रक्षां विधिवत् कर्तुमर्हथ । तत्र नो ग्लहमानानां ध्रुवौ तात

विशेष उचित समझता हूँ ॥ १५ ॥ जयद्रथ क्रोधित हुए अर्जुन से बहुतही डररहा है तथा वीरवर सात्यकि और भीमसेन भी जयद्रथकी ओरको ही गए हैं, अतः उसकी अच्छी तरहसे रक्षा करना ही मुझे उचित प्रतीत होता है ॥१६॥ पहिले शकुनिने तुझे अपनी बुद्धिसे जुआ खिलाया था, वह जुआ ही आगे आकर खडा होगया है, सभामें तो जीत हार कुछ भी नहीं हुई थी १७ परन्तु आज हम जुआरियोंकी सच्ची हार जीत होगी, पहिले कौरवोंकी सभामें शकुनिने जिन फाँसोंको फाँसे समझकर खेला था, वे फाँसे अब भयंकर बाण बनगए हैं, जिसमें अनेकों कौरव योधा खड़े हैं ऐसी अपनी सेनाको तू जुआ ही जान, बाणोंको फाँसे जान, जयद्रथको दाँव जान, और इस युद्धद्यूतमें (उसके जीवित रहने अथवा मारेजाने पर) ही परिणाममें हार जीतका निर्णय होगा ॥ १८–२० ॥ हे महाराज ! हम जयद्रथके कारण शत्रुओंसे बडाभारी जुआ खेलरहे हैं, अतः हम सबोंको अपने प्राणोंकी भी परवाह न करके सिंधुराज जयद्रथकी रक्षाके लिये विधिवत् सब उपाय करने चाहियें, क्योंकि—उसके ऊपर ही इस

जयाजयौ ॥ २२ ॥ यत्र ते परमेष्वासा यत्ता रक्षन्ति सैन्धवम् । तत्र गच्छ स्वयं शीघ्रं तांश्च रक्षस्व रक्षिणः ॥ २३ ॥ इहैव त्वहमासिष्ये प्रेषयिष्यामि चापरान् । निरोत्स्यामि च पञ्चालान् सहितान् पाण्डुसृञ्जयैः ॥ २४ ॥ ततो दुर्योधनोऽगच्छत्तूर्णमाचार्यशासनात् । उद्यच्छन्नात्मानमुग्राय कर्मणे सपदानुगः ॥ २५ ॥ चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ । बाह्येन सेनामभ्येत्य जग्मतुः सव्यसाचिनम् २६ यौ हि पूर्वं महाराज वारितौ कृतवर्मणा । प्रविष्टे ऽर्जुने राजंस्तव सैन्यं युयुत्सया ॥ २७ ॥ पार्श्वे भित्त्वा चमूं वीरौ प्रविष्टौ तव वाहिनीम् । पार्श्वेन सेनामायान्तौ कुरुराजो ददर्श ह ॥ २८ ॥ ताभ्यां दुर्योधनः सार्द्धमकरोत्संयुगमुत्तमम् । त्वरितस्त्वरमाणा-

जुएको खेलनेमें हमारी हार जीत निश्चित है ॥२१-२२॥ अब जहाँ बड़े२ धनुषधारी सावधान होकर जयद्रथकी रक्षा कररहे हैं, तहाँ तू स्वयं जा और उन रक्षकोंकी रक्षा कर ॥२३॥ और मैं यहाँ खडा रहकर तेरी सहायताके लिये दूसरोंको भेजता रहूँगा, तथा पांडव सृञ्जय और पांचालोंको भी आगे बढनेसे रोकता रहूँगा, द्रोणाचार्यकी इन बातोंको सुनकर दुर्योधन उनकी आज्ञाके अनुसार इस बड़भागी कार्यका भार अपने ऊपर ले अपने रक्षकोंके सहित आगेको चलदिया ॥ २५ ॥ जब अर्जुन सेनामें घुसनेलगा था तो उसके चक्ररक्षक पांचाल-देशी युधामन्यु और उत्तमौजा भी उसके साथ आरहे थे, परन्तु हे महाराज ! कृतवर्माने उनको भीतर नहीं घुसने दिया, तदनन्तर जब अर्जुन सेनामें घुसगया तब वे दोनों सेनाके बाहरही बाहर जाकर बीचमेंसे सेनाको फाड भीतर घुसगये, दुर्योधनने उन दोनोंको सेनामें घुसतेहुए देख लिया ॥ २६-२८ ॥ वे दोनों भाई फुर्तीके साथ सेनामें घुसे चले आते थे, यह देख भरतवंशी बलवान् दुर्योधन भी शीघ्रतासे उनके समीप पहुँच

भ्यां भ्रातृभ्यां भारतो बली ॥२९॥ तावेनमभ्यद्रवतामुभावुद्यतकार्मुकौ । महारथसमाख्यातौ क्षत्रियप्रवरौ युधि ॥ ३० ॥ तमविध्यद्युधामन्युस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः । विंशत्या सारथिञ्चापि चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ३१ ॥ दुर्योधनो युधामन्योर्ध्वजमेकेषुणाच्छिनत् । एकेन कार्मुकञ्चास्य स चकर्त्त सुतस्तव ॥ ३२ ॥ सारथिञ्चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत् । ततोऽविध्यच्छरैस्तीक्ष्णैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥३३॥ युधामन्युश्च संक्रुद्धः शरांस्त्रिंशतमाहवे । व्यसृजत्तव पुत्रस्य त्वरमाणः स्तनांतरे ॥ ३४ ॥ तथोत्तमौजाः संक्रुद्धः शरैर्हेमविभूषितैः । अविध्यत् सारथिञ्चास्य प्राहिणोद्यमसादनम् ॥३५॥ दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्योत्तमौजसः । जघान चतुरोऽस्याश्वानुभौ तौ पार्ष्णिसारथी॥३६॥ उत्त-

---

घोर युद्ध करनेलगा ॥ २९ ॥ वे दोनों क्षत्रियश्रेष्ठ महारथी भी दुर्योधनको देखते ही धनुषको तान उसके सामनेको दौड़े ३० और युधामन्युने कंकपत्र लगेतीस वाण मारकर दुर्योधनको घायल करडाला और वीस वाणोंसे दुर्योधनके सारथिको तथा चार वाण मारकर उसके चारों घोडोंको घायल करदिया॥३१॥ तव दुर्योधनने एक वाण मारकर युधामन्युकी ध्वजाको काटडाला फिर तुम्हारे पुत्रने एक वाणसे उसके धनुषको काटडाला ३२ और एक भल्ल नामक वाण मारकर उसके सारथिको रथकी वैठक परसे नीचे गिरादिया, फिर चार तीक्ष्ण वाण मारकर उसके घोड़ोंको वींधडाला ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! तव तो युधामन्यु क्रोधमें भरगया और उसने फुरतीके साथ तीन वाण दुर्योधनकी छातीमें मारे ॥ ३४ ॥ फिर क्रोधमें भरेहुए उत्तमौजाने सुवर्णसे शोभायमान वहुतसे वाण मारकर दुर्योधनके सारथिको यमलोकमें भेजदिया ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र ! फिर दुर्योधनने भी पञ्चालदेशी उत्तमौजाके चारों घोड़ोंको और उसके पार्श्वरक्षक

मौजा हताश्वस्तु हतसूतस्तु संयुगे । आरुरोह रथं भ्रातुर्युधामन्योरभित्वरन् ॥ ३७ ॥ स रथं प्राप्य तं भ्रातुर्दुर्योधनहयान् शरैः । बहुभिस्ताडयामास ते हताः प्रापतन्भुवि ॥३८॥ हयेषु पतितेष्वस्य चिच्छेद परमेषुणा । युधामन्युर्धनुः शीघ्रं शरावापञ्च संयुगे ॥३९॥ हताश्वसूतात् स रथादवतीर्य नराधिपः । गदामादाय ते पुत्रः पांचाल्यावभ्यधावत ॥४०॥ तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य क्रुद्धं कुरुपतिं तदा । अवप्लुतौ रथोपस्थात् युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ४१ ॥ ततः स हेमचित्रं तं स्यन्दनप्रवरं गदी । संक्रुद्धः पोथयामास साश्वसूतध्वजं नृप ॥ ४२ ॥ भंक्त्वा रथं स पुत्रस्ते हताश्वो हतसारथिः । मद्रराजरथं तूर्णमारुरोह परन्तपः ॥ ४३ ॥ पञ्चालानान्तु मुख्यौ तौ

तथा सारथिको मारडाला ॥ ३६ ॥ जब उत्तमौजाके घोड़े और सारथि मरगए तब वह फुर्तीके साथ अपने भाई युधामन्युके रथ पर चढ़गया ॥ ३७ ॥ उसने अपने भाईके रथपर चढ़ दुर्योधनके घोड़ोंके बहुतसे बाण मारे अतः वे मरकर भूमि पर गिरपड़े ।३८। घोड़ोंके गिरजाने पर युधामन्युने फुरतीसे दुर्योधनके धनुष और भाथेको भी काटडाला ॥३९॥ तुम्हारा पुत्र मरेहुए सारथि और घोड़ेवाले रथपरसे कूदपड़ा और हाथमें गदा ले उन दोनों पंचाल भाइयोंके ऊपर झपटा ॥४०॥ परन्तु कुरुराजको क्रोधमें भरकर आते देख उसी समय युधामन्यु और उत्तमौजा दोनों ही अपने२ रथपरसे कूदपड़े ॥४१॥ तदनन्तर हे राजन् ! क्रोधमें भरे गदाधारी दुर्योधनने उनके सुवर्णसे चितेहुए रथके ऊपर गदा मारकर रथके घोड़े और सारथिको मारडाला और रथ तथा ध्वजाको चूर २ करडाला ॥४२॥ शत्रुके घोड़े और सारथिका नाश करके जिसके रथके घोड़े और सारथि मारेगये हैं ऐसा वह तुम्हारा परन्तप पुत्र दुर्योधन शीघ्रतासे शल्यके रथपर चढ़बैठा ॥ ४३ ॥

राजपुत्रौ महारथौ । रथावन्यौ समारुह्य बीभत्सुमभिजग्मतुः ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनयुद्धे त्रिशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

सञ्जय उवाच । वर्त्तमाने महाराज संग्रामे लोमहर्षणे । व्याकुलेषु च सर्वेषु पीड्यमानेषु सर्वशः ॥ १ ॥ राधेयो भीममानर्च्छद्युद्धाय भरतर्षभ । यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमभिद्रवन् ॥ २ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । यौ तौ कर्णश्च भीमश्च सम्प्रयुद्धौ महाबलौ । अर्जुनस्य रथोपान्ते कीदृशः सोऽभवद्रणः ॥३॥ पूर्वं हि निर्जितः कर्णो भीमसेनेन संयुगे । कथम्भूयस्तु राधेयो भीममागान्महारथः ॥४॥ भीमो वा सूततनयं प्रत्युद्यातः कथं रणे । महारथं समाख्यातं पृथिव्यां प्रवरं रथम् ॥ ५ ॥ भीष्मद्रोणावतिक्रम्य धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । नान्यतो भयमादत्त विना कर्णान्महारथात् ॥६॥ भया-

इतनेमें ही पञ्चालदेशी वे दोनों महारथी राजकुमार दूसरे रथमें बैठ अर्जुनके पास पहुँचगये॥४४॥एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त॥

सञ्जयने कहा, कि—हे महाराज ! जब इसप्रकार (एक ओर) भयंकर संग्राम होरहा था और सब सैनिक सब ओरसे पीड़ित होनेके कारण व्याकुल होरहे थे ॥ १ ॥ उस समय हे महाराज ! जैसे वनमें मदमत्त हाथी दूसरे मदमत्त हाथीके ऊपर दौड़ता है, तैसे ही कर्ण भी भीमसेनके ऊपरको झपटा और उससे लड़नेके लिये कहनेलगा ॥ २ ॥ धृतराष्ट्रने बूझा, कि—हे सञ्जय ! महाबली और महायोधा कर्ण तथा भीमने अर्जुनके रथके समीप किसप्रकार युद्ध किया था और वह युद्ध कैसे हुआ था ? ॥ ३ ॥ भीमसेनने युद्धमें कर्णको पहिले ही जीत लिया, फिर महारथी कर्ण भीमसेनसे युद्ध करनेको क्यों गया ? ॥ ४ ॥ और भीम भी पृथ्वीभरके रथियोंमें नामी महारथी सूतपुत्र कर्णके ऊपर फिर क्यों चढ़कर गया ? ॥ ५ ॥ धर्मराज युधिष्ठिर जितना महारथी

यस्य महाबाहो न शेते बहुलाः समाः । चिंतयन्नित्यशो वीर्यं राधेयस्य
महात्मनः । तं कथं सूतपुत्रं तु भीमोऽयोधयताहवे ॥ ७ ॥
ब्रह्मण्यं वीर्यसम्पन्नं समरेष्वनिवर्त्तिनम् ।कथं कर्णं युधां श्रेष्ठं योधयामास
पाण्डवः ॥ ८ ॥ यौ तौ समीयतुर्वीरौ वैकर्त्तनवृकोदरौ ।
कथं तावत्र युध्येतां महाबलपराक्रमौ ॥ ९ ॥ भ्रातृत्वं दर्शितं पूर्वं
घृणी चापि स सूतजः । कथं भीमेन युयुधे कुन्त्या वाक्यमनुस्मरन्
॥१०॥ भीमो वा सूतपुत्रेण स्मरन् वैरं पुरा कृतम् । सोऽयुध्यत
कथं वीरः कर्णेन सह संयुगे ॥ ११ ॥ आशास्ते च सदा
सूत पुत्रो दुर्योधनो मम । कर्णो जेष्यति संग्रामे समस्तान्
पाण्डवानिति ॥ १२ ॥ जयाशा यत्र मन्दस्य पुत्रस्य
मम संयुगे । स कथं भीमकर्माणं भीमसेनमयोधयत् ॥ १३ ॥

कर्णसे डरते थे उतना द्रोण और भीष्मसे भी नहीं डरते थे ।६।
और वह कर्णके भयसे चिन्तित हो बहुत दिनों तक सोये भी
नहीं थे, पराक्रमी सूतपुत्रके साथ भीम रणमें लड़नेको कैसे तयार
होगया ॥७॥ ब्राह्मणों पर श्रद्धा रखनेवाले, समरमें पीछेको न
हटनेवाले, योधाओंमें श्रेष्ठ कर्णसे भीमसेन कैसे लड़सका ? ।८।
जब वीरवर कर्ण और भीम आपसमें भिडगए, तब उन महाबलियोंने
अर्जुनके रथके समीपमें किसप्रकार युद्ध किया ?॥९॥
सूतपुत्र कर्ण, पाण्डव मेरे भाई हैं, यह जानताहुआ और कुन्तीके
वाक्यको स्मरण करताहुआ भी भीमसेनसे कैसे लड़सका ? १०
और भीम कर्णके कियेहुए पहिले वैरका स्मरण कर कर्णसे
रणक्षेत्रमें किसप्रकार लडा ? ॥ ११ ॥ मेरा पुत्र दुर्योधन सदा
यह भरोसा रखता था, कि--कर्ण संग्राममें सब पाण्डवोंको
जीतलेगा ॥ १२ ॥ मेरा मन्दभाग्य पुत्र जिसके बल पर संग्राममें
जय पानेकी आशा रखता था उस कर्णने भयंकर कर्म करनेवाले
भीमसेनके साथ किसप्रकार युद्ध किया ? ॥ १३ ॥ मेरे पुत्रोंने

यं समासाद्य पुत्रैर्मे कृतं वैरं महारथैः । तं सूततनयं तात कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १४ ॥ अनेकान् विप्रकारांश्च सूतपुत्रसमुद्भवान् । स्मरमाणः कथं भीमो युयुधे सूतसूनुना ॥ १५ ॥ योऽजयत् पृथिवीं सर्वां रथेनैकेन वीर्यवान् । तं सूततनयं युद्धे कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १६ ॥ यो जातः कुण्डलाभ्याञ्च कवचेन सहैव च । तं सूतपुत्रं समरे भीमः कथमयोधयत् ॥ १७ ॥ यथा तयोर्युद्धमभूत् यश्चासीद्विजयी तयोः । तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ १८ ॥ सञ्जय उवाच । भीमसेनस्तु राधेयमुत्सृज्य रथिनाम्वरम् । इयेष गन्तुं यत्रास्तां वीरौ कृष्णधनञ्जयौ ॥ १९ ॥ तं प्रयान्तमभिद्रुत्य राधेयः कंकपत्रिभिः । अभ्यवर्षन्महाराज मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ २० ॥

जिसके बल पर कूदकर पाण्डवोंके साथ वैर बाँधा था, उस सूतपुत्र कर्णके साथ हे तात ! भीम किसप्रकार लड़ा था ? १४ सूतपुत्र कर्णके किएहुए अनेकों अपमानोंका स्मरण आने पर भीमने कर्णके साथ किसप्रकार युद्ध किया था ? ॥ १५ ॥ बलवान् कर्णने एक रथके सहारे ही सकल पृथ्वीको जीतलिया था ऐसे सूतपुत्रके साथ भीम कैसे लड़सका था ? ॥ १६ ॥ कर्ण कुण्डल और कवच धारण कियहुए माताकी कोखमेंसे निकला था ऐसे वीरके साथ भीमने किसप्रकार युद्ध किया था ? ॥ १७ ॥ उन दोनोंमें जिसप्रकार युद्ध हुआ हो और उन दोनोंमें जिसकी विजय हुई हो वह सब ठीक२ मुझे सुना, क्योंकि–हे सञ्जय ! तू कथा कहनेमें बड़ा प्रवीण है ॥ १८ ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! भीमसेन तो रथियोंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्णका पिण्ड छोड़ कृष्ण और अर्जुनके पास जाना चाहता था ॥ १९ ॥ परन्तु हे महाराज ! राधापुत्र कर्ण आगेको जातेहुए भीमके पीछे जा, जैसे मेघ पर्वत पर जलधाराएँ बरसाता है तैसे कंकपक्षीके परोंवाले बाण बरसानेलगा ॥ २० ॥ फिर अधिरथका पुत्र बलवान् कर्ण

फुल्लता पङ्कजेनेव वक्त्रेण विहसन् वली । आजुहाव रणे यान्तं भीममाधिरथिस्तदा ॥ २१ ॥ कर्ण उवाच । भीमाहितैस्तव रणः स्वप्नेऽपि न विभावितः । तद्दर्शयति कस्मान्मे पृष्ठं पार्थदिदृक्षया २२ कुन्त्या पुत्रस्य सदृशं नेदं पाण्डुनन्दन । तेन मामभितः स्थित्वा शरवर्षैरवाकिर ॥ २३ ॥ भीमसेनस्तदाह्वानं कर्णोनामर्षयद्युधि । अर्द्धमण्डलमावृत्य सूतपुत्रमयोधयत् ॥ २४ ॥ अवक्रगामिभिर्बाणैरभ्यवर्षन्महायशाः । द्वैरथे दंशितं यत्तं सर्वशस्त्रविशारदम् ।२५। विधित्सुः कलहस्यान्तं जिघांसुः कर्णमाक्षिणोत् । हत्वा तस्यानुगांस्तं च हन्तुकामो महाबलः ॥ २६ ॥ तस्मै व्यासृजदुग्राणि विविधानि परन्तपः । अमर्षात्पाण्डवः क्रुद्धः शरवर्षाणि मारिष २७

खिलेहुए कमलकी समान प्रसन्न मुखसे हँसकर रणमें आगेको जातेहुए भीमको पुकार कर कहनेलगा ॥ २१ ॥ कर्णने कहा, कि–अरे ओ भीम ! मुझे स्वप्नमें भी आशा नहीं थी, कि–"शत्रुओंके साथ रणमें कैसे लडना चाहिये यह तुझे आता है, फिर अर्जुनको देखनेकी इच्छासे तू मुझे पीठ क्यों दिखाता है ? २२ हे पाण्डवोंको आनन्द देनेवाले! तेरा यह काम कुन्तीके पुत्रों कैसा नहीं है ? अतः तू मेरे सामने खडा रहकर मेरे ऊपर वाणोंकी वर्षा कर"।२३। भीमसेन कर्णके तीखे वचनोंसे युक्त इस पुकार सह न सका और अर्धमण्डलाकारसे रथको लौटाकर कर्णके सामने लडनेको आगया ॥ २४ ॥ महायशस्वी भीमसेन कवचधारी, द्वन्द्वयुद्धमें लगेहुए सकल शस्त्रोंमें चतुर कर्णके ऊपर सीधे जानेवाले वाण वरसानेलगा ॥ २५ ॥ कलहका अन्त करनेकी और कर्णको मारनेकी इच्छासे वली भीमने उसको वाणोंसे ढककर पहले तो उसके अनुयायियोंको मारडाला, और हे राजन् ! फिर उसको मारनेकी इच्छासे क्रोधमें भरेहुए परन्तप भीमसेनने असहनशीलताके कारण कर्णके ऊपर नानाप्रकारके

तस्य तानीषुवर्षाणि मत्तद्विरदगामिनः । सूतपुत्रोऽस्त्रमायाभिरग्रसत् परमास्त्रवित् ॥ २८ ॥ स यथावन्महावाहुर्विद्यया वै सुपूजितः । आचार्यवन्महेष्वासः कर्णः पर्यचरद्बली २९ युध्यमानन्तु संरम्भाद्भीमसेनं हसन्निव । अभ्यपद्यत कौन्तेयं कर्णो राजन् वृकोदरम् ३० तन्नामृष्यत कौन्तेयः कर्णस्य स्मितमाहवे । युध्यमानेषु वीरेषु पश्यत्सु च समन्ततः ॥ ३१ ॥ तं भीमसेनः सम्प्राप्तं वत्सदन्तैः स्तनान्तरे । विव्याध बलवान् क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३२ ॥ पुनस्तु सूतपुत्रन्तु स्वर्णपुंखैः शिलाशितैः । सुमुक्तैश्चित्रवर्माणं निर्बिभेद त्रिसप्तभिः ॥ ३३ ॥ कर्णो जाम्बूनदैर्जालैः सञ्छन्नान् वातरंहसः । हयान् विव्याध भीमस्य पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ३४ ततो बाणमयं जालं भीमसेनरथं प्रति । कर्णेन विहितं राजन्

भयङ्कर अस्त्र छोड़े ॥ २६–२७ ॥ मतवाले हाथीकी समान चलनेवाले भीमकी वाणवर्षाओंको अस्त्रोंका पारगामी कर्ण अपनी अस्त्रमायासे निगलनेलगा ॥ २८ ॥ विद्याके कारण वड़ीभारी प्रशंसा पायाहुआ महाभुज, महावली कर्ण, वड़ाभारी धनुष ले संग्राममें द्रोणकी समान घूमनेलगा॥२९॥ हे राजन्! वह क्रोधमें भरकर युद्ध करतेहुए कुन्तीपुत्र भीमके सामनेको हँसताहुआ वढ़ा चलागया ॥ ३० ॥ रणमें चारों ओर लड़तेहुए वीरोंके सामने भीमसेनको कर्णका मुस्कराना सह्य नहींहुआ ॥ ३१ ॥ इससे महावली भीमसेनने क्रोधमें भरकर पासमें आयेहुए कर्णकी छातीमें ऐसे वत्सदन्त नामके वाण मारना आरम्भ करदिये जैसे अंकुशोंसे हाथीको मारते हैं ॥ ३२ ॥ फिर उसने सुवर्णकी पूँछवाले, शिलाके ऊपर घिसकर तेज किएहुए इक्कीस वाण मारकर विचित्र कवच धारण करनेवाले कर्णके शरीरको वींध डाला ॥ ३३ ॥ तव कर्णने भीमके वायुवेगी, सुवर्णकी झूलों वाले घोड़ोंको पाँच २ वाण मारकर वींधडाला ॥ ३४ ॥ तद-

निमेषार्धाददृश्यत ॥ ३५ ॥ सरथः सध्वजस्तत्र ससूतः पाण्डवस्तदा । प्राच्छाद्यत महाराज कर्णचापच्युतैः शरैः ॥ ३६ ॥ तस्य कर्णश्चतुःषष्ट्या व्यधमत् कवचं दृढम् । क्रुद्धश्चाप्यहनत् पार्थं नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३७ ॥ ततोऽचिन्त्य महाबाहुः कर्णकार्मुकनिःसृतान् । समाश्लिष्यदसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ ३८ ॥ स कर्णचापप्रभवानिषूनाशीविषोपमान् । विभ्रद्भीमो महाराज न जगाम व्यथां रणे ॥ ३९ ॥ ततो द्वात्रिंशता भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः । विव्याध समरे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४० ॥ अयत्नेनैव तं कर्णः शरैर्भृशमवाकिरत् । भीमसेनं महाबाहुं सैन्धववधैषिणम् ॥४१॥ मृदुपूर्वं हि राधेयो भीममाजावयोधयत् । क्रोधपूर्वं तथा भीमः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४२ ॥ तं भीमसेनो नामृ-

---

नन्तर हे राजन् ! आधे निमेषमें ही भीमसेनका रथ कर्णके मारेहुए वाणजालसे ढकाहुआ दीखनेलगा ॥ ३५ ॥ हे महाराज! उस समय कर्णके धनुषमेंसे छूटेहुए वाणोंसे भीमसेन,उसका रथ, ध्वजा,घोड़े और सारथि सब ढक गये थे ॥ ३६ ॥ फिर कर्णने चौंसठ वाण मारकर भीमसेनके दृढ कवचको तोडडाला और क्रोधमें भर नाराच नामके वाणोंसे भीमसेनके मर्मस्थानोंको भी घायल करडाला ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! तब महाभुज भीमसेन भी विना किसी विचारके कर्णके धनुषमेंसे छूटतेहुए विषैले सर्पोंकी समान तीखे वाणोंको जरा न घबडाकर सहता रहा और उसको इस लडाईमें कुछ भी व्यथा नहीं हुई ॥३८-३९ ॥ तदनन्तर प्रतापी भीमसेनने तीखी धारवाले अत्यन्त तीक्ष्ण वत्तीस भल्ल नामक वाण कर्णके मारे ॥ ४० ॥ तब विना परिश्रमके, ही सहजमें कर्णने सिंधुराजका वध करनेकी इच्छा करनेवाले महावाहु भीमके वहुतसे वाण मारे ॥४१॥ युद्धमें कर्ण तो भीमसे कोमलतासे लडता था परन्तु भीमसेन पहिले वैरको याद करके

व्यमवमानममर्पणः । स तस्मै व्यसृजत्तूर्णं शरवर्षममित्रहा ॥४३॥ ते शराः प्रेषितास्तेन भीमसेनेन संयुगे । निपेतुः सर्वतो वीरं कूजन्त इव पक्षिणः ॥४४॥ हेमपुंखाः प्रसन्नाग्रा भीमसेनधनुश्च्युताः । प्राच्छादयंस्ते राधेयं शलभा इव पावकम् ॥४५॥ कर्णस्तु रथिनां श्रेष्ठश्छाद्यमानः समन्ततः । राजन् व्यसृजदुग्राणि शरवर्षाणि भारत ॥ ४६ ॥ तस्य तानशनिप्रख्यानिषून् समरशोभिनः । चिच्छेद बहुभिर्भल्लैरसम्प्राप्तान् वृकोदरः ॥ ४७ ॥ पुनश्च शरवर्षेण, छादयामास भारत । कर्णो वैकर्त्तनो युद्धे भीमसेनमरिन्दमः ॥ ४८ ॥ तत्र भारत भीमन्तु दृष्टवन्तः स्म सायकैः । समाचिततनुं संख्ये श्वाविधं शललैरिव ॥ ४९ ॥ हेमपुंखाञ्छिलाधौतान् कर्णचापच्युताञ्छरान् । दधार समरे वीरः स्वरश्मीनिव

कर्णसे कठोरताके साथ लडता था ॥ ४२ ॥ असहनशील भीमसेनसे यह अपमान सहा नहीं गया तब उस शत्रुनाशीने कर्णके ऊपर झपाटेके साथ बाणोंकी वर्षाकी ॥ ४३ ॥ भीमसेनके छोड़े हुए वे बाण चीं चीं करतेहुए पक्षियोंकी समान वीर कर्णके सकल अङ्गोंमें घुसगये जैसे पतङ्ग अग्निको घेरलेते हैं तैसे ही प्रसन्नमुख भीमसेनके धनुषमेंसे छूटतेहुए सुवर्णकी पूँछवाले बाणोंने कर्णको घेरलिया ॥ ४५ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! सब ओरसे बाणोंसे ढकजाने पर रथियोंमें श्रेष्ठ कर्ण भयङ्कर बाणवर्षा करनेलगा ॥ ४६ ॥ समरशोभी कर्णके वज्रकी समान बाणोंको भीमसेनने बहुतसे भल्ल मारकर बीचमेंसे ही काटडाला ॥ ४७ ॥ हे भारत ! फिर कर्ण युद्धमें बाणबरसाकर भीमको ढकनेलगा ४८ हे भारत ! उस समय बाणोंसे खचाखच भरेहुए शरीरवाला भीम अपने केशोंसे व्याप्त सेईकी समान प्रतीत होता था ४९ सुवर्णकी पूँछवाले, शिलापर घिसकर तेज किएहुए कर्णके धनुषसे छूटेहुए बाणोंको वीरवर भीमसेन युद्धमें ऐसे धारण कर

रश्मिवान् ॥ ५० ॥ रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो भीमसेनो व्यराजत । समृद्धकुसुमापीडो वसन्तेऽशोकवृक्षवत् ॥ ५१ ॥ तत्तु भीमो महावाहोः कर्णस्य चरितं रणे । नामृष्यत महावाहुः क्रोधादुद्वृत्तलोचनः ॥ ५२ ॥ स कर्णं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् । महीधरमिव श्वेतं गूढपादैर्विषोल्बणैः ॥ ५३ ॥ पुनरेव च विव्याध षड्भिरष्टाभिरेव च । मर्मस्वमरविक्रान्तः सूतपुत्रं तनुत्यजम् ५४ पुनरन्येन वाणेन भीमसेनः प्रतापवान् । चिच्छेद कार्मुकं तूर्णं कर्णस्य प्रहसन्निव ॥५५॥ जघान चतुरश्चाश्वान् सूतञ्च त्वरितः शरैः । नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्णं विव्याध चोरसि ॥ ५६ ॥ ते जग्मुर्धरणीमाशु कर्णं निर्भिद्य पत्रिणः । यथा जलधरं भित्वा

रहा था जैसे सूर्य अपनी किरणोंको धारण करते हैं ॥ ५० ॥ जिसके सकल अङ्गोंसे रुधिर चूरहा था ऐसा भीम वसन्त ऋतुमें खिलेहुए फूलोंसे लदे अशोकके वृक्षकी समान शोभा पारहा था ॥ ५१ ॥ इसप्रकार कर्ण जव भीमपर अनेकों प्रहार करने लगा तव भीम उसके वर्तावको सह न सका और उसने जैसे जहरीले साँप श्वेत पर्वत पर फैंके जायँ तैसे नाराच नामक पच्चीस भयङ्कर वाण कर्णके ऊपर फैंके ॥ ५२-५३ ॥ देवताओंकी समान पराक्रम करनेवाले भीमसेनने अपने शरीरका भी दान देनेवाले कर्णके मर्मभागोंमें चौदह वाण मारे ॥ ५४ ॥ फिर भीमसेन हँसा और उसने शीघ्रतासे एक दूसरा वाण ले कर्णके धनुषको काटडाला ५५ फिर उसने फुरतीसे वाण मारकर कर्णके घोड़े और सारथिको मारडाला तथा कर्णकी छातीमें भी अग्निकी समान चमकतेहुए वाण मारकर उसको घायल करदिया ॥५६॥ सूर्यकी किरणोंकी समान वे वाण पर्वतकी समान कर्णको शीघ्रतासे बींधकर पृथ्वीमें घुसगए ॥ ५७ ॥ वाणोंके प्रहारसे

दिवाकरमरीचयः ॥ ५७ ॥ स वैक्लव्यं महत् प्राप्य छिन्नधन्वा शराहतः । तथा पुरुषमानी स प्रत्यपायाद्रथान्तरम् ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णपराजये
एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । स्वयं शिष्यो महेशस्य भृगुरामधनुर्धरः । शिष्यत्वं प्राप्तवान् कर्णस्तस्य तुल्योस्त्रविद्यया ॥ १ ॥ तद्विशिष्टोऽपि वा कर्णः शिष्यः शिष्यगुणैर्युतः । कुन्तीपुत्रेण भीमेन निर्जितः स तु लीलया ॥२॥ यस्मिन् जयाशा महती पुत्राणां मम सञ्जय । तं भीमाद्विमुखं दृष्ट्वा किन्नु दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥ कथञ्च युयुधे भीमो वीर्यश्लाघी महाबलः । कर्णो वा समरे तात किमकार्षीदतः परम् । भीमसेनं रणे दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ४ ॥ सञ्जय उवाच । रथमन्यं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः । अभ्ययात्

टूटेहुए धनुषवाला कर्ण बड़ा विकल होगया, तदनन्तर पुरुषत्व का अभिमान करनेवाला कर्ण बैठनेके लिये दूसरे रथकी ओरको दौड़ा ॥ ५८ ॥ एकसौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त १३१

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ साक्षात् शिवजीके शिष्य परशुरामसे जिसने अस्त्रविद्या सीखी थी और जो अस्त्रविद्यामें उनकी समान क्या उनसे भी श्रेष्ठ था तथा जिसमें शिष्यके सब गुण थे, ऐसे कर्णको भी कुन्तीपुत्र भीमने अनायासमें ही जीतलिया ॥ १-२ ॥ हे संजय ! मेरे पुत्र जिसके ऊपर विजयकी बडीभारी आशा बाँधे बैठे थे वह कर्ण जब भीमके सामनेसे भागनेलगा, तब दुर्योधनने क्या कहा ? ॥ ३ ॥ प्रशंसनीय वीरतावाला महाबली भीम कर्णसे कैसे २ लडा था ? और भीमसेनको अग्निकी समान प्रज्वलित हुआ देखकर हे तात ! कर्णने समरमें क्या किया था ? ॥ ४ ॥ सञ्जयने कहा कि-हे धृतराष्ट्र ! कर्ण शास्त्रानुसार बनेहुए दूसरे रथमें बैठ वायुके

पाण्डवं कर्णो वातोद्धूत इवार्णवः ॥ ५ ॥ क्रुद्धमाधिरथं दृष्ट्वा पुत्रास्तव विशाम्पते । भीमसेनममन्यन्त वैश्वानरमुखे हुतम् ६ चापशब्दं ततः कृत्वा तलशब्दञ्च भैरवम् । अभ्यद्रवत राधेयो भीमसेनरथं प्रति ७ पुनरेव तयो राजन् घोर आसीत् समागमः । वैकर्त्तनस्य शूरस्य भीमस्य च महात्मनः ॥ ८ ॥ संरब्धौ हि महावाहू परस्परवधैषिणौ । अन्योऽन्यमीक्षाञ्चक्राते दहन्ताविव लोचनैः ॥ ९ ॥ क्रोधरक्तेक्षणौ तीव्रौ निःश्वसन्ताविवोरगौ । शूरावन्योन्यमासाद्य ततक्षतुररिन्दमौ ॥ १० ॥ व्याघ्राविव सुसंरब्धौ श्येनाविव च शीघ्रगौ । शरभाविव संक्रुद्धौ युयुधाते परस्परम् ॥ ११ ॥ ततो भीमः स्मरन् क्लेशानक्षद्यूते वनेपि च । विराटनगरे चैव दुःखं प्राप्तमरिन्दमः ॥ १२ ॥ राष्ट्राणां स्फीत-

---

उभार खातेहुए समुद्रकी समान भीमसेनकी ओरको बढा ॥५॥ हे राजन्! कर्णको क्रोधमें भरा देख तुम्हारे पुत्रोंने समझा, कि-भीमसेन अग्निमें झोंकदियागया ॥ ६ ॥ तदनन्तर धनुषको टङ्कारताहुआ और भयङ्कर रीतिसे तालियें पीटताहुआ कर्ण भीमसेनके रथकी ओरको दौडा ॥ ७ ॥ हे राजन्! उन वीर कर्ण और महात्मा भीममें फिर भयङ्कर संग्राम होनेलगा ॥ ८ ॥ क्रोधमें भरेहुए, परस्पर एक दूसरेका वध करना चाहतेहुए दोनों योधा मानों नेत्रोंसे दूसरेको भस्म ही कर डालेंगे इसप्रकार देखनेलगे ॥ ९ ॥ क्रोधसे लाल २ नेत्रोंवाले सर्पोंकी समान फुंकारे भरतेहुए वे दोनों शत्रुनाशक वीर आपसमें प्रहार करने लगे ॥ १० ॥ वे दोनों योधा व्याघ्रोंकी समान क्रोधमें होकर, बाजोंकी समान झपटकर और दो शरभोंकी समान आवेशमें भरकर युद्ध करनेलगे ॥ ११ ॥ तदनन्तर शत्रुनाशी भीमको जुएके समयके और वनवासके समयके क्लेशोंका, तथा विराट नगरमें रहनेके समय जो दुःख भुगतने पड़े थे उनका स्मरण

रत्नानां हरणंच तवात्मजैः । सततञ्च परिक्लेशान् सपुत्रेण त्वया कृतान्॥१३॥दग्धुमैच्छश्च यः कुन्तीं सपुत्रां त्वपनागसम् । कृष्णायाश्च परिक्लेशं सभामध्ये दुरात्मभिः॥१४॥केशपक्षग्रहञ्चैव दुःशासनकृतं तथा ।।परुषाणि च वाक्यानि कर्णेनोक्तानि भारत॥१५॥ पतिमन्यं परीप्सस्व न सन्ति पतयस्तव । पतिता नरके पार्थाः सर्वे षण्ढतिलोपमाः॥१६॥समक्षं तत्र कौरव्य यदूचुः कुरवस्तदा । दासीभावेन कृष्णाञ्च भोक्तुकामाः सुतास्तव ॥ १७ ॥ यच्चापि तान् प्रव्रजतः कृष्णाजिननिवासिनः । परुषाण्युक्तवान् कर्णः सभायां सन्निधौ तव ॥१८॥ तृणीकृत्य यथा पार्थांस्तव पुत्रो ववल्ग ह । विषमस्थान् समस्थो हि संरब्धो गतचेतनः ॥ १९ ॥ बाल्यात् प्रभृति चारिघ्नः स्वानि दुःखानि चिन्तयन् । निरविद्यत धर्मात्मा

आगया ॥ १२ ॥ तदनन्तर तुम्हारे पुत्रोंके छीने हुए राज्यका, दमकतेहुए रत्नोंका और तुम्हारे पुत्रोंके दियेहुए क्लेशोंका, तुम्हारे निरपराधा कुन्तीको पुत्रोंसहित भस्म करदेनेके उद्योगको, सभाके बीचमें द्रौपदी पर कियेहुए दुष्टोंके अत्याचारोंका, दुःशासनने जो द्रौपदीके केश खींचे थे उसका, उस समय कर्णके कहेहुए कठोर वाक्योंका, कि—"अरी द्रौपदी ! ये पांडव अब तेरे पति नहीं रहे अब तू दूसरे पतिको पसन्द करले पांडव तो तेजरहित तिलोंकी समान नपुंसक है और नरकमें पड़ेहुए हैं" इत्यादि तुम्हारे सामने सभामें कहेहुए तुम्हारे पुत्रोंके अपशब्दोंका, उन्होंने द्रौपदीको जो दासीभावसे भोगना चाहा था उसका मृगचर्म धारण कर वनको जाते समय पांडवोंसे तुम्हारे सामने सभामें कहेहुए कर्णके कठोर वाक्योंका, तुम्हारे सुखी पुत्र दुर्योधनने दुःखमें पड़ेहुए पांडवोंसे जो बकवादकी उसका तथा हे कुरुराज ! बालकपनसे भोगेहुए अपने दुःखोंका स्मरण करके शत्रुनाशक भीम अपने जीवनसे भी दुःखी होगया ॥ १३ २ ॥

जीवितेन वृकोदरः ॥ २० ॥ ततो विस्फार्य सुमहद्धेमपृष्ठं दुरासदम् । चापं भरतशार्दूलस्त्यक्तात्मा कर्णमभ्ययात् ॥ २१ ॥ स सायकमयैर्जालैर्भीमः कर्णरथं प्रति । भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्राच्छादयत् प्रभाम् ॥ २२ ॥ ततः प्रहस्याधिरथिस्तूर्णमस्य शिलाशितैः । व्यधमद्भीमसेनस्य शरजालानि पत्रिभिः ॥ २३ ॥ महारथो महावाहुर्महावाणैर्महावलः । विव्याधाधिरथिर्भीमं नवभिर्निशितैस्तदा ॥ २४ ॥ स तोत्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्रिभिः । अभ्यधावदसम्भ्रांतः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ २५ ॥ तमापतन्तं वेगेन रभसं पाण्डवर्षभम् । कर्णः प्रत्युद्ययौ क्रुद्धो मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ २६ ॥ ततः प्रध्माप्य जलजं भेरीशतसमस्वनम् । अक्षु-

---

तदनन्तर भरतवंशमें सिंहसमान भीमसेन अपने सुवर्णकी मूठवाले वहुत ही वड़े धनुषको टंकारकर अपने प्राणोंका भी मोह छोड कर्णसे लडनेको चलदिया ॥ २१ ॥ तदनन्तर भीमने शिलापर घिसकर तेजकिए चमकदार वाण मार कर कर्णके रथमें सूर्यके प्रकाशका जाना रोकदिया (अन्धेरा करदिया)२२ तव अधिरथके पुत्र कर्णने हँसकर, भीमसेनके वाणोंके जालको शिलापर घिसकर तेज किएहुए वाण मारकर काटडाला २३ महारथी, महावाहु, महावली कर्णने वड़े २ नौ तीक्ष्ण वाण मारकर भीमसेनको घायल करडाला ॥ २४ ॥ वाणोंसे पीछेको हटानेके लिये अंकुशोंसे घायल होतेहुए हाथीकी समान घायल हुआ भीमसेन जराभी नहीं घवड़ाया और कर्णके ऊपरको चढा चलागया ॥ २५ ॥ जैसे मदमत्त हाथी मदमत्त हाथीके ऊपरको दौडता है तैसे ही वेगसे अपनी ओरको आतेहुए भीमके ऊपरको कर्ण भी झपटा ॥ २६ ॥ तदनन्तर कर्ण सैकड़ों भेरियोंकी समान शब्द करनेवाले शङ्खको वजाकर वढतेहुए समुद्रकी समान हर्षसे उछलता २ आगेको वढआया यह देख सेना हर्षसे

भ्यत बलं हर्षादुद्धूत इव सागरः ॥ २७ ॥ तदुद्धूतं बलं दृष्ट्वा नागाश्वरथपत्तिमत् । भीमः कर्णं समासाद्य छादयामास सायकैः ॥ २८ ॥ अश्वानृक्षसवर्णांश्च हंसवर्णैर्हयोत्तमैः । व्यामिश्रयद्रणे कर्णः पाण्डवं छादयन् शरैः ॥ २९ ॥ ऋक्षवर्णान् हयान् कर्कैर्मिश्रान् मारुतरंहसः । निरीक्ष्य तव पुत्राणां हाहाकृतमभूद्बलम् ॥ ३० ॥ ते हया बह्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः । सिताऽसिता महाराज यथा व्योम्नि बलाहकाः ॥ ३१ ॥ संरब्धौ क्रोधताम्राक्षौ प्रेक्ष्य कर्णवृकोदरौ । सन्त्रस्ताः समकम्पन्त त्वदीयानां महारथाः ॥ ३२ ॥ यमराष्ट्रोपमं घोरमसीदायोधनं तयोः । दुर्दर्शं भरतश्रेष्ठ प्रेतराजपुरं यथा । समाजमिव तच्चित्रं प्रेक्षमाणा

उछलने लगी ॥ २७ ॥ हाथी, घोड़े रथ और पैदलोंवाली सेनाको हर्षमें भरी हुई देखकर भीमसेनने कर्णको बाणोंसे ढकदिया ॥ २८ ॥ कर्णने भी अपने हंसकी समान श्वेत घोड़ोंको, भीमके रीछकी समान वर्णवाले घोड़ोंसे भिड़ा दिया और भीमके ऊपर बाण बरसानेलगा ॥ २९ ॥ भीमके रीछकेसे वर्णवाले पवनवेगी घोड़ोंको, कर्णके श्वेत वर्णके घोड़ोंसे भिड़ाहुआ देखकर तुम्हारे पुत्रोंकी सेना हाहाकार करनेलगी ३० हे महाराज ! आपसमें सटेहुए पवनवेगी काले और सफेद घोड़े, आकाशमें स्थित काले और श्वेत मेघोंकी समान बड़ी शोभा पानेलगे ॥ ३१ ॥ क्रोधमें भरेहुए तथा क्रोधसे ताँबेकी समान लाल २ नेत्रोंवाले उन दोनों वीरों को देखकर तुम्हारे महारथी भयभीत हो थर २ काँपनेलगे ॥ ३२ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! उन दोनोंके युद्ध करनेकी भूमि यमपुरीकी समान भयङ्कर और जिसको देखा न जासके ऐसी पिशाचपुरीकी समान हो उठी ॥ ३३ ॥ दूसरे महारथी इस युद्धको इसप्रकार आश्चर्यमें होकर देखरहे थे कि–जैसे किसी रङ्गभूमिको देखरहे

महारथाः । नालक्षयन् जयं व्यक्तमेकस्यैव महारणे ॥ ३४॥ तयोः प्रैक्षन्त संमर्दं सन्निकृष्टं महास्त्रयोः । तव दुर्मन्त्रिते राजन् सपुत्रस्य विशांपते ॥ ३५ ॥ छादयन्तौ हि शत्रुघ्नावन्योन्यं सायकैः शितैः । शरजालावृतं व्योम चक्रातेऽद्भुतविक्रमौ ॥ ३६ ॥ तावन्योऽन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ । प्रेक्षणीयतरावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ३७ ॥ सुवर्णविकृतान् बाणान् प्रमुञ्चन्तावरिन्दमौ । भास्वरं व्योम चक्राते महोल्काभिरिव प्रभो ॥ ३८ ॥ ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन् गार्ध्रपत्राश्चकाशिरे । श्रेण्यः शरदि मत्तानां सारसानामिवाम्बरे ॥ ३९ ॥ ससक्तं सूतपुत्रेण दृष्ट्वा भीममरिन्दमम् । अतिभारममन्येतां भीमे कृष्णधनञ्जयौ ॥ ४० ॥

हों और दोनोंमेंसे रणमें किसकी जीत होगी इसका कुछ निर्णय न करसके ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे और तुम्हारे पुत्रके अन्यायके कारण ही वे योधा उन दोनों महा-अस्त्रधारियोंके समीपमें खड़े होकर उनके युद्धको देखतेरहे ३५ शत्रुनाशी अद्भुत पराक्रमी भीमसेन और कर्णने परस्परके ऊपर बाणोंकी वर्षा करते २ आकाशको बाणोंके जालसे छादिया ॥ ३६ ॥ परस्परका नाश करनेकी इच्छासे दोनों महारथी एक दूसरेके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करनेलगे इस समय वे दोनों योधा जल बरसातेहुए दो मेघोंकी समान शोभा पारहे थे ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! जैसे बडी २ उल्काओंसे आकाश दमक उठता है तैसे ही उन दोनोंके छूटतेहुए सुवर्णमय बाणोंसे आकाश प्रदीप्त होगया ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! उनके छोड़ेहुए गीधके परवाले बाण आकाशमें ऐसे शोभा पाते थे जैसे शरदृतुमें मदमत्त सारसोंकी पंक्ति आकाशमें जारही हो ॥ ३९ ॥ शत्रुनाशक भीमको कर्णसे भिडा हुआ देख श्रीकृष्ण और अर्जुन विचारने लगे, कि-भीमके ऊपर बडाभारी बोझा आपड़ा है ॥ ४० ॥

तथाऽधिरथिभीमाभ्यां शरैर्मुक्तैर्दृढं हताः । इषुपातमतिक्रम्य पेतुरश्वनरद्विपाः ॥ ४१ ॥ पतद्भिः पतितैश्चान्यैर्गतासुभिरनेकशः । कृतो राजन्महाराज पुत्राणां ते जनक्षयः ॥ ४२ ॥ मनुष्याश्वगजानाञ्च शरीरैर्गतजीवितैः । क्षणेन भूमिः सञ्जज्ञे संवृता भरतर्षभ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे
द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । अत्यद्भुतमहं मन्ये भीमसेनस्य विक्रमम् । यत् कर्णं योधयामास समरे लघुविक्रमम् ॥ १ ॥ त्रिदशानपि चोद्युक्तान् सर्वशस्त्रधरान् युधि । वारयेद्यो रणे कर्णः सयक्षासुरमानवान् ॥ २ ॥ स कथं पाण्डवं युद्धे भ्राजमानमिव श्रिया । नातरत् संयुगे पार्थं तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ३ ॥ कथञ्च युद्धं सम्भूतं तयोः प्राणदुरोदरे । अत्र मन्ये समायत्तो जयो वाजय

भीम तथा कर्णके बाणोंके प्रचण्ड प्रहारसे हाथी घोड़े और मनुष्य मरणकी शरण हो पृथ्वीपर गिरनेलगे ॥४१॥ हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रोंके योधाओंका बड़ाभारी संहार होनेलगा कोई प्राणहीन हो उस युद्धमें गिररहे थे, कोई गिरगए थे और बहुतसे तड़फरहे थे ॥ ४२ ॥ हे भरतसत्तम ! क्षणभरमें ही मरेहुए हाथी, घोड़े और मनुष्योंकी लोथोंसे पृथ्वी पटगई ॥ ४३ ॥

एकसौ वत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३२ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे संजय ! मैं भीमसेनके पराक्रमोंको बडा ही अद्भुत समझता हूँ, कि जो उसने फुर्तीले कर्णको समरमें हरादिया ॥ १ ॥ हे संजय ! जो कर्ण युद्धमें शस्त्रधारी देवता यक्ष और मनुष्योंको भी रणमें रोकसकता है, वही कर्ण राजलक्ष्मीसे शोभायमान पांडुपुत्र भीमको समरमें क्यों नहीं जीतसका ? ॥ २-३ ॥ उन दोनोंका प्राणोंरूपी दाँव लगाया हुआ युद्धरूप द्यूत किसप्रकार होता रहा मुझै तो ऐसा प्रतीत

एव च ॥ ४ ॥ कर्णं प्राप्य रणे सूत मम पुत्रः सुयोधनः । जेतुमुत्सहते पार्थान् सगोविन्दान् ससात्वतान् ॥५॥ श्रुत्वा तु निर्जितं कर्णमसकृद्भीमकर्मणा । भीमसेनेन समरे मोहश्चाविशतीव माम् ॥६॥ विनष्टान् कौरवान्मन्ये मम पुत्रस्य दुर्नयैः । न हि कर्णो महेष्वासान् पार्थान् जेष्यति सञ्जय ॥ ७ ॥ कृतवान् यानि युद्धानि कर्णः पाण्डुसुतैः सह । सर्वत्र पाण्डवाः कर्णमजयन्त रणाजिरे ॥ ८ ॥ अजेयाः पाण्डवास्तात देवैरपि सवासवैः । न च तद् बुध्यते मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ९ ॥ धनं धनेश्वरस्येव हृत्वा पार्थस्य मे सुतः । मधुप्रेप्सुरिवाबुद्धिः प्रपातं नावबुध्यते १० निकृत्या निकृतिप्रज्ञो राज्यं हृत्वा महात्मनाम् । जितमित्येव

होता है कि-इसमें एक पक्षकी जय और दूसरे पक्षकी पराजय अवश्य होगी ॥ ४ ॥ मेरा पुत्र दुर्योधन रणमें कर्णकी सहायता से सात्यकि और कृष्णसहित पाण्डवोंको जीतनेका उत्साह रखता है परन्तु जबसे मैंने सुना है कि-भीमकर्मा भीमने कर्णको समरमें कई बार जीतलिया, तबसे मेरा मन मुरझाया जाता है ॥ ५-६ ॥ हे संजय ! मुझे निश्चय है कि-मेरे पुत्रोंके कारणसे सकल कौरवोंका नाश होगा, महाधनुषधारी पांडवोंको कर्ण कभी नहीं जीत सकेगा ॥ ७ ॥ पांडवोंके साथ कर्णने जितने युद्ध किये हैं उनमें बहुतसे युद्धोंमें पांडवोंने ही कर्णको हराया है ॥८॥ इन्द्रसहित देवता भी पांडवोंको नहीं जीत सकते, इस बातको मेरा मन्दबुद्धि पुत्र दुर्योधन नहीं समझता! हा!!॥९॥ मूढ मनुष्य जैसे शहद लेनेके लिए मुहालकी मक्खियोंके छत्तेके पास तो चला जाता है, परन्तु अपने नाशका विचार नहीं करता है, तैसे ही मेरे पुत्रने कुबेरकी समान धन तो हरलिया, परन्तु यह विचार नहीं किया कि-इससे मेरा सर्वनाश होजायगा ॥ १० ॥ कपटचतुर दुर्योधन महात्मा पाण्डवोंके राज्यको छलसे हरण

मन्वानः पाण्डवानवमन्यते ॥ ११ ॥ पुत्रस्नेहाभिभूतेन मया चाप्यकृतात्मना ।
धर्मे स्थिता महात्मानो निकृताः पाण्डुनन्दनाः १२
शमकामः ससोदर्यो दीर्घप्रेक्षी युधिष्ठिरः । अशक्त इति मत्वा तु
पुत्रैर्मम निराकृतः ॥ १३ ॥ तानि दुःखान्यनेकानि विप्रकारांश्च
सर्वशः । हृदि कृत्वा महाबाहुर्भीमोऽयुध्यत सूतजम् ॥ १४॥ तस्मान्मे
सञ्जय ब्रूहि कर्णभीमौ यथा रणे । अयुध्येतां युधि श्रेष्ठौ परस्परवधैषिणौ
॥ १५ ॥ संजय उवाच । शृणु राजन् यथावृत्तं
संग्रामं कर्णभीमयोः । परस्परं वधप्रेप्सोर्वने कुञ्जरयोरिव ॥१६॥
राजन् वैकर्त्तनो भीमं क्रुद्धः क्रुद्धमरिन्दमम् । पराक्रान्तं परिक्रम्य
विव्याध त्रिंशता शरैः ॥ १७ ॥ महावेगैः प्रसन्नाग्रैः शातकुम्भपरिष्कृतैः
। अहनद् भरतश्रेष्ठ भीमं वैकर्त्तनः शरैः ॥ १८ ॥

कर, उनको जीताहुआ मान सदा अपमान करता रहा है ।११।
और मुझ पापीने भी पुत्रस्नेहके अधीन हो धर्ममें स्थित, महात्मा
पाण्डवोंका अपमान (अपराध) किया है ॥ १२ ॥ दूरदर्शी
युधिष्ठिर और उनके भाई शान्ति बनाए रखनेके लिए सन्धि
करना चाहते थे, परन्तु मेरे पुत्रोंने उनको असमर्थ समझ, उनका
तिरस्कार करदिया ।।१३।। ऐसे२ दुःख और अपमानोंको स्मरण
कर महाबाहु भीमसेन सूतपुत्र कर्णसे लड़ा होगा१४हे सञ्जय!अतः
तू परस्पर वध करना चाहतेहुए योधाओंमें श्रेष्ठ भीम और कर्ण
युद्धमें जिसप्रकार लड़े हों, वह मुझे सुना।१५।सञ्जयने कहा कि
हे राजन्! कर्ण और भीमके, परस्परका वध करना चाहनेवाले
दो जंगली हाथियोंमें हुए घोर युद्धकी समान, संग्रामको सुनो १६
हे राजन्! क्रोधमें भरेहुए कर्णने पराक्रम कर क्रोधमें भरेहुए
पराक्रमी शत्रुदमन भीमके तीस बाण मारे ॥१७॥ हे भरतश्रेष्ठ!
कर्ण सुवर्णमण्डित प्रसन्न मुखवाले वेगवान् बाण भीमके मारने
लगा ॥१८॥ बाण छोडतेहुए कर्णके धनुषको भीमने तीन तीक्ष्ण

तस्यास्यतो धनुर्भीमश्चकर्त्त निशितैस्त्रिभिः । रथनीडाच्च यन्तारं भल्लेनापातयत् क्षितौ ॥ १९ ॥ स काङ्क्षन् भीमसेनस्य वधं वैकर्त्तनो भृशम् । शक्तिं कनकवैदूर्यचित्रदण्डां परामृशत् । २० । प्रगृह्य च महाशक्तिं कालशक्तिमिवापराम् । समुत्क्षिप्य च राधेयः सन्धाय च महाबलः ॥ २१ ॥ चिक्षेप भीमसेनाय जीवितान्तकरीमिव । शक्तिं विसृज्य राधेयः पुरन्दर इवाशनिम् ॥ २२ ॥ ननाद सुमहानादं बलवान् सूतनन्दनः । तञ्च नादं ततः श्रुत्वा पुत्रास्ते हर्षिताभवन् ॥ २३ ॥ तां कर्णभुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम् । शक्तिं वियति चिच्छेद भीमः सप्तभिराशुगैः ॥ २४ ॥ छित्वा शक्तिं ततो भीमो निर्मुक्तोरगसन्निभाम् । मार्गमाण इव प्राणान् सूतपुत्रस्य मारिष ॥२५॥ प्राहिणोत् कृतसंरम्भः शरान्-

---

बाण मारकर काटडाला और एक भल्ल नामक बाण मारकर उसके सारथिको भी रथकी बैठक परसे भूमिमें गिरादिया ।१९। तब तो कर्ण भीमको मारनेकी और भी अधिक चाहना करनेलगा और उसने सुवर्ण तथा वैदूर्योंसे चित्रित दण्डेवाली शक्तिको उठाया ॥२०॥महाबली राधाके पुत्र कर्णने कालशक्तिकी बहनकी समान उस प्राणसंहारिणी महाशक्तिको उठाकर घुमाया और भीमसेनके ऊपरको ऐसे फेंकदिया जैसे इन्द्र वज्रका प्रहार करता है,फिर बली सूतनन्दन कर्ण बडी गर्जना करनेलगा,उस गर्जनाको सुन तुम्हारे पुत्र बड़े प्रसन्न हुए ॥२१-२३॥ भीमने, कर्णकी फैंकीहुई अग्नि और सूर्यकी समान कान्तिवाली उस शक्तिको, शीघ्रगामी सात बाण मारकर आकाशमें ही नष्ट करडाला २४ कैंचलीरहित सर्पकी समान आकारवाली उस शक्तिको नष्ट करके हे राजन् ! क्रोधमें भराहुआ भीमसेन मानो कर्णके प्राणोंको ढूँढरहा हो इसप्रकार चेष्टा करताहुआ मयूरके पङ्खवाले और सुवर्णकी पूँछवाले, शिला पर घिसकर तेज किएहुए, यमदण्डों

वर्हिणवाससः। स्वर्णपुंखान् शिलाधौतान् यमदण्डोपमान्मृधे २६ कर्णोऽप्यन्यद्धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम् । विकृष्य तन्महच्चापं व्यसृजत् सायकांस्तदा ॥ २७ ॥ तान् पाण्डुपुत्रश्चिच्छेद नवभिर्नतपर्वभिः । वसुषेणेन निर्मुक्तान्नव राजन्महाशरान् ॥२८॥ छित्त्वा भीमो महाराज नादं सिंह इवानदत् । तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ॥ २९ ॥ शार्दूलाविव चान्योन्यमामिषार्थेऽभ्यगर्जताम् । अन्योन्यं प्रजिहीर्षन्तावन्योन्यस्यान्तरैषिणौ ॥३०॥ अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ गोष्ठेष्विव महर्षभौ । महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ॥ ३१ ॥ शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योऽन्यमभिजघ्नतुः। निर्दहन्तौ महाराज शरवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३२ ॥ अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ कोपाद्विवृतलोचनौ । प्रहसन्तौ तथान्योऽन्यं भर्त्सयन्तौ

की समान वाणोंको कर्णके ऊपर छोडनेलगा ॥ २५–२६ ॥ तदनन्तर कर्णने एक सुवर्णकी पीठवाला दुराधर्ष धनुष उठाया और उस महाचापको खैंचकर वाण छोडनेलगा ॥२७॥ हे राजन्! कर्णके छोड़ेहुए नौ महावाणोंको भीमसेनने नौ नमीहुई गाँठवाले वाण मारकर काटडाला ॥ २८ ॥ हे राजन्! कर्णके वाणोंको काटनेके वाद भीम सिंहकी समान दहाडनेलगा, जैसे दो वलवान् वैल एक ऋतुमती गौको देखकर रंभाते हों अथवा दो सिंह जैसे मांसके लिये दहाडते हों, तैसे ही भीम और कर्ण भी गर्जना करतेहुए, एक दूसरेको नष्ट करनेकी इच्छासे एक दूसरेके छिद्रको ढूँढतेहुए फिरनेलगे ॥ २९–३० ॥ गोठमें खड़ेहुए दो वैल जैसे एक दूसरेको आँखे फाडकर देखनेके वाद सींगोंसे प्रहार करते हों और जैसे दो हाथी एक दूसरेको दाँतोंसे मारते हों, तैसे ही वे दोनों क्रोधसे आँखें फाड कानतक धनुषको खैंचकर वाणोंसे एक-दूसरेको मारतेहुए ऐसे देखरहे थे, कि-सामनेके शत्रुको भस्म ही करडालेंगे, वे दोनों वारम्वार हँसकर तिरस्कार

मुहुर्मुहुः ॥ ३३ ॥ शंखशब्दश्च कुर्वाणौ युयुधाते परस्परम् । तस्य भीमः पुनश्चाष्टौ मुष्टौ चिच्छेद मारिष ॥३४॥ शंखवर्णांश्च तानश्वान् बाणैर्निन्ये यमक्षयम् । सारथिञ्च तथाप्यस्य रथनीडादपातयत् ॥ ३५ ॥ ततो वैकर्त्तनः कर्णश्चिन्तां प्राप दुरत्ययाम् । संछाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥ ३६ ॥ मोहितः शरजालेन कर्त्तव्यं नाभ्यपद्यत । तथा कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णं दुर्योधनो नृपः ॥ ३७ ॥ वेपमान इव क्रोधाद्व्यादिदेशाथ दुर्ज्जयम् । गच्छ दुर्जय राधेयं पुरो ग्रसति पाण्डवः ॥ ३८ ॥ जहि तूबरकं क्षिप्रं कर्णस्य बलमादधत् । एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा तव पुत्रं तवात्मजः ॥ ३९ ॥ अभ्यद्रवद्भीमसेनं व्यासक्तं विकिरञ्छरैः । स भीमं नवभिर्बाणैरश्वानष्टभिरार्पयत् ॥ ४० ॥ षड्भिः सूतं त्रिभिः

कर शङ्खोंको बजातेहुए युद्ध कररहे थे हे राजन् ! इतनेमें ही भीमसेनने फिर उसके धनुषको मूठपरसे काटडाला ॥ ३१–३४ ॥ और बाण मारकर उसके शङ्खकी समान श्वेत घोड़ोंको परलोकमें भेजदिया तथा उसके सारथीको रथकी बैठकपरसे गिरादिया ३५ जब उसके रथके घोड़े और सारथि मरगए तथा स्वयं भी बाणोंसे ढकगया तब तो कर्ण बड़े सोचविचारमें पडगया ॥३६॥ बाणोंके समूहसे कर्ण मोहितसा होनेलगा और इस समय क्या करना चाहिये इसका वह कुछ निश्चय न कर सका, कर्णको इसप्रकार आपत्तिमें फँसा देख राजा दुर्योधन क्रोधसे काँपते हुएकी समान अपने भाई दुर्जयसे कहनेलगा, कि–हे दुर्जय ! हमारे सामने ही भीम कर्णको खायेजाता है, अतः तू कर्णके पास जा और इस जंगली भीमको मार कर्णको सहायता दे, दुर्योधनके वचनको सुन तुम्हारा पुत्र दुर्जय दुर्योधनसे तथास्तु कह बाणोंको बरसाताहुआ भीमके सामनेको दौड़गया और उसने नौ बाण भीमके मारे तथा आठ बाण उसके घोड़ोंके मारे ॥३७–४०॥ फिर छः बाण सारथिके

केतुं पुनस्तञ्चापि सप्तभिः । भीमसेनोपि संक्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ॥ ४१ ॥ दुर्ज्जयं भिन्नमर्माणमनयद्यमसादनम् । स्वलंकृतं क्षितौ क्षुण्णं चेष्टमानं यथोरगम् ॥ ४२ ॥ रुदन्नार्त्तस्तव सुतं कर्णश्चक्रे प्रदक्षिणम् । स तु तं विरथं कृत्वा स्मयन्नत्यन्तवैरिणम् ॥ ४३ ॥ समाचिनोद्बाणगणैः शतघ्नीमिव शंकुभिः । तथाप्यतिरथः कर्णो भिद्यमानोऽस्य सायकैः । न जहौ समरे भीमं क्रुद्धरूपं परन्तपः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णभीमयुद्धे
त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

सञ्जय उवाच । सर्वथा विरथः कर्णः पुनर्भीमेन निर्जितः । रथमन्यं समास्थाय पुनर्विव्याध पाण्डवम् ॥ १ ॥ महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् । शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योऽन्यमभि-

---

और तीन बाण ध्वजा पर और फिर भीमसेनके सात बाण मारे, तब तो भीमसेन क्रोधमें भरगया और उसने बाण मारकर दुर्जयके कवचको तोड़ उसको सारथि और घोडोंसहित यमलोकमें भेजदिया, युद्धके वेषसे सजाहुआ तुम्हारा पुत्र दुर्जय भीमके बाणोंके प्रहारसे (मरते समय) सर्पकी समान तडफनेलगा ४१-४२ यह देख कर्णके नेत्रोंमें आँसू भरआए और उसने रोते२ उसके पास जा उसकी प्रदक्षिणा की, इस समय भीमसेनने गर्वके साथ कर्णके रथको फिर चकनाचूर करदिया और उसके ऊपर बाण, शतघ्नी तथा अंकुश बरसानेलगा, परन्तप अतिरथी कर्णने भी क्रोधमें भरेहुए भीमसेनको छोडा नहीं, किन्तु वह उससे लड़ेही गया ॥ ४३–४५ ॥ एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३३ ॥

सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र! रथशून्य कर्णको भीमने फिर सर्वथा जीतलिया तो भी कर्ण एक दूसरे रथ पर चढ़कर आया और बाणोंसे भीमको बींधनेलगा ॥ १ ॥ जैसे दो बड़े हाथी

जघ्नतुः ॥ २ ॥ अथ कर्णः शरव्रातैर्भीमसेनं समार्पयत् । ननाद च महानादं पुनर्विव्याध चोरसि ॥ ३ ॥ तं भीमो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः । पुनर्विव्याध सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ४ कर्णस्तु नवभिर्भीमं विद्ध्वा राजन् स्तनान्तरे । ध्वजमेकेन विव्याध सायकेन शितेन ह ॥ ५ ॥ सायकानां ततः पार्थस्त्रिषष्ट्या प्रत्यविध्यत । तोत्रैरिव महानागं कशाभिरिव वाजिनम् ॥ ६ ॥ सोऽतिविद्धो महाराज पाण्डवेन यशस्विना । सृक्किणी लेलिहन् वीरः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ७ ॥ ततः शरं महाराज सर्वकायावदारणम् । प्राहिणोद्भीमसेनाय वधायेन्द्र इवाशनिम् ॥ ८ ॥ स निर्भिद्य रणे पार्थं सूतपुत्रधनुश्च्युतः । अगच्छद्दारयन् भूमिं चित्रपुंखः शिलीमुखः ॥ ९ ॥ ततो भीमो महाबाहुः क्रोधसंरक्तलोचनः ।

आपसमें दाँतोंके अग्रभागसे लडते हों तैसे ही वे दोनों जोरसे धनुषको खेंचतेहुए एक दूसरेको मारनेलगे ॥२॥ तदनन्तर कर्ण भीमके ऊपर बाणोंकी वर्षा कर गर्जनेलगा फिर उसने भीमसेनकी छातीमें बाण मारा ॥ ३ ॥ भीमने कर्णके सीधे जानेवाले दश बाण मारे, फिर नमीहुई गांठवाले सत्तर बाण मारकर कर्णको बींधडाला ॥ ४ ॥ हे राजन् ! भीमने कर्णकी छातीमें नौ बाण मारकर एक तीक्ष्ण बाणसे उसकी ध्वजाको छिन्न भिन्न कर दिया ॥ ५ ॥ फिर, जैसे हाथीको अंकुशोंसे और घोड़ोंको चाबुकोंसे मारते हैं तैसे ही भीमने तिरेसठ बाण मारकर कर्णको बींधडाला ॥ ६ ॥ हे महाराज ! यशस्वी भीमसेनके बाणप्रहारसे बहुत ही घायल हुआ कर्ण जबाडोंको चाटनेलगा और उसके नेत्रोंके कोए क्रोधसे लाल२ होगये ॥७॥ जैसे इन्द्रने बलनामक असुरके ऊपर वज्र फेंका था तैसे ही हे महाराज ! कर्णने सब शरीरको फोड देनेवाला बाण भीमसेनके मारा ॥ ८ ॥ कर्णके धनुषसे छूटाहुआ विचित्र पूँछवाला वह बाण रणमें भीमसेनके

वज्रकल्पां चतुष्किष्कुं गुर्वीं रुक्माङ्गदां गदाम् ॥ १० ॥ प्राहिणोत्
सूतपुत्राय षडस्रामविचारयन् । तया जघानाधिरथेः सदश्वान्
साधुवाहिनः ॥ ११ ॥ गदया भारतः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ।
ततो भीमो महाबाहुः क्षुराभ्यां भरतर्षभ ॥ १२ ॥ ध्वजमाधिरथे-
श्छित्त्वा सूतमभ्यहनच्छरैः । हताश्वसूतमुत्सृज्य स रथं पतित-
ध्वजम् ॥ १३ ॥ विस्फारयन् धनुः कर्णस्तस्थौ भारत दुर्मनाः । तत्रा-
द्भुतमपश्याम राधेयस्य पराक्रमम् ॥ १४ ॥ विरथो रथिनां श्रेष्ठो
वारयामास यद्रिपुम् । विरथं तं नरश्रेष्ठं दृष्ट्वाधिरथिमाहवे ॥ १५ ॥
दुर्योधनस्ततो राजन्नभ्यभाषत दुर्मुखम् । एष दुर्मुख राधेयो
भीमेन विरथी कृतः ॥ १६ ॥ तं रथेन नरश्रेष्ठं सम्पादय महारथम् ।
ततो दुर्योधनवचः श्रुत्वा भारत दुर्मुखः ॥ १७ ॥ त्वरमाणोऽभ्य-

शरीरको बींध पृथ्वीको फाडकर भीतर घुसगया ॥९॥ तदनन्तर
क्रोधसे लाल २ नेत्रवाले महाबाहु भीमने वज्रकी समान दृढ़, छः
कोने और सुवर्णके बाजूबन्दवाली चार हाथकी बडीभारी गदा
विना विचारे कर्णके ऊपर फैंकी जैसे इन्द्रने वज्रसे असुरोंको
मारडाला था तैसे ही क्रोधमें भरे भीमसेनने उस गदासे कर्णके श्रेष्ठ
घोडोंको मारडाला, तदनन्तर हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! महा-
भुज भीमने दो क्षुरोंसे कर्णकी ध्वजाको काट बाणोंसे घोडोंको
मारडाला, जब घोड़े और सारथि मारेगए और ध्वजा कटगई
तब खिन्नचित्त हुआ कर्ण रथको छोड धनुषको तानकर खड़ा
होगया, हमने तहाँ कर्णका अद्भुत पराक्रम देखा, कि–रथियोंमें
श्रेष्ठ कर्ण रथहीन होनेपर भी शत्रुको रोके ही रहा युद्धमें नर-
श्रेष्ठ कर्णको रथहीन देखकर हे राजन् ! दुर्योधनने दुर्मुखसे
कहा, कि–देख ! कर्णको भीमसेनने रथहीन करदिया है१०-१६
अतः तू उस नरश्रेष्ठके पास रथ लेजा, हे भारत ! दुर्योधनके
इस वचनको सुनकर दुर्मुख शीघ्रतासे कर्णकी ओरको चला

यात् कर्णं भीमश्चावारयच्छरैः । दुर्मुखं प्रेक्ष्य संग्रामे सूतपुत्रपदानुगम् ॥ १८ ॥ वायुपुत्रः प्रहृष्टोऽभूत् सृक्किणी परिसंलिहन् । ततः कर्णं महाराज वारयित्वा शिलीमुखैः ॥ १९ ॥ दुर्मुखाय रथं शीघ्रं प्रेषयामास पाण्डवः । तस्मिन् क्षणे महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ॥ २० ॥ सुमुखैर्दुर्मुखं भीमः शरैर्निन्ये यमक्षयम् । ततस्तमेवाधिरथिः स्यन्दनं दुर्मुखे हते ॥ २१ ॥ आस्थितः प्रबभौ राजन् दीप्यमान इवांशुमान् । शयानं भिन्नमर्माणं दुर्मुखं शोणितोक्षितम् ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा कर्णोऽश्रुपूर्णाक्षो मुहूर्तं नाभ्यवर्तत । तं गतासुमतिक्रम्य कृत्वा कर्णः प्रदक्षिणम् ॥ २३ ॥ दीर्घमुष्णं श्वसन् वीरो न किञ्चित् प्रत्यपद्यत । तस्मिंस्तु विवरे राजन्नाराचान् गार्ध्रवाससः ॥ २४ ॥ प्राहिणोत् सूतपुत्राय भीमसेनश्चतुर्दश । ते तस्य कवचं भित्वा स्वर्णचित्रा महौजसः ॥२५॥ हेम-

---

और भीमसेन पर वाण भी वरसानेलगा, संग्राममें दुर्मुखको कर्णकी सहायता करता देखकर वायुपुत्र भीमसेन प्रसन्न हो जबाड़े चाटनेलगा, फिर हे राजन् ! भीम कर्णको वाणोंसे रोककर शीघ्र ही दुर्मुखकी ओरको अपना रथ लेगया, और हे महाराज ! उसी क्षण भीमने सुन्दर मुखवाले और नमीहुई गाँठवाले नौ वाण मारकर दुर्मुखको यमलोकमें भेजदिया, हे राजन् ! दुर्मुखके रथमें वैठाहुआ किरणमाला सूर्यकी समान शोभायमान कर्ण, कवच टूटेहुए दुर्मुखको रणमें सोताहुआ देखकर रोनेलगा और क्षण भरको अचेत होगया, तदनन्तर कर्ण सावधान हो रथमेंसे उतरकर उसके मृतशरीरके पास पहुँच उसकी परिक्रमा करनेलगा और लम्बी २ साँस छोड़ताहुआ कर्ण कुछ निश्चय न करसका, इस अवसरको देख हे राजन् ! भीमसेनने गीध पक्षीके परोंवाले चौदह वाण कर्णके मारे, हे महाराज! दशों दिशाओंमें प्रकाश करतेहुए सुवर्णकी पूँछवाले

पुंखा महाराज व्यशोभन्त दिशो दश । अपिबन् सूतपुत्रस्य शोणितं रक्तभोजनाः ॥ २६ ॥ क्रुद्धा इव मनुष्येन्द्र भुजङ्गाः कालचोदिताः । प्रसर्पमाणा मेदिन्यां ते व्यरोचन्त मार्गणाः ॥ २७ ॥ अर्द्धप्रविष्टाः संरब्धा बिलानीव महोरगाः । तं प्रत्यविध्यद्राधेयो जाम्बूनदविभूषितैः ॥२८॥ चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरविचारयन् । ते भीमसेनस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः ॥ २९ ॥ प्राविशन्मेदिनीं भीमाः क्रौञ्चपत्ररथा इव । ते व्यरोचन्त नाराचा प्रविशन्तो वसुन्धराम् ॥३०॥ गच्छत्यस्तं दिनकरे दीप्यमाना इवांशवः । स निर्भिन्नो रणे भीमो नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३१ ॥ सुस्राव रुधिरं भूरि पर्वतः सलिलं यथा । स भीमस्त्रिभिरायस्तैः सूतपुत्रं पतत्रिभिः ॥ ३२ ॥ सुवर्णवेगैर्विव्याध सारथिञ्चास्य सप्तभिः । स विह्वलो महाराज कर्णो भीमशराहतः ॥ ३३ ॥ प्राद्रवज्जवनै-

उन वाणोंने महाबली कर्णके सुवर्णके कवचको तोडडाला तथा कालसे प्रेरित सर्प जैसे रुधिरको पीता है तैसे ही कर्णके रुधिरको पीकर बिलमें आधे घुसेहुए क्रोधित महासर्पोंकी समान पृथ्वीमें आधे घुसेहुए वे वाण बड़े ही शोभित होरहेथे, राधेय कर्णने विना सोचे ही बड़े उग्र, सुवर्णसे विभूषित चौदह वाणोंसे भीमको वींधडाला, वे वाण भीमसेनकी दाहिनी भुजाको घायल कर क्रौंच पर्वतमें घुसतेहुए पक्षियोंकी समान, पृथ्वीमें घुसगए पृथ्वीमें घुसतेहुए वे वाण, सूर्यास्तके समय पृथ्वीमें पड़ती (घुसती) हुई किरणोंकी समान शोभापारहे थे, वाणोंसे घायल हुआ भीमसेन, जल वहातेहुए पर्वतकी समान वहुतसा रुधिर टपकानेलगा, तनकर खड़े भीमसेनने गरुडकी समान वेगवाले तीन वाण मारकर कर्णको घायल किया और सात वाण मार कर उसके सारथिको घायल करदिया हे महाराज ! भीमके वाण लगनेसे कर्ण विह्वल होगया और वहुत ही डरताहुआ

रश्वै रणं त्यक्त्वा महाभयात् । भीमसेनस्तु विस्फार्य चापं हेमपरिष्कृतम् ॥३४॥ आहवेऽतिरथोतिष्ठज्ज्वलन्निव हुताशनः ॥३५॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णापयाने
चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम् । यत्राधिरथिरायत्तो नातरत् पाण्डवं रणे ॥१॥ कर्णः पार्थान् सगोविन्दान् जेतुमुत्सहते रणे । न च कर्णसमं योधं लोके पश्यामि कञ्चन ॥ २ ॥ इति दुर्योधनस्याहमश्रौषं जल्पतो मुहुः । कर्णो हि बलवान् शूरो दृढधन्वा जितक्लमः ॥ ३ ॥ इति मामब्रवीत् सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा । वसुषेणसहायं मां नालं देवापि संयुगे ॥ ४ ॥ किमु पाण्डुसुता राजन् गतसत्त्वा विचेतसः । तत्र

घोडोंको तेजीसे हाँककर रणमेंसे भागगया, परन्तु अतिरथी भीमसेन धधकतेहुए अग्निकी समान सुवर्णसे मढेहुए धनुषको तानकर रणमें खडाही रहा ॥ १७-३५ ॥ एकसौ चौतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३४ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे संजय ! दैव ही मुख्य है, पुरुषार्थ करना निरर्थक है ऐसा मेरा निश्चय है क्योंकि-कर्ण रणमें सावधान होकर लडता था, परन्तु भीमको जीत न सका ॥ १ ॥ कर्ण रणमें श्रीकृष्णसहित पांडवोंको जीतनेका उत्साह करता है.कर्णकी समान योधा तो मुझे संसार भरमें नहीं दीखता॥२॥ ऐसे मैंने दुर्योधनको वारम्वार कहते सुना था, मेरे मन्दबुद्धि पुत्र दुर्योधनने पहिले कहा था; कि-कर्ण बली है, शूर है, दृढ धनुषवाला है और परिश्रमको कुछ नहीं समझता है यह कर्ण जब रणमें मेरी सहायता करेगा तो देवता भी मुझे रणमें नहीं जीत सकते ॥ ३-४ ॥ फिर हे राजन् ! सत्त्वरहित और टूटेहुए मनवाले पांडवोंकी(तो वात ही) क्या ? ऐसे कर्णको युद्धमें हारा

तं निर्जितं दृष्ट्वा भुजङ्गमिव निर्विषम् ॥ ५ ॥ युद्धात् कर्णमपक्रान्तं किं स्वित् दुर्योधनोऽब्रवीत् । अहो दुर्मुखमेवैकं युद्धानामविशारदम् ॥६॥ प्रावेशयद्धुतवहं पतङ्गमिव मोहितः । अश्वत्थामा मद्रराजः कृपः कर्णश्च सङ्गताः ॥ ७ ॥ न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं नूनं भीमस्य सञ्जय । तेऽपि चास्य महाघोरं वलं नागायुतोपमम् ८ जानन्तो व्यवसायञ्च क्रूरं मारुततेजसः । किमर्थं क्रूरकर्माणं यमकालान्तकोपमम् ॥ ९ ॥ वलसंरम्भवीर्यज्ञाः कोपयिष्यन्ति संयुगे । कर्णस्त्वेको महावाहुः स्ववाहुवलदर्पितम् ॥ १० ॥ भीमसेनमनादृत्य रणेऽयुध्यत सूतजः । योऽजयत् समरे कर्णं पुरन्दर इवासुरम् ॥ ११ ॥ न स पाण्डुसुतो जेतुं शक्यः केनचिदाहवे । द्रोणं यः संप्रमथ्यैकः प्रविष्टो मम वाहिनीम् ॥ १२ ॥

हुआ और विषरहित सर्पकी समान निःसत्त्व हो रणमें भीमके सामनेसे भागाहुआ देखकर दुर्योधनने क्या कहा ? मूढहुए दुर्योधनने पतंगेको अग्निकी ओरको छोडनेकी समान युद्धविद्यामें अकुशल दुर्मुखको अकेला ही भेजकर उसको युद्धाग्निमें झोंकदिया हे संजय ! अश्वत्थामा, शल्य, कृपाचार्य और कर्ण इकट्ठे होकर भी भीमसेनके सामने खड़े होनेकी शक्ति नहीं रखने, वे पवनकी समान प्रतापी भीमसेनके दश सहस्र हाथियोंकी समान महाभयङ्कर वलको जानते हैं, अतः भीमके वल क्रोध और वीर्यके जानकार होकर भी उन्होंने उस प्रलयकालीन यमकी समान क्रूर कर्म करनेवाले भीमसेनको रणमें क्यों कुपित किया ? मैं समझता हूँ कि—अकेला महाभुज कर्ण ही अपने भुजवल पर भरोसा रख अपनी भुजाओंके वल पर गर्व करते हुए भीमसेनका अनादर कर उससे रणमें

परन्तु इन्द्र जैसे

राक्षसको

था

ऐसे

भीमो धनञ्जयान्वेषी कस्तमार्च्छेज्जिजीविषुः । को हि सञ्जय भीमस्य स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः ॥ १३ ॥ उद्यताशनिहस्तस्य महेन्द्रस्येव दानवः । प्रेतराजपुरम्प्राप्य निवर्त्तेतापि मानवः ॥ १४ ॥ न भीमसेनं सम्प्राप्य निवर्त्तेत कदाचन । पतङ्गा इव वह्निन्ते प्राविशन्नल्पतेजसः ॥ १५ ॥ ये भीमसेनं संक्रुद्धमन्वधावन् विमोहिताः । यत्तत् सभायां भीमेन मम पुत्रवधाश्रयम् ॥ १६ ॥ उक्तं संरम्भिणोग्रेण कुरूणां शृण्वतां तदा । तन्नूनमभिसञ्चिन्त्य दृष्ट्वा कर्णं च निर्जितम् ॥ १७ ॥ दुःशासनः सह भ्राता भयाद्भीमादुपारमत् । यश्च सञ्जय दुर्बुद्धिरब्रवीत् समितौ मुहुः १८ कर्णो दुःशासनोऽहञ्च जेष्यामो युधि पाण्डवान् । स नूनं विरथं दृष्ट्वा कर्णं भीमेन निर्जितम् ॥ १९ ॥ प्रत्याख्यानाच्च कृष्णस्य

हुआ जो भीम द्रोणको ममलारकर मेरी सेनामें घुसगया, उसके सामने जीवित रहना चाहता हुआ कौन खड़ा होसकता है? हाथमें वज्र उठाये हुए इन्द्रके सामने जैसे दानव खड़ा नहीं होसकता तैसे ही हे संजय! भीमके सामने रणमें खड़े होनेका उत्साह कौन करसकता है? कदाचित यमपुरमें जाकर कोई लौट आवे, परन्तु भीमके सामने जाकर कोई भी नहीं लौट सकता, पतंगे जैसे अग्निमें जापड़ते हैं तैसे ही अल्पबुद्धिवाले योधाओंने क्रोधमें भरे भीमके सामने जा अपने प्राण व्यर्थ ही गवाँदिये, निःशङ्क, क्रोधी तथा प्रचण्डबुद्धि भीमने पहिले कौरवोंकी सभामें ही सब कौरवोंके सामने मेरे पुत्रोंका संहार करनेकी प्रतिज्ञा की थी, दुःशासन और दुर्योधन कर्णको हाराहुआ देखकर और उस वातको विचार कर भीमके सामनेसे डरकर भागगए होंगे हे संजय! जिस दुर्बुद्धि दुर्योधनने सभामें बारम्बार कहा था, कि-"मैं, दुःशासन और कर्ण युद्धमें पांडवोंको हरादेंगे" उसने जब देखा, कि-भीमने कर्णको युद्धमें हरादिया है और वह रथहीन होगया है उस समय उसको

भृशं तप्यति पुत्रकः ॥ दृष्ट्वा भ्रातॄन् हतान् संख्ये भीमसेनेन दंशितान् ॥ २० ॥ आत्मापराधे सुमहन्नूनं तप्यति पुत्रकः । को हि जीवितमन्विच्छन् प्रतीपं पाण्डवं व्रजेत् ॥ २१ ॥ भीमं भीमायुधं क्रुद्धं साक्षात् कालमिव स्थितम् । वडवामुखमध्यस्थो मुच्येतापि हि मानवः ॥ २२ ॥ न भीममुखसम्प्राप्तो मुच्येदिति मतिर्मम । न पार्था न च पञ्चाला न च केशवसात्यकी ॥ २३ ॥ जानन्ते युधि संरब्धा जीवितं परिरक्षितुम् । अहो मम सुतानां हि विपन्नं सूत जीवितम् ॥ २४ ॥ सञ्जय उवाच । यस्त्वं शोचसि कौरव्य वर्त्तमाने महाभये । त्वमस्य जगतो मूलं विनाशस्य न संशयः ॥ २५ ॥ स्वयं वैरं महत् कृत्वा पुत्राणां वचने स्थितः ।

सन्धि करनेके लिए आएहुए श्रीकृष्णके अपमान करनेका बडा पछतावा हुआ होगा, युद्धमें अपने कवचधारी भाइयोंको भीमसेनके हाथसे मारेहुए देखकर मेरा पुत्र दुर्योधन अपने अपराधके कारण मनमें बहुत ही पछताया होगा। भयंकर आयुध धारण करनेवाले, क्रोधमें साक्षात् कालकी समान खड़ेहुए भीमके सामने जानेका साहस प्राणोंकी रखनेकी इच्छावाला कौन प्राणी करेगा? वडवानलमें पडाहुआ मनुष्य कदाचित् जीवित बचजाय, परन्तु भीमसेनके मुखमें पडाहुआ मनुष्य कभी भी नहीं बच सकता यह मेरा निश्चय है, क्या पांडव, क्या पांचाल, क्या श्रीकृष्ण और क्या सात्यकि युद्धमें क्रोधमें भरजाने पर इनमेंसे कोई भी अपने जीवनकी परवाह करना जानते ही नहीं ! अतः हे सूत ! मेरे पुत्रोंका जीवन सन्देहमें ही है हा ! ॥ ५—२४ ॥ संजय कहने लगा, कि—हे कुरुराज ! इस युद्धमें बडाभारी भय समीपमें ही आनेवाला है, अतः इस समय इसका शोक करना व्यर्थ है, इस जगत्के नाशके कारण तो वास्तवमें तुम ही हो ॥ २५ ॥ तुमने अपने पुत्रोंकी बातोंसे उलझकर अपने आप ही पांडवोंसे

उच्यमानो न गृह्णासि मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ॥ २६ ॥ स्वयं पीत्वा महाराज कालकूटं सुदुर्जरम् । तस्येदानीं फलं कृत्स्नमवाप्नुहि नरोत्तम ॥२७॥ यत्तु कुत्सयसे योधान् युध्यमानान् यथाबलम् । तत्र ते वर्णयिष्यामि यथा युद्धमवर्त्तत ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा कर्णन्तु पुत्रास्ते भीमसेनपराजितम् । नामृष्यन्त महेष्वासाः सोदर्याः पञ्च मारिष ॥ २९ ॥ दुर्मर्षणो दुःसहश्च दुर्मदो दुर्धरो जयः । पाण्डवं चित्रसन्नाहास्तम्प्रतीपमुपाद्रवन् ॥ ३० ॥ ते समन्तान्महाबाहुं परिवार्य वृकोदरम् । दिशः शरैः समावृण्वञ्छलभानामिव व्रजैः ३१ आगच्छतस्तान् सहसा कुमारान् देवरूपिणः । प्रतिजग्राह समरे भीमसेनो हसन्निव ॥ ३२ ॥ तव दृष्ट्वा तु तनयान् भीमसेनपुरो-

---

बडाभारी वैर बाँधलिया है, तुमको बहुतसे मनुष्योंने समझाया था, परन्तु तुमने जैसे मरनहार मनुष्य पथ्य नहीं करता है तैसे ही उनकी एक न सुनी॥२६॥अतः हे महाराज ! हे नरोत्तम ! तुमने स्वयं ही दुर्जय कालकूट विषको पीलिया है अतः उसके फलको इस समय अच्छी तरह भोगो ॥ २७ ॥ युद्ध करने वाले महाबली योधा अपनी २ शक्तिके अनुसार घूमरहे हैं तो भी तुम उनकी निन्दा करते हो (यह उचित नहीं है)अब जैसे २ युद्ध हुआ था वह मैं कहता हूँ, सुनो ॥ २८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! कर्णको भीमने हरादिया यह बात महाधनुषधारी दुर्मषण, दुःसह, दुर्धर, दुर्मद और जय नामक तुम्हारे पाँचों सहोदर पुत्रोंसे नहीं सहीगई अतः विचित्रकवचधारी वे सब भीमके ऊपर चढ दौड़े ॥ २९-३० ॥ वे सब महाबाहु भीमसेनको, चारों ओरसे घेरकर टीड़ियोंके दलकी समान बाण बरसाकर दिशाओंको छानेलगे ॥ ३१ ॥ देवताओंकी समान रूपवाले उन कुमारोंको सहसा आते देख भीमसेनने समरमें हँसकर उनकी अगवानी की ॥ ३२ ॥ तुम्हारे पुत्रोंको भीमके सामने खडा देख, कर्णभी

गमान् । अभ्यवर्त्तत राधेयो भीमसेनं महाबलम् ॥ ३३ ॥ विसृजन् विशिखांस्तीक्ष्णान् स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् । तन्तु भीमोऽभ्ययात्तूर्णं वार्यमाणः सुतैस्तव ॥ ३४ ॥ कुरवस्तु ततः कर्णं परिवार्य समन्ततः । अवाकिरन् भीमसेनं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥३५॥ तान् बाणैः पञ्चविंशत्या साश्वान् राजन्नरर्षभान् । ससूतान् भीमधनुषो भीमो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३६ ॥ प्रापतन् स्यन्दनेभ्यस्ते सार्द्धं सूतैर्गतासवः । चित्रपुष्पधरा भग्ना वातेनेव महाद्रुमाः ३७ तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् । संवार्याधिरथिं बाणैर्यञ्जघान तवात्मजान् ॥ ३८ ॥ स वार्यमाणो भीमेन शितैर्बाणैः समन्ततः । सूतपुत्रो महाराज भीमसेनमवैक्षत ॥ ३९ ॥ तं भीम-

महाबली भीमसेनके पास शिलापर घिसेहुए, सुवर्णकी पूँछवाले तीक्ष्ण बाणोंको छोडताहुआ जापहुँचा, तुम्हारे पुत्रोंने भीमको रोकना चाहा परन्तु भीम तो शीघ्रतासे कर्णके समीप जापहुँचा ॥ ३३-३४ ॥ तदनन्तर कौरव कर्णको घेरकर भीमसेनको नमीहुई गाँठवाले बाणोंसे ढकने लगे ॥ ३५ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! भीमने पच्चीस बाण छोडकर उन भयङ्कर धनुषवाले पाँचों भाइयोंको घोड़े और सारथियों समेत यमलोकमें भेजदिया ॥ ३६ ॥ वे सब सारथियोंके सहित प्राणरहित हो रथोंसे ऐसे गिरे जैसे विचित्र पुष्पोंको धारण करनेवाले बड़े २ वृक्ष आँधीसे उखडकर पृथ्वीमें गिर पडते हैं ॥ ३७ ॥ उस समय हमने भीमसेनका अद्भुत पराक्रम देखा था, वह एक ओर कर्णको बाणोंसे रोकरहा था और दूसरी ओर उसने तुम्हारी पुत्रोंका संहार भी करडाला ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! उस समय भीमके तीक्ष्ण बाणोंसे ढकाहुआ कर्ण भीमसेनके सामने (कड़ी) दृष्टिसे देखरहा था ॥ ३९ ॥ और क्रोधसे जिसके नेत्र लाल २ होरहे थे ऐसा भीम भी बड़ेभारी धनुषको खेंचताहुआ बारम्बार

सेनः संरम्भात् क्रोधसंरक्तलोचनः । विस्फार्य, सुमहच्चापं मुहुः कर्णमवैक्षत ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीम-
पराक्रमे पंचत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३५॥

सञ्जय उवाच । तवात्मजांस्तु पतितान् दृष्ट्वा कर्णः प्रतापवान् । क्रोधेन महताविष्टो निर्विण्णोऽभूत् स जीवितात् ॥ १ ॥ आगस्कृतमिवात्मानं मेने चाधिरथिस्तदा । यत् प्रत्यक्षं तव सुता भीमेन निहता रणे ॥ २ ॥ भीमसेनस्ततः क्रुद्धः कर्णस्य निशितान् शरान् । निचखान स सम्भ्रान्तः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३ ॥ स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा राधेयः प्रहसन्निव । पुनर्विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुंखैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥ अविचिन्त्याथ तान् बाणान् कर्णेनास्तान् वृकोदरः । रणे विव्याध राधेयं शतेनानतपर्वणाम् ५ पुनश्च विशिखैस्तीक्ष्णैर्विद्ध्वा मर्मसु पञ्चभिः । धनुश्चिच्छेद भल्लेन

कर्णका घूरता जाता था ॥ ४० ॥ एकसौ पतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३५ ॥

सञ्जयने कहा, कि हे धृतराष्ट्र ! प्रतापी कर्ण तुम्हारे पुत्रोंको रणमें मराहुआ देखकर क्रोधमें भरगया और अपने जीवनको धिक्कार देनेलगा ॥ १ ॥ अपने सामने ही तुम्हारे पुत्रोंको रणमें भीमने मारडाला, इससे वह अपनेको अपराधीसा समझने लगा ॥ २ ॥ तदनन्तर जब क्रोधमें भराहुआ भीमसेन पहिले वैरको स्मरण कर सावधान हो कर्णको तीक्ष्ण बाणोंसे घायल करनेलगा ॥ ३ ॥ तब राधाके पुत्र कर्णने हँसकर भीमको पाँच बाणोंसे बींधदिया, फिर शिलापर तेज किएहुए, सुनहरी पूँछ वाले सत्तर बाणोंसे भीमको घायल करडाला ॥ ४ ॥ कर्णके मारेहुए बाणोंकी भीमसेनने भी कुछ चिन्ता नहीं की और रणमें राधाके पुत्र कर्णके नमीहुई गाँठवाले सौ बाण मारे ॥ ५ ॥

सूतपुत्रस्य मारिष ॥६॥ अथान्यद्धनुरादाय कर्णो भारत दुर्मनाः । इषुभिश्छादयामास भीमसेनं परन्तपः ॥ ७ ॥ तस्य भीमो हयान् हत्वा विनिहत्य च सारथिम् । प्रजहास महाहासं कृते प्रतिकृते पुनः ॥ ८ ॥ इषुभिः कार्मुकञ्चास्य चकर्त्त पुरुषर्षभः । तत् पपात महाराज स्वर्णपृष्ठं महास्वनम् ॥ ९ ॥ अवारोहद्रथात्तस्मादथ कर्णो महारथः । गदां गृहीत्वा समरे भीमाय प्राहिणोद्रुषा१० तमापतन्तीमालक्ष्य भीमसेनो महागदां । शरैरवारयद्राजन् सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥११॥ ततो बाणसहस्राणि प्रेषयामास पांडवः । सूतपुत्रवधाकांक्षी त्वरमाणः पराक्रमी ॥ १२ ॥ तानिषूनिषुभिः कर्णो वारयित्वा महामृधे । कवच भीमसेनस्य पातयामास सायकैः ॥ १३ ॥ अथैनं पञ्चविंशत्या नाराचाणां समार्पयत् ।

फिर पाँच तीक्ष्ण बाणोंसे कर्णके मर्मस्थानोंको घायल कर हे राजन् ! भीमने एक भल्ल नामक बाणसे उसके धनुषको काट डाला ॥ ६ ॥ हे भारत ! इससे कर्णका मन उदास होगया, और वह दूसरा धनुष ले भीमको बाणोंसे ढकनेलगा ॥ ७ ॥ भीमने भी बाण मारकर उसके सारथि और घोडोंको मारडाला और बदला लेकर बडी जोरसे हँसनेलगा ॥ ८ ॥ फिर पुरुषर्षभ भीमने कर्णके धनुषको बाण मारकर दो टुकड़े करदिया, हे महाराज ! सुवर्णकी पीठवाला वह धनुष झन झन करताहुआ पृथ्वीपर गिरपडा ॥ ९ ॥ तब तो महारथी कर्ण गदा उठा रथमेंसे उतर पडा और उसने क्रोधमें भरकर वह गदा भीमके ऊपर फेंकी ॥ १० ॥ भीमसेनने उस बडी गदाको आते देख हे राजन् !सब सेनाके सामने ही बाण मारकर रोकदिया ११ तदनन्तर पराक्रमी और कर्णको मारना चाहनेवाले पांडुपुत्र भीमने फुर्तीके साथ कर्णके एक सहस्र बाण मारे ॥ १२ ॥ कर्णने महायुद्धमें भीमके बाणोंको बाणोंसे काटकर उसके कवचको

पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १४ ॥ ततो भीमो महाबाहुर्नवभिर्नतपर्वभिः । प्रेषयामास संक्रुद्धः सूतपुत्रस्य मारिष१५ ते तस्य कवचं भित्त्वा तथा बाहुञ्च दक्षिणम् । अभ्ययुर्धरणीं तीक्ष्णा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ १६ ॥ सञ्छाद्यमानो बाणौघैर्भीमसेनधनुश्च्युतैः । पुनरेवाभवत् कर्णो भीमसेनपरांमुखः ॥१७॥ तं परांमुखमालोक्य पदातिं सूतनन्दनम् । कौन्तेयशरसञ्छन्नं राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥ त्वरध्वं सर्वतो यत्ता राधेयस्य रथं प्रति । ततस्तव सुता राजन् श्रुत्वा भ्रातुर्वचोऽद्भुतम् ॥१९॥ अभ्ययुः पाण्डवं युद्धे विसृजन्तः शिलीमुखान् । चित्रोपचित्रश्चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ।२०। चित्रायुधश्चित्रवर्मा समरे चित्रयोधिनः । तानापतत एवाशु भीमसेनो महारथः ॥ २१ ॥ एकै-

बाणोंसे काटदिया ॥ १३ ॥ तदनन्तर उसने सब सैनिकोंके सामने ही भीमके पच्चीस बाण मारे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर क्रोधमें भरे महाभुज भीमसेनने नमीहुई गाँठवाले नौ बाण कर्णके मारे ॥ १५ ॥ वे बाण कर्णके कवचको तोड उसकी दाहिनी भुजाको घायल करतेहुए, बिलमें घुसते हुए सर्पोंकी समान, पृथ्वीमें घुसगए ॥ १६ ॥ भीमसेनके धनुषसे छूटीहुई बाणवर्षाओंसे ढकाहुआ कर्ण भीमसेनसे पराजित होफिर पीछेको हटगया ॥१७ ॥ भीमसेनके बाणोंसे ढके रथरहित पैदल सूतनन्दन कर्णको पीछेको हटते देख राजा दुर्योधनने कहा, कि-॥ १८ ॥ अरे ! कर्णके रथकी ओरको दौड़ो ! तदनन्तर हे राजन् ! भाईके वचनको सुनकर तुम्हारे चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्मा नामक समरमें विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले पुत्र फुरतीके साथ बाणोंको छोडतेहुए भीमके ऊपर जाचढे, परन्तु तुम्हारे पुत्रोंको चढकर आते देखते ही महारथी भीमसेनने फुर्तीसे एक २ बाण मारकर तुम्हारे प्रत्येक

केन शरेणाजौ पातयामास ते सुतान् । ते हता न्यपतन् भूमौ
वातरुग्णा इव द्रुमाः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा विनिहतान् पुत्रांस्तव राजन्
महारथान् । अश्रुपूर्णमुखः कर्णः क्षत्तुः सस्मार तद्वचः ॥ २३ ॥
रथञ्चान्यं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः । अभ्ययात् पांडवं
युद्धे त्वरमाणः पराक्रमी ॥२४॥ तावन्योन्यं शरैर्विध्वा स्वर्णपुङ्खैः
शिलाशितैः । व्यभ्राजेतां यथा मेघौ संस्यूतौ सूर्यरश्मिभिः २५
षट्त्रिंशद्भिस्ततो भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः । व्यधमत् कवचं क्रुद्धः
सूतपुत्रस्य पाण्डवः ॥ २६ ॥ सूतपुत्रोऽपि कौन्तेयं शरैः सन्नत-
पर्वभिः । पञ्चाशता महाबाहुर्विव्याध भरतर्षभ ॥ २७ ॥ रक्त-
चन्दनदिग्धाङ्गौ शरैः कृतमहाव्रणौ । शोणिताक्तौ व्यराजेतां

पुत्रको रणमें गिरादिया; मारेहुए वे तुम्हारे पुत्र आँधीसे ढाये
हुए वृक्षोंकी समान गिरगए ॥ १६-२२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे
महारथी पुत्रोंको मारेगए देखकर कर्णके नेत्रोंमें आँसू भरआए
और वह विदुरके वचनको याद करनेलगा ॥ २३ ॥ कुछ समय
के वाद पराक्रमी कर्ण शास्त्रानुसार बनेहुए एक दूसरे रथमें बैठ
कर फुर्तीके साथ भीमसेनसे युद्ध करनेको चढआया ॥ २४ ॥ वे
दोनों परस्पर सुवर्णकी पूँछवाले, शिलापर घिसेहुए बाणोंसे
एक दूसरेको घायल करनेलगे, इस समय जिनके शरीरोंमें बाण
गुभ रहे थे ऐसे भीम और कर्ण, जिनमेंसे सूर्यकी किरणें
निकल रही हों ऐसे मेघोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ २५ ॥
तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए भीमसेनने तीखी धारवाले छत्तीस
बाण मारकर कर्णके कवचको छिन्न भिन्न करदिया ॥ २६ ॥
महाबाहु सूतपुत्र कर्णने भी हे भरतर्षभ ! नमीहुई गाँठवाले
छत्तीस बाणोंसे भीमसेनको बींधडाला ॥ २७ ॥ लाल चन्दनसे
व्याप्त शरीरवाले और बाणोंसे जिनके शरीरमें बड़े २ घाव
होगए थे ऐसे तथा रुधिरसे न्हाएहुए वे दोनों उदय होतेहुए

चन्द्रसूर्याविवोदितौ ॥ २८ ॥ तौ शोणितोक्षितैर्गात्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ । कर्णभीमौ व्यराजेतां निर्मुक्ताविव पन्नगौ ॥ २९ ॥ व्याघ्राविव नरव्याघ्रौ दंष्ट्राभिरितरेतरम् । शरधारासृजौ वीरौ मेघाविव ववर्षतु ॥ ३० ॥ वारणाविव चान्योऽन्यं विषाणाभ्यामरिन्दमौ । निर्भिन्दन्तौ स्वगात्राणि सायकैश्चानुरेजतुः ॥ ३१ ॥ नादयन्तौ प्रवर्षन्तौ विक्रीडन्तौ परस्परम् । मण्डलानि विकुर्वाणौ रथाभ्यां रथिपुङ्गवौ ॥ ३२ ॥ वृषाविव च नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे । सिंहाविव पराक्रान्तौ नरसिंहौ महाबलौ ॥ ३३ ॥ परस्परं वीक्षमाणौ क्रोधसंरक्तलोचनौ । युयुधाते महावीर्यौ शक्रवैरोचनौ यथा ॥ ३४ ॥ ततो भीमो महाबाहुर्भुजाभ्यां व्याक्षिपन् धनुः । व्यराजत रणे राजन्सविद्युदिव तोयदः ॥ ३५ ॥ स नेमिघोषस्त-

---

चन्द्र और सूर्यकी समान लाल २ दीखरहे थे ॥ २८ ॥ बाणोंसे टूट गए हैं कवच जिनके ऐसे लोहूलुहान शरीरवाले कर्ण और भीम कैंचलीसे छूटेहुए सर्पोंकी समान मालूम होते थे ॥ २९ ॥ जैसे दो बाघ परस्पर एक दूसरेके शरीरों पर डाढ़ोंका प्रहार करते हैं अथवा जैसे मेघ जल बरसाते हैं तैसे ही वे दोनों परस्परके ऊपर प्रहार करनेलगे ॥ ३० ॥ जैसे दो हाथी दाँतोंका प्रहारकरके एक दूसरेके शरीरको चीर डालते हैं तैसे ही वे दोनों परस्पर बाणोंसे एक दूसरेके शरीरको चीरते हुए मालूम होते थे ॥ ३१ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ सिंहकी समान पराक्रमी नरसिंह महाबली और महावीर्यवान् वे दोनों गर्जना करके हर्षमें भर युद्धक्रीडा करते हुए और रथोंसे मण्डलाकार घूमकर बलवान् बैलोंकी समान रम्भाते हुए क्रोधसे लाल लाल नेत्र कर एक दूसरेकी ओरको जाते हुए इन्द्र और विरोचनकी समान युद्ध करने लगे ॥ ३२-३४ ॥ उससमय हे राजन्! रणमें धनुषको घुमाता हुआ महाभुज भीमसेन जिसमें बिजली कड़कड़ा रही हो

नितश्चापविद्युच्छरांबुभिः। भीमसेनमहामेघः कर्णपर्वतमावृणोत् ॥ ३६ ततः शरसहस्रेण सम्यगस्तेन भारत । पाण्डवो व्यकिरत् कर्णं भीमो भीमपराक्रमः ॥ ३७ ॥ तत्रापश्यंस्तव सुता भीमसेनस्य विक्रमम् । सुपुंखैः कङ्कवासोभिर्यत् कर्णं छादयञ्छरैः ॥ ३८ ॥ स नन्दयन् रणे पार्थं केशवञ्च यशस्विनम् । सात्यकिञ्चक्ररक्षौ च भीमः कर्णमयोधयत् ॥३९॥ विक्रमं भुजयोर्वीर्यं धैर्यञ्च विदितात्मनः । पुत्रास्तव महाराज दृष्ट्वा विमनसोऽभवन् ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे
षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

सञ्जय उवाच । भीमसेनस्य राधेयः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनम् । नामृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम् ॥ १ ॥ सोऽप-

ऐसे मेघकी समान शोभायमान होरहा था ॥ ३५ ॥ रथकी झनझनाहटरूपी गर्जनावाला, धनुषरूपी बिजलीवाला भीमसेनरूपी महामेघ कर्णरूपी पर्वतको घेर बाणरूपी बूंदोंको बरसानेलगा ३६ हे राजन् ! तदनन्तर भयङ्कर पराक्रमवाले भीमसेनने धनुषको भलीप्रकार तानकर कर्णके सहस्रों बाण मारे ॥३७॥ उस समय तुम्हारे पुत्रोंने भीमसेनके पराक्रमको देखा, कि-उसने सुन्दर पूँछवाले और कंकपक्षीके परोंवाले बाणोंसे कर्णको छा दिया है ॥३८॥ भीमसेन रणमें अर्जुन, कृष्ण, यशस्वी सात्यकि और दोनों चक्ररक्षकोंको आनन्दित करताहुआ कर्णसे युद्ध करने लगा ॥३९॥ और हे महाराज ! तुम्हारे पुत्र अपनी भुजाओंके बल, पराक्रम और धीरजको सोचकर उदास होगए ॥ ४० ॥

एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३६ ॥ * ॥

सञ्जयने कहा, कि शत्रु हाथीकी चिंघाडको जैसे दूसरा हाथी नहीं सह सकता तैसे ही कर्ण भीमसेनके धनुषकी टङ्कारको सुनकर सह नहीं सका ॥१॥ और मूहूर्त भरके लिए भीमसेनके

क्रम्य मुहूर्त्तन्तु भीमसेनस्य गोचरात् । पुत्रांस्तव ददर्शाथ भीमसेनेन पातितान् ॥ २ ॥ तानवेक्ष्य नरश्रेष्ठ विमना दुःखितस्तदा । निःश्वसन् दीर्घमुष्णञ्च पुनः पाण्डवमभ्ययात् ॥ ३ ॥ स ताम्रनयनः क्रोधात् श्वसन्निव महोरगः । वभौ कर्णः शरानस्यन् रश्मिवानिव भास्करः ॥ ४ ॥ रश्मिजालैरिवार्कस्य महीध्रो भरतर्षभ । कर्णचापच्युतैर्वाणैः प्राच्छाद्यत वृकोदरः ॥५॥ ते कर्णचापप्रभवाः शरा वर्हिणवाससः । विविशुः सर्वतः पार्थं वासायेवाण्डजा द्रुमम् ॥६॥ कर्णचापच्युता वाणाः सम्पतन्तस्ततस्ततः । रुक्मपुङ्खा व्यराजन्त हंसाः श्रेणीकृता इव ॥ ७ ॥ चापध्वजोपस्करेभ्यश्छत्रादीषामुखाद्युगात् । प्रभवन्तो व्यदृश्यन्त राजन्नाधिरथेः शराः ॥ ८ ॥ खं पूरयन्महावेगात् खगमान् गृध्रवाससः ।

सामनेसे टलगया, कुछ ही समय वाद उसने भीमसेनके हाथसे मरेहुए तुम्हारे पुत्रोंको देखा ॥ २ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! उनको मरे देखकर कर्णका मन खिन्न होगया और उसको बड़ा दुःख हुआ तथा लम्बे२ गरम श्वास लेताहुआ वह फिर भीमसेनके सामनेको गया ॥ ३ ॥ क्रोधसे लाल २ नेत्रोंवाला, सर्पकी समान फुँकारें भरता हुआ कर्ण वाणोंको छोडते समय, किरणोंको फैलातेहुए सूर्यकी समान प्रतीत होता था ॥ ४ ॥ हे भरतर्षभ ! जैसे सूर्यकी किरणोंसे पर्वत ढकजाता है, तैसे ही कर्णके धनुषमेंसे छूटेहुए वाणोंसे भीमसेन ढकगया ॥ ५ ॥ सायंकालके समय बसेरा करनेके लिये वृक्षोंमें घुसनेवाले पक्षियोंकी समान, मोरके पङ्खवाले कर्णके धनुषमेंसे छूटेहुए वाण भीमके शरीरमें घुसनेलगे ॥ ६ ॥ सुवर्णकी पूँछवाले कर्णके धनुषमेंसे निरन्तर छूटतेहुए वाण ऐसे प्रतीत होते थे कि-मानों हंसोंकी पंक्ति जारही हो ॥ ७ ॥ अधिरथका पुत्र इस शीघ्रतासे वाण छोडता था, कि-उसके धनुष, ध्वजा, उपस्कर, छत्र, दण्ड, ईषामुख और जुएमेंसे भी

सुवर्णविकृतांश्चित्रान् मुमोचाधिरथिः शरान् ॥ ९ ॥ तमन्तकमिवायस्तमापतन्तं वृकोदरः । त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध निशितैः शरैः ॥ १० ॥ तस्य वेगमसह्यं स दृष्ट्वा कर्णस्य पाण्डवः । महतश्च शरौघांस्तान्न्यवारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥ ततो विव्याधाधिरथेः शरजालानि पाण्डवः । विव्याध कर्णं विंशत्या पुनरन्यैः शिलाशितैः ॥ १२ ॥ यथैव हि स कर्णेन पार्थः प्रच्छादितः शरैः । तथैव स रणे कर्णं छादयामास पाण्डवः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा तु भीमसेनस्य विक्रमं युधि भारत । अभ्यनन्दंस्त्वदीयाश्च संप्रहृष्टाश्च चारणाः ॥ १४ ॥ भूरिश्रवाः कृपो द्रौणिर्मद्रराजो जयद्रथः । उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिः केशवार्जुनौ ॥ १५ ॥ कुरुपाण्डवप्रवरा दश राजन्महारथाः । साधु साध्विति वेगेन सिहनादमथा-

---

वाण छूटरहे हों ऐसा प्रतीत होता था ॥ ८ ॥ गीधके परोंवाले, सुवर्णके बने, आकाशगामी वाणोंको छोड कर्ण आकाशको ढकनेलगा ॥ ९ ॥ कर्णने अपने प्राणोंकी कुछ परवाह न कर यमराजकी समान अतिदृढ भीमसेनको तेज वाणोंसे बींध डाला ॥ १० ॥ वीर्यवान् भीमसेन कर्णके असह्य वेगको देख वाण छोड़कर कर्णके वाणोंके समूहोंको रोकनेलगा ॥ ११ ॥ इसप्रकार कर्णके वाणोंके समूहोंको नष्ट करके फिर भीमसेनने पत्थर पर घिस कर तीक्ष्ण किये वीस वाणोंसे कर्णको घायल किया ॥ १२ ॥ और जैसे कर्णने भीमको वाणोंसे ढकदिया तैसे ही भीम भी कर्णको वाणोंसे ढकनेलगा ॥ १३ ॥ हे भारत! इस समय भीमके पराक्रमको देखकर तुम्हारे योधा भी उसको धन्य २ कहनेलगे और चारण भी प्रसन्न हो उसको धन्यवाद देनेलगे ॥ १४ ॥ तथा हे राजन् ! भूरिश्रवा, कृप, अश्वत्थामा, शल्य, जयद्रथ, उत्तमौजा, युधामन्यु, सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन इसप्रकार कौरव और पांडवपक्षके दश महारथी योधा सिंहकी

नदन् ॥ १६ ॥ तस्मिन् समुत्थिते शब्दे महत्ते लोमहर्षणे । अभ्यभाषत पुत्रस्ते राजा दुर्योधनस्त्वरन् ॥१७॥ राज्ञः स राजपुत्रांश्च सोदर्यांश्च विशेषतः । कर्णं गच्छत भद्रं वः परीप्सन्तो वृकोदरात् ॥ १८ ॥ पुरा निघ्नन्ति राधेयं भीमचापच्युताः शराः । ते यतध्वं महेष्वासाः सूतपुत्रस्य रक्षणे ॥ १९ ॥ दुर्योधनसमादिष्टाः सोदर्याः सप्त भारत । भीमसेनमभिद्रुत्य संरब्धाः पर्यवारयन् २० ते समासाद्य कौन्तेयमावृण्वञ्छरवृष्टिभिः । पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २१ ॥ तेऽपीडयन् भीमसेनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः । प्रजासंहरणे राजन् सोमं सप्त ग्रहा इव ॥ २२ ॥ ततो वेगेन कौन्तेयः पीडयित्वा शरासनम् । मुष्टिना पाण्डवो राजन् दृढेन सुपरिष्कृतम् ॥ २३ ॥ मनुष्यसमतां ज्ञात्वा सप्त सन्धाय

समान गर्जकर अकस्मात् बोलउठे, कि–भीमको धन्य है ! भीमको धन्य है ! ॥ १५–१६ ॥ ऐसे भयङ्कर लोमहर्षण शब्दके होने पर हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन शीघ्रताके साथ राजे, राजकुमार और विशेषतः अपने सगे भाइयोंसे कहनेलगा, कि–तुम्हारा कल्याण हो, भीमके धनुषसे छूटेहुए बाण जब तक कर्णको नष्ट न करें उससे पहिले पहुँचकर महाधनुषधारी तुम भीमके चुंगलसे कर्णको बचानेका यत्न करो ॥ १७–१९ ॥ हे राजन् ! दुर्योधनके आज्ञा देने पर सातों सगे भाई क्रोधमें भरगए और उन्होंने झपटकर भीमको घेरलिया ॥ २० ॥ जैसे चौमासेमें मेघ पर्वतको ढककर उसके ऊपर बूँदोंकी बौछार डालने लगते हैं तैसे ही वे सब भीमके समीप पहुँच उसके ऊपर बाणवर्षा करने लगे ॥ २१ ॥ जैसे प्रलयके समय सात ग्रह चन्द्रमाको ग्रसने लगते हैं तैसे ही क्रोधमें भरे वे सात महारथी भीमसेनको पीडित करनेलगे ॥ २२ ॥ तदनन्तर समर्थ भीमसेनने अपनी दृढमुट्ठीसे अच्छी तरह सजे अपने धनुषको पकडा और मनुष्यकी समता

सायकान् । तेभ्यो व्यसृजदायस्तः सूर्यरश्मिनिभान् प्रभुः ॥२४॥ निरस्यन्निव देहेभ्यस्तनयानामसूंस्तव। भीमसेनो महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २५ ॥ ते क्षिप्ता भीमसेनेन शरा भारत भारतान् । विदार्य खं समुत्पेतुः स्वर्णपुंखाः शिलाशिताः ॥ २६ ॥ तेषां विदार्य चेतांसि शरा हेमविभूषिताः । व्यराजन्त महाराज सुपर्णा इव खेचराः ॥ ३७ ॥ शोणितादिग्धवाजाग्राः सप्त हेमपरिष्कृताः । पुत्राणां तव राजेन्द्र पीत्वा शोणितमुद्गताः ॥ २८ ॥ ते शरैर्भिन्नमर्माणो रथेभ्यः प्रापतन् क्षितौ । गिरिसानुरुहा भग्ना द्विपेनेव महाद्रुमाः॥२९॥शत्रुञ्जयः शत्रुसहश्चित्रश्चित्रायुधो दृढः । चित्रसेनो विकर्णश्च सप्तैते विनिपातिताः ॥ ३० ॥ पुत्राणां तव सर्वेषां

पर ध्यान देकर धनुष पर सूर्यकी किरणोंकी समान प्रकाशवान् सात वाणोंको चढा उसके ऊपर छोडा ॥ २३-२४ ॥ हे महाराज ! भीमसेनने वे वाण पहिले वैरको यादकर तुम्हारे पुत्रोंके प्राणोंको देहसे (मानो स्वयं ही विना वाणोंके) पृथक् करदेगा ऐसे क्रोधमें भरकर मारे थे हे भारत ! भीमके छोड़हुए सुवर्णकी पूँछवाले, शिलापर घिसकर तेज कियेहुए वे वाण उनको घायल करके आकाशमें उड़नेलगे ॥ २६ ॥ हे महाराज ! तुम्हारे पुत्रों के हृदयको चीरकर आकाशमें जातेहुए सुवर्णसे विभूषित वे वाण आकाशमें उडनेवाले गरुडकी समान दीखते थे ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र ! जिनकी पूँछका अग्रभाग रुधिरसे सनाहुआ था ऐसे सुवर्णके बने वे सात वाण तुम्हारे पुत्रोंके रुधिरको पीकर आकाशमें उडरहे थे ॥ २८ ॥ पर्वतके शिखर पर उगेहुए वृक्ष जैसे हाथीके झँझोडनेसे गिर पडते हैं तैसे ही वाणोंसे मर्मस्थलों के विंधजाने पर तुम्हारे सातों पुत्र रथोंपरसे नीचे गिरपड़े २९ भीमने शत्रुञ्जय, शत्रुसह, चित्र, चित्रायुध, दृढ और चित्रसेन तथा विकर्ण नामवाले तुम्हारे सात पुत्रोंको इस बार मार ही डाला ३०

निहतानां वृकोदरः। शोचत्यतिभृशं दुःखाद्विकर्णं पाण्डवः प्रियम् ३१ प्रतिज्ञेयं मया वृत्ता निहन्तव्यास्तु संयुगे। विकर्ण तेनासि हतः प्रतिज्ञा रक्षिता मया ॥ ३२ ॥ त्वमागाः सङ्गरं वीर क्षात्रं धर्ममनुस्मरन्। ततो विनिहतः संख्ये युद्धधर्मो हि निष्ठुरः ॥ ३३ ॥ विशेषतो हि नृपतेस्तथास्माकं हिते रतः। न्यायतोऽन्यायतो वापि हतः शेते महाद्युतिः ॥ ३४ ॥ अगाधबुद्धिर्गांगेयः क्षितौ सुरगुरोः समः। त्याजितः समरे प्राणांस्तस्माद्युद्धं हि निष्ठुरम् ॥ ३५ ॥ संजय उवाच। तान्निहत्य महाबाहुः राधेयस्यैव पश्यतः। सिंहनादरवं घोरमसृजत् पाण्डुनन्दनः ॥ ३६ ॥ स रवस्तस्य शूरस्य धर्मराजस्य भारत। आचख्याविव तद्युद्धं विजयाञ्चात्मनो महत् ३७ तं श्रुत्वा तु महानादं भीमसेनस्य धन्विनः। बभूव परमा प्रीति-

---

भीमसेन तुम्हारे मरेहुए इन पुत्रोंमेंसे अपने प्यारे विकर्णका मरण देख दुःखी हो बड़ा शोक करनेलगा ॥३१॥ वह कहनेलगा कि हे विकर्ण! मैंने प्रतिज्ञा की थी कि—मैं युद्धमें कौरवोंका संहार करूँगा, अतः तू भी मारागया, परन्तु मैंने अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये ऐसा किया ॥ ३२ ॥ हे वीर! तू क्षत्रियके धर्म पर ध्यान देकर रणमें लडने आया था अतः मैंने तुझे मारडाला है ओः! क्षत्रियका धर्म बडा निष्ठुरर है! ॥ ३३ ॥ तू विशेषतः युधिष्ठिरके और हमारे हितमें लगा रहता था हा! अरे! न्यायसे कहो वा अन्यायसे बृहस्पतिकी समान अगाध बुद्धिवाले भीष्म भी अपने प्राणोंको त्यागकर रणमें सोरहे हैं निःसन्देह युद्धका काम बडा कठोर है ॥ ३४–३५ ॥ संजयने कहा, कि—महाभुज पांडुनन्दन भीम कर्णके सामने ही उनको मारकर सिंहकी समान भयङ्कर गर्जना करनेलगा ॥ ३६ ॥ हे राजन्! वीर भीमकी वह गर्जना धर्मराजकी विजयको और भीमके महायुद्धको कहतीहुई चारों ओर गूँज उठी ॥ ३७ ॥ धनुषधारी भीमसेनके महाशब्दको

र्द्धर्मराजस्य धीमतः ॥ ३८ ॥ ततो हृष्टमना राजन् वादित्राणां महास्वनैः । सिंहनादरवं भ्रातुः प्रतिजग्राह पाण्डवः ॥ ३९ ॥ हर्षेण महता युक्तः कृतसंज्ञा वृकोदरे । अभ्ययात् समरे द्रोणं सर्वशस्त्रभृताम्वरः ॥ ४० ॥ एकत्रिंशन्महाराज पुत्रांस्तव निपातितान् । हतान् दुर्योधनो दृष्ट्वा क्षत्तुः सस्मार तद्वचः ॥ ४१ ॥ तदिदं समनुप्राप्तं क्षत्तुर्निःश्रेयसं वचः । इति सञ्चिन्त्य राजासौ नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥४२॥ यद्द्यूतकाले दुर्बुद्धिरब्रवीत्तनयस्तव । सभामानाय्य पाञ्चालीं कर्णेन सहितोऽल्पधीः॥४३॥यच्च कर्णोऽब्रवीत् कृष्णां सभायां परुषं वचः । प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां तव चैव विशाम्पते ॥ ४४ ॥ शृण्वतस्तव राजेन्द्र कौरवाणाञ्च सर्वशः । विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वत नरकं गताः ॥ ४५ ॥ पतिमन्यं

सुनकर बुद्धिमान् धमराज बड़े प्रसन्न हुए ॥३८॥ और उन्होंने प्रसन्न होकर बाजोंके बड़े भारी शब्दोंके साथ भाईकी सिंहगर्जनाको बढ़ाया ॥३९॥ इसप्रकार बड़ेभारी हर्षमें भरेहुए सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर भीमके बतायेहुए इशारेसे चेतावनी देकर द्रोणके सामनेको बढ़े ॥ ४० ॥ हे महाराज ! (दूसरी ओर) तुम्हारे इकतीस पुत्रोंको मरकर रणभूमिमें पड़ेहुए देखकर दुर्योधनको विदुरके वचनोंकी याद आगई ॥४१॥ और वह कहने लगा, कि विदुरने जो हितवचन कहे थे वे सब अब सामने आरहे हैं इसप्रकार विचार करतेहुए तुम्हारे पुत्रको कोई भी उपाय न सूझपड़ा ॥ ४२ ॥ जुएके समय दुर्बुद्धि तुम्हारे पुत्र दुर्योधन और अल्पबुद्धि कर्णने सभामें द्रौपदीको बुलवाकर जो बातें कहीं थीं ॥ ४२ ॥ और हे राजन् ! तुम्हारे सामने तथा पाण्डवोंके सामने तथा सकल कौरवोंके सामने, सबको सुनाते हुए कर्णने द्रौपदीसे जो कठोर वचन कहे थे, कि—हे कृष्णे ! पाण्डव तो अब नष्टकर सदाके लिये दुर्गतिमें पड़गए, अतः तू

वृणीष्वेति तस्येदं फलमागतम् । यच्च पण्डतिलादीनि परुषाणि तवात्मजैः । श्राविताश्ते महात्मानः पाण्डवाः कोपविष्णुभिः ४६ तं भीमसेनः क्रोधाग्निं त्रयोदशसमाः स्थितम् । उद्गिरंस्तव पुत्राणामन्तं गच्छति पाण्डवः ॥ ४७ ॥ विलपंश्च बहु क्षत्ता शमं नालभत त्वयि । सपुत्रो भरतश्रेष्ठ तस्य भुंक्ष्व फलोदयम् ॥ ४८ ॥ त्वया वृद्धेन धीरेण कार्यतत्त्वार्थदर्शिना । न कृतं सुहृदां वाक्यं दैवमत्र परायणम् ॥ ४९ ॥ तन्मा शुचो नरव्याघ्र तवैवापनयो महान् । विनाशहेतुः पुत्राणां भवानेव मतो मम ॥ ५० ॥ हतो विकर्णो राजेन्द्र चित्रसेनश्च वीर्यवान् । प्रवराश्चात्मजानान्ते सुताश्चान्ये महारथाः ॥ यानन्यान् ददृशे भीमश्चक्षुर्विषयमागतान् ।

दूसरे किसीको पति बनाले तथा तुम्हारे पुत्रोंने पाण्डवोंको कुपित करनेके लिये उनसे जो पण्ढतिल (तेलरहित तिलोंकी समान नपुंसक) आदि कठोरवाक्य सुनाए थे, यह उसका ही फल अब सामने आरहा है ॥ ४५।४६ ॥ तेरह वर्षतक रोकी हुई क्रोधाग्निको उगलताहुआ भीम तुम्हारे पुत्रोंको मलियामेट कररहा है ॥ ४७ ॥ विदुरने तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे शान्ति रखनेके लिये गिड़गिड़ा २ कर प्रार्थना की थी परन्तु तुम्हारी बुद्धि ठिकाने नहीं आई, अतः हे भरतश्रेष्ठ ! अब पुत्रसहित उसका फल भोगो ॥ ४८ ॥ धीर, वृद्ध और कार्यके भावको जाननेवाले तुमने मित्रोंकी बात नहीं मानी इसमें प्रारब्ध ही कारण है ॥ ४९ ॥ अतः हे नरव्याघ्र ! अब तुम शोक मत करो, तुमने बड़ाभारी अपराध किया है और मेरी समझमें अपने पुत्रोंके विनाशके कारण भी तुम ही हो ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्र ! तुम्हारे पुत्रोंमें मुख्य वीर्यवान् विकर्ण और चित्रसेन मारेगये तथा दूसरे भी महारथी मारेगए ॥ ५१ ॥ हे महाराज ! तुम्हारे जो २ पुत्र भीमसेनके सामने पड़े थे उन सबको ही भीमने शीघ्रतासे

पुत्रांस्तत्र महाराज त्वरया तान् जघान ह ॥ ५२ ॥ त्वत्कृतेऽहमद्राक्षं दह्यमानां वरूथिनीम् । सहस्रशः शरैर्मुक्तैः पाण्डवेन वृषेण च ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे
सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । महानपनयः सूत ममैवात्र विशेषतः । स इदानीमनुप्राप्तो मन्ये सञ्जय शोचतः ॥ १ ॥ यद्गतं तद्गतमिति ममासीन्मनसि स्थितम् । इदानीमत्र किं कार्यं प्रकरिष्यामि संजय२ यथा ह्येष क्षयो वृत्तो ममापनयसम्भवः । वीराणां तन्ममाचक्ष्व स्थिरीभूतोऽस्मि सञ्जय ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच । कर्णभीमौ महाराज पराक्रान्तौ महाबलौ । बाणवर्षाण्यसृजतां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ४ ॥ भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुंखाः शिलाशिताः ।

मारडाला ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे ही कारण भीम और कर्ण सहस्रों बाणोंको छोड़कर सेनाका संहार कर रहे थे यह मैं अपनी आँखोंसे देखरहा था ॥ ५३ ॥ एकसौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३७ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे संजय ! हे सूत ! मैं शोक करता हूँ, परन्तु वास्तवमें इसमें मेरा ही अधिक अपराध है और उसका ही फल मुझे मिल रहा है यह मैं मानता हूँ ॥ १ ॥ मेरी समझमें जो हुआ सो तो होगया, परन्तु हे संजय ! अब मैं इसमें क्या करूँ ? ॥ २ ॥ मेरे अन्यायसे यह वीरोंका संहार जिसप्रकार हुआ हो सो सुना, हे संजय ! मैं अब मैं शान्त होकर बैठा हूँ ३ संजयने कहा कि-हे धृतराष्ट्र ! पराक्रमी और महाबली कर्ण तथा भीम वर्षा करनेवाले मेघोंकी समान बाणधारा बरसानेलगे ४ जिनके ऊपर भीमका नाम खुदरहा था ऐसे सुवर्णकी पूँछवाले पत्थर पर घिसकर तेज किएहुए बाण कर्णके समीप पहुँच मानो

विविशुः कर्णमासाद्य छिन्दन्त इव जीवितम् ॥ ५ ॥ तथैव कर्णनिर्मुक्ताः शरा वर्हिणवाससः । छादयांचक्रिरे वीरं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६ ॥ तयोः शरैर्महाराज सम्पतद्भिः समन्ततः । वभूव तव सैन्यानां संक्षोभः सागरोत्तरः ॥ ७ ॥ भीमचापच्युतैर्वाणैस्तव सैन्यमरिन्दम । अवध्यत चमूमध्ये घोरैराशीविषोपमैः ॥ ८ ॥ वारणैः पतितै राजन् वाजिभिश्च नरैः सह । अदृश्यत मही कीर्णा वातभग्नैरिव द्रुमैः ॥ ९ ॥ ते वध्यमानाः समरे भीमचापच्युतैः शरैः । प्राद्रवंस्तावका योधाः किमेतदिति चाब्रुवन् ॥ १० ॥ ततो व्युदस्तं तत् सैन्यं सिन्धुसौवीरकौरवम् । प्रोत्सारितं महावेगैः कर्णपाण्डवयोः शरैः ॥ ११ ॥ ते शरा हतभूयिष्ठा हताश्वरथवारणाः । उत्सृज्य भीमकर्णौ च व्यद्रवन् सर्वतो दिशः ॥ १२ ॥ नूनं पार्थार्थमेवास्मान्मोहयन्ति दिवौकसः । यत् कर्णभीमप्रभवै-

उसके प्राणोंको नाश कररहे हों इसप्रकार उसके शरीरमें घुसरहे थे ॥ ५ ॥ तैसे ही कर्णके छोड़ेहुए, मोरके पङ्खवाले सैंकडों और सहस्रों वाण भीमको ढकरहे थे ॥६॥ हे महाराज ! उन दोनोंके इधर उधर गिरतेहुए वाणोंसे सेनामें वडीभारी गडवडी होगई ७ हे शत्रुदमन ! भीमके धनुषसे छूटेहुए सर्पोंकी समान भयङ्कर वाणोंसे तुम्हारी सेना मरनेलगी, सेनाके मध्यमें पड़ेहुए हाथी घोड़े और मनुष्योंसे ढकीहुई पृथ्वी आँधीसे टूटेहुए वृक्षोंसे पटीहुई सी प्रतीत होती थी ॥ ८-९ ॥ और मरनेसे वचेहुए तुम्हारे दूसरे सैनिक, युद्धमें भीमके वाणोंका प्रहार होने पर यह क्या ? यह क्या ? कहतेहुए रणमेंसे भागनेलगे ॥ १० ॥ कर्ण तथा भीमके वेगवाले वाणोंके लगनेसे सिन्धु सौवीर और कौरव राजाओंकी सेना घवडाकर रणमेंसे दूर जाकर खडी हो गई ॥ ११ ॥ कितने ही शूर अपने हाथी घोड़े और रथोंके नष्ट होजानेसे यह कहतेहुए, कि—“वास्तवमें देवता ही पांडवोंकी

वध्यते नो वलं शरैः ॥ १३ ॥ एवं ब्रुवाणा योधास्ते तावका भयपीडिताः । शरपातं समुत्सृज्य स्थिता युद्धदिदृक्षवः ॥ १४ ॥ ततः प्रावर्त्तत नदी घोररूपा रणाजिरे । शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्द्धिनी ॥ १५ ॥ वारणाश्वमनुष्याणां रुधिरौघसमुद्भवा । संवृता गतसत्त्वैश्च मनुष्यगजवाजिभिः ॥ १६ ॥ सानुकर्षपताकैश्च द्विपाश्वरथभूषणैः । स्यन्दनैरपविद्धैश्च भग्नचक्राक्षकूवरैः ॥१७॥ जातरूपपरिष्कारैर्धनुर्भिः सुमहास्वनैः । सुवर्णपुंखैरिषुभिर्नाराचैश्च सहस्रशः ॥ १८ ॥ कर्णपाण्डवनिर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः। प्रासतोमरसंघातैः खड्गैश्च सपरश्वधैः ॥ १९ ॥ सुवर्णविकृतैश्चापि गदामुसलपट्टिशैः । वज्रैश्च विविधाकारैः शक्तिभिः परिघैरपि ॥ २० ॥ शतघ्नीभिश्च चित्राभिर्वभौ भारत मेदिनी ।

विजयके लिए हमें मोहमें डालरहे हैं, क्योंकि–भीमके तथा कर्णके वाण भी हमारी सेनाका नाश कररहे हैं ॥ १२–१३ ॥ वाणोंके प्रहारसे पीडितहुए तुम्हारे योधा ऐसा कहते२, जहाँ पर वाण न पहुँचसकें, इतनी दूर जा उन दोनोंके युद्धको देखनेकी इच्छासे खड़े होगए ॥१४॥ इस समय रणमें, मरेहुए हाथी, घोड़े और मनुष्योंके रुधिरसे उत्पन्न हुई शूरोंको हर्षित करती और डरपोकोंके भयको वढ़ाती हुई भयङ्कर नदी वह निकली, उसमें मरे हुए हाथी, घोड़े और मनुष्य तैरने लगे ॥ १५–१६॥ टूटे फूटे रथोंके ढाँचे, पताकाएँ, मरेहुए हाथी, घोड़े, टूटे फूटे रथ और घोड़ों आदिके टूटेहुए सामान तथा गहने, टूटेहुए पहिये, धुरी, कूवर, सुवर्णसे मढ़े वडा टंकार शब्द करनेवाले वड़े२ धनुष, सुवर्णकी पूँछवाले सहस्रों वाण, नाराच, कर्ण और भीमके छोडे हुए कैंचलीरहित सर्पोंकी समान वाण, प्रास, तोमर, तलवार, फरसे, सुवर्णसे मढ़ी गदाएँ, मूसल, पट्टिश, नानाप्रकारकी ध्वजा, शक्ति, परिघ, नानाप्रकारकी तोपें, सुवर्णके वाजूवन्द, हार,

कनकाङ्गदहारैश्च कुण्डलैर्मुकुटैस्तथा ॥ २१ ॥ वलयैरपविद्धैश्च
तथैवांगुलिवेष्टकैः । चूडामणिभिरुष्णीषैः स्वर्णसूत्रैश्च मारिष २२
तनुत्रैः सतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च भारत । वस्त्रैश्छत्रैश्च विध्वस्तै-
श्चामरव्यजनैरपि ॥ २३ ॥ गजाश्वमनुजैर्भिन्नैः शोणिताक्तैश्च
पत्त्रिभिः । तैस्तैश्च विविधैर्भिन्नैस्तत्र तत्र वसुन्धरा ॥ २४ ॥
पतितैरपविद्धैश्च विबभौ द्यौरिव ग्रहैः । अचिन्त्यमद्भुतञ्चैव तयोः
कर्मातिमानुषम्॥२५॥दृष्ट्वा चारणसिद्धानां विस्मयः समजायत ।
अग्नेर्वायुसहायस्य गतिः कक्ष इवाहवे॥२६॥ आसीद्भीमसहायस्य
रौद्रमाधिरथेर्गतम् । निपातितध्वजरथं हतवाजिनरद्विपम् ॥ २७ ॥
गजाभ्यां सम्प्रयुक्ताभ्यामासीन्नलवनं यथा । मेघजालनिभं सैन्य-
मासीत्तव नराधिप२८विमर्दः कर्णभीमाभ्यामासीच्च परमोरणे२९

कुण्डल,मुकुट, टूटीहुई सोनेकी वालियें,अँगूठियें,चूड़ामणि,पगड़ी, तोड़े, कवच,हाथके मोजे, हार, निष्क, फटेहुए वस्त्र, चमर, छत्र, पंखे, मनुष्य,रक्तसे सनेहुए बाण तथा दूसरी बहुतसी टूटी फूटी चीजें रणभूमिमें बिखरी पड़ी थीं,उनसे पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रहोंसे चमचमातेहुए आकाशकी समान, शोभा पारही थी भीम और कर्णके मनुष्योंसे न होसकनेवाले अद्भुत और जिसकी ओर कभी ध्यान भी न गया हो ऐसे कर्मको देख सिद्ध और चारणोंको विस्मय होनेलगा. जैसे वायुकी सहायता मिलने पर अग्नि घास फूँसको वेगसे जलाता है, तैसे ही भीमकी सहायतासे कर्णकी गति भयङ्कर होउठी, जैसे दो हाथियोंके खूँदनेसे सैंटोंका वन चूरा२ होजाता है तैसे ही उन दोनोंके पैरोंसे खूँदने पर गिरेहुए ध्वजा, रथ और मरेहुए हाथी, घोड़े तथा मनुष्योंका कचरा होगया, हे राजन्! तुम्हारी सेना घनघटाकी समान फैली हुई थी; परन्तु रणमें भीम और कर्णने उसका चूरा भी बहुत ही किया ॥१७–२९॥ एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३८।

सञ्जय उवाच । ततः कर्णो महाराज भीमं विध्वा त्रिभिः शरैः । मुमोच शरवर्षाणि विचित्राणि बहूनि च ॥ १ ॥ वध्यमानो महावाहुः सूतपुत्रेण पाण्डवः । न विव्यथे भीमसेनो भिद्यमान इवाचलः ॥ २ ॥ स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन निशितेन च । विव्याध सुभृशं संख्ये तैलधौतेन मारिष ॥ ३ ॥ सकुण्डलं महच्चारु कर्णस्यापातयद्भुवि । तपनीयं महाराज दीप्तं ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ४ ॥ अथापरेण भल्लेन सूतपुत्रं स्तनांतरे । आजघान भृशं क्रुद्धो हसन्निव वृकोदरः ॥ ५ ॥ पुनरस्य त्वरन् भीमो नाराचान् दश भारत । रणे प्रैषीन्महावाहुर्निर्मुक्ताशीविषोपमान् ६ ते ललाटं विनिर्भिद्य सूतपुत्रस्य मारिष । विविशुश्चोदितास्तेन वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ७ ॥ ललाटस्थैस्ततो वाणैः सूतपुत्रो व्य-

---

सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज ! तदनन्तर कर्णने तीन वाणों से भीमको घायल करके उसके ऊपर नानाप्रकारके चित्र विचित्र वाणोंकी वर्षा करना आरम्भ कर दी ॥ १ ॥ महावाहु भीमसेन कर्णके वाणोंका प्रहार होने पर भी पर्वतकी समान अटल खडा रहा और उसको कुछ भी पीडा नहीं हुई ॥२॥ और हे राजन् ! उसने पानी पिलायेहुए, तीक्ष्ण तथा तेलसे रगडकर साफ किये हुए कर्णि नामक वाणसे कर्णके कानमें वेगसे प्रहार किया ।३। हे महाराज ! और कर्णके सुवर्णके कुण्डलसहित कानको पृथिवीमें ऐसे गिरादिया, जैसे आकाशमेंसे ज्योति गिर पडती है ॥ ४ ॥ तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए भीमसेनने मुस्कुराकर, बड़े वेगसे भल्ल नामका वाण कर्णकी छातीमें मारा ॥ ५ ॥ हे भारत ! फिर फुर्ती दिखातेहुए महाभुज भीमने कैंचलीरहित सर्पोंकी समान दश वाण कर्णके मारे ॥ ६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! भीमके छोड़ेहुए वे वाण सूतपुत्रके मस्तकको फोडकर बिलमें घुसतेहुए सर्पोंकी समान उसके मस्तकमें घुसगए ॥ ७ ॥ ललाटमें

रोचत । नीलोत्पलमयीं मालां धारयन् वै यथा पुरा ॥ ८ ॥ सोतिविद्धो भृशं कर्णः पाण्डवेन तरस्विना । रथकूवरमालम्ब्य न्यमीलयत लोचने ॥ ९ ॥ स मुहूर्त्तात् पुनः संज्ञां लब्ध्वा कर्णः परन्तपः । रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः क्रोधमाहारयत् परम् ॥ १० ॥ ततः क्रुद्धो रणे कर्णः पीडितो दृढधन्वना । वेगञ्चक्रे महावेगो भीमसेनरथं प्रति ॥ ११ ॥ तस्मै कर्णः शतं राजन्निषूणां गार्द्धवाससाम् । अमर्षी वलवान् क्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ १२ ॥ ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः । समरे तमनादृत्य तस्य वीर्यमचिन्तयन् ॥ १३ ॥ कर्णस्ततो महाराज पाण्डवं नवभिः शरैः । आजघानोरसि क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परन्तपः ॥ १४ ॥ तावुभौ नरशार्दूलौ शार्दूलाविव दंष्ट्रिणौ । जीमूताविव चान्योन्यं प्रववर्षतु-

गुथेहुए उन वाणोंसे, पहिले जैसे नील कमलकी मालाको धारण करते समय कर्ण सुशोभित होता था तैसे, सुशोभित होनेलगा ८ वेगवान् भीमके वाणोंसे वहुत ही घायलहुआ कर्ण रथके दण्डेको पकड़कर मूर्छित होगया और उसने अपने दोनों नेत्र मूँदलिये ९ जिसके सारे शरीरमेंसे रुधिर वहरहा था ऐसे कर्णको कुछ देरमें होश आया तव तो उसको वड़ा क्रोध चढ़ा ॥ १० ॥ दृढ धनुषधारी भीमसे पीडित महावेगवान् कर्ण क्रोधमें भरकर वेगके साथ भीमसेनके रथकी ओरको दौड़ा ॥ ११ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! असहनशील, वली और क्रोधमें भरे कर्णने गीधके पर लगे सौ वाण भीमके ऊपरको फैंके ॥ १२ ॥ परन्तु भीमसेनने रणमें उसका अनादर कर उसके वलकी कुछ परवाह न की और उसके ऊपर भयङ्कर वाण वरसाने आरम्भ करदिए ॥ १३ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए कर्णने क्रोधी भीमकी छातीमें नौ वाण मारे १४ वे दोनों नरशार्दूल डाढ़वाले दो व्याघ्रोंकी समान वलवान् थे और दो मेघोंकी समान आपसमें युद्ध करतेहुए वाणोंकी वर्षा

राहवे ॥ १५ ॥ तलशब्दरवैश्चैव त्रासयेतां परस्परम्। शरजालैश्च विविधैस्त्रासयामासतुर्मृधे ॥ १६ ॥ अन्योऽन्यं समरे क्रुद्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ। ततो भीमो महाबाहुः सूतपुत्रस्य भारत १७ क्षुरप्रेण धनुश्छित्वा ननाद परवीरहा। तदपास्य धनुश्छिन्नं सूतपुत्रो महारथः ॥ १८ ॥ अन्यत् कार्मुकमादत्त भारघ्नं वेगवत्तरम्। तदप्यथ निमेषार्धाच्चिच्छेदास्य वृकोदरः ॥ १९ ॥ तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं षष्ठमेव हि। सप्तमं चाष्टमं चैव नवमं दशमं तथा ॥ २० ॥ एकादशं द्वादशं त्रयोदशमथापि च। चतुर्दशं पञ्चदशं षोडशं च वृकोदरः ॥ २१ ॥ तथा सप्तदशं वेगादष्टादशमथापि वा। बहूनि भीमश्चिच्छेद कर्णस्यैवं धनूंषि हि २२ निमेषार्धात्ततः कर्णो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत। दृष्ट्वा स कुरुसौवीरसिंधुवीरबलक्षयम् ॥२३॥ सवर्मध्वजशस्त्रैश्च पतितैः संवृतां महीम्। हस्त्य-

करनेलगे ॥ १५ ॥ तालियोंके शब्द करनेलगे और अनेकों प्रकारके बाण छोड़कर एक दूसरेको त्रास देनेलगे ॥ १६ ॥ रणमें लड़तेहुए वे दोनों योधा एक दूसरेके कियेहुए अपकारोंका बदला लेनेकी इच्छासे आवेशमें भरकर युद्ध करनेलगे, तदनन्तर हे भरतवंशी राजन्! शत्रुवीरके नाशक महाभुज भीमसेनने क्षुरप्र नामक बाणसे कर्णकी धनुषको काटकर गर्जना की, महारथी कर्णने उस धनुषको अलग फेंककर तुरन्त शत्रुके बलका नाश करनेवाला दूसरा वेगवान् दृढ़ धनुष हाथमें लिया, परन्तु उसको भी भीमने आधे निमेषमें काटडाला ॥ १७-१९ ॥ फिर कर्णके तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें, नवें, दशवें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें, सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें धनुषको भी भीमने काटडाला, इसप्रकार भीम कर्णके बहुतसे धनुषोंको काटरहा था और वह आधे निमेषमें ही दूसरा धनुष उठायेहुए दीखता था, तदनन्तर सिन्धु, सौवीरदेशी योधाओंको और वीर

स्वरथदेहांश्च गतासून् प्रेक्ष्य सर्वशः ॥२४॥ सूतपुत्रस्य संरम्भा-
द्दीप्तं वपुरजायत । स विस्फार्य महच्चापं कार्त्तस्वरविभूषितम् २५
भीमं प्रैक्षत राधेयो घोरं घोरेण चक्षुषा । ततः क्रुद्धः शरान-
स्यन् सूतपुत्रो व्यरोचत ॥ २६ ॥ मध्यन्दिनगतोऽर्चिष्मान् शर-
दीव दिवाकरः । मरीचिविकचस्येव राजन् भानुमतो वपुः ॥२७॥
आसीदाधिरथेर्घोरं वपुः शरशताचितम् । कराभ्यामाददानस्य
सन्दधानस्य चाशुगान् ॥ २८ ॥ कर्षतो मुञ्चतो वाणान्नान्तरं
ददृशे रणे । अग्निचक्रोपमं घोरं मण्डलीकृतमायुधम् ॥ २९ ॥
कर्णस्यासीन्महीपाल सव्यदक्षिणमस्यतः । स्वर्णपुंखाः सुनि-
शिताः कर्णचापच्युताः शराः ॥ ३० ॥ आच्छादयन्महाराज दिशः
सूर्यस्य च प्रभाः । ततः कनकपुंखानां शराणां नतपर्वणाम् ३१

कौरवोंकी वीरवाहिनीको नष्ट हुआ देखकर तथा गिरेहुए कवच, ध्वजा और शस्त्रोंसे पटीहुई भूमि और प्राणहीन होकर पड़ेहुए हाथी, घोड़े और पैदलोंके शरीरोंको देखकर ॥२०-२४॥ सूतपुत्र कर्णका शरीर क्रोधसे जलउठा तब तो राधा पुत्र कर्णने सुवर्णसे भूषित अपने बड़ेभारी धनुषको तानकर भयङ्कर रूपवाले भीमकी ओरको भयानक रीतिसे देखा, क्रोधमें भर वाणोंको छोडताहुआ सूतपुत्र कर्ण शरद् ऋतुमें मध्यान्हके किरणमाली सूर्यकी समान सुशोभित होरहा था, हे राजन्! किरणोंसे विकसित हुए सूर्यका शरीर जैसे शोभा पाता है तैसे ही सैंकडों वाणोंसे विंधाहुआ कर्णका भयङ्कर शरीर भी सुशोभित होरहा था, रणभूमिमें कर्ण दोनों हाथोंसे वाणोंको भाथोंमेंसे लेकर धनुष पर चढाता था, धनुषको खेंचता था और वाणोंको छोड़ता था कर्णको यह कोई भी नहीं देख पाता था कि—ये सब काम वह कब करता है ? दायें वायें वाणोंको छोडतेहुए कर्णका धनुष वरैंटीकी समान भयंकर रूपसे घूमता था, सुवर्णकी पूँछवाले, तीखे कर्णके धनुषसे छूटेहुए

धनुश्च्युतानां वियति ददृशे बहुधा व्रजः । बाणासनादाधिरथेः प्रभवन्ति स्म सायकाः ॥ ३२ ॥ श्रेणीकृता व्यरोचन्त राजन् क्रौञ्चा इवाम्बरे । गार्ध्रपत्राञ्छिलाधौतान् कार्त्तस्वरविभूषितान् ३३ महावेगान् प्रदीप्ताग्रान् मुमोचाधिरथिः शरान् । ते तु चापबलोद्धूताः शातकुम्भविभूषिताः ॥ ३४ ॥ अजस्रमपतन् बाणा भीमसेनरथं प्रति । ते व्योम्नि रुक्मविकृता व्यकाशन्त सहस्रशः ३५ शलभानामिव व्राताः शराः कर्णसमीरिताः । चापादाधिरथेर्बाणाः प्रपतन्तश्चकाशिरे ॥ ३६ ॥ एको दीर्घ इवात्यर्थमाकाशे संस्थितः शरः । पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ॥ ३७ ॥ कर्णः प्राच्छादयत् क्रुद्धो भीमं सायकवृष्टिभिः । तत्र भारत भीमस्य बलं वीर्यं पराक्रमम् । व्यवसायञ्च पुत्रास्ते ददृशुः सहसैनिकाः ॥३८॥

बाणोंने सूर्यकी प्रभा और दशों दिशाओंको ढकदिया, तदनन्तर धनुषसे छूटेहुए नमीहुई गाँठ और सुवर्णकी पूँछवाले बाणोंके गट्ठके गट्ठसे आकाशमें दिखाई देनेलगे, हे राजन् ! कर्णके धनुषसे छूटतेहुए पंक्तिबद्ध बाण आकाशमें उडतेहुए क्रौंच पक्षियोंकी पंक्तिकी समान सुशोभित होरहे थे, अधिरथका पुत्र कर्ण गीधके पर लगे, पत्थर पर घिसकर स्वच्छ किएगए, सोनेसे शोभित चमकदार नोंकवाले महावेगवान् बाणोंको छोडनेलगा, सुवर्णसे भूषित वे बाण धनुषके वेगसे अररर करतेहुए भीमसेनके रथपर बराबर पड़रहे थे, सुवर्णके बने कर्णके धनुषसे छूटेहुए वे सहस्रों बाण आकाशसे पृथिवीमें गिरतेहुए पटबीजनोंके दलोंकी समान शोभा देते थे॥ ३५-३६ ॥ उस समय बाणोंके निरन्तर छूटनेसे ऐसा प्रतीत होता था, कि-मानों एक बडा लम्बा बाण आकाशमें खडा है जैसे मेघ पर्वत पर जलधाराएँ बरसाता है, तैसे ही क्रोधमें भरे कर्णने भीमके ऊपर बाणधाराएँ बरसानी आरम्भ करदी हे भारत ! उस समय सेनासमेत तुम्हारे पुत्रोंने भीमके

तां समुद्रमिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् । अचिन्तयित्वा भीमस्तु
क्रुद्धः कर्णमुपाद्रवत् ॥ ३९ ॥ रुक्मपृष्ठं महच्चापं भीमस्यासीद्विशाम्पते ।
आकर्षान्मण्डलीभूतं शक्रचापमिवापरम् ॥४०॥ तस्माच्छराः
प्रादुरासन् पूरयन्त इवाम्बरम् ॥४१॥ सुवर्णपुंखैर्भीमेन
सायकैर्नतपर्वभिः । गगने रचिता माला काञ्चनीया व्यरोचत४२
ततो व्योम्नि विषक्तानि शरजालानि भागशः । आहतानि व्यशीर्यन्त
भीमसेनस्य पत्रिभिः ॥ ४३ ॥ कर्णस्य शरजालौघैर्भीमसेनस्य
चोभयोः । अग्निस्फुलिङ्गसंस्पर्शैरञ्जोगतिभिराहवे ॥४४॥
तैस्तैः कनकपुंखानां द्यौरासीत् संवृता व्रजैः । न स्म सूर्यस्तदा
भाति न स्म वाति समीरणः ॥ ४५ ॥ शरजालावृते व्योम्नि न
प्राज्ञायत किञ्चन । स भीमं छादयन् बाणैः सूतपुत्रः पृथग्विधैः॥४६

बल, वीर्य और उद्योगको देखा,॥ ३७-३८ ॥ समुद्रकी समान
उमड़ती हुई बाणवर्षाको उठीहुई देखकर भी भीमने उसको कुछ
न गिना और क्रोधमें भर कर्णके सामनेको बढ़ा चलागया॥३९॥
हे राजन् ! सुवर्णसे मढ़ा भीमका बड़ाभारी धनुष खेंचनेपर
इन्द्रधनुषकी समान लंबा होकर शोभा देनेलगा ॥ ४० ॥
भीमके खेंचने पर उस धनुषमेंसे सुवर्णकी पूँछ और नमीहुई
गाँठवाले बाण आकाशको भरते हुएसे निकलनेलगे, आकाशमें
उन बाणोंसे बनीहुई माला सुवर्णमालाकी समान शोभा देने
लगी ॥ ४१-४२ ॥ तदनन्तर आकाशमें फैलेहुए कर्णके छोड़े
बाण भीमके बाणोंसे कट२कर क्रमसे गिरनेलगे ॥४३॥ अग्निकी
चिनगारीकी समान स्पर्शवाले, शीघ्रगामी, सुवर्णकी पूँछवाले
कर्ण और भीमके छोड़ेहुए बाणोंसे आकाश भरगया, अतः उस
समय तहाँ न सूर्य दिखाई देता था, न वायु ही बहता था४४-४५
आकाशके बाणोंके समूहोंसे घिरजाने पर उस समय तहाँ कुछ
भी नहीं दिखाई देता था, परन्तु सूतपुत्र कर्ण महात्मा भीमके

उपारोहदनादृत्य तस्य वीर्यं महात्मनः । तयोर्विसृजतोस्तत्र शरजालानि
मारिष ॥ ४७ ॥ वायुभूतान्यदृश्यन्त संसक्तानीतरेतरम्।
अन्योन्यशरसंस्पर्शात्तयोर्मनुजसिंहयोः ॥ ४८ ॥ आकाशे भरतश्रेष्ठ
पावकः समजायत । तथा कर्णः शितान् वाणान् कर्मारपरिमार्जितान्
॥ ४९ ॥ सुवर्णविकृतान् क्रुद्धः प्राहिणोद्वधकांक्षया ।
तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ॥ ५० ॥ विशेषयन् सूतपुत्रं
भीमस्तिष्ठेति चाब्रवीत् । पुनश्चासृजदुग्राणि शरवर्षाणि
पाण्डवः ॥ ५१ ॥ अमर्षी बलवान् क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः ।
ततश्चटचटाशब्दो गोधाघातादभूत्तयोः ॥ ५२ ॥ तलशब्दश्च
सुमहान् सिंहनादश्च भैरवः । रथनेमिनिनादश्च ज्याशब्दश्चैव
दारुणः ॥ ५३ ॥ योधा व्युपारमन् युद्धाद्दिदृक्षन्तः पराक्रमम् ।

वीर्यका अनादर कर उसको वाणोंसे ढकता हुआ उसके पास पहुँचगया और फिर हे राजन् ! वाण छोडनेवाले भीम और कर्णके वाण आपसमें ऐसे वेगसे टकरानेलगे, कि-मानो आँधी चल रही हो, हे भरतसत्तम ! उन दोनों नरसिंहोंके वाणोंके आपसमें टकरानेसे आकाशमें अग्नि जलउठी, तदनन्तर कर्णने क्रोधमें भरकर कारीगरोंके माँजे हुए, तेज और सुवर्णके बने वाणोंको भीमको मारनेकी इच्छासे छोडा, भीमने कर्णके प्रत्येक वाणमें तीन २ वाण मारकर उनको काटडाला ॥ ४९-५० ॥ फिर पांडुनन्दन भीमने सूतपुत्रसे खडारह ! खड़ारह !! कहकर अपने आप उससे अधिक पराक्रम करके उसके ऊपर भयंकर वाणवर्षा आरम्भ करदी ॥५१॥ इस समय भीम आवेशमें आगया था और भस्म करना चाहनेवाले अग्निकी समान क्रोधमें भरगया था, इस समय उन दोनोंके हाथमें पहिरेहुए गोहके चमडेके मोजोंका चटाचट शब्द होरहा था ॥ ५२ ॥ इस समय हाथकी तालियोंका वडाभारी शब्द, भयङ्कर दहाड, रथोंके पहियोंकी

कर्णपाण्डवयो राजन् परस्परवधैषिणोः ॥ ५४ ॥ देवर्षिसिद्धगन्धर्वाः साधु साध्वित्यपूजयन् । मुमुचुः पुष्पवर्षञ्च विद्याधरगणास्तथा॥५५ ततो भीमो महाबाहुः संरम्भी दृढविक्रमः । अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शरैर्विव्याध सूतजम् ॥ ५६ ॥ कर्णोऽपि भीमसेनस्य निवार्येषून् महाबलः । प्राहिणोन्नव नाराचानाशीविषसमान् रणे॥५७॥ तावद्भिरथ तान् भीमो व्योम्नि चिच्छेद पत्रिभिः । नाराचान् सूतपुत्रस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ५८ ॥ ततो भीमो महाबाहुः शरं क्रुद्धाऽन्तकोपमम् । मुमोचाधिरथेर्वीरो यमदण्डमिवापरम् ॥५९॥ तमापतन्तञ्चिच्छेद राधेयः प्रहसन्निव । त्रिभिः शरैः शरं राजन् पाण्डवस्य प्रतापवान् ॥ ६० ॥ पुनश्चासृज-

---

घरघराहट और धनुषकी प्रत्यञ्चाओं का दारुण शब्द होरहा था, हे राजन् ! इस समय लडतेहुए योधा भी आपसमें एक दूसरेको मारडालना चाहतेहुए कर्ण और भीमके युद्धको देखने की इच्छासे, युद्ध करते २ रुकगए ॥ ५४ ॥ और उस समय देवता, ऋषि, सिद्ध तथा गन्धर्व साधु २ कहकर दोनोंको धन्यवाद देनेलगे तथा विद्याधर फूल बरसानेलगे ॥ ५५ ॥ तदनन्तर महाभुज दृढ पराक्रमी भीम क्रोधमें भरकर कर्णके अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे हटाकर कर्णको बाणोंसे बींधनेलगा ॥ ५६ ॥ महाबली कर्णनेभी भीमके बाणोंको बाणोंसे हटाकर,सर्पकी समान काटने वाले नौ बाण भीमकी ओरको छोड़े ॥ ५७ ॥ परन्तु भीमने कर्णके उन नौ बाणोंको आकाशमें ही काटडाला और कर्णसे कहनेलगा, कि—खड़ा तो रह ! खडा तो रह !! ॥ ५८॥ फिर क्रोधमें भरे यमराजकी समान महाबाहु भीमने दूसरे यमदण्डकी समान एक भयङ्कर बाण कर्णके मारा ॥ ५ ॥ परन्तु हे राजन्! प्रतापी राधापुत्र कर्णने हँसते २ तीन बाण मारकर उस आते हुए बाणके टुकड़े २ करदिये ॥ ६० ॥ तदनन्तर भीम

दुश्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः । तस्य तान्याददे कर्णः सर्वाण्यस्त्राण्यभीतवत्
॥ ६१ ॥ युध्यमानस्य भीमस्य सूतपुत्रोऽस्त्रमायया ।
तस्येषुधी धनुर्ज्याञ्च बाणैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६२ ॥ रश्मीन्
योक्त्राणि चाश्वानां क्रुद्धः कर्णोऽच्छिनन्मृधे । तस्याश्वांश्च पुनर्हत्वा
सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥ ६३ ॥ सोऽपसृत्य द्रुतं सूतो युधामन्यो
रथं ययौ । विहसन्निव भीमस्य क्रुद्धः कालानलद्युतिः ॥ ६४
ध्वजञ्चिच्छेद राधेयः पताकाञ्च न्यपातयत् । स विधन्वा महाबाहू
रथ शक्तिं परामृशत् ॥ ६५ ॥ तामवासृजदाविध्य क्रुद्धः कर्णरथं
प्रति । तामाधिरथिरायस्तः शक्तिं कनकभूषणाम् ॥ ६६ ॥
आपतन्तीं महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः । सापतद्दशधा
छिन्ना कर्णस्य निशितैः शरैः ॥ ६७ ॥ अस्यतः सूतपुत्रस्य

भयङ्कर बाण बरसानेलगा, परन्तु कर्ण निर्भय हो उन बाणवर्षाओंको झेलता रहा ॥ ६१ ॥ तदनन्तर कर्णने क्रोधमें भर अपनी अस्त्रमायासे, लड़तेहुए भीमके भाथे धनुषकी प्रत्यञ्चा, घोड़ोंकी रासें और जोतोंको नमीहुई गाँठवाले बाण मारकर काटडाला फिर भीमके घोडोंको मार उसके सारथिको पाँच बाण मारकर घायल करदिया ॥ ६२—६३ ॥ तब भीमका सारथी छलाँग मारकर युधामन्युके रथ पर चढगया, तदनन्तर प्रलय कालकी अग्निकी समान कान्तिवाले कर्णने क्रोधमें भर हँसते २ उसकी ध्वजा और पताकाको भी भूमिमें गिरादिया महाभुज भीम जब धनुषरहित होगया तब उसने शक्तिको उठा क्रोधमें भरकरके कर्ण रथ पर प्रहार किया कर्णने सावधान हो सुवर्णके आभूषणोंवाली आतीहुई उस शक्तिको दश बाण मारकर काट डाला मित्रके लिये विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले कर्णके तीक्ष्ण बाणोंसे वह शक्ति दश टुकड़े होकर गिरपड़ी तदनन्तर मरण हो अथवा जयहो इस इच्छासे कुन्तीपुत्र भीमने हाथमें ढाल तलवार

चित्रार्थे चित्रयोधिनः । स चर्मादत्त कौन्तेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ६८ ॥ खड्गञ्चान्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयस्य वा । तदस्य तरसा क्रुद्धो व्यधमच्चर्म सुप्रभम् ॥ ६९ ॥ शरैर्वहुभिरत्युग्रैः प्रहसन्निव भारत । स विचर्मा महाराज विरथः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ७० असिं प्रासृजदाविध्य त्वरन् कर्णरथं प्रति । स धनुः सूतपुत्रस्य सज्यं छित्वा महानसिः ॥ ७१ ॥ पपात भुवि राजेन्द्र क्रुद्धः सर्प इवाम्बरात् । ततः प्रहस्याधिरथिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥ ७२ ॥ शत्रुघ्नं समरे क्रुद्धो दृढज्यं वेगवत्तरम् । व्यायच्छत् स शरान् कर्णः कुन्तीपुत्रजिघांसया ॥ ७३ ॥ सहस्रशो महाराज रुक्मपुङ्खान् सुतेजनान् । स वध्यमानो वलवान् कर्णचापच्युतैः शरैः ॥ ७४ वैहायसम्प्राक्रमद्वै कर्णस्य व्यथयन्मनः । स तस्य चरितं दृष्ट्वा संग्रामे विजयैषिणः ॥ ७५ ॥ वलमास्थाय राधेयो भीमसेनमवञ्चयत् ।

लेली परंतु हे भरतवंशी राजन् ! क्रोधमें भरे कर्णने मुस्करा कर फुर्तीसे वहुतसे उग्र वाण छोड भीमकी कान्तिमयी गदाको नष्ट करडाला, तव हे महाराज! ढाल तथा रथहीन हुए भीमने फुरती के साथ तलवार घुमाकर कर्णके रथकी ओर फैंकी हे राजेन्द्र ! वह तलवार प्रत्यञ्चासहित कर्णके धनुषको काटकर क्रोधमें भरे सर्पकी समान भूमिमें गिरपडी, तदनन्तर कर्ण हँसा और उसने क्रोधमें भरकर शत्रुओंका नाशक दृढ प्रत्यञ्चावाला, वेगवान् दूसरा धनुष हाथमें ले भीमको मारनेकी इच्छासे उसके ऊपर वाण वरसाने आरम्भ करदिये ॥ ६४-७३ ॥ हे महाराज ! कर्णने इसप्रकार सुवर्णकी पूँछवाले अत्यन्त तेजस्वी सहस्रों वाण भीमके मारे, इतनेमें ही कर्णके धनुषसे छूटतेहुए वाणोंसे घायल हुआ भीमसेन, कर्णके मनको व्यथित करताहुआ आकाशमेंको उछला, राधाका पुत्र कर्ण संग्राममें विजय चाहनेवाले भीमके इस चरितको देख अपने अङ्गोंको सकोड़ भीमको धोखा देनेके लिये

तञ्च दृष्ट्वा रथोपस्थे निलीनं व्यथितेन्द्रियम् ७६ ध्वजमस्य समासाद्य तस्थौ भीमो महीतले। तदस्य कुरवः सर्वे चारणाश्चाभ्यपूजयन् ७७ यदियेष रथात् कर्णं हर्तुं तार्क्ष्य इवोरगम्। सञ्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ७८ स्वरथं पृष्ठतः कृत्वा युद्धायैव व्यवस्थितः। तद्विहत्यास्य राधेयस्तत एनं समभ्ययात् ॥ ७९ ॥ संरम्भात् पाण्डवं संख्ये युद्धाय समुपस्थितम्। तौ समेतौ महाराज स्पर्द्धमानौ महाबलौ ॥ ८० ॥ जीमूताविव घर्मान्ते गर्जमानौ नरर्षभौ। तयोरासीत् सम्प्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ॥ ८१ ॥ अमृष्यमाणयोः संख्ये देववदानवयोरिव। क्षीणशस्त्रस्तु कौन्तेयः कर्णेन समभिद्रुतः ॥ ८२ ॥ दृष्ट्वार्जुनहतान्नागान् पतितान् पर्वतोपमान्। रथ-

---

रथकी गहराईमें छिपकर बैठगया, घबराये हुए कर्णको रथकी गहराईमें छिपकर बैठा देख ॥ ७४-७६ ॥ भीम उसके रथकी ध्वजाको पकड पृथ्वीमें खडा होगया और गरुड जैसे सर्पको बिलमेंसे निकालना चाहता हो तैसे कर्णको रथकी गहराईमेंसे बाहरको खींचना चाहने लगा, तब चारण तथा कौरव उसके पराक्रमकी बहुत ही प्रशंसा करनेलगे, टूटेहुए धनुष और छिन्न भिन्न रथवाला भी भीम क्षत्रियधर्मको पूर्ण करनेके लिये अपने रथको कर्णके रथके पीछे डाल युद्ध करनेके लिये ही उद्यत रहा, राधाका पुत्र कर्ण भी अपने धावेको निरर्थक कर युद्ध करनेके लिए चढ़कर आतेहुए भीमको सामने खडा देखकर, क्रोधमें भर उससे भिडगया, हे महाराज ! तब महाबली नरश्रेष्ठ कर्ण और भीम परस्पर स्पर्धा करतेहुए इकट्ठे हो, वर्षा ऋतुके दो मेघोंकी समान गरजनेलगे, वे दोनों नरसिंह क्रोधमें भरेहुए असहनशील हो देवता और दानवोंकी समान युद्ध करनेलगे, परन्तु भीमके शस्त्र निबड चुके थे, इस अवसरसे लाभ उठा कर्णने भीमके ऊपर वेगसे धावा किया, तब तो वह विचारमें पडगया, कि–अब क्या

मार्गविघातार्थं व्यायुधः प्रविवेश ह ॥ ८३ ॥ हस्तिनां व्रजमासाद्य रथदुर्गं प्रविश्य च । पाण्डवो जीविताकाङ्क्षी राधेयं नाभ्यहारयत् ॥ ८४ ॥ व्यवस्थानमथाकाङ्क्षन् धनञ्जयशरैर्हतम् । उद्यम्य कुञ्जरं पार्थस्तस्थौ परपुरञ्जयः ॥ ८५ ॥ महौषधिसमायुक्तं हनूमानिव पर्वतम् । तमस्य विशिखैः कर्णो व्यधमत् कुञ्जरं पुनः ८६ हस्त्यङ्गान्यथ कर्णाय प्राहिणोत् पाण्डुनन्दनः । चक्राण्यश्वांस्तथा चान्यद्यद्यत् पश्यति भूतले ॥ ८७ ॥ तत्तदादाय चिक्षेप क्रुद्धः कर्णाय पाण्डवः । तदस्य सर्वञ्चिच्छेद क्षिप्तं क्षिप्तं शितैः शरैः ॥८८ भीमोऽपि मुष्टिमुद्यम्य वज्रगर्भां सुदारुणाम् । हन्तुमैच्छत् सूतपुत्रं

करना चाहिये ? इतनेमें ही उसको अर्जुनके मारेहुए हाथियोंकी लोथोंका ढेर दीखगया, तब उसने विचारा कि-हाथियोंके शवों के ऊपर कर्णका रथ नहीं चल सकेगा, अतः इनमें छिप जाऊँ तो ठीक होगा, ऐसा विचारकर शस्त्रहीन भीम कर्णके रथकी गतिको रोकनेके लिये मरेहुए हाथियोंके बीचमें घुसगया७७-८३ भीम अपने प्राणोंको बचानेके लिये कर्णके सामने प्रहार करना छोड जहाँ पर उसका रथ कठिनतासे पहुँचसके ऐसे हाथियोंकी लोथोंसे भरेहुए स्थानमें पहुँचगया ॥८४॥ तदनन्तर हनुमान्‌जीने औषधियोंसे भरपूर गन्धमादन पर्वतको जैसे उठालिया था; तैसे ही परन्तप भीम भी,अर्जुनके बाणोंसे मरे एक हाथीकी लोथको हाथमें उठा कर्णके सामने जा खडा होगया कर्णने बाण मार कर उस हाथीके टुकडे २ करडाले,फिर पाण्डुनन्दन भीम हाथी के अङ्गोंको फेंक २ कर कर्णके मारने लगा, फिर क्रोधमें भरे भीमको पृथ्वीमें पड़ेहुए पहिये, घोड़े आदि जो कुछ वस्तु दीखी उसको ही उठा कर्णके मारनेलगा, परन्तु भीम जो २ फेंकता जाता था कर्ण उस उस ही वस्तुके तीक्ष्ण बाणोंसे टुकड़े २ कर डालता था ॥ ८५-८८ ॥ तदनन्तर भीमने अगूँठेको अँगुलियों

संस्मरन्नर्जुनं क्षणात् ॥ ८९ ॥ शक्तोपि नावधीत् कर्णं समर्थः पाण्डुनन्दनः। रक्षमाणः प्रतिज्ञां तां या कृता सव्यसाचिना ९० तमेवं व्याकुलं भीमं भूयो भूयः शितैः शरैः। मूर्च्छयाभिपरीताङ्गमकरोत् सूतनन्दनः ॥ ९१ ॥ व्यायुधं नावधीच्चैनं कर्णः कुन्त्या वचः स्मरन्। धनुषोऽग्रेण तं कर्णः सोऽभिद्रुत्य परामृशत् ॥९२॥ धनुषा स्पृष्टमात्रेण क्रुद्धः सर्प इव श्वसन्। आच्छिद्य स धनुस्तस्य कर्णं मूर्द्ध्न्यताडयत् ॥ ९३ ॥ ताडितो भीमसेनेन क्रोधादारक्तलोचनः। विहसन्निव राधेयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥९४॥ पुनः पुनस्तूबरक मूढेत्यौदरिकेति च। अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥ ९५ ॥ यत्र भोज्यं बहुविधं भक्ष्यं पेयञ्च पांडव। तत्र त्वं दुर्मते योग्यो न युद्धेषु कदाचन ॥ ९६ ॥ मूलपुष्पफला-

---

के बीचमें कर बडी भयंकर मुट्ठी बाँध, कर्णको मारनेकी इच्छासे उसको ताना, परन्तु अकस्मात्, अर्जुनकी की हुई कर्णको मारनेकी प्रतिज्ञाका स्मरण आजानेसे स्वयं समर्थ होने पर भी रुक गया ॥ ८९ ॥ ९० ॥ व्याकुल होतेहुए भीमको कर्णने वारम्वार तीक्ष्ण बाण मारकर मूर्छित करदिया ॥ ९१ ॥ कर्णने उस समय कुन्तीकी बातको स्मरण कर आयुधरहित भीमको मारा नहीं; किन्तु उसके पास जाकर उसके शरीरमें धनुषकी तीक्ष्ण अनी भोंक दी ॥९२॥ धनुषके लगते ही भीमने, क्रोधसे फुङ्कारे भरतेहुए सर्पकी समान श्वास ले कर्णका धनुष छीन लिया, और उसके ही शिरमें मारा ॥ ९३ ॥ भीमके मारनेसे कर्णके नेत्र क्रोधसे लाल २ होगए और वह मुस्कुराकर भीमसेनसे कहनेलगा, कि-॥९४॥ अरे डाढी मूँछरहित हीजड़े! अरे मूढ! अरे अन्नभट्ट! अरे अस्त्रविद्याके अनजान! तू लडनेका उत्साह न कर, अरे छोकरे! अरे संग्रामकातर! अरे दुर्मते! जहाँ बहुत सा खाने पीनेका सामान हो तहाँ ही तेरा रहना उचित है!

हारो व्रतेषु नियमेषु च। उचितस्त्वं वने भीम न त्वं युद्धविशारदः ॥ ९७ ॥ क्व युद्धं क्व मुनित्वञ्च वनं गच्छ वृकोदर । न त्वं युद्धोचितस्तात वनवासरतिर्भवान् ॥ ९८ ॥ सूदान् भृत्यजनान् दासांस्त्वं गृहे त्वरयन् भृशम् । योग्यस्ताडयितुं क्रोधाद्भोजनार्थं वृकोदर ॥ ९९ ॥ मुनिर्भूत्वाथ वा भीम फलान्यादत्स्व दुर्मते । वनाय व्रज कौन्तेय न त्वं युद्धविशारदः ॥ १०० ॥ फलमूलाशने शक्तस्त्वं तथातिथिपूजने । न त्वां शस्त्रसमुद्योगे योग्यं मन्ये वृकोदर ॥१०१॥ कौमारे यानि वृत्तानि विप्रियाणि विशां पते । तानि सर्वाणि चाप्येनं रूक्षाण्यश्रावयद् भृशम् ॥ १०२ ॥ अथैनं तत्र संलीनमस्पृशद्धनुषा पुनः । प्रहसंश्च पुनर्वाक्यं भीममाह वृष-

परन्तु तू युद्धभूमिके योग्य नहीं है॥९६॥ओ भीम ! तू व्रत और नियम करनेमें चतुर है तथा फलमूल खासकता है और वनवास करनेमें भी चतुर है, परन्तु तू युद्ध करनेमें चतुर नहीं है ॥९७॥ अरे भीम ! कहाँ युद्ध ? और कहाँ मुनिवृत्ति ? हे तात ! तू युद्ध करनेके योग्य नहीं है और वनमें रहनेमें ही प्रसन्न रहता है अतः वनको ही भागजा ॥ ९८ ॥ हे वृकोदर ! तू घरमें उतावला२ घूमनेके कामका तथा रसोईदार और नौकरों चाकरोंको क्रोधमें भर भोजन लानेकी आज्ञा देनेके कामका और घरके कार्य करनेके ही कामका है, परन्तु तू युद्धके कामका नहीं है ९९ हे दुर्मते ! तू मुनिवेष धारण कर वनमें जा ! वनमें जा !! और फलोंको खा ! हे कुन्तीपुत्र ! तू वनमें ही जा, क्योंकि—तू युद्ध करनेमें चतुर नहीं है १०० तू तो फल मूल खानेमें और अतिथियोंकी पूजा करनेमें चतुर है, यह बात मैं मानता हूँ, परन्तु मैं तुझे युद्धके योग्य नहीं समझता ॥१०१॥ हे राजन् ! इसप्रकार भीमने जो कुमारावस्थामें दुःख भोगे थे वेसब रूखे वृत्तान्त कर्णने भीमको अच्छी तरह सुनाये ॥ १०२ ॥ तदनन्तर कर्णने अपने

स्तदा ॥ १०३ ॥ योद्धव्यं मारिषान्यत्र न योद्धव्यन्तु मादृशैः । मादृशैर्युध्यमानानामेतच्चान्यच्च विद्यते ॥ १०४ ॥ गच्छ वा यत्र तौ कृष्णौ तौ त्वां रक्षिष्यतो रणे । गृहं वा गच्छ कौन्तेय किन्ते युद्धेन वालक ॥ १०५ ॥ कर्णस्य वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽतिदारुणम् । उवाच कर्णं प्रहसन् सर्वेषां शृण्वतां वचः ॥ १०६ ॥ जितस्त्वमसकृद्दुष्ट कत्थसे किं वृथात्मना । जयाजयौ महेन्द्रस्य लोके दृष्टौ पुरातनैः ॥ १०७ ॥ मल्लयुद्धं मया सार्द्धं कुरु दुष्कुलसम्भव । महावलो महाभोगी कीचको निहतो यथा ॥ १०८ ॥ तथा त्वां घातयिष्यामि पश्यत्सु सर्वराजसु । भीमस्य मतमाज्ञाय कर्णो बुद्धिमताम्वरः ॥ १०९ ॥ विरराम रणादस्मात् पश्यतां सर्वधन्विनाम् । एवं तं विरथं कृत्वा कर्णो राजन् व्यकत्थयत्११०

अङ्गोंको छिपाकर वैठे हुए भीमके शरीरमें फिर धनुषकी नोक भोंक दी और फिर हँसकर भीमसे कहनेलगा कि- ॥ १०३ ॥ अरे ! तू मुझ सरीखोंसे युद्ध करनेके योग्य नहीं है अतः दूसरों से युद्ध कर, मुझ सराखे वीरसे लड़नेवालोंकी यह क्या ? इससे भी अधिक दुर्गति होती है ॥ १०४ ॥ तू जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हों तहाँ पहुँच जा, वे तेरी रक्षा करलेंगे अथवा हे वालक! तू घरको भाग जा, क्योंकि-वालकोंको युद्धसे क्या काम?१०५ कर्णके अतिदारुण वचनको सुन भीमसेन सवके सुनते हुए कर्णसे हँसकर वोला कि-॥१०६॥ अरे दुष्ट ! मैंने तुझे अनेकों वार हराया है, फिर तू व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर क्यों वकवाद कर रहा है, हार जीत तो इन्द्रकी भी होती है ऐसा प्राचीन मनुष्यों ने देखा है ॥१०७॥ अरे ओ ! जिसके माता पिताका पता नहीं है ऐसे कर्ण ! (तुझमें दम हो तो) तू मेरे साथ मल्लयुद्ध कर, अरे ! जैसे मैंने महावली और महाकामी कीचकको मारडाला था तैसे ही सव राजाओंके सामने तेरा भी मैं पलोथन निकालदूँगा

प्रमुखे वृष्णिसिंहस्य पार्थस्य च महात्मनः ततो राजन् शिलाधौतान् शरान् शाखामृगध्वजः ॥ १११ ॥ प्राहिणोत् सूतपुत्राय केशवेन प्रचोदितः।ततः पार्थभुजोत्सृष्टाः शराः कनकभूषणाः॥११२ गाण्डीवप्रभवाः कर्णं हंसाः क्रौञ्चमिवाविशन्। स भुजंगैरिवाविद्धैर्गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥ ११३ ॥ भीमसेनादपासेधत् सूतपुत्रं धनञ्जयः। स छिन्नधन्वा भीमेन धनञ्जयशराहतः ॥११४॥ कर्णो भीमदपायासीद्रथेन महता द्रुतम्। भीमोपि सात्यकेर्वाहं समारुह्य नरर्षभः ॥ ११५ ॥ अन्वयाद्भ्रातरं संख्ये पाण्डवं सव्यसाचिनम्। ततः कर्णं समुद्दिश्य त्वरमाणो धनञ्जयः॥११६ नाराचं क्रोधताम्राक्षः प्रैषीन्मृत्युमिवान्तकः। स गरुत्मानिवाकाशं प्रार्थयन् भुजगोत्तमम् ॥११७॥नाराचोऽभ्यपतत् कर्णं तूर्णं गाण्डीव-

---

भीमकी बातोंसे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ कर्ण भीमके आशयको समझ सब धनुषधारियोंके सामने युद्ध करनेसे हटगया, हे राजन्! भीमको रथहीन कर कर्ण वृष्णिसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुनके सामने भीमसे अपशब्द कहनेलगा, तब श्रीकृष्णके प्रेरणा करनेपर वानरध्वज अर्जुन शिलापर घिसकर श्वेत कियेहुए बाणोंको कर्णकी ओर फेंकने लगा तदनन्तर अर्जुनके हाथोंसे छूटेहुए, सुवर्णजडित बाण, हंस जैसे क्रौंच पर्वतमें प्रवेश करें तैसे, कर्णके शरीरमें घुसनेलगे गाण्डीव धनुषसे छूटे अपने शरीरमें सर्पकी समान लगते हुए बाणोंके प्रहारसे कर्ण भीमसेनके सामनेसे दूर हटगया, तब भीमसेनने उसके धनुषको काटडाला और अर्जुनने उसको बाणोंसे बींधडाला, तब कर्ण शीघ्रतासे रथको भगा भीमसेनके सामनेसे भागगया, तब नरश्रेष्ठ भीमसेन सात्यकिके रथपर चढ़ अपने भाई सव्यसाची पाण्डुपुत्र पुत्र अर्जुनके पास पहुँच गया, तदनन्तर क्रोधसे लाल २ नेत्रवाले अर्जुनने फुरतीके साथ कर्णको लक्ष्य कर, जैसे काल मृत्युको प्रेरे, तैसे एक

वक्त्रोदितः । तमन्तरिक्षे नाराचं द्रौणिश्चिच्छेद पत्रिणा ॥११८॥ धनञ्जयभयात् कर्णमुज्जिहीर्षुर्महारथः । ततो द्रौणिं चतुःषष्ट्या विव्याध कुपितोऽर्ज्जुनः ॥११९॥ शिलीमुखैर्महाराज मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत् । स तु मत्तगजाकीर्णमनीकं रथसंकुलम् ॥१२०॥ तूर्णमभ्याविशत् द्रौणिर्धनञ्जयशरार्दितः । ततः सुवर्णपृष्ठानां चापानां कूजतां रणे ॥१२१॥ शब्दं गाण्डीवघोषेण कौन्तेयोऽभ्यभवद्बली । धनञ्जयस्तथा यांतं पृष्ठतो द्रौणिमभ्ययात् ।१२२। नातिदीर्घमिवाध्वानं शरैः सन्त्रासयन् बलम् । विदार्य देहान्नाराचैर्नरवानरवाजिनाम् ।१२३। कङ्कबर्हिणवासोभिर्बलं व्यधमदर्ज्जुनः । तद्बलं भरतश्रेष्ठ सवाजिद्विपमानवम् ॥१२४॥ पाकशासनिरायत्तः पार्थः सन्निजघान ह ।१२५। ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

बाण कर्णके मारा, जैसे गरुड आकाशमें सर्पको पकडनेको दौड़े तैसे ही वह गाण्डीव धनुषसे छूटा हुआ बाण कर्णकी ओर दौडा, परन्तु इतनेमें ही महारथी अश्वत्थामाने कर्णको अर्जुनके भयसे बचानेके लिए, एक बाण मार, अर्जुनके बाणको आकाश में ही काट डाला, तब तो हे महाराज ! अर्जुन कोपमें भरगया और उसने अश्वत्थामाके साठ बाण मारे और उससे कहा, कि अरे अश्वत्थामा ! भागना मत क्षण भर खडा रह। परन्तु धनञ्जयके बाणोंसे पीडित हुआ अश्वत्थामा शीघ्रताके साथ रथोंसे भरी मतवाले हाथियोंकी सेनामें घुस गया, तदनन्तर बलवान् अर्जुनने सुवर्णजटित पीठवाले शब्द करतेहुए चापोंकी ध्वनि को गाण्डीवके घोषसे दबा दिया, अर्जुन जातेहुए अश्वत्थामाके पीछे, बाणोंसे सेनाको त्रस्त करताहुआ, कुछ दूर गया, फिर कङ्क और मोरोंके परोंवाले बाणोंसे हाथी, घोड़े और मनुष्योंके शरीरको विदीर्ण कर सेनाको नष्ट करने लगा, हे भरतश्रेष्ठ ! इसप्रकार इन्द्रके पुत्र अर्जुनने सावधान हो शत्रुकी हाथी घोड़े और मनुष्योंसे भरीहुई सेनाको नष्ट करदिया ॥ १०८-१२५॥

धृतराष्ट्र उवाच । अहन्यहनि मे दीप्तं यशः पतति सञ्जय । हता मे बहवो योधा मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ १ ॥ धनञ्जयः सुसंक्रुद्धः प्रविष्टो मामकं बलम् । रक्षितं द्रौणिकर्णाभ्याममप्रवेश्यं सुरैरपि ॥ २ ॥ ताभ्यामूर्जितवीर्याभ्यामाप्यायितपराक्रमः । सहितः कृष्णभीमाभ्यां शिनीनामृषभेण च ॥ ३ ॥ तदा प्रभृति मां शोको दहत्यग्निरिवाशयम् । ग्रस्तानिव प्रपश्यामि भूमिपालान् ससैन्धवान् ॥ ४ ॥ अप्रियं सुमहत् कृत्वा सिन्धुराजः किरीटिनः । चक्षुर्विषयमापन्नः कथं जीवितमाप्नुयात् ।५। अनुमानाच्च पश्यामि नास्ति सञ्जय सैन्धवः । युद्धन्तु तद्यथा वृत्तं तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः ॥ ६ ॥ यच्च विक्षोभ्य महतीं सेनामालोड्य चासकृत् । एकः प्रविष्टः संक्रुद्धो नलिनीमिव कुञ्जरः ॥७॥ तस्य मे वृष्णि-

---

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! मेरा झलझलाता हुआ यश दिन प्रतिदिन नष्ट होता जाता है, मेरे बहुतसे योधा भी रणमें मारे गए, अतः मैं समझता हूँ, कि-मेरा समय पलटा खा रहा है॥१॥ बड़े बली श्रीकृष्ण और भीमने जिसके पराक्रममें वृद्धिकी है वह अर्जुन(जबसे) मेरी अश्वत्थामा और कर्णसे रक्षित और जिसमें देवता भी प्रवेश न कर सके ऐसी सुदृढ सेनामें, क्रोधमें भर श्रीकृष्ण, सात्यकि और भीमको साथ ले घुसगया है ॥२-३॥ तबसे ही हे संजय ! शोक मेरे हृदयको अग्निकी समान जला रहा है, मैं सिंधुराजसहित सब राजाओंको कालसे ग्रसाहुआ सा देखता हूँ ॥ ४ ॥ जयद्रथ अर्जुनका बड़ाभारी अप्रिय काम कर उसके सामने पड़ने पर जीता कैसे रह सकता है ? ॥ ५ ॥ मैं जहाँ तक अनुमान करता हूँ, सिंधुराजको मराहुआ ही देखता हूँ, अतः तू जिसप्रकार युद्ध होरहा हो उसको ठीक रीतिसे सुना ॥ ६ ॥ जैसे क्रुद्ध हुआ हस्ती तलैयामें घुस उसको हिलोड़ डाले, तैसे ही जो अर्जुनकी सुध लानेके लिए बड़ीभारी सेनाको

वीरस्य ब्रूहि युद्धं यथातथम् । धनञ्जयार्थे यत्तस्य कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ८ ॥ सञ्जय उवाच । तथा तु वैकर्त्तनपीडितं तं भीमं प्रयान्तं पुरुषप्रवीरम् । समीक्ष्य राजन्नरवीरमध्ये शिनिप्रवीरोऽनुययौ रथेन ॥ ९ ॥ नदन् यथा वज्रधरस्तपान्ते ज्वलन् यथा जलदान्ते च सूर्यः । निघ्नन्नमित्रान् धनुषा दृढेन सङ्कम्पयंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ १० ॥ तं यान्तमश्वैरजतप्रकाशैरायोधने वीरतरं नदन्तम् । नाशक्नुवन् वारयितुं त्वदीया सर्वे तथा भारत माधवाग्र्यम् ॥ ११ ॥ अमर्षपूर्णस्त्वनिवृत्तयोधी शरासनी काञ्चनवर्मधारी । अलम्बुषः सात्यकिं माधवाग्र्यमवारयद्राजवरोऽभिपत्य ॥ १२ ॥ तयोरभूद्भारत सम्प्रहारो यथाविधो नैव बभूव कश्चित् । प्रैक्षन्त एवाहवशोभिनौ तौ योधास्त्वदीयाश्च परे च

अकेला ही हिलोड कर उसमें घुस गया था, उस वृष्णिवीर सात्यकिके किए हुए युद्धको तू मुझसे पूर्णरीतिसे वर्णन कर क्योंकि–हे संजय ! तू कथा कहनेमें कुशल है ॥ ७-८ ॥ संजयने कहा, कि–हे राजन् ! जब कर्णके बाणोंसे पीडित हुआ पुरुषोंमें वीर भीम जानेलगा यह देखकर शिनिप्रवीर सात्यकि भी उसके पीछे वर्षाऋतुमें गरजते हुए मेघोंकी समान गरजता हुआ और शरद्ऋतुमें सूर्यकी समान प्रदीप्त हो तुम्हारे पुत्रोंकी सेना और शत्रुओंको मारता तथा कँपाता हुआ नरवीरोंके बीचमें हो जाने लगा ॥ ९–१० ॥ हे भारत ! धौले घोडोंसे जुते रथमें बैठ गर्ज गर्ज २ कर सेनामें आगे बढते हुए माधवाग्र्य वीरवर सात्यकिको तुम्हारे सब महारथी भी न हटासके ॥ ११ ॥ उस समय असहनशीलतामें भरा डटकर लडनेवाला, भाथे वाला और सुवर्णके कवचको धारण करनेवाला राजाओंमें श्रेष्ठ अलम्बुष झपट कर सात्यकिके सामने आ उसे आगे बढनेसे रोकनेलगा १२ हे भरतवंशी राजन् ! उन दोनोंका ऐसा युद्ध हुआ कि–जैसा

सर्वे ॥१३॥ आविध्यदेनं दशभिः पृषत्कैरलम्बुषो राजवरः प्रसह्य ।
अनागतानेव तु तान् पृषत्कांश्चिच्छेद वाणैः शिनिपुङ्गवोऽपि ॥१४॥
पुनः स वाणैस्त्रिभिरग्निकल्पैराकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः । विव्याध
देहावरणं विदार्य ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥१५॥ तैः काय-
मस्याग्न्यनिलप्रभावैर्विदार्य वाणैर्निशितैर्ज्वलद्भिः । आजघ्निवां-
स्तान् रजतप्रकाशानश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः प्रसह्य ॥ १६ ॥
तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी नप्ता शिनेश्चक्रधरप्रभावः ।
अलम्बुषस्योत्तमवेगवद्भिरश्वांश्चतुर्भिर्निजघान वाणैः ॥ १७ ॥
अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य भल्लेन कालानलसन्निभेन ।
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं भ्राजिष्णु वक्त्रं विचकर्त्त देहात् ॥१८॥

कोई भी युद्ध नहीं हुआ था, तुम्हारे सव योधा और शत्रुभी उन युद्धमें शोभा पाने वाले सात्यकि और अलम्बुषके युद्धको देखनेलगे ॥ १३ ॥ राजाओंमें श्रेष्ठ अलम्बुषने वल लगा कर दश वाण सात्यकिकी ओर छोड़े, परन्तु सात्यकिने वाण मार कर वीच ही में उन वाणोंको काटडाला ॥१४॥ तदनन्तर उसने कानों तक धनुषको खैंच अग्निकेसे तीक्ष्ण स्पर्शवाले पूँछदार तीन वाण सात्यकिके मारे, वे वाण सात्यकिके कवचको भेद उसके शरीरमें घुस गए ॥ १५ ॥ इसप्रकार अग्नि और वायुकी समान वाणोंसे उसके प्रभाववाले शरीरको विदीर्ण कर अलम्बुषने दूसरे तीक्ष्ण और चमकते हुए चार वाणोंको वेगसे छोड सात्यकिके चान्दीका समान प्रकाशवाले चारों घोड़ोंको घायल करडाला ॥ १६ ॥ जव इसप्रकार अलम्बुषने वाणका प्रहार किया तव श्रीकृष्णके समान प्रभाव वाले, शिनिके पौत्र, फुर्तीले सात्यकिने वड़े वेगवाले वाण मारकर अलम्बुषके चारों घोड़ोंको मारडाला ॥ १७ ॥ तदनन्तर सात्यकिने प्रलयकालकी अग्निकी समान भालेसे अलम्बुषके सारथिके मस्तकको काट

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं संख्ये यदूनामृषभः प्रमाथी । ततोऽन्वयादर्जुनमेव वीरः सैन्यानि राजंस्तव सन्निवार्य ॥ १९ ॥ अन्वागतं वृष्णिवीरं समीक्ष्य तथारिमध्ये परिवर्त्तमानम् । घ्नन्तं कुरूणामिषुभिर्बलानि पुनः पुनर्वायुरिवाभ्रपूगान् ॥२०॥ ततोऽवहन् सैन्धवाः साधुदान्ता गोक्षीरकुन्देन्दुहिमप्रकाशाः । सुवर्णजालावतताः सदश्वा यतो यतः कामयते नृसिंहः ॥ २१ ॥ अथात्मजास्ते सहिताभिपेतुरन्ये च योधास्त्वरितास्त्वदीयाः । कृत्वा मुखं भारतयोधमुख्यं दुःशासनं त्वत्सुतमाजमीढ ॥ २२ ॥ ते सर्वतः सम्परिवार्य संख्ये शैनेयमाजघ्नुरनीकसाहाः । स चापि तान् प्रवरः सात्वतानां न्यवारयद्बाणजालेन वीरः ॥२३॥ निवार्य

अलम्बुषके कुण्डलवाले, पूर्ण चन्द्रमाकी समान प्रकाशवाले मस्तकको शरीरसे पृथक् करदिया ॥ १८ ॥ यदुओंमें श्रेष्ठ शत्रु सेनाओंको मथ डालनेवाला सात्यकि युद्धमें राजाके पुत्रके पौत्र को मार हे राजन् ! तुम्हारी सेनाओंको हटाता हुआ अर्जुनके पास जानेलगा ॥ १९ ॥ भली प्रकार चतुर किए गए गौके दुग्ध और कुन्दके फूल, चन्द्रमा और हिमकी समान श्वेत वर्णके, सुनहरा झूलसे ढके और सिंधुदेशमें उत्पन्न हुए घोड़े, नरसिंह सात्यकि जहाँ २ जाना चाहता था, तहाँ २ उसको ले जाते थे, वायु जैसे मेघमण्डलोंको वारम्वार बिखेर डालता है तैसे ही सात्यकि भी कौरवोंकी सेनाका संहार करता हुआ, शत्रुसेनाके मध्यभागमें हो अर्जुनके पास चला जा रहा था२०-२१ इतने में ही हे अजमीढवंशी धृतराष्ट्र ! तुम्हारे पुत्र और बहुतसे योधा भारतीय योधाओंमें मुख्य दुःशासनको मुखिया बना कर शीघ्रताके साथ सात्यकि पर टूट पड़े ॥ २२ ॥ शत्रुकी सेनाके साथ टक्कर झेलनेवाले वे योधा युद्धमें सात्यकिको घेर उस पर चारों ओरसे प्रहार करनेलगे और सात्वतवंशियोंमें श्रेष्ठ वीर

तांस्तूर्णममित्रघाती नप्ता शिनेः पत्रिभिरग्निकल्पैः । दुःशासनस्याभिजघान वाहानुद्यम्य वाणासनमाजमीढ ॥२४॥ ततोऽर्जुनो हर्षमवाप संख्ये कृष्णश्च दृष्ट्वा पुरुषप्रवीरम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषवधे
चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४०॥

सञ्जय उवाच । तमुद्यतं महाबाहुं दुशासनरथं प्रति । त्वरितं त्वरणीयेषु धनञ्जयजयैषिणम् ॥ १ ॥ त्रिगर्त्तानां महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः । सेनासमुद्रमाविष्टमनन्तं पर्यवारयन् ॥ २ ॥ अथैनं रथवंशेन सर्वतः सन्निवार्य ते । अवाकिरञ्छरव्रातैः क्रुद्धाः परमधन्विनः ॥ ३ ॥ अजयद्राजपुत्रांस्तान् भ्राजमानान्महारणे । एकः पञ्चाशतं शत्रून् सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४ ॥ सम्प्राप्य

सात्यकि भी वहुतसे वाण मार उनको अपने पास आनेसे रोकनेलगा ॥ २३ ॥ शिनिके पौत्र, शत्रुनाशी सात्यकिने अग्नि की समान स्पर्शवाले वाणोंसे उन सवोंको रोके रख कर फुर्ती से धनुष खेंच दुःशासनके घोड़ोंके वाण मारे ॥ २४ ॥ उस समय श्रीकृष्ण रणमें पराक्रम करते हुए सात्यकिको देख बड़े प्रसन्न होरहे थे ॥ २५ ॥ एकसौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! शीघ्र करने योग्य कामोंमें शीघ्रता करनेवाला तथा अर्जुनकी जीत चाहनेवाला महाभुज सात्यकि, दुःशासनके रथकी ओर जानेके लिये, कौरवसेनारूप अगाधसागरमें जैसे घुसा, कि–सुनहरी ध्वजावाले महाधनुर्धर त्रिगर्त उसके ऊपर दौड़े ॥ १ ॥ २ ॥ क्रोधमें भरे महाधनुर्धर त्रिगर्त सात्यकिको चारों ओरसे घेर उस पर चारों ओरसे वाण वरसाने लगे ॥ ३ ॥ सत्यपराक्रमी सात्यकिने विना नौकाके समुद्रमें प्रवेश करनेवाले मनुष्यकी समान तलवार, शक्ति और गदाओंसे भरपूर तथा हाथकी तालियोंसे गूँजती हुई भारती-

भारतीमध्यं तलघोषसमाकुलम् । असिशक्तिगदापूर्णमप्लवं सलिलं यथा ॥५॥ तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं रणे । प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्राच्यां पश्यामि लाघवात् ॥६॥ उदीचीं दक्षिणां प्राचीं प्रतीचीं विदिशस्तथा । नृत्यन्निवाचरच्छूरो यथा रथशतं तथा ७ तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सिंहविक्रान्तगामिनः । त्रिगर्त्ताः सन्न्यवर्त्तन्त सन्तप्ताः स्वजनं प्रति ॥ ८ ॥ तमन्ये शूरसेनानां शूराः संख्ये न्यवारयन् । नियच्छन्तः शरव्रातैर्मत्तं द्विपमिवांकुशैः ॥ ९ ॥ तैर्व्यवहरदार्यात्मा मुहूर्त्तादेव सात्यकि । ततः कलिंगैर्युयुधे सोऽचिन्त्यबलविक्रमः ॥ १० ॥ तां च सेनामतिक्रम्य कलिङ्गानां दुरत्ययाम् । अथ पार्थं महाबाहुर्धनञ्जयमुपासदत् ॥ ११ ॥ तरन्निव

सेनाके मध्यमें बिना सहायकके प्रवेश कर महारणमें प्रकाशित होतेहुए पञ्चास राजपुत्रोंको अकेले ही जीतलिया ॥ ४ ॥ ५ ॥ उस समय हमने सात्यकिके अद्भुत पराक्रमको देखा, फुर्तीसे फिरनेके कारण वह पूर्वदिशा में दिखाई देता था और क्षण भरमें ही पश्चिमदिशामें दिखाई देने लगता था ॥ ६ ॥ शूरवीर सात्यकि नाचता हुआ सा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा दिशाओंके कोनोंमें सौ रथियोंकी समान घूमता हुआ दीखता था ॥ ७ ॥ त्रिगर्त राजे, सिंहकी समान पराक्रम कर रणमें घूमतेहुए सात्यकिके पराक्रमको देखकर मनमें सन्तप्त हो अपने योधाओंकी सेनामें मिलगए ॥ ८ ॥ शूरसेनके योधा हाथीको जैसे अंकुश मारकर रोका जाय, तैसे बाणोंसे मदमत्त सात्यकिको आगे बढनेसे रोकने लगे ॥ ९ ॥ श्रेष्ठ आत्मावाला सात्यकि क्षण भरको उस समय खिन्न होगया, फिर उनको हराकर अचिन्त्य पराक्रमवाला सात्यकि कलिङ्गोंसे युद्ध करनेलगा ॥ १० ॥ महाभुज सात्यकि कलिङ्गोंकी भी उस कठिनतासे लाँघने योग्य सेनाको लाँघकर अर्जुनके समीपमें पहुँचगया ॥ ११ ॥ जलमें तैरते २ थका हुआ

जले श्रान्तो यथा स्थलमुपेयिवान् । तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं युयुधानः समाश्वसत् ॥ १२ ॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य केशवः पार्थमब्रवीत् । असावायाति शैनेयस्तव पार्थ पदानुगः ॥ १३ ॥ एष शिष्यः सखा चैव तव सत्यपराक्रमः । सर्वान् योधांस्तृणीकृत्य विजिग्ये पुरुषर्षभः ॥ १४ ॥ एष कौरवयोधानां कृत्वा घोरमुपाद्रवम् । तव प्राणैः प्रियतमः किरीटिन्नेति सात्यकिः ॥ १५ ॥ एष द्रोणं तथा भोजं कृतवर्माणमेव च । कदर्थीकृत्य विशिखैः फाल्गुनाभ्येति सात्यकिः ॥ १६ ॥ धर्मराजप्रियान्वेषी हत्वा योधान् वरान् वरान् । शूरश्चैव कृतास्त्रश्च फाल्गुनाभ्येति सात्यकिः १७ कृत्वा सुदुष्करं कर्म सैन्यमध्ये महाबलः । तव दर्शनमन्विच्छन् पाण्डवाभ्येति सात्यकिः ॥ १८ ॥ बहूनेकरथेनाजौ योधयित्वा

पुरुष जैसे स्थलमें पहुँचकर दम लेता है तैसेही सात्यकि भी नरव्याघ्र अर्जुनका दर्शन कर परिश्रमरहित हो शान्ति पानेलगा ॥१२॥ जब श्रीकृष्णने (दूरसे) सात्यकिको आते देखा, तब वे अर्जुन से कहनेलगे कि–हे अर्जुन ! तुम्हारे पीछे चलनेवाला सात्यकि वह आरहा है ॥ १३ ॥ यह सत्यपराक्रमी तुम्हारा शिष्य और मित्र है, इस पुरुषर्षभने (तुम्हारे देखनेकी लालसासे) सब योधाओं को तिनकेके समान मान उनका पराजय किया है ॥ १४ ॥ हे अर्जुन! तुम्हें प्राणोंकी समान प्यारा सात्यकि कौरवयोधाओं को भयङ्कर दुःख देकर हमारे पास आरहा है, हे किरीटिन् ! यह सात्यकि बाणोंके प्रहारसे द्रोण, भोज और कृतवर्माका अपमान कर हमारे पास आरहा है ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे फाल्गुन ! धर्मराजके हितकर कार्योंकी खोज करते रहनेवाला, शूरवीर और अस्त्रविद्यामें चतुर सात्यकि श्रेष्ठ २ योधाओंको मार हमारे पास आरहा है ॥१७॥ हे पाण्डव! महाबली सात्यकि तुझे देखने की इच्छासे सेनामें महाकठिन पराक्रम कर तुम्हारे पास आरहा

महारथान् । आचार्यप्रमुखान् पार्थ आयात्येष स सात्यकिः १९ स्वबाहुबलमाश्रित्य विदार्य च वरूथिनीम् । प्रेषितो धर्मपुत्रेण पार्थैषोभ्येति सात्यकिः॥२०॥ यस्य नास्ति समो योधः कौरवेषु कथञ्चन । सोऽयमायाति कौन्तेय सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ २१ ॥ कुरुसैन्याद्विमुक्तो वै सिंहो मध्याद्गवामिव । निहत्य बहुलाः सेनाः पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः ॥ २२ ॥ एष राजसहस्राणां वक्त्रैः पंकजसन्निभैः । आस्तीर्य वसुधां पार्थ क्षिप्रमायाति सात्यकिः ॥ २३ ॥ एष दुर्योधनं जित्वा भ्रातृभिः सहितं रणे । निहत्य जलसन्धञ्च क्षिप्रमायाति सात्यकिः ॥ २४ ॥ रुधिरौघवतीं कृत्वा नदीं शोणितकर्द्दमाम् । तृणवन्न्यस्य कौरव्यानेष ह्यायाति सात्यकिः॥ २५ ॥ ततोऽप्रहृष्टः कौन्तेयः केशवं वाक्य-

---

है ॥ १८ ॥ हे पार्थ ! यह सात्यकि रथमें अकेला ही वह युद्धमें द्रोण आदि बहुतसे वीरोंसे लड़ हमारे पास आरहा है ॥१९॥ हे पार्थ ! धर्मराजका तुम्हारी सुध लेनेको भेजा हुआ सात्यकि अपने भुजबलसे कौरव सेनाको विदीर्ण कर तुम्हारे पास आ रहा है॥ २० ॥ जिसकी जोडका कौरवोंमें कोई भी योधा नहीं है वह युद्धदुर्मद सात्यकि हमारे पास आरहा है ॥२१॥ हे पार्थ ! यह सात्यकि—जैसे सिंह बहुतसे बैलोंका संहार कर उनमें से छूटता है तैसे ही कौरवोंकी बहुतसी सेनाओंका संहार कर उनसे छूट कर हमारे पास आरहा है ॥ २२ ॥ सात्यकि सहस्रों राजकुमारोंके कमलोंकी समान मुखोंसे पृथ्वीको पाटता हुआ शीघ्रतासे हमारे पास आरहा है ॥ २३ ॥ यह सात्यकि भाइयों सहित दुर्योधनको जीत और जलसन्धको मार शीघ्रतासे हमारे समीप झपटा चला आरहा है ॥ २४ ॥ यह सात्यकि मांसकी कीचड़ और रुधिरके प्रवाह वाली नदीको बहा उसमें कौरवोंको तिनकेकी समान फेंक झपाटेसे हमारे

मब्रवीत् । न मे प्रियं महावाहो यन्मामभ्येति सात्यकिः ॥ २६ ॥
न हि जानामि वृत्तान्तं धर्मराजस्य केशव । सात्वतेन विहीनः स
यदि जीवति वा न वा ॥ २७ ॥ एतेन हि महावाहो रक्षितव्यः
स पार्थिवः । तमेष कथमुत्सृज्य मम कृष्ण पदानुगः ॥ २८ ॥
राजा द्रोणाय चोत्सृष्टः सैन्धवश्चानिपातितः । प्रत्युद्याति च
शैनेयमेष भूरिश्रवा रणे ॥ २९ ॥ सोऽयं गुरुतरो भारः सैन्ध-
वार्थे समाहितः । ज्ञातव्यश्च हि मे राजा रक्षितव्यश्च सात्यकिः३०
जयद्रथश्च हन्तव्यो लम्बते च दिवाकरः । श्रान्तश्चैव महावाहु-
रल्पप्राणश्च साम्प्रतम् ॥ ३१ ॥ परिश्रान्ता हयाश्चास्य हययन्ता
च माधव । न च भूरिश्रवाः श्रान्तः ससहायश्च केशव ॥ ३२ ॥

पास चला आरहा है ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णजीकी ऐसी बातें सुन
अर्जुन अप्रसन्न मुखसे श्रीकृष्णसे कहनेलगा कि–हे महावाहो !
सात्यकिका अपने पास आना मुझे अच्छा नहीं लगता ॥२६॥
हे केशव!क्योंकि–सात्यकिके चले आनेपर धर्मराज युधिष्ठिर जीवित
भी होंगे या नहीं ? यह भी मुझे निश्चय नहीं ॥२७॥ हे कृष्ण !
हे महाभुज ! इसको सदा (मेरी आज्ञानुसार) धर्मराजकी रक्षा
करते रहना चाहिये था, फिर यह उनको छोड मेरे पीछे कैसे
चला आया ॥ २८ ॥ धर्मराज अब द्रोणके सामने अकेले हैं
और जयद्रथ भी अभी नहीं मारागया है,इतनेमें ही यह भूरिश्रवा
सात्यकिके ऊपर लड़नेके लिये चढ़ा आरहा है ॥ २९ ॥ मैंने
सिंधुराजके मारनेकी प्रतिज्ञाका वडाभारी काम अपने शिर पर ले
लिया है(उसे पूरा करना है)तथा युधिष्ठिरकी कुशल भी मँगानी
चाहिये और सात्यकिकी भी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३० ॥
हे माधव ! मुझे जयद्रथको अवश्य मारना चाहिये और इधर
यह महाभुज सात्यकि थकगया है, इसमें अब थोडासा ही बल
बाकी रहा है, इसके घोडे और सारथी भी थक गए हैं, परन्तु

अपीदानीं भवेदस्य क्षेममस्मिन् समागमे । कच्चिन्न सागरं तीर्त्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ३३ ॥ गोष्पदं प्राप्य सीदेत महौजाः शिनिपुङ्गवः । अपि कौरव्यमुख्येन कृतास्त्रेण महात्मना ॥ ३४॥ समेत्य भूरिश्रवसा स्वस्तिमान् सात्यकिर्भवेत् । व्यतिक्रममिमं मन्ये धर्मराजस्य केशव ॥ ३५ ॥ आचार्याद्भयमुत्सृज्य यः प्रेषयत सात्यकिम् । ग्रहणं धर्मराजस्य खगः श्येन इवामिषम् ।३६। नित्यमाशंसते द्रोणः कच्चित् स्यात् कुशली नृपः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यक्यर्जुनदर्शने
एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

सञ्जय उवाच । तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सात्वतं युद्धदुर्मदम् । क्रोधाद् भूरिश्रवा राजन् सहसा समुपाद्रवत् ॥ १ ॥ तमब्रवीन्महाराज कौरव्यः शिनिपुङ्गवम् । अद्य प्राप्तोऽसि दिष्ट्या मे चक्षुर्वि-

---

भूरिश्रवा अभी थका नहीं है और उसके पास सहायक भी हैं॥३१-३२॥ क्या सात्यकि इस युद्धमें सकुशल रहेगा ? शिनिपुङ्गव महाबली सत्यपराक्रमी सात्यकि समुद्रको तर क्या गोखुरमें डूबेगा तो नहीं ? अस्त्रकुशल कुरुवंशी महात्मा भूरिश्रवासे लड़ने पर सात्यकिका कल्याण हो ! हे केशव ! धर्मराजने द्रोणके भयकी परवाह न कर सात्यकिको (मेरे पास) भेजदिया, इसमें मैं उनकी भूल समझता हूँ जैसे बाज सदा ही मांस चाहता है तैसे ही द्रोण धर्मराजको कैद करनेकी सदा इच्छा रखते हैं अतः धर्मराज क्या सकुशल होंगे ? यह मुझे चिन्ता होरही है ॥ ३३-३७ ॥ एकसौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४१ ॥

संजयने कहा कि-हे राजन् ! युद्धदुर्मद सात्यकिको चढ़कर आते देख भूरिश्रवा क्रोधमें भर उसके ऊपर चढ़गया ॥ १ ॥ हे महाराज ! कुरुवंशी भूरिश्रवा उस समय सात्यकिसे कहने

षयमित्युत ॥ २ ॥ चिराभिलषितं काममहं प्राप्स्यामि संयुगे । न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ३ ॥ अद्य त्वां समरे हत्वा नित्यं शूराभिमानिनम् । नन्दयिष्यामि दाशार्ह कुरुराजं सुयोधनम् ॥ ४ ॥ अद्य मद्बाणनिर्दग्धपतितं धरणीतले । द्रक्ष्यतस्त्वां रणे वीरौ सहितौ केशवार्जुनौ ॥ ५ ॥ अद्य धर्मसुतो राजा श्रुत्वा त्वां निहतं मया । सव्रीडो भविता सद्यो येनासीह प्रवेशितः ॥६॥ अद्य मे विक्रमं पार्थो विज्ञास्यति धनञ्जयः । त्वयि भूमौ विनिहते शयाने रुधिरोक्षिते ॥ ७ ॥ चिराभिलषितो ह्येष त्वया सह समागमः । पुरा देवासुरे युद्धे शक्रस्य वलिना यथा ॥ ८ ॥ अद्य युद्धं महाघोरं तव दास्यामि सात्वत । ततो ज्ञास्यसि तत्त्वेन मद्वीर्यवलपौरुषम् ॥ ९ ॥ अद्य संयमनीं याता मया त्वं निहतो रणे । यथा रामानुजेनाजौ रावणिर्लक्ष्मणेन ह१०

लगा कि–ओः! आज भाग्यसे ही तुम मेरे सामने पडगए हो २ अब मेरी बहुत समयकी चाही हुई इच्छा पूरी होगी यदि तू रणभूमिको छोड कर नहीं भागेगा तो आज मैं तुझे जीवित नहीं छोड़ूँगा ॥ ३ ॥ हे दाशार्ह ! शूरताका अभिमान करनेवाले तुझको मार कर मैं आज दुर्योधनको आनन्दित करूँगा ४ आज वीरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन तुझे मेरी बाणाग्निसे जल कर पृथ्वीमें पड़ा हुआ देखेंगे ॥५॥ आज ! धर्मराज युधिष्ठिर कि–जिसने तुझे सेनामें घुसेड दिया है वह, तुझे मरा देख लज्जित होजावेगा ॥६॥ जब तू मारा जा, लोहूलुहान हो भूमिपर पड़ेगा, तब अर्जुन मेरे विक्रमको जानेगा ॥ ७॥ पहिले देवासुर युद्धमें इन्द्र जैसे बलिके साथ युद्ध करनेके लिए उत्सुक था तैसे ही मैं तेरे साथ युद्ध करनेको वहुत दिनोंसे उत्सुक हूँ ॥ ८ ॥ हे सात्वत ! मैं आज तुझसे घोर युद्ध करनेके लिए कहता हूँ युद्ध होनेपर तू मेरे बल, और पराक्रमको ठीक रीतिसे जानेगा ९

अद्य कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजश्च माधव । हते त्वयि निरुत्साहा रणं त्यक्ष्यन्त्यसंशयम्॥११॥ अद्य तेऽपचितिं कृत्वा शितैः माधव सायकैः।तत्स्त्रियो नन्दयिष्यामि येत्वया निहता रणे१२मच्चक्षुर्विषयं प्राप्तो न त्वं माधव मोक्ष्यसे । सिंहस्य विषये प्राप्तो यथा क्षुद्रमृगस्तथा ॥ १३ ॥ युयुधानस्तु तं राजन् प्रत्युवाच हसन्निव । कौरवेय न सन्त्रासो विद्यते मम संयुगे ॥ १४ ॥ नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण तु केवलम् । स मां निहन्यात् संग्रामे यो मां कुर्यान्निरायुधम् ॥ १५ ॥ समास्तु शाश्वतीर्हन्याद्यो मां हन्याद्धि संयुगे । किं वृथोक्तेन बहुना कर्मणा तत् समाचर ॥१६॥ शारदस्येव मेघस्य गर्जितं निष्फलं हि ते । श्रुत्वा त्वद्गर्जितं वीर

जैसे रामचन्द्रके छोटे भाई लक्ष्मणने मेघनादको यमपुरमें भेज दिया था, तैसे ही आज मैं तुझे मारकर यमलोकमें भेज दूँगा १० हे माधव ! आज तेरे मारे जाने पर श्रीकृष्ण, धर्मराज और अर्जुन निरुत्साह हो युद्धको छोड़कर चले जावेंगे ॥ ११ ॥ हे माधव ! आज मैं बाणोंसे भलीप्रकार तेरी पूजाकर, उनकी स्त्रियोंको आनन्दित करूँगा कि-जिनको तूने रणमें मारडाला है ॥ १२ ॥ हे माधव ! जैसा क्षुद्र मृग सिंहके सामने पड़ उससे बच नहीं सकता, तैसे ही मेरी आँखोंके सामने आया हुआ तू भी आज बचेगा नहीं ॥ १३ ॥ परन्तु हे राजन् ! सात्यकिने हँसते २ उत्तर दिया कि-हे कौरववंशमें उत्पन्न हुए भूरिश्रवा ! मैं युद्धसे डरता नहीं हूँ ॥१४॥ और कोई कुछ मुझे बातोंसे ही नहीं डरा सकता, मुझे युद्धमें मार भी नहीं सकता है, जो मुझे शस्त्ररहित करसकता हो ॥ १५ ॥ जो मुझे युद्धमें मार लेगा वह सब समय सबको मारसकता है अधिक बकवाद करनेसे क्या लाभ ? काम करके दिखा ॥१६॥ तुम्हारी बकबक शरद ऋतुके बादलोंके गर्जनेकी समान निष्फल है हे वीर ! तुम्हारी

हास्यं हि मम जायते ॥ १७ ॥ चिरकालेप्सितं लोके युद्धमद्यास्तु कौरव । त्वरते मे मतिस्तात तव युद्धाभिकाङ्क्षिणी ॥ १८॥ नाहत्वाहं निवर्त्तिष्ये त्वामद्य पुरुषाधम । अन्योऽन्यं तौ तथा वाग्भिस्तक्षन्तौ नरपुङ्गवौ ॥ १९ ॥ जिघांसू परमक्रुद्धावभिजघ्नतुराहवे । समेतौ तौ महेष्वासौ शुष्मिणौ स्पर्द्धिनौ रणे ॥ २० ॥ द्विरदाविव संक्रुद्धौ वासितार्थे मदोत्कटौ । भूरिश्रवाः सात्यकिश्च ववर्षतुरिन्दमौ ॥ २१ ॥ शरवर्षाणि घोराणि मेघाविव परस्परम् । सौमदत्तिस्तु शैनेयं प्रच्छाद्येषुभिराशुगैः ॥ २२ ॥ जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ विव्याध निशितैः शरैः । दशभिः सात्यकिं विद्ध्वा सौमदत्तिरथापरान् ॥२३ ॥ मुमोच निशितान् वाणान् जिघांसुः शिनि-

स्पर्धकी गर्जनाको सुन मुझे हँसी आती है ॥ १७ ॥ हे कौरव्य! बहुत समयसे चाहा हुआ हमारा तुम्हारा युद्ध अब आरम्भ होना चाहिये हे तात ! तेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छावाली मेरी मति अब बहुत ही शीघ्रता कर रही है ॥ १८ ॥ हे पुरुषाधम ! आज मैं तुझे विना मारे युद्धस्थलसे नहीं जाऊँगा, एक दूसरे को मारना चाहते हुए वे दोनों नरपुङ्गव एक दूसरेको खरी खोटी सुना परम क्रोधमें भर युद्ध करनेलगे, ऋतुमती हथिनीके लिए क्रोधमें भर परस्पर युद्ध करनेवाले दो हाथियोंकी समान वे दोनों महाधनुषधारी परस्पर स्पर्धा रख क्रोधमें भरकर भिड़ गए, अरिन्दम सात्यकि और भूरिश्रवा बूँदे वरसाने वाले दो मेघोंकी समान परस्पर वाणधाराएँ वरसाने लगे हे भरतश्रेष्ठ ! सात्यकिको मार डालनेकी इच्छावाले भूरिश्रवाने सात्यकीको वाणोंसे ढककर फिर उस पर तीक्ष्ण वाण छोड़े सात्यकिका वध करना चाहते हुए भूरिश्रवाने उसको दूसरे दश वाणोंसे बींध उसके ऊपर तीक्ष्ण वाण छोड़े, परन्तु हे प्रभो ! सात्यकिने अपनी अस्त्रमायासे भूरिश्रवाके वाणोंको, अपने वाण

पुङ्गवम् । तानस्य विशिखांस्तीक्ष्णानन्तरिक्षे विशाम्पते ॥ २४ ॥ अप्राप्तानस्त्रमायाभिरग्रसत् सात्यकिः प्रभो । तौ पृथक् शरवर्षाभ्यामवर्षेतां परस्परम् ॥ २५ ॥ उत्तमाभिजनौ वीरौ कुरुवृष्णियशस्करौ । तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥ २६ ॥ रथशक्तिभिरन्योऽन्यं विशिखैश्चाप्यकृन्तताम् । निर्भिन्दन्तौ हि गात्राणि विक्षरन्तौ च शोणितम् ॥ २७ ॥ व्यष्टम्भयेतामन्योऽन्यं प्राणद्यूताभिदेविनौ । एवमुत्तमकर्माणौ कुरुवृष्णियशस्करौ ॥२८॥ परस्परमयुध्येतां वारणाविव यूथपौ । तावदीर्घेण कालेन ब्रह्मलोकपुरस्कृतौ ॥ २९ ॥ यियासन्तौ परं स्थानमन्योऽन्यं सञ्जगर्जतुः । सात्यकिः सौमदत्तिश्च शरवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३० ॥ हृष्टानां धार्त्तराष्ट्राणां पश्यतामभ्यवर्षताम् । सम्प्रैक्षन्त जनास्तौ तु

छोड़ आकाशमें ही काटडाला, उत्तम देशमें रहनेवाले कुरुकुल और वृष्णिकुलके यशको बढ़ानेवाले वीरवर सात्यकि और भूरिश्रवा भिन्न २ शस्त्रोंकी वृष्टि करनेलगे जैसे सिंह नाखूनोंसे लड़ें और हाथी दाँतोंसे लड़ें तैसे ही वे दोनों रथशक्ति और बाणोंका प्रहार कर एक दूसरेको घायल करनेलगे प्राणका पण रख युद्धद्यूत खेलने वाले वे दोनों एक दूसरेके अङ्गोंको (प्रहारद्वारा) स्तम्भित कर देते थे जिनके शरीर लोहूलुहान हो रहे हैं ऐसे तथा श्रेष्ठ कर्म करनेवाले और कुरुकुल तथा वृष्णिकुलके यशको प्रकाशित करनेवाले वे दोनों यूथपति दो हाथियों की समान परस्पर भिडगए अल्पकालमें ही ब्रह्मलोकसे भी परले लोकमें जानेकी इच्छावाले वे दोनों सिंहगर्जन करनेलगे, सात्यकि और भूरिश्रवा प्रसन्न हो, धृतराष्ट्रके पुत्रोंके सामने ही परस्पर बाण बरसानेलगे, ऋतुमती हथिनीके लिए युद्ध करते हुए दो हाथियोंकी समान युद्ध करते हुए उन दोनों योधाओंके युद्धको मनुष्य निहारनेलगे, दोनोंमे दोनोंके घोड़ोंको मारडाला

युध्यमानौ युधाम्पती ॥ ३१ ॥ यूथपौ वासिताहेतोः प्रयुद्धाविव कुञ्जरौ । अन्योऽन्यस्य हयान् हत्वा धनुषी विनिकृत्य च ॥३२॥ विरथावसियुद्धाय समेयातां महारणे । आर्षभे चर्मणी चित्रे प्रगृह्य विपुले शुभे ॥ ३३ ॥ विकोशौ चाप्यसी कृत्वा समरे तौ विचेरतुः । चरन्तौ विविधान्मार्गान् मण्डलानि च भागशः ॥३४॥ मुहुराजघ्नतुः क्रुद्धावन्योऽन्यमरिमर्दनौ । सखड्गौ चित्रवर्माणौ सनिष्काङ्गदभूषणौ ॥ ३५ ॥ भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विसृतं सृतम् । सम्पातं समुदीर्णञ्च दर्शयन्तौ यशस्विनौ ॥ ३६ ॥ असिभ्यां सम्प्रजह्राते परस्परमरिंदमौ । उभौ छिद्रैषिणौ वीरावुभौ चित्रं ववल्गतुः ॥ ३७ ॥ दर्शयन्तावुभौ शिक्षां लाघवं सौष्ठवं तथा । रणे रणकृतां श्रेष्ठावन्योन्यं पर्यकर्षताम् ॥ ३८ ॥ मुहूर्त्तमिव राजेन्द्र समाहत्य परस्परम् । पश्यतां सर्वसैन्यानां वीरावाश्वसतां पुनः ॥ ३९ ॥ असिभ्याञ्चर्मणी चित्रे शतचन्द्रे नराधिप ।

और धनुषोंको काटडाला, फिर वे दोनों रथहीन हो महारणमें तलवार लेकर खड़े होगए, वे दोनों बैलकी खालसे मढ़ी बड़ी २ विचित्र ढालें ले और म्यानमेंसे तलवारें खींच रणमें घूमने लगे दोनों अरिन्दम क्रोधमें भर विचित्र मण्डलोंसे घूम और कूद फाँद कर एक दूसरे पर प्रहार करनेलगे, विचित्र कवच वाले और बाजूबन्द तथा शस्त्र धारण करनेवाले वे दोनों यशस्वी शत्रुदमन फिरना, ऊपर फिरना, कुटिल गतिसे फिरना, समीपमें जाना, कूद जाना, सरकना, नीचेको झुकना आदि गतियोंको दिखाते हुए परस्पर तलवारोंकी चोटें करनेलगे, परस्पर छिद्र खोजतेहुए वे दोनों वीर विचित्र प्रकारका भाषण करनेलगे१९-३७ युद्धकरने वालोंमें श्रेष्ठ वे दोनों अपनी २ शिक्षा, फुर्ती और सौष्ठवको दिखा२ कर एक दूसरेको नीचा दिखानेलगे॥३८॥कुछ समय तक घोर युद्ध करके हे राजेन्द्र!वे दोनों वीरासन सेनाओंके

निकृत्य पुरुषव्याघ्रौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः ॥ ४० ॥ व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ । बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥ ४१ ॥ तयो राजन् भुजाघातनिग्रहप्रग्रहास्तथा । शिक्षाबलसमुद्भूताः सर्वयोधप्रहर्षणाः ॥ ४२ ॥ तयोर्नृवरयो राजन् समरे युद्धमानयोः । भीमोऽभवन्महाशब्दो वज्रपर्वतयोरिव ॥ ४३ ॥ द्विपाविव विषाणाग्रैः शृङ्गैरिव महर्षभौ । भुजयोक्त्रावबन्धैश्च शिरोभ्याञ्चावघातनैः ॥ ४४ ॥ पादावकर्षसन्धानैस्तोमराङ्कुशलासनैः । पादोदरविबन्धैश्च भूमावुद्भ्रमणैस्तथा ॥ ४५ ॥ गतप्रत्यागताक्षेपैः पातनोत्थानसंप्लुतैः । युयुधाते महात्मानौ कुरुसात्वतपुङ्गवौ ॥ ४६ ॥ द्वात्रिंशत्करणानि स्युर्यानि युद्धानि भारत ।

सामने विश्राम लेनेके लिए खड़े रहे ॥ ३९ ॥ तदनन्तर हे राजन्! वे दोनों तलवारोंसे परस्पर सौ फुल्लियोंवाली दोनों ढालोंको काट बाहुयुद्ध करनेलगे ४० चौडी छाती और लंबी भुजाओंवाले तथा मल्लयुद्धमें कुशल वे दोनों लोहेके परिघोंकी समान दृढ़ अपनी भुजाओंसे परस्पर गुँथगए ॥ ४१ ॥ हे राजन्! वे अपनी उच्च-शिक्षाके कारण भुजाओं पर थाप देनेलगे, हाथ पकडने लगे, तथा परस्पर गलेमें हाथ डालनेलगे यह देखकर सब योधा अतीव प्रसन्न हुए ॥ ४२ ॥ हे राजन्! समरमें लडतेहुए उन नर-श्रेष्ठोंके आघातका शब्द पर्वत और वज्रके टकरानेके महाभयङ्कर शब्दकी समान होनेलगा ॥ ४३ ॥ सींगोंसे लडते हुए दो बिजारोंकी समान और दाँतोंसे लडतेहुए दो महागजोंकी समान, कौरव और सात्वतवंशमें श्रेष्ठ वे दोनों महात्मा भुजाओंको लपेट,कर शिरोंको टकरा कर,पैरोंमें अडङ्गा डालकर पैर खेंचकर तोमर और अंकुश आसन गाँठकर पैरोंको पेटमें देकर तथा एक दूसरेको पृथ्वीमें घुमाकर, चल कर, बढ़कर, गिराकर और ऊपर कूद कर तथा धक्का देकर युद्ध करनेलगे ॥ ४४-४६ ॥ हे भारत!

तान्यदर्शयतां तत्र युध्यमानौ महाबलौ॥४७॥ क्षीणायुधे सात्वते युध्यमाने ततोऽब्रवीदर्जुनं वासुदेवः। पश्यस्वैनं विरथं युध्यमानं रणे वरं। सर्वधनुर्द्धराणाम्॥४८॥ प्रविष्टो भारतीं भित्वा तव पाण्डव पृष्ठतः। योधितश्च महावीर्यैः सर्वैर्भारत भारतैः॥ ४९॥ परिश्रान्तं युधां श्रेष्ठं सम्प्राप्तो भूरिदक्षिणः। युद्धाकांक्षी समायान्तन्नैतत् सममिवार्जुनः॥ ५०॥ ततो भूरिश्रवाः क्रुद्धः सात्यकिं युद्धदुर्मदः। उद्यम्याभ्याहनद्राजन् मत्तो मत्तमिव द्विपम्॥ ५१॥ रथस्थयोर्द्वयोर्युद्धे क्रुद्धयोर्योधमुख्ययोः। केशवार्जुनयो राजन् समरे प्रेक्षमाणयोः॥५२॥ अथ कृष्णो महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत।

इतना ही नहीं, किन्तु युद्ध करते हुए उन महाबलियोंने मल्लयुद्धके बत्तीसों पेंच दिखाए४७जब अस्त्रशस्त्रोंके निबट जाने पर सात्यकि मल्लयुद्ध करने लगा उस समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि-सब धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ सात्यकि-रथरहित होने पर भी रणमें भूरिश्रवाके साथ लड रहा है, उसकी ओरको तू देख॥ ४८॥ हे भारत! यह सात्यकि भरतवंशी राजाओंकी सेनाको भेद कर, तुम्हारे पासको आरहा है,इतना ही नहीं किन्तु इसने सकल महाबली भरतवंशी राजाओंसे युद्धकिया है॥४९॥ हे अर्जुन! व इस हमारी ओरको आतेहुए,योधाओंमें श्रेष्ठ थके हुए सात्यकिके साथ बहुतसी दक्षिणा देनेवाला राजा भूरिश्रवा युद्ध करनेकी इच्छासे भिडगया है! इसका इस समय इसके साथ लडना उचित नहीं है॥ ५०॥ हे राजन्! इस प्रकार रणमें क्रोधमें भरे महायोधा कृष्ण और अर्जुन रथमें बैठेर बातें कर रहे थे,कि-इतनेमें ही उन दोनोंके सामने ही, युद्धदुर्मद कोपमें भरेहुए मदमत्त भूरिश्रवाने उछलकर,मदमत्त हाथी जैसे मतवाले हाथी पर प्रहार करताहै तैसे ही सात्यकिके ऊपर प्रहार किया॥५१-५२॥ यह देखकर महाभुज श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि-वृष्णि तथा अन्धक कुलमें

पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम् ॥ ५३ ॥ परिश्रान्तं गतं भूमौ कृत्वा कर्म सुदुष्करम् । तवान्तेवासिनं शूरं पालयार्जुन सात्यकिम् ॥ ५४ ॥ न वशं यज्ञशीलस्य गच्छेदेष वरोर्जुनः । त्वत्कृते पुरुषव्याघ्र तदाशु क्रियतां विभो ॥ ५५ ॥ अथाब्रवीद्धृष्टमना वासुदेवं धनञ्जयः । पश्य वृष्णिप्रवीरेण क्रीडन्तं कुरुपुङ्गवम् ॥ ५६ ॥ महाद्विपेनेव वने मत्तेन हरियूथपम् । सञ्जय उवाच । इत्येवं भाषमाणे तु पाण्डवे वै धनञ्जये ॥ ५७ ॥ हाहाकारो महानासीत् सैन्यानां भरतर्षभ । तमुद्यम्य महाबाहुः सात्यकिं न्यहनद् भुवि ॥५८॥ स सिंह इव मातङ्गं विकर्षन् भूरिदक्षिणः । व्यरोचत कुरुश्रेष्ठः सात्वतप्रवरं युधि ॥ ५९ ॥ अथ कोषाद्विनिष्कृष्य खड्गं भूरिश्रवा रणे । मूर्द्धजेषु निजग्राह पदा चोरस्यता-

व्याघ्रसमान सात्यकि भूरिश्रवाके हाथमें पड़गया है, उसकी ओरको तू देख ॥ ५३ ॥ हे अर्जुन ! दुष्कर कर्म करनेके कारण थक कर पृथ्वीमें पड़े हुए अपने वीर शिष्यकी तू रक्षा कर ॥ ५४ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! हे विभो ! तू ऐसा कर कि-जिससे यह श्रेष्ठपुरुष यज्ञशील भूरिश्रवाके वशमें न पड़जाय, तुझे इसकी सम्हाल करनी है, इसलिये हे अर्जुन ! देर न कर ॥ ५५ ॥ यह सुन अर्जुनने मनमें प्रसन्न होते २ श्रीकृष्णसे कहा कि-वनमें जैसे मतवाले हाथीको सिंह खचेडता है तैसे वृष्णिप्रवीर सात्यकिसे क्रीडा करते हुए भूरिश्रवाको देखो (आहा !) सञ्जयने कहा कि-हे भरतर्षभ राजन् ! पाण्डुपुत्र धनञ्जय इस प्रकार बातें कर रहा था कि-सेनामें बड़ा कोलाहल मचनेलगा, हाथीकी समान सात्यकिको भूमिमें खचेडते हुए सिंहकी समान महाभुज भूरिश्रवाने उसको उठाकर पृथ्वीमें दे पटका. उस समय उसकी बड़ी ही शोभा हुई ॥ ५६–५९ ॥ इसके अनन्तर रणमें भूरिश्रवाने सात्यकिकी छातीमें लात मारी और उसके केशोंको पकड़,

डयत् ॥ ६० ॥ ततोऽस्य छेत्तुमारब्धः शिरः कायात् सकुण्डलम् । तावत् क्षणं सात्वतोऽपि शिरः सम्भ्रमयंस्त्वरन् ॥ ६१ ॥ यथा चक्रन्तु कौलालो दण्डविद्धन्तु भारत । सहैव भूरिश्रवसो बाहुना केशधारिणा ॥ ६२ ॥ तं तथा परिकृष्यन्तं दृष्ट्वा सात्वतमाहवे । वासुदेवस्ततो राजन् भूयोऽर्जुनमभाषत ॥ ६३ ॥ पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम् । तव शिष्यं महाबाहो धनुष्यनवरं त्वया ॥ ६४ ॥ असत्यो विक्रमः पार्थः यत्र भूरिश्रवा रणे । विशेषयति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥६५॥ एवमुक्तो महाबाहुर्वासुदेवेन पाण्डवः । मनसा पूजयामास भूरिश्रवसमाहवे ॥ ६६ ॥ विकर्षन् सात्वतश्रेष्ठं क्रीडमान इवाहवे । संहर्षयति मां भूयः कुरूणां कीर्त्तिवर्द्धनः ॥ ६७ ॥ प्रवरं वृष्णिवी-

म्यानमेंसे तलवार खेंचली ॥ ६० ॥ तदनन्तर वह इसके कुण्डलों से सुशोभित मस्तकको काटनेको तयार होगया और हे भारत ! जैसे कुम्हार दण्डेसे चाकको घुमाता है तैसे ही सात्यकि भी भूरिश्रवाके केशोंको पकडनेवाले हाथोंके साथ अपने शिरको घुमानेलगा, कि–किसी प्रकार उसके हाथसे छूटजाऊँ ॥६१-६२॥ सात्यकिको इसप्रकार मस्तक घुमाते और भूरिश्रवाके हाथसे खिचडते देखकर हे राजन् ! श्रीकृष्णजी अर्जुनसे फिर कहने लगे कि-॥६३॥ हे महाभुज अर्जुन ! वृष्णि और अन्धकोंमें व्याघ्रसमान तथा धनुर्विद्यामें तेरे ही समान चतुर, तेरा शिष्य सात्यकि भूरिश्रवाके चुङ्गलमें फँसगया है, उसकी ओरको तू देख ॥ ६४ ॥ हे पार्थ ! रणमें भूरिश्रवाने वृष्णिवंशी सत्यपराक्रमी सात्यकिका पराजय करके उससे अधिक बल दिखाया है और सात्यकिका बल व्यर्थ होगया है ॥ ६५ ॥ जब श्रीकृष्णने महाभुज अर्जुनसे रणमें ऐसा कहा, तब वह मनमें भूरिश्रवाकी प्रशंसा करनेलगा ॥ ६६ ॥ कि—क्रीडा करनेकी समान रणमें सात्यकिको खचेडता हुआ

राणां यन्न हन्याद्धि सात्यकिम् । महाद्विपमिवारण्ये मृगेन्द्र इव कर्षति ॥ ६८ ॥ एवन्तु मनसा राजन् पार्थः सम्पूज्य कौरवम् । वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः प्रत्यभाषत ॥६९॥ सैन्धवे सक्तदृष्टित्वान्नैनं पश्यामि माधवम् । एतत् त्वसुकरं कर्म यादवार्थं करोम्यहम् ७० इत्युक्त्वा वचनं कुर्वन् वासुदेवस्य पाण्डवः । ततः क्षुरप्रं निशितं गाण्डीवे समयोजयत् ॥ ७१ ॥ पार्थबाहुविसृष्टः स महोल्केव नभश्च्युता । सखड्गं यज्ञशीलस्य सांगदं बाहुमच्छिनत् ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोबाहुच्छेदे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४२॥

सञ्जय उवाच । स बाहुर्न्यपतद् भूमौ सखड्गः सशुभाङ्गदः

भूरिश्रवा मेरे हृदयको बड़ा ही प्रसन्न कररहा है, निःसन्देह यह कुरुकुलकी कीर्तिको बढ़ाने वाला है, जैसे सिंह मदमत्त हाथीको घसीटता हो तैसे ही यह वृष्णिवीरोंमें श्रेष्ठ सात्यकिको रणमें घसीट रहा है, परन्तु यह इसको मार नहीं सकेगा ॥६७—६८॥ इसप्रकार मनमें भूरिश्रवाकी प्रशंसा करके महाभुज अर्जुन श्रीकृष्णसे कहनेलगा, कि—॥६९॥जयद्रथकी ओरको दृष्टि लग रही है, इस कारण मैं सात्यकिको नहीं देखरहा हूँ, तो भी मैं इस यदुवीरकी रक्षाके लिए एक बड़ाभारी काम करता हूँ उसको आप देखिये ॥ ७० ॥ ऐसा कहकर वासुदेवकी बातका मान रखनेके लिये अर्जुनने क्षुरप्र नामक एक तीक्ष्ण बाणको गांडीव धनुष पर चढ़ाया ॥ ७१ ॥ आकाशमेंसे गिरती हुई उल्काकी समान, अर्जुनके हाथमेंसे छूटकर आगेको बढते हुए उस बाणने यशस्वी भूरिश्रवाके खड्गको धारण करनेवाले और बाजूबन्दसे सुशोभित हाथको काटडाला ॥ ७२ ॥ एक सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४२ ॥

संजयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! अर्जुनने अदृश्य रहकर,

आदधज्जीवलोकस्य दुःखमद्भुतमुत्तमम् ॥ १ ॥ प्रहरिष्यन् हतो वाहुरदृश्येन किरीटिना । वेगेन न्यपतद् भूमौ पञ्चास्य इव पन्नगः ॥२॥ स मोघं कृतमात्मानं दृष्ट्वा पार्थेन कौरवः । उत्सृज्य सात्यकिं क्रोधाद्गर्हयामास पाण्डवः ॥ ३ ॥ भूरिश्रवा उवाच । नृशंसं वत कौन्तेय कर्मेदं कृतवानसि । अपश्यतोऽविपक्तस्य यन्मे वाहुमचिच्छिदः ॥ ४ ॥ किन्नु वक्ष्यसि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । किं कुर्वाणो मया संख्ये हतो भूरिश्रवा रणे ॥ ५ ॥ इदमिन्द्रेण ते साक्षादुपदिष्टं महात्मना । अस्त्रं रुद्रेण वा पार्थ द्रोणेनाथ कृपेण वा ॥ ६ ॥ ननु नामास्त्रधर्मज्ञस्त्वं लोकेऽभ्यधिकः

सात्यकिका मस्तक काटनेके लिए उठाये हुए भूरिश्रवाके हाथमें ज्यों ही वाण मारा कि-वह हाथ खड्ग तथा उत्तम वाजूवन्दके साथ पंचमुखी सर्पकी समान वेगसे पृथ्वीपर वहते हुए रुधिरके साथ गिरपड़ा, यह देखकर सव प्राणी दुःखित होगए॥१-२॥मेरे शरीरको अर्जुनने निकम्मा करडाला, यह देखकर कुरुवंशी भूरिश्रवा सात्यकिको छोडकर दूर खड़ा होगया और क्रोधमें भर अर्जुनकी निन्दा करनेलगा ॥ ३ ॥ भूरिश्रवाने कहा, कि—तूने क्रूरकी समान काम करडाला, अरे ! मैं दूसरेसे लडनेमें लगाहुआ था, इससे तेरी ओरको मेरी दृष्टि ही नहीं थी, ऐसे अवसरमें तूने मेरा हाथ काट डाला, जव धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुझसे वूझेंगे कि-तूने रणमें भूरिश्रवाको कैसे मारा ? तव तू क्या यह कहेगा, कि-भूरिश्रवा सात्यकिसे युद्ध करनेमें लगाहुआ था, तव मैंने उसको मार डाला ॥ ५ ॥ हे पार्थ ! यह अस्त्रविद्या क्या तुझे इन्द्रने पढ़ाई थी ? अथवा साक्षात् भगवान् शंकरने तुझे यह अस्त्रविद्या सिखाई थी ? अथवा द्रोणाचार्य या कृपाचार्यने तुझे ऐसी विद्या सिखाई थी ? ॥ ६ ॥ तू संसारके सव धनुषधारियोंसे श्रेष्ठ है और युद्धके धर्मको जानता है तो भी तूने; तुझसे न लडते हुए

परैः । सोऽयुध्यमानस्य कथं रणे प्रहृतवानसि ॥ ७ ॥ न प्रमत्ताय भीताय विरथाय प्रयाचते । व्यसने वर्त्तमानाय प्रहरन्ति मनस्विनः ॥ ८ ॥ इदन्तु नीचाचरितमसत्पुरुषसेवितम् । कथमाचरितं पार्थ पापकर्म सुदुष्करम् ॥ ९ ॥ आर्येण सुकरं ह्याहुरार्यकर्म धनञ्जय । अनार्यकर्म त्वार्येण सुदुष्करतरं भुवि ॥१०॥ येषु येषु नरव्याघ्र यत्र यत्र च वर्त्तते । आशु तच्छीलतामेति तदिदं त्वयि दृश्यते ॥ ११ ॥ कथं हि राजवंश्यस्त्वं कौरवेयो विशेषतः । क्षत्रधर्मादपाक्रान्तः सुवृत्तश्चरितव्रतः ॥ १२ ॥ इदन्तु यदतिक्षुद्रं वार्ष्णेयार्थे कृतं त्वया । वासुदेवमतं नूनं नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥ १३ ॥ को हि नाम प्रमत्ताय परेण सह युध्यते । ईदृशं

मेरे ऊपर प्रहार क्यों किया ॥ ७ ॥ धर्मात्मा पुरुष प्रमत्तके ऊपर, डरे हुएके ऊपर, रथहीनके ऊपर, प्रार्थना करनेवाले मनुष्यके ऊपर तथा दुःखमें पड़े मनुष्यके ऊपर रण भूमिमें प्रहार नहीं करते हैं ॥ ८ ॥ हे पार्थ ! ऐसा निंदित काम नीच या दुष्ट मनुष्य करते हैं, अतः तूने ऐसा भयङ्कर पाप क्यों किया ? ॥९॥ लोग कहते हैं, कि—सज्जन पुरुष अच्छा काम सहजमें ही कर डालते हैं परन्तु हे पार्थ ! उनसे खोटा काम होना बहुत ही कठिन है१० नरव्याघ्र मनुष्य जैसे२ पुरुषोंमें और जैसी२ सङ्गतमें बैठता है, शीघ्र ही वैसा ही अच्छा बुरा बन जाता है, यह बात तुझमें भी दीखरही है ॥ ११ ॥ तू राजाओंके वंशमें और विशेषकर कौरववंशमें उत्पन्न हुआ है और सुशील है, फिर भी तू क्षत्रियधर्मसे कैसे डिगगया ? ॥१२॥ यह जो तूने सात्यकिके लिए अतिक्षुद्र काम किया है यह श्रीकृष्णकी सम्मतिसे ही किया होगा ? परन्तु तुझे ऐसा काम नहीं करना चाहिये था, क्योंकि—यह तेरी प्रतिज्ञाके विरुद्ध है ॥१३॥ जिसका कृष्ण मित्र हो उसके सिवाय और कौन पुरुष दूसरेसे युद्ध करनेमें लगे

व्यसनं दद्याद्यो न कृष्णसखो भवेत् ॥ १४ ॥ व्रात्याः संक्लिष्टकर्माणः प्रकृत्यैव च गर्हिताः । वृष्ण्यन्धकाः कथं पार्थ प्रमाणं भवता कृताः ॥ १५ ॥ एवमुक्तो रणे पार्थो भूरिश्रवसमब्रवीत् । अर्जुन उवाच । व्यक्तं हि जीर्यमाणोऽपि बुद्धिं जरयते नरः १६ अनर्थकमिदं सर्वं यत्त्वया व्याहृतं प्रभो । जानन्नेव हृषीकेशं गर्हसे माञ्च पाण्डवम् ॥ १७ ॥ संग्रामाणां हि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः । न चाधर्ममहं कुर्यां जानंश्चैव हि मुह्यसे ॥१८॥ युध्यन्ति क्षत्रियाः शत्रून् स्वैः स्वैः परिवृता नरैः । भ्रातृभिः पितृभिः पुत्रैस्तथा सम्बन्धिबान्धवैः ॥ १९ ॥ वयस्यैरथ मित्रैश्च ते च बाहुं समाश्रिताः । स कथं सात्यकिं शिष्यं सुखसम्बन्धिमेव च ॥२०॥

हुए प्रमत्त पुरुषको ऐसा दुःख देसकता है ? ॥ १४ ॥ हे अर्जुन ! वृष्णि तथा अन्धक कुलके राजे तो व्रात्य और क्रूर कर्म करने वाले तथा स्वभावसेही निन्दाके पात्र होते हैं, अतः उनकी बातको तूने कैसे ठीक मानलिया ? ॥ १५ ॥ जब रणमें भूरिश्रवाने अर्जुनसे ऐसा कहा, तब अर्जुन भूरिश्रवासे कहने लगा, कि-यह सत्य है जो पुरुष मरनेवाला होता है, उसकी बुद्धि भी मारी जाती है ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! तुमने जो कुछ कहा यह सब व्यर्थ है, तुम मुझसे तथा श्रीकृष्णसे भी भली भाँति (ये अच्छे हैं या बुरे) परिचित हो, तो भी तुम श्रीकृष्णकी तथा मेरी व्यर्थ ही निन्दा करते हो ॥ १७॥ तुम संग्रामके सब धर्मोंको जानते हो और सम्पूर्ण शास्त्रोंके पारदर्शी हो तथा यह भी जानते हो कि-मैं अधर्म नहीं करसकता, फिर भी तुम कैसे भूल करते हो ? ॥ १८ ॥ युद्ध करनेवाले क्षत्रिय भाई चचा, ताऊ, पुत्र, तथा सम्बन्धी और बन्धु आदिसे युक्त हो तथा समान अवस्था वाले मित्रोंको साथमें लेकर अपने भुजबलके भरोसे पर शत्रुओंसे लडते हैं, तो फिर मैं अपने शिष्य तथा सम्बन्धी

अस्मदर्थे च युध्यन्तं त्यक्त्वा प्राणान् सुदुस्त्यजान्। मम बाहुं रणे राजन् दक्षिणं युद्धदुर्मदम्॥ २१ ॥ न चात्मा रक्षितव्यो वै राजन्रणगतेन हि । यो यस्य युज्यतेऽर्थेषु स वै रक्ष्यो नराधिप २२ तै रक्ष्यमाणैः स नृपो रक्षितव्यो महामृधे । यद्यहं सात्यकिं पश्ये वध्यमानं महारणे ॥ २३ ॥ ततस्तस्य वियोगेन पापं मेऽनर्थको भवेत् । रक्षितश्च मया यस्मात् तस्मात् क्रुध्यसि किं मयि ॥२४ ॥ यच्च मे गर्हसे राजन्नन्येन सह सङ्गतम् । अहं त्वया विनिकृतस्तत्र ते बुद्धिविभ्रमः ॥ २५ ॥ कवचं धुन्वतस्तुभ्यं रथञ्चारोहतः स्वयम् । धनुर्ज्यां कर्षतश्चैव युध्यतः सह शत्रुभिः ॥ २६ ॥ एवं रथगजाकीर्णे हयपत्तिसमाकुले । सिंहनादोद्धतरवे गम्भीरे सैन्यसागरे ॥ २७ ॥ स्वैः परैश्च समेतेभ्यः सात्वतेन च सङ्गमे । एक-

---

और हमारे सुख दुःखमें भाग लेनेवाले और फिर भी अपने प्यारे प्राणोंकी भी परवाह न करके हमारे लिये युद्ध करनेवाले तथा रणमें मेरी दाहिनी भुजाकी समान युद्धकुशल सात्यकिकी रक्षा क्यों न करूँ ? ॥ १६–२१ ॥ हे राजन् ! रणमें मुख्य सेनापतिको अपना बचाव करना ही उचित नहीं है, किन्तु जो उसके लिए लड़रहा हो उसकी भी रक्षा करनी चाहिये ॥२२॥ महायुद्धमें योधाओंकी रक्षा करनेसे राजाकी रक्षा होती है, यदि मैं महारणमें सात्यकिको मरते हुए देखता रहता तो मुझे पाप लगता. अतः मैंने उसकी रक्षा की, फिर तुम मेरे ऊपर क्यों क्रुद्ध होते हो॥२३—२४॥ और हे राजन् ! तुम जो यह कहकर मेरी निन्दा करते हो, कि-मैं दूसरेसे युद्ध कररहा था तब तूने मुझे धोखा दिया, यह तुम्हारी बुद्धिका भ्रम है२५ रथ, घोड़े और हाथी आदिसे भरे, सिंहगर्जनाओंसे प्रतिध्वनित होते हुए और जहाँ अपने तथा पराये योधा इकट्ठे होरहे हैं ऐसे, सेनारूप गम्भीर सागरमें तुम कवच उछालते और रथ पर चढ़हुए धनुषको

स्यैकेन हि कथ संग्रामः संभविष्यति २८बहुभिः सह सङ्कम्य निर्जित्य च महारथान्। श्रांतश्च श्रांतवाहश्च विमनाः शस्त्रपीडितः २९ ईदृशं सात्यकिं संख्ये निर्जित्य च महारथम्। अधिकत्वं विजानीषे स्ववीर्यवशमागतम् ॥३०॥ यदिच्छसि शिरश्चास्य असिना हन्तुमाहवे। तथा कृच्छ्रगतञ्चैव सात्यकिं कः क्षमिष्यति॥ ३१॥ त्वं वै विगर्हयात्मानमात्मानं यो न रक्षसि। कथं करिष्यसे वीर यो वा त्वां संश्रयेज्जनः ॥ ३२ ॥ सञ्जय उवाच। एवमुक्तो महाबाहुर्यूपकेतुर्महायशाः। युयुधानं समुत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत् ॥ ३३ ॥ शरानास्तीर्य सव्येन पाणिना पुण्यलक्षणः।

प्रत्यञ्चाको खेंचरहे थे फिर यह कैसे कहा जासकता है, कि–तुम अकेले सात्यकिसे ही लडरहे थे२६–२८सात्यकि बहुतसे महारथियोंसे युद्ध करके बहुतसोंको जीतकर थकगया था और उसके घोड़े भी थकगए थे तथा शस्त्रोंसे पीडित होनेके कारण उसका मन ठिकाने नहीं था ॥२९॥ इस दशामें महारथी सात्यकिको अपने वीर्यसे वशमें करके क्या तुम अपना बडप्पन समझते हो? ३० ऐसी आपत्तिमें पड़ेहुए सात्यकिका तुम शिर काटनेको तयार होगये–इसको कौन सह सकता है ? ॥ ३१ ॥ तुम अपनी निंदा अपने आप करो, क्योंकि–तुम अपनी रक्षा न करसके, हे वीर ! जब तुम अपनी ही रक्षा न करसके, फिर अपने आश्रितोंकी रक्षा तो कर ही कैसे सकते होगे ? ॥ ३२ ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! अर्जुनके ऐसा कहने पर महायशस्वी और जिसकी ध्वजामें यज्ञस्तम्भका चिन्ह था ऐसे भूरिश्रवाने सात्यकिको छोड़ (और अर्जुनसे वातचीत करना बन्द करके) मरनेके समय तकको अनशनव्रत धारण करलिया॥३३॥तदनन्तर पवित्र लक्षणोंवाले राजा भूरिश्रवाने दाहिने हाथसे बाणोंको बिछाकर उनपर बैठ ब्रह्मलोकको जानेकी इच्छासे अपने प्राणोंको वायुमें

यियासुर्ब्रह्मलोकाय प्राणान् प्राणेष्वथाजुहोत् ॥ ३४ ॥ सूर्ये चक्षुः समाधाय प्रसन्नं सलिले मनः । ध्यायन्महोपनिषदं योगयुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ ३५ ॥ ततः स सर्वसेनायां जनः कृष्णधनञ्जयौ । गर्हयामास तञ्चापि शशंस पुरुषर्षभम् ॥ ३६ ॥ निन्द्यमानौ तथा कृष्णौ नोचतुः किञ्चिदप्रियम् । तथा प्रशस्यमानश्च नाहृष्यद्यूपकेतनः ॥ ३७ ॥ तांस्तथावादिनो राजन् पुत्रांस्तव धनञ्जयः। अमृष्यमाणो मनसा तेषां तस्य च भाषितम् ॥ ३८ ॥ असंक्रुद्धमना वाचः स्मारयन्निव भारत । उवाच पाण्डुतनयः साक्षेपमिव फाल्गुनः ॥ ३९ ॥ मम सर्वेऽपि राजानो जानन्त्येव महाव्रतम् । न शक्यो मामको हन्तुं यो मे स्याद्बाणगोचरे ॥ ४० ॥ यूपकेतो निरीक्ष्यैतन्न मामर्हसि गर्हितुम् । न हि धर्ममविज्ञाय युक्तं गर्हयितुं

होम दिया ॥ ३४ ॥ चक्षुको उसके देवता सूर्यमें होमदिया, निर्मल मनको जलमें होमदिया और महोपनिषद्में कहे हुए ब्रह्मका ध्यान करताहुआ समाधि चढ़ाकर बैठगया ॥ ३५ ॥ यह देख कर सब सेनाके मनुष्य श्रीकृष्ण और अर्जुनकी निन्दा करने लगे और पुरुषश्रेष्ठ भूरिश्रवाकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३६ ॥ उस समय निन्दाको सुनकर भी श्रीकृष्ण और अर्जुन कुछ भी अप्रिय वचन नहीं बोले तथा भूरिश्रवा भी अपनी प्रशंसासे कुछ प्रसन्न नहीं हुआ ॥३७॥ तथापि हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र उनकी निन्दा करते ही रहे, तब तो उनकी तथा भूरिश्रवाकी बातों को अर्जुन सह न सका ॥ ३८ ॥ तथापि अर्जुन कुपित नहीं हुआ और हे भारत ! राजाओंको याद दिलाता हुआसा आक्षेपके साथ यह कहनेलगा ॥ ३९ ॥ कि-सब राजे मेरे इस महाव्रतको जानते हैं, कि-जो मनुष्य मेरे बाणके मार्गमें आजाता है वह मेरा मनुष्य कहलाता है और उसको कोई नहीं मारसकता ॥ ४० ॥ हे यूपकेतु भूरिश्रवा ! तू मेरे इस व्रतको

परम् ॥ ४१ ॥ आत्तशस्त्रस्य हि रणे वृष्णिवीरं जिघांसतः । यदहं बाहुमच्छैत्सं न स धर्मो विगर्हितः ॥ ४२ ॥ न्यस्तशस्त्रस्य बालस्य विरथस्य विवर्मणः । अभिमन्योर्वधं तात धार्मिकः को नु पूजयेत् ॥ ४३ ॥ एवमुक्तः स पार्थेन शिरसा भूमिमस्पृशत् । पाणिना चैव सव्येन प्राहिणोदस्य दक्षिणम् ॥ ४४ ॥ एतत् पार्थस्य तु वचस्ततः श्रुत्वा महाद्युतिः । यूपकेतुर्महाराज तूष्णीमासीदवाङ्मुखः ॥ ४५ ॥ अर्जुन उवाच । या प्रीतिर्धर्मराजे मे भीमे च बलिनां वरे । नकुले सहदेवे च सा मे त्वयि शलाग्रज ४६ मया त्वं समनुज्ञातः कृष्णेन च महात्मना । गच्छ पुण्यकृतांल्लोकाञ्छिबिरौशीनरो यथा ॥ ४७ ॥ वासुदेव उवाच । ये लोका मम

जानता हुआ भी मेरी निन्दा करता है यह उचित नहीं है; धर्मको समझे बिना दूसरेकी निन्दा करना अच्छी बात नहीं है ॥४१॥ हाथमें शस्त्र ले सात्यकिको मारनेकी इच्छावाले भूरिश्रवाके हाथको जो मैंने काटडाला यह मैंने कुछ अधर्म नहीं किया है ।४२। क्योंकि-हे तात ! शस्त्ररहित, रथरहित और कवचरहित अभिमन्युको जो तुमने मारडाला ? उसकी क्या कोई प्रशंसा कर सकता है ? ॥ ४३ ॥ अर्जुनने जब इसप्रकार कहा, उस समय भूरिश्रवाने मस्तकसे पृथ्वीका स्पर्श किया और बायें हाथसे अपना दाहिना हाथ उठाकर अर्जुनके पास फेंकदिया ॥४४ ॥ हे महाराज ! अर्जुनकी इन बातोंको सुनकर महाकान्ति वाले भूरिश्रवाने नीचेको मुख करलिया और चुपचाप बैठारहा ॥ ४५ ॥ (उसके शान्तभावको देखकर) अर्जुनने कहा, कि हे शलके बड़े भाई ! धर्मराज, महाबली भीमसेन, नकुल और सहदेवके ऊपर जैसी मेरी प्रीति है, वैसा ही मेरा प्रेम तेरे ऊपर भी है४६ मैं और महात्मा श्रीकृष्ण तुझे आज्ञा देते हैं, कि तू उशीनरके पुत्र शिबिकी समान पुण्यवानोंके लोकमें जा ॥ ४७ ॥ श्रीकृष्ण

विमलाः सद्विभाता ब्रह्माद्यैः सुरवृषभैरपीष्यमाणाः । तान् क्षिप्रं व्रज सततामिहोत्रयाजिन्मत्तुल्यो मम गरुडोत्तमांगयानः ॥ ४८ ॥ सञ्जय उवाच । उत्थितः स तु शैनेयो विमुक्तः सौमदत्तिना । खड्गमादाय चिच्छित्सुः शिरस्तस्य महात्मनः ॥ ४९ ॥ निहतं पाण्डुपुत्रेण प्रसक्तं भूरिदक्षिणम् । इयेष सात्यकिर्हन्तुं शलाग्रजमकल्मषम् ॥५०॥ निकृत्तभुजमासीनं छिन्नहस्तमिव द्विपम् । क्रोशतां सर्वसैन्यानां निन्द्यमानः सुदुर्मनाः ॥ ५१ ॥ वार्यमाणः स कृष्णेन पार्थेन च महात्मना। भीमेन चक्ररक्षाभ्यामश्वत्थाम्ना कृपेण च ॥ ५२ ॥ कर्णेन वृषसेनेन सैन्धवेन तथैव च । विक्रोशतां च

बोले, कि–हे निरन्तर यज्ञ करनेवाले राजन् भूरिश्रवा ! ब्रह्मा आदि बड़े २ देवता जिन लोकोंमें जानेके लिये सदा लालायित रहते हैं, और जो सदा प्रकाशित रहते हैं ऐसे मेरे लोकोंमें, तू मेरी समान ही गरुड पर सवार होकर, शीघ्रही जा ॥ ४८ ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! भूरिश्रवासे छूटाहुआ सात्यकि अबतक भूमिपर हीपड़ा था, अब वह उठा और उसने महात्मा शलके बड़े भाई निष्पाप भूरिश्रवाके मस्तकको काटनेकी इच्छा से हाथमें तलवार पकडी ॥ ४९ ॥ और अर्जुनके प्रहारसे अधमरे हुए, यज्ञमें बहुतसी दक्षिणा देनेवाले, योगरूप अन्यविषयमें आसक्त सूँडकटे हाथीकी समान भुजा कटेहुए भूरिश्रवाको मारना चाहनेलगा ॥ ४९–५० ॥ इस समय सब सेनामें कोलाहल मचगया, अर्जुन, महात्मा श्रीकृष्ण, भीम, चक्ररक्षक, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, वृषसेन और जयद्रथने उसको रोका, तथा कहा कि–अरे मूर्ख ! यह क्या करता है ? इसप्रकार सब योधाओंके निन्दा करनेपर और सब सेनाओंके द्वन्द्व मचाने रहनेपर भी सात्यकिने मरण तकके लिये अनशनव्रतको धारण करके बैठे हुए तथा रणमें अर्जुनने जिसकी भुजा काट डाली

सैन्यानामवधीत्तं धृतव्रतम् ॥ ५३ ॥ प्रायोपविष्टाय रणे पार्थेनच्छिन्नमाहवे । सात्यकिः कौरवेयाय खड्गेनापाहरच्छिरः ॥ ५४ ॥ नाभ्यनन्दन्त सैन्यानि सात्यकिन्तेन कर्मणा । अर्जुनेन हतं पूर्वं यज्जघान कुरूद्वहम् ॥ ५५ ॥ सहस्राक्षसमं चैव सिद्धचारणमानवाः । भूरिश्रवसमालोक्य युद्धे प्रायगतं हतम् ॥ ५६ ॥ अपूजयन्त तं देवा विस्मितास्तस्य कर्मभिः । पक्षवादांश्च सुबहून् प्रावदंस्तव सैनिकाः ॥ ५७ ॥ न वार्ष्णेयस्यापराधो भवितव्यं हि तत्तथा । तस्मान्मन्युर्न वः कार्यः क्रोधो दुःखतरो नृणाम् ॥ ५८ ॥ हन्तव्यश्चैव वीरेण नात्र कार्या विचारणा । विहितो ह्यस्य धात्रैव मृत्युः सात्यकिराहवे ॥ ५९ ॥ सात्यकिरुवाच । न हन्तव्यो न हन्तव्य इति यन्मां प्रभाषत । धर्मवादैरधर्मिष्ठा धर्मकञ्चुकमा-

---

थी ऐसे भूरिश्रवाके मस्तकको रणमें काट डाला ॥ ५१—५४ ॥ अर्जुनके द्वारा अधमरे हुए कुरुवंशी भूरिश्रवाको सात्यकिने तलवारसे मारडाला, इसलिये उसकी सेनाके किसी योधाने प्रशंसा नहीं की ॥ ५५ ॥ देवता, सिद्ध, चारण तथा मनुष्य युद्धमें अनशन व्रत धारण करके बैठे हुए, इन्द्रकी समान राजा भूरिश्रवाको मराहुआ देखकर उसकी पूजा करनेलगे, और उसके कर्मोंको देखकर दङ्ग होगए, तदनन्तर तुम्हारे सैनिक बहुत समय तक (उपरिलिखित बात क्षत्रिय धर्मानुकूल हैं या नहीं इस पर) वादविवाद करते रहे।५६-५७। (अन्तमें वे बोल उठे, कि—) इसमें सात्यकिका कुछ अपराध नहीं है, यह ऐसे ही होने वाला था, अतः तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये, क्योंकि—क्रोधसे मनुष्योंको महादुःख होता है ॥ ५८ ॥ और वीर पुरुषको चाहिये कि—शत्रुको मार ही डाले. इसमें विचार की आवश्यकता नहीं है, विधाताने भूरिश्रवाकी मृत्यु इसी प्रकार सात्यकिके हाथसे लिखी होगी ॥ ५९ ॥ अब सात्यकि

स्थिताः ॥ ६० ॥ यदा बालः सुभद्रायाः सुतः शस्त्रविनाकृतः । युष्माभिर्निहतो युद्धे तदा धर्मः क्व वो गतः ॥ ६१ ॥ मया त्वेतत् प्रतिज्ञातं क्षेपे कस्मिंश्चिदेव हि । यो मां निष्पिष्य संग्रामे जीवन् हन्यात् पदा रुषा ॥ ६२ ॥ स मे वध्यो भवेच्छत्रुर्यद्यपि स्यान्मुनिव्रतः । चेष्टमानं प्रतीघाते सभुजं मां सचक्षुषः ॥ ६३ ॥ मन्यध्वं मृत इत्येवमेतद्वो बुद्धिलाघवम् । युक्तो ह्यस्य प्रतीघातः कृतो मे कुरुपुङ्गवाः ॥६४॥ यत्तु पार्थेन मां दृष्ट्वा प्रतिज्ञामभिरक्षिता । सखड्गोऽस्य हृतो बाहुरेतेनैवास्मि वञ्चितः ॥ ६५ ॥ भवितव्यं हि यद्भावि दैवं चेष्टयतीव च । सोऽयं हतो विमर्देऽस्मिन् किमत्राधर्मचेष्टितम् ६६

कहनेलगा, कि–अरे ! धर्मके चोगेको धारण करनेवाले अधर्मी कौरवों ! तुम जो धर्मकी बातें बनाते हुए मुझसे कहते हो, कि–भूरिश्रवाको मारना उचित नहीं था ॥ ६० ॥ परन्तु आयुधरहित सुभद्रापुत्र अभिमन्युको जब तुमने युद्धमें मारा था, उस समय तुम्हारा यह धर्म कहाँ गया था ? ॥ ६१ ॥ मेरी प्रतिज्ञा है कि—कोई भी मनुष्य संग्राममें मेरा अपमान करके मुझे पृथ्वीमें गिराकर क्रोधसे लात मारे, यदि उस समय मैं जीवित बचजाऊँ, तो उस शत्रुको अवश्य ही मारडालूँगा चाहे वह मुनिव्रत ही धारण किये क्यों न बैठा हो, मैं बदला लेनेकी चेष्टा कररहा था और मेरी भुजाओंमें भी वैसा ही बल था, तब भी तुमने आँखें होतेहुए यह समझा कि-सात्यकि मरगया यह तुम्हारी बुद्धिकी लघुता है ये, हे कुरुपुङ्गवों ! मैंने तो (बदला लेनेके लिये) उसको मारकर ठीक ही किया है ॥ ६२–६४ ॥ और पार्थने जो मेरी ओर देख अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिये भूरिश्रवाकी भुजाको खड्गसहित काटकर गिरादिया, इससे तो उन्होंने मेरी कीर्तिका नाश ही किया है ॥ ६५ ॥ परन्तु जो होना होता है वह अवश्य हुआ करता है और प्रारब्ध अपना

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि । न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम ॥ ६७ ॥ सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा । पीडाकरममित्राणां यत् स्यात् कर्त्तव्यमेव तत् ॥ ६८ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्ते महाराज सर्वे कौरवपुङ्गवाः । न स्म किञ्चिदभाषन्त मनसा समपूजयन् ॥ ६९ ॥ मन्त्राभिपूतस्य महाध्वरेषु यशस्विनो भूरिसहस्रदस्य च । मुनेरिवारण्यगतस्य तस्य न तत्र कश्चिद्वधमभ्यनन्दत् ॥ ७० ॥ सुनीलकेशं वरदस्य तस्य शूरस्य पारावतलोहिताक्षम् । अश्वस्य मेध्यस्य शिरो निकृत्तं न्यस्तं हविर्धानमिवान्तरेण ॥ ७१ ॥ स तेजसा शस्त्रकृतेन पूतो महाहवे देहवरं विसृज्य । आक्रामदूर्ध्वं वरदो

काम करा ही करता है, यह भी दैवयोग है, सो यह रणमें मारा गया, इसमें मैंने कौनसा अधर्म किया ? ॥६६॥ पहिले वाल्मीकि जीने इस पृथ्वी पर यह श्लोक पढ़ा था कि–" हे वानर ! तू कहता है, कि–स्त्रियोंको मारना उचित नहीं है, परन्तु काम करनेवाले मनुष्योंको जिसप्रकार भी शत्रुओंको पीड़ा पहुँचे, वही काम करना चाहिये " ॥ ६८ ॥ संजयने कहा कि–हे राजन् धृतराष्ट्र ! सात्यकिके ऐसा कहने पर कौरवोंमेंसे कोई भी कुछ न बोला और मनमें उसकी प्रशंसा करनेलगे, ॥ ६९ ॥ परन्तु महायज्ञोंमें मंत्रपूत जलोंसे पवित्र हुए, यशस्वी, सहस्रोंका दान करनेवाले और मुनियोंकी, समान वनमें बसनेवाले राजा भूरिश्रवाके वधका (प्रकटरीतिसे) किसीने अभिनन्दन नहीं किया७० वरदान देनेवाले शूरवीर भूरिश्रवाका श्याम केश और कबूतरके नेत्रोंकी समान लाल रङ्गके नेत्रोंवाला रणमें पड़ाहुआ मस्तक, यज्ञकी वेदी पर पड़ेहुए अश्वमेध यज्ञके पवित्र घोड़ेके मस्तककी समान शोभा पारहा था ॥ ७१ ॥ याचकोंकी कामनाओंको पूरा करनेवाला सबसे श्रेष्ठ, मनुष्योंमें माननीय भूरिश्रवा इस महायुद्धमें शस्त्रसे मरण पानेके कारण पवित्र हो, अपने

वराहो व्यावृत्य धर्मेण परेण रोदसी ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोवधे
त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । अजितो द्रोणराधेयविकर्णकृतवर्मभिः । तीर्णः सैन्यार्णवं वीरः प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिरे ॥ १ ॥ स कथं कौरवेयेण समरेष्वनिवारितः । निगृह्य भूरिश्रवसा बलाद्भुवि निपातितः २ सञ्जय उवाच । शृणु राजन्निहोत्पत्तिं शैनेयस्य यथा पुरा । यथा च भूरिश्रवसो यत्र ते संशयो नृप ॥ ३ ॥ अत्रेः पुत्रोऽभवत् सोमः सोमस्य तु बुधः स्मृतः । बुधस्यैको महेन्द्राभः पुत्र आसीत् पुरूरवाः ॥ ४ ॥ पुरूरवस आयुस्तु आयुषो नहुषः सुतः । नहुषस्य ययातिस्तु राजा देवर्षिसम्मतः ॥ ५ ॥ ययातेर्देवयान्यां तु यदुर्ज्ये-

---

देहको त्यागकर, अपने पुण्यके तेजसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त करताहुआ ऊर्ध्वलोकमें चलागया ॥ ७२ ॥ एकसौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४३ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे संजय ! युधिष्ठिरसे प्रतिज्ञा करके अर्जुनके पासको आता हुआ सात्यकि द्रोण, कर्ण, विकर्ण, और कृतवर्मा आदि किसीके भी जीतनेमें न आकर सेनासमुद्रके पार होगया.१ उस समरमें पीछेको न हटनेवाले वीर सात्यकिको युद्धभूमिमें भूरिश्रवाने पकड़कर बलात्कारसे पृथ्वीमें कैसे दे पटका २ संजयने उत्तर दिया, कि–हे राजन् ! तुम सात्यकि और भूरिश्रवाकी उत्पत्तिको नहीं जानते हो, अतः मैं तुम्हें उनकी उत्पत्ति सुनाता हूँ; सुनो ॥ ३ ॥ "अत्रिका पुत्र सोम हुआ, सोमके बुध नामक पुत्र हुआ बुधके इन्द्रकी समान प्रभाववाला पुरूरवा नामका एक पुत्र हुआ॥४॥पुरूरवाके आयु नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ आयुके नहुष नामका पुत्र उत्पन्न हुआ और नहुषके ययाति नामक पुत्र हुआ,उस राजाकी देवता और ऋषि भी प्रतिष्ठा करते थे ५.

ष्ठोऽभवत् सुतः । यदोरभूदन्ववाये देवमीढ इति स्मृतः ॥६॥ पादवस्तस्य तु सुतः शूरस्त्रैलोक्यसम्मतः । शूरस्य शौरिर्नृवरो वसुदेवो महायशाः ॥ ७ ॥ धनुष्यनवरः शूरः कार्त्तवीर्यसमो युधि । तद्वीर्यस्तस्य तत्रैव कुले शिनिरभून्नृप ॥ ८ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु देवकस्य महात्मनः । दुहितुः स्वयंवरे राजन् सर्वक्षत्रसमागमे९ तत्र वै देवकीं देवीं वसुदेवार्थमाशु वै । निर्जित्य पार्थिवान् सर्वान्रथमारोपयच्छिनिः ॥ १० ॥ तां दृष्ट्वा देवकीं शूरो रथस्थां पुरुषर्षभः । नामृष्यत महातेजाः सोमदत्तः शिनेर्नृप ॥ ११ ॥ तयोर्युद्धमभूद्राजन् दिनार्द्धञ्चित्रमद्भुतम् । बाहुयुद्धं सुबलिनोः प्रसक्तं पुरुषर्षभ ॥ १२ ॥ शिनिना सोमदत्तस्तु प्रसह्य भुवि पातितः । असिमुद्यम्य केशेषु प्रगृह्य च पदाहतः ॥ १३ ॥ मध्ये राजसह-

ययातिका देवयानीके पेटसे यदु नामका ज्येष्ठ पुत्र हुआ, यदुके वंशमें देवमीढ नामक राजा हुआ॥६॥ उसका पुत्र तीनों लोकोंमें पूजित यदुवंशी शूर नामक राजा हुआ, शूरके मनुष्योंमें श्रेष्ठ महायशस्वी वसुदेव नामका पुत्र हुआ, वह धनुर्विद्यामें इक्कड और युद्धमें कार्तवीर्यकी समान था, उस समय उसके ही कुलमें हे राजन्! शिनिनामक राजा भी उसकी ही समान बली हुआ ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे राजन्! इसी समय महात्मा देवककी पुत्री देवकीका स्वयंवर रचागया था उसमें सब देशोंके राजे आये थे९ उस समय राजा शिनिने सब राजाओंको जीतकर, देवी देवकीको वसुदेवजीके लिये, रथपर चढालिया ॥ १० ॥ हे राजन्! देवकीको शिनिके रथपर बैठी देख शूरवीर राजा सोमदत्त सह न सका ॥ ११ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजन्! इसकारण उन दोनों बलवानोंमें आधे दिनतक अत्यन्त अद्भुत बाहुयुद्ध होता रहा१२ तदनन्तर चारों ओर इकट्ठे होकर देखनेवाले सहस्रों राजाओंके सामने ही शिनिने सोमदत्तको बलपूर्वक पकड़कर ऊपरको उठा पृथ्वीमें दे मारा और उसके केश पकड़कर हृदयमें लात मार

स्राणां प्रेक्षकाणां समन्ततः । कृपया च पुनस्तेन स जीवेति विसर्जितः ॥ १४ ॥ तदवस्थः कृतस्तेन सोमदत्तोऽथ मारिष । प्रसादयन्महादेवममर्षवशमास्थितः ॥१५॥ तस्य तुष्टो महादेवो वराणां वरदः प्रभुः । वरेण छन्दयामास स तु वव्रे वरं नृपः ॥ १६ ॥ पुत्रमिच्छामि भगवन् यो निपात्य शिनेः सुतम् । मध्ये राजसहस्राणां पदा हन्याच्च संयुगे ॥ १७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सोमदत्तस्य पार्थिव । एवमस्त्विति तत्रोक्त्वा स देवोऽन्तरधीयत॥१८॥ स तेन वरदानेन लब्धवान् भूरिदक्षिणम् । अपातयच्च समरे सौमदत्तिः शिनेः सुतम् ॥ १९ ॥ पश्यतां सर्वसैन्यानां पदा चैनमताडयत् । एतत्ते कथितं राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २० ॥ न हि

तलवारसे शिर काटनेके लिए उद्यत होगया,फिर दया आजानेके कारण उसको छोडदिया और कहा, कि–जा मैं तुझे विना मारे ही छोड़े देता हूँ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ऐसी दुर्दशा होनेके कारण सोमदत्तको बडाभारी क्रोध चढा, इसकारण वह तप करके महादेवजीको प्रसन्न करनेलगा ॥ १५ ॥ महात्माओंको वर देनेवाले भगवान् शङ्कर शीघ्र ही उसके ऊपर प्रसन्न होगए और उससे वर माँगनेको कहा, तब उस राजाने यह वर माँगा, कि–॥१६॥ हे भगवन् ! मैं यह वर चाहता हूँ, कि–मेरे ऐसा पुत्र हो जो सहस्रों राजाओंके सामने शिनिके पुत्रको भूमिपर पटककर उसकी छातीमें लात मारे ॥ १७ ॥ हे राजन् ! सोमदत्तकी इस बातको सुनकर भगवान् शङ्कर "एवमस्तु" कहकर तहाँ ही अन्तर्धान होगए ॥ १८ ॥ शिवजी के वरके प्रभावसे सोमदत्तने बहुत सी दक्षिणा देनेवाला भूरिश्रवा नामक पुत्र पाया, उस ही सोमदत्तके पुत्रने रणमें शिनिके पुत्रको भूमिमें पटक, सब राजाओंके सामने उसकी छातीमें लात मारी थी,हे राजन्! जो तुमने मुझसे प्रश्न किया था, उसका उत्तर मैंने आपको देदिया ॥१९–२०॥

शक्यो रणे जेतुं सात्वतो मनुजर्षभैः । लब्धलक्ष्याश्च संग्रामे बहुशश्चित्रयोधिनः॥२१॥ देवदानवगन्धर्वान्विजेतारो ह्यविस्मिताः । स्ववीर्यविजये युक्ता नैते परपरिग्रहाः ॥ २२ ॥ न तुल्यं वृष्णिभिरिह दृश्यते किञ्चन प्रभो । भूतं भव्यं भविष्यच्च बलेन भरतर्षभ ॥२३॥ न ज्ञातिमवमन्यन्ते वृद्धानां शासने रताः । न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ २४ ॥ जेतारो वृष्णिवीराणां किं पुनर्मानुषा रणे । ब्रह्मद्रव्ये गुरुद्रव्ये ज्ञातिद्रव्येऽप्यहिंसकाः२५ एतेषां रक्षितारश्च ये स्युः कस्याञ्चिदापदि । अर्थवन्तो न चोत्सिक्ता ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥ २६ ॥ समर्थान्नावमन्यन्ते दीनानभ्युद्धरन्ति च । नित्यं देवपरा दान्तास्त्रातारश्चाविक-

---

महापुरुष भी रणमें सात्यकिको नहीं जीत सकते, फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या ? सात्वतवंशी संग्राममें निशाने पर अचूक तीर मारनेवाले हैं और विचित्र युद्ध करते हैं २१। वे देवता,दानव तथा गन्धर्वोंको भी जीत लेते हैं,सर्वदा सावधान रहते हैं और सर्वदा अपने पराक्रमसे ही विजय करनेवाले हैं वे कभी पराधीन होकर रहनेवाले नहीं हैं॥ २२ ॥ हे समर्थ राजन् ! इस पृथ्वी पर भूत वर्तमान और भविष्यत् कालमें भी कोई ऐसा नहीं दीखता जो जो बलमें वृष्णिवंशियोंकी बराबरी करे ॥ २३ ॥ वे अपनी जाति (वालों) का अपमान नहीं करते हैं और बड़ोंकी आज्ञामें चलते हैं, रणमें देवता, असुर, गन्धर्व,यक्ष, सर्प,और राक्षस भी वृष्णिवीरोंको नहीं जीत सकते, फिर मनुष्योंकी तो शक्ति ही क्या है ? वे ब्रह्मद्रव्य, गुरुद्रव्य और जातिद्रव्यकी रक्षा करने वाले, अहिंसक चाहे जैसी आपत्तिमें भी मनुष्योंकी रक्षा करने वाले धनाढ्य, निरभिमानी, ब्राह्मणोंके ऊपर श्रद्धा रखनेवाले और सत्यवादी हैं ॥ २४-२६ ॥ वे शक्तिमानोंका अपमान नहीं करते हैं तथा दीनोंका उद्धार करनेवाले, सदा देवपूजा करनेवाले

स्थनाः ॥ २७ ॥ तेन वृष्णिप्रवीराणां चक्रं न प्रतिहन्यते । अपि मेरुं वहेत्कश्चित् तरेद्वा मकरालयम् ॥ २८ ॥ न तु वृष्णिप्रवीराणां समेत्यान्तं व्रजेन्नृप । एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्र ते संशयो विभो । कुरुराज नरश्रेष्ठ तव व्यपनयो महान् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रशंसायां चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तदवस्थे हते तस्मिन् भूरिश्रवसि कौरवे । यथा भूयोऽभवद्युद्धं तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । भूरिश्रवसि संक्रान्ते परलोकाय भारत । वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः समचूचुदत् ॥२ ॥ चोदयाश्वान् भृशं कृष्ण यतो राजा जयद्रथः ।

चतुर, रक्षक हैं और अधिक बकवाद करनेवाले नहीं हैं, इसकारण ही वृष्णिवीरोंका प्रताप कभी कम नहीं होता है, कदाचित् कोई मेरु पर्वतको उठा लेय और समुद्रको (विना ही नावके) पार करजाय, परन्तु हे राजन् ! वृष्णिवीरोंसे लड़कर उनका नाश करसके ऐसा कोई भी नहीं है, हे प्रभो ! जिस बातमें आपको सन्देह था, वह सब बात मैंने आपको समझा दी, परन्तु हे मनुष्यों में श्रेष्ठ कौरवाधिपते! यह सब तुम्हारे ही घोर अन्यायके कारण होरहा है ॥ २७—२९ ॥ एकसौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि—जब योगसमाधिमें स्थित कुरुवंशी भूरिश्रवाको सात्यकिने मारडाला तब फिर जिसप्रकार युद्ध हुआ हो उसका वर्णन कर ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे भारत ! जब भूरिश्रवाका परलोकवास होगया, तब महाभुज अर्जुन श्रीकृष्णसे कहनेलगा, कि—॥ २ ॥ हे हृषीकेश ! राजा जयद्रथकी ओरको शीघ्रतासे घोड़ोंको हाँको, हे पुण्डरीकाक्ष ! जयद्रथ तीन धर्मोंमेंसे आज एक धर्मकी शरण होगा, यदि वह लड़ते २ मारा गया तो शीघ्र ही स्वर्ग पावेगा, यदि भागना हुआ रणमें मारा

श्रूयते पुण्डरीकाक्ष त्रिषु धर्मेषु वर्तते ॥ ३ ॥ प्रतिज्ञां सफलां चापि कर्तुमर्हसि मेऽनघ । अस्तमेति महाबाहो त्वरमाणो दिवाकरः ॥ ४ ॥ एतद्धि पुरुषव्याघ्र महदभ्युदितं मया । कार्यं संरक्ष्यते चैव कुरुसेनामहारथैः ॥ ५ ॥ यथा नाभ्येति सूर्योऽस्तं यथा सत्यं भवेद्वचः । चोदयाश्वांस्तथा कृष्ण यथा हन्यां जयद्रथम् ॥ ६ ॥ ततः कृष्णो महाबाहू रजतप्रतिमान् हयान् । हयज्ञश्चोदयामास जयद्रथवधं प्रति ॥ ७ ॥ तं प्रयान्तममोघेषुमुत्पतद्भिरिवाशुगैः । त्वरमाणा महाराज सेनामुख्याः समाद्रवन् ८ दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् । अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ॥ ९ ॥ समासाद्य तु बीभत्सुः सैन्धवं समुप-

जायगा तो नरकमें पड़ेगा और मेरे डरसे अपने घरको भाग जायगा तो अपयश पावेगा ॥ ३ ॥ हे निर्दोष महाभुज कृष्ण ! आपको मेरी प्रतिज्ञा भी सफल करवानी चाहिये, देखिये ! सूर्य शीघ्रतासे अस्ताचलकी ओरको जारहा है ॥ ४ ॥ मैंने भी बड़ी भारी प्रतिज्ञा की है, इसलिये ही कौरवसेनाके महारथी भी उसकी रक्षा कररहे हैं ॥ ५ ॥ हे कृष्ण ! जिसप्रकार सूर्य अस्त न हो और मेरा वाक्य सच्चा हो तैसे ही आप शीघ्रतासे घोड़ोंको हाँकिये, जिससे मैं जयद्रथको मारसकूँ ॥ ६ ॥ यह सुनकर अश्वविद्यामें प्रवीण महाभुज श्रीकृष्णने चाँदीकी समान श्वेत घोड़ोंको जयद्रथके रथकी ओरको हाँका ॥७॥ अचूक निशानेवाले अर्जुनको वायुकी समान शीघ्रतासे चलनेवाले घोड़ोंसे जुते रथमें बैठकर जयद्रथके रथकी ओरको जाते देखकर हे महाराज ! कुरुसेनामेंके दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, शल्य, अश्वत्थामा कृपाचार्य और स्वयं सिन्धुराज जयद्रथ आदि मुख्य २ पुरुष क्षण भरमें उसके ऊपरको चढ़ दौड़े ॥ ८ ॥ ९ ॥ अर्जुन सामने खड़ेहुए सिन्धुराजके पास पहुँचकर, क्रोधसे प्रदीप्त हुए

स्थितम् । नेत्राभ्यां क्रोधदीप्ताभ्यां संप्रदहन्निव ॥ १० ॥ ततो दुर्योधनो राजा राधेयं त्वरितोऽब्रवीत् । अर्जुनं प्रेक्ष्य संयान्तं जयद्रथवधं प्रति ॥ ११ ॥ अयं स वैकर्त्तन युद्धकालो प्रदर्शय स्वात्मबलं महात्मन् । यथा न वध्येत रणेऽर्जुनेन जयद्रथः कर्ण तथा कुरुष्व ॥ १२ ॥ अल्पावशेषो दिवसो नृवीर विघातयस्वाद्य रिपुं शरौघैः । दिनक्षयम्प्राप्य नरप्रवीर ध्रुवो हि नः कर्ण जयो भविष्यति ॥१३॥ सैन्धवे रक्ष्यमाणे तु सूर्यस्यास्तमनं प्रति । मिथ्याप्रतिज्ञः कौन्तेयः प्रवेक्ष्यति हुताशनम् ॥ १४ ॥ अनर्जुनायाञ्च भुवि मुहूर्त्तमपि मानद । जीवितुं नोत्सहेरन् वै भ्रातरोऽस्य सहानुगाः ॥ १५ ॥ विनष्टैः पाण्डवेयैश्च सशैलवनकाननाम् । वसुन्धरामिमां कर्ण भोक्ष्यामो हतकंटकाम् ॥१६॥ दैवेनोपहतः पार्थो

नेत्रोंसे जयद्रथको भस्म करताहुआसा देखनेलगा ॥ १० ॥ तब दुर्योधनने समझा, कि–यह अब जयद्रथको मारनेके लिए उसकी ओरको बढ़ेगा अतः उसने शीघ्रतासे कर्णसे कहा, कि–हे वैकर्तन ! अब युद्धमें अनीका अवसर आगया है, अतः हे महात्मन्! अब तुम अपना पराक्रम दिखाओ, कि–जिससे अर्जुन जयद्रथको न मारसके ॥ १२ ॥ हे नरवीर ! अब दिन थोड़ा रहगया है,अतः आज तू बाणोंसे शत्रुओंका संहार कर, हे नरवीर कर्ण! किसीप्रकार दिन बीतगया तो हमारी जय अवश्य ही होगी १३ क्योंकि–सूर्यास्त तक यदि हमने जयद्रथकी रक्षा करली तो अर्जुन प्रतिज्ञा झूठी होनेसे स्वयं ही अग्निमें भस्म होकर मरजायगा और हे मानदाता कर्ण! यह पृथ्वी यदि क्षण भरको भी अर्जुनरहित होगई तो फिर उसके भाई और अनुचर क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकेंगे ॥ ॥१५॥ हे कर्ण ! पाण्डवोंके मरजाने पर हम पर्वत, वन और काननोंसहित इस पृथ्वीपर निष्कण्टक होकर राज्य करेंगे ॥ १६ ॥ हे मानद कर्ण ! आज अर्जुनका

विपरीतश्च मानद। कार्याकार्यमजानानः प्रतिज्ञां कृतवान्रणे १७ नूनमात्मविनाशाय पाण्डवेन किरीटिना। प्रतिज्ञेयं कृता कर्ण जयद्रथवधं प्रति ॥ १८ ॥ कथं जीवति दुर्द्धर्षे त्वयि राधेय फाल्गुनः। अनस्तं गत आदित्ये हन्यात् सैन्धवकं नृपम् ॥ १९ ॥ रक्षितं मद्रराजेन कृपेण च महात्मना। जयद्रथं रणमुखे कथं हन्याद्धनञ्जयः २० द्रौणिना रक्ष्यमाणञ्च मया दुःशासनेन च। कथं प्राप्स्यति बीभत्सुः सैन्धवं कालचोदितः ॥ २१ ॥ युध्यन्ते बहवः शूरा लम्बते च दिवाकरः। शङ्के जयद्रथं पार्थो नैव प्राप्स्यति मानद ॥ २२ ॥ स त्वं कर्ण मया सार्द्धं शूरैश्चान्यैर्महारथैः। द्रौणिना त्वं हि सहितो मद्रेशेन कृपेण च ॥२३॥ युध्यस्व यत्नमास्थाय परं पार्थेन संयुगे। एवमुक्तस्तु राधेयस्तव पुत्रेण मारिष ॥२४॥ दुर्योधनमिदं वाक्यं

प्रारम्भ उलटाहुआ मालूम होता है जो वह कार्याकार्यका विचार न करके जयद्रथको मारनेकी प्रतिज्ञा कर बैठा है॥१७॥ हे कर्ण! अपने विनाशके लिए ही उसने जयद्रथके वधकी प्रतिज्ञा की है ॥ १८ ॥ हे राधापुत्र ! भला तुम सरीखे दुर्धर्ष पुरुषके जीने रहते अर्जुन सूर्यास्तसे पहले राजा जयद्रथको कैसे मारसकता है ?॥१९॥ जब मुहानेके ऊपर शल्य, तथा महात्मा कृपाचार्य जयद्रथकी रक्षा कररहे हैं तो वह उसे कैसे मार सकेगा ? ॥ २० ॥ कालका प्रेरणा कियाहुआ अर्जुन द्रोणपुत्र. अश्वत्थामा, दुःशासन तथा मेरी छत्रछायामें रहनेवाले जयद्रथको कैसे मारसकेगा २१ बहुतसे शूर युद्ध कररहे हैं और सूर्य भी ढलताजाता है, अतः हे मानद ! मैं समझता हूँ, कि-अर्जुन जयद्रथको पा नहीं सकेगा ॥ २२ ॥ अतः हे कर्ण ! तू अश्वत्थामा, शल्य, कृपाचार्य तथा दूसरे योधाओंको साथमें ले जोरके साथ अर्जुनसे युद्ध मचा, हे राजन्! तुम्हारे पुत्रके ऐसा कहनेपर राधापुत्र कर्ण कुरुश्रेष्ठ दुर्योधनसे यह कहनेलगा, कि-दृढ प्रहार करनेवाले धनुर्ध

प्रत्युवाच कुरूत्तमम् । दृढलक्ष्येण शूरेण भीमसेनेन धन्विना ॥२५॥ भृशं भिन्नतनुः संख्ये शरजालैरनेकशः । स्थातव्यमिति तिष्ठामि रणे सम्प्रति मानद ॥ २६ ॥ नाङ्गमिङ्गति किञ्चिन्मे सन्तप्तस्य महेषुभिः । योत्स्यामि तु यथाशक्त्या त्वदर्थं जीवितं मम ॥२७॥ यथा पाण्डवमुख्योऽसौ न हनिष्यति सैन्धवम् । न हि मे युध्यमानस्य सायकानस्यतः शितान् ॥ २८ ॥ सैन्धवं प्राप्स्यते वीरः सव्यसाची धनञ्जयः । यत्तु भक्तिमता कार्यं सततं हितकाङ्क्षिणा ॥ २९ ॥ तत्करिष्यामि कौरव्य जयो दैवे प्रतिष्ठितः । सैन्धवार्थे परं यत्नं करिष्याम्यद्य संयुगे ॥३०॥ त्वत्प्रियार्थं महाराज जयो दैवे प्रतिष्ठितः । अद्य योत्स्येऽर्जुनमहं पौरुषं स्वं व्यपाश्रितः ॥ ३१ ॥ त्वदर्थं पुरुषव्याघ्र जयो दैवे प्रतिष्ठितः । अद्य

भीमने रणमें अनेकों बाण मारकर मेरे शरीरको बहुत ही घायल कर दिया है, अतः बाणोंसे सन्तप्त हुए मेरे अङ्गोंमें जरा भी हिलने डुलनेकी शक्ति नहीं है, तो भी हे मानद ! मुझे रणमें खड़ा रहना चाहिए, भागना नहीं चाहिये बस इसलिए ही खड़ा हूँ, क्योंकि-मैंने अपना जीवन तुम्हारे हाथमें देदिया है अतः जिसप्रकार अर्जुन जयद्रथको न मारसके, उसके लिए यथाशक्ति युद्ध करूँगा, जब मैं युद्धके समय तीक्ष्ण बाणोंको छोड़ूँगा, तो उस समय शूरवीर सव्यसाची अर्जुन जयद्रथको पा नहीं सकेगा हे कौरव्य! भक्तिमान् हितचिन्तकको जो कुछ करना चाहिए, वह मैं सब कुछ करूँगा, परन्तु जय प्रारब्धके अधीन है, हे महाराज ! मैं जयद्रथके लिए युद्धमें बड़ा भारी परिश्रम करूँगा, परन्तु विजय दैवके वशमें है, आज मैं, मुझमें जितना बल है, उस सबको लगाकर अर्जुनसे युद्ध करूँगा, परन्तु हारजीत दैवाधीन है, हे कुरुश्रेष्ठ ! मेरे और अर्जुनके रोंगटे खड़े करदेनेवाले दारुण युद्धको आज सब सेनाएँ देखें इसप्रकार कर्ण तथा दुर्योधन

युद्धं कुरुश्रेष्ठ मम पार्थस्य चोभयोः ॥ ३२ ॥ पश्यन्तु सर्वसैन्यानि दारुणं लोमहर्षणम् । कर्णकौरवयोरेवं रणे सम्भाषमाणयोः ३३ अर्जुनो निशितैर्बाणैर्जघान तव वाहिनीम् । चिच्छेद निशितैर्बाणैः शूराणामनिवर्त्तिनाम् ॥ ३४ ॥ भुजान् परिघसङ्काशान् हस्तिहस्तोपमान्रणे । शिरांसि च महाबाहुश्चिच्छेद निशितैः शरैः ३५ हस्तिहस्तान् हयग्रीवान् रथाक्षांश्च समन्ततः । शोणिताक्तान् हयारोहान् गृहीतप्रासतोमरान् ॥ ३६ ॥ क्षुरैश्चिच्छेद बीभत्सुर्द्विधैकैकं त्रिधैव च । हया वारणमुख्याश्च प्रापतन्त समन्ततः ॥ ३७ ॥ ध्वजाश्छत्राणि चापानि चामराणि शिरांसि च । कक्षमग्निरिवोद्धूतः प्रदहंस्तव वाहिनीम् ॥३८॥ अचिरेण महीं पार्थश्चकार रुधिरोत्तराम् । हतभूयिष्ठयोधन्तत् कृत्वा तव बलं बली ॥ ३९ ॥

सम्भाषण कररहे थे कि—इतनेमें ही अर्जुन तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हारी सेनाका संहार करनेलगा, वह रणमें शूरवीरोंकी परिघ और हाथीकी सूडोंकी समान भुजाओंको तीक्ष्ण बाण मारकर काटनेलगा और महाभुज अर्जुन तीक्ष्ण बाणोंसे उनके शिरोंको काटने लगा ॥ २३–३५ ॥ बीभत्सु अर्जुन क्षुर नामक बाण मारकर सामने लडनेको आयेहुए शूरोंके परिघ और हाथीकी सूँड़की समान भुजदण्डोंके, मस्तकोंके, हाथियोंकी सूँडोंके घोडोंकी गर्दनोंके तथा रथोंके धुरोंके प्रास तोमर बाँधे रक्तमें न्हाए हुए घुड़सवार योधाओंके और श्रेष्ठ २ हाथी घोड़ोंके दो २ और तीन २ टुकड़े करनेलगा उस समय चारों ओरसे ध्वजाएँ, छत्र, धनुष चमर और शिर कट २ कर टपाटप गिरनेलगे, , प्रचण्ड अग्निमें घास फूँसके भस्म होनेकी समान क्षणभरमें ही अर्जुनने तुम्हारी सेनाका संहार करडाला ॥ ३६—३८ ॥ युद्ध करता हुआ सत्यपराक्रमी अर्जुन तुम्हारी सेनाके बहुतसे योधाओंका संहारकर जयद्रथके समीप पहुँच गया हे भरतश्रेष्ठ ! सात्यकि और

आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः । भीमस्तुपार्श्वमेनेन सात्वतेन च रक्षितः ॥४०॥ प्रबभौ भरतश्रेष्ठ ज्वलन्निव हुताशनः । तं तथावस्थितं दृष्ट्वा त्वदीया वीर्यसम्पदा ॥ ४१ ॥ नामृष्यन्त महेष्वासाः फाल्गुनं पुरुषर्षभाः । दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ४२ अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः। संरब्धाः सैन्धवस्यार्थे समावृण्वन् किरीटिनम् ४३ नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनिःस्वनैः । संग्रामकोविदं पार्थं सर्वे युद्धविशारदाः ॥४४॥ अभीताः पर्य्यवर्त्तन्त व्यादितास्यमिवान्तकम् । सैन्धवं पृष्ठतः कृत्वा जिघांसन्तोऽर्जुनाच्युतौ ॥ ४५ ॥ सूर्य्यास्तमनमिच्छन्तो लोहितायति भास्करे । ते भुजैर्भोगिभोगाभैर्धनूंष्यानम्य सायकान् ॥ ४६ ॥ मुमुचुः सूर्य्यरश्म्याभाञ्छतशः फाल्गुनं प्रति । ततस्तानस्यमानांश्च किरीटी युद्धदुर्मदः ॥ ४७ ॥ द्विधा त्रिधाष्टधैकैकं छित्वा विव्याध

भीमसेनसे रक्षित दुराधर्ष अर्जुन प्रज्वलित अग्निकी समान शोभा पानेलगा, इसप्रकार अपने पराक्रमके बल पर अर्जुनका खडारहना' महाधनुषधारी तुम्हारे योधाओंको सह्य नहीं हुआ इसलिये दुर्योधन,कर्ण वृषसेन, शल्य, अश्वत्थामा,कृपाचार्य और स्वयं जयद्रथ ये सब जयद्रथके लिए लडनेको तयार होगए, धनुष प्रत्यञ्चा और तालियोंकी ध्वनिके साथ रथोंके मार्गमें घूमतेहुए संग्राममें चतुर अर्जुनको युद्धविशारद पूर्वोक्त सब योधाओंने घेर लिया ॥ ३६–४५ ॥ वे सब जयद्रथको पीछे रखकर मुख फाड़े हुए कालकी समान अर्जुनके सामने आ श्रीकृष्ण और अर्जुनके मारनेकी इच्छासे, घूमनेलगे॥ ४५ ॥ वे सूर्यके लाल २ होजाने पर उसके अस्त होजानेकी उत्कण्ठाके कारण, सर्पके शरीर की समान अपने धनुषोंको नमा,सूर्यकी समान कान्तिवाले बाणों को अर्जुनके ऊपर छोडनेलगे, परन्तु युद्धदुर्मद किरीटीने उनके छोड़ेहुए बाणोंके दो २ तीन २ और आठ २ टुकड़े करडाले

तान् रथान् । सिंहलाङ्गूलकेतुस्तु दर्शयञ्छक्तिमात्मनः ॥ ४८ ॥ शारद्वतीसुतो राजन्नर्जुनं प्रत्यवारयत् । स विध्वा दशभिः पार्थं वासुदेवञ्च सप्तभिः ॥ ४९ ॥ अतिष्ठद्रथमार्गेषु सैन्धवं परिपालयन् । अथैनं कौरवश्रेष्ठाः सर्व एव महारथाः ॥ ५० ॥ महता रथवंशेन सर्वतः प्रत्यवारयन् । विस्फारयन्तश्चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ५१ ॥ सैन्धवं पर्य्यरक्षन्त शासनात्तनयस्य ते । तत्र पार्थस्य शूरस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ॥ ५२ ॥ इषूणामक्षयत्वञ्च धनुषो गाण्डिवस्य च । अस्त्रैरस्त्राणि सम्वार्य्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ॥ ५३ ॥ एकैकं दशभिर्बाणैः सर्वानेव समार्पयत् । तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या वृषसेनश्च सप्तभिः ॥ ५४ ॥ दुर्य्योधनस्तु विंशत्या कर्णशल्यौ त्रिभिस्त्रिभिः । त एनमभिगर्ज्जन्तो विध्यन्तश्च पुनः

और उन रथियोंको बींधनेलगा हे राजन् ! उस समय सिंहकी पूँछके चिन्हवाली ध्वजावाला अश्वत्थामा अपने पराक्रमको दिखाता हुआ अर्जुनको रोकनेलगा, वह दश बाणोंसे अर्जुन और सात बाणोंसे श्रीकृष्णको बींध कर जयद्रथको बचाता हुआ रथोंके मार्गमें खडारहा, तदनन्तर सब ही महारथी श्रेष्ठ कौरव धनुषोंको कँपाते हुए और बाणोंको छोडते हुए रथोंके बड़े भारी समूहसे अर्जुन को घेरकर तुम्हारे पुत्रकी आज्ञासे सिंधुराजकी रक्षा करनेलगे, उस समय अर्जुनकी भुजाओं का बल प्रकट हुआ ॥ ४९-५२ ॥ और उसके बाणोंका अक्षयपना तथा गांडीव धनुषका बल देखनेमें आया उसने अपने अस्त्रों से द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और कृपाचार्यके बाणोंको काट फिर दश २ बाण मारे तदनन्तर अश्वत्थामाने पचीस, वृषसेनने सात, दुर्योधनने बीस तथा कर्ण और शल्यने तीन२ बाणोंसे अर्जुनको बींधडाला बारम्बार गर्जना करतेहुए और बाण छोडते हुए तथा धनुषोंको कँपातेहुए उन्होंने अर्जुनको चारों ओरसे घेर

पुनः ॥५५॥ विधुन्वन्तश्च चापानि सर्वतः पर्यवारयन् । शिक्षां च सर्वतश्चक्रू रथमण्डलमाशु ते ॥५६॥ सूर्यास्तमनमिच्छन्तस्त्वरमाणा महारथाः । ते एतमभिनर्दन्तो विधुन्वाना धनूंषि च ॥५७॥ सिषिचुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेघा इवाम्बुभिः । ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र राजन् व्यदर्शयन् ॥५८॥ धनञ्जयस्य गात्रे तु शूराः परिघबाहवः । हतभूयिष्ठयोधं तत्कृत्वा तव बलं बली ॥५९॥ आससाद सुदुर्द्धर्षः सैंधवं सत्यविक्रमः । तं कर्णः संयुगे राजन् प्रत्यवारयदाशुगैः ॥ ६० ॥ मिषतो भीमसेनस्य सात्वतस्य च भारत । तं पार्थो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यद्रणाजिरे ॥ ६१ ॥ सूतपुत्रं महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः । सात्वतस्तु त्रिभिर्बाणैः कर्णं विव्याध मारिष ॥६२॥ भीमसेनस्त्रिभिश्चैव पुनः पार्थश्च सप्तभिः । तान् कर्णः प्रतिविव्याध षष्ट्या षष्ट्या महारथः ॥ ६३ ॥ तद्युद्धमभव-

---

लिया सूर्यास्त होनेके अभिलाषी शीघ्रता करतेहुए वे महारथी अलग २ खड़ेहुए अपने रथोंको सटाकर मण्डलाकारसे खड़े होगए, जैसे मेघ गर्ज २ कर पहाड़के ऊपर जलकी झड़ी लगा देते हैं तैसे ही वे इसके ऊपर गर्ज २ कर बाणोंको बरसानेलगे हे राजन् ! उस समय परिघकी समान मोटी २ भुजाओंवाले शूर धनञ्जयके शरीरको ताककर बड़े २ दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करने लगे परन्तु दुराधर्ष सत्यपराक्रमी बलवान् अर्जुन तुम्हारी सेनाके बहुतसे योधाओंको मारकर सिन्धुराजकी ओरको ही बढ़नेलगा हे राजन् ! उस समय भीमसेन और सात्यकिके सामने कर्ण रणमें बाण छोड़कर अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोकनेलगा, परन्तु महाबाहु अर्जुनने सब सेनाके सामने रणभूमिमें कर्णके दश बाण मारे और हे राजन् ! सात्यकिने भी तीन बाणोंसे कर्णको घायल करदिया, और भीमसेनने भी तीन बाण मारे अर्जुनने फिर सात बाण मारे, परन्तु महारथी कर्णने उन सबोंको

द्राजन् कर्णस्य वहुभिः सह।तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य मारिष॥६४
यदेकः समरे क्रुद्धस्त्रीन्रथान् पर्य्यवारयत् । फाल्गुनस्तु महाबाहुः
कर्णं वैकर्त्तनं मृधे ॥६५॥ सायकानां शतेनैव सर्वमर्मस्वताडयत् ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ६६ ॥ शरैः पंचाशता
वीरः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत । तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा नामृष्यत रणेऽर्जुनः॥ । ६७ ॥ तस्य पार्थो धनुश्छित्वा विव्याधैनं स्तनांतरे ।
सायकैर्नवभिर्वीरस्त्वरमाणो धनंजयः ॥ ६८ ॥ अथान्यद्धनुरादाय सूतपुत्रः प्रतापवान् । सायकैरष्टसाहस्रैश्छादयामास पाण्डवम् ॥६९॥ तां बाणवृष्टिमतुलां कर्णचापसमुत्थिताम् । व्यधमत्
सायकैः पार्थः शलभानिव मारुतः ॥ ७० ॥ छादयामास स तदा
सायकैरर्जुनो रणे । पश्यतां सर्वयोधानां दर्शयन् पाणिलाघवम् ७१

साठ २ वाणोंसे घायल करदिया ॥ ५३–६३ ॥ हे राजन् !
यह युद्ध कर्णने अनेकोंके साथ किया था, हे राजन् ! उस समय
हमने सूतपुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा कि–क्रोधमें भराहुआ वह
अकेला ही तीन रथियोंसे लडरहा था, उस समय महाभुज अर्जुन
ने सौ वाणकर कर्णके सब मर्मस्थानोंको घायल करदिया, इससे
प्रतापी कर्णका सब शरीर लोहूलुहान होगया, परन्तु वह वीर
घवडाया नहीं और उस सूतपुत्रने पचास वाणोंसे अर्जुनको वींध
डाला, परन्तु उसकी ऐसी फुर्ती अर्जुनसे सही नहीं गई ६४–६७
और शीघ्रता करते हुए वीर अर्जुनने उसके धनुषको काट
कर उसके छातीमें नौ वाण मारे॥ ६८ ॥ परन्तु प्रतापी सूतपुत्र
कर्णने दूसरा धनुष ले आठ सहस्र वाणोंसे अर्जुनको ढक
दिया ॥ ६९ ॥ कर्णके धनुषसे छूटती हुई उस वडीभारी वाणवर्षाको अर्जुनने जैसे वायु पतङ्गोंको नष्ट कर डालता है तैसे
वाणोंसे नष्ट करदिया ७० फिर सब योधाओंको अपनी फुर्ती दिखाते
हुए अर्जुनने रणमें कर्णको वाणोंसे ढकदिया ॥ ७१ ॥ और

वधार्थं तस्य सायकं सूर्यवर्चसम्। चिक्षेप त्वरया युक्तस्त्वराकाले धनंजयः ॥ ७२ ॥ तमापतन्तं वेगेन द्रौणिश्चिच्छेद सायकम् । अर्द्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन स छिन्नः प्रापतद् भुवि ।। ७३ ॥ कर्णोऽपि द्विषतां हन्ता छादयामासफाल्गुनम् । सायकैर्बहुसाहस्रैः कृतिप्रतिकृतेप्सया ॥७४॥ तौ वृषाविव नर्दन्तौ नरसिंहौ महारथौ । सायकैश्च प्रतिच्छन्नं चक्रतुः खमजिह्मगैः ॥ ७५ ॥ अदृश्यौ च शरौघैस्तौ निघ्नतामितरेतरम् । कर्ण पार्थोऽस्मि तिष्ठ त्वं कर्णोऽहं तिष्ठ फाल्गुन।७६।इत्येवं गर्जयंतौ तु वाक्छल्यैस्तुदतां तदा। युध्येतां समरे वीरौ चित्रं लघु च सुष्ठु च ।।७७।प्रेक्षणीयौ चाभवतां सर्वयोधसमागमे । प्रशस्यमानौ समरे सिद्धचारणपन्नगैः ॥ ७८ ॥ अयुध्येतां महाराज परस्परवधैषिणौ । ततो दुर्योधनो राजंस्तावका-

फुर्तीके समय फुर्तीके साथ एक सूर्यकी समान तेजस्वी बाण इसको मारनेके लिये छोड़ा ॥ ७२ ॥ वेगसे आते हुए उस बाणको, अश्वत्थामाने अर्धचन्द्र नामक बाण छोड़ कर काट डाला, तीक्ष्ण बाणसे कटाहुआ वह बाण भूमिमें गिरपड़ा ७३ शत्रुनाशी कर्णने भी वैसे ही बदला लेनेकी इच्छासे सहस्रों बाण मारकर अर्जुनको ढकदिया ॥७४॥ साँडकी समान डकरातेहुए उन दोनों नरसिंह महारथियोंने सीधे जानेवाले बाणोंसे आकाशको भरदिया ॥७५॥ बाणोंसे अदृश्य होने पर भी वे दोनों एक दूसरे पर प्रहार कररहे थे, वे दोनों अरे ! कर्ण ! खडा तो रह, मैं अर्जुन हूँ, अरे ! अर्जुन खडा तो रह मैं कर्ण हूं, इसप्रकार ललकार २ कर युद्ध कररहे थे, सब योधाओंके सामने विचित्र रीति, फुर्ती और सुन्दरतासे लडतेहुए वे दोनों बड़े अच्छे मालूम होते थे, हे महाराज ! समरमें सिद्ध, चारण और सर्प उनकी प्रशंसा करते जारहे थे और वे एक दूसरेको मारनेकी इच्छासे लड़े चलेजाते थे, इतनेमें ही दुर्योधनने हे राजन् ! तुम्हारे

नभ्यभाषत ॥ ७९ ॥ यत्नाद्रक्षत राधेयं नाहत्वा समरेऽर्जुनम् । निवर्त्तिष्यति राधेय इति मामुक्तवान् नृपः ॥ ८० ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् । आकर्णमुक्तैरिषुभिः कर्णस्य चतुरो हयान् ॥ ८१ ॥ अनयन्मृत्युलोकाय चतुर्भिः श्वेतवाहनः । सारथिञ्चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ८२ ॥ छादयामास च शरैस्तव पुत्रस्य पश्यतः । स छाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥ ८३ ॥ मोहितः शरजालेन कर्त्तव्यं नाभ्यपद्यत । तं तथा विरथं दृष्ट्वा रथमारोप्य तं तदा ॥ ८४ ॥ अश्वत्थामा महाराज भूयोऽर्जुनमयोधयत् । मद्रराजश्च कौन्तेयमविध्यत्त्रिंशता शरैः ८५ शारद्वतस्तु विंशत्या वासुदेवं समार्पयत् । धनञ्जयं द्वादशभिराजघान शिलीमुखैः ॥ ८६ ॥ चतुर्भिः सिन्धुराजश्च वृषसेनश्च

योधाओंसे कहा, कि—कर्णने मुझसे कहा था, कि–मैं रणमेंसे अर्जुनको बिना मारे नहीं हटूँगा, अतः तुम यत्नके साथ कर्ण की रक्षा करो ॥ ७९—८० ॥ इतनेमें ही हे राजन्! कर्णके पराक्रमको देखकर अर्जुनने धनुषको कान तक खेंचकर कर्णके चारों घोड़ोंको यमपुरमें पठा दिया और भल्ल मारकर कर्णके सारथिको भी रथकी बैठक परसे नीचे गिरा दिया ८१—८२ फिर अर्जुनने तुम्हारे पुत्रोंके सामनेही कर्णको भी बाणोंसे ढकदिया जिसके घोड़े और सारथी मरगए हैं ऐसा कर्ण बाणोंसे ढक जाने पर सब सीटी पटाक भूलगया, उसको इसप्रकार रथहीन देखकर हेमहाराज! अश्वत्थामा उसको रथमें बैठालकर फिर अर्जुनसे लड़ने लगा, शल्यने तीस बाणोंसे अर्जुनको बींधडाला और अश्वत्थामाने बीस बाणोंसे श्रीकृष्णको घायल करके शिलीमुख नामक बारह बाणोंसे अर्जुनको बींधडाला ॥ ८३-८५ ॥ चार बाणोंसे जयद्रथने और सात बाणोंसे वृषसेनने अर्जुनको बींधडाला, हे महाराज! इसप्रकार सबने अलग२ श्रीकृष्ण और अर्जुनको घायल

सप्तभिः । पृथक् पृथङ्महाराज कृष्णपार्थावविध्यताम् ॥ ८७ ॥ तथैव तान् प्रत्यविध्यत् कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः । द्रोणपुत्रं चतुःषष्ट्या मद्रराजं शतेन च ॥८८॥ सैन्धवं दशभिर्भल्लैर्वृषसेनं त्रिभिः शरैः । शारद्वतञ्च विंशत्या विध्वा पार्थः समुन्नदन् ॥ ८९ ॥ ते प्रतिज्ञाप्रतीघातमिच्छन्तः सव्यसाचिनः । सहितास्तावकास्तूर्णमभिपेतुर्धनञ्जयम् ॥ ९० ॥ अथार्जुनः सर्वतो वारुणास्त्रं प्रादुश्चक्रे त्रासयन् धार्त्तराष्ट्रान् । तं प्रत्युदीयुः कुरवः पाण्डुसूनुं रथैर्महार्हैः शरवर्षाण्यवर्षन् ॥ ९१ ॥ ततस्तु तस्मिंस्तुमुले समुत्थिते सुदारुणे भारत मोहनीये । नोमुह्यत प्राप्य स राजपुत्रः किरीटमाली विसृजन् पृषत्कान् ॥ ९२ ॥ राज्यमेप्सुः सव्यसाची कुरूणां स्मरन् क्लेशान् द्वादशवर्षवृत्तान् । गाण्डीवमुक्तैरिषुभिर्महात्मा

किया ॥ ८७ ॥ कुन्तीपुत्र अर्जुनने भी ऐसे ही उनको घायल किया, वह चौंसठ वाणोंसे अश्वत्थामाको, सौ वाणोंने मद्रराज शल्यको दशसे जयद्रथको और तीससे वृषसेनको तथा बीस वाणोंसे कृपाचार्यको बींध कर गर्जनेलगा ॥ ८८-८९ ॥ वे सवके सव अर्जुनकी प्रतिज्ञाको भङ्ग करनेकी इच्छासे इकट्ठे होकर वेगके साथ अर्जुनके ऊपर टूट पड़े ॥ ९० ॥ तदनन्तर धृतराष्ट्रके सव पुत्रोंको व्याकुल करनेके लिए अर्जुनने वारुणास्त्र प्रकट किया तो भी कौरव, महापुरुषोंके वैठने योग्य रथोंमें वैठ कर अर्जुनके पास गए और उसके ऊपर वाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ९१ ॥ और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! उन दोनोंमें बहुत ही दारुण, मूर्छित करनेवाला, तुमुल युद्ध हुआ, किरीटमाली राजपुत्र अर्जुन इस युद्धमें कुछ भी न घबडाकर वाणोंकी वर्षा ही करता रहा ॥ ९२ ॥ अप्रमेय वलवाला महात्मा अर्जुन कौरवोंके दिए हुए वारह वर्षके क्लेशोंको याद करके राज्य लेनेकी इच्छासे गांडीव धनुषमेंसे छोड़े हुए वाणोंसे दिशाओंको

सर्वा दिशो व्यावृणोदप्रमेयः ॥ ९३ ॥ प्रदीप्तोल्कमभवच्चान्तरिक्षं मृतेषु देहेषु पतन् वयांसि । यत् पिंगलज्येन किरीटमाली क्रुद्धो रिपूनाजगवेन हन्ति ॥ ९४ ॥ ततः किरीटी महता महायशाः शरासनेनास्य शरानवीकिरत् । हयप्रवेकोत्तमनागधूर्णितान् कुरुप्रवीरानिषुभिर्व्यपातयत् ॥ ९५ ॥ गदाश्च गुर्वीः परिघानयस्मयानसींश्च शक्तीश्च रणे नराधिपाः । महन्ति शस्त्राणि च भीमदर्शनाः प्रगृह्य पार्थं सहसाभिदुद्रुवुः ॥ ९६ ॥ ततो युगान्ताभ्रसमस्वनं महत् महेन्द्रचापप्रतिमं स गाण्डिवम् । चकर्ष दोर्भ्यां विहसन् भृशं ययौ दहंस्त्वदीयान् यमराष्ट्रवर्द्धनः ॥ ९७ ॥ स तानुदीर्णान् सरथान् सनागान् पदातिसंघांश्च महाधनुर्द्धरः ।

मारनेलगा ॥ ९३ ॥ जिस समय क्रोधमें भरा हुआ अर्जुन पीली प्रत्यञ्चावाले गाण्डीव धनुषसे बाण छोड़कर शत्रुओंको मारनेलगा तब आकाशमें जलती हुई उल्काएँ दीखने लगीं और मरे हुओंके शरीरोंके ऊपर पक्षी गिरनेलगे ॥ ९४ ॥ महायशस्वी मुकुटधारी अर्जुन शत्रुसेनाका पराजय करनेके लिए, बड़ाभारी धनुष धारण करके उसके ऊपर बाण चढ़ा २ कर चारों ओरको फेंकरहा था और श्रेष्ठ२ घोड़े तथा हाथियों पर बैठ गर्जना करते हुए कौरव वीरोंको पृथ्वी पर गिरा रहा था॥९५॥तब तो भयङ्कर दीखनेवाले राजे हाथमें बड़ी २ गदाएँ, लोहेके परिघ, शक्तिएँ और बड़े२ शस्त्र लेकर अर्जुनके ऊपर टूट पड़े ॥ ९६ ॥ यमलोककी वृद्धि करनेवाला अर्जुन अपने ऊपर चढ़कर आती हुई कौरवसेनाको देखकर हँसा और प्रलयकालके मेघोंकी समान गर्जना करता हुआ इन्द्रधनुषकी समान अपने बड़े गाण्डीव धनुषको अपनी भुजाओंसे खेंचकर तुम्हारे योधाओंका संहार करता हुआ उनके साथ युद्ध करनेलगा ॥९७॥ महाधनुषधारी वीर अर्जुनने क्रोधमें

विपन्नसर्वायुधजीवितान् रणे चकार वीरो यमराष्ट्रवर्द्धनान् ॥ ९८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

सञ्जय उवाच । श्रुत्वा निनादं धनुषश्च तस्य विस्पष्टमुत्क्रुष्टमिवान्तकस्य । शक्राशनिस्फोटसमं सुघोरं विकृष्यमाणस्य धनञ्जयेन ॥ १ ॥ त्रासोद्विग्नं तदोद्भ्रान्तं त्वदीयं तद्बलं नृप । युगान्तवातसंक्षुब्धं चलद्वीचितरङ्गितम् ॥ २ ॥ प्रलीनमीनमकरं सागराम्भ इवाभवत् । स रणे व्यचरत् पार्थः प्रेक्षमाणो धनञ्जयः ३ युगपद्दिक्षु सर्वासु सर्वाण्यस्त्राणि दर्शयन् । आददानं महाराज सन्दधानञ्च पाण्डवम् ॥ ४ ॥ उत्कर्षन्तं सृजन्तञ्च न स्म पश्याम

भरेहुए रथियोंके, हाथीसवारोंके तथा पैदलोंके आयुधोंको काट कर उनको यमलोकको भेजदिया ॥ ९८ ॥ एकसौ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४५ ॥

संजयने कहा, कि—हे धृतराष्ट्र ! धनञ्जयने ज्यों ही गांडीव धनुषकी डोरी खेंची कि—इन्द्रवज्रकी समान भयङ्कर और यमराजकी स्पष्ट गर्जनाकी समान घोर, ध्वनि होनेलगी ॥ १ ॥ उसको सुनकर हे राजन् ! तुम्हारी सेना, प्रलयकालके वायुसे हिलोड़े हुए, उछलती हुई लहरोंसे तरङ्गित होते और जिसके मच्छीनाके आदि नष्ट होगए हों ऐसे समुद्रके जलकी समान भयसे घबड़ायीहुई और पागलकी समान उद्भ्रान्त होगई पृथापुत्र अर्जुन चारों दिशाओंमें एक साथ बाण छोडता हुआ और चारों ओरको देखता हुआ रणमें घूम रहा था, हे महाराज ! पृथापुत्र धनञ्जय ! ऐसी फुरतीसे बाणोंको हाथमें लेता, धनुष पर चढ़ाता, चढ़ाकर खेंचता था, कि—हम उसको (यह कर क्या कररहा है) देख भी नहीं पाते थे, हे महाराज ! तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए महाभुज अर्जुनने भारती सेनाके सब योधाओंको त्रास देनेके लिए

लाघवात् । ततः क्रुद्धो महाबाहुरैन्द्रमस्त्रं दुरासदम् ॥ ५ ॥
प्रादुश्चक्रे महाराज त्रासयन् सर्वभारतान् । ततः शराः प्रादुरासन्
दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रिताः ॥ ६ ॥ प्रदीप्ताश्च शिखिमुखाः शतशोऽथ
सहस्रशः । आकर्णपूर्णनिर्मुक्तैरग्न्यर्कांशुनिभैः शरैः ॥ ७ ॥
नभोऽभवत्तद् दुष्प्रेक्ष्यमुल्काभिरिव संवृतम् । ततः शस्त्रान्धकारं
तत् कौरवैः समुदीरितम् ॥ ८ ॥ अशक्यं मनसाप्यन्यैः पाण्डवः
सम्भ्रमन्निव । नाशयामास विक्रम्य शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ॥ ९ ॥
नैशन्तमोंऽशुभिः क्षिप्रं दिनादाविव भास्करः । ततस्तु तावकं सैन्यं
दीप्तैः शरगभस्तिभिः ॥ १० ॥ आक्षिपत् पल्वलाम्बूनि निदाघार्क
इव प्रभुः । ततो दिव्यास्त्रविदुषा प्रहिताः सायकांशवः ॥ ११ ॥
समाप्लवन् द्विषत्सैन्यं लोकं भानोरिवांशवः । अथापरे समुत्सृष्टा

दुरासद ऐन्द्रास्त्रको प्रकट किया, उसमेंसे दिव्य अस्त्रोंके मन्त्रोंसे अभिमंत्रित प्रदीप्त अग्निकी समान मुखवाले सहस्रों और सैंकडों वाण प्रकट होगए धनुषको कान तक खैंच कर छोड़ेहुए, अग्नि और सूर्यकी किरणोंकी समान प्रदीप्त और तीखे, वाणोंसे घिराहुआ आकाश उल्काओंसे घिरेहुए आकाशकी समान कठिनतासे देखने योग्य होगया तदनन्तर कौरवोंने भी, अन्य मनुष्य जिसकी मनसे भी कल्पना नहीं करसकते ऐसा, घोर अंधकार आकाशमें वाणोंका जाल पूरकर करदिया, अर्जुन कुछ भ्रममें पड़ा, परन्तु फिर उसने प्रातःकालके समय जैसे सूर्य रात्रिके अन्धकारको अपनी किरणोंसे नष्ट करदेता है, तैसे ही, दिव्य अस्त्रोंके मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित वाण छोडकर उस अन्धकारको नष्ट करदिया तदनन्तर समर्थ अर्जुन जैसे ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य किरणोंसे तलैयोंके जलोंको सोखलेता है तैसे ही वाणरूपी किरणोंसे तुम्हारी सेनाको सोखने (नष्ट करने) लगा, जैसे सूर्यकी किरणें मनुष्योंके ऊपर गिरती हैं तैसे ही, दिव्य अस्त्रोंके ज्ञाता अर्जुनके वाण शत्रुसेनाके

विशिखास्तिग्मतेजसः ॥ १२ ॥ हृदयान्याशु वीराणां विविशुः प्रियबन्धुवत् । य एनमीयुः समरे त्वद्योधाः शूरमानिनः ॥ १३ ॥ शलभा इव ते दीप्तमग्निं प्राप्य ययुः क्षयम् । एवं स मृद्नन् शूराणां जीवितानि यशांसि च ॥ १४ ॥ पार्थश्चचार संग्रामे मृत्युर्विग्रहवानिव । स किरीटानि वस्त्राणि साङ्गदान् विपुलान् भुजान् १५ सकुण्डलयुगान् कर्णान् केषांचिदहरच्छरैः । सतोमरान् गजस्थानां सप्रासान् हयसादिनाम् ॥ १६ ॥ सचर्मणः पदातीनां रथिनाञ्च स सधन्वनः । सप्रतोदान्नियन्तॄणां बाहूंश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ १७ ॥ प्रदीप्तोग्रशरार्चिष्मान् बभौ तत्र धनञ्जयः । स विस्फुलिङ्गाग्रशिखो ज्वलन्निव हुताशनः ॥ १८ ॥ तं देवराजप्रतिमं सर्वशस्त्रभृतां वरम् । युगपद्दिक्षु सर्वासु रथस्थं पुरुषर्षभम् १९

ऊपर पडरहे थे, उसके छोड़ेहुए दूसरे बाण, वीरोंके हृदयमें प्यारे बान्धवोंकी समान लिपटे (घुसे) जाते थे शूरताका दम भरनेवाले तुम्हारे जो २ योधा अर्जुनके आगे आये, वे सब प्रदीप्त अग्निके सामने जानेवाले पतङ्गोंकी समान, नष्ट होगए, इसप्रकार शत्रुओं के यश और जीवनका संहार करता हुआ अर्जुन मूर्तिमान् कालकी समान रणमें घूमरहा था, अर्जुनको बाण छोडकर बहुतोंके मुकुटोंसहित मुख, बहुतोंकी बाजूबन्द सहित मोटी २ भुजायें और कुण्डलोंसहित कान काटडाले अर्जुनने तोमरधारी हाथीसवारों की, प्रासधारी घुडसवारोंकी और ढालवाले पैदलोंको ढालों सहित तथा रथियोंको धनुषों सहित और सारथियोंकी चाबुकों सहित भुजाओंको काट डाला॥२-१७॥प्रदीप्त और उग्र बाणरूपी लपटवाला अर्जुन रणमें जिसकी ऊपरको लपट जारही है ऐसे तथा जिसमेंसे चिनगारियें निकल रहीं हैं ऐसे जलतेहुए अग्निकी समान शोभा पारहा था ॥१८॥ देवताओंके राजा इन्द्रकी समान सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, एक ही समयमें सब दिशाओंमें रथमें

निक्षिपन्तं महास्त्राणि प्रेक्षणीयं धनञ्जयम् । नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनादिनम् ॥ २० ॥ निरीक्षितुं न शेकुस्ते यत्नवन्तोऽपि पार्थिवाः । मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे ॥ २१ ॥ दीप्तोग्रसंभृतशरः किरीटी विरराज ह । वर्षास्विवोदीर्णजलः सेन्द्रधन्वाम्बुदो महान् ॥ २२ ॥ महास्त्रसंप्लवे तस्मिन् जिष्णुना सम्प्रवर्तिते । सुदुस्तरे महाघोरे ममज्जुर्योधपुङ्गवाः ॥ २३ ॥ उत्कृत्तवदनैर्देहैः शरीरैः कृत्तबाहुभिः । भुजैश्च पाणिनिर्मुक्तैः पाणिभिर्व्यङ्गुलीकृतैः ॥ २४ ॥ कृत्ताग्रहस्तैः करिभिः कृत्तदन्तैर्मदोत्कटैः । हयैश्च विधुरग्रीवै रथैश्च शकलीकृतैः ॥ २५ ॥ निकृत्तान्त्रैः कृत्तपादैस्तथान्यैः कृत्तसन्धिभिः । निश्चेष्टैर्विस्फुरद्भिश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २६ ॥ मृत्योराघातललितं तत् पार्थायोधनं महत् ।

बैठे दीखनेवाले और रथमार्गोंमें धनुषकी प्रत्यञ्चारूप तालियें बजाकर नाचते हुएसे बड़े २ अस्त्रोंको छोड़नेवाले पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनको तुम्हारे योधा यत्न करके भी, आकाशमें तपतेहुए मध्यान्हके सूर्यकी समान, न देखसके ॥ १९–२१ ॥ मुकुटधारी तेजस्वी और उग्र धनुषधारी अर्जुन, इस समय वर्षा कालके जलसे भरे और इन्द्रधनुषवाले महामेघकी समान शोभा पारहा था ॥ २२ ॥ अर्जुनके चलाए हुए बड़े २ अस्त्रोंके कारण दुस्तर घोर संहारके बहावमें मुख्य २ योधा डूबनेलगे ॥ २३ ॥ हे राजन् ! कटेहुए मुख और हाथोंवाले शरीर, पोंचेरहित भुजाएँ, अंगुलीरहित पहुँचे, कटीसूँड तथा टूटेहुए दाँतोंवाले हाथी, घायल गर्दनोंवाले घोड़े चूर २ हुए रथ, फटी हुई आँतें हाथ, पैर तथा दूसरे जोड़वाले सैंकड़ों और सहस्रों योधा भूमि परसे उठना और सरकना चाहते थे, परन्तु निश्चेष्ट होनेसे ऐसा कर नहीं सकते थे ॥ २४–२६ ॥ हे राजन् ! हम देखनेलगे तो मृत्युकी संहारभूमिरूप अर्जुनका यह बड़ाभारी रणक्षेत्र डरपोकोंके

अपश्याम महीपाल भीरूणां भयवर्द्धनम् ॥ २७ ॥ आक्रीडमिव रुद्रस्य पुराभ्यर्दयतः पशून् । गजानां क्षुरनिर्मुक्तैः करैः सभुजगेव भूः ॥२८॥क्वचिद्भर्मो स्रग्विणीव वक्त्रपद्मैः समाचिता । विचित्रोष्णीषमुकुटैः केयूराङ्गदकुण्डलैः ॥२९॥स्वर्णचित्रतनुत्रैश्च भाण्डैश्च गजवाजिनाम् । किरीटशतसंकीर्णा तत्र तत्र समाचिता३० विरराज भृशं चित्रा मही नववधूरिव । मज्जामेदःकर्दमिनीं शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ३१ ॥ मर्मास्थिभिरगाधां च केशशैवलशाद्वलाम् । शिरोबाहूपलतटां रुग्णक्रोडास्थिसङ्कटाम्॥३२॥ चित्रध्वजपताकाढ्यांछत्रचापोर्मिमालिनीम् । विगतासुमहाकायां गजदेहाभिसंकुलाम् ॥ ३३ ॥ रथोडुपशताकीर्णां हयसंघातरोधसम् । रथ-

भयको बढानेवाला होगया था ॥ २७ ॥ वह रणाङ्गण, पशुओंका संहार करतेहुए शिवकी क्रीडाभूमिकी समान भयानक प्रतीत होता था और क्षुरनामक बाणोंसे काटी हुई हाथियोंकी सूंडोंसे रणभूमि ऐसी प्रतीत होती थी, कि–मानों उसमें सर्प बिखरेहुए हैं२८कहीं२ योधाओंके मुखकमलोंसे भरीहुई पृथिवी मालाओंसे शोभायमानसी दीखती थी,जहाँ तहाँ विचित्र पगडी मुकुट,तावीज, बाजूबन्द, कुण्डल सुवर्णके विचित्र प्रकारके कवच और हाथी घोडोंके गहने तथा सैंकडों मुकुटोंसे खचाखच भरी हुई होनेके कारण विचित्र दीखतीहुई पृथ्वी नववधूकी समान दिपरही थी, अर्जुनने मज्जा और मेदरूप कींचडवाली;रक्तकी लहरोंसे उछलती हुई,आँतडी और हड्डियोंसे अगाध, केशरूप सिवारसे हरी २ दीखती हुई, शिर और भुजारूपी पत्थरोंसे बनेहुए किनारों वाली, कटीहुई घुटुओंकी हड्डियोंसे भरीहुई विचित्र ध्वजा और पताकाओंसे भराहुई, छत्र और धनुषरूपी तरङ्गमालावाली, प्राणहीन बड़े २ शरीरोंसे तथा हाथियोंके शवोंसे भरीहुई, रथरूपी सैंकडों नौकाओंसे व्याप्त घोडोंके शवरूप किनारेंवाली.

चक्रयुगेषाक्षकूवरैरतिदुर्गमाम् ॥ ३४ ॥ प्रासासिशक्तिपरशुविशिखाहिदुरासदाम् । वलकङ्कमहानक्रां गोमायुमकरोत्कटाम् ॥ ३५ ॥ गृध्रोदग्रमहाग्राहां शिवाविरुतभैरवाम् । नृत्यत्प्रेतपिशाचाद्यैर्भूताकीर्णां सहस्रशः ॥ ३६ ॥ गतासुयोधनिश्चेष्टशरीरशतवाहिनीम् । महाप्रतिभयां रौद्रां घोरां वैतरणीमिव ॥ ३७ ॥ नदीं प्रवर्त्तयामास भीरूणां भयवर्द्धिनीम् । तं दृष्ट्वा तस्य विक्रान्तमंतकस्येव रूपिणः ३८ अभूतपूर्वं कुरुषु भयमागाद्रणाजिरे। तत आदाय वीराणामस्त्रैरस्त्राणि पाण्डवः ॥ ३९ ॥ आत्मानं रौद्रमाचष्ट रौद्रकर्मण्यधिष्ठितः । ततो रथवरान् राजन्नत्यतिक्रामदर्जुनः ॥ ४० ॥ मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्वरे । न शेकुः सर्वभूतानि पाण्डवं प्रतिवीक्षितुम् ॥ ४१ ॥ प्रसृतांतस्य गाण्डीवाच्छरव्रातान्महात्मनः ।

रथके पहिये, जुए, ईषा, धुरी और कूवरोंके कारण अतिदुर्गम, प्रास, तलवार, शक्ति, फरसे और बाणरूप सर्पोंसे अगम्य, बगले और कङ्कपक्षीरूप बड़े २ नाकोंवाली, गीदड़रूप मगरोंसे भयानक गीधरूप भयङ्कर महाग्राहोंसे भरी और गीदड़ियोंके शब्दोंसे भयङ्कर, नाचतेहुए पिशाच आदि सहस्रा भूतोंसे, भरी प्राणशून्य योधाओंके सैकडों निश्चेष्ट शरीरोंको वहानेवाली, रौद्ररसवाली घोर वैतरणी नदीकी समान भयानक, डरपोकोंको भय देनेवाली रक्तकी नदी बहादी, मूर्त्तिमान् कालके समान अर्जुनके पराक्रमको देखकर रणभूमिमें कौरवोंको पहिले कभी अनुभवमें न आयेहुए भयने दबालिया, तदनन्तर भयङ्कर कर्म करनेवाले अर्जुनने शत्रुओंके अस्त्रोंको पकड़लिया, और फिर राजन्! भयङ्कर कर्म करनेवाले अर्जुनने उनके सामने अपने रौद्ररूपको प्रकट किया और सब महारथियोंको लाँघकर आगे बढगया ॥३९-४०॥ इस समय मध्यान्हके समय आकाशमें तपतेहुए सूर्यकी समान रणमें खडेहुए अर्जुनको रणभूमिमेंके सब लोग देख न सके ४१ इस

संग्रामे सम्पश्यामो हंसपंक्तिरिवाम्बरे ॥ ४२ ॥ विनिवार्य स वीराणामस्त्रैरस्त्राणि सर्वतः । दर्शयन् रौद्रमात्मानमुग्रे कर्मणि धिष्ठितः ॥ ४३ ॥ स तान् रथवरान् राजन्नत्याक्रामदर्जुनः । मोहयन्निव नाराचैर्जयद्रथवधेप्सया । विसृजन् दिक्षु सर्वासु शरानसितसारथिः ॥ ४४ ॥ सरथो व्यचरत्तूर्णं प्रेक्षणीयो धनञ्जयः । भ्रमन्त इव शूरस्य शरव्राता महात्मनः ॥ ४५ ॥ अदृश्यन्तान्तरिक्षस्थाः शतऽशोथ सहस्रशः । आददानं महेष्वासं सन्दधानञ्च सायकम् ॥४६॥ विसृजन्तञ्च कौन्तेयं नानुपश्याम वै तदा । तथा सर्वा दिशो राजन् सर्वांश्च रथिनो रणे ॥ ४७ ॥ कदम्बीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् । विव्याध च चतुःषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ४८ ॥ सैन्धवाभिमुखं यान्तं योधाः सम्प्रेक्ष्य पाण्ड-

समय भी जैसे हंसोंकी पंक्ति आकाशमें उडती है तैसेही युद्धमें महात्मा अर्जुनके धनुषमेंसे निकलेहुए बाण आकाशमें उडतेहुए दीखरहे थे ॥ ४२ ॥ भयानक पराक्रम करनेमें लगाहुआ अर्जुन अपने अस्त्रोंसे वीरोंके अस्त्रोंको पीछेको हटाकर अपनी उग्रता दिखा रहा था, ॥४३॥ तदनन्तर हे राजन् ! श्रीकृष्ण जिसके सारथि हैं ऐसा अर्जुन महारथियोंको लाँघकर रथके सहित आगे बढ़ गया और रणमें घूमता हुआ दर्शनीय अर्जुन जयद्रथको मारने की इच्छासे सबको मोहित करताहुआ चारों ओर बाणोंकी मारामार करनेलगा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वीर और महात्मा अर्जुनके सैंकडों और हजारों बाण आकाशमें उडतेहुएसे दीखरहे थे ४६ अर्जुन ऐसी फुरतीसे बाण छोडरहा था, कि—वह धनुषधारी बाण को कब लेता है कब चढ़ाता है और कब छोडता है, यह हम देख भी नहीं पाते थे ॥ १७ ॥ हे राजन्! फिर अर्जुन सब दिशाओंको तथा सब राजाओंको कदम्बके पुष्पकी समान निर्माल्य जानकर जयद्रथकी ओरको बढा चलागया ॥ ४८ ॥

वम् । न्यवर्त्तंत रणाद्वीरा निराशास्तस्य जीविते ॥ ४९ ॥ यो
योऽभ्यधवदाक्रन्दे तावकः पाण्डवं रणे । तस्य तस्यान्तगो बाणः
शरीरे न्यपतत् प्रभो ॥ ५० ॥ कबन्धसंकुलञ्चक्रे तव सैन्यं महा-
रथः । अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः शरैरग्न्यंशुसन्निभैः ॥५१॥ एवं तत्तव
राजेन्द्र चतुरङ्गबलं तदा । व्याकुली कृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत्
५२द्रौणिं पञ्चशताविध्य वृषसेनं त्रिभिः शरैः। कृपायमाणः कौंतेय
कृपन्नवभिरार्दयत्५३शल्यं षोडशभिर्बाणैः कर्णं द्वात्रिंशता शरैः।
सैन्धवञ्च चतुःषष्ट्या विध्वा सिंह इवानदत् ॥ ५४ ॥ सैन्धवस्तु
तदा विद्धः शरैर्गाण्डीवधन्वना । न चक्षमे सुसंक्रुद्धस्तोत्रार्दित
इव द्विपः ॥ ५५ ॥ स वराहध्वजस्तूर्णं गार्द्धपत्रानजिह्मगान् ।

और उसके नमीहुई गाठोंवाले चौंसठ बाण मारे वीर अर्जुनको
जयद्रथकी ओरको जाते देख कौरव योधा जीवनसे हताश हो
युद्धमेंसे लौटनेलगे ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! उस समय तुम्हारे पक्षका
जो योधा उसके सामने लडनेको जाता था उसके ही शरीर पर
प्राणनाशक बाण पडते थे ॥ ५० ॥ विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ
महारथी अर्जुनने अग्नि और सूर्यकी किरणोंकी समान तीखे
बाणोंसे तुम्हारी सेनाको कबन्धमयी बनाडाला अर्थात् तुम्हारी
सेनामें धड ही धड दीखनेलगे ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार
तुम्हारी चतुरङ्गिनी सेनाको बाणोंके प्रहारसे व्याकुल कर कुन्ती-
पुत्र अर्जुन जयद्रथकी ओरको बढा ॥५२॥ उसने पचास बाणों
से अश्वत्थामाको और तीन बाणोंसे वृषसेनको घायल किया
और कृपाचार्यके ऊपर दया आजानेसे उसने उनके केवल नौ ही
बाण मारे ॥ ५३ ॥ फिर शल्यको सोलह, कर्णको बत्तीस और
जयद्रथको चौंसठ बाणोंसे बींधकर अर्जुन सिंहकी समान दहाडने
लगा ॥ ५४ ॥ गांडीव धनुषधारी अर्जुनके बाण जयद्रथसे
नहीं सहेगये, इसकारण वह अंकुश खायेहुए हाथीकी समान

क्रुद्धाशीविषसङ्काशान् कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ५६ ॥ आकर्ण-
पूर्णांश्चिक्षेप फाल्गुनस्य रथं प्रति । त्रिभिस्तु विध्वा गोविन्दं
नाराचैः षड्भिरर्जुनम् ॥५७॥ अष्टभिर्वाजिनोऽविध्यद्ध्वजञ्चै-
केन पत्रिणा । स विक्षिप्यार्जुनस्तूर्णं सैन्धवप्रहिताञ्छरान्॥५८॥
युगपच्चास्य चिच्छेद शराभ्यां सैन्धवस्य ह । सारथेश्च शिरः कायात्
ध्वजञ्च समलंकृतम् ॥ ५९ ॥ स छिन्नयष्टिः सुमहान्धनञ्जय-
शराहतः । वराहः सिन्धुराजस्य पपाताग्निशिखोपमः ॥ ६० ॥
एतस्मिन्नेव काले तु द्रुतं गच्छति भास्करे । अब्रवीत् पाण्डवं तत्र
त्वरमाणो जनार्दनः ॥ ६१ ॥ एष मध्ये कृतः षड्भिः पार्थ वीरै-
र्महारथैः । जीवितेप्सुर्महाबाहो भीतस्तिष्ठति सैन्धवः ॥ ६२ ॥

क्रोधमें भरगया ॥ ५५ ॥ तब सूअरके चिन्हकी ध्वजावाले जय-
द्रथने गीधके परलगे, सीधेजानेवाले, क्रोधमें भरे सर्प सरीखे,
शिल्पियोंके द्वारा घिसकर तेजकिए हुए बाण धनुषको कानतक
खेंचकर अर्जुनके मारे उसने तीन बाणोंसे श्रीकृष्णको और छः
बाणोंसे अर्जुनको घायल कर आठ बाणोंसे उनके घोडोंको
घायल करदिया और एक बाण उनकी ध्वजाके ऊपर मारा
परन्तु अर्जुनने बाण मारकर सिंधुराजके बाणोंको दूर फैंक
दिया ॥ ५६-५८॥ और दो बाण मारकर एक साथ ही उसके
सारथिके शिरको और शोभायमान ध्वजाको काटडाला ॥५९॥
धनञ्जयके बाणसे कटते ही जयद्रथका ध्वजदण्ड और अग्निकी
शिखाकी समान शोभायमान बडीभारी ध्वजा पृथ्वी पर गिर
पडी, हे राजन्! इस समय ही सूर्यास्त होनेका समय आलगा,
यह देख कर श्रीकृष्णने शीघ्रताके साथ अर्जुनसे कहा, कि-६१
हे पार्थ! हे महाबाहु अर्जुन! छः महारथी वीरोंने जयद्रथको अपने
बीचमें घेरकर खड़ा करलिया है और यह भी जीवित रहनेकी
इच्छासे भयभीत होकर उनके बीचमें खड़ा है॥६२॥अतः हे पुरुष-

एताननिर्जित्य रणे षड्रथान् पुरुषर्षभ । न शक्यः सैन्धवो हन्तुं यतो निर्व्याजमर्जुन ॥ ६३ ॥ योगमत्र विधास्यामि सूर्यस्यावरणं प्रति । अस्तं गत इति व्यक्तं द्रक्ष्यत्येकः स सिन्धुराट् ॥ ६४ ॥ हर्षेण जीविताकांक्षी विनाशार्थं तव प्रभो । न गोप्स्यति दुराचारः स आत्मानं कथञ्चन ॥ ६५ ॥ तत्र छिद्रं प्रहर्त्तव्यं त्वयास्य कुरुसत्तम । व्यपेक्षा नैव कर्त्तव्या गतोऽस्तमिति भास्करः ॥६६॥ एवमस्त्विति वीभत्सुः केशवं प्रत्यभाषत । ततोऽसृजत्तमः कृष्णः सूर्यस्यावरणं प्रति ॥ ६७ ॥ योगी योगेन संयुक्तो योगिनामीश्वरो हरिः । सृष्टे तमसि कृष्णेन गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६८ ॥ त्वदीया जहृषुर्योधाः पार्थनाशान्नराधिप । ते प्रहृष्टा रणे राजन्नापश्यन् सैनिका रविम् ॥ ६९ ॥ उन्नाम्य

श्रेष्ठ अर्जुन ! लडाईमें इन छः महारथियोंको विना जीते.निष्कपटभावसे सिंधुराजको नहीं मारसकेगा ॥ ६३ ॥ सूर्यास्तके लिए तो मैं एक ऐसा प्रयोग करूँगा, कि-केवल एक जयद्रथ ही, सूर्य अस्त होगया है, यह स्पष्ट रीतिसे देखसकेगा ॥ ६४ ॥ और हे अर्जुन ! अपने जीवनकी इच्छावाला दुराचारी जयद्रथ हर्षित होता हुआ तुझे मारनेके लिए बाहर निकल आवेगा और सूर्य अस्त होगया यह समझ कर वह किसी प्रकार भी अपनी रक्षाका ध्यान नहीं रक्खेगा ॥ ६५ ॥ हे कुरुसत्तम ! उस अवसरको देख कर तुझे प्रहार करना चाहिये और यह समझ कर कि-सूर्य अस्त होगया है, तुझे उपेक्षा नहीं करनी चाहिये ६६ अर्जुनने तथास्तु कहकर श्रीकृष्णकी बात मानली, योगयुक्त योगीश्वर श्रीकृष्णने सूर्यको ढकनेके लिए अन्धकारको उत्पन्न किया उस अंधकारके फैलनेपर तुम्हारे योधा सूर्य अस्त होगया इसलिये अब अर्जुनका नाश होगा ऐसा समझकर हर्षमें भरगए, तब तो हे राजन्! रणमें सैनिक तथा राजा जयद्रथ भी हर्षमें भर ऊपरको मुख

वक्त्राणि तदा स च राजा जयद्रथः । वीक्षमाणे ततस्तस्मिन् सिन्धुराजे दिवाकरम् ॥ ७० ॥ पुनरेवाब्रवीत् कृष्णो धनञ्जयमिदं वचः । पश्य सिन्धुपतिं वीरं प्रेक्षमाणं दिवाकरम् ॥ ७१ ॥ अयं हि विप्रमुच्यैतत्त्वत्तो भरतसत्तम । अयं कालो महाबाहो वधायास्य दुरात्मनः ॥ ७२ ॥ छिन्धि मूर्धानमस्याशु कुरु साफल्यमात्मनः । इत्येवं केशवेनोक्तः पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ॥ ७३ ॥ न्यवधीत्तावकं सैन्यं शरैरर्काग्निसन्निभैः । कृपं विव्याध विंशत्या कर्णं पञ्चाशता शरैः ७४ शल्यं दुर्योधनश्चैव षड्भिःषड्भिरताडयत् । वृषसेनं तथाष्टाभिः षष्ट्या सैन्धवमेव च ॥ ७५ ॥ तथैव च महाबाहुस्त्वदीयान् पाण्डुनन्दनः । गाढं विद्ध्वा शरै राजन् जयद्रथमुपाद्रवत् ७६ तं समीपस्थितं दृष्ट्वा लेलिहानमिवानलम् । जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ७७ ॥ ततः सर्वे महाराज तव योधा जयै-

---

फरके सूर्यको देखनेलगा जब जयद्रथ ऊपरको मुख कर सूर्यको देख रहा था तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे फिर कहा, कि–हे भरतसत्तम ! यह वीर सिंधुराज तेरे भयको त्यागकर सूर्यकी ओरको देखरहा है, अतः हे महाभुज ! इस दुष्टात्माको मारनेका यह ठीक अवसर है ॥ ६७–७२ ॥ अब शीघ्रतासे इसके मस्तकको काटकर अपनी प्रतिज्ञाको सफल कर श्रीकृष्णकी बात सुनकर प्रतापी अर्जुन अग्नि और सूर्यकी समान तेजस्वी बाणोंसे तुम्हारी सेनाका संहार करनेलगा, उसने कृपाचार्यको बीस, कर्णको पचास शल्य और दुर्योधनको छः २, वृषसेनको आठ तथा जयद्रथको साठ बाणोंसे घायल किया, हे राजन् ! इसप्रकार ही तुम्हारे पुत्रोंको भी बाण मारकर बहुत ही घायल कर महाबाहु अर्जुन जयद्रथके ऊपरको झपटा ॥ ७३–७६ ॥ धधकते हुए अग्निकी समान अर्जुनको पासमें खड़ा देखकर जयद्रथके रक्षक बड़ेभारी असमञ्जसमें पडगए ॥ ७७ । फिर हे महाराज ! जय चाहनेवाले

पिणः । सिषिचुः शरधाराभिः पाकशासनिमाहवे ॥ ७८ ॥ सञ्छाद्यमानः कौन्तेयः शरजालैरनेकशः । अक्रुद्धत्स महाबाहुरजितः कुरुनन्दनः ॥७९॥ ततः शरमयं जालं तुमुलं पाकशासनिः । व्यसृजत् पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यजिघांसया ॥ ८० ॥ ते हन्यमाना वीरेण योधा राजन् रणे तव । प्रजहुः सैन्धवं भीता द्वौ समं नाभ्यधावताम् ॥ ८१ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य विक्रमम् । तादृङ्न भावी भूतो वा यच्चकार महायशाः ॥८२॥ द्विपान् द्विपगतांश्चैव हयान् हयगतानपि । तथा सरथिनश्चैव न्यहन् रुद्रः पशूनिव ॥ ८३ ॥ न तत्र समरे कश्चिन्मया दृष्टो नराधिप । गजो वाजी नरो वापि यो न पार्थशराहतः ॥ ८४ ॥ रजसा तमसा चैव योधाः सञ्छन्नचक्षुषः । कश्मलं प्राविशन् घोरं नान्वजानन् परस्परम् ॥ ८५ ॥ ते शरैर्भिन्नमर्माणः सैनिकाः पार्थ-

तुम्हारे योधा अर्जुनको बाणधाराओंसे स्नान करानेलगे ॥ ७८ ॥ अजित कुन्तीपुत्र महाभुज अर्जुन बाणोंसे ढकजानेके कारण क्रोधमें भरगया ॥ ७९ ॥ तदनन्तर इन्द्रपुत्र पुरुषव्याघ्र अर्जुन तुम्हारी सेनाको नष्ट करनेकी इच्छासे भयंकर बाणजाल फैलानेलगा ८० हे राजन् ! जब रणमें वीर अर्जुन तुम्हारे योधाओंको मारनेलगा तब वे भयभीत हो जयद्रथको छोड़कर इसप्रकार भागे कि–साथ२ में दो दो भी नहीं भाग पाते थे ॥८१॥ हमने उस समय कुन्तीपुत्र अर्जुनका ऐसा अद्भुत पराक्रम देखा, कि–जो न किसीने किया और न कोई करसकेगा ॥८२॥ अर्जुनने पशुओंका संहार करनेवाले रुद्रकी समान घोड़ोंको घुड़सवारोंसहित और हाथियोंको हाथीसवारोंसहित तथा रथोंको रथियोंसहित कुचलडाला ॥८३॥ हे राजन् ! मैंने उस समय रणमें एक भी ऐसा हाथी, घोड़ा और मनुष्य नहीं देखा कि–जिसके ऊपर अर्जुनके बाण न पड़े हैं ॥८४ धूल तथा अँधेरेके कारण नेत्रोंके गड़बड़ा जानेसे योधाओंमें घबड़ा-

चोदितैः । बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुः सेदुर्मम्लुश्च भारत ॥ ८६ ॥ तस्मिन् महाभीषणके प्रजानामिव संक्षये । रणे महति दुष्पारे वर्त्तमाने सुदारुणे ॥ ८७ ॥ शोणितस्य प्रसेकेन शीघ्रत्वादनिलस्य च । अशाम्यत तद्रजो भौममसृक्सिक्ते धरातले ॥ ८८ ॥ आनाभि निरमजंश्च रथचक्राणि शोणितैः । मत्ता वेगवता राजंस्तावकानां रणाङ्गणे ॥ ८९ ॥ हस्तिनश्च हतारोहा दारिताङ्गाः सहस्रशः । स्वान्यनीकानि मृद्नन्त आर्त्तनादा प्रदुद्रुवुः ॥ ९० ॥ हयाश्च पतितारोहाः पत्तयश्च नराधिप । प्रदुद्रुवुर्भयाद्राजन् धनञ्जयशराहताः ॥ ९१ ॥ मुक्तकेशा विकवचाः क्षरन्तः क्षतजं क्षतैः । प्रपलायन्त सन्त्रस्तास्त्यक्त्वा रणशिरो जनाः ॥ ९२ ॥ ऊरुग्राहगृही-

---

हट उत्पन्न होगई और वे परस्पर एक दूसरेको पहचान न सके ८५। हे राजन् ! अर्जुनके छोड़ेहुए बाणोंसे मर्मस्थानोंमें घायल होनेके कारणसे सैनिक इधर उधरको भागतेहुए ठोकरें खानेलगे और गिरनेलगे बहुतसे वहाँ ही काठसे रहगए और बहुतसोंका चित्त मलिन होगया ॥ ८६ ॥ प्रजाओंके संहारके समान उस महाभयङ्कर दुष्पार और अतिदारुण युद्धके चलते रहनेसे और रुधिरके छिड़काव तथा वायुके वेगसे धूलि रुधिरसे भीग जानेके कारण भूमि में जहाँकी तहाँ ही शान्त होगई ॥ ८७–८८ ॥ युद्धमें रथोंके पहिये धुरी पर्य्यन्त डूब रहे थे, रणाङ्गणमें तुम्हारे मदमत्त सहस्रों हाथी, जिनके कि- अंग प्रत्यङ्ग चिर गए थे तथा महावत मरगए थे वे भयङ्कर रूपसे चिंघाड़ते हुए अपनी ही सेनाको कुचलते हुए भागने लगे ॥ ८९–९० ॥ हे राजन् ! अर्जुनके बाणोंसे व्याकुल हुए और जिनके घुड़सवार मरगए हैं ऐसे घोड़े तथा पैदल भयके मारे रणभूमिमेंसे भागनेलगे ॥९१॥ बहुतसे पुरुषोंके घावोंमेंसे रुधिर बह रहा था और वे डरकर खुले केश ही रणके मुहानेसे भागे जारहे थे ॥ ९२ ॥ बहुतसे मनुष्य डरके मारे घुटने

तांश्च केचित्तत्राभवन् भुवि । हतानाञ्चापरे मध्ये द्विरदानां निलिल्यिरे ॥ ९३ ॥ एवं तव वलं राजन् द्रावयित्वा धनञ्जयः । न्यवधीत् सायकैर्घोरैः सिन्धुराजस्य रक्षिणः ॥ ९४ ॥ कर्णं द्रौणिं कृपं शल्यं वृषसेनं सुयोधनम् । छादयामास तीव्रेण शरजालेन पाण्डवः ॥९५॥ न गृह्णन्न क्षिपन्राजन् मुञ्चन्नापि च सन्दधत् । अदृश्यतार्जुनः संख्ये शीघ्रास्त्रत्वात् कथञ्चन ॥ ९६ ॥ धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यतेऽस्मास्यतः सदा । सायकाश्च व्यदृश्यन्त निश्चरन्तः समन्ततः ॥ ९७॥ कर्णस्य तु धनुश्छित्त्वा वृषसेनस्य चैव ह । शल्यस्य सूतं भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ९८ ॥ गाढविद्धावुभौ कृत्वा शरैः स्वस्रीयमातुलौ । अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो द्रौणिशारद्वतौ रणे ॥ ९९ ॥ एवं तान् व्याकुलीकृत्य त्वदीयानां महार-

---

ढीले पड़जानेके कारण एक भी पग (कदम) नहीं उठा सकते थे और वहुतसे योधा डरके मारे मरे हुए हाथियोंकी लोथोंमें छिपगए थे ॥९३॥ हे राजन् ! इसप्रकार तुम्हारी सेनाको भगाकर अर्जुन जयद्रथके रक्षकोंके ऊपर वाण वरसाने लगा ॥९४॥ अर्जुनने अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, शल्य, वृषसेन और दुर्योधनको तीक्ष्ण वाणोंके समूहसे ढकदिया ॥ ९५ ॥ हे राजन् ! अर्जुन रणमें वहुत ही फुर्तीसे वाण छोड़ता था, इसकारण वह कब वाण लेता है, कब चढ़ाता है और कब छोड़ता है, यह कुछ नहीं दीखता था ॥९६॥ वाण छोड़नेवाले अर्जुनके धनुषका घेरा और वाण ही चारों दिशाओंमें दिखाई पड़ते थे ॥ ९७ ॥ अर्जुनने कर्ण और वृषसेनके धनुषको काटकर शल्यके सारथिको भल्ल मारकर रथकी बैठक परसे नीचे गिरादिया ॥ ९८ ॥ अर्जुनने दोनों मामा भाञ्जे कृपाचार्य और अश्वत्थामाको वाणोंसे वहुत घायल करडाला ॥ ९९ ॥ इसप्रकार तुम्हारे महारथियोंको व्याकुल करके अर्जुनने अग्निकी समान घोर और इन्द्रवज्रकी समान

रथान् । उज्जहार शरं घोरं पाण्डवोऽनलसन्निभम्॥१००॥ इन्द्राशनिसमस्पर्शं दिव्यमस्त्राभिमन्त्रितम् । सर्वभारसहं शश्वद्गन्धमाल्यार्चितं महत् ॥ १०१ ॥ वज्रेणास्त्रेण संयोज्य विधिवत् कुरुनन्दनः । समादधत्महाबाहुर्गाण्डीवे क्षिप्रमर्जुनः ॥ १०२ ॥ तस्मिन् सन्धीयमाने तु शरे ज्वलनतेजसि । अन्तरिक्षे महानादो भूतानामभवन्नृप ॥ १०३ ॥ अब्रवीच्च पुनस्तत्र त्वरमाणो जनार्दनः । धनञ्जय शिरश्छिन्धि सैन्धवस्य दुरात्मनः ॥ १०४ ॥ अस्तं महीधरश्रेष्ठं यियासति दिवाकरः । शृणुष्वैतच्च मे वाक्यं जयद्रथवधं प्रति॥१०५॥ वृद्धक्षत्रः सैन्धवस्य पिता जगति विश्रुतः। स कालेनेह महता सैन्धवं प्राप्तवान् सुतम् ॥१०६॥ जयद्रथममित्रघ्नं वागुवाचाशरीरिणी । नृपमन्तर्हिता वाणी मेघदुन्दुभिनिः-

दिव्य अस्त्रोंके मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित, सब प्रकारके भारको सहने वाला सदा गन्ध और मालाओंसे पूजित एक महाभयानक बाण खेंचकर निकाला ॥१००-१०१॥ महाबाहु कुरुनन्दन अर्जुनने उसको शास्त्रानुसार वज्र नामक अस्त्रसे अभिमन्त्रित करके शीघ्रता से गाण्डीव धनुष पर चढ़ाया ॥ १०२ ॥ दमकते हुए तेजवाले उस बाणको धनुषके ऊपर चढ़ाने पर हे राजन ! आकाशमें प्राणी बड़ाभारी कोलाहल करनेलगे॥१०३॥उस समय श्रीकृष्णने फुरतीके साथ फिर अर्जुनसे कहा, कि—"हे धनञ्जय ! इस दुष्टात्माके शिरको तू शीघ्रतासे काटडाल ॥ १०४ ॥ सूर्य अस्त होनेके लिये पर्वतोंमें श्रेष्ठ अस्ताचल पर जाना चाहता है (अस्त होनेको है) जयद्रथवधके विषयमें तू मेरी यह बात सुन कि-॥१०५॥ जयद्रथका पिता वृद्धक्षत्र संसारमें प्रसिद्ध है उसकी अधिक अवस्था होजाने पर यह जयद्रथ नामक पुत्र हुआ था ॥ १०६ ॥ जब इस राजाका जन्म हुआ था, उस समय मेघ तथा दुन्दुभिकी समान गर्जना करती हुई आकाशवाणीने अदृश्य रहकर इसको

स्वना ॥ १०७॥ तवात्मजो मनुष्येन्द्र कुलशीलदमादिभिः । गुणैर्भविष्यति विभो सदृशो वंशयोर्द्वयोः ॥१०८॥ क्षत्रियप्रवरो लोके नित्यं शूराभिसत्कृतः । किन्त्वस्य युध्यमानस्य संग्रामे क्षत्रियर्षभः ॥ १०९ ॥ शिरश्छेत्स्यति संक्रुद्धः शत्रुश्चालक्षितो भुवि । एतच्छ्रुत्वा सिन्धुराजो ध्यात्वा चिरमरिन्दमः ॥११० ॥ ज्ञातीन् सर्वानुवाचेदं पुत्रस्नेहाभिचोदितः। संग्रामे युध्यमानस्य वहतो महतीं धुरम् ॥ १११ ॥ धरण्यां मम पुत्रस्य पातयिष्यति यः शिरः । तस्यापि शतधा मूर्द्धा फलिष्यति न संशयः ॥ ११२ ॥ एवमुक्त्वा ततो राज्ये स्थापयित्वा जयद्रथम् । वृद्धक्षत्रो वनं यातस्तपश्चोग्रं समास्थितः ॥ ११३ ॥ सोऽयं तप्यति तेजस्वी तपो घोरं दुरासदम् । समन्तपञ्चकादस्माद्बहिर्वानरकेतन ॥ ११४ ॥ तस्मा-

---

पितासे कहा था कि—॥ १०७ ॥ हे समर्थ राजन् ! तुम्हारा पुत्र कुल शील और दम आदि गुणोंमें चन्द्रवंशी तथा सूर्यवंशियोंकी समान होगा ॥१०८॥ यह जगत्में क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ गिना जायगा और शूरोंमें नित्य सत्कार पावेगा, परन्तु एक प्रतिष्ठित महाक्षत्रिय अचानक चढ़कर आवेगा और युद्ध करतेहुए तुम्हारे इस पुत्रके शिरको क्रोधमें भरकर काट डालेगा, यह सुनकर अरिन्दम सिन्धुराजने वहुत देरतक विचार किया ॥ १०९–११० ॥ फिर पुत्रस्नेहके कारण खिन्नहुए उस राजाने अपने सब जातिवालों से कहा, कि–मेरा पुत्र संग्राममें वड़ेभारी भारको अपने ऊपर लेकर युद्ध करता होगा, उस समय जो मनुष्य इसके शिरको भूमिपर गिरावेगा उसके शिरके भी अवश्य ही सौ टुकड़े होजायँगे ॥ १११ ॥ ११२ ॥ राजा वृद्धक्षत्र ऐसा कहकर पुत्रको राज्य दे वनको चलागया और उग्र तप करनेलगा ॥ ११३ ॥ हे वानरकेतु अर्जुन ! वह तपस्वी अतितेजस्वी राजा वृद्धक्षत्र इस समय स्यमन्तपञ्चक नामक क्षेत्रके वाहरी भागमें अतिघोर दुरा-

ज्जयद्रथस्य त्वं शिरश्छित्वा महामृधे। दिव्येनास्त्रेण रिपुहन् घोरेणाद्भुतकर्मणा ॥ ११५ ॥ सकुण्डलं सिंधुपतेः प्रभञ्जनसुतानुज । उत्संगे पातयस्वास्य वृद्धक्षत्रस्य भारत ॥ ११६ ॥ अथ त्वमस्य मूर्द्धानं पातयिष्यसि भूतले । तत्रापि शतधा मूर्द्धा फलिष्यति न संशयः ॥११७॥ यथा चैतन्न जानीयात् स राजा तपसि स्थितः । तथा कुरु कुरुश्रेष्ठ दिव्यमस्त्रमुपाश्रितः ॥११८॥ न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते तव किञ्चन। समस्तेष्वपि लोकेषु त्रिषु वासवनन्दन ११८ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं सृक्कणी परिसंलिहन्। इन्द्राशनिसमस्पर्शं दिव्यमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥ १२० ॥ सर्वभारसहं शश्वद्गन्धमाल्यार्च्चितं शरम् । विससर्जार्जुनस्तूर्णं सैन्धवस्य वधे धृतम् ॥ १२२ ॥ स

सद तप कररहा है ॥ ११४ ॥ अतः हे शत्रुहन्ता ! हे भीमके छोटे भाई ! तू इस महासंग्राममें घोर और अद्भुत कर्म करनेवाले दिव्य अस्त्रसे सिन्धुराज जयद्रथके कुण्डलोंवाले मस्तकको काट कर वृद्धक्षत्रकी गोदीमें डालदे ॥ ११५–११६ ॥ यदि तू इसके मस्तकको भूमिमें गिरावेगा तो निःसन्देह तेरे मस्तकके भी सौ टुकड़े होजायँगे ॥ ११७ ॥ अतः हे कुरुश्रेष्ठ ! तप करताहुआ उसका पिता हमारी इस वातको न जानने पावे तैसे तू दिव्य अस्त्रको लेकर इसके मस्तकको काटडाल ॥ ११२ ॥ हे इन्द्रपुत्र ! तुझे समस्त लोकोंमें कुछ भी असाध्य वा अकार्य नहीं है तू जो चाहे वही करसकता है” ॥११९॥ कृष्णकी इन वातोंको सुनकर अर्जुन दोनों जवाडोंको चाटनेलगा और उसने इन्द्रके वज्रकी समान, तीक्ष्ण, सवके पराक्रमको सहनेवाले, नित्य चन्दन तथा गन्धोंसे अर्चित, दिव्य मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित कर जयद्रथके वधके लिए धनुष पर चढ़ाये हुए वाणको छोडदिया ॥१२०–१२१॥ गाण्डीव धनुषमेंसे छूटाहुआ वह वाजकी समान शीघ्रगामी वाण सिन्धुराजके मस्तकको काट उसे लेकर आकाशमेंको उडा १२२

तु गाण्डीवनिर्मुक्तः शरः श्येन इवाशुगः । छित्त्वा शिरः सिन्धुपतेरुत्पपात विहायसम् ॥ १२२ ॥ तच्छिरः सिन्धुराजस्य शरैरूर्ध्वमवाहयत् । दुर्हृदामप्रहर्षाय सुहृदां हर्षणाय च ॥ १२३ ॥ शरैः कदम्बकीकृत्य काले तस्मिंश्च पाण्डवः । योधयामास तांश्चैव पाण्डवः षण्महारथान् ॥ १२४ ॥ ततः सुमहदाश्चर्यं तत्रापश्याम भारत । समन्तपञ्चकाद्बाह्यं शिरस्तद्व्यहरत्ततः ॥ १२५ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु वृद्धक्षत्रो महीपतिः । सन्ध्यामुपास्ते तेजस्वी सम्बन्धी तव मारिष ॥ १२६ ॥ उपासीनस्य तस्याथ कृष्णकेशं सकुण्डलम् । सिन्धुराजस्य मूर्द्धानमुत्सङ्गे तमपातयत् ॥ १२७ ॥ तस्योत्सङ्गे निपतितं शिरस्तच्चारुकुण्डलम् । वृद्धक्षत्रस्य नृपतेरलक्षितमरिन्दम ॥ १२८ ॥ कृतजप्यस्य तस्याथ वृद्धक्षत्रस्य भारत । प्रोत्तिष्ठतस्तत् सहसा शिरोऽगच्छद्धरातलम् ॥ १२९ ॥

अर्जुनने मित्रोंको प्रसन्न और शत्रुओंको दुःखी करनेके लिये सिन्धुराजके उस मस्तकको बाणोंसे आकाशमें ऊपरको चढाया ॥१२३॥ उस समय तुम्हारे पक्षके छहों महारथी भी क्रोधमें भर कर लडनेलगे परन्तु अर्जुन उनको कदम्बके फूलकी समान तुच्छ गिनकर उनके साथ बाणोंसे लडता रहा ॥ १२४ ॥ हे भारत ! उस समय हमने एक बडाभारी आश्चर्य देखा, कि–अर्जुनका बाण जयद्रथके शिरको स्यमन्तपञ्चकसे बाहर ले गया ॥ १२५ ॥ हे राजन् ! उस समय तुम्हारे सम्बन्धी अतितेजस्वी राजा वृद्धक्षत्र सन्ध्यावन्दन कररहे थे ॥ १२६ ॥ बाणने पूजा करतेहुए वृद्धक्षत्रकी गोदीमें जयद्रथके काले केश और कुण्डलोंसे शोभित मस्तकको डालदिया ॥१२७॥ हे अरिदमन ! सुन्दर कुण्डलोंवाला वह मस्तक वृद्धक्षत्रकी गोदीमें इसप्रकार गिरा कि–उसको मालूम ही नहीं हुआ ॥ १२८ ॥ हे भारत ! जब राजा वृद्धक्षत्र जप करके उठा तब उसकी गोदीमेंसे वह मस्तक

ततस्तस्य नरेन्द्रस्य पुत्रमूर्द्धनि भूतले। गते तस्यापि शतधा मूर्द्धागच्छदरिन्दमः ॥ १३० ॥ ततः सर्वाणि सैन्यानि विस्मयं जग्मुरुत्तमम् । वासुदेवञ्च बीभत्सुं प्रशशंसुर्महारथम् ॥१३१॥ ततो विनिहते राजन् सिन्धुराजे किरीटिना । तमस्तद्वासुदेवेन संहृतं भरतर्षभ ॥ १३२ ॥ पश्चाज्ज्ञातं महीपाल तव पुत्रैः सहानुगैः । वासुदेवप्रयुक्तेयं मायेति नृपसत्तम ॥ १३३ ॥ एवं स निहतो राजन् पार्थेनामिततेजसा । अक्षौहिणीरष्ट हत्वा जामाता तव सैन्धवः ॥ १३४ ॥ हतं जयद्रथं दृष्ट्वा तव पुत्रा नराधिप । दुःखादश्रूणि मुमुचुर्निराशाश्चाभवन् जये ॥ १३५ ॥ ततो जयद्रथे राजन् हते पार्थेन केशवः । दध्मौ शंखं महाबाहुरर्जुनश्च परन्तपः ॥ १३६ ॥ भीमश्च वृष्णिसिंहश्च युधामन्युश्च भारत । उत्तमौजाश्च विक्रान्तः शंखान्दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ १३७ ॥ श्रुत्वा

सहसा भूमिपर गिरपड़ा ॥ १२९ ॥ हे अरिन्दम! पुत्रका मस्तक पृथ्वीपर गिरते ही उसके शिरके भी सौ टुकड़े होगए ॥ १३०॥ यह देखकर सब सेनाओंको बड़ा आश्चर्यहुआ और वे महारथी अर्जुन तथा श्रीकृष्णकी प्रशंसा करनेलगे ॥ १३१ ॥ हे राजन्! जब किरीटी अर्जुनने सिन्धुराजको मारडाला तब हे भरतसत्तम! भगवान् वासुदेवने अपने रचेहुए अन्धकारको हटालिया॥१३२॥ तब हे राजन्! अपने साथियों सहित तुम्हारे पुत्रोंने यह जाना, कि–हा! यह तो श्रीकृष्णकी रची माया थी ॥ १३३ ॥ इस प्रकार अपारतेजस्वी अर्जुनने आठ अक्षौहिणी सेनाका संहार करके तुम्हारे जमाई सिन्धुराजको मारडाला ॥१३४॥ हे राजन्! तुम्हारे पुत्र जयद्रथको मराहुआ देखकर दुःखसे आँसू बहानेलगे और विजयके विषयमें निराश होगए ॥ १३५ ॥ हे राजन्! अर्जुनके द्वारा जयद्रथके मारेजाने पर परन्तप श्रीकृष्ण, महाबाहु अर्जुन, भीमसेन, वृष्णिसिंह सात्यकि और पराक्रमी उत्तमौजाने

महान्तं तं शब्दं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः। सैन्धवं निहतं मेने फाल्गुनेन महात्मना ॥ १३८ ॥ ततो वादित्रघोषेण स्वान्योधान्पर्यहर्षयत्। अभ्यवर्तत संग्रामे भारद्वाजं युयुत्सया ॥ १३९ ॥ ततः प्रववृते राजन्नस्तं गच्छति भास्करे। द्रोणस्य सोमकैः सार्द्धं संग्रामो लोमहर्षणः ॥ १४० ॥ ते तु सर्वप्रयत्नेन भारद्वाजं जिघांसवः। सैन्धवे निहते राजन्नयुध्यन्त महारथाः ॥ १४१ ॥ पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सैन्धवं विनिहत्य च। अयोधयंस्ततो द्रोणं जयोन्मत्तास्ततस्ततः ॥ १४२ ॥ अर्जुनोऽपि ततो योधांस्तावकान् रथसत्तमान्। अयोधयन्महाबाहुर्हत्वा सैन्धवकं नृपम् ॥ १४३ ॥ स देवशत्रूनिव देवराजः किरीटमाली व्यधमत् समन्तात्। यथा तमांस्यभ्युदितस्तमोघ्नः पूर्वप्रतिज्ञां समवाप्य वीरः ॥१४४॥*॥

अपने २ शंखोंको अलग २ बजाया ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ महात्मा धर्मराजने उस बडीभारी शंखध्वनिको सुनकर जाना, कि-'महात्मा अर्जुनने सिन्धुराजको मारडाला' ॥१३८॥ तब उन्होंने बाजे बजवाकर अपने योधाओंको हर्षित किया और संग्राममें द्रोणके साथ लडनेकी इच्छासे उनके सामने धावा करदिया ॥ १३९ ॥ हे राजन्! सूर्यके अस्त होजाने पर द्रोणका सोमकोंके साथ लोमहर्षण संग्राम होनेलगा ॥ १४० ॥ हे राजन्! वे सब जयद्रथके मारेजाने पर द्रोणको मारनेकी इच्छासे यत्नके साथ युद्ध करनेलगे ॥ १४१ ॥ पाण्डव सिंधुराजको मारकर और विजयको पाकर जयसे उन्मत्त हो द्रोणके साथ संग्राम करने लगे ॥ १४२ ॥ महाबाहु अर्जुन भी राजा जयद्रथको मारकर तुम्हारे श्रेष्ठ २ रथियोंसे युद्ध करनेलगा ॥ १४३ ॥ किरीटमाली वीरवर अर्जुन, उदय होताहुआ सूर्य जैसे अन्धकारको नष्ट कर देता है तैसे ही (जयद्रथको मार) अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करके, देवराज इन्द्र जैसे देवशत्रु असुरोंका नाश करता है तैसे ही तुम्हारे योधाओंका चारों ओरसे संहार करनेलगा ॥ १४४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तस्मिन् विनिहते वीरे सैन्धवे सव्यसाचिना । मामका यदकुर्वन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा रणे पार्थेन भारत । अमर्षवशमापन्नः कृपः शारद्वतस्ततः ॥ २ ॥ महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् । द्रौणिश्चाभ्यद्रवत् पार्थं रथमास्थाय फाल्गुनम् ३ तावेतौ रथिनां श्रेष्ठौ रथाभ्यां रथसत्तमौ । उभावुभयतस्तीक्ष्णैर्विशिखैरभ्यवर्षताम् ॥ ४ ॥ स तथा शरवर्षाभ्यां सुमहद्भ्यां महाभुजः । पीड्यमानः परामार्त्तिमगमद्रथिनाम्वरः ॥ ५ ॥ सोऽजिघांसुर्गुरुं संख्ये गुरोस्तनयमेव च । चकाराचार्यकं तत्र कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ ६ ॥ अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च । मन्दवेगानिषूंस्ताभ्यामजिघांसुरथासृजत् ॥ ७ ॥ ते चापि भृशमभ्यघ्नन् विशिखाः पार्थचोदिताः । बहुत्वात्तु परामार्त्तिं शरा-

---

धृतराष्ट्रने कहा कि--हे सञ्जय! जव अर्जुनने वीरवर जयद्रथको मारडाला, तव मेरे पुत्रोंने क्या किया? यह मुझे सुना ॥ १ ॥ संजयने उत्तर दिया, कि-हे भारत! रणमें अर्जुनने जयद्रथको मारडाला यह देख कृपाचार्य क्रोधमें भरकर अर्जुनके ऊपर वडीभारी वाण वर्षा करनेलगे, दूसरी ओरसे अश्वत्थामा भी रथमें वैठकर अर्जुनके ऊपर जाचढा ॥ २ ॥ ३ ॥ इसप्रकार वे दोनों महारथी रथोंमें वैठ दोनों ओरसे अर्जुनके ऊपर तीक्ष्ण वाण छोडनेलगे ॥ ४ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ महावाहु अर्जुन उस वड़ी भारी वाणवर्षासे पीड़ित हो वहुत ही व्यथित होगया ॥ ५ ॥ वह गुरु तथा गुरुपुत्रको मारना नहीं चाहता था, इसलिये वह रणमें उनका सन्मान करनेलगा॥६॥उनको मारनेकी इच्छा न रखनेवाला अर्जुन उनके अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे दूर हटाकर, उनके ऊपर धीरे २ वाण छोडनेलगा ॥ ७ ॥ अर्जुनने यद्यपि मन्दवेगसे वाण छोड़े थे, परन्तु वे वाण उनके वड़े वेगसे लगे और

णान्तावगच्छताम् ॥ ८ ॥ अथ शारद्वतो राजन् कौन्तेयशरपीडितः । अवासीदद्रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह ॥ ९ ॥ विह्वलन्तमभिज्ञाय भर्त्तारं शरपीडितम् । हतोऽयमिति च ज्ञात्वा सारथिस्तमपावहत् ॥ १० ॥ तस्मिन् भग्ने महाराज कृपे शारद्वते युधि । अश्वत्थामाप्यपायासीत् पाण्डवेयाद्रथान्तरम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा शारद्वतं पार्थो मूर्च्छितं शरपीडितम् । रथ एव महेष्वासः सकृपं पर्यदेवयत् ॥ १२ ॥ अश्रुपूर्णमुखो दीनो वचनञ्चेदमब्रवीत् । पश्यन्निदं महाप्राज्ञः क्षत्ता राजानमुक्तवान् ॥ १३ ॥ कुलान्तकरणे पापे जातमात्रे सुयोधने । नीयतां परलोकाय साध्वयं कुलपांसनः ॥१४॥ अस्माद्धि कुरुमुख्यानां महदुत्पत्स्यते भयम् । तदिदं समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ॥१५॥ तत्कृते ह्यद्य पश्यामि शर-

---

बहुतसे बाणोंकी चोट लगनेसे उनके शरीरमें बडीभारी वेदना होनेलगी ॥ ८ ॥ हे राजन् ! कुन्तीपुत्रके बाणोंके प्रहारसे शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यको जब बहुत ही वेदना हुई, तब वे रथकी बैठकमें बैठगए और मूर्छित होगए ॥ ९ ॥ कृपाचार्यका सारथि उनको बाणके प्रहारसे विह्वल हुआ देखकर " यह तो मरगए" ऐसा समझ उनको रणमेंसे बाहर लेगया ॥ १० ॥ हे महाराज ! एकसाथ कृपाचार्य मूर्छित होगए, यह देखकर अश्वत्थामा रणमें अर्जुनको छोड दूसरे रथमें बैठकर तहाँसे दूर भागगया ॥११॥ महाधनुषधारी अर्जुन अपने बाणके प्रहारसे कृपाचार्यको रथमें मूर्छित पडा देखकर अपने रथमें बैठा २ ही उनके लिए शोक करनेलगा १२ और आँखोंमें आँसू भर उतरेहुए मुखसे यह कहने लगा, कि-इस कुलनाशक पापी दुर्योधनके उत्पन्न होते ही महाबुद्धिमान् विदुरने धृतराष्ट्रसे कहा था कि-इस कुलपांसनको यमलोकमें भेज दो, तो अच्छा हो ॥ १३ ॥ १४ ॥ क्योंकि-इस बालकसे कुरुवंशके मुख्य २ पुरुषोंको बडाभारी भय होगा उन

तल्पगतं गुरुम् । धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलपौरुषम् ॥१६॥ को हि ब्राह्मणमाचार्यमभिद्रुह्येत मादृशः । ऋषिपुत्रो ममाचार्यो द्रोणस्य परमः सखा ॥१७॥ एष शेते रथोपस्थे कृपो मद्बाणपीडितः । अकामयानेन मया विशिखैरर्दितो भृशम्॥१८॥अवसीदन् रथोपस्थे प्राणान् पीडयतीव मे । पुत्रशोकाभितप्तेन शरैरभ्यर्दितेन च ॥ १९ ॥ अभ्यस्तो बहुभिर्बाणैर्दशधर्मगतेन वै । शोचयत्येष नियतं भूयः पुत्रवधाद्धि माम् २० कृपणं स्वरथे सन्नं पश्य कृष्ण यथा गतम् । उपाकृत्य वै तु विद्यामाचार्येभ्यो नरर्षभाः २१ प्रयच्छन्तीह ये कामान् देवत्वमुपयांति ते । ये तु विद्यामुपादाय गुरुभ्यः पुरुषाधमाः ॥ २२ ॥ घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तास्ते वै निरय-

सत्यवादीकी बात आज स्पष्ट रीतिसे सामने है१५हा ! दुर्योधनके कारणसे ही मैं अपने गुरुको शरशय्यापर सोतेहुए देखता हूँ ! क्षत्रियके धर्मको धिक्कार है ! क्षत्रियके बल पुरुषार्थको धिक्कार है !! ॥१६॥ मुझसरीखा कौन पुरुष ब्राह्मण जातिके आचार्यसे द्रोह करेगा ? कृपाचार्य मेरे गुरु हैं, द्रोणके मित्र हैं और ऋषिपुत्र हैं ॥ १७ ॥ हा ! वे कृपाचार्य ही मेरे बाणसे पीडित होकर रथके भीतर मूर्छित पड़ेहुए हैं, मैं इनको मारना नहीं चाहता था, तो भी मैंने बाण मारकर इनको बहुत ही पीडित किया है १८ बाणोंकी पीडासे यह रथके भीतर पड़े हैं, इनका पडना मेरे प्राणोंको बहुत ही दुःखी कररहा है । मैं पुत्रशोकसे सन्तप्त होरहा था और बाणोंकी वेदनासे पीडा पारहा था, ऐसी दुर्गतिमें होनेके कारण मैंने गुरुजीके ऊपर बहुतसे बाण छोड़े, इससे यह अपने रथमें मूर्छित हो कृपणकी समान पड़े हैं, हे कृष्ण ! तुम इनकी ओरको देखो तो, मैं अभिमन्युके मरणसे दुःखी हूँ, उस दुःखको यह और बढारहे हैं, जो गुरुओंसे विद्या पढ कर उनकी इच्छाओं को पूरी करते हैं, वे महापुरुष देवयोनि पाते हैं, परन्तु जो गुरु-

गामिनः । तदिदं नरकायाद्य कृतं कर्म मया ध्रुवम् ॥२३॥ आचार्यं शरवर्षेण रथे सादयता कृपं । यत्तत् पूर्वमुपाकुर्वन्नस्त्रं मामब्रवीत् कृपः ॥ २४ ॥ न कथञ्चन कौरव्य प्रहर्त्तव्यं गुराविति । तदिदं वचनं साधोराचार्यस्य महात्मनः ॥ २५ ॥ नानुष्ठितं तमेवाजौ विशिखैरभिवर्षता । नमस्तस्मै सुपूज्याय गौतमायापलायिने ॥२६॥ धिगस्तु मम वार्ष्णेय यो ह्यस्मै प्रहराम्यहम् । तथा विलपमाने तु सव्यसाचिनि तं प्रति ॥ २७ ॥ सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा राधेयः समुपाद्रवत् । तमापतन्तं राधेयमर्जुनस्य रथं प्रति ॥ २८ ॥ पांचाल्यौ सात्यकिश्चैव सहसा समुपाद्रवन् । उपायान्तन्तु राधेयं दृष्ट्वा पार्थो महारथः ॥ २९ ॥ प्रहसन्देवकीपुत्रमिदं वचनमब्रवीत् । एष प्रयात्यधिरथिः सात्यकेः स्यन्दनं प्रति ॥ ३० ॥ न मृष्यति हतं नूनं

पाधम गुरुओंसे विद्या सीख उनको ही मारते हैं, वे अवश्य ही नरकमें पडते हैं, परन्तु मैंने वाणोंकी वर्षासे गुरुको रथमें मूर्छितकर नरकमें पडनेका ही काम किया है, पहले अस्त्र-विद्या पढाते समय कृपाचार्यजीने मुझसे कहा था, कि–१९-२४ हे कुरुवंशी ! गुरुके ऊपर किसीप्रकार कहीं भी प्रहार नहीं करना चाहिये,परन्तु मैंने उन साधु महात्माके वचनका पालन नहीं किया और उनके ही ऊपर वाण वरसाये, रणमेंसे न भागनेवाले सुपूज्य कृपाचार्यको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे कृष्ण!मुझे धिक्कार है,कि–मैंने इनके ऊपर हाथ उठाया–जब अर्जुन कृपाचार्यके लिये इसप्रकार विलाप कररहा था, उसी समय ॥२७॥ जयद्रथको मरा देखकर कर्ण दौड़ आया,अर्जुनके रथकी ओर कर्णको बढ़ता देखकर ॥ २८ ॥ दोनों पञ्चालपुत्र और सात्यकि सहसा उसकी ओरको झपटगये, महारथी अर्जुन कर्णको अपनी ओरको बढते देख हँसकर श्रीकृष्णसे यह कहनेलगा, कि–हे कृष्ण ! यह अधिरथका पुत्र कर्ण सात्यकिके

भूरिश्रवसमाहवे । यत्र यात्येष तत्र त्वं चोदयाश्वान् जनार्दन ३१ न सौमदत्तेः पदवीं गमयेत् सात्वतं वृषः । एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ॥ ३२ ॥ प्रत्युवाच महातेजाः कालयुक्तमिदं वचः । अलमेष महाबाहुः कर्णायैकोऽपि पाण्डव ॥ ३३ ॥ किम्पुनर्द्रौपदेयाभ्यां सहितः सात्वतर्षभः । न च तावत् क्षमः पार्थ कर्णेन तव सङ्गरः ॥ ३४ ॥ प्रज्वलन्ती महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी । त्वदर्थं पूज्यमानैषा रक्ष्यते परवीरहन् ॥ ३५ ॥ अतः कर्णः प्रयात्वत्र सात्वतस्य यथा तथा। अहं ज्ञास्यामि कौंतेय कालमस्य दुरात्मनः । यत्रैनं विशिखैस्तीक्ष्णैः पातयिष्यसि भूतले ३६ धृतराष्ट्र उवाच । योऽसौ कर्णेन वीरस्य वार्ष्णेयस्य समागमः।हते

रथकी ओरको चढ़ा चला आरहा है ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह भूरिश्रवाके मरणको सह नहीं सका है, इसकारण यह जिस ओरको वढरहा है, उस ओरको घोड़े हाँकिये ॥ ३१ ॥ जिससे कि-यह कर्ण, सात्यकिको भूरिश्रवाके पास (यमलोकमें) न पहुँचा सके महाभुज श्रीकृष्ण अर्जुनकी इस वातको सुन समयानुसार यह वात कहनेलगे, कि-"हे पाण्डुपुत्र ! यह अकेला ही कर्णके लिए वहुत है और उसके पास पञ्चालराजके दो पुत्र हैं, तो फिर क्या चिन्ता है? और हे पार्थ! अभी कर्णके साथ तुम्हारा लड़ना ठीक नहीं है ॥ ३२-३४ ॥ उसके पास इन्द्रकी दीहुई वडीभारी उल्काकी समान प्रदीप्त एक शक्ति है, हे शत्रुओंके वीरोंको नष्ट करनेवाले अर्जुन ! उस शक्तिको वह तुम्हारे लिए ही रखकर उसकी पूजा किया करता है ॥ ३५ ॥ इसलिये कर्ण जैसे जारहा है तैसे ही उसे सात्यकिकी ओरको वढने दो, हे कौन्तेय ! जब मैं इस दुष्टात्माको मारनेके लिए समय वताऊँ, उस समय तुम इसको तीक्ष्ण वाण मारकर भूमिमें गिरादेना ॥ ३६ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! भूरिश्रवा और जयद्रथके मारे जाने पर जो

च भूरिश्रवसि सैंधवे च निपातिते ॥३७॥ सात्यकिश्चापि विरथः कं समारूढवान्रथम् । चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ तन्ममाचक्ष्व संजय ३८ सञ्जय उवाच । हन्त ते वर्त्तयिष्यामि यथावृत्तं महारणे । शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा दुराचरितमात्मनः ॥ ३९ ॥ पूर्वमेव हि कृष्णस्य मनोगतमिदं प्रभो । विजेतव्यो यथा वीरः सात्यकिसौमदत्तिना ४० अतीतानागते राजन् स हि वेत्ति जनार्दनः । ततः सूतं समाहूय दारुकं सन्दिदेश ह ॥ ४१ ॥ रथो मे युज्यतां कल्यमिति राजन्महाबल । न हि देवा न गन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ ४२ ॥ मानवा वा विजेतारः कृष्णयोः सन्ति केचन । पितामहपुरोगाश्च देवाः सिद्धाश्च तं विदुः ॥४३॥ तयोः प्रभावमतुलं शृणु युद्धं तु तत्तथा । सात्यकिं विरथं दृष्ट्वा कर्णं चाभ्युद्यतं युधि ॥४४॥ दध्मौ

यह वृष्णिवंशी वीर सात्यकिका कर्णके साथ युद्ध हुआ था ३७ उस युद्धमें तो सात्यकि रथहीन था, फिर वह कौनसे रथपर चढा था और चक्ररक्षक दोनों पञ्चालकुमार भी कौनसे रथमें बैठे थे, यह मुझे सुना ॥ ३८ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि-जैसे २ यह महायुद्ध हुआ, उस सबका वर्णन मैं तुमसे करता हूँ तुम स्थिर होकर अपने अन्यायके परिणामरूप युद्धको सुनो ॥३९॥ हे प्रभो! श्रीकृष्ण अपने मनमें इस बातको पहिले ही जानते थे. कि-इसप्रकार भूरिश्रवा सात्यकिको जीतलेगा ॥ ४० ॥ क्योंकि-हे राजन् । वह श्रीकृष्ण भूत भविष्यत् और वर्तमान कालकी सब बातें जानते हैं, इसलिये उन्होंने अपने सारथि दारुकको बुलाकर कहा, कि-॥४१॥ प्रातःकाल ही मेरे रथको जोतकर तयार रखना, हे राजन् ! श्रीकृष्ण और अर्जुनको न देवता, न गंधर्व न यक्ष, न सर्प, न राक्षस और न कोई मनुष्य ही जीत सकते हैं, पितामह आदि देवता और सिद्ध उनके इस अतुल प्रभावको जानते हैं, अब तुम युद्धके वर्णनको सुनो, श्रीकृष्णने सात्यकिको

शंखं महानादमार्षभेणाथ माधवः । दारुकोऽन्वेत्य सन्देशं श्रुत्वा शंखस्य च स्वनम् ॥ ४५ ॥ रथमन्वानयत्तस्मै सुवर्णोच्छ्रितकेतनम् । स केशवस्यानुमते रथं दारुकसंयुतम् ॥ ४६ ॥ आरुरोह शिनेः पौत्रो ज्वलनादित्यसन्निभम् । कामगैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पवलाहकैः ॥ ४७ ॥ हयोदग्रैर्महावेगैर्हेमभाण्डविभूषितैः । युक्तं समारुह्य च तं विमानप्रतिमं रथम् ॥ ४८ ॥ अभ्यद्रवत राधेयं प्रवपन् सायकान् बहून् । चक्ररक्षावपि तदा युधामन्यूत्तमौजसौ४९ धनञ्जयरथं हित्वा राधेयं प्रत्युदीयतुः । राधेयोऽपि महाराज शरवर्षं समुत्सृजन् ॥५०॥ अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धो रणे शैनेयमच्युतम् । नैव दैवं न गान्धर्वं नासुरोरगराक्षसम् ॥ ५१ ॥ तादृशं भुवि नो युद्धं दिवि वा श्रुतमित्युत । उपारमन तत्सैन्यं सरथाश्वनरद्वि-

रथहीन और कर्णको तयार हो चढकर आते देखकर अपने महाध्वनि करनेवाले शंखको ऋषभ स्वरसे वजाया, उस शङ्खके नादको सुनकर दारुकको श्रीकृष्णके संदेशकी याद आगयी ४२-४५ और वह गरुडकी ध्वजासे शोभायमान रथको सात्यकिके लिए ले आया, श्रीकृष्णकी सलाहसे सात्यकि सुवर्णके आभूषणोंवाले महावेगवान् घोड़ोंमें श्रेष्ठ शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और वलाहक नामक इच्छानुसार चलनेवाले घोड़ोंसे जुते और जिसमें दारुक वैठा हुआ था ऐसे अग्नि और सूर्यकी समान प्रकाशवान् रथमें वैठगया, विमानकी समान उस रथमें वैठकर सात्यकि वहुतसे वाण छोडताहुआ कर्णकी ओरको दौडा, अर्जुनके दोनों चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा भी अर्जुनके रथके पाससे चलकर कर्णके ऊपर टूटपड़े, हे महाराज ! राधाका पुत्र कर्ण भी क्रोधमें भर वाण वरसाता हुआ सात्यकिके ऊपर टूटपडा, हमने ऐसा युद्ध आकाशमें न देवताओंमें सुना, न गन्धर्वोंमें सुना और न राक्षसोंमें सुना तथा पृथ्वी पर मनुष्योंमें भी नहीं

पम् ॥ ५२ ॥ तयोर्दृष्ट्वा महाराज कर्म सम्मूढचेतसः । सर्वे च समपश्यन्त तद्युद्धमतिमानुषम् ॥ ५३ ॥ तयोर्नृवरयो राजन् सारथ्यं दारुकस्य च । गतप्रत्यागतावृत्तैर्मण्डलैः सन्निवर्त्तनैः ॥ ५४ ॥ सारथेस्तु रथस्तस्य काश्यपेयस्य विस्मिताः । नभस्तलगताश्चैव देवगन्धर्वदानवाः ॥ ५५ ॥ अतीवावहिता द्रष्टुं कर्णशैनेययो रणान् । मित्रार्थे तौ पराक्रान्तौ स्पर्द्धिनौ शुष्मिणौ रणे ॥ ५६ ॥ कर्णश्चामरसङ्काशो युयुधानश्च सात्यकिः। अन्योऽन्यं तौ महाराज शरवर्षैरवर्षताम् ॥५७॥ प्रममाथ शिनेः पौत्रः कर्णं सायकवृष्टिभिः। अमृष्यमाणो निधनं कौरव्यजलसन्धयोः ॥ ५८ ॥ कर्णः शोकसमाविष्टो महोरग इव श्वसन् । स शैनेयं रणे क्रुद्धः प्रदहन्निव चक्षुषा ॥ ५९ ॥ अभ्यधावत वेगेन पुनः पुनररिन्दम । तन्तु

सुना, हे महाराज ! उनके पराक्रमको देखकर रथ, हाथी, घोड़े और मनुष्यों सहित सारी सेना शान्त पड़गई और हे राजन् ! सबके सब योधा भौचक्केसे होकर उन दोनोंके अलौकिक युद्धको देखनेलगे, उन दोनोंके अलौकिक कर्म और कश्यपगोत्री सारथि दारुकके आगेको बढ़ना, पीछेको हटना, लौटना, मण्डलाकारसे घूमना आदि गतियोंसे सारथिकर्मको देखकर आकाशमें स्थित हो देव, दानव और गन्धर्व आश्चर्यमें होगए और कर्ण तथा सात्यकिके युद्धको अधिक सावधानीसे देखने लगे, हे महाराज ! मित्रोंके लिए रणमें पराक्रम करनेवाले क्रोधी और परस्पर स्पर्धा रखनेवाले देवताओंकी समान कर्ण और सात्यकि एक दूसरेके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ४६–५७ ॥ कुरुवंशी भूरिश्रवा और जलसन्धके मरणको न सहकर कर्ण सात्यकिको बाणोंसे घायल करने लगा ॥ ५८ ॥ हे शत्रुमर्दन ! शोकमें भरकर सर्पकी समान श्वास छोड़ताहुआ कर्ण अपने नेत्रसे मानो सात्यकिको भस्म ही कर

सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धं सात्यकिः प्रत्यविध्यत ॥ ६० ॥ महता शरवर्षेण
गजः प्रतिगजो यथा । तौ समेत्य नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ॥ ६१
अन्योऽन्यं सन्ततक्षाते रणेऽनुपमविक्रमौ । ततः कर्णं शिनेः पौत्रः
सर्वपारसवैः शरैः ॥ ६२ ॥ बिभेद सर्वगात्रेषु पुनः पुनररिन्दम ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ६३ ॥ अश्वांश्च चतुरः
श्वेतान् निजघ्ने निशितैः शरैः । छित्त्वा ध्वजं रथं चैव शतधा
पुरुषर्षभ ॥ ६४ ॥ चकार विरथं कर्णं तव पुत्रस्य पश्यतः । ततो
विमनसो राजंस्तावकास्ते महारथाः ॥ ६५ ॥ वृषसेनः कर्णसुतः
शल्यो मद्राधिपस्तथा । द्रोणपुत्रश्च शैनेयं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ६६ ॥
ततः पर्याकुलं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन । तथा सात्यकिना वीरे

डालेगा, इसप्रकार उसकी ओरको बारम्बार देखरहा था, सात्यकि उसको क्रोधमें भरा देखकर जैसे हाथी हाथीके साथ युद्ध करता है तैसे ही बडीभारी बाणवर्षा करताहुआ उसके साथ लडने लगा; रणमें अनुपम पराक्रमी और सिंहकी समान वेगवान् वे दोनों नरव्याघ्र एक दूसरेके पर प्रहार करनेलगे, हे अरिदमन ! तदनन्तर सात्यकि बारम्बार ठोस लोहेके बने बाण मारकर कर्णके सकल अङ्गोंको घायल करनेलगा और उसने भल्ल मारकर कर्णके सारथीको रथकी बैठकपरसे नीचे गिरादिया ५६–६३ और उसके चार श्वेत घोड़ोंको भी तीक्ष्ण बाणोंसे मारडाला, हे पुरुषसत्तम ! फिर उसने तुम्हारे पुत्रके सामने ही कर्णकी ध्वजा और रथके सैंकडों टुकड़े करके उसको रथहीन करदिया, हे राजन् ! तब तुम्हारे पुत्रोंका चित्त अनमनासा होगया और कर्णके पुत्र वृषसेन, मद्रराज शल्य तथा द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने चारों ओरसे सात्यकिको घेरलिया, उस समय चारों ओर गडबडी फैलगई, इसलिये कुछ भी मालूम नहीं होता था, सात्यकिके हाथसे इसप्रकार वीर कर्णके रथहीन होजाने पर

विरथे सूतजे कृते ॥६७॥ हाहाकारस्ततो राजन् सर्वसैन्येषु चाभवत् । कर्णोपि विरथो राजन् सात्वतेन कृतः शरैः ॥ ६८ ॥ दुर्योधनरथं तूर्णमारुरोह विनिःश्वसन् । मानयंस्तव पुत्रस्य बाल्यात्प्रभृति सौहृदम् ॥ ६९ ॥ कृतां राज्यप्रदानेन प्रतिज्ञां परिपालयन् । तथा तु विरथं कर्णं पुत्रान् वै तव पार्थिव ॥ ७० ॥ दुःशासनमुखान् शूरान्नावधीत् सात्यकिर्वशी । रक्षन् प्रतिज्ञां भीमेन पार्थेन च पुरा कृताम् ॥७१॥ विरथान् विह्वलांश्चक्रे न तु प्राणैर्व्ययोजयत् । भीमसेनेन तु वधः पुत्राणां ते प्रतिश्रुतः ॥७२॥ अनुद्यूते च पार्थेन वधः कर्णस्य संश्रुतः । वधे त्वकुर्वन् यत्नं ते तस्य कर्णमुखास्तदा ॥ ७३ ॥ नाशक्नुवंस्ततो हन्तुं सात्यकिं प्रवरा रथाः । द्रौणिश्च कृतवर्मा च तथैवान्ये महारथाः ॥७४॥ निर्जिता धनुषैकेन शतशः क्षत्रियर्षभाः । कांक्षता परलोकं च धर्मराजस्य

हे राजन् ! सब सेनाओंमें बड़ाभारी हाहाकार मचगया, हे राजन् ! सात्यकिके बाणोंसे रथहीन हुआ कर्ण कि-जो तुम्हारे पुत्रको बालकपनेसे मित्र मानता था और जिसने तुम्हारे पुत्रको राज्य दिलानेकी प्रतिज्ञा की थी, वह कर्ण गहरे २ साँस लेताहुआ शीघ्रतासे दुर्योधनके रथ पर चढ़गया, हे राजन् ! भीमसेन और अर्जुनकी प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिये सात्यकिने रथरहित हुए कर्ण तथा दुःशासन आदि तुम्हारे पुत्रोंका वध नहीं किया ६४-७१ भीमसेनने तुम्हारे पुत्रोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी और दूसरी बारके द्यूतमें अर्जुनने कर्णको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, इसलिये सात्यकिने उनको रथहीन करके व्याकुल तो किया परन्तु प्राण नहीं लिये और कर्ण आदि श्रेष्ठ २ रथियोंने सात्यकिको मारनेके लिए यत्न किया परन्तु उसको मार न सके, धर्मराजका हित करना चाहनेवाले और परलोकके अभिलाषी वीरतामें कृष्ण और अर्जुनकी समान सात्यकिने एक धनुषसे ही अश्वत्थामा, कृत-

च मिषम् ॥ ७५ ॥ कृष्णयोः सदृशो वीर्ये सात्यकिः शत्रुतापनः । जितवान् सर्वसैन्यानि तावकानि हसन्निव ॥ ७६ ॥ कृष्णो वापि भवेल्लोके पार्थो वापि धनुर्द्धरः । शैनेयो वा नरव्याघ्रश्चतुर्थो नोपलभ्यते ॥७७॥ धृतराष्ट्र उवाच । अजय्यं रथमास्थाय वासुदेवस्य सात्यकिः । विरथं कृतवान् कर्णं वासुदेवसमो युधि ॥ ७८ ॥ दारुकेण समायुक्तः स्वबाहुबलदर्पितः । कच्चिदन्यं समारूढः सात्यकिः शत्रुतापनः ॥ ७९ ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कुशलो ह्यसि भाषितुम् । असह्यं तमहं मन्ये तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ८० ॥ सञ्जय उवाच । शृणु राजन् यथा वृत्तं रथमन्यं महामतिः । दारुकस्यानुजस्तूर्णं कल्पनाविधिकल्पितम् ॥ ८१ ॥ आयसैः काञ्चनैश्चापि

वर्मा और सैंकड़ों श्रेष्ठ क्षत्रियोंको तथा तुम्हारी सब सेनाओंको हँसते २ जीतलिया ॥ ७२–७६ ॥ संसारमें श्रीकृष्ण और अर्जुन तथा नरव्याघ्र सात्यकिको छोड़कर ऐसा धनुषधारी चौथा नहीं है ॥ ७७ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि–वासुदेवकी समान युद्धमें पराक्रम करनेवाला अपने भुजबलका घमण्ड रखनेवाला सात्यकि दारुक सारथिवाले श्रीकृष्णके अजेय रथपर बैठकर कर्णको रथहीन करनेके अनन्तर भी क्या उस ही रथ पर बैठारहा अथवा वह शत्रुतापन दूसरे रथ पर बैठगया था ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ हे संजय ! मैं यह सब सुनना चाहता हूँ, तू कथा कहनेमें चतुर है, मैं सात्यकिको असह्य मानता हूँ, इसलिये तू उसके युद्धका वर्णन कर ॥ ८० ॥ संजयने उत्तर दिया, कि–हे राजन् ! इस युद्धमें जो कुछ हुआ उसको मैं तुमसे यथावत् कहता हूँ, सुनिये हे राजन् ! दारुकके छोटे भाईने मेघकी समान गम्भीर और बड़ी भारी घनघनाहट करताहुआ तथा सब सामग्रीसे भराहुआ रथ सात्यकिके पास लाकर खड़ा करदिया श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार उस रथको अनेकों प्रकारके आभूषणोंसे सजाया गया था, उसके

पट्टैः सन्नद्धकूबरम् । तारासहस्रखचितं सिंहध्वजपताकिनम् ८२ अश्वैर्वातजवैर्युक्तं हेमभाण्डपरिच्छदैः । सैन्धवैरिन्दुसंकाशैः सर्वशब्दातिगैर्दृढैः ॥ ८३ ॥ चित्रकाञ्चनसन्नाहैर्वाजिमुख्यैर्विशाम्पते । घण्टाजालाकुलरवं शक्तितोमरविद्युतम् ॥८४॥ युक्तं सांग्रामिकैर्द्रव्यैर्बहुशस्त्रपरिच्छदैः । रथं सम्पादयामास मेघगम्भीरनिःस्वनम् ॥८५॥ तं समारुह्य शैनेयस्तव सैन्यमुपाद्रवत् । दारुकोपि यथा कामं प्रययौ केशवान्तिकम् ॥८६॥ कर्णस्यापि रथं राजन् शंखगोक्षीरपाण्डुरैः । चित्रकाञ्चनसन्नाहैः सदश्वैर्वेगवत्तरैः ॥८७॥ हेमकक्ष्याध्वजोपेतं क्लृप्तयन्त्रपताकिनम् । अग्र्यं रथं सुयन्तारं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ॥ ८८ ॥ उपाजह्रुस्तमास्थाय कर्णोऽप्यभ्यद्रवद्रि-

---

ढाँचमें सोनेके और लोहेके पत्तर जड़ेहुए थे, रथ पर हजारों फुल्लियोंसे नकाशीका काम होरहा था, उसके ऊपर सिंहके चिन्हवाली ध्वजा फहरारही थी ॥ ८१ ॥८२॥ वह रथ सोनेके आभूषणोंसे सजाहुआ था, चन्द्रमाकी समान सफेद, रङ्गके अपनी हिनहिनाटसे सब शब्दोंको ढकदेनेवाले, दृढशरीर, सोनेके विचित्र प्रकारके कवचोंसे शोभायमान बढ़िया जातिके पवनकी समान वेगवाले और सिन्धु देशमें उत्पन्न हुए सुन्दर घोड़े उस रथमें जुतरहे थे, घंटियोंकी झनकारसे वह रथ गरजरहा था ! शक्ति और तोमररूप बिजलीकी चमकसे चमकरहा था, युद्धके अनेकों और बहुतसे शस्त्रोंसे भराहुआ मेघकी समान गंभीर शब्द कर रहा था ॥ ८०–८५ ॥ सात्यकि उसके ऊपर बैठकर तुम्हारी सेनापर झपटा और दारुक भी इच्छानुसार श्रीकृष्णके पास चलागया ॥ ८६ ॥ और हे राजन् ! कौरव भी शङ्ख और गोदुग्धकी समान श्वेत वर्णके तथा सुवर्णकी चित्र विचित्र झूलों वाले वेगवान् श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुते सुवर्णके पत्तरकी ध्वजावाले, यन्त्रोंसे भरे श्रेष्ठ सारथिवाले और बहुतसे शस्त्रोंसे युक्त, श्रेष्ठ

पून् । एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ८९ ॥ भूयश्चापि निबोध त्वं तवापनयजं क्षयम् । एकत्रिंशत्तव सुता भीमसेनेन पातिताः ॥ ९० ॥ दुर्मुखं प्रमुखे कृत्वा सततं चित्रयोधिनम् । शतशो निहता शूराः सात्येनार्जुनेन च ॥ ९१ ॥ भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा भगदत्तञ्च मारिष । एवमेष क्षयो वृत्तो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ९२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णसात्यकियुद्धे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तथा गतेषु शूरेषु तेषां मम च संयुगे । किं वै भीमस्तदाकार्षीत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । विरथो भीमसेनो वै कर्णवाक्शल्यपीडितः । अमर्षवशमापन्नः फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥ पुनः पुनस्तूवरक मूढ औदरिकेति

रथको कर्णके लिए लेआए, उसमें बैठकर कर्ण भी शत्रुओंकी ओरको दौड़ा, तुमने जो कुछ मुझसे बूझा, वह सब मैंने तुम्हें सुनादिया ॥ ८७–८९ ॥ अब अपने अन्यायसे उत्पन्न हुए और संहारको भी सुनो, तुम्हारे इकतीस पुत्रोंको भीमसेनने मार डाला॥९०॥हे राजन्!सात्यकि और अर्जुनने चित्रयोधी दुर्मुखको, भीष्मको और भगदत्तको मुहाने पर लाकर तुम्हारे सहस्रों वीरोंका संहार किया था, हे राजन्! तुम्हारी दुर्नीतिके कारण इसप्रकार बड़ाभारी संहार हुआ ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ एकसौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४७ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे संजय! जब पाण्डवोंके और मेरे वीरोंकी ऐसी दशा थी, उस समय भीमने क्या किया, वह मुझे सुना ॥ १ ॥ संजयने उत्तरदिया कि-हे राजन्! भीमका रथ टूटगया और कर्णने उसको वाणीरूप शल्यसे घायल करदिया, तब उसने खिन्न होकर अर्जुनसे यह बात कही, कि–॥ २ ॥

च । अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥३॥ इति मामब्रवीत् कर्णः पश्यतस्ते धनञ्जय । एवं वक्ता च मे वध्यस्तेन चोक्तोऽस्मि भारत ॥ ४ ॥ एतद्धि व्रतं महाबाहो त्वया सह कृतं मया । यथैतन्मम कौन्तेय यथा तव न संशयः ॥ ५ ॥ तद्वधाय नरश्रेष्ठ स्मरैतद्वचनं मम । यथा भवति तत् सत्यं तथा कुरु धनञ्जय ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य भीमस्यामितविक्रमः । ततोऽर्जुनोऽब्रवीत् कर्णं किञ्चिदभ्येत्य संयुगे ॥७॥ कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्रात्मसंस्तुत । अधर्मबुद्धे शृणु मे यत्त्वां वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥८॥ द्विविधं कर्म शूराणां युद्धे जयपराजयौ । तौ चाप्यनित्यौ राधेय वासवस्यापि युध्यतः॥९॥मुमूर्षुर्युयुधानेन विरथो विकलेन्द्रियः । मद्वध्य-

देखो भाई ! कर्ण तुम्हारे सामने मुझसे वार २ ओ नपुंसक ! ओ मूढ़ ! ओ घड़पेटू ! ओ शस्त्रचलानेमें मूढ़ ! ओ बालक ! ओ रणभीरु ! तू लड़ना छोड़ बैठ, ऐसी बातें कह कर मुझे तिलतिला रहा है, इसलिये मैं इसको मारडालना चाहता हूँ, हे भरतवंशी महाबाहु धनञ्जय ! मैं तुमसे इतना ही कहता हूँ, कि-मैंने जो तुम्हारे साथ व्रत धारण किया है, उसको तुम जानते ही हो इसलिये वह व्रत जैसे मेरा है वैसे ही तुम्हारा भी है, इसमें सन्देह नहीं है ॥३-५॥ इसलिये हे नरश्रेष्ठ ! तू इसका वध करने के लिये मेरे वचनको याद कर तथा ऐसा उपाय कर, कि-जिससे मेरी बात सच्ची होजाय ॥ ६ ॥ भीमकी बातको सुनकर परमपराक्रमी अर्जुन, युद्धमें जराएक आगे बढ़कर कर्णके पासको गया और उससे कहने लगा, कि-॥ ७ ॥ "अरे ओ कर्ण ! ओ कर्ण ! आँखें होतेहुए भी तू अन्धा है, अरे सूतपुत्र ! केवल तेरे पक्षवाले ही तेरी प्रशंसा करते हैं, परन्तु ओ अधर्मबुद्धि ! इस समय मैं तुझसे जो बात कहता हूँ, उसको सुन ॥ ८ ॥ युद्धमें शूरोंका दो प्रकारका काम होता है-या तो शत्रुको जीतले या

स्त्वमिति ज्ञात्वा जित्वा जीवन् विसर्जितः ॥ १० ॥ यदृच्छया रणे भीमं युध्यमानं महाबलम् । कथंचिद्विरथं कृत्वा यत्त्वं रूक्षमभाषथाः ॥ ११ ॥ अधर्मस्त्वेष सुमहाननार्यचरितं च तत् । नारिं जित्वा विकथ्यन्ते न च जल्पन्ति दुर्वचः ॥ १२ ॥ न च कश्चन निन्दन्ति सन्तः शूरा नरर्षभाः । त्वन्तु प्राकृतविज्ञानस्तत्तद्वदसि सूतज ॥ १३ ॥ बह्वबद्धमकर्ण्यं च चापलादपरीक्षितं । युध्यमानं पराक्रान्तं शूरमार्यव्रते रतम् ॥ १४ ॥ यदवोचोऽप्रियं भीमं नैतत् सत्यं वचस्तव । पश्यतां सर्वसैन्यानां केशवस्य ममैव च ॥ १५॥ विरथो भीमसेनेन कृतोऽसि बहुशो रणे। न च त्वां परुषं किञ्चि-

हार जाय हे राधाके पुत्र ! युद्ध करनेमें जय होगी या पराजय इसका निश्चय तो इन्द्रको भी नहीं हुआ ॥ ९ ॥ तू रणमें रथहीन होगया था, तेरी इन्द्रियें घबड़ाहटमें पड़गयी थीं और तेरे मरनेका अवसर आ ही लगा था, तो भी तेरी मृत्यु अर्जुनके हाथ है, यह विचार कर ही युयुधानने तेरा पराजय करके ही तुझे जीता छोडदिया है ॥ १० ॥ दैवयोगसे फिर रणमें लड़ते हुए महाबली भीमसेनके साथ तेरा मुचैटा होगया, तूने जैसे तैसे उसके रथको तोड़ उसे रथहीन करदिया, फिर तूने उसको गालियें दीं ॥११॥ यह तेरा बड़ा अधर्म (अपराध) है और भले आदमियोंकेसा काम नहीं है, सज्जन और वीर महापुरुष शत्रुओंका पराजय करके अधिक नहीं बोलते हैं-हलकी बातें नहीं कहते हैं तथा किसी की निन्दा भी नहीं करते हैं, परन्तु हे सूतपुत्र ! तू गमारबुद्धि है, इसलिये तू चंचलतासे बिना विचारे ऐसी असङ्गत (अट्ट सट्ट) बातें कररहा है, कि-जिनको सहा नहीं जासकता, तूने रणमें सब सेनाके, श्रीकृष्णके और मेरे सामने, युद्ध करनेवाले, पराक्रमी, वीर और आर्यव्रतधारी भीमको अप्रिय वचन कहे हैं (गालियें दी हैं) ॥१४-१५॥ तूने भीमसेनसे बहुतसी

दुक्तवान् पाण्डुनन्दनः ॥ १६ ॥ यस्मात्तु बहुरूक्षञ्च श्रावितस्ते वृकोदरः । परोक्षं यच्च सौभद्रो युष्माभिर्निहतो मम ॥ १७ ॥ तस्मादस्यावलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि । त्वया तस्य धनुश्छिन्नमात्मनाशाय दुर्मते ॥ १८ ॥ तस्माद्वध्योऽसि मे मूढ सभृत्यसुतबान्धवः । कुरु त्वं सर्वकृत्यानि महत्ते भयमागतम् ॥ १९ ॥ हन्तास्मि वृषसेनं ते प्रेक्षमाणस्य संयुगे । ये चान्येऽप्युपयास्यन्ति बुद्धिमोहेन मां नृपाः ॥ २० ॥ तांश्च सर्वान् हनिष्यामि सत्येनायुधमालभे । त्वाञ्च मूढाकृतप्रज्ञमभिमानिनमाहवे ॥ २१ ॥ दृष्ट्वा दुर्योधनो मन्दो भृशं तप्स्यति पातितम् । अर्जुनेन प्रतिज्ञाते वधे कर्णसुतस्य तु ॥ २२ ॥ महान् सुतुमुलः शब्दो बभूव रथिनां तदा । तस्मि-

कड़वी बातें कही हैं, परन्तु पाण्डुपुत्र भीमसेनने तो तुझे रणमें बहुत बार रथहीन कर देने पर भी तुझसे एक भी तीखी बात नहीं कही थी ! ॥ १६ ॥ और, मेरे पीछे मेरे पुत्र अभिमन्युको भी तुमने मारडाला है ॥ १७ ॥ अतः इस गर्व तथा अपराधका फल तुझे थोड़े ही समयमें मिलेगा, अरे ओ दुर्बुद्धि ! तूने अभिमन्युके धनुषको काटडाला था, उसको भी तू अपने नाशके लिये ही समझ ॥ १८ ॥ हे मूढ़ ! इन अपराधोंके कारण मैं तेरे सेवक, पुत्र और बान्धवोंसहित तुझे मारडालूँगा, तुझसे जो हो सके, कर ले अब तेरे ऊपर बड़ा भारी भय आपहुँचा है ॥ १९ ॥ रणभूमिमें मैं तेरे सामने ही तेरे पुत्र वृषसेनको मारडालूँगा उस समय दूसरे जो कोई भी राजे मूर्खतासे मेरे सामने लड़नेको आवेंगे ॥ २० ॥ उन सबोंका भी मैं संहार करडालूँगा, यह बात मैं शस्त्रकी शपथ खाकर कहता हूं, हे मूढ़ ! तुझ मूढ़बुद्धि और बड़ेभारी अभिमानीको मराहुआ देखकर मन्दबुद्धि दुर्योधन बहुत ही सन्तप्त होगा" इसप्रकार अर्जुनने कर्णके पुत्रको मारनेकी प्रतिज्ञा की, कि- ॥ २१-२२ ॥ रथियोंने बड़ा भारी तुमुल शब्द

न्नाकुलसंग्रामे वर्त्तमाने महाभये ॥ २३ ॥ मन्दरश्मिः सहस्रांशुरस्तं गिरिमुपाद्रवत् । ततो राजन् हृषीकेशः संग्रामशिरसि स्थितम् ॥ २४ ॥ तीर्णप्रतिज्ञं बीभत्सुं परिष्वज्यैनमब्रवीत् । दिष्ट्या सम्पादिता जिष्णो प्रतिज्ञा महती त्वया ॥ २५ ॥ दिष्ट्या विनिहतः पापो वृद्धक्षत्रः सहात्मजः । धार्त्तराष्ट्रबलं प्राप्य देवसेनापि भारत ॥ २६ ॥ सीदेत समरे जिष्णो नात्र कार्या विचारणा । न तं पश्यामि लोकेषु चिन्तयन् पुरुषं क्वचित् ॥ २७ ॥ त्वदृते पुरुषव्याघ्र य एतद्योधयेद्बलम् । महाप्रभावा बहवस्तव तुल्याधिकापि वा ॥ २८ ॥ समेताः पृथिवीपाला धार्त्तराष्ट्रस्य कारणात् । ते त्वां प्राप्य रणे क्रुद्धाः नाभ्यवर्त्तन्त दंशिताः ॥ २९ ॥ तव वीर्यं बलञ्चैव रुद्रशक्रान्तकोपमम् । नेदृशं शक्नुयात् कश्चिद्रणे

किया, तदनन्तर महाभयङ्कर और व्याकुलता भरा संग्राम होने लगा ॥ २३ ॥ इतनेमें ही सूर्यकी किरणोंका प्रकाश मन्द पडने लगा और वह अस्ताचल पर चलेगये, तदनन्तर हे राजन् ! अपनी प्रतिज्ञाके पार उतरेहुए और संग्रामके मुहानेपर खड़ेहुए अर्जुनको श्रीकृष्णने आलिङ्गन कर कहा, कि-हे अर्जुन ! यह बहुत अच्छाहुआ कि-तूने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करली २४-२५ तूने पापी वृद्धक्षत्र और उसके पुत्रको मारडाला, यह बहुत अच्छा किया, हे भरतवंशी अर्जुन ! यह धृतराष्ट्रके पुत्रकी सेना ऐसी बलवान् है, कि-रणमें देवसेना भी इससे भिडकर खिन्न होजायगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये, हे पुरुषव्याघ्र ! मैं विचार करता हूँ तो मेरे ध्यानमें तेरे सिवाय ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं आता जो इस सेनासे मुचैटा लेसके, कौरवसेनामें धृतराष्ट्रके पुत्रके कारणसे तेरी समान और तुझसे भी अधिक बली, बड़े प्रभावशाली बहुतसे राजे इकट्ठे हुए हैं, परन्तु वे कवचधारी क्रोधी राजे भी तुझको देखकर तेरे सामने नहीं आये २६-२९

कर्त्तुं पराक्रमम् ॥ ३० ॥ यादृशं कृतवानद्य त्वमेकः शत्रुतापनः । त्वमेव हते कर्णे सानुबन्धे दुरात्मनि ॥ ३१ ॥ वर्द्धयिष्यामि भूयस्त्वां विजितारिं हतद्विपम् । तमर्जुनः प्रत्युवाच प्रसादात्तव माधव ॥ ३२ ॥ प्रतिज्ञेयं मया तीर्णा विबुधैरपि दुस्तरा । अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां नाथोऽसि केशव ॥ ३३ ॥ त्वत्प्रसादान्महीं कृत्स्नां सम्प्राप्स्यति युधिष्ठिरः । तव प्रभावो वार्ष्णेय तवैव विजयः प्रभो ॥ ३४ ॥ वर्द्धनीयास्तव वयं सदैव मधुसूदन । एवमुक्तस्ततः कृष्णः शनकैर्वाहयन् हयान् । दर्शयामास पार्थाय क्रूरमायोधनं महत् ॥ ३५ ॥ कृष्ण उवाच । प्रार्थयन्तो जयं युद्धे प्रथितश्च मह-

---

तेरा वीर्य और बल रुद्र, इन्द्र तथा यमराजकी समान है, कोई भी मनुष्य रणमें तेरी समान पराक्रम नहीं करसकता ॥ ३० ॥ हे शत्रुतापन ! तूने आज जैसा पराक्रम किया है, ऐसा पराक्रम किसीने भी नहीं किया है, इस आनन्दमें मैं तुझे बधाई देता हूँ, और जब तू बान्धवोंसहित दुष्टात्मा कर्णको मारडालेगा, तब मैं शत्रुओंको जीतनेवाले और जिसके शत्रु मारेगए होंगे, ऐसे तुझे फिर बधाई दूँगा यह वचन सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णको उत्तर दिया, कि-हे माधव ! आपकी कृपासे ही मैं प्रतिज्ञाको पूरी करसका हूँ, क्योंकि-ऐसी प्रतिज्ञाको देवता भी कठिनतासे ही पूरी कर सकते थे, हे केशव ! तुम जिनके ऊपर प्रसन्न होजाओ उनकी विजय होनेमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है ३१-३२ राजा युधिष्ठिर भी आपके प्रसादसे ही सम्पूर्ण पृथ्वीके राजा होंगे, यह भी हे वृष्णिवंशी ! आपका ही प्रभाव है, तथा यह तुम्हारी ही विजय है ॥ ३४ ॥ हे मधुसूदन ! आपको इसप्रकार ही हमारी सदा वृद्धि करनी चाहिये, अर्जुनकी बात सुनकर श्रीकृष्ण घोड़ोंको धीरे २ बढा अर्जुनको भयङ्कर और क्रूर रणसंग्राम दिखाते हुए कहनेलगे, कि-विजय तथा प्रशंसनीय

यशः । पृथिव्यां शेरते शूराः पार्थिवास्त्वच्छरैर्हताः ॥३६॥ विकीर्णशस्त्राभरणा विपन्नाश्वरथद्विपाः । सञ्छिन्नभिन्नमर्माणो वैक्लव्यं परमं गता ॥ ३७ ॥ ससत्त्वा गतसत्त्वाश्च प्रभया परया युताः । सजीवा इव लक्ष्यन्ते गतसत्त्वा नराधिपाः ॥ ३८ ॥ तेषां शरैः स्वर्णपुङ्खैः शस्त्रैश्च विविधैः शितैः । वाहनैरायुधैश्चैव संपूर्णां पश्य मेदिनीम् ॥३९॥ वर्मभिश्चर्मभिर्हारैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः । उष्णीषैर्मुकुटैः स्रग्भिश्चूडामणिभिरम्बरैः ॥४०॥ कण्ठसूत्रैरङ्गदैश्च निष्कैरपि च सुप्रभैः।अन्यैश्चाभरणैश्चित्रैर्भाति भारत मेदिनी ॥४१॥ अनुकर्षैरुपासंगैः पताकाभिर्ध्वजैस्तथा । उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ॥ ४२ ॥ चक्रैः प्रमथितैश्चित्रैरक्षैश्च बहुधा रणे ।

यश पानेकी इच्छासे शूर राजे युद्ध करके, तेरे बाणोंसे मरकर इस रणभूमिमें सोरहे हैं, उनको तू देख ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इनके शस्त्र और गहने बिखरे पड़े हैं (यह भी तू देख) (देख यह) घोड़े, रथ तथा हाथी नष्ट भ्रष्ट होगए हैं, इनके मर्मस्थल छिन्न होगए हैं इस कारण इन सिसकते हुए और मरेहुए योधाओंको देखकर बड़ी विकलता होती है, मरेहुए राजे अपनी बड़ीभारी कान्तिके कारण जीवितसे ही दीखरहे हैं ॥ ३८ ॥ इनके सुवर्ण की पूँछवाले नानाप्रकारके बाणोंसे और अनेकोंप्रकारके शस्त्रों से, वाहन तथा आयुधोंसे रणभूमि खचाखच भररही है इसकी ओर तू दृष्टि डाल ॥ ३९ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! कवच, ढाल, माला, कुण्डलोंवाले मस्तक, पगड़ी, मुकुट और पुष्पमाला, वस्त्र और गलेके हार, बाजूबन्द और कान्तिवाले निष्क तथा दूसरे विचित्र गहनोंसे यह भूमि शोभा पारही है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुन ! टूटेहुए रथके नीचेके ढाँचे, उपासङ्ग, पताका, ध्वजा, उपस्कर, अधिष्ठान तथा ईषाके काठ तथा रणमें टूटकर गिरेहुए अनेकों प्रकारके पहिये, धुरी, जुए,

युगैर्योक्त्रैः कलापैश्च धनुर्भिः सायकैस्तथा ॥ ४३ ॥ परिस्तोमैः कुथाभिश्च परिघैरंकुशैस्तथा । शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च तूणैः शूलैः परश्वधैः ॥ ४४ ॥ प्रासैश्च तोमरैश्चैव कुन्तैर्यष्टिभिरेव च । शतघ्नीभिर्भुशुण्डीभिः खड्गैः परशुभिस्तथा ॥ ४५ ॥ मुसलैर्मुद्गरैश्चैव गदाभिः कुणपैस्तथा । सुवर्णविकृताभिश्च कशाभिर्भरतर्षभ ॥ ४६ ॥ घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां भाण्डैश्च विविधैरपि । स्रग्भिश्च नानाभरणैर्वस्त्रैश्चैव महाधनैः ॥ ४७ ॥ अपविद्धैर्बभौ भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव शारदी । पृथिव्यां पृथिवीहेतोः पृथिवीपतयो हताः ॥ ४८ ॥ पृथिवीमुपगुह्याङ्गैः सुप्ताः कान्तामिव प्रियाम् । इमांश्च गिरिकूटाभान्नागानैरावतोपमान् ॥४९॥ क्षरतः शोणितं भूरि शस्त्रच्छेददरीमुखैः । दरीमुखैरिव गिरीन् गैरिकाम्बुपरिस्रवान् ५० तांश्च बाणहतान् वीर पश्य निष्टनतः क्षितौ । हयांश्च पतितान्

लगाम, कलाप धनुष, बाण, परिस्तोम, कुथा(झूल) अंकुश, शक्ति, भिन्दिपाल, भाथे, शूल, फरसे, प्रास, तोमर,कुन्त, लकड़ी, शतघ्नी भुशुण्डी, तलवार, फरसे, मूसल, मुगदर, गदा, कुणप, सोनेकी (लकड़ीवाले) चाबुक, हाथियोंके अनेकों प्रकारके घण्टे और पात्रोंसे, और बाणोंसे फटेहुए बहुमूल्य वस्त्र और टूटे फूटे बहुमूल्य गहनोंसे पृथिवी, नक्षत्रोंसे भरीहुई शरद ऋतुकी रात्रिकी समान शोभा पारही है, ये भूमिपति(राजे)भूमिकेलिये (रण)भूमिमें मारे गए, अब ये प्रिय स्त्रीकी समान भूमिका आलिङ्गन करके सोरहे हैं और हे वीर अर्जुन ! पर्वतके शिखरकी समान और ऐरावतकी समान ये हाथी तेरे बाणोंसे घायल हो पृथ्वीमें पड़े २ गर्जना कररहे हैं, इनको तू देख, पर्वत जैसे गुफारूपी मुखमेंसे गेरूको बहाता है तैसे ही तेरे शस्त्रोंके प्रहारसे घायल हो ये घावरूप गुफाओंके मुखोंमेंसे रक्तको बहारहे हैं, और ये सुवर्णके आभूषणों से शोभायमान घोड़े मरकर रणभूमिमें पड़े हैं, इनकी ओर तू दृष्टि

पश्य स्वर्णभाण्डविभूषितान् ॥ ५१ ॥ गन्धर्वनगराकारान्रथांश्च निहतेश्वरान् । छिन्नध्वजपताकाक्षान् विचक्रान् हतसारथीन् ५२ निकृत्तकूबरयुगान् भग्नेषाबन्धुरान् प्रभो । पश्य पार्थ हतान् भूमौ विमानोपमदर्शनान् ॥ ५३ ॥ पत्तींश्च निहतान् वीर शतशोऽथ सहस्रशः । धनुर्भृतश्चर्मभृतः शयानान् रुधिरोक्षितान् ॥ ५४ ॥ महीमालिंग्य सर्वाङ्गैः पांशुध्वस्तशिरोरुहान् । पश्य योधान्महाबाहो त्वच्छरैर्भिन्नविग्रहान् ॥ ५५ ॥ निपातितद्विपरथवाजिसंकुलमसृग्वसापिशितसमृद्धकर्दमम् । निशाचरश्ववृकपिशाचमोदनं महीतलं नरवर पश्य दुर्दृशम् ॥ ५६ ॥ इदं महत्त्वय्युपपद्यते प्रभो रणाजिरे कर्म यशोऽभिवर्द्धनम् । शतक्रतौ चापि च देवसत्तमे महाहवे जघ्नुषि

दे॥४२-५१॥जिनके सारथि तथा स्वामी मारेगए हैं और जिनकी ध्वजा, पताका, धुरे तथा पहिये तितर बितर होगए हैं, ऐसे इन गन्धर्व नगरोंकी समान रथोंको भी देख, इन रथोंकी टेकड़ियें जुए ईषा तथा दृढ बन्धान फट फट गए हैं हे पार्थ ! रणभूमिमें विमानोंकी समान दीखते हुए इन रथोंकी ओर भी तू दृष्टि डाल॥५२-५३॥हे अर्जुन ! सैंकड़ों और सहस्रों धनुर्धर और ढालवाले योधा रणभूमिमें मरण पाकर रुधिरमें लथड पथड़ हो सोरहे हैं और हे महाभुज ! देख! देख!! तेरे बाणोंसे अङ्ग घायल होकर पृथ्वीमें गिरजानेके कारण जिनके केश धूलसे सनगए हैं ऐसे इन पृथ्वीको आलिङ्गनकर सोतेहुए योधाओंको देख ! ॥५४-५५॥ और हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! इस कठिनतासे देखने योग्य रणभूमिकी ओर तू देख ! यह मारेहुए हाथी घोड़े और गिराएहुए रथोंसे खचाखच भररही है, इसमें रुधिर, वसा और मांसकी बड़ीभारी कीच होरही है, निशाचर, श्वान और भेडिये और पिशाच ऐसी भूमिको देखकर हर्षित होते हैं॥ ५६ ॥ हे प्रभो ! रणभूमिमें यशको बढानेवाला बड़ाभारी काम तुम्हें और दैत्य तथा

दैत्यदानवान् ॥ ५७ ॥ सञ्जय उवाच । एवं सन्दर्शयन् कृष्णो रणभूमिं किरीटिने । स्वैः समेतः समुदितैः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ५८ ॥ सन्दर्शयन्नेव किरीटिनेऽरिहा जनार्दनस्तामरिभूमिमञ्जसा । अजातशत्रुं समुपेत्य पाण्डवं निवेदयामास हतं जयद्रथम् ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युद्धभूमि-
दर्शने अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

सञ्जय उवाच । ततो राजानमभ्येत्य धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । ववन्दे संप्रहृष्टात्मा हते पार्थेन सैंधवे ॥१॥ दिष्ट्या वर्द्धसि राजेन्द्र हतशत्रुर्नरोत्तम । दिष्ट्या निस्तीर्णवांश्चैव प्रतिज्ञामनुजस्तव ॥२॥ स त्वेवमुक्तः कृष्णेन हृष्टः परपुरञ्जयः । ततो युधिष्ठिरो राजा रथा-

दानवोंका संहार करनेकी इच्छावाले देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्रको ही शोभा देता है अर्थात् तीसरा और कोई भी ऐसा काम नहीं कर सकता ॥ ५७ ॥ ॥ सञ्जयने कहा कि-शत्रुओंका संहार करनेवाले श्रीकृष्ण इसप्रकार रणभूमिको दिखातेहुए और हर्षमें भरे हुए अपने योधाओंके साथ पांचजन्य शंखको बजाते हुए अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके पास आये और उनसे जयद्रथके मारे जानेका समाचार निवेदन किया ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ एकसौ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४८ ॥

संजयने कहा कि-हे धृतराष्ट्र ! कुन्तीपुत्र अर्जुनने सिंधुदेशके राजा जयद्रथको मारडाला तब श्रीकृष्ण मनमें प्रसन्न होतेहुए धर्मपुत्र युधिष्ठिरके पास गए और उनको प्रणाम करके बोले कि १ हे नरश्रेष्ठ राजेन्द्र ! तुम्हारे भाग्यसे ही तुम्हारी दिन २ बढ़ती होती है, हे नरश्रेष्ठ ! तुम्हारे शत्रुके नाश होनेकी मैं तुम्हें बधाई देता हूँ और तुम्हारे सौभाग्यसे तुम्हारा छोटा भाई अर्जुन प्रतिज्ञामें उत्तीर्ण हुआ है ॥ २ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जब

दाप्लुत्य भारत ॥ ३ ॥ पर्यष्वजत्तदा कृष्णावानन्दाश्रुपरिप्लुतः । प्रमृज्य वदनं शुभ्रं पुण्डरीकसमप्रभम् ॥ ४ ॥ अब्रवीद्वासुदेवञ्च पाण्डवञ्च धनञ्जयम् प्रियमेतदुपश्रुत्य त्वत्तः पुष्करलोचन ॥५॥ नान्तं गच्छामि हर्षस्य तितीर्षुरुदधेरिव । अत्यद्भुतमिदं कृष्ण कृतं पार्थेन धीमता ॥ ६ ॥ दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे तीर्णभारौ महारथौ । दिष्ट्या च निहतः पापः सैन्धवः पुरुषाधमः ॥ ७ ॥ कृष्ण दिष्ट्या मम प्रीतिर्महती प्रतिपादिता । त्वया गुप्तेन गोविन्द घ्नता पापं जयद्रथम् ॥८॥ किंतु नात्यद्भुतं तेषां येषां नस्त्वं समाश्रयः । न तेषां दुष्कृतं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ९ ॥ सर्वलोकगुरुर्येषां त्वन्नाथो मधुसूदन । त्वत्प्रसादाद्धि गोविन्द वयं

श्रीकृष्णने इसप्रकार कहा तब शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले युधिष्ठिर प्रसन्न हुए और रथपरसे नीचे उतर श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे मिले, इस समय उनके नेत्रोंमें आनन्दके कारण आँसू उमड रहे थे, वह अपने श्वेत कमलकी समान गोरी कान्तिवाले मुखको वस्त्रसे पोंछते २ वासुदेव और धनञ्जयसे बोले कि-हे कमलनयन! आपके मुखसे इस शुभ समाचारको सुन कर समुद्रके पार जानेकी इच्छावाला जैसे समुद्रके किनारेको न पावे, तैसे ही मेरे हर्षका कुछ ठिकाना नहीं है, हे कृष्ण! बुद्धिमान् अर्जुनने यह अत्यद्भुत काम किया है ॥ ३-६ ॥ यह बहुत अच्छा हुआ कि-आज मैं तुम दोनों महारथियोंको युद्धके बोझसे अक्षत छूटाहुआ देखता हूँ, और पुरुषोंमें नीच सिंधुराजको मरा हुआ सुन रहा हूँ ॥ ७ ॥ हे कृष्ण! तुम्हारी रक्षामें रहकर अर्जुनने पापी जयद्रथको मार मुझे परम प्रसन्न किया है, यह काम भी बडा अच्छाहुआ ॥ ८ ॥ हमें तो आपका सहारा है, अतः इस कामके होनेसे हमको आश्चर्य नहीं होता, हे मधुसूदन! तीनों लोकोंके गुरु आप हमारे नाथ हैं हे गोविन्द! इसलिये

जेष्यामहे रिपून्॥१०॥ स्थितः सर्वात्मना नित्यं प्रियेषु च हितेषु च।
त्वां चैवास्माभिराश्रित्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः ॥ ११ ॥ सुरैरिवासुर-
वधे शक्रं शक्रानुजाहवे । असंभाव्यमिदं कर्म देवैरपि जनार्दन॥१२॥
त्वद्बुद्धिबलवीर्येण कृतवानेष फाल्गुनः । बाल्यात् प्रभृति ते कृष्ण
कर्माणि श्रुतवानहम् ॥ १३ ॥ अमानुषाणि दिव्यानि महान्ति च
बहूनि च । तदैवाज्ञासिषं शत्रून्हतान्प्राप्तां च मेदिनीं ॥ १४ ॥
त्वत्प्रसादसमुत्थेन विक्रमेणारिसूदन । सुरेशत्वं गतः शक्रो हत्वा
दैत्यान् सहस्रशः ॥ १५ ॥ त्वत्प्रसादादृषीकेश जगत् स्थावरजङ्ग-
मम् । स्ववर्त्मनि स्थितं वीर जपहोमेषु वर्त्तते ॥ १६ ॥ एकार्ण-
वमिदं पूर्वं सर्वमासीत्तमोमयम् । त्वत्प्रसादान्महाबाहो जगत् प्राप्तं

हम आपकी कृपासे शत्रुओंका पराजय ही करेंगे ॥९॥१०॥ क्यों कि–आप सदा सब प्रकारसे हमारा प्रिय और हित करनेमें लगे रहते हैं, हे इन्द्रके छोटे भाई! देवताओंने असुरोंका नाश करते समय जैसे इन्द्रका आश्रय ले अस्त्रोंका उपयोग किया था, ऐसे ही हमने आपका आश्रय पा रणमें अस्त्रोंको उठाया है ॥११॥ और हे जनार्दन! देवताओंसे भी न हो सके ऐसा जो काम अर्जुनने किया है वह आपकी बुद्धिके बलसे ही किया है हे कृष्ण! बाल्यावस्थासे ही जबसे मैंने आपके अमानुषिक और दिव्य बहुत से कर्म सुने हैं तबसे ही मैं समझगया, कि–हम शत्रुओंको मारेंगे और पृथ्वीको अपने अधीन करेंगे ॥ १२–१४ ॥ हे शत्रुनाशन! इन्द्रने भी आपकी कृपासे प्राप्तहुए पराक्रमसे सहस्रों दैत्योंका संहार कर देवराजकी पदवी पाई है ॥ १५ ॥ हे अतीन्द्रिय वीर! आपकी कृपासे स्थावर तथा जङ्गमरूप जगत् अपने २ धर्ममार्गमें रहकर जप होम आदि कर्म करता है ॥ १६ ॥ हे महाभुज श्रीकृष्ण! पहिले यह जगत् अन्धकारसे ढकाहुआ था और जलसे भराहुआ था, वह आपकी कृपासे जगत्रूपको प्राप्त हुआ है १७

नरोत्तम ॥ १७ ॥ स्रष्टारं सर्वलोकानां परमात्मानमव्ययम् । ये पश्यन्ति हृषीकेशं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥ १८ ॥ पुराणं परमं देवं देवदेवं सनातनम् । ये प्रपन्नाः सुरगुरुं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥१९॥ अनादिनिधनं देवं लोककर्त्तारमव्ययम् । ये भक्तास्त्वां हृषीकेश दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २० ॥ परं पुराणं पुरुषं पराणां परमञ्च यत् । प्रपद्यतस्तत् परमं परा भूतिर्विधीयते ॥२१॥ गायन्ति चतुरो वेदा यश्च वेदेषु गीयते । तं प्रपद्य महात्मानं भूतिमश्नाम्यनुत्तमाम् ॥ २२ ॥ परमेश परेशेश तिर्यगीश नरेश्वर । सर्वेश्वरेश्वरेशेश नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ २३ ॥ त्वमीशेशेश्वरेशान प्रभो वर्धस्व माधव । प्रभवाप्ययसर्वस्य सर्वात्मन् पृथुलोचन २४ धनञ्जयसखा यश्च धनञ्जयहितश्च यः । धनञ्जयस्य गोप्ता तं

हे हृषीकेश! जो सब लोकोंके स्रष्टा तथा अव्ययरूप आपका दर्शन करते हैं, वे किसी दिन भी मोहमें नहीं पड़ते १८ जो पुराणमूर्ति, देवदेव, सनातनमूर्ति और देवताओंके गुरु आपकी शरणमें आतेहैं उनको मोह कभी नहीं होता ॥१९॥ आदि अन्तशून्य संसारको उत्पन्न करने वाले और अव्यय आपको जो भजतेहैं वे दुःखोंके पार होजाते हैं ॥ २० ॥ और जो मनुष्य पुराणपुरुष, परात्पर ऐसे परमात्माके स्वरूपकी शरण लेता है वह सम्पत्तिको पाता है॥२१॥ जिनकी चारों वेद स्तुति करते हैं और जो वेदोंमें गाये जातेहैं उन महात्माकी शरण लेकर मैं अनुपम ऐश्वर्यको भोगता हूँ॥२२॥ तुम परमेश हो! तुम परेश हो! तुम पृथ्वीश्वर हो! तुम नरेश्वर हो! तुम सर्वेश्वर हो! तुम ईश्वरके ईश्वर हो! तुम ईश हो! तुम पुरुषोत्तम हो, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥२३॥ हे माधव! तुम ईश हो! ईश्वरेश्वर हो! ईशान हो! हे प्रभो! तुम्हारी वृद्धि हो! तुम सबको उत्पन्न करनेवाले और नष्ट करनेवाले हो! तुम सर्वात्मन् हो! तुम विशालनेत्र हो! ॥ २४ ॥ तुम अर्जुनके

प्रपद्य सुखमेधते ॥ २५ ॥ मार्कण्डेयः पुराणर्षिश्चरितज्ञस्तवानघ । माहात्म्यमनुभावञ्च पुरा कीर्तितवान् मुनिः ॥ २६ ॥ असितो देवलश्चैव नारदश्च महातपाः । पितामहश्च मे व्यासस्त्वामाहुर्विधिमुत्तमम् ॥ त्वं तेजस्त्वं परं ब्रह्म त्वं सत्यं त्वं महत्तपः ॥२७॥ त्वं श्रेयस्त्वं यशश्चाग्र्यं कारणं जगतस्तथा । त्वया सृष्टमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ २८ ॥ प्रलये समनुप्राप्ते त्वां वै निविशते पुनः । अनादिनिधनं देवं विश्वस्येशं जगत्पते ॥ २९ ॥ धातारमजमव्यक्तमाहुर्वेदविदो जनाः । भूतात्मानं महात्मानमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ ३० ॥ अपि देवा न जानन्ति गुह्यमाद्यं जगत्पतिम् । नारायणं परं देवं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोनिं हरिं विष्णुं मुमुक्षूणां परायणम् । परं पुराणं पुरुषं पुराणानां परञ्च

सखा हो ! और अर्जुनके हितैषी तथा रक्षक हो, मनुष्य आपकी शरण ले सुख पाता है ॥ २५ ॥ २५ ॥ हे निर्दोष ! आपके चरित्रको जाननेवाले पुरातन ऋषि मार्कण्डेय मुनिने पहिले आपके माहात्म्य और प्रभावका वर्णन किया था ॥२६॥ और असित, देवल, महातपस्वी नारद और मेरे पितामह व्यासजीने आपका परमात्मारूपसे वर्णन किया है, तुम तेजःस्वरूप हो ! तुम परब्रह्म हो ! सत्य हो ! तथा महातपोमूर्ति हो ॥२७॥ तुम श्रेय हो ! यश हो ! तथा जगत्के मुख्य कारण हो ! तुमने ही स्थावर जङ्गमात्मक जगत् रचा है ॥ २८ ॥ हे जगत्के स्वामिन् ! जब प्रलयका समय निकट आता है उस समय सकल जगत् फिर आदि अन्तरहित, विश्वके स्वामी आपमें प्रवेश करजाता है २९ वेदवेत्ता मनुष्य आपको धाता, अजन्मा, अव्यक्त, भूतात्मा, महात्मा, अनन्त और विश्वतोमुख कहते हैं ॥ ३० ॥ तुम गुह्यादिके कारण हो ! जगत्के पति हो ! नारायण हो ! परमदेव हो ! परमात्मा हो ! ईश्वर हो ! ज्ञानके कारणरूप हरि हो !

पद् ॥३२॥ एवमादिगुणानान्ते कर्मणां दिवि चेह च । अतीतभूतभव्यानां संख्याता नात्र न विद्यते ॥३३॥ सर्वतो रक्षणीयाः स्म शक्रेणेव दिवौकसः । यैस्त्वं सर्वगुणोपेतः सुहृन्न उपपादितः ३४ इत्येव धर्मराजेन हरिरुक्तो महायशाः । अनुरूपमिदं वाक्यं प्रत्युवाच जनार्दनः ॥ ३५ ॥ भवता तपसोग्रेण धर्मेण परमेण च । साधुत्वादार्जवाच्चैव हतः पापो जयद्रथः ॥ ३६ ॥ अयं च पुरुषव्याघ्र त्वदनुध्यानसंवृतः । हत्वा योधसहस्राणि न्यहन् जिष्णुर्जयद्रथम् ॥ ३७ ॥ कृतित्वे बाहुवीर्ये च तथैवासंभ्रमेऽपि च । शीघ्रतामोघबुद्धित्वे नास्ति पार्थसमः क्वचित् ॥ ३८ ॥ तदयं भरतश्रेष्ठ भ्राता तेऽद्य यदर्जुनः । सैन्यक्षयं रणे कृत्वा सिंधुराजशिरोऽ-

विष्णु हो ! मुमुक्षु पुरुषोंके परम आश्रयरूप हो! परमपुराण पुरुष और पुरातनरूप हो! देवता भी आपके स्वरूपको नहीं जान सकते ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे परमात्मन् ! आपके पृथ्वी, और स्वर्गमेंके भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालके गुणोंकी गिनती करनेवाला कोई नहीं है ॥ ३३ ॥ ऐसे सर्वगुणसम्पन्न आपको हमने अपना सम्बन्धी और मित्र बनाया है, अतः इन्द्र जैसे देवताओंकी रक्षा करता है, तैसे ही आप हमारी सर्वत्र रक्षा करिये ३४ धर्मराजने महायशस्वी श्रीकृष्णसे इसप्रकार कहा, तब श्रीकृष्णने उनके अनुरूप वचनोंमें उत्तर देतेहुए कहा कि–॥ ३५ ॥ आपकी उग्र तपश्चर्यासे, परमधर्मसे, साधुतासे, तथा सरलतासे, पापी जयद्रथका नाश हुआ है ॥ ३६ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! अर्जुनने तुम्हारी रक्षामें रहकर सहस्रों योधाओंका नाश कर जयद्रथको मारडाला ॥ ३७ ॥ इस संसारमें काम करनेमें, भुजबलमें, धैर्यमें शीघ्रतामें तथा अमोघ बुद्धिमें, अर्जुनसा दूसरा पुरुष कहीं भी नहीं है ॥ ३८ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ! आपके ऐसे इस भाई अर्जुनने आज रणमें शत्रुओंकी सेनाका नाशकर

हरत् ॥३९॥ ततो धर्मसुतो जिष्णुं परिष्वज्य विशां पते । प्रमृज्य वदनं तस्य पर्यश्वासयत प्रभुः ॥ ४० ॥ अतीव सुमहत् कर्म कृतवानसि फाल्गुन । असह्यं चाविषह्यञ्च देवैरपि सवासवैः ॥ ४१ ॥ दिष्ट्या निस्तीर्णभारोऽसि निहतारिश्च शत्रुहन् । दिष्ट्या सत्या प्रतिज्ञेयं कृता हत्वा जयद्रथम् ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वा गुडाकेशं धर्मराजो महायशाः । पस्पर्श पुण्यगन्धेन पृष्ठे हस्तेन पार्थिवः ४३ एवमुक्तौ महात्मानौ तदा केशवपाण्डवौ । तावब्रूतां तदा कृष्णौ राजानं पृथिवीपतिम् ॥४४॥ तव कोपाग्निना दग्धः पापो राजा जयद्रथः । उत्तीर्णञ्चापि सुमहद्धार्त्तराष्ट्रबलं रणे ॥ ४५ ॥ हन्यन्ते निहताश्चैव विनङ्क्ष्यन्ति च भारत । तव क्रोधहता ह्येते कौरवाः

सिंधुराजके मस्तकको काटडाला है ॥ ३९ ॥ हे धृतराष्ट्र ! इस प्रकार वार्तालाप होनेके पीछे युधिष्ठिरने अर्जुनका आलिङ्गन कर उसके मुख पर हाथ फेर उसको शांत किया ॥ ४० ॥ और कहा कि–हे अर्जुन ! तूने इन्द्रसहित देवताओंसे न वन सकने वाला अति असह्य और वडाभारी काम किया है ॥ ४१ ॥ हे शत्रुओंका संहार करनेवाले ! तू संग्रामके भारसे छूटगया और तूने शत्रुओंका संहार किया और तूने प्रतिज्ञा पूरीकी यह भी तूने अपने योग्य ही काम किया है ॥ ४२॥ इसप्रकार अर्जुनकी प्रशंसा करके महायशस्वी धर्मराज युधिष्ठिर अपने पवित्र गन्ध वाले हाथसे अर्जुनकी पीठ सहलानेलगे ॥ ४३ ॥ राजा युधिष्ठिरके वचन सुनकर महात्मा कृष्ण और अर्जुनने उस ही समय पृथ्वीपति युधिष्ठिरसे कहा कि–॥ ४४ ॥ हे महाराज ! हमने जयद्रथको नहीं मारा है, परन्तु वह पापी राजा आपकी क्रोधाग्निसे ही भस्म होगया है और हम भी आपकी कृपासे ही इस युद्धमें कौरवसेनाको लाँघ आये हैं ॥ ४५ ॥ तथा हे शत्रुओंका संहार करनेवाले भरतवंशी राजन् ! यह कौरव भी आपके

शत्रुसूदन ॥ ४६ ॥ त्वां हि चक्षुर्हणं वीर कोपयित्वा सुयोधनः । समित्रबन्धुः समरे प्राणांस्त्यक्ष्यति दुर्मतिः ॥ ४७ ॥ तव कोपहतः पूर्वं देवैरपि सुदुर्जयः । शरतल्पगतः शेते भीष्मः कुरुपितामहः॥४८ दुर्लभो हि जयस्तेषां संग्रामे रिपुघातिनाम् । याता मृत्युवशं ते वै येषां क्रुद्धोऽसि पाण्डव ॥ ४९ ॥ राज्यं प्राणाः श्रियः पुत्राः सौख्यानि विविधानि च । अचिरात्तस्य नश्यन्ति येषां क्रुद्धोऽसि मानद ॥ ५० ॥ विनष्टान् कौरवान् मन्ये सपुत्रपशुबान्धवान् । राजधर्मपरे नित्यं त्वयि क्रुद्धे परन्तप ॥ ५१ ॥ ततो भीमो महाबाहुः सात्यकिश्च महारथः । अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं मार्गणैः क्षतविक्षतौ ॥ ५२ ॥ स्थितावास्तां महेष्वासौ पाञ्चाल्यपरिवारितौ ।

क्रोधसे दग्ध होकर मारेगए हैं और मारे जावेंगे ॥४६॥ हे वीर! दुर्मति सुयोधनने दृष्टि डालने मात्रसे भस्म करदेनेवाले आपको क्रोधित किया है, अतः वह रणमें मित्र तथा बान्धवोंसहित मारा जायगा ॥ ४७ ॥ पहिले जिनको देवताओंको हराना भी दुःसह था ऐसे इस कुलके पितामह भीष्म भी आपकी क्रोधाग्निसे भस्म हो शरशय्या पर सोरहे हैं ॥ ४८ ॥ हे पांडुपुत्र धर्मराज! तुम जिन शत्रुनाशकोंके ऊपर क्रोध करते हो उनको रणमें विजय मिलना दुर्लभ है और वे मृत्युके हाथमें फँस जाते हैं ॥ ४९ ॥ हे मानदेने वाले राजन्! तुम जिनके ऊपर क्रोध करते हो, उनका राज्य, प्राण, लक्ष्मी, पुत्र तथा नानाप्रकारके सुख शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं ॥ ५० ॥ हे परन्तप! राजधर्ममें परायण आप जबसे कौरवोंके ऊपर सदा क्रोधमें भरे रहते हैं, तबसे ही मैं पुत्र, पशु और बान्धवोंसहित कौरवोंको नष्ट हुआ मानता हूँ ॥ ५१ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णके कह चुकने पर बाणोंके प्रहारसे बिंधेहुए महाधनुर्धारी महाभुज शूर भीमसेन तथा सात्यकिने गुरु और बड़े धर्मराजको दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और पाञ्चाल-

तौ दृष्ट्वा मुदितो वीरौ प्राञ्जली समुपस्थितौ ॥५३॥ अभ्यनन्दत कौन्तेयस्तावुभौ भीमसात्यकी । दिष्ट्या पश्यामि वां शूरौ विमुक्तौ सैन्यसागरात् ॥५४॥ द्रोणग्राहदुराधर्षात् हार्दिक्यमकरालयात् । दिष्ट्या विनिर्ज्जिताः संख्ये पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ॥ ५५ ॥ युवां विजयिनौ चापि दिष्ट्या पश्यामि संयुगे । दिष्ट्या द्रोणो जितः संख्ये हार्दिक्यश्च महाबलः ॥ ५६ ॥ दिष्ट्या विकर्णिभिः कर्णो रणे नीतः पराजयम् । विमुखश्च कृतः शल्यो युवाभ्यां पुरुषर्षभौ ॥ ५७ ॥ दिष्ट्या युवां कुशलिनौ संग्रामात् पुनरागतौ । पश्यामि रथिनां श्रेष्ठावुभौ युद्धविशारदौ ॥ ५८ ॥ मम वाक्यकरौ वीरौ मम गौरवयन्त्रितौ । सैन्यार्णवं समुत्तीर्णौ

राजके पुत्रोंके साथ राजा युधिष्ठिरके पास पृथ्वी पर बैठगए, राजा युधिष्ठिर अपने सामने हाथ जोडकर बैठेहुए शूर भीमसेन तथा सात्यकिको देख कर प्रसन्न हुए और उन दोनोंको अभिनन्दन देतेहुए बोले कि–तुम दोनों शूरोंको द्रोणरूपी ग्राहोंसे दुराधर्ष, हार्दिक्यरूपी-मगरमच्छसे दुस्तर कौरवसेनारूपी समुद्रसे छूटाहुआ देखकर मैं प्रसन्न हुआ हूँ, युद्धमें तुमने पृथ्वीके राजाओंका पराजय किया, यह बहुत अच्छा किया ॥५२-५५॥ तुम दोनोंको युद्धमें विजयी हुआ देखकर मुझे बडी प्रसन्नता होती है, तुमने रणमें महाबलवान् द्रोण तथा कृतवर्माका पराजय किया यह बहुत अच्छा किया ॥ ५६ ॥ हे महापुरुषो ! तुम दोनोंने रणमें अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे कर्णका पराजय किया और शल्यको रणमेंसे भगादिया, यह काम भी बहुत अच्छा किया ॥ ५७ ॥ मैं युद्धकुशल तुम दोनों महारथियोंको संग्राममेंसे क्षेमकुशलसे लौटेहुए देखकर परमप्रसन्न हुआ हूँ ॥ ५८ ॥ मेरी आज्ञानुसार बर्ताव करनेवाले और मेरे गौरवको बढानेमें तत्पर रहनेवाले तुम दोनों वीर पुरुषोंको कौरव सेनारूपी समुद्रके पारगए देख

दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥ ५९ ॥ समरश्लाघिनौ वीरौ संग्रामेष्वपराजितौ । मम वाक्यसमौ चैव दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ६० इत्युक्त्वा पाण्डवो राजन् युयुधानवृकोदरौ । सस्वजे पुरुषव्याघ्रौ हर्षाद्बाष्पं मुमोच ह ॥ ६१ ॥ ततः प्रमुदितं सर्वं बलमासीद्विशाम्पते । पाण्डवानां रणे हृष्टं युद्धाय तु मनो दधे ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे
एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४९॥

सञ्जय उवाच । सैन्धवे निहते राजन् पुत्रस्तव सुयोधनः । अश्रुपूर्णमुखो दीनो निरुत्साहो द्विषज्जये ॥ १ ॥ दुर्मना निःश्वसन्नुष्णं भग्नदंष्ट्र इवोरगः । आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रस्तेऽर्त्तिं परामगात् ॥ २ ॥ दृष्ट्वा तत् कदनं घोरं स्वबलस्य कृतं महत् ।

कर, मैं प्रसन्न हुआ हूँ ॥ ५९ ॥ युद्धसे आनन्द पानेवाले, युद्धमें अजित तथा मेरे वाक्यके दूसरेरूप, तुम दोनोंको देखकर मैं प्रसन्न होरहा हूँ ६० हे राजन् ! इसप्रकार पांडुके पुत्र धर्मराजने, पुरुषोंमें व्याघ्रसमान सात्यकिसे, तथा भीमसेनसे कहकर उनका आलिङ्गन करा, तदनन्तर उनके नेत्रोंमें हर्षके मारे आँसू भर आये ६१ हे राजन् ! इसप्रकार विजय पानेके पीछे रणमें रहनेवाले पांडव सब सेनाके बीचमें हर्षित हो (फिर) युद्ध करनेके लिये मनमें विचार करनेलगे ॥ ६२ ॥ एकसौ उनञ्चासवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जयने कहा कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! रणमें सिन्धुराजका मरण होनेसे, सब लोकोंका अपराध करनेवाला तुम्हारा पुत्र दुष्ट दुर्योधन रोने लगा और दीन बनगया तथा वह शत्रुओंका पराजय करनेमें निरुत्साह होगया, वह मनमें खेद करनेलगा, टूटी हुई डाढवाले सर्पकी समान फुँकारें भरनेलगा और महादुःखी होगया ॥ १ ॥ २ ॥ अर्जुन, भीमसेन और सात्यकिने युद्धमें अपनी सेनाका बडाभारी संहार करडाला, यह देखकर

जिष्णुना भीमसेनेन सात्वतेन च संयुगे ॥ ३ ॥ स विवर्णः कृशो दीनो बाष्पविप्लुतलोचनः । अमन्यतार्जुनसमो न योद्धा भुवि विद्यते ॥ ४ ॥ न द्रोणो न च राधेयो नाश्वत्थामा कृपो न च । क्रुद्धस्य समरे स्थातुं पर्याप्ता इति मारिष ॥ ५ ॥ निर्जित्य हि रणे पार्थः सर्वान्मम महारथान् । अवधीत्सैन्धवं संख्ये न च कश्चिदवारयत् ॥ ६ ॥ सर्वथा हतमेवेदं पाण्डवैर्मे महद्बलम् । न ह्यस्य विद्यते त्राता साक्षादपि पुरन्दरः ॥ ७ ॥ यमुपाश्रित्य संग्रामे कृतः शस्त्रसमुद्यमः । स कर्णो निर्जितः संख्ये हतश्चैव जयद्रथः ॥ ८ ॥ यस्य वीर्यं समाश्रित्य शमं याचन्तमच्युतम् । तृणवत्तमहं मन्ये स कर्णो निर्जितो युधि ॥ ९ ॥ एवं क्लान्तमना राजन्नुपायाद् द्रोण-

---

तुम्हारा पुत्र दीनसा होगया उसका वर्ण फीका पडगया, तथा उसके नेत्र आँसुओंसे भरगए, उस समय वह अपने मनमें विचारने लगा कि—इस पृथ्वीमें अर्जुनकी समान कोई योधा नहीं है ३-४ हे राजन् ! और उसने समझा कि-जब अर्जुन क्रोधमें भरजाता है उस समय उसके सामने द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा अथवा कृपाचार्य इनमेंसे कोई भी खड़ा नहीं रह सकता ॥ ५ ॥ अर्जुनने रणमें मेरे सब महारथियोंका पराजय कर सिन्धुराजको मार डाला, उस समय उसको कोई भी न रोकसका ॥ ६ ॥ कौरवोंका सेनादल भी सर्वथा नष्ट होगया है ! साक्षात् इन्द्र भी इसको पाण्डवोंसे नहीं बचा सकता ॥ ७ ॥ मैंने संग्राममें जिसका आश्रय ले शस्त्रयुद्ध करनेका विचार किया था, उस कर्णको भी हराकर अर्जुनने जयद्रथको मारडाला ॥ ८ ॥ जिसके पराक्रमके ऊपर आधार रखकर मैंने सन्धि करनेके लिए आये हुए श्रीकृष्णको तिनकेकी समान समझा था उस कर्णको भी अर्जुनने युद्धमें हरादिया ।९॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! इसप्रकार मनमें खिन्न होता हुआ, सब लोकोंका अपराध करनेवाला तुम्हारा पुत्र द्रोण

मीक्षितुम् । आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ १० ॥ ततस्तत् सर्वमाचख्यौ कुरूणां वैशसं महत् । परान् विजयतश्चापि धार्त्तराष्ट्रान्निमज्जतः ॥ ११ ॥ दुर्योधन उवाच । पश्य मूर्द्धाभिषिक्तानामाचार्य कदनं महत् । कृत्वा प्रमुखतो भीष्मं शूरं मम पितामहम् ॥१२॥ तं निहत्य प्रलुब्धोऽयं शिखण्डी पूर्णमानसः । पाञ्चाल्यैः सहितः सर्वैः सेनाग्रमभिवर्त्तते ॥ १३ ॥ अपरश्चापि दुर्द्धर्षः शिष्यस्ते सव्यसाचिना । अक्षौहिणी सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ॥ १४ ॥ अस्मद्विजयकामानां सुहृदामुपकारिणाम् । गन्तास्मि कथमानृण्यं गतानां यमसादनम् ॥१५॥ ये मदर्थं परीप्सन्ते वसुधां वसुधाधिपाः । ते हित्वा वसुधैश्वर्यं वसुधामधिशेरते ॥ १६ ॥ सोऽहं कापुरुषः कृत्वा मित्राणां क्षयमीदृशम् । अश्व-

को देखनेके लिये चला ॥ १० ॥ और उनसे, अर्जुनने कौरव-सेनाका बड़ा भारी संहार करडाला है, यह बात तथा पाण्डवों की उन्नति तथा कौरवोंकी अवनति विषयक सब वृत्तान्त कहने लगा ॥ ११ ॥ दुर्योधनने कहा कि-हे आचार्य ! मेरे शूरवीर पितामह भीष्मप्रमुख सर्व मूर्धाभिषिक्त राजाओंका संहार होगया है इसको तुम देखो ! ॥ १२ ॥ यह लोभी शिखण्डी मेरे पितामहका नाश करके अपने मनमें बहुत ही सन्तुष्ट हुआ है और सब पाञ्चाल राजाओंके साथ सेनाके मुहाने पर खड़ा है ॥ १३ ॥ तथा अर्जुनने सात अक्षौहिणी सेनाका नाश करके महापराक्रमी और दुराधर्ष आपके शिष्य जयद्रथको मार डाला है ॥ १४ ॥ इसके अतिरिक्त हमारी विजय चाहने वाले, हमारे सम्बन्धी जो हमारे साथ उपकार करते थे, वे मरकर यमलोकको पधार गए। हाय ! जिन्होंने युद्धमें मेरे लिये अपने प्राणोंको त्यागदिया, उनके ऋणसे, मैं कैसे छूट सकूँगा ॥ १५ ॥ जो पृथ्वीपति राजे मेरे लिये पृथ्वीको चाहते थे, वे राजे आज पृथ्वीके ऐश्वर्यको छोड

मेधसहस्रेण पावितुं न समुत्सहे ॥ १७ ॥ मम लुब्धस्य पापस्य तथा धर्मापचायिनः । व्यायामेन जिगीषन्तः प्राप्ता वैवस्वतक्षयम् ॥१८ कथं पतितवृत्तस्य पृथिवी सुहृदां द्रुहः । विवरं नाशकद्दातुं मम पार्थिवसंसदि ॥ १९ ॥ योऽहं रुधिरसिक्ताङ्गं राज्ञां मध्ये पितामहम् । शयानं नाशकं त्रातुं भीष्ममायोधने हतम् ॥ २० ॥ तं मामनार्यपुरुषं मित्रद्रुहमधार्मिकम् । किं वक्ष्यति हि दुर्द्धर्षः समेत्य परलोकजित् ॥२१॥ जलसन्धं महेष्वासं पश्य सात्यकिना हतम् । मदर्थमुद्यतं शूरं प्राणांस्त्यक्त्वा महारथम् ॥२२॥ काम्बोजं निहतं दृष्ट्वा तथालम्बुषमेव च । अन्यान् बहूंश्च सुहृदो जीवितार्थोऽद्य को

कर पृथ्वी पर लम्बे होकर सोरहे हैं॥१६॥रे! मैं वास्तवमें नीच-पुरुष हूँ, क्योंकि-इसप्रकार मित्रोंका संहार करानेके पीछे मैं सहस्र अश्वमेधयज्ञ करके भी अपनी आत्माको पवित्र न करसकूँगा॥१७॥ मैं लोभी, पापी तथा धर्मका नाश करने वाला हूँ, क्योंकि-विजय चाहनेवाले राजे मेरे लिये पराक्रम करते हुए यमलोकको सिधार गए हैं! ॥ १८ ॥ वास्तवमें मैं आचारसे भ्रष्ट होगया हूँ और सगे सम्बन्धियोंसे मैंने द्रोह किया है, अरेरे! राजाओंकी सभामें पृथ्वीने फटकर मुझे समा क्यों नहीं लिया ॥ १९ ॥ राजाओंके मध्यमें रुधिरसे सने हुए शरीरवाले, रणमें मरण पाकर शर-शय्या पर सोनेवाले भीष्मपितामहकी मैं रक्षा न करसका॥२०॥ परलोकमें विराजनेवाले दुराधर्ष भीष्मपितामह अनार्य, मित्रोंसे द्रोह करनेवाले मुझसे स्वर्गमें मिलेंगे, तब वे क्या कहेंगे ॥२१॥ सात्यकिके मारे हुए महाधनुषधारी जलसंधकी ओर तो देखो! यह शूरवीर महारथी प्राणोंकी परवाह न कर, केवल मेरे लिये ही लडनेको आया था ॥ २२ ॥ और काम्बोजराजको, राजा अलम्बुषको तथा दूसरे बहुतसे स्नेही राजाओंको मरा हुआ देख कर मेरे मनमें विचार उठता है कि—तेरे जीवित रहनेसे क्या

मम ॥ २३ ॥ व्यायच्छन्तो हताः शूरा मदर्थे येऽपराङ्मुखाः । यतमाना परं शक्त्या विजेतुमहितान्मम ॥ २४ ॥ तेषां गत्वाहमानृण्यमद्य शक्त्या परन्तप । तर्पयिष्यामि तानेव जलेन यमुनामनु ॥२५॥ सत्यन्ते प्रतिजानामि सर्वशस्त्रभृताम्वर । इष्टापूर्त्तेन च शपे वीर्येण च सुतैरपि ॥ २६ ॥ निहत्य तान्रणे सर्वान् पञ्चालान् पाण्डुभिः सह । शान्ति लब्धास्मि तेषां वा रणे गन्ता सलोकताम् ॥२७॥ सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः । हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ २८ ॥ न हीदानीं सहाया मे परीप्सन्त्यनुपस्कृताः । श्रेयो हि पाण्डून्मन्यन्ते न तथास्मान्महाभुज ॥ २९ ॥ स्वयं हि मृत्युर्विहितः सत्यसन्धेन संयुगे । भवानुपेक्षां कुरुते शिष्य-

---

लाभ ? ॥ २३ ॥ मेरे लिये लडनेवाले और पीछेको पैर न रखनेवाले शूर मेरे शत्रुओंको हरानेका बडा प्रयत्न करते २ रणमें मारेगए ! ॥२४॥ अतः हे परन्तप ! अब मैं यमुना नदीके जलसे उन मरे हुए स्नेही राजाओंको तृप्तकर उनके ऋणमेंसे छूटना चाहता हूँ ॥ २५ ॥ हे सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठगुरु द्रोण ! मैं तुम्हारे सामने बावडी, कुआँ, पराक्रम और पुत्रोंकी शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि—॥ २६ ॥ "मैं रणभूमिमें सम्पूर्ण पाञ्चाल राजाओंको और पाण्डवोंको मारकरही शान्ति पाऊँगा, नहीं तो मेरे लियेजो महापुरुष संग्राममें लडते हुए अर्जुनके हाथसे मरकर जहाँ गए हैं, तहाँ उनके पास मैं भी जाऊँगा और उनके लोकोंको प्राप्त होऊँगा ॥ २७-२८ ॥ हे महाभुज ! मेरे सहायक भी अब रक्षा न मिलनेसे मेरे पास खडा होना नहीं चाहते, रे ! वह जैसा पाण्डवोंका कल्याण चाहते हैं, तैसा हमारा कल्याण नहीं चाहते ॥ २९ ॥ (अधिक क्या कहूँ) तुम (स्वयं भी) शिष्य होनेके कारण अर्जुनकी ओरसे उपेक्षा (लापरवाही) करते हो, युद्धमें सत्यप्रतिज्ञावाले तुमने स्वयं ही हमारा नाश किया है ।३०।

त्वादर्जुनस्य हि ॥ ३० ॥ अतो विनिहताः सर्वे येऽस्मज्जयचिकीर्षवः । कर्णमेव तु पश्यामि सम्प्रत्यस्मज्जयैषिणम् ॥ ३१ ॥ यो हि मित्रमविज्ञाय याथातथ्येन मन्दधीः । मित्रार्थे योजयत्येनं तस्य सोऽर्थोऽवसीदति ॥३२॥ तादृग्रूपं कृतमिदं मम कार्यं सुहृत्तमैः। मोहाल्लुब्धस्य पापस्य जिह्मस्य धनमीहतः ॥३३॥ हतो जयद्रथो राजा सौमदत्तिश्च वीर्यवान् । अभीषाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः ॥ ३४ ॥ सोऽहमद्य गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः । हता मदर्थं संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ ३५ ॥ न हि मे जीवितेनार्थस्तानृते पुरुषर्षभान् । आचार्यः पाण्डुपुत्राणामनुजातु नो भवान् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनानुतापे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५०॥

इसकारण ही रणमें हमारी विजय चाहनेवाले सव राजाओंका संहार हुआ है, इस समय तो मैं कर्णको ही हमारी विजय चाहनेवाला और हितैषी देखता हूँ ॥ ३१ ॥ जो मन्दवुद्धिवाला पुरुष मित्रको विना पहिचाने ही उसको अपने हितके काममें लगा देता है, उस मनुष्यका कार्य नष्ट होजाता है ॥३२॥ मैं मोहके कारण लोभी, पापी, कपटी हूँ तथा धन चाहता हूँ और मेरे परमस्नेही मित्रोंने भी मेरे कामको ऐसा ही वताया है ॥ ३३ ॥ जयद्रथ, पराक्रमी भूरिश्रवा, अभीषाह, शूरसेन, शिवि और वसाति राजे मेरे लिये युद्ध करते २ अर्जुनके हाथसे रणमें मारेगए, अतः अव मैं वे महापुरुष जहाँ गए हैं तहाँ ही जाना चाहता हूँ ॥३४-३५॥ उन महापुरुषोंके विना मेरे अकेले जीनेसे क्या लाभ है, अतः हे पाण्डुपुत्रोंके आचार्य! अव आप हमें जानेकी आज्ञा दीजिये ३६

एकसौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५० ॥ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । सिन्धुराजे हते तात समरे सव्यसाचिना । तथैव भूरिश्रवसि किमासीद्वो मनस्तदा ॥१॥ दुर्योधनेन च द्रोणस्तथोक्तः कुरुसंसदि । किमुक्तवान् परं तस्मै तन्ममाचक्ष्व सञ्जय २ सञ्जय उवाच । निष्टानको महानासीत् सैन्यानां तव भारत । सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा भूरिश्रवसमेव च ॥ ३ ॥ मन्त्रितं तव पुत्रस्य ते सर्वमवमेनिरे । येन मन्त्रेण निहताः शतशः क्षत्रियर्षभाः ॥ ४ ॥ द्रोणस्तु तद्वचः श्रुत्वा तव पुत्रस्य दुर्मनाः ध्यात्वा मुहूर्त्तं राजेन्द्र भृशमार्तोऽभ्यभाषत ॥ ५ ॥ द्रोण उवाच । दुर्योधन किमेवं मां वाक्शरैरपि कृन्तसि । अजय्यं सततं संख्ये ब्रुवाणं सव्यसाचिनम् ॥६॥ एतेनैवार्जुनं ज्ञातुमलं कौरव संयुगे । यच्छिखण्ड्यवधीद्भीष्मं

धृतराष्ट्रने बूझा कि—हे तात सञ्जय ! युद्धमें अर्जुनने जयद्रथको मारडाला और भूरिश्रवा भी मारागया, तब तुम्हारे मनमें क्या क्या विचार उठे थे ? तथा दुर्योधनने कौरवोंकी सभाके बीचमें द्रोणाचार्यसे इसप्रकार बातचीत की, तब उन्होंने क्या उत्तर दिया था; वह मुझे सुना ॥ १-२ ॥ सञ्जयने कहा कि—हे भरतवंशी राजन् ! सिंधुराज तथा राजा भूरिश्रवाको मराहुआ देखकर, तुम्हारी सेनामें बड़ाभारी कुहराम मचने लगा ॥३॥ और तुम्हारे पुत्रके सकल विचारोंका राजाओंने अनादर किया, क्योंकि—उसके (भ्रष्ट.) विचारसे ही सहस्रों क्षत्रिय नष्ट होगए ॥४॥ अब दुर्योधनने गुरु द्रोणाचार्यसे ऐसी बातें कहीं, तब द्रोणाचार्य चित्तमें दुःखी होने लगे और दो घड़ी तक चित्तमें विचार करने के पीछे खिन्न होकर कहने लगे ॥ ५ ॥ द्रोण बोले कि—"ओ दुर्योधन ! तू इसप्रकार वाग्बाण मारकर मुझे क्यों बींधता है ? मैं तुझसे सदा ही कहा करता हूँ, अर्जुन युद्धमें जीतनेमें आने वाला नहीं है ॥ ६ ॥ हे दुर्योधन ! मुकुटधारी अर्जुनकी रक्षामें रहकर शिखण्डीने रणमें भीष्मको मारडाला इस बातसे ही तू

पाल्यमानः किरीटिना ॥ ७ ॥ अवध्यं निहतं दृष्ट्वा संयुगे देवदानवैः । तदैवाशासिषमहं नेयमस्तीति भारती ॥ ८ ॥ यः पुंसां त्रिषु लोकेषु सर्वशूरममंस्महि । तस्मिन्निपतिते शूरे किं शेषं पर्युपास्महे ॥ ९ ॥ यान् स्म तान् ग्लहते तात शकुनिः कुरुसंसदि । अक्षान्न तेऽक्षा निशिता बाणास्ते शत्रुतापनाः ॥ १० ॥ त एते घ्नन्ति नस्तात विशिखाः पार्थचोदिताः । तांस्तदाख्यायमानस्त्वं विदुरेण न बुद्धवान् ॥ ११ ॥ यास्ता विजयतश्चापि विदुरस्य महात्मनः । धीरस्य वाचो नाश्रौषीः क्षेमाय वदतः शुभाः १२ तदिदं वर्त्तते घोरमागतं वैशसं महत् । तस्यावमानाद्वाक्यस्य दुर्योधनकृते तव ॥१३॥ योऽवमन्य वचः पथ्यं सुहृदामाप्तकारिणाम् ।

अर्जुनको भली भाँति पहिचान ले (कि-वह कैसा पराक्रमी है ?) ॥ ७ ॥ जबसे मैंने देवता और राक्षसोंसे भी न मारे जासकनेवाले भीष्मको रणमें गिरतेहुए देखा है तबसे मुझे इस भरतवंशी राजाओंकी सेनाके बचनेकी आशा नहीं रही है ८ हम तीनों लोकोंमें जिनको पुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, वे शूर भी रणमें मारेगए तो फिर औरोंकी क्या आशा रक्खें ॥ ९ ॥ हे तात ! शकुनिने कौरवोंकी सभामें जो फाँसे फ़ैंके थे, वह फाँसे नहीं थे, परन्तु वे तो शत्रुओंको पीडा देनेवाले तीक्ष्ण बाण थे ॥ १० ॥ हे तात ! कुन्तीपुत्रके फैंके हुए जो बाण अब हमारा नाश कररहे हैं इन बाणोंकी बात जब जुआ आरम्भ हुआ था तब विदुरने तुझसे कही थी कि-पाशे बाण बनजावेंगे परन्तु तू इस बातको समझा ही नहीं ॥ ११ ॥ धीर महात्मा विदुरने द्यूतमें विजयी हुए तुझसे, तेरे कल्याणके लिये हितकारी वचन कहे थे, परन्तु तूने वे वचन सुने ही नहीं ॥१२॥ विदुरके वचनोंका अनादर करनेसे हे दुर्योधन ! तेरे कारणसे आज हमारा बडा भारी संहार होरहा है ॥ १३ ॥ जो मूढ़ पुरुष अपने हितैषी

स्वमतं कुरुते मूढ स शोच्यो न चिरादिव ॥१४॥ यच्च न पश्यमानानां कृष्णामानाय्य यत् सभाम् । अनर्हतीं कुले जातां सर्वधर्मानुचारिणीम् ॥ १५ ॥ तस्याधर्मस्य गान्धारे फलं प्राप्तमिदं महत् । नो चेत्पापं परे लोके त्वमर्च्छेथास्ततोऽधिकम् ॥१६॥ यच्च तान् पाण्डवान् द्यूते विषमेण विजित्य ह । प्राव्राजयस्तदारण्ये रौरवाजिनवाससः ॥ १७ ॥ पुत्राणामिव चैतेषां धर्ममाचरतां सदा । द्रुह्येत् को नु नरो लोके मदन्यो ब्राह्मणब्रुवः ॥ १८ ॥ पाण्डूनामयं कोपस्त्वया शकुनिना सह । आहृतो धृतराष्ट्रस्य सम्मते कुरुसंसदि ॥ १९ ॥ दुःशासनेन संयुक्तः कर्णेन परिवर्द्धितः । क्षत्तुर्वाक्यमनादृत्य त्वयाभ्यस्तः पुनः पुनः ॥ २० ॥ यत्ताः सर्वे

और यथार्थवक्ता पुरुषोंके हितकारक वचनोंका अनादर करके अपने विचारके अनुसार वर्ताव करता है, वह थोड़ेही समयमें दुःख पाता है ॥ १४ ॥ अरे ! गान्धारीके पुत्र ! सभामें लानेके अयोग्य सब प्रकारसे धर्मोंका आचरण करनेवाली कुलीन द्रौपदीको चोटी पकड़वाकर तूने हमारे सामने सभाके बीचमें खिंचवाते हुए मँगाया था, उस अधर्मका ही यह बड़ा भारी फल तुझे मिला है, यदि उसका फल तुझे इस लोकमें नहीं मिलता, तो इससे अधिक दण्ड तुझे परलोकमें भोगना पड़ता १६ और जुएमें कपटसे पाण्डवोंको हराकर, उनको रुरुमृगकी खाल पहिराकर वनमें निकाल दिया ॥ १७ ॥ उसका फल तुझे आज मिला है, पाण्डव मेरे पुत्रकी समान हैं और सदा धर्मका आचार करते हैं, मेरे सिवा दूसरा कौनसा नीच ब्राह्मण उनसे ईर्षा करेगा ? ॥ १८ ॥ शकुनिके दिखानेसे और धृतराष्ट्रकी सम्मतिसे तूने भी कौरवोंकी सभामें पाण्डवोंके कोपको मोल लेलिया था ॥ १९ ॥ और दुःशासन भी तेरे साथ ही लगाहुआ था, और कर्णने उसको बढाया था और तूने विदुरके वचनोंका अना-

पराभूताः पर्यवारयतार्जुनम् । सिन्धुराजानमाश्रित्य स वो मध्ये कथं हतः ॥ २१ ॥ कथञ्च त्वयि कर्णे कृपे च शल्ये च जीवति । अश्वत्थाम्नि च कौरव्य निधनं सैन्धवोऽगमत् ॥ २२ ॥ युध्यन्तः सर्वराजानस्तेजस्तिग्ममुपासते । सिन्धुराजं परित्रातुं स वो मध्ये कथं हतः ॥ २३ ॥ मय्येव हि विशेषेण तथा दुर्योधन त्वयि । आशंसत परित्राणमर्जुनात् स महीपतिः ॥ २४ ॥ ततस्तस्मिन् परित्राणमलब्धवति फाल्गुनात् । न किञ्चिदपि पश्यामि जीवितस्थानमात्मनः ॥२५॥ मज्जन्तमिव चात्मानं धृष्टद्युम्नस्य किल्बिषे । पश्याम्यहत्वा पञ्चालान् सह तेन शिखण्डिना ॥ २६ ॥ तन्मां किमभितप्यन्तं वाक्शरैरेव कृन्तसि । अशक्तः सिन्धुराजस्य भूत्वा त्राणाय भारत ॥२७॥ सौवर्णं सत्यसन्धस्य ध्वजमक्लिष्टकारिणः ।

दूर करके बारम्बार कोपानलको भड़काया था ॥ २० ॥ सब योधा तयार होकर सिंधुराजका आश्रयकर अर्जुनको चारों ओरसे घेररहे थे तो भी उनका पराजय कैसे हुआ ? और सबोंके बीच में अर्जुनने जयद्रथको कैसे मारडाला ॥ २१ ॥ हे दुर्योधन ! तेरे कर्णके, कृपाचार्यके, शल्यके और अश्वत्थामाके जीवित होने पर भी जयद्रथ कैसे मारागया ॥ २२ ॥ हे दुर्योधन ! जयद्रथ अर्जुन से अपनी रक्षाकी आशा, मेरे और तेरे ऊपर बाँधे बैठा था ॥ २४ ॥ परन्तु वह अर्जुनसे अपनेको बचा नहीं सका, अतः मुझे अपने जीवनके लिये भी कोई स्थान दिखाई नहीं देता २५ मैं भी जब तब तक शिखण्डी सहित पाञ्चालराजाओंको न मार लूँगा, तब तक मैं अपनेको धृष्टद्युम्नके पापमें डूबाहुआ समझना हूँ ॥ २६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! मैं सिंधुराजका रक्षक बनकर भी उसकी रक्षा न करसका (इस शोकसे मैं जलरहा हूँ) इसको तू वाणीरूप अस्त्रोंसे क्यों बींधे डालता है ॥ २७ ॥ सत्य प्रतिज्ञावाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले भीष्मपितामहकी सुवर्णकी

अपश्यन् युधि भीष्मस्य कथमाशंससे जयम् ॥ २८ ॥ मध्ये महारथानाञ्च यत्राहन्यत सैन्धवः । हतो भूरिश्रवाश्चैव किं शेषं तत्र मन्यसे ॥ २९ ॥ कृप एव च दुर्द्धर्षो यदि जीवति पार्थिव । यो नागात् सिन्धुराजस्य वर्त्म तं पूजयाम्यहम् ॥ ३० ॥ यत्रापश्यं हतं भीष्मं पश्यतस्तेऽनुजस्य वै । दुःशासनस्य कौरव्य कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ॥ ३१ ॥ अवध्यकल्पं संग्रामे देवैरपि सवासवैः । न ते वसुन्धरास्तीति तदाहं चिन्तये नृप ॥ ३२॥ इमानि पाण्डवानां च सृञ्जयानां च भारत । अनीकान्याद्रवन्ते मां सहितान्यद्य मारिष ३३ नाहत्वा सर्वपञ्चालान् कवचस्य विमोक्षणम् । कर्त्तास्मि समरे कर्म धार्त्तराष्ट्र हितं तव ॥ ३४ ॥ राजन् ब्रूया सुतं मे त्वमश्व-

ध्वजा इस युद्धमें तुझे दिखाई नहीं देती, फिर भी तू अब विजयकी आशा कैसे रखता है ॥ २८ ॥ जिस युद्धमें महारथियोंके वीचमें रक्षित सिंधुराज और भूरिश्रवा मारेगये, तहाँ तू औरोंके वचनेकी आशा कैसे करता है ॥ २९ ॥ महावलवान् एक कृपाचार्य अकेले अभी तक जीते हैं, वह अभी सिंधुराजके मार्गसे नहीं गये हैं, इसलिये मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ ॥ ३० ॥परन्तु हे कुरुराजपुत्र ! तेरी और तेरे छोटे भाई दुःशासनकी दृष्टिके सामने महादुष्कर कर्म करनेवाले तथा संग्राममें इन्द्र आदि देवताओंसे भी न मारे जा सकनेवाले भीष्मको जबसे मैंने मरा हुआ देखा है, तवसे हे राजन् !मेरे मनमें निश्चय होगया है,कि-यह पृथ्वी तेरे पास नहीं रहसकती ॥ ३१-३२ ॥ हे भरतकुलोत्पन्न राजन्! पाण्डवोंकी तथा सृञ्जयोंकी सेनाएँ इकट्ठी होकर आज मेरे ऊपर चढी आरही हैं ॥ ३३ ॥ हे धृतराष्ट्रके कुँवर ! आज मैं सकल पाण्डवोंको मारे विना अपने शरीर परसे कवचको नहीं उतारूँगा तथा रणमें तेरा हित करूँगा ॥ ३४॥ हे राजन् दुर्योधन ! तू रणमें जा कर मेरे पुत्र अश्वत्थामासे कहना, कि-तू

स्थानान्माहवे। न सोमकाः प्रमोक्तव्या जीवितं परिरक्षता॥३५॥ यच्च पित्रानुशिष्टोसि तद्वचः परिपालय। आनृशंस्ये दमे सत्ये चार्जवे च स्थिरो भव॥ ३६॥ धर्मार्थकामकुशलो धर्मार्थावप्यपीडयन्। धर्मप्रधानकार्याणि कुर्याश्चेति पुनः पुनः॥ ३७॥ चक्षुर्मनोभ्यां सन्तोष्या विप्राः पूज्याश्च शक्तितः। न चैषां विप्रियं कार्यं ते हि वह्निशिखोपमाः॥३८॥ एष त्वहमनीकानि प्रविशाम्यरिसूदन। रणाय महते राजंस्त्वया वाक्शल्यपीडितः॥ ३९॥ त्वञ्च दुर्योधन बलं यदि शक्तोऽसि धारय। रात्रावपि च योत्स्यन्ति संरब्धा कुरुसृञ्जयाः॥ ४०॥ एवमुक्त्वा ततः प्रायाद् द्रोणः

अपने प्राणोंकी रक्षा करताहुआ सोमकोंका जहाँ तक बने तहाँ तक संहार करना, उन्हें जीवित मत छोड़ना॥ ३५॥ और कहना कि–तेरे पिताने तुझे जिस बातकी आज्ञा दी है–उनके वचनोंका तू पालन करना; दया, दम, सत्य तथा सरलताको स्थिरतासे धारण करना, धर्म, अर्थ और काममें कुशल रहना, धर्ममें तथा अर्थमें बाधा न पड़े, तैसे बर्ताव करना, तथा धर्मको मुख्य गिनकर सब काम करना, यह मैंने तुझसे बहुत बार कहा है (तदनुसार बर्ताव करना)॥ ३६–३७॥ तू नेत्र तथा मनसे ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट रखना, शक्तिके अनुसार उनका सत्कार करना, परन्तु उनके मनको अच्छा न लगनेवाला काम न करना, क्योंकि–वे अग्निकी शिखाकी समान होते हैं ३८ (इसप्रकार कहनेके पीछे द्रोण दुर्योधनसे कहनेलगे कि–) हे शत्रुनाशक राजन! तूने मुझे वाग्बाण मारकर पीडित किया है, अतः अब मैं महारणमें संग्राम करनेके लिये शत्रुकी सेनाओंमें प्रवेश करता हूँ॥ ३९॥ हे दुर्योधन! तुझमें शक्ति हो तो तू इस सेनाकी रक्षा करना, क्योंकि–क्रोधमें भरेहुए कौरव तथा सृञ्जय राजे रात्रिमें भी युद्ध करेंगे, अतः उनसे तू सावधान रहना ४०

पाण्डवसृञ्जयान्। मुष्णन् क्षत्रियतेजांसि नक्षत्राणामिवांशुमान् ४१

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणवाक्ये
एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

सञ्जय उवाच। ततो दुर्योधनो राजा द्रोणेनैवं प्रचोदितः। अमर्षवशमापन्नो युद्धायैव मनो दधे ॥१॥ अब्रवीच्च तदा कर्णं पुत्रो दुर्योधनस्तव । पश्य कृष्णसहायेन पाण्डवेन किरीटिना ॥ २ ॥ आचार्यविहितं व्यूहं भित्वा देवैः सुदुर्भिदम् । तव व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ ३ ॥ मिषतां योधमुख्यानां सैन्धवो विनिपातितः । पश्य राधेय राजानः पृथिव्यां प्रवरा युधि ॥४॥ पार्थेनैकेन निहताः सिंहेनेवेतरे मृगाः । मम व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ ५ ॥ अल्पावशेषं सैन्यं मे कृतं शक्रात्मजेन ह ।

इसप्रकार दुर्योधनको उपदेश देकर, सूर्य जैसे नक्षत्रोंके तेजको हरे, तैसे क्षत्रियोंके तेजको हरतेहुए द्रोणाचार्य पाण्डवों और सृञ्जयोंके सामने लडनेके लिये चलदिये ॥ ४१॥ एकसौ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५१ ॥ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा कि-हे राजन् ! द्रोणाचार्यके इसप्रकार कहने पर तुम्हारा पुत्र क्रोधमें भरगया और उसने अपने मनमें युद्ध करनेकी ठानली ॥ १ ॥ और उसने उस समय कर्णसे कहा, कि-हे कर्ण ! दृष्टि तो डाल ! श्रीकृष्णकी सहायतावाले मुकुटधारी अर्जुनने द्रोणाचार्यका व्यूह-जिसको देवता भी नहीं भेदसकते थे-उसको तोड़डाला है, तथा तेरे, महात्मा द्रोणके और मुख्य२ राजाओंके सामने उसने सिंधुराजको भी मारडाला है, हे राधापुत्र कर्ण ! सिंह जैसे साधारण मृगोंका संहार करडाले-तैसेही अकेले अर्जुनसेही रणभूमिमें मारेगये बड़े२ राजे पड़े हैं, इनको तो तू देख ! मैंने तथा द्रोणाचार्यने बडा प्रयत्न किया, तो भी इन्द्रपुत्र अर्जुनने मेरी सेनाका संहार करडाला और अब थोड़ीसीही

कथं नियच्छमानस्य द्रोणस्य युधि फाल्गुनः ॥ ६ ॥ भिंद्यात्सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानोऽपि संयुगे। प्रतिज्ञाया गतः पारं हत्वा सैन्धवमर्जुनः ॥ ७ ॥ पश्य राधेय पृथ्वीशान् पृथिव्या पातितान्बहून् । पार्थेन निहतान्संख्ये महेन्द्रोपमविक्रमान् ॥ ८ ॥ अनिच्छतः कथं वीर द्रोणस्य युधि पाण्डवः । भिन्द्यात् सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानस्य शुष्मिणः ॥ ९ ॥ दयितः फाल्गुनो नित्यमाचार्यस्य महात्मनः । ततोऽस्य दत्तवान् द्वारमयुद्धेनैव शत्रुहन् ॥ १० ॥ अभयं सैन्धवस्यादौ दत्वा द्रोणः परन्तपः । प्रादात् किरीटिने द्वारं पश्यन्निर्गुणतां मयि ॥ ११ ॥ यद्यदास्यदनुज्ञां वै पूर्वमेव गृहान् प्रति । प्रस्थातुं सिन्धुराजस्य नाभविष्यज्जनक्षयः ॥१२॥ जयद्रथो जीवि-

सेना बाकी बची है, इस युद्धमें द्रोणाचार्य यदि पुष्कल प्रयत्न करते तो अर्जुन (चाहे जितना) परिश्रम करने पर भी उस अतीव दुर्भेद्य व्यूहको कभीभी तोड नहीं सकता था । परन्तु द्रोणाचार्य ढीले पडगये और अर्जुनने सिंधुराजको मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करली ॥ २-७ ॥ हे कर्ण ! अर्जुनने रणभूमिके ऊपर इन्द्रसरीखे बहुतसे राजाओंको मारकर पृथिवीमें सुलादिया ॥ ८ ॥ हे वीर ! द्रोण युद्धमें क्रोधमें आकर प्रयत्न करते और हमारी ओरकी विरुद्धताका त्याग कर देते तो अर्जुन अतिकठिनतासे भेदे जा सकनेवाले चक्रव्यूहको कैसे तोड सकता था ? ॥ ९ ॥ परन्तु महात्मा आचार्य नित्य अर्जुनके ऊपर प्रेमभाव रखते हैं, इससे हे शत्रुहन्ता कर्ण ! इन्होंने युद्ध न कर अर्जुनको व्यूहमें घुसनेके लिये मार्ग देदिया था ॥ १० ॥ रे ! मेरे दुर्भाग्यको तो देखो ! परन्तप द्रोणाचार्यने सिंधुराजको अभयवचन दिया था, तो भी अर्जुनको सेनामें घुसने दिया ! ॥११॥ आचार्यने यदि प्रथमसे ही सिन्धुराजको घर जानेकी आज्ञा दी होती तो निःसंशय मनुष्योंका (इतना बडा) संहार नहीं

तार्थी गच्छमानो गृहान् प्रति । मयानार्येण संरुद्धो द्रोणात् प्राप्याभयं सखे ॥ १३ ॥ अद्य मे भ्रातरः क्षीणाश्चित्रसेनादयो युधि । भीमसेन समासाद्य पश्यतानो दुरात्मनाम् १४ कर्ण उवाच । आचार्यं मा विगर्हस्व शक्त्यासौ युध्यते द्विजः । यथाबलं यथोत्साहं त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १५ ॥ यद्येनं समतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः । नात्र सूक्ष्मोऽपि दोषः स्यादाचार्यस्य कथञ्चन ॥१६॥ कृती दक्षो युवा शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः । दिव्यास्त्रयुक्तमास्थाय रथं वानरलक्षणम् ॥१७॥ कृष्णेन च गृहीताश्वमभेद्यकवचावृतः । गांडीवमजरं दिव्यं धनुरादाय वीर्यवान् ॥१८॥ प्रवर्षन्निशितान् बाणान् बाहुद्रविणदर्पितः । यदर्जुनोऽभ्ययाद् द्रोणमुपपन्नं हि तस्य तत् १९

होता ॥ १२ ॥ हे मित्र ! जयद्रथ तो जीते रहनेकी लालसासे घर जानेको उद्यत होगया था, परन्तु मुझ जैसे अनार्यने आचार्यसे अभयदान दिलवाकर उसको घर जानेसे रोका था१३ हाय ! आजके युद्धमें हम सब दुरात्माओंके नेत्रोंके सामने चित्रसेन आदि मेरे भाई भीमसेनके साथ लडकर मारेगये ।१४। यह सब सुनकर कर्णने कहा कि–तुम आचार्यका अपमान मत करो, यह ब्राह्मण अपने प्राणोंकी भी परवाह न कर अपनी शक्ति भर युद्ध करते हैं ॥ १५ ॥ श्वेत घोडोंवाला अर्जुन आचार्यका उल्लंघन करके हमारी सेनामें घुसगया, इसमें आचार्य का कुछ भी दोष नहीं है॥१६॥ युद्धकुशल, बुद्धिमान्, तरुण शूरवीर, अस्त्रोंको जाननेवाला, फुर्तीसे पराक्रम करनेवाला, अभेद्य कवच पहिरनेवाला पराक्रमी, और भुजबलका अभिमान रखनेवाला अर्जुन दिव्य अस्त्रोंसे तथा शस्त्रोंसे भरेहुए, वानरके चिन्ह वाली ध्वजासे अलंकृत और जिसके अश्वोंकी लगामें श्रीकृष्णके हाथमें थीं–ऐसे रथमें बैठकर, गाण्डीव धनुषको हाथमें लेकर, बाणोंकी वर्षा करता हुआ द्रोणाचार्यके ऊपर चढ़आया, इसमें कुछ आश्चर्य

आचार्यः स्थविरो राजन् शीघ्रयाने तथाऽक्षमः । वाहुव्यायामचेष्टायामशक्तस्तु नराधिप ॥ २० ॥ तेनैवमभ्यतिक्रान्तः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः । तस्माद्दोषं न पश्यामि द्रोणस्यानेन हेतुना ॥२१॥ अजय्यान् पाण्डवान्मन्ये द्रोणेनास्त्रविदा मृधे । तथा ह्येनमतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ॥२२॥ दैवादिष्टोऽन्यथाभावो न मन्ये विद्यते क्वचित् । यतो नो युध्यमानानां परं शक्त्या सुयोधन ॥ २३ ॥ सैन्धवो निहतो युद्धे दैवमत्र परं स्मृतम् । परं यत्नं कुर्वताञ्च त्वया सार्धं रणाजिरे ॥ २४ ॥ हत्वास्माकं पौरुषं वै दैवं पश्चात् करोति नः । सततं चेष्टमानानां निकृत्या विक्रमेण च ॥ २५ ॥ दैवोपसृष्टः पुरुषो यत् कर्म कुरुते क्वचित् । कृतं कृतं हि तत्कर्म दैवेन

नहीं है ॥ १७-१९ ॥ हे राजन् ! आचार्य अवस्थामें वृद्ध और शीघ्रतासे चलनेमें असमर्थ हैं, तथा दोनों हाथोंको शीघ्रतासे चलानेमें भी असक्त हैं, इससे ही श्वेत घोड़ोंवाला और कृष्ण जिसके सारथी हैं, वह अर्जुन द्रोणका उल्लंघन कर सेनामें घुसगया था, इसमें मैं द्रोणाचार्यका कुछ दोष नहीं देखता २०-२१ रणमें द्रोणाचार्यका पराजय करनेकी शक्ति पाण्डवोंमें नहीं है ऐसा मैं जानता था, तव भी अर्जुन उनको लाँघकर सेनामें घुस गया ॥ २२ ॥ इससे मुझे प्रतीत होता है कि-हमारा पराजय दैवेच्छासे हुआ है और इसमें द्रोणाचार्यका जरा सा भी दोष नहीं है, हे दुर्योधन ! हमने भी तेरे साथमें रहकर रणमें वड़ा भारी प्रयत्न किया और शक्तिके अनुसार लड़े, तव भी अर्जुनने युद्धमें सिन्धुराजको मारडाला, अतः इस विषयमें प्रारब्धको ही मुख्य समझना चाहिये ॥ २३-२४ ॥ हम सदा कपटसे तथा पराक्रमसे कार्य करनेके लिये पुरुषार्थ किया करते हैं, परन्तु दैव हमारे पुरुषार्थका नाश करके, उसको पीछेको ढकेल देता है २५ भाग्यहीन मनुष्य किसी समय जिस२ कामको करता है, प्रारब्ध

विनिपात्यते ॥ २६ ॥ यत् कर्त्तव्यं मनुष्येण व्यवसायवता सदा । तत् कार्यमविशङ्केन सिद्धिर्दैवे प्रतिष्ठिता ॥२७॥ निकृत्या वञ्चिताः पार्था विषयोगैश्च भारत । दग्धा जतुगृहे चैव द्यूतेन च पराजिताः॥२८॥राजनीतिं व्यपाश्रित्य प्रहिताश्चैव काननम् । यत्नेन च कृतं तत्तद्दैवेन विनिपातितम् ॥२९॥ युध्यस्व यत्नमास्थाय दैवं कृत्वा निरर्थकम् । यततस्तव तेषाञ्च दैवं मार्गेण यास्यति ३० न तेषां मतिपूर्वं हि सुकृतं दृश्यते क्वचित् । दुष्कृतं तव वा वीर बुद्ध्याहीनं कुरूद्वह ॥ ३१ ॥ दैवं प्रमाणं सर्वस्य सुकृतस्येतरस्य वा ।

उसके प्रसर२ (सब) कामको नष्ट करदेता है ॥ २६ ॥ अतः मनुष्यको उद्योगी बनकर, जो काम करना हो, उसको निःसन्देह सदा करते जाना चाहिये, परन्तु कार्यकी सिद्धिका आधार तो दैवके ही ऊपर है ॥२७॥ हे भरतवंशी राजन्! हमने पाण्डवोंको कपट करके छला, मारनेके लिये विष दिया, लाक्षा भवनमें भस्म करदिया और द्यूतमें हरादिया, राजनीतिके आधार पर बहुत समय तक वनमें भेजदिया, इसप्रकार प्रयत्नपूर्वक जो२ भी कार्य करे, उन सब कामोंको प्रारब्धने निरर्थक करडाला ॥२८-२९॥ परन्तु तुम दैवको निरर्थक समझो और यत्नके ऊपर आधार रखकर युद्ध करो, तुम तथा वे-दोनों प्रयत्न करोगे तो तुम दोनोंका प्रारब्ध अपने२ मार्ग पर चलाजावेगा अर्थात् दोनोंमेंसे एकको विजय मिलेगी ॥ ३० ॥ हे कुरुवंशी राजन् दुर्योधन ! पाण्डवोंने बुद्धिपूर्वक कोई सत्कार्य किया हो, यह तो मुझे कुछ प्रतीत नहीं होता, तथा तूने भी-विचार करे विना पराजय पानेवाला-कोई दूषित कार्य किया हो यह भी मुझे दिखाई नहीं देता, तुम दोनोंने उचित परिश्रम किया है ॥ ३१ ॥ परन्तु सबके सत्कार्य और असत्कार्यमें दैव ही प्रमाणभूत है, मनुष्य जब निद्रावश होकर अचेतन अवस्थामें चेष्टाशून्य होकर पडा होता है, तब भी

अनन्यकर्म दैवं हि जागर्त्ति स्वपतामपि ॥ ३२ ॥ वहूनि तव सैन्यानि योधाश्च वहवस्तव । न तथा पाण्डुपुत्राणामेवं युद्धमवर्त्तत ॥ ३३ ॥ तैरल्पैर्वहवो यूयं क्षयं नीताः प्रहारिणः । शङ्के दैवस्य तत् कर्म पौरुषं येन नाशितम् ॥ ३४ ॥ सञ्जय उवाच । एवं सम्भाषमाणानां वहु तत्र जनाधिप । पाण्डवानामनीकानि समदृश्यन्त संयुगे ॥३५॥ ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् । तावकानां परैः सार्द्धं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि पुनर्युद्धारम्भे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

समाप्तञ्च जयद्रथवधपर्व ।

उसका प्रारब्ध तो जागता ही रहता है ॥ ३२ ॥ तेरी सेना भी वहुत है और योधा भी वहुत हैं, इतनी सेना और इतने योधा पाण्डवोंके पास नहीं है तब भी दोनोंमें युद्ध आरंभ होगया और उनके योधाओंने तेरे योधाओंका संहार करडाला, इससे मुझे सन्देह होता है कि यह सब प्रारब्धकी ही लीला है और प्रारब्धने ही हमारे पुरुषार्थका नाश करदिया है ॥३३-३४॥ सञ्जय कहता है कि–हे राजन्! इसप्रकार कर्ण और दुर्योधन वहुतसी वातें कररहे थे, इतनेमें ही रणभूमिके ऊपर पाण्डवोंकी सेना दिखाई दी ॥ ३५ ॥ और हे राजन्! तुम्हारे अन्यायके कारण तुम्हारे पुत्रोंका शत्रुओंके साथ युद्ध होनेलगा, इस युद्धमें सहस्रों हाथीसवार और घुड़सवार एक दूसरेके सामने डटकर युद्ध करने लगे ॥ ३६ ॥ एक सौ वावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५२ ॥*॥

जयद्रथवधपर्व समाप्त ।

अथ घटोत्कचवधपर्व ।

सञ्जय उवाच । तदुदीर्णं गजानीकं बलं तव जनाधिप । पाण्डुसेनामतिक्रम्य योधयामास सर्वतः ॥ १ ॥ पञ्चालाः कौरवाश्चैव योधयन्तः परस्परम् । यमराष्ट्राय महते परलोकाय दीक्षिताः ॥ २ ॥ शूराः शूरैः समागम्य शरतोमरशक्तिभिः । विव्यधुः समरेऽन्योऽन्यं निन्युश्चैव यमक्षयम् ॥ ३ ॥ रथिनां रथिभिः सार्द्धं रुधिरस्रावदारुणम् । प्रावर्त्तत महद्युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ४ ॥ वारणाश्च महाराज समासाद्य परस्परम् । विषाणैर्दारयामासुः सुसंक्रुद्धा मदोत्कटाः ॥५॥ हयारोहान् हयारोहाः प्रासशक्तिपरश्वधैः । बिभिदुस्तुमुले युद्धे प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ६ ॥ पत्तयश्च महाबाहो शतशः शस्त्रपाणयः । अन्योऽन्यमार्दयन् राजन्नित्यं यत्ताः पराक्रमे ॥ ७ ॥ गोत्राणां नामधेयानां कुलानाञ्चैव मारिष । श्रव-

---

घटोत्कचवधपर्व ।

सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् धृतराष्ट्र ! (प्रारम्भमें ही) आपकी बढ़ीहुई हस्तिसेना पाण्डवोंकी सेनाको दबाकर चारों ओर लड़नेलगी ॥ १ ॥ पाञ्चाल राजे और कौरव राजे बड़े भारी यमलोकमें जानेके लिये परलोककी दीक्षा लेकर परस्पर लड़नेलगे ॥ २ ॥ शूर शूरोंके साथ भिड़कर बाण, तोमर और शक्तियोंसे एक दूसरेको बींधकर उनको यमलोकमें भेजनेलगे ३ रथी रथियोंसे भिड एक दूसरेको मारकर रुधिरके पननाले बहा देते थे इसप्रकार वह बड़ाभारी दारुण युद्ध होनेलगा ॥ ४ ॥ हे महाराज ! क्रोधमें भरेहुए मदमत्त हाथी एक दूसरेके सामने आ दाँतोंसे मारनेलगे ॥५॥ घुड़सवार भी तुमुल युद्धमें बड़ाभारी यश पानेकी इच्छासे घोड़ेसवारोंके शरीरोंको प्रास, शक्ति और तोमर मारकर चीरनेलगे ॥ ६ ॥ हे महाभुज राजन् ! सहस्रों शस्त्रधारी पैदल पराक्रम करनेके लिये सावधान होकर बारंबार

णाद्धि विजानीमः पञ्चालान् कुरुभिः सह ॥ ८ ॥ तेऽन्योऽन्यं समरे योधाः शरशक्तिपरश्वधैः । प्रैषयन् परलोकाय विचरन्तो ह्यभीतवत् ॥ ९ ॥ शरा दश दशो राजंस्तेषां मुक्ताः सहस्रशः । न भ्राजन्ते यथातत्त्वं भास्करेऽस्तं गतेऽपि च ॥ १० ॥ तथा प्रयुध्यमानेषु पाण्डवेयेषु भारत । दुर्योधनो महाराज व्यवागाहत तद्बलम् ॥११॥ सैन्धवस्य वधेनैव भृशं दुःखसमन्वितः । मर्त्तव्यमिति सञ्चिन्त्य प्राविशच्च द्विषद्बलम् ॥१२॥ नादयन् रथघोषेण कम्पयन्निव मेदिनीम् । अभ्यवर्त्तत पुत्रस्ते पाण्डवानामनीकिनीम् ॥१३॥ स सन्निपातस्तुमुलस्तस्य तेषाञ्च भारत । अभवत् सर्वसैन्यानामभावकरणो महान् ॥ १४ ॥ यथा मध्यन्दिने सूर्यं प्रतपन्तं गभ-

---

एक दूसरेको पीडित करनेलगे ॥ ७ ॥ हे राजन् ! इस युद्धमें योधा कुल और गोत्रोंके नाम सुना रहे थे, उसके सुनाई देनेसेही पाञ्चाल राजे कौरव राजाओंके साथ लड़रहे हैं यह प्रतीत होता था ॥ ८ ॥ योधा परस्परमें बाण शक्ति और तोमरका प्रहार कर एक दूसरेको यमलोकमें भेजरहे थे और निर्भय पुरुषकी समान रणमें घूमते थे ॥ ९ ॥ हे राजन् ! उनके छोड़ेहुए सहस्रों बाणोंसे दशों दिशाएँ भरगई थीं, इसकारण-सूर्यास्त होनेपर जैसे कुछ दिखाई नहीं देता है तैसे-कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥१०॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! पाण्डवोंके योधा इसप्रकार जूझ रहे थे, कि-दुर्योधन उसकी सेनाको हिलोडनेलगा ॥११॥ उसको सैंधवके वधसे बड़ाभारी दुःख होरहा था अतः वह (एक दिन) मरना ही है, यह विचार कर शत्रुसेनामें घुसगया(था) १२ तुम्हारा पुत्र रथकी झनकारसे पृथिवीको झनझनाता हुआ और कँपाताहुआ पाण्डवोंकी सेनामें आ पड़ा ॥ १३ ॥ तुम्हारे पुत्रका पाण्डवोंकी सेनाके साथ तुमुल युद्ध होनेलगा, इस समय सब सेनाओंमें बड़ाभारी संहार होरहा था ॥ १४ ॥ दुपहरियामें

रश्मिभिः। तथा तव सुतं मध्ये प्रतपन्तं शरार्चिभिः ॥ १५ ॥ न शेकुर्भ्रातरं युद्धे पाण्डवाः समुदीक्षितुम्। पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ १६ ॥ पर्यधावन्त पञ्चाला वध्यमाना महात्मना। रुक्मपुंखैः प्रसन्नाग्रैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १७ ॥ अर्द्यमानाः शरैस्तूर्णं न्यपतन् पाण्डुसैनिकाः। न तादृशं रणे कर्म कृतवन्तस्तु तावकाः ॥ १८ ॥ यादृशं कृतवान् राजा पुत्रस्तव विशाम्पते। पुत्रेण तव सा सेना पाण्डवी मथिता रणे १९ नलिनी द्विरदेनेव समन्तात्फुल्लपंकजा। क्षीणतोयानिलार्काभ्यां हतत्विडिव पद्मिनी ॥ २० ॥ बभूव पाण्डवी सेना तव पुत्रस्य तेजसा। पाण्डुसेनां हतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण भारत ॥ २१ ॥ भीमसेनपुरोगास्तु पञ्चालाः समुपाद्रवन्। स भीमसेनं दशभिर्माद्रीपुत्रौ

किरणोंसे तपातेहुए सूर्यकी समान, बाणोंकी ज्वालाओंसे ताप देतेहुए अपने भाई दुर्योधनको, पाण्डव न देखसके, वे शत्रुओंको जीतनेका उत्साह छोड भागना चाहनेलगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ तब तुम्हारा धनुषधारी पुत्र महात्मा दुर्योधन सुवर्णकी पूँछवाले और तीक्ष्ण फलकेवाले बाण पाञ्चालोंके मारनेलगा, इससे वे पाञ्चाल भी डरसे चारों ओर भागनेलगे और दुर्योधनके बाणोंके प्रहारसे पीडा पाकर पाण्डवोंके सैनिक रणमें टपाटप गिरनेलगे, हे राजन्! तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने जैसा कर्म किया, ऐसा कर्म किसी भी योधाने नहीं किया था, हाथी जैसे चारों ओर खिलेहुए कमलोंसे शोभायमान दीखती हुई पुष्करिणीको मथ डाले और पवन तथा सूर्यके पराभवसे जैसे पुष्करिणी (बावडी) शुष्क होकर निस्तेज हो जाय, तैसे ही पाण्डवोंकी सेना भी तुम्हारे पुत्रके तेजसे निस्तेज होगई, हे राजन्! तुम्हारे पुत्रको पाण्डवोंकी सेनाका नाश करते देखकर ॥ १७–२१ ॥ भीमसेनको आगे करके पाञ्चाल राजे उसके ऊपर टूटपड़े, इस मारकाटमें तुम्हारे पुत्रने भीमसेनके दश

त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २२ ॥ विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् । धृष्टद्युम्नञ्च सप्तत्या धर्मपुत्रं च सप्तभिः ॥ २३ ॥ केकयांश्चैव चेदींश्च बहुभिर्निशितैः शरैः । सात्वतं पञ्चभिर्विध्वा द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २४ ॥ घटोत्कचञ्च समरे विद्ध्वा सिंह इवानदत् । शतशश्चापरान् योधान् सद्विपांश्च महारणे ॥ २५ ॥ शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ॥ सा तेन पाण्डवी सेना वध्यमाना शिलीमुखैः ॥ २६ ॥ तव पुत्रेण संग्रामे विदुद्राव नराधिप । तं तपन्तमिवादित्यं कुरुराजं महाहवे ॥ २७ ॥ नाशक्नन् वीक्षितुं राजन् पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः । ततो युधिष्ठिरो राजा कुपितो राजसत्तम ॥ २८ ॥ अभ्यधावत् कुरुपतिं तव पुत्रं जिघांसया । तावुभौ युधि कौरव्यौ समीयतुररिन्दमौ ॥ २९ ॥ स्वार्थहेतोः पराक्रान्तौ

माद्रीके पुत्रोंके तीन, विराट तथा द्रुपदके छः, शिखण्डीके सौ, धृष्टद्युम्नके सत्तर, धर्मपुत्रके सात और केकय तथा चेदिराजाओंके बहुतसे बाण मारे, और फिर पाँच बाणोंसे सात्यकिको बींध डाला और द्रुपदके पुत्रोंके भी तीन२ बाण मारे ॥ २२-२४ ॥ पीछेसे बाणोंका प्रहार कर घटोत्कचको बींध सिंहकी समान बड़ी भारी गर्जना की, वह इतने पर भी रुका नहीं, परन्तु कुपित हुआ काल जैसे शत्रुसेनाका संहार कर डालता है, तैसे ही कोपमें भरे हुए दुर्योधनने महासंग्राममें दूसरे सहस्रों हाथीसवार तथा घुड़सवारोंको तीक्ष्ण बाण मारकर काटडाला ॥ २५ ॥ २६ ॥ जब दुर्योधन इसप्रकार युद्धमें बाणों के प्रहारोंसे पाण्डवोंकी सेनाका नाश करनेलगा, तब पाण्डवों की सेना रणमेंसे भागनेलगी, हे महाराज ! इस संग्रामके समय पाण्डवोंके योधा सूर्यकी समान तपतेहुए तुम्हारे पुत्रकी ओर देख भी नहीं सकते थे ऐसी दशा देखकर राजा युधिष्ठिरको क्रोध आगया और वे तुम्हारे पुत्रको मारनेके लिये उसकी ओर

दुर्योधनयुधिष्ठिरौ। ततो दुर्योधनः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३० ॥ विव्याध दशभिस्तूर्णं ध्वजं चिच्छेद चेषुणा। इन्द्रसेनं त्रिभिश्चैव ललाटे जघ्निवान् नृप ॥ ३१ ॥ सारथिं दयितं राज्ञः पाण्डवस्य महात्मनः। धनुश्च पुनरन्येन चकर्तास्य महारथः ॥ ३२ ॥ चतुर्भिश्चतुरश्चैव बाणैर्विव्याध वाजिनः। ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धो निमेषादिव कार्मुकम् ॥ ३३ ॥ अन्यदादाय वेगेन कौरवं प्रत्यवारयत्। तस्य तान्निघ्नतः शत्रून् रुक्मपृष्ठं महद्धनुः ॥ ३४ ॥ भल्लाभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्त्रिधा चिच्छेद भारत। विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शितैः शरैः ॥ ३५ ॥ मर्म भित्त्वा तु ते सर्वे संलग्नाः क्षितिमाविशन्। ततः परिवृता योधाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥ ३६ ॥

बढे, युद्धभूमिमें पराक्रमी कुरुवंशी अरिदमन दुर्योधन तथा युधिष्ठिर अपना २ स्वार्थ साधनेके लिये लडनेलगे, दुर्योधनने नमी हुई गाँठवाले दश वाण मारकर युधिष्ठिरके माथेको भेद डाला और एक वाण मारकर उनकी ध्वजाको काटकर तीन वाण इन्द्रसेनके मस्तकमें मारे ॥ २७–३१ ॥ तदनन्तर महारथी दुर्योधनने, महात्मा पाण्डुके पुत्र धर्मराजके प्रिय सारथीके एक वाण मारा और एक वाण मारकर उनके धनुषको काटडाला ॥ ३२ ॥ और चार वाण मारकर उनके चारों घोडोंको घायल करदिया इससे राजा युधिष्ठिरको बड़ा क्रोध चढा, तब उन्होंने पलक मारने मात्रमें दूसरा धनुष ले ॥ ३३ ॥ बड़े वेगसे आगे बढते हुए दुर्योधनको अटकाया और भल्ल नामक दो वाण मारकर शत्रुओंका संहार करनेवाले दुर्योधनके सुवर्णकी पीठवाले धनुष के तीन टुकड़े करडाले और पीछेसे तेजकिये हुए दश वाण उसके मारे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वे सब वाण दुर्योधनके मर्मस्थानों को फोड़कर पृथ्वीमें घुसगए, तदनन्तर वृत्रासुरका नाश करनेके लिये देवताओंने जैसे इन्द्रको घेरलिया था, तैसे ही सब यो

वृत्रहत्यै यथा देवाः परिवव्रुः पुरन्दरम् । ततो युधिष्ठिरो राजा तव पुत्रस्य मारिष । शरं च सूर्यरश्म्याभमत्युग्रमनिवारणम् ॥३७॥हा हतोऽसीति राजानमुक्त्वामुञ्चद्युधिष्ठिरः । स तेनाकर्णमुक्तेन विद्धो बाणेन कौरवः ॥ ३८ ॥ निषसाद रथोपस्थे भृशं संमूढचेतनः । ततः पाञ्चालसैन्यानां भृशमासीद्रवो महान् । हतो राजेति राजेन्द्र तत्र शब्दोऽभवन्महान ॥ ३९ ॥ बाणशब्दरवश्चोग्रः शुश्रुवे तत्र भारत ॥४०॥ अथ द्रोणो द्रुतं तत्र प्रत्यदृश्यत संयुगे । हृष्टो दुर्योधनश्चापि दृढमादाय कार्मुकम् ॥४१॥तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन् पाण्डवमभ्ययात् । प्रत्युद्ययुश्च त्वरिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः४२ तान् द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन् कुरुसत्तमम् । चण्डवातोद्धुतान्मे-

---

युधिष्ठिरके चारों ओर खड़े होगए, इससमय राजा युधिष्ठिरने "अभी तुझे मारता हूँ" यह कहकर धनुषको कान तक खेंचा और सूर्यकी किरणकी समान चमकता हुआ, महा उग्र पीछेको न फिरनेवाला बाण तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके मारकर उसको बींध डाला ॥ ३६–३८ ॥ उस बाणकी चोटसे तुम्हारा पुत्र अचेत हो रथकी बैठक पर बैठगया, इस समय हे राजेन्द्र ! पाञ्चाल-राजे प्रसन्न हो चारों ओर कोलाहल करनेलगे कि–"राजा मारागया, राजा मारा गया!" उस समय बाणोंकी उग्र ध्वनिएँ और कोलाहल ही सुनाई पड़ता था ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इसप्रकार कोलाहल मचनेपर द्रोण तहाँ शीघ्रतासे आगए, उनके दीखते ही दुर्योधनने भी स्वस्थ होकर दूसरा दृढ़ धनुष हाथमें लिया ॥४१॥ और "खड़ा रह ! खड़ा रह !!" कहकर पाण्डुपुत्र धर्मराजके पीछे पड़ा, इतनेमें ही विजयाभिलाषी पाञ्चाल राजे झपट कर दुर्योधनके पास पहुँचगए ॥४२॥ सूर्य बड़ेभारी पर्वत परसे उदय होकर सन्मुख आते हुए बादलोंका नाश करनेके लिये जैसे सामने जाता है, तैसे ही कुरुश्रेष्ठ राजा दुर्योधनकी रक्षा करनेके

वान् निघ्नन्रश्मिमुचो यथा ॥ ४३ ॥ ततो राजन्महानासीत् संग्रामो भूरिवर्द्धनः । तावकानां परेषाञ्च समेतानां युयुत्सया ४४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनपराभवे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । यत्तदा प्राविशत् पाण्डूनाचार्यः कुपितो रणे । उक्त्वा दुर्योधनं मन्दं मम शास्त्रातिगं सुतम् ॥ १ ॥ प्रविश्य विचरन्तञ्च रथे शूरमवस्थितम् । कथं द्रोणं महेष्वासं पाण्डवाः समवारयन् ॥ २ ॥ केऽरक्षन् दक्षिणञ्चक्रमाचार्यस्य महाहवे । के चोत्तरमरक्षन्त निघ्नतः शस्त्रवान् बहून् ॥ ३ ॥ के चास्य पृष्ठतोऽन्वासन् वीरा वीरस्य योधिनः । के पुरस्तादवर्त्तन्त रथिनस्तस्य शत्रवः ॥ ४ ॥ मन्येतानस्पृशच्छीतमतिवेलमनार्त्तवम् । मन्ये ते

लिये द्रोणाचार्य पाण्डवोंके सामने बढ़े ॥४३॥ हे राजन् ! युद्ध करनेकी इच्छासे, एक स्थान पर एकत्रित हुए तुम्हारे योधाओं और शत्रुके सैनिकोंमें उस ही समय महासंग्राम आरम्भ होगया, इस मारकाटमें बहुतसे योधाओंका संहार होगया ॥४४॥ एकसौ तरेपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५३ ॥ छ ॥ छ

धृतराष्ट्रने बूझा कि–हे सञ्जय ! कोपमें भरेहुए द्रोणाचार्य मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनसे कितने ही वचन कहकर बड़ेभारी धनुषको धारणकर पाण्डवोंकी सेना में चारों ओर घूमनेलगे, तब पाण्डवोंने उनको कैसे रोका था १-२ महासंग्राममें आचार्यके दाहिने पहियेकी रक्षा कौन करता था और बहुतसे शत्रुओंका संहारमें करने लगेहुए द्रोणके रथके बायें पहिये की रक्षा कौन कर रहा था ॥ ३ ॥ और शूर द्रोणाचार्य जिस समय रणमें युद्ध कररहे थे, तब कौन २ वीर पुरुष उनके पीछे की ओर खड़े होकर उनकी रक्षा कररहे थे और कौन २ शत्रु उन महारथी द्रोणके सामने खड़े होगए थे ? ॥४॥ मुझे प्रतीत

समवेपन्त गावो वै शिशिरे यथा ॥ ५ ॥ यत् प्राविशन् महेष्वासः पञ्चालानपराजितः । नृत्यन् स रथमार्गेषु सर्वशस्त्रभृताम्वरः ६ निर्दहन् सर्वसैन्यानि पञ्चालानां रथर्षभः । धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपयिवान ॥७॥ सञ्जय उवाच । सायान्हे सैन्धवं हत्वा राज्ञा पार्थः समेत्य च । सात्यकिश्च महेष्वासो द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥ ८ ॥ तथा युधिष्ठिरस्तूर्णं भीमसेनश्च पाण्डवः । पृथक् चमूभ्यां संसक्तौ द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥९॥ तथैव नकुलो धीमान् सहदेवश्च दुर्जयः । धृष्टद्युम्नः सहानीको विराटश्च सकेकयः ॥ १० ॥ मत्स्याः शाल्वाः ससेनाश्च द्रोणमेव ययुर्युधि । द्रुपदश्च तथा राज । पञ्चालैरभिरक्षितः ॥ ११ ॥ धृष्टद्युम्नपिता

होता है कि-द्रोणके सामने खड़े होनेमें तो विना शिशिर ऋतु के भी उनको सरदी लगने लगी होगी और जाड़ोंमें ठण्डसे काँपती हुई गौओंकी समान वे काँपने लगे होंगे॥५॥ द्रोणाचार्य बड़ेभारी धनुषको धारण करनेवाले, अजेय और सकल शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ थे, रथमार्गों पर नृत्य करते थे, शत्रुसेनामें घुस जानेवाले थे और उन महारथीने कुपित हुए अग्निकी समान पाञ्चाल राजाओंकी सब सेनाओंको भस्म करडाला था, ऐसे महारथी रणमें किस प्रकार मारे गए ॥ ६ ॥ ७ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि-हे राजन् ! सायंकालमें सिंधुराजका नाश करनेके अनन्तर महाधनुषधारी अर्जुन और सात्यकि धर्मराजसे मिलकर द्रोणके सामने लड़नेके लिय गए ॥८॥ युधिष्ठिर और भीमसेन भी अलग२ सेनाओंको साथमें लेकर युद्धमें द्रोणके सामने पहुँचगए, बुद्धिमान् नकुल, दुर्जय सहदेव, सेनासहित धृष्टद्युम्न, केकय राजाओंसहित राजा विराट, मत्स्य तथा शाल्व राजे भी सेनाओंको साथमें ले इस युद्धमें द्रोणके ऊपर चढ़ दौड़े तथा धृष्टद्युम्नके पिता द्रुपद भी द्रोणके ऊपर ही झपटे महाधनुष

राजन् द्रोणमेवाभ्यवर्त्तत । द्रौपदेया महेष्वासा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ १२ ॥ ससैन्यास्ते न्यवर्त्तन्त द्रोणमेव महाद्युतिम् । प्रभद्रकाश्च पञ्चालाः षट्सहस्राः प्रहारिणः ॥ १३ ॥ द्रोणमेवाभ्यवर्त्तन्त पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् । तथेतरे नरव्याघ्राः पाण्डवानां महारथाः ॥ १४ ॥ सहिताः संन्यवर्त्तन्त द्रोणमेव द्विजर्षभम् । तेषु शूरेषु युद्धाय गतेषु पुरुषर्षभ ॥ १५ ॥ बभूव रजनी घोरा भीरूणां भयवर्द्धिनी । योधानामशिवा घोरा राजन्नन्तकगामिनी ॥ १६ ॥ कुञ्जराश्वमनुष्याणां प्राणान्तकरणी तदा । तस्यां रजन्यां घोरायां नदन्त्यः सर्वतः शिवाः ॥ १७ ॥ न्यवेदयन्भयं घोरं सज्वालकवलैर्मुखैः । उलूकाश्चाप्यदृश्यन्त शंसन्तो विपुलं भयम् ॥ १८ ॥ विशेषतः कौरवाणां ध्वजिन्या-

---

धारी द्रुपदके पुत्र और राक्षस घटोत्कच भी अपनी सेनाको साथमें ले महाकान्तिवान् द्रोणके ऊपर चढ़ाई करनेलगे, तथा छः सहस्र प्रभद्रक और पाञ्चालराजे भी शिखण्डीको मुहानेमें करके द्रोणके ही ऊपर चढ़े इस ही प्रकार पाण्डवोंके दूसरे महारथी और बड़े२ शूर भी इकट्ठे होकर ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोण पर ही झपटे, दोनों पक्षके वीरोंके युद्ध करनेके लिये चढ़ाई करने पर हे राजन्! तुरन्त ही, डरपोकोंके डरको बढ़ानेवाली, योधाओंका अकल्याण करनेवाली, भयङ्कर कालके समीप पहुँचानेवाली, हाथी, घोड़े और मनुष्योंका संहार करनेवाली, भयङ्कर रात्रि आरम्भ होगई, इस समय चारों ओर रोती हुई और मुखमेंसे अग्नि उगलती हुई गीदड़ियोंके कर्कशस्वर कानोंमें पड़नेलगे, भयकी सूचना देनेवाले अतिदारुण उल्लू भी विशेषतः कौरवोंकी सेनामें बोलतेहुए दीखे, हे राजन्! भेरी तथा मृदंगोंकी बड़ीभारी ध्वनिसे, हाथियोंकी चिंघाड़से, घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा उनके पैर रखनेके आघातसे, सेनामें चारों ओर अतितुमुल कोलाहल होरहा था,

मतिदारुणाः । ततः सैन्येषु राजेन्द्र शब्दः समभवन्महान् ॥१९॥ भेरीशब्देन महता मृदङ्गानां स्वनेन च । गजानां बृंहितैश्चापि तुरङ्गाणाञ्च हेषितैः ॥२०॥ खुरशब्दनिनादैश्च तुमुलं सर्वतोऽभवत् । ततः समभवद्युद्धं सन्ध्यायामतिदारुणम् ॥ २१ ॥ द्रोणस्य च महाराज सृञ्जयानाञ्च सर्वशः । तमसा चावृते लोके न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ २२ ॥ सैन्येन रजसा चैव समन्तादुत्थितेन च । नरस्याश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥ २३ ॥ नापश्याम रजो भौमं कश्मलेनाभिसंवृताः । रात्रौ वंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥२४॥ घोरश्चटचटाशब्दः शस्त्राणां पततामभूत् । मृदङ्गानकनिर्ह्रादैर्झर्झरैः पटहैस्तथा ॥२५॥ चीत्कारैर्हेषिताकारैः सर्वमेवाकुलं विभो । नैव स्वे न परे राजन् प्राज्ञायन्त तमोवृते॥२६॥ उन्मत्तमिव तत्सर्वम्बभूव रजनीमुखे । भौमं रजोऽथ राजेन्द्र शोणितेन

रात्रिके आरम्भ (संध्या) के समय हे राजन् ! द्रोण तथा सृञ्जय राजाओंमें वडा भयङ्कर युद्ध होनेलगा, इस समय सारे संसारमें अंधकार छा जानेके कारण कुछ भी दिखाई नहीं देता था ९–२२ सेनाकी धमधमाहटसे चारों ओर धूलके गुब्बार उडरहे थे, उसके साथ मनुष्य, हाथी तथा घोड़ोंका रुधिर मिलगया ॥ २३ ॥ उस समय चित्तमें ग्लानि आनेसे हमसे वह धूल देखी न गई, रात्रिके समय पर्वत परके बाँसोंके वनमें अग्नि लगनेसे बाँसके जलनेके चटचट शब्दकी समान एक दूसरे पर पडतेहुए प्रकाशवान् शस्त्रोंका खटाखट शब्द होरहा था, सम्पूर्ण रणक्षेत्र सेनाओंके मृदङ्ग, नगाड़े, निर्ह्राद, झर्झर, पटह आदिके शब्दोंसे और घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा फुंकारोंसे भररहा था, हे राजन् ! उस समय अंधकारके कारण रणमें अपना और पराया पहिचाननेमें नहीं आता था ॥ २४–२६ ॥ इस कारण सब सेना पागलसी होरही थी, इस रात्रियुद्धमें रुधिरके प्रवाहोंसे

प्रणाशितम् ॥२७॥ शातकौम्भैश्च कवचैर्भूषणैश्च तमोऽभ्यगात्। ततः सा भारती सेना मणिहेमविभूषिता ॥ २८ ॥ द्यौरिवासीत् सनक्षत्रा रजन्यां भरतर्षभ। गोमायुबलसंघुष्टा शक्तिध्वजसमाकुला ॥२९॥ वारणाभिरुता घोरा क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनादिता। ततोऽभवन्महाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः॥३०॥ समावृण्वन्दिशः सर्वा महेन्द्राशनिःस्वनः। सा निशीथे महाराज सेनादृश्यत भारती ३१ अङ्गदैः कुण्डलैर्निष्कैः शस्त्रैश्चैवावभासिता। तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ॥ ३२ ॥ निशायां प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः। ऋष्टिशक्तिगदाबाणमुसलप्रासपट्टिशाः ॥ ३३ ॥ सम्पतन्तो व्यदृश्यन्त भ्राजमाना इवाग्नयः। दुर्योधनपुरोवातां रथनागबलाहकाम् ॥ ३४ ॥ वादित्रघोषस्तनितां चापविद्युद्ध्वजैः-

पृथ्वी परसे धूल उडना बन्द होगया और सुवर्णके कवच तथा गहनोंसे अँधेरा दूर होनेलगा, हे भरतवंशी राजन्! उस रात्रिमें मणि तथा तथा सुवर्णोंसे सजीहुई सेना नक्षत्रोंवाले आकाशकी समान शोभा दे रही थी उसमें गीदड और बल बोलरहे थे और रणभूमि शक्ति और ध्वजाओंसे भरीहुई थी ॥२७।२८॥ और हाथियोंकी चिंघाड और शूरोंकी दहाडोंसे गुंजाररही थी, इसप्रकार सेनामें सुननेवालोंके रुएँ खडे करनेवाले घोर शब्द होनेसे सब दिशाएँ भरीसी जाती थीं, हे महाराज! इसप्रकार आधी रात्रिके समय बडीभारी गर्जना करती हुई, बाजूबन्द, कुण्डल निष्क तथा शस्त्रोंसे दिपती हुई भारती सेना रणमें घूमती हुई दिखाई देती थी, उस सेनामें सुवर्णके कवच तथा आभूषणोंसे सजेहुए हाथी, रथ बिजलीवाली घनघटाकी समान दीखते थे तथा एक दूसरेके ऊपर पडतीहुई, ऋष्टि, शक्ति, गदा, बाण, मूसल प्रास तथा पट्टिश अग्निकी समान चमकतेहुए प्रतीत होते थे, दुर्योधन-रूप पुरवैयावाली, रथ तथा हाथीरूप मेघोंसे भरपूर, बाजोंकी

वृताम् । द्रोणपाण्डवपर्जन्यां खड्गशक्तिगदाशनिम् ॥ ३५ ॥ शरधारास्त्रपवनां भृशं शीतोष्णसंकुलाम् । घोरां विस्मापनीमुग्रां जीवितच्छिदमप्लवाम् ॥ ३६ ॥ तां प्राविशन्नतिभयां सेनां युद्धचिकीर्षवः । तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे महाशब्दनिनादिते ॥ ३७ ॥ भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्द्धने । रात्रियुद्धे महाघोरे वर्त्तमाने सुदारुणे ॥३८॥ द्रोणमभ्यद्रवन्क्रुद्धाः सहिताः पाण्डुसृञ्जयाः । ये ये प्रमुखतो राजन्नावर्त्तन्त महारथाः ॥ ३९ ॥ तान् सर्वान् विमुखांश्चक्रे कांश्चिन्निन्ये यमक्षयम् । तानि नागसहस्राणि रथानामयुतानि च ॥ ४० ॥ पदातिहयसंघानां प्रयुतान्यर्बुदानि च । द्रोणेनैकेन नाराचैर्निर्भिन्नानि निशामुखे ॥ ४१ ॥ छ ॥

ध्वनिसे गाजती हुई, धनुषरूप बिजलियोंसे छाईहुई, द्रोण तथा पाण्डवरूपी जल बरसातेहुए मेघवाली, तलवार-शक्ति तथा गदारूपी वज्रवाली, बाणरूपी जलधाराको बरसाती हुई, अस्त्ररूपी पवनसे भरी, अतिशीतलता और उष्णतावाली, विस्मयजनक, उग्र, प्राणोंका नाश करनेवाली, जिसमें तैरना कठिन है ऐसी महाभयङ्कर सेनामें विजयाभिलाषी महावीर पुरुष युद्ध करनेको घुसपड़े, तब बड़ेभारी कोलाहलसे गाजताहुआ डरपोकोंको डरानेवाला, शूरोंको हर्षित करनेवाला महाघोर तथा अतिदारुण रात्रियुद्ध होनेलगा, इस रात्रियुद्धमें कुपितहुए पाण्डव और सृञ्जयोंने इकट्ठे होकर द्रोणाचार्य पर चढाई की थी, उस (सेना) में जो जो महारथी सेनाके मुहाने पर खड़े थे, उन सबको अकेले द्रोणाचार्यने रात्रिके आरम्भमें ही बाण मारकर रणमेंसे भगादिया था कितनोंहीको स्वर्गलोकमें भेजदिया था, सहस्रों हाथीसवारोंको काट डाला था, दश सहस्र रथियोंको दश लाख और एक अब्ज पैदलोंको तथा बहुतसी घुडसवारोंकी कम्पनियोंको काटडाला था ॥ ३९-४१ ॥ एकसौ चौअनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच। तस्मिन् प्रविष्टे दुर्द्धर्षे सृञ्जयानमितौजसि। अमृष्यमाणे संरब्धे का वोऽभूद्वै मतिस्तदा॥ १ ॥ दुर्योधनं तथा पुत्रमुक्त्वा शास्त्रातिगं मम। यत् प्राविशदमेयात्मा किं पार्थः प्रत्यपद्यत ॥ २ ॥ निहते सैन्धवे वीरे भूरिश्रवसि चैव हि। यदाभ्यगान्महातेजाः पञ्चालानपराजितः ॥३॥ किममन्यत दुर्द्धर्षं प्रविष्टं शत्रुतापने। दुर्य्योधनस्तु किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ ४॥ के च तं वरदं वीरमन्वयुर्द्विजसत्तमम्। के चास्य पृष्ठतोऽगच्छन्वीराः शूरस्य युध्यतः ॥ ५ ॥ के पुरस्तादयुध्यन्त निघ्नंतः शात्रवान्रणे। मन्येऽहं पाण्डवान् सर्वान् भारद्वाजशरार्दितान् ॥ ६ ॥ शिशिरे कम्पमाना वै कृशा गाव इव प्रभो। प्रविश्य स महेश्वासः पञ्चा-

---

धृतराष्ट्रने बूझा कि-हे संजय ! अपारपराक्रमी, क्रोधी, अपराधको न सहनेवाले, असह्य पराक्रमी द्रोणाचार्य जब सृञ्जयों के ऊपर टूटपड़े तब तुम्हारे मनमें क्या विचार उठा था? १ मेरी आज्ञाका उल्लँघन करनेवाले मेरे पुत्र दुर्योधनको उसके दोष दिखा कर, जब अगाधपराक्रमी द्रोण पाण्डवोंकी सेनामें घुसगए, तब अर्जुनने क्या किया था?॥२॥शूरवीर भूरिश्रवा तथा सिन्धुराजकी मृत्युके पीछे, महातेजस्वी, असह्यपराक्रमी, शत्रुको तपानेवाले, अपराजित द्रोणाचार्य जब पाञ्चाल राजाओंकी सेनामें घुसे तब दुर्योधनने कौनसा कार्य करना यथोचित समझा था ॥ ३ ॥४॥ कौन२ योधा, वरदान देनेवाले तथा ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ शूर द्रोणाचार्य के पीछे (उनकी सहायता करनेके लिये) गए थे, और कौन२ वीर पुरुष संग्राम करतेहुए द्रोणके पीछे खड़े थे ? ॥५॥ शत्रुओं का संहार करनेवाले कौन २ वीर पुरुष रणके मुहानेपर खड़े थे, हे समर्थ सञ्जय ! मेरा विचार है कि-जाड़ेमें दुर्बल गौ जैसे ठण्डसे काँपती हैं, तैसे ही सब पाण्डव भी द्रोणके बाणोंके प्रहार से काँपते होंगे, तब भी महाधनुषधारी, शत्रुओं पीड़ित करने

लानरिमर्दनः । कथं नु पुरुषव्याघ्रः पञ्चत्वमुपजग्मिवान् ॥७॥ सर्वेषु योधेषु च सङ्गतेषु रात्रौ समेतेषु महारथेषु । संलोड्यमानेषु पृथग्विधेषु के वस्तदानीं मतिमन्त आसन् ॥ ८ ॥ हतांश्चैव विषक्तांश्च पराभूतांश्च संसदि । रथिनो विरथांश्चैव कृतान् युद्धेषु मामकान् ॥ ९ ॥ तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्हतचेतसाम् । अन्धे तमसि मग्नानामभवत् का मतिस्तदा ॥१०॥ प्रहृष्टांश्चाप्युदग्रांश्च संतुष्टांश्चैव पाण्डवान् । शंससीह प्रहृष्टांश्च विप्रनष्टांश्चैव मामकान् ॥११॥ कथमेषां तदा तत्र पार्थानामपलायिनाम् । प्रकाशमभवद्रात्रौ कथं कुरुषु सञ्जय ॥ १२ ॥ सञ्जय उवाच । रात्रियुद्धे तदा राजन् वर्त्तमाने सुदारुणे । द्रोणमभ्यद्रवन् सर्वे

वाले और पुरुषोंमें व्याघ्रसमान द्रोणाचार्य रणमें कैसे मारेगए? जब रात्रिमें सब क्षत्रिय इकट्ठे होगए और भिन्न २ सेनाएँ एक दूसरीके साथ लड़नेलगीं, उससमय तुम्हारी सेनाके कौन २ योधा विचारमें पड़ गये थे ॥ ८ ॥ तू कहता है कि—हमारे योधा युद्धमें मारे गए और घायल होगए थे, हार गए थे और रथी रथरहित हो गए थे, उस समय मैं तुझसे बूझता हूँ कि—पाण्डवोंके पीटने पर अचेत हुए और घबराहटमें पड़ेहुए मेरे योधा जब बड़े भारी दुःखमें डूबगए, तब उनके मनमें कैसे विचार आए थे ॥ ९ ॥ १० ॥ तूने अभी मुझसे कहा है कि—पाण्डव प्रसन्न अति उदार मनवाले और हर्षित होरहे थे और मेरे पुत्र अप्रसन्न (खिन्न) होरहे थे और रणमेंसे भागगए ११ फिर हे संजय ! रणमें सामने आ लड़नेवाले पाण्डवोंने रात्रिमें कौरवोंके सामने किसप्रकार प्रसिद्ध युद्ध किया था यह मुझे सुना ॥१२॥ संजयने उत्तर दिया कि-हे राजन्! दोनों सेनाओंमें महादारुण रात्रियुद्ध चल रहा था कि—सब पाण्डव सोमक राजाओंको साथमें ले द्रोण की ओर बढ़े ॥१३॥ और उनके

पाण्डवाः सह सोमकैः ॥१३॥ ततो द्रोणः केकयांश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान्। समप्रैषयत् प्रेतलोकं सर्वानिषुभिराशुगैः ॥१४॥ तस्य प्रमुखतो राजन्येऽवर्त्तन्त महारथाः। तान् सर्वान् प्रेषयामास पितृलोकं स भारत ॥१५॥ प्रमथ्नन्तं तदा वीरं भारद्वाजं महारथम्। अभ्यवर्त्तत संक्रुद्धः शिबी राजा प्रतापवान् ॥ १६ ॥ तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथम्। विव्याध दशभिर्बाणैः सर्वपारशवैः शितैः ॥१७॥ तं शिबिः प्रतिविव्याध त्रिंशद्भिः कङ्कपत्रकैः। सारथिञ्चास्य भल्लेन स्मयमानो न्यपातयत् ॥१८॥ तस्य द्रोणो हयान् हत्वा सारथिञ्च महात्मनः। अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ॥ १९ ॥ ततोऽस्य सारथिं क्षिप्रमन्यं दुर्योधनोऽ-

---

साथ युद्ध करनेलगे, द्रोणाचार्यने सख्त और वेगवाले बाण मार कर केकय राजाओंको तथा धृष्टद्युम्नके सब पुत्रोंको यमलोकमें भेज दिया और हे भरतवंशी राजन्। और जो महारथी उनके सामने खड़े थे उन सबोंको भी बाणोंके प्रहारसे यमसदनमें पहुँचा दिया ॥१४—१५॥ इस प्रकार महारथी द्रोणाचार्यको शत्रुओंका नाश करते देख कर प्रतापी राजा शिवि कोपमें भर कर उनसे लड़नेको आया ॥१६॥ द्रोणने सामने बढ़ कर आते हुए पाण्डवोंकी सेनाके महारथी राजा शिवि को देख उसको ठोस लोहे के फलकों वाले तेज किये हुए दश बाण मार कर घायल कर दिया ॥१७॥ तब शिविने उनको तेज किये हुए, कंकपक्षीके परोंकी पूँछवाले तीस बाण मारकर घायल कर डाला और मुसकरा कर भल्ल नामक बाण मार द्रोणके सारथिको रथ से नीचे गिरा दिया ॥१८॥ तब द्रोणाचार्यने महात्मा शिविके घोड़ोंको तथा सारथीको मार डाला और उसके धड़ परसे उसके टोप वाले मस्तकको काट कर नीचे गिरा दिया ॥१९॥ इतनेमें ही दुर्योधनने द्रोणाचार्यके पास दूसरा सारथी भेजा, वह आकर

दिशत् । स तेन संगृहीताश्वः पुनरभ्यद्रवद्रिपून् ॥ २० ॥ कलिङ्गानामनीकेन कलिङ्गस्य सुतो रणे। पूर्वं पितृवधात् क्रुद्धो भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ २१ ॥ स भीमं पञ्चभि वध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः। विशोकं त्रिभिराजच्छेद ध्वजमेकेन पत्रिणा ॥२२॥ कलिङ्गानान्तु तं शूरं क्रुद्धं क्रुद्धो वृकोदरः । रथाद्रथमभिद्रुत्य मुष्टिना निजघान ह ॥ २३ ॥ तस्य मुष्टिहतस्याजौ पाण्डवेन वलीयसा । सर्वाण्यस्थीनि सहसा प्रापतन् वै पृथक् पृथक् ॥ २४ ॥ तं कर्णो भ्रातरश्चास्य नामृष्यन्त परन्तप । ते भीमसेनं नाराचैर्जघ्नुराशीविषोपमैः ॥ २५ ॥ ततः शत्रुरथं त्यक्त्वा भीमो ध्रुवरथं गतः । ध्रुवञ्चास्यन्तमनिशं मुष्टिना समपोथयत् ॥ २६ ॥ स तथा पाण्डु-

---

द्रोणके घोड़े हाँकने लगा, तव द्रोण फिर शत्रुओंकी ओर धँसे !॥२०॥ कलिंग देशका राजा अपने पिताके मरणके कारण पहिलेहीसे क्रोधमें भर रहा था, वह अपने कलिंगोंके साथ इस युद्धमें भीमसेनकी ओर वढ़ा ! ॥२१॥ उसने पहिले सपाटेमें पाँच तथा पीछेसे सात वाण भीमसेनके मारे, परन्तु भीम जरा भी खिन्न नहीं हुआ, फिर एक और तीन वाण भीमके मारकर उस की ध्वजाको काट डाला ॥ २२ ॥ तुरत ही भीमसेन क्रोधमें भरगया और अपने रथ परसे कूदकर कलिंगराजके रथ पर चढगया और कलिंगके योधाओंमें श्रेष्ठ शूरवीर कलिंगराजके मुक्के मारनेलगा ॥२३॥ इस युद्धमें वलवान् भीमसेनके मुक्कोंकी मारसे कलिंगराजकी हड्डियें अलग२गिरपड़ीं॥२४॥परन्तु हे परंतप! यह वात उसके भाई तथा कर्णसे न देखी गई,वे शीघ्र ही भीमके ऊपर जहरीले सर्पोंकी समान तीक्ष्ण वाण वरसानेलगे ॥ २५ ॥ भीमसेन शत्रुके रथके ऊपरसे नीचे उतर (कलिंगराजके भाई) ध्रुवके रथपर चढ़गया और तड़ाऊपर वाण छोडतेहुए ध्रुवको मुक्के मारकर यमसदनमें भेजदिया और पीछे उसके रथ परसे

पुत्रेण बलिनाभिहतोऽपतत् । तं निहत्य महाराज भीमसेनो महाबलः ॥ २७ ॥ जयरातरथं प्राप्य मुहुः सिंह इवानदत् । जयरातमथाक्षिप्य नदन् सव्येन पाणिना ॥ २८ ॥ तलेन नाशयामास कर्णस्यैवाग्रतः स्थितः । कर्णस्तु पाण्डवे शक्तिं काञ्चनीं समवासृजत् ॥ २९ ॥ ततस्तामेव जग्राह प्रहसन् पाण्डुनन्दनः । कर्णायैव च दुर्द्धर्षश्चिक्षेपाजौ वृकोदरः ॥ ३० ॥ तामापतन्तीं चिच्छेद शकुनिस्तैलपायिना । एतत् कृत्वा महत् कर्म रणेऽद्भुतपराक्रमः ३१ पुनः स्वरथमास्थाय दुद्राव तव वाहिनीम् । तमायान्तं जिघांसन्तं भीमं क्रुद्धमिवान्तकम् ॥ ३२ ॥ न्यवारयन्महाबाहुं तव पुत्रा विशाम्पते । महता शरवर्षेण छादयन्तो महारथाः ॥ ३३ ॥ दुर्मदस्य ततो भीमः प्रहसन्निव संयुगे । सारथिञ्च हयांश्चैव शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥३४॥ दुर्मदस्तु ततो यानं दुष्कर्णस्यावचक्रमे ।

उतर पड़ा, हे महाराज ! इसप्रकार उसका नाश करनेके पीछे महाबली भीमसेन जयरातके रथके ऊपर चढ़गया और वारंवार सिंहकी समान गर्जना करके जयरातको दाये हाथका एक रपटा देकर मारडाला फिर वह तहाँसे कूदकर कर्णके रथके पास पहुँच गया, तब कर्णने भीमके सोनेकी शक्ति मारी ॥२७–२९॥ परन्तु पाण्डुपुत्र भीमने हँसते २ उसको हाथमें पकड लिया फिर असह्य पराक्रमी भीमने वह शक्ति कर्णके ही मारी तब ॥ ३० ॥ कर्णके ऊपर आती हुई शक्तिके शकुनिने, तेल पिलायाहुआ बाण मारकर, टुकड़े२ करडाले, अद्भुतपराक्रमी भीम रणमें महापराक्रम करके अपने रथमें चढ़ बैठा फिर तुम्हारी सेना पर झपटा क्रोधमें भरे यमराजकी समान मारतेहुए भीमको आते देख ॥ ३१–३२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे महारथी पुत्र बाण मारकर उस महाबाहु भीमको आगे बढ़नेसे रोकनेलगे ॥३३॥ तब भीमने हँसनेका सा ढँगकर बाण मारकर दुर्मदके सारथि तथा घोड़ोंको यमसदनमें भेज

तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ परतापनौ ॥ ३५ ॥ संग्रामशिरसो मध्ये भीमं द्वावप्यधावताम् । यथाम्बुपतिमित्रौ हि तारकं दैत्यसत्तमम् ३६ ततस्तु दुर्मदश्चैव दुष्कर्णश्च तवात्मजौ । रथमेकं समारुह्य भीमं वाणैरविध्यताम् ॥ ३७ ॥ ततः कर्णस्य मिषतो द्रौणेर्दुर्योधनस्य च । कृपस्य सोमदत्तस्य वाह्लीकस्य च पाण्डवः ॥३८॥ दुर्मदस्य च वीरस्य दुष्कर्णस्य च तं रथम् । पादप्रहारेण धरां प्रावेशयद्रिन्दमः ॥ ३९ ॥ ततः सुतौ ते वलिनौ शूरौ दुष्कर्णदुर्मदौ । मुष्टिनाहत्य संक्रुद्धौ ममर्दचननर्द च ॥४०॥ ततो हाहाकृते सैन्ये दृष्ट्वा भीमं नृपाब्रुवन् । रुद्रोऽयं भीमरूपेण धार्त्तराष्ट्रेषु युध्यति ॥४१॥ एवमुक्त्वा पलायन्ते सर्वे भारत पार्थिवाःविसंज्ञा वाहयन् वाहान्न च द्वौ

दिया, तुरन्त ही दुर्मद रथ परसे कूदकर अपने भाई दुष्कर्णके रथ पर चढ़गया, फिर एक रथमें वैठेहुए वे दोनों भाई—तारकासुरपर जैसे वरुण और मित्र झपटे थे, तैसे—रणभूमिके शिरपर खड़ेहुए भीमकी ओर झपटे ॥ ३४–३६ ॥ उसके पास पहुँच एक रथमें वैठेहुए तुम्हारे पुत्र दुर्मद और दुष्कर्ण भीमके वाण भौंकनेलगे ॥ ३७ ॥ तव अरिदमन भीमने क्रोधमें भर, कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य, सोमदत्त और वाल्हीकके सामने लात मारकर वीर दुर्मद और दुमर्षणके रथको पृथ्वीमें घुसेड़ दिया ॥ ३८–३९ ॥ फिर क्रोधमें भर तुम्हारे दोनों वलशाली पुत्र दुष्कर्ण और दुर्मदको घूँसोंसे मार२ कर मारडाला और फिर वड़ीभारी गर्जना की, इस सव वृत्तान्तको देख तुम्हारी सेनामें हाहाकार मचगया, भीमको देखकर (तहाँ खड़े हुए सव) राजे कहनेलगे, कि–अरे ! (यह भीम नहीं है परन्तु) भीमका रूप धारणकर भगवान् रुद्र धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे लड़ रहे हैं ॥४०–४१॥ हे भरतवंशी राजन् ! इसप्रकार कहते२ सव राजे घवड़ाकर रणमेंसे वाहनोंको भगानेलगे; उस समय तहाँ इतनी उछीड़ होगई थी

सह धावतः ॥ ४२ ॥ ततो बले भृशलुलिते निशामुखे सुपूजितो नृपवृषभैर्वृकोदरः । महाबलः कमलविबुद्धलोचनो युधिष्ठिरं नृपतिमपूजयद्बली ॥ ४३ ॥ ततो यमौ द्रुपदविराटकेकया युधिष्ठिरश्चापि परां मुदं ययुः । वृकोदरं भृशमनुपूजयंश्च ते यथान्धके प्रतिनिहते हरं सुराः ॥४४॥ ततः सुतास्ते वरुणात्मजोपमा रुषान्विताः सह गुरुणा महात्मना । वृकोदरं सरथपदातिकुञ्जरा युयुत्सवो भृशमभिपर्यवारयन् ॥४५॥ ततोऽभवत्तिमिरघनैरिवावृतं महाभयं भयदमतीव दारुणम् । निशामुखे वृकबलगृध्रमोदनं महात्मनां नृपवरयुद्धमद्भुतम्॥४६॥ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५५

कि—दो जने भी साथ२ नहीं दौडते थे ॥४२॥ भीमने रात्रियुद्धमें शत्रुसेनाका अच्छी तरह संहार करडाला, यह देखकर बड़े २ राजे उसकी प्रशंसा करनेलगे, तब जिसके नेत्र खिलरहे थे ऐसे महाबलवान् भीमसेनने राजा युधिष्ठिरकी भलीप्रकार सेवा बजाई (पूजाकी) थी ॥ ४३ ॥ तदनन्तर नकुल, सहदेव, द्रुपद, विराट, केकय राजे और युधिष्ठिर अतिप्रसन्नहुए, और अन्धकासुरका नाश करने पर जैसे देवताओंने शंकरकी प्रशंसा की थी, वैसे ही कौरवोंका नाश करनेसे वे भीमसेनकी बडी प्रशंसा करने लगे ॥४४॥ तदनन्तर तुम्हारे पुत्र क्रोधमें भरगए और युद्ध करने की इच्छासे वे अपने महात्मा गुरुको साथ ले भीम पर झपटे और उन्होंने रथ, पैदल और हाथियोंसे भीमसेनको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! इस समय मेघकी समान गाढ़ अन्धकारसे भरी हुई भयङ्कर रात्रि (के समय) का आरम्भ होने पर दोनों ओरके महात्माओंके बीचमें, महादारुण, भेड़िये, गीध और कौओंको प्रसन्न करनेवाला और भीरुओंको भयभीत करनेवाला अद्भुत युद्ध चलनेलगा ॥४६ ॥ एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५५ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । प्रायोपविष्टे तु हते पुत्रे सात्यकिना तदा । सोमदत्तो भृशं क्रुद्धः सात्यकिं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ क्षत्रधर्मः पुरा दृष्टो यस्तु देवैर्महात्मभिः । तं त्वं सात्वत सन्त्यज्य दस्युधर्मे रतः कथम् ॥२॥ पराङ्मुखाय दीनाय न्यस्तशस्त्राय सात्यके । क्षत्रधर्मरतः प्राज्ञः कथं नु प्रहरेद्रणे ॥ ३ ॥ द्वावेव किल वृष्णीनां तत्र ख्यातौ महारथौ । प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वञ्चैव युधि सात्वत ॥४ कथं प्रायोपविष्टाय पार्थेन छिन्नबाहवे । नृशंसम्पतनीयञ्च तादृशं कृतवानसि ॥ ५ ॥ कर्मणतस्य दुर्वृत्त फलं प्राप्नुहि संयुगे । अद्य छेत्स्यामि ते मूढ शिरो विक्रम्य पत्रिणा ॥ ६ ॥ शपे सात्वत पुत्राभ्यामिष्टेन सुकृतेन च । अनतीतामिमां रात्रिं यदि त्वां वीर-

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! सात्यकिने अनशन व्रत धारण कर बैठेहुए सोमदत्तके पुत्र (भूरिश्रवा) को मारडाला था, अतः वह (सात्यकिको देख) क्रोधमें भरकर कहनेलगा कि-॥ १ ॥ हे सात्वत ! पहिले महात्माओंने और देवताओंने जो क्षत्रियका धर्म बताया है, उस धर्मका उल्लंघनकर तूने डाँकुओंका सा काम कैसे करा॥२॥ हे सात्यकि ! क्षत्रियधर्मको पालनेवाला बुद्धिमान् मनुष्य लडनेसे परांमुखहुए, दीन बनेहुए और शस्त्रोंको त्याग देनेवाले पुरुषको रणमें कभी मारेगा क्या ? ॥३॥ हे सात्यकि ! युद्धके विषयमें तो वृष्णिवंशोत्पन्न दो ही महारथी प्रसिद्ध हैं, एक तो महाभुज प्रद्युम्न और दूसरा तू ॥ ४ ॥ अर्जुनने मेरे पुत्रका सीधा हाथ काटडाला तब वह अनशन व्रत धारण कर युद्धको छोड बैठा था, तब भी तुझ जैसे योधाने क्रूर और नरकमें डालने वाला कर्म कैसे किया अर्थात् उसको कैसे मारडाला ॥ ५ ॥ अरे दुराचारी ! अब तू भी अपने कर्मके फलको भोग, अरे मूढ़ ! आज मैं रणमें पराक्रम करके तेरे मस्तकको उड़ादूँगा ॥ ६ ॥ अरे सात्यकि ! मैं दो पुत्रोंकी, मुझे जो प्रिय है उसकी तथा अपने

मानिनम् ॥ ७ ॥ अरक्ष्यमाणं पार्थेन जिष्णुना ससुतानुजम् । न हन्यान्नरके घोरे पतेयं वृष्णिपांसन ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वा तु संक्रुद्धः सोमदत्तो महाबलः । दध्मौ शङ्खं च नादेन सिंहनादं ननाद च ॥ ९ ॥ ततः कमलपत्राक्षः सिंहदंष्ट्रो महाबलः । सात्यकिर्भृशसंक्रुद्धः सोमदत्तमथाब्रवीत् ॥१०॥ कौरवेय न मे त्रासः कथञ्चिदपि विद्यते। त्वया सार्द्धमथान्यैश्च युध्यतो हृदि कश्चन ११ यदि सर्वेण सैन्येन गुप्तो मां योधयिष्यसि । तथापि न व्यथा काचित्त्वयि स्यान्मम कौरव ॥ १२ ॥ युद्धसारेण वाक्येन असतां सम्मतेन च । नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते स्थितस्त्वया ॥१३॥ यदि तेऽस्ति युयुत्साद्य मया सह नराधिप । निर्दयो निशितैर्बाणैः

पुण्यकी सौगंध खाकर कहता हूँ कि—अरे ! वृष्णिवंशमें कलंकरूप ! आजकी ही रात्रिमें, यदि पृथापुत्र तेरी रक्षा नहीं करेगा तो मैं शूरताका दम भरनेवाले तुझको तेरे पुत्र और भाइयोंसहित न मारडालूँ तो मैं घोर नरकमें पडूँ ॥७-८॥ इसप्रकार कह बडेभारी कोपमें भरेहुए सोमदत्तने ऊँचे स्वरसे शङ्ख बजाया और सिंहकी समान गर्जना की ॥ ९ ॥ उसकी गर्जनाको सुन कमलके पत्रकी समान नेत्रवाला, सिंहकी समान कडी डाढ़वाला और जिसके पास पहुँचा न जा सके ऐसे सात्यकिको बडा विकट क्रोध चढ़ा, वह सोमदत्तसे बोला कि—॥ १० ॥ अरे कुरुवंशी राजन् ! तेरे साथ अथवा दूसरोंके साथ युद्ध करनेमें मुझे जरा भी भय नहीं लगता है ॥ ११ ॥ तू यदि सब सेनासे भी रक्षित होकर युद्ध करेगा, तो भी तू मुझे जरा भी पीडा न दे सकेगा १२ तैसे ही तू युद्धके सारभूत और दुर्जनोंके सिद्धान्तरूप दुर्वाक्य मुझसे कहेगा तो भी क्षत्रियधर्मका पालन करने वाले मुझे तू डरा नहीं सकेगा॥१३॥ हे राजन् ! यदि आज तेरी मेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छा ही हो तो तू निर्दय होकर मेरे ऊपर तेज किये हुए

प्रहर प्रहरामि ते ॥ १४ ॥ हतो भूरिश्रवा राजंस्तव पुत्रो महारथः । शलश्चैव तथा वीरो भ्रातृव्यसनकर्षितः ॥१५॥ त्वाञ्चाप्यद्य वधिष्यामि सपुत्रं सह बान्धवम् । तिष्ठेदानीं रणे यत्तः कौरवोऽसि महाबलः ॥१६॥ यस्मिन् दानं दमः शौचमहिंसा ह्रीर्धृतिः क्षमा । अनपायानि सर्वाणि नित्यं राज्ञि युधिष्ठिरे ॥१७॥ मृदङ्गकेतोस्तस्य त्वं तेजसा निहतः पुरा । सकर्णसौबलः संख्ये विनाशमुपयास्यसि ॥१८॥ शपेऽहं कृष्णचरणैरिष्टापूर्त्तेन चैव ह । यदि त्वां ससुतं पापं न हन्यां युधि रोषितः ॥ १९ ॥ अपयास्यसि चेत्त्यक्त्वा रणं मुक्तो भविष्यसि । एवमाभाष्य चान्योऽन्यं क्रोधसंरक्तलोचनौ ॥ २० ॥ प्रवृत्तौ शरसम्पातं कर्त्तुं पुरुषसत्तमौ ।

बाण बरसा, तब मैं निर्दय हो तेरे ऊपर तीक्ष्ण बाण मारूँगा १४ क्योंकि–तेरा वीर पुत्र महारथी भूरिश्रवा रणमें मारा गया है तथा शल और वृषसेन भी भाईके मरणसे खिन्न हो रणमें मरगए हैं ॥ १५ ॥ और मैं आज तुझको भी भाई तथा पुत्रोंसहित मार डालूँगा, यदि अब तू रणमें दृढ़तासे डटा रहेगा, तो मैं तुझे महारथी और कौरवोंमें श्रेष्ठ राजा मानूँगा ॥१६॥ राजा युधिष्ठिरमें शम, दम, शौच, अहिंसा, लज्जा, धैर्य तथा क्षमा, इतनी बातें सदा रहती हैं ॥ १७ ॥ इन मृदङ्गके चिन्हवाली ध्वजासे शोभित राजा युधिष्ठिरके तेजसे तेरा पहिले ही नाश होचुका है, तो भी आज तू कर्ण तथा शकुनिके साथ प्रत्यक्षरूपसे रणमें मरण पावेगा १८ क्रोधमें भराहुआ मैं, अब तुझ जैसे पापीको पुत्रोंसहित न मारडालूँ तो मुझे कृष्णजी अर्जुनकी तथा इष्टापूर्त (यज्ञ, याग तथा बावड़ी, कुआ खुदवानेके पुण्यकर्म) की सौगंध है ॥१९॥ मैं तुझसे इतनाही कहता हूँ कि-यदि तू रणको छोड़कर भाग जावेगा तो तू निःसंदेह मृत्युके मुखमेंसे छूट सकेगा" इस प्रकार आपसमें भाषण करनेके पीछे, क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले वे महारथी एक दूसरे पर बाण बरसानेलगे,

ततो रथसहस्रेण हयानामयुतेन च ॥ २१ ॥ दुर्योधनः सोमदत्तं परिवार्य समन्ततः । शकुनिश्च सुसंक्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ २२ ॥ पुत्रपौत्रैः परिवृतो भ्रातृभिश्चेन्द्रविक्रमैः । स्यालस्तव महाबाहुर्वज्रसंहननो युवा ॥२३॥ साग्रं शतसहस्रन्तु हयानां तस्य धीमतः। सोमदत्तं महेष्वासं समन्तात् पर्यरक्षत ॥ २४ ॥ रक्ष्यमाणश्च बलिभिश्छादयामास सात्यकिम्। तं छाद्यमानं विशिखैर्दृष्ट्वा सन्नतपर्वभिः ॥ २५ ॥ धृष्टद्युम्नोऽभ्ययात् क्रुद्धः प्रगृह्य महतीञ्चमूम् । चण्डवाताभिसृष्टानामुदधीनामिव स्वनः ॥ २६ ॥ आसीद्राजन् बलौघानामन्योऽन्यमभिनिघ्नताम् । विव्याध सोमदत्तश्च सात्वतं नवभिः शरैः ॥ २७ ॥ सात्यकिर्नवभिश्चैनमवधीत् कुरुपुङ्गवम् । सोऽतिविद्धो बलवता समरे दृढधन्विना ॥ २८ ॥ रथोपस्थं समा-

---

इस समय दुर्योधन सहस्र रथ तथा दश सहस्र हाथीसवारोंको ले सोमदत्तको घेरकर उसकी रक्षा कररहा था, सकल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाभुज, वज्रकी समान दृढ शरीरवाला, तरुण अवस्थावाला तुम्हारा साला शकुनि भी क्रुद्ध हो, पुत्र, पौत्र तथा इन्द्रकी समान बलवान् भाइयोंको साथ ले लडनेके लिये आया था, उस बुद्धिमान्के एक लाख घुडसवार महाधनुषधारी सोमदत्तकी चारों ओरसे रक्षा कररहे थे ॥ २०-२४ ॥ बलवान् योधाओंसे रक्षित सोमदत्तने, नमी हुई गाँठ वाले बाण मारकर सात्यकीको छा दिया, यह देख धृष्टद्युम्न क्रोधमें भर बड़ी भारी सेनाको साथमें ले उसके सामने लड़नेके लिये चढ़ आया, हे राजन्! आँधीके झपाटेसे समुद्र उथल पुथल हो जैसे शब्द करता है तैसे ही परस्पर प्रहार करती हुई सेनाओंका शब्द होरहा था; सोमदत्तने सात्यकिको नौ बाण मारकर बींध डाला ॥ २५-२७ ॥ तब सात्यकिने भी नौ बाण मारकर उस कुरुवंशमें श्रेष्ठ सोमदत्तको घायल कर डाला, बलवान् और दृढ धनुष वाले

साथ मुमोह गतचेतनः । तं विमूढं समालक्ष्य सारथिस्त्वरयान्वितः ॥ २९ ॥ अपोवाह रणाद्वीरं सोमदत्तं महारथम् । तं विसंज्ञं समालक्ष्य युयुधानशरार्दितम् ॥ ३० ॥ अभ्यवधावत्ततो द्रोणो यदुवीरजिघांसया। तमायान्तमभिप्रेक्ष्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ३१ परिवव्रुर्महात्मानं परीप्सन्तो यदूत्तमम् । ततः प्रववृते युद्धं द्रोणस्य सह पाण्डवैः ॥ ३२ ॥ बलेरिव सुरैः पूर्वं त्रैलोक्यजयकाङ्क्षया । ततः सायकजालेन पाण्डवानीकमावृणोत् ॥ ३३ ॥ भारद्वाजो महातेजा विव्याध च युधिष्ठिरम् । सात्यकिर्दशभिर्बाणैर्विंशत्या पार्षतं शरैः ॥ ३४ ॥ भीमसेनञ्च नवभिर्नकुलं पञ्चभिस्तथा । सहदेवं तथाष्टाभिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३५ ॥ द्रौपदेयान् महाबाहुः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः । विराटं मत्स्यमष्टाभिर्द्रुपदं

सात्यकिके बाण ऐसी जोरसे लगे कि—सोमदत्त मूर्छित हो रथकी गद्दीपर गिरपड़ा; वीर और महारथी सोमदत्तको मूर्छित हुआ देखकर उसका सारथी उसको एकदम रणमेंसे बाहर लेगया; इस प्रकार सात्यकिके बाणोंके प्रहारसे सोमदत्त को दुःखित तथा मूर्छित हुआ देखकर यदुवंशमें वीर सात्यकि को मारनेके लिये द्रोणाचार्य चढ़ आये, द्रोणको चढ़कर आता देख युधिष्ठिर आदि योधा यदुवीरकी रक्षा करनेके लिये उसके आस पास घिरकर खड़े होगए और देवताओंने पहिले तीनों लोकोंका राज्य पानेकी इच्छासे जैसे बलिके साथ युद्ध किया था. तैसे ही पाण्डव द्रोणसे लड़ने लगे, द्रोणाचार्यने बाणों की बौछार कर पाण्डवोंकी सेनाको ढकदिया ॥ २८-३३ ॥ फिर महातेजस्वी द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरको बाणोंके प्रहारसे बींध डाला ,सात्यकिके दश बाण मारे, धृष्टद्युम्नके बीस बाण मारे ॥ ३४ ॥ और भीमसेनके नौ, नकुलके पाँच,सहदेवके आठ और शिखण्डीके सौ बाण मारे ॥ ३५ ॥ इसके पीछे बड़ी २

दशभिः शरैः ॥ ३६ ॥ युधामन्युं त्रिभिः षड्भिरुत्तमौजसमार्दयत् । अन्यांश्च सैनिकान् विद्ध्वा युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ३७ ॥ ते वध्यमाना द्रोणेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः । प्राद्रवन् वै भयाद्राजन् सार्त्तनादा दिशो दश ॥ ३८ ॥ काल्यमानन्तु तत् सैन्यं दृष्ट्वा द्रोणेन फाल्गुनः । किञ्चिदागतसंरम्भो गुरुं पार्थोऽभ्ययाद् द्रुतम् ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वा द्रोणस्तु बीभत्सुमभिधावन्तमाहवे । सन्यवर्त्तत तत्सैन्यं पुनर्यौधिष्ठिरं नृप ॥ ४० ॥ ततो युद्धमभूद् भूयो भारद्वाजस्य पाण्डवैः । द्रोणस्तव सुतै राजन् सर्वतः परिवारितः ॥ ४१ व्यधमत् पाण्डुसैन्यानि तूलराशिमिवानलः । तं ज्वलन्तमिवादित्यं दीप्तानलसमद्युतिम् ॥ ४२ ॥ राजन्ननिशमत्यन्तं दृष्ट्वा द्रोणं शरार्चिषम् । मण्डलीकृतधन्वानं तपन्तमिव भास्करम् ४३

भुजाओं वाले द्रोणने द्रौपदीके पुत्रोंके पाँच बाण मारे, विराटके आठ बाण मारे और द्रुपदके दश बाण मारे ॥३६॥ युधामन्युके तीन बाण मारे और उत्तमौजाके छः बाणमारे तथा दूसरे योधाओंको बाणोंका प्रहार कर घायल कर दिया, फिर वे युधिष्ठिरके सामने धँसे ॥३७॥ और हे राजन्! उनके योधाओंके ऐसे तीक्ष्ण बाण मारे कि – वे भयंकर चीखें मारते हुए भयसे दशों दिशाओंमेंको भागने लगे ॥३८ ॥ अपनी सेनाको इस प्रकार भागते देख अर्जुनको कुछ क्रोध चढ़ा और तब वह गुरु द्रोणाचार्यके सामने लड़नेके लिये आया ॥ ३९ ॥ द्रोणाचार्य अपनी ओर अर्जुनको धँसता देख युधिष्ठिरकी सेनाको और खदेड़ने लगे ॥ ४० ॥ और फिर एक बार द्रोणाचार्य पाण्डवोंके सामने लड़ने लगे, हे राजन! अग्नि जैसे रुईके ढेरको जला कर भस्म कर डालती है, तैसे ही तुम्हारे पुत्रोंसे घिरे हुए द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाका संहार कर रहे थे, हे राजन् प्रकाशित सूर्यकी समान तथा प्रज्वलित अग्निकी समान कान्ति वाले

दहन्तमहितान् सैन्ये नैनं कश्चिदवारयत् । यो यो हि प्रमुखे तस्य तस्थौ द्रोणस्य पूरुषः ॥४४॥ तस्य तस्य शिरश्छित्त्वा ययुर्द्रोणशराः क्षितिम् । एवं सा पाण्डवी सेना वध्यमाना महात्मना ४५ प्रदुद्राव पुनर्भीता पश्यतः सव्यसाचिनः । सम्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेन निशि भारत ॥४६॥ गोविंदमब्रवीज्जिष्णुर्गच्छ द्रोणरथं प्रति । ततो रजतगोक्षीरकुन्देन्दुसदृशप्रभान् ॥ ४७ ॥ चोदयामास दाशार्हो हयान् द्रोणरथं प्रति । भीमसेनोऽपि तं दृष्ट्वा यान्तं द्रोणाय फाल्गुनम् ॥ ४८ ॥ स्वसारथिमुवाचेदं द्रोणानीकाय मां वह । सोऽपि तस्य वचः श्रुत्वा विशोकोऽवाहयद्धयान् ॥ ४९ ॥ पृष्ठतः सत्यसन्धस्य जिष्णोर्भरतसत्तम । तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ यत्तौ

बाणरूपी ज्वालासे प्रकाशित धनुषको मण्डलाकारसे घुमाने वाले, और तपते हुए सूर्यकी समान शत्रुओंको बाल कर भस्म करते हुए द्रोणाचार्यको देख, सेनामेंका कोई भी योधा उनको देख न कर सका, जो पुरुष द्रोणके सामने आ खड़ा होता था उस योधाके मस्तकको काट द्रोणाचार्यके बाण पृथ्वीमें घुस जाते थे, महात्मा द्रोण पाण्डवोंकी सेनाको मारने लगे, उस समय अर्जुनके सामने ही पाण्डवी सेना भयभीत हो फिर भागने लगी, रणमें द्रोण पाण्डवोंकी सेनाको भगा रहे हैं यह देख कर ॥ ४१–४६ ॥ अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा कि–तुम मेरे रथको द्रोणके रथके समीप ले चलो" तुरन्त ही दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णने, चाँदी, गोदुग्ध, कुन्द और चन्द्रमाकी समान स्वेत कान्ति, वाले घोड़ोंको द्रोणके रथके सामनेको हाँका, भीमसेनने भी अर्जुनको द्रोणके रथकी ओर जाते देख कर ॥४७–४८॥ अपने सारथी विशोकसे पुकार कर कहा कि–"अरे ! ओ सारथि ! हमारे रथको द्रोणाचार्यके पास लेचल" भीमसेनके इन वचनोंको सुन सारथि आनन्दमें भर गया और उसने हे भरत-

द्रोणानीकमभिद्रुतौ ॥ ५० ॥ पञ्चालाः सृञ्जया मत्स्याश्चेदिकारूषकोशलाः । अन्वगच्छन्महाराज केकयाश्च महारथाः ५१ ततो राजन्नभूद् घोरः संग्रामो लोमहर्षणः ।५२॥ बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरञ्च वृकोदरः । महद्भ्यां रथवृन्दाभ्यां बलं जगृहतुस्तव ॥ तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ भीमसेनधनञ्जयौ ॥ ५३ ॥ धृष्टद्युम्नोऽभ्ययाद्राजन् सात्यकिश्च महाबलः । चण्डवाताभिपन्नानां समुद्राणामिव स्वनः ॥ ५४ ॥ आसीद्राजन् बलौघानां तदान्योन्यमभिघ्नताम् । सौमदत्तिवधात् क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ५५ द्रौणिरभ्यद्रवद्राजन्वधाय कृतनिश्चयः । तमापतन्तं संप्रेक्ष्य शैनेयस्य रथं प्रति ॥ ५६ ॥ भैमसेनिः सुसंक्रुद्धः प्रत्यमित्रमवारयत् ।

सत्तम ! सत्यप्रतिज्ञा वाले अर्जुनके पीछे भीमने रथके घोड़ोंको हाँका हे महाराज ! इस प्रकार सजे हुए दोनों भाइयोंको द्रोणकी सेनाकी ओर बढ़ते देखकर पाञ्चाल, सृञ्जय मत्स्य, चेदि, कारूष, केकय तथा कोशल देशके महारथी राजाओंकी सेनाएँ भी उन दोनोंके पीछे२ चलनेलगीं ॥ ४९–५१ ॥ हे राजन ! इतनेमें ही दोनों पक्षोंमें रोएं खड़े करनेवाला महाभयङ्कर संग्राम आरम्भ होगया, अर्जुनने दाये भाग पर और भीमने बायें भाग पर घेरा डालकर, दो बड़भारी रथोंके झुण्डोंसे तुम्हारी सेनाको घेरलिया, हे राजन् ! दोनों पुरुषव्याघ्रोंको लड़ते देख कर महाबली धृष्टद्युम्न तथा सात्यकि चढ़आये, इस समय प्रचण्ड वायुके आघातसे हिलोरें खातेहुए समुद्रका जैसा घू घू शब्द होता है, तैसेही परस्पर युद्ध करती हुई सेनाओंके मनुष्योंका कोलाहल होनेलगा, भूरिश्रवाके वधसे अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध चढ़रहा था, उसने रणमें सात्यकिको लड़ता देख, उसके नाश करनेका मनमें विचार किया और उसको नष्ट करनेके लिये उस पर चढ़ आया, अश्वत्थामाको शिनिके पौत्र सात्यकि पर झपटते देख ५२–५६

कार्ष्णायसं महाघोरमृक्षचर्मपरिच्छदम् ॥ ५७ ॥ महान्तं रथमास्थाय त्रिंशन्नल्वान्तरान्तरम् । विक्षिप्तयन्त्रसन्नाहं महामेघौघनिस्वनम् ॥५८॥ युक्तं गजनिभैर्वाहैर्न हयैर्नापि वारणैः । विक्षिप्तपक्षचरणविवृताक्षेण कूजता ॥ ५९ ॥ ध्वजेनोत्थितदण्डेन गृध्रराजेन राजितम् । लोहितार्द्रपताकन्तु अन्त्रमालाविभूषितम् ॥ ६० ॥ अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय विपुलं रथम् । शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥ ६१ ॥ रक्षसां घोररूपाणामक्षौहिण्या समावृतः । तमुद्यतमहाचापं निशम्य व्यथिता नृपाः ॥ ६२ ॥ युगान्तकालसमये दण्डहस्तमिवान्तकम् । ततस्तं गिरिशृङ्गाभं भीमरूपं भयावहम् ॥ ६३ ॥ दंष्ट्राकरालोग्रमुखं शंकुकर्णं महाहनुम् । ऊर्ध्वकेशं

भीमसेनके पुत्र घटोत्कचको बडा क्रोध आया, उसने शत्रुको आगे बढनेसे रोका, वह आठ पहियेवाले एक बड़ेभारी रथमें बैठा था, घटोत्कचका रथ लोहेका बनाहुआ था, महाभयङ्कर था, उस पर रीछका चमडा मढ़ा हुआ था, वह तीस नल्व लम्बा चौडा था, उसमें युद्धके यंत्र और कवच भररहे थे, तथा वह महामेघकी समान गर्जना कररहा था, हाथी, या घोड़े नहीं, किन्तु विचित्र प्रकारके हाथियोंकी समान पिशाच उसमें जुतरहे थे, उसके रथके ऊँचे ध्वजदण्डपर एक गिद्ध आँखे फाड़ेहुए, पाँव और पैरोंको फटफटाता हुआ शब्द कररहा था, रथके ऊपर रक्तसे भीनीहुई पताका फहरा रही थी और आँतडियोंके हार उसकी शोभा बढ़ारहे थे, ऐसे महारथमें बैठकर वह अश्वत्थामाके सामने लडनेके लिये आया ॥५७-६०॥ उसके चारों ओर त्रिशूल मुद्गर, पर्वत तथा वृक्षोंको हाथमें ले भयङ्कर राक्षसोंकी एक अक्षौहिणी सेना चल रही थी, घटोत्कच प्रलयकालके यमकी समान हाथमें दण्डा पकड रहा था, वह हाथमेंके धनुषको महाटङ्कारसे घुमाता २ सेनाके सन्मुख चलने लगा तब कौरव राजे घवडागए, घटोत्कचका

विकरालं दीप्तास्यं निम्नोदरम् ॥ ६४ ॥ महाश्वभ्रगलद्वारं किरीटच्छन्नमूर्द्धजम् । त्रासनं सर्वभूतानां व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ६५ ॥ वीक्ष्य दीप्तविशालास्यं रिपुविक्षोभकारिणम् । समुद्यतमहाचापं राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ॥ ६६ ॥ भयार्दिता प्रचुक्षोभ तव पुत्रस्य वाहिनी । वायुना क्षोभितावर्ता गङ्गेवोर्ध्वतरङ्गिणी ॥ ६७ ॥ घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः । प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ॥ ६८ ॥ ततोऽश्मवृष्टिरत्यर्थमासीत्तत्र समन्ततः । सन्ध्याकालाधिकबलैर्विमुक्ता राक्षसैः क्षितौ ॥ ६९ ॥ आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः प्रासतोमराः । पतन्त्यविरलाः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ॥ ७० ॥ तदुग्रमतिरौद्रञ्च दृष्ट्वा युद्धं नराधिपाः ।

शरीर पर्वतके शिखरकी समान ऊँचा था, उसके रूपको देखनेसे मनमें डर बैठ जाता था, उसकी दाढ़ें बड़ी विकराल थीं और मुख बड़ा था, कान गढ़ेकेसे थे, ठोडी बहुत बड़ी थी, केश खड़े हुए थे, नेत्र डरावने थे, मुख भभका रहा था, पेट नीचेको लटकता था, गलेमें बांबी समान छिद्र था, बाल मुकुटमें ढके हुए थे, इससे वह सब लोगोंको मुख फाड़े हुए कालकी समान प्रतीत होता था अतः शत्रुओंके मनमें तो उसको देखते ही घबड़ाहट होनेलगती थी, ऐसे राक्षसोंके राजा घटोत्कचको आते देख, क्षुभित हुई, भँवर वाली और लहरोंसे ऊँची उठती हुई गंगा जैसे पवनसे आकाशमें क्षुब्ध होजाती है, वैसे ही तुम्हारे पुत्रकी सेना भी भयसे पीड़ित हो क्षुब्ध होनेलगी ॥ ६१-६७ ॥ घटोत्कचने सेनामें फिर आते ही सिंहकी समान गर्जना की, उस गर्जनासे डरकर हाथी मूतनेलगे और मनुष्य व्यथित होगये ॥ ६८ ॥ सायंकाल होनेसे राक्षसोंका बल बढ़ने लगा, तब वे रणमें पत्थरोंकी वर्षाकी बौछार करने लगे ॥ ६९ ॥ सेनाकी चारों ओरसे लोहेके चक्र, भुशुण्डी, प्रास, तोमर, शूल, तथा पट्टिश निरन्तर पड़नेलगे ॥ ७० ॥ उस

तनयास्तव कर्णश्च व्यथिताःप्राद्रवन्दिश। ॥ ७१ ॥ तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी द्रोणिर्मानी न विव्यथे । व्यधमच्च शरैर्मायां घटोत्कचविनिर्मिताम् ॥ ७२ ॥ निहतायान्तु मायायाममर्षी स घटोत्कचः । विससर्ज्ज शरान् घोरांस्तेऽश्वत्थामानमाविशन् ॥७३॥ भुजगा इव वेगेन वल्मीकं क्रोधमूर्छिताः । ते शरा रुधिराक्ताङ्गा भित्वा शारद्वतीसुतम् ॥ ७४ ॥ विविशुर्धरणीं शीघ्रा रुक्मपुंखाः शिलाशिताः । अश्वत्थामा तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् । घटोत्कचमतिक्रुद्धं बिभेद दशभि शरैः ॥ ७५ ॥ घटोत्कचोऽतिविद्धस्तु द्रोणपुत्रेण मर्मसु ॥ ७६ ॥ चक्रं शतसहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो भृशम् । क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिवज्रविभूषितम् ७७

अति भयङ्कर उग्र रणको देख तुम्हारे पक्षके राजे, तुम्हारे पुत्र तथा कर्ण भी खिन्न हो दशों दिशाओंमें भाग निकले ॥ ७१ ॥ उस समय तुम्हारी सेनाका, अस्त्रबलमें जिसने बडा नाम पाया था ऐसा मानी एक अश्वत्थामा ही तहाँ खडा रहा और उसने अपने बाण छोडकर घटोत्कचकी मायाका नाश करडाला ॥ ७२ ॥ अपनी मायाको नष्ट हुई देखकर घटोत्कच क्रोधमें भरगया और अश्वत्थामाके घोर बाण मारे वे घोर बाण,अश्वत्थामाके शरीरमें घुसगए ॥ ७३ ॥ जैसे क्रोधमें भरेहुए सर्प बमईमें घुसआते हैं, तैसे ही वे सुवर्णकी पूँछवाले, पत्थर पर घिसकर तेज कियेहुए बाण अश्वत्थामाके शरीरको भेदकर रुधिरसे रँगेहुए ही पृथ्वीमें घुसगये, तब तो फुर्तीले हाथवाला प्रतापी अश्वत्थामा क्रोधमें भरगया ॥ ७४-७५ ॥ और उसने क्रोधमें भरेहुए घटोत्कचके दश बाण मारे, अश्वत्थामाके मारेहुए बाणोंसे मर्मस्थलोंके बहुत ही घायल हो पीडा पाने पर उसने सहस्र अरोंवाला, बीचमें क्षुर लगाहुआ, बालसूर्यकी समान प्रकाशवान्, मणि तथा हारोंसे सुन्दर दीखताहुआ एक चक्र हाथमें उठाया और अश्वत्थामाको

अश्वत्थाम्नि स चिक्षेप भैमसेनिर्विशांपते । वेगेन तदथागच्छत् क्षिप्तं द्रौणिना शरैः ॥ ७८ ॥ अभाग्यस्येव सङ्कल्पस्तन्मोघमपतद्भुवि । घटोत्कचसुतस्तूर्णं दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥७९॥ द्रौणिं प्राच्छादयद्बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम् । घटोत्कचसुतः श्रीमान् भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥ ८० ॥ रुरोध द्रौणिमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट् । पौत्रेण भीमसेनस्य शरैः सोऽञ्जनपर्वणा ॥ ८१ ॥ बभौ मेघेन धाराभिर्गिरिर्मेरुरिवावृतः । अश्वत्थामा त्वसंभ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥ ८२ ॥ ध्वजमेकेन बाणेन चिच्छेदाञ्जनपर्वणः । द्वाभ्यां तु रथयन्तारौ त्रिभिश्चास्य त्रिवेणुकम् ८३ धनु-

---

मारनेकी इच्छासे उसके ऊपर फेंका, अश्वत्थामाने उस चक्रको वेगसे अपनी ओर आता देख, बाण मारकर उसके टुकड़े २ कर डाले ॥ ७७-७८ ॥ और भाग्यहीन मनुष्यके संकल्पकी समान व्यर्थ होकर, वह चक्र चकनाचूर हुआ पृथ्वी पर आपड़ा, घटोत्कचने अपने चक्रको पृथ्वी पर पड़ा देख, राहु जैसे सूर्यको ढक दे, तैसे बाण मारकर अश्वत्थामाको ढक दिया, अश्वत्थामा उसके सामनेको चला कि-इतनेमें ही टूटकर गिरेहुए अञ्जनपर्वतकी समान शरीरवाला श्रीमान्, घटोत्कचका पुत्र और भीमसेनका पौत्र अञ्जनपर्वा अश्वत्थामाके सामने आगया और महागिरि (मेरुपर्वत) जैसे पवनके मार्गको रोकदे, तैसे ही उसने आगेको बढ़ते हुए अश्वत्थामाको बाण मार कर आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ७९-८१ ॥ उस समय रुद्र, विष्णु और इन्द्रकी समान पराक्रमी अश्वत्थामा, मेघगणके द्वारा जलकी मूसलधार खानेवाले मेरुपर्वतकी समान शोभा पाने लगा, वह शत्रुके बाणोंकी वृष्टिसे जरा भी नहीं घबड़ाया ॥ ८२ ॥ उसने एक बाण मार कर अञ्जनपर्वाकी ध्वजा काट डाली, दो बाणोंसे रथके दोनों सारथियोंको मार डाला, तीन बाणोंसे उसके त्रिवेणुकको काट

रेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् । विरथस्योद्यतं हस्ताद्धेमबिन्दुभिराचितम् ॥ ८४ ॥ विशिखेन सुतीक्ष्णेन खड्गमस्य द्विधाकरोत् । गदा हेमाङ्गदा राजंस्तूर्णं हैडिम्बसूनुना॥ ८५ ॥ भ्राम्योत्क्षिप्ता शरैश्चापि द्रौणिनाहत्य पातिता । ततोऽन्तरिक्षमुत्प्लुत्य कालमेघ इवोन्नदन् ॥ ८६ ॥ ववर्षाञ्जनपर्वा स द्रुमवर्षं नभस्तलात् । ततो मायाधरं द्रौणिर्घटोत्कचसुतं दिवि ॥ ८७ ॥ मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः । सोऽवतीर्य पुनस्तस्थौ रथे हेमविभूषिते ॥ ८८ ॥ महीगत इवात्युग्रः श्रीमानञ्जनपर्वतः । तमयस्मयवर्माणं द्रौणिर्भीमात्मजात्मजम् ८९जघानाञ्जनपर्वाणं महेश्वर इवान्धकम् । अथ दृष्ट्वा हतं पुत्रमश्वत्थाम्ना महाबलम् ॥९०॥

डाला॥८३। एक बाणसे धनुषको काट डाला, चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मार डाला और फिर रथरहित हुए अञ्जनपर्वा के हाथमेंकी सुवर्णकी फुल्लियोंसे शोभामान तलवारके बाण मार कर दो टुकड़े कर डाले; तुरतही घटोत्कचके पुत्रने हेमाङ्गदा नाम वाली गदा ले ली और उसको फिरा कर अश्वत्थामाके मारा अश्वत्थामाने बाण मार कर उसके भी टुकड़े कर डाले, तब वह गदा नीचे गिर गई, यह देख अञ्जनपर्वा कालमेघकी समान गरजता२ आकाशमेंको उड़ा और वहाँसे वृक्षोंकी वृष्टि करने लगा; अश्वत्थामा आकाशमें स्थित सूर्य जैसे किरणोंसे मेघोंको भेद डाले तैसेही बाण मार कर आकाशमें स्थित घटोत्कचके पुत्रको बींधनेलगा तब तो वह आकाशमेंसे नीचे उतर आया और पृथ्वी पर खड़ेहुए अपने सुवर्णके रथ पर चढ बैठा ॥८४-८८॥ इस समय घटोत्कचका पुत्र अञ्जनपर्वा, पृथ्वीमेंके अञ्जनपर्वतकी समान (कालाभुच्च) दीखता था, उस समय जैसे महेश्वरने अन्धकासुरको मारडाला था तैसे अश्वत्थामाने भी ठोस लोहके बने कवचसे ढकेहुए महाबली भीमके पोते अञ्जनपर्वाको मार

द्रौणेः सकाशमभ्येत्य रोषात् प्रज्वलिताङ्गदः । प्राह वाक्यमसंभ्रान्तो वीरं शारद्वतीसुतम् ॥ ९१ ॥ दहन्तं पाण्डवानीकं वनमग्निमिवोच्छ्रितम् । घटोत्कच उवाच । तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ॥ ९२ ॥ त्वामद्य निहनिष्यामि क्रौञ्चमग्निसुतो यथा । अश्वत्थामोवाच । गच्छ वत्स सहान्यैस्त्वं युध्यस्वामरविक्रम ॥ ९३ ॥ न तु पुत्रेण हैडिम्बे पिता न्याय्यः प्रबाधितुम् । कामं खलु न मे रोषो हैडिम्बे विद्यते त्वयि ॥ ९४ ॥ किन्तु रोषार्दितो जन्तुर्हन्यादात्मानमप्युत । सञ्जय उवाच । श्रुत्वैवं क्रोधताम्राक्षः पुत्रशोकसमन्वितः ॥ ९५ ॥ अश्वत्थामानमायस्तो भैमसेनिरभाषत । किमहं कातरो द्रौणे पृथग्जन इवा-

---

डाला ॥ ८९-९० ॥ अश्वत्थामाने मेरे वलवान् पुत्रको मारडाला यह देखकर, चमकतेहुए वाजूवन्द पहिरनेवाला घटोत्कच वड़ेभारी क्रोधमें भर शारद्वतीके पुत्र अश्वत्थामाके सामने आया और वढ़ताहुआ अग्नि जैसे घास फूंसको जला देता है तैसे पाण्डवोंकी सेनाका संहार करतेहुए वीर अश्वत्थामाको आगे वढनेसे रोक कर इसप्रकार कहनेलगा, घटोत्कचने कहा कि—अरे ओ द्रोणपुत्र ! खड़ा रह ! खड़ा रह !! तू मेरे सामनेसे जीताहुआ नहीं जा सकेगा ॥ ९१-९२ ॥ अग्निपुत्रने जैसे क्रौंचका नाश किया था, तैसे ही मैं भी तेरा नाश कर डालूँगा अश्वत्थामाने कहा कि—अरे देवताओंकी समान वलवान् वत्स ! तू यहाँसे चला जा और किसी दूसरेके साथ युद्ध कर ॥९३॥ हे हिडिम्बाके पुत्र ! पुत्रका पिताके साथ लड़ना अनुचित समझा जाता है, हे पुत्र ! मुझे तेरे ऊपर कुछ भी क्रोध नहीं है॥९४॥ और जो मनुष्य क्रोधके वशमें होजाता है वह अपना नाश अपने आप करलेता है, सञ्जयने कहा कि—हे धृतराष्ट्र ! इस समय क्रोधसे लाल लाल नेत्रोंवाला और पुत्रशोकसे खिन्न हुआ भीमका पुत्र, अश्वत्थामाके कथनको सुन

हृते ॥९६॥ यन्मां भीषयसे वाग्भिरसदृशं तद्वचस्तव । भीमात् खलु-समुत्पन्नः कुरूणां विपुले कुले ॥ ९७ ॥ पाण्डवानामहं पुत्रः समरेष्वनिवर्त्तिनाम् । रक्षसामधिराजोऽहं दशग्रीवसमो बले ९८ तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि । युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ॥ ९९ ॥ इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो राक्षसः सुमहाबलः । द्रौणिमभ्यद्रवत् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ॥ १०० ॥ रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद् घटोत्कचः । रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ॥ १०१ ॥ शरवृष्टिं शरैर्द्रौणिरप्राप्तां व्यशातयत् । ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाभवत् ॥ १०२ ॥ अथास्त्रसंघातकृतैर्विस्फुलिङ्गैस्तदा बभौ । विभावरीमुखे व्योम खद्योतैरिव चित्रितम् ॥ १०३ ॥ निशम्य निहतां मायां द्रौणिना

कर क्रोधमें भर गया और कहने लगा कि अरे अश्वत्थामा ! क्या मैं रणमें पामरोंकी समान कायर हूँ कि-जो तू मुझे वचनोंसे डराना चाहता है,तेरे ये शब्द अनुचित हैं, मैं भीमसे कौरवकुलमें उत्पन्न हुआ हूँ ॥ ९७ ॥ और युद्धमें पीछेको न हटने वाले पाण्डवोंका पुत्र हूँ.९८राक्षसोंका राजा हूँ और रावणकी समान बलवान् हूँ अरे द्रोणपुत्र ! तू खड़ा रह ! खड़ा रह !! तू मेरे पाससे जीवित न जा सकेगा, आज मैं तेरे युद्धविषयक चावको दूर करदूँगा इस प्रकार कह कर क्रोधसे लाल लाल नेत्रों वाला महाबल-शाली राक्षस , कोपमें भरा हुआ सिंह जैसे हाथी पर दौड़े, तैसेही अश्वत्थामाके ऊपर झपटा ॥९९-१००॥ और जैसे मेघ मूसलधार जल बरसावे तैसे ही घटोत्कच भी रथके चक्रकी समान बाण महारथी अश्वत्थामाके मारने लगा ॥ १०१ ॥ अश्वत्थामाने भी उसके सामने बाणोंकी वृष्टि कर उसकी बाणवृष्टिको अधबीचमें ही काट डाला, इस समय मानों आकाशमें बाणोंका युद्ध होरहा हो इस प्रकार बाण परस्परमें टकराते

रणमानिना । घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः पुनः ॥१०४॥ सोऽभवद्गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसंकटैः । शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ॥ १०५ ॥ तमञ्जनगिरिप्रख्यं द्रौणिर्दृष्ट्वा महीधरम् । प्रपतद्भिश्च वहुभिः शस्त्रसंघैर्न विव्यथे ॥ १०६ ॥ ततो हसन्निव द्रौणिर्वज्रसमुदैरयत् । स तेनास्त्रेण शैलेन्द्रः क्षिप्तः क्षिप्रं व्यनश्यत ॥ १०७ ॥ ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि । अश्मवृष्टिभिरत्युग्रो द्रौणिं प्राच्छादयद्रणे ॥ १०८ ॥ अथ सन्धाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदाम्वरः । व्यधमत् द्रोणतनयो नीलमेघं समुत्थितम् ॥१०९॥ स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य

थे ॥ १०२–१०३ ॥ और सायंकालके समय उड़ते हुए पटवीजनोंसे जैसे आकाश दमकने लगता है, तैसे ही परस्पर टकराते हुए अस्त्रोंसे उत्पन्न हुई चिनगारियोंसे आकाश शोभित होरहा था ! ॥१०३ ॥ (देखते देखतेमें ही) घटोत्कचकी रणमें रची हुई मायाका अश्वत्थामाने नाश कर डाला उसी समय घटोत्कच ने अदृश्य हो दूसरी माया रची ॥ १०४ ॥ वह वृक्षोंसे लदा हुआ अनेक शिखरों वाला एक उन्नत और महान् पर्वत वन गया और पहाड़मेंसे जैसे जलके अनेकों झरने वहते हैं तैसेही त्रिशूल, प्रास, तलवार तथा मूसलोंके वहुतसे झरने वहने लगे ॥१०५॥ काले काजलकेसे पर्वतमेंसे अनेकों शस्त्रधाराओंको निकलती देखकर अश्वत्थामा कुछ भी विचलित नहीं हुआ ॥ १०६ ॥ परन्तु उसने हँसते २ उस पर्वत पर वज्रास्त्र मारा, तुरन्त ही अञ्जनपर्वतके टुकड़े २ होगए ॥ १०७ ॥ उग्र घटोत्कच उस ही समय इन्द्रायुध वाले श्याम मेघका स्वरूप धारण कर आकाशमें पहुँचकर खड़ा होगया और पत्थरोंको वरसाकर रणमें अश्वत्थामाको चारों ओरसे ढकदिया ॥ १०८ ॥ तव अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने धनुषके ऊपर वायव्यास्त्र चढ़ाया और आकाश

सर्वशः । शतं रथसहस्राणां जघान द्विपदाम्बरः ॥११०॥ स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेनायतकार्मुकम् । घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥ १११ ॥ सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तद्विरदविक्रमैः । गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैरपि ॥ ११२ ॥ विकृतास्यशिरोग्रीवैर्हैडिम्बानुचरैः सह । पौलस्त्यैर्यातुधानैश्च तामसैश्चेन्द्रविक्रमैः ११३ नानाशस्त्रधरैर्वीरैर्नानाकवचभूषितैः । महाबलैर्भीमरवैः संरम्भोद्वृत्तलोचनैः ॥ ११४ ॥ उपस्थितैस्ततो युद्धे राक्षसैर्युद्धदुर्मदैः । विषण्णमभिसम्प्रेक्ष्य पुत्रं ते द्रौणिरब्रवीत् ॥ ११५ ॥ तिष्ठ दुर्योधनाद्य त्वं न कार्यः सम्भ्रमस्त्वया । सहैभिर्भ्रातृभिर्वीरैः पार्थिवैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥ ११६ ॥ निहनिष्याम्यमित्रांस्ते तव नास्ति परा-

---

में प्रकाशित होतेहुए श्यामपमेघको मार उसके टुकड़े २ करदिये १०९ और बाणोंकी वृष्टिकर सब दिशाओंको ढक दिया तथा एक लाख रथियोंका संहार कर डाला ॥ ११० ॥ फिर सिंह तथा शार्दूलकी समान मदमत्त और मदमत्त हाथीकी समान पराक्रमी हाथी, रथ और घोड़ोंके ऊपर बैठे हुए बेडौल मुख, मस्तक तथा कण्ठ वाले हिडिम्बा पुत्रके राक्षस सेवक जो इन्द्रकी समान पराक्रमी थे पौलस्त्य, यातुधान तथा तामस नामवाले थे अनेक प्रकारके शस्त्र और कवचोंको पहिर रहे थे और जो शूरवीर, महाबली, भयंकर शब्द कर आँखोंको फाड़ २ कर देख रहे थे, ऐसे युद्ध करनेको तयार युद्धदुर्मद राक्षसोंको साथमें ले घटोत्कच बड़ाभारी धनुष ले रथमें बैठा और अश्वत्थामासे लड़नेको चला, उसको देख तुम्हारा पुत्र उदास होगया, उस समय अश्वत्थामा बोला कि—॥ १११–११५ ॥ हे दुर्योधन ! तुम खड़े रहो (खड़े २ तमाशा देखो) घबड़ाओ मत ! मैं तुम्हारे शत्रु इन शूरवीर भाइयोंको इन्द्रकी समान पराक्रमी राजाओं सहित नष्ट कर डालूँगा, तुम्हारी हार नहीं होगी, यह मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा

जयः । सत्यं ते प्रतिजानामि पर्याश्वासय वाहिनीम् ॥ ११७ ॥ दुर्योधन उवाच । न त्वेतदद्भुतं मन्ये यत्ते महदिदं मनः । अस्मासु च परा भक्तिस्त्वयि गौतमिनन्दन ॥ ११८ ॥ सञ्जय उवाच । अश्वत्थामानमुक्त्वैवं ततः सौबलमब्रवीत् । वृतं शतसहस्रेण रथानां रणशोभिनाम् ॥ ११९ ॥ षष्ट्या रथसहस्रैश्च प्रयाहि त्वं धनञ्जयम् । कर्णश्च वृषसेनश्च कृपो नीलस्तथैव च ॥ १२० ॥ उदीच्याः कृतवर्मा च पुरुमित्रः श्रुतापनः । दुःशासनो निकुम्भश्च कुण्डभेदी पराक्रमः ॥ १२१ ॥ पुरञ्जयो दृढरथः पताकी हेमकम्पनः । शल्यारुणोन्द्रसेनाश्च सञ्जयो विजयो जयः ॥ १२२ ॥ कमलाक्षः परक्राथी जयधर्मा सुदर्शनः । एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तीनामयुतानि षट् ॥ ११३ ॥ जहि भीमं यमौ चोभौ धर्मरा-

करता हूँ, परन्तु तू सेनाको ढाँढस बँधा ॥ ११६--११७ ॥ दुर्योधनने कहा कि-हे गौतमीनन्दन ! तुम जो ऐसा मनोभाव प्रकट करते हो, इसमें कुछ अचरज नहीं है, क्योंकि-तुम हमसे बडा प्रेम रखते हो ॥ ११८ ॥ सञ्जगने कहा कि-इस प्रकार अश्वत्थामासे बात चीत कर दुर्योधनने सुबलपुत्र शकुनिसे कहा कि-अजी मामाजी ! तुम रणमें शोभा देनेवाले साठ हजार रथों को लेकर सहस्रों रथी राजाओंसे लडतेहुए अर्जुनके ऊपर हल्ला करो, कर्ण, वृषसेन, कृप, नील, उत्तर दिशाके राजे, कृतवर्मा, शत्रुको सन्ताप देने वाला पुरुमित्र, दुःशासन, निकुम्भ, पराक्रमी कुण्डभेदी, पुरञ्जय, दृढ़रथ, पताकी, हेमकम्पन, शल्य, आरुणि इन्द्रसेन, सञ्जय, जय, विजय, कमलाक्ष, परक्राथी, जयवर्मा और सुदर्शन-ये योधा और साठ हजार पैदल तुम्हारे पीछे २ (सहायताके लिये) आवेंगे ॥ ११९-१२३ ॥ हे मामा जी ! तुम जहाँ धनञ्जय लडरहा है, तहाँ जाओ, और इन्द्र जैसे असुरों का संहार करे, तैसे तुम भीम, नकुल, सहदेव तथा धर्मराजका

जञ्च मातुल । असुरानिव देवेन्द्रो जयाशा त्वयि मे स्थिता १२४
दारितान् द्रौणिना बाणैर्भृशं विक्षतविग्रहान् । जहि मातुल कौन्ते-
यानसुरानिव पावकिः ॥ १२५ ॥ एवमुक्तो ययौ शीघ्रं पुत्रेण तव
सौबलः । पिप्रीषुस्ते सुतान्राजन् दिधक्षुश्चैव पाण्डवान् ॥१२६॥
अथ प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे । विभावर्यां सुतुमुलं शक्र-
प्रह्लादयोरिव ॥ १२७॥ ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्गौतमीसुतम् ।
जघानोरसि संक्रुद्धो विषाग्निप्रतिमैर्दृढैः ॥ १२८ ॥ स तैरभ्याहतो
गाढं शरैर्भीमसुतेरितैः । प्रचचाल रथोपस्थे वातोद्धूत इव द्रुमः १२९
भूयश्चाञ्जलिकेनाथ मार्गणेन महाप्रभम् । द्रौणिहस्तस्थितं चापं
चिच्छेदाशु घटोत्कचः ॥१३०॥ततोऽन्यद् द्रौणिरादाय धनुर्भारसहं

नाश करो, मैं विजयकी आशा तुम्हारे ही ऊपर रक्खे हुए हूँ १२४ हे मामाजी ! जैसे स्वामि कार्त्तिकेयने असुरोंका संहार किया था, तैसे ही तुम अश्वत्थामाके बाण लगनेसे जिनके शरीर जर्जर होरहे हैं ऐसे कुन्तीपुत्र पाण्डवोंका संहार करो ॥ १२५ ॥ इस प्रकार तुम्हारे पुत्रने सुबलपुत्र शकुनिसे कहा, तब हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रोंको प्रसन्न करनेकी इच्छासे तथा पाण्डवोंका संहार करनेकी इच्छासे शकुनि तुरत ही पांडवोंसे युद्ध करनेके लिये चला ॥ १२६ ॥ इन्द्र तथा प्रह्लादका जैसे पुराने समयमें युद्ध मचा था, तैसे ही रात्रिके समय अश्वत्थामा तथा राक्षसोंमें तुमुल युद्ध चलने लगा ॥ १२७ ॥ कोपमें भरे हुए घटोत्कचने विष और अग्निकी समान अत्यन्त दृढ़ दशबाण अश्वत्थामाकी छातीमें मार उसको बींध डाला ॥ १२८ ॥ उसके बाणोंके प्रहारसे, वायुसे जैसे विशाल वृक्ष काँप उठे, तैसे अश्वत्थामा काँप उठा ॥१२९॥ घटोत्कचने अञ्जलिक नामक बाण मारकर, अश्वत्थामाके हाथमेंके बडी कान्ति वाले धनुषको काट डाला ॥ १३० ॥ तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भारको सह सकने

महत् । ववर्ष विशिखांस्तीक्ष्णान् वारिधारा इवाम्बुदः ॥ १३१ ॥ ततः शारद्वतीपुत्रं प्रेषयामास भारत । सुवर्णपुंखाञ्छत्रुघ्नान् खचरान् खचरं प्रति ॥१३२॥ तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् । सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥१३३॥ विधम्य राक्षसान् बाणैः साश्वसूतरथद्विपान् । ददाह भगवान् वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥१३४॥ स दग्ध्वाक्षौहिणीं बाणैर्नैर्ऋतीं रुरुचे भृशम् । पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ १३५ ॥ युगान्ते सर्वभूतानि दग्ध्वेव वसुरुल्बणः । रराज जयतां श्रेष्ठो द्रोणपुत्रस्तवाहितान् ॥ १३६ ॥ तदा घटोत्कचः क्रुद्धो रक्षसां भीमकर्मणाम् ।

वाला दूसरा धनुष उठाया और मेघ जैसे जलको बरसावे तैसे घटोत्कचके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी झड़ी लगादी॥१३१॥तदनन्तर हे भरतवंशी राजन्! शारद्वतीका पुत्र अश्वत्थामा सुवर्णकी पूँछ वाले शत्रुओंको मारनेवाले आकाशचारी बाणोंको आकाशमें फिरने वाले (घटोत्कच) के ऊपर फैंकने लगा ॥ १३२ ॥ उस समय उन बाणोंके प्रहारसे पीडित हुआ स्थूल वक्षस्थल वाले राक्षसों का झुण्ड, सिंहोंसे झँझोड़े जाते हुए मदमत्त हाथियोंके झुण्ड की समान व्याकुल होने लगा ॥ १३३ ॥ अश्वत्थामाने बाणों के प्रहारसे घोड़े, सारथि रथ और हाथियों समेत राक्षसोंको धुँगलकर प्रलयके समय भगवान् अग्नि जैसे प्राणियोंको बाल कर भस्म करैं तैसे उनको भस्म कर दिया ॥ १३४ ॥ और हे राजन्! जैसे पहिले भगवान् शङ्कर त्रिपुरासुरको भस्म कर स्वर्ग में शोभा पारहे थे, तैसे ही अश्वत्थामा भी राक्षसोंकी अक्षौहिणी सेनाको भस्म कर रणमें शोभा पारहा था ॥ १३५ ॥ प्रचण्ड अग्नि प्रलयकालके समय सकल भूतोंको भस्म कर जैसे शोभा पाता है, तैसे ही जीतने वालोंमें श्रेष्ठ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तुम्हारे शत्रुओंको नष्ट कर दिपने लगा ॥ १३६ ॥ यह देखकर घटो-

द्रौणिं हतेति महतीं चोदयामास तां चमूम् ॥१३७॥ घटोत्कचस्य तामाज्ञां प्रतिगृह्याथ राक्षसाः । दंष्ट्रोज्ज्वला महावक्त्रा घोररूपा भयानकाः ॥ १३८ ॥ व्यात्तानना घोरजिह्वाः क्रोधताम्रेक्षणा भृशम् । सिंहनादेन महता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥ १३९ ॥ हन्तुमभ्यद्रवन् द्रौणिं नानाप्रहरणायुधाः । शक्तीः शतघ्नीः परिघानशनीः शूलपट्टिशान् ॥ १४० ॥ खड्गान् गदा भिन्दिपालान् मुसलानि परश्वधान् । प्रासानसींस्तोमरांश्च कणपान् कम्पनाञ्छितान् ॥ १४१ ॥ शूलान् भुशुण्ड्यश्मगदास्थूणान्कार्ष्णायसांस्तथा । मुद्गरांश्च महाघोरान् समरे शत्रुदारणान् ॥१४२॥ द्रौणिमूर्धन्यसंत्रस्ता राक्षसा भीमविक्रमाः । चिक्षिपुः क्रोधताम्राक्षाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४३ ॥ तच्छस्त्रवर्षं सुमहद् द्रोणपुत्रस्य मूर्द्धनि । पतमानं समीक्ष्याथ योधास्ते

त्कचको बड़ा क्रोध चढ़ा और उसने भयङ्कर कर्म करनेवाले राक्षसों की बड़ी भारी सेनासे कहा कि तुम अश्वत्थामाको मारडालो १३७ घटोत्कचकी आज्ञाको पाकर चमकती हुई डाढ़ वाले, बड़े २ मुख वाले, भयङ्कर रूपवाले, भयानक मुख फाड़े हुए, भयानक जीभ वाले, क्रोधसे ताँबेका समान लाल लाल नेत्र वाले राक्षस बड़ी भारी सिंहगर्जना कर पृथ्वीको गुंजारते हुए, नानाप्रकारके शस्त्रोंको हाथमें उठा अश्वत्थामाको मारनेके लिये झपटे और वे भयङ्करपराक्रमी राक्षस रोषसे ताँबेकी समान लाल २ नेत्र कर निर्भयतासे अश्वत्थामाके मस्तक पर शक्ति, शतघ्नी, परिघ, अशनि, शूल, पटे, खड्ग, गदा, भिंदिपाल मूसल, फरसे, प्राश तलवार, तोमर, तीक्ष्ण और मोटे २ कणप, कम्पन भुशुण्डी, पत्थर, गदा, खूँटे और रणमें शत्रुओंको विदीर्ण करनेवाले लोहेके महाभयङ्कर मुगदरोंको मारने लगे ॥ १३८-१४३ ॥ अश्वत्थामाके शिर पर शस्त्रोंकी बड़ी भारी बौछार होते देख

व्यथिताभवन् ॥१४४॥ द्रोणपुत्रस्त्वसम्भ्रान्तस्तद्वर्षं घोरमुच्छ्रितम् । शरैर्विध्वंसयामास वज्रकल्पैः शिलाशितैः ॥१४५॥ ततोऽन्यैर्विशिखैस्तूर्णं स्वर्णपुङ्खैर्महामनाः । निजघ्ने राक्षसान् द्रौणिर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥ १४६ ॥ तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् । सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥ १४७ ॥ ते राक्षसाः सुसंक्रुद्धा द्रोणपुत्रेण ताडिताः । क्रुद्धाः सम्प्राद्रवन् द्रौणिं जिघांसन्तो महाबलाः ॥ १४८ ॥ तत्राद्भुतमिमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम् । अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत१४९ यदेको राक्षसीं सेनां क्षणाद् द्रौणिर्महास्त्रवित् । ददाह ज्वलितैर्बाणै राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥१५०॥ स हत्वा राक्षसानीकं रराज

तुम्हारे योधा मनमें खिन्न होनेलगे ॥१४४॥ परन्तु महापराक्रमी अश्वत्थामाने पत्थरपर घिसकर तेज कियेहुए वज्रकी समान तेज बाण मारकर राक्षसोंकी फैंकी हुई बाणोंकी बौछारोंको नष्ट कर डाला ॥ १४५ ॥ तदनन्तर बड़े मन वाले अश्वत्थामाने शीघ्र ही सुवर्णकी पूँछ वाले बाणोंको दिव्य अस्त्रोंके मंत्रसे अभिमंत्रित कर राक्षसोंको मारना आरम्भ करदिया, उसके प्रहारसे स्थूल वक्षःस्थल वाले राक्षसोंका झुण्ड बड़ा ही व्याकुल होगया और सिंहोंके उपद्रवसे घबड़ाई हुई हाथियोंकी धाँगकी समान भौचक्का रह गया ॥१४६॥१४७॥ जब महाबली अश्वत्थामा तला ऊपर बाण छोड राक्षसोंको पीडित करने लगा, तब वे तमोगुणी बलवान् राक्षस बड़े क्रोधमें भरगए और क्रोधमें भर अश्वत्थामाको मारनेके लिये उस पर टूटपड़े ॥ १४८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! उस समय अश्वत्थामाने ऐसा अद्भुत पराक्रम करके दिखाया कि-ऐसा पराक्रम किसी प्राणीसे नहीं हो सकता ॥ १४९ ॥ बड़े २ अस्त्रोंको जानने वाले अश्वत्थामाने अकेले ही राक्षसराजके सामने प्रज्वलित बाण मारकर राक्षसी

अतितीव्रं महद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः । योधानां प्रीतिजननं द्रौणेश्च भरतर्षभ ॥ १६४ ॥ ततो रथसहस्रेण द्विरदानां त्रिभिः शतैः । षड्भिर्वाजिसहस्रैश्च भीमस्तं देशमाव्रजत् ॥ १६५ ॥ ततो भीमात्मजं रक्षो धृष्टद्युम्नञ्च सानुगम् । अयोधयत धर्मात्मा द्रौणिरक्लिष्टविक्रमः ॥१६६॥ तत्राद्भुततमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम् । अशक्यं कर्त्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥१६७॥ निमेषान्तरमात्रेण साश्वसूतरथद्विपान् । अक्षौहिणीं राक्षसानां शितैर्बाणैरशातयत् ॥ १६८ ॥ मिषतो भीमसेनस्य हैडिम्बेः पार्षतस्य च । यमयोर्धर्मपुत्रस्य विजयस्याच्युतस्य च ॥ १६९ ॥ प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरथ ताडिताः। निपेतुर्द्विरदा भूमौ विशृङ्गा इव पर्वताः १७०

(स्पर्श वाले) बाण मार कर काटनेलगे ॥ १६३ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! इस प्रकार उन दोनों नरसिंहोंमें अतितीव्र महायुद्ध छिड़ा था, इस युद्धसे योधा और अश्वत्थामा (दोनोंही) प्रसन्न होरहे थे ॥ १६४ ॥ जब इस प्रकार युद्ध चल रहा था कि-भीमसेन एक सहस्र रथ, तीनसौ हाथीसवार और छः सहस्र घुड़सवारोंको ले तहाँ आधमका ॥ १६५ ॥ परन्तु सुखपूर्वक लड़ने वाला धर्मात्मा अश्वत्थामा घटोत्कच और अनुचरों सहित धृष्टद्युम्नके साथ लड़े ही चला गया ॥ १६६ ॥ और हे भरतवंशी राजन् ! उसने किसी प्राणीसे भी न बन सकनेवाला ऐसा अद्भुत कर्म किया कि-भीमसेन, घटोत्कच, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, अर्जुन तथा श्रीकृष्णके सामने निमेषमात्रमें ही तीक्ष्ण बाण मार कर घोड़े, सारथि, रथ तथा हाथियोंसे भरी राक्षसोंकी अक्षौहिणी सेनाका संहार कर डाला ॥ १६७-१६९ ॥ फिर शीघ्रगामी बाण दृढ़तासे मारकर हाथियोंका भी संहार करने लगा, उस समय वे हाथी शिखरों वाले पर्वतोंकी समान पृथिवीपर गिरते थे ॥ १७० ॥ इधर उधर

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च विचरद्भिरितस्ततः । रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ॥ १७१ ॥ क्षिप्तैः काञ्चनदण्डैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ । द्यौरिवोदितचन्द्रार्का ग्रहाकीर्णा युगक्षये ॥ १७२ ॥ प्रवृद्धध्वजमण्डूकां भेरीविस्तीर्णकच्छपाम् । छत्रहंसावलीजुष्टां फेनचामरमालिनीम् ॥ १७३ ॥ कङ्कगृध्रमहाग्राहां नैकायुधझषाकुलाम् । विस्तीर्णगजपाषाणां हताश्वमकराकुलाम् ॥ १७४ ॥ रथक्षिप्रमहावप्रां पताकारुचिरद्रुमाम् । शरमीनां महारौद्रां प्रासशक्त्यृष्टिडुण्डुभाम् ॥१७५॥ मज्जामांसमहापंकां कबन्धावर्जितोडुपाम् । केशशैवलकल्माषां भीरूणां कश्मलावहाम् ॥ १७६ ॥ नागेन्द्रहययोधानां शरीरव्ययसम्भवाम् । शोणितौघमहावेगां

लुढकती हुई हाथियोंकी कटी हुई सूडोंसे भरी हुई पृथ्वी, जैसे सर्प घूमरहे हों तैसे शोभा पाने लगी ॥ १७१ ॥ और पृथ्वीपर गिरे सुवर्णकी दण्डी वाले राजाओंके वस्त्रोंसे रणभूमि, प्रलयकालके समय उदय हुए सूर्य, चन्द्रमा तथा तथा नक्षत्रों वाले आकाशकी समान शोभा पारही थी ॥ १७२ ॥ अश्वत्थामाने रणमें ध्वजारूप मेंडकवाली भेरीरूप कछुएवाली, छत्ररूप हंसों की लंघारसे सेवित, चामररूप फेन और तरङ्गों वाली, कङ्क और गीधरूप बड़े २ नाकोंवाली, और नानाप्रकारके आयुधरूप मच्छोंवाली, इधर उधर पड़ेहुए हाथीरूप पत्थरों वाली, मरेहुए घोड़ेरूप मगरों वाली, रथरूप वप्रवाली, पताकारूप बड़े २ सुन्दर वृक्षवाली, बाणरूपी मच्छीवाली, देखने वालोंके लिये महाभयङ्कर, प्रास, शक्ति ऋष्टिरूप जलसर्पोंसे भरीहुई, मज्जा और मांसरूपी कीचड़वाली, धड़रूप डोंगी वाली, केशरूप सिवारसे विचित्र रंगकी प्रतीत होनेवाली डरपोकोंको डरानेवाले, मरेहुए योधाओंके शरीरोंमेंसे निकलेहुए रुधिरसे उत्पन्नहुई रक्तकी तरङ्गोंमे और योधाओंके आर्तनादसे गूँजती हुई, रक्तकी तले

द्रौणिः प्रावर्त्तयन्नदीम् ॥ १७७ ॥ योधार्त्तरवनिर्घोषां क्षतजोर्मिसमाकुलाम् । श्वापदातिमहाघोरां यमक्षयमहोदधिम् ॥ १७८ ॥ निपात्य राक्षसान् बाणैर्द्रौणिर्हैडिम्बिमार्दयत् । पुनरप्यतिसंक्रुद्धः सवृकोदरपार्षतान् ॥ १७९ ॥ स नाराचगणैः पार्थान् द्रौणिर्विध्वा महाबलः । जघान सुरथं नाम द्रुपदस्यात्मजं विभुः ॥ १८० ॥ पुनः शत्रुञ्जयं नाम द्रुपदस्यानुजं रणे । बलानीकं जयानीकं जयाश्वञ्चाभिजघ्निवान् ॥ १८१ ॥ श्रुताह्वयं च राजेन्द्र द्रौणिर्निन्ये यमक्षयम् । त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुपुङ्खैर्हेममालिनम् १८२ जघान स पृषध्रं च चन्द्रसेनञ्च मारिष । कुन्तिभोजसुतांश्चासौ दशभिर्दश जघ्निवान् ॥ १८३ ॥ अश्वत्थामा सुसंक्रुद्धः सन्धायोग्रमजिह्मगम् । मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ॥१८४॥ यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम् । स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्ष-

---

ऊपर आतीहुई लहरोंसे भयंकर, कुत्ते और सियार आदि पशुओं से भरीहुई यमराजके समुद्रकी समान महाभयंकर नदी बहा दी ॥१७३-१७८॥ द्रोणके पुत्र अश्वत्थामाने बाणोंसे राक्षसों का नाश करना आरंभ करदिया, घटोत्कचको पीडित करना आरम्भ किया, इतने पर भी वह थमा नहीं किन्तु महाबलवान्, व्यापक अश्वत्थामाने बड़े भारी क्रोधमें भर फिर नाराच नामके बाण मार भीमके अनुचरोंको और पाण्डवोंको बींध डाला, और द्रुपदके पुत्र सुरथको, शत्रुञ्जयको, बलानीकको, जयानीकको, जयाश्वको तथा श्रुताह्वयको मारकर यमलोकमें भेज दिया, इसके पीछे सुन्दर पूँछ वाले सुवर्णके तीन बाण मारकर पृषध्र तथा चन्द्रसेनको मारडाला और दश बाणोंसे कुन्तिभोजके दश पुत्रों को भी मारडाला ॥१७९-१८३॥ तदनन्तर हे राजन् ! अश्वत्थामाने बड़े भारी क्रोधमें भर, सरलतासे जाने वाला यमदण्डकी समान उग्र और घोर बाण धनुषपर चढ़ाया और धनुषको

सस्य महाशरः ॥ १८५ ॥ विवेश वसुधां शीघ्रं सपुङ्खः पृथिवीपते । तं हतं पतितं ज्ञात्वा धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ १८६ ॥ द्रौणेः सकाशाद्राजेन्द्र व्यपनिन्ये रथोत्तमम् । तथा पराङ्मुखनृपं सैन्यं यौधिष्ठिरं नृप ॥१८७॥ पराजित्य रणे वीरो द्रोणपुत्रो ननाद ह । पूजितः सर्वलोकैश्च तव पुत्रैश्च भारत ॥ १८८ ॥ अथ शरशतभिन्नकृत्तदेहैर्हतपतितैः क्षणदाचरैः समन्तात् । निधनमुपगतैर्बभूव भूमिर्गिरिशिखरैरिव दुर्गमातिरौद्रा ॥ १८९ ॥ तं सिद्धगन्धर्वपिशाचसंघा नागाः सुपर्णाः पितरो वयांसि । रक्षोगणा भूतगणाश्च द्रौणिमपूजयन्नप्सरसः सुराश्च ॥ १९० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि अश्वत्थामयुद्धे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

कानतक खैंचकर वह वाण घटोत्कचकी छातीमें मारा, वह बाण उसके हृदयको फोड़ पूँछसहित पृथ्वीमें घुस गया, तब घटोत्कच रथमेंसे पृथ्वीपर गिरपड़ा, यह देख उसको मराहुआ मान महारथी धृष्टद्युम्न ने अश्वत्थामाके सामनेसे अपने वड़े भारी रथको पीछेको फिराया, तदनन्तर जिसमेंके राजे भागने लगे हैं, ऐसी राजा युधिष्ठिरकी सेनाका पराजय कर शूरवीर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने गर्जना की, उस समय सब मनुष्य और तुम्हारे पुत्रोंने उसकी वडी भारी पूजा की ॥ १८४-१८८ ॥ इस समय अश्वत्थामाने सैंकडों वाण मारकर राक्षसोंके शरीरोंको काटडाला था, मरकर गिरेहुए राक्षसोंसे पृथ्वी खचाखच भररही थी, इससे इधरउधर पडे पर्वतके शिखरोंसे जैसे पृथ्वी दुर्गम और भयंकर होगई हो तैसी प्रतीत होती थी ॥ १८९ ॥ सिद्ध, गन्धर्व, पिशाच, सर्प, गरुड, पितर, पक्षी, राक्षस, भूतोंके समूह, अप्सरा और देवताओंने अश्वत्थामाका पराक्रम देख उसकी बड़ी प्रशंसा की ॥ १९० ॥ एकसौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५६ ॥

सञ्जय उवाच। द्रुपदस्यात्मजान् दृष्ट्वा कुन्तिभोजसुतांस्तथा । द्रोणपुत्रेण निहतान्राक्षसांश्च सहस्रशः ॥ १ ॥ युधिष्ठिरो भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । युयुधानश्च संयत्ता युद्धायैव मनो दधुः ॥२॥ सोमदत्तः पुनः क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे।महता शरवर्षेण छादयामास भारत ॥३॥ ततः समभवद्युद्धमतीवभयवर्धनम् । त्वदीयानां परेषाञ्च घोरं विजयकाङ्क्षिणाम् ॥ ४ ॥ तं दृष्ट्वा समुपायान्तं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः । दशभिः सात्त्वतस्यार्थे भीमो विव्याध सायकैः ॥५॥ सोमदत्तोऽपि तं वीरं शतेन प्रत्यविध्यत । सात्वतस्त्वभिसंक्रुद्धः पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ॥ ६ ॥ वृद्धं वृद्धगुणैर्युक्तं ययातिमिव नाहुषम् । विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः शरैर्वज्रनिपातनैः ॥ ७ ॥ शक्त्या चैनं विनिर्भिद्य पुनर्विव्याध सप्तभिः ।

सञ्जयने कहा कि–हे धृतराष्ट्र ! अश्वत्थामाने राजा द्रुपदके तथा कुन्तिभोजके पुत्रोंका और सहस्रों राक्षसोंका संहार कर डाला, यह देखकर युधिष्ठिर, भीमसेन, पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्न और सात्यकिने तयार होकर फिर लडनेका विचार किया ॥ १–२ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! राजा सोमदत्त सात्यकिको रणमें देख फिर क्रोधमें भरगया, उसने बडी भारी बाणवर्षा कर सात्यकिको ढक दिया ॥ ३ ॥ इस समय तुम्हारे और शत्रुपक्षके योधाओंमें बडा भयानक युद्ध होनेलगा ॥ ४ ॥ इस समय भीमने विजयाभिलाषी सोमदत्तको सामने आता देखकर, सात्यकिकी रक्षा करनेके लिये, पत्थरपर घिसेहुए सुवर्णकी पूंछवाले दशबाण उसके मारे ५ सोमदत्तने सात्यकिके सौ बाण मारे तब सात्यकिको उसके ऊपर क्रोध आगया और उसने पुत्रशोकसे खिन्न हुए, वृद्धके गुणोंसे भरपूर तथा नहुषके पुत्र ययातिकी समान शीलसम्पन्न वृद्ध सोमदत्तको,वज्रकी समान तीक्ष्ण प्रहार करनेवाले दश बाण मार कर उसको बींधडाला६–७इसप्रकार शक्तिके अनुसार उसको बींधकर

ततस्तु सात्यकेरर्थे भीमसेनो नवं दृढम् ॥ ८ ॥ मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य मूर्द्धनि । सात्वतोऽप्यग्निसङ्काशं मुमोच शरमुत्तमम् ॥ ९ ॥ सोमदत्तोरसि क्रुद्धः सुपत्रं निशितं युधि । युगपत् पेततुर्वीरे घोरौ परिघमार्गणौ ॥ १० ॥ शरीरे सोमदत्तस्य स पपात महारथः । व्यामोहिते तु तनये वाह्लीकस्तमुपाद्रवत् ११ विसृजञ्छरवर्षाणि कालवर्षीव तोयदः । भीमोऽथ सात्वतस्यार्थे वाह्लीकं नवभिः शरैः ॥ १२ ॥ प्रपीडयन्महात्मानं विव्याध रणमूर्द्धनि । प्रातिपेयस्तु संक्रुद्धः शक्तिं भीमस्य वक्षसि ॥ १३ ॥ निचखान महाबाहुः पुरन्दर इवाशनिम् । स तथाभिहतो भीमश्चकम्पे च मुमोह च ॥ १४ ॥ प्राप्य चेतश्च बलवान् गदामस्मै ससर्ज ह । सा पाण्डवेन प्रहिता वाह्लीकस्य शिरोऽहरत् ॥ १५ ॥ स पपात हतः पृथ्व्यां वज्राहत इवाद्रिराट् । तस्मिन् विनिहते वीरे

फिर उसको सात वाण मारकर घायल कर डाला, तदनन्तर भीमसेनने सात्यकिका पक्ष ले एक नया तथा दृढ़ परिघ सोमदत्तके मस्तक पर मारा और इसी समय क्रोधमें भरेहुए सात्यकिने भी सुन्दर पर लगा हुआ अग्निकी समान अतितीक्ष्ण एक श्रेष्ठ वाण सोमदत्तके हृदयमें मारा, ये घोर वाण और परिघ उस वीरके ऊपर एकसाथ पड़े इससे वह महारथी मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पडा, पुत्रको मूर्छित देख वाह्लीक भीमके ऊपर दौडा ८-११ और जल बरसाते हुए मेघकी समान वाणोंकी वृष्टि करनेलगा, तब भीमने सात्यकिके कारण वाल्हीकको भी रणके मुहाने पर दश वाण मारकर बींधडाला, तब तो प्रतीपके पुत्र वाह्लीकको क्रोध आगया और इन्द्र जैसे वज्रका प्रहार करे; तैसे महाभुज वाह्लीकने भीमके वक्षःस्थलमें शक्ति मारी, शक्तिके प्रहारसे भीम काँपकर मूर्छित होगया ॥१२-१४॥ परन्तु थोडी ही देरमें भीम सावधान होगया और उसने वाह्लीकके मस्तक पर गदा मार उसके मस्तकको तोड

वाह्लीके पुरुषर्षभ ॥ १६ ॥ पुत्रास्तेऽभ्यर्दयन् भीमं दश दाशरथेः समाः । नागदत्तो दृढरथो महाबाहुरयोभुजः ॥१७॥ दृढः सुहस्तो विरजाः प्रमाथ्युग्रोनुयाय्यपि । तान् दृष्ट्वा चुक्रुधे भीमो जगृहे भारसाधनान् ॥ १८ ॥ एकमेकं समुद्दिश्य पातयामास मर्मसु । ते विद्धा व्यसवः पेतुः स्यन्दनेभ्यो हतौजसः ॥ १९ ॥ चण्डवातप्रभग्नास्तु पर्वताग्रान्महीरुहाः । नाराचैर्दशभिर्भीमस्तान्निहत्य तवात्मजान् ॥ २० ॥ कर्णस्य दयितं पुत्रं वृषसेनमवाकिरत् । ततो वृकरथो नाम भ्राता कर्णस्य विश्रुतः ॥ २१ ॥ विव्याध भीमं नाराचैस्तमप्यभ्यद्रवद्बली । ततः सप्त रथान् वीरः स्यालानां तव भारत ॥ २२ ॥ निहत्य भीमो नाराचैः शतचन्द्रमपोथयत्

डाला ॥ १५ ॥ वज्रके प्रहारसे महापर्वत जैसे पृथ्वीके ऊपर गिर पडता है, तैसे ही वाल्हीक भी गदाके प्रहारसे मरण पा पृथ्वीमें ढह पडा, हे पुरुषश्रेष्ठ ! वाल्हीकके मरनेपर रामचन्द्रकी समान पराक्रमी तुम्हारे नागदत्त, दण्डरथ, महाभुज अयोभुज, दृढ़, सुहस्त, विरज, प्रमाथी, उग्र और अनुयायी नामक दश पुत्र वाणोंकी वृष्टि कर उसको पीडित करने लगे, भीमसेन युद्धके संकटको सहने वाले उनको देखकर क्रोधमें भरगया और उनसे लडनेके लिये मजबूत हथियार लिये॥१६–१८॥ और उसने तुम्हारे प्रत्येक पुत्रके मर्मभागमें एक २ वाण मारकर उनको मारडाला, तब वे वल और प्राणरहित होकर, प्रचण्ड वायुके झोंकेसे हिलाहुआ वृक्ष जैसे पर्वतके शिखर परसे गिर पड़े तैसे रणभूमिमें गिरपड़े इसप्रकार भीमने दश वाणोंका प्रहार कर तुम्हारे दश पुत्रोंको मारडाला, फिर कर्णके पुत्र वृषसेनके ऊपर भीमसेनने वाण वरसाना आरम्भ करदिया ॥ १९—२० ॥ (यह देख) कर्ण का भाई प्रसिद्ध वृकरथ भीमके वाण मारने लगा, तब वलवान् भीम उसकी ओर धँसा ॥२१॥ और हे भरवंतशी राजन् ! उस

अमर्षयन्तो निहतं शतचन्द्रं महारथम् ॥ २३ ॥ शकुनेर्भ्रातरो वीरा गवाक्षः शरभो विभुः। सुभगो भानुदत्तश्च शूराः पञ्च महारथाः ॥२४॥ अभिद्रुत्य शरैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनमताडयन्। स ताड्यमानो नाराचैर्वृष्टिवेगैरिवाचलः ॥ २५ ॥ जघान पञ्चभिर्बाणैः पञ्च चातिरथान्बली। तान् दृष्ट्वा निहतान् वीरान् विचेलुर्नृपसत्तमाः ॥२६॥ ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तवानीकमशातयत्। मिषतो कुम्भयोनेश्च पुत्राणां तव चानघ ॥ २७ ॥ अम्बष्ठान्मालवान् शूरांस्त्रिगर्त्तान् स शिबीनपि। प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो युद्धे युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥ अभीषाहान् शूरसेनान् बाह्लीकांश्च वशातिकान्। निकृत्य पृथिवीं राजा चक्रे शोणितकर्दमाम् ॥ २९ ॥

शूरने तुम्हारे वीर और महारथी सालोंको वीस मारकर मारडाला और शतचन्द्रका नाश करडाला ॥ २२—२३ ॥ महारथी शतचन्द्रको मरा देख कर शकुनिके भाई वीर गवाक्ष, सरभ, विभु, सुभग और भानुदत्त, ये पाँचों इस बातको सह न सके और वे भीमके ऊपर चढ़ कर उस पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे, मेघकी जलधाराएँ जैसे पर्वतपर पड़ती हैं, तैसे ही बाणधाराएँ भीमपर पड़ने लगीं; तब बलवान् भीमसेनने पाँचोंको बाण मार कर मार डाला; इस प्रकार उन शूरोंको मरते देख कर बड़े २ राजे घबड़ाहटमें पड़ गए ॥ २४—२६ ॥ फिर युधिष्ठिरको क्रोध चढ़ा तब उन्होंने द्रोणाचार्य और तुम्हारे पुत्रके सामने मुहानेकी सेनाका संहार करना आरंभ कर दिया ॥ २७ ॥ क्रोधमें भरे हुए युधिष्ठिरने अम्बष्ठ, मालव, शूर, त्रिगर्त, और शिबि राजाओंको युद्धमेंसे यमलोकको रवाना कर दिया॥२८॥ इतना ही नहीं किन्तु अभीषाहोंको, शूरसेनोंको, बाल्हीकोंको तथा वसातिकोंको काट कर रणभूमिको लोहू और मांसकी कीचड़कर रणभूमिको किचोंदी बनादिया॥२९॥और शूरवीर तथा महा योधा

यौधेयान् मालवान्राजन् मद्रकांश्च गणान् युधि । प्राहिणोद्यमलोकाय शूरान् बाणैर्युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥ हताहरत गृह्णीत विध्यत व्यवकृन्तत । अभवत्तुमुलः शब्दो युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ३१ ॥ सैन्यानि द्रावयन्तन्तं द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् । चोदितस्तव पुत्रेण सायकैरभ्यवाकिरत् ॥ ३२ ॥ द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण पाण्डवम् । विव्याध सोऽपि तद्दिव्यमस्त्रमस्त्रेण जघ्निवान् ॥ ३३ ॥ तस्मिन्नस्त्रे विनिहते भारद्वाजो युधिष्ठिरे । वारुणं याम्यमाग्नेयं त्वाष्ट्रं सावित्रमेव च ॥ ३४ ॥ चिक्षेप परमक्रुद्धो जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् । क्षिप्तानि क्षिप्यमाणानि तानि चास्त्राणि धर्मजः ३५ जघानास्त्रैर्महाबाहुः कुम्भयोनेरवित्रसन् । सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां कुम्भसम्भवः ॥ ३६ ॥ प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमैन्द्रं वै प्राजापत्यञ्च

मालवा और मद्रदेशके राजाओंको मृत्युलोकमें पहुँचा दिया ३० इस समय राजा युधिष्ठिरके रथके आस पास, मारो, पकड़ो, कैद करो, घायल करो काट डालो, इस प्रकार तुमुल शब्द होरहा था॥३१॥ परन्तु राजा युधिष्ठिर तुम्हारी सेनाको भगाए ही जाते थे, यह देखकर तुम्हारे पुत्रने द्रोणाचार्यसे युधिष्ठिर पर बाण बरसानेके लिये कहा॥३२॥ द्रोणने वायव्यास्त्र मारा युधिष्ठिरने भी क्रोधमें भर वैसा ही दिव्य अस्त्र मार उनके अस्त्रको काट डाला ३३ युधिष्ठिरने द्रोणके अस्त्रको नष्ट करडाला, तब तो द्रोणाचार्य बहुत ही खिसियागए और उनका नाश करनेकी इच्छासे उनके ऊपर वारुणास्त्र, याम्यास्त्र आग्नेयास्त्र, त्वाष्ट्र, सावित्रास्त्र नामक बाण मारे, परन्तु महाबाहु धर्मराज इससे जरा भी नहीं डरे, उन्होंने उन अस्त्रोंके ऊपर अस्त्र मारकर, द्रोणके छोड़ेहुए, छोड़े जातेहुए तथा फेंके जातेहुए अस्त्रोंके टुकडे २ करडाले, यह देखकर कुंभमेंसे उत्पन्नहुए, तुम्हारे पुत्रके हितैषी द्रोणाचार्यने हे भरतराज ! युधिष्ठिरका वध करनेकी अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके

भारत । जिघांसुर्धर्मतनय तव पुत्रहिते रतः ॥३७॥ पतिः कुरूणां गजसिंहगामी विशालवक्षाः पृथुलोहिताक्षः । प्रादुश्चकारास्त्रमहीनतेजा माहेन्द्रमन्यत् स जघान तेन ॥ ३८ ॥ विहन्यमानेष्वस्त्रेषु द्रोणः क्रोधसमन्वितः । युधिष्ठिरवधं प्रेप्सुर्ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ३९ ततो नाज्ञासिषं किञ्चिद् घोरेण तमसावृते । सर्वभूतानि च त्रासं परं जग्मुर्विशाम्पते ॥ ४० ॥ ब्रह्मास्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ४१ ॥ ततः सैनिकमुख्यास्ते प्रशशंसुर्नरर्षभौ । द्रोणपार्थौ महेष्वासौ सर्वयुद्धविशारदौ ॥ ४२ ॥ ततः प्रमुच्य कौन्तेयं द्रोणो द्रुपदवाहिनीम् । व्यधमत् क्रोधताम्राक्षो वायव्यास्त्रेण भारत ॥४३॥ ते हन्यमाना

लिये इन्द्रास्त्र तथा प्राजापत्यास्त्रको प्रकट किया ॥ ३४ ॥ ३७ ॥ कुरुकुलनायक, सिंह तथा हाथीकी समान गतिवाले, विशाल वक्षःस्थलवाले, विशाल और रक्त नेत्रवाले महातेजस्वी युधिष्ठिरने उनके सामने माहेन्द्र नामक अस्त्र प्रकटकर उनके इन्द्रास्त्रके टुकड़े२ करडाले ॥ ३८ ॥ राजा युधिष्ठिर जब उनके अस्त्रोंके टुकड़े २ करनेलगे, तब तो द्रोणाचार्य बड़े क्रोधमें भरगए और उन्होंने युधिष्ठिरको मारनेके लिये उनके ब्रह्मास्त्र मारा, हे राजन्! ब्रह्मास्त्रके मारते ही चारों ओर अन्धकार फैल गया सब अन्धे होगए और सबोंके मनमें बड़ा भय बैठगया ॥ ३९–४० ॥ परन्तु हे राजन्! युधिष्ठिरने ब्रह्मास्त्रको अपने सामने आता देखकर उसके सामने ब्रह्मास्त्र मारकर द्रोणके अस्त्रको पीछेको लौटादिया ।४१। यह देखकर तुम्हारे मुख्य२ योधा, मनुष्योंमें श्रेष्ठ, सकल युद्धोंमें कुशल तथा महाधनुषधारी द्रोण और धर्मराजकी प्रशंसा करने लगे ॥४२॥ तदनन्तर द्रोणाचार्य धर्मराजको छोड़, राजा द्रुपदकी सेनाके पीछे पड़े और क्रोधसे लाल२ नेत्र करके वायव्यास्त्र मार द्रुपदकी सेनाका संहार करनेलगे ॥ ४३ ॥ पश्चात देशके राजे

द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन् भयात् । पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ४४ ॥ ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्त्तताम् । महद्भ्यां रथवंशाभ्यां प्रतिगृह्य बलं तदा ॥ ४५ ॥ बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरञ्च वृकोदरः । भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ॥ ४६ ॥ कैकयाः सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः । अन्वगच्छन्महाराज मत्स्याश्च सह सात्वतैः ॥ ४७ ॥ ततः सा भारती सेना वध्यमाना किरीटिना । तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत४८द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च । नाशक्यन्त महाराजा योधा वारयितुं तदा ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि द्रोण-युधिष्ठिरयुद्धे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

सञ्जय उवाच । उदीर्यमाणं तं दृष्ट्वा पाण्डवानां महद्बलम् ।

द्रोणाचार्यके भयसे भीमसेन तथा महात्मा अर्जुनके सामनेही भागने लगे॥४४॥तब अर्जुन और भीम एक साथ बड़ीभारी रथसेनाको साथमें ले द्रोणसे लड़नेके लिये उनके सामने पहुँच गए,दाहिनी ओरसे अर्जुन और बाांई ओरसे भीम द्रोणाचार्य पर बड़ीभारी बाण वर्षा करते हुए टूटपड़े४५–४६हे महाराज ! इस समय महाबलवान् केकय, सृञ्जय,पाञ्चाल, मत्स्य और सात्वत भी उसके साथ लड़ने के लिये टूटपड़े ॥४७॥ अर्जुनने बाण मारकर कौरवोंकी सेनाका संहार करना आरंभ करदिया तब निद्रा और अन्धकारके कारण (भी:) कौरवसेनाका नाश होनेलगा॥४८॥ हे महाराज ! द्रोण और आपके पुत्रोंने पाण्डवपक्षके योधाओंको रोकनेका बड़ा प्रयत्न किया परन्तु वे उनको आगे बढ़नेसे रोक न सके ॥४९॥

एकसौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५७ ॥ ॥

सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! पाण्डवोंकी सेनाको उभार खाती हुई देखकर दुर्योधनने समझा कि–हम अब इस सेनाको

अविसह्यञ्च मन्वानः कर्णं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥१॥ अयं स कालः सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल । त्रायस्व समरे कर्ण सर्वान् योधान्महारथान् ॥ २ ॥ पञ्चालैः कैकयैर्मत्स्यैः पाण्डवैश्च महारथैः । वृतान् समन्तात् संक्रुद्धैर्निश्वसद्भिरिवोरगैः ॥ ३ ॥ एते नदन्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः । शक्रोपमाश्च बहवः पञ्चालानां रथव्रजाः ॥४॥ कर्ण उवाच । परित्रातुमिह प्राप्तो यदि पार्थं पुरन्दरः । तमप्याशु पराजित्य ततो हन्तास्मि पाण्डवम् ॥ ५ ॥ सत्यं ते प्रतिजानामि समाश्वसिहि भारत । हन्तास्मि पाण्डुतनयान् पञ्चालांश्च समागतान् ॥ ६ ॥ जयन्ते प्रतिदास्यामि वासवस्येव पावकिः । प्रियं तव मया कार्यमिति जीवामि पार्थिव॥७

पीछेको न हटा सकेंगे, अतः उसने कर्णसे कहा कि–॥१॥ हे मित्रवत्सल ! अब अनीका समय आनलगा है, यह ही समय मित्रता दिखानेका है, अतः हे कर्ण ! अब तू युद्धमें मेरे सब योधाओंकी रक्षा कर ॥२॥ मेरे महारथी योधा, बड़े ही क्रोधमें भरेहुए और सर्पोंकी समान फुंकारे मारतेहुए पाञ्चाल, मत्स्य, केकय और महारथी पाण्डवोंसे घिरगए हैं, (देख ! देख !!) यह विजयशाली पाण्डव और पाञ्चालोंके बहुतसे महारथी हर्षमें आकर गर्जना कररहे हैं ॥ ३–४ ॥ दुर्योधनकी ऐसा बात सुनकर कर्ण बोला कि–इस लड़ाईमें यदि इन्द्र भी अर्जुनकी रक्षा करनेके लिये आवेगा तो भी मैं उसका शीघ्र ही पराजय करूँगा और पीछे अर्जुनका नाश करूँगा ॥ ५ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! तुम घबड़ाओ मत ! मैं तुम्हारे सामने सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि–मैं इकला ही इकट्ठेहुए सकल पाण्डव और पाञ्चाल राजाओंका नाश करडालूँगा ! ॥ ६ ॥ और अग्निने जैसे इन्द्रको विजय दिलवाई थी, तैसे ही मैं तुझको विजय दिलवाऊँगा, मैं तुम्हारा हित करनेके लिये ही जीवन धारण कररहा हूँ ॥ ७ ॥ सब

सर्वेषामेव पार्थानां फाल्गुनो बलवत्तरः। तस्यामोघां विमोक्ष्यामि शक्ति शक्रविनिर्मिताम् ॥ ८ ॥ तस्मिन् हते महेष्वासे भ्रातरस्तस्य मानद। तव वश्या भविष्यन्ति वनं यास्यन्ति वा पुनः ९ मयि जीवति कौरव्य विषादं मा कृथा क्वचित्। अहं जेष्यामि समरे सहितान् सर्वपाण्डवान् १० पञ्चालान् कैकयांश्चैव वृष्णींश्चापि समागतान्। बाणौघैः शकलीकृत्य तव दास्यामि मेदिनीम् ॥ ११ ॥ सञ्जय उवाच। एवं ब्रुवाणं कर्णन्तु कृपः शारद्वतोऽब्रवीत्। स्मयन्निव महाबाहुः सूतपुत्रमिदं वचः ॥ १२ ॥ शोभनं शोभनं कर्ण सनाथः कुरुपुङ्गवः। त्वया नाथेन राधेय वचसा यदि सिध्यति ॥ १३ ॥ बहुशः कथ्यते कर्ण कौरवस्य समीपतः। न तु ते विक्रमः कश्चिद्द दृश्यते फलमेव वा ॥ १४ ॥

पाण्डवोंमें अर्जुन बलवान् है, अतः मैं इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्ति उसके ही मारूँगा और उससे वह मरजायगा ॥८॥ और हे मानदेनेवाले राजन्! उस महाधनुषधारीकी मृत्यु होनेके पीछे उसके भाई या तो हमारे अधीन होजायँगे या वनको चले जावेंगे ॥९॥ कुरुवंशी राजन्! मैं जब तक जीरहा हूँ तब तक तू अपने मनमें कुछ भी खेद न कर, क्योंकि–मैं रणभूमिमें इकट्ठेहुए सब पाण्डवोंका पराजय भी करूँगा ॥ १० ॥ और रणभूमिमें इकट्ठेहुए पाञ्चाल, केकय और वृष्णि राजाओंके बाण मार उनके टुकड़े टुकड़े कर यह पृथिवी तुम्हारे अधीन करूँगा ॥ ११ ॥ सञ्जयने कहा कि–कर्ण इसप्रकार कहरहा था कि–इतनेमें ही महाभुज कृपाचार्यने हँसी करनेके ढङ्गसे सूतपुत्रसे कहा कि–१२ हे कर्ण! तूने बड़ा अच्छा विचार किया है, क्योंकि–तेरे बड़े बननेसे कुरुपुंगव दुर्योधन सनाथ हुआ है, परन्तु हे राधापुत्र! तेरे कहने मात्रसे ही काम बनजाय तो यह ठीक हो ॥१३॥ तू इस कौरवसेनाके सामने बहुत बकवाद किया करता है, परन्तु तेरा पराक्रम

समागमः पाण्डुसुतैर्दृष्टस्ते बहुशो युधि । सर्वत्र निर्जितश्चासि पाण्डवैः सूतनन्दन ॥ १५ ॥ ह्रियमाणे तदा कर्ण गन्धर्वैर्धृतराष्ट्रजे । तदायुध्यन्त सैन्यानि त्वमेकोऽग्रे पलायिथाः ॥१६॥ विराटनगरे चापि समेताः सर्वकौरवाः । पार्थेन निर्जिता युद्धे त्वञ्च कर्ण सहानुजः ॥ १७ ॥ एकस्याप्यसमर्थस्त्वं फाल्गुनस्य रणाजिरे । कथमुत्सहसे जेतुं सकृष्णान् सर्वपाण्डवान् ॥ १८ ॥ अब्रुवन् कर्ण युध्यस्व कत्थसे बहु सूतज । अनुक्त्वा विक्रमेद्यस्तु तद्वै सत्पुरुषव्रतम् ॥१९॥ गर्जित्वा सूतपुत्र त्वं शारदाभ्रमिवाफलम् । निष्फलो दृश्यसे कर्ण तच्च राजा न बुध्यते ॥ २० ॥ तावद् गर्जसि राधेय यावत् पार्थ न पश्यसि । आरात् पार्थ हि ते दृष्ट्वा दुर्लभं गर्जितं पुनः ॥ २१ ॥ त्वमनासाद्य तान् बाणान्

या उसका फल तो मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता॥१४॥ युद्धमें पाण्डवोंके साथ तेरा अनेकबार समागम हुआ है यह मैंने देखा है, परन्तु समागमके सब अवसरों तू पर पाण्डवोंसे हारा ही है १५ हे कर्ण! जब गन्धर्व धृतराष्ट्रके पुत्रोंको कैद करके लिये जाते थे, तब सेनाओंने तो युद्ध किया था, परन्तु तू तो वहाँसे पलाय नमः हो करगया था ॥ १६ ॥ हे कर्ण! विराट नगरमें सब कौरव इकट्ठे थे उस समय (अकेले) अर्जुनने युद्धमें कौरवोंको, तुझे और तेरे छोटे भाईको हरा दिया था ॥ १७ ॥ तुझमें तो रणमें अकेले अर्जुनको भी जीतनेकी शक्ति नहीं है, तो फिर तू कृष्णसहित सकल पाण्डवोंको जीतनेका हौंसला कैसे करता है? १८ अरे! तू बहुत बोलना छोड़दे और चुपचाप युद्ध कर, बिना कहे सुने युद्ध करना यह सत्पुरुषोंका व्रत है ॥१९॥ हे सूतपुत्र! शरदृतु के मेघकी गर्जना जैसे निष्फल होती है, तैसे ही तेरी गर्जना भी निकम्मी है, परंतु राजा इस बातको समझता नहीं॥२०॥ हे राधापुत्र! जब तक अर्जुन दिखाई नहीं देता है, तब तक ही तू गाजता है अर्जुन

फाल्गुनस्य विगर्जसि । पार्थसायकविद्धस्य दुर्लभं गर्जितं तव २२ बाहुभिः क्षत्रियाः शूरा वाग्भिः शूरा द्विजातयः । धनुषा फाल्गुनः शूरः कर्णः शूरो मनोरथैः ॥ २३ ॥ तोषितो येन रुद्रोऽपि कः पार्थं प्रतिघातयेत् । एवं स रुषितस्तेन तदा शारद्वतेन ह ॥ २४ ॥ कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः कृपं वाक्यमथाब्रवीत् । शूराः गर्जन्ति सततं प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २५ ॥ फलञ्चाशु प्रयच्छन्ति बीजमुप्तं क्षिताविव । दोषमत्र न पश्यामि शराणां रणमूर्द्धनि ॥ २६ ॥ तत्तद्विकत्थमानानां भारञ्चोद्वहतां युधि । यं भारं पुरुषो वोढुं मनसा हि व्यवस्यति ॥ २७ ॥ दैवमस्य ध्रुवं तत्र साहाय्यायोपपद्यते । व्यवसायद्वितीयोऽहं मनसा भारमुद्वहन् ॥ २८ ॥ हत्वा पाण्डु-

---

को देखनेके पीछे तेरा गर्जना दुर्लभ होजायगा ॥ २१ ॥ अर्जुनके बाणोंके प्रहारका अनुभव न होनेसे तू गर्ज रहा है अरे अर्जुनके बाणोंसे विंध जानेपर तेरा गर्जना कठिन होजायगा ॥ २२ ॥ क्षत्रिय बाहुशूर होता है, ब्राह्मण वाक्-शूर होता है, अर्जुन धनुषशूर है और कर्ण तो मनोरथशूर है ! ॥ २३ ॥ जिसने शिवको भी पराक्रम दिखा कर प्रसन्न किया है उस अर्जुनको कौन मार सकता है ? शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने इस प्रकार कह कर कर्णको बहुत ही कुपित किया ॥ २४ ॥ तब महायोधा कर्णने कृपाचार्यसे कहा कि-शूर वर्षा ऋतुके मेघकी समान सर्वदा गरजते रहते हैं ।२५। और ऋतुमें बोये हुए बीजकी समान शीघ्र ही फल देते हैं रणके मुहाने पर रणके भारको उठाने वाले-शूर बोलते हैं, इसमें मेरी समझमें कुछ दोष, नहीं है मनुष्य जिस भारको उठानेका मनमें विचार करके उसके लिये प्रयत्न करता है, दैव अवश्य ही उसकी सहायता करता है, मैं व्यवसायको अपना साथी बना अन्तःकरणसे रणके भारको उठाऊँगा और युद्धमें कृष्ण तथा सात्यकिसहित पाण्डुपुत्रोंका नाश करनेके

सुतानाजौ सकृष्णान् सहसात्वतान् । गर्जामि यद्यहं विप्र तव किन्तत्र नश्यति ॥ २९ ॥ वृथा शूरा न गर्जन्ति शारदा इव तोयदाः । सामर्थ्यमात्मनो ज्ञात्वा ततो गर्जन्ति पण्डिताः ॥ ३० ॥ सोऽहमद्य रणे यत्तौ सहितौ कृष्णपाण्डवौ । उत्सहे मनसा जेतुं ततो गर्जामि गौतम ॥ ३१ ॥ पश्य त्वं गर्जितस्यास्य फलं मे विप्र सानुगान् । हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सकृष्णान सह सात्वतान् । दुर्योधनाय दास्यामि पृथिवीं हतकण्टकाम् । कृप उवाच । मनोरथप्रलापो मे न ग्राह्यस्तव सूतज ॥ ३३ ॥ सदा क्षिपति वै कृष्णौ धर्मराजञ्च पाण्डवम् । ध्रुवस्तत्र जयः कर्ण यत्र युद्धविशारदौ ॥३४॥ देवगन्धर्वयक्षाणां मनुष्योरगराक्षसाम् । दंशितानामपि रणेष्वजेयौ कृष्णपाण्डवौ ३५

पीछे (जय) गर्जना करूँगा ? तो हे विप्र ! इसमें तुम्हारा क्या विगड़ता है ? ॥२६–२९॥ शूर शरद् ऋतुके मेघकी समान वृथा गर्जना नहीं करते हैं; परन्तु अपनी सामर्थ्यको पहिलेसे ही जान कर पीछेसे गर्जते हैं ॥ ३९ ॥ हे गौतमवंशी कृप! मैं आज रणमें तयार खड़े हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनका पराजय करनेका मनमें उत्साह करता हूँ और इस लिये ही गर्जता हूँ ॥ ३१ ॥ हे विप्र ! तुम मेरी इस गर्जनाके फलको देखो ! मैं रणमें कृष्ण और सात्यकिसहित पाण्डवोंको मार कर यह निष्कण्टक पृथ्वी दुर्योधनको सौंपूँगा ॥ ३२ ॥ कृपाचार्यने कहा कि–अरे कर्ण ! यह तेरी वाईकी समान वकवाद किसी कामकी नहीं है । तू सदा कृष्णकी तथा पाण्डुपुत्र धर्मराजकी निन्दा किया करता है ॥३३॥ युद्धकुशल वे दोनों जने जहाँ पर हैं, तहाँ ही विजय है, कवचधारी श्रीकृष्णका तथा अर्जुनका संग्राममें देव, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य. उरग और राक्षस भी पराजय करनेकी शक्ति नहीं रखते; तो फिर दूसरेकी तो वात ही क्या ! ॥ ३४–३५ ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिर

ब्रह्मण्यः सत्यवाग्दान्तो गुरुदैवतपूजकः । नित्यं धर्मरतश्चैव कृतास्त्रश्च विशेषतः ॥३६॥ धृतिमांश्च कृतज्ञश्च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । भ्रातरश्चास्य बलिनः सर्वास्त्रेषु कृतश्रमाः ॥३७॥ गुरुवृत्तिरताः प्राज्ञा धर्मनित्या यशस्विनः । सम्बन्धिनश्चेन्द्रवीर्याः स्वनुरक्ताः प्रहारिणः ॥ ३८ ॥ धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः । चन्द्रसेनो रुद्रसेनः कीर्त्तिधर्मा ध्रुवोऽधरः॥३९॥वसुचन्द्रो दामचन्द्रः सिंहचन्द्रः सुतेजनः । द्रपदस्य तथा पुत्रा द्रुपदश्च महास्त्रवित् ४० येषामर्थाय संयत्तो मत्स्यराजः सहानुजः । शतानीकः सूर्यदत्तः श्रुतानीको श्रुतध्वजः ॥ ४१ ॥ बलानीको जयानीको जयाश्वो रथवाहनः । चन्द्रोदयः समरथो विराटभ्रातरः शुभाः ॥ ४२ ॥ यमौ च द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः । येषामर्थाय युध्यन्ते न तेषां विद्यते क्षयः ॥ ४३ ॥ एते चान्ये च बहवो गणाः पाण्डुसुतस्य

ब्राह्मणोंके रक्षक, सत्यवादी, दान्त, गुरु और देवताओंके पूजक हैं, धर्मके ऊपर सदा प्रेम रखते हैं, प्रायः सब ही अस्त्रोंको जानते हैं, धीर और कृतज्ञ हैं, उनके भाई भी बलवान् हैं और सब प्रकारकी अस्त्रविद्याओंमें कुशल, बुद्धिमान्, नित्य धर्मात्मा, यशस्वी, बन्धु वाले, इन्द्रकी समान पराक्रमी और बड़ा प्रेम करने वाले योद्धा हैं; उनकी सहायता करनेके लिये धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, दुर्मुखका पुत्र, जनमेजय, चन्द्रसेन, रुद्रसेन, कीर्तिधर्मा, ध्रुव, अधर, वसुचन्द्र, दामचन्द्र, सिंहचन्द्र, सुतेजन, द्रपदराजके पुत्र, तथा अस्त्रोंके बड़े भारी विद्वान् राजा द्रपद आदि सब डटे खड़े हैं॥३६–४०॥ उनके काममें सहायता करनेके लिये छोटे भाई सहित राजा मत्स्य, शतानीक, सूर्यदत्त, श्रुतानीक, श्रुतध्वज, बलानीक, जयानीक जयाश्व, रथवाहन, चंद्रोदय, समरथ, राजा विराटके सद्गुणी भाई, नकुल, सहदेव द्रौपदीके पुत्र, राक्षस घटोत्कच आदि आये हैं और वे युद्ध कररहे हैं, अतः पाण्डवोंका कभी भी नाश नहीं

वै । कामं खलु जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४४ ॥ सयक्षराक्षसगणं सभूतभुजगद्विपम् । निःशेषमस्त्रवीर्येण कुर्वाते भीमफाल्गुनौ ॥ ४५ ॥ युधिष्ठिरश्च पृथिवीं निर्दहेद्घोरचक्षुषा । अप्रमेयवलः शौरिर्येषामर्थे च दंशितः ॥ ४६ ॥ कथं तान् संयुगे कर्ण जेतुमुत्सहसे परान् । महानपनयस्त्वेषस्तव नित्यं हि सूतज ४७ यस्त्वमुत्ससे योद्धुं समरे शौरिणा सह । सञ्जय उवाच । एवमुक्तस्तु राधेयः प्रहसन् भरतर्षभ ॥ ४८ ॥ अब्रवीच्च तदा कर्णो गुरुं शारद्वतं कृपम् । सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् पाण्डवान् प्रति यद्वचः ॥ ४९ ॥ एते चान्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतेषु वै । अजेयाश्च रणे पार्था देवैरपि सवासवैः ॥५०॥ सदैत्ययक्षगन्धर्वैः

होसकता ॥ ४१–४३ ॥ ये तथा और वहुतसे पाण्डुपुत्रके अनुचर सहायताके लिये आये हैं, भीम तथा अर्जुन चाहैं तो देव असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, भूत, सर्प और हाथियोंसहित सब जगत्का अस्त्रके वलसे ही सम्पूर्ण रीतिसे संहार करडालें ४४।४५ और राजा युधिष्ठिर जो चाहैं तो केवल अपनी घोर दृष्टिसे ही पृथ्वीको वालकर भस्म करडालें, हे कर्ण ! जिनके लिये अप्रमेय वलवाले श्रीकृष्ण कवच पहरकर खड़े हैं, ऐसे पाण्डवोंको युद्धमें जीतनेका तू कैसे हौसला करता है, हे सूतपुत्र ! तू सदा युद्धमें श्रीकृष्णके साथ लड़नेका उत्साह करता है, तो यह तेरी सदाकी वडीभारी भूल है, सञ्जयने कहा कि–हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! इसप्रकार कृपाचार्यने कर्णसे कहा, तव राधापुत्र कर्ण हँसा और शरद्वान्के पुत्र गुरु कृपाचार्यसे कहने लगा, कि–"हे ब्रह्मन् ! तुमने पाण्डवोंके विषयमें जो कुछ कहा वह सत्य है ॥ ४६–४९ ॥ तुमने जो बातें वताईं, उनके अतिरिक्त और भी वहुतसे गुण पाण्डवोंमें हैं, और दैत्य, गन्धर्व, पिशाच, सर्प राक्षस और इन्द्रसहित देवता भी रणमें पाण्डवोंका पराजय

पिशाचोरगराक्षसैः । तथापि पार्थान् जेष्यामि शक्त्या वासवदत्तया ॥५१॥ ममाप्यमोघा दत्तेयं शक्तिः शक्रेण वै द्विज । एतया निहनिष्यामि सव्यसाचिनमाहवे ॥ ५२ ॥ हते तु पाण्डवे कृष्णे भ्रातरश्चास्य सोदराः । अनर्जुना न शक्ष्यन्ति महीं भोक्तुं कथञ्चन ॥ ५३ ॥ तेषु सर्वेषु नष्टेषु पृथिवीयं ससागरा । अयत्नात् कौरवेन्द्रस्य वशे स्थास्यति गौतम ॥ ५४ ॥ सुनीतैरिह सर्वार्था सिध्यन्ते नात्र संशयः । एतमर्थमहं ज्ञात्वा ततो गर्जामि गौतम ॥ ५५ ॥ त्वन्तु वृद्धश्च विप्रश्च अशक्तश्चापि संयुगे । कृतस्नेहश्च पार्थेषु मोहान्मामवमन्यसे ॥ ५६ ॥ यद्येवं वक्ष्यसे भूयो ममाप्रियमिह द्विज । ततस्ते खड्गमुद्यम्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते ५७ यच्चापि पाण्डवान् विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे । भीषयन् सर्व-

---

नहीं करसकते (यह भी मैं जानता हूँ) तो भी मुझे इन्द्रने जो शक्ति दी है, उस शक्तिसे मैं पाण्डवोंका पराजय करूँगा, हे ब्रह्मन् ! मुझे इन्द्रने अमोघ शक्ति दी है, उस शक्तिसे मैं रणमें अर्जुनको मारडालूँगा ॥ ५०-५२ ॥ और अर्जुनका मरण होनेके पीछे अर्जुनके भाई, अर्जुनके विना किसी प्रकारभी पृथ्वी पर राज्य नहीं कर सकेंगे ॥ ५३ ॥ उन सबोंका नाश होनेके पीछे समुद्रपर्यन्तकी समस्त पृथ्वी कौरवोंके हाथमें आजावेगी५४ हे गौतम ! इस संसारमें सब कार्य उत्तम प्रकारकी युक्तियोंसे ही सिद्ध होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है, और मैं भी इस बातको अच्छी तरह समझकर ही गरजता हूँ ॥ ५५ ॥ और तुम्हारे लिए कहूँ तो तुम तो जन्मसे ही ब्राह्मण हो, अवस्थामें वृद्ध हो, युद्ध करनेमें असमर्थ हो और पाण्डवोंके ऊपर प्रेम रखते हो, इस मोहके कारण ही तुम मेरा अपमान करते हो ॥ ५६ ॥ परन्तु देख ओ ब्राह्मण ! अबसे आगेको तू जो मेरा इसप्रकार अपमान करेगा तो मैं तेरी जीभको तलवारसे काट लूँगा ॥५७॥

सैन्यानि कौरवेयाणि दुर्मते ॥ ५८ ॥ अत्रापि शृणु मे वाक्यं यथावद् ब्रुवतो द्विज। दुर्योधनश्च द्रोणश्च शकुनिर्दुर्मुखो जयः ॥५९॥ दुःशासनो वृषसेनो मद्रराजस्त्वमेव च । सोमदत्तश्च भूरिश्च तथा द्रौणिर्विविंशतिः ॥ ६० ॥ तिष्ठेयुर्दंशिता यत्र सर्वे युद्धविशारदाः । जयेदेतान्नरः को हि शक्रतुल्यबलोऽप्यरिः ॥ ६१ ॥ शूराश्च हि कृतास्त्राश्च बलिनः स्वर्गलिप्सवः । धर्मज्ञा युद्धकुशला हन्युर्युद्धे सुरानपि ॥ ६२॥ एते स्थास्यन्ति संग्रामे पाण्डवानां वधार्थिनः । जयमाकांक्षमाणा वै कौरवेयस्य दंशिताः ॥६३॥ दैवायत्तमहं मन्ये जयं सुबलिनामपि । यत्र भीष्मो महाबाहुः शेते शरशताचितः ।६४। विकर्णश्चित्रसेनश्च बाह्लीकश्च जयद्रथः । भूरिश्रवा जयश्चैव

अरे दुर्बुद्धि ! ओ विप्र ! तू युद्धमें पाण्डवोंकी स्तुति करना चाहता है और कौरवोंकी सब सेनाको भयभीत करना चाहता है, परन्तु इस विषयमें मैं तुझसे सत्य बात कहता हूँ सुन ! दुर्योधन, द्रोण, शकुनि, दुर्मुख, दुःशासन, वृषसेन, मद्रराज, सोमदत्त, भूरी, अश्वत्थामा, विविंशति ये सब युद्धकुशल योधा कवच धारण कर जहाँ खड़े होजाँय, तहाँ इन्द्रकी समान भी बलवान् कौनसा पुरुष इनका पराजय करनेकी शक्ति रखता है ५८-६१ रे ! अपने शूर, अस्त्रनिपुण, बलवान्, स्वर्गको पानेकी उत्कण्ठा वाले, रणके धर्मको जाननेवाले और युद्धकुशल योधा रणमें देवताओंका भी नाश करडालें ऐसे हैं ॥६२॥ वे योधा शरीर पर कवच धारण करके, दुर्योधनको विजय दिलानेकी इच्छासे पाण्डवोंका वध करनेके लिये रणमें खड़े रहेंगे ॥ ६३ ॥ परंतु विजय होना न होना तो प्रारब्धके अधीन है, मैं तो रणमें बलवान्की विजय भी दैवाधीन ही मानता हूँ, क्योंकि-जहाँ पर महाभुज भीष्म, सैंकड़ों बाणोंसे घायल होकर अभी रणमें पड़े हैं ६४ विकर्ण, चित्रसेन, बाल्हीक, जयद्रथ, भूरिश्रवा, जय, जलसंध,

जलसन्धः सुदक्षिणः ॥ ६५ ॥ शलश्च रथिनां श्रेष्ठो भगदत्तश्च वीर्यवान् । एते चान्ये च बहवो देवैरपि च दुर्जयाः ॥६६॥ निहता समरे शूराः पाण्डवैर्बलवत्तराः । किमन्यद्दैवसंयोगान्मन्यसे पुरुषाधम ॥६७॥ यश्चैतान् स्तौषि सततं दुर्योधनरिपून् द्विज । तेषामपि हताः शूरा शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६८ ॥ क्षीयन्ते सर्वसैन्यानि कुरूणां पाण्डवैः सह । प्रभावं नात्र पश्यामि पाण्डवानां कथञ्चन ॥६९॥ यस्तान् बलवतो नित्यं मन्यसे हि द्विजाधम । यतिष्येऽहं परं शक्त्या योद्धुं तैः सह संयुगे ॥ ७० ॥ दुर्योधनहितार्थाय जयो दैवे प्रतिष्ठितः ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि कृपकर्णवाक्ये अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

सञ्जय उवाच । तथा परुषितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मातुलम् ।

सुदक्षिण, महारथी शल, पराक्रमी भगदत्त आदि राजे तथा दूसरे राजे, कि-जिनको देवता भी कठिनतासे जीत सकते थे ६५-६६ उन महाबलवान् और शूर राजाओंका भी पाण्डवोंने संहार कर डाला है, तो ओ पुरुषाधम ! इसमें तू दैवयोगके सिवाय और क्या समझता है ? ।६७। ओ ब्राह्मण ! तू वारंवार दुर्योधनके शत्रुओंकी ही प्रशंसा करता है, परंतु उनके भी तो सैकड़ों और सहस्रों योधा मारे गए हैं ॥ ६८ ॥ मैं तो इस युद्धमें पाण्डवोंका किसी प्रकारका भी प्रभाव नहीं देखता, क्योंकि-कौरव और पाण्डव दोनोंकी सेनाओंका एकसा ही संहार हुआ है।६९।तो भी हे अधम ब्राह्मण ! तू हमेशा उनको बलवान् मानता है, अतः मैं भी दुर्योधनका हित करनेके लिये यथाशक्ति पाण्डवोंके सामने लड़नेका उद्योग करूँगा और विजय तो प्रारब्धाधीन है ॥७०॥ एकसौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! कर्णने कठोर वचन कहकर मेरे मामाका अपमान किया, यह देखकर अश्वत्थामा तलवार

खड्गमुद्यम्य वेगेन द्रौणिरभ्यपतद् द्रुतम् ॥१॥ ततः परमसंक्रुद्धः सिंहो मत्तमिव द्विपम् । प्रेक्षतः कुरुराजस्य द्रौणिः कर्णं समभ्ययात् ॥ २ ॥ अश्वत्थामोवाच । यदर्जुनगुणांस्तथ्यान् कीर्तयानं नराधम । शूरं द्वेषात् सुदुर्बुद्धे त्वं भर्त्सयसि मातुलम् ॥ ३ ॥ विकत्थमानः शौर्येण सर्वलोकधनुर्धरम् । दर्पोत्सेधगृहीतोऽद्य न कञ्चिद्गणयन्मृधे ॥ ४ ॥ क्व ते वीर्यं क्व चास्त्राणि यस्त्वां निर्जित्य संयुगे । गाण्डीवधन्वा हतवान् प्रेक्षतस्ते जयद्रथम् ॥५॥ येन साक्षान्महादेवः समरे योधितः पुरा । तमिच्छसि वृथा जेतुं सूताधम मनोरथैः ॥६॥ यं हि कृष्णेन सहितं सर्वशस्त्रभृतां वरम् । जेतुं न शक्ताः सहिताः सेन्द्रा अपि सुरासुराः ॥ ७ ॥ लोकैक-

---

उठाकर वेगके साथ कर्णके ऊपर झपटा ॥ १ ॥ और कुरुराज दुर्योधनके सामने ही, बड़ेभारी क्रोधमें भर, सिंह जैसे मदमत्त हाथीसे कहे तैसे अश्वत्थामा कर्णसे कहनेलगा कि–॥ २ ॥ अरे ओ नराधम ! अरे ओ दुष्टबुद्धि कर्ण ! मेरे शूर मामा अर्जुनके गुणों की सच्ची ही प्रशंसा कररहे हैं परन्तु तू (अर्जुनके ऊपर) द्वेष रखनेके कारण उनका तिरस्कार करता है ॥ ३ ॥ आज तू बड़ेभारा घमण्डमें भर शूरताके कारण सब लोकोंमें इक्कड़ धनुषधारी नामसे प्रसिद्ध अर्जुनकी निन्दा करता है और किसीको भी (अपनी समान) नहीं गिनता है ॥ ४ ॥ परन्तु गाण्डीवधनुषधारी अर्जुनने जब तेरा पराजय कर, तेरे सामने ही जयद्रथको मारडाला, उस समय तेरा पराक्रम कहाँ गया था, और तेरे अस्त्र कहाँ गये थे ? ॥ ५ ॥ ओ अधम कर्ण ! जिसने पहले युद्धमें साक्षात् महादेवके साथ युद्ध किया है, उसको पराजय करनेका तू वृथा ही मनोरथ करता है ॥६॥ इन्द्र, देवता और दैत्य इकट्ठे होकर भी, श्रीकृष्णके साथमें रहते हुए सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनका पराजय नहीं करसकते ॥ ७ ॥ तो फिर हे दुष्टबुद्धिवाले

वीरमजितमर्जुनं सूत संयुगे। किम्पुनस्त्वं सुदुर्बुद्धे सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥ ८ ॥ कर्ण पश्य सुदुर्बुद्धे तिष्ठेदानीं नराधम । एष तेऽद्य शिरः कायादुद्धरामि सुदुर्मते ॥ ९ ॥ सञ्जय उवाच । तमुत्पतन्तु वेगेन राजा दुर्योधनः स्वयम् । न्यवारयन्महातेजाः कृपश्च द्विपदाम्वरः ॥ १० ॥ कर्ण उवाच । शूरोऽयं समरश्लाघी दुर्मतिश्च द्विजाधमः । आसादयतु मद्वीर्यं मुञ्चेमं कुरुसत्तम ॥ ११ ॥ अश्वत्थामोवाच । तवैतत् क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते । दर्पमुत्थितमेतत्ते फाल्गुनो नाशयिष्यति ॥१२॥ दुर्योधन उवाच । अश्वत्थामन् प्रसीदस्व क्षन्तुमर्हसि मानद । कोपः खलु न कर्त्तव्यः सूतपुत्रं कथञ्चन ॥ १३ ॥ त्वयि कर्णे कृपे द्रोणे मद्रराजे च

सूत ! संसारमें वीरतामें इक्कड़ गिने जातेहुए अजित अर्जुनको तू इन प्राकृत (साधारण) योधाओंके साथमें रहकर युद्धमें कैसे जीत सकेगा ॥ ८ ॥ ओ दुर्बुद्धि नराधम कर्ण ! खड़ा रह और देख कि—अभी मैं स्वयं तेरे धड़ परसे तेरे मस्तकको उतार लेता हूँ ॥ ९ ॥ सञ्जयने कहा, कि—हे राजन् ! फिर अश्वत्थामा वेगसे कर्णकी ओर धँसा तब तुरन्त ही स्वयं राजा दुर्योधनने और महातेजस्वी कृपाचार्यने उसको पकड़ लिया ॥ १० ॥ कर्ण बोला हे राजन् ! यह दुर्बुद्धि द्विजोंमें नीच शूर ब्राह्मण संग्रामकी हामी भरनेवाला है, इसको तुम छोड़ दो, भले ही यह आज मेरे पराक्रमका स्वाद चख ले ॥ ११ ॥ अश्वत्थामाने कहा, कि"—अरे दुर्बुद्धि कर्ण ! हम तो तेरे अपराधको सहन करते हैं, परन्तु अर्जुन तेरे बढ़ेहुए गर्वको उतारेगा" ॥ १२ ॥ दुर्योधनने कहा, कि—हे मान देनेवाले अश्वत्थामा! क्रोधको दूर करके प्रसन्न हो ! आपको तो अपराधकी क्षमा देनी ही उचित है ! कर्णके ऊपर किसीप्रकार भी कोप करना आपको उचित नहीं है ॥१३॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मैंने तुम्हारे, कर्णके, कृपाचार्यके, द्रोणके, सुबलपुत्रके तथा मद्र-

सौबले। महत्कार्यं समासक्तं प्रसीद द्विजसत्तम ॥ १४ ॥ एते ह्यभिमुखाः सर्वे राधेयेन युयुत्सवः। आयान्ति पाण्डवाः ब्रह्मन्नाह्वयन्तः समन्ततः ॥ १५ ॥ सञ्जय उवाच। प्रसाद्यमानस्तु ततो राज्ञा द्रौणिर्महामनाः। प्रससाद महाराज क्रोधवेगसमन्वितः १६ ततः कृप उवाचेदमाचार्यः सुमहामनाः। सौम्यस्वभावाद्राजेन्द्र क्षिप्रमागतमार्दवः ॥ १७ ॥ कृप उवाच। तवैतत् क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते। दर्पमुत्सिक्तमेतत्ते फाल्गुनो नाशयिष्यति १८ सञ्जय उवाच। ततस्ते पाण्डवा राजन् पञ्चालाश्च यशस्विनः। आजग्मुः सहिताः कर्णं तर्जयन्तः समन्ततः ॥ १९ ॥ कर्णोऽपि रथिनां श्रेष्ठश्चापमुद्यम्य वीर्यवान्। कौरवाग्र्यैः परिवृतः शक्रो देवगणैरिव ॥ २० ॥ पर्यतिष्ठत तेजस्वी स्वबाहुबलमाश्रितः। ततः

राजके ऊपर ही इस महाकार्यका भार रक्खा है, अतः तुम मेलसे रहो! ॥ १४ हे द्विजश्रेष्ठ! ये सब पाण्डव लड़नेकी इच्छासे श्रीकृष्णको साथमें लेकर राधाके पुत्र कर्णके साथ लड़नेको चढ़े चले आते हैं और चारों ओरसे हमें बुलारहे हैं ॥१५॥ सञ्जयने कहा कि-इसप्रकार दुर्योधनने अश्वत्थामाको मीठी२ बातें कहकर प्रसन्न किया, तब क्रोधमें भराहुआ अश्वत्थामा शान्त होगया १६ और हे राजन्! बड़े उदार मनवाले कृपाचार्य भी शान्तस्वभाव होनेके कारण तुरन्त ही कोमल होकर कहनेलगे ॥ १७ ॥ कृपाचार्यने कहा कि-अरे दुर्बुद्धि कर्ण! हम तो तेरे अपराधको सहे लेते हैं, परन्तु अर्जुन तेरे बढ़ेहुए घमण्डका नाश करेगा! ॥१८॥ सञ्जयने कहा कि-हे राजन्! (इसप्रकार झगड़ा हो रहा था कि-) यशस्वी पाण्डव और पाञ्चाल इकट्ठे होकर कर्णका तिरस्कार करतेहुए उसके ऊपर टूटपड़े ॥ १९ ॥ तब पराक्रमी, तेजस्वी और महारथियोंमें श्रेष्ठ कर्ण भी धनुषको लेकर देवताओंसे घिरेहुए इन्द्रकी समान, श्रेष्ठ २ कौरव योधाओंके साथमें

प्रववृते युद्धं कर्णस्य सह पाण्डवैः ॥ २१ ॥ भीषणं सुमहाराज सिंहनादविराजितम् । ततस्ते पाण्डवा राजन् पञ्चालाश्च यशस्विनः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा कर्णं महाबाहुमुच्चैः शब्दमथानदन् । अयं कर्णः कुतः कर्णस्तिष्ठ कर्ण महारणे ॥ २३ ॥ युध्यस्व सहितोऽस्माभिर्दुरात्मन् पुरुषाधम । अन्ये तु दृष्ट्वा राधेयं क्रोधदीप्तेक्षणाब्रुवन् ॥ २४ ॥ हन्यतामयमुत्सिक्तः सूतपुत्रोऽल्पचेतनः । सर्वैः पार्थिवशार्दूलैर्नानेनार्थोऽस्ति जीवता ॥ २५ ॥ अत्यन्तवैरी पार्थानां सततं पापपूरुषः । एष मूलं ह्यनर्थानां दुर्योधनमते स्थितः ॥ २६ ॥ हतैनमिति जल्पन्तः क्षत्रियाः समुपाद्रवन् । महता शरवर्षेण छादयन्तो महारथाः ॥ २७ ॥ वधार्थं सूतपुत्रस्य पांडवेन चोदिताः । तांस्तु सर्वांस्तथा दृष्ट्वा धावमानान्महाबलान् २८

ले, अपने भुजबलके भरोसे पर, रणके मुहाने पर डट गया, तब हे महाराज ! कर्णका पाण्डवोंके साथ महाभङ्कर युद्ध होनेलगा, वह सिंहकी दहाड़ोंकी समान योधाओंकी गर्जनाओंसे शोभा पा रहा था, हे राजन् ! यशस्वी पाञ्चाल और पाण्डव राजे महाभुज कर्णको देखकर गर्जना कर जोरसे बोल उठे, कि—"कर्ण यह है ! कर्ण कहाँ है ! अरे कर्ण ! खड़ा रह ! खड़ा रह !! अरे ओ पुरुषाधम ! ओ दुरात्मा ! हमारे साथ युद्ध कर" दूसरे राजे भी कर्णको देखकर लाल लाल आँखे करके बोल उठे कि—"ओछे मनवाला सूतपुत्र कर्ण यह है, सब राजसिंह इकट्ठे होकर इसको नष्ट करडालो, इसके जीवित रहनेसे कुछ लाभ नहीं है ॥ २०–२६ ॥ यह पाण्डवोंका कट्टर वैरी है, सदा पापी पुरुष है, अनर्थोंका मूल है और दुर्योधनके मतके अनुसार चलता है ॥२७॥ अतः इसको मारडालो ! मारडालो !!" इसप्रकार कहते हुए महारथी क्षत्रिय पाण्डवोंकी प्रेरणासे कर्णको मारनेके लिये उसके ऊपर टूट पड़े तथा चारों ओरसे बाण

न विव्यथे सूतपुत्रो न च त्रासमगच्छत । दृष्ट्वा संहारकल्पं तमुद्धूतं सैन्यसागरम् ॥ २९ ॥ पिप्रीषुस्तव पुत्राणां संग्रामेष्वपराजितः । सायकौघेन बलवान् क्षिप्रकारी महाबलः ॥ ३० ॥ वारयामास तत् सैन्यं समन्ताद्भरतर्षभ । ततस्तु शरवर्षेण पार्थिवाः समवारयन् ॥ ३१ ॥ धनूंषि ते विधुन्वानाः शतशोऽथ सहस्रशः । अयोधयन्त राधेयं शक्रं दैत्या यथा पुरा ॥ ३२ ॥ शरवर्षन्तु तत् कर्णः पार्थिवैः समुदीरितम् । शरवर्षेण महता समन्ताद्व्यकिरत्प्रभो ॥ ३३ ॥ तद्युद्धमभवत्तेषां कृतप्रतिकृतैषिणाम् । यथा देवासुरे युद्धे शक्रस्य सह दानवैः ॥ ३४ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य लाघवम् । यदेनं सर्वतो यत्ता नाप्नुवन्ति परे युधि ३५

बरसाकर दिशाओंको ढक दिया, सूतपुत्र कर्ण सब महारथियों को अपने ऊपर धँसकर आते देखकर मनमें खिन्न नहीं हुआ और भयभीत भी नहीं हुआ, उसने धैर्य धरकर पहिले तो उछलते हुए सेनारूपी महासागरको देखा ॥ २८ ॥ २९ ॥ और पीछे तुम्हारे पुत्रोंका हित करनेवाले, संग्राममें विजय करनेवाले बड़े फुर्तीले कर्णने बाणोंकी वृष्टिकर चारों ओर बढती हुई शत्रुसेना को आगे बढनेसे रोकदिया ॥ ३०–३१ ॥ इससमय दैत्य जैसे इन्द्रके साथमें लड़ें, तैसे ही सैंकडों सहस्रों और राजे धनुषोंको उछालते २ कर्णके साथ लडनेलगे ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! कर्णने बाणोंकी बडीभारी वर्षाकर (पाण्डवपक्षके) राजाओंकी चारों ओरसे की हुई बाणोंकी वर्षाका नाश करडाला ॥ ३३ ॥ राजे एक दूसरेका पराजय करनेकी इच्छासे (वेगसे) लडनेलगे, उनका युद्ध देवासुर नामक युद्धमें इन्द्र तथा देवताओंके बीचमें हुए युद्ध की समान तुमुलरीतिसे होनेलगा ॥ ३४ ॥ हम तो युद्धमें सूतपुत्र की अति अद्भुत चपलताको देखते ही रहगए, इस महायुद्धमें सब राजे इकट्ठे होकर भी अकेले कर्णको वशमें न करसके ॥ ३५ ॥

निवार्य च शरौघांस्तान् पार्थिवानां महारथः। युगेष्वीषासु छत्रेषु रथेषु च हयेषु च ॥ ३६ ॥ आत्मनामाङ्कितान् घोरान् राधेयः प्राहिणोच्छरान्। ततस्ते व्याकुलीभूता राजानः कर्णपीडिताः ३७ वभ्रमुस्तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव। हयानां वध्यमानानां गजानां रथिनां तथा ॥ ३८ ॥ तत्र तत्राभ्यपेक्षाम संघान् कर्णेन ताडितान्। शिरोभिः पतितै राजन् वाहुभिश्च समन्ततः ॥ ३९ ॥ आस्तीर्णा वसुधा सर्वा शूराणामनिवर्तिनाम्। हतैश्च हन्यमानैश्च निष्टनद्भिश्च सर्वशः॥४०॥ वभूवायोधनं रौद्रं वैवस्वतपुरोपमम्। दुर्योधनस्ततो राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ४१ ॥ अश्वत्थामानमासाद्य ततो वाक्यमुवाच ह। युध्यतेऽसौ रणे कर्णो दंशितः सर्वपार्थिवैः ॥ ४२ ॥ पश्यैतां द्रवतीं सेनां कर्णसायकपीडिताम्।

महारथी कर्ण राजाओंके वाणोंको हटाकर, अपने नाम वाले वाण उनके रथोंकी ईषा, जुए, छत्र, ध्वजा और घोड़ोंपर वरावर वरसाये ही जाता था, उसके शीघ्रतासे आते हुए वाणोंकी मारसे राजे पीडा पाकर व्याकुल होगए ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ और शीतसे पीडा पाती हुई गौओंकी समान, इधर उधर भागने लगे, हाथी, घुड़सवार और रथी भी कर्णके वाणोंके प्रहारसे घवड़ा कर टेढे सीधे भागतेहुए दीखनेलगे, सामने आकर लड़नेवाले शूरोंके मस्तकोंसे और भुजाओंसे पृथ्वी ढक गई थी, मारे गए और मारे जातेहुए तथा चीखते हुए योधाओंसे रणभूमि यमपुरीकी समान भयङ्कर प्रतीत होती थी राजा दुर्योधन कर्णके उस समय के पराक्रमको देखकर अश्वत्थामाके पास गया और उससे कहने लगा कि-"यह कर्ण सब राजाओंसे रक्षित होकर रणमें लड़ रहा है, इसको तुम देखो ॥ ३८-४२ ॥ स्वामी कार्त्तिकेयके वाणोंसे जैसे असुरोंकी सेना भाग जाती है, तैसे ही कर्णके वाणोंकी मारसे पीडा पाकर पाण्डवोंकी सेना रणमेंसे भाग

कार्त्तिकेयेन विध्वस्तामासुरीं पृतनामिव ॥४३॥ दृष्ट्वेमां निर्जितां सेनां रणे कर्णेन धीमता । अभियात्येष बीभत्सुः सूतपुत्रजिघांसया ॥४४॥ तद्यथा पश्यमानानां सूतपुत्रं महारथम् । न हन्यात् पाण्डवः संख्ये तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ४५ ॥ ततो द्रौणिः कृपः शल्यो हार्दिक्यश्च महारथः । प्रत्युद्ययुस्तदा पार्थं सूतपुत्रपरीप्सया ॥ ४६ ॥ आयान्तं वीक्ष्य कौन्तेयं शक्रं दैत्यचमूमिव । बीभत्सुरपि राजेन्द्र पञ्चालैरभिसंवृतः ॥ ४७ ॥ प्रत्युद्ययौ तदा कर्णं यथा वृत्रं पुरन्दरः । धृतराष्ट्र उवाच । संरब्धं फाल्गुनं दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ॥ ४८ ॥ योऽस्पर्द्धत च पार्थेन नित्यमेव महारथः ॥ ४९ ॥ आशंसते च बीभत्सुमवजेतुं सुदक्षिणः ।

रही है, इसकी ओर तुम देखो ! ॥४३॥ बुद्धिमान् कर्णने रणमें मेरी सेनाका पराजय किया यह देखकर अर्जुन, कर्णको मारनेकी इच्छासे उसके ऊपर चढा चला आता है॥४४॥ अतः अर्जुन हमारे सामने सूतपुत्र महारथी कर्णको न मारसके, ऐसी युक्ति करो" ॥ ४५ ॥ दुर्योधनकी बात सुनकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य और महारथी हार्दिक्य आदि योधा, इन्द्र जैसे दैत्यसेनाके ऊपर चढाई करे तैसे अर्जुनको चढकर आते देखकर, कर्णकी रक्षा करनेके लिये अर्जुनकी ओर बढ़े ॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्र ! इन्द्रने जैसे वृत्रासुरके ऊपर चढाई की थी तैसे ही अर्जुन भी पाञ्चाल राजाओंसे घिरकर कर्णके ऊपर चढा था ॥ ४७ ॥ धृतराष्ट्रने बूझा कि–हे सञ्जय ! क्रोधमें भरेहुए और प्रलयकी समान भयङ्कर प्रतीत होते हुए अर्जुनको देखकर जो महारथी कर्ण सदा अर्जुनसे स्पर्धा करता है और जो अच्छी दक्षिणा देनेवाला कर्ण नित्य ही अर्जुनको जीतनेकी इच्छा रखता है, उसने सदाके वैरी अर्जुनको एकाएकी अपने ऊपर चढकर आते देखकर क्या किया ? सञ्जयने कहा कि–हे धृतराष्ट्र ! अर्जुनको

स तु तं सहसा प्राप्तं नित्यमत्यन्तवैरिणम् ॥ ५० ॥ कर्णो वैकर्तनः सूत किमन्यत् प्रत्यपद्यत । सञ्जय उवाच । आयान्तं पांडवं दृष्ट्वा गजः प्रतिगजं यथा ॥ ५१ ॥ असम्भ्रान्तो रणे कर्णः प्रत्युदीयात् धनञ्जयम् । तमापतन्तं वेगेन स्वर्णपुंखैरजिह्मगैः ॥ ५२ ॥ छादयामास पार्थोऽथ कर्णस्तु विजयं शरैः । स कर्णं शरजालेन छादयामास पाण्डवः ॥ ५३ ॥ ततः कर्णः सुसंरब्धः शरैस्त्रिभिरविध्यत । तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा नामृष्यत महाबलः ॥ ५४ ॥ तस्मै बाणाञ्छिलाधौतान् प्रसन्नाग्रानजिह्मगान् । प्राहिणोत् सूतपुत्राय त्रिशतं शत्रुतापनः ॥ ५५ ॥ विव्याध चैनं संरम्भात् बाणेनैकेन वीर्यवान् । सव्ये भुजाग्रे बलवान्नाराचेन हसन्निव ५६ तस्य विद्धस्य वेगेन कराच्चापं पपात ह । पुनरादाय तच्चापं निमेषार्द्धान्महाबलः ॥ ५७ ॥ छादयामास बाणौघैः फाल्गुनं कृत-

---

सामने आते हुए देखकर, हाथी जैसे शत्रु हाथीकी ओर धँसे, तैसे ही कर्ण भी निर्भय हो अर्जुनकी ओर धँसा, अर्जुनने वेगसे धँसकर आते हुए सूर्यपुत्रको सीधे जानेवाले बाण मारकर ढक दिया, तैसे ही कर्णने भी अर्जुनको बाण मारकर ढकदिया पुनः अर्जुनने कर्णके ऊपर बाणोंकी वृष्टिकर उसको ढकदिया ॥ ४८–५३ ॥ कर्णको बडा क्रोध चढा उसने अर्जुनके तीन बाण मारे, परन्तु महाबली अर्जुन, कर्णकी उस फुर्तीको सह नहीं सका, शत्रुको तपानेवाले अर्जुनने, कर्णके ऊपर पत्थर पर घिसकर तेज किये हुए तथा चमकते हुए फलके वाले सरलगामी तीनसौ बाण मारे ॥ ५४–५५ ॥ फिर पराक्रमी अर्जुनने क्रोधमें भर मुस्कराकर कर्णके दायें हाथपर एक ऐसा बाण मारा कि–५६ उसके बाणके प्रहारसे कर्णके हाथका धनुष पृथ्वी पर गिरपडा, तब तो महाबलवान् कर्णने आधे निमेषमें ही दूसरा धनुष हाथमें ले लिया ॥५७॥ और फुर्तीले हाथवाले मनुष्यकी समान बाणोंकी

हस्तवत् । शरवृष्टिन्तु तां मुक्तां सूतपुत्रेण भारत॥५८॥व्यधमच्छरवर्षेण स्मयन्निव धनञ्जयः । तौ परस्परमासाद्य शरवर्षेण पार्थिव५९ छादयेतां महेष्वासौ कृतप्रतिकृतैषिणौ।।तदद्भुतमभूद्युद्धं कर्णपाण्डवायोर्मृधे६०क्रुद्धयोर्वासिताहेतोर्वन्ययोर्गजयोरिव । ततः पार्थो महेष्वासो दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्६१मुष्टिदेशे धनुस्तस्य चिच्छेद त्वरयान्वितः । अश्वांश्च चतुरो भल्लैरनयद्यमसादनम्६२सारथेश्च शिरः कायादहनच्छत्रुतापनः। अथैनं छिन्नधन्वानं हताश्वं हतसारथिम्६३ विव्याध सायकैः पार्थश्चतुर्भिः पाण्डुनन्दनः । हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य नरर्षभः ॥६४॥ आरुरोह रथं तूर्णं कृपस्य शरपीडितः । स नुन्नोऽर्जुनबाणौघैराचितः शल्यको यथा ॥६५॥ जीवितार्थ-

---

वृष्टिकर अर्जुनको ढकदिया,हे भरतवंशी राजन्! अर्जुनने कर्णकी बाणवृष्टिका संहार करडाला और मुस्कराहटके साथ बाण मारकर उसको पीडित करनेलगा,हे भरतवंशी राजन्! वे दोनों महाधनुर्धर एक दूसरेका संहार करनेकी इच्छासे एक दूसरेके सामने लड़कर एक दूसरेको बाणोंसे ढकनेलगे, एक ऋतुमती हथनीके लिये जैसे दो मदमत्त और क्रोधमें भरेहुए हाथी लडें तैसे ही कर्ण तथा अर्जुनके बीचमें महा-अद्भुत युद्ध आरंभ होगया५८-६० इस युद्धमें अर्जुनने कर्णके पराक्रमको देख लिया और बड़ी फुर्तीसे बाण मारकर कर्णकी मुट्ठीमेंके धनुषको काटडाला और भालेके प्रहारसे उसके चारों घोडोंको भी यमलोकमें भेजदिया ६१-६२ तथा सारथिके भी मस्तकको छेदडाला, फिर शत्रुको त्रास देनेवाले अर्जुनने धनुष, घोड़े और सारथिरहित कर्णके दुसरा फिर चार बाण मारे नरशूर कर्ण, सारथि और घोड़े मरे कि रथमेंसे नीचे उतर पड़ा और बाणोंके प्रहारसे पीडा पाताहुआ कृपाचार्यके रथ पर चढगया,अर्जुनके बाण लगनेसे उसका शरीर छिदगया था और सेईके शरीरकी समान उसके सारे शरीरमें

मभिप्रेप्सुः कृपस्य रथमारुहत् । राधेयं निर्जितं दृष्ट्वा तावका भरतर्षभ ॥ ६६ ॥ धनञ्जयशरैर्नुन्नाः प्राद्रवन्त दिशो दश । द्रवतस्तान् समालोक्य राजा दुर्योधनो नृपः ॥६७॥ निवर्त्तयामास तदा वाक्यञ्चेदमुवाच ह । अलं द्रुतेन वः शूरास्तिष्ठध्वं क्षत्रियर्षभाः ६८ एष पार्थवधायाहं स्वयं गच्छामि संयुगे । अहं पार्थं हनिष्यामि सपञ्चालान् ससोमकान् ॥ ६९ ॥ अद्य मे युध्यमानस्य सह गाण्डीवधन्वना । द्रक्ष्यन्ति विक्रमं पार्थाः कालस्येव युगक्षये ७० अद्य मद्वाणजालानि विमुक्तानि सहस्रशः । द्रक्ष्यन्ति समरे योधाः शलभानामिवायतीः॥७१॥अद्य वाणमयं वर्षं सृजतो मम धन्विनः । जीमूतस्येव घर्मान्ते द्रक्ष्यन्ति युधि सैनिकाः ॥ ७२ ॥ जेष्याम्यद्य रणे पार्थं सायकैर्नतपर्वभिः । तिष्ठध्वं समरे वीरा भयं त्यजत

वाण चुभ रहे थे, इसलिये वह अपने प्राण बचानेकी इच्छासे कृपाचार्यके रथ पर चढगया, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! कर्णकी हार हुई देखकर तुम्हारे योधा अर्जुनके वाणोंसे छिन्न भिन्न हो दशों दिशाओंमेंको भागनेलगे, हे राजन् ! दुर्योधन उनको दौड़ता देखकर उनको पीछेको लौटानेके लिये चिल्लाकर कहनेलगा कि-अरे ! शूर क्षत्रियों ! भागो मत ! भागो मत !! खड़े रहो ! खड़े रहो !! ॥ ६३-६८ ॥ मैं स्वयं ही अर्जुनको मारनेके लिये जाता हूँ, मैं रणमें पाञ्चालराजाओंका, सोमकराजाओंका तथा पाण्डवोंका नाश करूँगा ॥६९॥ प्रलयके समय जैसे कालका पराक्रम देखनेमें आता है, तैसे ही आज मैं अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा और पाण्डव मेरे पराक्रमको देखेंगे ॥ ७०॥ आज मैं रणमें सहस्रों वाणोंकी वृष्टि करूँगा, उस वृष्टिको योधा रणसंग्राममें जैसे टीड़ी दल गिरता हो इसप्रकार देखेंगे ॥ ७१ ॥ चौमासेमें जैसे मेघकी धाराएँ दिखाई देती हैं, तैसे ही मैं भी धनुष धारण कर आज वाणोंकी वर्षा करूँगा, उसको सैनिक भलेप्रकार देखेंगे ॥ ७२ ॥

फाल्गुनात् ॥ ७३ ॥ न हि मद्वीर्यमासाद्य फाल्गुनः प्रसहिष्यति । यथा वेलां समासाद्य सागरो मकरालयः ॥७४॥ इत्युक्त्वा प्रययौ राजा सैन्येन महता वृतः । फाल्गुनं प्रति संरब्धः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ७५ ॥ तम्प्रयान्तं महाबाहुं दृष्ट्वा शारद्वतस्तदा । अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यञ्चेदमुवाच ह ॥७६॥ एष राजा महाबाहुरमर्षी क्रोधमूर्च्छितः । पतङ्गवृत्तिमास्थाय फाल्गुनं योद्धुमिच्छति ७७ यावन्नः पश्यमानानां प्राणान् पार्थेन संगतः । न जह्यात् पार्थिवश्रेष्ठस्तावद्वारय कौरवम् ॥ ७८ ॥ यावत् फाल्गुनबाणानां गोचरं नाधिगच्छति । कौरव्यः पार्थिवो वीरस्तावद्वारय संयुगे ॥ ७९ ॥ यावत् पार्थशरैर्घोरैर्निर्मुक्तोरगसन्निभैः । न भस्मी क्रियते राजा

आज मैं नमीहुई गांठवाले बाणोंसे रणमें अर्जुनके सामने लड़कर उसका पराजय करूँगा, अतः हे शूरो ! तुम रणमें खड़े रहो और अर्जुनके भयको छोड़ दो ॥ ७३ ॥ जिसमें मगर मच्छ रहते हैं ऐसा समुद्र जैसे किनारेको पाकर आगेको नहीं बढ़सकता, तैसे ही अर्जुन भी मेरे पराक्रमको नहीं सह सकेगा ॥ ७४ ॥ इस प्रकार कहकर क्रोधसे लाल२ नेत्रोंवाला राजा दुर्योधन सेनासहित अर्जुनकी ओरको धँसा, शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य, महाभुज दुर्योधनको आगे बढ़ते देखकर अश्वत्थामाके पास आये और उससे कहनेलगे, कि—॥ ७५–७६ ॥ बड़ी२ भुजाओंवाला यह राजा क्रोधके वशमें होजानेके कारण बेभान (बेहोश) होरहा है अतः पतंगेकी समान अर्जुनके सामने लड़नेको जारहा है ! ७७ पुरुषोंमें व्याघ्रसमान दुर्योधन हमारे सामने अर्जुनके साथ लड़ते२ मर न जाय, उससे पहिले ही उसके पास जाकर तू उसको लड़नेसे रोक ! ॥७८॥ नहीं तो कुरुवंशोत्पन्न वीर दुर्योधनकी अर्जुनके बाणोंकी मारसे आज ही मृत्यु होजावेगी, उसका नाश न हो उससे पहिले ही तू उसको आगे बढ़नेसे रोक ! ॥७९॥ अरे !

तावद्युद्धान्निवर्त्यताम् ॥ ८० ॥ अयुक्तमिव पश्यामस्तिष्ठत्स्वस्मासु मानद । स्वयं युद्धाय यद्राजा पार्थं यात्यसहायवान् ॥ ८१ ॥ दुर्लभं जीवितं मन्ये कौरवस्य किरीटिना । युध्यमानस्य समरे शार्दूलेनेव हस्तिनः ॥ ८२ ॥ मातुलेनैवमुक्तस्तु द्रौणिः शस्त्रभृताम्वरः । दुर्योधनमिदं वाक्यं त्वरितः समभाषत ॥ ८३ ॥ मयि जीवति गान्धारे न युद्धं कर्त्तुमर्हसि । मामनादृत्य कौरव्य तव नित्यं हितैषिणम् ॥ ८४ ॥ न हि ते सम्भ्रमः कार्य्यः पार्थस्य विजयं प्रति । अहमावारयिष्यामि पार्थं तिष्ठ सुयोधन ॥ ८५ ॥ दुर्योधन उवाच । आचार्य्यः पाण्डुपुत्रान् वै पुत्रवत् परिरक्षति । त्वमप्युपेक्षां कुरुषे तेषु नित्यं द्विजोत्तम ॥ ८६ ॥ मम वा मन्दभाग्यत्वान्मन्दस्ते विक्रमो युधि । धर्मराजप्रियार्थम्वा द्रौपद्या वा

अर्जुनके मारेहुए केंचुलीरहित सर्पकी समान चमकतेहुए बाण, इस राजाको घालकर भस्म न करें इतने समयमें ही तू इस दुर्योधनको युद्धमेंसे पीछेको लौटाल ॥ ८० ॥ हे मानदाता ! हमारे जीतेहुए दुर्योधन स्वयं अकेला लडनेको जाय, यह मुझे अनुचित लगता है ॥८१॥ सिंहके साथ हाथी लड़े, उसमें हाथी जीता रहे, यह मैं दुर्लभ ही समझता हूँ ॥ ८२ ॥ इसप्रकार मामाने कहा तब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने दुर्योधनके पास जाकर उससे कहा कि–॥८३॥ हे कुरुकुलमें श्रेष्ठ ! हे गांधारीके पुत्र ! मैं जब तक जीता हूँ, तब तक तुम्हें–मुझ हितैषीका अनादर कर अकेला लडना उचित नहीं है ॥ ८४ ॥ तथा तुम अर्जुनको जीतनेके विषयमें सन्देह भी न करो, हे दुर्योधन ! तुम खड़े रहो, मैं अभी अर्जुनको आगे बढनेसे रोकता हूँ ॥ ८५ ॥ दुर्योधनने उत्तर दिया कि–हे द्विजश्रेष्ठ ! आचार्य भी पाण्डुपुत्रोंकी पुत्रकी समान रक्षा करते हैं और तुम भी सदा उनकी ओरसे लापरवाहीसी रखते हो ! ॥ ८६ ॥ वास्तवमें मेरे मन्दभाग्यके

न विद्म तत् ॥ ८७ ॥ धिगस्तु मम लुब्धस्य यत्कृते सर्वबान्धवाः । सुखकामाः परं दुःखं प्राप्नुवन्ति पराजिताः ॥ ८८ ॥ को हि शस्त्रभृतां श्रेष्ठो महेश्वरसमो युधि । शत्रुं न क्षपयेच्छक्तो यो न स्याद्गौतमीसुतः ॥ ८९ ॥ अश्वत्थामन् प्रसीदस्व नाशयैतान्ममाहितान् । तवास्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवा न दानवाः ॥ ९० ॥ पञ्चालान् सोमकांश्चैव जहि द्रौणे सहानुगान् । वयं शेषान् हनिष्यामस्त्वयैव परिरक्षिताः ॥ ९१ ॥ एते हि सोमका विप्र पञ्चालाश्च यशस्विनः । मम सैन्येषु संक्रुद्धा विचरन्ति दवाग्निवत् ॥ ९२ ॥ तान् वारय महाबाहो केकयांश्च नरोत्तम । पुरा कुर्वन्ति निःशेषं रक्ष्यमाणाः किरीटिना ॥ ९३ ॥ अश्वत्थाम-

कारण तुम्हारा पराक्रम भी मन्द है ! धर्मराजको प्रिय लगनेके लिये अथवा द्रौपदीको अच्छा लगे इसलिये तुम मन्दरीतिसे पराक्रम करते होगे, इनमेंसे (क्या बात है) यह मैं कुछ भी नहीं समझ सकता, धिक्कार है मुझ जैसे राज्यके लोभी पर कि-जिसके लिये सुख भोगने योग्य और अजेय मेरे सब बन्धु परम दुःख पारहे हैं ॥ ८७–८९ ॥ शस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, महेश्वरकी समान बलवान् तथा शक्तिसम्पन्न कौनसा पुरुष शत्रुका नाश नहीं करेगा, भला ऐसा तो एक गौतमीपुत्र ही है कि-अर्जुनका नाश नहीं करता है ! हे अश्वत्थामा ! तुम मेरे ऊपर कृपा करके मेरे शत्रुओंको मारडालो जहाँ तुम्हारे शस्त्रका प्रहार हो तहाँ पर देवता और दानव भी नहीं टिक सकते (तो फिर पाण्डवोंकी क्या बात है) ॥ ९० ॥ हे द्रोणाचार्यके पुत्र ! पाञ्चाल तथा सोमक राजाओंको उनकी सेनासहित समाप्त कर दो, और बाकी बचे हुओंको हम तुम्हारी रक्षामें रहकर आपकी शरणमें पहुँचा देंगे ॥ ९१ ॥ हे विप्र ! ये यशस्वी सोमक तथा पाञ्चाल राजे क्रोधमें आकर दावानलकी समान मेरी सेनामें घूमते हैं ॥ ९२ ॥

स्त्वरायुक्तो याहि शीघ्रमरिन्दम। आदौ वा यदि वा पश्चात्तवेदं कर्म ब्राह्मण ॥ ९४ ॥ त्वमुत्पन्नो महाबाहो पञ्चालानां वधाय वै। करिष्यसि जगत् कृत्स्नमपञ्चालं किलोद्यतः ॥९५॥ एवं सिद्धाब्रुवन्वाचो भविष्यति च तत्तथा। तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र पञ्चालान् जहि सानुगान् ॥ ९६ ॥ न तेऽस्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवाः सवासवाः। किमु पार्थाः सपञ्चालाः सत्यमेतद्वचो मम ९७ न त्वां समर्थाः संग्रामे पाण्डवाः सह सोमकैः। बलाद्योधयितुं वीर सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ९८ ॥ गच्छ गच्छ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत्। इयं हि द्रवते सेना पार्थसायकपीडिता ॥९९॥

अतः हे महाभुज विप्र! तुम पहिले उनको और केकयोंको रोको, वे अर्जुनकी रक्षामें रहकर हमारी सेनाका संहार कररहे हैं (यह मुझसे देखा नहीं जाता) ॥ ९३ ॥ हे अरिन्दम अश्वत्थामा ! तुम शीघ्रतासे इनके सामने जाओ। हे महाराज! आदिमें या अन्तमें यह कार्य तुम्हें ही करना होगा ॥ ९४ ॥ हे महाभुज विप्र! तुम पाञ्चाल राजाओंका नाश करनेके लिये ही जन्मे हो, अतः तुम तत्पर होकर पाञ्चालराजाओंका नाश करो ॥ ९५ ॥ हे पुरुषव्याघ्र! तुम पाञ्चालोंका और उनके अनुचरोंका नाश करो, आकाशवाणीने भी ऐसा ही कहा था और होगा भी ऐसा ही ९६ इन्द्रसहित देवता भी तुम्हारे बाणोंके प्रहारको नहीं सहसकते, तब पाञ्चाल और पाण्डवोंकी तो बात ही क्या? यह बात मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥९७॥ हे वीर! सोमक राजे तथा पाण्डव संग्राममें तुम्हारे साथ युद्ध करनेकी शक्ति नहीं रखते, यह बात मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥९८॥ हे महाबाहु ब्राह्मण! अब तुम लड़नेके लिये जाओ! (जल्दी) जाओ!! अपना समय व्यर्थ न जावे इसका तुम ध्यान रखना। रे! देखो! अपनी सेना अर्जुनके बाणोंसे दुःखी हो रणभूमिमेंसे भागरही है, हे महाभुज! हे मान

शक्तो ह्यसि महाबाहो दिव्येन स्वेन तेजसा । निग्रहे पांडुपुत्राणां पञ्चालानाञ्च मानद ॥ १०० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि दुर्योधनवाक्ये
एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

सञ्जय उवाच । दुर्योधनेनैवमुक्तो द्रौणिराहवदुर्मदः । चकारारिवधे यत्नमिन्द्रो दैत्यवधे यथा । प्रत्युवाच महाबाहुस्तव पुत्रमिदं वचः ॥ १ ॥ सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि कौरव । प्रिया हि पाण्डवा नित्यं मम चापि पितुश्च मे ॥ २ ॥ तथैवावां प्रिया तेषां न तु युद्धे कुरूद्वह । शक्तितस्तात युध्यामस्त्यक्त्वा प्राणानभीतवत् ॥ ३ ॥ अहं कर्णश्च शल्यश्च कृपो हार्दिक्य एव च । निमेषात् पाण्डवीं सेनां क्षपयेयुर्नृपोत्तम ॥ ४ ॥ ते चापि कौरवीं

देने योग्य ब्राह्मण! तुम ही अपने दिव्य अस्त्रोंसे पाण्डुके पुत्रोंको और पाञ्चाल राजाओंको ठीक करसकते हो! ॥ ९९–१०० ॥

एकसौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५९ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा; कि–हे धृतराष्ट्र! दुर्योधनके इसप्रकार कहने पर युद्धदुर्मद अश्वत्थामाने इन्द्र जैसे दैत्योंका नाश करनेका प्रयत्न करे तैसे शत्रुओंके नाश करनेका प्रयत्न आरम्भ किया और तुम्हारे पुत्रसे कहा, कि– ॥ १ ॥ हे महाभुज दुर्योधन! तुमने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है, मुझे और मेरे पिताको पाण्डव सदा प्रिय हैं ॥२॥ और पाण्डव भी हम दोनोंके ऊपर सदा स्नेह रखते हैं, परन्तु युद्धके समय वे और हम (यह) प्रेमभाव नहीं रखते, हे तात! उस समय तो हम प्राणोंका मोह छोड़ शक्तिके अनुसार लड़ते हैं ॥३॥ हे श्रेष्ठ राजन्! मैं, कर्ण, शल्य, कृपाचार्य और कृतवर्मा ये एक क्षण भरमें ही पाण्डवोंकी सेनाका नाश कर सकते हैं ॥४॥ और हम न हों तो हे महाभुज राजन्! वे (भी) आधे निमेषमें ही कौरवोंकी सेनाका संहार

सेनां निमेषात् कुरुसत्तम । क्षपयेयुर्महाबाहो यदि न स्याम संयुगे५ युध्यतां पाण्डवान् शक्त्या तेषां चास्मान् युयुत्सताम् । तेजस्तेजः समासाद्य प्रशमं याति भारत ॥ ६ ॥ अशक्या तरसा जेतुं पाण्डवानामनीकिनी । जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु तद्धि सत्यं ब्रवीमि ते ॥७॥ आत्मार्थं युध्यमानास्ते समर्थाः पाण्डुनन्दनाः । किमर्थं तव सैन्यानि न हनिष्यन्ति भारत ॥ ८ ॥ त्वन्तु लुब्धतमो राजन्निकृतिज्ञश्च कौरव । सर्वाभिशङ्की मानी च ततोऽस्मानभिशङ्कसे ९ मन्ये त्वं कुत्सितो राजन् पापात्मा पापपूरुषः । अन्यानपि स नः क्षुद्रः शङ्कसे पापभावितः ॥ १० ॥ अहन्तु यत्नमास्थाय त्वदर्थे त्यक्तजीवितः । एष गच्छामि संग्रामं त्वत्कृते कुरुसत्तम ॥ ११ ॥ योत्स्येऽहं शत्रुभिः सार्द्धं हनिष्यामि वरान् वरान् । पञ्चालैः सह

करडालें ॥ ५ ॥ परन्तु हे भरतवंशी राजन् ! परस्पर युद्ध करते हुए उनका और हमारा दोनोंका तेज तेजसे मिलकर शान्त होजाता है ॥ ६ ॥ अतः पाण्डव जब तक जीवित हैं तब तक उनकी सेनाका पराजय होना असम्भव है, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! पाण्डव समर्थ हैं और अपने राज्यके लिये लडरहे हैं, अतः वे तेरी सेनाका संहार क्यों न करेंगे ॥ ८ ॥ और हे कुरुवंशी राजन् ! तू (तो) महालोभी, कपटी, किसीका विश्वास न करनेवाला तथा अभिमानी है, इस कारण तुझे हमारे ऊपर सन्देह होता है ॥९॥ और हे राजन् ! मैं जानता हूँ कि-तू खोटा है, पापी और पापरूप है, इसलिये ही हे क्षुद्र पुरुष ! तू दूसरोंको भी वैसा ही-पापी-समझता है ।१०। हे कुरुपुत्र ! तेरा हित करनेके लिये मैं रणमें-मरने तक-प्रयत्नपूर्वक लडता रहूँगा; मैं अब संग्राममें जाता हूँ और वहाँ शत्रुओंसे लडूँगा, तथा हे शत्रुदमन राजन् ! तेरी प्रसन्नताके लिये पाञ्चाल, सोमक, केकय और पाण्डवोंके साथ युद्ध करूँगा और

योत्स्यामि सोमकैः कैकयैस्तथा ॥ १२ ॥ पाण्डवेयैश्च संग्रामे
त्वत्प्रियार्थमरिन्दम। अद्य मद्बाणनिर्दग्धाश्चेदिपञ्चालसोमकाः१३
सिंहेनेवार्दिता गावो विद्रविष्यन्ति सर्वशः । अद्य धर्मसुतो राजा
दृष्ट्वा मम पराक्रमम् ॥ १४ ॥ अश्वत्थाममयं लोकं मंस्यते सह
सोमकैः । आगमिष्यति निर्वेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वा
विनिहतान् संख्ये पञ्चालान् सह सोमकैः । ये मां युद्धे प्रया-
स्यन्ति, तान् हनिष्यामि भारत ॥ १६ ॥ न हि ते वीर मोक्ष्यन्ते
मद्बाह्वन्तरमागताः । एवमुक्त्वा महाबाहुः पुत्रं दुर्योधनं तव॥१७॥
अभ्यवर्त्तत युद्धाय द्रावयन् सर्वधन्विनः । चिकीर्षुस्तत्र पुत्राणां
प्रियं प्राणभृताम्वरः ॥ १८ ॥ ततोऽब्रवीत् सकैकेयान् पञ्चालान्
गौतमीसुतः । प्रहरध्वमितः सर्वे मम गात्रे महारथाः ॥ १९ ॥

मुख्य२ योधाओंका रणमें पराजय करूँगा और जैसे सिंहके डरसे
गौएँ चारों ओरको भागने लगती हैं तैसे ही मेरे बाणोंके प्रहारोंसे
आज पाञ्चाल तथा सोमक राजे चारों ओरको भागने लगेंगे
और धर्मपुत्र युधिष्ठिर आज सारे संसारको अश्वत्थामामय देखेंगे
और सोमक राजाओंसहित खिन्न होजावेंगे॥ ११-१५ ॥
हे भरतवंशी राजन्! जो राजे युद्धमें पाञ्चाल और सोमक राजाओंको
मरेहुए देखकर मेरे साथ लडनेको आवेंगे, उनको भी मैं
मार डालूँगा ॥१६॥ हे वीर राजन्! वे मेरी भुजाओंके बलसे
पीड़ित होने पर बच नहीं सकेंगे इसप्रकार तुम्हारे पुत्रसे कहकर
सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ महाभुज अश्वत्थामा तुम्हारे पुत्रका हित करने
की इच्छासे,सब धनुषधारियोंको भगाता हुआ युद्ध करनेके लिये
चढ़ा ॥ १७-१८ ॥ उस समय गौतमीपुत्र अश्वत्थामाने केकय
और पाञ्चालराजाओंसे कहा, कि-अरे महारथियो! तुम सब
मेरे (शरीरके) ऊपर बाण चलाओ, और स्थिर होकर अपनी
शस्त्र चलानेकी फुर्तीको दिखाओ ॥ १९ ॥ अश्वत्थामाकी इस

स्थिरीभूताश्च युध्यध्वं दर्शयन्तोऽस्त्रलाघवम् । एवमुक्तास्तु ते सर्वे शस्त्रवृष्टीरपातयन् ॥ २० ॥ द्रौणिं प्रति महाराज जलं जलधरा इव । तान्निहत्य शरान्द्रौणिर्दश वीरानपोथयत् ॥ २१ ॥ प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां धृष्टद्युम्नस्य च प्रभो । ते हन्यमाना समरे पञ्चालाः सोमकास्तथा ॥ २२ ॥ परित्यज्य रणे द्रौणिं व्यद्रवन्त दिशो दश । तान् दृष्ट्वा द्रवतः शूरान् पञ्चालान् सह सोमकान् ॥ २३ ॥ धृष्टद्युम्नो महाराज द्रौणिमभ्यद्रवद्युधि । ततः काञ्चनचित्राणां सजलाम्बुदनादिनाम् ॥ २४ ॥ वृतः शतेन शूराणां रथानामनिवर्त्तिनाम् । पुत्रः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २५ ॥ द्रौणिमित्यब्रवीद्वाक्यं दृष्ट्वा योधान्निपातितान् । आचार्यपुत्र दुर्बुद्धे किमन्यैर्निहतैस्तव ॥ २६ ॥ समागच्छ मया सार्द्धं यदि शूरोऽसि संयुगे । अहं त्वां निहनिष्यामि तिष्ठेदानीं

बातको सुनकर सब महारथी मेघ जैसे पानी बरसावें तैसे अश्वत्थामाके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करनेलगे, अश्वत्थामाने उनके सामने बाण कर उनके बाणोंके टुकड़े२ करडाले और पाञ्चाल, सोमक, पाण्डव और धृष्टद्युम्नके सामने ही दश वीर योधाओंको मारडाला ॥ २०–२२ ॥ इसप्रकार अश्वत्थामाके पीड़ित करने पर वे पाञ्चाल और सोमक योधा अश्वत्थामाको छोड़२ कर भागनेलगे, हे राजन्! शूर पाञ्चाल और सोमक राजाओंको रणमेंसे भागता देखकर पाञ्चालराजके महारथी पुत्र धृष्टद्युम्नने अश्वत्थामाके ऊपर धावा किया, उस समय धृष्टद्युम्नके साथमें मेघकी समान गंभीर गर्जना करने वाले रथोंमें बैठे हुए पीछेको पैर न देने वाले सौ शूर चल रहे थे ॥ २३–२५ ॥ रणभूमिमें अपने योधाओंको मारे गए देख कर उसने अश्वत्थामासे कहा कि–"अरे ओ आचार्यके मूर्ख पुत्र! इन(दूसरे योधाओंको)मारनेसे तुझे क्या मिलेगा" ॥ २६ ॥ तू यदि वास्तवमें शूर हो तो

ममाग्रतः ॥ २७ ॥ ततस्तमाचार्यसुतं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् । मर्मभिद्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्जघान भरतर्षभ ॥ २८ ॥ ते तु पंक्तीकृता द्रौणिं शरा विविशुराशुगाः । रुक्मपुंखा प्रसन्नाग्राः सर्वकायावदारणाः ॥ २९ ॥ मध्वर्थिन इवोद्दामा भ्रमरा पुष्पितं द्रुमम् । सोऽतिविद्धो भृशं क्रुद्धः पदाक्रान्त इवोरगः॥३०॥ मानी द्रौणिरसम्भ्रान्तो शरपाणिरभाषत । धृष्टद्युम्न स्थिरो भूत्वा मुहूर्त्तं प्रतिपालय ॥ ३१ ॥ यावत्त्वां निशितैर्भल्लैः प्रेषयामि यमक्षयम् । द्रौणिरेवमथाभाष्य पार्षतं परवीरहा ॥३२॥ छादयामास बाणौघैः समन्ताल्लघुहस्तवत् । स वध्यमानः समरे द्रौणिना युद्धदुर्मदः ३३ द्रौणिं पाञ्चालतनयो वाग्भिरातर्जयत्तदा । न जानीषे प्रतिज्ञां मे

रणमें मेरे साथ लड़; अरे ! तू मेरे सामने आकर खड़ा हो मैं तुझे अभी मारे डालता हूँ ॥ २७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! रणभूमिमें इस प्रकार कहकर प्रतापी धृष्टद्युम्न आचार्यपुत्रके तीक्ष्ण बाण मारने लगा ॥ २८ ॥ मदमत्त भौंरे मधु पानेके लालचसे जैसे पुष्पवाले वृक्षोंमें प्रवेश करें तैसे सुवर्णकी पूँछ वाले, चमकते हुए फलकेवाले और सारे शरीरको फाड़ डालने वाले वे पंक्तिबद्ध बाण अश्वत्थामाके शरीरमें घुसने लगे; उनसे अश्वत्थामाका शरीर बहुत ही घायल होगया तब पैरसे दबने पर सर्प जैसे क्रोधमें भर जाता है, तैसे ही अश्वत्थामा क्रोधमें भर गया, फिर अभिमानी अश्वत्थामा हाथमें धनुष ले शान्तमनसे बोला कि-"हे धृष्टद्युम्न ! तू क्षण भर विश्राम ले ले ॥२९-३१॥ मैं अभी तेज करे हुए बाण मार कर तुझे यमके मन्दिरमें भेजे देता हूँ" इस प्रकार शत्रुओंका संहार करने वाले अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नसे कहा और फिर फुर्तीले हाथ वालेकी समान बाणोंकी वृष्टि कर उसको चारों ओरसे ढक दिया; अश्वत्थामाके बाणोंसे पीड़ित होने पर युद्धदुर्मद धृष्टद्युम्न उसके वाग्बाण मारते हुए

विप्रोत्पत्तिं तथैव च ॥ ३४ ॥ द्रोणं हत्वा किल मया हन्तव्यस्त्वं सुदुर्मते । ततस्त्वाहं न हन्म्यद्य द्रोणे जीवति संयुगे ॥ ३५ ॥ इमान्तु रजनीं प्राप्तामप्रभातां सुदुर्मते । निहत्य पितरं तेऽद्य ततस्त्वामपि संयुगे ॥ ३६ ॥ नेष्यामि प्रेतलोकाय एतन्मे मनसि स्थितम् । यस्ते पार्थेषु विद्वेषो या भक्तिः कौरवेषु च ॥ ३७ ॥ तां दर्शय स्थिरो भूत्वा न मे जीवन्विमोक्ष्यसे । यो हि ब्राह्मण्यमुत्सृज्य क्षत्रधर्मरतो द्विजः ॥ ३८ ॥ स वध्यः सर्वलोकस्य यथा त्वं पुरुषाधमः । इत्युक्तः परुषं वाक्यं पार्षतेन द्विजोत्तमः ॥ ३९ ॥ क्रोधमाहारयत्तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् । निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां पार्षतं सोऽभ्यवैक्षत ॥ ४० ॥ छादयामास च शरैर्निःश्वसन्नुरगो

कहने लगा कि-"अरे ब्राह्मण ! तू मेरी प्रतिज्ञा और उत्पत्तिको नहीं जानता है ! ॥ ३२-३४ ॥ अरे दुर्मति ! मैं पहिले द्रोणको मार डालूँगा और पीछेसे तुझको भी अवश्य मार डालूँगा। परन्तु द्रोण अभी जीवित हैं; अतः अभी मैं तेरा नाश नहीं करूँगा, आज रातमें प्रातःकाल होनेसे पहिले ही मैं तेरे पिताको मार डालूँगा, और फिर युद्धमें ॥ ३५-३६ ॥ तुझको मारकर यमलोकमें भेजदूँगा, यह मेरे मनका संकल्प है, अतः तू जहाँ तक चाहै तहाँतक पाण्डवोंके ऊपर द्वेष और कौरवोंके ऊपर भक्ति प्रकट करले, परन्तु तू मेरे हाथसे जीता नहीं बचेगा, जो ब्राह्मण ब्राह्मणके धर्मको त्यागकर क्षत्रियके धर्म के अनुसार चलता है, वह अधम पुरुष सब लोकोंका वधपात्र गिना जाता है" धृष्टद्युम्नने अश्वत्थामासे ऐसे तीक्ष्ण वचन कहे ॥३७-३९॥ उनको सुनकर अश्वत्थामाने क्रोधमें भरकर कहा, कि-"अरे ओ ! खडा रह ! खडा रह !!" इसप्रकार कहकर वह दोनों नेत्रोंको फाड़ धृष्टद्युम्नको भस्म करडालेगा तिसप्रकार उसकी ओर देखनेलगा ॥४०॥ फिर उसने सर्पकी समान साँस खेंचकर बाणोंकी वृष्टिसे धृष्टद्युम्न

यथा । स छाद्यमानः समरे द्रौणिना राजसत्तम ॥ ४१ ॥ सर्वपाञ्चालसेनाभिः संवृतो रथसत्तमः । नाकम्पत महाबाहुः स्ववीर्यं समुपाश्रितः ॥ ॥ ४२ ॥ सायकांश्चैव विविधानश्वत्थाम्नि मुमोच ह । तौ पुनः सन्यवर्त्तेतां प्राणद्यूतापणे रणे ॥ ४३ ॥ निपीडयन्तौ बाणौघैः परस्परममर्षणौ । उत्सृजन्तौ महेष्वासौ शरवृष्टीः समन्ततः ॥ ४४ ॥ द्रौणिपार्षतयोर्युद्धं घोररूपं भयानकम् । दृष्ट्वा सम्पूजयामासुः सिद्धचारणवातिकाः ॥४५॥ शरौघैः पूरयन्तौ तावाकाशं प्रदिशस्तथा । अलक्ष्यौ समयुध्येतां महत् कृत्वा शरैस्तमः ॥ ४६ ॥ नृत्यमानाविव रणे मण्डलीकृतकार्मुकौ । परस्परवधे यत्तौ सर्वभूतभयङ्करौ ॥४७॥ अयुध्येतां महाबाहू चित्रं लघु च सुष्ठु च । सम्पूज्यमानौ समरे योधमुख्यैः

को ढकदिया, तो भी हे राजश्रेष्ठ ! पाञ्चालोंकी सेनासे घिरा हुआ महारथी और महाभुज धृष्टद्युम्न अश्वत्थामाके बाणोंकी मारसे जरा भी नहीं डिगा, परन्तु वह भी अपने पराक्रमसे अश्वत्थामाके ऊपर अनेक प्रकारके बाण बरसानेलगा, इसप्रकार वे दोनों वीर पुरुष बाणरूपी दाँव लगाकर युद्धद्यूत खेलने लगे ॥४१–४३॥ वे दोनों महाधनुषधारी योधा क्रोधमें भरकर एक दूसरेके ऊपर बाणवृष्टि करनेलगे ॥४४॥ सिद्ध चारण तथा आकाशचारी देवता अश्वत्थामा और धृष्टद्युम्नके इस समयके भयानक घोर युद्धको देखकर उनकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ४५ ॥ वैसे ही वे दोनों बाणोंके समूहसे आकाश व दिशाओंको छानेलगे इससे तहाँ अंधकार फैलगया तब वे (उस अंधकारमें) अदृश्य होकर लड़नेलगे ! ॥४६॥ दोनों वीर रणमें धनुषको गोलाकार कर नृत्य करते हों तैसे फिरनेलगे और दूसरेको मारनेका अवसर ढूँढनेलगे और सब प्राणियोंको भयंकर दीखतेहुए वे दोनों महाभुज विचित्र प्रकारकी फुर्तीसे भरे होनेके कारण मनोहर लगे

सहस्रशः ॥ ४८ ॥ तौ प्रयुद्धौ रणे दृष्ट्वा वने वन्यौ गजाविव । उभयोः सेनयोर्हर्षस्तुमुलः समपद्यत ॥ ४९ ॥ सिंहनादरवाश्चासन् दध्मुः शंखांश्च सैनिकाः । वादित्राण्यभ्यवाद्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५० ॥ तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे भीरूणां भयवर्द्धने । मुहूर्त्तमपि तद्युद्धं समरूपं तदाभवत् ॥ ५१ ॥ ततो द्रौणिर्महाराज पार्षतस्य महात्मनः । धनुर्ध्वजं तथा छत्रं तथोभौ पार्ष्णिसारथी ५२ सूतमश्वांश्च चतुरो निहत्याभ्यद्रवद्रणे । पञ्चालांश्चैव तान् सर्वान् शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५३ ॥ व्यद्रावयदमेयात्मा शतशोऽथ सहस्रशः । ततः प्रविव्यथे सेना पाण्डवी भरतर्षभ ॥ ५४ ॥ दृष्ट्वा द्रौणेर्महत्कर्म वासवस्येव संयुगे । शतेन च शतं हत्वा पञ्चालानां

इसप्रकार युद्ध करनेलगे, उससमय रणमें खड़ेहुए सहस्रों मुख्य२ योधा उनकी युद्धकलाको देख उनकी प्रशंसा कररहे थे ४७–४८ जैसे दो जंगली हाथी लड़ते हों, तैसे रणमें उन दोनोंको लड़ते देखकर दोनों सेनाओंमें बड़ाभारी हर्ष फैलगया ॥ ४९ ॥ इस समय दोनों सेनाओंमें सिंहनाद होने लगा, योधा शंख बजानेलगे और सैंकड़ों तथा सहस्रों बाजे बजनेलगे ॥ ५० ॥ भीरुओंके डरको बढ़ानेवाला वह तुमुल युद्ध एक मुहूर्त तक एकसा चला, हे महाराज! इस लड़ाईमें अश्वत्थामाने महात्मा धृष्टद्युम्नकी ध्वजाको, धनुषको, छत्रको, पार्श्वरक्षकोंको, सारथिको और चारों घोड़ोंको मारडाला, फिर उदार मनवाले अश्वत्थामाने शीघ्रतासे आगेको बढ़कर, नमीहुई गाँठवाले बाण मारकर रणमेंसे सैंकड़ों और सहस्रों पाञ्चाल राजाओंके सैनिकोंको भगा दिया, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! इस समय पाण्डवोंकी सेना बड़ा दुःख पानेलगी ॥ ५१–५४ ॥ तब पाञ्चालोंमें महारथी धृष्टद्युम्नने, युद्धमें अश्वत्थामाके इंद्रकी समान पराक्रमको देखकर सौ बाण मारकर सौ योधाओंके मस्तकोंको काटडाला और

महारथः ॥ ५५ ॥ त्रिभिश्च निशितैर्बाणैर्हत्वा त्रीन् वै नरर्षभान् । द्रौणिर्द्रुपदपुत्रस्य फाल्गुनस्य च पश्यतः ॥ ५६ ॥ नाशयामास पञ्चालान् भूयिष्ठं ये व्यवस्थिताः । ते वध्यमानाः पञ्चालाः समरे सह सृञ्जयैः ॥ ५७ ॥ अगच्छन् द्रौणिमुत्सृज्य विप्रकीर्णरथध्वजाः । स जित्वा समरे शत्रून् द्रोणपुत्रो महारथः ५८ ननाद सुमहानादं तपान्ते जलदो यथा । स निहत्य बहून् शूरानश्वत्थामा व्यरोचत । युगान्ते सर्वभूतानि प्रदहन्निव पावकः ५९ सम्पूज्यमानो युधि कौरवेयैर्निर्जित्य संख्येऽरिगणान् सहस्रशः । व्यरोचत द्रोणसुतः प्रतापवान् यथा सुरेन्द्रोऽरिगणान्निहत्य वै ६०

इति श्रीमहाभारते-द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि अश्वत्थामपराक्रमे षष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १६० ॥

सञ्जय उवाच । ततो युधिष्ठिरश्चैव भीमसेनश्च पाण्डवः ।

तीक्ष्ण तीन बाण मारकर तीन महारथियोंके प्राण लेलिये, अश्वत्थामाने भी द्रुपदकेपुत्र धृष्टद्युम्न और महारथी अर्जुनके देखतेहुए असंख्य पाञ्चालोंको मारडाला और उनके रथ तथा ध्वजाओंको तोड़डाला (यह दशा देखकर) पाञ्चाल और सृञ्जय अश्वत्थामाके सामनेसे भागनेलगे, तब गरमीके पीछे जैसे मेघ गर्जे तैसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामा रणमें शत्रुओंका पराजय कर बडीभारी गर्जना करने लगा, प्रलयके समय भस्म कर चुकने पर जैसे शंकर शोभा पाने लगते हैं, तैसे ही उस समय अश्वत्थामा भी बहुतसे शूरोंका संहार कर दिप निकला, युद्धमें शत्रुओंको हरानेके पीछे जैसे इन्द्र शोभा पाता है तैसे ही युद्धमें सहस्रों शत्रुओंका पराजय कर प्रतापी द्रोणपुत्र भी शोभा पानेलगा और कौरव योधा उसकी प्रशंसा करनेलगे ॥५५–६०॥ एकसौ साठवाँ अध्याय समाप्त १६०

सञ्जयने कहा, कि–हे महाराज ! ऐसी स्थिति होने पर पांडुपुत्र युधिष्ठिरने तथा भीमसेनने चारों ओरसे द्रोणके पुत्रको घेर

द्रोणपुत्रं महाराज समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १ ॥ ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजेन संवृतः । अभ्ययात् पाण्डवान् संख्ये ततो युद्धमवर्त्तत ॥२॥ घोररूपं महाराज भीरूणां भयवर्द्धनम् । अम्बष्ठान्मालवान् वङ्गाञ्छिबींस्त्रैगर्त्तकानपि ॥ ३ ॥ प्राहिणोन्मृत्युलोकाय गणान् क्रुद्धो वृकोदरः । अभीपाहान् शूरसेनान् क्षत्रियान् युद्धदुर्मदान् ॥ ४ ॥ निकृत्य पृथिवीञ्चक्रे भीमः शोणितकर्दमाम् । यौधेयान्नद्रिजाञ्राजन् मद्रकान्मालवानपि ॥ ५ ॥ प्राहिणोन्मृत्युलोकाय किरीटी निशितैः शरैः । प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ॥ ६ ॥ निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विशृङ्गा इव पर्वताः । निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च चेष्टमानैरितस्ततः ॥७॥ रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः । क्षिप्तैः कनकचित्रैश्च नृपछत्रैश्च भूर्बभौ ॥८॥

लिया, तब दुर्योधन द्रोणाचार्यके साथ पाण्डवों पर चढ़ आया और उनमें युद्ध होनेलगा, यह युद्ध भयङ्कर तथा डरपोकोंके डरको बढ़ाने वाला था; क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने इस युद्धमें अम्बष्ठ, मालव, वंग, शिवि और त्रैगर्त आदि राजाओंको मार कर यमलोकमें भेज दिया और अभीपाह, शूरसेन तथा दूसरे युद्धमत्त क्षत्रिय राजाओंका संहार कर, उनके मांस और रक्तकी कीचसे पृथिवीको कीचड़वाली कर दिया, हे राजन् ! दूसरी ओर अर्जुनने भी पहाड़ी योधाओंको, मद्रदेशके राजाओंको, तथा मालवेके राजाओंको तेज कियेहुए बाण मार कर यमपुरीके लिये विदा कर दिया, फिर हाथियोंके ऊपर भी उतावली गतिवाले बाणोंके कठोर प्रहार करने लगा, तब वे हाथी दो शिखर वाले पर्वतोंकी समान मर २ कर भूमिमें गिरनेलगे, उन हाथियोंकी कटी हुई सूँडे पृथिवीमें इधर उधर लुढ़क रही थीं, वे मानो पृथिवीमें सर्प फिर रहे हों ऐसी प्रतीत होती थीं और सुवर्णसे विचित्र दीखनेहुए राजाओंके टेढ़े तिरछे पड़ेहुए छत्रोंसे भरी हुई

द्यौरिवादित्यचन्द्राद्यैर्ग्रहैः कीर्णा युगक्षये । हत प्रहरताभीतान्विध्यत व्यवकृन्तत ॥ ९ ॥ इत्यासीत्तुमुलः शब्दः शोणाश्वस्य रथं प्रति । द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण संयुगे ॥ १० ॥ व्यधमत्तान्महावायुर्मेघानिव दुरत्ययः । ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ११ ॥ पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः । किरीटी भीमसेनश्च सहसा संन्यवर्त्तताम् ॥ १२ ॥ महता रथवंशेन परिगृह्य वलं महत् । बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरन्तु वृकोदरः ॥ १३ ॥ भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् । तौ तथा सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ॥ १४ ॥ अन्वगच्छन्महाराज मत्स्याश्च सह सोमकैः । तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ॥ १५ ॥ महत्या सेनया राजन् जग्मुर्द्रोणरथं प्रति ।

रणभूमि सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहोंसे भरेहुए आकाशकी समान शोभा पारही थीं इस समय द्रोणके रथके पास "मारो ! मारो !! निर्भय होकर इनको वींधडालो ! काटडालो" इसप्रकार भयङ्कर ध्वनि होरही थी, यह सुनकर द्रोणको वडा क्रोध चढ़ा; तब प्रचण्ड पवन जैसे मेघोंको वखेर दे तैसे उन्होंने वायव्यास्त्र मारकर योधाओंका संहार करडाला, द्रोणाचार्यके प्रहारसे खिन्न होकर, भीम तथा अर्जुनके सामने ही पाञ्चालराजे, भयभीत हो रणमेंसे भागनेलगे ॥ १–१२ ॥ यह देखकर अर्जुन और भीम वडीभारी रथसेना और वडीभारी साधारण–सेनाको साथमें लेकर एक दम द्रोणके ऊपर चढआये और बाईं ओरसे बीभत्सु और दाई ओरसे भीम द्रोणाचार्यके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे, हे महाराज ! उनको इसप्रकार लडते देखकर महाबली सृञ्जय, पाञ्चाल, सोमक और मत्स्यराजे ये सब इकट्ठे होकर पीछेको लौटे और भीम तथा अर्जुनकी सहायताके लिये आगए दूसरी ओर तुम्हारे पुत्रके महारथी योधा भी वडीभारी सेनाको

ततः सा भारती सेना वध्यमाना किरीटिना ॥ १६ ॥ तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत । द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ॥ १७ ॥ नाशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा । सा पाण्डुपुत्रस्य शरैर्दीर्यमाणा महाचमूः ॥ १८ ॥ तमसा संवृते लोके व्यद्रवत् सर्वतो मुखी । उत्सृज्य शतशो वाहांस्तत्र केचिन्नराधिपाः । व्यद्रवन्त महाराज भयाविष्टाः समन्ततः ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

सञ्जय उवाच । सोमदत्तन्तु संप्रेक्ष्य विधुन्वानं महद्धनुः । सात्यकिः प्राह यन्तारं सोमदत्ताय मां वह ॥ १ ॥ न ह्यहत्वा रणे शत्रुं सोमदत्तं महाबलं । निवर्त्तिष्ये रणात् सूत सत्यमेतद्वचो मम ॥ २ ॥ ततः सम्प्रैषयद्यन्ता सैन्धवांस्तान्मनोजवान् । तुरङ्ग-

---

साथमें लेकर द्रोणकी सहायता करनेको दौड़ आये, अर्जुन कौरवोंकी सेनाका संहार करनेलगा और सेना अँधेरेके कारण (और) निद्रासे घिरी हुई होनेके कारण नष्ट होनेलगी, हे महाराज! द्रोण और आपके पुत्रने अपने योधाओंको भागनेसे रोका तो भी वे योधा रुके नहीं तब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके बाणोंसे कटती हुई महासेना अँधेरेसे छाई हुई रणभूमिमें चारों ओरको भागनेलगी, उस समय बहुतसे राजे भयभीत हो सवारियों वाहनोंको तहाँ ही छोडकर चारों ओर भाग गए ॥ १३-१९ ॥ एकसौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६१ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा-कि हे धृतराष्ट्र! सात्यकिने सोमदत्तको बड़ा भारी धनुष घुमाते हुए देखकर अपने सारथिसे कहा कि, हे सूत! तू मुझे सोमदत्तके पास लेचल ॥ १ ॥ महाबली शत्रु सोमदत्तको मारे विना मैं रणमेंसे पीछेको नहीं लौटूँगा; मेरी इस बातको तू सत्य समझ ॥ २ ॥ अपने रथस्वामीके वचनको सुन कर

माञ्छंखवर्णान् सर्वशस्त्रातिगान्रणे ॥ ३ ॥ तेऽवहन् युयुधानन्तु मनोमारुतरंहसः । यथेन्द्रं हरयो राजन् पुरा दैत्यवधोद्यतम् ॥४॥ तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सात्वतं रभसं रणे । सोमदत्तो महाराज ह्यसम्भ्रान्तो न्यवर्त्तत ॥ ५ ॥ विमुञ्चञ्छरवर्षाणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् । छादयामास शैनेयं भास्करं जलदो यथा ॥ ६ ॥ असम्भ्रान्तश्च समरे सात्यकिः कुरुपुङ्गवम् । छादयामास बाणौघैः समन्ताद्भरतर्षभ ॥ ७ ॥ सोमदत्तस्तु तं षष्ट्या विव्याधोरसि माधवम् । सात्यकिश्चापि तं राजन्नविध्यत् सायकैः शितैः ॥ ८ ॥ तावन्योऽन्यं शरैः कृत्तौ व्यराजेतां नरर्षभौ । सुपुष्पौ पुष्पसमये पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ९ ॥ रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।

सारथिने मनकी समान वेग वाले, शंखकी समान श्वेत वर्ण वाले तथा एक क्षणमें ही सब शब्दोंको दबा देने वाले सिंधुदेशी घोड़ोंको रणमें बढ़ाया ॥३॥ वे वेगवान् घोड़े–दैत्योंका वध करने के लिये उद्यत इन्द्रको जैसे दिव्य घोड़े (राक्षसोंके समीप) लेगए थे, तैसे–सात्यकिको शीघ्रतासे सोमदत्तके पास लेगए ४ महाबाहु सोमदत्त, रणभूमिमें कोपमें भरे हुए सात्यकिको अपने ऊपर चढ़ कर आता देख कर धीरज धर कर उसके सामने गया ॥ ५ ॥ और मेघ जैसे जलकी वृष्टि करके सूर्यको ढक दे, तैसे उसने बाणोंकी वृष्टि कर सात्यकिको ढक दिया ॥ ६ ॥ सोमदत्तने साठ बाण मार कर सात्यकिकी छातीको चीर डाला, तब सात्यकिने सोमदत्तके तेज किये हुए बाण मारे ॥ ७–८ ॥ दोनों महात्माओंके शरीर बाणोंके प्रहारोंसे घायल होगए और उन दोनोंका सारा शरीर लोहू लुहान होगया, इस समय कुरुवंशी सोमदत्त और वृष्णिवंशी सात्यकि, बसन्तऋतुमें खिले हुए पुष्पोंवाले टेसूके वृक्षोंकी समान दिपते थे, एक दूसरेको अग्निकी ज्वालासे बालते हों तैसे रक्तवृष्टिकी कांतिसे रक्त करते हुए वे

परस्परमवेक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः ॥ १० ॥ रथमण्डलमार्गेषु चरन्तावरिमर्दनौ । घोररूपौ हि तावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ११ शरसम्भिन्नगात्रौ तौ सर्वतः शकलीकृतौ । श्वाविधाविव राजेन्द्र दृश्येतां शरविक्षतौ ॥ १२ ॥ सुवर्णपुङ्खैरिषुभिराचितौ तौ व्यराजताम् । खद्योतैरावृतौ राजन् प्रावृषीव वनस्पती ॥ १३ ॥ सम्प्रदीपितसर्वाङ्गौ सायकैस्तैर्महारथौ । अदृश्येतां रणे क्रुद्धावुल्काभिरिव कुञ्जरौ ॥ १४ ॥ ततो युधि महाराज सोमदत्तो महारथः । अर्द्धचन्द्रेण चिच्छेद माधवस्य महद्धनुः ॥ १५ ॥ अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् । त्वरमाणस्त्वराकाले पुनश्च दशभि शरैः ॥ १६ ॥ अथान्यद्धनुरादाय सात्यकिर्वेगवत्तरम् ।

दोनों एक दूसरेके सामने खड़े थे, रथको मण्डलाकारसे घुमाते हुए शत्रुओंका संहार करने वाले वे दोनों योधा, जल वरसाते हुए मेघोंकी समान भयंकर रीतिसे वाण छोड़ रहे थे ॥९–११॥ हे राजेन्द्र! उनके शरीर वाणोंके प्रहारोंसे घायल होरहे थे और शरीरके अङ्गोंके टुकड़े २ होगए थे अतः वे दोनों योधा वाणोंसे विधे हुए सेई की समान दीखते थे ॥ १२ ॥ दोनोंके शरीरोंमें सुवर्णकी पूँछ वाले वाण गुभ रहे थे, इस कारण वे चारों ओरसे पतंगोंसे घिरे हुए दो वृक्षोंकी समान शोभा पारहे थे, दोनों महारथियोंके शरीर वाणोंके प्रहारसे प्रज्वलित से होउठे थे, तथा वे दोनों महारथी रणमें मशालें दागनेसे क्रोधित हुए हाथियोंकी समान प्रतीत होते थे ॥ १३–१४ ॥ हे महाराज! फिर महारथी सोमदत्तने अर्धचन्द्राकार वाण मार कर मधुकुलमें उत्पन्न हुए सात्यकिके महाधनुषको काट डाला ॥ १५ ॥ और वड़ी शीघ्रतासे सात्यकिके पैंतीस वाण मारे ॥ १६ ॥ हे महाराज! सात्यकिने भी वड़े वेगवाला दूसरा धनुष लेकर पाँच वाण सोमदत्तके मारे फिर मुस्कुराते हुए सात्यकिने भल्ल नामक

पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं सोमदत्तमविध्यत ॥ १७ ॥ ततोऽपरेण भल्लेन ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् । बाह्लीकस्य रणे राजन् सात्यकिः प्रहसन्निव ॥१८॥ सोमदत्तस्त्वसम्भ्रान्तो दृष्ट्वा केतुं निपातितम् । शैनेयं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥ १९ ॥ सात्वतोऽपि रणे क्रुद्धः सोमदत्तस्य धन्विनः । धनुश्चिच्छेद भल्लेन क्षुरप्रेण शितेन ह ॥ २० ॥ अथैनं रुक्मपुङ्खानां शतेन नतपर्वणाम् । आचिनोद्बहुधा राजन् भग्नदंष्ट्रमिवोरगम् ॥ २१ ॥ अथान्यद्धनुरादाय सोमदत्तो महारथः । सात्यकिं छादयामास शरवृष्ट्या महाबलः ॥ २२ ॥ सोमदत्तन्तु संक्रुद्धो रणे विव्याध सात्यकिः । सात्यकिं शरजालेन सोमदत्तोऽप्यपीडयत् ॥ २३ ॥ दशभिः सात्वतस्यार्थे भीमोऽहन् बाह्लिकात्मजम् । सोमदत्तोऽप्यसम्भ्रान्तो भीममार्च्छच्छितैः शरैः ॥ २४ ॥ ततस्तु सात्वतस्यार्थे भीमसेनो नवं दृढम् । मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य वक्षसि ॥ २५ ॥ तमा-

बाणसे सोमदत्तकी सुनहरी ध्वजाको काटडाला ॥ १७ ॥ वह ध्वजा तुरन्त ही पृथिवीमें गिर गई, यह देखकर सोमदत्तने सात्यकिके पच्चीस बाण मारे ॥ १८-१९ ॥ तब सात्यकिने कोपमें भरकर रणमें भल्ल तथा क्षुरप्र नामक तेज कियेहुए बाण मारकर धनुर्धर सोमदत्तके धनुषको काटडाला ॥ २० ॥ और दाँत रहित हाथीकी समान अशक्त हुए सोमदत्तके नमीहुई गाँठ वाले और सुवर्णकी पूँछवाले सौ बाण वेगसे मारे ॥२१॥ महाबलवान् सोमदत्तने दूसरा धनुष लिया और बाणोंकी वृष्टि कर सात्यकिको ढकदिया, क्रोधमें भरेहुए सात्यकिने भी सोमदत्तको बींधडाला, फिर सोमदत्त भी उसको बाण मारकर अच्छी प्रकार रगड़नेलगा ॥ २२-२३ ॥ इतनेमें ही भीमने सात्यकिका पक्ष लिया और सोमदत्तके दश बाण मारे, फिर सोमदत्तने सावधान होकर भीमके तेज बाण मारे ॥ २४ ॥ फिर सात्यकिने नया दृढ़

पतन्तं वेगेन परिघं घोरदर्शनम् । द्विधा चिच्छेद समरे प्रहसन्निव कौरवः ॥ २६ ॥ स पपात द्विधा छिन्न आयसः परिघो महान् । महीधरस्येव महच्छिखरं वज्रदारितम् ॥ २७ ॥ ततस्तु सात्यकी राजन् सोमदत्तस्य संयुगे । धनुश्चिच्छेद भल्लेन हस्तावापञ्च पञ्चभिः ॥ २८ ॥ ततश्चतुर्भिश्च शरैस्तूर्णं तांस्तुरगोत्तमान् । समीपं प्रेषयामास प्रेतराजस्य भारत ॥ २९ ॥ सारथेश्च शिरः कायात् भल्लेनानतपर्वणा । जहार नरशार्दूलः प्रहसञ्छिनिपुङ्गवः ॥३०॥ ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् । मुमोच सात्वतो राजन् स्वर्णपुंखं शिलाशितम् ॥३१॥ स विमुक्तो बलवता शैनेयन शरोत्तमः । घोरस्तस्योरसि विभो निपपाताशु भारत ॥३२ । सोऽतिविद्धो बलवता सात्वतेन महारथः । सोमदत्तो महाराज पपात च

और वज्रकी समान भयङ्कर एक परिघ सोमदत्तकी छातीमें मारा २५ पुरुवंशी (सोमदत्त) ने मुस्कुरा कर अपनी ओर वेगसे आतेहुए उस परिघके दो टुकड़े करडाले, तब वज्रके प्रहारसे जैसे पर्वतका शिखर टूटकर पृथ्वी पर गिरपड़े तिसप्रकार लोहेका वह बडा भारी परिघमें पृथिवीमें दो टुकड़े होकर गिरपडा ॥ २६–२७ ॥ तदनन्तर हे राजन्! सात्यकिने भल्ल नामक बाण मारकर उसके हाथके मौजोंको काटडाला ॥२८॥ और फिर चार बाण मारकर उसके उत्तम जातिके चारों घोडोंको भी मारडाला ॥२९॥ इसके पीछे मनुष्योंमें सिंहकी समान सात्यकिने हँसते २ नमीहुई गाँठ वाला बाण मारकर उसके सारथिके मस्तकको उड़ादिया ॥३०॥ हे राजन्! फिर बलवान् सात्यकिने,प्रज्वलित होतेहुए अग्निकी समान सुवर्णकी पूँछवाला और शिला पर घिसाहुआ महाघोर बाण सोमदत्तकी छातीमें बड़े-वेगसे मारा,वह घोर बाण सोमदत्त की छातीमें घुसगया ॥ ३१–३२ ॥ हे महाराज ! सात्यकिने महारथी तथा महाभुज सोमदत्तको बाणोंसे घायल किया कि-

ममार च ॥ ३३ ॥ तं दृष्ट्वा निहतं तत्र सोमदत्तं महारथाः । महता शरवर्षेण युयुधानमुपाद्रवन् ॥३४॥ छाद्यमानं शरैर्दृष्ट्वा युयुधानं युधिष्ठिरः । पाण्डवाश्च महाराज सह सर्वैः प्रभद्रकैः । महत्या सेनया सार्द्धं द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ ३५ ॥ ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तावकानां महाबलम् । शरैर्विद्रावयामास भारद्वाजस्य पश्यतः ॥३६॥ सैन्यानि द्रावयन्तं तु द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् । अभिदुद्राव वेगेन क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३७ ॥ ततः सुनिशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध सप्तभिः । युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धः प्रतिविव्याध पञ्चभिः ॥३८॥ सोऽतिविद्धो महाबाहुः सृक्किणी परिसंलिहन् । युधिष्ठिरस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ ३९ ॥ स छिन्नधन्वा विरथस्त्वराकाले नृपोत्तम । अन्यदादत्त वेगेन कार्मुकं समरे दृढम् ॥ ४० ॥ ततः

वह मरकर पृथिवीमें ढहगया ॥३३॥ सोमदत्तको मराहुआ देखकर तहाँ खड़ेहुए कौरवपक्षके महारथी बाणोंकी बौछार करते हुए सात्यकिके ऊपर टूटपड़े ॥३४॥ उन्होंने उसके ऊपर असंख्य बाण बरसाकर उसको ढकदिया, यह देखकर युधिष्ठिर आदि पांडव और सब प्रभद्रक बडी भारी सेनाको साथमें लेकर द्रोणके सामने धँसे॥३५॥ और कोपमें भरेहुए युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यके सामनेको बाण मारकर तुम्हारी बडीभारी सेनाको भगादिया ॥ ३६ ॥ युधिष्ठिरको सेनाको भगाते देख द्रोणाचार्य क्रोधसे लाल २ नेत्र कर तुरन्त ही उनके ऊपर झपटे ॥ ३७ ॥ और तेज कियेहुए सात बाण उनकी छातीमें मारे, युधिष्ठिरके भी नेत्र क्रोधसे लाल२ होगए और उन्होंने पाँच बाण मारकर द्रोणको वींधडाला ।३८। महाभुज द्रोणाचार्य बाणोंके प्रहारसे घायल होगए और वेदनाके कारण जबाड़े चाटनेलगे, उन्होंने बाण मारकर युधिष्ठिरकी ध्वजा और धनुषको काटडाला ॥ ३९ ॥ अपना धनुष कटा कि-राजा युधिष्ठिरने तुरन्त ही दूसरा मजबूत धनुष उठाकर द्रोण, उनके

शरसहस्रेण द्रोणं विव्याध पार्थिवः । साश्वसूतध्वजरथं तदद्भुत-
मिवाभवत् ॥ ४१ ॥ ततो मुहूर्तं व्यथितः शरघातप्रपीडितः ।
निषसाद रथोपस्थे द्रोणो ब्राह्मणपुङ्गवः ॥ ४२ ॥ प्रतिलभ्य ततः
संज्ञां मुहूर्ताद् द्विजसत्तमः । क्रोधेन महताविष्टो वायव्यास्त्रमवा-
सृजत् ॥ ४३ ॥ असम्भ्रान्तस्ततः पार्थो धनुरादाय वीर्यवान् ।
तदस्त्रमस्त्रेण रणे स्तम्भयामास भारत ॥ ४४ ॥ चिच्छेद च
धनुर्दीर्घं ब्राह्मणस्य च पाण्डवः । अथान्यद्धनुरादाय द्रोणः क्षत्रिय-
मर्दनः ॥ ४५ ॥ तदप्यस्य शितैर्भल्लैश्चिच्छेद कुरुपुङ्गवः । ततोऽ-
ब्रवीद्वासुदेवः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ४६ ॥ युधिष्ठिर महाबाहो
यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु । उपारमस्व युद्धे त्वं द्रोणाद्भरतसत्तम ४७
यतते हि सदा द्रोणो ग्रहणे तव संयुगे । नानुरूपमहं मन्ये युद्धमस्य

सारथि और ध्वजा पर लगातार एक सहस्र बाण मारे, उनका
यह कार्य बडा ही आश्चर्यजनक था ॥ ४०-४१ ॥ हे भरतवंशमें
श्रेष्ठ राजन् ! युधिष्ठिरके बाणोंके प्रहारसे द्रोणाचार्य दो घडी तक
मूर्छित हो रथकी बैठकमें पड़े रहे, जब भान आया तब ब्राह्मणश्रेष्ठ
द्रोणने बड़े ही क्रोधमें भर युधिष्ठिरके वायव्यास्त्र मारा, परन्तु
हे भरतवंशी राजन् ! पराक्रमी राजा युधिष्ठिर इससे घवडाये नहीं,
उन्होंने अपने धनुषको खैंचकर वायव्यास्त्रके सामने अपना वायव्य
अस्त्र मारकर सामनेसे आतेहुए वायव्यास्त्रको अटका दिया ४२-४४
और द्रोणके महाधनुषके भी टुकड़े२ करडाले, तब क्षत्रियमर्दन
द्रोणने दूसरा धनुष उठाया ॥ ४५ ॥ कुरुवंशमें श्रेष्ठ धर्मराजने
भल्ल नामक बाण मारकर उसके भी टुकड़े२ करडाले, इतनेमें
वासुदेवने कुन्तीपुत्र धर्मराजसे कहा, कि-॥ ४६ ॥ हे महाभुज
युधिष्ठिर ! तुम मेरा कहना सुनो ! हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तुम
युद्धमें द्रोणाचार्यसे मत लड़ो, क्योंकि-वह तुमको युद्धमें कैद
करनेके लिये सदा प्रयत्न करते रहते हैं, अतः उनके साथ तुम्हारा

त्वया सह ॥४८॥ योऽस्य सृष्टो विनाशाय स एवैनं हनिष्यति ।
परिवर्ज्य गुरुं याहि यत्र राजा सुयोधनः ॥ ४९ ॥ राज्ञा राजा हि
योद्धव्यो नाराज्ञा युद्धमिष्यते । तत्र त्वं व्रज कौन्तेय हस्त्यश्वरथ-
संवृतः ॥५०॥ यावन्मात्रेण च मया सहायेन धनञ्जयः । भीमश्च
नरशार्दूलो युध्यते कौरवैः सह ॥ ५१ ॥ वासुदेववचः श्रुत्वा
धर्मराजो युधिष्ठिरः । मुहूर्त्तं चिन्तयित्वा तु ततो दारुणमाहवम् ५२
प्रायाद् द्रुतममित्रघ्नो यत्र भीमो व्यवस्थितः । विनिघ्नंस्तावकान्
योधान् व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ५३ ॥ रथघोषेण महता नाद-
यन् वसुधातलम् । पर्जन्य इव घर्मान्ते नादयन्वै दिशो दश ॥५४॥

लड़ना मैं उचित नहीं समझता ॥ ४७।४८ ॥ जिसने उनका
नाश करनेके लिये जन्म लिया है (उसको ही लड़नेदो)
वह पुरुष ही उनका नाश करेगा , तुम गुरुको छोड़कर जहाँ
दुर्योधन खड़ा है उस ओर जाओ ॥ ४९ ॥ राजाको तो राजाके
साथ ही लड़ना चाहिये, दूसरोंसे लड़ना उचित नहीं है; अतः
हे कुन्तीपुत्र ! अर्जुन और महारथियोंमें सिंहकी समान भीम-
सेन, मेरी सहायतासे कौरवोंसे युद्ध कर रहे हैं, अब तुम हाथी,
घोड़े तथा रथोंसे घिर कर दुर्योधनके साथ लड़नेके लिये
जाओ ॥ ५०-५१ ॥ धर्मराज युधिष्ठिर वासुदेवके वचन सुनकर,
दो एक घड़ीतक विचार करने लगे, फिर जहाँ पर मुख फाड़े
हुए कालकी समान शत्रुओंका नाश करने वाला भीमसेन खड़ा २
तुम्हारे योधाओंका संहार कर रहा था, तहाँ जानेकी युधिष्ठिरने
तयारी की और वर्षाऋतुमें मेघ जैसे दशों दिशाओंको गुंजा देता
है तैसे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर, रथकी बड़ी भारी झनकारसे पृथ्वीको
गुंजारते हुए, शत्रुओं का संहार करनेमें लगे हुए भीमकी ओर
चले और द्रोणाचार्य इस रात्रिमें पाण्डवोंके और पाञ्चाल

भीमस्य निघ्नतः शत्रून् पार्ष्णिं जग्राह पाण्डवः । द्रोणोऽपि शत्रून् पञ्चालान् व्यधमद्रजनीमुखे ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि सोमदत्तवधे द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

सञ्जय उवाच । वर्त्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयानके । तमसा संवृते लोके रजसा च महीपते ॥ १ ॥ नापश्यन्त रणे योधाः परस्परमवस्थिताः । अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तद्ववृधे महत् ॥ २ ॥ नरनागाश्वमथनं परमं लोमहर्षणम् । द्रोणकर्णकृपा वीरा भीमपार्षतसात्यकाः ॥ ३ ॥ अन्योऽन्यं क्षोभयामासुः सैन्यानि नृपसत्तम । वध्यमानानि सैन्यानि समन्तात्तैर्महारथैः ॥ ४ ॥ तमसा संवृते चैव समन्ताद्विप्रदुद्रुवुः । ते सर्वतो विद्रवंतो योधा विध्वस्त-

राजाओंके योधाओंका संहार करने लगे ॥५२—५५ ॥ एकसौ बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६२ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा कि–अन्धकार और धूलसे पृथ्वी ढक रही थी उस समय दोनों ओर ऐसा भयंकर युद्ध हो रहा था कि–॥ १ ॥ रणभूमिमें खड़े हुए योधा एक दूसरेको देख भी नहीं सकते थे, वीर क्षत्रिय योधा अपना२ नाममात्र कहनेसे और अनुमानसे ही हाथी, घोड़े और पदातियों का संहार कर रोमाञ्चजनक युद्ध कर रहे थे, वह युद्ध अब जोर पकड़ने लगा, हमारे पक्षके वीर द्रोण,कर्ण, कृपाचार्य और शत्रुपक्षके भीमसेन, पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्न और सात्यकि ॥२॥३॥ ये बहुतसे शूर युद्धमें प्रवृत्त होकर एक दूसरेकी सेनाओंको क्षुब्ध करते थे, हे नृपसत्तम ! सेनाएँ धूल तथा अन्धकारसे ढक गईं और चारों ओर से महारथियोंके हाथसे नष्ट होने लगीं, तब वीर दिशाओंमेंको भागने लगे, उनके नेत्र विह्वल होगए और वे चारों ओर दौड़ने लगे ॥४॥५॥ उनमें बहुतसे योधा मर गये; तुम्हारे पुत्रके

चेतनाः ॥५॥ अहन्यन्त महाराज धावमानाश्च संयुगे । महारथसहस्राणि जघ्नुरन्योऽन्यमाहवे ॥६॥ अन्धे तमसि मूढानि पुत्रस्य तव मन्त्रिते । ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनागोपाश्च भारत । व्यमुह्यन्त रणे तत्र तमसा संवृते सति ॥ ७ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्निहतौजसाम् । अन्धे तमसि मग्नानामासीत् किं वो मनस्तदा ॥ ८ ॥ कथं प्रकाशस्तेषां वा मम सैन्यस्य वा पुनः । बभूव लोके तमसा तथा सञ्जय संवृते ॥ ९ ॥ सञ्जय उवाच । ततः सर्वाणि सैन्यानि हतशिष्टानि यानि वै । सेनागोप्तॄनथादिश्य पुनर्व्यूहमकल्पयत् ॥ १० ॥ द्रोणं पुरस्ताज्जघने तु शल्यस्तथा द्रौणिः कृतवर्मा सौबलश्च ।

अन्यायके कारण, गाढ़ अन्धकार होनेसे दिङ्मूढ़ बनेहुए सहस्रों महारथी सहस्रों महरथियोंके हाथसे मारेगए ॥ ६ ॥ अन्धेरेसे रणभूमि भर गई, उस समय सेनाएँ और सेनापति बड़ी भारी घबड़ाहटमें पड़ गए थे ॥७॥ धृतराष्ट्रने बूझा कि–हे संजय! पाण्डवोंने हमारे पक्षके योधाओंको इस प्रकार दुःखी करके पराक्रमहीन कर डाला, तब गाढ़ अंधकारमें खड़े हुए तुम्हारे मनमें उस समय कैसे २ विचार उठे थे तथा मेरे और पाण्डव पक्षके योधाओंको गाढ़ अंधकारसे भरी हुई पृथ्वीपर किस प्रकार प्रकाश मिला था; यह मुझे बता ॥ ८–९ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया कि–हे महाराज ! दुर्योधनने सब सेनापतियोंको आज्ञा देकर मरनेसे बची हुई सब सेनाओंको पीछे व्यूहरचनासे खड़ी कर दिया ॥ १० ॥ उस व्यूहके मुहाने पर द्रोण, पिछले भागमें शल्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और शकुनि खड़े होगए और राजा दुर्योधन उस रात्रिमें अपने आप चारों ओर घूमर कर सब सेनाकी रक्षा कर रहा था, शत्रुके ऊपर चढ़ाई करनेसे पहिले उसने

स्वयश्च सर्वाणि बलानि राजन् राजाभ्ययाद्रोपयन् वै निशायाम् ११
उवाच सर्वांश्च पदातिसंघान् दुर्योधनः पार्थिव सान्त्वपूर्वम् । उत्सृज्य
सर्वे परमायुधानि गृह्णीत हस्तैर्ज्वलितान् प्रदीपान् ॥ १२ ॥ ते
चोदिताः पार्थिवसत्तमेन ततः प्रहृष्टा जगृहुः प्रदीपान् । देवर्षि-
गन्धर्वसुरर्षिसंघा विद्याधराश्चाप्सरसां गणाश्च ॥ १३ ॥ नागाः
सयक्षोरगकिन्नराश्च हृष्टा दिविस्था जगृहुः प्रदीपान् । दिग्दैवते-
भ्यश्च समापतन्तोऽदृश्यन्त दीपाः ससुगन्धितैलाः ॥ १४॥ विशेष
तो नारदपर्वताभ्यां सम्बोध्यमानाः कुरुपुङ्गवार्थम् । सा चैव भूयो
ध्वजिनी विभक्ता व्यरोचताग्निप्रभया निशायाम् ॥ १५ ॥ महा-
धनैराभरणैश्च दीप्तैः शस्त्रैश्च दिव्यैरभिसम्पतद्भिः । रथे रथे पञ्च
विदीपिकास्तु प्रदीपिकास्तत्र गजे त्रयश्च १६ प्रत्यश्वमेकश्च महाप-
दीपः कृतस्तु तैः पाण्डवकौरवेयैः।क्षणेन सर्वे विहिताः प्रदीपा व्या-

---

पैदलोंको धीरज देकर कहा कि–"तुम सब आयुधोंको छोड़
कर हाथोंमें जलती हुई मशालें उठा लो" ॥११—१२॥ महा-
राज दुर्योधनकी आज्ञा होते ही पैदलोंने प्रसन्न होकर हाथमेंके
श्रेष्ठ शस्त्रोंको छोड़ कर प्रज्वलित दीपकोंको उठा लिया, कौरव
पाण्डवोंके इस युद्धको देखनेके लिये आये हुए देवर्षि विद्याधर,
गन्धर्व अप्सरा ॥१३ ॥ नाग, यक्ष, सर्प किन्नर और दिक्पाल
भी नारद और पर्वत मुनिके सूचना देने पर सुगंधित तैलके
दीपकोंको लेकर आकाशमें खड़े हो गए ॥ १४ ॥ दीपकोंकी
कान्तिसे रात्रिके समय विभागानुसार खडी हुई कौरवोंकी सेना
बहुमूल्य आभूषणोंसे तथा आकाशमें चलते हुए चमकीले दिव्य
शस्त्रोंके प्रकाशसे बहुत ही दिपने लगी कौरवोंने प्रत्येक रथके पास
पाँच२ और प्रत्येक हाथीके सामने तीन २ दीपक रक्खे
थे॥१५–१६प्रत्येक घोडेके पास एक२ बडे दीपकका प्रबन्ध किया
गया था इस प्रकार दीपकोंसे तुम्हारी सेना झलझला रही थी१७

दीपयन्तो ध्वजिनीं तवाशु ॥१७॥ सर्वान्तु सेनां व्यतिसेव्यमानाः पदातिभिः पावकतैलहस्तैः । प्रकाश्यमाना ददृशुर्निशायां यथान्तरीक्षे जलदास्तडिद्भिः । १८ ॥ प्रकाशितायान्तु ततो ध्वजिन्यां द्रोणोऽग्निकल्पः प्रतपन् समन्तात् । रराज राजेन्द्र सुवर्णवर्मा मध्यंगतः सूर्य इवांशुमाली ॥ १९ ॥ जाम्बूनदेष्वाभरणेषु चैव निष्केषु शुद्धेषु शरासनेषु । पीतेषु शस्त्रेषु च पावकस्य प्रतिप्रभास्तत्र तदा बभूवुः ॥ २० ॥ गदाश्च शैक्याः परिघाश्च शुभ्रा रथेषु शक्त्यश्च विवर्त्तमानाः । प्रतिप्रभारश्मिभिराजमीढ पुनः पुनः सञ्जनयन्ति दीपान् ॥२१॥ छत्राणि वालव्यजनानि खड्गा दीप्ता महोल्काश्च तथैव राजन् । व्याघूर्णमानाश्च सुवर्णमाला व्यायच्छतां तत्र तदा विरेजुः ॥ २२ ॥ अस्त्रप्रभाभिश्च विराजमानं दीपप्रभाभिश्च तदा बलन्तत् । प्रकाशितञ्चाभरणप्रभाभिर्भृशं प्रकाशं नृपते

पैदल हाथमें तैलके दीपक लेकर रथ आदिके आगे २ चलते थे, अतः आकाशमें बिजली चमकने पर जैसे मेघ शोभा पाते हैं, तैसे ही दीपकोंसे वे योधा शोभा पारहे थे ॥ १८ ॥ कौरवोंकी सेनामें मशालोंसे प्रकाश होगया, उस समय द्रोण सुवर्णका कवच पहिर कर चारों ओर अपने प्रतापको दिखा रहे थे, वह सेनाके मध्यमें किरणमाली सूर्यकी समान शोभा पारहे थे ॥ १९ ॥ सुवर्णके आभूषणोंमें, वाजूबन्दोंमें, चमकते हुए धनुषोंमें, पानी पिलाए हुए शस्त्रोंमें अग्निका प्रतिबिंब पड़ रहा था २० लोहेकी गदायें, चमकते हुए परिघ और रथशक्तिएँ योधाओंके हाथोंमें घूम रहीं थीं, उनके प्रतिबिम्बकी किरणोंसे अनेकों दीपकोंका भान होता था ॥ २१ ॥ युद्ध करने वाले योधाओंके रणभूमिमें उड़ते हुए छत्र, बालोंके पंखे, चमकती हुई तलवारें, बड़े२ दीपक और सुवर्णकी मालाएँ इस समय टेढी तिरछी गिर कर शोभा पारहीं थी ॥ २२ ॥ और शस्त्रोंकी कान्तिसे, दीपकोंके प्रकाशसे

बभूव ॥ २३ ॥ पीतानि शस्त्राण्यसृगुक्षितानि । वीरावधूतानि तनुच्छदानि । दीप्तां प्रभां प्राजनयन्त तत्र तपात्यये विद्युदिवान्तरिक्षे ॥२४॥ प्रकम्पितानामभिघातवेगैरभिघ्नताञ्चापततां जवेन । वक्त्राण्यकाशन्त तदा नराणां वाय्वीरितानीव महाम्बुजानि ॥२५॥ महावने दारुमये प्रदीप्ते यथा प्रभा भास्करस्यापि नश्येत् । तथा तदासीद् ध्वजिनी प्रदीप्ता महाभया भारत भीमरूपा ॥ २६ ॥ तत् संप्रदीप्तं बलमस्मदीयं निशम्य पार्थास्त्वरितास्तथैव । सर्वेषु सैन्येषु पदातिसंघानचोदयंस्तेऽपि चक्रुः प्रदीपान् ॥ २७ ॥ गजे गजे सप्त कृताः प्रदीपा रथे रथे चैव दश प्रदीपाः । द्वावश्वपृष्ठे परिपार्श्वतोऽन्ये ध्वजेषु चान्ये जघनेषु चान्ये ॥ २८ ॥ सेनासु सर्वासु च

तथा आभूषणोंकी कान्तिसे प्रकाशित होती हुई सेना बहुत ही दमक रही थी॥२३॥ चौमासेमें जैसे बिजली चमके, तैसे ही पानी पिलायेहुए शस्त्र तथा रक्तसे भरेहुए वीरपुरुषोंके शरीरोंके कवच झलझलाते हुए कान्ति फैलारहे थे ॥२४॥ मारके वेगसे कांपते हुए, सामने प्रहार करनेवाले और चढ़ाई करनेवाले योधाओंके मुख वायुसे काँपतेहुए बड़े२ कमलोंकी समान दीखते थे ॥ २५ ॥ लकड़ीसे भरेहुए महावनके जल उठनेपर सूर्यकी कान्ति जैसे निस्तेज होजाती है, तैसे ही हमारी महाभयङ्कर सेना भी उस घोर रात्रिमें दीपकोंसे बहुत ही प्रदीप्त होरही थी ॥ २६ ॥ दीपकोंके कारण हमारी सेनाको बहुत ही प्रकाशित होतीहुई देखकर, पांडवों ने भी तुरन्त ही पैदलोंको दीपक जलानेकी आज्ञा दी, उन्होंने सब सेनाओंमें दीपक बाल दिये ॥ २७ ॥ उनकी सेनामें प्रत्येक हाथीके पास सात२ दीपकोंका प्रबन्ध किया गया था, प्रत्येक रथके आगे दश२ दीपक बाले गए थे तथा प्रत्येक घोड़ोंकी पीठ पर दो २ दीपक रक्खे गए थे, बहुतसे दीपक दोनों भुजाओं पर, बहुतसे दीपक ध्वजाके आगे और बहुतसे दीपक पीछेकी

पार्श्वतोऽन्ये पश्चात् पुरस्ताच्च समन्ततश्च । मध्ये तथान्ये ज्वलिताग्निहस्ता व्यदीपयन् पाण्डसुतस्य सेनाम् ॥२९॥ मध्ये तथान्ये ज्वलिताग्निहस्ताः सेनाद्वयेऽपि स्म तदा विचेरुः । सर्वेषु सैन्येषु पदातिसंघाः सम्मिश्रिता हस्तिरथाश्ववृन्दैः ॥ ३० ॥ व्यदीपयंस्ते ध्वजिनीं प्रदीप्तास्तथा वलं पाण्डवेनाभिगुप्तम् । तेन प्रदीप्तेन तथा प्रदीप्तं वलं तवासीद्बलवद्बलेन ॥३१॥ भाः कुर्वता भानुमता गृहेण दिवाकरेणाग्निरिवाभितप्तम् । तयोः प्रभाः पृथिवीमन्तरिक्षं सर्वा व्यतिक्रम्य दिशश्च वृद्धाः ॥ ३२ ॥ तेन प्रकाशेन भृशं प्रकाशं वभूव तेषां तव चैव सैन्यम् । तेन प्रकाशेन दिवं गतेन सम्बोधिता देवगणाश्च राजन् ॥ ३३ ॥ गन्धर्वयक्षाः सुरसिद्धसंघाः समागमन्नप्सरसश्च सर्वाः । तद्देवगन्धर्वसमाकुलञ्च यक्षासुरेन्द्रा-

---

ओर रक्खे गये थे ॥२८॥ वहुतसे पैदल हाथमें बलतेहुए दीपक लेकर सम्पूर्ण सेनाके पार्श्वभागमें चलते थे, तथा वहुतसे आगे चलते थे और वहुतसे पीछेकी ओर चलते थे तैसे ही वहुतसे चारों ओर घूमरहे थे और वहुतसे सेनाके मध्यभागमें खड़े थे, इसप्रकार पाण्डवोंने अपनी सेनाको दीपकोंसे प्रदीप्त कर दिया २९ इससमय कितने ही योधा दोनों सेनाओंके बीचके भागमें फिर रहे थे, इस लडाईके समय दोनों सेनाओंके पैदल, हाथीसवार, हाथी और घुडसवार एक दूसरेके साथ मिलगए थे ॥३०॥ उन जगमग करतेहुए दीपकोंने पाण्डवोंकी सेनाको जगमगा दिया, तुम्हारी वलवती सेना भी दीपकोंसे जगमगा रही थी, दोनों ओरके दीपकोंकी कान्ति, वृद्धि पाकर पृथ्वी आकाश, अन्तरिक्ष और सब दिशाओंमें भर गई ॥३१॥ दीपकोंके प्रकाशसे तुम्हारी तथा पाण्डवोंकी सेनामें वडा प्रकाश फैलरहा था, और हे राजन्! स्वर्ग तक पहुँचेहुए उन दीपकोंके प्रकाशसे देवता, गंधर्व, सिद्ध, यक्ष और अप्सराओंके समूहोंको भी कौरव पाण्डवोंके युद्धकी

प्सरसां गणैश्च ॥३४॥ हतैश्च योधैर्दिवमारुहद्भिरायोधनं दिव्यकल्पं बभूव । रथाश्वनागाकुलदीपदीप्तं संरब्धयोधं हतविद्रुताश्वम् ॥३५॥ महद्बलं व्यूढनराश्वनागं सुरासुरव्यूहसमं बभूव । तच्छक्तिसंघाकुलचण्डवातं महारथाभ्रं गजवाजिघोषम् ॥ ३६ ॥ शस्त्रौघवर्षं रुधिराम्बुधारं निशि प्रवृत्तं रथदुर्दिनं तत् । तस्मिन्महाग्निप्रतिमो महात्मा सन्तापयन् पाण्डवान् विप्रमुख्यः । गभस्तिभिर्मध्यगतो यथार्को वर्षात्यये तद्वदभून्नरेन्द्र ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दीपोद्योतने त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

खबर होगई, इस कारण वे भी युद्ध देखनेके लिये तहाँ आये, इस समय जो शूर रणमें मरण पाते थे, वे सीधे स्वर्गको जाते थे, देवता, गन्धर्व, राक्षस और अप्सराओंकी टोलियोंसे रणक्षेत्र भरगया था, इस कारण रणभूमि देवभूमिकी समान शोभा पारही थी, रात्रिके समय हाथी, घोडोंसे भरपूर, दीपकोंसे प्रकाशित होताहुआ, क्रोधमें भरेहुए योधाओंवाला, मरेहुए और भागतेहुए योधाओंसे भराहुआ, हाथी, घोड़े और रथोंकी व्यूह रचनावाला बडाभारी सेनादल दैवासुरव्यूहकी समान दीखता था, हे राजेन्द्र ! इस रात्रियुद्धमें रथरूपी दुर्दिन होगया था, योधाओंके समुदायरूप शक्तिकी आँधी चलरही थी, महारथीरूप बादल घिर २ कर आरहे थे, घोड़ोंकी हिनहिनाहट और हाथियोंकी चिंघाडरूप गर्जनाएँ होरही थीं, शस्त्रोंके समूहकी प्रहाररूप वृष्टि होरही थी, रुधिररूपी जलकी धाराएँ वरस रही थीं, शरद् ऋतुमें किरणमाली सूर्य जैसे दूसरोंको तपाता है, तैसे ही ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ बडेभारी अग्निकी समान महात्मा द्रोणाचार्य पाण्डवोंको तपा रहे थे ॥३२-३७॥ एकसौ तरेसठवाँ अध्याय समाप्त १६३.

सञ्जय उवाच । प्रकाशिते तदा लोके रजसा तमसावृते । समाजग्मुरथो वीराः परस्परवधैषिणः ॥ १ ॥ ते समेत्य रणे राजन् शस्त्रप्रासासिधारिणः । परस्परमुदैक्षन्त परस्परकृतागसः ॥ २ ॥ प्रदीपानां सहस्रैश्च दीप्यमानैः समन्ततः । रत्नाचितैः स्वर्णदण्डैर्गन्धतैलावसिञ्चितैः ॥ ३ ॥ देवगन्धर्वदीपाद्यैः प्रभाभिरधिकोज्ज्वलैः । विरराज तदा भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव भारत ॥ ४ ॥ उल्काशतैः प्रज्वलितै रणभूमिर्व्यराजत । दह्यमानेव लोकानामभावे च वसुन्धरा ॥ ५ ॥ व्यदीप्यन्त दिशः सर्वाः प्रदीपैस्तैः समन्ततः । वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृता वृक्षाः इवाबभुः ॥ ६ ॥ असज्जन्तः तदा वीरा वीरेष्वेव पृथक् पृथक् । नागा नागैः समाजग्मुस्तुरगा हयसादिभिः ॥ ७ ॥ रथा रथिवरैरेव समाजग्मुर्मुदा युताः । तस्मिन्

सञ्जयने कहा कि–हे राजन् धृतराष्ट्र! दीपकोंके प्रज्वलित होतेही धूल तथा अँधेरेसे भरी हुई रणभूमिमें प्रकाशही प्रकाश फैलगया और एक दूसरेका अपराध करनेवाले दोनों सेनाओंके वीर योधा प्रास, तलवार आदि शस्त्र लेकर एक दूसरेको मारनेके लिये रणभूमिमें आकर एक दूसरेके सामने टकटकी बाँधकर देखने लगे ॥ १–२ ॥ हे भरतवंशी राजन्! रत्नोंसे जड़े सुवर्णकी दीवटों पर रक्खे हुए, सुगन्धित तेलके सहस्रों झपझपाते हुए तथा देवता और गंधर्वोंसे अधिक कान्ति वाले दीपकोंसे रणभूमि नक्षत्रोंसे शोभा पाने वाले आकाशकी समान दिपने लगी ३–४ जगत्के प्रलयके समय पृथ्वी जैसे जलती हुई दिखाई देती है, तैसे ही जलती हुई मशालोंके प्रकाशसे झलझलाती हुई रणभूमि दिप रही थी; वर्षाकालमें पतंगोंसे भरे हुए वृक्ष जैसे शोभा पाते हैं, तैसेही चारों ओर जलते हुए दीपकोंसे सकल दिशाएँभी प्रकाशित होरही थीं ॥ ५–६ ॥ हे राजन्! तुम्हारे पुत्रकी आज्ञा होने पर उस रात्रिमें वीर पुरुष पृथक् २ वीरपुरुषोंके साथ युद्ध करनेलगे;

रात्रिमुखे घोरे पुत्रस्य तव शासनात् ॥ ८ ॥ चतुरङ्गस्य सैन्यस्य सम्पातश्च महानभूत् । ततोऽर्जुनो महाराज कौरवाणामनीकिनीम् ॥ ९ ॥ व्यधमत्त्वरया युक्तः क्षपयन् सर्वपार्थिवान् । धृतराष्ट्र उवाच । तस्मिन् प्रविष्टे संरब्धे मम पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ १० ॥ अमृष्यमाणे दुर्द्धर्षे किं व आसीन्मनस्तदा । किममन्यन्त सैन्यानि प्रविष्टे परतापने ॥ ११ ॥ दुर्योधनश्च किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत । के चैनं समरे वीरं प्रत्युद्ययुररिन्दमाः ॥ १२ ॥ द्रोणश्च के व्यरक्षन्त प्रविष्टे श्वेतवाहने । केऽरक्षन् दक्षिणञ्चक्रं के च द्रोणस्य सव्यतः ॥ १३ ॥ के पृष्ठतोऽन्वरक्षन्त वीरा वीरस्य युध्यतः । के पुरस्तादगच्छन्त निघ्नतः शात्रवान् रणे ॥ १४ ॥ यत् प्राविश-

हाथीसवार हाथीसवारोंके साथ, घुडसवार घुडसवारोंके साथ, रथी रथियोंके साथ और पैदल पैदलोंके साथ लडनेलगे, चतुरङ्गिनी सेनामें वडाभारी संहार होनेलगा, हे महाराज ! इस समय अर्जुन वेगमें भरगया और वह कौरवोंकी सेना तथा कौरवोंके सव राजाओंका संहार करनेलगा ॥ ७–९ ॥ धृतराष्ट्रने बूझा, हे सञ्जय ! कोपमें भरेहुए किसीको न सहनेवाले दुराधर्ष अर्जुनने जव मेरी सेनामें प्रवेश किया, तव तुम्हारे मनमें कैसे२ विचार उठे थे और शत्रुओंका दमन करनेवाला अर्जुन जव तुम्हारी सेनामें घुसगया तव तुमने क्या किया था ॥ १०–११ ॥ दुर्योधनने भी उस समय क्या करनेका विचार किया था, युद्धमें शत्रुओंका दमन करनेवाले कौन२ शूर उस शूरवीरके सन्मुख गये थे ।१२। अर्जुनके सेनामें घुसजाने पर द्रोणके दायें तथा वायें पहियेकी रक्षा कौन २ कररहे थे ? ॥१३॥ जव द्रोण रणके मुहाने पर खडे हो शत्रुओंका संहार कररहे थे तव कौन२ वीर उनके पीछे रहकर उनकी पीठरक्षा करते थे और रणमें शत्रुओंका संहार करनेवाले द्रोणके रथके आगे कौन२ वीरपुरुष चलते थे ॥१४॥ महाधनुर्धर

न्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः । नृत्यन्निव नरव्याघ्रो रथमार्गेषु वीर्यवान् ॥ १५ ॥ यो ददाह शरैर्द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजान् । धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ १६ ॥ अव्यग्रानेव हि परान् कथयस्यपराजितान् । हृष्टानुदीर्णान् संग्रामे न तु सञ्जय मामकान् ॥ १७ ॥ हतांश्चैव विदीर्णांश्च विप्रकीर्णांश्च शंससि । रथिनो विरथांश्चैव कृतान् युद्धेषु मामकान् ॥ १८ ॥ सञ्जय उवाच । द्रोणस्य मतमाज्ञाय योद्धुकामस्य तां निशाम् । दुर्योधनो महाराज वश्यान् भ्रातॄनभाषत ॥ १९ ॥ कर्णं च वृषसेनञ्च मद्रराजं च कौरव । दुर्द्धर्षं दीर्घबाहुञ्च ये च तेषां पदानुगाः ॥ २० ॥ द्रोणं यत्ताः पराक्रान्ताः सर्वे रक्षन्तु पृष्ठतः । हार्दिक्यो दक्षिणञ्चक्रं शल्यश्चैवोत्तरं तथा ॥ २१ ॥ त्रिगर्त्ता-

---

पराक्रमी और अजित द्रोणाचार्य, रथोंके मण्डलमें नृत्य करते हों तैसे शीघ्रतासे पांचाल राजाओंकी सेनामें पहुँच गए और उन्होंने कोपमें आकर धूमकेतुकी समान बाण मारकर पाञ्चाल राजाओंके रथियोंको जलाकर भस्म करडाला, तो भी द्रोणाचाय रणमें कैसे मारे गए ! हे सूत ! तू संग्राममें जैसे शत्रुपक्षके योधाओंको धैर्यवाले, विजयी, प्रसन्न मनवाले तथा अभ्युदयवाले कहकर उनका वर्णन करता है, तैसे मेरे पक्षके योधाओंका वर्णन नहीं करता, किन्तु मेरे योधाओंको तो तू नष्टहुए कटकर मारेगए और विदीर्ण हुए कहता है तथा कहता है कि—रथी रथरहित होगये, अतः जो सच्ची बात हो उसको मुझसे कह ॥१५-१८॥ सञ्जयने कहा, कि—हे महाराज ! दुर्योधनने उस रात्रिमें युद्ध करनेकी इच्छावाले द्रोणाचार्यका मत लेकर अपनी अधीनतामें रहनेवाले भाइयोंसे तथा कर्णसे, वृषसेनसे ,मद्रराजसे, महाबाहु दुर्धर्षसे तथा उनके सेवकोंसे कहा कि—"तुम बडी सावधानीके साथ युद्ध करनेमें लग जाओ और द्रोणाचार्यको पीछेसे रक्षा करो, कृतवर्मा द्रोणके

नाञ्च ये शूरा हतशिष्टा महारथाः । तांश्चैव पुरतः सर्वान् पुत्रस्ते समचोदयत् ॥ २२ ॥ आचार्यो हि सुसंयत्तो भृशं यत्ताश्च पाण्डवाः । तं रक्षथ सुसंयत्ता निघ्नन्तं शात्रवान् रणे ॥ २३ ॥ द्रोणोऽपि बलवान् युद्धे क्षिप्रहस्तः प्रतापवान् । निर्जयेत् त्रिदशान् युद्धे किमु पार्थान् ससोमकान् ॥ २४ ॥ ते यूयं सहिताः सर्वे भृशं यत्ता महारथाः । द्रोणं रक्षत दुर्द्धर्षं धृष्टद्युम्नान्महारथात् २५ पाण्डवेयेषु योधेषु योधं पश्याम्यहं न तम् । यो योधयेद् रणे द्रोणं धृष्टद्युम्नादृते पुमान् ॥ २६ ॥ तस्मात्सर्वात्मना मन्ये भारद्वाजस्य रक्षणम् । स गुप्तः पाण्डवान् हन्यात् सृञ्जयांश्च ससोमकान् ॥ २७ ॥ सृञ्जयेषु च सर्वेषु निहतेषु चमूमुखे । धृष्टद्युम्नं

रथके दायें पहियेकी और शल्य बायें पहियेकी रक्षा करे" १९-२१ फिर त्रिगर्त देशके शूरवीर महारथियोंमेंसे जो मरते२ बचगए थे उन सबको भी दुर्योधनने द्रोणके रथके आगे रहनेकी आज्ञा दी ॥ २२ ॥ तदनन्तर द्रोणाचार्य और पाण्डव लड़नेके लिये भली भाँति तयार होगए, तब तुम्हारे पुत्रने योधाओंसे कहा, कि-द्रोण जिस समय रणमें शत्रुओंका संहार करें उस समय बड़ी सावधानीसे उनकी रक्षा करना ॥२३॥ द्रोणाचार्य बलशाली और प्रतापी हैं तथा उनका हाथ फुर्तीला है, वे युद्धमें देवताओं का भी पराजय कर सकते हैं, फिर उनके सामने सोमक और पाञ्चाल तो किस गिनतीमें हैं ? ॥ २४ ॥ मुझे तुमसे यही कहना है, कि-तुम सब महारथी तत्पर और इकट्ठे होकर पांचालदेशी राजाओंमेंके महारथी धृष्टद्युम्नसे द्रोणकी रक्षा करना ॥ २५ ॥ मैं पाण्डवोंकी सेनामें धृष्टद्युम्नके सिवाय किसी भी ऐसे राजाको नहीं देखता, जो युद्धमें द्रोणके सामने लड़सके ॥२६॥ अतः आप सब सावधान होकर द्रोणकी रक्षा करियेगा, मैं समझता हूँ. कि-उनकी रक्षा करनेसे, वे पाण्डव, सोमक और सृञ्जयवंशी

रणे द्रौणिर्घातयिष्यत्यसंशयम् ॥ २८ ॥ तथार्जुनं रणे कर्णो विजेष्यति महारथः। भीमसेनमहं चापि युद्धे जेष्यामि दीक्षितः २९ शेषांश्च पाण्डवान् योधाः प्रसभं हीनतेजसः। सोऽयं मम जयो व्यक्तो दीर्घकालं भविष्यति ॥ ३० ॥ तस्माद्रक्षत संग्रामे द्रोणमेव महारथम्। इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ३१ ॥ व्यादिदेश तदा सैन्यं तस्मिंस्तमसि दारुणे। ततः प्रववृते युद्धं रात्रौ भरतसत्तम ॥ ३२ ॥ उभयोः सेनयोर्घोरं परस्परजिगीषया। अर्जुनः कौरवं सैन्यमर्जुनश्चापि कौरवाः ॥ ३३ ॥ नानाशस्त्रसमावापैरन्योऽन्यं पर्यपीडयन्। द्रौणिः पाञ्चालराजानं भारद्वाजश्च सृञ्जयान् ॥३४॥ छादयाञ्चक्रिरे संख्ये शरैः सन्नतपर्वभिः। पाण्डुपाञ्चालसैन्यानां कौरवाणाञ्च भारत ॥ ३५ ॥ आसी-

---

राजाओंका संहार करसकेंगे ॥२७॥ रणके मुहाने पर खड़े होकर द्रोणाचार्य सब सृञ्जयोंका नाश करेंगे, तब अश्वत्थामा युद्धमें धृष्टद्युम्नका नाश कर डालेगा, इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ २८ ॥ महारथी कर्ण अर्जुनका नाश करेगा और युद्धकी दीक्षा लेने वाला मैं भीमसेनका नाश करूँगा, बाकी बचे हुए तेजोहीन पाण्डवोंका (हमारे) योधा शीघ्रतासे नाश कर डालेंगे, इसमें संदेह नहीं है, इस प्रकार प्रत्यक्षरीतिसे तो चिरकालतक हमारी ही विजय रहेगी ॥ २९-३० ॥ अतः अब तुम युद्धभूमिमें महारथी द्रोणाचार्यकी रक्षा करो” हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! इस प्रकार कहकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने सेनाको लड़नेके लिये आज्ञा दी, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! तब उस रात्रिके दारुण अंधकारमें सेनाओंमें परस्पर विजयकी इच्छासे घोर युद्ध होने लगा॥३१-३३॥इस युद्धमें अर्जुन भाँति २ के अस्त्रोंसे कौरवोंकी सेनाको पीड़ित करने लगा और कौरव भी नानाप्रकारके शस्त्रोंसे अर्जुनको पीड़ित करनेलगे; अश्वत्थामा पांचाल राजाओंके ऊपर और द्रोणाचार्य सृञ्जय राजा-

न्निष्टानको घोरो निघ्नतामितरेतरम् । नैवास्माभिर्न पूर्वैश्च दृष्टपूर्वन्तथाविधम् ३६ श्रुतं वा यादृशं युद्धमासीद्रौद्रं भयानकम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

सञ्जय उवाच । वर्त्तमाने तथा रौद्रे रात्रियुद्धे विशाम्पते । सर्वभूतक्षयकरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ अब्रवीत् पाण्डवांश्चैव पञ्चालांश्च ससोमकान् । अभिद्रवत संयात द्रोणमेव जिघांसया २ राज्ञस्ते वचनाद्राजन् पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा । द्रोणमेवाभ्यवर्त्तन्त नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ ३ ॥ तं तु ते प्रतिगर्जन्तः प्रत्युद्यातास्त्वमर्षिताः । यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वञ्च संयुगे ॥ ४ ॥ कृतवर्मा तु हार्दिक्यो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् । द्रोणं प्रति समायान्तं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५ ॥ शैनेयं शरवर्षाणि विसृजन्तं सम-

---

ओंके ऊपर नमेहुए पर्व वाले बाणोंकी वृष्टि कर उनको ढकनेलगे और हे भरतवंशी राजन् ! परस्पर युद्ध करते हुए पाण्डव और पांचाल राजे तथा कौरव रणभूमिके ऊपर संहारसूचक घोर शब्द करने लगे, यह युद्ध ऐसा भयानक हुआ था, कि-ऐसा युद्ध न हमने पहिले कभी देखा था और न सुना था ॥ ३४-३७ ॥ एकसौ चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६४ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! प्राणियोंका संहार करने वाला, भयंकर तथा रौद्र रात्रियुद्ध चलनेलगा, उस समय धर्मपुत्र युधिष्ठिरने पांचाल, पाण्डव तथा सोमकोंको आज्ञा दी, कि-तुम द्रोणका नाश करनेके लिये उनपर एकदम टूटपड़ो॥ १-२ ॥ हे राजन् ! युधिष्ठिरके वचनको सुनकर क्रोधमें भरेहुए पांचाल तथा सृञ्जय राजाओंने शक्ति, उत्साह और सत्त्व(मानसिकबल)से द्रोणके ऊपर चढ़ाई की ३-४ मदमत्त हाथी जैसे हाथीके ऊपर झपटता है, तैसे ही युधिष्ठिर ने द्रोणके ऊपर धावा किया, तब हृदीकपुत्र कृतवर्मा उनके सामनेको

न्ततः। अभ्ययात् कौरवो राजन् भूरिः संग्राममूर्धनि ॥ ६ ॥ सहदेवमथायान्तं द्रोणलिप्सुं महारथम् । कर्णो वैकर्त्तनो राजन् वारयामास पाण्डवम् ॥ ७ ॥ भीमसेनमथायान्तं व्यादितास्यमिवान्तकं । स्वयं दुर्योधनो युद्धे प्रतीपं मृत्युमाव्रजत् ॥ ८ ॥ नकुलञ्च युधां श्रेष्ठं सर्वयुद्धविशारदम् । शकुनिः सौबलो राजन् वारयामास सत्वरः ॥ ९ ॥ शिखण्डिनमथायान्तं रथेन रथिनां वरम् । कृपः शारद्वतो राजन् वारयामास संयुगे॥१०॥प्रतिविन्ध्यमथायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः । दुःशासनो महाराज यत्तो यत्तमवारयत्११ भैमसेनिमथायान्तं मायाशतविशारदम् । अश्वत्थामा महाराज राक्षसं संन्यवारयत् ॥ १२ ॥ द्रुपदं वृषसेनस्तु ससैन्यं सपदानु-

बढ़ा ॥ ५ ॥ कुरुकुमार भूरिने संग्रामके मुहानेपर खड़े होकर चारों ओर बाण बरसाते हुए सात्यकिके ऊपर धावा किया ॥६॥ महारथी पाण्डुपुत्र सहदेव द्रोणको शिक्षा (दण्ड) देनेके लिये बढ़ने लगा, हे राजन् ! सूर्यपुत्र कर्ण उसके सामने गया और उसको आगे बढ़नेसे रोकने लगा ॥ ७ ॥ मुख फाड़ेहुए कालकी समान भीमसेन लडनेके लिये चढ़आया, उसकी ओर राजा दुर्योधन स्वयं ही उस कालरूप शत्रुसे लडनेके लिये रणमें उद्यत होगया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! बहुतही फुर्तीला सुबलका पुत्र शकुनि योधाओंमें श्रेष्ठ तथा सब युद्धोंमें कुशल नकुलको रणमेंसे पीछेको हटानेके लिये बढ़ा ! ॥ ९ ॥ हे राजन् ! शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने, रणभूमिमें रथपर बैठकर लडनेके लिये आतेहुए महारथी शिखण्डीको रोका और उसके सामने युद्ध करनेलगे।१०।हे महाराज ! राजा प्रतिविंध्य मयूरकी समान नीले वर्णके घोडोंसे जुते रथमें बैठकर लडनेके लिये आयाथा उसके सामने दुःशासनने सावधान होकर टक्कर ली और उसको रोका॥११॥हे महाराज! सैकड़ों माया जानने वाला भीमसेनका पुत्र घटोत्कच चढ़ आया, उसको अश्वत्थामाने आगे

गम् । वारयामास समरे द्रोणप्रेप्सुं महारथम् १३ विराटं द्रुतमायान्तं द्रोणस्य निधनं प्रति । मद्रराजः सुसंक्रुद्धो वारयामास भारत १४ शतानीकमथायान्तं नाकुलिं रभसं रणे । चित्रसेनो रुरोधाशु शरैर्द्रोणपरीप्सया॥१५॥अर्जुनन्तु युधां श्रेष्ठं प्राद्रवन्तं महारथम् । अलम्बुषो महाराज राक्षसेन्द्रो न्यवारयत् ॥ १६ ॥ ततो द्रोणं महेष्वासं निघ्नंतं शात्रवान्रणे । धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यो हृष्टरूपमवारयत् १७ तथान्यान् पाण्डुपुत्राणां समायातान्महारथान् । तावका रथिनो राजन् वारयामासुरोजसा ॥ १८ ॥ गजारोहा गजैस्तूर्णं सन्निपत्य महामृधे । योधयन्तश्च मृद्नन्तः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१९॥ निशीथे तुरगा राजन् द्रावयन्तः परस्परम् । प्रत्यदृश्यन्त वेगेन पक्ष-

बढ़नेसे रोका ॥१२॥ वृषसेनने युद्धमें द्रोणाचार्यको पकड़नेके लिये सेनासहित चढ़कर आते हुए राजा द्रुपदको आगे बढ़नेसे रोका और हे भरतवंशी राजन्! राजा विराट द्रोणाचार्यका नाश करनेके लिये चढ़आया था, उसको क्रोधमें भरेहुए मद्रराजने आगे बढ़नेसे रोका था ॥ १३-१४ ॥ नकुलपुत्र शतानीक शीघ्रतासे द्रोणचार्यका नाश करनेके लिये बढ़रहा था, उसको चित्रसेनने बाण मारकर रोकदिया ॥ १५ ॥ हे महाराज! योधाओंमें श्रेष्ठ अर्जुन सेनाका संहार करनेके लिये चढ़ आया, उसको राक्षसराज अलम्बुषने रोकना आरंभ कर दिया ॥ १६ ॥ महाधनुषधारी द्रोण हर्षमें भर सेनाका संहार करने पर पिल पड़े, उनको पांचालपुत्र धृष्टद्युम्नने बाधा दी थी ॥ १७ ॥ तथा पाण्डवोंकी ओरके दूसरे जो २ महारथी लड़नेको आये थे उनको तुम्हारी ओरके महारथियोंने बलपूर्वक रोक रक्खा था ॥ १८ ॥ महासंग्राममें हाथी सवार हाथीसवारोंके ऊपर एकाएकी धावाकर लडरहे थे और सैकड़ों तथा सहस्रों व्यक्तियोंका संहार कररहे थे ॥ १९ ॥ हे राजन्! पंखवाले पर्वत जैसे वेगसे आपसमें लड़कर एक-

वन्तो यथाऽद्रयः ॥ २० ॥ सादिनः सादिभिः सार्द्धं पाशशक्त्यृष्टिपाणयः । समागच्छन्महाराज विनदन्तः पृथक् पृथक् ॥ २१ ॥ नरास्तु बहवस्तत्र समाजग्मुः परस्परम् । गदाभिर्मुसलैश्चैव नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥२२॥ कृतवर्मा तु हार्दिक्यो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । वारयामास संक्रुद्धो वेलेवोद्वृत्तमर्णवम् ॥२३॥ युधिष्ठिरस्तु हार्दिक्यं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः । पुनर्विव्याध विंशत्या तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥२४॥ कृतवर्मा तु संक्रुद्धो धर्मराजस्य मारिष । धनुश्चिच्छेद भल्लेन तञ्च विव्याध सप्तभिः ॥ २५ ॥ अथान्यद्धनुरादाय धर्मपुत्रो महारथः । हार्दिक्यं दशभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २६ ॥ माधवस्तु रणे विद्धो धर्मपुत्रेण मारिष । प्राक-

दूसरेको भगाते हैं, तैसे ही अर्धरात्रिमें चले जातेहुए घुडसवार भी वेगसे एक दूसरेके साथ लड़रहे थे और एक दूसरेको भगाते हुए दिखाई देते थे ॥ २० ॥ हे महाराज ! घुडसवार प्रास, शक्ति और ऋष्टियोंको हाथमें लेकर पृथक् २ गर्जना करतेहुए आमने सामने लड़ रहे थे ॥ २१ ॥ वहुतसे पैदल भी गदा, मूसल तथा नानाप्रकारके शस्त्रोंको लेकर परस्पर युद्ध करते थे ॥ २२ ॥ किनारे जैसे वढ़तेहुए समुद्रको रोक लेते हैं तैसे ही कोपमें भरे हुए हृदीकके पुत्र कृतवर्माने धर्मपुत्र युधिष्ठिरको आगे वढ़नेसे रोका ॥ २३ ॥ कि–युधिष्ठिरने पाँच वाण कृतवर्माके मारे और पुनः वीस वाण मारकर कहा, कि–“अरे कृतवर्मा खडा रह ! खडा रह !! कहाँको भागे जाता है” यह सुनकर कृतवर्माको बडा क्रोध चढ़ा, उसने भल्ल नामक वाण मारकर युधिष्ठिरके धनुषको काट डाला, फिर सात वाण मारकर उनको वींधडाला२५महारथी युधिष्ठिरने दूसरा धनुष लेकर कृतवर्माकी छाती और दोनों भुजाओं पर वीस वाण मारे ॥ २६ ॥ इसप्रकार धर्मपुत्रने रणके ऊपर कृतवर्माको वाणोंकी मारसे वींधडाला, तब वह काँप उठा

ऽपत च रोषेण सप्तभिश्चार्दयच्छरैः ॥ २७ ॥ तस्य पार्थो धनुश्छित्वा हस्तावापं निकृत्य तु । प्राहिणोन्निशितान् भल्लान् पञ्च राजञ्छिलाशितान् ॥ २८ ॥ ते तस्य कवचं भित्त्वा हेमचित्रं महाधनम् । प्राविशन् धरणीं भित्त्वा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ २९ ॥ अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् । विव्याध पाण्डवं षष्ट्या सूतं च नवभिः शरैः ॥ ३० ॥ तस्य शक्तिममेयात्मा पाण्डवो भुजगोत्तमाम् । चिक्षेप भरतश्रेष्ठ रथे न्यस्य महद्धनुः ॥ ३१ ॥ सा हेमचित्रा महती पाण्डवेन प्रवेरिता । निर्भिद्य दक्षिणं वाहुं प्राविशद्धरणीतलम् ॥ ३२ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु गृह्य पार्थो महद्धनुः । हार्दिक्यं छादयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥३३॥ ततस्तु समरे शूरो वृष्णीनां प्रवरो रथी । व्यश्व-

---

और हे राजन्! उसने क्रोधमें भरकर धर्मपुत्रके सात वाण मारे २७ युधिष्ठिरने उसके धनुष तथा गौजोंको काटडाला और शिला पर घिसकर तेज कियेहुए पाँच वाण उसके ऊपर छोड़े ॥ २८ ॥ वे वाण सुवर्णके वनेहुए वहुमूल्य कृतवर्माके कवचको फोड़कर, सर्प जैसे विलमें घुसे, तैसे पृथिवीमें घुसगये ॥ २९ ॥ कृतवर्माने निमेषमात्रमें ही दूसरा धनुष उठालिया और साठ वाण युधिष्ठिरके और नौ वाण उनके सारथिके मारे ॥ ३० ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! उदार मनवाले पाण्डुपुत्र धर्मराजने महाधनुषको रथमें रखदिया और कृतवर्माके ऊपर सर्पकी समान उत्तम शक्तिका प्रहार किया ॥३१॥ पाण्डुपुत्रकी मारी हुई शक्ति सुवर्णसे जड़ी हुई थी और वड़ीभारी थी, वह शक्ति कृतवर्माके हाथमें घावकर पृथिवीमें घुस गई ॥ ३२ ॥ फिर धर्मराजने दूसरा धनुष उठाया और नमी हुई गाँठवाले वाण मारकर हृदीकके पुत्र कृतवर्माको ढकदिया ॥ ३३ ॥ तब वृष्णियोंमें श्रेष्ठ शूर महारथी कृतवर्माने आधे निमेषमें ही युधिष्ठिरको रथ, घोड़े और सारथिशून्य कर

सूतरथञ्चक्रे निमेषार्द्धाद्युधिष्ठिरम् ॥ ३४ ॥ ततस्तु पाण्डवो ज्येष्ठः खड्गचर्म समाददे । तदप्यस्य शितैर्भल्लैर्व्यधमन्माधवो रणे ॥ ३५ ॥ तोमरन्तु ततो गृह्य स्वर्णदण्डं दुरासदम् । अप्रैषीत् समरे तूर्णं हार्दिक्यस्य युधिष्ठिरः ॥ ३६ ॥ तमापतन्तं सहसा युधिष्ठिरभुजच्युतम् । द्विधा चिच्छेद हार्दिक्यः कृतहस्तः स्मयन्निव ॥ ३७ ॥ ततः शरशतेनाजौ धर्मपुत्रमवाकिरत् । कवचञ्च रणे क्रुद्धो बाणजालैरवाकिरत् ॥ ३८ ॥ हार्दिक्यशरसञ्छन्नं कवचं तन्महाधनम् । व्यशीर्यत रणे राजंस्ताराजालमिवाम्बरात् ॥ ३९ ॥ स छिन्नधन्वा विरथः शीर्णवर्मा शरार्दितः । अपयातो रथात्तूर्णं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥४०॥ कृतवर्मा तु निर्जित्य धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । पुनर्द्रोणस्य जुगुपे चक्रमेव महारथः ॥४१॥

डाला ॥३४॥ रथरहित हुए पाण्डुके ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिरने ढाल तथा तलवार हाथमें उठा ली, परन्तु कृतवर्माने उसके भी टुकड़े२ करडाले, तदनन्तर युधिष्ठिरने सुवर्णके दण्डेवाला भयङ्कर तोमर लेकर शीघ्रतासे कृतवर्माके मारा३५॥३६परन्तु कृतवर्माका हाथ अस्त्रविद्यामें चढाहुआ था, इस कारण युधिष्ठिरके हाथमेंसे छूट कर वह तोमर जैसे एकाएकी उसके ऊपर बढा कि उसने हँसते२ उसके टुकडे करडाले ! ॥ ३७ ॥ और लडते २ क्रोधमें भरकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरके सौ वाण मारकर उनके कवचको छिन्न।भिन्न करडाला, उस समय हे भरतवंशी राजन् ! आकाशमेंसे जैसे पृथिवीके ऊपर नक्षत्र गिरपड़े,तैसे ही वाणोंके प्रहारसे युधिष्ठिर का कवच चूरा२ हो पृथिवी पर गिरपडा ॥३८–३९॥ धर्मराजका रथ टूटगया, कवच छिन्न भिन्न होगया और वाणोंके प्रहारोंसे उनको पीडा होनेलगी, तब वह रणमेंसे एकदम भागगए और कृतवर्मा धर्मात्मा युधिष्ठिरका पराजय करनेके पीछे महात्मा द्रोणाचार्यके चक्रव्यूहकी रक्षा करनेलगा ॥ ४० ॥ ४१ ॥

सञ्जय उवाच । भूरिस्तु समरे राजन् शैनेयं रथिनाम्वरम् । आपतन्तमपासेधत् प्रवणादिव कुञ्जरम् ॥ १ ॥ अथैनं सात्यकिः क्रुद्धः पञ्चभिर्निशितैः शरैः । विव्याध हृदये तस्य प्रास्रवत्तस्य शोणितम् ॥ २ ॥ तथैव कौरवो युद्धे शैनेयं युद्धदुर्मदम् । दशभिर्निशितैस्तीक्ष्णैरपविध्यद् भुजान्तरे ॥३॥ तावन्योऽन्यं महाराज ततक्षाते शरैर्भृशम् । क्रोधसंरक्तनयनौ दृढे विस्फार्य कार्मुके ॥४॥ तयोरासीन्महाराज शरवृष्टिः सुदारुणा । क्रुद्धयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः ॥५॥ तावन्योऽन्यं शरै राजन् प्रच्छाद्य समवस्थितौ । मुहूर्त्तञ्चैव तद्युद्धं समरूपमिवाभवत् ॥ ६ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज शैनेयः प्रहसन्निव । धनुश्चिच्छेद समरे कौरव्यस्य महात्मनः ॥७॥ अथैनं छिन्नधन्वान नवभिर्निशितैः शरैः । विव्याध हृदये तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥ सोऽतिविद्धो बलवता

सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! भूरिने ढलकाववाले स्थानसे नीचेको उतर कर आतेहुए हाथीकी समान रणमें चढ कर आतेहुए सात्यकिको आगे बढनेसे रोका ॥ १ ॥ और कोपायमान होकर तीक्ष्ण कियेहुए पाँच बाण उसकी छातीमें मारे तब सात्यकिके शरीरमेंसे रक्त चूने लगा ॥ २ ॥ इसके पीछे उसने और दश तीक्ष्ण बाण सात्यकिकी छातीमें मारे ३ हे महाराज! क्रोधसे लाल२ नेत्रकर उन दोनों लडाकोंने धनुषको टंकार कर एक दूसरेके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार करना आरंभ कर दिया, हे महाराज! यमकी समान वे दोनों क्रोधमें भरकर बाण छोड कर एक दूसरे पर अतिदारुण शस्त्रोंकी वृष्टि कररहे थे ४-५ और एक दूसरेको बाणोंसे ढकरहे थे एक मुहूर्ततक तो यह युद्ध समान रीतिसे चला, परंतु पीछेसे कोपमें भरेहुए सात्यकिने मुस्कराकर महात्मा भूरिके धनुषको काट डाला, उसका धनुष काटनेके पीछे तुरत ही उसकी छातीमें नौ बाण तेज मार कर उससे कहा कि-"अरे खडा

शत्रुणा शत्रुतापनः । धनुरन्यत् समादाय सात्वतं प्रत्यविध्यत ९ स विद्ध्वा सात्वतं बाणैस्त्रिभिरेव विशाम्पते । धनुश्चिच्छेद भल्लेन सुतीक्ष्णेन हसन्निव ॥ १० ॥ छिन्नधन्वा महाराज सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः । प्रजहार महावेगां शक्तिं तस्य महोरसि ॥ ११ ॥ स तु शक्त्या विभिन्नाङ्गो निपपात रथोत्तमात् । लोहिताङ्ग इवाकाशाद्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥ १२ ॥ तन्तु दृष्ट्वा हतं शूरमश्वत्थामा महारथः । अभ्यधावत वेगेन शैनेयं प्रति संयुगे ॥ १३ ॥ तिष्ठ तिष्ठेति चाभाष्य सात्यकिं स नराधिप । अभ्यवर्षच्छरौघेण मेरुं वृष्ट्या यथाम्बुदः ॥१४॥ तमापतन्तं संरब्धं शैनेयस्य रथं प्रति । घटोत्कचोऽब्रवीद्राजन्नादं मुक्त्वा महारथः ॥ १५ ॥ तिष्ठ तिष्ठ

रह ! खडा रह !! अब कहाँको भागे जाता है ?॥ ६-८ ॥ इस प्रकार बली शत्रुने भूरिको बाण मारकर घायल किया तब शत्रुको तपाने वाले भूरिने दूसरा धनुष लेकर, उसके ऊपर बाणोंको चढ़ा सात्यकिको मारना आरंभ किया; हे राजन् ! सात्यकिके तीन बाण मारनेके पीछे मुस्करा कर उसने उसके धनुषके भल्ल नामक तीक्ष्ण बाण मार कर दो टुकडे कर डाले ९-१० हे महाराज ! धनुष कटने पर सात्यकिको कोध चढ़ा और वह चिड गया तब उसने भूरिकी विशाल छातीमें महावेगवाली शक्ति मारी ॥ ११ ॥ तुरंत ही भूरिका शरीर फट गया तब प्रकाशवाला चमकता हुआ मंगल का तारा जैसे दैवेच्छासे पृथ्वी पर गिर पड़े तैसे महारथी भूरि रथके ऊपरसे पृथ्वीमें लुढ़क पडा ॥ १२ ॥ उस शूरको मरा हुआ देखकर महारथी अश्वत्थामाने एकदम सात्यकिके ऊपर चढ़ाई की और ॥ १३ ॥ जोरसे कहा कि-"अरे ! सात्यकि ! अब तू कहाँको भागे जाता है खडा रह ! खडा रह !!" इसप्रकार सात्यकिको युद्धका निमन्त्रण देकर, मेघ जैसे मेरुपर्वत पर जलकी वृष्टि करता है, तैसे ही उसने उसके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करना आरंभ कर

न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि । एष त्वां निहनिष्यामि महिषं षण्मुखो यथा ॥१६॥ युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे । इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो राक्षसः परवीरहा ॥ १७ ॥ द्रौणिमभ्यद्रवत् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी । रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद् घटोत्कचः ॥ १८ ॥ रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः । तां बाणवृष्टिमप्राप्तां शरैराशीविषोपमैः ॥ १९ ॥ शातयामास समरे तरसा द्रौणिरुत्स्मयन् । ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मर्मभिर्मभेदिराशुगैः २० समाचिनोद्राक्षसेन्द्रं घटोत्कचमरिन्दमम् । स शरैराचितस्तेन राक्षसो रणमूर्द्धनि ॥ २१ ॥ व्यकाशत महाराज श्वाविच्छल-

दी, कोपमें भरेहुए अश्वत्थामाको सात्यकिके रथके ऊपर चढकर आताहुआ देखकर महारथी घटोत्कच गर्जना करता हुआ बोल उठा ,कि–अरे ओ द्रोणपुत्र ! खडा रह ! खडा रह !! तू अब मेरे सामनेसे जीताहुआ नहीं जाने पावेगा, स्वामी कार्तिकेयने जिस प्रकार महिषासुरको मारडाला था उस ही प्रकार मैं भी तेरा नाश कर डालूँगा ॥१४–१६॥ आज रणाङ्गणमें तेरे युद्धके चावको पूरा करदूँगा इतना कहकर शत्रुका संहार करनेवाले राक्षसने क्रोधसे लाल२ आँखे करलीं, और सिंह जैसे बड़ेभारी हाथीके ऊपर झपटे तैसे घटोत्कच अश्वत्थामाके सामने दौडा और मेघघटा जैसे जलकी धाराओंको बरसावे तैसे घटोत्कच महारथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाके ऊपर धुरेकी समान मोटे बाणों की वृष्टि करनेलगा, अश्वत्थामाने मुस्करा कर उसके सामने विषैले सर्पोंकी समान बाण छोडकर उसके बाणोंकी वृष्टिका देखते२में नाश करडाला और सौ मर्मभेदी तीक्ष्ण बाण मारकर शत्रुओंका दमन करनेवाले राक्षसराज घटोत्कचको अच्छी तरह बींधडाला रणके मुहाने पर खड़ा हुआ राक्षसराज घटोत्कच बाणोंसे छिद गया–इससे वह शललोंसे भरेहुए सेईकी समान

स्थितो यथा । ततः क्रोधसमाविष्टो भैमसेनिः प्रतापवान् ॥ २२ ॥
शरैरवचकर्त्तोग्रैर्द्रौणिं वज्राशनिप्रभैः । क्षुरप्रैरर्द्धचन्द्रैश्च नाराचैः
सशिलीमुखैः ॥ २३ ॥ वराहकर्णैर्नालीकैर्विकर्णैश्चाभ्यवीवृषत् । तां
शस्त्रवृष्टिमतुलां वज्राशनिसमस्वनाम् ॥ २४ ॥ पतन्तीमुपरि क्रुद्धो
द्रौणिरव्यथितेन्द्रियः । सुदुःसहां शरैर्घोरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः २५
व्यधमत् स महातेजा महाभ्राणीव मारुतः । ततोऽन्तरिक्षे बाणानां
संग्रामोऽन्य इवाभवत् ॥ २६ ॥ घोररूपो महाराज योधानां हर्ष-
वर्द्धनः । ततोऽस्त्रसंघर्षकृतैर्विस्फुलिंगैः समन्ततः ॥ २७ ॥ बभौ
निशामुखे व्योम खद्योतैरिव संवृतम् । स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः
प्रच्छाद्य सर्वतः ॥ २८ ॥ प्रियार्थं तव पुत्राणां राक्षसं समवा-

---

दीखता था, महाप्रतापी भीमके पुत्र घटोत्कचने क्रोधमें भरकर वज्र तथा शक्तिकी समान कान्तिवाले उग्र बाण, क्षुरप्र (उस्तरेके आकारवाले) बाण, अर्धचन्द्राकार बाण, नाराच, शिलीमुख (मेंढककेसे मुखवाले) बाण, वाराहकर्ण, नालीक (नलके समान पोले और लम्बे) बाण और विकर्ण आदि बाणोंकी वृष्टि कर अश्वत्थामाको बींधडाला, महावज्रकी समान भयङ्कर गर्जना करतीहुई शस्त्रोंकी अटल वृष्टि अपने ऊपर पडने लगी तो भी अश्वत्थामाके मनमें जरा भी घबडाहट या पीडा नहीं हुई, परंतु पवन जैसे बादलोंकी बड़ी२ घटाओंको छिन्न भिन्न करदेता है, तैसे ही महातेजस्वी अश्वत्थामाने भी–जिसको सहन करना कठिन था–ऐसी बाणोंकी वृष्टिका–दिव्यास्त्रके मंत्रोंसे अभिमंत्रित किये हुए घोर बाण मारकर नाश करडाला, हे महाराज ! इस समय आकाशमें उड़तेहुए बाण, योधाओंके हर्षको बढ़ातेहुए विलक्षण रीतिसे भयङ्कर युद्ध कररहे थे, अर्थात् आपसमें टकरातेहुए उन बाणोंकी टकरसे उत्पन्न होतीहुई चिनगारियें आकाशमें चारोंओर फैलरहीं थीं–इससे सायंकालके समय उड़तेहुए पटबीजनोंसे जैसे

किरत् । ततः प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ॥२९॥ विगाढे रजनीमध्ये शक्रप्रह्लादयोरिव । ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्द्रौणिमाहवे ॥ ३० ॥ जघानोरसि संक्रुद्धः कालज्वलनसन्निभैः । स तैरभ्यायतैर्विद्धो राक्षसेन महाबलः ॥ ३१ ॥ चचाल समरे द्रौणिर्वातनुन्न इव द्रुमः । स मोहमनुसंप्राप्तो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ३२ ततो हाहाकृतं सैन्यं तव सर्वं जनाधिप । हतं स्म मेनिरे सर्वे तावकास्तं विशाम्पते॥३३॥ तन्तु दृष्ट्वा तथावस्थमश्वत्थामानमाहवे । पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ ३४ ॥ प्रतिलभ्य ततः संज्ञामश्वत्थामा महारथः । धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्षणः॥ ३५ ॥ मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ।

आकाश छा जाय-तैसे उन चिनगारियोंसे आकाश भररहा था अश्वत्थामा तुम्हारे पुत्रका हित करनेके लिये राक्षसके ऊपर बाणोंकी बड़ीभारीवृष्टि करनेलगा और उसने दिशाओंको बाणोंसे भरदिया, कुछ समयके पीछे फिर घोर अंधकारसे भरी आधी रात होने पर प्रह्लाद और इन्द्रके युद्धकी समान, राक्षस और अश्वत्थामामें (वेगसे) युद्ध चलनेलगा, जब घटोत्कचने लड़ते २ क्रोधमें भरकर कालकी समान दश तीक्ष्ण बाणोंसे अश्वत्थामाको बींध डाला; तब आँधीके झोंकेसे हिलते हुए वृक्षकी समान अश्वत्थामा भी रणमें काँपउठा, वह क्षण भरमें मूर्छित हो ध्वजाका दण्डा पकड़ रथमें बैठ गया ॥ १७-३२ ॥ हे राजन् ! अश्वत्थामाको मूर्छित हुआ देखकर तुम्हारी सब सेना तथा तुम्हारे सब पुत्र हाहाकार करने लगे और शत्रुपक्षके पाञ्चाल राजे और सृञ्जय राजे हर्षनाद करने लगे ॥३३॥३४॥ कुछ देर पीछे शत्रुसंहारकारक अश्वत्थामाको भान हुआ; उसने धनुषके ऊपर बाण चढ़ा कर उसको दायें हाथसे कान तक खेंचा और यमदंडकी समान वह महाभयंकर बाण तुरत घटोत्कचके

यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम् ॥ ३६ ॥ स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य शरोत्तमः । विवेश वसुधामुग्रः सपुङ्खः पृथिवीपते ॥३७॥ सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् । राक्षसेन्द्रः स बलवान् द्रौणिना रणशालिना ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा विमूढं हैडिम्बं सारथिस्तं रणाजिरात् । द्रौणेः सकाशात् सम्भ्रान्तस्त्वपनिन्ये त्वरान्वितः ॥ ३९ ॥ तथा तु समरे विध्वा राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् । ननाद सुमहानादं द्रोणपुत्रो महारथः ॥ ४० ॥ पूजितस्तव पुत्रैश्च सर्वयोधैश्च भारत । वपुषाति प्रजज्वाल मध्याह्ने भास्करो यथा ॥ ४१ ॥ भीमसेनन्तु युध्यन्तं भारद्वाजरथं प्रति । स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ॥ ४२ ॥ तं भीमसेनो दशभिः शरैर्विव्याध भारत । दुर्योधनोऽपि विंशत्या शराणां प्रत्यविध्यत ॥ ४३ ॥ तौ सायकैः प्रतिच्छन्नावदृश्येतां रणाजिरे ।

मारा ॥ ३५–३६ ॥ हे राजन् ! वह सुन्दर पूँछवाला उग्रबाण राक्षसकी छातीको चीर पृथ्वीमें घुसगया ॥ ३७ ॥ रणकुशल अश्वत्थामाने बलवान् राक्षसराजकी छातीको चीर डाला, तब वह मूर्छित हो रथकी बैठकमें गिरपड़ा ॥ ३८ ॥ घटोत्कच, मूर्छित होगया यह जानकर उसका सारथी घबड़ा गया और वह उसको अश्वत्थामाके सामनेसे तुरत ही दूर लेगया ॥३९॥ युद्धमें राक्षसराज घटोत्कचको घायल करनेके पीछे महारथी अश्वत्थामाने बड़ी भारी गर्जना की ॥ ४० ॥ तुम्हारे पुत्रोंने तथा सब योधाओंने उसकी प्रशंसाकी तब मध्याह्नकालमें जैसे सूर्य प्रकाशित होता है; तैसे उसका शरीर अतीव प्रकाशित होने लगा ॥४१॥ घटोत्कचको मूर्च्छा आनेके पीछे भीम द्रोणके रथकी ओर तुम्हारी सेनामेंको होकर जारहा था, तब राजा दुर्योधनने इसके ऊपर तीक्ष्ण बाण छोड़े, भीमसेनने दुर्योधनके दश बाण मारे और दुर्योधनने उसके बीस बाण मारे ॥ ४२–४३ ॥ आकाशमें मेघोंसे ढके हुए सूर्य

मेघजालप्रतिच्छन्नौ नभसीवेन्दुभास्करौ ॥ ४४ ॥ ततो दुर्योधनो राजा भीमं विव्याध पत्रिभिः । पञ्चभिर्भरतश्रेष्ठ तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥४५॥ तस्य भीमो धनुश्छित्वा ध्वजञ्च दशभिः शरैः। विव्याध कौरवश्रेष्ठं नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ४६ ॥ ततो दुर्योधनः क्रुद्धो धनुरन्यन्महत्तरम् । गृहीत्वा भरतश्रेष्ठो भीमसेनं शितैः शरैः । अपीडयद्रणमुखे पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ ४७ ॥ निहत्य तान् शरान् भीमो दुर्योधनधनुश्च्युतान् । कौरवं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ ४८ ॥ दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो भीमसेनस्य मारिष । क्षुरप्रेण धनुश्छित्वा दशभिः प्रत्यविध्यत ॥ ४९ ॥ अथान्यद्धनुरादाय भीमसेनो महाबलः । विव्याध नृपतिं तूर्णं सप्तभिर्निशितैः शरैः ॥ ५० ॥ तदप्यस्य धनुः क्षिप्रं चिच्छेद लघु-

---

और चंद्रमा जैसे फीकी कान्तिवाले दीखें तैसे ही बाणोंसे ढके हुए ये दोनों योधा भी फीकी कान्तिवालेसे दीखते थे ॥४४॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! दुर्योधनने भीमके पाँच बाण मार कर कहा कि—"कहाँ जाता है! खड़ा रह खड़ा रह॥४५। यह सुन भीमने दश बाण मार दुर्योधनके धनुष और ध्वजाको काट डाला; फिर दुर्योधनके नमी हुई गाँठ वाले नब्बे बाण मारे ॥४६॥ इस प्रकार से दुर्योधनको बड़ा क्रोध चढ़ा, भरतवंशमें श्रेष्ठ दुर्योधनने दूसरा बड़ा भारी धनुष ले भीमको सब धनुषधारियोंके सामनेही सने हुए बाणमार कर अच्छी तरह पीड़ित किया ॥ ४७ ॥ परन्तु भीमने दुर्योधनके धनुषमेंसे छूटते हुए बाणोंका नाश कर डाला और क्षुद्रक नामक पच्चीस बाण दुर्योधनके मारे, हे राजन्! तब दुर्योधनको बड़ा क्रोध चढ़ा उसने क्षुरप्र नामक बाण मारकर भीमके धनुषको काट डाला और भीमके दश बाण मारे॥४८-४९॥ महाबली भीमसेनने दूसरा धनुष ले कर तेज किये हुए सात बाण मार कर दुर्योधनको शीघ्रतासे बींध डाला ॥ ५० ॥ और फुर्तीले

हस्तवत्। द्वितीयञ्च तृतीयञ्च चतुर्थं पञ्चमन्तथा ॥५१॥ आत्तमात्तं महाराज भीमस्य धनुराच्छिनत्। तव पुत्रो महाराज जितकाशी मदोत्कटः ॥ ५२ ॥ स तथा छिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः। शक्तिञ्चिक्षेप समरे सर्वपारशवीं शुभाम् ॥५३॥ मृत्योरिव स्वसारं हि दीप्तां वह्निशिखामिव। सीमन्तमिव कुर्वन्तीं नभसोऽग्निसमप्रभाम् ॥ ५४ ॥ अप्राप्तामेव तां शक्तिं त्रिधा चिच्छेद कौरवः। पश्यतः सर्वलोकस्य भीमस्य च महात्मनः ॥५५॥ ततो भीमो महाराज गदां गुर्वीं महाप्रभाम्। विक्षेपाविध्य वेगेन दुर्योधनरथं प्रति ॥ ५६ ॥ ततः सा सहसा वाहांस्तव पुत्रस्य संयुगे। सारथिञ्च गदा गुर्वी ममर्दास्य रथं पुनः ॥५७॥ पुत्रस्तु

हाथ वाले पुरुषकी समान भीमके धनुषको भी दुर्योधनने काट डाला, भीमसेनने दूसरा धनुष लिया उसको भी दुर्योधनने काट डाला; तीसरा, चौथा, पाँचवाँ इसप्रकार जैसे२ भीमसेन नया धनुष लेता गया तैसे२ तुम्हारा विजयी पुत्र उसको काटता गया॥५१-५२॥ इस प्रकार दुर्योधन भीमके धनुषके वारंवार टुकड़े २ करने लगा; तब भीमने सुन्दर आकार वाली, कालकी बहिनकी समान, अग्निकी लपलपाती हुई लपटकी समान आकाशके मस्तक प्रदेशमें सीमन्तकी रचना कर (बाल गूँथ) रही हो, तैसे दीखती हुई, अग्निकी समान कान्तिवाली ठोस लोहेकी शक्ति दुर्योधनके ऊपर फैंकी ॥५३-५४॥ यह शक्ति अभी पासमें न पहुँची थी कि-इतनेमें ही दुर्योधनने सब मनुष्योंके और महात्मा भीमसेनके सामने उसके टुकड़े२ करडाले ॥ ५५ ॥ हे महाराज! तब तुरंत ही भीमने बड़ीभारी कान्तिवाली बड़ी मोटी गदा उठाई और वेगसे दुर्योधनके रथके ऊपर फैंकी ॥ ५६ ॥ उस महागदाका प्रहार होते ही, युद्धमें तुम्हारे पुत्रके रथ, घोड़े और सारथिका चूरा२ होगया ॥ ५७॥ तब तुम्हारा पुत्र दुर्योधन भीमसे डरकर

तत्र राजेन्द्र भीमाद्भीतः प्रणश्य च । आरुरोह रथं चान्यं नन्दकस्य महात्मनः ५८ ततो भीमो हतं मत्वा तव पुत्रं महारथम् । सिंहनादं महच्चक्रे तर्जयन्निशि कौरवान ॥ ५९ ॥ तावकाः सैनिकाश्चापि मेनिरे निहतं नृपम् । ततो विचुक्रुशुः सर्वे हाहेति च समन्ततः ॥ ६० ॥ तेषान्तु निनदं श्रुत्वा त्रस्तानां सर्वयोधिनाम् । भीमसेनस्य नादञ्च श्रुत्वा राजन्महात्मनः ॥ ६१ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा सुयोधनम् । अभ्यवर्त्तत वेगेन यत्र पार्थो वृकोदरः ॥६२॥ पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्च विशाम्पते । सर्वोद्योगेनाभिजग्मुर्द्रोणमेव युयुत्सया ॥६३॥ तत्रासीत् सुमहद्युद्धं द्रोणस्याथ परैः सह । घोरे तमसि मग्नानां निघ्नतामितरेतरम् ६४

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनापयाने षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

चुपचाप महात्मा नन्दकके रथ पर चढगया ५८ तब भीमने तुम्हारे महारथी पुत्रको मरा हुआ समझ लिया और कौरवोंका अपमान करता हुआ बड़ाभारी सिंहनाद करनेलगा ॥५९॥ और तुम्हारे सब योधा रथके टूटनेके साथ ही दुर्योधन मारा गया—यह समझकर चारों ओरसे हाहाकार करनेलगे ॥ ६० ॥ हे महाराज ! तुम्हारे सब योधा भयभीत होगए तथा आर्त्तनाद करनेलगे, यह सुनकर तथा महात्मा भीमकी गर्जनाको सुनकर राजा युधिष्ठिरको भी शंका हुई कि—क्या जाने दुर्योधन मारा ही गया हो ! उस समय पाण्डुके बड़े पुत्र हर्षमें भरकर जहाँ हर्षमें भरा पृथापुत्र भीमसेन खड़ा था तहाँ दौड़ते २ गए ॥६१–६२॥ फिर पाञ्चाल, केकय, मत्स्य और सृञ्जय आदि सब राजे बड़े प्रयत्नसे युद्ध करनेकी इच्छासे द्रोणके ऊपर चढगए ॥६३॥ तब द्रोण और सामने चढकर आतेहुए शत्रुओंमें भयंकर अँधेरेमें बड़ा घोर युद्ध होनेलगा ॥६४॥ एकसौ छियासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६६ ॥

सञ्जय उवाच । सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् । कर्णो वैकर्त्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥ १ ॥ सहदेवस्तु राधेयं विद्ध्वा नवभिराशुगैः । पुनर्विव्याध दशभिर्विशिखैर्नतपर्वभिः ॥ २ ॥ तं कर्णः प्रतिविव्याध शतेन नतपर्वणाम् । सज्यञ्चास्य धनुः शीघ्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ॥३॥ ततोऽन्यद्धनुरादाय माद्रीपुत्रः प्रतापवान् । कर्णं विव्याध विंशत्या तदद्भुतमिवाभवत् ॥४॥ तस्य कर्णो हयान् हत्वा शरैः सन्नतपर्वभिः । सारथिञ्चास्य भल्लेन द्रुतं निन्ये यमक्षयम् ॥ ५ ॥ विरथः सहदेवस्तु खड्गं चर्म समाददे । तदप्यस्य शितैर्बाणैर्व्यधमत् प्रहसन्निव ॥ ६ ॥ ततो गुर्वीं महाघोरां हेमचित्रां महागदाम् । प्रेषयामास संक्रुद्धो वैकर्त्तनरथं प्रति ॥७॥ तामापतन्तीं सहसा सहदेवेन प्रेषिताम् । व्यष्टम्भयच्छरैः कर्णो भूमौ चैनामपातयत् ॥ ८ ॥ गदां विनिहतां दृष्ट्वा सहदेवस्त्वरान्वितः ।

सञ्जयने कहा कि-हे भरतवंशी राजन् ! वैकर्तन कर्णने, युद्धमें द्रोणाचार्यको पकड़नेके लिये चढ़कर आतेहुए सहदेवको रोका १ सहदेवने कर्णके नौ और नमीहुई गांठवाले दूसरे दश बाण मारे ॥ २ ॥ कर्णने नमीहुई गांठवाले सौ बाण सहदेवके मारे और फुर्तीले हाथवाले पुरुषकी समान तुरन्त ही सहदेवके तयार कियेहुए धनुषको काटडाला ॥ ३ ॥ प्रतापी माद्रीपुत्रने तुरन्त ही दूसरा धनुष लेकर कर्णके बीस बाण मारे, यह देखकर सब अचरजमें आगए ॥४॥ फिर कर्णने नमीहुई गाँठवाले बाण मार सहदेवके घोड़ोंको मारडाला और सारथिको भाला मारकर तुरंत यमलोकमें भेज दिया ॥५॥ सहदेव रथरहित होगया, तब उसने हाथमें ढाल तलवार ले ली, कर्णने हँसते२ उसके भी टुकड़े२कर डाले, सहदेवने क्रोधमें भरकर भयङ्कर, सुवर्णकी पत्तरसे जड़ी हुई, एक मोटी गदा कर्णके रथके ऊपर फेंकी; परन्तु कर्णने बाण मारकर अपनी ओर आती हुई उस गदाको रोककर उसको पृथिवीके

शक्तिञ्चिक्षेप कर्णाय तामप्यस्याच्छिनच्छरैः ॥९॥ ससम्भ्रमं ततस्तूर्णमवप्लुत्य रथोत्तमात् । सहदेवो महाराज दृष्ट्वा कर्णं व्यवस्थितम् ॥१०॥ रथचक्रं प्रगृह्याजौ मुमोचाधिरथिं प्रति । तदापतद्वै सहसा कालचक्रमिवोद्यतम् ॥११॥ शरैरनेकसाहस्रैरच्छिनत्सूतनन्दनः । तस्मिंश्छिन्ने रथांगे तु सहदेवस्तु मारिष ॥ १२ ॥ ईषादण्डकयोक्त्रांश्च युगानि विविधानि च । हस्त्यङ्गानि तथाश्वांश्च मृतांश्च पुरुषान् बहून् ॥ १३ ॥ चिक्षेप कर्णमुद्दिश्य कर्णस्तान् व्यधमच्छरैः । स निरायुधमात्मानं ज्ञात्वा माद्रवतीसुतः १४ वार्यमाणस्तु विशिखैः सहदेवो रणं जहौ । तमभिद्रुत्य राधेयो मुहूर्त्ताद्भरतर्षभ ॥ १५ ॥ अब्रवीत् प्रहसन् वाक्यं सहदेवं विशांपते । मा युध्यस्व रणे वीर विशिष्टै रथिभिः सह ॥ १६ ॥ सदृशैर्युध्य

ऊपर तोड़ फोड़ कर गिरा दिया ॥ ६–८ ॥ गदाको नष्ट हुई देखकर सहदेवने कर्णके ऊपर शीघ्रतासे शक्तिका प्रहार किया, कर्णने बाण मारकर उसके भी टुकड़े करडाले ॥९॥ तुरंत सहदेव रथके ऊपरसे नीचे उतर पड़ा, और हाथमें रथका पहिया लेकर रणमें सामने खड़ेहुए कर्णके रथ पर फैंका, वह पहिया कालचक्र की समान ऊँचा उछल कर ज्योंही कर्णके रथपर गिरनेको हुआ कि–॥१०–११॥ इतनेमें ही महात्मा कर्णने सहस्रों बाण मारकर उस पहियेके टुकड़े२ करडाले॥१२॥ फिर सहदेव ईषादण्ड,रास, धुरे, और मरेहुए हाथियोंके अंग, मरेहुए घोड़े और बहुतसे योधाओंकी ल्हाशें उठा२ कर कर्णके मारनेलगा, उनके भी कर्णने बाण मारकर टुकड़े२ करडाले, अब माद्रीपुत्र आयुधरहित होगया तथा बाणोंका प्रहार होने पर लड़ते२ रुकगया, तब वह रणमेंसे भागगया, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तब कर्ण उसके पीछे दौड़ा और खिलखिलाहटके साथ हँसकर सहदेवसे कहा, कि–"अरे ओ अधीर ! अबसे तू अपनेसे विशिष्ट(बड़े)महारथियोंसे रणमें न

माद्रेय वचो मे नाभिशङ्किथाः। अथैनं धनुषोग्रेण तुदन् भूयोऽब्रवीद्वचः ॥१७॥ एषोऽर्जुनो रणे तूर्णं युध्यते कुरुभिः सह। तत्र वा गच्छ माद्रेय गृहं वा यदि मन्यसे ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वा तु तं कर्णो रथेन रथिनाम्बरः। प्रायात् पाञ्चालपाण्डूनां सैन्यानि प्रहसन्निव ॥ १९ ॥ वधं प्राप्तन्तु माद्रेयं नावधीत् समरेऽरिहा। कुन्त्याः स्मृत्वा वचो राजन् सत्यसन्धो महायशाः ॥ २० ॥ सहदेवस्ततो राजन्विमनाः शरपीडितः। कर्णवाक्शरतप्तश्च जीवितान्निरविद्यत ॥ २१ ॥ आरुरोह रथं चापि पांचाल्यस्य महात्मनः। जनमेजयस्य समरे त्वरायुक्तो महारथः ॥ २२ ॥ विराटं सहसेनन्तु द्रोणार्थे समागतम्। मद्रराजः शरौघेण छादयामास

लडना और रे माद्रीपुत्र! लडना तो अपनी बराबरीवाले योधाओं से लडना, मेरे इस कहने पर तुझे शंका नहीं करनी चाहिये" इसप्रकार कह उसके धनुषकी अनी चुभाकर फिर उससे कहने लगा ॥१३-१७॥ हे माद्रीके पुत्र! रणमें अर्जुन जहाँ कौरवोंके साथ लड रहा है तहाँ तू शीघ्रतासे भाग जा अथवा तेरे मनमें आवे तो तू घरको भाग जा" ॥ १८ ॥ इसप्रकार सहदेवको ताना मारकर महारथी कर्ण पाञ्चाल तथा पाण्डवोंकी सेनाको भस्म करता हो तैसे उनकी ओर गया ॥ १९ ॥ हे राजन्! उस समय कर्ण माद्रीके पुत्र सहदेवको मारना चाहता तो मार डालता, परंतु शत्रुओंका नाश करनेवाला महायशस्वी कर्ण सत्यप्रतिज्ञावाला था, उसने कुन्तीको दियेहुए वचनको यादकर सहदेवको मारा नहीं ॥ २० ॥ हे राजन्! सहदेव बाणोंके प्रहारसे तथा कर्णके वचनरूपी बाणोंके प्रहारसे खिन्न होकर मनमें बडा सन्ताप करने लगा, इस समय उसको अपने जीवन पर भी अरुचि होगई २१ कर्णके सामनेसे भागकर वह महारथी, महात्मा पाञ्चालके पुत्र जनमेजयके रथ पर चढ़गया ॥ २२ ॥ इतनेमें ही राजा विराट

धन्विनम् २३ तयोः समभवद्युद्धं समरे दृढधन्विनोः । यादृशं ह्यभवद्राजन् जम्भवासवयोः पुरा॥२४॥ मद्रराजो महाराज विराटं वाहिनीपतिम् । आजघ्ने त्वरितस्तूर्णं शतेन नतपर्वणाम् २५ प्रतिविव्याध तं राजा नवभिर्निशितैः शरैः।पुनश्चैनं त्रिसप्तत्या भूयश्चैव शतेन ह॥२६॥ तस्य मद्राधिपो हत्वा चतुरो रथवाजिनः । सूतं ध्वजञ्च समरे शराभ्यां संन्यपातयत् ॥ २७ ॥ हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः । तस्थौ विस्फारयंश्चापं विमुञ्चन्निशिताञ्छरान् ॥ २८ ॥ शतानीकस्तु तं दृष्ट्वा भ्रातरं हतवाहनम् । रथेनाभ्यपतत्तूर्णं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २९ ॥ शतानीकमथायान्तं मद्रराजो महामृधे । विशिखैर्बहुभिर्विध्वा ततो निन्ये यमक्षयम् ३०

सेनाको साथमें ले द्रोणाचार्यके ऊपर चढ़ आया, मद्रराजने बाणों की बडीभारी वृष्टि कर धनुषधारी विराटको ढकदिया ॥ २३ ॥ और पहिले जम्भासुर तथा इन्द्रमें जैसे युद्ध हुआ था तैसा युद्ध उन दोनों दृढ़ धनुषवालोंमें हुआ ॥ २४ ॥ हे महाराज ! इस युद्धमें मद्रराजने उत्तरोत्तर फुर्तीसे सेनापति राजा विराटके नमी हुई गाँठवाले सौ बाण मारे ॥ २५ ॥ राजा विराटने तेज किये हुए नौ, तिहत्तर तथा सौ इसप्रकार उत्तरोत्तर मद्रराजके बाण मारे ॥ २६ ॥ फिर मद्रराजने बाण मारकर उसके रथके चारों घोड़ोंको मारडाला, दो बाण मारकर रणमें उसके सारथिको मारडाला तथा उसकी ध्वजाको पृथिवी पर गिरा दिया, उस ही समय महारथी राजा विराट,जिसके घोड़े मारे गए थे ऐसे रथमेंसे नीचे कूदपड़ा और पृथिवीके ऊपर खड़ा होकर धनुषपर टंकार दे तीक्ष्ण बाण छोडनेलगा॥२७-२८॥ अपने भाईको रथरहित और भूमि पर खड़ा होकर लडते देख शतानीक सब मनुष्योंके सामने रथ लेकर उसकी सहायता करनेको दौड़ आया ॥२९॥ मद्रराजने शतानीकको चढकर आते देख, इस महासंग्राममें उसको युद्धक्ष

तस्मिंस्तु निहते वीरे विराटो रथसत्तमः । आरुरोह रथं तूर्णं तमेव ध्वजमालिनम् ।।३१।।ततो विस्फार्य नयने क्रोधाद्द्विगुणविक्रमः । मद्रराजरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ।। ३२ ।। ततो मद्राधिपः क्रुद्धः शरेण नतपर्वणा । आजघानोरसि दृढं विराटं वाहिनीपतिम् ।।३३ ।। सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् । कश्मलं चाविशत्तीव्रं विराटो भरतर्षभ ।। ३४ ।। सारथिस्तमपोवाह समरे शरविक्षतम् । ततः सा महती सेना प्राद्रवन्निशि भारत ।।२५ ।। वध्यमाना शरशतैः शल्येनाहवशोभिना । तां दृष्ट्वा द्रवतीं सेनां वासुदेवधनञ्जयौ३६प्रयातौ तत्र राजेन्द्र यत्र शल्यो व्यवस्थितः। तौ तु प्रत्युद्ययौ राजन् राक्षसेन्द्रो ह्यलम्बुषः।।२७। अष्टचक्रसमा-

---

वाण मारकर यमलोकमें भेजदिया ।। ३० ।। वीर बन्धुके मरणके पीछे महारथी विराट, तुरन्त ही उसके ध्वजावाले रथमें बैठगया (शोकसे) उसमें दुगना बल आगया और वह क्रोधसे आँखे फाड मद्रराजके रथके ऊपर तुरन्त ही वाणोंका वृष्टि कर उसको ढकनेलगा, मद्रराजको भी बडा क्रोध चढा उसने सेनापति राजा विराटकी छातीमें नमी हुई गाँठवाला दृढ़ वाण मारा ।३१–३३। हे भरतवंशमें श्रेष्ठ महाराज ! उस वाणके दृढ़ प्रहारसे राजा विराट बहुत ही घायल होगया और बडीभारी वेदना होनेके कारण रथकी बैठकमें गिरपडा, राजा विराट मूर्छित हुआ कि हे महाराज ! उसका सारथि वाणसे घायल हुए राजा विराटको रणमेंसे दूर लेगया (इस विजयसे) रणके ऊपर शोभा पातेहुए मद्रदेशके राजा शल्यने, राजा विराटकी सेनाके सैंकडों वाण मारना आरंभ करदिये, तब उसकी बडीभारी सेना भी रणमेंसे भागनेलगी ! हे राजेन्द्र ! कृष्ण तथा अर्जुन रणमेंसे राजा विराटकी सेनाको भागती हुई देखकर शल्यके सामने गये, तब हे राजन् ! अलम्बुष नामवाला राक्षसोंका राजा घोडोंकी समान मुखवाले भयङ्कर

युक्तमास्थाय महरं रथम् । तुरङ्गवदनैर्युक्तं पिशाचैर्घोरदर्शनैः ३८ लोहितार्द्रपताकं तं रक्तमाल्यविभूषितम् । कार्ष्णायसमयं घोरमृक्षचर्मसमावृतम् ॥ ३९ ॥ रौद्रेण चित्रपक्षेण विवृताक्षेण कूजता । ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजता ॥४०॥ स बभौ राक्षसो राजन् भिन्नाञ्जनचयोपमः । रुरोधार्जुनमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट् ॥४१॥ किरन्बाणगणान्राजन् शतशोऽर्जुनमूर्द्धनि । अतितीव्रं महद्युद्धं नरराक्षसयोस्तदा ॥ ४२ ॥ द्रष्टॄणां प्रीतिजननं सर्वेषां तत्र भारत । गृध्रकाकबलोलूककङ्कगोमायुहर्षणम् ॥ ४३ ॥ तमर्जुनः शतेनैव पत्रिणां समताडयत् । नवभिश्च शितैर्बाणैर्ध्वज-

दिखावके पिशाचोंसे जुतेहुए आठ पहियेवाले बड़ेभारी राजरथमें बैठकर उन दोनोंके सामने लडनेके लिये चढआया ॥३४-३८॥ उसके रथके ऊपर रक्तसे भीगी हुई ध्वजा फहरा रही थी, लाल पुष्पोंकी मालासे उसके रथको सजाया गया था, फौलादकी पत्तरें उसके रथ पर जड रहीं थीं और उसके ऊपर रीछका चमडा मढाहुआ था, उसकी ऊँचे दण्डेवाली ध्वजामें विचित्र पंखोंवाला शोभायमान गिद्धराज चोंचको फाडकर क्रूर शब्द करता हुआ बैठा था–इस कारण उसका रथ भयङ्कर दीखता था ।३९-४०। वह राक्षस जैसे श्यामगिरिमेंसे एक टुकडा टूटकर गिरपडा हो तैसे श्याम रङ्गका था, वह रणमें आया और पर्वतराज हिमाचल जैसे सामनेसे आतेहुए पवनको रोक दे, तैसे उसने सन्मुख आतेहुए अर्जुनको आगे बढनेसे रोका ॥ ४१ ॥ और उसके मस्तक पर सहस्रों बाणोंकी वृष्टि करडाली, मनुष्य और राक्षसमें महाप्रचण्ड युद्ध आरम्भ होगया ॥ ४२ ॥ उस युद्धको देखकर हे भरतवंशी राजन् ! सब दर्शक तथा गिद्ध, कौए, बक, उल्लू, कंक और गीदड बलिदानकी आशासे परमप्रसन्न हुए ॥४३॥ हे भरतवंशी राजन् ! अर्जुनने इस युद्धमें राक्षसके सौ बाण मारे और सजे

ञ्चिच्छेद भारत ॥ ४४ ॥ सारथिञ्च त्रिभिर्बाणैस्त्रिभिरेव त्रिवेणुकम् । धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ४५ ॥ पुनः सज्यं कृतञ्चापं तदप्यस्य द्विधाच्छिनत् । विरथस्योद्यतं खड्गं शरेणास्य द्विधाऽकरोत् ॥ ४६ ॥ अथैनं निशितैर्बाणैश्चतुर्भिर्भरतर्षभ । पार्थोविध्यद्राक्षसेन्द्रं स विद्धः प्राद्रवद्भयात् ॥ ४७ ॥ तं विजित्यार्जुनस्तूर्णं द्रोणान्तिकमुपाययौ । किरञ्छरगणान्राजन् नरवारणवाजिषु ॥४८॥ वध्यमाना महाराज पाण्डवेन यशस्विना । सैनिका न्यपतन्नुर्व्यां वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ ४९ ॥ तेषु तूत्साद्यमानेषु फाल्गुनेन महात्मना । सम्प्राद्रवद्बलं सर्वं पुत्राणान्ते विशाम्पते ॥ ५० ॥ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

हुए नौ बाण मारकर उसकी ध्वजाको काटडाला ॥ ४४ ॥ फिर तीन बाण सारथिके मारे, तीन त्रिवेणुमें मारे और एक बाण मारकर उसके धनुषको काटडाला और चार बाणोंसे उसके चारों घोडोंको मारडाला ॥४५॥ तुरन्त ही उस राक्षसने दूसरा धनुष ठीक किया, उसके भी अर्जुनने दो टुकड़े करडाले, रथरहित हुआ राक्षस तलवार उठाकर अर्जुनके सामने दौडा, अर्जुनने बाण मारकर उसके भी दो टुकड़े करडाले ॥ ४६ ॥ तदनन्तर हे भरतवंशी राजन् ! अर्जुनने तेज कियेहुए चार बाण राक्षसराजके मारे, तब तो वह भयभीत हो रणमेंसे भागगया ॥ ४७ ॥ इसप्रकार राक्षसका पराजय कर अर्जुन तुरन्त ही द्रोणकी ओर लडनेको गया और हमारे पैदल, हाथी और घोड़े आदिके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करनेलगा, हे महाराज ! यशस्वी अर्जुन हमारे सैनिकोंको मारनेलगा कि–पवनसे उखाड़ेहुए वृक्ष जैसे पृथिवी पर गिरपड़ें; तैसे तुम्हारे सैनिक भी पृथिवीके ऊपर गिरनेलगे और सारी सेना रणमेंसे भाग गई ॥ ४८-५० ॥ एकसौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६७ ॥

* ॥ छ ॥

सञ्जय उवाच । शतानीकं शरैस्तीक्ष्णैर्निर्दहन्तञ्चमून्तव । चित्रसेनस्तव सुतो वारयामास भारत ॥ १ ॥ नाकुलिश्चित्रसेनन्तु विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः । स तु तं प्रतिविव्याध दशभिर्निशितैः शरैः ॥ २ ॥ चित्रसेनो महाराज शतानीकं पुनर्युधि । नवभिर्निशितैराजञ्छरैर्विव्याध वक्षसि ॥ ३ ॥ नाकुलिस्तस्य विशिखैर्वर्म सन्नतपर्वभिः । गात्रात् सञ्च्यावयामास तदद्भुतमिवाभवत् ४ सोपेतवर्मा पुत्रस्ते विरराज भृशं नृप । उत्सृज्य काले राजेन्द्र निर्मोकमिव पन्नगः ॥ ५ ॥ ततोस्य निशितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद नाकुलिः । धनुश्चैव महाराज यतमानस्य संयुगे ॥ ६ ॥ स छिन्नधन्वा विरथो विवर्मा च महारथः । धनुरन्यन्महाराज जग्राहारिविदारणम् ॥ ७ ॥ ततस्तूर्णं चित्रसेनो नाकुलिं नतपर्वभिः ।

सञ्जयने कहा कि–हे राजन् धृतराष्ट्र ! नकुलका पुत्र (शतानीक) वाणोंका प्रहार कर तुम्हारी सेनाका फुर्तीसे संहार करनेलगा, उसको तुम्हारे पुत्र चित्रसेनने रोका १ नकुलके पुत्रने चित्रसेनके शीघ्रगामी पाँच वाण मारे, तव उसने भी उसके दश तीक्ष्ण वाण मारे ॥ २ ॥ हे महाराज ! चित्रसेनने फिर शतानीककी छातीमें नौ तेज वाण मारे ॥ ३ ॥ नकुलके पुत्रने नमी हुई गाँठवाले वहुतसे वाण मारकर चित्रसेनके शरीरके ऊपरके कवचको काट डाला.यह कार्य वडा अचरज करनेवाला हुआ था ॥४॥ हे राजन् ! इस समय कवचशून्य हुआ, तुम्हारा पुत्र चित्रसेन रणमें–जैसे कैंचलीरहित सर्प खडा हो-तैसे शोभा पारहा था, कवचरहित होने पर भी आपका पुत्र विजयके लिये प्रयत्न करने लगा, तव नकुलके पुत्रने तेज किये वाण मारकर उसके रथकी ध्वजा तथा धनुषको काट डाला ॥ ५ ॥ हे महाराज!तुम्हारे महारथी पुत्र चित्रसेनका धनुष कट गया और कवच गिरा कि–उसने शत्रुका संहार करनेके लिये दूसरा महाधनुष उठाया ॥ ६–७ ॥ भरत-

शरैर्विव्याध नवभिर्भरतानां महारथः ॥ ८ ॥ शतानीकोऽथ संक्रुद्धश्चित्रसेनस्य
भारत । जघान चतुरो वाहान् सारथिञ्च महाबलः ९
अवप्लुत्य रथात्तस्माच्चित्रसेनो महारथः । नाकुलिं पञ्चविंशत्या
शराणामार्दयद्बली ॥ १० ॥ तस्य तत्कुर्वतः कर्म नकुलस्य सुतो
रणे । अर्द्धचन्द्रेण चिच्छेद चापं रत्नपरिष्कृतम् ॥ ११ ॥ स
छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । आरुरोह रथं शीघ्रं
हार्दिक्यस्य महात्मनः ॥ १२ ॥ द्रुपदन्तु सहानीकं द्रोणप्रेप्सुं
महारथम् । वृषसेनोऽभ्ययात्तूर्णं किरञ्छरशतैस्तदा ॥ १३ ॥ यज्ञसेनस्तु
समरे कर्णपुत्रं महारथम् । षष्ट्या शराणां विव्याध बाह्वोरुरसि
चानघ ॥ १४ ॥ वृषसेनस्तु संक्रुद्धो यज्ञसेनं रथे स्थितम् ।
बहुभिः सायकैस्तीक्ष्णैराजघान स्तनांतरे ॥ १५ ॥ तावुभौ
शरनुन्नाङ्गौ शरकण्टकितौ रणे । व्यभ्राजेतां महाराज श्वाविधौ

वंशके महारथी चित्रसेनने कोपके वशमें होकर रणमें नकुलके पुत्रके
तेज किये हुए नौ बाण मारे॥ ८ ॥ इससे शतानीक क्रोधमें भर
गया; उसने चित्रसेनके चारों घोड़ोंको, तथा सारथिको मारडाला ९
तुरतही महाबली और महारथी चित्रसेन रथपरसे उतर पड़ा और
उसने नकुलके पुत्रके पच्चीस बाण मारे ॥ १० ॥ नकुलके पुत्रने
अर्धचन्द्राकार बाण मारकर, बाण छोडते हुए चित्रसेनके रत्नोंसे
शोभित धनुषके टुकड़े२ कर डाले ॥ ११ ॥ धनुषका, घोड़ोंका,
सारथिका तथा रथका नाश होने पर चित्रसेन महात्मा कृतवर्माके
रथ पर चढ़ गया ॥ १२ ॥ राजा द्रुपद द्रोणको पकड़नेके लिये
सेनाको साथमें ले बढ़े, उनके सामने वृषसेन चढ गया और वह
द्रुपदके ऊपर सैंकड़ों बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १३-१४ ॥
और हे निर्दोष राजन् ! यज्ञसेनने रणमें महारथी कर्णके पुत्र वृषसेनकी
दोनों भुजाओंपर और छाती पर साठ बाण मारे १५
इस प्रकार परस्पर बाणोंके प्रहारोंसे दोनोंके शरीरोंमें घाव हो

शल्लैरिव ॥ १६ ॥ रुक्मपुङ्खैरजिह्माग्रैः शरैः सन्नतपर्वभिः । रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे ॥ १७ ॥ तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविवाद्भुतौ । किंशुकाविव पुष्पाढ्यौ प्रकाशेतां रणाजिरे ॥१८॥ वृषसेनस्ततो राजन् द्रुपदं नवभिः शरैः । विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनश्चान्यैस्त्रिभिः शरैः ॥ १९ ॥ ततः शरसहस्राणि विमुञ्चन् विबभौ तदा । कर्णपुत्रो महाराज वर्षमाण इवाम्बुदः ॥ २० ॥ द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो वृषसेनस्य कार्मुकम् । द्विधा चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ २१ ॥ सोऽन्यत् कार्मुकमादाय रुक्मनद्धं नवं दृढम् । तूणादाकृष्य विमलं भल्लं पीतं शितं दृढम् ॥ २२ ॥ कार्मुके योजयित्वा तं द्रुपदं सन्निरीक्ष्य

गए और वाण चुभ जानेसे दोनोंके शरीर काँटेवालेसे होगए; तब वे अपने काटोंसे व्याप्त सेईकी समान शोभा पाने लगे, इस महासंग्राममें दोनोंके कवच सुवर्णकी पूँछ वाले। और चमकते हुए फले वाले वाणोंसे छिन्न भिन्न होगए थे और वे दोनों लोहू लुहान होरहे थे;इससे वे दोनों महापुरुष रणभूमिके ऊपर विचित्र प्रकारके सूर्यकी समान तथा अद्भुत कल्पवृक्षकी समान और प्रफुल्लितहुए टेसूके वृक्षकी समान दीखते थे १६-१८हे राजन्। वृषसेनने यज्ञसेनके नौ और सत्तर वाण मारे और फिर दूसरा कर तीनर वाण मारे,हे महाराज!फिर उसने जल बरसाते हुए मेघकी समान द्रुपदके ऊपर वाणोंकी झड़ी लगादी, उस समय जल बरसाते हुए मेघकासा दृश्य दिखाई देरहा था ॥ १९-२० ॥ इसप्रकार अनेक प्रहार होनेसे राजा द्रुपदको क्रोध आगया उसने पानी पिलाये हुए तथा तेज कियेहुए भल्ल नामक वाण मारकर वृषसेनके धनुषको काट डाला ॥२१॥ तुरत ही वृषसेनने सोनेसे मढ़ा हुआ, नया और मजबूत धनुष उठा लिया, और पानीदार निर्मल तेज किया हुआ वाण भाथेमेंसे खैंच कर धनुष पर चढ़ाया

च । आकर्णपूर्णं मुमुचे त्रासयन् सर्वसोमकान् ॥ २३ ॥ हृदयं तस्य भित्वा स जगाम वसुधातलम् । कश्मलं प्राविशद्राजा वृषसेनशराहतः ॥२४॥ सारथिस्तमपोवाह स्मरन् सारथिचेष्टितम् । तस्मिन् प्रभग्ने राजेन्द्र पञ्चालानां महारथे ॥ २५ ॥ ततस्तु द्रुपदानीकं शरैश्छिन्नतनुच्छदम् । सम्प्राद्रवत्तदाराजन् निशीथे भैरवे सति ॥२६॥ प्रदीपैर्हि परित्यक्तैः प्रज्वलद्भिः समन्ततः । व्यराजत महाराज वीताभ्रा द्यौरिव ग्रहैः ॥ २७ ॥ तथाङ्गदैर्निपतितैर्व्यराजत वसुन्धरा । प्रावृट्काले महाराज विद्युद्भिरिव तोयदः २८ ततः कर्णसुतास्त्रस्ताः सोमका विप्रदुद्रुवुः । यथेन्द्रभयवित्रस्ता

फिर धनुषको कान तक खेंच, राजा द्रुपदको लक्ष्य कर उसके ऊपर छोड़ दिया, उस समय सब सोमकवंशी राजे त्राहि २ कर उठे ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ वृषसेनका बाण द्रुपदकी छातीको बींध पृथ्वीमें घुस गया उस समय राजा द्रुपद वृषसेनके बाणकी वेदना से मूर्छित हो गया ॥ २४ ॥ तब सारथि अपने कर्तव्यका विचार करके उसको रणमेंसे दूर लेगया हे राजेंद्र ! जिस समय पाञ्चाल देशी महारथी राजा द्रुपद रणमेंसे हटा कि—बाणोंके प्रहारोंसे जिसके कवच चिर रहे थे ऐसी राजा द्रुपदकी सेना, भयंकर आधी रातके बीचमें रणमेंसे भाग गई ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे राजन्! इस समय योधाओंके हाथोंमेंसे फैंके हुए दीपक चारों ओर बल रहे थे, इस कारण जैसे बादलोंसे रहित आकाश तारोंसे शोभा पाता है तैसे ही पृथ्वी दीपकोंसे शोभा पारही थी ॥ २७ ॥ पृथ्वीके ऊपर मरे हुए राजाओंके बाजूबन्द पड़े हुए थे, हे महाराज ! इस लिये जैसे वर्षाकालमें बिजलियोंसे आकाश दमक उठे तैसे पृथ्वी उन बाजूबंदोंसे दिपरही थी ॥ २८ ॥ पहिले समयमें तारकासुरके संग्राममें, इन्द्रके भयसे जैसे दानव भयभीत होकर भागगए थे तैसे ही सोमक

दानवास्तारकामये ॥ २९ ॥ तेनार्द्यमानाः संग्रामे द्रवमाणाश्च सोमकाः । व्यराजन्त महाराज प्रदीपैरिव भासिताः ॥ ३० ॥ तांस्तु निर्जित्य समरे कर्णपुत्रो व्यरोचत । मध्यन्दिनमनुप्राप्तो घर्मांशुरिव भारत३१तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु परेषु च । एक एव ज्वलंस्तस्थौ वृषसेनः प्रतापवान् ॥३२ ॥ स विजित्य रणे शूरान् सोमकानां महारथान् । जगाम त्वरितो राजन् यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥३३॥ प्रतिविन्ध्यमथ क्रुद्धं प्रदहन्तं रणे रिपून् । दुःशासनस्तव सुतः प्रत्यगच्छन्महारथः ॥ ३४ ॥ तयोः समागमो राजंश्चित्ररूपो बभूव ह । व्यपेतजलदे व्योम्नि बुधभास्करयोरिव ३५ प्रतिविन्ध्यन्तु समरे कुर्वाणं कर्म दारुणम् । दुःशासनस्त्रिभिर्बाणै-

---

राजे भी वृषसेनके डरसे भागने लगे२९हे महाराज ! इस युद्धमें कर्णके पुत्रने सोमकोंको ऐसा पीडित किया कि–वे राजे प्रज्वलित होते हुए दीपकोंके प्रकाशमें स्पष्ट रीतिसे भागते हुए मालूम होते थे ॥ ३० ॥ इस समय हे भरतवंशी राजन् ! कर्णका पुत्र संग्राममें शत्रुओंका पराजय कर मध्यान्हके सूर्यकी समान दिपरहा था ३१ शत्रुपक्षमें, तुम्हारे पक्षमें।और दूसरे।सहस्रों राजाओंके मध्यमें प्रतापी वृषसेन बस एक ही तेजस्वी (पराक्रमी) प्रतीत होता था, युद्धमें शूरवीर राजाओंका पराजय करनेके पीछे वह महारथी जहाँ राजा युधिष्ठिर युद्ध कर रहेथे, तहाँ पहुँच गया ।३२–३३। और तुम्हारा महारथी पुत्र दुःशासन क्रोधमें भरकर शत्रुओंका संहार करते हुए प्रतिविंध्यकी ओर गया ॥३४॥ हे राजन् ! उन दोनोंका समागम मेघरहित स्वच्छ आकाशमें बुद्ध तथा सूर्यका समागम जैसे विचित्र प्रतीत हो;तैसे विचित्र प्रतीत होता था॥ ३५ ॥ जब प्रतिविंध्य युद्धमें महाभयंकर कर्म करनेलगा,तब तुम्हारे धनुषधारी महाभुज पुत्र दुःशासनने उसके ललाटमें तीन बाण मार कर, उसको अच्छी तरह घायल किया; इस समय तीन बाण

ललाटे समविध्यत ॥ ३६ ॥ सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना। विरराज महाबाहुस्त्रिशृङ्ग इव पर्वतः॥३७॥ दुःशासनन्तु समरे प्रतिविन्ध्यो महारथः। नवभिः सायकैर्विध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः३८तत्र भारत पुत्रस्ते कृतवान् कर्म दुष्करम्। प्रतिविन्ध्यहयानुग्रैः पातयामास सायकैः ॥ ३९ ॥ सारथिञ्चास्य भल्लेन ध्वजञ्च समपातयत्।रथञ्च तिलशो राजन् व्यधमत्तस्य धन्विनः४० पताकाश्च सतूणीरा रश्मीन् योक्त्राणि च प्रभो। चिच्छेद तिलशः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४१ ॥ विरथः स तु धर्मात्मा धनुष्पाणिरवस्थितः। अयोधयत्तव सुतं किरञ्छरशतान् बहून्॥४२॥ क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद तनयस्तव। अथैनं दशभिर्बाणैश्छिन्न-

ललाटमें घुस जानेसे प्रतिविंध्य तीन शिखर वाले पर्वतकी समान दीखता था ॥ ३६–३७ ॥ महारथी प्रतिविंध्यने नौ बाण और फिर दूसरे सात बाण मार कर दुःशासनको घायल किया ॥ ३८॥ और हे भरतवंशी राजन्! इस युद्धमें तुम्हारे पुत्रने भी महाकठिन कर्म किया कि– तुम्हारे पुत्रने उग्र बाण मार कर प्रतिविंध्यके घोड़ोंको मार डाला, भल्ल नामक बाण मार कर उसके सारथिको मार डाला और ध्वजाको पृथ्वीमें गिरा दिया फिर उसने उस धनुर्धरके रथके तिलकी बराबर टुकड़े कर डाले;हे महाराज! क्रोधायमान हुए तुम्हारे पुत्रने नमीहुई गाँठवाले बाण मार कर पताकाके, भाथेके, रासोंके और जोतोंके भी तिलकी बराबर टुकड़े कर डाले३९–४१धर्मात्मा प्रतिविन्ध्य रथरहित हो गया; उसके हाथमें केवल एक धनुष ही रह गया, तथापि वह तुम्हारे पुत्रके साथ लडता ही रहा और उसके ऊपर सहस्रों बाणोंकी वृष्टि कर डाली ॥ ४२ ॥ तुम्हारे पुत्रने क्षुरप्र नामक बाण मार कर उसके उस धनुषको भी काट डाला और दश बाण मार कर प्रतिविन्ध्यको अच्छी तरह रगड़ा इतनेमें ही उसके महारथी भाई अपने

धन्वानमार्दयत् ॥४३॥ तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भ्रातरोऽस्य महारथाः। अन्ववर्त्तन्त वेगेन महत्या सेनया सह ४४आप्लुतः स ततो यानं सुतसोमस्य भास्वरम्।धनुर्गृह्य महाराज विव्याध तनयं तव४५ततस्तु तावकाः सर्वे परिवार्य सुतं तव। अभ्यवर्त्तंत संग्रामे महत्या सेनया वृताः ॥ ४६ ॥ ततः प्रवृत्ते युद्धं तव तेषाञ्च भारत। निशीथे दारुणे काले यमराष्ट्रविवर्द्धनम् ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि शता-
नीकादियुद्धे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६८॥

सञ्जय उवाच। नकुलं रभसं युद्धे निघ्नन्तं वाहिनीम् तव। अभ्ययात् सौबलः क्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥ कृतवैरौ तु तौ शूरावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ। शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योऽन्यमभिजघ्नतुः ॥ २॥ यथैव नकुलो राजन् शरवर्षाण्यमुञ्चत। तथैव

भाईको रथरहित हो लड़ता देखकर, बड़ीभारी सेनाको साथमें ले बड़े ही वेगसे उसकी रक्षा करनेके लिये दौड़ आये४३–४४तब प्रतिविंध्य सुतसोमके रथ पर चढ़ बैठा और हाथमें धनुष ले तुम्हारे पुत्रके बाण मारने लगा ॥ ४५ ॥ इस ही प्रकार तुम्हारे पक्षके सब योधा भी बड़ी भारी सेनाको साथमें ले तुम्हारे पुत्रको घेर कर प्रतिविंध्यके साथ लड़नेके लिये चढ़ आये ॥ ४६ ॥ इस प्रकार तुम्हारे तथा उन राजाओंके बीचमें मध्यरात्रिके समय यमलोककी वृद्धि करने वाला दारुण युद्ध होने लगा ॥ ४७॥ एकसौ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६८ ॥ छ

सञ्जयने कहा कि– हे भरतवंशी राजन ! जब नकुल क्रोधमें भर कर तुम्हारी सेना संहार करने लगा, तब सुबलका पुत्र शकुनि उसके सामने लड़नेके लिये आया और "खड़ा रह ! खड़ा रह !! इस प्रकार, कह कर वे दोनों वैरी परस्पर वध करनेकी इच्छासे धनुषको पूर्णरीतिसे खैंचकर बड़े २ बाणोंको छोड़ एक दूसरेको

सौबलश्चापि शिक्षां सन्दर्शयन् युधि॥३॥तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा। व्यभ्राजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव॥४॥ रुक्मपुंखैरजिह्माग्रैः शरैः छिन्नतनुच्छदौ। रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे५ तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविव द्रुमौ। किंशुकाविव चोत्फुल्लौ प्रकाशेते रणाजिरे॥६॥ तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा। व्यराजेतां महाराज कण्टकैरिव शाल्मली७ सुजिह्मं प्रेक्षमाणौ तौ राजन् विवृतलोचनौ। क्रोधरक्तान्तनयनैर्निर्दहन्तौ परस्परम्॥८॥ श्यालस्तव सुसंक्रुद्धो माद्रीपुत्रं हसन्निव। कर्णिनैकेन विव्याध हृदये निशितेन ह॥९॥ नकुलस्तु

मारने लगे॥१-२॥हे राजन्! नकुल जैसे बाणोंकी वृष्टि कर रहा था, तैसेही शकुनि भी युद्धभूमिमें अपनी अस्त्रसंबन्धी चतुराईको दिखाता हुआ, उसके ऊपर बाणोंकी वृष्टि कर रहा था॥३॥ हे महाराज! इस समय उन दोनोंके शरीरमें बाण इस प्रकार घुस गए थे कि- वे कांटोंसे लदे हुए वृक्षोंकी समान दीखते थे और शललोंसे घिरी हुई सेई जैसे शोभा पावे, तैसे शोभा पा रहे थे॥४॥ और उस महासंग्राममें दोनोंके शरीर सोनेकी पूँछवाले और सीधेफलों वाले बाणोंके प्रहारसे चिरकर लोहूलुहान हो गए थे, वे रणभूमिमें चमकते हुए सुवर्णके कल्पवृक्षोंकी समान अथवा प्रफुल्लित टेसूके वृक्षोंकी सपान दीखते थे अथवा हे महाराज! उन दोनोंके सारे शरीरमें बाण घुसजानेके कारण, कांटोंसे घिरा हुआ शाल्मलि (सेमल) का वृक्ष जैसे दीखे, तैसे वे दोनों दीख रहे थे॥५-७॥ वे तिरछी दृष्टिसे एक दूसरेके सामने देख रहे थे, आँखें फाडे हुए खडे थे, उनके नेत्रोंके कोए क्रोधसे लाल२ होरहे थे-इस प्रकार वे दोनों एक दूसरेको भस्मसा कर रहे थे॥८॥ क्रोधमें भरे हुए तुम्हारे साले शकुनिने मुस्कराकर माद्रीके पुत्रकी छातीमें कर्णि नामक एक तीक्ष्ण बाण मार

भृशं विद्धः श्यालेन तव धन्विना। निषसाद रथोपस्थे कश्मलञ्चाविशन्महत् ॥१०॥ अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं तथागतम्। ननाद शकुनिस्तत्र तपान्ते जलदो यथा ॥ ११ ॥ प्रतिलभ्य ततः संज्ञां नकुलः पाण्डुनन्दनः। अभ्ययात् सौबलं भूयो व्यात्तानन इवान्तकः ॥ १२ ॥ संक्रुद्धः शकुनिं षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ। पुनश्चैनं शतेनैव नाराचानां स्तनान्तरे॥ १३ ॥ ततोऽस्य सशरञ्चापं मुष्टिदेशे द्विधाच्छिनत्। ध्वजञ्च त्वरितं छित्वा रथाद्भूमावपातयत् ॥ १४ ॥ विशिखेन च तीक्ष्णेन पीतेन निशितेन च। ऊरू निर्भिद्य चैकेन नकुलः पाण्डुनन्दनः ॥ १५ ॥ श्येनं सपक्षं व्याधेन पातयामास तं तदा। सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ

कर उसको बहुतही घायल कर डाला, इससे सहदेवको बड़ी पीड़ा होने लगी और वह रथकी बैठकमें मूर्छित होकर गिर पड़ा ॥ ९-१० ॥ अपने घमण्डी वैरीकी ऐसी दुर्दशा देखकर, शकुनि-वर्षा ऋतुके मेघकी समान एकदम गर्ज उठा ॥ ११ ॥ जब पाण्डुपुत्र नकुलकी मूर्छा हटी, तब वह कालकी समान नेत्र फाड़कर क्रोधमें भर शकुनिके सामने गया और हे भरतवंशी राजन्! उसने शकुनिके साठ बाण मारे और फिर नाराच नामक सौ बाण उसकी छातीमें मारे ॥ १२-१३ ॥ और फिर एक बाणसे उसकी मुट्ठीमें थमेहुए धनुषको बाणके साथ ही काटडाला इसके पीछे उसकी ध्वजाको काटकर रथ परसे पृथिवीमें गिरा दिया और फिर तीक्ष्ण तथा पानीदार एक बाण मारकर शकुनिकी दोनों जंघाओंको चीरडाला और फिर व्याध जैसे पङ्खवाले बाजके परोंको काटकर उसको पृथिवी पर गिरा देता है, तैसे ही उसको रथमें मूर्छित करदिया हे महाराज! शकुनि भी बाणोंके प्रहारसे मूर्छित हो रथकी बैठकमें बैठ गया और कामी मनुष्य जैसे कामिनीका आलिंगन करे तैसे ध्वजाके दण्डेको लिपटगया,

उपाविशत् ।१६। ध्वजयष्टिं परिक्लिश्य कामिनीं कामुको यथा । तं विसंज्ञं निपतितं दृष्ट्वा श्यालं तवानघ ॥१७॥ अपोवाह रथेनाशु सारथिर्ध्वजिनीमुखात् । ततः सञ्चुक्रुशुः पार्था ये च तेषां पदानुगाः ॥१८॥ निर्जित्य च रणे शत्रून् नकुलः शत्रुतापनः । अब्रवीत् सारथिं क्रुद्धो द्रोणानीकाय मां वह ॥ १९ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा माद्रीपुत्रस्य सारथिः । प्रायात्तेन तदा राजन् येन द्रोणो व्यवस्थितः ॥२०॥ शिखण्डिनन्तु समरे द्रोणप्रेप्सुं महाबलम् । कृपः शारद्वतो यत्तः प्रत्यगच्छत् सवेगितः ॥ २१ ॥ गौतमं द्रुतमायान्तं द्रोणान्तिकमरिन्दमः । विव्याध नवभिर्बाणैः शिखण्डी प्रहसन्निव ॥ २२ ॥ तमाचार्यो महाराज विध्वा पञ्चभिराशुगैः । पुनर्विव्याध विंशत्या पुत्राणां प्रियकृत्तव ॥ २३ ॥ महद्युद्धं तयो-

---

तुम्हारे सालेको बेहोश हुआ देखकर उसका सारथि उसके रथको तुरन्त ही सेनाके मुहाने परसे दूर लेगया, यह देखकर पांडवोंने और उसके अनुयायी योधाओंने हर्षमें भरकर बडा कोलाहल मचाया ॥१४–१८॥ शत्रुको तपानेवाले नकुलने शत्रुका पराजय करनेके पीछे क्रोधपूर्वक अपने सारथिसे कहा कि–अरे सारथि ! तू मेरे रथको अब द्रोणकी सेनाकी ओर ले चल हे राजन् ! अपने महारथीका वचन सुनकर जहाँ द्रोणाचार्य खड़े थे तहाँ नकुलका सारथि उसके रथको ले गया ॥१९–२०॥ हे राजन् ! दूसरी ओर शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने भी सावधान होकर द्रोणको कैद करना चाहते हुए शिखण्डीके ऊपर फुर्तीसे धावा किया २१ तब शिखण्डीने मुस्करा कर, शीघ्रतासे धँसकर आतेहुए अरिदमन कृपाचार्यके और शत्रुको दमन करनेवाली द्रोणाचार्यकी सेनाके भल्ल नामक नौ बाण मारे ॥२२॥ तब तुम्हारे पुत्रका हित करने वाले गौतमपुत्र कृपाचार्यने पच्चीस बाण शिखण्डीके मारे तब–देवासुरसंग्राममें शम्बरासुर और इन्द्रमें जैसा भयंकर युद्ध चला था

रासीद् घोररूपं भयानकं। यथा देवासुरे युद्धे शम्बरामरराजयोः२४ शरजालावृतं व्योम चक्रतुस्तौ महारथौ। मेघाविव तपापाये धीरौ समरदुर्मदौ ॥ २५ ॥ प्रकृत्या घोररूपं तदासीद् घोरतरं पुनः। रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ योधानां युद्धशालिनाम् ॥ २६ ॥ कालरात्रिनिभा चासीद् घोररूपा भयावहा। शिखण्डी तु महाराज गौतमस्य महद्धनुः॥२७॥ अर्द्धचन्द्रेण चिच्छेद सज्यं सविशिखं तथा। तस्य क्रुद्धः कृपो राजञ्छक्तिञ्चिक्षेप दारुणाम् ॥२८॥ रुक्मदण्डामकुण्ठाग्रां कर्मारपरिमार्जिताम्। तामापतन्तीं चिच्छेद शिखण्डी बहुभिः शरैः ॥ २९॥ सापतन्मेदिनीं दीप्ता भासयन्ती महाप्रभा। अथान्यद्धनुरादाय गौतमो रथिनाम्वरः ॥ ३० ॥ प्राच्छा-

---

उसीप्रकार उन दोनोंमें महाभयानक तुमुल युद्ध होनेलगा २३-२४ जैसे वर्षा ऋतुमें दो मेघ आकाशको भर दें, तैसे ही युद्धमत्त और शूर उन दोनों महारथियोंने भी बाणोंसे आकाशको छा दिया, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! स्वाभाविकरीतिसे यह युद्ध भयंकर लगता था और रणमें लडनेवाले योधाओंको तो यह रात्रि कालरात्रिकी समान भयंकर हो गई थी, हे महाराज! इससमय युद्ध करतेहुए शिखण्डीने अर्धचन्द्रार बाणका प्रहारकर कृपाचार्यके सजे हुए और बाण चढ़ेहुए बड़ेभारी धनुषको काटडाला, तब कृपाचार्य क्रोधमें भरगए और उन्होंने शिखण्डीके एक दारुण शक्ति मारी; शिखण्डीने बहुतसे बाण मारकर सुवर्णके दण्डेवाली, नोकदार और कारीगरकी साफकी हुई, सामने आती हुई उस शक्तिके टुकड़े२ करडाले ॥ २५-२९ ॥ तब झलझलाती हुई कान्तिवाली वह शक्ति चूरा२ होकर पृथिवीमें गिरपडी, शक्तिके नष्ट होने पर कृपाचार्यने दूसरा धनुष उठाया और हे महाराज ! तेज कियेहुए बाणोंकी वृष्टिकर उसको छा दिया महारथी शिखण्डी कृपाचार्यके बाणोंसे पराभुत होकर रथमें बैठगया, हे राजन् !

दयच्छितैर्बाणैर्महाराज शिखण्डिनम्। स छाद्यमानः समरे गौतमेन यशस्विना ॥३१॥ व्यसीदत रथोपस्थे शिखण्डी रथिनाम्वरः। सीदन्तञ्चैनमालोक्य कृपः शारद्वतो युधि॥ ३२ ॥ आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्जिघांसन्निव भारत। विमुखं तं रणे दृष्ट्वा याज्ञसेनिं महारथम् ॥ ३३ ॥ पञ्चालाः सोमकाश्चैव परिवव्रुः समन्ततः। तथैव तव पुत्राश्च परिवव्रुर्द्विजोत्तमम् ॥ २४ ॥ महत्या सेनया सार्द्धं ततो युद्धमवर्त्तत। रथानाञ्च रणे राजन्नन्योऽन्यमभिधावताम् ३५ बभूव तुमुलः शब्दो मेघानामिव भारत। द्रवतां सादिनाञ्चैव गजानाञ्च विशाम्पते ॥ ३६ ॥ अन्योऽन्यं निघ्नतां राजन् क्रूरमायोधनं बभौ। पत्तीनां द्रवतां चैव पादशब्देन मेदिनी ॥ ३७॥ अकम्पत महाराज भयत्रस्तेव चांगना। रथिनो रथमारुह्य प्रद्रुता वेगवत्तरम् ॥ २८ ॥ अगृह्णन् बहवो राजन् शलभान् वायसा

युद्धमें उसको निःसत्त्व हुआ देखकर उसको मारनेकी इच्छासे कृपाचार्य उसके ऊपर तडातड बाण बरसानेलगे, तब तो यज्ञसेनका कुमार महारथी शिखण्डी रणमेंसे भागगया, पाञ्चाल राजे और सोमक राजे उसको रणमेंसे भागते देखकर उसको चारों ओरसे घेरकर खडे होगए और तुम्हारे पुत्र सेनाओंको साथमें ले ब्राह्मणश्रेष्ठ कृपाचार्यको चारों ओरसे घेरकर खड़े होगए, तब महारथी एक दूसरेके साथ फिर युद्ध करनेलगे ॥ ३०-३५ ॥ अस्तव्यस्त दौडतेहुए घुडसवार तथा हाथीसवार मेघकी गर्जनाकी समान तुमुल शब्द करउठे ॥३६॥ उन योधाओंकी झपाझपीसे रणक्षेत्र भयंकर दीखता था, हे महाराज! युद्धमें इधर उधर दौडते हुए योधाओंकी पदध्वनिसे पृथिवी भयभीत स्त्रीकी समान काँप उठी; कौए जैसे कीडोंको पकड लेते हैं, तैसे बड़े ही वेगमें भरेहुए रथमें बैठकर दौडतेहुए रथी शत्रुपक्षके रथियोंको पकडनेलगे, मद टपकानेवाले हाथी, मदटपकाने वाले हाथियोंके साथ

इव । तथा गजान् प्रभिन्नाङ्गान् सुप्रभिन्ना महागजाः ॥ ३९ ॥ तस्मिन्नेव पदे यत्ता निगृह्णन्ति स्म भारत । सादी सादिनमासाद्य पत्तयश्च पदातिनम् ॥४०॥ समासाद्य रणेऽन्योन्यं संरब्धा नातिचक्रमुः । धावतां द्रवतां चैव पुनरावर्त्ततामपि ॥ ४१ ॥ बभूव तत्र सैन्यानां शब्दः सुविपुलो निशि । दीप्यमानाः प्रदीपाश्च रथवारणवाजिषु ॥ ४२ ॥ अदृश्यन्त महाराज महोल्का इव खाच्च्युताः । सा निशा भरतश्रेष्ठ प्रदीपैरवभासिता ॥ ४३ ॥ दिवसप्रतिमा राजन् बभूव रणमूर्द्धनि । आदित्येन यथा व्याप्तं तमो लोके प्रणश्यति॥ ५४ ॥ तथा नष्टं तमो घोरं दीपैर्दीप्तैरितस्ततः । दिवञ्च पृथिवीञ्चैव दिशश्च प्रदिशस्तथा ॥४५॥ रजसा तमसा व्याप्ता द्योतिताः प्रभया पुनः । शस्त्राणां कवचानाञ्च मणी-

---

लड़ने लगे, परस्पर क्रोधमें भरे हुए घुडसवार घुड़सवारोंके साथ युद्ध करने लगे और शत्रुओंको आगे बढ़नेसे रोकने लगे, हे राजन्! इस प्रकार रात्रिके युद्धमें भागते हुए तथा पीछेको हटते हुए योधाओंने बड़ा दुन्द मचा रक्खा था, हे महाराज!रथ,हाथी तथा घोड़ोंकी सेनाओंमें प्रज्वलित होते हुए दीपक आकाशमेंसे गिरती हुई उल्काओंकी समान दीखते थे,रणके मुहानेपर दीपकोंसे प्रकाशित होती हुई वह घोररात्रि दिनकी समान प्रकाशित होरही थी, सूर्यके झलझलाते हुए प्रकाशसे जैसे जगत्का अन्धकार दूर होजाता है, तैसे ही आस पास प्रकाशित होते हुए दीपकोंसे रणभूमिका अंधेरा दूर होगया था; आकाश, पृथ्वी; दिशा और विदिशाएँ जो अन्धकार और धूल से ढक गईं थीं, वे दीपकोंकी कान्तिसे फिर प्रकाशित होगईं, दीपकोंकी कान्तिसे महात्मा पुरुषोंके अस्त्र, कवच और मणियोंकी कान्ति भी फीकी पड़ गई थी, हे भरतवंशी राजन्!रात्रिका समय था,भयंकर युद्ध और उसके साथमें कोला-

नादश्च महात्मनाम् ॥ ४६ ॥ अन्तर्दधुः प्रभाः सर्वा दीप्तैस्तैरवभासिताः। तस्मिन् कोलाहले युद्धे वर्त्तमाने निशामुखे ॥४७॥ न केचिद्विदुरात्मानमयमस्मीति भारत। अवधीत् समरे पुत्रं पिता भरतसत्तम ॥ ४८ ॥ पुत्रश्च पितरं मोहात् सखायञ्च तथा सखा। स्वस्रीयं मातुलश्चापि स्वस्रीयश्चापि मातुलम् ॥४९॥ स्वे स्वान् परे स्वकीयांश्च निजघ्नुस्तत्र भारत। निर्मर्यादमभूद्राजन् रात्रौ भीरुभयानकम् ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रिसंकुलयुद्धे
ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

सञ्जय उवाच। तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्त्तमाने भयावहे। धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमेवाभ्यवर्त्तत ॥ १ ॥ सन्दधानो धनुःश्रेष्ठं ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः। अभ्यद्रवत द्रोणस्य रथं रुक्मविभूषितम् २

हल मच रहा था और उस समयके अन्धकारके कारण मनुष्य अपनेको भी नहीं पहिचान पाते थे कि—"मैं कहा हूँ और कौन हूँ!" एक दूसरेको न पहिचाननेसे पिता पुत्र पर, पुत्र पिता पर, मित्र मित्र पर, मामा भाञ्जे पर और भांजा मामा पर प्रहार कर रहा था ॥ ३७–४९ ॥ योधा अपने पक्षका तथा शत्रुपक्षका परस्पर संहार कररहे थे, इसप्रकार रात्रिके समय मर्यादाहीन और भयभीतोंको भयभीत करनेवाला भयंकर युद्ध चलरहा था ॥५०॥ एकसौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१६९॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे महाराज! अत्यन्त तुमुल और भयंकर युद्ध चलरहा था, उस समय धृष्टद्युम्नने द्रोणके ऊपर धावा करने का निश्चय किया, उसने धनुषके ऊपर डोरी चढ़ाई और उसको बारम्बार खेंचताहुआ द्रोणका वध करनेकी इच्छासे द्रोणके सुवर्णसे मढ़ेहुए रथकी ओर बढा, पाञ्चाल राजे भी द्रोणका संहार करनेके लिये धृष्टद्युम्नको चढ़कर जाता देखकर पाण्डवोंके साथ

धृष्टद्युम्नमथायान्तं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया । परिवव्रुर्महाराज पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ३ ॥ तथा परिवृतं दृष्ट्वा द्रोणमाचार्यसत्तमम् । पुत्रास्ते सर्वतो यत्ता ररक्षुर्द्रोणमाहवे ॥ ४ ॥ बलार्णवौ ततस्तौ तु समेयातां निशामुखे । वातोद्धूतौ क्षुब्धसत्त्वौ भैरवौ सागराविव ॥५॥ ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः पंचभिः शरैः । विव्याध हृदये तूर्णं सिंहनादं ननाद च६तं द्रोणःपञ्चविंशत्या विद्धो भारत संयुगे । चिच्छेदान्येन भल्लेन धनुरस्य महास्वनम्७ धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धो द्रोणेन भरतर्षभ । उत्ससर्ज च धनुः शीघ्रं सन्दश्य दशनच्छदम् ॥ ८ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् । आददेऽन्यद्धनुः श्रेष्ठं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया ॥ ९ ॥ विकृष्य च धनुश्चित्रमाकर्णात् परवीरहा । द्रोणस्यान्तकरं घोरं व्यसृजत् सायकं ततः ॥ १० ॥ स विसृष्टो बलवता शरो घोरो

द्रोणके रथके चारों ओर इकट्ठे होगए, आचार्यश्रेष्ठ द्रोणको घिरा हुआ देखकर तुम्हारे पुत्र सावधान होगए, वे चारों ओरसे रणमें द्रोणकी रक्षा करनेलगे ॥ १-४ ॥ पवनसे उछलते हुए तथा जिनमेंके जलचर प्राणी क्षुब्ध होरहे हों ऐसे दो भयंकर समुद्रोंकी समान, कौरव पाण्डवोंके दो सेनासागर रात्रिके समय परस्पर हिलमिल गए ॥५॥ हे महाराज ! युद्ध आरम्भ होते ही पांचालराजके पुत्रने द्रोणकी छातीमें पाँच बाण मारकर सिंहकी समान गर्जना की ॥ ६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! द्रोणने उसके ऊपर पचीस बाण छोड़े और भल्ल नामक बाणसे धृष्टद्युम्नके बड़ाभारी ध्वनि करतेहुए धनुषको काटडाला ॥७॥ प्रतापी धृष्टद्युम्न द्रोणके हाथसे घायल होनेके कारण क्रोधमें भरगया, उसने कटेहुए धनुष को तुरन्त ही छोड़कर, ओठ पीस, द्रोणका नाश करनेकी इच्छासे दूसरा श्रेष्ठ धनुष उठाया और उस पर भयंकर बाण चढा, कर्णपर्यन्त खेंचकर द्रोणका अन्त करनेके लिये उन पर छोड़ा ८-१०

महामृधे । भासयामास तत् सैन्यं दिवाकर इवोदितः ॥ ११ ॥ तन्तु दृष्ट्वा शरं घोरं देवगन्धर्वदानवाः । स्वस्त्यस्तु समरे राजन् द्रोणायेत्यब्रुवन् वचः ॥ १२ ॥ तन्तु सायकमायान्तमाचार्यस्य रथं प्रति । कर्णो द्वादशधा राजंश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १३ ॥ स छिन्नो बहुधा राजन् सूतपुत्रेण धन्विना । निपपात शरस्तूर्णं निर्विषो भुजगो यथा ॥ १४ ॥ धृष्टद्युम्नं ततः कर्णो विव्याध दशभिः शरैः । पञ्चभिर्द्रोणपुत्रस्तु स्वयं द्रोणश्च सप्तभिः ॥ १५ ॥ शल्यतु दशभिर्भल्लैस्त्रिभिर्दुःशासनस्तथा । दुर्योधनस्तु विंशत्या शकुनिश्चापि पञ्चभिः ॥ १६ ॥ पांचाल्यं त्वरिताविध्यन् सर्व एव महारथाः । स विद्धः सप्तभिर्वीरैर्द्रोणत्राणार्थमाहवे ॥ १७ ॥ सर्वानसंभ्रमाद्राजन्प्रत्यविद्धयत्

बलवान् धृष्टद्युम्नके छोड़ेहुए उस घोर बाणने, उदय होतेहुए सूर्यकी समान उनकी सेनामें प्रकाश फैलादिया ॥११॥ हे राजन्! उस समय भयंकर बाणको आताहुआ देखकर युद्ध देखनेके लिये आयेहुए देवता, गन्धर्व और मनुष्य कहनेलगे, कि–“द्रोणका कल्याण हो” ॥१२॥ धृष्टद्युम्नके छोडेहुए बाणको द्रोणके रथकी ओर सर्राटेके साथ आतेहुए देखकर कर्णने फुर्तीले पुरुषकी समान सामनेसे बाण मारकर उस बाणके टुकड़े २ करडाले॥१३॥ धनुषधारी कर्णने धृष्टद्युम्नके बाणके अच्छीप्रकार टुकड़े करडाले कि–वह बाण विषहीन सर्पकी समान पृथिवीमें जा गिरा ॥१४॥ तदनन्तर कर्णने दश, अश्वत्थामाने पाँच, द्रोणने सात, शल्यने दश, दुःशासनने तीन, दुर्योधनने बीस और शकुनिने पाँच बाण मारे–इसप्रकार सब महारथियोंने फुर्तीसे बाण मारकर धृष्टद्युम्नको बींधडाला, इस महायुद्धमें सात भयंकर महारथियोंने द्रोणका पक्ष लेकर बाणोंसे धृष्टद्युम्नको बींधडाला था १५–१७ परन्तु हे राजन्! धृष्टद्युम्न जरा भी नहीं घबड़ाया उसने द्रोणको, अश्वत्थामाको,

त्रिभिस्त्रिभिः। द्रोणं कर्णं च द्रौणिं च विव्याध तनयं तव १८ ते तु भिन्ना धन्विना तेन धृष्टद्युम्नं पुनर्मृधे । विव्यधुः पञ्चभिस्तूर्णमेकैको रथिनां वरः ॥ १९ ॥ द्रुमसेनस्तु संक्रुद्धो राजन् विव्याध पत्रिणा । त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २० ॥ स तु तं प्रतिविव्याध त्रिभिस्तीक्ष्णैरजिह्मगैः । स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैः प्राणान्तकरणैर्युधि ॥ २१ ॥ भल्लेनान्येन तु पुनः सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलम् । निचकर्त शिरः कायाद् द्रुमसेनस्य वीर्यवान् ॥ २२ ॥ तच्छिरो न्यपतद् भूमौ सन्दष्टौष्ठपुटं रणे ॥ महावातसमुद्धूतं पक्वं तालफलं यथा॥२३॥ तांश्च विद्ध्वा पुनर्योधान् वीरः सुनिशितैः शरैः । राधेयस्याच्छिनद् भल्लैः कार्मुकं चित्रयोधिनः ॥२४॥ न तु तन्ममृषे कर्णो धनुषश्छेदनं तदा । निकर्त-

---

कर्णको, और तुम्हारे पुत्रको तीन २ बाणोंसे बींध डाला॥१८॥ इतनेमें ही उनमेंके प्रत्येक महारथियोंने-पुनः धृष्टद्युम्नके सीधे जाने वाले तीन २ तीक्ष्ण बाण मारे ॥ १९ ॥ और द्रुमसेनने पहिले एक और फिर तीन बाण मार कर धृष्टद्युम्नसे कहा कि-"खड़ा रह ! कहाँको भागे जाता है" ॥ २० ॥ तब धृष्टद्युम्नने उसके ऊपर सरलगामी,सुनहरी पूँछ वाले और पत्थर पर घिस कर तेज किये हुए और युद्धमें प्राणोंका अन्त करने वाले तीन बाण मारे और पीछेसे पराक्रमी धृष्टद्युम्नने भल्ल नामका बाण मार कर द्रुमसेनके धड़ परसे कुण्डलोंसे उज्वल प्रतीत होते हुए उसके मस्तकको काट डाला,तब ओठको दबाता हुआ वह मस्तक-पवन के आघातसे पका हुआ तालका फल जैसे पृथ्वी पर गिर पड़े तैसे रणभूमिके ऊपर गिर पड़ा ॥ २१—२३ ॥ द्रुमसेनको मारने के पीछे उस वीरने तेज किये हुए बाणोंसे फिर दूसरे योधाओंको घायल करना आरंभ करदिया और भल्ल नामक बाण मार कर विचित्र रीतिसे युद्ध करने वाले कर्णके

नमिवात्युग्रो लांगूलस्य महाहरिः ॥ २५ ॥ सोऽन्यद्धनुः समादाय क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन् । अभ्यवर्षच्छरौघेण धृष्टद्युम्नं महाबलम् २६ दृष्ट्वा कर्णन्तु संरब्धं ते वीराः षड्रथर्षभाः । पांचाल्यपुत्रं त्वरिताः परिवव्रुर्जिघांसया ॥ २७ ॥ षण्णां योधप्रवीराणां तावकानां पुरस्कृतम् । मृत्योरास्यमनुप्राप्तं धृष्टद्युम्नममंस्महि ॥२८॥ एतस्मिन्नेव काले तु दाशार्हो विकिरन् शरान् । धृष्टद्युम्नं पराक्रान्तं सात्यकिः प्रत्यपद्यत ॥२९॥ तमायान्तं महेष्वासं सात्वतं युद्धदुर्मदम् । राधेयो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ३० तं सात्यकिर्महाराज विव्याध दशभिः शरैः । पश्यतां सर्ववीराणां मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत् ३१ स सात्यकेस्तु बलिनः कर्णस्य च महात्मनः । आसीत् समागमो

धनुषको काट डाला ॥ २४ ॥ महावानर जैसे अपनी बड़ी भारी पूँछके नाशको न सहसके तैसे कर्ण भी अपने धनुषके कटनेको सह न सका ॥२५॥ उसने क्रोधसे लाल२ नेत्रकर साँस खेंचते२ दूसरा धनुष उठाया और महाबली धृष्टद्युम्नके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करना आरम्भ कर दी ॥ २६ ॥ कर्णको क्रोधमें भराहुआ देखकर कर्ण, दुर्योधन, दुःशासन, द्रोण, शल्य और शकुनि इन छः महारथियोंने धृष्टद्युम्नको मारनेकी इच्छासे उसको चारों ओरसे घेरलिया ॥ २७ ॥ तुम्हारे छः महावीर रथियोंके बीचमें धृष्टद्युम्न जैसे पड़ा कि—हम तो उसको कालके मुखमेंही पड़ाहुआ समझनेलगे। इस समय दाशार्हकुलमें उत्पन्नहुए सात्यकिने देखा कि—शत्रुओंने धृष्टद्युम्नको घेरलिया है, तब वह तड़ातड़ बाण बरसाताहुआ तहाँ पर धँस आया ॥२८—२९॥ युद्ध करनेमें प्रवीण महाधनुषधारी सात्यकिको आताहुआ देखकर कर्णने उसके दश बाण मारे ॥ ३०॥ और हे महाराज! सात्यकिने भी कर्णके दश बाण मारे तथा सब वीरोंको सुनाते हुए कहा कि—"अब भागना मत खड़े रहना" ॥३१॥ हे महाराज! उस समय

राजन् बलिवासवयोरिव ॥ ३२ ॥ त्रासयन्रथघोषेण क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः । राजीवलोचनं कर्णं सात्यकिः प्रत्यविध्यत ॥ ३३ ॥ कम्पयन्निव घोषेण धनुषो वसुधां बली । सूतपुत्रो महाराज सात्यकिं प्रत्ययोधयत् ॥ ३४ ॥ विपाठकर्णिनाराचैर्वत्सदन्तैः क्षुरैरपि । कर्णः शरशतैश्चापि शैनेयं प्रत्यविध्यत ॥ ३५ ॥ तथैव युयुधानोऽपि वृष्णीनां प्रवरो युधि । अभ्यवर्षच्छरैः कर्णं तद्युद्धमभवत् समम् ॥ ३६ ॥ तावकाश्च महाराज कर्णपुत्रश्च दंशितः । सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ३७ ॥ अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां कर्णस्य वा विभो । अविध्यत् सात्यकिः क्रुद्धो वृषसेनं स्तनान्तरे ॥ ३८ ॥ तेन बाणेन निर्विद्धो वृषसेनो

बलवान् सात्यकि तथा सूतपुत्र महात्मा कर्णमें होता हुआ युद्ध बलि और इन्द्रके युद्धकी समान प्रतीत होता था ॥३२॥ इस युद्धमें क्षत्रियश्रेष्ठ सात्यकिने रथकी झनझनाहटसे क्षत्रियोंको भयभीत करदिया और कमलकी समान नेत्रों वाले कर्णको बाण मार कर बींध डाला ॥३३॥ हे महाराज ! बलशाली कर्ण धनुषकी टंकार-ध्वनिसे पृथ्वीको कँपता हुआ सात्यकिके सामने लड़ने लगा ३४ और विपाठ, कर्णिक, नाराच, वत्सदन्त तथा क्षुर नामक सहस्रों बाण मार कर सात्यकिको बींध डाला ॥ ३५ ॥ उस वृष्णि-वंशमें श्रेष्ठ सात्यकिने भी युद्धमें कर्णके ऊपर बाणोंकी वृष्टि की थी दोनोंमें समान रीतिसे युद्ध होरहा था ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! इस युद्धमें तुम्हारे पुत्र तथा कवचधारी कर्णपुत्र भी सात्यकिके ऊपर चारों ओरसे तीक्ष्ण बाण मारते थे ॥ ३७ ॥ कर्णपुत्रके बाणोंके प्रहारसे, हे राजन् ! सात्यकि बड़े क्रोधमें भरगया; उसने अस्त्र मार कर तुम्हारे पुत्रोंके, कर्णके तथा कर्णके पुत्रके छोड़े हुए बाणोंको पीछेको हटा दिया और दूसरा बाण मार कर वृषसेनकी छाती चीर डाली ॥३८॥ हे राजन् ! सात्यकिका बाण लगने ही

विशाम्पते । न्यपतत् स रथे मूढो धनुरुत्सृज्य वीर्यवान् ॥ ३९ ॥ ततः कर्णो हतं मत्वा वृषसेनं महारथम् । पुत्रशोकाभिसन्तप्तः सात्यकिं प्रत्यपीडयत् ॥ ४० ॥ पीड्यमानस्तु कर्णेन युयुधानो महारथः । विव्याध बहुभिः कर्णं त्वरमाणः पुनः पुनः ॥ ४१ ॥ स कर्णं दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनञ्च पञ्चभिः । सहस्तावापधनुषी तयोश्चिच्छेद सात्वतः ॥ ४२ ॥ तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा शत्रुभयङ्करे । युयुधानमविध्येतां समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ४३ ॥ वर्त्तमाने तथा रौद्रे तस्मिन् वीरवरक्षये । अतीव शुश्रुवे राजन् गांडीवस्य महास्वनः ॥ ४४ ॥ श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं गाण्डीवस्य च निःस्वनम् । सूतपुत्रोऽब्रवीद्राजन् दुर्योधनमिदं वचः ॥ ४५ ॥ एष सर्वाञ्चमूं हत्वा मुख्यांश्चैव नरर्षभान् । कौरवांश्च महेष्वासो

पराक्रमी वृषसेन हाथमेंसे धनुषको छोड रथमेंही मूर्छित हो गिर पडा ॥ ३९ ॥ अपने महारथी पुत्रको मरा हुआ समझ कर कर्णको वडा क्रोध चढ़ा, तव वह सात्यकिको वाण मार कर पीडित करने लगा ॥४० ॥ कर्ण महारथी सात्यकिको जैसे२ पीडित करता था तैसे२ सात्यकि भी वेगसे उसके ऊपर वाण मार कर उसको दुःख देने लगा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार वहुत समय तक युद्ध चलता रहा, फिर सात्यकिने कर्णके दश और (मूर्छासे उठे हुए) वृषसेनके सात वाण मारे और उसके दोनों हाथोंके मौजे तथा धनुषको काट डाला ॥४२ ॥ तव उन दोनों (पिता और पुत्र) ने शत्रुको भयंकर लगने वाले दो धनुष ठीक किये और फिर चारों ओरसे सात्यकिके ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे ४३ हे महाराज ! वीरोंका संहार करने वाला महायुद्ध चल रहा था, इतनेमेंही दूरसे गाण्डीव धनुषकी टंकार तथा झनझनाहट सबके कानोंमें पड़ने लगी हे महाराज ! गाण्डीव और रथकी ध्वनिको सुनकर कर्णने दुर्योधनसे कहा कि—॥ ४४—४५ ॥ हमारी

विक्षिपन्नुत्तमं धनुः ॥ ४६ ॥ पार्थो विजयते तत्र गाण्डीवनिनदो महान् । श्रूयते रथनिर्घोषो वासवस्येव नर्दतः ॥ ४७ ॥ करोति पाण्डवो व्यक्तं कर्मौपयिकमात्मनः । एषा विदार्यते राजन्बहुधा भारती चमूः ॥ ४८ ॥ विप्रकीर्णान्यनेकानि नावतिष्ठन्ति कर्हिचित् । वातेनेव समुद्धूतमभ्रजालं विदीर्यते ॥ ४९ ॥ सव्यसाचिनमासाद्य भिन्ना नौरिव सागरे । द्रवतां योधमुख्यानां गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥ ५० ॥ विद्धानां शतशो राजन् श्रूयते निःस्वनो महान् । शृणु दुन्दुभिनिर्घोषमर्जुनस्य रथं प्रति ॥ ५१ ॥ निशीथे राजशार्दूल स्तनयित्नोरिवाम्बरे । हाहाकाररवांश्चैव सिंहनादांश्च पुष्कलान् ॥ ५२ ॥ शृणु शब्दान् बहुविधानर्जुनस्य रथं प्रति ।

सकल सेनाके मुख्य २ वीरोंका तथा कौरव राजाओंका संहार कर और अपनी विजय कर महाधनुषधारी अर्जुन अपने श्रेष्ठ धनुषको टंकार रहा है, उसको सुनो ! उस दिशामें अर्जुनकी इन्द्रकी गर्जनाकी समान, गर्जना—गाण्डीवकी टंकारध्वनि तथा रथकी घनघनाहट होरही है ॥ ४६–४७ ॥ प्रकट होता है कि—अर्जुन अपने स्वरूपके योग्य कर्म कररहा है और (देखो२) यह भारतीय सेना विदीर्ण होरही है, पवन जैसे बादलोंको बखेर डालता है, तैसे ही अर्जुनने भी हमारी बहुतसी सेनाओंको बखेर दिया है (देखो२) वे कहीं पर भी खडी नहीं होतीं ।४८–४९। कदाचित् कोई योधा उससे लडनेको जाता है तो वह जैसे समुद्रमें छोटीसी डोंगी नष्ट होजाती है, तैसे अर्जुनके पास जाते ही नष्ट होजाता है, और हे राजन् ! गाण्डीव धनुषमेंसे छूटेहुए बाणोंसे बिध कर भागतेहुए बड़े२ सैकडों योधाओंकी चीखें सुनाई आरही हैं, उनको भी हे राजसिंह ! तुम सुनो !! और आकाशमें अर्धरात्रिके समय मेघ जैसे गर्जना करते हों, तैसे दुन्दभियोंकी गडगडाहट सुनाई देरही है उसको भी सुनो ! और

अयं मध्ये स्थितोऽस्माकं सात्यकिः सात्वतान्वरः ॥ ५३ ॥ हत चेल्लभ्यते लक्ष्यं कृत्स्नान् जेष्यामहे परान् । एष पाञ्चालराजस्य पुत्रो द्रोणेन सङ्गतः ॥ ५४ ॥ सर्वतः संवृतो योधैः शूरैश्च रथसत्तमैः। सात्यकिं यदि हन्याम धृष्टद्युम्नञ्च पार्षतम् ॥ ५५ ॥ असंशयं महाराज ध्रुवो नो विजयो भवेत् । सौभद्रवदिमौ वीरौ परिवार्य महारथौ ॥ ५६ ॥ प्रयतामो महाराज निहन्तुं वृष्णिपार्षतौ । सव्यसाची पुरोऽभ्येति द्रोणानीकाय भारत ॥ ५७ ॥ संसक्तं सात्यकिं ज्ञात्वा वहुभिः कुरुपुङ्गवैः । तत्र गच्छन्तु बहवः प्रवरा रथसत्तमाः ॥ ५८ ॥ यावत् पार्थो न जानाति सात्यकिं बहुभिर्वृतम् । ते त्वरध्वं महाशूराः शराणां मोक्षणे भृशम् ॥ ५९ ॥ यथा

हे राजन् ! अर्जुनके रथकी ओर बहुतसा होहल्ला, सिंहनाद तथा अनेक प्रकारके शब्द होरहे हैं उनको भी सुनो ! इससमय सात्वत वंशमें श्रेष्ठ सात्यकि ही हमारे बीचमें खडा है ॥ ५०–५३ ॥ अतः हम जो पहले सात्यकिको मारडालेंगे तो सब शत्रुओंका पराजय कर सकेंगे, पाञ्चालराजका पुत्र धृष्टद्युम्न भी शूर और महारथी योधाओंसे घिरकर द्रोणाचार्यके सामने लडरहा है, उसको भी जीतनेकी आवश्यकता है, इस ही समय यदि हम सात्यकि और धृष्टद्युम्नको मारडालेंगे तो हे महाराज! हमारी विजय अवश्य होगी, अतः हे महाराज ! हम इन दोनों वीर महारथियोंको अभिमन्यु की समान चारों ओरसे घेर लें और इन वृष्णिवंशी तथा पृषद्वंशी वीरोंके नाश करनेका प्रयत्न करें, तब ही हमें जय मिलेगी ! हे भरतवंशी राजन् ! अर्जुन द्रोणकी सेनासे लडरहा है, अतः वह "सात्यकि बहुतसे शत्रुओंसे घिर गया है" यह जाने उससे पहिले ही तुम शूर वीर बड़े २ महारथियोंको लेकर उसके सामने जाओ और उसके ऊपर फुर्तीसे बाणोंकी वृष्टि करो (कि-यह द्रोणके साथ युद्ध करनेमें लगा रहे और इस ओर सात्यकिकी

त्विह व्रजत्येष परलोकाय माधवः । तथा कुरु महाराज सुनीत्या सुप्रयुक्तया ॥ ६० ॥ कर्णस्य मतमाज्ञाय पुत्रस्ते प्राह सौबलम् । यथेन्द्रः समरे राजन् प्राह विष्णुं यशस्विनम् ॥६१॥ वृतः सहस्रैर्दशभिर्गजानामनिवर्त्तिनाम् । रथैश्च दशसाहस्रैर्वृतो याहि धनञ्जयम् ॥ ६२ ॥ दुःशासनो दुर्विषहः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः । एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तिभिर्बहुभिर्वृताः ॥ ६३ ॥ जहि कृष्णौ महाबाहो धर्मराजञ्च मातुल । नकुलं सहदेवञ्च भीमसेनं तथैव च ॥ ६४ ॥ देवानामिव देवेन्द्रे जयाशा त्वयि मे स्थिता । जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥ ६५ ॥ एवमुक्तो ययौ पार्थान् तव पुत्रेण सौबलः । महत्या सेनया सार्द्धं सह पुत्रैश्च ते विभो ॥ ६६ ॥ प्रियार्थं तव पुत्रस्य दिधक्षुः पाण्डु-

सहायता करनेको न आसके)हे महाराज ! तुम ऐसी राजनीतिका उपयोग करो कि-जिससे सात्यकिका मरण हो ॥ ५४-६० ॥ हे राजन् ! कर्णका विचार सुननेके पीछे,इन्द्र जैसे यशस्वी विष्णु से रणमें कहे तैसे तुम्हारे पुत्रने शकुनिसे कहा कि-"अजी मामाजी! तुम दश सहस्र अड़ियल हाथीसवार और दश सहस्र रथियोंको लेकर इस ही समय अर्जुनके ऊपर चढ़ जाओ ॥ ६१-६२ ॥ अपनी सहायताके लिये तुम दुःशासन, दुर्विषह, सुबाहु, दुष्प्रधर्षणको तथा बहुतसे पैदलोंको साथमें लेलो हे महाभुज मामाजी ! तुम कृष्णको, अर्जुनको; युधिष्ठिरको, नकुलको, सहदेवको तथा भीमसेनको मारडालो ॥ ६४ ॥ देवताओंको जैसे देवराज इन्द्रके ऊपर विजयका भरोसा होता है तैसे ही मेरी विजयके आधार भी तुम ही हो ! अग्निपुत्र स्वामी कार्तिकेयने जैसे असुरोंका संहार करा था,तैसे ही हे मामाजी ! तुम पाण्डवोंका संहार करडालो ! ६५ तुम्हारे पुत्रने शकुनिसे इसप्रकार कहा, तब हे राजन् ! शकुनि तुम्हारे पुत्रोंका प्रिय करनेके लिये तुम्हारे (दूसरे) पुत्रोंको तथा

नन्दनान् । ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह ॥ ६७ ॥ प्रयाते सौबले राजन् पाण्डवानामनीकिनीम् । बलेन महता युक्तः सूतपुत्रस्तु सात्वतम् ॥ ६८ ॥ अभ्ययात्त्वरितो युद्धे किरन् शरशतान् बहून् । समेत्य पार्थिवाः सर्वे सात्यकिं पर्यवारयन् ॥ ६९ ॥ भारद्वाजस्ततो गत्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति । महद्युद्धं तदासीत्तु द्रोणस्य निशि भारत । धृष्टद्युम्नेन शूरेण पाञ्चाल्यैश्च महाद्भुतम् ॥७०॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
संकुलयुद्धे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

सञ्जय उवाच । ततस्ते प्राद्रवन्सर्वे त्वरिता युद्धदुर्मदाः । अमृष्यमाणा संरब्धा युयुधानरथं प्रति ॥ १ ॥ ते रथैः कल्पितै राजन् हेमरत्नविभूषितैः । सादिभिश्च गजैश्चैव परिवव्रुः समन्ततः ॥२॥

बड़ीभारी सेनाको साथमें लेकर पाण्डवोंका संहार करनेके लिये चढ़ा, और (जहाँ अर्जुन घूमरहा था) तहाँ जाकर तुम्हारे पुत्रोंको साथमें ले पाण्डवोंसे लड़नेलगा ॥६६–६७॥ हे राजन् ! सुबलपुत्र शकुनिने लड़नेके लिये (पहिले) पाण्डवोंकी सेना पर धावा किया, फिर बड़ीभारी सेनाको ले सूतपुत्र कर्ण एकसाथ सात्यकि पर झपटा और फुर्तीसे उसके ऊपर बाण छोड़नेलगा, हे राजन् ! और सब राजाओंने भी सात्यकिको चारों ओरसे घेरलिया, हे राजन् ! द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्न पर धावा किया, मध्यरात्रिके समय द्रोणाचार्यका शूरवीर धृष्टद्युम्न और पाञ्चालराजाओंके साथ महा अद्भुत युद्ध आरम्भ होगया ॥ ६८–७० ॥
एकसौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७० ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि हे राजन् धृतराष्ट्र ! युद्ध करनेमें मदमस्त सब योधा सात्यकिके प्रहारोंको सह न सके वे क्रोधमें भर फुर्तीके साथ सात्यकिके रथकी ओर दौड़े १ उन्होंने सुवर्ण और चाँदीसे सजेहुए रथोंसे, घुड़सवारोंसे, हाथियोंसे चारों ओरसे सात्यकिको

अथैनं कोष्ठकीकृत्य सर्वतस्ते महारथाः । सिंहनादं महत् कृत्वा तर्जयन्ति स्म सात्यकिम् ॥ ३ ॥ तेऽभ्यवर्षञ्छरैस्तीक्ष्णैः सात्यकिं सत्यविक्रमम् । त्वरमाणा महावीरा माधवस्य वधैषिणः ॥ ४ ॥ तान् दृष्ट्वापततस्तूर्णं शैनेयः परवीरहा । प्रत्यगृह्णान्महाबाहुः प्रमुञ्चन् विशिखान् बहून् ॥ ५ ॥ तत्र वीरो महेष्वासः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः । निचकर्त्त शिरांस्युग्रैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६ ॥ हस्तिहस्तान् हयग्रीवान् बाहूनपि च सायुधान् । क्षुरप्रैः शातयामास तावकानान्तु माधवः ॥ ७ ॥ पतितैश्चामरैश्चैव श्वेतछत्रैश्च भारत । बभूव धरणी पूर्णा नक्षत्रैर्द्यौरिव प्रभो ॥ ८ ॥ एतेषां युयुधानेन वध्यतां युधि भारत । बभूव तुमुलः शब्दः प्रेतानामिव क्रन्दताम् ॥ ९ ॥ तेन शब्देन महता पूरितेयं वसुन्धरा । रात्रिः

घेरलिया और उसके आसपास घेरा डालकर तुम्हारे महारथी सिंहकी समान गर्जना करनेलगे तथा सात्यकिका तिरस्कार करनेलगे २-३ तुम्हारे महावीर योधा सात्यकिको मारनेकी इच्छासे सत्यपराक्रमी सात्यकिके ऊपर फुर्तीसे तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥ शत्रुओंका संहार करने वाले महाभुज सात्यकिने, शत्रुओंकी ओरसे आते हुए बाणोंको झेल लिया. और उनके ऊपर बहुतसे बाण छोड़ने लगा ५ शूरवीर और महाधनुषधारी युद्धदुर्मद सात्यकि, नमी हुई गाँठ वाले उग्र बाणोंसे शत्रुओंके मस्तकोंको छेदने लगा॥६॥ वह तुम्हारे हाथियोंकी सूँडोंको, घोड़ोंके मस्तकोंको, योधाओंकी आयुधसहित भुजाओंको, क्षुरप्र जातिके बाण मार कर काटने लगा ॥ ७ ॥ उस समय हे राजन्! नक्षत्रोंसे जैसे आकाश शोभा पाता है तैसे इधर उधर पड़े हुए चमर और श्वेतछत्रोंसे पृथ्वी शोभा पा रही थी ॥ ८ ॥ हे भरतवंशी राजन्! युद्धमें सात्यकिके सामने युद्ध करने वाले योधा प्रेतोंकी समान आक्रन्द कर (रो) रहे थे ॥ ९ ॥ उस आक्रन्दसे सारी पृथ्वी

समभवच्चापि घोररूपा भयावहा ॥ १० ॥ दीर्यमाणं वलं दृष्ट्वा
युयुधानशराहतम् । श्रुत्वा तु विपुलं नादं निशीथे लोमहर्षणे ११
सुतस्तवाब्रवीद्राजन् सारथिं रथिनाम्वरः । यत्रैष शब्दस्तत्राश्वांश्चोदयेति पुनः पुनः ॥ १२ ॥ तेन संचोद्यमानस्तु ततस्तांस्तुरगोत्तमान् । सूतः संचोदयामास युयुधानरथं प्रति ॥ १३ ॥ ततो दुर्योधनः क्रुद्धो दृढधन्वा जितक्लमः । शीघ्रहस्तश्चित्रयोधी युयुधानमुपाद्रवत् ॥ १४ ॥ ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः शोणितभोजनैः ।
दुर्योधनं द्वादशभिर्माधवः प्रत्यविध्यत ॥ १५ ॥ दुर्योधनस्तेन
तथा पूर्वमेवार्दितः शरैः । शैनेयं दशभिर्वाणैः प्रत्यविध्यदमर्षितः १६
ततः समभवद्युद्धं तुमुलं भरतर्षभ । पञ्चालानाञ्च सर्वेषां भरतानाञ्च दारुणम् ॥१७॥ शैनेयस्तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं महारथम् ।

गूँजरही थी, वह समय मध्यरात्रिका था ॥ १० ॥ रोमाञ्च खड़े करनेवाली भयङ्कर अर्धरात्रिमें सात्यकिके वाणोंके प्रहारसे तुम्हारी सेनामें भागड पडी हुई देखकर तथा वडेभारी आक्रन्दको सुनकर, तुम्हारा महारथी पुत्र सारथिसे कहनेलगा, कि-"जहाँ पर यह शब्द होरहा है, तहाँ मेरे रथको ले चल" ॥ ११-१२ ॥ दुर्योधनकी आज्ञा होते ही सारथिने सात्यकिके रथकी ओर घोड़ोंको हाँका ॥ १३ ॥ दृढ़ धनुषधारी, दुःख सहन करनेवाले, फुर्तीले हाथवाले और विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले दुर्योधनने सात्यकिके ऊपर धावा किया ॥ १४ ॥ सात्यकिने भी धनुषको भली भाँति खेंचकर रुधिरका भोजन करनेवाले वारह वाण दुर्योधनके मारे ॥ १५ ॥ इसप्रकार दुर्योधनको आते ही वाण मारकर पीडित किया, तव दुर्योधन क्रोधमें भरगया और उसने दश वाण मारकर सात्यकिको वींधडाला ॥ १६ ॥ तदनन्तर हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! पाञ्चाल राजे और सव भरतवंशी राजाओंमें दारुण और तुमुल युद्ध आरम्भ होगया ॥१७॥ इस

सायकानामशीत्या तु विव्याधोरसि भारत ॥ १८ ॥ ततोऽस्य वाहान् समरे शरैर्निन्ये यमक्षयम् । सारथिञ्च रथात्तूर्णं पातयामास पत्रिणा ॥१९॥ हताश्वे तु रथे तिष्ठन् पुत्रस्तव विशाम्पते । मुमोच निशितान् बाणाञ्छैनेयस्य रथं प्रति ॥ २० ॥ शरान् पञ्चाशतस्तांस्तु शैनेयः कृतहस्तवत् । चिच्छेद समरे राजन् प्रेषितांस्तनयेन ते ॥२१॥ अथापरेण भल्लेन मुष्टिदेशे महद्धनुः । चिच्छेद तरसा युद्धे तव पुत्रस्य माधवः ॥२२॥ विरथो विधनुष्कश्च सर्वलोकेश्वरः प्रभुः । आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥२३॥ दुर्योधने परावृत्ते शैनेयस्तव वाहिनीम् । द्रावयामास विशिखैर्निशामध्ये विशाम्पते ॥ २४ ॥ शकुनिश्चार्जुनं राजन् परिवार्य समन्ततः । रथैरनेकसाहस्रैर्गजैश्चापि सहस्रशः ॥ २५ ॥ तथा

युद्धमें सात्यकि क्रोधमें भररहा था उसने तुम्हारे पुत्रकी छातीमें अस्सी बाण मारे थे ॥ १८ ॥ पीछेसे तुम्हारे पुत्रके घोडोंको मारडाला था, तथा उसके सारथिको भी बाणके प्रहारसे तुरन्त ही रथके ऊपरसे पृथिवीमें गिरादिया था ॥१९॥ तो भी हे राजन्! तुम्हारा पुत्र घोडेरहित रथ पर बैठाहुआ सात्यकिके रथके ऊपर तेज कियेहुए बाण मारे ही जाता था ॥ २० ॥ तुम्हारे पुत्रके छोड़े हुए पचास बाणोंको सात्यकिने फुर्तीले हाथ वाले पुरुषकी समान, इस युद्धके समय शीघ्रतासे काट डाला ॥ २१ ॥ फिर सात्यकिने भल्ल नामक बाणसे तुम्हारे पुत्रके हाथमेंके धनुषको मुष्टिप्रदेशमेंसे काट डाला ॥२२॥ और जब राजा दुर्योधन रथ और धनुपरहित होगया तब वह कृतवर्माके रथ पर चढ बैठा२३ हे राजन्! दुर्योधन पीछेको हटा कि—सात्यकिने बाण मार कर मध्यरात्रिके समय तुम्हारे सेनादलको भगा दिया ॥२४॥ शकुनि चारों ओरसे लाखों घुड़सवार और लाखों हाथीसवारोंको ले अर्जुनको घेर उसके ऊपर नानाप्रकारके बाणोंकी बौछार कर

हयसहस्रैश्च नानाशस्त्रैरवाकिरत् । ते महास्त्राणि सर्वाणि विकिरन्तोऽर्जुनं प्रति ॥ २६ ॥ अर्जुनं योधयन्ति स्म क्षत्रियाः कालचोदिताः । तान्यर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ॥ २७ ॥ प्रत्यवारयदायस्तः प्रकुर्वन् विपुलं क्षयम् । ततस्तु समरे शूरः शकुनिः सौवलस्तदा ॥ २८ ॥ विव्याध निशितैर्बाणैरर्जुनं प्रहसन्निव । पुनश्चैव शतेनास्य संरुरोध महारथम् ॥ २९ ॥ तमर्जुनस्तु विंशत्या विव्याध युधि भारत । अथेतरान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत ॥ ३० ॥ निवार्य तान् बाणगणैर्युधि राजन् धनञ्जयः । निजघ्ने तावकान् योधान् वज्रपाणिरिवासुरान् ३१ भुजैश्छिन्नैर्महाराज हस्तिहस्तोपमैर्मृधे । समाकीर्णा मही भाति पञ्चास्यैरिव पन्नगैः ॥ ३२ ॥ शिरोभिः सकिरीटैश्च सुनसै-

---

रहा था, तैसेही कालसे प्रेरित क्षत्रिय भी अर्जुनके ऊपर बड़े२ अस्त्रोंका प्रहार करते हुए युद्ध करते थे, अर्जुनने सहस्रों रथ, हाथी और घोड़ोंको आगे वढ़नेसे रोका और परिश्रमपूर्वक उनका संहार करने लगा, जब शकुनिने धीरे२ हँसते हुए अर्जुनके ऊपर तीक्ष्ण वाण मारना आरंभ कर दिया और सौ वाण मार कर उसके महारथको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २५—२९ ॥ तब हे भरतवंशी राजन् ! अर्जुनने शकुनिके बीस बाण मारे और दूसरे धनुषधारियोंके तीन२ वाण मारे ॥ ३० ॥ और हे राजन् ! इन्द्र जैसे असुरोंका संहार करे, तैसे अर्जुन शत्रुओंके बाणोंको आनेसे रोक तुम्हारे योधाओंके सामने बाण मारता था ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! रणभूमि हाथियोंकी सूड़ोंकी समान (मोटी२) भुजाओंसे भर गई थी उस समय वह पाँच मुख वाले सर्पोंसे भरी हुईसी दीखती थी ॥ ३२ ॥ और मुकुट वाले, सुन्दर नासिकाओंवाले, सुन्दर कुण्डलोंवाले, ओठोंको काटते हुए, क्रोधमें भरे हुए, फटी हुई आँखोंवाले, प्रिय बोलने वाले, पदक तथा चूडामणि धारण करने

श्चारुकुण्डलैः । सन्दष्टौष्ठपुटैः क्रुद्धैस्तथैवोद्वृत्तलोचनैः ॥ ३३ ॥ निष्कचूडामणिधरैः क्षत्रियाणां प्रियम्वदैः । पङ्कजैरिव विन्यस्तैः पर्वतैर्विबभौ मही ॥३४॥ कृत्वा तत् कर्म बीभत्सुरुग्रमुग्रपराक्रमः । विव्याध शकुनिं भूयः पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ३५ ॥ अताडयदुलूकं च त्रिभिरेव तथा शरैः । उलूकस्तु तथा विद्धो वासुदेवमताडयत् ॥३६॥ ननाद च महानादं पूरयन्निव मेदिनीम् । अर्जुनः शकुनेश्चापं सायकैरच्छिनद्रणे ॥ ३७ ॥ निन्ये च चतुरो वाहान् यमस्य सदनं प्रति । ततो रथादवप्लुत्य सौवलो भरतर्षभ ॥३८॥ उलूकस्य रथं तूर्णमारुरोह विशाम्पते । तावेकरथमारूढौ पितापुत्रौ महारथौ ॥ ३९ ॥ पार्थं सिषिचतुर्बाणैर्गिरिं मेघाविवोत्थितौ । तौ तु विध्वा महाराज पाण्डवो निशितैः शरैः ॥ ४० ॥ विद्रावयं-

---

वाले, क्षत्रियोंके मस्तक रणमें इधर उधर लुढ़क रहे थे, उनके कारण कमलोंवाले पर्वतोंसे जैसे पृथ्वी शोभा पाती है, तैसे ही रणभूमि शोभा पा रही थी ॥ ३३-३४ ॥ इस प्रकार उग्र पराक्रम करने वाले अर्जुनने उग्र कर्म करके नमी हुई गाँठवाले पाँच बाण फिर शकुनिके मारे ॥ ३५ ॥ और तीन बाण उलूकके मारे, उलूकने वासुदेवके बाण मारा और बडी भारी गर्जना कर पृथ्वीको गुंजार दिया, इस युद्धमें अर्जुनने बाण मार कर शकुनिके धनुष को काट डाला और उसके चारों घोडोंको यमपुरीमें भेज दिया, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ ! शकुनि रथमेंसे नीचे उतर पडा और उलूक के रथ पर चढ़ बैठा, महारथी पिता पुत्र एक रथमें बैठ कर मेघ जैसे पर्वतके ऊपर जल बरसाते, तैसे अर्जुनके ऊपर फिर बाणोंकी वृष्टि करने लगे, हे महाराज ! अर्जुनने उन दोनोंको तेज बाण मारकर बींध डाला और सैंकडों बाणोंका प्रहार कर तुम्हारी सेनाको भगाने लगा, इस समय पवनसे जैसे बादल चारों ओर को छिन्न भिन्न हो जाँय, तैसे हे राजन् ! तुम्हारी सेना भी छिन्न

एतव चमूं शतशोऽथ सहस्रशः । अनिलेन यथाभ्राणि विच्छिन्नानि सर्वतः ॥ ४१ ॥ विच्छिन्नानि तथा राजन् बलान्यासन् विशाम्पते । तद्बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं तदा निशि ॥ ४२ ॥ प्रदुद्राव दिशः सर्वा वीक्षमाणं भयार्दितम् । उत्सृज्य वाहान् समरे चोदयन्तस्तथापरे ॥ ४३ ॥ संभ्रान्ताः पर्यवर्त्तन्त तिस्मस्तमसि दारुणे । निर्जित्य समरे योधांस्तावकान् भरतर्षभ ॥ ४४ ॥ दध्मतुर्मुदितौ शंखौ वासुदेवधनञ्जयौ । धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणं विध्वा त्रिभिः शरैः ॥ ४५ ॥ चिच्छेद धनुषस्तूर्णं ज्यां शितेन शरेण ह । तन्निधाय धनुर्भूमौ द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४६ ॥ आददेऽन्यद्धनुः शूरो वेगवत् सारवत्तरम् । धृष्टद्युम्नं ततो द्रोणो विध्वा सप्तभिराशुगैः ॥ ४७ ॥ सारथिं पञ्चभिर्बाणैर्विव्याध भरतर्षभ । तं निवार्य शरैस्तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ ४८ ॥ व्यधमत् कौरवीं सेनामासुरीं मघवानिव । वध्यमाने बले

भिन्न होकर भागने लगी और भयभीत हुई कौरवोंकी सेना सब दिशाओंको निहारती हुई भाग रही थी, इस समय कितने ही तो रणमें वाहनोंको छोड कर भाग रहे थे और बहुतसे घबडा कर दारुण अँधेरेमेंको भाग रहे थे, हे भरतवंशी राजन्, ! तुम्हारे योधाओंको रणमें जीतकर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन हर्षमें भर कर शंख बजाने लगे; दूसरी ओर धृष्टद्युम्नने भी तीन बाणोंसे द्रोणको बींध डाला ॥ ३६—४५ ॥ तीक्ष्ण करे हुए बाणोंसे तुरत ही उसके धनुषकी डोरीको काट डाला तब क्षत्रियोंका संहार करने वाले द्रोणने धनुषको पृथ्वी पर फेंक कर ॥ ४६ ॥ वेग तथा बलवाला दूसरा धनुष उठाया और शीघ्रगामी सात बाण धृष्टद्युम्नके मारे ॥ ४७ ॥ तथा पाँच बाण उसके सारथिके मारे, परन्तु महारथी धृष्टद्युम्नने उन बाणोंको बाण मार कर अपने पास आनेसे रोक दिया ॥ ४८ ॥ और

तस्मिंस्तव पुत्रस्य मारिष ॥ ४९ ॥ प्रावर्त्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी । उभयोः सेनयोर्मध्ये नराश्वद्विपवाहिनी ५० यथा वैतरणी राजन् यमराष्ट्रं प्रति प्रभो । द्रावयित्वा तु तत् सैन्यं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ॥ ५१ ॥ अभ्यराजत तेजस्वी शक्रो देवगणेष्विव । अथ दध्मुर्महाशंखान् धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥५२॥ यमौ च युयुधानश्च पाण्डवश्च वृकोदरः ।जित्वा राजसहस्राणि तावकानां महारथाः ५३ सिंहनादरवांश्चक्रुः पांडवा जितकाशिनः । पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च रणोत्कटाः ॥ तथा द्रोणस्य शूरस्य द्रौणेश्चैव विशाम्पते ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
संकुलयुद्धे एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

सञ्जय उवाच । विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं महात्मभिः ।

इन्द्र जैसे आसुरी सेनाका संहार कर डाले तैसे कौरवोंकी सेनाका संहार कर डाला, हे राजन् ! जब धृष्टद्युम्न तुम्हारे पुत्रोंकी सेनाका संहार कर रहा था उस समय वैतरिणी नदी जैसे यमनगरीकी ओरको बहती है, तैसेही उन दोनों सेनाओंके बीचमें मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके रुधिरके प्रवाह वाली भयंकर नदी बह रही थी, प्रतापी धृष्टद्युम्न तुम्हारी सेनाको भगानेके पीछे, देवताओंके समूहमें जैसे इन्द्र शोभा पावे तैसे तेजस्वी योधाओंके बीचमें शोभा पा रहा था तुम्हारी सेनाका पराजय करनेके पीछे धृष्टद्युम्नने तथा शिखण्डीने अपने २ शंख बजाये॥४९–५२॥तथा हे राजन् ! मदसे उत्कट हुए विजयी सात्यकि, भीमसेन, नकुल, सहदेव आदि महारथी पाण्डव, तुम्हारे पुत्र दुर्योधन, कर्ण, वीर द्रोण तथा अश्वत्थामाके सामने ही सिंहकी समान गर्जना करने लगे५३–५४

एकसौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

सञ्जयने कहा कि– हे राजन् ! महात्मा पाण्डवोंसे अपनी सेनाका

क्रोधेन महताविष्टः पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ १ ॥ अभ्येत्य सहसा कर्णं द्रोणञ्च जयतांवरम् । अमर्षवशमापन्नो वाक्यज्ञो वाक्यमब्रवीत् २ भवद्भ्यामिह संग्रामः क्रुद्धाभ्यां सम्प्रवर्त्तितः । आहवे निहतं दृष्ट्वा सैन्धवं सव्यसाचिना ॥ ३ ॥ निहन्यमानां पाण्डूनां बलेन मम वाहिनीम् । भूत्वा तद्विजये शक्तावशक्ताविव पश्यतः ॥ ४ ॥ यद्यहं भवतस्त्याज्यो न वाच्योऽस्मि तदैव हि । आवां पाण्डुसुतान् संख्ये जेष्याव इति मानदौ ॥ ५ ॥ तदैवाहं वचः श्रुत्वा भवद्भ्यामनुसम्मतम् । नाकरिष्यमिदं पार्थैर्वैरं योधविनाशनम् ॥ ६ ॥ यदि नाहं परित्याज्यो भवद्भ्यां पुरुषर्षभौ । युध्यतामनुरूपेण विक्रमेण सुविक्रमौ ॥ ७ ॥ वाक्प्रतोदेन तौ वीरौ प्रणुन्नौ तनयेन ते ।

संहार होता हुआ देखकर तथा अपनी सेनाको भागती हुई देखकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको बडा क्रोध चढा ॥ १ ॥ वाक्यवेत्ता दुर्योधनने एकाएक महाविजयी कर्ण तथा द्रोणके पास जाकर क्रोधमें भर उन दोनोंसे कहा कि—॥ २ ॥ अर्जुनने रणभूमिमें सिंधुराजका नाश कर डाला; तबसे ही तुम दोनोंने कोपमें भर कर युद्धका (द्वेषपूर्वक) आरंभ किया है ॥ ३ ॥ परन्तु इस समय तो पाण्डवी सेना ही हमारी सेनाका संहार कर रही है इस बातको तुम (शत्रुओंको) हरानेमें समर्थ होकर भी अशक्तकी समान कैसे देख रहे हो ? ॥ ४ ॥ हे मानद वीरों ! तुम्हें यदि मेरा इस प्रकार ही त्याग करना था तो तुम्हें उस समय मुझसे यह न कहना चाहिये था कि—हम पाण्डुके पुत्रोंको जीत लेंगे ! ॥ ५ ॥ तैसे ही मैं भी उस समय ही तुम्हारे कथनको सुन कर, पाण्डवोंके साथ वीरपुरुषोंके विनाश करनेवाला वैर नहीं बाँधता ॥ ६ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठों ! यदि अब भी तुम मेरा त्याग करना न चाहते हो तो तुम दोनों युद्ध करके अपने स्वरूपके योग्य पराक्रम करके दिखाओ ॥७॥ इस प्रकार तुम्हारे पुत्रके वाणीरूप कोड़ेसे विंधकर वे दोनों

मावर्त्तयेतां तौ युद्धं पद्दिताविव पन्नगौ ॥ ८ ॥ ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ सर्वलोकधनुर्द्धरौ । शैनेयप्रमुखान् पार्थानभिदुद्रुवतू रणे ९ तथैव सहिताः पार्थाः स्वेन सैन्येन संवृताः । अभ्यवर्त्तन्त तौ वीरौ नर्दमानौ मुहुर्मुहुः ॥१०॥ अथ द्रोणो महेष्वासो दशभिः शिनिपुङ्गवम् । अविध्यत्त्वरितं क्रुद्धः सर्वशस्त्रभृताम्वरः ॥११॥ कर्णश्च दशभिर्बाणैः पुत्रश्च तव सप्तभिः । दशभिर्वृषसेनश्च सौबलश्चापि सप्तभिः ॥ १२ ॥ एते कौरवसंक्रन्दे शैनेयं पर्यवाकिरन् । दृष्ट्वा च समरे द्रोणं निघ्नन्तं पाण्डवीं चमूम् ॥ १३ ॥ विव्यधुः सोमकास्तूर्णं समन्ताच्छरवृष्टिभिः । तत्र द्रोणोऽहरत् प्राणान् क्षत्रियाणां विशाम्पते ॥ १४ ॥ रश्मिभिर्भास्करो राजंस्तमांसीव समन्ततः । द्रोणेन वध्यमानानां पञ्चालानां विशाम्पते ॥ १५ ॥

योधा पैरसे दबे हुए सर्पकी समान पाण्डवोंके साथ युद्ध करने को उद्यत होगए ॥ ७ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ तथा सब लोकोंमें धनुषधारी वे दोनों वीर रणमें सात्यकिप्रमुख पाण्डवोंके ऊपर चढ़ गए और पाण्डवपक्षके सात्यकिप्रमुख पाण्डव भी बड़ी भारी सेनाको साथमें ले गर्जना करते हुए उन दोनों पुरुषोंके ऊपर वेगसे टूटपड़े ॥९–१०॥ महाधनुषधारी तथा सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने कोपमें भरकर सात्यकिके दश बाण मारे ।११। तथा कर्णने दश, तुम्हारे पुत्रने सात, वृषसेनने दश और सुबलपुत्र (शकुनि) ने भी सात बाण मारे ॥१२॥ रणभूमिमें चारों ओरसे सबने सात्यकिको घेरलिया, युद्धमें द्रोणाचार्य पांडवोंकी सेनाका संहार करनेलगे, यह देखकर सोमक राजे चारों ओरसे द्रोणके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करके उनको मारनेलगे, हे राजन् ! सूर्य जैसे चारों दिशाओंमें किरणोंको फैलाकर चारों ओरसे तिमिरपटलको दूर करदेता है, तैसे ही द्रोण भी चारों ओर बाणमारकर, क्षत्रियोंका प्राण हरण कर उनको युद्ध करनेसे दूर

शुश्रुवे तुमुलः शब्दः क्रोशतामितरेतरम्। पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄनन्ये च मातुलान् ॥ १६ ॥ भागिनेयान् वयस्यांश्च तथा सम्बन्धिबान्धवान्। उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति त्वरिता जीवितेप्सवः१७ अपरे मोहिता मोहात्तमेवाभिमुखा ययुः। पाण्डवानां बले योधाः परलोकं गताः परे ॥ १८ ॥ तथा सा पाण्डवी सेना पीड्यमाना महात्मना। निशि सम्प्राद्रवद्राजन् विसृज्योल्काः सहस्रशः १९ पश्यतो भीमसेनस्य विजयस्याच्युतस्य च। यमयोर्धर्मपुत्रस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥२०॥ तमसा संवृते लोके न प्राज्ञायत किञ्चन। कौरवाणां प्रकाशेन दृश्यन्ते विद्रुताः परे ॥ २१ ॥ द्रवमाणन्तु तत्

भगानेलगे, हे राजन् ! द्रोण पाञ्चाल राजाओंको मारते थे और पाञ्चाल राजे प्रहारकी वेदनासे डकरारहे थे तथा उनके डकरानेका तुमुल शब्द हमारे कानोंमें पड़रहा था, इस युद्धमें कितने ही जीवित रहनेकी इच्छासे पुत्रोंको त्याग कर; कितने ही पिताओंको त्याग कर, कोई मामाओंको छोडकर, कोई भाञ्जेको छोडकर, कोई मित्रको त्याग कर, कोई सम्बन्धीको त्याग कर तथा कोई बान्धवों को त्याग कर फुर्तीके साथ रणभूमिमेंसे भागते हुए दिखाई देते थे ॥ १३–१७ ॥ और कितने ही घबडाहटसे अन्धेसे होकर द्रोणके ही सामनेको (मरनेके लिये) दौडते थे, पाण्डवोंके बहुतसे योधा तो इस युद्धमें दौड भाग करतेहुए ही मारेगए थे २० और दूसरी ओरकी पाण्डवोंकी सेनाने भी महात्मा द्रोणके प्रहारसे खिन्न होकर उस रात्रिमें भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर तथा धृष्टद्युम्नके सामने ही हाथमेंकी सहस्रों मशालोंको पृथिवीमें फैंक पलायन करना आरंभ करदिया १९-२० इस समय सारा जगत् अन्धकारमय होरहा था, कुछ भी दिखाई नहीं पडता था—केवल कौरवोंकी सेनाके दीपकोंके प्रकाशमें भागते हुए शत्रु ही दिखाई पडते थे॥२१॥ हे राजन् ! जब पांडवों

सैन्यं द्रोणकर्णौ महारथौ । जघ्नतुः पृष्ठतो राजन् किरन्तौ सायकान् बहून् ॥२२॥ पाञ्चालेषु प्रभग्नेषु क्षीयमाणेषु सर्वतः । जनार्दनो दीनमनाः प्रत्यभाषत फाल्गुनम् ॥ २३ ॥ द्रोणकर्णौ महेष्वासावेतौ पार्षतसात्यकी । पाञ्चालांश्चैव सहितौ जघ्नतुः सायकैर्भृशम् २४ एतयोः शरवर्षेण प्रभग्ना नो महारथाः । वार्यमाणापि कौन्तेय पृतना नावतिष्ठते ॥ २५ ॥ तान्तु विद्रवतीं दृष्ट्वा ऊचतुः केशवार्जुनौ । मा विद्रवत वित्रस्ता भयं त्यजत पाण्डवाः ॥२६॥ तावावां सर्वसैन्यैश्च व्यूहैः सम्यगुदायुधैः । द्रोणञ्च सूतपुत्रञ्च प्रयतावः प्रबाधितुम् ॥ २७ ॥ एतौ हि बलिनौ शूरौ कृतास्त्रौ जित-

की सेना भागने लगी तब महारथी द्रोण और कर्ण उनके पीछे पड़, बहुतसे बाण छोड़कर उनका संहार करनेलगे ॥ २२ ॥ जब इसप्रकार पाण्डवोंकी सेनामें भगड़ पड़रही थी, तो उसमेंसे बहुतसे मारे गए, तब श्रीकृष्णने दीनमनसे अर्जुनसे कहा. कि–॥२३॥ "हे अर्जुन ! महाधनुषधारी कर्णने तथा द्रोणने इकट्ठे होकर धृष्टद्युम्नके, सात्यकिके तथा पाञ्चालराजाओंके बहुतसे बाण मारे हैं ॥ २४ ॥ और उनके बाणोंके प्रहारसे हमारे महारथी (ऐसे डरगए हैं कि) रणमेंसे भागरहे हैं, वे हमारे रोकने पर भी नहीं रुकते" ॥२५॥ इसप्रकार वार्तालाप करनेके पीछे श्रीकृष्ण और अर्जुनने भागती हुई सेनाकी ओर जोरसे पुकार कर कहा कि– "अरे ओ ! पाण्डवसेनाके योधाओं ! तुम भयभीत होकर भागो मत ! भयको छोड़ दो (और खड़े रहो) ॥२६॥ मैं तथा अर्जुन, इन सब सैनिकोंका–जिसमें अच्छी प्रकारसे आयुध उठरहे हों ऐसा व्यूह रचकर, द्रोण तथा कर्णको दण्ड देनेका अभी प्रयत्न करते हैं, ये दोनों योधा बलवान्, शूरवीर अस्त्रविद्यामें कुशल तथा विजयलक्ष्मीसे शोभायमान हैं, और उनके ऊपर हमारे सैनिकोंने लापरवाही दिखाई है, तो भी हम आजकी रात्रिमें

काशिनौ । उपेक्षितौ तव बलैर्नाशयेतां निशामिमाम्॥२८॥ तयोः संवदतोरेवं भीमकर्मा महाबलः । आयाद् वृकोदरः शीघ्रं पुनरावर्त्य वाहिनीम् ॥२९॥ वृकोदरमथायान्तं दृष्ट्वा तत्र जनार्दनः । पुनरेवाब्रवीद्राजन् हर्षयन्निव पाण्डवम् ॥ ३० ॥ एष भीमो रणश्लाघी वृतः सोमकपाण्डवैः । अभ्यवर्त्तत वेगेन द्रोणकर्णौ महारथौ॥३१॥एतेन सहितो युध्य पञ्चालैश्च महारथैः । आश्वासनार्थं सैन्यानां सर्वेषां पाण्डुनन्दन ॥ ३२ ॥ ततस्तौ पुरुषव्याघ्रावुभौ पाण्डवमाधवौ । द्रोणकर्णौ समास धिष्ठितौ रणमूर्धनि ३३ सञ्जय उवाच । ततस्तत् पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् । ततो द्रोणश्च कर्णश्च परान् ममृदतुर्युधि ॥ ३४ ॥ स संप्रहारस्तुमुलो निशि प्रत्यभवन्महान् । यथा सागरयो राजन् चन्द्रोदय-

---

उनका नाश ही करडालेंगे" ॥२७-२८॥ इसप्रकार सेनाको धीरज देनेके पीछे वे शान्त हुए कि-इतनेमें ही भयङ्कर कर्म करनेवाला महाबलशाली भीमसेन भागती हुई सेनाको पीछेको लौटा कर तुरन्त ही पीछेको फिरा ! ॥ २९ ॥ श्रीकृष्ण भीमसेनको आता देखकर अर्जुनको प्रसन्न करते हुए फिर बोले, कि-॥ ३० ॥ "युद्धमें सदा आनन्दमें भर पराक्रम करनेवाला भीमसेन सोमक राजाओंसे तथा पाण्डवी सेनासे घिरकर महारथी द्रोण तथा कर्णके सामने वेगसे हल्ला ले जारहा है, अतः हे अर्जुन ! तू पाञ्चाल महारथियोंके साथमें रहकर सब सेनाओंको ढाढस देनेके लिये युद्ध कर" फिर पुरुषोंमें व्याघ्रसमान श्रीकृष्ण तथा अर्जुन, द्रोण तथा कर्णके ऊपर चढ़े और रणके मुहाने पर जाकर खड़े होगए ॥३१-३३॥ सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! तुरन्त ही युधिष्ठिरकी बडीभारी सेना भी पीछेको फिरकर रणभूमिमें आकर खड़ी होगई, और द्रोण तथा कर्ण युद्धमें फिर शत्रुओंका संहार करनेलगे ३४ से हे राजन् ! उससमय चंद्रमाके उदय होनेसे वृद्धि पाते

समुद्रयोः ॥ ३५ ॥ तत उत्सृज्य पाणिभ्यां प्रदीपांस्तत्र वाहिनी । युयुधे पाण्डवैः सार्द्धमुन्मत्तवदसंकुला ॥ ३६ ॥ रजसा तमसा चैव संवृते भृशदारुणे । केवलं नाममात्रेण प्रायुध्यन्त जयैषिणः ३७ अश्रूयन्त हि नामानि श्राव्यमाणानि पार्थिवैः । प्रहरद्भिर्महाराज स्वयम्वर इवाहवे ॥ ३८ ॥ निःशब्दमासीत् सहसा पुनः शब्दो महानभूत् । क्रुद्धानां युध्यमानानां जयतां जीयतामपि ॥ ३९ ॥ यत्र यत्र स्म दृश्यन्ते प्रदीपाः कुरुपुङ्गव। ते शूरास्तत्र तत्र स्म निपतन्ति पतङ्गवत् ४० तथा संयुध्यमानानां विगाढाभून्महानिशा । पाण्डवानाञ्च राजेन्द्र कौरवाणाञ्च सर्वशः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
संकुलयुद्धे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

हुए दो समुद्र जैसे रात्रिमें युद्ध कर रहे हों, तैसे वे दोनों योधा रात्रिमें महातुमुल युद्ध करने लगे ॥ ३५ ॥ तुम्हारी सेना भी दीपकोंको हाथोंमेंसे फैंक कर अलग २ होकर उन्मत्तकी समान पाण्डवोंसे युद्ध करने लगी ॥३६॥ इस समय अंधकार और धूल से पृथ्वी ढक रही थी, वह देखनेमें अतिदारुण लगती थी, विजयाभिलाषी योधा केवल नाम और गोत्र सुनकर ही एक दूसरेसे लड़ रहे थे ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! जैसे स्वयम्वरमें राजे अपना २ नाम बोल रहे हों, तैसे लड़ाके अपना नाम बोलकर शत्रुओं पर प्रहार करते थे, तब प्रतीत होता था कि–ये कौन हैं ॥ ३२ ॥ एकाएक शब्द बन्द होजाता था और पीछे हारते हुए विजयी और क्रोधमें भरे हुए योधाओंका महाशब्द सुनाई पड़ता था॥३९॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! जहाँ २ दीपक दीखते थे, तहाँ २ योधा पतंगोंकी समान दौड़कर पहुँच जाते थे ॥ ४० ॥ हे राजेन्द्र ! कौरव तथा पाण्डव जिस समय युद्ध कर रहे थे, उस समय महानिशा गाढ़ स्थितिमें आगई थी, अर्थात् ठीक आधी रात होगई थी ॥ ४१ ॥

सञ्जय उवाच । ततः कर्णो रणे दृष्ट्वा पार्षतं परवीरहा । आजघानोरसि शरैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः ॥ १ ॥ प्रतिविव्याध तं तूर्णं धृष्टद्युम्नोऽपि मारिष । दशभिः सायकैस्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् २ तावन्योऽन्यं शरैः संख्ये सञ्छाद्य सुमहारथैः । पुनः पूर्णायतोत्सृष्टैर्विव्यधा ते परस्परम् ॥ ३ ॥ ततः पाञ्चालमुख्यस्य धृष्टद्युम्नस्य संयुगे । सारथिञ्चतुरश्चाश्वान् कर्णो विव्याध सायकैः ॥ ४ ॥ कार्मुकप्रवरञ्चापि चिच्छेद निशितैः शरैः । सारथिञ्चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५॥ धृष्टद्युम्नस्तु विरथो हताश्वो हतसारथिः । गृहीत्वा परिघं घोरं कर्णस्याश्वानपीपिषत् ॥ ६ ॥ विद्धश्च बहुभिस्तेन शरैराशीविषोपमैः । ततो युधिष्ठिरानीकं पद्भ्यामेवान्व-

---

सञ्जयने कहा कि—तदनन्तर शत्रुओंका नाश करने वाले महारथी कर्णने रणभूमिके ऊपर धृष्टद्युम्नको देख कर उसकी छातीमें दश मर्मभेदी बाण मारे ॥ १ ॥ और हे राजन् ! धृष्टद्युम्नने भी उत्साहमें भर कर्णके दश बाण मारे, और कहा कि-अरे ओ ! खडा रह ! खडा रह !! भागता है क्या ? ॥ २ ॥ इस प्रकार बातचीत होने पर दोनों महारथी धनुषोंको कान तक खेंच एक दूसरेके ऊपर बाणोंका प्रहार करने लगे ॥ ३ ॥ कर्णने पाञ्चालराजाओंमें श्रेष्ठ धृष्टद्युम्नके सारथीको तथा उसके चारों घोडोंको बाण मार कर बींध डाला ॥ ४ ॥ और दूसरा तीक्ष्ण करा हुआ बाण मार कर धृष्टद्युम्नके बड़े भारी धनुषको काट डाला और भल्ल नामके बाणसे उसके सारथीको रथकी बैठक परसे उडा दिया । इस प्रकार रथका, घोडोंका तथा सारथीका नाश होनेसे धृष्टद्युम्न अकेला होगया, तब उसने भयङ्कर परिघ मारकर कर्णके घोडोंको मारडाला ॥ ५ ॥ ६ ॥ कर्णने भी विषैले सर्पकी समान बहुतसे बाण मारकर धृष्टद्युम्नको बींधडाला, तब धृष्टद्युम्न पाँव २ चलता हुआ ही युधिष्ठिरकी सेनामें पहुँच गया ॥७॥ और सहदेवके रथमें

पश्यत ॥ ७ ॥ आरुरोह रथं चापि सहदेवस्य मारिष । प्रयातुकामः कर्णाय वारितो धर्मसूनुना ॥ ८ ॥ कर्णस्तु सुमहातेजाः सिंहनादविमिश्रितम् । धनुःशब्दं महच्चक्रे दध्मौ तारेण चाम्बुजम् ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा विनिर्जितं युद्धे पार्षतं ते महारथाः । अमर्षवशमापन्नाः पञ्चालाः सह सोमकैः ॥ १० ॥ सूतपुत्रवधार्थाय शस्त्राण्यादाय सर्वशः । प्रययुः कर्णमुद्दिश्य मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ११ ॥ कर्णस्यापि रथे वाहानन्यान् सूतोऽभ्ययोजयत् । शंखवर्णान् महावेगान् सैन्धवान् साधुवाहिनः ॥ १२ ॥ लब्धलक्ष्यस्तु राधेयः पञ्चालानां महारथान् । अभ्यपीडयदायस्तः शरैर्मेघ इवाचलम् ॥ १३ ॥ सा पीड्यमाना कर्णेन पञ्चालानामनीकिनी । सम्प्राद्रवत् सुसन्त्रस्ता सिंहेनेवार्दिता मृगी ॥ १४ ॥

बैठ कर फिर कर्णके ऊपर चढ़ाई करनेको तयार होगया, परन्तु युधिष्ठिरने उसको आगे बढ़नेसे रोका ॥८॥ फिर महातेजस्वी कर्णने सिंहनाद करके धनुषको टंकारा और वेगसे शंखको बजाया ॥९॥ कर्णने धृष्टद्युम्नका पराजय किया, यह देखकर सोमकवंशके और पाञ्चालवंशके महारथी राजे क्रोधसे तमतमा उठे ॥ १० ॥ और मृत्युके भयको त्याग अनेक प्रकारके आयुध ले कर्णको मारनेके लिये, उसकी ओर धँस गए, कर्णके सरथिने भी कर्णके रथमें, शंखकी समान-श्वेत वर्णके, तीव्र वेगवाले, सिंधुदेशमें उत्पन्न हुए उत्तम गति वाले, नये घोड़ोंको जोड़कर रथको तयार किया था, जैसे मेघमण्डल पर्वतके ऊपर वृष्टि करता है तैसे कर्णने इस नये रथमें बैठे २ सावधान हो पाञ्चाल राजाओंकी सेनाके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करना आरंभ करी कि—॥ ११-१३ ॥ सिंहसे पीड़ा पाकर विह्वल हिरनी जैसे भाग जाती है तैसे ही पाञ्चालोंकी महासेना भी कर्णके प्रहारसे भयभीत हो रणमेंसे भागनेलगी ॥ १४ ॥ (पुनः) योधा घोड़ोंके ऊपरसे हाथियोंके

पतितास्तुरगेभ्यश्च गजेभ्यश्च महीतले । रथेभ्यश्च नरास्तूर्णमदृश्यन्त ततस्ततः ॥ १५ ॥ धावमानस्य योधस्य क्षुरप्रैश्च महामृधे । बाहू चिच्छेद वै कर्णः शिरश्चैव सकुण्डलम् ॥ १६ ॥ ऊरू चिच्छेद चान्यस्य गजस्थस्य विशाम्पते । वाजिपृष्ठगतस्यापि भूमिष्ठस्य च मारिष ॥ १७ ॥ नाज्ञासिषुर्धावमाना बहवोऽन्ये महारथाः । संच्छिन्नान्यात्मगात्राणि वाहनानि च संयुगे ॥ १८ ॥ ते वध्यमानाः समरे पञ्चालाः सृञ्जयैः सह । तृणप्रस्पन्दनाच्चापि सूतपुत्रं स्म मेनिरे ॥ १९ ॥ अपि स्वं समरे योधं धावमानं विचेतसम् । कर्णमेवाभ्यमन्यन्त ततो भीता द्रवन्ति ते ॥ २० ॥ तान्यनीकानि भग्नानि द्रवमाणानि भारत । अभ्यद्रवद् द्रुतं कर्णः पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥ २१ ॥ अवेक्षमाणास्त्वन्योन्यं सुसंमूढा विचेतसः । नाशक्नुवन्नवस्थातुं काल्यमाना महात्मना ॥ २२ ॥ कर्णेनाभ्या-

ऊपरसे तथा रथोंके ऊपरसे रणमें जहाँ तहाँ गिरते हुए दिखाई देनेलगे ॥१५॥ कर्ण भी युद्धमें भागतेहुए योधाओंकी भुजाओंको और उनके कुण्डलोंसे शोभायमान मस्तकोंको काटनेलगा, हाथी-सवारोंकी, घुड़सवारों और पैदलोंकी जाँघे क्षुरप्र नामके बाणोंसे काटी जारहीं थीं ॥ १६ ॥ १७ ॥ इस समय बहुतसे महारथी रणमेंसे भागरहे थे वे अपने अंगोंकी पीडा और वाहनोंको भूल गये थे इसप्रकार वे भानरहित होगये थे ॥१८॥ इस युद्धमें कर्णके बाणोंसे घायलहुए पाञ्चाल और सृञ्जय राजे पत्ता खड़कते ही "अरे ! कर्ण आगया" यह समझ कर (डरजाते थे) ॥ १९ ॥ अपनी सेनाका भी कोई योधा भानरहित होकर दौड़ता था, तो वे उसको ही कर्ण मानते थे और उसके भयसे डरकर रणभूमिमेंसे भागने लगते थे ॥२०॥ हे भरतवंशी राजन् ! इसप्रकार पांडवोंकी सेनामें भागड़ पड़ गई और पाण्डवी सेना भागनेलगी, तब कर्ण शीघ्रतासे उसके पीछे पड़, उस पर बाणोंकी वृष्टि करनेलगा २१

हता राजन् पञ्चालाः परमेषुभिः । द्रोणेन च दिशः सर्वा वीक्ष्यमाणाः प्रदुद्रुवुः ॥२३॥ ततो युधिष्ठिरो राजा स्वसैन्यं प्रेक्ष्य विद्रुतम् । अपयाने मतिं कृत्वा फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥ पश्य कर्णं महेष्वासं धनुष्पाणिमवस्थितम् । निशीथे दारुणे काले तपन्तमिव भास्करम् ॥२५॥ कर्णसायकनुन्नानां क्रोशतामेष निस्वनः। अनिशं श्रूयते पार्थ त्वद्बन्धूनामनाथवत् ॥ २६ ॥ यथा विसृजतश्चास्य सन्दधानस्य चाशुगान् । पश्यामि नान्तरं पार्थ क्षपयिष्यति नो ध्रुवम् ॥२७॥ यदत्रानन्तरं कार्यं प्राप्तकालं प्रपश्यसि । कर्णस्य वधसंयुक्तं तत् कुरुष्व धनञ्जय ॥ २८ ॥ एवमुक्तो महाराज पार्थः कृष्णमथाब्रवीत् । भीतो कुन्तीसुतो राजा राधे-

---

महात्मा द्रोण और कर्णने बड़े२ बाणोंसे पाञ्चालराजाओंको मारना आरम्भ करदिया, तब पाञ्चाल राजे मानरहित हो अत्यन्त मूढ़ होकर एक दूसरेके सामने देखनेलगे, वे रणमें खड़े न रह सकनेके कारण जिस ओरको मुख उठा उसी ओरको भागने लगे ॥ २२-२३ ॥ अपनी सेनाको भागती हुई देखकर राजा युधिष्ठिर भी भागनेका विचार करनेलगे. उन्होंने अर्जुनसे कहा, कि-"हे अर्जुन ! इस हमारे सामने खड़े हुए धनुषधारी कर्णको देख ! यह इस आधी रातके समय तपतेहुए सूर्यकी समान दिखाई देरहा है ॥ २४-२५ ॥ हे अर्जुन ! हमारे सम्बन्धी भी कर्णके बाणोंसे बिंधकर अनाथकी समान विलाप कररहे हैं, उनकी यह दारुण ध्वनि सुनाई आरही है, उसको भी सुन ! ॥ २६ ॥ हे पार्थ ! कर्ण जब शीघ्रगामी बाणोंको चढा२ कर छोडता है, तब वह कब चढाता है और कब छोडता है, यह मैं देख भी नहीं पाता, वह ऐसा फुर्तीला है, अतः मुझे प्रतीत होता है कि-वह अवश्य ही हमारा नाश करडालेगा, अतः इस समय कर्णका वध करनेके लिये जो काम तुमको उचित लगे सो कर ॥ २७-२८ ॥ हे राजन् !

यस्याद्य विक्रमात् ॥ २९ ॥ एवङ्कृते प्राप्तकालं कर्णानीके पुनः पुनः । भवान् व्यवस्यतां शीघ्रं द्रवते हि वरूथिनी ॥ ३० ॥ द्रोणसायकतुन्नानां भग्नानां मधुसूदन । कर्णेन त्रास्यमानानामवस्थानं न विद्यते ॥३१॥ पश्यामीह तथा कर्णं विचरन्तमभीतवत् । द्रवमाणान्रथोदारान् किरन्तं निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥ नैनं शक्ष्यामि संसोढुं चरन्तं रणमूर्द्धनि । प्रत्यक्षं वृष्णिशार्दूल पादस्पर्शमिवोरगः ॥ ३३ ॥ स भवांस्तत्र यात्वाशु यत्र कर्णो महारथः । अहमेनं वधिष्यामि मां वैष मधुसूदन ॥३४॥ श्रीवासुदेव उवाच । पश्यामि कर्णं कौन्तेय देवराजमिवाहवे । विचरन्तं नरव्याघ्रमतिमानुषविक्रमम् ॥ ३५ ॥ नैतस्यान्योऽस्ति समरे प्रत्यु-

---

इसप्रकार युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा, उस समय अर्जुन श्रीकृष्ण से कहने लगा कि–राजा युधिष्ठिर आज कर्णका पराक्रम देखकर डर गए हैं ॥ २९ ॥ कर्णकी सेनाने वारम्वार धावा किया है अतः अब हमें समयानुसार इसके लिये शीघ्र ही उद्योग करना चाहिये, क्योंकि-हमारी सेना भयभीत होकर भाग रही है।३०।हे मधुसूदन ! हमारे योधा द्रोणके बाणोंसे विंध गए हैं और कर्णसे त्रास खारहे हैं, इसलिये हमारी सेनामें भागड पड रही है और सेनापति रणमें खड़े भी नहीं रहने पाते ॥ ३१ ॥ और यह कर्ण भागते हुए महारथियोंके तेज किये हुए बाण मार रहा है और रणमें निर्भय पुरुष की समान घूम रहा है, यह मैं देख रहा हूँ ॥ ३२ ॥ हे वृष्णिसिंह ! सर्प जैसे चरणस्पर्शको नहीं सह सकता, तैसे ही मैं रणके मुहाने पर अपनी आँखोंके सामने इसको घूमते हुए नहीं देख सकता; अतः जहाँ महारथी कर्ण खडा है, तहाँ आप शीघ्रतासे मुझे ले चलिये हे मधुसूदन ! या तो मैं उसको मार डालूँगा, या वह ही मुझे मार डालेगा ॥३४॥ श्रीवासुदेव बोले कि–हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! मैं युद्धमें फिरते हुए अमानुषिक पराक्रमी नरव्याघ्र कर्णको इन्द्रकी

योद्धा धनंजय । ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र राक्षसाद्वा घटोत्कचात् ३६ न तु तावदहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ । समागमं महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥३७॥ दीप्यमाना महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी । त्वदर्थञ्च महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ ३८ ॥ रक्ष्यते शक्तिरेषा हि रौद्रं रूपं बिभर्त्ति च । घटोत्कचस्तु राधेयं प्रत्युद्यातु महाबलः ॥ ३९ ॥ स हि भीमेन बलिना जातः सुरपराक्रमः । तस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि राक्षसान्यासुराणि च ॥ ४० ॥ सततञ्चानुरक्तो वो हितैषी च घटोत्कचः । विजेष्यति रणे कर्णमिति मे नात्र संशयः ॥ ४१ ॥ एवमुक्तो महाबाहुः पार्थः पुष्करलोचनः । आजुहावाथ तद्रक्षस्तच्चासीत् प्रादुरग्रतः ॥४२॥ कवची

समान पराक्रमी समझता हूँ ॥ ३५ ॥ हे पुरुषव्याघ्र धनञ्जय ! संग्राममें तेरे या राक्षस घटोत्कचके अतिरिक्त कोई भी मनुष्य इसके साथ नहीं लड सकता ॥ ३६ ॥ परन्तु हे निर्दोष अर्जुन ! सूतपुत्रसे मुचैटा लेने का यह समय तेरे योग्य हो यह मैं नहीं समझता ॥३७॥ क्योंकि–उसके पास इन्द्रकी दी हुई बडी भारी उल्काकी समान झलझलाती हुई शक्ति है, वह शक्ति हे महाभुज ! सूतपुत्र कर्णने तेरे नाशके लिये सैंत रक्खी है । इस शक्तिका रूप भयंकर है । अतः इस समय महाबली घटोत्कच भले ही कर्णके साथ लडनेको जाय ॥ ३८–३९ ॥ वह बलवान् है, बली भीमसेनका पुत्र है, देवताओंकी समान पराक्रमी है और उसके पास दिव्य, राक्षसी और आसुरी तीनों प्रकारके शस्त्र हैं । और वह तेरे ऊपर नित्य प्रेम करता है और तेरा हित चाहता है, इससे वह युद्धमें अवश्य ही कर्णका पराजय करेगा, इसमें मुझे संदेह नहीं है ॥ ४०–४१ ॥ श्रीकृष्णके ऐसे कथनको सुन कर महाभुज और कमलकी समान नेत्र वाले अर्जुनने घटोत्कचको बुलाया, कि– वह राक्षस कवच, बाण, धनुष और खड्ग आदि शस्त्रोंसे

सशरः खड्गी सधन्वा च विशाम्पते । अभिवाद्य ततः कृष्णं पांडवञ्च धनञ्जयम् । अब्रवीच्च तदा कृष्णमयमस्म्यनुशाधि माम् ४३ ततस्तं मेघसङ्काशं दीप्तास्यं दीप्तकुण्डलम् । अभ्यभाषत हैडिम्बिं दाशार्हः प्रहसन्निव ॥ ४४ ॥ वासुदेव उवाच । घटोत्कच विजानीहि यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक । प्राप्तो विक्रमकालोयं तव नान्यस्य कस्यचित् ॥ ४५ ॥ स भवान् मज्जमानानां बन्धूनां त्वं प्लवो भव । विविधानि तवास्त्राणि सन्ति माया च राक्षसी ॥ ४६ ॥ पश्य कर्णेन हैडिम्बे पाण्डवानामनीकिनी । काल्यमाना यथा गावः पालेन रणमूर्द्धनि ॥ ४७ ॥ एष कर्णो महेष्वासो मतिमान् दृढविक्रमः । पाण्डवानामनीकेषु निहन्ति क्षत्रियर्षभान् ॥ ४८ ॥

तयार होकर अर्जुनके समीपमें आकर खडा होगया, उसने श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको प्रणाम किया, फिर श्रीकृष्णकी ओर देखकर कहा कि—यह मैं तुम्हारे पास आया हूँ तुम मुझे क्या आज्ञा देते हो ॥ ४२-४३ ॥ तब दाशार्हकुलोत्पन्न श्रीकृष्णने हँसकर, मेघकी समान श्याम झलझलाते हुए मुख वाले, चमकते हुए कुण्डलों वाले हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कचसे प्रसन्नमुखसे कहा ४४ वासुदेव बोले कि—"बेटा घटोत्कच! मैं तुझसे एक बात कहता हूँ, तू उस पर ध्यान दे; आज तेरे पराक्रम दिखानेका समय आलगा है, तेरी समान पराक्रम किसी दूसरेसे नहीं होसकता ॥ ४५ ॥ अतः तू रणसागरमें डूबते हुए सम्बंधियोंका नौकारूप बन कर उद्धार कर क्योंकि—तेरे पास अनेक प्रकारके शस्त्र हैं और राक्षसी माया भी है ॥ ४६ ॥ हे घटोत्कच! ग्वाला जैसे गौओंको हाँक देता है तैसे ही कर्णने भी रणमें पाण्डवोंकी सेनाको हाँक दिया है ॥ ४७ ॥ और महाधनुषधारी दृढपराक्रमी कर्ण, अब भी पांडवोंकी सेनामेंके बड़े २ क्षत्रियोंका संहार कररहा है ॥ ४८ ॥ बाणोंकी महावृष्टि

किरन्तः शरवर्षाणि महान्ति दृढधन्विनः । नाशक्नुवन्स्त्यवस्थातुं पीड्यमानाः शरार्चिषा ॥ ४९ ॥ निशीथे सूतपुत्रेण शरवर्षेण पीडिताः । एते द्रवन्ति पञ्चालाः सिंहेनेवार्दिता मृगाः ॥ ५० ॥ एतस्यैवं प्रवृत्तस्य सूतपुत्रस्य संयुगे । निषेद्धा विद्यते नान्यस्त्वामृते भीमविक्रम ॥ ५१ ॥ स त्वं कुरु महाबाहो कर्म युक्तमिहात्मनः । मातुलानां पितॄणाञ्च तेजसोऽस्त्रबलस्य च ॥ ५२ ॥ एतदर्थं हि हैडिम्बे पुत्रानिच्छन्ति मानवाः । कथं नस्तारये दुर्गात् स त्वं तारय बान्धवान् ॥ ५३ ॥ इच्छन्ति पितरः पुत्रान् स्वार्थहेतोर्घटोत्कच । इह लोकात् परे लोके तारयिष्यन्ति ये हिताः ॥ ५४ ॥ तव ह्यस्त्रबलं भीमं मायाश्च तव दुस्तराः । संग्रामे युध्यमानस्य सततं भीम-

---

करने वाले और दृढ धनुष वाले कर्णके बाणोंकी ज्वालासे पीड़ा पाकर योधा रणमें खड़े भी नहीं होसकते ॥ ४९ ॥ और कर्णने आधीरातमें बाणोंकी वृष्टि कर, सिंह जैसे मृगोंको पीड़ित करता है तैसे ही पाञ्चालराजाओंको पीड़ित कर बहुत ही खिन्न किया है; इस कारण वे लड़ाईके मैदानमेंसे भागे जाते हैं ॥ ५० ॥ हे भयङ्कर पराक्रमी ! इसप्रकार कर्णका पराक्रम रणभूमिमें बहुत बढ गया है और उसको रोकनेवाला तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं दिखाई देता ॥ ५१ ॥ अतः हे महाभुज घटोत्कच ! तू अपने मामाओंके तथा चाचाओंके पराक्रम और अस्त्रके बलके अनुरूप पराक्रम करके दिखा ॥ ५२ ॥ हे हिडिम्बाके पुत्र ! मनुष्य पुत्रोंको इस लिये ही चाहते हैं कि–दुःख पड़नेपर वह हमें उसमें से उबारे । अतः तू अपने पिता तथा चाचा आदि सम्बन्धियों को दुःखमेंसे उबार ॥ ५३ ॥ और हे घटोत्कच ! हितकर पुत्र इस लोकमें तथा परलोकमें हमारा उद्धार करेगा, इस स्वार्थके कारण ही पिता पुत्रोंको चाहते हैं; अतः उनकी इच्छाओंको तू सफल कर ॥ ५४ ॥ हे भीमके पुत्र ! तू संग्राममें जैसे लगातार

नन्दन ॥ ५५ ॥ पाण्डवानां प्रमग्नानां कर्णेन निशि सायकैः । मज्जतां धार्त्तराष्ट्रेषु भव पारं परन्तप ॥ ५६ ॥ रात्रौ हि राक्षसा भूयो भवन्त्यमितविक्रमाः । बलवन्तः सुदुर्धर्षाः शूरा विक्रान्तचारिणः ॥५७॥ जहि कर्णं महेष्वासं निशीथे मायया रणे । पार्था द्रोणं वधिष्यन्ति धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ५८ ॥ सञ्जय उवाच । केशवस्य वचः श्रुत्वा बीभत्सुरपि राक्षसम् । अभ्यभाषत कौरव्य घटोत्कचमरिन्दमम् ॥ ५९ ॥ घटोत्कच भवांश्चैव दीर्घबाहुश्च सात्यकिः । मतौ मे सर्वसैन्येषु भीमसेनस्तु पाण्डवः ॥ ६० ॥ स भवान् यातु कर्णेन द्वैरथं संयुगे निशि । सात्यकिः पृष्ठतो गोप्ता भविष्यति महारथः ॥ ६१ ॥ जहि कर्णं रणे शूरं सात्वतेन सहा-

---

युद्ध करने लगेगा कि-इतनेमें ही रात्रिका समय होनेसे, तेरा बल भयङ्कर होजायगा और तेरी मायायें भी दुस्तर हो जावेंगी ५५ हे परन्तप घटोत्कच ! आज रात्रिमें कर्णने पाण्डवों (की सेना) को बाणोंसे बींध डाला है और पांडव कौरवसेनामें डूब रहे हैं-हार रहे हैं-उनको तू पार उतार ॥ ५६ ॥ राक्षस रात्रिमें अत्यंत बलवान, दुराधर्ष, शूर तथा पराक्रमी होजाते हैं ॥५७॥ अतः तू आज आधीरातमें माया फैला कर धनुषधारी कर्णका नाश कर और धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव द्रोणको मारगे५८सञ्जयने कहा कि-हे कुरुवंशोत्पन्न धृतराष्ट्र! कृष्णका कहना सुनकर अर्जुनने भी राक्षस घटोत्कचसे कहा कि-५९ 'हे घटोत्कच ! (मैं) शत्रुओंका दमन करनेवाले तुझको, महाभुज सात्यकिको तथा अपने भाई भीमसेनको सब सेनाओंमें मुख्य मानता हूँ ६० अतः तू रणभूमिमें जाकर आज रातमें कर्णके साथ द्विरथ नामक युद्धसे युद्ध कर; इस समय महारथी सात्यकि, तेरे पीछेके भागमें रहकर तेरी रक्षा करेगा; पहिले इन्द्रने कार्तिकस्वामीकी सहायतासे जैसे तारकासुरको मारा था, तैसे ही सात्यकिकी सहायता लेकर रणमें शूर

यवान् । यथेन्द्रस्तारकं पूर्वं स्कन्देन सह जघ्निवान् ॥ ६२ ॥ घटोत्कच उवाच । अलमेवास्मि कर्णाय द्रोणायालञ्च भारत । अन्येषां क्षत्रियाणां वै कृतास्त्राणां महात्मनाम् ॥ ६३ ॥ अद्य दास्यामि संग्रामं सूतपुत्राय तं निशि । यं जनाः सम्प्रवक्ष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥ ६४ ॥ न चात्र शूरान्मोक्ष्यामि न भीतान्न कृताञ्जलीन् । सर्वानेव वधिष्यामि राक्षसं धर्ममास्थितः ॥ ६५ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुक्त्वा महाबाहुर्हैडिम्बिः परवीरहा । अभ्ययात्तुमुले कर्णं तव सैन्यं विभीषयन् ॥ ६६ ॥ तमापतन्तं संक्रुद्धं दीप्तास्यं दीप्तमूर्द्धजम् । प्रहसन् पुरुषव्याघ्रः प्रतिजग्राह सूतजः६७ तयोः समभवद्युद्धं कर्णराक्षसयोर्मृधे । गर्जतो राजशार्दूल शक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ६८ ॥ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

वीर कर्णका तू भी नाश कर ॥६१-६२॥ यह सुनकर घटोत्कच बोला कि-हे भरतवंशी राजन्! मैं अकेला ही कर्ण, द्रोण तथा दूसरे अस्त्रनिपुण महात्मा क्षत्रियोंके लिये पूरा पड़ूँ ऐसा हूँ, मुझे किसी दूसरेकी आवश्यकता नहीं है ॥६३॥ आज रात्रिमें सूतपुत्रके साथ मैं ऐसा युद्ध करूंगा कि-मनुष्य जब तक पृथ्वीके ऊपर रहेंगे तब तक मेरे युद्धका स्मरण करेंगे ॥६४॥ मैं राक्षसी धर्मका आश्रय लेकर इस युद्धमें शूरोंको, डरपोकोंको और प्रणाम करते हुओंको भी नहीं छोड़ूँगा, परन्तु सबका संहार ही कर डालूँगा' ॥ ६५ ॥ सञ्जयने कहा कि-हे राजन् धृतराष्ट्र! इस प्रकार कह कर शत्रुपक्षके वीरोंका संहारकर्ता, महाभुज हिडिम्बा का पुत्र, तुम्हारी सेनाको भयभीत करता हुआ, रणभूमिमें कर्णके सामने तुमुल युद्ध करनेके लिये धँसा ॥ ६६ ॥ पुरुषोंमें व्याघ्रसमान सूतपुत्रने, अपने सामने आते हुए, कोपमें भरे, प्रदीप्त मुखवाले और चमकते हुए केशोंवाले घटोत्कचका हँसते २ सामना किया ६७ तदनन्तर हे राजसिंह! रणमें गर्जना करतेहुए कर्ण तथा राक्षसके बीचमें इन्द्र और प्रह्लादकी समान महायुद्ध होने लगा ६८

सञ्जय उवाच। दृष्ट्वा घटोत्कचं राजन् सूतपुत्ररथं प्रति। आयान्तं तु तथा युक्तं जिघांसुं कर्णमाहवे ॥ १ ॥ अब्रवीत्तत्र पुत्रस्ते दुःशासनमिदं वचः। एतद्रक्षो रणे तूर्णं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २ ॥ अभियाति द्रुतं कर्णं तद्वारय महारथम्। वृतः सैन्येन महता याहि यत्र महाबलः ॥ ३ ॥ कर्णो वैकर्त्तनो युद्धे राक्षसेन युयुत्सति। रक्ष कर्णं रणे यत्तो वृतः सैन्येन मानद ॥ ४ ॥ मा कर्णं राक्षसो घोरः प्रमादान्नाशयिष्यति। एतस्मिन्नन्तरे राजन् जटासुरसुतो बली ॥ ५ ॥ दुर्योधनमुपागम्य प्राह प्रहरताम्वरः। दुर्योधन तवामित्रान् प्रख्यातान् युद्धदुर्मदान् ॥ ६ ॥ पाण्डवान् हन्तुमिच्छामि त्वयाज्ञप्तः सहानुगान्। जटासुरो मम पिता रक्षसां

सञ्जयने कहा कि—हे राजन्! संग्राममें कर्णका नाश करनेके लिये घटोत्कच चढ़ आया, यह देख तुम्हारे पुत्रने दुःशासनसे कहा कि—'हे मानद! युद्धमें कर्णका पराक्रम देखकर यह राक्षस उसके ऊपर धँसा चला आता है, अतः तू इस महाबली राक्षसको आगे बढ़नेसे रोक और जहाँ महाबली कर्ण खड़ा है तहाँ तू बड़ी भारी सेनाको साथ लेकर जा और वैकर्तन कर्ण राक्षसके सामने लड़ना चाहता है उसकी तू सावधान होकर बड़ीभारी रक्षाकर३-४ हमारे प्रमादसे यह घोर राक्षस इस कर्णका नाश न कर सकै, इसकी तू सम्हाल रख इस प्रकार वार्तालाप चल रहा था कि—जटासुरका महाबली पुत्र अलम्बुष दुर्योधनके पास आकर बोला कि-'हे दुर्योधन! तुम्हारा आज्ञासे, युद्ध करनेमें मदमत्त तुम्हारे प्रख्यात शत्रु पाण्डवोंका, उनके सेवकों सहित मैं नाश करना चाहता हूँ, मेरा पिता जटासुर राक्षसोंका नायक था, उसको इन नीच पांडवोंने कितने ही वर्ष पहिले रक्षोघ्न नामक मंत्रोंसे मारडाला है, अतः मैं इन शत्रुओंके रक्तरूप जलकी अञ्जलिसे तथा मांससे अपने पिताका तर्पण कर उनको तृप्त करना चाहता हूँ; अतः हे राजेन्द्र!

ग्रामणीः पुरा ॥ ७ ॥ प्रयुज्य कर्म रक्षोघ्नं क्षुद्रैः पार्थः निपातितः। तस्यापचितिमिच्छामि शत्रुशोणितपूजया ॥८॥ शत्रुमांसैश्च राजेन्द्र मामनुज्ञातुमर्हसि। तमब्रवीत्ततो राजा प्रीयमाणः पुनः पुनः ॥ ९ ॥ द्रोणकर्णादिभिः सार्द्धं पर्याप्तोऽहं द्विषज्जये। त्वन्तु गच्छ मयाज्ञप्तो जहि युद्धे घटोत्कचम्। राक्षसं क्रूरकर्माणं रक्षोमानुषसम्भवम् ॥ १० ॥ पाण्डवानां हितं नित्यं हस्त्यश्वरथघातिनम्। वैहायसगतं युद्धे प्रेषयेर्यमसादनम् ॥ ११ ॥ तथेत्युक्त्वा महाकायः समाहूय घटोत्कचम्। जाटासुरिर्भैमसेनिं नानाशस्त्रैरवाकिरत् १२ अलम्बुषञ्च कर्णञ्च कुरुसैन्यञ्च दुस्तरम्। हैडिम्बिः प्रममाथैको महावातोऽम्बुदानिव ॥१३॥ ततो मायाबलं दृष्ट्वा रक्षस्तूर्णमलम्बुषः। घटोत्कचं शरव्रातैर्नानालिंगैः समाकिरत् ॥ १४ ॥ विद्ध्वा तु बहु-

---

तुम मुझे इस कामको करनेकी आज्ञा दो ॥५-८॥ यह सुनकर दुर्योधन प्रसन्न हुआ और उससे कहनेलगा कि-मैं तो द्रोण तथा कर्ण आदिकी सहायतासे अपने शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ हूँ ॥ ९ ॥ परन्तु (तेरी इच्छा है तो) मेरी आज्ञासे तू युद्धमें क्रूर कर्म करने वाले राक्षस तथा मनुष्य-इस प्रकार मिश्र जातिमेंसे उत्पन्न हुए घटोत्कचका युद्धमें संहार कर ॥ १० ॥ यह राक्षस पांडवोंका हितैषी है हमारे हाथी, घोड़ों तथा रथोंका नाश करता है तथा आकाशमें इसकी गति है, इसको युद्धमें लड़ कर यमलोकमें भेजदे ॥ ११ ॥ दुर्योधनकी आज्ञा होते ही "तथास्तु" कह कर महाशरीरवाले जटासुरके पुत्रने भीमके पुत्रको लड़नेको बुलाया और उसके ऊपर अनेकों प्रकारके बाणोंकी वृष्टि करना आरंभ करदी ॥ १२ ॥ महापवन जैसे मेघोंको बखेर डालता है तैसे ही हिडिम्बाका पुत्र अकेला घटोत्कच ही अलम्बुष पर, कर्णपर तथा दुस्तर कौरवसेना पर प्रहार करने लगा ॥ १३ ॥ राक्षस अलम्बुष भी तुरत ही घटोत्कचकी मायाको देख कर उसके ऊपर अनेक

भिर्बाणैर्भैमसेनिं महावलः । व्यद्रावयच्छरव्रातैः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥१५॥ तेन विद्राव्यमाणानि पाण्डुसैन्यानि भारत । निशीथे विप्रकीर्यन्ते वातनुन्ना घना इव ॥ १६ ॥ घटोत्कचशरैर्नुन्ना तथैव तत्र वाहिनी । निशीथे प्राद्रवद्राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ॥१७॥ अलम्बुषस्ततः क्रुद्धो भैमसेनिं महामृधे । आजघ्ने दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १८ ॥ तिलशस्तस्य संवाहं सूतं सर्वायुधानि च । घटोत्कचः प्रचिच्छेद प्रणदंश्चाति दारुणम् १९ ततः कर्णं शरव्रातैः कुरूंश्चापि सहस्रशः । अलम्बुषं चाभ्यवर्षन्मेघो मेरुमिवाचलम् ॥२०॥ ततः सञ्चक्षुभे सैन्यं कुरूणां राक्षसार्दितम् । उपर्युपरि चान्योऽन्यं चतुरङ्गं ममर्द ह ॥ २१ ॥ जाटासुरिर्महा-

प्रकारके वाणोंकी वृष्टि करने लगा, उसने घटोत्कचके ऊपर नाना प्रकारके वाण छोड़े और पाण्डवोंकी सेनाको भी वाण मार कर भगाना आरंभ किया, हे भरतवंशी राजन् ! पवन जैसे वादलोंको वखेर देता है, तैसे उसने पाण्डवोंकी सेनाको बखेर दिया १४–१६ हे राजन् ! तैसे ही घटोत्कचने तुम्हारी सेना पर वाणों का प्रहार किया, इस कारण वह सहस्रों मशालोंको फैंककर मध्य-रात्रिके समय रणभूमिमेंसे भागने लगी, कौरवोंकी सेनाको भागती हुई देख कर अलम्बुष क्रोधमें भर गया और महाहस्तीके ऊपर जैसे अंकुश मारे जाँय तैसे उसने घटोत्कचके दश वाण मारे ॥ १७–१८ ॥ तब घटोत्कचने अतिदारुण गर्जना कर उसके वाहनोंके, सारथिके तथा रथके और आयुधोंके तिल तिल की वरावर टुकड़े कर डाले ॥ १९ ॥ तदनन्तर वर्षाऋतुमें जैसे मेरुपर्वत पर वृष्टि हो तैसे घटोत्कचने कर्णके ऊपर तथा दूसरे सहस्रों कुरुवंशी राजाओंके ऊपर वाणोंकी वृष्टि करना आरम्भ करदी ॥ २० ॥ राक्षसके दुःख देनेसे कौरवोंकी सेनामें वड़ी भारी गड़वड़ मचगई और उनकी चतुरङ्गनी सेना उत्तरोत्तर

राज विरथो हतसारथिः । घटोत्कचं रणे क्रुद्धो मुष्टिनाभ्यहनद् दृढम् ॥ २२ ॥ मुष्टिनाभ्याहतस्तेन प्रचचाल घटोत्कचः । क्षितिकम्पे यथा शैलः सवृक्षस्तृणगुल्मवान् ॥ २३ ॥ ततः स परिघाभेन द्विट्संघघ्नेन बाहुना । जाटासुरिं भीमसेनिरवधीन्मुष्टिना भृशम् ॥२४॥ तं प्रमथ्य ततः क्रुद्धस्तूर्णं हैडिम्बिराक्षिपत् । द्वाभ्यां भुजाभ्यां संगृह्य निष्पिपेष महीतले ॥ २५ ॥ जाटासुरिर्मोक्षयित्वा आत्मानं च घटोत्कचात् । पुनरुत्थाय वेगेन घटोत्कचमुपाद्रवत् २६ अलम्बुषोऽपि विक्षिप्य समुत्क्षिप्य च राक्षसम् । घटोत्कचं रणे रोषान्निष्पिपेष महीतले ॥ २७ ॥ तयोः समभवद्युद्धं गर्जतोरतिकाययोः । घटोत्कचालम्बुषयोस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २८ ॥ विशेषयन्तावन्योऽन्यं मायाभिरतिमानिनौ । युयुधाते महावीर्याविन्द्र-

---

आपसमें संहार करने लगी ॥ २१ ॥ जटासुरका पुत्र रथ तथा सारथिरहित होगया तब उसने क्रोधमें भरकर घटोत्कचके ऊपर मुट्ठी बाँधकर कठिन प्रहार किया ॥ २२ ॥ मुट्ठीका प्रहार होते ही—भूकम्पके समय वृक्ष, तृण और लताओं सहित पर्वत जैसे काँप उठता है तैसे ही घटोत्कच काँप उठा ॥ २३ ॥ उसने शत्रुओं का संहार करने वाले परिघकी समान मोटे हाथकी मुट्ठी बाँधकर जोरसे जटासुरके पुत्रकी छातीमें मारी ॥२४॥ और फिर पीछेसे क्रोधमें भरेहुए हिडिम्बाके पुत्रने इन्द्रध्वजकी समान ऊँचे दोनों हाथोंसे जटासुरके पुत्रको पृथ्वीके ऊपर पटककर अच्छी प्रकार रगड़ना आरंभ कर दिया ॥ २५ ॥ जटासुरका पुत्र अलम्बुष घटोत्कचके हाथमेंसे अपनेको छुड़ाकर ठीक हुआ और फिर वेग से घटोत्कचके ऊपर दौड़ा और राक्षस घटोत्कचको उठा, रोषसे रणभूमिमें पटक कर रगड़ने लगा ॥ २६-२७ ॥ मोटी काया वाले घटोत्कच और अलम्बुष गर्जना कर युद्ध करने लगे, उनका तुमुल युद्ध रुएँ खड़े करनेवाला था ॥ २८ ॥ बड़े ही मायावी

वैरोचनाविव ॥ २९ ॥ पावकाम्बुनिधी भूत्वा पुनर्गरुडतक्षकौ । पुनर्मेघमहावातौ पुनर्वज्रमहाचलौ ॥ ३० ॥ पुनः कुञ्जरशार्दूलौ पुनः स्वर्भानुभास्करौ। एवं मायाशतसृजावन्योऽन्यवधकांक्षिणौ ३१ भृशञ्चित्रमयुध्येतामलम्बुषघटोत्कचौ। परिघैश्च गदाभिश्च प्रासमुद्गरपट्टिशैः ॥३२॥ मुसलैः पर्वताग्रैश्च तावन्योऽन्यं निजघ्नतुः । हयाभ्याञ्च गजाभ्याञ्च रथाभ्यां च पदातिभिः ॥ ३३ ॥ युयुधाते महामायौ राक्षसौ प्रवरौ युधि । ततो घटोत्कचो राजन्नलम्बुषवधेप्सया ॥ ३४ ॥ उत्पपात भृशं क्रुद्धः श्येनवन्निपपात च । गृहीत्वा च महाकायं राक्षसेन्द्रमलम्बुषम् ॥ ३५ ॥ उद्यम्य न्यवधीद्भूमौ मयं विष्णुरिवाहवे । ततो घटोत्कचः खड्गमुद्गृह्या-

---

और पराक्रमी अलम्बुष और घटोत्कच, इन्द्र और विरोचनपुत्र बलिकी समान मायासे भरे युद्धको करते थे, वे एक दूसरेसे बढ़ना चाहते थे ॥ २९ ॥ वे क्षणमें अग्नि और समुद्र बन जाते थे, क्षणमें गरुड़ तथा तक्षक बन जाते थे, क्षणमें मेघ तथा पवन बन जाते थे, क्षणमें वज्र तथा महापर्वत बन जाते थे, क्षणमें राहु तथा सूर्य बन जाते थे, क्षणमें हाथी तथा सिंह होजाते थे-इस प्रकार सैंकड़ों माया कर घटोत्कच तथा अलम्बुष एक दूसरेको मारनेके लिये भली प्रकार चित्रयुद्ध कर रहे थे, और वे परिघ, गदा, पाश, मुगदर, पट्टिश, मूसल और पर्वतोंके शिखरोंसे एक दूसरेको मारते थे, तदनन्तर वे दोनों महाराक्षस घुड़सवार, हाथीसवार, रथी और पैदल बन कर परस्पर लड़ने लगे (इसप्रकार थोड़े समय लड़नेके) पीछे हे राजन् ! घटोत्कच क्रोधमें भरगया और अलम्बुषका नाश करनेकी इच्छासे बड़े शरीरवाले राक्षसराज अलंबुषको उठाकर आकाशमें ऊपरको उड़ा और बाजकी समान फिर नीचे आकर विष्णुने जैसे मयको पृथ्वीपर दे पटका था, तैसे अलम्बुषको ऊपरको उठा कर पृथ्वी

द्भुतदर्शनम् ॥३६॥ रौद्रस्य कायाद्धि शिरो भीमं विकृतदर्शनम् । स्फुरतस्तस्य समरे नदतश्चाति भैरवम् ॥३७॥ निचकर्त्त महाराज शत्रोरमितविक्रमः । शिरस्तच्चापि संगृह्य केशेषु रुधिरोक्षितम् ३८ ययौ घटोत्कचस्तूर्णं दुर्योधनरथं प्रति । अभ्येत्य च महाबाहुः स्मयमानः स राक्षसः ॥ ३९ ॥ शिरो रथेऽस्य निक्षिप्य विकृताननमूर्द्धजम् । प्राणदद्भैरवं नादं प्रावृषीव बलाहकः ॥ ४० ॥ अब्रवीच्च ततो राजन् दुर्योधनमिदं वचः । एष ते निहतो बन्धुस्त्वया दृष्टोऽस्य विक्रमः ॥ ४१ ॥ पुनर्द्रष्टासि कर्णस्य निष्ठामेतां तथात्मनः । स्वधर्ममर्थं कामञ्च त्रितयं योभिवाञ्छति ॥ ४२ ॥ रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं ब्राह्मणं स्त्रियम् । तिष्ठस्व तावत् सुप्रीतो यावत् कर्णं वधाम्यहम् ॥४३॥ एवमुक्त्वा ततः प्रायात् कर्णं प्रति

पर देपटका, फिर (शीघ्रही) अद्भुत दिखाव वाली तलवार म्यानमेंसे निकाल ली और भयंकर दिखाववाले, युद्धमें तड़फड़ाते हुए और भयंकर रीतिसे डकराते हुए शत्रु अलम्बुषके भयंकर और विकृताकृतिवाले मस्तकको घटोत्कचने काट डाला। फिर अगाधपराक्रमी महाभुज घटोत्कच उस रक्तसे भीगे हुए मस्तकको चोटीमेंसे पकड़कर अभिमानके साथ दुर्योधनके राजरथकी ओर गया और विकराल मुख तथा केशोंवाले उस मस्तकको दुर्योधनके रथमें डाल कर चौमासेमें जैसे मेघ गडगडावे तैसे भयंकर गर्जना करता हुआ दुर्योधनसे कहने लगा कि–तूने इसका पराक्रम देख लिया(देख) तेरे इस सहायक बन्धुको मैंने मार डाला है३०॥४१ अब तू कर्णकी तथा अपनी भी ऐसी ही दशा देखेगा। जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम इन तीन वस्तुओंको पाना चाहता हो, उसको खाली हाथ ब्राह्मण, राजा और स्त्रीके पास नहीं जाना चाहिये, अतः ले मैं तुझै यह भेंट देता हूँ ! और मैं जब तक कर्णको मारूँ तब तक तू अत्यन्त प्रसन्न होकर यहाँ ही खडा

नरेश्वर । किरञ्छरगणांस्तीक्ष्णान् रुषितो रणमूर्द्धनि ॥ ४४ ॥ ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् । विस्मापनं महाराज नरराक्षसयोर्मृधे ॥४५॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलम्बुषवधे चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । यत्तद्वैकर्त्तनः कर्णो राक्षसश्च घटोत्कचः । निशीथे समसज्जेतां तद्युद्धमभवत् कथम् ॥ १ ॥ कीदृशञ्चाभवद्रूपं तस्य घोरस्य रक्षसः । रथश्च कीदृशस्तस्य हयाः सर्वायुधानि च २ किम्प्रमाणा हयास्तस्य रथकेतुर्द्धनुस्तथा । कीदृशं वर्म चैवास्य शिरस्त्राणञ्च कीदृशम् ॥ ३ ॥ पृष्टस्त्वमेतदाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय । सञ्जय उवाच । लोहिताक्षो महाकायस्ताम्रास्यो निम्नितोदरः ॥ ४ ॥ ऊर्ध्वरोमा हरिश्मश्रुः शंकुकर्णो महाहनुः । आक-

---

रहना' ॥ ४२–४३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार कहनेके पीछे घटोत्कच कर्णकी ओरको कूँच कर रणके मुहाने पर खड़ा होकर क्रोधमें भर तीक्ष्ण बाणोंकी वृष्टि करनेलगा ॥४४॥ और हे महाराज ! मनुष्यों और राक्षसोंके बीचमें घोर,भयानक और विस्मयजनक युद्ध होनेलगा॥४५॥एकसौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे सञ्जय ! आधी रातके समय सूर्यपुत्र कर्ण तथा घटोत्कच आमने सामने लडरहे थे, उनका युद्ध किस प्रकार हुआ था ? ॥ १ ॥ उस घोर राक्षसका रूप,उसका रथ, उसके घोड़े तथा उसके सब आयुध कैसे थे ? ॥२॥ उसके घोड़ोंकी आकृति कैसी थी ? उसके रथकी ध्वजा और उसका धनुष कितना बड़ा था तथा उसका कवच कैसा था और उसका टोप कैसा था ? ॥ ३ ॥ यह सब मैं तुझसे बूझता हूँ इसका तू मुझे उत्तर दे, क्योंकि–तू कथा कहनेमें प्रवीण है, सञ्जयने कहा, कि–हे राजन ! घटोत्कचकी आँखें रक्तवर्णकी थीं, काया प्रचण्ड थी,

र्विदारितास्यश्च तीक्ष्णदंष्ट्रः करालवान् ॥ ५ ॥ सुदीर्घताम्रजिह्वोष्ठो लम्बभ्रूः स्थूलनासिकः । नीलाङ्गो लोहितग्रीवो गिरिवर्ष्मा भयङ्करः ॥ ६ ॥ महाकायो महाबाहुर्महाशीर्षो महाबलः । विकृतः परुषस्पर्शो विकचोद्वृत्तपिण्डकः ॥ ७ ॥ स्थूलस्फिग्गूढनाभिश्च शिथिलोपचयो महान् । तथैव हस्ताभरणी महामायोऽङ्गदी तथा ८ उरसा धारयन्निष्कमग्निमालां यथाचलः । तस्य हेममयश्चित्रं बहुरूपाङ्गशोभितम् ॥ ९ ॥ तोरणप्रतिमं शुभ्रं किरीटं मूर्ध्न्यशोभत । कुण्डले बालसूर्याभे मालां हेममयीं शुभाम् ॥१०॥ धारयन् विपुलं

मुख ताम्बेके रङ्गका था ,पेट पतला था, मस्तकके केश खड़े हुए थे, डाढ़ी और मूँछ श्याम रङ्गकी थीं, कान शंकुकी समान थे, कंधे मोटे थे, मुख कान तक फटा हुआ था, डाढ़ें तीक्ष्ण थीं, उसके दाँतके अग्रभाग तीक्ष्ण थे और आगेके चार दाँत मोटे और ऊँचे उठेहुए थे, जीभ और ओठ लम्बी और लाल रङ्गकी थी, भ्रकुटि लम्बी थीं, नासिका स्थूल थी, शरीर श्याम रङ्गका था, कण्ठ लाल रङ्गका था, शरीर पर्वतका समान ऊँचा और भयंकर दिखावका था,शरीर और भुजा विशाल थीं,मस्तक मोटा था, उसका शरीर बलशाली; विकराल, कड़ी खालवाला और अत्यन्त दृढ़ था, जंघाका ऊपरी भाग भयंकर था और मांससे भराहुआ था, उसके नितम्ब भी बड़े मोटे थे, उसकी नाभि भी छिपी हुई थी, उसके ललाटमें केश आरहे थे वह हाथमें बाजूबन्द पहर रहा था और महामायावी था ॥ ४–८॥ पर्वत जैसे अपने शिखरके ऊपर दावानल धारण करता है, तैसे ही वह अपने वक्षःस्थल पर सुवर्णकी मालाको धारण कररहा था,उसके मस्तक पर सुवर्णका चमकता हुआ मुकुट था, उसमें जड़े हुए रत्नोंके कारण वह मुकुट रत्नोंसे जड़ी हुई वन्दनवारकी समान दीखता था, उसके दोनों कानोंमें लाल सूर्यकी समान दो कुण्डल थे

कांस्यं कवचञ्च महाप्रभम्। किङ्किणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम् ॥ ११ ॥ ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गं नल्वमात्रं महारथम्। सर्वायुधवरोपेतमास्थितं ध्वजमालिनम् ॥ १२ ॥ अष्टचक्रसमायुक्तं मेघगम्भीरनिःस्वनम्। मत्तमातङ्गसङ्काशा लोहिताक्षा विभीषणाः१३ कामवर्णजवा युक्ता बलवन्तः शतं हयाः। वहन्तो राक्षसं घोरं बलवन्तो जितश्रमाः ॥ १४ ॥ विपुलाभिः सटाभिस्ते हेषमाणा मुहुर्मुहुः। राक्षसोऽस्य विरूपाक्षः सूतो दीप्तास्यकुण्डलः ॥१५॥ रश्मिभिः सूर्यरश्म्याभैः सञ्जग्राह हयान्रणे। स तेन सहितस्त-

---

और गलेमें सुवर्णकी शुभमाला पडी हुई थी ॥ ९-१० ॥ उसने अपने शरीरके ऊपर बडाभारी कवच पहर रक्खा था-यह कवच काँसीका बनाहुआ था और बडी कान्तिवाला था, राक्षस घटोत्कच, सैंकडों घूघुरुओंसे घनघनाहट करतेहुए, रक्तवर्णकी ध्वजा पताकासे अलंकृत एक बड़े भारी रथमें बैठा था, उसका रथ रीछके चमड़ेसे चारों ओरसे मढ़रहा था और वह चारसौ हाथ लम्बा और चौडा था और अनेक प्रकारके आयुधोंसे भराहुआ था, ऊपरके भागमें फहराती हुई ध्वजाओंसे शोभित था-उसमें आठ पहिये थे और वह चलते समय मेघके गर्जनेकी समान गंभीर गर्जना करता था,मदमत्त हाथीकी समान रक्तवर्णके नेत्र वाले, भयंकर आकृतिवाले, इच्छानुसार रूप धारण करने तथा इच्छानुसार वेगवाले बड़े २ अयाल वाले, परिश्रमको नगिननेवाले, वाले वारम्वार हिनहिनाहट करते हुए सौ घोड़े उसके रथमें जुत रहे थे,वे वेगसे उसके रथको रणमें चला रहे थे,उसके सारथिका नाम विरूपाक्ष था, उसकी आँखे भयंकर थीं मुख विकराल था और कुण्डल तेज थे,उस सारथिने रणमें-सूर्यकी किरणोंकी समान कान्तिवाली रासोंसे घोड़ोंको पकड़ रक्खा था, सूर्य जैसे अरुणके साथ बैठते हैं तैसे ही घटोत्कच अपने सारथिके साथ

स्थावरुणेन यथा रविः ॥१६॥ संसक्त इव चाभ्रेण यथाद्रिर्महता महान् । दिविस्पृक् सुमहाकेतुः स्यन्दनेऽस्य समुच्छ्रितः ॥ १७ ॥ रक्तोत्तमांगः क्रव्यादो गृध्रः परमभीषणः।वासवाशनिनिर्घोषं दृढज्यमति विक्षिपन् ॥ १८ ॥ व्यक्तं किष्कुपरीणाहं द्वादशारत्निकार्मुकं । रथाक्षमात्रैरिषुभिः सर्वाः प्राच्छादयन् दिशः ॥१९॥ तस्यां वीरापहारिण्यां निशायां कर्णमभ्ययात् । तस्य विक्षिपतश्चापं रथे विष्टभ्य तिष्ठतः ॥ २० ॥ अश्रूयत धनुर्घोषो विस्फूर्जितमिवाशनेः । तेन वित्रास्यमानानि तव सैन्यानि भारत ॥ २१ ॥ समकम्पन्त सर्वाणि सिन्धोरिव महोर्मयः । तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य विरूपाक्षं विभीषणम् ॥२२॥ उत्स्मयन्निव राधेयस्त्वरमाणोऽभ्यवारयत् । ततः कर्णोऽभ्ययादेनमस्यन्नस्यन्तमन्तिकात् ॥ २३ ॥

बैठा था ॥ ११–१६ ॥ महापर्वत जैसे महामेघसे मिला हुआ दीखता है, तैसे ही उस रथके ऊपर गगनका चुम्बन करती हुई बड़ी भारी ध्वजा फहरा रही थी ॥ १७॥ और उस ध्वजाके ऊपर लाल रंगके मस्तक वाले मांसको खाते हुए महाभयंकर गिद्ध पक्षीका चिन्ह बन रहा था, ऐसे रथमें बैठा हुआ घटोत्कच एक हाथ चौड़े और बारह अरत्नि लम्बे धनुषको लेकर उसके ऊपर मजबूत डोरी चढ़ा इन्द्रके वज्रकी समान टंकार ध्वनि करने लगा फिर रथकी धुरीकी समान बाणोंके प्रहारोंसे सब दिशाओंको ढक वीर पुरुषोंका संहार करने वाली उस रात्रिमें कर्णके सामने लडनेको धँसा, पहिले तो रथको खडा कर धनुषको टंकारने लगा; उससमय उस धनुषकी टंकार वज्रध्वनिकी समान सुनाई पडने लगी, इससे हे भरतवंशी राजन्! समुद्रकी लहरों की समान तुम्हारी सेना रणमें भयसे काँपनेलगी, भयंकर नेत्रोंवाले और भयंकर आकार वाले उस घटोत्कचको चढकर आते देख कर्ण ने अभिमानके साथ, शीघ्रतासे उसके सामने चढ़ाईकर उसको आगे

मातङ्गमिव मातङ्गो यूथर्षभ इवर्षभम् । स सन्निपातस्तुमुलस्तयोरासीद्विशाम्पते । कर्णराक्षसयो राजन्निन्द्रशम्बरयोरिव । तौ प्रगृह्य महावेगे धनुषी भीमनिःस्वने ॥ २५ ॥ प्राच्छादयेतामन्योऽन्यं तक्षमाणौ महेषुभिः । ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२६॥ न्यवारयेतामन्योऽन्यं कांस्ये निर्भिद्य वर्मणी । तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥ २७ ॥ रथशक्तिभिरन्योऽन्यं विशिखैस्तौ ततक्षतुः । संच्छिदन्तौ च गात्राणि सन्दधानौ च सायकान् ॥ २८ ॥ दहन्तौ च शरोल्काभिर्दुष्प्रेक्ष्यौ च बभूवतुः । तौ तु विक्षतसर्वाङ्गौ शोणितौघपरिप्लुतौ ॥ २९ ॥ विभ्राजेतां यथा वारि स्रवन्तौ गैरिकाचलौ । तौ शराग्रविभिन्नाङ्गौ

बढ़नेसे रोका और बाण छोडने वाले घटोत्कचके सामने बाण फेंकने लगा, हे राजन् ! हाथी जैसे हाथीके साथ लडता है, साँड जैसे साँडोंके झुण्डके प्रधान साँडसे लडता है तैसे उन दोनोंमें तुमुल युद्ध होने लगा ॥ १८–२४ ॥ हे राजन् ! इन्द्र और शम्बरासुरमें जैसे युद्ध हुआ था, तैसे कर्ण और राक्षसमें युद्ध छिड गया, दोनों महारथी बड़े वेग वाले और भयंकर शब्द करते हुए धनुषोंको लेकर एक दूसरे पर बाण बरसा एक दूसरेको ढकने लगे, धनुषको कान तक खेंच, नमी हुई गाँठ वाले बाण मार एक दूसरेके कवचोंको तोड कर, दो सिंह जैसे नखोंसे युद्ध करते हैं जैसे बड़े२ हाथी दाँतोंसे लडते हैं, तैसे वे दोनों योधा परस्पर रथशक्तियोंसे और बाणोंसे एक दूसरेको मारने लगे, तथा बाणोंमे एक दूसरेके शरीरको काटने लगे, बाणरूपी उल्कापात कर एक दूसरेको भस्म करने लगे, उस समय उन दोनोंकी ओर देखना भी कठिन होगया, उन दोनोंके सारे शरीर घायल होगए थे और उनके घावोंमेंसे रक्त बह निकला—तब जैसे गेरूके पर्वतमेंसे गेरू टपकता है—तैसे वे दोनों दीखते थे, महाकान्ति वाले वे दोनों

निर्भिन्दन्तौ परस्परम् ॥ २६ ॥ नाकम्पयेतामन्योऽन्यं यतमानौ महाद्युती। तत् प्रवृत्तं निशायुद्धं चिरं सममिवाभवत् ॥ ३१ ॥ प्राणयोर्दीव्यतो राजन् कर्णराक्षसयोर्मृधे।तस्य सन्दधतस्तीक्ष्णान् शरांश्चासक्तमस्यतः ॥ ३२ ॥ धनुर्घोषेण वित्रस्ताः स्वे परे च तदाभवन्। घटोत्कचं यदा कर्णो न विशेषयते नृप ॥ ३३ ॥ प्रादुश्चक्रे ततो दिव्यमस्त्रमस्त्रविदाम्वरः । कर्णेन सन्धितं दृष्ट्वा दिव्यमस्त्रं घटोत्कचः॥३४॥ प्रादुश्चक्रे ततो मायां राक्षसीं पाण्डुनन्दनः । शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥ ३५ ॥ रक्षसां घोररूपाणां महत्या सेनया वृतः । तमुद्यतमहाचापं दृष्ट्वा ते व्यथिता नृपाः ॥३६॥ भूतान्तकमिवायान्तं कालदण्डोग्रधारिणम् । घटो-

---

युद्धके लिये प्रयत्न कर रहे थे और एक दूसरेके शरीरोंको बाणों की नोकोंसे बींध रहे थे, तो भी वे एक दूसरेको रणमें कँपा नहीं सकते थे–यह रात्रियुद्ध बहुत समय तक ऐसा चला कि–वह समय एक वर्षकी समान प्रतीत हुआ ॥ २५–३१ ॥ हे राजन् ! कर्ण और घटोत्कच प्राणोंका दाँव लगा कर युद्धरूपी जुआ खेलने लगे,घटोत्कच तीक्ष्ण बाणोंको चढ़ाता था और बिना अटकेहुए उन बाणोंको छोडता चला जाता था, उस समय उसके धनुषकी ध्वनिसे मित्रों (पाण्डवों) के और शत्रुओं (कौरवों)के योधा त्रस्त होगए, कर्ण घटोत्कचसे आगे न बढ़ सका, तब हे राजन! अस्त्रवेत्ताओंमें कुशल कर्णने दिव्यास्त्रको प्रकट कर उस राक्षसकी ओर ताना, यह देख कर राक्षसश्रेष्ठ घटोत्कचने राक्षसी माया प्रकट की ॥ ३२–३४ ॥ वह त्रिशूल, मुदगर, पर्वत तथा वृक्षोंको धारण करनेवाली राक्षसोंकी महासेनासे घिर कर प्राणियोंका संहार करने वाले उग्र दण्डधारी कालकी समान बड़े भारी धनुषको खैंच कर्णके सामनेको दौड़ा ॥ ३५ ॥ घटोत्कचको कालकी समान धँस कर आते देख, हमारे पक्षके वीर राजे घबड़ा गए ॥३६॥

त्कचप्रमुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ॥ ३७ ॥ प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् । ततोऽश्मवृष्टिरत्युग्रा महत्यासीत् समन्ततः ३८ अर्द्धरात्रेऽधिकबलैर्विमुक्ता राक्षसैर्भृशम् । आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः शक्तितोमराः ॥ ३९ ॥ पतन्त्यविरलाः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा । तदुग्रमतिरौद्रञ्च दृष्ट्वा युद्धं नराधिप ॥४०॥ पुत्राश्च तव योधाश्च व्यथिता विप्रदुद्रुवुः । तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी कर्णो मानी न विव्यथे ॥ ४१ ॥ व्यधमत् स शरैर्मायां घटोत्कचविनिर्मिताम् । मायायां तु प्रहीणायाममर्षाच्च घटोत्कचः ॥ ४२ ॥ विससर्ज शरान् घोरान् सूतपुत्रन्त आविशन् । ततस्ते रुधिराभ्यक्ता भित्वा कर्णं महाहवे ॥ ४३ ॥ विविशुर्द्धरणीं बाणाः संक्रुद्धा इव पन्नगाः । सूतपुत्रस्तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ४४

उस समय घटोत्कचने संग्रामभूमिमें सिंहकी समान गर्जना की उसको सुन हाथी भयभीत हो मूत्र करनेलगे मनुष्य अतीव खिन्न होगए और आधी रातके समय राक्षसोंकी महाबल वाली सेना हमारी सेना पर पत्थर,लोहेके चक्र,तोमर,भुशुण्डी,शक्ति, शतघ्नी तथा पट्टिशोंकी तला ऊपर अत्यन्त उग्र वृष्टि करनेलगी ३७–३९ हे राजन् ! उस महाभयंकर और अति उग्र युद्धको देखकर तुम्हारे योधा खिन्न होकर रणमेंसे भागगए, उस समय अस्त्रविद्या और बलमें प्रशंसा पाने योग्य केवल अभिमानी कर्ण ही तहाँ अचल खडा रहा, वह शत्रुओंसे कुछ भी नहीं डरा था ॥ ४०-४१ ॥ फिर कर्णने बाण मारकर घटोत्कचकी रची हुई मायाका नाश करडाला, अपनी मायाके नष्ट होने पर घटोत्कच सूतपुत्र कर्णके ऊपर क्रोधमें भर भयंकर बाणोंका प्रहार करनेलगा ॥ ४२ ॥ तब रक्तसे रँगेहुए वे बाण कर्णके शरीरको फोडकर कुपित हुए सर्पोंकी समान भूमिमें घुसगए ॥ ४३ ॥ तब फुर्तीले हाथवाले महाप्रतापी कर्णने कोपायमान होकर घटोत्कचके दश बाण मार

घटोत्कचमतिक्रम्य बिभेद दशभिः शरैः । घटोत्कचो विनिर्भिन्नः सूतपुत्रेण मर्मसु ॥ ४५ ॥ चक्रं दिव्यं सहस्रारमगृह्णाद्व्यथितो भृशम् । क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिरत्नविभूषितम् ॥ ४६ ॥ चिक्षेपाधिरथेः क्रुद्धो भैमसेनिर्जिघांसया । प्रविद्धमतिवेगेन विच्छिन्नं कर्णसायकैः ॥ ४७ ॥ अभाग्यस्येव सङ्कल्पस्तन्मोघमपतद्भुवि । घटोत्कचस्तु संक्रुद्धो दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥ ४८ ॥ कर्णं प्राच्छादयद्बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम् । सूतपुत्रस्त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥ ४९ ॥ घटोत्कचरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः । घटोत्कचेन क्रुद्धेन गदा हेमांगदा तदा ॥ ५० ॥ क्षिप्ता भ्राम्य शरैश्चापि कर्णेनाभ्याहतापतत् । ततोन्तरिक्षमुत्पत्य काल-

---

कर उसके मर्मस्थानोंको वींधडाला ॥ ४४ ॥ उस प्रहारसे भीमका पुत्र अत्यन्त खिन्न होगया और उसने क्रोधमें भर अधिरथके पुत्रका नाश करनेकी इच्छासे सहस्र अरेवाले क्षुरकी समान तीखी धारवाले, उदय होते हुए सूर्यकी समान दमकते हुए, मणि तथा रत्नोंसे अलङ्कृत एक दिव्य चक्रको लिया और कर्णके रथकी ओर ताककर उसके ऊपर फैंका ४५–४६ तब कर्णने उसके सामने बाण मारकर तुरन्त ही उसके टुकड़े२ करडाले, तब वह चक्र भाग्यहीन मनुष्यके मनोरथकी समान पृथ्वी पर गिरपड़ा ४७ अपने मारेहुए चक्रको पृथ्वीके ऊपर गिराहुआ देखकर घटोत्कच बड़े भारी क्रोधमें भरगया और उसने राहु जैसे सूर्यको ढक देता है तैसे बाण मारकर कर्णको ढकदिया ॥ ४८ ॥ परन्तु रुद्र, इन्द्र और विष्णुकी समान सूतपुत्रने धैर्य धारण कर फुर्तीसे बाण मार घटोत्कचके रथको ढकदिया ॥४९ ॥ उस समय घटोत्कचने क्रोधमें भर हेमाङ्गदा नामकी गदा घुमाकर कर्णके ऊपर फैंकी, कर्णने उसको भी बाण मारकर तोड डाला और वह पृथ्वीके ऊपर गिरपडी ॥५०॥ फिर बडे शरीरवाला घटोत्कच आकाश-

मेघ इवोन्नदन् ॥ ५१ ॥ प्रववर्ष महाकायो द्रुमवर्षं नभस्तलात् । ततो मायाविनं कर्णो भीमसेनसुतं दिवि ॥ ५२ ॥ मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः । तस्य सर्वान् हयान् हत्वा संछिद्य शततधा रथम् ॥ ५३ ॥ अभ्यवर्षच्छरैः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् । न तस्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यंगुलमन्तरम् ॥ ५४ ॥ सोऽदृश्यत मुहूर्तेन श्वाविच्छल्लितो यथा । न हयान्न रथं तस्य न ध्वजं न घटोत्कचम् ॥ ५५ ॥ दृष्टवन्तः स्म समरे शरौघैरभिसंवृतम् । स तु कर्णस्य तद्दिव्यमस्त्रमस्त्रेण शातयन् ॥५६॥ मायायुद्धेन मायावी सूतपुत्रमयोधयत् । सोऽयोधयत्तदा कर्णं मायया लाघवेन च ५७ अलक्ष्यमाणानि दिवि शरजालानि चापतन् । भैमसेनिर्महामायो

मेंसे ऊँचा उडा और प्रलयकालके मेघकी समान गर्जना करके आकाशमेंसे वृक्षोंकी वृष्टि करनेलगा ५१ तब सूर्य जैसे मेघके ऊपर किरणोंका प्रहार करता है, तैसे कर्ण भीमके मायावी पुत्र घटोत्कचके ऊपर बाणोंका प्रहार करनेलगा ५२ और घटोत्कचके घोडों को मारडाला और उसके रथके सैंकडों टुकडे करडाले फिर वह मेघ जैसे जल बरसाता है तैसे बाणोंकी वृष्टि करनेलगा ५३ इस समय घटोत्कच इतना घायल होगया, कि-उसके शरीरमें दो अंगुल स्थान भी घावरहित नहीं बचा ॥ ५४ ॥ एक मूहूर्तमें ही सेई जैसे अपने कांटोंसे दीखने लगती है,तैसे बाणोंसे गुथा हुआ घटोत्कचका शरीर दीखनेलगा, इस युद्धमें घटोत्कच, उसके घोडे, रथ और ध्वजा—इतने बाणोंसे ढक गए कि—देखनेवालोंको इन मेंका कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥ ५५-५६ ॥ फिर मायावी घटोत्कचने दिव्य अस्त्रोंसे कर्णके दिव्य अस्त्रोंको काटडाला और मायामय युद्धकर कर्णसे लड़नेलगा ॥५७॥ घटोत्कच उस समय राक्षसी मायासे अस्त्रविद्याकी फुर्ती दिखाता हुआ लड़ रहा था और अदृश्य होकर आकाशमेंसे बाण छोडरहा था ॥५८॥ और

मायया कुरुसत्तम ॥५८॥ विचचार महाकायो मोहयन्निव भारत । स तु कृत्वा विरूपाणि वदनान्यशुभानि च ॥ ५९ ॥ अग्रसत् सूतपुत्रस्य दिव्यान्यस्त्राणि मायया । पुनश्चापि महाकायः सञ्छिन्नः शतधा रणे ॥ ६० ॥ हतसत्त्वो निरुत्साहोः पतितः खाद्व्यदृश्यत । हतं तं मन्यमाना स्म प्रणेदुः कुरुपुङ्गवाः॥ ६१॥ अथ देहैर्नवैरन्यैर्दिक्षु सर्वास्वदृश्यत । पुनश्चापि महाकायः शतशीर्षः शतोदरः ॥ ६२ ॥ व्यदृश्यत महाबाहुर्मैनाक इव पर्वतः । अंगुष्ठमात्रो भूत्वा च पुनरेव स राक्षसः ॥६३॥ सागरोर्मिरिवोद्धूतस्तिर्यगूर्ध्वमवर्त्तत । वसुधां दारयित्वा च पुनरप्सु न्यमज्जत ॥ ६४ ॥ अदृश्यत तदा तत्र पुनरुन्मज्जितोऽन्यतः । सोऽवतीर्य पुनस्तस्थौ

हे कुरुवंशी महाराज ! बडे भारी शरीरवाला भीमपुत्र जो बडा मायावी था, वह मायासे योधाओंको दिङ्मूढ़ करता हुआ रणमें घूमनेलगा, वह मायासे बुरे रूपवाला अशुभ मुख बनाकर कर्णके दिव्य अस्त्रोंको निगल जाता था, परन्तु कर्णने पुनः पुनः घटोत्कचके बाण मारकर उसको घायल करडाला था ५९-६० घटोत्कच सहस्रों घाव होने पर उत्साह तथा बलरहित हो आकाशमेंसे नीचे गिरपडा, तब कौरवोंके बडे२ राजे उसको मराहुआ समझकर बडीभारी गर्जना करनेलगे, परन्तु देखते२ ही उस घटोत्कचने मानो दूसरे अनेकों नये शरीर धारण करलिये हों इसप्रकार सब दिशाओंमें दिखाई देनेलगा और उस ही समय सैंकडों माथा, सौ पेट, बड़ी २ भुजाएँ और बड़ाभारी शरीर करके मैनाक पर्वतकी समान योधाओंकी दृष्टिमें पडा थोडी ही देरमें वह राक्षस अँगूठेकी समान होगया और फिर रणभूमिमें दिखाई देने लगा ॥ ६१-६३ ॥ और समुद्रकी लहरोंकी समान उछलने लगा और ऊपर नीचे उछाल मारनेके पीछे पृथ्वीको फाड कर पानीमें घुस गया और तहाँसे फिर दूसरे स्थानसे निकल कर

रथे हेमपरिष्कृते ॥ ६५ ॥ क्षितिं खञ्च दिशश्चैव माययाभ्येत्य दंशितः। गत्वा कर्णरथाभ्याशं विचलत्कुण्डलाननः ॥ ६६ ॥ प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं विशाम्पते। तिष्ठेदानीं क्व मे जीवन् सूतपुत्र गमिष्यसि ॥ ६७ ॥ युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे। इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो रक्षः क्रूरपराक्रमः ॥ ६८ ॥ उत्पपातान्तरीक्षञ्च जहास च सुविस्तरम्। कर्णमभ्यहनच्चैव गजेन्द्रमिव केसरी ॥ ६९ ॥ रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद् घटोत्कचः। रथिनामृषभं कर्णं धाराभिरिव तोयदः ॥ ७० ॥ शरवृष्टिञ्च तां कर्णो दूरात् प्राप्तामशातयत्। दृष्ट्वा च विहतां मायां कर्णेन भरतर्षभ ॥ ७१ ॥ घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः

पुनः आकाशमें ऊपरको चढ़ गया, तहाँसे नीचे उतर आया और कवच तथा कुण्डलधारी घटोत्कच, फिर सुवर्णसे मढ़े हुए रथमें बैठकर मायाके प्रभावसे पृथ्वी, आकाश तथा दिशाओंमें दौड़ भागकर फिर कर्णके रथके पास आकर खड़ा होगया और धैर्यपूर्वक सूतपुत्र कर्णसे कहने लगा कि-अरे ओ सूतपुत्र ! अब खड़ा रह ! तू मेरा अपमान कर जीता हुआ कहाँ रह सकेगा ॥ ६४-६७ ॥ मैं रणाङ्गणमें तेरे युद्धके चावको आज दूर करदूँगा ! इसप्रकार कहकर लाल २ नेत्रवाला और क्रूर पराक्रमवाला वह राक्षस विशाल आकाशमें ऊपरको उड़ा और खड़खड़ाहटसे हँसकर, केसरी जैसे हाथीके ऊपर प्रहार करता है तैसे वह घटोत्कच कर्णके ऊपर शस्त्रोंका प्रहार करनेलगा॥६८॥६९ मेघ जैसे पर्वत पर जल बरसाता है; तैसे ही घटोत्कचने महारथी कर्णके ऊपर रथके धुरेकी समान बाणोंकी वृष्टि करना आरम्भ करदी ॥ ७० ॥ तब कर्णने बाण मारकर दूरसे उसकी बाणवृष्टिको दूर करडाला और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! उसकी मायाका भी संहार कर डाला, तुरत ही घटोत्कचने अदृश्य होकर

द्रुमः । सोऽभवद्गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसङ्कटैः ॥ ७२ ॥ शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् । तमञ्जनचयप्रख्यं कर्णो दृष्ट्वा महीधरम् ॥ ७३ ॥ प्रपातैरायुधान्युग्राण्युद्वहन्तं न चुक्षुभे । स्मयन्निव ततः कर्णो दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ॥ ७४ ॥ ततः सोऽस्त्रेण शैलेन्द्रो विक्षिप्तो वै व्यनश्यत । ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि ॥ ७५ ॥ अश्मवृष्टिभिरत्युग्रः सूतपुत्रमवाकिरत् । अथ सन्धाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदाम्वरः ॥ ७६ ॥ व्यधमत् कालमेघं तं कर्णो वैकर्तनो वृषः । स मार्गणगणैः कर्णो दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ॥ ७७ ॥ जघानास्त्रं महाराज घटोत्कचसमीरितम् । ततः प्रहस्य समरे भैमसेनिर्महाबलः ॥ ७८ ॥ प्रादुश्चक्रे महामायां कर्णं

दूसरी नई माया रची, वह वृक्षोंसे भरपूर और शिखर वाला एक महापर्वत बन गया और वह महान् पर्वत ही कर्णके ऊपर त्रिशूल,प्रास, खड्ग और मूसलोंकी वृष्टि करनेलगा॥७१॥७२॥ परन्तु कर्ण अञ्जनके ढेरकी समान दीखता था और प्रवाहरूप से आयुधोंकी वृष्टि करतेहुए इस पर्वतको देखने पर जरा भी नहीं घबडाया, उसने मुस्कराकर उस पर्वतके ऊपर दिव्य-अस्त्र मारा कि—उस समय ही उस महापर्वतके टुकडे २ होगए७३।७४ फिर वह महाभयङ्कर राक्षस आकाशमें गया और इन्द्रधनुष वाले श्याम मेघका रूप धारण कर कर्णके ऊपर पत्थरोंकी वृष्टि करने लगा ॥ ७५ ॥ तब अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतपुत्र कर्ण कि-जिस को वृष भी कहते हैं, उसने धनुषके ऊपर वायव्यास्त्र चढाकर उस कालमेघके टुकडे २ करडाले ॥७६॥ और दूसरे बाण छोड कर आकाशके सब कोनोंको ढकदिया और हे महाराज ! घटोत्कचके मारेहुए अस्त्रोंका नाश करडाला ॥७७॥ तुरत ही महाबलशाली भीमके पुत्रने रणाङ्गणमें हँसकर महारथी कर्णके सामने महामाया प्रकटकी ॥ ७८ ॥ महारथी घटोत्कच भी सिंहशार्दूल

प्रति महारथम् । स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेन रथिनाम्वरम् ॥७९॥ घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् । सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तमातङ्गविक्रमैः ८० गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैस्तथा । नानाशस्त्रधरैर्घोरैर्नानाकवचभूषणैः ॥ ८१ ॥ वृतं घटोत्कचं क्रूरैर्मरुद्भिरिव वासवम् । दृष्ट्वा कर्णो महेष्वासो योधयामास राक्षसम् ॥ ८२ ॥ घटोत्कचस्ततः कर्णं विध्वा पञ्चभिराशुगैः । ननाद भैरवं नादं भीषयन् सर्वपार्थिवान् ॥ ८३ ॥ भूयश्चाञ्जलिकेनाथ समार्गणगणं महत् । कर्णहस्तस्थितञ्चापं चिच्छेदाशु घटोत्कचः ॥ ८४ ॥ अथान्यद्धनुरादाय दृढम्भारसहं महत् । विचकर्ष बलात् कर्ण इन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम् ॥ ८५ ॥ ततः कर्णो महाराज प्रेषयामास सायकान् । सुवर्णपुङ्खाञ्छत्रुघ्नान् खेचरान्

और मदमत्त हाथियोंकी समान पराक्रमी रथ और घोडोंके ऊपर बैठेहुए और अनेक प्रकारके अस्त्रोंको धारण करनेवाले अनेक प्रकारके कवचोंसे शोभायमान, भयंकर और क्रूर कर्म करनेवाले बहुतसे राक्षसोंको साथ लेकर रथमें सवार होकर कर्णके सामने लडनेके लिये धँस आया, कर्णने भी पवनसे घिरेहुए इन्द्रकी समान आतेहुए घटोत्कचको देखकर उसके सामने युद्ध करना आरम्भ कर दिया ॥ ७९–८२ ॥ इस समय घटोत्कचने कर्णको पाँच बाण मार कर बींध डाला और सब राजाओंको डराता हुआ सा भयंकर हुंकारें भरनेलगा ॥ ८३ ॥ तदनन्तर उसने अञ्जलिक नामक बाण मार कर कर्णके हाथमें स्थित बहुतसे बाणों वाले धनुषके देखते २ टुकडे २ कर डाले ॥ ८४ ॥ कर्णने अत्यंत दृढ और भार सहनेवाला बडा भारी दूसरा धनुष लिया, इन्द्र धनुषकी समान उस ऊँचे धनुषको खैंचकर हे महाराज ! उससे कर्ण सुवर्णकी पूँछवाले और शत्रुओंका संहार करनेवाले आकाशचारी बाण राक्षसोंके ऊपर फैंकनेलगा ॥ ८५॥८६ ॥ तब वनमें

राक्षसान्प्रति ॥ ८६ ॥ तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् । सिंहेनेवार्दितं वन्यं गजानामाकुलं कुलम् ॥ ८७ ॥ विधम्य राक्षसान् बाणैः साश्वसूतगजान् विभुः । ददाह भगवान् वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥८८॥ स हत्वा राक्षसीं सेनां शुशुभे सूतनन्दनः । पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ ८९ ॥ तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु मारिष । नैनं निरीक्षितुमपि कश्चिच्छक्नोति पार्थिव ॥ ९० ॥ ऋते घटोत्कचाद्राजन् राक्षसेन्द्रान्महाबलात् । भीमवीर्यबलोपेतात् क्रुद्धाद्वैवस्वतादिव ॥ ९१ ॥ तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां पावकः समजायत । महोल्काभ्यां यथा राजन् सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ९२ तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् । रथमा-

रहनेवाली हाथियोंकी धाँग जैसे सिंहसे पीडा पाकर व्याकुल होजाती है, तैसे ही स्थूल वक्षःस्थलवाले राक्षसोंके झुण्डने भी भी कर्णके बाणोंके प्रहारोंसे बडी पीडा पाई ॥ ८७ ॥ इसप्रकार समर्थ कर्णने बाण मारकर हाथी, घोडे और सारथियों सहित राक्षसोंका संहार करडाला, प्रलयके समय जैसे अग्नि भगवान् सब प्राणियोंका संहार कर डालते हैं, तैसे ही कर्णने भी सबको भस्म करडाला ॥ ८८ ॥ और पहिले त्रिपुरासुरका नाश करनेके पीछे भगवान् शंकर जैसे कैलासमें शोभा पारहे थे, तैसे ही इस समय राक्षसोंका संहार करके सूतपुत्र कर्ण भी रणभूमिमें शोभा पानेलगा ८९ और उस समय पाण्डवोंमेंके सहस्रों वीर राजाओंमेंसे घटोत्कचको छोड कर दूसरा कोई भी राजा ऐसा न था कि–जो कर्णको देख सके, केवल महाबली बलसम्पन्न और कोपमें भरेहुए कालकी समान भीमका पुत्र अकेला राक्षसराज घटोत्कच ही उसके सामने देखता हुआ रणमें खडा था॥९०॥९१॥ मशालोंमेंसे जैसे आगके साथ तेलकी बूँदें गिरती हैं, तैसे ही कोपमें भरेहुए घटोत्कचकी आँखोंमेंसे अग्निकी चिनगारियें निकल

रथाय च पुनर्मायया निर्मितं तदा ॥ ९३ ॥ युक्तं गजनिभैर्वाहैः पिशाचवदनैः खरैः । स सूतमब्रवीत् क्रुद्धः सूतपुत्राय मां वह९४ स ययौ घोररूपेण रथेन रथिनां वरः । द्वैरथं सूतपुत्रेण पुनरेव विशाम्पते ॥ ९५ ॥ स चिक्षेप पुनः क्रुद्धः सूतपुत्राय राक्षसः । अष्टचक्रां महाघोरामशनीं रुद्रनिर्मिताम् ॥ ९६ ॥ द्वियोजनसमुत्सेधां योजनायामविस्तराम् । आयसीं निचितां शूलैः कदम्बमिव केसरैः॥९७॥ तामवप्लुत्य जग्राह कर्णो न्यस्य रथे धनुः । चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात् सोऽवपुप्लुवे ॥९८॥ साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा । विवेश वसुधां भित्त्वा सुरास्तत्र विसि-

रहीं थीं ॥ ९२ ॥ (कर्णका पराक्रम देखकर) घटोत्कचने हाथ मसले और ओठको दबाया तथा मायासे दूसरे रथको बनाया, उसमें पिशाचकी समान मुखवाले तथा हाथीकी समान दीखते हुए गधे जुते हुए थे, उसने उस रथमें बैठकर क्रोधमें भर अपने सारथिसे कहा कि-"अरे चल ! तू मुझे कर्णके सामने शीघ्र ही ले चल" ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार आज्ञा दे भयंकर रथमें बैठाहुआ महारथी घटोत्कच कर्णके सामने लड़नेको गया ॥ ९५ ॥ उस राक्षसने क्रोधमें भरकर आठ चक्र वाली, दो योजन ऊँची और एक योजन लम्बी, केशरों(परागों से युक्त कदम्बके पुष्पोंकी समान शूलोंसे जडी हुई तथा शंकरकी बनाई हुई ठोस लोहेकी महाभयंकर शक्ति कर्णके ऊपर फैंकी, कर्ण तुरत ही रथमेंसे कूद पडा और उसने हाथमेंके धनुषको फैंक उस शक्तिको (हाथसे) पकड़ लिया और उस शक्तिको उस राक्षसके रथके सामने ही फैंका, परन्तु उस महाप्रभावशाली शक्तिके रथपर पडनेसे पहिले ही घटोत्कच अपने रथ परसे कूद पडा-इतनेमें ही वह शक्ति राक्षसके सारथि,अश्व और ध्वजाको भस्म कर पृथ्वीमें घुस गई, कर्णके ऐसे कर्मको देख देवता भी

स्मियुः ॥ ९९ ॥ कर्णन्तु सर्वभूतानि पूजयामासुरञ्जसा । यदवप्लुत्य जग्राह देवसृष्टां महाशनिम् ॥ १०० ॥ एवं कृत्वा रणे कर्ण आरुरोह रथं पुनः । ततो मुमोच विशिखान् सूतपुत्रः परन्तपः ॥ १०१ ॥ अशक्यं कर्त्तुमन्येन सर्वभूतेषु मानद । यदकार्षीत्तदा कर्णः संग्रामे भीमदर्शने ॥ १०२ ॥ स हन्यमानो नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतः । गन्धर्वनगराकारः पुनरन्तरधीयत ॥ १०३ ॥ एवं स वै महाकायो मायया लाघवेन च । अस्त्राणि तानि दिव्यानि जघान रिपुसूदनः ॥ १०४ ॥ निहन्यमानेष्वस्त्रेषु मायया तेन रक्षसा । असम्भ्रान्तस्ततः कर्णस्तद्रक्षः प्रत्ययोधयत् ॥ १०५ ॥ ततः क्रुद्धो महाराज भैमसेनिर्महाबलः । चकार बहुधात्मानं भीष-

---

आश्चर्य करनेलगे ॥ ९३-९९ ॥ और सब प्राणी उस समय कर्णकी प्रशंसा करनेलगे कि—"कर्णने रथसे नीचे उतर कर महादेवकी बनाई हुई महाशक्तिको अनायास ही हाथसे पकड़लिया, इसलिये वह धन्य है ! धन्य है !!" ॥१००॥ परन्तप कर्ण ऐसा महापराक्रम कर फिर रथपर चढ़ बैठा और घटोत्कचके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करनेलगा ॥ १०१ ॥ हे मान देनेवाले राजन् ! उस समय भयंकर दीखनेवाले संग्राममें कर्णने जैसा पराक्रम दिखाया था; ऐसा पराक्रम कर्णके अतिरिक्त दूसरा कोई भी नहीं करसकता ॥ १०२ ॥ मेघ जैसे पर्वतके ऊपर जलकी मूसलधार वर्षा करता है, तैसे ही कर्ण भी राक्षसके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा तब घटोत्कच फिर गन्धर्व नगरकी समान अदृश्य होगया ॥ १०३ ॥ फिर मायाधारी शत्रुसंहारक राक्षस घटोत्कच मायासे और फुर्तीसे कर्णके अनेक प्रकारके दिव्य अस्त्र मारने लगा ॥१०४ ॥ वह राक्षस माया कर कर्णके नाना प्रकारके दिव्य अस्त्र मार रहा था, परन्तु कर्ण इससे डरा नहीं और निडर हो उसके सामने युद्ध करने लगा १०५ हे महाराज !

याणो महारथान् ॥ १०६ ॥ ततो दिग्भ्यः समापेतुः सिंहव्याघ्रतरक्षवः । अग्निजिह्वास्तु भुजगा विहगाश्चाप्ययोमुखाः ॥१०७॥ आकीर्यमाणो विशिखैः कर्णचापच्युतैः शरैः । नागराडिव दुष्प्रेक्ष्यस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१०८॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च यातुधानास्तथैव च । शालावृकाश्च बहवो वृकाश्च विकृताननाः ॥१०९॥ ते कर्णं भक्षयिष्यन्तः सर्वतः समुपाद्रवन् । अथैनं वाग्भिरुग्राभिस्त्रासयाञ्चक्रिरे तदा ॥११०॥ उद्यतैर्बहुभिर्घोरैरायुधैः शोणितोक्षितैः । तेषामनेकैरेकैकं कर्णो विव्याध चाशुगैः ॥ १११ ॥ प्रतिहत्य तु तां मायां दिव्येनास्त्रेण-राक्षसीम् । आजघान हयानस्य शरैः सन्नतपर्वभिः ॥११२॥ ते भग्ना विक्षताङ्गाश्च छिन्नपृष्ठाश्च सायकैः । वसुधामन्वपद्यन्त पश्यतस्तस्य रक्षसः॥११३॥

फिर कोपमें भरे हुए महाबली घटोत्कचने अपनी मायासे अनेकों रूप धारण किये और महारथियोंको डराने लगा. दिशाओंमेंसे सिंह, व्याघ्र, तरक्षु और अग्निकी समान लपलपाती हुई जीभ वाले सर्प और लोहेके मुखवाले पक्षी कौरवी सेनाके महारथियोंके सामने धँसने लगे ॥१०६-१०७॥ तब कर्ण धनुष खेंच उन पर बाण छोड़ने लगा, वे बाण धनुषोंमेंसे छूटकर घटोत्कचके ऊपर पड़ते थे तब घटोत्कच नागराजकी समान दुष्प्रेक्ष्य हो गया और तहाँ ही अन्तर्धान होगया ॥ १०८ ॥ और मायावी पिशाच, राक्षस, यातुधान, कुत्ते तथा भयंकर मुखवाले नाहर कर्णका नाश करनेकी इच्छासे कर्णकी ओर दौड़े और गाली देकर तथा लोहू टपकाते हुए भयंकर आयुधोंको उठाकर कर्णको त्रास देने लगे, कर्णने उनमेंसे प्रत्येकको बहुतसे बाण मार कर बींध डाला और दिव्य अस्त्र मार कर राक्षसी सेनाका संहार कर डाला, फिर अच्छी प्रकारसे नमी हुई गाँठ वाले बाण राक्षसके घोड़ोंके मारे घोड़ोंकी पीठ उधड़ गई, उनके घाव होगए और वे घटोत्कचके

स भग्नमायो हैडिम्बिः कर्णं वैकर्त्तनं ततः । एष ते विदधे मृत्युरित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ११४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कर्णघटोत्कचयुद्धे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७५॥

सञ्जय उवाच । तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने कर्णराक्षसयोर्मृधे । अलायुधो राक्षसेन्द्रो वीर्यवानभ्यवर्त्तत ॥ १ ॥ महत्या सेनया युक्तो दुर्योधनमुपागमत् । राक्षसानां विरूपाणां सहस्रैः परिवारितः ॥ २ ॥ नानारूपधरैर्वीरैः पूर्ववैरमनुस्मरन् । तस्य ज्ञातिर्हि विक्रान्तो ब्राह्मणादो बको हतः ॥ ३ ॥ किर्मीरश्च महातेजा हिडिम्बश्च तथा सखा । स दीर्घकालाध्युषितं पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४ ॥ विज्ञायैतन्निशायुद्धं जिघांसुर्भीममाहवे । स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्ध इव चोरगः ॥ ५ ॥ दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीद्युद्धलालसः ।

सामने ही निश्चेष्ट हो पृथ्वी पर गिरपड़े ॥ १०६–११३ ॥ इस प्रकार हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कचकी मायाका नाश हुआ कि–वह "मैं अभी तेरा नाश करता हूँ" यह कर सूतपुत्र कर्णके सामनेसे अन्तर्धान होगया॥११४॥एकसौ पिचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त १७५

सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् धृतराष्ट्र ! इस प्रकार कर्ण और घटोत्कचमें युद्ध चलरहा था, उस समय घटोत्कचका (मातृपक्षका) सम्बन्धी, राक्षसराज महापराक्रमी अलायुध, पहिले वैरका स्मरण कर बड़ीभारी सेनाके साथ दुर्योधनके पासमें आया, उस राक्षसके पास नानाप्रकारके रूप धरनेवाले, शूरवीर परन्तु कुरूप सहस्रों राक्षस घूमरहे थे, पहिले भीमने ब्राह्मणोंका भक्षण करनेवाले उसके सम्बन्धी बक राक्षसको, महातेजस्वी किर्मीरको तथा हिडिम्बासुरको मारडाला था, उनका वैर निकालनेके लिये आजके रात्रियुद्धमें भीमका नाश करनेकी इच्छासे यह राक्षस चढ़ आया था ॥ १–५ ॥ वह मदमत्त हाथीकी समान और कोपमें भरेहुए

विदितं ते महाराज यथा भीमेन राक्षसाः ॥ ६ ॥ हिडिम्बबक-किर्मीरा निहता मम बान्धवाः। परामर्षश्च कन्याया हिडिम्बायाः कृतः पुरा ॥७॥ किमन्यद्राक्षसानन्यानस्मांश्च परिभूय ह। तमहं सगणं राजन् सवाजिरथकुञ्जरम् ॥ ८ ॥ हैडिम्बिञ्च सहामात्यं हन्तुमभ्यागतः स्वयम्। अद्य कुन्तीसुतान् सर्वान् वासुदेवपुरोगमान् ९ हत्वा सम्भक्षयिष्यामि सर्वैरनुचरैः सह। निवारय बलं सर्वं वयं योत्स्याम पाण्डवान् ॥ १० ॥ तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा हृष्टो दुर्योधनस्तदा। प्रतिगृह्याब्रवीद्वाक्यं भ्रातृभिः परिवारितः ॥२१॥ त्वां पुरस्कृत्य सगणं वयं योत्स्यामहे परान्। न हि वैरान्तमनसः स्थास्यन्ति मम सैनिकाः ॥ १२ ॥ एवमस्त्विति राजानमुक्त्वा

सर्पकी समान था, वह युद्ध करनेके लिये बड़ा उत्साह दिखारहा था, रणभूमिमें जहाँ दुर्योधन खडा था, तहाँ आकर वह बोला कि–"हे महाराज ! तुम जानते ही हो कि–भीमने पहिले मेरे बान्धव हिडिम्बको, बकको और किर्मीरको मारडाला है, और तो क्या उसने हिडिम्बाका शील भी बिगाडा है ! ॥ ६–७ ॥ रे ! उसने हम सबोंका तिरस्कार कर यह काम किया है, अतः हे राजन् ! मैं स्वयं घोड़े, रथ, हाथी पैदल और मंत्रियोंसहित हिडिम्बाके पुत्रके नाश करनेकी आज्ञा माँगनेके लिये आपके पास आया हूँ, आज मैं वासुदेवप्रधान सब पाण्डवोंको तथा घटोत्कचको उसके अनुचरोंसहित मारकर खाजाऊँगा, अतः तुम अपनी सेनाको रणमेंसे पीछेको हटा लो, आज हम राक्षस ही पाण्डवोंके साथ लड़ेंगे" ॥८–१०॥ उस राक्षसकी इस बातको सुनकर दुर्योधन प्रसन्नहुआ और उसने अपने भाइयोंके सामने उससे कहा, कि–॥ ११ ॥ "हम तुमको तुम्हारी राक्षससेनासहित अग्रणी बनाकर पाण्डवोंके साथ लड़ेंगे, क्योंकि–मेरे सैनिकोंके मनमें भी वैराग्नि जलरही है, अतः वे शान्त होकर नहीं बैठेंगे" ॥ १२ ॥

राक्षसपुङ्गवः । अभ्ययात्त्वरितो भीमं सहितः पुरुषादकैः ॥ १३ ॥ दीप्यमानेन वपुषा रथेनादित्यवर्चसा । तादृशेनैव राजेन्द्र यादृशेन घटोत्कचः ॥ १४ ॥ तस्याप्यतुलनिर्घोषो बहुतोरणचित्रितः ऋक्षचर्मावनद्धांगो नल्वमात्रो महारथः ॥ १५ ॥ तस्यापि तुरगाः शीघ्रा हस्तिकायाः खरस्वनाः । शतं युक्ता महाकाया मांसशोणितभोजनाः ॥ १६ ॥ तस्यापि रथनिर्घोषो महामेघरवोपमः । तस्यापि सुमहच्चापं दृढज्यं कनकोज्ज्वलम् ॥ १७ ॥ तस्याप्यक्षसमा बाणा रुक्मपुंखाः शिलाशिताः । सोऽपि वीरो महाबाहुर्यथैव स घटोत्कचः ॥ १८ ॥ तस्यापि गोमायुबलाभिगुप्तो बभूव केतुर्ज्वलना-

---

“अच्छा ऐसा ही करो” यह कहकर राक्षसोंका राजा अलायुध राक्षसोंको अपने साथ लेकर उतावला२ घटोत्कचके सामने लडने आ गया१३ हे राजेन्द्र ! जैसे घटोत्कच तेजस्वी था तैसे ही यह राक्षस भी तेजस्वी था, घटोत्कच सूर्यकी समान एक तेजस्वी रथमें बैठा था तैसे ही सूर्यकी समान तेजस्वी रथमें अलायुध भी बैठा था ॥१४॥ अलायुधके रथकी घनघनाहट बहुत होती थी, बहुतसे तोरणोंके कारण उसका रथ विचित्र दीखता था, वह रीछके चमडेसे चारों ओरसे मढा हुआ था और वह रथ चारसौ हाथ मोटा था ॥ १५ ॥ और उसमें सौ घोड़े जुत रहे थे यह घोड़े शीघ्रतासे चलनेवाले थे, उनका शरीर हाथीकी समान मोटा था, वे घोड़े तीक्ष्ण हिनहिनाहट करने वाले और मांस तथा रुधिरका भोजन करने वाले थे, उसके रथकी घनघनाहट महामेघकी समान होती थी, उसका धनुष मोटा, दृढ़ प्रत्यञ्चा वाला और सुवर्णकी समान उज्ज्वल था ॥ १६-१७॥ शिलाके ऊपर घिसकर तेज किये हुए और सुवर्णकी पूँछ वाले उसके बाण भी रथके धुरेकी समान लम्बे थे, जैसे घटोत्कचके पास युद्धसामग्री भरपूर थी तैसे ही महाभुज शूर राक्षस अलायुध भी सामग्रीसे लैस था१८

र्कतुल्यः। स चापि रूपेण घटोत्कचस्य श्रीमत्तमो व्याकुलदीपितास्यः॥ १९ ॥ दीप्ताङ्गदो दीप्तकिरीटमाली बद्धस्रगुष्णीषनिबद्धखड्गः। गदी भुशुण्डी मुसली बली च शरासनी वारणतुल्यवर्ष्मा॥ २० ॥ रथेन तेनानलवर्चसा तदा विद्रावयन् पाण्डववाहिनीं ताम्। रराज संख्ये परिवर्त्तमानो विद्युन्माली मेघ इवान्तरिक्षे॥ २१ ॥ ते चापि सर्वे प्रवरा नरेन्द्रा महाबलाः वर्मिणश्चर्मिणश्च। हर्षान्विता युयुधुस्तत्र राजन् समन्ततः पाण्डवयोधवीराः॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुधयुद्धे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७६ ॥

सञ्जय उवाच। तमागतमभिप्रेक्ष्य भीमकर्माणमाहवे। हर्षमा-

उसके रथका ध्वजदण्ड गीदड़ोंकी सेनासे रक्षित तथा अग्नि और सूर्यकी समान झलझलाती हुई कान्ति वाला था रूपमें वह घटोत्कचसे बढ़कर था, परन्तु क्रोधके कारण उसका मुख व्याकुल सा तथा अग्निकी समान लाल२ दीखता था॥ १९ ॥ वह हाथोंमें चमकते हुए बाजूबन्द पहर रहा था माथे पर चमकता हुआ मुकुट धारण किये हुए था, उसके कण्ठमें पुष्पोंकी माला पड़ी हुई थी, मस्तकपर पगड़ी बँध रही थी, कमरमें तलवार लटक रही थी, गदा भुशुण्डी मूसल, हल इतने शस्त्र उसके पास रक्खे हुए थे, उसका शरीर हाथीकी समान था॥ २० ॥ वह जिस समय अग्निकी समान रथमें बैठ पाण्डवोंकी सेनाको भगाने लगा, उस समय वह आकाशमें घूमता हुआ मेघ जैसे विजलीसे शोभा पाता है—तैसे रणमें घूमता हुआ शोभा पारहा था२१हे राजन्! पाण्डवपक्षके महाबलवान् शूर राजे हर्षमेंभरकर उसके साथ चारों ओरसे युद्ध करने लगे॥ २२ ॥ एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥ १७६ ॥

सञ्जयने कहा कि—हे धृतराष्ट्र! रणमें भयंकर कर्म करने वाले

हारयाञ्चक्रुः कुरवः सर्व एव ते ॥ १ ॥ तथैव तव पुत्रास्ते दुर्योधनपुरोगमाः । अप्लवाः प्लवमासाद्य तर्तुकामा इवार्णवम् ॥२॥ पुनर्जातमिवात्मानं मन्वानाः पुरुषर्षभाः । अलायुधं राक्षसेन्द्रं स्वागतेनाभ्यपूजयन् ॥ ३ ॥ तस्मिंस्त्वमानुषे युद्धे वर्त्तमाने भयावहे । कर्णराक्षसयोर्नक्तं दारुणप्रतिदर्शने ॥ ४ ॥ उपप्रैक्षन्त पञ्चालाः स्मयमानाः सराजकाः । तथैव तावका राजन् वीक्ष्यमाणास्ततस्ततः॥५॥ चुक्रुशुर्नेदमस्तीति द्रोणद्रौणिकृपादयः । तत् कर्म दृष्ट्वा सम्भ्रान्ता हैडिम्बस्य रणाजिरे ॥ ६ ॥ सर्वमाविग्नमभवद्धाहाभूतमचेतनम् । तव सैन्यं महाराज निराशं कर्णजीविते७ दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य कर्णमार्त्तिं परां गतम् । अलायुधं राक्षसेन्द्रमाहूयेदमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥ एष वैकर्त्तनः कर्णो हैडिम्बेन समा-

अलायुधको सेनासहित चढ़ते हुए देखकर सब कौरव योधा हर्षमें भर गए ॥ १ ॥ और समुद्रको तरनेकी इच्छावाले नौकारहित मनुष्य जैसे नौका मिल जानेपर सन्तोष पाते हैं, तैसे ही तुम्हारे पुत्र दुर्योधन आदि उस राक्षसकी सहायता मिलने पर अपना नया जन्म हुआ समझने लगे और उन राक्षसोंका आगत स्वागत करने लगे ॥ २ ॥ ३ ॥ इस समय कर्ण और घटोत्कचमें महाभयंकर, दारुण और अमानुषिक रात्रियुद्ध चल रहा था, उस युद्धको देख कर राजा युधिष्ठिर तथा पाञ्चालराजे आश्चर्यमें पड गए तुम्हारे पक्षके योधा—हमारा पक्ष नहीं बचेगा—यह कहने लगे और द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि योधा घटोत्कचके कर्मको देखकर घबराहटमें पड गए॥४—६॥हे महाराज! तुम्हारी सारी सेना डरके मारे भानरहित होगई थी, वह हाहाकार करने लगी और कर्णके जीवनसे निराश होगई ॥ ७ ॥ दुर्योधनने कर्णको बड़े भारी संकटमें पडा हुआ देख कर राक्षसोंके राजा अलायुधसे कहा कि-॥ ८ ॥ "यह सूतपुत्र कर्ण हिडिम्बाके पुत्रके साथ लड़

गतः । कुरुते कर्म सुमहद्यदस्यौपयिकं मृधे ॥ ९ ॥ पश्यैतान् पार्थिवान् शूरान् निहतान् भैमसेनिना । नानाशस्त्रैरभिहतान् पादपानिव दन्तिना ॥ १० ॥ तवैष भागः समरे राजमध्ये मया कृतः । तवैवानुमते वीर तं विक्रम्य निबर्हय ॥ ११ ॥ पुरा वैकर्त्तनं कर्णमेष पापो घटोत्कचः । मायाबलमुपाश्रित्य मां हन्याच्छत्रुकर्षण १२ एवमुक्तः स राज्ञा तु राक्षसस्तीव्रविक्रमः । तथेत्युक्त्वा महाबाहुर्घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ १३ ॥ ततः कर्णं समुत्सृज्य भैमसेनिरपि प्रभो । प्रत्यमित्रमुपायान्तं मर्दयामास मार्गणैः ॥१४॥ तयोः समभवद्युद्धं क्रुद्धयो राक्षसेन्द्रयोः । मत्तयोर्वासिताहेतोर्द्विपयोरिव कानने ॥१५॥ राक्षसाद्विप्रमुक्तस्तु कर्णोऽपि रथिनाम्वरः । अभ्य-

---

रहा है और रणमें अपनी शक्तिके अनुसार बडा भारी पराक्रम दिखा रहा है ॥ ९ ॥ तथा हाथी जैसे वृक्षोंका संहार करता है, तैसे ही घटोत्कच भी अनेक शस्त्रोंसे बड़े २ शूरोंका संहार कर रहा है, इसकी ओर तुम देखो ॥१०॥ हे शत्रुओंका संहार करने वाले राक्षसराज ! यह पापी घटोत्कच इस समय अपनी मायाके बलका आश्रय कर वैकर्तन कर्णको दुःख देरहा है ! हे शूर ! तूने मुझसे अपना विचार कहा है, इससे ही मैंने भी तुझे इस युद्धमें शामिल कर (मिला) लिया है, अतः तूभी संग्राममें भाग ले, और पराक्रम कर घटोत्कचका नाश कर" ॥ ११–१२ ॥ इस प्रकार दुर्योधनने कहा तब महाभयंकर पराक्रमी तथा महाभुज अलायुधने 'बहुत अच्छा' कहकर घटोत्कचके ऊपर चढ़ाई की १३ हे राजन् ! घटोत्कच भी शत्रुको सामने आता देख कर कर्णको छोड कर बाणोंके प्रहारोंसे अलायुधको पीडित करने लगा ॥१४॥ वनमें जैसे दो मत्त हाथी एक हथिनीके लिये युद्ध करते हैं, तैसे ही कोपमें भरे हुए वे दोनों राक्षसेन्द्र एक दूसरेके साथ युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥ युद्धमें राक्षससे छूटा हुआ महारथी कर्ण

द्रवद्भीमसेनं रथेनादित्यवर्चसा॥१६॥तमायान्तमनादृत्य दृष्ट्वा ग्रस्तं घटोत्कचम्। अलायुधेन समरे सिंहेनेव गवाम्पतिम् ॥ १७ ॥ रथेनादित्यवपुषा भीमः प्रहरताम्वरः। किरन् शरौघान् प्रययावलायुधरथं प्रति ॥ १८ ॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य स तदालायुधः प्रभो। घटोत्कचं समुत्सृज्य भीमसेनं समाह्वयत् ॥१९॥ तं भीमः सहसाभ्येत्य राक्षसान्तकरः प्रभो। सगणं राक्षसेन्द्रं तं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २० ॥ तथैवालायुधो राजन् शिलाधौतैरजिह्मगैः। अभ्यवर्षत कौन्तेयं पुनः पुनररिन्दमः ॥ २१ ॥ तथा ते राक्षसाः सर्वे भीमसेनमुपाद्रवन्। नानाप्रहरणा भीमास्त्वत्सुतानां जयैषिणः ॥२२॥ स ताड्यमानो वहुभिर्भीमसेनो महावलः। पञ्चभिः

सूर्यकी समान झलझलाते हुए तेजस्वी रथके ऊपर चढ़ कर भीमकी सेनाकी ओर गया ॥ १६ ॥ परन्तु सिंह जैसे वैलको दवोच लेता है, तैसे अलायुधने रणमें घटोत्कचको सपाटेमें लेलिया है-यह देख कर भीमने कर्णका अनादर किया, अर्थात् वह उसके सामने लडनेको नहीं गया॥१७॥परन्तु वह सूर्यका समान चमकते हुए रथमें वैठ वाणोंकी वृष्टि करता हुआ अलायुधके रथकी ओर अपने रथको वढाने लगा ॥१८॥ हे राजन! अलायुधने भीमको आता देख कर उससे ही समय घटोत्कचको छोड कर भीमको रणके लिये निमन्त्रण दिया॥१९॥हे प्रभो!राक्षसका संहार करने वाला भीमसेन अलायुधके ऊपर एकाएक हल्ला लेगया और उसके ऊपर तथा उसके अनुचरोंके ऊपर वाणोंकी वृष्टि करनेलगा ॥ २० ॥ हे अरिदमन राजन्! अलायुध भी पत्थर पर घिसकर तेज कियेहुए और सरलतासे जानेवाले वाण तला ऊपर कुन्तीपुत्रके ऊपर वरसाने लगा ॥ २१ ॥ तथा तुम्हारे पुत्रोंकी विजय चाहनेवाले सव भयङ्कर राक्षस भी अनेकप्रकारके आयुध लेकर भीमके सामने लडनेको दौडगए २२

पञ्चभिः सर्वांस्तानविध्यच्छितैः शरैः ॥ २३ ॥ ते युध्यमाना भीमेन राक्षसाः क्रूरबुद्धयः । विनेदुश्च महानादान् दुद्रुवुश्च दिशो दश ॥ २४ ॥ तांस्त्रास्यमानान् भीमेन दृष्ट्वा रक्षो महाबलम् । अभिदुद्राव वेगेन शरैश्चैनमवाकिरत् ॥२५॥ तं भीमसेनः समरे तीक्ष्णाग्रैरक्षिणोच्छरैः । अलायुधस्ततस्तांस्तान् भीमेन विशिखान्रणे ॥ २६ ॥ चिच्छेद कांश्चित् समरे त्वरया कांश्चिदग्रहीत् । स तं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं भीमो भीमपराक्रमः ॥ २७ ॥ गदाश्चिक्षेप वेगेन वज्रपातोपमां तदा । तामापतन्तीं वेगेन गदां ज्वालाकुलां ततः ॥ २८ ॥ गदया ताडयामास सा गदा भीममाव्रजत् । स राक्षसेन्द्रं कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २९ ॥ तानप्यस्याकरोन्मोघान् राक्षसो निशितैः शरैः। ते चापि राक्षसाः सर्वे रजन्यां

और वे सब राक्षस महाबलवान् भीमसेन पर बाणोंका प्रहार करने लगे, भीमने उन सबोंके पाँच २ तीक्ष्ण बाण मारे २३ तब भीमके प्रहारसे क्रूर राक्षस व्याकुल होकर तुमुलनाद करते हुए चारों ओर भागने लगे ॥ २४ ॥ भीमसेनसे डर कर राक्षस भाग रहे हैं, यह देखकर महबाली राक्षस अलायुध फुर्तीके साथ भीमसेनके रथकी ओर दौड़ा और उसके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥२५॥ भीमसेन भी रणमें उसके ऊपर तीक्ष्ण धार वाले बाण मारने लगा, तब इस युद्धमें भीमके मारे हुए पृथक्२ बाणों मेंसे कितने ही बाणोंको उसने काटडाला और कितने ही बाणोंको फुर्तीसे हाथमें पकड लिया, तब भयंकर पराक्रमी भीमसेनने उस राक्षसराजकी ओर देख कर वज्रपातकी समान तीक्ष्ण पात वाली गदा फैंकी, अपनी ओर आती हुई अग्निज्वालाकी समान प्रज्वलित होती हुई भीमकी गदाको राक्षसने उसके ऊपर अपनी गदा मार कर भीमकी ओरही धकेल दिया, फिर भीमसेन राक्षसराजके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करनेलगा ॥ २६-२९ ॥ तब राक्षसराजने तेज

भीमरूपिणः॥३०॥शासनाद्राक्षसेन्द्रस्य निजघ्नुरथ कुञ्जरान् । पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव वाजिनः परमद्विपाः ॥ ३१ ॥ न शांतिं लेभिरे तत्र राक्षसैर्भृशपीडिताः । तं दृष्ट्वा तु महाघोरं वर्त्तमानं महाहवम्॥३२॥अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षो धनञ्जयमिदं वचः । पश्य भीमं महाबाहुं राक्षसेन्द्रवशङ्गतम् ॥ ३३ ॥ पदमस्यानुगच्छ त्वं मा विचारय पाण्डव । धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ३४ ॥ सहितौ द्रौपदेयाश्च कर्णं यान्तु महारथाः । नकुलः सहदेवश्च युयुधानश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ इतरान्राक्षसान् घ्नन्तु शासनात्तव पाण्डव । त्वमपीमां महाबाहो चमूं द्रोणपुरस्कृताम् ॥ ३६ ॥ नरव्याघ्र महाबाहो महद्धि भयमागतम् । एवमुक्ते तु कृष्णेन यथोदिष्टा महारथाः ॥ ३७ ॥ जग्मुर्वैकर्त्तनं

कियेहुए वाण मारकर भीमके वाणोंको निष्फल करदिया. जैसे अलायुध लडरहा था, तैसे ही उस राक्षसराजकी आज्ञासे दूसरे भयंकर आकृतिवाले राक्षस भी इस रात्रिमें इस युद्धके समय रथ हाथी तथा घोडोंका संहार करनेलगे, तव पाञ्चाल राजे, सृञ्जय राजे घुडसवार तथा वडे२ हाथीसवार राक्षसोंकी मारसे वडे ही पीडित होगए,वे वहुत ही घवडागए थे,तव कमलनयन श्रीकृष्णने इस महाभयंकर संग्रामको देखकर अर्जुनसे कहा, कि "हे अर्जुन! महाभुज भीमसेन राक्षसराज अलायुधके फन्देमें पडगया है,इसकी ओर तू ध्यान दे ॥३०-३३॥ हे पाण्डुपुत्र ! तू इस समय इसकी सहायता करनेके लिये जा और कुछ विचार मत कर,हे अर्जुन! तेरी आज्ञासे महारथी धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, युधामन्यु, उत्तमौजा और द्रौपदीके महारथी पुत्र कर्णके ऊपर चढाई करेंगे, नकुल, सहदेव तथा पराक्रमी युयुधान तेरी आज्ञासे राक्षसोंका संहार करेंगे और हे महाभुज अर्जुन! जिस सेनाके मुख पर द्रोण खडे हैं, उस सेनाको तू रणमें पीछेको हटा दे, क्योंकि-हे नरव्याघ्र!

कर्णं राक्षसांश्चैव तान्रणे । अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैराशीविषोपमैः ॥ ३८ ॥ धनुश्चिच्छेद भीमस्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् । हयांश्चैव शितैर्बाणैः सारथिञ्च महाबलः ॥ ३९ ॥ जघान मिषतः संख्ये भीमसेनस्य राक्षसः । सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वो हतसारथिः ॥ ४० ॥ तस्मै गुर्वीं गदां घोरां विनदन्नुत्ससर्ज ह । ततस्तां भीमनिर्घोषामापतन्तीं महागदाम् ॥४१॥ गदया राक्षसो घोरो निजघान ननाद च । तद् दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य घोरं कर्म भयावहम् ॥ ४२ ॥ भीमसेनः प्रहृष्टात्मा गदामुग्रां परामृशत् । तयोः समभवद्युद्धं तुमुलं नररक्षसोः ॥ ४३ ॥ गदानिपातसंह्रादैर्भुवं कम्पयतोर्भृशम् । गदाविमुक्तौ तौ भूयः समासाद्येतरेतरम् ४४

हमारे ऊपर बडीभारी आपत्ति पडनेवाली है” इसप्रकार श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, तब (पाण्डव पक्षके) महारथी राजे सूर्यपुत्र कर्णके ऊपर चढ गए और दूसरे योधा राक्षसोंसे लडनेके लिये गए, इतने समयमें तो प्रतापी राक्षसराजने धनुषकी डोरीको कानतक खैंच विषैले सर्पोंकी समान बाण मारकर भीमके धनुषको काट डाला, फिर उस महाबलवान् राक्षसने भीमके सामने ही तीक्ष्ण बाण मारकर उसके घोडोंका और सारथिका भी नाश कर डाला ॥ ३४–३९ ॥ घोड़े और सारथिके नष्ट होते ही भीमसेन तुरन्त ही रथ परसे उतर पडा और महागर्जना की, फिर उसने बहुत ही भारी भयंकर गदा राक्षसके ऊपर फैंकी और उस महाभयंकर राक्षसराजने भी बडीभारी झनझनाहटके साथ आती हुई उस गदाके ऊपर अपनी गदा फैंककर बडीभारी गर्जना की, भीमसेन राक्षसराजका ऐसा महाभयंकर और घोर कर्म देखकर मनमें प्रसन्न हुआ और तुरन्त ही हाथमें दूसरी गदा उठा ली, मनुष्य और राक्षसके बीचमें महाभयंकर गदायुद्ध होनेलगा ४०–४३ इस युद्धमें दोनों योधा एक दूसरेके ऊपर गदाका प्रहार कर उसकी

मुष्टिभिर्वज्रसंह्रादैरन्योऽन्यमभिजघ्नतुः । रथचक्रैर्युगैरक्षैरधिष्ठानैरुपस्करैः ॥४५॥ यथासन्नमुपादाय निजघ्नतुरमर्षणौ । तौ विक्षरन्तौ रुधिरं समासाद्येतरेतरम् ॥४६॥ मत्ताविव महानागौ चकृषाते पुनः पुनः । तदपश्यद्धृषीकेशः पाण्डवानां हिते रतः ॥ ४७ ॥ स भीमसेनरक्षार्थं हैडिम्बं प्रत्यचोदयत् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलायुधयुद्धे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

सञ्जय उवाच । संदृश्य समरे भीमं रक्षसा ग्रस्तमन्तिकात् । वासुदेवोऽब्रवीद्राजन् घटोत्कचमिदं वचः ॥ १ ॥ पश्य भीमं महा-

---

ध्वनिसे पृथ्वीको बड़े वेगसे कँपारहे थे,इसप्रकार गदायुद्ध करनेके पीछे वे दोनों मुष्टियुद्ध करनेलगे ॥ ४४ ॥ इस युद्धमें मुक्कोंके शब्द वज्रके कड़ाकेकी समान होते थे, मुष्टियुद्ध होनेके पीछे ईर्षामें भरेहुए वे दोनों योधा रथके पहिये, जुए, धुरे, रथकी टेकड़ियें तथा दूसरे उपस्कर जो कुछ समीपमें पड़ा हुआ दीखता था उसको ही उठाकर दूसरे पर फैंकनेलगे,उससमय उन दोनोंके शरीरोंमेंसे रुधिर निकलरहा था, फिर वे दोनों महामदमत्त हाथीकी समान युद्ध करनेलगे और वारम्वार एक दूसरेको खेंचनेलगे, उससमय वे दोनों मदमत्त हाथियोंकी समान दीखते थे, यह सब युद्ध पाण्डवोंके हितैषी हृषीकेश श्रीकृष्ण रणभूमिमें खड़ेहुए देखरहे थे ॥४५-४७॥ उन्होंने भीमसेनकी रक्षा करनेके लिये हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कचको लड़नेके लिये आज्ञा दी ॥ ४८ ॥ एकसौ सतत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७७ ॥

सञ्जयने कहा, कि हे राजन् ! श्रीकृष्णने रणमें खड़े रहकर राक्षसराजने भीमसेनको किस प्रकार दबा लिया है,यह समीपमें खड़ेहुए घटोत्कचको बताया और कहा कि–हे बड़ी२भुजा और बड़ी भारी कान्तिवाले घटोत्कच ! सब सेनाओंके और तेरे सामने इस

बाहो रक्षसा ग्रस्तमाहवे । पश्यतां सर्वसैन्यानां तव चैव महाद्युते ॥ २ ॥ स कर्णं त्वं समुत्सृज्य राक्षसेन्द्रमलायुधम् । जहि क्षिप्रं महाबाहो पश्चात् कर्णं वधिष्यसि ॥ ३ ॥ स वार्ष्णेयवचः श्रुत्वा कर्णमुत्सृज्य वीर्यवान् । युयुधे राक्षसेन्द्रेण बकभ्रात्रा घटोत्कचः ॥ ४ ॥ तयोस्तु तुमुलं युद्धं बभूव निशि रक्षसोः । अलायुधस्य चैवोग्रं हैडिम्बस्य च भारत ॥ ५ ॥ अलायुधस्य योधांस्तु राक्षसान् घोरदर्शनान् । वेगेनापततः शूरान् प्रगृहीतशरासनान्६ आत्तायुधः सुसंक्रुद्धो युयुधानो महारथः । नकुलः सहदेवश्च बिभिदुर्निशितैः शरैः ॥ ७ ॥ सर्वांश्च समरे राजन् किरीटी क्षत्रियर्षभान् । परिचिक्षेप बीभत्सुः सर्वतः प्रक्षिपन् शरान् ॥ ८ ॥ कर्णश्च समरे राजन् व्यद्रावयत पार्थिवान् । धृष्टद्युम्नशिखण्ड्यादीन् पञ्चालानां महारथान् ॥ ९ ॥ तान् वध्यमानान् दृष्ट्वा तु भीमो

राक्षसराजने रणमें भीमसेनको अपने सपाटेमें ले लिया है, इसको ओर तो दृष्टि कर ! ॥१-२॥ हे महाभुज ! इस समय तू कर्णके साथ लडना छोड दे और राक्षसराज अलायुधका शीघ्र ही संहार कर, फिर कर्णको मारना ! ॥३॥ पराक्रमी घटोत्कच श्रीकृष्णका कहना सुनकर बकके भाई राक्षसराज अलायुधके साथ लडनेको गया ॥४॥ और हे भरतवंशी राजन् ! अलायुध तथा हिडिम्बापुत्र घटोत्कच इन दोनों राक्षसोंमें रात्रिके समय अत्यन्त तुमुल तथा उग्र युद्ध होनेलगा॥५॥दूसरी ओर क्रोधमें भरेहुए आयुधधारी महारथी सात्यकि,नकुल और सहदेव तीक्ष्ण बाणोंको छोड सामने आतेहुए और भयंकर दिखाववाले अलायुधके राक्षस योधाओंको नष्ट करनेलगे ॥ ६-७ ॥ अर्जुन चारों ओर बाण मारकर रणभूमिमें लडतेहुए सब बड़े२ योधाओंका संहार करनेलगा ॥८॥ और हे राजन् ! कर्ण भी धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डी आदि पाञ्चाल महारथियोंको बाण मारकर रणभूमिमें

भीमपराक्रमः। अभ्ययात्त्वरितः कर्णं विशिखान् विकिरन् रणे १० ततस्तेप्याययुर्हत्वा राक्षसान् यत्र सूतजः। नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ ११ ॥ ते कर्णं योधयामासुः पञ्चाला द्रोणमेव तु। अलायुधस्तु संक्रुद्धो घटोत्कचमरिन्दमम्। परिघेनातिकायेन ताडयामास मूर्द्धनि ॥ १२ ॥ स तु तेन प्रहारेण भैमसेनिर्महाबलः। ईषन्मूर्च्छितमात्मानं संस्तम्भयत वीर्यवान् ॥ १३ ॥ ततो दीप्ताग्निसङ्काशां शतघण्टामलंकृताम्। चिक्षेप समरे तस्मै गदां काञ्चनभूषिताम् १४ सा हयांश्च रथं चास्य सारथिञ्च महास्वना। चूर्णयामास वेगेन विसृष्टा भीमकर्मणा ॥ १५ ॥ स भग्नहयचक्राक्षाद्विशीर्णध्वजकूबरात्। उत्पपात रथात्तूर्णं मायामा-

---

से भगानेलगा ॥९॥ भयंकर पराक्रम करनेवाला भीम पाञ्चालोंको नष्ट होतेहुए देखकर फुर्तीसे, कर्णके सामने लडनेको दौड आया और उसके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करनेलगा ॥१०॥ महारथी नकुल सहदेव तथा सात्यकि राक्षसोंका संहार कर जहाँ कर्ण लडरहा था, तहाँ आकर कर्णके साथ लडनेलगे और पाञ्चाल राजे द्रोणके सामने लडनेलगे, घटोत्कचके सामने लडतेहुए अलायुधको बड़ा क्रोध चढ़ा तब उसने शत्रुको पीडित करनेवाले घटोत्कचके मस्तक पर एक बड़े परिघका प्रहार किया ॥११-१२॥ उस प्रहारसे घटोत्कचको कुछ मूर्छा आगई परन्तु उसने महाबलवान् होनेसे अपने शरीरको गिरने नहीं दिया ॥१३॥ और सावधान होकर प्रज्वलित अग्निकी समान झलझलाती हुई, सौ फुन्नियों वाली, सुवर्णसे मढ़ी हुई तथा सजाई हुई गदा अलायुधके ऊपर वेगसे फैंकी ॥ १४ ॥ भयंकर कर्म करनेवाले घटोत्कचके द्वारा वेगसे फैंकी हुई और बडीभारी झनझनाहट करती हुई उस गदासे अलायुधके घोड़े, सारथि और रथका चूरा २ होगया १५ जब रथ, घोड़े, पहिये, धुरे, ध्वजा तथा टेकडियोंका चूरा २ होगया,

स्थाय राक्षसीम्॥१६॥स समास्थाय मायान्तु ववर्ष रुधिरं बहु ।
विद्युद्भिर्भ्राजितञ्चासीत्तिमिराभ्राकुलं नभः ॥ १७ ॥ ततो वज्र-
निपाताश्च साशनिस्तनयित्नवः । महांश्चटचटाशब्दस्तत्रासीच्च
महाहवे ॥ १८ ॥ तां प्रेक्ष्य महतीं मायां राक्षसो राक्षसेन तु ।
ऊर्ध्वमुत्पत्य हैडिम्बिस्तां मायां माययावधीत् ॥ १९ ॥ सोऽभि-
वीक्ष्य हतां मायां मायावी माययैव हि । अश्मवर्षं सुतुमुलं विस-
सर्ज घटोत्कचे ॥ २० ॥ अश्मवर्षं स तद् घोरं शरवर्षेण वीर्यवान्
दिक्षु विध्वंसयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २१ ॥ ततो नानाप्रह-
रणैरन्योन्यमभिवर्षताम्। आयसैः परिघैः शूलैर्गदामुसलमुद्गरैः २२
पिनाकैः करवालैश्च तोमरप्रासकम्पनैः । नाराचैर्निशितैर्भल्लैः
शरैश्चक्रैः परश्वधैः । अयोगुडैर्भिन्दिपालैर्गोशीर्षोलूखलैरपि २३

तब वह राक्षस तुरन्त ही रथमेंसे नीचे उतर पडा और राक्षसी
मायाको धारण कर आकाशमेंको उड़ा ॥ १६ ॥ और अपनी
मायाके प्रभावसे पृथ्वीके ऊपर बहुतसी धूल और रक्त बरसाने
लगा,तुरत आकाशमें बिजलियें चमकनेलगीं,तुमुल मेघमण्डलोंसे
आकाश छागया, आकाशमेंसे रणभूमिके ऊपर वज्र गिरनेलगे,
शक्तियोंके साथ बादल गरजनेलगे,बड़े२ कडाके होनेलगे १७-१८
राक्षस घटोत्कचने उस राक्षसकी महामायाको देखकर, उसके
सामने नई माया उत्पन्न की, उससे उसकी मायाका नाश कर
डाला ॥ १९ ॥ मायावी घटोत्कचने मेरी मायाको नष्ट करडाला
यह देखकर मायावी राक्षस अलायुध घटोत्कचके ऊपर पत्थरोंकी
तुमुल वृष्टि करनेलगा ॥२०॥ परन्तु पराक्रमी घटोत्कचने बाणोंकी
वृष्टि कर पत्थरोंकी भयंकर वृष्टिको नष्ट करडाला, यह कर्म
अद्भुत था ॥ २१ ॥ फिर वे दोनों एक दूसरेके ऊपर अनेकों
प्रकारके आयुधोंकी वृष्टि करनेलगे, उस महायुद्धमें दोनों राक्षस
योधा, लोहेके परिघ, त्रिशूल, गदा, मूसल, मुगदर, पिनाक,
तलवार, तोमर, प्रास, कम्पन, नाराच तीक्ष्ण भल्ल, बाण,चक्र,

उत्पाट्य च महाशाखैर्विविधैर्जगतीरुहैः । शमीपीलुकदम्बैश्च चम्पकैश्चैव भारत ॥ २४ ॥ इंगुदीबदरीभिश्च कोविदारैश्च पुष्पितैः । पलाशैररिमेदैश्च प्लक्षन्यग्रोधपिप्पलैः ॥ २५ ॥ महद्भिः संयुगे तस्मिन्नन्योऽन्यमभिजघ्नतुः । विविधैः पर्वताग्रैश्च नानाधातुभिराचितैः ॥२६॥ तेषां शब्दो महानासीद्वज्राणां भिद्यतामिव । युद्धं तत्राभवद्घोरं भैम्यलायुधयोर्नृप ॥ २७ ॥ हरीन्द्रयोर्यथा राजन् वालिसुग्रीवयोः पुरा । तौ युध्वा विविधैर्घोरैरायुधैर्विशिखैस्तदा ॥ २८ ॥ प्रगृह्य निशितौ खड्गावन्योन्यमभिपेततुः । तावन्योऽन्यमभिद्रुत्य केशेषु सुमहाबलौ । भुजाभ्यां परिगृह्णीतां महाकायौ महाबलौ ॥ २९ ॥ प्रभिन्नगात्रौ प्रस्वेदं सुस्रुवाते जनाधिप । रुधिरञ्च महाकायावति-

---

फरसे, अयोगुड, भिन्दिपाल, गोशीर्ष उलूखल, पृथ्वीमेंसे उखाड़ कर निकालेहुए शमी, पीलु, कदम्ब, चम्पा, इमली, बेर, पुष्पित, कोविदार, साल, अरिमेद, बड़, पीपल, सेमर आदि वृक्ष तथा अनेक प्रकारकी धातुओंवाले महापर्वतोंके शिखर आदि लेकर प्रहार करनेलगे२२–२६इस समय एक दूसरेसे भिड़तेहुए उनका वज्रोंके शब्दकी समान शब्द होरहा था, हे राजन्! घटोत्कच और अलायुधमें जो युद्ध होरहा था, ॥२७॥ वह युद्ध पूर्वकालमें हुए वानरराज वालि और सुग्रीवके बीचमें हुए युद्धकी समान था, इसप्रकार उन्होंने अनेक प्रकारके घोर आयुधोंसे तथा बाणोंसे आपसमें युद्ध किया, फिर वे दोनों योधा तीक्ष्ण खड्ग लेकर आपसमें लड़नेलगे ॥२८॥ खड्गयुद्ध करनेके पीछे दोनों बलशाली और बड़े२ शरीरवाले वे दोनों योधा समीपमें जा एक दूसरेकी चोटी पकड़ कर युद्ध करनेलगे, फिर परस्पर गुत्थमगुत्थी करने लगे ॥२९॥ हे राजन्! उन दोनोंके शरीर पसीनेसे भीग रहे थे उनके शरीरोंमेंसे पसीनेके झरने निकल रहे थे और अतिवृष्टिके

वृष्टाविवाम्बुदौ ॥ ३० ॥ अथाभिपत्य वेगेन समुद्भ्राम्य च राक्षसम् । बलेनाक्षिप्य हैडिम्बिश्चकर्त्तास्य शिरो महत् ॥ ३१ ॥ सोऽपहृत्य शिरस्तस्य कुण्डलाभ्यां विभूषितम् । ततः सुतुमुलं नादं ननाद सुमहाबलः ॥ ३२ ॥ हतं दृष्ट्वा महाकायं बकज्ञातिमरिन्दमम् । पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव सिंहनादान् विनेदिरे ॥ ३३ ॥ ततो भेरीसहस्राणि शंखानामयुतानि च । अवादयन् पाण्डवेयास्तस्मिन् रक्षसि पातिते ॥ ३४ ॥ अतीव सा निशा तेषां बभूव विजयावहा । विद्योतमाना विबभौ समन्तादीपमालिनी ॥ ३५ ॥ अलायुधस्य तु शिरो भैमसेनिर्महाबलः । दुर्योधनस्य प्रमुखे चिक्षेप गतचेतसः ॥ ३६ ॥ अथ दुर्योधनो दृष्ट्वा हतं वीरमलायुधम् ।

समय जैसे दो मेघ बरसते हैं, तैसे ही बड़े भारी शरीर वाले उन दोनों योधाओंके शरीरोंमेंसे रुधिर गिर रहा था ॥ ३० ॥ फिर घटोत्कचने वेगसे दौडकर उस राक्षसको पकड लिया और दोनों हाथोंसे पकड ऊपरको उसको अच्छी प्रकार घुमाया और फिर वेगसे पृथ्वीके ऊपर पटक दिया फिर महाबलशाली घटोत्कचने कुण्डलोंसे शोभायमान दीखतेहुए उसके बडेभारी मस्तकको काटकर महाभयंकर गर्जना की ३१-३२ बड़े भारी शरीर वाले बकासुरके भाई अलायुधको मरा हुआ देखकर पाञ्चाल तथा पाण्डव राजे रणके ऊपर सिंहनाद करने लगे ॥ ३३ ॥ तथा युद्धमें राक्षसका नाश हुआ देख कर पाण्डवों के योधा हर्षमें भर गए और सहस्रों भेरी तथा शंख बजाने लगे ३४ इस प्रकार दीपकोंसे प्रकाशित होती हुई वह शोभायमी रात्रि पाण्डवोंके लिये जय देने वाली हुई ॥ ३५ ॥ फिर महाबलवान् घटोत्कचने मरे हुए राक्षस अलायुधके मस्तकको हाथसे उठाया और विह्वल हुए दुर्योधनके सामने फैंक दिया ॥ ३६ ॥ और हे राजन्! अलायुधके मस्तकको देख कर अलायुधको मरा हुआ

बभूव परमोद्विग्नः सह सैन्येन भारत ॥ ३७ ॥ तेन ह्यस्य प्रतिज्ञातं भीमसेनमहं युधि । हन्तेति स्वयमागम्य स्मरता वैरमुत्तमम् ॥ ३८ ॥ ध्रुवं स तेन हन्तव्य इत्यमन्यत पार्थिवः । जीवितञ्चिरकालं हि भ्रातृणामित्यमन्यत ॥ ३९ ॥ स तं दृष्ट्वा विनिहतं भीमसेनात्मजेन वै । प्रतिज्ञां भीमसेनस्य पूर्णामेवाभ्यमन्यत ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
अलायुधवधे अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

सञ्जय उवाच । निहत्यालायुधं रक्षः प्रहृष्टात्मा घटोत्कचः । ननाद विविधान्नादान् वाहिन्याः प्रमुखे स्थितः ॥ १ ॥ तस्य तं तुमुलं शब्दं श्रुत्वा कुञ्जरकम्पनम् । तावकानां महाराज भयमासीत् सुदारुणम् ॥ २ ॥ अलायुधविषक्तन्तु भैमसेनिं महाबलम् । दृष्ट्वा कर्णो महाबाहुः पञ्चालान् समुपाद्रवत् ॥ ३ ॥ दशभिर्दश-

---

जान राजा दुर्योधन सेनासहित बड़ा ही खिन्न हुआ ३७ वह राक्षस अपने वैरका स्मरण कर दुर्योधनके पास आया था, उसने दुर्योधनके सामने प्रतिज्ञा की थी कि–"मैं भीमको मार डालूँगा ॥ ३८ ॥ इससे दुर्योधनने समझा था कि–वह भीमको अवश्य ही मार डालेगा और यह भी समझा था कि–अब मेरे भाई चिरकाल तक जीवित रहेंगे !" ॥३९॥ परन्तु जब घटोत्कचने अलायुधको मार डाला, तब दुर्योधनने समझा कि–भीमकी प्रतिज्ञा पूरी ही होगी ॥४०॥ एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त १७८

सञ्जयने कहा कि हे राजन् धृतराष्ट्र ! अलायुध राक्षसको मार कर घटोत्कच मनमें प्रसन्न हुआ और तुम्हारी सेनाके सामने आ हाथियोंको भी कँपा देने वाली महाभयंकर गर्जना करने लगा, उसको सुनकर तुम्हारी सेनाके मनमें बडा भारी भय बैठ गया १-२ महाबलवान् भीमसेनका पुत्र घटोत्कच जिस समय अलायुधके साथ लड़नेमें लग रहा था उस समय महाभुज कर्णने पाञ्चाल

भिर्बाणैर्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ । दृढैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्बिभेद नतपर्वभिः ॥ ४ ॥ ततः परमनाराचैर्युधामन्यूत्तमौजसौ । सात्यकिं च रथोदारं कम्पयामास मार्गणैः ॥ ५ ॥ तेषामप्यस्यतां संख्ये सर्वेषां सव्यदक्षिणम् । मण्डलान्येव चापानि व्यदृश्यन्त जनाधिप ॥ ६ ॥ तेषां ज्यातलनिर्घोषो रथनेमिस्वनश्च ह । मेघानामिव घर्मान्ते बभूव तुमुलो निशि ॥ ७ ॥ ज्यानेमिघोषस्तनयित्नुमान्वै धनुस्तडिन्मण्डलकेतुशृङ्गः । शरौघवर्षाकुलवृष्टिमांश्च संग्राममेघः स बभूव राजन् ॥ ८ ॥ तदद्भुतं शैल इवाप्रकम्पो वर्षं महाशैलसमानसारः । विध्वंसयामास रणे नरेन्द्र वैकर्त्तनः शत्रुगणावमर्दी ॥ ९ ॥ तोऽतुलैर्वज्रनिपातकल्पैः शितैः शरैः काञ्चनचित्र-

---

राजाओंके ऊपर धावा किया था ॥ ३ ॥ उसने धृष्टद्युम्नके और शिखण्डीके नमी हुई गाँठवाले बहुत ही लम्बे और दृढ़ दश२ बाण मारे थे ॥ ४ ॥ तथा युधामन्युको, उत्तमौजाको और महारथी सात्यकिको दूसरे बड़े२ बाणोंसे बींध कर कँपा दिया था ॥ ५ ॥ हे राजन्! तैसे ही पाण्डवपक्षके सकल योधा भी दाईं और बाईं ओरसे बाणोंका प्रहार करते थे उस समय वे बाण मण्डलाकार दीखते थे ॥ ६ ॥ वर्षाऋतुमें मेघ जैसे गर्जना करता है, तैसे ही इस समय योधाओंकी धनुषोंकी प्रत्यञ्चाओंका हाथकी तालियोंका और रथोंके पहियोंका तुमुल शब्द होरहा था ॥७॥ हे राजन्! प्रत्यञ्चा तथा रथके पहियोंके शब्दरूपी गर्जनावाला, धनुष, ध्वजा और पताकारूपी बिजलीवाला, बाणोंके समूहरूप जलकी धारा वाला, रणसंग्रामरूपी मेघ चढआया ॥८॥ हे राजन्! उससमय महापर्वतकी समान बलवान् और शत्रुओंका संहार करनेवाले सूर्यपुत्र कर्णने रणभूमिमेंसे—पर्वत जैसे डगमगाये बिना मेघको पीछेको लौटा देता है तैसे ही शत्रुओंकी बाणवृष्टिको पीछेको हटादिया था ॥ ९ ॥ महात्मा कर्ण कि-जो तुम्हारे पुत्रोंका हित

पुंखैः। शत्रून् व्यपोहन् समरे महात्मा वैकर्त्तनः पुत्रहिते रतस्ते।१०।
संच्छिन्नभिन्नध्वजिनश्च केचित्तीक्ष्णैः शरैरर्दितभिन्नदेहाः।
केचिद्विसूता विहयाश्च केचिद्वैकर्त्तनेनाशु कृता बभूवुः ॥ ११ ॥
अविन्दमानास्त्वथ शर्म संख्ये यौधिष्ठिरं ते बलमभ्यपद्यन्। तान्
प्रेक्ष्य भग्नान् विमुखीकृतांश्च घटोत्कचो रोषमतीव चक्रे ॥ १२ ॥
आस्थाय तं काञ्चनरत्नचित्रं रथोत्तमं सिंहवत्संननाद। वैकर्त्तनं
कर्णमुपेत्य चापि विव्याध वज्रप्रतिमैः पृषत्कैः॥ १३ ॥ तौ कर्णि-
नाराचशिलीमुखैश्च नालीकदण्डाशनिवत्सदन्तैः। वराहकर्णैः
सविपाठशृङ्गैः क्षुरप्रवर्षैश्च विनेदतुः खम् ॥ १४ ॥ तद्बाणवर्षावृत-
मन्तरिक्षं तिर्यग्गताभिः समरे रराज। सुवर्णपुंखज्वलितप्रभाभि-

करनेमें लगा हुआ था, उसने सुवर्णकी पूँछवाले, तीक्ष्ण किये हुए, वज्रकी समान घायल करनेवाले बाणोंसे रणमें शत्रुओंका संहार करना आरम्भ करदिया ॥ १० ॥ कर्णने बाण छोड़नेकी फुर्तीसे, बहुतोंकी ध्वजाओंको छिन्न भिन्न करडाला कितनोंहीके शरीरोंको काटडाला, कितनोंहीको रथ, सारथि और घोड़ेरहित करदिया ॥११॥ इस युद्धमें जब पाण्डवोंके योधा अपना बचाव न करसके, तब वे युधिष्ठिरकी सेनामें घुसगए, इसप्रकार अपनी सेनाको रणसे विमुख हो भागती हुई देखकर घटोत्कचको बड़ा क्रोध चढ़ा ॥ १२ ॥ तब वह सुवर्ण तथा रत्नोंसे जड़ेहुए होनेके कारण विचित्र दीखते हुए श्रेष्ठ रथमें बैठकर सिंहकी समान दहाडता हुआ सूर्यपुत्र कर्णके सामनेको बढा और उसके वज्रकी समान तीक्ष्ण बाण मारनेलगा ॥१३॥ दोनों योधाओंने कर्णि, नाराच, शिलीमुख, नालीक, दण्ड, आसन, वत्सदन्त, वराहकर्ण, विपाठ, शृंग और क्षुरप्र नामक बाणोंकी एक दूसरेके ऊपर वृष्टि कर आकाशको छादिया ॥ १४ ॥ ध्वजाओंके ऊपरको फैंकेहुए विचित्र प्रकारके पुष्पोंसे जैसे आकाश शोभा पाता है, तैसे ही

र्विचित्रपुङ्खाभिरिव प्रभाभिः ॥ १५ ॥ समाहितावप्रतिमप्रभावावन्योन्यमाजघ्नतुरुत्तमास्त्रैः। तयोर्हि वीरोत्तमयोर्न कश्चिद्ददर्श तस्मिन् समरे विशेषम् ॥ १६ ॥ अतीव तं चित्रमतुल्यरूपं बभूव युद्धं रविभीमसून्वोः। समाकुलं शस्त्रनिपातघोरं दिवीव राह्वंशुमतोः प्रमत्तम् ॥ १७ ॥ सञ्जय उवाच। घटोत्कचं यदा कर्णो न विशेषयते नृप। ततः प्रादुश्चकारोग्रमस्त्रमस्त्रविदाम्वरः १८ तेनास्त्रेणावधीत्तस्य रथं सहयसारथिम्। विरथश्चापि हैडिम्बिः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ १९ ॥ धृतराष्ट्र उवाच। तस्मिन्नन्तर्हिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे। मामकैः प्रतिपन्नं यत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय २० सञ्जय उवाच। अन्तर्हितं राक्षसं तं विदित्वा सम्प्राक्रोशन् कुरवः सर्व एव। कथं नायं राक्षसः कूटयोधी हन्यात् कर्णं समरे दृश्य-

---

सुवर्णकी पूछोंसे तेजस्वी कान्ति वाले तिरछे छूटते हुए बाणोंसे छाया हुआ आकाश शोभा पारहा था ॥ १५ ॥ दोनों योधा अनुपम प्रभाववाले थे और सावधान थे, वे एक दूसरेके ऊपर उत्तम प्रकारके अस्त्रोंका प्रहार कररहे थे, इस युद्धमें दोनों वीरों मेंसे कोई भी दूसरेसे विशेष बली प्रतीत नहीं होता था ॥ १६ ॥ स्वर्गमें राहु और सूर्यके बीचमें जैसे शस्त्रोंके प्रहारसे भयङ्कर और प्रमत्त युद्ध होता है, तैसे ही सूर्यके और भीमके पुत्रमें अत्यन्त विचित्र और भयङ्कर युद्ध होनेलगा ॥ १७ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजन्! जब कर्ण घटोत्कचके साथ युद्ध करनेमें उससे अधिक नहीं (प्रकाशित हुआ) बढ़ा, तब अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ कर्णने उग्र अस्त्र प्रकट किया ॥ १८ ॥ और उससे उसके रथ, सारथी और घोड़ोंका नाश करडाला, रथरहित होते ही घटोत्कच अदृश्य होगया ॥ १९ ॥ धृतराष्ट्रने बूझा, कि-हे सञ्जय! मायासे युद्ध करनेवाले घटोत्कचके उस ही समय अदृश्य होजाने पर मेरे योधाओंने क्या किया? यह मुझसे कह २०

प्रानः ॥ २१ ॥ ततः कर्णो लघुचित्रास्त्रयोधी सर्वा दिशः व्यावृणोद्बाणजालैः । न वै किञ्चित्प्रापतत्तत्र भूतं तमोभूते सायकैरन्तरिक्षे ॥ २२ ॥ नैवाददानो न च सन्दधानो न चेषुधीः स्पृश्यमानः कराग्रैः । अदृश्यद्वै लाघवात् सूतपुत्रः सर्वैर्बाणैश्छादयानोऽन्तरिक्षम् ॥२३॥ ततो मायां विहितामन्तरिक्षे घोरां भीमां राक्षसीं दारुणेन । तां पश्यामो लोहिताभ्रप्रकाशां देदीप्यन्तीमग्निशिखामिवोग्राम् ॥ २४ ॥ ततस्ततो विद्युतः प्रादुरासन्नुल्काश्चापि ज्वलिताः कौरवेन्द्र । घोषश्चास्याः प्रादुरासीत् सुघोरः सहस्रशो नदतां दुन्दुभीनाम् ॥ २५ ॥ ततः शराः प्रापतन् रुक्मपुंखाः

सञ्जयने कहा, कि–हे धृतराष्ट्र ! राक्षसराजको अदृश्य हुआ जान कर, सब कौरव कोलाहल कर बोल उठे, कि–"मायासे युद्ध करनेवाला यह राक्षस युद्धमें प्रत्यक्ष दर्शन देकर कर्णको मार डालेगा" ॥ २१ ॥ इसप्रकार कौरव दुंद मचारहे थे, इतनेमें ही फुर्तीले हाथवाले और विचित्र प्रकारसे अस्त्रयुद्ध करना जाननेवाले कर्णने बाण छोड़कर सब दिशाओंको ढकदिया, उन बाणोंसे आकाशमें घोर अंधकार होगया, कर्णके बाण मारने पर भी उसके सामने कोई प्राणी नहीं गिरा ॥२२॥ जब कर्ण फुर्तीसे सम्पूर्ण आकाशको बाणोंसे छारहा था उससमय वह कब बाण लेता था, कब बाणको चढाता था और कब हाथके अग्रभागसे भाथेका स्पर्श करता था, यह कुछ नहीं दीखता था ॥ २३ ॥ (थोड़े ही समयमें) आकाशमें घटोत्कचकी प्रकट कीहुई दारुण और भयंकर मायाको हमने देखा, वह माया लाल रङ्गके बादलों की समान थी और अग्निकी उग्र शिखाकी समान झलझलाती हुई दीखती थी ॥ २४ ॥ हे कौरवराज ! उस मायाके प्रकट होनेके पीछे आकाशमें बिजलियें चमकनेलगीं, जलती हुई उल्काएँ गिरनेलगीं, सहस्रों दुन्दुभियोंकी अतितुमुल ध्वनि होनेलगी ॥२५॥ तदनन्तर

शक्त्यृष्टिप्रासमुसलान्यायुधानि । परश्वधास्तैलधौताश्च खड्गाः प्रदीप्ताग्राः पट्टिशास्तोमराश्च ॥ २६ ॥ मयूखिनः परिघा लोहबद्धा गदाश्चित्रा शितधाराश्च शूलाः । गुर्व्यो गदा हेमपट्टावनद्धाः शतघ्न्यश्च प्रादुरासन् समन्तात् ॥ २७ ॥ महाशिलाश्चापतंस्तत्र तत्र सहस्रशः साशनयश्च वज्राः । चक्राणि चानेकशतक्षुराणि प्रादुर्बभूवुर्ज्वलनप्रभाणि ॥ २८ ॥ तां शक्तिपाषाणपरश्वधानां प्रासर्ष्टिवज्राशनिमुद्गराणाम् । वृष्टिं विशालां ज्वलितां पतन्तीं कर्णः शरौघैर्न शशाक हन्तुम् ॥ २९ ॥ शराहतानां पततां हयानां वज्राहतानाञ्च तथा गजानाम् । शस्त्राहतानाञ्च महारथानां महान्निनादः पततां बभूव ॥३०॥ सुभीमनानाविधशस्त्रपातैर्घटोत्कचेनाभिहतं समन्तात् । दौर्योधनं तद्बलमार्तरूपमावर्तमानं ददृशे भ्रम-

---

सुवर्णकी पूँछवाले बाण आकाशमेंसे गिरनेलगे, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, मूसल, फरसे, तेलसे घिसी हुई तलवारें, चमकती हुई धारवाले तोमर, पट्टिश, चमकतेहुए परिघ, लोहेसे जड़ी हुई विचित्र गदायें, तीखी धारवाले शूल, सुवर्णकी पत्तरोंसे जड़ी हुई बड़ी२ गदायें, और शतघ्नियें—इसप्रकार नानाप्रकारके अस्त्र चारों ओरसे पड़नेलगे ॥ २६–२७ ॥ और बड़ी२ सहस्रों शिलायें, शक्तियें, वज्र,चक्र तथा अग्निकी समान तेजस्वी सहस्रों क्षुर आकाशमेंसे गिरनेलगे ॥ २८ ॥ शक्ति, पाषाण, परशु, प्रास, तलवार और वज्र तथा मुद्गरोंसे प्रदीप्त होती हुई बड़ी भारी वृष्टि होनेलगी, कर्णने बाणोंके प्रहारसे उन सबोंको रोकनेका प्रयत्न किया, परन्तु वह उनको रोक न सका ॥२९॥ बाणोंके प्रहारोंसे पृथ्वी पर गिरते हुए घोड़े, वज्रकी मारसे नीचे गिरते हुए हाथी और शिलाओंके प्रहारसे नीचे गिरतेहुए महारथियोंका बडाभारी संहार रणभूमिमें होनेलगा ॥३०॥ घटोत्कच नानाप्रकारके महाभयङ्कर अस्त्रोंसे दुर्योधनकी सेनाको कूटनेलगा, तब दुर्योधनकी सेनाके

चात् ॥ ३१ ॥ हाहाकृतं सम्परिवर्त्तमानं संलीयमानञ्च विषण्णरूपम् । ते त्वार्यभावात् पुरुषप्रवीराः पराङ्मुखा नो वभूवुस्तदानीम् ॥ ३२ ॥ तां राक्षसीं घोरतरां सुभीमां वृष्टिं महाशस्त्रमयीं पतन्तीम् । दृष्ट्वा बलौघांश्च निपात्यमानान् महद्भय तत्र पुत्रान् विवेश ॥३३॥ शिवाश्च वैश्वानरदीप्तजिह्वाः सुभीमनादाः शतशो नदन्ती । रक्षोगणान्नर्दतश्चापि वीक्ष्य नरेन्द्र योधा व्यथिता वभूवुः ॥ ३४ ॥ ते दीप्तजिह्वाननतीक्ष्णदंष्ट्रा विभीषणाः शैलनिकाशकायाः । नभोगताः शक्तिविषक्तहस्ता मेघा व्यमुञ्चन्निव वृष्टिमुग्राम् ॥ ३५ ॥ तैराहतास्ते शरशक्तिशूलैर्गदाभिरुग्रैः परिघैश्च दीप्तैः । वज्रैः पिनाकैरशनिप्रहारैशतघ्निचक्रैः मथिताश्च पेतुः ॥३६॥ शूला भुशुण्ड्योऽश्मगुडाः शतघ्न्यः स्थूणाश्च कार्ष्णा-

---

कितने ही योधा आतुर हो इधर उधर भागनेलगे, हाहाकार करने लगे चारों ओर चक्कर काटनेलगे तथा वहुत ही खिन्न होगए, परन्तु इस संकटके समय भी आर्यपुरुषोंने पीठ नहीं दिखाई थी ॥ ३१–३२ ॥ इस समय राक्षसने रणमें वड़े२ अस्त्रोंकी वृष्टि करना आरंभ कर दी थी, उससे तुम्हारी सेनाका संहार होने लगा, यह देख कर तुम्हारे योधा अत्यन्त भयभीत होगए ॥३३॥ इस समय लपलपाती हुई अग्निकी समान जीभ वाली सैंकडों गीदड़ियें भयंकर शब्द कर रहीं थीं और राक्षसोंके झुण्ड गर्जना कर रहे थे, हे राजेन्द्र ! उनको सुनकर योधाओंके मन उदास होगए ॥ ३४ ॥ प्रज्वलित जिह्वावाले अग्निकी समान प्रचण्ड डाढ वाले, भयंकर आकृति वाले, पर्वताकार तथा हाथोंमें शक्ति धारण करने वाले आकाशचारी भयंकर राक्षस मेघोंकी समान शस्त्रोंकी भयंकर वृष्टि करने लगे ॥ ३५ ॥ उन वाण, शक्ति, शूल, गदा, तीक्ष्ण परिघ, चमकते हुए वज्र, वाण, शक्ति, शतघ्नी और चक्रोंके प्रहारसे कौरव योधा मर कर रणभूमिमें गिरने लगे ॥ ३६ ॥

यसपट्टनद्धाः । तेऽवाकिरंस्तत्र पुत्रस्य सेनां ततो रौद्रं कश्मलं प्रादुरासीत् ॥ ३७ ॥ विकीर्णान्त्रा निहतोत्तमाङ्गैः सम्भग्नाङ्गाः शिश्यिरे तत्र शूराः। छिन्ना हयाः कुञ्जराश्चाविभग्नाः सञ्चूर्णिताश्चैव रथाः शिलाभिः ॥ ३८ ॥ एवं महच्छस्त्रवर्षं सृजन्तस्ते यातुधाना भुवि घोररूपाः । माया सृष्टास्तत्र घटोत्कचेन नामुञ्चन् वै याचमानं न भीतम् ॥३९॥ तस्मिन् घोरे कुरुवीरावमर्दे कालोत्सृष्टे क्षत्रियाणामभावे । ते वै भग्नाः सहसा व्यद्रवन्त प्राक्रोशन्तः कौरवाः सर्व एव ॥ ४० ॥ पलायध्वं कुरवो नैतदस्ति सेन्द्रा देवा घ्नन्ति नः पाण्डवार्थे । तथा तेषां मज्जतां भारतानां तस्मिन् द्वीपः सूतपुत्रो बभूव ॥ ४१ ॥ तस्मिन् संक्रन्दे तुमुले वर्त्तमाने

राक्षस तुम्हारे पुत्रकी सेनाके ऊपर त्रिशूल, भुशुण्डी, अश्मगुड़ काले लोहेसे मढी हुई बड़ी २ शतघ्नियोंका प्रहार करते थे, इससे तुम्हारी सेना उदास और किंकर्तव्यविमूढसी होगई ॥ ३७ ॥ शूरोंके शरीरोंमेंसे आँतें बाहरको निकल पड़ी थीं, खोपड़ियें फूट गई थीं, शरीर उधड़ गए थे और वे मर कर रणभूमिमें लुढ़क रहे थे, कटे हुए हाथियोंकी और घोड़ोंकी लोथें स्थान २ पर दीखती थीं और शिलाओंकी मारसे रथोंका चूरा २ होगया था ॥ ३८ ॥ इस प्रकार भयंकर राक्षसोंने पृथ्वीमें शस्त्रोंकी बड़ी भारी वृष्टि कर सेनाका संहार करडाला था, घटोत्कचकी रची हुई माया इस समय किसी प्रार्थना करने वाले और भयभीतको भी नहीं छोड़ती थी ॥ ३९ ॥ इस प्रकार विपरीत समयके कारण कौरव वीरोंका संहार होने लगा, क्षत्रियोंकी हार होने लगी, तब सब कौरवयोधा भागते हुए सेनासे कहने लगे कि—दौड़ो ! भागो ! यह सेना नहीं है, किन्तु इन्द्र आदि देवता पाण्डवोंका पक्ष ले हमारा नाश कररहे हैं !" इसप्रकार चिल्लाते हुए योधा रणमेंसे भागनेलगे, इस समय भयंकर संकटमें डूबे हुए कौरव

सैन्ये भग्ने लीयमाने कुरूणाम् । अनीकानां प्रविभागे प्रकाशे न ज्ञायन्ते कुरवो नेतरे वै ॥ ४२ ॥ निर्मर्यादे विद्रवे घोररूपे सर्वा दिशः प्रेक्षमाणाः स्म शून्याः । तां शस्त्रवृष्टिमुरसा गाहमानं कर्णञ्चैकं तत्र राजन्नपश्यम् ॥ ४३ ॥ ततो वाणैरावृणोदन्तरिक्षं दिव्यां मायां योधयन्राक्षसस्य । ह्रीमान् कुर्वन् दुष्करञ्चार्यकर्म नैवामुह्यत् संयुगे सूतपुत्रः ॥ ४४ ॥ ततो भीताः समुदैक्षन्त कर्णं राजन् सर्वे सैन्धवा वाह्लिकाश्च । असंमोहं पूजयन्तोऽस्य संख्ये सम्पश्यन्तो वै विजयं राक्षसस्य ॥ ४५ ॥ तेनोत्सृष्टा चक्रयुक्ता शतघ्नी समं सर्वांश्चतुरोऽश्वान् जघान । ते जानुभिर्जगतीमन्व-

---

राजाओंकी, एक कर्ण ही द्वीप वनकर रक्षा करता था।४०—४१। इसप्रकार संकुल युद्ध होनेसे कौरवसेना पिटनेके कारण भागने लगी, सेनाके तिरीं विरीं होनेके कारण कौरव और पाण्डव एक दूसरेको पहिचान नहीं सकते थे ॥४२॥ सेनाने भी भयंकर रीतिसे संहार होनेके कारण मर्यादा छोड दी थी, उस समय आँख उठा कर देखने पर सव दिशाएँ शून्याकार प्रतीत होती थीं, उससमय हे राजन्! अकेला सूतपुत्र कर्ण ही शस्त्रोंकी वृष्टिको अपने वक्षःस्थल पर झेलता हुआ रणमें डटा हमें दिखाई देता था ॥ ४३ ॥ फिर अद्भुत कर्णने युद्धमें होती हुई वाणोंकी वृष्टिसे न घवडा कर श्रेष्ठ पुरुषोंकी समान काम किया, कि—राक्षसकी दिव्य मायाके सामने युद्ध करके वाणोंकी वृष्टिसे आकाशको छादिया ॥४४॥ इस समय हे राजन्! सिन्धुदेशी तथा वाल्हीकदेशी राजे रणमें राक्षसकी विजय देखकर कर्णके धीरजकी प्रशंसा करते थे, परन्तु भयभीन होकर कर्णकी ओर ही देखरहे थे ॥ ४५ ॥ इतनेमें ही राक्षसने एक चक्रवाली शतघ्नी कर्णके चारों घोड़ोंके ऊपर फेंकी, शक्तिके प्रहारसे कर्णके घोड़ोंकी आँखें, दाँत और जीभ वाहरको निकल पड़ी और वे प्राणरहित हो भूमिमें घुटने टेककर गिर

पश्यन् गतासवो निर्दशनाक्षिजिह्वाः ॥ ४६ ॥ ततो हताश्वादवरुह्य यानादन्तर्मनाः कुरुषु प्राद्रवत्सु । दिव्ये चास्त्रे मायया वध्यमाने नैवामुह्यच्चिन्तयन् प्राप्तकालम् ॥ ४७ ॥ ततोऽब्रुवन् कुरवः सर्व एव कर्णं दृष्ट्वा घोररूपाञ्च मायाम् । शक्त्या रक्षो जहि कर्णाद्य तूर्णं नश्यन्त्येते कुरवो धार्त्तराष्ट्राः ४८ करिष्यतः किञ्च नो भीमपार्थौ तपन्तमेनं जहि पापं निशीथे । यो नः संग्रामाद्घोररूपाद्विमुञ्चेत् स नः पार्थान् सबलान् योधयेत ॥ ३९ ॥ तस्मादेनं राक्षसं घोररूपं शक्त्या जहि त्वं दत्तया वासवेन । मा कौरवाः सर्व एवेन्द्रकल्पा रात्रियुद्धे कर्ण नेशुः सयोधाः ॥ ५० ॥ स वध्यमानो रक्षसा वै निशीथे दृष्ट्वा राजंस्त्रास्यमानं बलञ्च । महत् श्रुत्वा निनदं कौरवाणां मतिं दध्रे

गये ॥४६॥ रथके घोड़े मरे कि–कर्ण मनमें खिन्न होकर रथमेंसे नीचे उतर पड़ा और कौरव भागनेलगे, तो भी कर्ण घबड़ाया नहीं,परन्तु समयोचित विचार करनेलगा,कि–(अब क्या करना चाहिये) ॥४७॥ तदनन्तर घटोत्कचकी भयंकर मायाको देखकर सब कौरव कर्णसे कहनेलगे, कि–' हे कर्ण ! (इन्द्रकी दी हुई) अपनी शक्तिसे अब तू घटोत्कचका नाश कर,इन सब कौरवोंका राक्षसकी मायासे नाश हुआ जाता है ॥४८। भीम और अर्जुन हमारा क्या करेंगे ? तू इस आधी रातके समय प्रबल हुए पापी राक्षसको मारडाल, हममेंसे जो पुरुष इस घोर संग्राममेंसे हमको बचावेगा,उस पुरुषके साथ ही हम सेनासहित पाण्डवोंसे युद्ध कर सकेंगे ॥ ४९ ॥ अतः आज तू मध्यरात्रिके समय–इन्द्रने तुझै जो शक्ति दी है–उससे इस भयंकर राक्षसको मारडाल,हे कर्ण ! आजके रात्रियुद्धमें इन्द्रकी समान बलवान् सब कौरव योधाओंसहित नष्ट होनेसे बचजाँय, ऐसा उपाय कर" ५० समय आधी रात्रिका था, राक्षस कर्णके ऊपर प्रहार कररहा था,सेना भी त्रस्त होरही

शक्तिमोक्षाय कर्णः ॥ ५१ ॥ स वै क्रुद्धः सिंह इवात्यमर्षी नामर्षयन् प्रतिघातं रणेऽसौ । शक्तिं श्रेष्ठां वैजन्तीमसह्यां समाददे तस्य वधं चिकीर्षन् ॥ ५२ ॥ यासौ राजन्निहिता वर्षपूगान् वधायाजौ सत्कृता पाण्डवस्य । यां वै प्रादात् सूतपुत्राय शक्रः शक्तिं श्रेष्ठां कुण्डलाभ्यां निनाय ॥५३॥ तां वै शक्तिं लेलिहानां प्रदीप्तां पाशैर्युक्तामन्तकस्येव जिह्वाम् । मृत्योः स्वसारं ज्वलितामिवोल्कां वैकर्त्तनः प्राहिणोद्राक्षसाय ॥ ५४ ॥ तामुत्तमां परकायापहन्त्रीं दृष्ट्वा शक्तिं बाहुसंस्थां ज्वलन्तीम् । भीतं रक्षो विप्रदुद्राव राजन् कृत्वात्मानं विन्ध्यतुल्यप्रमाणम् ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा शक्तिं कर्णबाह्वन्तरस्थां नेदुर्भूतान्यन्तरिक्षे नरेन्द्र । ववुर्वातास्तुमुलाश्चापि राजन्

थी और कौरव बड़े वेगसे रोरहे थे-यह देखकर कर्णने राक्षसके शक्ति मारनेका विचार किया ॥ ५१ ॥ वह सिंहकी समान बड़े भारी क्रोधमें भरगया और इस युद्धमें शत्रुकी मारामारको न सहसका, उस ही समय उसने शत्रुका नाश करनेके लिये वैजयन्ती नामकी असह्य शक्ति हाथमें ली ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! यह शक्ति कर्णने रणमें अर्जुनको मारनेके लिये बहुत वर्षोंसे सन्मानपूर्वक अपने पास रख छोड़ी थी, और इन्द्रने दो कुण्डल कर्णसे लेकर उनके बदलेमें उसको यह शक्ति दी थी ॥ ५३ ॥ मृत्युकी सगी बहिनकी समान, प्रज्वलित उल्काकी समान, पाशोंसे घिरी हुई, कालकी जिह्वाकी समान वह शक्ति कर्णने घटोत्कचके मारी॥५४॥ हे महाराज ! दूसरेके शरीरको चीर डालनेवाली, प्रज्वलित अग्निकी समान इस इन्द्रकी दी हुई उत्तम शक्तिको कर्णने जिस समय छोड़नेके लिये हाथमें लिया, उस समय घटोत्कच भयभीत हो विंध्याचलकी समान शरीर बनाकर रणमेंसे भागा ॥ ५५ ॥ अधिक क्या ? उस शक्तिको कर्णके हाथमें स्थित देखकर अन्तरिक्षमें खड़ेहुए प्राणी भी चीत्कार करउठे, प्रचण्ड पवन साँय२ करता

सुनिर्घाता चाशनिर्गां जगाम ॥ ५६ ॥ सा तां मायां भस्म कृत्वा ज्वलंती भित्वा गाढं हृदयं राक्षसस्य । ऊर्द्धं ययौ दीप्यमाना निशायां नक्षत्राणामन्तराण्याविवेश ॥५७॥ स निर्भिन्नो विविधैः शस्त्रपूगैर्दिव्यैर्नागैराक्षसैर्मानुषैश्च। नदन्नादान् विविधान् भैरवांश्च प्राणानिष्टांस्त्याजिनः शक्रशक्त्या ॥ ५८ ॥ इदञ्चान्यच्चित्रमाश्चर्यरूपं चकारासौ कर्म शत्रुक्षयाय । तस्मिन् काले शक्तिनिर्भिन्नमर्मा बभौ राजन् शैलमेघप्रकाशः ॥५९ ॥ ततोन्तरिक्षादपद्गतासुः स राक्षसेन्द्रो भुवि भिन्नदेहः । अवाक्शिरा स्तब्धगात्रो विजिह्वो घटोत्कचो महदास्थाय रूपम् ॥ ६० ॥ स तद्रूपं भैरवं भीमकर्मा भीमं कृत्वा भैमसेनिः पपात । हतोऽप्येवं तव सैन्यैकदेशमपोथयत् स्वेन देहेन राजन् ॥ ६१ ॥ पतद्रक्षः स्वेन

हुआ चलनेलगा और पृथ्वीको भेदकर वज्र भीतर घुसगया ५६ इस समय कर्णकी मारी हुई प्रज्वलित अग्निकी समान वह शक्ति घटोत्कचकी सारी मायाको भस्म कर और उसके हृदयको अच्छी प्रकार चीर कर प्रज्वलित होती हुई ऊपरको उड़ी और नक्षत्र-मण्डलमें समागई ॥ ५७ ॥ और राक्षस घटोत्कचने अनेकों प्रकारके दिव्य अस्त्रोंके, हाथियोंके, मनुष्योंके तथा राक्षसोंके सामने लड़कर विविध प्रकारकी भयंकर गर्जनायें करते२ इन्द्रकी शक्तिके प्रहारसे अन्तमें अपने प्रिय प्राणोंको छोड़ दिया ॥५८॥ शक्तिके प्रहारसे घटोत्कचके मर्मस्थल भिदगए थे, तब भी उसने शत्रुओंका नाश करनेके लिये अतिआश्चर्यजनक मूर्ति धारण की थी, हे राजन ! वह पर्वतकी समान और मेघकी समान बन गया था ॥ ५९ ॥ जिसका शरीर स्तब्ध होगया था, जीभ टूट पड़ी थी और जिसका शरीर चिरगया था ऐसा राक्षसराज घटोत्कच मोटा और महाभयंकर शरीर बनाकर आकाशमेंसे पृथ्वीके ऊपर गिरा और गिरते२ उसने अपने शरीरसे सेनाके एक भाग

कायेन तूर्णमतिप्रमाणेन विवर्द्धता च । प्रियं कुर्वन् पाण्डवानां
गताऽसुरक्षौहिणीं तव तूर्णं जघान ॥ ६२ ॥ ततो मिश्राः प्राण-
दन् सिंहनादैः शंखा भेर्यो मुरजाश्चानकाश्च। दग्धां मायां निहतं
राक्षसञ्च दृष्ट्वा हृष्टा प्राणदन् कौरवेयाः ॥ ६३ ॥ ततः कर्णः
कुरुभिः पूज्यमानो यथा शक्रो वृत्रवधे मरुद्भिः । अन्वारूढस्तत्र
पुत्रस्य यानं हृष्टश्चापि प्राविशत् तत् स्वसैन्यम् ॥ ६४ ॥
इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटो-
त्कचवधे एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

सञ्जय उवाच । हैडिम्बिं निहतं दृष्ट्वा विकीर्णमिव पर्वतम् ।
बभूवुः पाण्डवाः सर्वे शोकबाष्पाकुलेक्षणाः ॥ १ ॥ वासुदेवस्तु
हर्षेण महताभिपरिप्लुतः। ननाद सिंहनादं वै पर्यष्वजत फाल्गुनं२

को दवाकर उसका कचरा करडाला ॥ ६०-६१ ॥ उस राक्षसने मरते समय अपना शरीर बहुत बड़ा करलिया था, और पांडवोंका हित करनेके लिये तुम्हारी अक्षौहिणी सेनाके ऊपर गिरकर उसका एकसाथ नाश करडाला था॥६२॥कौरव राक्षसी मायाका नाश हुआ देखकर तथा राक्षसको मराहुआ देखकर हर्षका कोलाहल करने लगे और योधाओंके सिंहनादोंके साथ भेरी, शङ्ख, मुरज तथा नगाड़े बजाने लगे ६३ और जैसे वृत्रासुरको मारडालनेके बाद देवताओंने इन्द्रकी पूजा की थी, तैसे ही कौरवोंने घटोत्कचके मारे जाने पर कर्णकी पूजा की और कर्ण तुम्हारे पुत्रके रथमें बैठकर प्रसन्न होताहुआ अपनी सेनामें जापहुँचा ॥ ६४ ॥ एकसौ उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८९ ॥

सञ्जयने कहा, कि--हे राजा धृतराष्ट्र ! जैसे पहाड़ एकसाथ खिसक पड़ता है, तैसे ही हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कचको मरा हुआ देखकर सब पाण्डवोंकी आँखोंमें शोकके आँसू भर आये ॥ १ ॥ केवल श्रीकृष्णको ही बड़ी प्रसन्नता

स विनद्य महानादमभीषून् सन्नियम्य च । ननर्त्त हर्षसम्वीतो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥ ३ ॥ ततः परिष्वज्य पुनः पार्थमास्फोट्य चासकृत् । रथोपस्थगतो धीमान् प्राणदत् पुनरच्युतः ॥ ४ ॥ प्रहृष्टमनसं ज्ञात्वा वासुदेवं महाबलः । अर्जुनोऽथाब्रवीद्राजन्नातिहृष्टमना इव ॥ ५ ॥ इतिहर्षोऽयमस्थाने तवाद्य मधुसूदन । शोकस्थाने तु संप्राप्ते हैडिम्बस्य वधेन तु ॥ ६ ॥ विमुखानीह सैन्यानि हतं दृष्ट्वा घटोत्कचम् । वयञ्च भृशमुद्विग्ना हैडिम्बेस्तु निपातनात् ॥ ७ ॥ नैतत् कारणमल्पं हि भविष्यति जनार्दन । तदद्य शंस मे पृष्टः सत्यं सत्यवताम्वर ॥ ८ ॥ यद्येतन्न रहस्यंते वक्तुमर्हस्यरिन्दम । धैर्यस्य वैकृतं ब्रूहि त्वमद्य मधुसूदन ॥ ९ ॥

हुई और उन्होंने सिंहकी समान गरजकर अर्जुनको हृदयसे लगाया ॥ २ ॥ फिर बड़ी जोरसे गर्जना की और घोड़ोंकी रासोंको ठीक २ पकड़ेहुए, जैसे वायुसे वृक्ष हिलने लगता है तैसे ही हर्षसे झूमने और नाचनेलगे ॥३॥ और रथकी बैठक पर बैठे २ बुद्धिमान् श्रीकृष्णने अर्जुनको फिर हृदयसे लगाया, उन्होंने वारम्वार अर्जुनकी पीठको थपकोडा और वारम्वार गर्जना करनेलगे ॥४॥ हे राजन् ! महाबली अर्जुन ! श्रीकृष्णको मनमें प्रसन्न हुआ जानकर अपने मनमें जराएक खिन्न हुआ और उनसे कहनेलगा, कि–॥५॥ हे मधुसूदन ! घटोत्कचके मारेजानेसे इस समय शोक होना चाहिये, ऐसे समय आप जो प्रसन्न होरहे हैं, यह अनुचित है ॥६॥ घटोत्कचको मारागया देखकर हमारे योधा रणमेंसे भागे जारहे हैं तथा घटोत्कचके मारे जानेसे हम भी बहुत ही घबडा गये हैं ॥७॥ तथापि हे सत्यवादियोंमें श्रेष्ठ कृष्ण ! आप प्रसन्न होरहे हैं, इसका साधारण कारण नहीं होसकता, इसलिये इसका कारण मुझे अभी बताइये ॥ ८ ॥ हे शत्रुदमन श्रीकृष्ण ! वह यदि गोपनीय न हो तो मुझे आज ही बतलाइये, क्योंकि–हमारे

समुद्रस्येव संशोषं मेरोरिव विसर्पणम् । तथैतदद्य मन्येहं तव कर्म जनार्दन ॥ १० ॥ वासुदेव उवाच । अतिहर्षमिमं प्राप्तं शृणु मे त्वं धनञ्जय । अतीव मनसः सद्यः प्रसादकरमुत्तमम् ॥ ११ ॥ शक्तिं घटोत्कचेनेमां व्यंसयित्वा महाद्युते । कर्णं निहतमेवाजौ विद्धि सद्यो धनञ्जय ॥१२॥ शक्तिहस्तं पुनः कर्णं न लोकेऽस्ति पुमानिह । य एनमभितस्तिष्ठेत् कार्त्तिकेयमिवाहवे ॥ १३ ॥ दिष्ट्यापनीतकवचो दिष्ट्यापहृतकुण्डलः । दिष्ट्या विध्वंसिता शक्तिरमोघास्य घटोत्कचे ॥ १४ ॥ यदि हि स्यात् सकवचस्तथैव स्यात् सकुण्डलः । सामरानपि लोकांस्त्रीनेकः कर्णो जयेद्रणे ॥ १५ ॥ वासवो वा कुबेरो वा वरुणो वा जलेश्वरः । यमो वा नोत्सहेत्

पक्षका क्षय होनेसे आप प्रसन्न होरहे हैं, यह देखकर हमारा तो धीरज छूटा जाता है ॥९॥ हे जनार्दन ! आपका आजका वृत्तान्त मुझे समुद्रके सूखनेकी समान और मेरुपर्वतके डगमगानेकी समान मालूम होता है ॥ १० ॥ श्रीकृष्णने कहा, कि–हे धनञ्जय ! मुझे बडा ही हर्ष होता है और मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ है । इसके कारणको तू सुन (और अपने मनकी चिन्ताको त्यागकर प्रसन्न हो) ॥ ११ ॥ महाकान्तिवाले कर्णको इन्द्रने जो शक्ति दी थी, उसको निष्फल करके घटोत्कचने कर्णकोही मारडाला, ऐसा समझ जैसे रणमें स्वामिकार्त्तिकेयके सामने कोई भी पुरुष खडा नहीं होसकता था, तैसे ही कर्ण भी जबतक उस शक्तिको हाथमें लेकर रणमें खडा रहता तबतक जगत्में कोई पुरुष भी उसके सामने खडा नहीं होसकता था १२।१३ इन्द्रने उसका कवच और कुण्डल हरलिये थे, वह हमारे लिये बडा ही अच्छा किया और घटोत्कचने उसकी शक्तिको निकम्मी करडाला, यह भी अच्छा ही हुआ है १४ यदि कर्ण कवच और कुण्डलोंके साथ लडनेको आता तो वह अकेला ही देवताओंसहित त्रिलोकीको जीतलेता ॥ १५ ॥ इन्द्र,

कर्णं रणे प्रतिसमासितुम् ॥ १६ ॥ गाण्डीवमुद्यम्य भवांश्चक्रञ्चाहं सुदर्शनम् । न शक्तौ स्वो रणे जेतुं तथा युक्तं नरर्षभम्१७ त्वद्धितार्थन्तु शक्रेण मायापहृतकुण्डलः । विहीनकवचश्चायं कृतः परपुरञ्जयः ॥ १८ ॥ उत्कृत्य कवचं यस्मात् कुण्डले विमले च ते । प्रादाच्छक्राय कर्णो वै तस्माद्वैकर्त्तनः स्मृतः ॥ १९॥ आशीविष इव क्रुद्धो जृम्भितो मन्त्रतेजसा । तथाद्य भाति कर्णो मे शान्तज्वाल इवानलः ॥ २० ॥ यदा प्रभृति कर्णाय शक्तिर्दत्ता महात्मना । वासवेन महाबाहो क्षिप्ता यासौ घटोत्कचे ॥ २१ ॥ कुण्डलाभ्यां निमायाथ दिव्येन कवचेन च । तां प्राप्यामन्यत वृषः सततं त्वां हतं रणे॥२२॥ एवङ्गतोऽपि शक्योऽयं हन्तुं नान्येन

कुवेर, जलोंका स्वामी वरुण अथवा स्वयं यमराज भी रणमें कर्णके सामने खड़े नहीं रहसकते थे ॥१६॥ कवच,कुण्डल और शक्तिके साथ कर्ण रणमें आकर खडा होजाता तो तू गाण्डीव धनुषको तानकर और मैं सुदर्शन चक्रको धारण करके कर्णको रणमें नहीं जीत सकते थे ॥ १७ ॥ इसलिये इन्द्रने तेरा हित करनेको माया रचकर, शत्रु पर विजय पानेवाले कर्णसे कवच और कुण्डल लेलिये ॥ १८ ॥ कर्णने जन्मकालसे ही अपने शरीरमें लगेहुए कवच और निर्मल कुण्डलोंको उतार कर इन्द्रको देदिया था इस लिये ही वह वैकर्त्तन कहलाता है ॥१९॥ जैसे कोपमें भरा हुआ विषधर सर्प मन्त्रके प्रभावसे निस्तेज होजाता है, अथवा लपट शान्त होजाने पर अग्नि जैसा दीखने लगता है तैसे ही आज कर्ण दीखता है ॥२०॥ हे महाबाहु अर्जुन ! इन्द्रने कर्णको उसके दिव्य कवच और कुण्डलोंके बदलेमें जबसे शक्ति दी थी और जो शक्ति इस समय उसने घटोत्कचके मारी है, उस शक्तिको पाकर कर्ण सदा ही तुझे रणमें मराहुआ मानता था ।२१–२२। और हे निर्दोष पुरुषव्याघ्र ! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ

केनचित् । ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र शपे सत्येन चानघ ॥ २३ ॥ ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः । रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात् कर्णो वृषः स्मृतः ॥ २४ ॥ युद्धशौण्डो महाबाहुर्नित्योद्यतशरासनः । केसरीव वने मर्दन्मातङ्ग इव यूथपान् ॥ २५ ॥ विमदान् रथशार्दूलान् कुरुते रणमूर्द्धनि । मध्यङ्गत इवादित्यो यो न शक्यो निरीक्षितुम् ॥ २६ ॥ त्वदीयैः पुरुषव्याघ्र योधमुख्यैर्महात्मभिः । शरजालसहस्रांशुः शरदीव दिवाकरः ॥ २७ ॥ तपान्ते जलदो यद्वत् शरधाराः क्षरन्मुहुः । दिव्यास्त्रजलदः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २८ ॥ त्रिदशैरपि चाश्यद्भिः शरवर्षं सम-

कि-आज कर्णके पास शक्ति नहीं रही है तो भी तेरे सिवाय दूसरा कोई भी उसको नहीं मारसकता ॥२३॥ कर्ण ब्राह्मणोंका भक्त, सत्यवादी, तपस्वी, व्रतधारी तथा शत्रुओंके ऊपर भी दया करनेवाला है, इसलिये वह वृष (धर्म) कहलाता है ॥ २४ ॥ यह महाबाहु युद्ध करनेमें चतुर है, और इसका धनुष नित्य तयार ही रहता है, जैसे वनमें केसरी सिंह दहाडता है तैसे ही यह भी रणमें गरजा करता है और जैसे मदमत्त हाथी यूथपतियोंका नाश करडालता है तैसे ही यह भी रणके मुहाने पर खडा होकर रथीरूप सिंहोंका नाश करडालता है, हे पुरुषोंमें व्याघ्रसमान अर्जुन ! जैसे शरद् ऋतुमें मध्यान्हकालके सूर्यको कोई देख नहीं सकता है, तैसे ही तेरे पक्षके मुख्य२ महात्मा योधा भी हजारों बाणरूप किरणोंवाले कर्णके सामनेको नहीं देख सकते, (फिर उसको युद्धमें तो जीत ही कैसे सकते हैं ?) जैसे चौमासेमें मेघ वारंवार जलको बरसाया करता है तैसे ही दिव्य अस्त्ररूप जलकी वर्षा करने वाला कर्ण मेघकी समान वर्षा करने वाला है ॥ २५-२८ ॥ देवता चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करें और दैत्य चारों ओरसे मांस तथा रुधिरकी वर्षा करें तब भी इस कर्णको

न्ततः । अशक्यस्तदयं जेतुं सवज्रिभिः सशोणितम् ॥ २९ ॥ कवचेन विहीनश्च कुण्डलाभ्यां च पाण्डव । सोऽद्य मानुषतां प्राप्तो विमुक्तः शक्रदत्तया ॥ ३० ॥ एको हि योगोऽस्य भवेद्वधाय छिद्रे ह्येनं स्वप्रमत्तः प्रमत्तम् । कृच्छ्रप्राप्तं रथचक्रे निमग्ने हन्याः पूर्वं त्वन्तु संज्ञां विचार्य ॥ ३१ ॥ न ह्युद्यतास्त्रं युधि हन्यादजय्यमप्येकवीरो बलभित् सवज्रः । जरासन्धश्चेदिराजो महात्मा महाबाहुश्चैकलव्यो निषादः ॥ ३२ ॥ एकैकशो निहताः सर्वे एते योगैस्तैस्तैस्त्वद्धितार्थं मयैव । अथापरे निहता राक्षसेन्द्रा हिडिम्बकिर्मीरबकप्रधानाः । अलायुधः परचक्रावमर्दी घटोत्कचश्चोग्रकर्मा तरस्वी ३३

नहीं जीतसकते ॥२९॥ हे अर्जुन ! यह कर्ण, कवच और कुण्डलोंसे रहित तो कभीका होगया था और आज इन्द्रकी दी हुई शक्तिको खोबैठनेसे यह साधारण मनुष्यसा होगया है (अब इसमें दैवी शक्ति नहीं रही) ॥ ३० ॥ इस कर्णको मारनेका केवल एक ही उपाय है–द्वैरथ युद्धके समय इसके रथका पहिया पृथिवीमें घुस जायगा, उस समय यह विह्वल और दुःखी होगा, तब ही तू सावधान होकर मेरे किये हुए सङ्केतके अनुसार इसको मार डालना ॥ ३१ ॥ क्योंकि-किसीके जीतनेमें न आनेवाला कर्ण जिस समय शस्त्र उठाकर युद्धमें खडा होगा, उस समय वीरोंमें अग्रणी, बल दैत्यको मारनेवाला इन्द्र यदि हाथमें वज्र लेकर चला आवे तो वह भी इसको नहीं मारसकेगा ॥२३॥ हे अर्जुन ! मैंने तेरे हितके लिये पहले महात्मा महाबाहु जरासन्ध, चेदिराज शिशुपाल और भिल्लराज एकलव्य आदि वीरोंको एक२ करके अनेकों उपायोंसे मारडाला है, इसीप्रकार राक्षसराज हिडिम्ब, किर्मीर, बक, शत्रुकी सेनाका नाश करनेवाले अलायुध और उग्र कर्म करनेवाले वेगवान् घटोत्कच आदि राक्षसोंको अनेकों उपायोंसे मरवाडाला है ॥३३॥ एकसौ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८०॥

अर्जुन उवाच। कथमस्मद्धितार्थं ते कैश्च योगैर्जनार्दन। जरासन्धप्रभृतयो घातिताः पृथिवीश्वराः ॥ १ ॥ वासुदेव उवाच। जरासन्धश्चेदिराजो नैषादिश्च महाबलः। यदि स्युर्न हताः पूर्वमिदानीं स्युर्भयङ्कराः ॥ २ ॥ दुर्योधनस्तानवश्यं वृणुयाद्रथसत्तमान्। तेऽस्मासु नित्यविद्विष्टाः संश्रयेयुश्च कौरवान् ॥ ३ ॥ ते हि वीरा महेष्वासाः कृतास्त्रा दृढयोधिनः। धार्त्तराष्ट्रचमूं कृत्स्नां रक्षेयुरमरा इव ॥४॥ सूतपुत्रो जरासन्धश्चेदिराजो निषादजः। सुयोधनं समाश्रित्य जयेयुः पृथिवीमिमाम् ॥५॥ योगैरपि हता यैस्ते तन्मे शृणु धनञ्जय। अजय्या हि विना योगैर्मृधे ते दैवतैरपि ॥ ६ ॥ एकैको हि पृथक् तेषां समस्तां सुरवाहिनीम्।

अर्जुनने कहा कि-हे जनार्दन ! आपने जरासन्ध आदि राजाओंको हमारे हितके लिये किन उपायोंसे और किसप्रकार मारा था ? ॥ १ ॥ श्रीकृष्णने कहा, कि-हे अर्जुन ! महाबली जरासन्ध, चेदिदेशका राजा शिशुपाल और महाबली एकलव्य को यदि मैंने पहिले न मारडाला होता तो ये इस समय तेरे लिये महाभयदायक होते ॥ २ ॥ दुर्योधन इस समय उन महारथी राजाओंको अपने यहाँ निमंत्रण देकर बुलाता और वे हमारे नित्यके वैरी होनेके कारण कौरवोंकी सहायता भी करते ॥ ३ ॥ वे बड़े वीर, महाधनुषधारी, शस्त्रविद्यामें चतुर और बड़े भारी योधा थे, वे देवताओंकी समान चारों ओरसे कौरवोंकी सेनाकी रक्षा करते, बली कर्ण, जरासन्ध, शिशुपाल और एकलव्य दुर्योधनका आश्रय लेकर सब पृथिवीको वशमें करलेते, (ऐसे पराक्रमी थे) ॥ ४-५ ॥ हे धनञ्जय ! इस कारणसे ही मैंने उनका नाश किया है, उनको मारनेमें मैंने जो जो युक्तियें रची थीं, उनको मैं तुमसे कहता हूँ सुन, क्योंकि-ऐसी युक्तियोंके विना देवता भी रणमें उनका पराजय नहीं कर सकते थे ॥ ६ ॥

योधयेत् समरे पार्थ लोकपालाभिरक्षिताम् ॥ ७ ॥ जरासन्धो हि रुषितो रौहिणेयप्रधर्षितः । अस्मद्वधार्थञ्चिक्षेप गदां वै सर्वघातिनीम् ॥ ८ ॥ सीमन्तमिव कुर्वाणां नभसः पावकप्रभाम् । अदृश्यतापतन्ती सा शक्रमुक्ता यथाऽशनिः ॥ ९ ॥ तामापतन्तीं दृष्ट्वैव गदां रोहिणिनन्दनः । प्रतिघातार्थमस्त्रं वै स्थूणाकर्णमवासृजत् १० अस्त्रवेगप्रतिहता सा गदा प्रापतद्भुवि । दारयन्ती धरां देवीं कम्पयन्तीव पर्वतान्॥ ११ ॥ तत्र सा राक्षसी घोरा जरा नाम्नी सुविक्रमा। संदधे सा हि संजातं जरासन्धमरिन्दमम् ॥ १२ ॥ द्वाभ्यां जातो हि मातृभ्यामर्द्धदेहः पृथक् पृथक् । जरया सन्धितो यस्माज्जरासन्ध-

हे अर्जुन ! मैंने तुझे जिन राजाओंके नाम गिनाये हैं, उनमेंका एक२ योधा भी रणभूमिमें लोकपालोंकी रक्षा की हुई संपूर्ण देवसेनाके साथ लड़सकता था ॥ ७ ॥ एक समय बलदेवजीने जरासन्धका अपमान किया, इससे जरासन्धको क्रोध आगया, जैसे इन्द्र वज्रका प्रहार करता है, तैसे ही हमारा नाश करनेके लिये उसने सबका संहार करनेवाली गदा हमारे ऊपर फेंकी, तब तो मानो आकाशमें सीमन्तरचना करती हो इसप्रकार आकाशमार्गसे दौड़ी आती हुई अग्निकी समान धकधकाती हुई वह गदा हमारे ऊपर गिरती हुई देखनेमें आयी ॥ ८-९ ॥ उस गदाको अपने ऊपर गिरती हुई देखकर रोहिणीनंदन बलदेवजीने उस गदाका नाश करनेके लिये स्थूणाकर्ण नामका अस्त्र छोड़ा ॥ १० ॥ उसके प्रहारसे गदाके टुकडे २ होगये, और वह गदा पृथिवीको फाडे डालती हो तथा पर्वतोंको डगमगाये देती हो, इसप्रकार अडडड करती हुई पृथिवी पर गिरपडी ॥ ११ ॥ वह गदा जहाँ गिरी थी उस स्थान पर जरा नामकी एक महाबलवाली भयानक राक्षसी बैठी थी वह गदाके तथा शस्त्रों प्रहारसे पुत्रों और संबन्धियों सहित मरगयी, इस राक्षसीने ही जन्मके समय जरासन्धको जोड़ा था,

स्ततोऽभवत् ॥१३॥ सा तु भूमिं गता पार्थ हता ससुतबान्धवा ।
गदया तेन चास्त्रेण स्थूणाकर्णेन राक्षसी ॥ १४ ॥ विनाभूतः
स गदया जरासन्धो महामृधे । निहतो भीमसेनेन पश्यतस्ते धनं-
जय ॥ १५ ॥ यदि हि स्याद्गदापाणिर्जरासन्धः प्रतापवान् ।
सेन्द्रा देवा न तं हन्तुं रणे शक्ता नरोत्तम ॥ १६ ॥ त्वद्धिता-
र्थञ्च नैषादिरंगुष्ठेन वियोजितः । द्रोणेनाचार्यकं कृत्वा छद्मना
सत्यविक्रमः ॥ १७ ॥ स तु बद्धांगुलित्राणो नैषादिर्दृढविक्रमः ।
अतिमानी वनचरो बभौ राम इवापरः ॥ १८ ॥ एकलव्यं हि

जरासन्धको जोड़नेके विषयमें यह बात कही जाती है, कि—जरासन्धका जन्म दो माताओंसे हुआ था और जन्मके समय वह जुदे २ दो टुकडोंके आकारमें उत्पन्न हुआ था, जरा राक्षसीने उन दोनों टुकडोंको इकट्ठे करके जोडदिया था, उससे जरासन्ध हुआ था, हे अर्जुन! गदाने जरा राक्षसीका और नाशकारी स्थूणाकर्ण बाणने गदाका नाश कर दिया ॥ १२–१४ ॥ इसप्रकार जरासन्धके गदा और राक्षसी दोनोंसे हीन हो जाने पर भीमसेनने महासंग्राममें तेरे सामने ही उसको मारडाला ॥ १५ ॥ हे धनञ्जय! यदि इस समय जरासन्ध जीवित होता और हाथमें गदा लेकर युद्धमें लडनेको चढ आता तो हे नरोत्तम! इन्द्रादि देवता भी रणमें उसका नाश नहीं करसकते थे ॥ १६ ॥ और मैंने कपटसे द्रोणाचार्यको एकलव्यका गुरु बनाकर, उनके द्वारा सत्यपराक्रमी भिल्लपुत्र एकलव्यका अँगूठा कटवा डाला था, इसमें भी तेरा ही हित भराहुआ है, वह दृढपराक्रमी और महा अभिमानी भिल्लपुत्र हाथोंमें चमडेके मोजे पहरकर वनमें घूमा करता था और वह दूसरे रामकी समान तेजस्वी था, हे अर्जुन! यदि एकलव्यका अँगूठा ठीक होता तो युद्धमें देवता, दानव, राक्षस तथा नाग उसका किसी

सांगुष्ठमशक्ता देवदानवाः । स राक्षसोरगाः पार्थ विजेतुं युधि कर्हिचित् ॥ १९ ॥ किमु मानुषमात्रेण शक्यः स्यात्प्रतिवीक्षितुम् । दृढमुष्टिः कृती नित्यमस्यमानो दिवानिशम् ॥ २० ॥ त्वद्धितार्थन्तु स मया हतः संग्राममूर्द्धनि । चेदिराजश्च विक्रान्तः प्रत्यक्षं निहतस्तव ॥ २१ ॥ स चाप्यशक्यः संग्रामे जेतुं सर्वैः सुरासुरैः । वधार्थं तस्य जातोऽहमन्येषाञ्च सुरद्विषाम् ॥ २२ ॥ त्वत्सहायो नरव्याघ्र लोकानां हितकाम्यया । हिडिम्बबककिर्मीरा भीमसेनेन पातिताः ॥ २३ ॥ रावणेन समप्राणा ब्रह्मयज्ञविनाशनाः । हतस्तथैव मायावी हैडिम्बेनाप्यलायुधः ॥ २४ ॥ हैडिम्बश्चाप्युपायेन शक्त्या कर्णेन घातितः । यदि ह्येनं नाहनिष्यत् कर्णः शक्त्या

प्रकार नाश नहीं करसकते थे, तब मनुष्य तो उसकी ओरको आँख उठाकर देख भी कैसे सकते थे ? उसकी मुट्ठी दृढ थी, वह स्वयं बाण छोडनेमें चतुर था और रातदिन बाण छोडा करता था, ऐसे भिल्लराजका भी तेरे हितके लिए ही मैंने रणके मुहाने पर नाश किया था, और तेरे हितके लिये तेरे सामने पराक्रमी चेदिराज शिशुपालको भी मैंने मारडाला था १७–२० उसको भी संग्राममें सब देवता और दानव नहीं जीत सकते थे, उसका और देवताओंके द्वेषी दूसरे दैत्योंका संहार करनेके लिये तथा मनुष्योंका हित करनेके लिये मैंने अवतार लिया है, और तेरी सहायतासे मैंने सबका नाश करडाला है, ऐसे ही रावणकी समान महाबली और ब्राह्मणोंसे तथा यज्ञोंसे द्वेष करनेवाले हिडिम्बासुर, बक, किर्मीर आदिको भी भीमने मारडाला है, मायावी अलायुधको घटोत्कचने मारडाला ॥ २१–२४ ॥ और कर्णके द्वारा युक्तिसे शक्तिका प्रहार कराकर मैंने घटोत्कचका नाश कराया है, यदि कर्ण महासंग्राममें घटोत्कचका नाश नहीं करता तो मुझे भीमके पुत्र घटोत्कचका नाश करना पड़ता,

महामृधे ॥ २५ ॥ मया वध्योऽभविष्यत् स भैमसेनिर्घटोत्कचः । मया न निहतः पूर्वमेष युष्मत्प्रियेप्सया ॥ २६ ॥ एष हि ब्राह्मणद्वेषी यज्ञद्वेषी च राक्षसः । धर्मस्य लोप्ता पापात्मा तस्मादेवं निपातितः ॥ २७ ॥ व्यंसिता चाप्युपायेन शक्रदत्ता मयाऽनघ । ये हि धर्मस्य लोप्तारो वध्यास्ते मम पाण्डव ॥ २८ ॥ धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा मया कृता । ब्रह्म सत्यं दमः शौचं धर्मो ह्रीः श्रीर्धृतिः क्षमा ॥ २९ ॥ यत्र तत्र रमेनित्यमहं सत्येन ते शपे । न विषादस्त्वया कार्यः कर्णं वैकर्तनं प्रति ॥ ३० ॥ उपदेक्ष्याम्युपायन्ते येन तं प्रसहिष्यसि । सुयोधनञ्चापि रणे हनिष्यति वृकोदरः ॥ ३१ ॥ तस्य चापि वधोपायं वक्ष्यामि तव पाण्डव । वर्द्धते तुमुलस्त्वेष शब्दः परचमूं प्रति ॥ ३२ ॥ विद्रवन्ति हि सैन्यानि

मैंने जो आजके दिन तक घटोत्कचको नहीं मारा था उसका कारण यही था, कि-तुम्हें बुरा न लगे ॥ २५-२६ ॥ घटोत्कच ब्राह्मणोंका द्वेषी, यज्ञोंका द्वेषी, धर्मका लोप करनेवाला और पापात्मा था, इसलिये ही मैंने उसका नाश कराया है ॥ २७ ॥ और हे निर्दोष अर्जुन ! इन्द्रने कर्णको जो शक्ति दी थी वह भी इस उपायसे निरर्थक करादी है, क्योंकि-हे पाण्डव ! जो पुरुष धर्मका नाश करता है, मैं उसका नाश करदेता हूँ ॥२८॥ और धर्मकी स्थापना करनेकी मेरी अचल प्रतिज्ञा है, मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, कि-जहाँ ब्रह्म सत्य, दया, शौच, धर्म, लज्जा, लक्ष्मी, धैर्य और क्षमा वसते हैं तहाँ मेरा नित्य निवास रहता है, अब तुझे सूर्यपुत्र कर्णके नाशके लिये मनमें खेद नहीं करना चाहिये ॥ २९-३० ॥ जिस युक्तिसे तू रणमें कर्णको मारसकेगा, वह उपाय मैंने रच रक्खा है, ऐसे ही भीमसेन भी रणमें दुर्योधनका नाश करसकेगा ॥ ३१ ॥ हे अर्जुन ! उसको मारनेकी युक्ति भी मैं तुझे बताऊँगा, परन्तु इस समय शब्द

त्वदीयानि दिशो दश । लब्धलक्ष्या हि कौरव्या विधमन्ति चमूं तव । दहत्येष च वः सैन्यं द्रोणः प्रहरताम्वरः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि कृष्णवाक्ये एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । एकवीरवधे मोघा शक्तिः सूतात्मजे यदा । कस्मात् सर्वान् समुत्सृज्य स तां पार्थे न मुक्तवान् ॥ १ ॥ तस्मिन् हते हता हि स्युः सर्वे पाण्डवसृञ्जयाः । एकवीरवधे कस्माद्युद्धे न जयमादधे॥२॥आहूतो न निवर्त्तेयमिति तस्य महाव्रतम् । स्वयं मार्गयितव्यः स सूतपुत्रेण फाल्गुनः ॥ ३ ॥ ततो द्वैरथमानीय फाल्गुनं शक्रदत्तया । न जघान वृषः कस्मात्तन्ममाचक्ष्व

शत्रुकी सेनामें बढता चला जारहा है ॥ ३२ ॥ तेरी सेना दशों दिशाओंमेंको भागरही है, कौरव ताक २ कर तेरी सेनाका नाश कररहे हैं, यह बडेभारी योधा द्रोणाचार्य तेरी सेनाका संहार कर रहे हैं, इधरको देख ॥ ३३ ॥ एकसौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त

धृतराष्ट्रने बूझा, कि-हे सञ्जय ! जब कर्णकी शक्ति एक ही पुरुषका नाश करनेके अनन्तर निष्फल होजानेवाली थी तो फिर उसने और सब योधाओंको छोड अर्जुनके ऊपर ही मारकर उससे काम क्यों नहीं लिया ? ॥ १ ॥ यदि कर्णने अर्जुनको मारडाला होता तो सब पाण्डव और सृञ्जय अवश्य ही मारेजाते, तो फिर उसने एक वीर अर्जुनका ही नाश करके विजय क्यों नहीं प्राप्त की ? ॥ २ ॥ तू कहेगा, कि-अर्जुन लडनेके लिये आता नहीं था तो इसके उत्तरमें मैं कहता हूँ, कि-अर्जुनका यह महाव्रत है कि-यदि कोई भी उसको लडनेके लिये बुलावे तो वह रणमें पीछेको नहीं हटता है अर्थात् अवश्य ही लडनेको आता है, इसलिये सूतपुत्र कर्णने यदि अर्जुनको लडनेके लिये बुलाया होता तो वह लडनेको आता ही ॥ ३ ॥

सञ्जय ॥ ४ ॥ नूनं बुद्धिविहीनश्चाप्यसहायश्च मे सुतः । शत्रुभिर्व्यंसितः पापः कथं नु स जयेदरीन् ॥ ५ ॥ या ह्यस्य परमा शक्तिर्जयस्य च परायणम् । सा शक्तिर्वासुदेवेन व्यंसिता च घटोत्कचे ॥ ६ ॥ कुणेर्यथा हस्तगतं ह्रियेत्फलं बलीयसा । तथा शक्तिरमोघा सा मोघीभूता घटोत्कचे ॥७॥ यथा वराहस्य शुनश्च युद्धे तयोरभावे श्वपचस्य लाभः । मन्ये विद्वन् वासुदेवस्य तद्वद्युद्धे लाभः कर्णहैडिम्बयोर्वै ॥ ८ ॥ घटोत्कचो यदि हन्याद्धि कर्णं परो लाभः स भवेत्पाण्डवानाम् । वैकर्त्तनो वा यदि तं निहन्यात्तथापि कृत्यं शक्तिनाशात् कृतं स्यात् ॥ ९ ॥ इति प्राज्ञः प्रज्ञयैतद्

उस समय हे सञ्जय ! कर्णने द्विरथ युद्ध करनेके लिये अर्जुनको निमंत्रण देकर इन्द्रकी दीहुई शक्तिसे उसको क्यों नहीं मारा ४ परन्तु हाय ! मेरा पुत्र अवश्य ही बुद्धिहीन है, उसका कोई सच्चा सहायक नहीं है, वह शत्रुओंके धोखेमें आगया है और पापी है, वह शत्रुओंके ऊपर विजय कैसे पासकता है ? ॥ ५ ॥ वास्तवमें जो कर्णकी महाशक्ति गिनीजाती थी, जिसके ऊपर कर्णको विजयका भरोसा था, वह शक्ति कृष्णने घटोत्कचके ऊपर फिकवाकर निष्फल करडाली है. वास्तवमें टुण्टे हाथवाले मनुष्यके हाथमें आयेहुए फलको जैसे बलवान् मनुष्य लेजाता है तैसे ही कर्णकी अमोघ शक्तिको कृष्णने युक्तिसे छीनलिया है, वह शक्ति अमोघ बलवाली थी, परन्तु घटोत्कचके ऊपर प्रयोग करनेसे अब बेकार होगयी ! हे विद्वन् ! जहाँ सूकर और कूकर लडते हों तहाँ दोनोंका मरण होजाने पर जैसे चाण्डालका लाभ होता है, ऐसे ही मेरी समझमें कर्ण और घटोत्कचके युद्धसे श्रीकृष्णका लाभ हुआ है६-८यदि घटोत्कच कर्णको मारडालेगा तो पांडवोंका परमलाभ होगा और कदाचित् कर्ण उसको मारडालेगा तोभी उसकी शक्ति क्षीण होजानेसे पाण्डवोंका काम बनेगा ॥ ९ ॥ इसप्रकार

विचार्य घटोत्कचं सूतपुत्रेण युद्धे । अघातयद्वासुदेवो नृसिंहः प्रियं कुर्वन् पाण्डवानां हितञ्च ॥ १० ॥ सञ्जय उवाच । एतच्चिकीर्षितं ज्ञात्वा कर्णस्य मधुसूदनः । नियोजयामास तदा द्वैरथे राक्षसेश्वरम् ॥ ११ ॥ घटोत्कचं महावीर्यं महाबुद्धिर्जनार्दनः । अमोघायां विघातार्थं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ १२ ॥ तदैव कृतकार्या हि वयं स्याम कुरूद्वह । न रक्षेद्यदि कृष्णस्तं कर्णात् पार्थं महारथम् ॥१३॥ साश्वध्वजरथः संख्ये धृतराष्ट्र पतेद्भुवि । विना जनार्दनं पार्थो योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥ १४ ॥ तैस्तैरुपायैर्बहुभी रक्ष्यमाणः स पार्थिव । जयत्यभिमुखाञ्छत्रून् पार्थः कृष्णेन पालितः ॥ १५ ॥ सविशेषात्त्वमोघायाः कृष्णोऽरक्षत पाण्डवं ।

बुद्धिसे विचार कर, बुद्धिमान् और मनुष्योंमें सिंहसमान श्रीकृष्णने पाण्डवोंका हित और प्रिय करनेके लिये कर्णके हाथसे घटोत्कचको मरवादिया है (और कर्णकी शक्ति निष्फल करदी है) ॥ १० ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् ! शक्तिसे अर्जुनको मारडालूँगा, ऐसे कर्णके कर्त्तव्यको जानकर ही महाबुद्धिमान् मधुसूदन श्रीकृष्णने उस अमोघ शक्तिका नाश करानेके लिये महापराक्रमी राक्षसराज घटोत्कचको, द्विरथयुद्धमें नियत किया था, परन्तु हे राजन् ! इस सबका कारण तुम्हारा अन्याय ही है ॥ ११–१२ ॥ यदि श्रीकृष्ण रणमें महारथी कर्णसे अर्जुनकी रक्षा नहीं करते तो उसी समय हम अपने काममें विजय पाजाते ॥ १३ ॥ हे धृतराष्ट्र ! यदि योगेश्वर श्रीकृष्ण उसकी सहायतामें नहीं होते तो अर्जुन अवश्य ही रथ, घोड़े और ध्वजाके सहित रणमें मारा जाता ॥ १४ ॥ हे राजन् ! ऐसे २ अनेकों उपायोंसे श्रीकृष्ण अर्जुनकी रक्षा कररहे हैं, इसलिये ही अर्जुन रणके मुहाने पर खडा होकर शत्रुओंको जीतलेता है ॥ १५ ॥ और श्रीकृष्णने ही विशेषकर कर्णकी अमोघ शक्ति

हन्यात् क्षिप्रं हि कौंतेयं शक्तिर्वृक्षमिवाशनिः ॥ १६ ॥ धृतराष्ट्र उवाच। विरोधी च कुमन्त्री च प्राज्ञमानी ममात्मजः । यस्यैव समतिक्रान्तो,वधोपायो जयं प्रति ॥१७॥ स वा कर्णो महाबुद्धिः सर्वशस्त्रभृतांवरः । न मुक्तवान् कथं सूत ताममोघां धनञ्जये१८ तवापि समतिक्रान्तमेतद्गावल्गणे कथम् । एनमर्थं महाबुद्धे यत्त्वया नावबोधितः ॥ १९ ॥ सञ्जय उवाच । दुर्योधनस्य शकुनेर्मम दुःशासनस्य च । रात्रौ रात्रौ भवत्येषा नित्यमेव समर्थना २० श्वः सर्वसैन्यमुत्सृज्य जहि कर्ण धनञ्जयम् । प्रेष्यवत् पाण्डुपञ्चालानुपभोक्ष्यामहे ततः ॥ २१ ॥ अथवा निहते पार्थे पांडवान्यतमन्ततः । स्थापयेद्यदि वार्ष्णेयस्तस्मात् कृष्णो हि हन्य-

---

मेंसे अर्जुनको बचाया है, नहीं तो जैसे वज्र वृक्षका नाश करडालता है तैसे ही वह शक्ति अर्जुनका नाश करडालती ॥१६॥ धृतराष्ट्रने कहा,कि-हे सञ्जय! मेरा पुत्र विरोध करनेवाला है,उसके मन्त्री दुष्ट हैं और वह स्वयं बुद्धिमानीका घमण्ड रखता है, इन सब कारणोंसे ही घटोत्कचका नाश अर्जुनका विजयरूप होगया है॥१७॥तो हे सूत! मैं यह बूझता हूँ,कि-सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् कर्णने किस कारणसे अर्जुनके ऊपर यह अमोघ शक्ति नहीं मारी॥१८॥हे सञ्जय! तू भी इस बातको कैसे भूलगया? हे महाबुद्धिमान् सञ्जय! तूने भी यह बात कर्णको क्यों नहीं जतायी? १९ सञ्जयने उत्तर दिया, कि- हे राजन्! दुर्योधन, शकुनि,मैं तथा दुःशासन हरएक रातमें नित्य ही कर्णसे प्रार्थना किया करते थे, कि-॥ २० ॥ हे कर्ण! तू कल सब योधाओंको छोड़कर केवल अर्जुनका ही नाशकर तो हम पाण्डवोंको तथा पञ्चाल योधाओंको दासकी समान अपने काममें लासकेंगे २१ यदि ऐसा न करे तो, क्योंकि- अर्जुनके मारे जाने पर कदाचित् वृष्णिवंशी कृष्ण पाण्डवोंमेंसे किसी दूसरेको राज्यसिहासन पर

ताम्२२कृष्णो हि मूलं पाण्डूनां पार्थः स्कन्ध इवोद्गतः । शाखा
इवेतरे पार्थाः पञ्चाला पत्रसंज्ञिताः॥२३॥कृष्णाश्रयाः कृष्णबलाः
कृष्णनाथाश्च पाण्डवाः । कृष्णः परायणञ्चैषां ज्योतिषामिव
चन्द्रमाः॥२४॥तस्मात् पर्णानि शाखाश्च स्कन्धञ्चोत्सृज्य सूतज ।
कृष्णं हि विद्धि पाण्डूनां मूलं सर्वत्र सर्वदा॥२५॥ हन्याद्यदि हि
दाशार्हं कर्णो यादवनन्दनम् । कृत्स्ना वसुमती राजन् वशे तस्य न
संशयः ॥ २६ ॥ यदि हि स निहतः शयीत भूमौ यदुकुलपांडव-
नन्दनो महात्मा । ननु तव वसुधा नरेन्द्र सर्वा सगिरिसमुद्रवना
वशं व्रजेत ॥ २७ ॥ सा तु बुद्धिः कृताप्येवं जाग्रति त्रिदशेश्वरे ।
अप्रमेये हृषीकेशे युद्धकाले व्यमुह्यत ॥२८॥ अर्जुनञ्चापि राधे-

---

बैठालदें, इसलिये तू कृष्णको ही मारडाल ॥ २२ ॥ क्योंकि– पाण्डवरूप वृक्षकी जड़ श्रीकृष्ण हैं, अर्जुन उस वृक्षका गुद्दारूप है, दूसरे पाण्डव शाखारूप हैं और पांचाल राजे उसके पत्ते हैं ॥ २३ ॥ जैसे नक्षत्रोंको चन्द्रमाका परम आश्रय है तैसे ही पाण्डवोंको श्रीकृष्णका परम आश्रय है, श्रीकृष्ण पाण्डवोंका बल हैं, श्रीकृष्ण पाण्डवोंके स्वामी हैं और श्रीकृष्ण ही पाण्डवोंका परम आश्रयस्थान हैं ॥ २२ ॥ इसलिये हे सूतपुत्र ! तू पत्ते, शाखा और गुद्देको छोड़दे और कृष्णको पाण्डवोंकी मूल जान (और उसको ही मारडाल) ॥ २५ ॥ हे राजन् ! यदि कर्णने लड़ाईमें वृष्णिवंशी यदुनन्दन श्रीकृष्णको मारडाला होता तो निःसन्देह सब पृथिवी दुर्योधनके वशमें आगयी होती२६हेराजन् ! यदि यदुनन्दन महात्मा श्रीकृष्ण मर कर रणमें सोगये होते तो पर्वत, समुद्र और वनोंके सहित सब पृथिवी निःसन्देह तुम्हारे वशमें होजाती ॥ २७ ॥ कर्णने भी जागृत रहने वाले प्रमादरहित, देवताओंके पति,हृषीकेश श्रीकृष्णके ऊपर इन्द्रकी दी हुई शक्तिके मारनेका विचार किया था, परन्तु युद्धके समय न जाने उसको

यात्सदा रक्षति केशवः । न ह्येनमैच्छत् प्रमुखे सौतेः स्थापयितुं रणे ॥२९॥ अन्यांश्चास्मै रथोदारानुपास्थापयदच्युतः । अमोघां तां कथं शक्तिं मोघां कुर्यामिति प्रभो ॥ ३० ॥ यश्चैवं रक्षते पार्थं कर्णात्कृष्णो महामनाः । आत्मानं स कथं राजन्न रक्षेत् पुरुषोत्तमः ॥ ३१ ॥ परिचिन्त्य तु पश्यामि चक्रायुधमरिन्दमम् । न सोऽस्ति त्रिषु लोकेषु यो जयेत जनार्दनम् ॥ ३२ ॥ सञ्जय उवाच । ततः कृष्णं महाबाहुं सात्यकिः सत्यविक्रमः । पप्रच्छ रथशार्दूलः कर्णं प्रति महारथः ॥ ३३ ॥ अयञ्च प्रत्ययः कर्णे शक्तिश्चामितविक्रमा । किमर्थं सूतपुत्रेण न मुक्ता फाल्गुने तदा ॥ ३४ ॥ वासुदेव उवाच । दुःशासनश्च कर्णश्च शकुनिश्च

कैसा मोह होजाता था, कि-वह सब बात भूल जाता था॥ २८॥ श्रीकृष्ण भी नित्य कर्णसे अर्जुनकी रक्षा करते थे और संग्राममें कर्णके सामने उसको खड़ा रखना नहीं चाहते थे॥ २९ ॥ हे राजन्! "मैं इसकी अमोघ बलवाली शक्तिको किसप्रकार निष्फल करूँ" ऐसे विचारसे श्रीकृष्ण दूसरे बडे २ महारथियोंको कर्णके सामने लडनेको भेजते थे॥ ३० ॥ हे राजन्! जो बडे मनवाले श्रीकृष्ण इस प्रकार अर्जुनकी कर्णसे रक्षा करते थे वह पुरुषोत्तम अपनी रक्षा क्यों नहीं करते?॥ ३१ ॥ चक्र धारण करनेवाले तथा शत्रुओंका दमन करनेवाले श्रीकृष्णके विषयमें विचार करके जब मैं चारों ओरको दृष्टि डालता हूँ तो त्रिलोकीमें ऐसा कोई भी पुरुष नहीं दीखता, कि-जो उनको जीतसके॥ ३२ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र! "कर्णने घटोत्कचको मारडाला, उसके बाद सत्यपराक्रमी और महारथियोंमें सिंहसमान सात्यकीने महाबाहु श्रीकृष्ण से बूझा कि-कर्णका निश्चय था कि-यह शक्ति अर्जुनके मारूँगा और कर्णके पास अमोघ पराक्रमवाली शक्ति थी, तो भी कर्णने अर्जुनके वह शक्ति क्यों नहीं मारी?॥ ३३-३४

ससैन्धवः । सततं मन्त्रयन्ति स्म दुर्योधनपुरोगमाः ॥ ३५ ॥
कर्ण कर्ण महेष्वास रणेऽमितपराक्रम । नान्यस्य शक्तिरेषा
ते मोक्तव्या जयतां वर ॥ ३६ ॥ ऋते महारथात् कर्ण कुन्ती-
पुत्राद्धनञ्जयात् । स हि तेषामतियशा देवानामिव वासवः ३७
तस्मिन् विनिहते पार्थे पाण्डवाः सृञ्जयैः सह । भविष्यन्ति हता-
त्मानः सुरा इव निरग्नयः ॥ ३८ ॥ तथेति च प्रतिज्ञातं कर्णेन
शिनिपुङ्गव । हृदि नित्यन्तु कर्णस्य वधो गाण्डीवधन्वनः ॥३९॥
अहमेव तु राधेयं मोहयामि युधाम्वर । ततो नावासृजच्छक्तिं
पाण्डवे श्वेतवाहने ॥ ४० ॥ फाल्गुनस्य हि सा मृत्युरिति चिंत-
यतोऽनिशम् । न निद्रा न च मे हर्षो मनसोऽस्ति युधाम्वर ॥४१॥

इसका उत्तर देते हुए श्रीकृष्णने कहा, कि–दुःशासन, कर्ण, शकुनि, सिंधुदेशका राजा जयद्रथ ये सब दुर्योधनको आगे करके सदा रात्रिमें युद्ध करनेका विचार किया करते थे और कर्णसे कहते थे, कि–हे धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण! तू रणमें अपार पराक्रम करनेवाला है, हे विजय पाने वालोंमें श्रेष्ठ ! तू महारथी कुन्तीनन्दन अर्जुनके सिवाय दूसरेके ऊपर इस शक्तिको कभी न छोड़ना, जैसे देवताओंमें इन्द्र बडाभारी यश पाने वाला है, ऐसे ही पाण्डवोंमें अर्जुन बडा यशस्वी है ॥३५–३७॥ और कुन्तीपुत्र अर्जुनके मारेजानेसे पाण्डव और सृञ्जय सुखरूप अग्निरहित देवताओंकी समान नष्ट होजायँगे ॥ ३८ ॥ हे सात्यकी ! दुर्योधन आदिकी ऐसी बातें सुनकर कर्णने प्रतिज्ञा की थी, कि–अच्छा मैं ऐसा ही करूँगा, इसलिये उसके हृदयमें नित्य गाण्डीवधनुषधारी अर्जुनको मारनेका विचार उठता रहता था ॥ ३९ ॥ परन्तु हे श्रेष्ठ योधा ! मैंने ही कर्णको मोहित किया था, इसलिये वह स्वेत घोड़ोंवाले अर्जुनके इन्द्रकी दी हुई शक्ति न मारसका ॥ ४० ॥ हे महायोधा ! कर्ण अर्जुनका काल है, नित्य ऐसा विचार उठनेके कारण मुझे रात्रिमें

घटोत्कचे व्यंसितां तु दृष्ट्वा तां शिनिपुङ्गव । मृत्योरास्यान्तरान्मुक्तं पश्यास्यद्य धनञ्जयम् ॥ ४२ ॥ न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा । न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे ॥४३॥ त्रैलोक्यराज्याद्यत्किञ्चिद्भवेदन्यत् सुदुर्लभम् । नेच्छेयं सात्वताहं तद्विना पार्थं धनञ्जयम् ॥४४॥ अतः प्रहर्षः सुमहान् युयुधानाद्य मेऽभवत् । मृतं प्रत्यागतमिव दृष्ट्वा पार्थं धनञ्जयम् ॥४५॥ अतश्च प्रहितो युद्धे मया कर्णाय राक्षसः । न ह्यन्यः समरे रात्रौ शक्तः कर्णं प्रबाधितुम् ॥ ४६ ॥ सञ्जय उवाच । इति सात्यकये प्राह तदा देवकिनन्दनः । धनंजयहिते युक्तस्तत्प्रिये सततं रतः ॥ ४७ ॥

नींद भी नहीं आती थी तथा मेरा मन भी प्रसन्न नहीं रहता था ॥४१॥ परन्तु हे शिनिपुङ्गव सात्यकी ! आज उसकी शक्तिको घटोत्कचकेऊपर पड़नेसे निष्फल हुई देखकर अब मैं समझताहूँ, कि–अर्जुन कालके मुखमेंसे बचगया है४२मैं जिसप्रकार रणमें अर्जुनकी रक्षा करना आवश्यक समझता हूँ तैसी माता पिताकी, तुम्हारी,भाइयोंकी और अपने प्राणोंकी रक्षा करना भी योग्य नहीं समझता४३तथा हे सात्यकी ! तीनों लोकोंके राज्यकी अपेक्षा भी यदि कोई वस्तु अत्यन्त दुर्लभ हो तो उस दूसरी वस्तुको भी मैं अर्जुनके विना नहीं चाहता(अर्थात् मुझे अर्जुनसे अधिक प्यारी कोई वस्तु नहीं है)४४ इसलिये हे सात्यकी ! आज मानो मरकर फिर जी उठा हो ऐसे कुन्तीनन्दन अर्जुनको देखकर मुझे बड़ा हर्ष होरहा है ४५और इस कामके लिये ही मैंने युद्धमें कर्णके सामने राक्षस घटोत्कचको भेजा था,उस राक्षसके सिवाय दूसरा कोई भी रात्रिके समय रणभूमिमें कर्णको नहीं दबासकताथा(और इन्द्रकी दी हुई कर्ण की शक्तिको निष्फल नहीं करसकता था)४६ सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् ! सदा अर्जुनका प्रिय और हित करनेवाले देवकीनन्दन श्रीकृष्णने उस समय सात्यकीको इस प्रकार उत्तर दिया ॥४७॥ एकसौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त १८२

धृतराष्ट्र उवाच । कर्णदुर्योधनादीनां शकुनेः सौबलस्य च । अपनीतं महत्तात तव चैव विशेषतः ॥ १ ॥ यदि जानीथ तां शक्तिमेकघ्नीं सततं रणे । अनिवार्यामसह्यांश्च देवैरपि सवासवैः २ सा किमर्थं तु कर्णेन प्रवृत्ते समरे पुरा । न देवकीसुते मुक्ता फाल्गुने वापि सञ्जय ॥ ३ ॥ सञ्जय उवाच । संग्रामाद्विनिवृत्तानां सर्वेषां नो विशाम्पते । रात्रौ कुरुकुलश्रेष्ठ मन्त्रोऽयं समजायत ॥ ४ ॥ प्रभातकाले श्वोभूते केशवायार्जुनाय वा । शक्तिरेषा विमोक्तव्या कर्ण कर्णेति नित्यशः ॥ ५ ॥ ततः प्रभातसमये राजन् कर्णस्य दैवतैः । अन्येषाञ्चैव योधानां सा बुद्धिर्नाश्यते पुनः ॥६॥ दैवमेव परं मन्ये यत् कर्णो हस्तसंस्थया । न जघान रणे पार्थं कृष्णं वा देवकीसुतम् ॥ ७ ॥ तस्य हस्तस्थिता शक्तिः

धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे तात ! कर्णने, दुर्योधनने, सुबलपुत्र शकुनिने और विशेष कर तूने भी महाअन्याय किया है ॥ १ ॥ जब तुम सब जानते थे, कि–जिसको इन्द्र आदि देवता भी पीछेको नहीं लौटा सकते ऐसी यह असह्य शक्ति रणमें केवल एकका ही नाश करसकती है ॥२॥ तो फिर जब युद्ध होनेलगा, उस समय कर्णने कृष्णके या अर्जुनके ऊपर उसका प्रयोग क्यों नहीं किया ? ॥३॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि–हे कुरुकुलमें श्रेष्ठ राजन् ! रणभूमिमेंसे लौट आने पर हम सबोंका रात्रिमें यही विचार हुआ करता था और कहा करते थे, कि–हे कर्ण ! कल प्रातःकाल होते ही तू कृष्णके या अर्जुनके शक्ति मारना ॥ ४–५ ॥ परन्तु हे राजन् ! प्रभात होते ही देवता फिर कर्णकी तथा दूसरे योधाओंकी बुद्धिका नाश करदेते थे ॥ ६ ॥ कर्णने हाथमें ली हुई शक्तिसे रणमें खड़ेहुए अर्जुनको या कृष्णको नहीं मारा इसमें मैं तो दैवको ही मुख्य मानता हूँ ॥७॥ कालरात्रिकी समान भयानक और तयार रहनेवाली शक्ति कर्णके हाथमें विद्यमान थी, तो भी उसकी बुद्धिको

कालरात्रिरिवोद्यता । दैवोपहतबुद्धित्वान्न तां कर्णो विमुक्तवान् ८ कृष्णे वा देवकीपुत्रे मोहितो दैवमायया । पार्थे वा शक्रकल्पे वै वधार्थं वासवीं प्रभो ॥९॥ धृतराष्ट्र उवाच । दैवेनोपहता यूयं स्वबुद्ध्या केशवस्य च । गता हि वासवी हत्वा तृणभूतं घटोत्कचम् ॥१०॥ कर्णश्च मम पुत्राश्च सर्वे चान्ये च पार्थिवाः । तेन वै दुष्प्रणीतेन गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ११ ॥ भूय एव च मे शंस यथा युद्धमवर्त्तत । कुरूणां पाण्डवानाञ्च हैडिम्बे निहते तदा ॥ १२ ॥ ये च तेऽभ्यद्रवन् द्रोणं व्यूढानीकाः प्रहारिणः । सृञ्जयाः सह पञ्चालैस्तेऽप्यकुर्वन् कथं रणम् ॥ १३ ॥ सौमदत्तेर्वधाद् द्रोणमायान्तं सैन्धवस्य च । अमर्षाज्जीवितं त्यक्त्वा गाहमानं वरूथि-

---

दैवने ही पलट दिया था और वह दैवी–मायासे मोहित होगया था इसलिये ही हे राजन् ! देवकीनन्दन श्रीकृष्णके ऊपर अथवा इन्द्रकी समान शक्तिमान् अर्जुनके ऊपर उनका नाश करनेके लिये इन्द्रकी दी हुई शक्तिका कर्णने प्रहार नहीं किया (और क्या कहाजाय ?) ॥ ८–९ ॥ धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे सञ्जय ! दैवके कारणसे अथवा कृष्णकी प्रपञ्च भरी बुद्धिसे या तुम्हारी ही अपनी बुद्धिसे तुम्हारा नाश हुआ है और इन्द्रकी दी हुई शक्ति तृणसमान घटोत्कचका नाश करके चली गयी ॥ १० ॥ इस दुर्दैवके कारणसे ही कर्ण मेरे, सब पुत्र तथा दूसरे राजे रणमें मारेजायँगे ॥ ११ ॥ अब मुझे बता, कि–हिडिम्बाके पुत्रके मारे जाने पर कौरव और पाण्डवोंमें किसप्रकार युद्ध चलता रहा था ? ॥१२॥ पाण्डव, सृञ्जय और पाञ्चाल राजे अपनी सेनाओंको व्यूहमें रचकर द्रोणाचार्यके सामने लडनेको दौड़े थे, बता उस समय उन्होंने द्रोणाचार्यके सामने पड़कर किसप्रकार युद्ध किया था ? ॥ १३ ॥ जब द्रोणाचार्य सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवाके तथा सिंधुराजके मारे जानेसे क्रोधमें भरकर जीवनकी भी परवाह न

नीम् ॥ १४ ॥ जृम्भमाणमिव व्याघ्रं व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
कथं प्रत्युद्ययुर्द्रोणमस्यन्तं पाण्डुसृञ्जयाः ॥ १५ ॥ आचार्यं ये च
तेऽरक्षन् दुर्योधनपुरोगमाः। द्रौणिकर्णकृपास्तात ते वाकुर्वन् किमा-
हवे ॥ १६ ॥ भारद्वाजं जिघांसन्तौ धनञ्जयवृकोदरौ । समार्च्छ-
न्मामका युद्धे कथं सञ्जय शंस मे ॥ १७ ॥ सिन्धुराजवधेनेमे
घटोत्कचवधेन ते । अमर्षिताः सुसंरब्धा रणञ्चक्रुः कथं निशि १८
सञ्जय-उवाच । हते घटोत्कचे राजन् कर्णेन निशि राक्षसे ।
प्रणदत्सु च हृष्टेषु तावकेषु युयुत्सुषु ॥ १९ ॥ आपतत्सु च वेगेन
वध्यमाने बलेऽपि च । विगाढायां रजन्याञ्च राजा दैन्यं परङ्गतः २०

करतेहुए, जबाड़ोंको चाटतेहुए व्याघ्रकी समान और मुख फाड़े हुए कालकी समान सेनामें घुसगये और बाणोंकी वर्षा करने लगे, उस समय पाण्डव सृञ्जय और पाञ्चालोंने द्रोणाचार्यके सामने पड़कर किसप्रकार चढाई की और टक्कर ली थी? १४-१५ और हे तात! मुझे बता, कि-दुर्योधन आदि, मेरे पुत्र अश्वत्थामा कर्ण तथा कृपाचार्य रणमें द्रोणाचार्यकी रक्षा कररहे थे, उससमय उन्होंने युद्धमें कैसा पराक्रम दिखाया था? ॥१६॥ हे सञ्जय! मुझे बता, कि-मेरे पुत्रोंने तथा योधाओंने द्रोणाचार्यको मार डालना चाहनेवाले भीम और अर्जुनके साथ रणमें किसप्रकार युद्ध किया था? ॥१७॥ और सिंधुराज जयद्रथके मारे जानेसे कौरव तथा घटोत्कचके मारेजानेसे पाण्डव क्रोधमें भरकर आधी रात्रिके समय रणमें किसप्रकार लड़े थे? ॥१८॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजन्! जब रात्रिके समय कर्णने राक्षस घटोत्कचको मारडाला तब तुम्हारे युद्ध करना चाहनेवाले योधा हर्षमें भरकर गर्जना पर गर्जना करनेलगे वेगके साथ दौड़नेलगे और पांडवोंकी सेनाका नाश करनेलगे, वह घोर अन्धकारसे भरा आधी रातका समय था, उस समय राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दीन बनगये और

अब्रवीच्च महाबाहुर्भीमसेनमिदं वचः । आवारय महाबाहो धार्त्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ॥ २१ ॥ हैडिम्बस्य च घातेन मोहो मामाविशन्महान् । एवं भीमं समादिश्य स्वरथे समुपाविशत् ॥ २२ ॥ अश्रुपूर्णमुखो राजा निःश्वसंश्च पुनः पुनः । कश्मलं प्राविशद् घोरं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २३ ॥ तं तथा व्यथितं दृष्ट्वा कृष्णो वचनमब्रवीत् । मा व्यथां कुरु कौन्तेय नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥ २४ ॥ वैक्लव्यं भरतश्रेष्ठ यथा प्राकृतपूरुषे । उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व वह गुर्वीं धुरं विभो ॥ २५ ॥ त्वयि वैक्लव्यमापन्ने संशयो विजये भवेत् । श्रुत्वा कृष्णस्य वचनं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥२६॥ विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां कृष्णं वचनमब्रवीत् । विदिता मे महाबाहो धर्माणां परमा गतिः ॥ २७ ॥ ब्रह्महत्याफलं तस्य यः कृतं नावबुध्यते ।

महाबाहु युधिष्ठिरने भीमसेनसे कहा, कि–हे महाभुज भीम ! कौरवोंकी सेना हमारी सेनाका संहार कररही है,इसलिये उसको पीछेको हटा ॥ १६–२० ॥ मैं तो घटोत्कचके मारेजानेसे घबड़ा गया हूँ,इसलिये अब मुझसे कुछ नहीं होसकेगा, भीमसेनसे ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर रोते हुए तथा वारम्वार लम्बे साँस छोड़ते हुए अपने रथमें जा बैठे और कर्णके महापराक्रमको देखकर बड़े ही खिन्न होगये ॥ २१–२३ ॥ उस समय श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरको इस प्रकार खिन्न हुआ देखकर कहने लगे, कि–हे कुन्तीके पुत्र ! तुम खेद न करो, हे भरतसत्तम ! तुम सरीखे महापुरुषको साधारण मनुष्यकी समान विकल नहीं होना चाहिये, महाराज ! उठो खड़े होजाओ, युद्ध करो ! और महारणकी धुरा धारणकरो ॥ २४॥ २५ ॥ यदि तुम घबड़ाजाओगे तो विजय समय मे सन्देह ही रहेगा, कृष्णकी इस बातको सुनकर धर्मराज था १ ॥ दोनों हाथोंसे अपने दोनों नेत्रोंको पोंछडाला और सिंधुराजके कि–हे महाबाहो ! मैं धर्मोंके परम रहस्यको समझता

अस्माकं हि वनस्थानां हैडिम्बेन महात्मना ॥ २८ ॥ बालेनापि सता तेन कृतं सह्यं जनार्दन । अस्त्रहेतोर्गतं ज्ञात्वा पाण्डवं श्वेतवाहनम् ॥ २९ ॥ असौ कृष्ण महेष्वासः काम्यके मामुपस्थितः । उषितश्च सहास्माभिर्यावन्नासीद्धनञ्जयः ॥ ३७ ॥ गन्धमादनयात्रायां दुर्गेभ्यश्च स्म तारिताः । पाञ्चाली च परिश्रान्ता पृष्ठेनोढा महात्मना ॥ ३१ ॥ आरम्भाच्चैव युद्धानां यदेष कृतवान् प्रभो । मदर्थे दुष्करं कर्म कृतं तेन महाहवे ॥ ३२ ॥ स्वभावाद्या च मे प्रीतिः सहदेवे जनार्दन । सैव मे परमा प्रीती राक्षसेन्द्रे घटोत्कचे ॥ ३३ ॥ भक्तश्च मे महाबाहुः प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे । तेन विन्दामि वार्ष्णेय कश्मलं शोकतापितः ॥ ३४ ॥ पश्य सैन्यानि वार्ष्णेय द्राव्यमा-

हूँ ॥ २६-२७ ॥ जो मनुष्य अपने ऊपर कियेहुए उपकारोंको नहीं जानता है उसको ब्रह्महत्याका पाप लगता है, हे जनार्दन ! महात्मा घटोत्कच बालक था, तब भी जब हम वनमें रहते थे और अर्जुन अस्त्र लेनेको स्वर्गमें गया था, उस समय उसने हमारी सहायता की थी ॥२८॥२९॥ तथा हे कृष्ण ! जबतक अर्जुन हमारे पास नहीं आया तबतक यह महाधनुषधारी काम्यक वनमें आकर हमारे पास रहा था ॥ ३० ॥ और हम गन्धमादन पर्वतकी यात्रा करनेगये थे, उस समय उसने हमें कष्टोंमेंसे उबारा था तथा मार्गमें थकगये तब उसने द्रौपदीको अपनी पीठ पर चढालिया था ॥ ३१ ॥ और हे प्रभो ! वह युद्ध करनेमें प्रवीण था, उसने युद्ध किये थे और इस लडाईमें भी उसने मेरे लिये बडा कठिन पराक्रम किया है ॥ ३२ ॥ हे जनार्दन ! मेरी सहदेवके ऊपर जैसी स्वाभाविक प्रीति है, ऐसी ही प्रीति राक्षसराज घटोत्कचके ऊपर भी थी ३३ वह महाबाहु मेरा परमभक्त था, मैं उसको प्यारा था और वह मुझे प्यारा था, इसलिये हे वृष्णिवंशी कृष्ण ! उसके मारे जानेसे मुझे बडा ही शोक होरहा है और इसलिये ही मैं खिन्न होरहा

णानि कौरवैः । द्रोणकर्णौ च संयत्तौ पश्य युद्धे महारथी ॥३५॥ निशीथे पाण्डवं सैन्यमेतत् सैन्यप्रमर्दितम् । गजाभ्यामिव मत्ताभ्यां यथा नलवनं महत् ॥ ३६ अनादृत्य बलं बाह्वोर्भीमसेनस्य माधव । चित्रास्त्रताञ्च पार्थस्य विक्रमन्ति स्म कौरवाः ॥ ३७ ॥ एष द्रोणश्च कर्णश्च राजा चैव सुयोधनः । निहत्य राक्षसं युद्धे हृष्टा नर्दन्ति संयुगे ॥ ३८ ॥ कथं चास्मासु जीवत्सु त्वयि चैव जनार्दन । हैडिम्बिः प्राप्तवान् मृत्युं सूतपुत्रेण सङ्गतः ॥ ३९ ॥ कदर्थीकृत्य नः सर्वान् पश्यतः सव्यसाचिनः । निहतो राक्षसः कृष्ण भैमसेनिर्महाबलः ॥ ४० ॥ यदाभिमन्युर्निहतो धार्त्तराष्ट्रैर्दुरात्मभिः । नासीत्तत्र रणे कृष्ण सव्यसाची महारथः ॥४१॥ निरुद्धाश्च वयं सर्वे सैन्धवेन दुरात्मना । निमित्तमभवद् द्रोणः

हूँ ॥३४॥ हे वृष्णिवंशी कृष्ण! कौरव हमारी सेनाओंको रणमेंसे भगारहे हैं, वह देखो और महारथी कर्ण तथा द्रोणाचार्य,उद्यत होकर युद्धमें कैसे घूमरहे हैं, उनको भी देखिये ॥ ३५ ॥ जैसे महामदमत्त दो हाथी बड़ेभारी नलके वनको कुचल कर चूरा कर डालते हैं तैसे ही कौरवोंकी सेना हमारी सेनाको बहुत ही कुचल रही है ॥ ३६ ॥ हे माधव ! कौरव भीमसेनके बाहुबलका तथा अर्जुनके विचित्र आयुधोंका अनादर करके देखो कैसा पराक्रम कररहे हैं ? ॥३७॥ यह द्रोण, कर्ण और राजा दुर्योधन रणमें राक्षस घटोत्कचको मारकर हर्षसे लडतेहुए रणभूमिमें कैसे गाज रहे हैं ? यह भी देखिये ॥३८॥ हे जनार्दन! हमारे और तुम्हारे जीतेहुए हिडिम्बाका पुत्र घटोत्कच कर्णके साथ लडताहुआ कैसे मारागया ? ॥३९॥ हे कृष्ण ! हम सर्वोंका अनादर करके महाबली घटोत्कचको कर्णने अर्जुनके सामने ही मारडाला है ॥४०॥ हे कृष्ण ! जिस समय दुष्टात्मा कौरवोंने अभिमन्युको मारा था, उस समय तो रणमें महारथी अर्जुन था ही नहीं ॥ ४१ ॥ और

सपुत्रस्तत्र कर्मणि ॥ ४२ ॥ उपदिष्टो वधोपायः कर्णस्य गुरुणा स्वयम् । व्यायच्छतश्च खड्गेन द्विधा खड्गञ्चकार ह ॥ ४३ ॥ व्यसने वर्त्तमानस्य कृतवर्मा नृशंसवत् । अश्वान् जघान सहसा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ ४४ ॥ तथेतरे महेष्वासाः सौभद्रं युध्यपातयन् । अल्पे च कारणे कृष्ण हतो गाण्डीवधन्वना ॥ ४५ ॥ सैन्धवो यादवश्रेष्ठ तत्तु नातिप्रियं मम । यदि शत्रुवधो न्याय्यो भवेत् कर्त्तुञ्च पाण्डवैः ॥ ४६ ॥ द्रोणकर्णौ रणे पूर्वं हन्तव्याविति मे मतिः । एतौ मूलं हि दुःखानामस्माकं पुरुषर्षभ ॥४७ ॥ एतौ रणे समासाद्य समाश्वस्तः सुयोधनः । यत्र वध्यो भवेद्द

हमें तो सिंधुराज जयद्रथने रोकरक्खा था,इसलिये ही द्रोणाचार्यने तथा अश्वत्थामाने उसको मारडाला था ॥ ४२ ॥ और गुरु द्रोणाचार्यने अपने आप ही अभिमन्युको मारडालनेका उपाय कर्णको बताया था, कर्णने तलवारका प्रहार करके युद्ध करतेहुए अभिमन्युकी तलवारके दो टुकड़े करडाले थे और अभिमन्यु तलवारसे भी हीन होगया था ॥ ४३ ॥ इस सङ्कटके समयका अवसर पाकर कृतवर्माने क्रूरकी समान अभिमन्युके रथके घोड़ोंको, दोनों करवटोंके रक्षकोंको और सारथिको मारडाला था ॥४४॥ तथा दूसरे बड़े २ धनुषधारी योधाओंने सुभद्राके पुत्रको युद्धमें घेरकर मारडाला था,इसमें अकेले जयद्रथका ही बडाभारी अपराध नहीं था,तो भी गाण्डीवधनुषधारी अर्जुनने एक जरासे कारणके लिये जयद्रथको मारडाला, यह मुझे अच्छा नहीं लगा, तो भी यदि शत्रुओंको मारडालना नीतिके अनुकूल माना जाता हो तो मेरी समझमें पाण्डवोंको पहले इस लड़ाईमें कर्णको और द्रोणाचार्यको मारडालना चाहिये था, क्योंकि-हे पुरुषश्रेष्ठ ! ये दोनों ही हमारे दुःखका मूल-कारण हैं ॥ ४५-४७ ॥ और दुर्योधन रणमें इन दोनोंकी सहातासे निर्भय होकर प्रसन्न रहता है,जहाँ

द्रोणः सूतपुत्रश्च सानुगः ॥ ४८ ॥ तत्रावधीन्महाबाहुः सैन्धवं दूरवासिनम् । अवश्यन्तु मया कार्यः सूतपुत्रस्य निग्रहः ॥ ४९ ॥ ततो यास्याम्यहं वीर स्वयं कर्णं जिघांसया । भीमसेनो महाबाहुर्द्रोणानीकेन सङ्गतः ॥ ५० ॥ एवमुक्त्वा ययौ तूर्णं त्वरमाणो युधिष्ठिरः । स विस्फार्य महच्चापं शंखं प्रध्माप्य भैरवम् ॥५१॥ ततो रथसहस्रेण गजानाञ्च शतैस्त्रिभिः । वाजिभिः पंचसाहस्रैः पञ्चालैः सप्रभद्रकैः ॥ ५२ ॥ वृतः शिखण्डी त्वरितो राजानं पृष्ठतोऽन्वयात् । ततो भेरीः समाजघ्नुः शंखान् दध्मुश्च दंशिताः ॥ ५३ ॥ पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव युधिष्ठिरपुरोगमाः । ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्वासुदेवो धनञ्जयम् ॥ ५४ ॥ एष प्रयाति त्वरितः क्रोधाविष्टो युधिष्ठिरः । जिघांसुः सूतपुत्रस्य तस्योपेक्षा न युज्यते ॥ ५५ ॥

द्रोणाचार्य तथा अनुचरों सहित सूतपुत्र कर्ण मारने योग्य थे तहाँ उनको न मारकर महाबाहु अर्जुनने दूर रहनेवाले सिन्धुराजको मारडाला, परन्तु धर्मानुसार विचार किया जाय तो सूतपुत्र कर्ण मारने योग्य है॥४८-४९॥ इसलिये हे वीर कृष्ण! मैं स्वयं कर्णको मारनेके लिये जाऊँगा और महाबाहु भीमसेन द्रोणाचार्यकी सेनाके साथ लड़रहा है, भले ही लड़ता रहे ॥५०॥ ऐसा कहते२ राजा युधिष्ठिर बड़ेभारी धनुष पर टङ्कार देकर भयानकरूपसे शङ्खनाद करते हुए शीघ्रताके साथ कर्णके साथ लड़नेको चल दिये ॥ ५१ ॥ इस समय शिखंडी एक हजार रथ, तीन हजार हाथी, पाँच हजार घोड़े तथा प्रभद्रक और पांचाल देशके योधाओंको साथमें लेकर राजा युधिष्ठिरके पीछे२ गया, युधिष्ठिर आदि कवचधारी पाण्डवोंके तथा पांचालोंके योधा भेरी और शङ्ख बजानेलगे, इसी समय महाबाहु वासुदेवके पुत्र श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, कि-५२-५४ यह युधिष्ठिर सूतपुत्र कर्णको मारनेके लिये क्रोधमें भरकर बड़ी शीघ्रतासे उसके साथ लड़नेको जारहे हैं, परन्तु इनको

एवमुक्त्वा हृषीकेशः शीघ्रमश्वानचोदयत् । दूरं प्रयान्तं राजानमन्वगच्छज्जनार्दनः ॥ ५६ ॥ तं दृष्ट्वा सहसा यान्तं सूतपुत्रजिघांसया । शोकोपहतसङ्कल्पं दह्यमानमिवाग्निना ॥ ५७ ॥ अभिगम्याब्रवीद्व्यासो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । व्यास उवाच । कर्णमासाद्य संग्रामे दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥ ५८ ॥ सव्यसाचिवधाकांक्षी शक्ति रक्षितवान् हि सः । न चागाद् द्वैरथं जिष्णुर्दिष्ट्या तेन महारणे ॥ ५९ ॥ सृजेतां स्पर्द्धिनावेतौ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वतः । वध्यमानेषु चास्त्रेषु पीडितः सूतनन्दनः ॥ ६० ॥ वासवीं समरे शक्ति ध्रुवं मुञ्चेद्युधिष्ठिर । ततो भवेत्ते व्यसनं घोरं भरतसत्तम६१ दिष्ट्या रक्षो हतं युद्धे सूतपुत्रेण मानद । वासवीं कारणं कृत्वा

अकेला छोडना ठीक नहीं है५५अर्जुनसे ऐसा कहकर हृषीकेश श्रीकृष्णने घोड़ोंको शीघ्रताके साथ हाँका और दूर पहुँचे हुए राजा युधिष्ठिरको पकडलिया ॥५६॥ इतनेमें ही शोकके कारण जिनका ऐसा सङ्कल्प हुआ था और मानो अग्निसे जलरहे हों ऐसे सन्तप्त हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिरको सूतपुत्र कर्णका नाश करनेके लिये वेगसे दौड़तेहुए देखकर व्यासजी उनके पास गये और युधिष्ठिरसे कहनेलगे ॥५७॥ व्यासजीने कहा, कि—अर्जुन संग्राममें कर्णके साथ युद्ध करने पर भी जीवित है, यह बहुत ही अच्छा हुआ है ॥ ५८ ॥ कर्णने अर्जुनको मारडालनेकी इच्छासे शक्ति रख छोड़ी थी,परन्तु अर्जुन महारणमें उसके साथ द्विरथ युद्ध करनेको नहीं आया, यह भी अच्छा ही किया ॥५९॥ हे युधिष्ठिर ! दोनों स्पर्धा करनेवाले योधा चारों ओरको दिव्य अस्त्रोंका प्रहार करते और जब अस्त्रोंका नाश होजाता तब सूतपुत्र कर्ण अकुला कर अवश्य ही इन्द्रकी दी हुई शक्तिको रणमें छोड़ता तो हे भरतसत्तम युधिष्ठिर ! उससे तुम महादुःखमें आपडते ॥ ६०-६१ ॥ इसलिये हे सन्मान करनेवाले राजन् ! कर्णने युद्धमें राक्षस

कालेनोपहतो ह्यसौ ॥ ६२ ॥ तथैव करणाद्रक्षो निहतं तात संयुगे । मा क्रुधो भरतश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ॥६३॥प्राणिनामिह सर्वेषामेषा निष्ठा युधिष्ठिर । भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पार्थिवैश्च महात्मभिः ॥ ६४ ॥ कौरवान् समरे सर्वान्प्रतियुध्यस्व भारत । पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति ॥६५॥नित्यञ्च पुरुषव्याघ्र धर्ममेव विचिन्तय । आनृशंस्यं तपो दानं क्षमां सत्यञ्च पाण्डव ॥ ६६ ॥ सेवेथाः परमप्रीतो यतो धर्मस्ततो जयः । इत्युक्त्वा पाण्डवं व्यासस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे
व्यासवाक्ये त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

॥ समाप्तञ्च घटोत्कचवधपर्व ॥

घटोत्कचको मारडाला, यह भी बहुत अच्छा हुआ और कालने ही इन्द्रकी शक्तिसे उसका नाश कराया है, उसका नाश शक्तिसे ही रचा गया था ॥ ६२ ॥ हे तात ! यह राक्षस रणमें तुम्हारे हितके लिये ही मरा है, इसलिये हे भरतसत्तम राजन् ! तुम क्रोध न करो और शोकको त्यागदो ॥ ६३ ॥ सब प्राणियोंकी अन्तमें यही गति होनी है, इसलिये हे भरतवंशी राजन् ! तुम सब महात्मा भाइयोंके और राजाओंके साथ रहकर इस लड़ाईमें कौरवोंके साथ युद्ध करो, हे तात ! आजसे पाँचवें दिन सब राज्य तुम्हारे वशमें होजायगा ॥६४ ॥ हे पुरुषोंमें व्याघ्रसमान युधिष्ठिर ! तू नित्य धर्मका ही मनन कर और दयालुता,तप दान, क्षमा तथा सत्यका परम प्रेमसे सेवन कर 'यतो धर्मस्ततो जयः' जहाँ धर्म होता है उधरकी ही जय होती है, इस प्रकार धर्मराजसे कहकर भगवान् व्यासजी तहाँ ही अन्तर्धान होगये ॥ ६६—६७ ॥ एक सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८३ ॥ छ ॥

अथ द्रोणवधपर्व ।

सञ्जय उवाच । व्यासेनैवमथोक्तस्तु धर्मराजो युधिष्ठिरः । स्वयं कर्णवधाद्वीरो निवृत्तो भरतर्षभ ॥ १ ॥ घटोत्कचे तु निहते सूतपुत्रेण तां निशाम् । दुःखामर्षवशं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिर २ दृष्ट्वा भीमेन महतीं वार्यमाणां चमून्तव । धृष्टद्युम्नमुवाचेदं कुम्भयोनिं निवारय ॥ ३ ॥ त्वं हि द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् । सशरः कवची खड्गी धन्वी च परतापनः ॥४॥ अभिद्रव रणे हृष्टो न च ते भीः कथञ्चन । जनमेजयः शिखण्डी च दौर्मुखिश्च यशोधरः ॥ ५ ॥ अभिद्रवन्तु संहृष्टा कुम्भयोनिं समन्ततः । नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ६ ॥ द्रुपदश्च विराटश्च पुत्रभ्रातृसमन्वितौ । सात्यकिः केकयाश्चैव पांडवश्च

द्रोणवधपर्व ।

सञ्जय कहता है, कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! व्यासजी की बात सुनकर वीर धर्मराज युधिष्ठिरने स्वयं कर्णको मारनेका विचार छोड़दिया ॥ १ ॥ और उस रातमें कर्णने घटोत्कचको मारडाला था, इसलिये दुःख और क्रोधके वशमें हुए युधिष्ठिरने, भीमसेनको तुम्हारी बड़ीभारी सेनाको भगाते हुए देखकर धृष्टद्युम्नसे कहा, तू रणमें द्रोणाचार्यको पीछेको हटा ॥ २॥ ३ ॥ तू द्रोणाचार्यका नाश करनेके लिये बाण, कवच, तलवार और धनुषके सहित अग्निमेंसे उत्पन्न हुआ है और तू शत्रुको सन्ताप देनेवाला है ४ इसलिये प्रसन्न होता हुआ द्रोणाचार्यके सामने जा, तू किसी प्रकारका डर न कर और जनमेजय, शिखण्डी दुर्मुखका पुत्र यशोधर, नकुल सहदेव द्रौपदीके पुत्र और प्रभद्रक योधा हर्षमें भरेहुए चारों ओरसे द्रोणके ऊपर चढ़ायी करें ॥ ५ ॥ ६ ॥ और द्रुपद्,विराट, उसके भाई और पुत्र, सात्यकी, केकय राजे और पाण्डुपुत्र अर्जुन भी द्रोणका नाश करनेको शीघ्र ही द्रोणके ऊपर

धनञ्जयः ॥७॥ अभिद्रवन्तु वेगेन कुम्भयोनिजिघांसया । तथैव
रथिनः सर्वे हस्त्यश्वं यच्च किंचन ॥ ८ ॥ पादाताश्च रणे द्रोणं
पातयन्तु महारथम् । तथाज्ञप्तास्तु ते सर्वे पाण्डवेन महात्मना ९
अभ्यद्रवन्त वेगेन कुम्भयोनिवधेप्सया । आगच्छतस्तान् सहसा
सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ॥ १० ॥ प्रतिजग्राह समरे द्रोणः शस्त्र-
भृताम्वरः । ततो दुर्योधनो राजा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ॥ ११ ॥
अभ्यद्रवत् ससंक्रुद्ध इच्छन् द्रोणस्य जीवितम् । ततः प्रववृते युद्धं
श्रान्तवाहनसैनिकम् ॥ १२ ॥ पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामित-
रेतरम् । निद्रान्धास्ते महाराज परिश्रान्ताश्च संयुगे ॥१३॥ नाभ्य-
जानन्त समरे कांचिच्चेष्टां महारथाः । त्रियामा रजनी चैव घोररूपा
भयानका ॥ १४ ॥ सहस्रयामप्रतिमा बभूव प्राणहारिणी ।
वध्यतां च तथा तेषां क्षतानां च विशेषतः ॥ १५ ॥ अर्द्धरात्रिः

चढ़ायी करें, सब रथी, हाथीसवार, घुड़सवार और पैदल भी महारथी द्रोणके ऊपर चढ़ायी करके उनका नाश करें, इसप्रकार महात्मा पाण्डपुत्र धर्मराजके आज्ञा देते ही पाण्डवोंके सब योधा द्रोणका नाश करनेके लिये बड़े वेगसे धावा लेकर गये और शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य पूर्ण प्रयत्नके साथ एकायकी सन्मुख आतेहुए पाण्डवोंके सामनेको दौडे और राजा दुर्योधन द्रोणाचार्यकी रक्षा करनेकी इच्छासे क्रोधमें भरकर सब राजसमाजके सहित पाण्डवोंके ऊपरको दौडा, परस्पर हुंकार करते पाण्डव और कौरवोंमें फिर युद्ध आरम्भ होगया, हे महाराज ! इस समय योधा और वाहन थकगये थे, बड़े२ महारथी भी निद्राके वशीभूत होजानेसे अन्धेसे हुए थकरहे थे और अब क्या करना चाहिये, यह बात उनकी समझमें नहीं आती थी हजारों प्राणियोंका संहार करनेवाली तीन पहरकी वह घोर अन्धकारवाली रात्रि, आपसमें युद्ध करते और विशेषरूपसे घायल हुए तथा निद्राके कारण

समाजज्ञे निद्रान्धानां विशेषतः । सर्वे ह्यासन् निरुत्साहाः क्षत्रिया दीनचेतसः ॥ १६ ॥ तव सैन्ये परेषाञ्च गतास्त्रा विगतेषवः । ते तदा पारयन्तश्च ह्रीमन्तश्च विशेषतः ॥ १७ ॥ स्वधर्ममनुपश्यन्तो न जहुः स्वामनीकिनीम् । शस्त्राण्यन्ये समुत्सृज्य निद्रान्धाः शेरते जनाः ॥ १८ ॥ गजेष्वन्ये रथेष्वन्ये हयेष्वन्ये च भारत । निद्रान्धा नो बुबुधिरे कांचिच्चेष्टां नराधिप ॥ १९ ॥ तानन्ये समरे योधा प्रेषयन्ति यमक्षयम् । स्वप्नायमानास्त्वपरे परानतिविचेतसः ॥ २० ॥ आत्मानं समरे जघ्नुः स्वानेव च परानपि । नानावाचो विमुञ्चन्तो निद्रांधास्ते महारणे ॥ २१ ॥ अस्माकन्तु महाराज परेभ्यो बहवो जनाः । योद्धव्यमिति तिष्ठन्तो

अन्धेसे बनेहुए योधाओंको हजारों पहरकेसी मालूम होरही थी, जब आधी रात बीत गयी तब सब क्षत्रिय योधा निद्रासे अन्धे होगये.उनका उत्साह जाता रहा और हृदयमें हीनता छागयी७–१६ तुम्हारे और शत्रुओंके योधाओंके पास बाण नहीं रहे थे,तो भी वे विनीत होनेके कारण अपने क्षत्रियधर्मको याद करके सेनाको छोड़कर नहीं गये थे, किन्तु ऐसी दशामें भी वे लड़ ही रहे थे, कितने ही साधारण मनुष्य निद्रासे घिरजानेके कारण अस्त्रोंको दूर फेंककर सोगये थे ॥ १७–१८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! कितने ही योधा रथों पर,कितने ही हाथियों पर और कितने ही घोड़ोंके ऊपर निद्रासे अन्धे होकर सोरहे थे, अब क्या करना चाहिये, यह उनको सूझता ही नहीं था ॥ १९ ॥ उस समय सामनेवाले योधा रणमें निद्राके वशीभूतहुए तथा अचेत पड़ेहुए उन योधाओंको यमलोकमें भेजरहे थे२० निद्रासे अन्धे हुए कितने ही योधा महारणमें अनेकों बकवादें कररहे थे और गड़बड़ीमें अपने पक्षका, दूसरोंका तथा स्वयं अपना भी नाश कररहे थे२१ निद्राके कारण जिनके लाल२ नेत्र होरहे थे ऐसे हमारे बहुतसे योधा, शत्रुओंके

निद्रासंरक्तलोचनाः ॥२२॥ संसर्पन्तो रणे केचिन्निद्रान्धास्ते परस्परम् । जघ्नुः शूरा रणे शूरांस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ २३ ॥ हन्यमानमथात्मानं परेभ्यो बहवो जनाः । नाभ्यजानन्त समरे निद्रया मोहिता भृशम् ॥२४॥ तेषामेतादृशीं चेष्टां विज्ञाय पुरुषर्षभः । उवाच वाक्यं बीभत्सुरुच्चैः सन्नादयदिशः ॥ २५ ॥ श्रान्ता भवन्तो निद्रान्धाः सर्व एव सवाहनाः । तमसा च वृते सैन्ये रजसा बहुलेन च ॥ २६ ॥ ते यूयं यदि मन्यध्वमुपारमत सैनिकाः । निमीलयत चात्रैव रणभूमौ मुहूर्त्तकम् ॥ २७ ॥ ततो विनिद्रा विश्रान्ताश्चन्द्रमस्युदिते पुनः । संसाधयिष्यथान्योन्यं संग्रामं कुरुपाण्डवाः ॥ २८ ॥ तद्वचः सर्वधर्मज्ञा धार्मिकस्य विशा-

---

साथ लड़ना ही चाहिये, ऐसा विचार कर रणमें खड़े रहे थे २२ कितने ही वीर योधा निद्रासे अन्धे होजाने पर भी उस घोर अन्धकारमें दौड़२कर शत्रुओंका नाश कररहे थे ॥ २३ ॥ और कितने ही योधा तो रणभूमिमें निद्रासे ऐसे अन्धे बनगये थे कि शत्रु उनको मारते थे तो भी उनको कुछ मालूम नहीं होता था ॥ २४ ॥ इस समय पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुन योधाओंकी ऐसी दशाको देखकर ऊँचे स्वरसे दिशाओंको गुञ्जारता हुआ कहने लगा कि—॥२५॥ अरे योधाओं ! तुम सब तथा तुम्हारे वाहन भी थक गये हैं तुम्हें निद्राने घेर लिया है और अन्धकारसे तथा बड़ी भारी धूलिसे सेना ढक गयी है अर्थात् तुम एक दूसरेको देख भी नहीं सकते हो२६ इसलिये हे योधाओं ! तुम मेरा कहना मानो तो अब लड़ना बन्द करदो और दो घड़ी को इस रणभूमिमें ही सोजाओ॥२७॥ तुम जब थकावटसे रहित होकर जागो और आकाशमें चन्द्रमाका उदय होजाय, तब कौरव और पाण्डव फिर परस्पर युद्ध करने लगना ॥ २८ ॥ हे राजन् ! धर्मात्मा अर्जुनकी बात सब धर्मवेत्ता योधाओंने मानली आपसमें एक दूसरेको बुलाने लगे और हे कर्ण

म्पते । अरोचयन्त सैन्यानि तदा चान्योन्यमब्रुवन् ॥ २९ ॥ चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति राजन् दुर्योधनेति च । उपारमत पाण्डूनां विरता हि वरूथिनी ॥३०॥ तथा विक्रोशमानस्य फाल्गुनस्य ततस्ततः । उपारमत पाण्डूनां सेना तव च भारत ॥ ३१ ॥ तामस्य वाचं देवाश्च ऋषयश्च महात्मनः । सर्वसैन्यानि चाक्षुद्रां प्रहृष्टाः प्रत्यपूजयन् ॥३२॥ तत् सम्पूज्य वचोऽक्रूरं सर्वसैन्यानि भारत । मुहूर्त्तमस्वपन्राजन् श्रान्तानि भरतर्षभ ॥ ३३ ॥ सा तु सम्प्राप्य विश्रामं ध्वजिनी तव भारत । सुखमाप्तवती वीरमर्जुनं प्रत्यपूजयत् ॥ ३४ ॥ त्वयि वेदास्तथास्त्राणि त्वयि बुद्धिपराक्रमौ । धर्मस्त्वयि महाबाहो दया भूतेषु चानघ ॥३५॥ यच्चाश्वस्तास्तवेच्छामः

हे कर्ण ! हे दुर्योधन ! इसप्रकार कहनेलगे कि-पाण्डवोंकी थकी हुई सेना विश्राम लेरही है, इसलिये अब हमारी थकीहुई सेनाको भी विश्राम करना चाहिये, ऐसे ही दूसरी ओर अर्जुन भी अपनी सेनासे विश्राम लेनेके लिये ऊँचे स्वरसे कहनेलगा, इसलिये हे भरतवंशी राजन् ! पाण्डवोंकी तथा तुम्हारी दोनोंकी सेना विश्राम लेने लगीं ॥२९-३१॥ महात्मा अर्जुनकी इस गौरव भरी बातकी देवता, महर्षि तथा सब सेनाओंने हर्षके साथ सराहना की ।३२। और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! सब सेनायें अर्जुनकी दयाभरी बातको मानकर थकजानेके कारण थकावटको दूर करनेके लिये दो घडी निद्रा लेनेको तयार होगयीं ॥३३॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तुम्हारी थकीहुई सेना भी विश्राम मिल जानेसे अर्जुनकी प्रशंसा करती हुई कहनेलगी, कि-॥३३। हे महाबाहु अर्जुन ! हे निर्दोष राजन् ! वेद, अस्त्र, बुद्धि, पराक्रम और धर्म तुझमें ही रहते हैं और तू प्राणियोंके ऊपर दया करता है ॥ ३५ ॥ हे अर्जुन ! हम शान्ति पाकर सुखी हुए हैं, इसलिये हम ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं, कि-तेरा कल्याण हो, हे वीर अर्जुन ! तेरे

शर्म पार्थ तदस्तु ते । मनसश्च प्रियानर्थान् वीर क्षिप्रमवाप्नुहि ॥३६॥ इति ते तं नरव्याघ्रं प्रशंसन्तो महारथाः । निद्रया समवाक्षिप्तास्तूष्णीमासन् विशाम्पते ॥३७॥ अश्वपृष्ठेषु चाप्यन्ये रथनीडेषु चापरे । गजस्कंधगताश्चान्ये शेरते चापरे क्षितौ ॥३८॥ सायुधाः सगदाश्चैव सखड्गाः सपरश्वधाः । सप्रासकवचाश्चान्ये नराः सुप्ताः पृथक् पृथक् ॥३९॥ गजास्ते पन्नगाभोगैर्हस्तैर्भूरेणुगुण्ठितैः । निद्रान्धा वसुधाश्चक्रुर्घ्राणनिःश्वासशीतलाम् ॥४०॥ सुप्ताः शुशुभिरे तत्र निःश्वसन्तो महीतले । विकीर्णा गिरयो यद्वन्निःश्वसद्भिर्महोरगैः ॥४१॥ समां च विषमाञ्चक्रुः खुराग्रैर्विक्षतां महीम् । हयाः काञ्चनयोक्त्रास्ते केसरालम्बिभिर्युगैः ॥ ४२ ॥ सुषुपुस्तत्र राजेन्द्र युक्ता वाहेषु

मनके मनोरथ शीघ्र ही पूरे हों ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार महारथी योधा अर्जुनकी प्रशंसा करते२ निद्राके वशमें होकर चुपचुप सोगये ॥ ३७ ॥ कितने ही घोडोंकी पीठ पर, कितने ही रथोंमें, कितने ही हाथियोंके कंधों पर और कितने ही पृथ्वी पर सोगये और कितने ही योधा हथियारोंके सहित, कितने ही हाथमें गदा लियेहुए कितने ही तलवारके साथ, कितने ही फरसेके साथ, कितने ही प्रास और कितने कवचके सहित अलग२ पृथिवी पर सोगये ॥३८॥३९॥ निद्रासे अन्धे बनेहुए हाथी भी सर्पके शरीरकी समान और पृथिवीकी धूलिसे सनीहुई सूँडसे नासिकाके द्वारा साँस लेकर तपीहुई पृथिवीको शीतल करनेलगे ॥ ४० ॥ पृथिवी पर सोये हुए तथा साँसें छोड़तेहुए वे हाथी इस समय लंबी २ फुङ्कारें भरतेहुए बड़े सर्पोंवाले अलग २ पड़ेहुए पहाड़ोंसे दीखते थे ४१ सुनहरी साजवाले घोड़ोंने उस रणकी सपाट भूमिको खुरके अग्रभागसे खोदकर ऊँचीनीची और बेडौल करडाला, हे राजेन्द्र ! रथोंमें जुतेहुए वे घोड़े ग्रीवाके बालों पर लटकती हुई डोरियोंके साथ रणभूमिमें सोगये, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! इसप्रकार अत्यन्त

सर्वशः । एवं हयाश्च नागाश्च योधाश्च भरतर्षभ । युद्धाद्विरम्य सुषुपुः श्रमेण महतान्विताः ॥ ४३ ॥ तत्तथा निद्रया मग्नमबोधं प्रास्वपद् भृशम् । कुशलैः शिल्पिभिर्न्यस्तं पटे चित्रमिवाद्भुतम् ४४ ते क्षत्रियाः कुण्डलिनो युवानः परस्परं सायकविक्षताङ्गाः । कुंभेषु लीनाः सुषुपुर्गजानां कुचेषु लग्ना इव कामिनीनाम् ॥ ४५ ॥ ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपांडुना । नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलंकृता ॥ ४६ ॥ दशशताक्षककुब्दरिनिःसृतः किरणकेशरभासुरपिञ्जरः । तिमिरवारणयूथविदारणः समुदियादुदयाचलकेसरी ॥ ४७ ॥ हरवृषोत्तमगात्रसमद्युतिः स्मरशरासनपूर्णसमप्रभः । नववधूस्मितचारुमनोहरः प्रविसृतः कुमुदाकरबान्धवः ४८

थकेहुए घोड़े हाथी और योधा युद्धसे विराम पाकर रणभूमिमें सोगये थे ॥४२॥४३॥ सेना जिस समय निद्रामें मग्न होकर कुछ भी चेत न हो इसप्रकार खूब निद्रा लेनेलगी, उस समय मानो चतुर कारीगरोंने चित्रपट पर अद्भुत चित्र बनादिया हो, ऐसी शोभा पाने लगी ॥४४॥ कुण्डलधारी तरुण क्षत्रिय, कि जिनके शरीर परस्परके बाणोंसे घायल होरहे थे, वे मानो कामिनियोंके कुचोंसे चिपटकर सोरहे हों इसप्रकार हाथियोंके कुम्भस्थलोंसे चिपट कर रणमें सोरहे थे ॥४५॥ दो घडी बीतजाने पर स्त्रीके कपोलतलकी समान पाण्डुरवर्ण, नेत्रोंको आनन्द देनेवाला तथा कुमुदिनीको खिलाने वाला चन्द्रमा पूर्वदिशाको शोभा देताहुआ उदय हुआ ॥ ४६ ॥ किरणरूप सटा (ग्रीवाके केश) से चमकता, पीले रङ्गका, अन्धकाररूप हाथियोंके टोलेका नाश करनेवाला, उदयाचलका केसरी सिंहरूप चन्द्रमा पूर्वदिशारूप गुफामेंसे प्रकट हुआ ॥४७॥ और शङ्करके वृषभकी समान तथा कामदेवके पुष्पधनुषकी समान पूर्ण श्वेत वर्ण, नववधूके हास्यकी समान सुन्दर, कुमुदिनीके बान्धव तथा मनोहर भगवान चन्द्रमा आकाशमें राज्य करनेलगे ॥ ४८ ॥

ततो मुहूर्त्ताद्भगवान् पुरस्ताच्छशलक्षणः । अरुणां दर्शयामास ग्रसन् ज्योतिःप्रभां प्रभुः ॥ ४९ ॥ अरुणस्य च तस्यानुजातरूपसमप्रभम् । रश्मिजालं महच्चन्द्रो मन्दं मन्दमिवासृजत् ॥ ५० ॥ उत्सारयन्तः प्रभया तमस्ते चन्द्ररश्मयः । पर्यगच्छञ्छनैः सर्वा दिशः खञ्च क्षितिं तथा ॥ ५१ ॥ ततो मुहूर्त्ताद्भुवनं ज्योतिर्भूतमिवाभवत् । अप्रख्यमप्रकाशञ्च जगामाशु तमस्तथा ॥ ५२ ॥ प्रतिप्रकाशिते लोके दिवाभूते निशाकरे । विचेरुर्न विचेरुश्च राजन्नक्तञ्चरास्ततः ॥ ५३ ॥ बोध्यमानन्तु तत्सैन्यं राजंश्चन्द्रस्य रश्मिभिः । बुबुधे शतपत्राणां वनं सूर्यांशुभिर्यथा ॥ ५४ ॥ यथा चन्द्रोदयोद्धूतः क्षुभितः सागरोऽभवत् । तथा चन्द्रोदयोद्धूतः

एक मुहूर्तमें ताराओंके तेजको ग्रसते हुए तथा मृगलाञ्छनके अग्रभागमें लालिमाको दिखातेहुए सकल शुभ लक्षणोंवाले भगवान् चन्द्रदेव पूर्वदिशामें उदय होगये ॥ ४९ ॥ उन महान् चन्द्रदेवने रुपहली रङ्गके बड़ेभारी किरणमण्डलको धीरे२ आकाशमें फैलाना आरम्भ करदिया ॥५०॥ और चन्द्रमाकी किरणें अपनी कान्तिसे अन्धकारको दूर करके धीरे२ दिशाओंमें, कोनोंमें, आकाशमें और पृथिवी पर फैलगयीं ॥ ५१ ॥ इस कारण दो घडीमें सब जगत् प्रकाशमय होगया और अन्धकार नामरहित होकर तुरन्त भागगया ॥५२॥ इसप्रकार चन्द्रमाके उदय होने पर सब जगत्में दिनकी समान उजाला होगया, उस समय निशाचरोंका सञ्चार बन्द होगया तथा कितने ही निशाचर फिरते भी थे, हे महाराज! सूर्यकी किरणोंकी कान्तिसे जैसे कमलोंका वन खिलजाता है तैसे ही चन्द्रमाकी किरणोंसे सेना जागउठी ॥ ५३-५४ ॥ जैसे समुद्र चन्द्रमाको देख क्षुब्ध होकर उछलने लगता है तैसे ही सेनारूप समुद्र भी चन्द्रमाका उदय होने पर उमरउठा ॥ ५५ ॥ और

स बभूव बलार्णवः ॥ ५५ ॥ ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव विशां पते। लोके लोकविनाशाय लोकं परमभीप्सताम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि रात्रियुद्धे सैन्यनिद्रायां
चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

सञ्जय उवाच। ततो दुर्योधनो द्रोणमभिगम्येदमब्रवीत्। अमर्षवशमापन्नो जनयन् हर्षतेजसी ॥ १ ॥ दुर्योधन उवाच। न मर्षणीयाः संग्रामे विश्रमन्तः श्रमान्विताः। सपत्ना ग्लानमनसो लब्धलक्षा विशेषतः ॥ २ ॥ यत्तु मर्षितमस्माभिर्भवतः प्रियकाम्यया। तत एते परिश्रान्ताः पाण्डवा बलवत्तराः ॥ ३ ॥ सर्वथा परिहीनाः स्म तेजसा च बलेन च। भवता पाल्यमानास्ते विवर्द्धन्ते पुनः पुनः ॥४॥ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वाणि ब्राह्मादीनि च यान्यपि। तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति भवत्येव विशेषतः ॥ ५ ॥

हे राजन्! पवित्र लोकोंको पानेकी इच्छावाले योधाओंने पृथ्वीके लोगोंका संहार करनेके लिये फिर युद्धका आरम्भ करदिया ।५६। एकसौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८४॥ ❀ ॥

सञ्जयने कहा, कि–हे राजा धृतराष्ट्र! जब सेना सोरही थी उस समय दुर्योधन द्रोणाचार्यके पास गया और क्रोधमें भरकर द्रोणको हर्ष तथा बल उत्पन्न करताहुआ बोला ॥१॥ दुर्योधनने कहा, कि–हे महाराज! शत्रु थक गये हैं, उनका उत्साह भङ्ग होगया है और वे विशेष कर हमारे दाँवमें आगये हैं, इसलिये अब आप उनको विश्राम करते हुए सहन न करिये अर्थात् उनकी मारकाट आरम्भ करदीजिये ॥ २ ॥ हम आज दिन तक जो२ बातें सहते चले आरहे हैं वह केवल इसलिये, कि–आपको बुरा न लगे, ये बलवान् पाण्डव लडते२ थकगये हैं और तेज तथा बलसे सर्वथा हीन होगये हैं, परन्तु आपकी रक्षासे ये बार२ बढजाते हैं ३–४ ब्रह्मास्त्र आदि जो दिव्य अस्त्र हैं वे सब विशेष कर आपके ही

न पाण्डवेया न वयं नान्ये लोके धनुर्द्धराः। युध्यमानस्य ते तुल्याः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥ ससुरासुरगन्धर्वानिमाँल्लोकान् द्विजोत्तम । सर्वास्त्रविद्भवान् हन्याद्दिव्यैरस्त्रैर्न संशयः ॥ ७ ॥ स भवान् मर्षयत्येतांस्त्वत्तो भीतान् विशेषतः । शिष्यत्वं वा पुरस्कृत्य मम वा मन्दभाग्यताम् ॥ ८ ॥ सञ्जय उवाच । एवमुद्धर्षितो द्रोणः कोपितश्चात्मजेन ते । समन्युरब्रवीद्राजन् दुर्योधनमिदं वचः ॥९॥ स्थविरः सन् परं शक्त्या घटे दुर्योधनाहवे । अतः परं मया कार्यं क्षुद्रं विजयगृद्धिना ॥ १० ॥ अनस्त्रविदयं सर्वो हन्तव्योऽस्त्रविदा जनः । यद्भवान् मन्यते चापि शुभं वा यदि वाशुभम् ११ तद्वै कर्त्तास्मि कौरव्य वचनात्तव नान्यथा । निहत्य सर्वपञ्चालान्

पास हैं, इस जगत्में पाण्डव, हम और दूसरे कोई भी धनुषधारी युद्ध करनेमें आपकी समान नहीं है, यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ ॥ ५–६ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! आप सब अस्त्रोंको जानते हैं, इसलिये तुम दिव्य अस्त्रोंसे सुर, असुर और गन्धर्वोंसहित तीनों लोकोंका नाश करसकते हो, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ परन्तु शिष्यभावके कारणसे अथवा मेरे मन्दभाग्यवश अपनेसे अत्यन्त भतभीत हुए पाण्डवोंको तुम मारते नहीं हो, किन्तु उनकी करतूतोंको सहते ही रहते हो ॥८। सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् ! इसप्रकार तुम्हारे पुत्रने द्रोणाचार्यको प्रसन्न किया और क्रोध भी दिलाया तब उन्होंने क्रोधमें भरकर दुर्योधनसे कहा, कि–॥९। हे दुर्योधन ! मैं बूढ़ा हूँ, तो भी युद्धमें शक्तिके अनुसार अच्छे प्रकारसे लडता हूँ, मैं सब अस्त्रोंको जानता हूँ, परन्तु विजयकी इच्छासे इन अस्त्रोंको न जाननेवाले सब योधाओंको यदि उन अस्त्रोंसे मारडालूँ तो इससे बढकर क्षुद्रकर्म मेरे लिये और कोई नहीं होगा, भला या बुरा जिस किसी भी कामको करनेके लिये तू मुझे अनुमति देगा ॥१०–११॥ उस कार्यको हे कुरुवंशी ! मैं

युद्धे कृत्वा पराक्रमम् ॥१२॥ विमोक्ष्ये कवचं राजन् सत्येनायुधमालभे । मन्यसे यच्च कौन्तेयमर्जुनं श्रान्तमाहवे ॥ १३ ॥ तस्य वीर्यं महाबाहो शृणु सत्येन कौरव । तं न देवा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः ॥ १४ ॥ उत्सहन्ते रणे जेतुं कुपितं सव्यसाचिनम् । खाण्डवे येन भगवान् प्रत्युद्यातः सुरेश्वरः १५ सायकैर्वारितश्चापि वर्षमाणो महात्मना । यक्षा नागास्तथा दैत्या ये चान्ये बलगर्विताः ॥१६॥ निहताः पुरुषेन्द्रेण तच्चापि विदितं तव । गन्धर्वा घोषयात्रायां चित्रसेनादयो जिताः ॥ १७ ॥ यूयं तैर्ह्रियमाणाश्च मोक्षिता दृढधन्वना । निवातकवचाश्चापि देवानां शत्रवस्तथा ॥ १८ ॥ सुरैरवध्याः संग्रामे तेन वीरेण निर्जिताः ।

करूँगा उसके विरुद्ध नहीं करूँगा, मैं रणमें सब पांचाल राजाओंका नाश करके पराक्रम दिखानेके बाद ही अपने कवचको उतारूँगा, इस विषयमें मैं तुझसे सत्य वचन कहकर अपने हाथमें हथियार उठाता हूँ, परन्तु हे महाबाहु दुर्योधन! तू जो यह समझता है कि-अर्जुन युद्धमें थकगया है ?॥१२-१३॥ मैं तुझे उसका पराक्रम सत्यभावसे बताता हूँ तू उसको सुन अर्जुन जब रणमें क्रोधमें भरजाता है उस समय देवता, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस भी उसको नहीं जीत सकते, खाण्डववनमें महात्मा अर्जुन भगवान् इन्द्रके सामने पडा था ॥१४-१५॥ और बाणोंका प्रहार करके इन्द्रको वर्षा करनेसे रोकदिया था और उस महापुरुषने बलसे घमण्डमें भरेहुए यक्ष, नाग और दूसरे दैत्योंका भी नाश किया था, यह तुझे मालूम ही है, जब चित्रसेन आदि गन्धर्व तुमको पकड कर लियेजाते थे उस समय भी दृढ धनुषधारी अर्जुनने उनको जीतलिया था और तुम्हें उनके हाथसे छुटालिया था, और देवताओंके शत्रु निवातकवच आदि, कि-जिनको देवता भी नहीं मारसकते थे उनको भी इस वीर पुरुषने जीतलिया था और हिरण्यपुरमें रहनेवाले

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ॥ १९ ॥ विजिग्ये पुरुषव्याघ्रः स शक्यो मानुषैः कथम् । प्रत्यक्षञ्चैव ते सर्वं यथा बलमिदं तव ॥ २० ॥ क्षपितं पाण्डुपुत्रेण चेष्टमानं विशाम्पते । सञ्जय उवाच । तं तथा वै प्रशंसन्तमर्जुनं कुपितस्तदा ॥ २१ ॥ द्रोणं तत्र सुतो राजन् पुनरेवेदमब्रवीत् । अहं दुःशासनः कर्णः शकुनिर्मातुलश्च मे ॥ २२ ॥ हनिष्यामोऽर्जुनं संख्ये द्वैधी कृत्वाद्य भारतीम् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भारद्वाजो हसन्निव ॥ २३ ॥ अन्ववर्त्तत राजानं स्वस्ति तेऽस्त्विति चाब्रवीत् । को हि गाण्डीवधन्वानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २४ ॥ अक्षयं क्षपयेत् कश्चित् क्षत्रियः क्षत्रियर्षभम् । तं न वित्तपतिर्नेन्द्रो न यमो न जलेश्वरः॥२५ नासुरोरगरक्षांसि क्षपयेयुः सहायुधम् । मूढास्त्वेवं प्रभाषन्ते यानी-

हजारों दानवोंको ॥ १६–१९ ॥ इस पुरुषसिंहने हरा दिया था, फिर उसको मनुष्य तो जीत ही कैसे सकते हैं ? हे राजन् ! हम सबोंके उद्योग करने पर भी अर्जुनने तेरे सामने तेरी सब सेनाका नाश करडाला है, सञ्जयने कहा है, कि–हे राजन् ! द्रोणाचार्य इसप्रकार अर्जुनकी प्रशंसा करनेलगे, उस समय तुम्हारा पुत्र कोपमें भरगया २०-२१ और हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र द्रोणाचार्यसे फिर यह बात कहनेलगा, कि–मैं दुःशासन, कर्ण और मेरा मामा शकुनि २२ आज भारती सेनाके दो भाग करके एक भागको अपने साथ ले जायँगे और अर्जुनको मारडालेंगे, दुर्योधनकी इस बातको सुनकर द्रोणाचार्यने मुसकराते हुए ॥२३॥ राजा दुर्योधनसे कहा, कि–तू ठीक कहता है परमात्मा तेरा मङ्गल करे, तेजसे जलते हुएसे गाण्डीव धनुषधारी क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ अविनाशी अर्जुनका कौनसा क्षत्रिय नाश करसकता है ? कुबेर, इन्द्र, यम, वरुण तथा असुर, नाग और राक्षस भी आयुधधारी अर्जुनका पराजय नहीं करसकते, इस लिये हे भरतवंशी राजन् ! जैसी बातें तू कररहा है ऐसी बातें

मान्यास्य भारत ॥२६॥ युद्धे ह्यर्जुनमासाद्य स्वस्तिमान् को व्रजेद्‌ गृहान् । त्वं तु सर्वाभिशङ्कित्वान्निष्ठुरः पापनिश्चयः ॥ २७ ॥ श्रेयसस्त्वद्धिते युक्तांस्तत्तद्वक्तुमिहेच्छसि । गच्छ त्वमपि कौन्तेयमात्मार्थे जहि मा चिरम् ॥ २८ ॥ त्वमप्याशंससे युद्धं कुलजः क्षत्रियो ह्यसि । इमान् किं क्षत्रियान् सर्वान् घातयिष्यस्यनागसः २९ त्वमस्य मूलं वैरस्य तस्मादासादयार्जुनम् । एष ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ ३० ॥ दुर्द्यूतदेवी गान्धारः प्रयात्वर्जुनमाहवे । एषोऽक्षकुशलो जिह्मो द्यूतकृत् कैतवः शठः ॥ ३१ ॥ देविता निकृतिप्राज्ञो युद्धे जेष्यति पाण्डवान् । त्वया कथितमत्यर्थं कर्णेन सह हृष्टवत् ॥ ३२ ॥ असकृच्छब्दवन्मोहाद्‌ धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः। अहञ्च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे ॥ ३३ ॥ पाण्डु-

मूर्ख किया करते हैं ॥ २४–२६ ॥ युद्धमें अर्जुनके सामने लड़नेको निकला हुआ कौनसा पुरुष कुशलके साथ अपने घरको लौट कर जासकता है ? और तेरे लिये कहूँ तो तू पापी, निष्ठुर और सबके ऊपर शङ्का करनेवाला है ॥ २७ ॥ तथा जो तेरा कल्याण करना चाहते हैं उनको तू निष्कारण ही उलाहना देता है, तू कुलीन क्षत्रिय है और युद्ध करनेकी अभिलाषा रखता है, परन्तु तू इन निरपराधी सब क्षत्रियोंका संहार क्यों करना चाहता है ? इस वैरका मूल कारण तो तू ही है, इसलिये तू ही कुन्तीपुत्र अर्जुनके सामने लड़नेको जा और हे गांधारीके पुत्र! यह तेरा मामा, कि–जो बुद्धिमान्, क्षत्रियके धर्मका पालन करनेवाला, कपटसे खेलनेवाला शठ, कपटी तथा फाँसे फैंकनेमें चतुर कहलाता है, उसको अर्जुनके सामने रणका जुआ खेलनेको भेज, वह कपटी, जुआरी और फाँसे फेंकनेमें चतुर है, इस लिये वह युद्धमें पाण्डवोंको हरादेगा! तूने कर्णके साथ रहकर मूर्खतावश, धृतराष्ट्रके सुनते हुए बड़े ही हर्षसे वारंवार बुद्धिहीनकी समान बड़े आवेशके

पुत्रान् हनिष्यामः सहिताः समरे त्रयः । इति ते कत्थमानस्य श्रुतं संसदि संसदि ॥ ३४ ॥ अनुतिष्ठ प्रतिज्ञां तां सत्यवाग्भव तैः सह । एष ते पाण्डवः शत्रुरविशंकोऽग्रतः स्थितः ॥ ३५ ॥ क्षत्रधर्ममवेक्षस्व श्लाघ्यस्तव वधो जयात् । दत्तं भुक्तमधीतञ्च प्राप्तमैश्वर्यमीप्सितम् ॥ ३६ ॥ कृतकृत्योऽनृणश्चासि मा भैर्युध्यस्व पाण्डवम् । इत्युक्त्वा समरे द्रोणो न्यवर्त्तत यतः परे । द्वैधीकृत्य ततः सेनां युद्धं समभवत्तदा ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्रोणदुर्योधन
संभाषणे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

सञ्जय उवाच । त्रिभागमात्रशेषायां रात्र्यां युद्धमवर्त्तत । कुरूणां पाण्डवानाञ्च संहृष्टानां विशाम्पते ॥ १ ॥ अथ चन्द्रप्रभां मुष्ण-

---

साथ कहा था, कि–हे तात ! मैं, कर्ण और मेरा भाई दुःशासन तीनों जने इकट्ठे होकर युद्धमें पाण्डवोंको मारडालेंगे, बीचसभामें तुझे ऐसी बडर करते हुए मैंने सुना है ॥ २८-३४ ॥ इसलिये अब तू उनको साथमें लेकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर और कही हुई बातको सच्ची कर, यह तेरा शत्रु पाण्डुपुत्र अर्जुन निःशङ्क होकर लड़नेके लिये सामने खड़ा है ॥ ३५ ॥ तू क्षत्रियके धर्मकी ओरको देखकर लड़नेको तयार होजा, तू अर्जुनके हाथसे माराजाय, यह जीत होनेसे अच्छा है, तूने दान किया है, ऐश्वर्य भोगा है, वेद शास्त्र पढ़े हैं और यथेष्ट वैभव भी पाया है, इससे तू कृतकृत्य ऋणरहित और सुखी है, इसलिये अब तू निडर होकर पाण्डुपुत्रके साथ युद्ध कर, इतना कहकर सेनाको दो भागोंमें बाँटकर, जिधर शत्रु खड़े थे, उधरको द्रोणाचार्यने कूच करदिया और उस समय फिर युद्धका आरंभ होगया ॥ ३६–३७ एक सौ पिचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८५ ॥ छ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि–हे राजन् ! जब रात्रिके तीन भाग बीतगये

न्नादित्यस्य पुरःसरः । अरुणोऽभ्युदयाञ्चक्रे ताम्रीकुर्वन्निवाम्बरम् ॥ २ ॥ प्राच्यां दिशि सहस्रांशोररुणेनारुणीकृतम् । तापनीयं यथा चक्रं भ्राजते रविमण्डलम् ॥ ३ ॥ ततो रथाश्वांश्च मनुष्ययानान्युत्सृज्य सर्वे कुरुपाण्डुयोधाः । दिवाकरस्याभिमुखे जपन्तः सन्ध्यागताः प्राञ्जलयो बभूवुः ॥ ४ ॥ ततो द्वैधी कृते सैन्ये द्रोणः सोमकपाण्डवान् । अभ्यद्रवत् सपाञ्चालान् दुर्योधनपुरोगमः ॥ ५ ॥ द्वैधीकृतान् कुरून् दृष्ट्वा माधवोऽर्जुनमब्रवीत् । सपत्नान् सव्यतः कृत्वा अपसव्यमिमं कुरु ॥ ६ ॥ स माधवमनुज्ञाय कुरुष्वेति धनञ्जय । द्रोणकर्णौ महेष्वासौ सव्यतः पर्यवर्त्तत ॥७॥ अभिप्रायन्तु कृष्णस्य ज्ञात्वा परपुरञ्जयः । आजि-

और एक भाग शेष रहा, उस समय हर्षमें भरे हुए कौरव और पांडवोंमें युद्धका आरंभ होगया।१ थोड़ी ही देरमें चंद्रमाकी प्रभाको छुपाकर आकाशको लाल करता हुआ अरुण सूर्यसे पहले उदित होगया ॥२॥ और फिर अरुणका लाल२ किया हुआ सूर्यमण्डल सुवर्णके पहियेकी समान पूर्व दिशामें दिप निकला—स्पष्ट-प्रभात होगया ॥ ३ ॥ कौरव और पाण्डव रथ, घोड़े तथा पालकियोंको छोड़कर प्रातःकालकी सन्ध्या वन्दन करनेके लिये सूर्यके सामने दोनों हाथ जोड़कर खड़े होगये और जप करने लगे ॥ ४ ॥ प्रातःकालका सन्ध्यावन्दन पूरा होजाने पर कौरवोंकी सेना दो भागोंमें बँटगई, द्रोणाचार्यने दुर्योधनको अगुआ करके पांचाल, सोमक और पाण्डवोंके योधाओंके ऊपर चढ़ाई की उस समय मधुवंशी श्रीकृष्णने कौरवोंकी सेनाको दो भागोंमें बँटी हुई देखकर धनञ्जयसे कहा, कि-शत्रुओंको बाईं ओर रखकर द्रोणाचार्यको रथकी दाईं ओर रख ॥ ५ ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, कि-बहुत अच्छा ऐसा ही करिये, ऐसा कहकर महाधनुषधारी द्रोणाचार्य तथा कर्णको बाईं ओर धनञ्जय घूमने

शीर्षगतं पार्थं भीमसेनोऽभ्युवाच ह ॥ ८ ॥ भीमसेन उवाच । अर्जुनार्जुन बीभत्सो शृणुष्वैतद्वचो मम । यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ॥ ९ ॥ अस्मिंश्चेदागते काले श्रेयो न प्रतिपत्स्यसे । असम्भावितरूपस्त्वं सुनृशंसं करिष्यसि ॥१०॥ सत्यश्रीधर्मयशसां वीर्येणानृण्यमाप्नुहि । भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ अपसव्यमिमान् कुरु ॥ ११ ॥ सञ्जय उवाच । स सव्यसाची भीमेन चोदितः केशवेन च । कर्णद्रोणावतिक्रम्य समन्तात् पर्यवारयत्१२ तमाग्निशीर्षमायान्तं दहन्तं क्षत्रियर्षभान् । पराक्रान्तं पराक्रम्य ततः क्षत्रियपुङ्गवाः ॥१३॥ नाशक्नुवन् वारयितुं वर्द्धमानमिवानलम् । अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ॥ १४ ॥ अभ्यवर्ष-

लगा ॥ ७ ॥ उस समय शत्रुके नगरको जीतने वाला भीमसेन, जो श्रीकृष्णके अभिप्रायको समझगया था वह युद्धके अग्रभागमें खड़ेहुए कुन्तीपुत्र अर्जुनसे कहने लगा ॥८॥ भीमसेनने कहा, कि-हे महाबाहु अर्जुन ! मेरी बातको ध्यान देकर सुन, क्षत्रियाणी जिस कामके लिये पुत्रको उत्पन्न करती है, उस कामको करनेका यह समय आगया ॥ ९ ॥ इस लिये यदि तू इस हाथ लगेहुए समय पर कल्याणकारी काम नहीं करेगा तो तेरे स्वरूपकी अप्रतिष्ठा होगी और तू बड़ा ही क्रूर कर्म करेगा ॥ १० ॥ अब तो तू पराक्रम करके सत्य, लक्ष्मी, धर्म और यश प्राप्त कर, शत्रुकी सेनाका संहार कर और कौरवोंको रथकी दाहिनी ओर लेआ ११ सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! इस प्रकार भीमसेनने तथा श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा तब सव्यसाची अर्जुन कर्ण और द्रोणको लाँघकर चारोंओरसे शत्रुओंको घेरने लगा ॥ १२ ॥ अर्जुन रणके मुहाने पर आकर पराक्रमसे बड़े२ क्षत्रियोंका संहार करने लगा और बड़े२ क्षत्रिय भी, जैसे बढ़ते हुए अग्निको रोकना कठिन हो जाता है तैसे ही अर्जुनको आगे बढ़नेसे नहीं रोकसके,

च्छरव्रातैः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् । तेषामस्त्राणि सर्वेषामुत्तमास्त्रविदाम्वरः ॥ १५ ॥ कदर्थीकृत्य राजेन्द्र शरवर्षैरवाकिरत् । अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य लघुहस्तो जितेन्द्रियः॥१६॥सर्वानविध्यन्निशितैर्दशभिर्दशभिः शरैः । उद्धूता रजसो वृष्टिश्शरवृष्टिस्तथैव च ॥ १७ ॥ तमश्च घोरं शब्दश्च तदा समभवन्महान् । न द्यौर्न भूमिर्न दिशः प्राज्ञायन्त तथागते ॥ १८ ॥ सैन्येन रजसा मूढं सर्वमन्धमिवाभवत् । नैव तेन वयं राजन् प्राज्ञासिस्म परस्परम् ॥ १९ ॥ उद्देशेन हि तेन स्म समयुध्यन्त पार्थिवाः । विरथा रथिनो राजन् समासाद्य परस्परम् ॥ २० ॥ केशेषु समसज्जन्त कवचेषु भुजेषु च । हताश्वा हतसूताश्च निश्चेष्टा रथिनस्तथा ॥ २१ ॥ जीवन्त

तदनन्तर दुर्योधन कर्ण और सुबलका पुत्र शकुनि ॥ १३-१४ ॥ कुन्तीनन्दन अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे, परन्तु बड़े२ अस्त्रोंको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने उन सबोंके अस्त्रोंको तुच्छ कर डाला हे राजेन्द्र ! फुरतीले हाथवाले धनञ्जयने सामनेसे अस्त्र छोडकर वैरियोंके अस्त्रोंको पीछेको हटादिया और सब योधाओंको दश २ बाण मारकर वींधडाला, इस समय धूलिकी और बाणोंकी वर्षा होने लगी ॥ १५-१७ ॥ चारों ओर घोर अन्धकार छागया, महाभयानक शब्द होने लगा, आकाश, पृथ्वी और दिशाओंका दीखना बन्द होगया ॥१८॥ सेनादलके कारणसे उडीहुई धूलिके द्वारा सब योधा मूढ और अन्धेसे होगये और हे राजन् ! उस समय हम तथा पाण्डव एक दूसरेको पहचान नहीं सकते थे॥१९॥इस लिये रथहीन हुए राजे अनुमानसे तथा रथोंमें बैठे हुए राजे अपने नामोंको जतानेसे एक दूसरेको पहचान कर आमने सामनेसे जुटेहुए लडरहे थे तथा एक दूसरेके केश, कवच और भुजाओंको पकडकर लडरहे थे, कितने ही रथी जिनके घोडे और सारथी मरगये थे वे जीवित होकर भी डरके मारे युद्ध न करते

इव तत्र स्म व्यदृश्यन्त भयार्दिताः। हतान् गजान् समाश्लिष्य पर्वतानिव वाजिनः ॥२२॥ गतसत्त्वा व्यदृश्यन्त तथैव सह सादिभिः। ततस्त्वभ्यवसृत्यैव संग्रामात्तुत्तरां दिशम् ॥ २३ ॥ अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिवज्वलन्। तमाजिशीर्षादेकांतमपक्रांतं निशम्य तु ॥ २४ ॥ समकम्पन्त सैन्यानि पाण्डवानां विशाम्पते। भ्राजमानं श्रिया युक्तं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २५ ॥ दृष्ट्वा द्रोणं परं त्रेसुश्चेरुर्म्लुश्च भारत ॥ २५ ॥ आह्वयन्तं परानीकं प्रभिन्नमिव वारणम् ॥२६॥ नैनमाशंसिरे जेतुं दानवा वासवं यथा। केचिदासन्निरुत्साहाः केचित् क्रुद्धा मनस्विनः ॥ २७ ॥ विस्मिताश्चाभवन् केचित् केचिदासन्नमर्षिताः। हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपि-

हुए पडे थे इसलिये वे मरेहुएसे मालूम होते थे, कितने ही घोड़ोंके साथ कितने ही योधा पहाड़ोंकी समान दीखनेवाले हाथियोंसे चिपट कर मरे हुएसे दीखते थे इस समय द्रोणाचार्य संग्रामभूमिमेंसे उत्तर दिशाकी ओर धुएँरहित धक २ जलतेहुए अग्निकी समान जाकर खड़े होगये ॥ २०-२४ ॥ पाण्डवोंकी सेना द्रोणाचार्यको रणके मुहानेपरसे दूर गये हुए देखकर काँपनेलगी, हे भरतवंशी राजन्! अत्यन्त शोभायमान तथा प्रज्वलित हुए अग्निकी समान तेजस्वी द्रोणाचार्यको देखकर कितने ही वैरी भयभीत होगये, कितने ही भागनेलगे, कितने ही अत्यन्त खिन्न होगये और जैसे दानव इन्द्रको जीतनेकी इच्छा नहीं करसकते हैं तैसे ही मद टपकानेवाले हाथीकी समान मदमत्त और रणमें वैरीकी सेनाको लडनेके लिये निमन्त्रण देनेवाले द्रोणाचार्यका पराजय करनेकी कोई इच्छा ही नहीं करते थे, जब द्रोणाचार्यको देखते क्षण ही कितने ही निरुत्साह होगये थे तो कितने ही मनस्वी (दिलेर) योधा कोपमें भी भरगये थे २५ २७ कितने ही आश्चर्यमें होरहे थे, कितने ही उनको सह ही नहीं सकते थे, कितने ही राजे हथेलियोंसे हथेलियोंको मलरहे थे,

षन्नराधिपाः ॥ २८ ॥ अपरे दशनैरोष्ठानदशन् क्रोधमूर्च्छिताः। व्याक्षिपन्नायुधान्यन्ये ममृदुश्चापरे भुजान् ॥२९॥ अन्ये चाभ्यपतन् द्रोणं त्यक्त्वात्मानो महौजसः। पञ्चालास्तु विशेषेण द्रोणसायकपीडिताः ॥ ३० ॥ समसज्जन्त राजेन्द्र समरे भृशवेदनाः। ततो विराटद्रुपदौ द्रोणं प्रतिययू रणे ॥ ३१ ॥ तथा तरन्तं संग्रामे भृशं परमदुर्जयम्। द्रुपदस्य ततः पौत्रास्त्रय एव विशाम्पते ॥ ३२ ॥ चेदयश्च महेष्वासा द्रोणमेवाभ्ययुर्युधि। तेषां द्रुपदपौत्राणां त्रयाणां निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥ त्रिभिर्द्रोणोऽहरत्प्राणास्ते हता न्यपतन्भुवि। ततो द्रोणोऽजयद्युद्धे चेदिकैकेयसृञ्जयान् ॥३४॥ मत्स्यांश्चैवाजयत् कृत्स्नान् भारद्वाजो महारथान् ॥ ३४ ॥ ततस्तु द्रुपदः क्रोधाच्छरवर्षमवासृजत् ॥ ३५ ॥ द्रोणं प्रति महाराज विराटश्चैव संयुगे। तं

कोई क्रोधके आवेशमें आकर दाँतोंसे ओठोंको चबारहे थे, कोई आयुधोंको घुमारहे थे और कितने ही भुजदण्डों पर थपकी देरहे थे ॥ २८—२९ ॥ कितने ही महाबली योधा प्राणोंकी परवाह न करके द्रोणाचार्यके सामनेको झपटे चले जारहे थे, हे राजेन्द्र! द्रोणाचार्यके बाणोंकी मारसे पंचाल राजाओंको बडी पीडा होरही थी, तो भी वे इस भयंकर युद्धमें लडनेको तयार होरहे थे, विराट तथा द्रुपद युद्धमें दुर्जय द्रोणके सामने लडनेको जा चढ़े, द्रुपदके तीन पौत्र और महानुषधारी चेदि देशके राजे भी युद्धमें द्रोणके साथ लडनेको निकले थे, इस युद्धमें द्रोणाचार्यने तयार कियेहुए तीन कठोर बाण मारकर द्रुपदके तीनों पौत्रोंके प्राण ले लिये, तब तो वह पृथ्वी पर ढहपड़े, तदनन्तर द्रोणाचार्यने युद्धमें चेदी, केकय सृञ्जयोंका पराजय किया ॥ ३०—३४ ॥ और मत्स्यदेशके महारथी राजाओंका भी पराजय किया, फिर क्रोधमें भरेहुए राजा द्रुपद तथा राजा विराट ये दोनों द्रोणाचार्यके ऊपर बाणोंकी

निहत्येषुवर्षन्तु द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ३६ ॥ तौ शरैश्छादयामास विराटद्रुपदावुभौ । द्रोणेन छाद्यमानौ तौ क्रुद्धौ संग्राममूर्द्धनि ३७ द्रोणं शरैर्विव्यधतुः परमं क्रोधमास्थितौ । ततो द्रोणो महाराज क्रोधामर्षसमन्वितः ।३८। भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां चिच्छेद धनुषी तयोः । ततो विराटः कुपितः समरे तोमरान् दश ॥ ३९ ॥ दश चिक्षेप च शरान् द्रोणस्य वधकांक्षया । शक्तिञ्च द्रुपदो घोरामायसीं स्वर्णभूषिताम् ॥ ४० ॥ चिक्षेप भुजगेन्द्राभां क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति । ततो भल्लैः सुनिशितैश्छित्वा तांस्तोमरान्दश ॥४१ ॥ शक्तिं कनकवैदूर्यां द्रोणश्चिच्छेद सायकैः । ततो द्रोणः सुपीताभ्यां भल्लाभ्यामरिमर्दनः ॥ ४२ ॥ द्रुपदञ्च विराटञ्च प्रेषयामास मृत्यवे । हते विराटे द्रुपदे कैकेयेषु तथैव च ॥ ४३ ॥ तथैव

मारामार करनेलगे, क्षत्रियोंका संहार करनेवाले द्रोणने इनके बाणोंकी वर्षाको छिन्न भिन्न करडाला ॥ ३५-३६ ॥ और बाणोंसे विराट तथा द्रुपद दोनोंको ढकदिया, तब तो वे दोनों बड़े कोपमें भरगये और लडते२ द्रोणके बाण मारनेलगे, तब द्रोण क्रोधमें तथा अमर्षमें भरगये और उन्होंने बड़े ही तेज भल्ल नामके दो बाण मारकर उन दोनोंके धनुषोंको काटडाला, इससे विराटको बडा ही क्रोध आया उसने और दश तोमर तथा दश बाण द्रोणको मारडालनेकी इच्छासे मारे, द्रुपदने भी क्रोधमें भरकर सोनेके पत्तरसे जडकर सजायी हुई भुजगेन्द्रकी समान ठोस लोहेकी शक्ति द्रोणके रथपर मारी, द्रोणने अच्छे प्रकारसे तेज कियेहुए भल्ल जातिके बाणोंसे तोमरोंका और सोनेसे तथा वैदूर्यसे जडी हुई शक्तिका चूर२ करडाला और फिर शत्रुका मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्यने अच्छे पानीदार भल्ल जातिके दो बाण मारकर द्रुपदको और विराटको मारडाला, इसप्रकार, विराट द्रुपद केकयराजे चेदिराजे, मत्स्यराज, पाञ्चालराजे तथा द्रुपदके तीन वीर पौत्र

चेदिमत्स्येषु पञ्चालेषु तथैव च । हतेषु त्रिषु वीरेषु द्रुपदस्य च नप्तृषु ॥ ४४ ॥ द्रोणस्य कर्म तद् दृष्ट्वा कोपदुःखसमन्वितः । शशाप रथिनां मध्ये धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ४५ ॥ इष्टापूर्त्तात्तथा क्षात्राद् ब्राह्मण्याच्च स नश्यतु । द्रोणो यस्याद्य मुच्येत यं वा द्रोणः पराभवेत् ॥ ४६ ॥ इति तेषां प्रतिश्रुत्य मध्ये सर्वधनुष्मताम् । आयाद् द्रोणं सहानीकः पाञ्चाल्यः परवीरहा ॥ ४७ ॥ पञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन् पाण्डवैः सह । दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ४८ ॥ सोदर्याश्च यथामुख्यास्तेऽरक्षन् द्रोणमाहवे । रक्ष्यमाणं तथा द्रोणं सर्वैस्तैस्तु महारथैः ॥ ४९ ॥ यतमानास्तु पञ्चाला न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् । तत्राक्रुध्यद्भीमसेनो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ ५० ॥ स एनं वाग्भिरुग्राभिस्ततक्ष पुरुष-

---

ये सब युद्धमें मारेगये; द्रोणके ऐसे घोर पराक्रमको देखकर बड़े मनवाले धृष्टद्युम्नको बडा ही क्रोध आया और दुःख भी हुआ, इसलिये उसने रथियोंके बीचमें शपथ खायी, कि—आज द्रोण मेरे हाथमेंसे बचजायँ अथवा वह मेरा तिरस्कार करें तो मेरा यागयज्ञका फल, वापी कूप खुदवानेका पुण्य, क्षात्रधर्मका पुण्य तथा अग्निरूप ब्राह्मणमेंसे उत्पन्न हुआ होनेके कारण मेरा जो ब्रह्मतेज है वह सब नष्ट होजाय ॥३७–४६॥ इसप्रकार सब धनुषधारियोंके बीचमें प्रतिज्ञा करके वीर शत्रुओंका संहार करनेवाला पंचालराज का पुत्र धृष्टद्युम्न सेनाको साथमें ले द्रोणाचार्यके ऊपर जाचढ़ा ४७ एक ओर पांचाल राजे पाण्डवोंके साथमें रहकर द्रोणाचार्यके बाण मारनेलगे और दूसरी ओर दुर्योधन, कर्ण, सुबलका पुत्र शकुनि तथा दूसरे मुख्य कौरव भाई रणमें द्रोणाचार्यकी रक्षा करनेलगे, पांचालोंने उनको भगादेनेका बहुत ही उद्योग किया, परन्तु वे उनकी ओरको दृष्टि भी नहीं करसके, हे राजन् ! इससमय भीमसेनको धृष्टद्युम्नके ऊपर क्रोध आगया ॥ ४८–५० ॥ और

पैषः । भीमसेन उवाच । द्रुपदस्य कुले जातः सर्वास्त्रेष्वस्त्रवित्तमः ॥ ५१ ॥ कः क्षत्रियो मन्यमानः प्रेक्षेतारिमवस्थितम् । पितृपुत्रवधं प्राप्य पुमान् कः परिपालयेत् ॥ ५२ ॥ विशेषतस्तु शपथं शपित्वा राजसंसदि । एष वैश्वानर इव समिद्धः स्वेन तेजसा ५३ शरचापेन्धनो द्रोणः क्षत्रं दहति तेजसा । पुरा करोति निःशेषां पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ५४ ॥ स्थिताः पश्यत मे कर्म द्रोणमेव व्रजाम्यहम् । इत्युक्त्वा प्राविशत् क्रुद्धो द्रोणानीकं वृकोदरः ५५ शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्द्रावयंस्तव वाहिनीम् । धृष्टद्युम्नोऽपि पांचाल्यः प्रविश्य महतीञ्चमूम् ॥ ५६ ॥ आससाद रणे द्रोणं तदासीत्तुमुलं महत् । नैव नस्तादृशं युद्धं दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥ ५७ ॥ यथा सूर्यो-

वह महापुरुष तीखे वचनोंसे धृष्टद्युम्नको उलाहना देता हुआ कहने लगा, भीमसेन बोला, कि--तू राजा द्रुपदके कुलमें उत्पन्न हुआ है और सब प्रकारके अस्त्रोंको जाननेमें बड़ा ही प्रवीण है, तो फिर तेरे सिवाय दूसरा कौनसा क्षत्रिय पुरुष सामने खडे हुए शत्रुको नहीं मारेगा तथा कौनसा पुरुष, पिता तथा पुत्रको मार डालनेवालेको पाकर भी उसको जीता छोड़देगा? ॥ ५१-५२ ॥ और इस पर भी जिसने राजसभाके बीचमें प्रतिज्ञा की हो ऐसा पुरुष तो शत्रुको कैसे जाने देगा? यह द्रोण बढते हुए अग्निकी समान तेजस्वी दीख रहे हैं और बाण तथा धनुषरूप ईंधनसे भरपूर हैं-ऐसे द्रोण आज तेजसे क्षत्रियोंको भस्म करे डालते हैं और सामने खड़ी हुई पाण्डवोंकी सेनाका संहार कररहे हैं ५३-५४ इसलिये अब तुम खड़े होकर मेरा पराक्रम देखो, मैं द्रोणाचार्यके सामने जाता हूँ, इतना कहकर क्रोधमें भराहुआ भीमसेन कानपर्यन्त पूर्णरीतिसे धनुषको खेंचकर बाणोंके प्रहारसे तुम्हारी सेनाको भगाता२ द्रोणाचार्यकी सेनामें जाघुसा तथा पांचालका पुत्र धृष्टद्युम्न भी महासेनामें घुसकर द्रोणाचार्यके सामने जापहुँचा

दये राजन् समुत्पिञ्जोऽभवन्महान्। संसक्तान्येव चादृश्यन् रथवृंदानि मारिष ॥५८॥ हतानि च विशीर्णानि शरीराणि शरीरिणाम्। केचिदन्यत्र गच्छन्तः पथि चान्यैरुपद्रुताः ॥ ५९ ॥ विमुखाः पृष्ठतश्चान्ये ताड्यन्ते पार्श्वतः परे। तथा संसक्तयुद्धन्तदभवद् भृशदारुणम्। अथ सन्ध्यागतः सूर्यः क्षणेन समपद्यत६०

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे
षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

सञ्जय उवाच। ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्द्धनि। संध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ॥ १ ॥ उदिते तु सहस्रांशौ तप्तकाञ्चनसप्रभे। प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्धमवर्त्तत ॥२॥ द्वन्द्वानि

और सूर्योदयके समय जैसा पहले किसी दिन भी नहीं देखा था और न पहले कभी सुना था ऐसा महाघोर युद्ध रणभूमिमें होने लगा, हे श्रेष्ठ राजन्! सेना बडी आपत्तिमें आपडी और रथियोंके टोलेके टोले एक दूसरेके साथ युद्ध करतेहुए दीखनेलगे॥५५—५८॥ शरीरधारियोंके मरणको प्राप्त हुए शरीर रणभूमिमें ऐसे टेढ़ेवेढ़े पड़े थे, कि—वे पैरोंकी ठोकरें लगनेसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जा पड़ते थे और मार्गमें उनको दूसरे मृत शरीरोंकी टक्करें लगती थीं ॥ ५९ ॥ कितने ही रणमेंसे पीछेको मुख करके भागनेलगे, उनके ऊपर पीछेसे मार पड़नेलगी, इसप्रकार गड़बड़ी पड़कर बड़ा दारुण युद्ध होनेलगा, इतनेमें ही एक क्षणमें पूर्ण रीतिसे सूर्योदय होगया ॥ ६० ॥ एकसौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८६ ॥

सञ्जयने कहा, कि हे महाराज! सहस्र किरणोंसे शोभायमान सूर्यनारायण उदय होगये हैं, यह जानकर रणभूमिमेंके कौरव और पाण्डव कवच पहरे हुए सूर्यकी उपासना करनेलगे॥ १ ॥ थोडी ही देरमें तपेहुए सुवर्णकी समान कान्तिवाले सूर्यका पूर्ण उदय होगया अर्थात् सब जगत्में प्रकाश होगया; हे भारत! फिर

यानि तत्रासन् संसक्तानि पुरोदयात् । तान्येवाभ्युद्यते सूर्ये समसज्जन्त भारत ॥ ३॥ रथैर्हया हयैर्नागाः पादातैश्चापि कुञ्जराः । हया हयैः समाजग्मुः पादाताश्च पदातिभिः ॥ ४ ॥ रथा रथैरिभैर्नागास्तथैव भरतर्षभ । संयुक्ताश्च वियुक्ताश्च योधाः सन्न्यपतन्रणे ॥ ५ ॥ ते रात्रौ कृतकर्माणः श्रान्ताः सूर्यस्य तेजसा । क्षुत्पिपासापरीताङ्गाः विसंज्ञा बहवोऽभवन् ॥ ६ ॥ शंखभेरीमृदङ्गानां कुञ्जराणाञ्च गर्जताम् ॥ ७ ॥ विस्फारितविकृष्टानां कार्मुकाणाञ्च कूजताम्॥७॥ शब्दः समभवद्राजन् दिवस्पृक् भरतर्षभ । द्रवताञ्च पदातीनां शस्त्राणां पततामपि ॥ ८ ॥ हयानां ह्रेषताञ्चैव रथानां विनिवर्त्तताम् । क्रोशतां गर्जताञ्चैव तदासीत्तुमुलं महत् ॥ ९ ॥ विवृद्धस्तुमुलः शब्दो द्यामगच्छन्महांस्तदा । नाना-

भयंकर युद्ध होनेलगा ॥ २ ॥ सूर्योदयसे पहले जो जिनके साथ द्वन्द्वयुद्ध करनेमें लगेहुए थे, वे फिर उन ही योधाओंके साथ युद्ध करनेमें लगगये, घुडसवार रथियोंके साथ, हाथीसवार घुडसवारोंके साथ, कोई पैदल हाथीसवारोंके साथ और कोई पैदल पैदलोंके साथ युद्धमें कभी इकट्ठे होकर और कभी अलग२ होकर भयंकर युद्ध करनेलगे ॥३–५॥ हे महाराज ! इन योधाओंमेंसे बहुतसोंने रातमें अपनी शक्ति भर युद्ध किया था, वे दिनमें सूर्यकी धूपसे घबडागये थे और भूख तथा प्याससे खिन्न और अचेतसे होरहे थे ॥६॥ तबे ऊपर शङ्खोंका, भेरियोंका, मृदङ्गोंका, चिंघाडतेहुए हाथियोंका, धनुषोंके खेंचनेका तथा छोडनेका शब्द, दौडतेहुए पैदलोंकी पुकार, मारेहुए शस्त्रोंका शब्द, घोडोंकी हिनहिनाहट, इधर उधरको दौडतेहुए रथोंकी घरघराहट ये सब इकट्ठे होकर इतना कोलाहल बढगया था, कि–वह आकाशमें पहुँचकर दिशाओं और कोनोंको भरताहुआ बहुत ही गूँजरहा था ॥ ७–९ ॥ हे महाराज ! इस समय अनेकों प्रकारके शस्त्रोंसे जिनके शरीर

सुधनिकृत्तानां चेष्टतामातुरः स्वनः ॥ १० ॥ भूपावश्रूयत महां-
स्तदासीत् कृपणं महत् । पततां पतितानाञ्च पत्त्यश्वरथहस्तिनाम् ११
तेषु सर्वेष्वनीकेषु व्यतिसक्तेष्वनेकशः । स्वे स्वान् जघ्नुः परे
स्तांश्च स्वान् परे च परान् परे ॥१२॥ वीरबाहुविसृष्टाश्वयोधेषु
च गजेषु च । राशयः प्रत्यदृश्यन्त वाससां नेजनेष्विव ॥ १३ ॥
उद्यतप्रतिविद्धानां खड्गानां वीरबाहुभिः । स एव शब्दस्तद्रूपो
वाससां निज्यतामिव ॥ १४ ॥ अथासिभिस्तथा खड्गैस्तोमरैः
सपरश्वधैः । निकृष्टयुद्धं संसक्तं महदासीत् सुदारुणम् ॥ १५ ॥
गजाश्वकायप्रभवां नरदेहप्रवाहिनीम् । शस्त्रमत्स्यसुसम्पूर्णां मांस-

---

घायल होगये थे ऐसे गिरेहुए और गिराये जातेहुए पैदल, रथी, घुडसवार और हाथीसवार जिधर तिधरको अङ्गोंको फेंकतेहुए चीखें माररहे थे, उनका आर्त्तस्वर रणभूमिमें सुनायी आरहा था और इस दृश्यको देखनेवालोंको बडा ही शोक होता था १०-११ सब सेनायें आपसमें बहुत ही रिलमिल गईं थीं कौरव अपने ही सैनिकोंको मारनेलगे और पांडव अपने योधाओंको मारनेलगे पाण्डव कौरवोंको मारनेलगे और कौरव पांडवोंको मारनेलगे, वीर पुरुषोंके हाथमेंकी घूमतीहुई तलवार योधाओंके और हाथियोंके ऊपर पडरही थी. जो वस्त्र धोनेके पटलों पर पडते हुए वस्त्रोंकी समान मालूम होती थी ॥ १२॥१३ ॥ और वस्त्रोंको धोनेके समय जैसा शब्द होता है तैसा ही शब्द वीर पुरुषोंके हाथोंमेंसे उठती हुई और शत्रुओंके ऊपर पडती हुई तलवारोंका होरहा था १४ जिस समय योधा बहुत ही समीप आगये उस समय एकधारी तलवारें, तोमर और फरसोंसे दोनोंमें महादारुण युद्ध होनेलगा, वीर पुरुषोंने रणभूमिमें हाथी और घोडोंके शरीर मेंसे रुधिरकी नदी बहादी, उस नदीमें मनुष्योंकी ल्हासें तैरने लगीं, वह नदी शस्त्ररूप मछलियोंसे भरी हुई थी तथा उसमें मांस

शोणितकर्दमाम् ॥ १६ ॥ आर्त्तनादस्वनवतीं पताकावस्त्रफेनिलाम् । नदीं प्रावर्त्तयन् वीराः परलोकौघगामिनीम् ॥ १७ ॥ शरशक्त्यार्दिताः क्लान्ता रात्रिमूढाल्पचेतसः । विष्टभ्य सर्वगात्राणि व्यतिष्ठन् गजवाजिनः ॥ १८ ॥ बाहुभिः कवचैश्चित्रैः शिरोभिश्चारुकुण्डलैः । युद्धोपकरणैश्चैव तत्र तत्र चकाशिरे १९ क्रव्यादसंघैः समाकीर्णं मृतैरर्द्धमृतैरपि । नासीद्रथपथस्तत्र सर्वमायोधनं प्रति ॥२०॥ मज्जत्सु चक्रेषु रथान् सत्त्वमास्थाय वाजिनः । कथञ्चिदवहन् श्रान्ता वेपमानाः शरार्दिताः ॥ २१ ॥ कुलसत्त्वबलोपेता वाजिनो वारणोपमाः । विह्वलं तूर्णमुद्भ्रान्तं सभयं भारतातुरम् ॥ २२ ॥ बलमासीत्तदा सर्वमृते द्रोणार्जुनावुभौ ।

और रुधिरकी कीच मची हुई थी, घबड़ायेहुए मनुष्योंके शब्दोंसे वह नदी गाजरही थी तथा पताका और शस्त्र उसमें झागसे दीखते थे और यमलोक उस नदीकी सीमा थी, हे महाराज ! हाथी और घोडे आदि वाहन रात्रियुद्धमें बाणोंकी और शक्तियोंकी मारसे घबड़ागये थे और सब अङ्गोंको सकोड कर खडे हुए थे। १५–१८ मरे हुए योधाओंके हाथ भाँति२के कवच, मस्तक, कुण्डल और युद्धकी सामग्री आदि जहाँ तहाँ पड़ेहुए थे, इसकारणसे मांसाहारी प्राणी तथा मरेहुए और अधमरे पड़ेहुए योधाओंसे रणभूमि लबालब भर रही थी, इस कारण सकल रणभूमिमें रथोंके लिये चलनेको भी मार्ग नहीं रहा था ॥ १९–२० ॥ रथके पहिये रुधिरकी नदियोंमें डूब रहे थे, तो भी बाणोंकी मारसे पीडा पाकर काँपते और थके हुए हाथियोंकी समान उत्तम कुलवाले, बलवान् तथा उत्साही घोड़े जोर लगाकर रथोंको जैसे तैसे खींच रहे थे, हे भरतवंशी राजन् ! उस समय द्रोण और अर्जुनको छोड़कर बाकी सब सेना विह्वल, भयभीत उच्चाट खाई हुई और आतुर होगयी थी द्रोण और अर्जुन ये दोनों ही अपने पक्षके घबड़ायेहुए पुरुषोंके आधार

तावेवास्तां निलयनं तावेवायनमेव च ॥२३॥ तावेवान्ये समासाद्य
जग्मुर्वैवस्वतक्षयम् । आविग्नमभवत् सर्वं कौरवाणां महद्बलम् २४
पञ्चालानाञ्च संसक्तं न प्राज्ञायत किञ्चन । अन्तकाक्रीडसदृशं
भीरूणां भयवर्द्धनम् ॥ २५ ॥ पृथिव्यां राजवंश्यानामुत्थिते
महति क्षये । न तत्र कर्णं न द्रोणं नार्जुनं न युधिष्ठिरम् ॥ २६ ॥
न भीमसेनं न यमौ न पाञ्चाल्यं न सात्यकिम् । न च दुःशा-
सनं द्रौणिं न दुर्योधनसौबलौ ॥ २७ ॥ न कृपं मद्रराजं वा कृत-
वर्माणमेव च । न चान्यान्नैव चात्मानं न क्षितिं न दिशस्तथा २८
पश्याम राजन् संसक्तान् सैन्येन रजसा वृतान् । संभ्रान्ते तुमुले
घोरे रजोमेघे समुत्थिते ॥ २९ ॥ द्वितीयामिव सम्प्राप्तामन्यन्त
निशां तदा । न ज्ञायन्ते कौरवेया न पञ्चाला न पाण्डवाः ३०

रूप और वैरियोंका संहार करने वाले थे ॥ २१-२२ ॥ दोनों पक्षके योधा उन दोनों पक्षके साथ युद्ध करके यमलोकको जारहे थे, इस लडाईमें कौरवोंकी बडी भारी सेना भयभीत होगई थी तथा पांचालोंका बडाभारी सेनादल भी भयभीत होगया था, लडते समय कुछ भी देखनेमें नहीं आता था, कालकी क्रीडाकी समान और डरपोकोंके भयको बढानेवाला होकर यह युद्ध चलरहा था, इसमें राजवंशी पुरुषोंका बडा संहार होरहा था, इस समय धूलिरूप भयानक और घोर मेघ आकाशमें चढआया अर्थात धूलिका पटल उडानेलगा, इसलिये द्रोण, कर्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर भीमसेन, नकुल, सहदेव, पांचालकुमार धृष्टद्युम्न, सात्यकि, दुःशासन, अश्वत्थामा, दुर्योधन, शकुनि, कृपाचार्य, मद्रदेशका राजा शल्य कृतवर्मा या मैं अपने आपको भी स्पष्ट रीतिसे नहीं देखसकते थे, योधा अपने आपको तथा दूसरे योधाओंको अथवा पृथ्वी, दिशायें और कोने आदि किसीको भी नहीं देख सकते थे; इस समय ऐसा मालूम होता था, कि मानो फिर रात्रि होगयी, कौरव

न दिशो द्यौर्न चोर्वी च न समं विषमं तथा । हस्तसंस्पर्शमापन्नान्
परान् वाप्यथ वा स्वकान् ॥ ३१ ॥ न्यपातयंस्तदा युद्धे नराः स्म
विजयैषिणः । उद्धूतत्वाच्च रजसः प्रसेकाच्छोणितस्य च ३२
प्रशशाम रजो भौमं शीघ्रत्वादनिलस्य च । तत्र नागा हया योधा
रथिनोऽथ पदातयः ॥ ३३ ॥ पारिजातवनानीव व्यरोचन्रु-
धिरोक्षिताः । ततो दुर्योधनः कर्णो द्रोणो दुःशासनस्तथा ॥ ३४ ॥
पाण्डवैः समसज्जन्त चतुर्भिश्चतुरो रथाः । दुर्योधनः सह भ्रात्रा यमा-
भ्यां समसज्जत ॥ ३५ ॥ वृकोदरेण राधेयो भारद्वाजेन चार्जुनः ।
तद् घोरं महदाश्चर्यं सर्वे प्रैक्षन्त सर्वतः ॥ ३६ ॥ रथर्षभाना-
मुग्राणां सन्निपातममानुषम् । रथमार्गैर्विचित्रैस्ते विचित्ररथसंकु-
लम् ॥ ३७ ॥ अपश्यन्रथिनो युद्धं विचित्रञ्चित्रयोधिनाम् । यत-

पांचाल या पाण्डव भी धूलिके कारणसे पहचानमें नहीं आते थे, योधा दिशायें, आकाश, पृथ्वी, और ऊँचा, नीचा भी नहीं मालूम होता था, परन्तु विजय चाहनेवाले योधा युद्धमें अपने वा पराये जिनके भी हाथका स्पर्श होजाता था उनको ही युद्धमें मारडालते थे, थोडी देर बाद पवन बड़े जोरसे चलने लगा, धूलि उडने लगी, दूसरी ओर रुधिरका छिडकाव होनेसे पृथ्वी परकी धूलि दबगई थी तथा हाथी, घोडे, योधा रथी और पैदल जो रुधिरमें न्हागये थे वे पारिजातके वनकी समान शोभा पाने लगे, दुर्योधन कर्ण, द्रोण तथा दुःशासन ये चार महारथी चार पाण्डव महारथियोंके साथ युद्ध करनेलगे, दुर्योधन अपने भाई दुःशासनके साथ रहकर नकुल और सहदेवके साथ युद्ध करनेलगा ॥ २४-३५ ॥ कर्ण भीमसेनके साथ और द्रोणाचार्य अर्जुनके साथ लडनेलगे, उनके महाघोर और आश्चर्यजनक युद्धको सब योधा चारों ओरसे देखने लगे. ये महारथी उग्रस्वभाववाले थे और विचित्र प्रकारके रथोंकी गतियोंसे अलौकिक युद्ध कररहे थे, यह युद्ध अनेकों प्रकारके रथोंसे

मानाः पराक्रान्ताः परस्परजिगीषवः ॥ ३८ । जीमूता इव घर्मान्ते शरवर्षैरवाकिरन् । ते रथान् सूर्यसङ्काशानास्थिताः पुरुषर्षभाः ३९ अशोभन्त महामेघाः शारदाश्चलविद्युतः । योधास्ते तु महाराज क्रोधामर्षसमन्विताः ॥ ४० ॥ स्पर्द्धिनश्च महेष्वासाः कृतयत्ना धनुर्द्धराः । अभ्यगच्छंस्तथान्योऽन्यं मत्ता गजवृषा इव ॥ ४१ ॥ न नूनं देहभेदोऽस्ति काले राजन्ननागते । यत्र सर्वेण युगपद्व्यशीर्यन्त महारथाः ॥ ४२ ॥ बाहुभिश्चरणैश्छिन्नैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः । कार्मुकैर्विशिखैः प्रासैः खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥४३॥ नालीकैः क्षुद्रनाराचैर्नखरैः शक्तितोमरैः । अन्यैश्च विविधाकारैः धौतैः प्रहरणोत्तमैः ॥ ४४ ॥ विचित्रैर्विविधाकारैः शरीरावरणैरपि । विचित्रैश्च रथैर्भग्नैर्हतैश्च गजवाजिभिः ॥४५॥ शून्यैश्चैव

संकुल था, दूसरे रथी उस विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले योधाओंके विचित्र युद्धको देखरहे थे, वे भी एक दूसरेका पराजय करना चाहते थे, बड़े पराक्रमी थे, जीतनेके लिये उद्योग कररहे थे और जैसे चौमासेमें मेघ जल बरसाता है तैसे ही वेभी बाणोंकी वर्षा कररहे थे और सूर्यकी समान चमकते हुए रथोंमें बैठे थे, इसकारण वे चञ्चल बिजलियों वाले शरद ऋतुके मेघकी समान शोभा पारहे थे, हे महाराज ! क्रोध तथा असहनशीलता वाले और स्पर्धा करनेवाले महाधनुषधारी योधा मदमत्त बड़े२हाथियोंकी समान आपसमें युद्ध कररहे थे ॥ ३९–४१॥ हे राजन् ! जबतक समय नहीं आता है तबतक देहपात नहीं होता है, इसकारण सब महारथी एक साथ ही नहीं मारेजाते थे ॥४२॥ हे राजा धृतराष्ट्र ! रणभूमिमें कटे हुए बाहु, चरण, कुण्डलों वाले मस्तक, धनुष, बाण प्रास, छोटे२ बाण, तीक्ष्ण शक्तियें, तोमर, और भी अनेकों प्रकारके तयार किये हुए बहुमूल्य आयुध. विचित्र और नानाप्रकारके कवच, टूटे हुए भाँति २ के रथ, मरे हुए हाथी, घोड़े, जिनके

नगाकारैर्हतयोधध्वजै रथैः। अमनुष्यैर्हयैस्तैः कृष्यमाणैरितस्ततः॥४६ वातायमानैरसकृद्धतवीरैरलंकृतैः। व्यजनैः कङ्कटैश्चैव ध्वजैश्च विनिपातितैः।४७। छत्रैराभरणैर्वस्त्रैर्माल्यैश्च सुसुगन्धिभिः। हारैः किरीटैर्मुकुटैरुष्णीषैः किङ्किणीगणैः।४८। उरस्थैर्मणिभिर्निष्कैश्चूडामणिभिरेव च। आसीदायोधनं तत्र नभस्तारागणैरिव॥४९॥ ततो दुर्योधनस्यासीन्नकुलेन समागमः। अमर्षितेन क्रुद्धस्य क्रुद्धेनामर्षितस्य च ॥ ५० ॥ अपसव्यञ्चकाराथ माद्रीपुत्रस्तवात्मजम्। किरञ्छरशतैर्हृष्टस्तत्र नादो महानभूत्॥५२॥ अपसव्यं कृतं संख्ये भ्रातृव्येनात्यमर्षिणा। नामृष्यत तमप्याजौ प्रतिचक्रेऽपसव्यतः॥५२॥ पुत्रस्तव महाराज राजा दुर्योधनः द्रुतम्। ततः प्रतिचिकीर्षन्तमपसव्यन्तु ते सुतम् ॥ ५३ ॥ न्यवारयत तेजस्वी नकुलश्चित्रमार्ग-

रथी मरगये थे और जिनकी ध्वजायें टूटगयी थीं ऐसे पहाड़ोंकी समान आकारवाले सूने रथ, सवारोंसे शून्य पड़े हुए और जिधर तिधरको खेंचतान करते हुए, पवनकी समान वेगसे वारंवार दौड़तेहुए और जिनके वीर सवार मरगये थे ऐसे सजेहुए घोड़े, चँवर, बख्तर, ध्वजा, छत्र, गहने, सुगन्धित पुष्प, हार, मुकुट पगड़ियें घूँघरू छातीपर पहरनेकी मणियोंकी मालायें और चूड़ामणि आदि रणभूमिमें पड़े थे, उनसे रणभूमि ऐसी शोभा पारही थी, जैसे तारागणोंसे आकाश शोभा पाता है ॥ ४३-४९ ॥ फिर क्रोधी और असहनशील दुर्योधनने क्रोधी असहनशील नकुलके साथ युद्ध करना आरम्भ करदिया॥५०॥ हे महाराज ! माद्रीके पुत्र नकुलने तुम्हारे पुत्रको वायें भाग पर लाडाला और उसके ऊपर सैंकड़ों वाणोंकी वर्षा करके गरजने लगा ॥५१॥ अत्यन्त असहनशील चाचाके पुत्रने युद्धमें मुझे वाईं ओर लाडाला,इस वातको दुर्योधन सह नहीं सका, इसलिये वह नकुलको अपनी वाईं ओर लानेके लिये उद्योग करनेलगा,परन्तु

वित् । स सर्वतो निवायनं शरजालेन पीडयन् ॥ ५४ ॥ विमुखं नकुलश्चक्रे तत्सैन्याः समपूजयन् । तिष्ठ तिष्ठेति नकुलो बभाषे तनयं तव । संस्मृत्य बहुदुःखानि तव दुर्मन्त्रितेन च ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि नकुल-
युद्धे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ८७॥

सञ्जय उवाच । ततो दुःशासनः क्रुद्धः सहदेवमुपाद्रवत् । रथवेगेन तीव्रेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १ ॥ तस्यापतत एवाशु भल्लेनामित्रकर्षणः । माद्रीसुतः शिरो यन्तुः सशिरस्त्राणमच्छिनत् ॥ २ ॥ नैनं दुःशासनः सूतं नापि कश्चन सैनिकः । कृत्तोत्तमाङ्गमाशुत्वात् सहदेवेन बुद्धवान् ॥ ३ ॥ यदा त्वसंगृहीतत्वात्

युद्धकी अनेकों रीतियें जाननेवाले तेजस्वी नकुलने, अपने वाम भागमें लाना चाहनेवाले तुम्हारे पुत्रको ऐसा करनेसे सब ओरसे रोकदिया और बाणोंकी मारसे पीडित करके उसको रणसे विमुख करदिया, यह देखकर सब सैनिक उसके पराक्रमकी प्रशंसा करनेलगे, दुर्योधनको रणमेंसे विमुख हुआ देखकर नकुलने अपने ऊपर पड़ेहुए सब दुःखोंको याद करके उससे कहा कि—अरे ओ दुर्योधन ! खडा रह, खडा रह, अब कहाँको भागा जाता है ? यह सब तेरे कपट भरे विचारोंका परिणाम है ॥ ५२—५५ ॥ एकसौ सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८७ ॥ ❁ ॥

सञ्जयने कहा, कि—तदनन्तर क्रोधमें भरा हुआ दुःशासन रथके प्रचण्ड वेगसे पृथ्वीको मानो कम्पायमान करता हो, इसप्रकार सहदेवके सामनेको दौडा ॥ १ ॥ तब शत्रुका नाश करने वाले सहदेवने तुरन्त भल्ल नामका बाण मार कर सामनेसे आते हुए दुःशासनके सारथीका मुकुटसहित शिर काटडाला ॥ २ ॥ सहदेवने ऐसी फुरतीसे सारथीका शिर काटा, कि—दुःशासनके वा उसके किसी सैनिकको मालूम ही नहीं हुआ ॥ ३ ॥ परन्तु घोड़ोंको

प्रयान्त्यश्वा यथासुखम् । ततो दुःशासनः सूतं बुबुधे गतचेतसम् ४ स हयान् सन्निगृह्याजौ स्वयं हयविशारदः । युयुधे रथिनां श्रेष्ठो लघु चित्रञ्च सुष्ठु च ॥५॥ तदस्यापूजयन् कर्म स्वे परे चैव संयुगे । हतसूतरथनाजौ व्यचरद्यदभीतवत् ॥६॥ सहदेवस्तु तानश्वांस्तीक्ष्णैर्बाणैरवाकिरत् । पीड्यमानाः शरैश्चाशु प्राद्रवंस्ते ततस्ततः ७ स रश्मिषु विषक्तत्वादुत्ससर्ज शरासनम् । धनुषा कर्म कुर्वंस्तु रश्मींश्च पुनरुत्सृजत् ॥ ८ ॥ छिद्रेषु तेषु तं बाणैर्माद्रीपुत्रोऽप्यवाकिरत् । परीप्संस्त्वत्सुतं कर्णस्तदन्तरमवापतत् ॥ ९ ॥ वृकोदरस्ततः कर्णं त्रिभिर्भल्लैः समाहितः । आकर्णपूर्णैरभ्यघ्नन्

थामनेवाला कोई न होने से वे स्वतंत्र होकर भागनेलगे तब ही दुःशासनको मालूम हुआ, कि– सारथी मारागया है ॥ ४ ॥ फिर योधाओंमें श्रेष्ठ अश्वशिक्षाके शास्त्रमें प्रवीण दुःशासनने इस लड़ाईमें घोड़ोंकी रासोंको पकड़ लिया और फुरतीके साथ विचित्र रीतिसे रणभूमिमें युद्ध करने लगा तथा सारथीरहित हुए रथको रणमें लाकर निर्भय पुरुषकी समान रणभूमिमें घूमने लगा, उसके इस कामकी हमारे और वैरीपक्षके योधा भी प्रशंसा करने लगे ॥ ५॥६ ॥ सहदेवने दुःशासनके घोड़ोंके तीक्ष्ण बाण मारे तब तो उसके घोड़े घबडागये और तुरन्त रणभूमिमें टेढ़ेबेढ़े भागनेलगे ॥ ७ ॥ दुःशासनने धनुषको नीचे फेंककर घोड़ोंकी रासें पकडलीं और घोडोंको भागनेसे रोका, उसने डोरियें छोडदीं और फिर धनुषबाण छोडने लगा, परन्तु दुःशासन जिस समय घोडोंको थामनेके लिये रासोंको पकड रहा था उस समय उस अवसरसे लाभ उठाकर सहदेव उसके बाण मारता रहा था, यह देखकर तुम्हारे पुत्रकी रक्षा करनेकी इच्छासे कर्ण बीचमें आकर खडा होगया ॥ ८॥९ ॥ भीमसेन भी सहदेवकी रक्षा करनेके लिये सावधान होगया और कानतक धनुषको खेंच कर्णकी दोनों

वाह्वोरुरसि चानदत् ॥१०॥ स निवृत्तस्ततः कर्णः संघट्टित इवोरगः । भीममावारयामास विकिरन्निशिताञ्छरान् ॥११॥ ततोऽभूत्तुमुल युद्धं भीमराधेययोस्तदा । तौ वृषाविव नर्दन्तौ विवृत्तनयनावुभौ ॥ १२ ॥ वेगेन महतान्योऽन्यं संरब्धावभिपेततुः । अभिसंश्लिष्टयोस्तत्र तयोराहवशौण्डयोः ॥ १३ ॥ विच्छिन्नशरपातत्वात् गदायुद्धमवर्त्तत। गदया भीमसेनस्तु कर्णस्य रथकूवरम् १४ बिभेद शतधा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् । ततो भीमस्य राधेयो गदामाविध्य वीर्यवान् ॥ १५ ॥ अवासृजद्रथे तान्तु विभेद गदया गदाम् । ततो भीमः पुनर्गुर्वीं चिक्षेपाधिरथेर्गदाम् ॥ १६ ॥ तां गदां वहुभिः कर्णः सुपुंखैः सुप्रवेजितैः । प्रत्यविध्यत् पुनश्चान्यैः

भुजाओंके बीचमें तथा छातीमें भल्ल नामके तीन वाण मारकर गरजने लगा ॥ १० ॥ फिर पैरसे दबेहुए सर्पकी समान कर्ण पीछेको लौटा और उसने तेज कियेहुए वाणोंकी वर्षा करके भीमसेनको प्रहार करनेसे रोकदिया ॥ ११ ॥ इस समय भीमसेन और कर्णमें महाघोर युद्ध चलने लगा, क्रोधमें भरेहुए वे दोनों योधा आँखें फाड़कर साँडोंकी समान गरजते हुए बड़े वेगसे आपसमें लडने लगे, जब लडते२ उन दोनों रणकुशल योधाओंके वाण निबडगये तब वे दोनों योधा गदायें लेकर लडने लगे, हे राजन् ! उनमें भीमसेनने गदा मार कर कर्णके रथके छत्रीके टुकड़े २ करडाले, भीमसेनने यह काम बड़ा ही अद्भुत किया था तदनन्तर पराक्रमी कर्णने भीमसेनकी गदाको पकडलिया और फिर वही भीमसेनके रथके ऊपरको फेंकी, तब भीमसेनने सामनेसे दूसरी गदा मार कर उस गदाके टुकड़े २ करडाले तथा और एक गदा कर्णके मारी ॥ १२–१६ ॥ कर्णने सुन्दर पंखोंवाले और बड़े ही वेगवाले बहुतसे वाण उस गदाके मारे उनसे वह मंत्रसे किली हुई नागन जैसे पीछेको हटजाती है तैसे

सा भीमं पुनराव्रजत् ॥१७॥ व्यालीव मन्त्राभिहता कर्णबाणैरभिद्रुता । तस्याः प्रतिनिपातेन भीमस्य विपुलो ध्वजः ॥ १८॥पपात सारथिश्चास्य मुमोह गदया हतः । स कर्णं सायकानष्टौ व्यसृजत् क्रोधमूर्च्छितः ॥१९॥ तैस्तस्य निशितैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनो महाबलः । चिच्छेद परवीरघ्नः प्रहसन्निव भारत ॥ २० ॥ ध्वजं शरासनञ्चैव शरावापञ्च भारत । कर्णोऽप्यन्यद्धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम् २१ ततः पुनस्तु राधेयो हयानस्य रथेषुभिः । ऋक्षवर्णान् जघानाशु तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ २२ ॥ स विपन्नरथो भीमो नकुलस्याप्लुतो रथम् । हरिर्यथा गिरेः शृङ्गं समाक्रामदरिन्दमः ॥ २३ ॥ तथा द्रोणार्जुनौ चित्रमयुध्येतां महारथौ । आचार्यशिष्यौ राजेन्द्र कृतप्रहरणौ युधि ॥ २४ ॥ लघुसन्धानयोगाभ्यां रथयोश्चरणेन

ही भीमसेनकी ओरको पीछेको हटगयी और उस गदाकी चोटसे भीमसेनकी बडी ध्वजा टूटकर भूमि पर गिरगयी तथा सारथीको मूर्छा आगयी, इसप्रकार पराक्रम करनेके अनन्तर क्रोधमें भरेहुए भीमने कर्णके आठ बाण मारे ॥ १७–१९ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! महावीर वैरीका संहार करनेवाले महाबली भीमने मुख मलका कर तेज कियेहुए तीक्ष्ण बाण मार कर्णकी ध्वजा, धनुष और भाथेको काटडाला, फिर कर्णने भी सुवर्णकी पीठवाला दूसरा दुरासद धनुष लिया और रथको तोडनेके बाण मारकर भीमसेनके ऋक्षवर्णके घोड़ोंको,दोनों करवटोंके रक्षकोंको और सारथीको शीघ्र ही मारडाला ॥ २०–२२ ॥ घोड़े तथा सारथीके मारेजानेसे रथ रुकगया तब वैरीको दबानेवाला भीमसेन जैसे सिंह पर्वतके शिखर पर चढजाता है तैसे ही नकुलके रथके ऊपर चढगया ॥ २३ ॥ हे राजेन्द्र ! दूसरी ओर महारथी गुरु शिष्य द्रोणाचार्य और अर्जुन भी एक दूसरेके ऊपर प्रहार करते हुए विचित्र युद्ध कररहे थे ॥२४॥ दोनों महारथी बडी फुर्तीसे

च । मोहयन्तौ मनुष्याणां चक्षूंषि च मनांसि च ॥ २५ ॥ उपारमन्त ते सर्वे योधा भरतसत्तम । अदृष्टपूर्वं पश्यन्तस्तद्युद्धं गुरुशिष्ययोः॥२६॥ विचित्रान् पृतनामध्ये रथमार्गानुदीर्य तौ । अन्योऽन्यमपसव्यं तु कर्त्तुं वीरौ तदेषतुः ॥ २७ ॥ पराक्रमन्तयोर्योधा ददृशुस्ते सुविस्मिताः । तयोः समभवद्युद्धं द्रोणपाण्डवयोर्महत् २८ आमिषार्थे महाराज गगने श्येनयोरिव । यद्यच्चकार द्रोणस्तु कुन्तीपुत्रजिगीषया ॥२९॥ तत्तत्प्रतिजघानाशु प्रहसंस्तस्य पांडवः। यदा द्रोणो न शक्नोति पाण्डवं स्म विशेषितुम् ॥ ३० ॥ ततः प्रादुश्चकारास्त्रमस्त्रमार्गविशारदः । ऐन्द्रं पाशुपतं त्वाष्ट्रं वायव्यमथ वारुणम् ॥ ३१ ॥ मुक्तं मुक्तं द्रोणचापात्तज्जघान धन-

बाणोंको चढाना, छोड़ना और रथोंको मण्डलाकारसे घुमाना आदि क्रियाओंसे मनुष्योंके नेत्रोंको और मनको मोहित कररहे थे २५ और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! दूसरे योधा रणमें खड़े२ गुरु शिष्यके पहले कभी न देखेहुए युद्धको देखरहे थे ॥ २६ ॥ इस समय दोनों वीर सेनाके मध्यमें रथोंको अनेकों चालोंसे फिरा रहे थे और एक दूसरेको दाहिने भाग पर ले आनेकी इच्छा कररहे थे और ऐसे दोनोंके युद्धको देखकर दूसरे योधा आश्चर्यमें होरहे थे, हे महाराज ! मांसके लिये आकाशमें जैसे दो बाज पक्षी लड मरते हैं तैसे ही राज्यके लिये द्रोण और अर्जुन महायुद्ध कररहे थे, इस युद्धमें द्रोणाचार्य कुन्तीपुत्र अर्जुनका पराजय करनेके लिये जो२ युक्तियें रचरहे थे, उन युक्तियोंको अर्जुन तुरन्त ही हँसकर तोड़ फोड़ डालता था, इसप्रकार जब द्रोणाचार्य अर्जुनसे नहीं बढ़सके ॥ २७–३० ॥ तब अस्त्रोंको जाननेवाले द्रोणाचार्यने अर्जुनके क्रमसे जैसे२ ऐन्द्र, पाशुपत, त्वाष्ट्र, वायव्य और वारुण अस्त्र मारना आरम्भ किये तैसे२ अर्जुन भी उनके अस्त्रोंको काटनेलगा और जैसे२ अर्जुन विधि-

ञ्जयः । अस्त्राण्यस्त्रैर्यदा तस्य विधिवद्धन्ति पाण्डवः ॥ ३२ ॥ ततोऽस्त्रैः परमैर्दिव्यैर्द्रोणः पार्थमवाकिरत् । यद्यदस्त्रं स पार्थाय प्रयुङ्क्ते विजिगीषया ॥ ३३ ॥ तस्य तस्य विघाताय तत्तद्धि कुरुतेऽर्जुनः । स वध्यमानेष्वस्त्रेषु दिव्येष्वपि यथाविधि ॥ ३४ ॥ अर्जुनेनार्जुनं द्रोणो मनसैवाभ्यपूजयत् । मेने चात्मानमधिकं पृथिव्यामधिभारत ॥ ३५ ॥ तेन शिष्येण सर्वेभ्यः शस्त्रविद्भ्यः परन्तपः । वार्यमाणस्तु पार्थेन तथा मध्ये महात्मनाम् ॥ ३६ ॥ यतमानोऽर्जुनं प्रीत्या प्रत्यवारयदुत्स्मयन् । ततोऽन्तरिक्षे देवाश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः ॥ ३७ ॥ ऋषयः सिद्धसंघाश्च व्यदृश्यन्त दिदृक्षया । तदप्सरोभिराकीर्णं यक्षगन्धर्वसंकुलम् ॥ ३८ ॥ श्रीम-

---

पूर्वक अस्त्रोंको काटतागया तैसे२ द्रोणाचार्य अर्जुनके परम दिव्य अस्त्र मारते गये, अर्जुनने उन परम दिव्य अस्त्रोंका भी नाश करडाला, इसप्रकार अर्जुनको जीतलेनेकी इच्छासे द्रोणाचार्य अर्जुनके ऊपर जिन२ अस्त्रोंका प्रयोग करते थे, उन२ अस्त्रोंका नाश करनेके लिये अर्जुन उद्योग करता था, अर्जुनने मेरे दिव्य अस्त्रोंका नाश करदिया, यह देखकर द्रोणाचार्य अपने मनमें अर्जुनकी प्रशंसा करनेलगे और हे भरतवंशी राजन! मेरा शिष्य पृथिवी पर सब अस्त्रवेत्ताओंकी अपेक्षा बढ़कर निकला है. यह देखकर परन्तप द्रोणाचार्य अपनेको श्रेष्ठ माननेलगे, फिर अर्जुन महात्मा पुरुषोंके बीचमें द्रोणाचार्यको पीछे हटानेका उद्योग करने लगा और द्रोणाचार्य भी प्रेमसे मन्द२ हँसतेहुए अर्जुनको पीछेको हटानेका उद्योग करनेलगे, इससमय द्रोण और अर्जुनके युद्धको देखने की इच्छासे आकाशमें हजारों देवता, गन्धर्व, ऋषि और सिद्धोंके समूह आकर खड़े होगये थे; उनसे, अप्सराओंसे, यक्षोंसे और गंधर्वोंसे आकाश छायाहुआ था. इसलिये जैसे घनघटाओंसे पूर्ण रीतिसे भराहुआ आकाश शोभापाता है तैसे ही शोभा पारहा था हे राजन्!

दाकाशमभवद्भूयो मेघाकुलं यथा । तत्र स्मान्तर्हिता वाचो विचरन्ति पुनः पुनः ॥ ३९ ॥ द्रोणपार्थस्तवोपेता व्यूश्रयंत नराधिप । विसृज्यमानेष्वस्त्रेषु ज्वालयत्सु दिशो दश ॥ ४० ॥ अब्रुवंस्तत्र सिद्धाश्च ऋषयश्च समागताः । नैवेदं मानुषं युद्धं नासुरं न च राक्षसम् ॥ ४१ ॥ न दैवं न च गान्धर्वं ब्राह्मं ध्रुवमिदं परम् । विचित्रमिदमाश्चर्यं न नो दृष्टं न च श्रुतम् ।४२॥ अतिपाण्डवमाचार्यो द्रोणञ्चाप्यतिपाण्डवः । नानयोरन्तरं द्रष्टुं शक्यमन्येन केनचित् ॥ ४३ ॥ यदि रुद्रो द्विधा कृत्य युध्येतात्मानमात्मना । तत्र शक्योपमा कर्त्तुमन्यत्र न तु वर्त्तते ॥ ४४ ॥ ज्ञानमेकस्थमाचार्ये ज्ञानं योगश्च पाण्डवे । शौर्यमेकस्थमाचार्ये बलं शौर्यञ्च पाण्डवे ॥ ४५ ॥ नेमौ शक्यौ महेष्वासौ रणे क्षपयितुं परैः ।

इस समय द्रोण तथा अर्जुनकी स्तुतिरूप आकाशवाणियें भी सुनायी आरही थीं छोड़ेहुए अस्त्रोंसे दशों दिशायें जलरही थीं ॥ ३९–४० ॥ उस समय युद्ध देखनेको इकट्ठेहुए सिद्ध तथा ऋषि कहरहे थे, कि–यह युद्ध मानुषी, आसुरी, राक्षसी, दैवी या गान्धर्वी नहीं है किन्तु कोई अपूर्व ब्रह्मयुद्ध है और यह युद्ध विचित्र तथा आश्चर्यजनक है और हमने ऐसा युद्ध पहले कभी देखा ही नहीं था तथा सुना भी नहीं था ॥४१–४२॥ द्रोणाचार्य अर्जुनकी अपेक्षा अधिक बलवान् हैं और अर्जुन द्रोणाचार्यसे बढ़ा जारहा है, ऐसे इन दोनोंके अन्तरको दूसरा कोई मनुष्य नहीं जानसकता ॥४३॥ कदाचित् शिव अपने शरीरके दो भाग करके युद्ध करें तो उनको इन दोनोंकी समान कहा जासकता है, परन्तु और किसी जगह इसकी उपमा नहीं दीजासकती ॥४४॥ यदि द्रोणाचार्यमें एक ज्ञान है तो अर्जुनमें ज्ञान और योग दोनों हैं, यदि द्रोणाचार्यमें शूरताकी अवधि (हद) है तो अर्जुनमें बल और शूरता दोनों रहते हैं ॥४५॥ इसलिये शत्रु इन दोनों

इच्छमानौ पुनरिमौ हन्येतां सामरं जगत् ॥४६॥ इत्यब्रुवन्महाराज दृष्ट्वा तौ पुरुषर्षभौ । अन्तर्हितानि भूतानि प्रकाशानि च सर्वशः ॥ ४७ ॥ ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं प्रादुश्चक्रे महामतिः । सन्तापयन् रणे पार्थं भूतान्यन्तर्हितानि च ॥ ४८ ॥ ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा । ववौ च विषमो वायुः सागराश्चापि चुक्षुभुः ॥४६॥ ततस्त्रासो महानासीत् कुरुपाण्डवसैन्ययोः । सर्वेषाञ्चैव भूतानामुद्यतेऽस्त्रे महात्मना ॥ ५० ॥ तत पार्थोऽप्यसम्भ्रान्तस्तदस्त्रं प्रतिजघ्निवान् । ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ततः सर्वमशीशमत् ॥ ५१ ॥ यदा न गम्यते पारं तयोरन्यतरस्य वा । तदा संकुलयुद्धेन तद्युद्धं व्याकुलीकृतम् ॥५२॥ नाज्ञायत ततः किञ्चित्

महाधनुषधारियोंको युद्धमें नहीं मारसकते, यदि यह दोनों चाहें तो देवताओं सहित जगत्का संहार करसकते हैं ४६ हे महाराज धृतराष्ट्र! इसप्रकार उन दोनों महात्मा पुरुषोंको देखकर स्पष्ट दीखनेवाले और अदृश्य होकर विद्यमान रहनेवाले सब प्राणी कहरहे थे ॥४७॥ इतनेमें ही महाबुद्धिमान् द्रोणाचार्यने ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया, वह [illegible] देनेलगा ॥४८॥ पर्वत और वनवृक्षों सहित पृथिवी काँपनेलगी, अतितीक्ष्ण पवन चलनेलगा और समुद्र भी खलभला उठे ॥ ४६ ॥ द्रोणाचार्यने ब्रह्मास्त्रको लेकर ज्यों ही ऊपरको किया, कि—उसी समय कौरव पाण्डवोंकी सेना तथा सब प्राणियोंमें हाहाकार मचगया ॥५०॥ हे ! राजेन्द्र ! तदनन्तर अर्जुनने धीरज धरकर सामनेसे ब्रह्मास्त्र मार द्रोणाचार्यके ब्रह्मास्त्रका नाश करदिया, उस समय सर्वत्र शान्ति फैलगयी ॥ ५१ ॥ परन्तु उन दोनोंमेंसे एकका विजय होता हुआ देखनेमें नहीं आया, तदनन्तर दोनों ओरके योधा रिलमिल कर लडनेलगे ॥ ५२ ॥ और हे राजन् ! फिर द्रोण तथा अर्जुनमें घोर युद्ध होनेलगा, उस समय मेघमण्डलोंकी समान

पुनरेव विशाम्पते । प्रवृत्ते तुमुले युद्धे द्रोणपाण्डवयोर्मृधे ॥५३॥ शरजालैः समाकीर्णे मेघजालैरिवाम्बरे । न स्म सम्पतते कश्चिदन्तरिक्षचरस्तदा ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे
अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ।

सञ्जय उवाच । तस्मिंस्तदा वर्त्तमाने नराश्वगजसंक्षये । दुःशासनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १ ॥ स तु रुक्मरथासक्तो दुःशासनशरार्दितः । अमर्षात्तव पुत्रस्य शरैर्वाहानवाकिरत् ॥ २ ॥ क्षणेन स रथस्तस्य सध्वजः सह सारथिः । नादृश्यत महाराज पार्षतस्य शरैश्चितः ॥ ३ ॥ दुःशासनस्तु राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्य महात्मनः । नाशकत् प्रमुखे स्थातुं शरजालप्रपीडितः ॥ ४ ॥ स तु दुःशासनं बाणैर्विमुखीकृत्य पार्षतः । किरञ्छरसहस्राणि

बाणोंके समूहोंसे आकाश छागया, इसलिये कुछ भी नहीं दीखता था और उस समय आकाशमें एक भी पक्षी नहीं उड रहा था ॥ ५३–५४ ॥ एकसौ अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८८ ॥

सञ्जयने कहा, कि–हे महाराज ! हाथी, घोड़े तथा मनुष्योंका संहार करनेवाला यह युद्ध होरहा था, उस समय दुःशासन धृष्टद्युम्नके साथ लडनेलगा ॥ १ ॥ उसने सोनेके रथोंमें बैठेहुए धृष्टद्युम्नके खूब ही बाण मारे,इससे धृष्टद्युम्नको बडी पीडा हुई तब उसने क्रोधमें भरकर तुम्हारे पुत्रके घोडोंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ करदी ॥२॥ और एक ही क्षणमें धृष्टद्युम्नके बाणोंके नीचे सारथी,ध्वजा और रथसहित दुःशासन ढकगया, जिससे वह दीखना बन्द होगया ॥३॥ और हे राजेन्द्र ! महात्मा धृष्टद्युम्नके बाणोंके समूहके प्रहारसे घबडा कर वह उसके सामने खड़ा भी नहीं रहसका, किंतु रणमेंसे भागगया ॥४॥ धृष्टद्युम्नने बाण मारकर दुःशासनको रणमेंसे भगादिया, फिर रणमें हजारों

द्रोणमेवाभ्ययाद्रणे ॥५॥ अभ्यपद्यत हार्दिक्यः कृतवर्मा त्वनन्तरम्। सोदर्याणां त्रयश्चैव तत्रैनं पर्यवारयन् ॥ ६ ॥ तं यमौ पृष्ठतोऽन्वैतां रक्षन्तौ पुरुषर्षभौ। द्रोणायाभिमुखं यान्तं दीप्यमानमिवानलम् ॥ ७ ॥ सम्प्रहारमकुर्वंस्ते सर्वे च सुमहारथाः। अमर्षिताः सत्त्ववन्तः कृत्वा मरणमग्रतः ॥८॥ शुद्धात्मानः शुद्धवृत्ता राजन् स्वर्गपुरस्कृताः। आर्यं युद्धमकुर्वन्त परस्परजिगीषवः ॥९॥ शुक्लाभिजनकर्माणो मतिमन्तो जनाधिप। धर्मयुद्धमयुध्यन्त प्रेप्सन्तो गतिमुत्तमाम् ॥ १० ॥ न तत्रासीदधर्मिष्ठमशस्त्रं युद्धमेव च। नात्र कर्णी न नालीको न लिप्तो न च बस्तिकः ॥ ११ ॥ न सूचीकपिशो नैव न गवास्थिर्गजास्थिजः। इषुरासीन्न संश्लिष्टो

बाणोंकी वर्षा करताहुआ धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सामने जा चढा ॥५॥ बीचमें हृदीकका पुत्र कृतवर्मा सामने आया, कृतवर्माको धृष्टद्युम्नने तथा उसके दो सगे भाइयोंने चारों ओरसे घेरलिया ६ और द्रोणाचार्यके सामने लडनेको जातेहुए अग्निकी समान तेजस्वी धृष्टद्युम्नकी रक्षा करनेके लिये पीछे २ आते हुए नकुल तथा सहदेवने भी उसको चारों ओरसे घेरलिया ॥७॥ फिर असहनशील और मानसिक बलवाले सब महारथी मृत्युको आगे करके वैरियोंके साथ युद्ध करनेलगे ॥८॥ हे राजन्! शुद्ध अन्तःकरणवाले शुद्ध आचरणवाले, पवित्र कुलमें उत्पन्न हुए, अतिपवित्र कर्म करनेवाले और बुद्धिमान् वे योधा स्वर्ग और उत्तम प्रकारकी निर्मल कीर्त्तिको पानेकी इच्छासे तथा परस्पर वैरियोंका पराजय करनेकी इच्छासे आर्यपुरुषोंके योग्य युद्ध करने लगे ॥९-१०॥ इस समय जो युद्ध हो रहा था वह धर्मानुकूल और शुद्ध था और यह युद्ध किसी प्रकार भी मलीन वा निन्दाका पात्र नहीं था, इस युद्धमें कर्णी बाण, नालीक बाण, विषमें बुझाये हुए बाण, बस्ती बाण, सूचीबाण, कपिश बाण बैलकी हड्डीके बाण,

न पूतिर्न च जिह्मगः ॥ १२ ॥ ऋजून्येव हि शुद्धानि सर्वे शस्त्राण्यधारयन् । सुयुद्धेन पराँल्लोकानीप्सन्तः कीर्त्तिमेव च ॥१३॥ तदासीत्तुमुलं युद्धं सर्वदोषविवर्जितम् । चतुर्णां तत्र योधानां तैस्त्रिभिः पाण्डवैः सह ॥ १४ ॥ धृष्टद्युम्नस्तु तान् दृष्ट्वा तव राजन्नृषर्भान् । यमाभ्यां वारितान् वीरान् शीघ्रास्त्रो द्रोणमभ्ययात् ॥१५॥ निवारितास्तु ते वीरास्तयोः पुरुषसिंहयोः । समसज्जन्त चत्वारो वाताः पर्वतयोरिव ॥१६॥ द्वाभ्यां द्वाभ्यां यमौ सार्धं रथाभ्यां रथपुङ्गवौ । समासक्तौ ततो द्रोणं धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥१७॥ दृष्ट्वा द्रोणाय पाञ्चाल्यं व्रजंतं युद्धदुर्मदम् । यमाभ्यां तांश्च संसक्तांस्तदन्तरमुपाद्रवत् ॥१८॥ दुर्योधनो महाराज किरञ्छोणितभोजनान् । तं सात्यकिः शीघ्रतरं

संश्लिष्ट (दो दाँत वाले) बाण, पूति (मैले शल्यवाले) बाण तथा तिरछे जानेवाले बाण नहीं बरते गये थे ॥ ११-१२ ॥ किन्तु सबोंने सीधे जानेवाले शुद्ध शस्त्र धारण किये थे और वे सब आर्ययुद्ध करके कीर्त्ति पाना चाहते थे ॥१३॥ हे महाराज ! इस समय तुम्हारे चार योधाओंका पाण्डवोंके तीन योधाओंके साथ सकल दोषोंसे रहित घोर युद्ध हुआ था ॥ १४ ॥ हे राजन् ! नकुल और सहदेवने तुम्हारे महारथी वीरोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया, यह देखकर शीघ्रतासे अस्त्रोंका प्रयोग करनेवाला धृष्टद्युम्न शीघ्र ही द्रोणाचार्यके सामने लड़नेको आगे बढ़ा ॥ १५ ॥ फिर तुम्हारे रोके हुए वीर जैसे पवन पहाड़ोंके सामने जोर लगाते हैं, तैसे ही पुरुषसिंह नकुल और सहदेवके साथ जुटगये ॥१६॥ महारथी नकुल और सहदेव एक २ होकर तुम्हारे दो २ योधाओंके साथ लड़ने लगे, उस समय धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यकी ओरको जानेलगा ॥१७॥ हे महाराज ! दुर्योधनने देखा, कि-पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सामने लड़नेको जारहा है और नकुल तथा सहदेव मेरे चारों महारथियोंको

पुनरेवाभ्यवर्त्तत ॥ १९ ॥ तौ परस्परमासाद्य समीपे कुरुमाधवौ । हसमानौ नृशार्दूलावभीतौ समसज्जताम् ॥२० ॥ बाल्ये वृत्तानि सर्वाणि प्रीयमाणौ विचिन्त्य तौ । अन्योऽन्यं प्रेक्षमाणौ च हसमानौ पुनः पुनः ॥ २१ ॥ अथ दुर्योधनो राजा सात्यकिं समभाषत । प्रियं सखायं सततं गर्हयन् वृत्तमात्मनः ॥२२॥ धिक् क्रोधं धिक् सखे लोभं धिक् मोहं धिगमर्षितम्। धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलमौरसम् ॥२३॥ यत्र मामभिसन्धत्से त्वाञ्चाहं शिनिपुङ्गव । त्वं हि प्राणैः प्रियतरो ममाहञ्च सदा तव॥२४॥स्मरामि तानि सर्वाणि बाल्यवृत्तानि यानि नौ । तानि सर्वाणि जीर्णानि साम्प्रतं नौ रणाजिरे ॥ २५ ॥ किमन्यत्क्रोधलोभाभ्यां युद्धमेवाद्य सात्वत ।

रोक कर उनके साथ लड़रहे हैं, इसलिये मैं बीचमें जाऊँ ऐसा विचार कर रुधिर पीनेवाले बाणोंकी वर्षा करता हुआ दुर्योधन बीचमें चढ आया, परन्तु उसको रोकनेके लिये शीघ्रतासे वहाँको फिर दौड़ आया ॥ १८–१९ ॥ दुर्योधन और सात्यकि जो सिंहकी समान बलवान् थे वे निर्भय होकर आमने सामने हँसते हुए लड़ने लगे ॥ २० ॥ बालकपनके अपने सब चरित्रोंको याद करके प्रसन्न होने लगे और वारंवार एक दूसरे को देखकर गर्वमें आकर फूलने लगे ॥ २१ ॥ राजा दुर्योधन वारंवार अपने आचरणकी निन्दा करता हुआ प्यारे मित्र सात्यकिसे कहने लगा कि–॥ २२ ॥ हे मित्र ! मेरे क्रोधको, लोभको, मोहको, असहनशीलताको, क्षात्र आचरणको तथा मानसिक बलको धिक्कार है ! ॥ २३ ॥ हे शिनिकुलपुङ्गव ! आजके युद्धमें तू मेरे ऊपर प्रहार कर रहा है और मैं तेरे ऊपर प्रहार कररहा हूँ, परन्तु तू मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है और मैं भी सदा तुझे प्राणों से अधिक प्यार करता हूँ, परन्तु हम दोनोंके सब बालचरित्रोंको इस समय याद करता हूँ तो रणभूमिमें ऐसा मालूम होता है कि-

तं तथा वादिनं राजन् सात्वतः प्रत्यभाषत ॥२६॥ प्रहसन् विशिखांस्तीक्ष्णानुद्यम्य परमास्त्रवित् । नेयं सभा राजपुत्र न वाचार्यनिवेशनम् ॥ २७ ॥ यत्र क्रीडितमस्माभिस्तदा राजन् समागतैः । दुर्योधन उवाच । क्व सा क्रीडा गतास्माकं बाल्ये वै शिनिपुङ्गव२८ क्व च युद्धमिदम्भूयः कालो हि दुरतिक्रमः । किन्तु नो विद्यते कृत्यं धनेन धनलिप्सया ॥ २९ ॥ यत्र युध्यामहे सर्वे धनलोभात् समागताः । सञ्जय उवाच । तं तथा वादिनं तत्र राजानं सात्वतोऽब्रवीत् ॥३०॥ एवं वृत्तं सदा क्षात्रं युध्यन्तीह गुरूनपि । यद्यहं ते प्रियो राजन् जहि मां माचिरं कृथाः ॥३१॥ त्वत्कृते सुकृताँल्लोकान्

वे सब जीर्ण हो गये ॥ २४–२५ ॥ आज जो युद्ध होरहा है, इस युद्धमें क्रोध तथा लोभके सिवाय और क्या कारण है ? दुर्योधनकी इस बातको सुनकर महाअस्त्रवेत्ता सात्यकिने तीक्ष्ण बाण उठाये और हँसते२ दुर्योधनसे कहा कि–अरे राजपुत्र ! यह कोई सभा नहीं है तथा किसी आचार्यका घर भी नहीं है, कि–जहाँ हम इकट्ठे होकर खेला करते थे, दुर्योधनने कहा कि–हे सात्यकी ! हम बालकपनमें खेलते फिरते थे, वह खेलकूद कहाँ गया ? और हमको यह युद्ध करनेके लिये कहाँसे आगया ! वास्तवमें कालकी गतिको रोकना बड़ा कठिन है ! अरे ! हमें इस धनसे और धनके लोभसे क्या काम है ? ॥ २६–२९ ॥ जिस धनके लिये वा लोभके लिये हम सब इकट्ठे होकर लड़रहे हैं, सञ्जय कहता है, कि–हे राजन् ! इस प्रकार दुर्यधनने कहा, तब उस राजासे सात्यकीने कहा, कि–॥ ३० ॥ क्षत्रियोंका आचरण ऐसा ही होता है, कि वे गुरुजनोंके साथ भी युद्ध करते हैं इसलिये हे राजन् ! यदि मैं तुझे प्यारा हूँ तो तू मेरे ऊपर पहले प्रहार कर, विलम्ब न कर ॥ ३१ ॥ हे भरतसत्तम ! मैं तेरे कारणसे पुण्यवानोंके स्वर्गादि लोकोंमें पहुँचूँगा ! तुझमें जितनी शक्ति और जितना बल हो

गच्छेयं भरतर्षभ । या ते शक्तिर्बलं यच्च तत्क्षिप्रं मयि दर्शय ॥ ३२ ॥ नेच्छामि तदहं द्रष्टुं मित्राणां व्यसनं महत् । इत्येवं व्यक्तमाभाष्य प्रतिभाष्य च सात्यकिः ३३ अभ्ययात्तूर्णमव्यग्रो दयां नाकुरुतात्मनि । तमायान्तं महाबाहुं प्रत्यगृह्णात्तवात्मजः ॥ ३४ ॥ शरैश्चावाकिरद्राजन् शैनेयं तनयस्तव । ततः प्रवृत्ते युद्धं कुरुमाधवसिंहयोः ३५ अन्योऽन्यं क्रुद्धयोर्घोरं यथा द्विरदसिंहयोः । ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ॥ ३६ ॥ दुर्योधनः प्रत्यविध्यत् कुपितो दशभिः शरैः । तं सात्यकिः प्रत्यविध्यत् तथैवावाकिरच्छरैः ॥ ३७ ॥ पञ्चाशता पुनश्चाग्नौ त्रिंशता दशभिश्च ह । सात्यकिन्तु रणे राजन् प्रहसंस्तनयस्तव ॥ ३८ ॥ आकर्णपूर्णैर्निशितैर्विव्याध त्रिंशता शरैः । ततोऽस्य सशरञ्चापं क्षुरप्रेण द्विधाकरोत् ॥ ३९ ॥ सोऽन्यत् कार्मुकमादाय लघुहस्तस्ततो दृढम् । सात्यकिर्व्यसृजच्चापि शर-

---

उस सबको तू मेरे ऊपर शीघ्र ही दिखा ॥ ३२ ॥ क्योंकि मैं मित्रोंके ऊपर पड़नेवाले महादुःखको देखना नहीं चाहता, इस प्रकार स्पष्ट उत्तर देकर निर्भय सात्यकी अपने प्राणोंकी भी परवाह न करके तुरन्त ही उसके सामने लडनेके लिये आकर खडा हो गया, हे महाराज ! जब महाबाहु सात्यकी लडनेके लिये सामने आकर खडा होगया, उस समय तुम्हारा पुत्र उसके ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा, तुरन्त ही कोपमें भरे हुए हाथी तथा सिंह जैसे आपसमें महाघोर युद्ध करते हैं तैसे ही कोपमें भरे हुए इन दोनों कुरुवंशी और मधुवंशी योधाओंमें घोर युद्ध होने लगा, कोपमें भरे हुए दुर्योधनने बड़े लंबे दश बाण युद्धदुर्मद सात्यकीके मारे सात्यकिने उसके पचास और फिर चालीस बाण मारे, हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रने हँसते २ धनुषको कानतक खेंचकर सात्यकीके तीस बाण मारे और क्षुरप्र नामके बाणसे उसके बाण चढ़े हुए धनुषके दो टुकडे करडाले ॥ ३३-३९ ॥ तब फुरतीले हाथवाले सात्यकीने

श्रेणीं सुतस्य ते ४० ॥ तामापतन्तीं सहसा शरश्रेणीं जिघांसया चिच्छेद वहुधा राजा तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ४१ ॥ सात्यकिश्च त्रिसप्तत्या पीडयामास वेगितः । स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैराकर्णापूर्णनिःसृतैः ॥४२॥ तस्य सन्दधतश्चेषून् संहितेषु च कार्मुकम् । अच्छिनत् सात्यकिस्तूर्णं शरैश्चैवाप्यवीविधत् ॥ ४३ ॥ स गाढविद्धो व्यथितः प्रत्यपायाद्रथान्तरे । दुर्योधनो महाराज दाशार्हशरपीडितः ॥४४॥ समाश्वस्य तु पुत्रस्ते सात्यकिं पुनरभ्ययात् । विसृजन्निषुजालानि युयुधानरथं प्रति ॥४५॥ तथैव सात्यकिर्बाणान् दुर्योधनरथं प्रति । सततं व्यसृजद्राजंस्ततसंकुलमवर्त्तत॥४६॥ तत्रेषुभिः क्षिप्यमाणैः पतद्भिश्च शरीरेषु । अग्नेरिव महाकक्षैः

दूसरा दृढ़ धनुष हाथमें लिया और तुम्हारे पुत्रके ऊपर वाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४० ॥ एकायकी अपने ऊपर पडती हुई वाणों की वर्षाका नाश करनेके लिये राजा दुर्योधनने उसके वहुतसे टुकड़े करडाले, उस समय मनुष्योंने बडा कोलाहल मचाडाला था ॥ ४१ ॥ उसने वेगमें आकर सानपर धरकर तेज कियेहुए, धनुषको कानतक खेंचकर छोड़ेहुए तथा सोनेके पंखोंवाले तिहत्तर वाण मारकर सात्यकीको घबडादिया ॥ ४२ ॥ फिर दुर्योधनने धनुष पर वाण चढ़ाकर तयार किया, कि-सात्यकीने तुरन्त वाण चढ़ाये हुए उसके धनुषके टुकड़े कर डाले और वाण मार कर दुर्योधनको भी वींधदिया ॥४३॥ हे महाराज ! सात्यकीके प्रबल प्रहारसे तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको भी वडी ही पीडा हुई, वह खिन्न होकर दूसरे रथमें जा बैठा और सावधान होकर फिर सात्यकी के सामने लडनेको आया और सात्यकीके रथके ऊपर वाण छोडने लगा ॥ ४४-४५ ॥ ऐसे ही सात्यकीने भी दुर्योधनके रथके ऊपर वारम्वार वाणोंकी वर्षा करडाली और दोनोंमें घोर युद्ध होने लगा ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! इस युद्धमें जो वाण छोड़े गये थे

शब्दः समभवन्महान् ॥ ४७ ॥ तयोः शरसहस्रैश्च संछन्नं वसुधातलम् । अगम्यरूपञ्च शरैराकाशं समपद्यत ॥ ४८ ॥ तत्राभ्यधिकमालक्ष्य माधवं रथसत्तमम् । क्षिप्रमभ्यपतत्कर्णः परीप्संस्तनयं तव ॥ ४९ ॥ न तु तं मर्षयामास भीमसेनो महाबलः । सोऽभ्ययात्त्वरितः कर्णं व्यसृजन्सायकान् बहून् ॥ ५० ॥ तस्य कर्णः शितान् वाणान् प्रतिहन्य हसन्निव । धनुः शरांश्च चिच्छेद सूतञ्चाभ्याहनच्छरैः ॥ ५१ ॥ भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामादाय पाण्डवः । धनुर्ध्वजञ्च सूतञ्च सम्ममर्दाहवे रिपोः ॥ ५२ ॥ रथचक्रञ्च कर्णस्य वभञ्ज स महाबलः । भग्नचक्रे रथेऽतिष्ठदकम्पः शैलराडिव ॥५३॥ एकचक्रं रथं तस्य तमूहुः सुचिरं हयाः ।

वे जब दूसरे योधाओंके ऊपर पड़ते थे, उस समय जैसे अग्निके बड़े भारी वनको जलाने पर महाशब्द होता है तैसे ही बड़ा भारी भड़भड़ शब्द हो रहा था ॥ ४७ ॥ उन दोनों योधाओंके सहस्रों वाणोंसे पृथ्वी ढकगयी तथा आकाश भी छागया, इस कारण बिलकुल दीखना ही बन्द होगया ॥ ४८ ॥ महारथी सात्यकीको बंधा हुआ जानकर कर्ण तुरन्त ही तुम्हारे पुत्रकी रक्षा करनेको आपहुँचा ॥ ४९ ॥ इस बातको महाबली भीमसेन न सहसका, वह शीघ्र ही कर्णके ऊपर चढ आया और कर्णके बहुत से वाण मारने लगा ॥ ५० ॥ कर्णने भी हँसते२ उसके तेज किये हुए वाणोंको, धनुषको तथा अन्य वाणोंको और सारथीको भी वाणोंसे छिन्न भिन्न करदिया ॥५१॥ तुरन्त ही पाण्डुपुत्र भीमसेनको क्रोध चढआया और उसने हाथमें गदा लेकर लड़ते२ शत्रुकी ध्वजाका, धनुषका और सारथीका संहार करडाला ॥ ५२ ॥ फिर महाबली भीमसेनने कर्णके रथके एक पहियेको तोड़डाला, ज्योंही रथका पहिया टूटा, कि—रथ अटक गया परन्तु कर्ण रणमें हिमालयकी समान अटल होकर खडा ही रहा ॥ ५३ ॥ सूर्यके एक

एकचक्रमिवार्कस्य रथं सप्त हयाः यथा ॥ ५४ ॥ अमृष्यमाणः कर्णस्तु भीमसेनमयुध्यत । विविधैरिषुजालैश्च नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥ ५५ ॥ भीमसेनस्तु संक्रुद्धः सूतपुत्रमयोधयत् । संकुले वर्त्तमाने तु राजा धर्मसुतोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥ पञ्चालानां नरव्याघ्रान्मत्स्यांश्चैव नरर्षभान् । ये नः प्राणाः शिरो ये च ये नो योधा महारथाः ॥ ५७ ॥ त एते धार्त्तराष्ट्रेषु विषक्ताः पुरुषर्षभाः । किं तिष्ठत यथा मूढाः सर्वे विगतचेतसः ॥ ५८ ॥ तत्र गच्छत यत्रैते युध्यन्ते मामका रथाः । क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य सर्व एव गतज्वराः ५९ जयन्तो वध्यमानाश्च गतिमिष्टां गमिष्यथ । जित्वा वा बहुभिर्यज्ञैर्यजध्वं भूरिदक्षिणैः ॥ ६० ॥ हता वा देवसाद्भूत्वा लोकान्

चक्रवाले रथको जैसे उसके सात घोड़े खेंचते हैं तैसे ही कर्णके भी एक पहियेवाले रथको उसके घोडोंने लडाईके मैदानमें बहुत देर तक खेंचा ॥५४॥ कर्ण भीमसेनकी इस करतूतको सह नहीं सका, वह अनेकों बाणोंसे तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे भीमसेनके साथ रणमें लडने लगा ॥ ५५ ॥ भीमसेनभी बड़ेही क्रोधमें भरगया और कर्णके साथ जोरसे लडने लगा, इस प्रकार युद्ध चलरहा था, कि-इतनेमें ही धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने क्रोधमें भर पांचालराजाओं। और मत्स्यराजाओंमें श्रेष्ठ नरव्याघ्र योधाओंसे कहा, कि-मेरे प्राणरूप, मेरे मस्तकरूप, मेरे महारथी महाश्रेष्ठ योधा तो कौरवोंके साथ लडरहे हैं तो तुम सब बेखबर मूढोंकी समान यहाँ क्यों खड़े हो ? ॥ ५६—५८ ॥ तुम सब चिन्ताको त्याग दो क्षत्रियधर्मका सन्मान करके जहाँ मेरे महारथी लडरहे हैं तहाँ पहुँच जाओ ॥ ५९ ॥ विजय पातेमें यदि तुम मारे भी जाओगे तो तुम्हें स्वर्गलोक मिलेगा और यदि विजय पागये तो बहुतसी दक्षिणावाले अनेकों यज्ञ करोगे, उससे भी स्वर्ग पाओगे ॥ ६० ॥ मरण पाओगे तो देवता -वस न

प्राप्स्यथ पुष्कलान् । ते राज्ञा चोदिता वीरा योत्स्यमाना महारथाः ॥६१॥ क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य त्वरिता द्रोणमभ्ययुः । पाञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन् निशितैः शरैः ॥ ६२ ॥ भीमसेनपुरोगाश्चाप्येकतः पर्यवारयन् । आसंस्तु पाण्डुपुत्राणां त्रयो जिह्मा महारथाः ॥६३॥ यमौ च भीमसेनश्च प्राक्रोशंस्ते धनञ्जयम् । अभिद्रवार्जुन क्षिप्रं कुरून् द्रोणादपानुद ॥ ६४ ॥ तत एनं हनिष्यन्ति पञ्चाला हतरक्षिणम् । कौरवेयांस्ततः पार्थः सहसा समुपाद्रवत् ६५ पञ्चालानेव तु द्रोणो धृष्टद्युम्नपुरोगमान् । ममर्द स्तरसा वीराः पञ्चमेऽहनि भारत ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

पवित्र लोकमें जाओगे, इसप्रकार धर्मराजने वीर और महारथी योधाओंसे लडनेके लिये कहा, कि-वे महारथी क्षत्रियधर्मका पूर्णरीतिसे सन्मान करके शीघ्र ही द्रोणाचार्यके सामने लडनेको जापहुँचे एक ओर पांचाल राजे द्रोणाचार्यके तेज कियेहुए बाण मारनेलगे और दूसरी ओरसे भीमसेन आदि योधा द्रोणाचार्यको मारनेलगे, इस समय पाण्डवोंके पक्षमें तीन कुटिल महारथी योधा थे, नकुल, सहदेव तथा भीमसेन इन तीनोंने अर्जुनको पुकार कर कहा, कि-अरे अर्जुन! तू शीघ्र ही धावा कर और द्रोणाचार्यकी रक्षा करतेहुए कौरवोंको द्रोणाचार्यसे अलग करदे ॥६१-६४॥ बस उसी समय पंचाल राजे रक्षकरहित हुए द्रोणाचार्यको मार डालेंगे, इस पुकारको सुनकर धनञ्जय, कौरवोंके ऊपर चढआया ६५ और हे भरतवंशी राजन्! द्रोणाचार्य पाँचवें दिन धृष्टद्युम्न आदि पंचाल राजाओंके ऊपर वेगसे चढायी करके उनको पीडा देने लगे ॥ ६६ ॥ एकसौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८९ ॥

सञ्जय उवाच । पञ्चालानां ततो द्रोणस्त्वकरोत् कदनं महत् । यथा क्रुद्धो रणे शक्रो दानवानां क्षयं पुरा ॥ १ ॥ द्रोणास्त्रेण महाराज वध्यमानाः परे युधि । नात्रसन्त रणे द्रोणात् सत्त्ववन्तो महारथाः ॥ २ ॥ युध्यमाना महाराज पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा । द्रोणमेवाभ्ययुर्युद्धे योधयन्तो महारथाः ॥ ३ ॥ तेषान्तु छाद्यमानानां पञ्चालानां समन्ततः । अभवद्भैरवो नादो वध्यतां शरवृष्टिभिः ॥ ४ ॥ वध्यमानेषु संग्रामे पञ्चालेषु महात्मना । उदीर्यमाणे द्रोणास्त्रे पाण्डवान् भयमाविशत् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वाश्वनरयोधानां विपुलञ्च क्षयं युधि । पाण्डवेया महाराज नाशशंसुर्जयं तदा ६ कच्चिद्द्रोणो न नः सर्वान् क्षपयेत्परमास्त्रवित् । समिद्धः शिशि-

---

सञ्जयने कहा, कि-हे महाराज धृतराष्ट्र ! द्रोणाचार्यको बडा ही क्रोध आया और जैसे पहले कुपितहुए इन्द्रने दानवोंका नाश किया था, तैसे ही द्रोणाचार्य भी रणमें पांचाल राजाओंका बडा भारी संहार करनेलगे ॥ १ ॥ हे महाराज ! युद्धमें द्रोणाचार्यके अस्त्रसे घायल हुए महारथी पांचाल और सृञ्जय रणको तरनेमें असमर्थ थे, तो भी हे महाराज ! वे युद्ध करते२ द्रोणाचार्यके सामने बराबर आगेको ही बढ़ते चलेगये ॥ २-३ ॥ और उनके बढ़नेके अनुसार ही द्रोणाचार्य भी बाणोंकी वर्षा करके पांचालोंको चारों ओरसे ढकनेलगे तथा बाणोंका प्रहार करनेलगे, पांचाल योधा इस लडाईमें भयानक रूपसे गरजनेलगे ॥ ४ ॥ तो भी महात्मा द्रोण रणमें पांचालोंका संहार करते ही रहे, इस लडाईमें द्रोणाचार्यके अस्त्र बराबर बढते ही रहे इससे पाण्डव डरगये ॥ ५ ॥ इस युद्धमें घोड़ोंका, मनुष्योंका तथा योधाओंका बड़ा संहार होनेलगा, यह देखकर पाण्डवोंने इस समय विजयकी आशा छोड ही दी ॥६॥ वे विचारमें पड़गये, कि-परम अस्त्रवेत्ता द्रोणाचार्य कहीं हम सबोंका ही नाश तो नहीं करडालेंगे ? जैसे कि-वस न

रापाये दहन् कक्षमिवानलः ॥ ७ ॥ न चैनं संयुगे कश्चित् समर्थः प्रतिवीक्षितुम् । न चैनमर्जुनो जातु प्रतियुध्येत धर्मवित् ॥ ८ ॥ त्रस्तान् कुन्तीसुतान् दृष्ट्वा द्रोणसायकपीडितान् । मतिमान् श्रेयसे युक्तः केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ नैष युद्धेन संग्रामे जेतुं शक्यः कथञ्चन । सधनुर्धन्विनां श्रेष्ठो देवैरपि सवासवैः ॥१०॥ न्यस्तशस्त्रस्तु संग्रामे शक्यो हन्तुं भवेन्नृभिः।आस्थीयतां जये योगो धर्ममुत्सृज्य पाण्डवाः॥११॥यथा नः संयुगे सर्वान्न हन्याद्रुक्मवाहनः । अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम ॥ १२ ॥ तं हतं संयुगे कश्चिदस्मै शंसतु मानवः । एतन्नारोचयद्राजन् कुन्तीपुत्रो धन-

---

ऋतुमें बढाहुआ अग्नि घासके ढेरको जलाकर भस्म करडालता है ॥ ७ ॥ इस युद्धमें कोई भी योधा द्रोणाचार्यके सामनेको देख भी नहीं सकता है और धर्मवेत्ता अर्जुन तो इनके सामने कभी लड़ेगा ही नहीं ॥ ८ ॥ ऐसी बातें होरही थीं, कि-इतनेमें ही पाण्डवोंका कल्याण करनेवाले बुद्धिमान् श्रीकृष्णने, पाण्डवोंको द्रोणके प्रहारसे भयभीत हुआ देखकर अर्जुनसे कहा, कि-हे धनञ्जय ! धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य जबतक धनुष लेकर रणमें घूमेंगे तबतक इन्द्रसहित देवता भी युद्धमें इनका किसीप्रकार भी तिरस्कार नहीं करसकेंगे ॥९-१०॥ परन्तु जब वह रणभूमिमें ही शस्त्रोंको छोड़देंगे तब ही योधा इनको मारसकेंगे, इसलिये हे पाण्डवों ! तुम धर्मको एक ओर रखकर उनका पराजय करनेके लिये उपाय खोजकर निकालो ॥ ११ ॥ कि-जिससे सोनेके रथवाले द्रोणाचार्यको युद्धमें हम सबोंका नाश करनेका अवसर न मिले, मैं समझता हूँ, कि-अश्वत्थामाके मरणके समाचारको जानने पर द्रोणाचार्य हमारे साथ नहीं लड़ेंगे ॥ १२ ॥ इसलिये कोई मनुष्य रणमें जाकर द्रोणाचार्यसे कहे, कि-'अश्वत्थामा रणमें मारागया' हे राजन् ! कुन्तीपुत्र अर्जुनको यह बात अच्छी

ऽनयः ॥ १३ ॥ अन्ये त्वरोचयन् सर्वे कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः । ततो भीमो महाबाहुरनीके स्वे महागजम् ॥ १४ ॥ जघान गदया राजन्नश्वत्थामानमित्युत । परप्रमथनं घोरं मालवस्येन्द्रवर्मणः १५ भीमसेनस्तु सव्रीडमुपेत्य द्रोणमाहवे । अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार सः ॥ १६ ॥ अश्वत्थामेति हि गजः ख्यातो नाम्ना हतोऽभवत् । कृत्वा मनसि तं भीमो मिथ्या व्याहृतवांस्तदा॥१७॥ भीमसेनवचः श्रुत्वा द्रोणस्तत् परमाप्रियम् । मनसासन्नगात्रोऽभूद्यथा सैकतमम्भसि ॥ १८॥ शङ्कमानः स तन्मिथ्या वीर्यज्ञः स्वसुतस्य वै । हतः स इति च श्रुत्वा नैव धैर्यादकम्पत ॥ १९ ॥ स लब्ध्वा चेतनां द्रोणः क्षणेनैव समाश्वसत् । अनुचिन्त्यात्मनः

नहीं लगी ॥ १३ ॥ और सबोंको यह बात अच्छी मालूम हुई और युधिष्ठिरने तो इस बातको बडी कठिनतासे स्वीकार किया, हे राजन्! तदनन्तर महाबाहु भीमसेनने अपनी सेनामें जो वैरियोंका नाश करनेवाला, मालवेके राजा इन्द्रवर्माका अश्वत्थामा नामका भयानक हाथी था, उसको गदा मारकर मारडाला १४-१५ और फिर रणमें जहाँ द्रोण खड़े थे तहाँ जाकर, लज्जित होता हुआ ऊँचे स्वरसे कहनेलगा, कि–"अश्वत्थामा मारागया" ।१६। भीमसेनने अश्वत्थामा नामसे प्रसिद्ध हाथीको मारडाला था और उसने भी उस समय मनमें उस हाथीका ही ध्यान रखकर यह मिथ्या बात कही थी॥१७॥परन्तु भीमसेनके अत्यन्त अप्रिय वचनको सुनकर जलमें पड़ाहुआ रेता जैसे ठण्ढा पड़जाता है तैसे ही द्रोणाचार्यका मन और शरीर ठंडा होकर सुन्न होगया १८।परन्तु वह अपने पुत्रके शरीरके बलको जानते थे,इसलिये उनको सन्देह हुआ, कि–यह बात मिथ्या है, इसलिये वह अपने धीरजसे चलायमान नहीं हुए ॥ १९ ॥ (क्षणभरमें) सावधान होकर उन्होंने विचारा, कि–मेरे पुत्रका पराक्रम वैरियोंसे नहीं सहाजासकता,

पुत्रमविषह्यमरातिभिः ॥ २० ॥ स पार्षतमभिद्रुत्य जिघांसुर्मृत्युमात्मनः । अवाकिरत् सहस्रेण तीक्ष्णानां कङ्कपत्रिणाम् ॥ २१ ॥ तं विंशतिसहस्राणि पञ्चालानां रथर्षभाः । तथा चरन्तं संग्रामे सर्वतो व्यकिरन् शरैः ॥ २२ ॥ तैः शरैराचितं द्रोणं नापश्याम महारथम् । भास्करं जलदै रुद्धं वर्षास्विव विशाम्पते ॥ २३ ॥ विधूय तान् बाणगणान् पञ्चालानां महारथः । प्रादुश्चक्रे ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं परन्तपः ॥ २४ ॥ वधाय तेषां शूराणां पञ्चालानाममर्षितः । ततो व्यरोचत द्रोणो विनिघ्नन्सर्वसैनिकान् ॥ २५ ॥ शिरांस्यापातयच्चापि पञ्चालानां महामृधे । तथैव परिघाकारान् बाहून् कनकभूषणान् ॥ २६ ॥ ते

फिर वह मारा कैसे जासकता है ? ॥ २० ॥ और अपना नाश करना चाहनेवाले अपनी मृत्युरूप धृष्टद्युम्नके सामने लड़नेको जा चढ़े और कङ्कपक्षीके परोंवाले एकहजार बाणोंकी वर्षा कर डाली ॥ २१ ॥ शत्रुपक्षमेंसे बीस हजार पांचाल महारथियोंने भी इस महासंग्राममें बाणोंकी वर्षा करतेहुए और रणमें घूमतेहुए द्रोणाचार्यके ऊपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करडाली ॥ २२ ॥ हे राजन् ! उस समय जैसे वर्षाकालमें मेघोंसे ढकाहुआ सूर्य नहीं दीखता है तैसे ही बाणोंके जालमें ढकेहुए द्रोणाचार्यको भी हम देख नहीं सकते थे ॥ २३ ॥ फिर शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले महारथी द्रोणाचार्यने ईर्षाके वशमें होकर पांचालोंके बाणोंका नाश करडाला और उन वीरने पांचालोंका नाश करनेके लिये ब्रह्मास्त्र को प्रकट किया, उस समय सब सैनिकोंका संहार करनेवाले द्रोणाचार्य रणमें बड़े ही तेजस्वी दीखरहे थे ॥ २४-२५ ॥ महात्मा द्रोण महासंग्राममें पांचालोंके शिरोंको तथा लोहेके दण्डोंके समान विशाल और सोनेके आभूषणोंवाले भुजदण्डोंको काटकर पृथ्वी पर टपाटप गिरानेलगे ॥ २६ ॥ और जैसे पवनके झपाटेसे

वध्यमानाः समरे भारद्वाजेन पार्थिवाः । मेदिन्यामन्वकीर्यन्त वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ २७ ॥ कुञ्जराणाञ्च पततां हयानाञ्चैव भारत । अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ २८ ॥ हत्वा विंशतिसाहस्रान् पञ्चालानां रथव्रजान् । अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्॥२९॥तथैव च पुनः क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् । वसुदानस्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत्३०पुनः पञ्चशतान् मत्स्यान् षट्साहस्रांश्च सृञ्जयान् । हस्तिनामयुतं हत्वा जघानाश्वायुतं पुनः ॥३१॥ क्षत्रियाणामभावाय दृष्ट्वा द्रोणमवस्थितम् । ऋषयोऽभ्यागमंस्तूर्णं हव्यवाहपुरोगमाः ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः । वशिष्ठः कश्यपोऽत्रिश्च ब्रह्मलोकं

वृक्ष टूटकर भूमि पर गिर पड़ता है तैसे ही द्रोणके हाथसे मरनेवाले राजे भी पृथिवी पर गिरकर विखररहे थे॥ २७ ॥ और हे भरतवंशी राजन् ! रणमें हाथियोंकी तथा घोड़ोंकी बहुतसी ल्हासें भी गिर रही थीं, इसकारण रणभूमिमें मांस और रुधिरकी कीच होरही थी, इसलिये तहाँ चलना भी कठिन होरहा था ॥ २८ ॥ धुएँरहित अग्निकी समान दमकतेहुए द्रोणाचार्यने रणमें खड़े होकर पांचालोंके वीस हजार रथियोंका संहार करडाला ॥ २९ ॥ और तदनन्तर फिर क्रोधमें भरकर भल्ल जातिका बाण मार कर रणमें लडते हुए वसुदानका शिर धड़से जुदा करदिया ॥३०॥ तदनन्तर पाँच सौ मत्स्य राजाओं का, छ हजार सृञ्जयोंका दश हजार हाथियोंका तथा दश हजार घोडोंका लड़ते २ क्षणभरमें ही संहार करडाला ॥ ३१ ॥ इस प्रकार क्षत्रियोंका नाश करनेके लिये रणमें द्रोणको तयार खडा देखकर अग्नि आदि ऋषि उनको ब्रह्मलोकमें लिवाजानेकी इच्छासे उनके पास आये, इनमें विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, सिकता, पृश्नि, गर्ग, सूर्यकी किरणोंको

निनीषन्तः ॥३३॥ सिकताः पृश्नयो गर्गा वालखिल्या मरीचिपाः। भृगवोङ्गिरसश्चैव सूक्ष्माश्चान्ये महर्षयः॥ ३४ ॥ त एनमब्रुवन् सर्वे द्रोणमाहवशोभिनम् । अधर्मतः कृतं युद्धं समयो निधनस्य ते॥ ३५ ॥ न्यस्यायुधं रणे द्रोण समीक्ष्यास्मानिह स्थितान्। नातः क्रूरतरं कर्म पुनः कर्त्तुमिहार्हसि ॥ ३६ ॥ वेदवेदाङ्गविदुषः सत्यधर्मरतस्य ते। ब्राह्मणस्य विशेषेण तवैतन्नोपपद्यते ॥३७॥ त्यजायुधममोघेषो तिष्ठ वर्त्मनि शाश्वते । परिपूर्णश्च कालस्ते वस्तुं लोकेऽद्य मानुषे॥ ३८ ॥ ब्रह्मास्त्रेण त्वया दग्धा अनस्त्रज्ञा नरा भुवि। यदेतदीदृशं विप्र कृतं कर्म न साधु तत्॥३९॥ न्यस्यायुधं रणे विप्र द्रोण मा त्वं चिरं कृथाः। मा पापिष्ठतरं कर्म करिष्यसि पुनर्द्विज ॥ ४० ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा भीमसेन-

---

पीकर रहने वाले वालखिल्य भृगु, अङ्गिरा और अन्य भी सूक्ष्म (दिव्य) महर्षि थे, वे सब रणमें देदीप्यमान दीखते हुए द्रोणाचार्यसे कहने लगे, कि-हे द्रोण! तुम अधर्मसे युद्ध कररहे हो, अब तुम्हारे मरणका समय समीप ही आगया है ॥ ३२-३५ ॥ इसलिये अब तुम रणमें आयुधोंको त्यागदो और हम खड़े हैं, हमारी ओरको देखो, आपको अब इससे अधिक क्रूर कर्म नहीं करना चाहिये ॥ ६६ ॥ तुम वेद और वेदाङ्गोंको जानते हो, सत्यधर्ममें लगे रहते हो, विशेष कर ब्राह्मण हो, इसलिये आपको ऐसा काम करना उचित नहीं है, ॥ ३७ ॥ तुम्हारे बाण अमोघ हैं, इसलिये अब तुम आयुधोंको छोड़दो और सनातनधर्मका आचरण करो, इस मनुष्यलोकमें रहनेका तुम्हारा समय पूरा होगया है ॥३८॥ हे विप्र! तुमने पृथिवीपर ब्रह्मास्त्रसे अनजान मनुष्योंको ब्रह्मास्त्र मार कर भस्म करडाला है, यह काम करना तुम्हें उचित नहीं है, ॥ ३९ ॥ इसलिये हे विप्र द्रोण! अब तुम युद्ध करना बन्द करके शस्त्रोंको त्यागदो, हे द्विज! अब तुम ऐसा पापिष्ठ

वचश्च तत्। धृष्टद्युम्नञ्च सम्प्रेक्ष्य रणे स विमनाभवत् ॥ ४१॥ सन्दिह्यमानो व्यथितः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्। अहतं वा हतं वेति पप्रच्छ सुतमात्मनः ॥ ४२ ॥ स्थिरा बुद्धिर्हि द्रोणस्य न पार्थो वक्ष्यतेऽनृतम्। त्रयाणामपि लोकानामैश्वर्यार्थे कथञ्चन ॥४३॥ तस्मात्तं परिपप्रच्छ नान्यं कञ्चिद् द्विजर्षभः। तस्मिंस्तस्य हि सत्याशा बाल्यात् प्रभृति पाण्डवे ॥ ४४ ॥ ततो निष्पाण्डवामुर्वीं करिष्यन्तं युधां पतिम्। द्रोणं ज्ञात्वा धर्मराजं गोविन्दो व्यथितोऽब्रवीत् ॥ ४५ ॥ यद्यर्द्धदिवसं द्रोणो युध्यते मन्युमास्थितः। सत्यं ब्रवीमि ते सेना विनाशं समुपैष्यति४६ स भवांस्त्रातु नो द्रोणात्

कर्म फिर कभी न करना ॥ ४० ॥ ऋषियोंकी इस बातको सुनकर और भीमसेनकी बातको भी याद करके धृष्टद्युम्नकी ओरको देखते हुए द्रोणका मन युद्धमेंसे उदासीन होगया ॥ ४१ ॥ द्रोण अपने पुत्रके मरणके विषयमें सन्देहमें पड़जानेके कारण खिन्न होगये थे, इस कारण 'मेरा पुत्र मरगया है या जीवितहै?' इस बातको कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे बूझने लगे ॥ ४२ ॥ द्रोणको निश्चय था, कि-यदि त्रिलोकीका ऐश्वर्य मिलता हो तब भी राजा युधिष्ठिर कभी मिथ्या नहीं बोलेंगे ॥ ४३ ॥ इस कारण द्रोणाचार्यने दूसरे किसीसे न बूझकर युधिष्ठिरसे ही बूझनेका विचार किया, द्रोणाचार्यको यह निश्चय था, कि-धर्मराज युधिष्ठिर बाल्यावस्थासे ही सत्यवादी हैं ॥ ४५ ॥ परन्तु श्रीकृष्णने जब जाना कि-महारथी द्रोण पृथिवी पर पाण्डवोंका नाम भी नहीं रहने देंगे तो वह धर्मराजसे कहनेलगे कि-यदि द्रोणाचार्य क्रोधमें भरकर अभी आधे दिन तक और युद्ध करते रहेंगे तो मैं सत्य कहता हूँ, कि-तुम्हारी सेनाका सर्वनाश ही होजायगा ॥ ४६ ॥ इसलिये तुम द्रोणाचार्यसे हमारी रक्षा करो, किसी अवसर पर मिथ्या बोलना सत्यसे भी श्रेष्ठ मानाजाता है, प्राणियोंके

सत्याऽज्यायोऽनृतं वचः। अनृतं जीवितस्यार्थे वदन्नस्पृश्यतेऽनृतैः ४७
तयोः सम्वदतोरेवं भीमसेनोऽब्रवीदिदम् ॥४८॥ श्रुत्वैवं ते महाराज
वधोपायं महात्मनः। गाहमानस्य ते सेनां मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥४९॥
अश्वत्थामेति विक्रान्तो गजः शक्रगजोपमः। निहतो युधि विक्रम्य
ततोऽहं द्रोणमब्रुवम् ॥५०॥ अश्वत्थामा हतो ब्रह्मन्निवर्त्तस्वाहवादिति। नूनं नाश्रद्दधाद्वाक्यमेष मे पुरुषर्षभः ॥५१॥ स त्वं
गोविन्दवाक्यानि मानयस्व जयैषिणः। द्रोणाय निहतं शंस राजन्
शारद्वतीसुतम् ॥५२॥ त्वयोक्तो नैव युध्येत जातु राजन् द्विजर्षभः। सत्यवान् हि त्रिलोकेऽस्मिन् भवान् ख्यातो जनाधिप ५३

प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये कदाचित् असत्य बोलना पड़े तो उस असत्य बोलनेवालेको पातक नहीं लगता है ॥४७॥ श्रीकृष्ण और धर्मराज इस प्रकार बातें कररहे थे, कि-इतनेमें भीमसेनने यह कहा, कि-हे महाराज युधिष्ठिर! तुम्हारी सेनाके ऊपर चढ़ायी करके आनेवाले महात्मा द्रोणको मारडालनेका उपाय मुझे याद आगया था, उसके अनुसार ही मैंने काम किया है, मालवेके राजाका जो अश्वत्थामा नामका हाथी इन्द्रके हाथीकी समान प्रसिद्ध था, उसको मैंने युद्धमें पराक्रम करके मारडाला है और फिर मैंने द्रोणाचार्यके पास जाकर उनसे कहा, कि-।४८-५०। हे ब्रह्मन्! अश्वत्थामा रणमें मारागया है, इसलिये तुम रणमेंसे पीछेको लौटजाओ, परन्तु उन महापुरुषने मेरी बातका विश्वास नहीं किया और अश्वत्थामा मरा है या नहीं, यह बात आपसे बूझना चाहते हैं ॥ ५१ ॥ इसलिये हे राजन्! अब आप विजय चाहनेवाले श्रीकृष्णकी बातका मान रखकर द्रोणाचार्य से कहदीजिये, कि—अश्वत्थामा मारागया ॥ ५२ ॥ हे राजन्! तुम उनसे अश्वत्थामाके मरणका समाचार कहोगे, कि-फिर वह ब्राह्मण कदापि युद्ध नहीं करेंगे, क्योंकि-हे राजन्!

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णवाक्यप्रचोदितः । भावित्वाच्च महाराज
वक्तुं समुपचक्रमे ॥५४॥ तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
अव्यक्तमब्रवीद्राजन्हतः कुञ्जर इत्युत ॥५५॥ तस्य पूर्वं रथः पृथ्व्यां
चतुरंगुलमुच्छ्रितः । बभूवैवन्तु तेनोक्ते तस्य वाहाः स्पृशन्महीम् ५६
युधिष्ठिरात्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा द्रोणो महारथः । पुत्रव्यसनसन्तप्तो
निराशो जीवितेऽभवत् ॥ ५७ ॥ आगस्कृतमिवात्मानं पांडवानां
महात्मनाम् । ऋषिवाक्येन मन्वानः श्रुत्वा च निहतं सुतम् ॥५८॥

तुम त्रिलोकीमें सत्यवादी कहलाते हो (इस लिये वह तुम्हारी बातको असत्य नहीं मानेंगे) ५३ ॥ हे महाराज ! भीमकी और श्रीकृष्णकी बात सुनकर भावीके कारण असत्यभाषणके भयमें डूबजाने पर भी विजय चाहने वाले राजा युधिष्ठिर ऐसा कहने को तयार होगये और जब द्रोणाचार्यने अश्वत्थामाके मरणके विषयमें प्रश्न किया तब कहा कि-अश्वत्थामा मारा गया, फिर धीरेसे जिसमें किसीको सुनायी न आवे इसप्रकार कहा कि-"नरो वा कुञ्जरो वा" अर्थात् न जाने मनुष्य न जाने हाथी, पहले युधिष्ठिरका रथ पृथ्वीसे चार अंगुल ऊँचा रहताथा, वह इस असत्यभाषणके करते ही पृथ्वी पर घिसट कर चलने लगा और उनके घोडे भी पृथ्वी पर चलते हुए रथको घसीटने लगे ॥ ५४-५६ ॥ और द्रोणाचार्य युधिष्ठिरसे पुत्रके मरणका समाचार सुनते ही शोक सन्तापमें डूबगये, उन्होंने अपने जीवन की आशा छोडदी ॥ ५७ ॥ और ऋषियोंके कहनेसे अपनेको महात्मा पाण्डवोंका अपराधी मानने लगे, पुत्रके मरणका समाचार पाकर उनका मन उचाट खागया, बडे ही खिन्न होगये और हे राजन् ! द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नकी ओर देखा तो सही परन्तु शत्रुओंका दमन करने वाले द्रोणाचार्य जैसा पहले लड

विचेताः परमोद्विग्नो धृष्टद्युम्नमवेक्ष्य च । योद्धुं नाशक्नुवद्राजन् यथा पूर्वमरिन्दमः ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि युधिष्ठिरासत्यकथने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

सञ्जय उवाच । तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकोपहतचेतसम् । पञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नः समाद्रवत् ॥ १ ॥ य इष्ट्वा मनुजेन्द्रेण द्रुपदेन महामखे । लब्धो द्रोणविनाशाय समिद्धाद्धव्यवाहनात् २ सधनुर्जैत्रमादाय घोरं जलदनिःस्वनम् । दृढज्यमजरं दिव्यं शरांश्चाशीविषोपमान् ॥३॥ सन्दधे कार्मुके तस्मिंस्ततस्तमनलोपमम् । द्रोणं जिघांसुः पांचाल्यो महाज्वालमिवानलम् ॥ ४ ॥ तस्य रूपं शरस्यासीद्धनुर्ज्यामण्डलान्तरे । द्योततो भास्करस्येव घनान्ते परिवेषिणः ॥ ५ ॥ पार्षतेन परामृष्टं ज्वलन्तमिव तद्धनुः । अन्त-

रहे थे, वैसा अब युद्ध नहीं करसके ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ एकसौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९० ॥

सञ्जयने कहा कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! द्रोणाचार्यको बड़े ही घबडाएहुये और शोकसे खिन्नमनहुए देखकर पांचालराजके पुत्र धृष्टद्युम्नने बड़े जोरमें भरकर उनके ऊपर धावा किया ॥१॥ इसही धृष्टद्युम्नको राजा द्रुपदने महायज्ञमें अग्निका पूजन करके प्रसन्न हुए अग्निदेवसे द्रोणका नाश करनेके लिये पाया था ॥२॥ उसने बडी२ लपटोंवाले अग्निकी समान प्रकाशमान द्रोणको मारनेकी इच्छासे दृढ़ प्रत्यञ्चावाले और मेघकी समान गंभीर गर्जनावाले विजयी धनुषको हाथमें लिया और उसके ऊपर विषधर सर्पकी समान अजर तथा दिव्य बाण चढाया ॥ ३-४ ॥ इस समय धनुषकी प्रत्यञ्चाके मण्डलमेंका बाण, शरद ऋतुके आकाशमंडलमें प्रकाशवान् सूर्यकी समान चमक रहा था ॥५॥ मानो जलरहा हो, ऐसी तमतमाती हुई कान्तिवाला धनुष जिस समय धृष्टद्युम्नने

कालमनुप्राप्तं मेनिरे वीक्ष्य सैनिकाः ॥ ६ ॥ तमिषुं संहितं तेन भारद्वाजः प्रतापवान् । दृष्ट्वामन्यत देहस्य कालपर्यायमागतम् ॥ ७ ॥ ततः प्रयत्नमातिष्ठदाचार्यस्तस्य वारणे । न चास्यास्त्राणि राजेन्द्र प्रादुरासन्महात्मनः ॥ ८ ॥ तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकास्यतो गता । तस्य चाह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्त्रिणः ॥ ९ ॥ स शरक्षयमासाद्य पुत्रशोकेन चार्दितः । विविधानाञ्च दिव्यानामस्त्राणामप्रसादतः ॥१०॥ उत्स्रष्टुकामः शस्त्राणि विप्रवाक्यप्रचोदितः । तेजसा पूर्यमाणस्तु युयुधे न यथा पुरा ११ भूयश्चान्यत् समादाय दिव्यमाङ्गिरसं धनुः । शरांश्च ब्रह्मदण्डाभान् धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १२ ॥ ततस्तं शरवर्षेण महता समवा-

---

हाथमें लिया, उस समय सैनिक समझनेलगे, कि—अब हमारा अन्तकाल समीप ही आगया है ॥ ६ ॥ भरद्वाजके पुत्र प्रतापी द्रोणाचार्य भी उस बाणको चढायाहुआ देखकर यह समझनेलगे, कि—अब मेरे शरीरका समय आपहुँचा है ॥ ७ ॥ धृष्टद्युम्नके बाणको रोकनेके लिये द्रोणाचार्यने अस्त्रोंका स्मरण किया, परन्तु हे राजेन्द्र ! उन महात्माके अस्त्र प्रकटहुए ही नहीं ॥८॥ हे राजन् ! द्रोणाचार्य चार दिन और एक रात्रि तक बराबर तले ऊपर बाणोंकी वर्षा करते रहे थे, पाँचवें दिनके तीन भाग (पहर) बीतगये तबतक लडते रहे, इसके बाद उनके अस्त्र निबडगये ९ वह पुत्रशोकसे पीडित होरहे थे और इसलिये ही दिव्य अस्त्रोंका स्मरण करने पर भी वे प्रकट नहीं हुए थे तथा ऋषियोंके वाक्यका स्मरण करके शस्त्रोंको त्यागदेना चाहा, इसलिये पहलेकी समान पराक्रमसे लड भी नहीं सके थे ॥१०-११॥ तथापि वह फिर अङ्गिरस नामका दिव्य धनुष तथा ब्रह्मदण्डकी समान बाण लेकर धृष्टद्युम्नके सामने लडनेलगे ॥१२॥ और उन्होंने क्रोधमें भरकर अन्तके युद्धमें बाणोंकी बडीभारी वर्षा करके न सहनेवाले धृष्ट-

किरत्। व्यशातयच्च संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ १३ ॥ शरांश्च शतधा चास्य द्रोणश्चिच्छेद सायकैः। ध्वजं धनुश्च निशितैः सारथिञ्चाभ्यपातयत्॥१४॥धृष्टद्युम्नः प्रहस्यान्यत् पुनरादाय कार्मुकम्। शितेन चैनं वाणेन प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥१५॥ सोऽतिविद्धो महेष्वासो संभ्रान्त इव संयुगे। भल्लेन शितधारेण चिच्छेदास्य पुनर्धनुः ॥१६॥ यच्चास्य वाणविकृतं धनूंपि च विशाम्पते। सर्वं चिच्छेद दुर्द्धर्षो गदां खड्गञ्च वर्जयन्॥१७॥ धृष्टद्युम्नं च विव्याध नवभिर्निशितैः शरैः। जीवितान्तकरः क्रुद्धःक्रुद्धःरूपः परन्तपः१८ धृष्टद्युम्नोथ तस्याश्वान् स्वरथाश्वैर्महारथः। व्यामिश्रयदमेयात्मा ब्राह्ममस्त्रमुदीरयन् ॥ १९ ॥ तैर्मिश्रा व्यशोभन्त जवना वातरंहसः। पारावतसवर्णाश्वाः शोणाश्च भरतर्षभ ॥२०॥ यथा

द्युम्नको बींधडाला ॥ १३ ॥ सामनेसे वाण मारकर धृष्टद्युम्नके वाणोंके हजारों खण्ड२ करडाले और तेज कियेहुए वाण मारकर उसकी ध्वजा, धनुष और सारथिको भी काटडाला ॥१४॥ तब धृष्टद्युम्नने हँसकर दूसरा धनुष लेलिया और उनकी बीच छातीमें तेज कियाहुआ वाण मारा ॥ १५ ॥ महाधनुषधारी द्रोणाचार्यके बडी ही चोट आयी, तब भी वह युद्धमें जरा भी न घबडा कर अटल खड़े रहे और तीखी धारवाला भल्ल नामका वाण मारकर धृष्टद्युम्नके धनुषको फिर काटडाला ॥१६॥ हे परन्तप राजन्! क्रोधमूर्ति दुराधर्ष द्रोणने धृष्टद्युम्नकी गदा,तलवार, वाण और धनुष इन सबको काटडाला तथा उसका नाश करनेके लिये उसके तेज कियेहुए नौ वाण मारे ॥ १७-१८ ॥ अमेयात्मा, महारथी धृष्टद्युम्न अपने रथके घोडोंको द्रोणके रथके घोड़ोंके पास लेगया और द्रोणके ब्रह्मास्त्र मारनेको तयार होगया ॥१९॥ हे भरतवंशी राजन्! उस समय इकट्ठे हुए कबूतरोंकेसे रङ्गके तथा लाल रङ्गके उन दोनों योधाओंके पवनवेगी तथा शीघ्रगामी घोड़े बड़े ही

सविद्युतो मेघा नदन्तो जलदागमे । तथा रेजुर्महाराज विमिश्रा रणमूर्द्धनि॥२१॥ ईषावन्धं चक्रवन्धं रथबन्धं तथैव च । प्राणाशयदमेयात्मा धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः २२ स छिन्नधन्वा पाञ्चाल्यो निकृत्तध्वजसारथिः । उत्तमामापदं प्राप्य गदां वीरः परामृशत् ॥ २३ ॥ तामस्य विशिखैस्तीक्ष्णैः क्षिप्यमाणां महारथः । निजघान शरैर्द्रोणः क्रुद्धः सत्यपराक्रमः ॥ २४ ॥ तां तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो द्रोणेन निहतां शरैः । विमलं खड्गमादत्त शतचन्द्रञ्च भानुमत् ॥ २५ ॥ असंशयं तथा भूतः पाञ्चाल्यः साध्वमन्यत । वधमामाचार्यमुख्यस्य प्राप्तकालं महात्मनः ॥ २६ ॥ ततः स रथनीडस्थं स्वरथस्य रथेषया । अगच्छदसिमुद्यम्य शतचन्द्रञ्च भानुमत् २७ चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म धृष्टद्युम्नो महारथः । इयेष वक्षो भेत्तुञ्च

शोभायमान दीखरहे थे और जैसे वर्षाकालमें विजलीवाला मेघ गरजता है तैसे ही वे घोड़े भी रणके मुहाने पर हिनहिना रहे थे ॥ २०-२१ ॥ बड़े मनवाले द्रोणाचार्यने ईषावन्ध, चक्रवन्ध और रथवन्धको काटडाला ॥ २२ ॥ उसके धनुषको काटडाला, ध्वजाको और सारथीको भी काटडाला, इसप्रकार वीर धृष्टद्युम्नको सङ्कटमें लाडाला, धृष्टद्युम्नने गदा उचकाकर द्रोणाचार्यके मारी २३ सत्यपराक्रमी महारथी द्रोण क्रोधमें भरगये और तीखे वाण मारकर उसकी गदाके खण्ड २ करडाले ॥२४॥ नरोंमें व्याघ्र समान धृष्टद्युम्नने देखा, कि–द्रोणाचार्यने वाण मारकर गदाके खण्ड२ करडाले हैं तब तो पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्नने सौ फुल्लियोंवाली चमकती हुई निर्मल तलवार वाहर निकाली और यह समझा, कि-मुख्य आचार्य महात्मा द्रोणाचार्यके वधका समय समीप आगया है ॥ २५–२६ ॥ महादुष्कर कर्म करनेकी इच्छासे सौ फुल्लियोंवाली चमकती हुई तलवार ऊँची करके धृष्टद्युम्न अपने रथकी ईषापरसे द्रोणाचार्यके रथकी ईषापर चलागया और रथकी

भारद्वाजस्य संयुगे॥२८॥सोऽतिष्ठद् युगमध्ये वै युगसन्नहनेषु च । जघनार्द्धेषु चाश्वानां तत् सैन्याः समपूजयन् ॥ २९ ॥ तिष्ठतो युगपालीषु शोणानप्यधितिष्ठतः । नापश्यदन्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३० ॥ क्षिप्रं श्येनस्य चरतो यथैवामिषगृद्धिनः । तद्वदासीदभीसारो द्रोणपार्षतयो रणे ॥ ३१ ॥ तस्य पारावतानश्वान्रथशक्त्या पराभिनत् । सर्वानेकैकशो द्रोणो रक्तानश्वान्विवर्जयन् ॥३२॥ ते हता न्यपतन् भूमौ धृष्टद्युम्नस्य वाजिनः । शोणास्तु पर्यमुच्यन्त रथबन्धाद्विशाम्पते ॥ ३३ ॥ तान् हयान्निहतान् दृष्ट्वा द्विजाग्र्येण स पार्षतः । नामृष्यत युधां श्रेष्ठो याज्ञसेनिर्महारथः ॥३४॥ विरथः स गृहीत्वा तु खड्गं खड्गभृताम्वरः। द्रोणम-

छत्रीमें बैठेहुए द्रोणाचार्यके पास पहुँचकर उनकी छातीको चीर डालना चाहनेलगा ॥२७-२८॥ वह जुएके मध्यभागमें, घोड़ोंके कन्धोंपर तथा जाँघोंके आधेभाग पर खड़ा होगया, उसकी इस फुरतीको देखकर सैनिक उसकी सराहना करनेलगे ॥ २९ ॥ धृष्टद्युम्न जुएके किनारे पर तथा लाल घोडोंकी पीठपर इसप्रकार खडा था, कि-द्रोणाचार्यको उसके मारनेका अवसर ही नहीं मिला, उसका यह काम बड़े अचरजका हुआ था ॥३०॥ जैसे दो बाज मांसकी इच्छासे आपसमें मारामार करते हैं तैसे ही रणभूमिमें द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नमें चोटें होनेलगीं ॥३१॥ द्रोणाचार्यने रथशक्ति मारकर धृष्टद्युम्नके कबूतरकेसे रङ्गके सब घोडोंको मारडाला और अपने लाल रङ्गके घोडोंको बचालिया ॥३२॥ हे राजन्! धृष्टद्युम्नके घोड़े मरकर पृथिवी पर गिरगये और द्रोणके लाल रङ्गके घोड़े रथके बन्धनमेंसे छुटगये ॥३३॥ महात्मा द्रोणाचार्यने मेरे घोडोंको मारडाला यह देखकर योधाओंमें श्रेष्ठ मानाजानेवाला महारथी धृष्टद्युम्न इस बातको सह नहीं सका ॥ ३४ ॥ रथसे हीन हुआ खड्गधारियोंमें श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न तुरन्त ही तलवार लेकर

भ्यपतद्राजन् वैनतेय इवोरगम् ॥३५॥ तस्य रूपं बभौ राजन् भारद्वाजं जिघांसतः । यथा रूपं पुरा विष्णोर्हिरण्यकशिपोर्वधे ॥३६॥ स तदा विविधान् मार्गान् प्रवरांश्चैकविंशतिम् । दर्शयामास कौरव्य पार्षतो विचरन्रणे ॥ ३७ ॥ भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमासुतं प्रसृतं सृतम् । परिवृत्तं निवृत्तञ्च खड्गं चर्म च धारयन् ॥३८॥ संपातं समुदीर्णञ्च दर्शयामास पार्षतः । भारतं कौशिकञ्चैव सात्वतं चैव शिक्षया ।३९। दर्शयन्नचरद्युद्धे द्रोणस्यान्तचिकीर्षया । चरतस्तस्य तन्मार्गान् विचित्रान् खड्गचर्मिणः ॥४०॥ व्यस्मयन्त रणे योधा देवताश्च समागताः । ततः शरसहस्रेण शतचन्द्रमपातयत् ॥४१॥ खड्गञ्चर्म च सम्बाधे धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः । ये तु वैतस्तिका नाम

जैसे गरुड साँपके ऊपर दौडता है तैसे ही द्रोणाचार्यके ऊपरको दौडा ॥३५॥ हे राजन् ! उस समय जैसे पहले हिरण्यकशिपुका वध करते समय विष्णु भगवान्ने शोभा पायी थी तैसे ही इस समय धृष्टद्युम्न भी शोभा पानेलगा ॥३६॥ हे कुरुवंशी राजन् ! धृष्टद्युम्न इस समय तलवार और ढाल लेकर द्रोणको मारनेके लिये रणमें कूदता हुआ फिरनेलगा उसने भ्रान्त (तलवारको गोलाकारसे घुमाना) उद्भ्रान्त (हाथ ऊँचा करके तलवारको घुमाना) आविद्ध (अपने शरीरके आसपास तलवारको गोलाकारसे घुमाना) आसुत (वैरीको दबानेके लिये जाना) प्रसृत (तलवारकी नोकसे वैरीके शरीरको छूना) सृत (वैरीको धोखा देकर उसके शरीर पर शस्त्र मारना) परिवृत्त (वैरीके दायें बायें करवटमें पहुँचना) निवृत्त (पीछेको पैर करके घूमना) संपात (सामनेसे प्रहार करना) समुदीर्ण (लडाईमें अपनी अधिकता दिखाना) भारत (अङ्ग प्रत्यङ्ग भागोंमें घूमना) कौशिक (विचित्र रूपसे तलवारको घुमाकर दिखाना) और सात्वत (छुपकर ढाल पर तलवारका प्रहार करना) आदि मुख्य इक्कीस

शरा ह्यासन्नयोधिनः ॥४२॥ निकृष्टयुद्धे द्रोणस्य नान्येषां सन्ति ते शराः। ऋते शारद्वतात् पार्थाद्द्रौणेर्वैकर्तनात्तथा ॥४३॥ प्रद्युम्नयुयुधानाभ्यामभिमन्योश्च भारत। अथास्येषुं समाधत्त दृढं परमसम्मतम् ॥ ४४ ॥ अन्तेवासिनमाचार्यो जिघांसुः पुत्रसम्मितम्। तं शरैर्दशभिस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद शिनिपुङ्गवः ॥ ४५ ॥ पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च महात्मनः। ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नममोचयत् ॥ ४६ ॥ चरन्तं रथमार्गेषु सात्यकिं सत्यविक्रमम्। द्रोणकर्णान्तरगतं कृपस्यापि च भारत ॥ ४७ ॥ अपश्यतां महा-

---

प्रकारकी तलवारको घुमानेकी कलायें भी शिक्षाके अनुसार दिखाई थीं और रणमें ढाल तलवार लेकर विचित्र रीतिसे बहुत ही घूमा था, उसको रणभूमिमें घूमते देखकर दर्शकरूपसे इकट्ठे हुए देवता और योधा बडे ही आश्चर्यमें होरहे थे,परन्तु द्रोणाचार्यने वितस्त नामके एक वितस्त लंबे हजार बाण मारकर धृष्टद्युम्नकी शतचन्द्र नामकी तलवारके तथा ढालके खंड२ करडाले, वितस्त नामके बाण समीपसे युद्ध करनेके काममें उपयोगी होते हैं, वे बाण द्रोणाचार्यके पास थे, हे भरतवंशी राजन् ! द्रोण, अर्जुन, अश्वत्थामा, कर्ण. प्रद्युम्न, युयुधान और अभिमन्युके सिवाय दूसरे किसीके पास ऐसे बाण नहीं थे, द्रोणने वे बाण मारकर धृष्टद्युम्नको पीडित करना आरम्भ करदिया और फिर अपने शिष्य तथा पुत्रसमान धृष्टद्युम्नको ठौर मारडालनेकी इच्छासे अत्यन्त मान्य दृढ़ बाण धनुष पर चढाया, परन्तु इतनेमें ही सात्यकीने दश तेज बाण मारकर उस बाणके खण्ड २ कर डाले ॥३७-४५॥ और तुम्हारे पुत्र दुर्योधन तथा कर्णके सामने द्रोणाचार्यके पञ्जाहृदमें डाले हुए धृष्टद्युम्नको बचादिया ॥४६॥ हे भरतवंशी राजन् ! इस समय सत्यपराक्रमी सात्यकी, द्रोण, कर्ण तथा कृपाचार्यके बीचमें रथकी चालें दिखाता हुआ घूमरहा

रमानौ विश्वक्सेनधनञ्जयौ । अपूजयेतां वार्ष्णेयं ब्रुवाणौ साधु साध्विति ॥ ४८ ॥ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वेषां युधि निघ्नन्तमच्युतम् । अभिपत्य ततः सेनां विष्वक्सेनधनञ्जयौ ॥ ४९ ॥ धनञ्जयस्ततः कृष्णमब्रवीत् पश्य केशव । आचार्यरथमुख्यानां मध्ये क्रीडन्मधूद्वहः ॥ ५० ॥ आनन्दयति मां भूयः सात्यकिः सत्यविक्रमः । माद्रीपुत्रौ च भीमञ्च राजानञ्च युधिष्ठिरम् ॥ ५१ ॥ यच्छिक्षयानुद्धतः सन् रणे चरति सात्यकिः । महारथानुपक्रीडन् वृष्णीनां कीर्त्तिवर्द्धनः ॥५२॥ तमेते प्रतिनन्दन्ति सिद्धाः सैन्याश्च विस्मिताः । अजेयं समरे दृष्ट्वा साधु साध्विति सात्वतम् । योधाश्चोभयतः सर्वे कर्मभिः समपूजयन् ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे
एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

था ॥ ४७ ॥ रथके मार्गोंमें घूमते तथा युद्धमें सबोंके दिव्य अस्त्रोंको नष्ट करते हुए धैर्यधारी सात्यकीको देखकर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन धन्य धन्य कहकर उसको धन्यवाद देरहे थे, श्रीकृष्ण और अर्जुन सेनाके समीपमें आगये तथा अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, कि-हे केशव! शत्रुओंका संहार करनेवाला मधुवंशी सात्यकी द्रोणाचार्य आदिके रथोंके आगे घूमरहा है, और मुझे, धर्मराजको, भीमको, नकुलको तथा सहदेवको आनन्द देरहा है (इसको देखिये) जिस शिक्षासे नम्रतावाला और वृष्णिवंशकी कीर्त्तिको बढाने वाला सात्यकी महारथियोंको खिलाता हुआ रणमें खूब घूमरहा है ॥ ४८-५२ और ये सिद्ध पुरुष तथा सेनायें अचरजमें होकर रणमें सात्यकीको अजेय समझते हुए, ठीक है, ठीक है, कहकर धन्यवाद देरहे हैं और दोनों ओरके योधा सात्यकिके पराक्रमोंकी सराहना कररहे हैं, यह देखकर मुझे बडा ही हर्ष होता है ५२ एक सौ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९१ ॥

सञ्जय उवाच । सात्वतस्य तु तत्कर्म दृष्ट्वा दुर्योधनादयः । शैनेयं सर्वतः क्रुद्धा वारयामासुरञ्जसा ॥ १ ॥ कृपः कर्णोऽथ समरे तव पुत्राश्च मारिष । शैनेयं त्वरयाभ्येत्य विनिघ्नन् निशितैः शरैः ॥ २ ॥ युधिष्ठिरस्ततो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ । भीमसेनश्च बलवान् सात्वतं पर्यवारयन् ॥ ३ ॥ कर्णश्च शरवर्षेण गौतमश्च महारथः । दुर्योधनादयश्चैव शैनेयं पर्यवारयन् ॥ ४ ॥ तां वृष्टिं सहसा राजन्नुत्थितां घोररूपिणीम् । वारयामास शैनेयो योधयंस्तान्महारथान् ॥ ५ ॥ तेषामस्त्राणि दिव्यानि संहितानि महात्मनाम् । वारयामास विधिवद्दिव्यैरस्त्रैर्महामृधे ॥ ६ ॥ क्रूरमायोधनं जज्ञे तस्मिन् राजसमागमे । रुद्रस्येव हि क्रुद्धस्य निघ्नत-

---

सञ्जयने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र! दुर्योधन आदि योधा सात्वतवंशी वीर पुरुषके पराक्रमको देखकर तुरन्त क्रोधमें भरगये और उन्होंने चारों ओरसे शिनिके पौत्र सात्यकीको घेरलिया ॥ १ ॥ हे राजन्! तुम्हारे पुत्रोंने, कृपाचार्यने और कर्णने इस लड़ाईमें शीघ्रतासे सात्यकिके ऊपर धावा किया और उसके तेज किये हुए बाण मारने लगे ॥ २ ॥ यह सब देखकर राजा युधिष्ठिर नकुल, सहदेव और बलवान् भीमसेन, सात्यकीकी रक्षा करनेके लिये उसके चारों ओर आगये ॥ ३ ॥ और जैसे २ पाण्डव सात्यकीकी रक्षा करनेके लिये चारों ओर घूमनेलगे, तैसे २ कर्ण, महारथी कृपाचार्य और दुर्योधन आदि तुम्हारे पुत्र बाणोंकी वर्षा करके सात्यकीको ढकने लगे ॥ ४ ॥ परन्तु हे राजन्! सात्यकीने उन सब महारथियोंके साथ लड़ाई कर, अपने ऊपर होनेवाली बाण-वर्षाको एकसाथ छिन्नभिन्न करडाला ॥ ५ ॥ उस महासंग्राममें उन महात्माओंके छोड़े हुए अनेक प्रकारके दिव्य अस्त्रोंको पीछेको हटादिया ॥ ६ ॥ जैसे पहले कोपमें भरेहुए रुद्रने पशुओंका संहार किया था तैसे ही इस समय राजाओंने आपसका संहार

स्तान् पशून् पुरा ॥ ७ ॥ हस्तानामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणाञ्च भारत। छत्राणाञ्चापविद्धानां चामराणाञ्च सञ्चयैः ॥८॥ राशयः स्म व्यदृश्यन्त तत्र तत्र रणाजिरे। भग्नचक्रै रथैश्चापि पतितैश्च महाभुजैः ॥ ९ ॥ सादिभिश्च हतैः शूरैः सङ्कीर्णा वसुधाभवत्। बाणपातनिकृत्तास्तु योधास्ते कुरुसत्तम ॥ १० ॥ चेष्टन्तो विविधाश्चेष्टा व्यदृश्यन्त महाहवे। वर्त्तमाने तथा युद्धे घोरे देवासुरोपमे ॥ ११ ॥ अब्रवीत् क्षत्रियांस्तत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः। अभिद्रवत संयत्ताः कुम्भयोनिं महारथाः ॥ १२ ॥ एषो हि पार्षतो वीरो भारद्वाजेन सङ्गतः। घटते च यथाशक्ति भारद्वाजस्य नाशने ॥ १३ ॥ यादृशानि हि रूपाणि दृश्यन्ते स्म महारणे। अद्य द्रोणञ्च संक्रुद्धः पातयिष्यति पार्षतः ॥ १४ ॥ ते यूयं सहिता भूत्वा युध्यध्वं कुम्भसम्भवम्। युधिष्ठिरसमाज्ञप्ताः सृञ्ज-

---

करडाला ॥ ७ ॥ हे भरतवंशी राजन्! रणभूमिमें कटे हुए हाथ, शिर, धनुष, बाणोंसे टूटे पड़े हुए छत्रोंके तथा चामरोंके ढेर ८ टूटे हुए रथोंके पहिये, टूटी पड़ी हुई बड़ी २ ध्वजायें, मरे हुए घुडसवार और शूरोंसे रणभूमि खचाखच भरगई थी, हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ राजन्! बाणोंके प्रहारोंसे कटे हुए योधा रणभूमिमें अनेकों प्रकारकी चेष्टायें करते हुए दीख रहे थे, इस प्रकार देवासुर संग्राम की समान महाघोर युद्ध चलरहा था, उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने लडनेवाले क्षत्रियोंसे कहा, कि हे महारथियो! तुम सब रणमें तयार होकर द्रोणाचार्यके ऊपर धावा बोलदो ॥९–१२॥ वीर धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके साथ युद्ध कररहा है, वह द्रोणाचार्यका नाश करनेके लिये यथाशक्ति उद्योग कररहा है॥१३॥और उसके रूपको देखकर मालूम होता है, कि–कोपमें भरा हुआ धृष्टद्युम्न आज रणमें द्रोणाचार्यको अवश्य ही मारडालेगा ॥ १४ ॥ इसलिये तुम सब इकट्ठे होकर द्रोणके साथ लड़ो, युधिष्ठिरके ऐसी आज्ञा देते ही सञ्जय

ग्रानां महारथाः ॥ १५ ॥ अभ्यद्रवन्त संयत्ता भारद्वाजं जिघांसवः । तान् समापततः सर्वान् भारद्वाजो महारथः ॥ १६ ॥ अभ्यवर्त्तत वेगेन मर्त्तव्यमिति निश्चितः । प्रयाते सत्यसन्धे तु समकम्पत मेदिनी ॥ १७ ॥ ववुर्वाताः सनिर्घातास्त्रासयाना वरूथिनीम् । पपात महती चोल्का आदित्यान्निश्चरन्त्युत ॥ १८ ॥ दीपयन्ती उभे सेने शंसंतीव महद्भयम् । जज्वलुश्चैव शस्त्राणि भारद्वाजस्य मारिष ॥ १९ ॥ रथाः स्वनन्ति चात्यर्थं हयाश्चाश्रूण्यपातयन् । हतौजा इव चाप्यासीद्भारद्वाजो महारथः ॥ २० ॥ प्रास्फुरन्नयनञ्चास्य वामबाहुस्तथैव च । विमनस्कोऽभवद्युद्धे दृष्ट्वा पार्षतमग्रतः ॥ २१ ॥ ऋषीणां ब्रह्मवादानां स्वर्गस्य गमनं प्रति । सुयुद्धेन ततः प्राणानुत्स्रष्टुमुपचक्रमे ॥ २२ ॥ ततश्चतुर्दिशं सैन्यै-

---

राजाओंके महारथी तयार होगये और द्रोणका नाश करनेकी इच्छासे उनके सामने जाडटे, सत्य प्रतिज्ञा वाले महारथी द्रोणाचार्य भी प्राण देनेका निश्चय करके उन महारथियोंके सामने लडनेको आगये, इस समय पृथ्वी डगमगाने लगी, वज्रकी समान घोर शब्द करते हुए तीखे पवन सेनाको भय देते हुए चलने लगे, सूर्यमण्डलमेंसे बडे२ उल्के निकल कर पृथ्वी पर गिरने लगे१५-१८ उन्होंने दोनों सेनाओंमें उजाला करदिया और द्रोणाचार्यके शस्त्र महाभय दिखाते हुए प्रज्वलित होउठे रथोंकी बडी भारी घरघराहट होने लगी, घोडोंकी आँखोंमेंसे आँसू टपकने लगे और महारथी द्रोणाचार्य मानो बलरहित होगये हों ऐसे दीखने लगे ॥ १९ ॥ उनकी बाईं आँख और बायाँ हाथ फड़कने लगा तथा रणभूमि में धृष्टद्युम्नको देखकर वह उदास होगये ॥२१॥ वह ऋषियोंके वेद समान वचनोंको याद करके स्वर्गमें जानेके लिये उत्तम प्रकारके युद्धसे प्राण त्यागनेको तयार हो गए ॥ २२ ॥ इतनेमें ही उस द्रुपदके पुत्रकी सेनाने द्रोणको चारों ओरसे घेर लिया और

द्रुपदस्याभिसंवृतः । निर्दहन् क्षत्रियव्रातान् द्रोणः पर्यचरद्रणे २३ हत्वा विंशतिसाहस्रान् क्षत्रियानरिमर्दनः । दशायुतानि तीक्ष्णाग्रैरवधीद्विशिखैः शितैः ॥२४॥ सोऽतिष्ठदाहवे यत्तो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् । क्षत्रियाणामभावाय ब्राह्ममस्त्रं समास्थितः ॥ २५ ॥ पाञ्चाल्यं विरथं भीमो हतसर्वायुधं बलम् । सुविषण्णं महात्मानं त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ २६ ॥ ततः स्वरथमारोप्य पाञ्चाल्यमरिमर्दनः । अब्रवीदभिसम्प्रेक्ष्य द्रोणमस्यन्तमन्तिकात् ॥ २७ ॥ न त्वदन्य इहाचार्यं योद्धुमुत्सहते पुमान् । त्वरस्व प्राग्वधायैव त्वयि भारः समाहितः ॥ २८ ॥ स तथोक्तो महाबाहुः सर्वभारसहं धनुः । अभिपत्याददे क्षिप्रमायुधप्रवरं दृढम् ॥२९॥ संरब्धश्च

द्रोणभी क्षत्रियोंके टोलोंका संहार करते हुए रणमें घूमने लगे २३ वैरियोंका संहार करने वाले द्रोणने इस लडाईमें बाण मारकर बीस हजार क्षत्रियोंका संहार कर डाला तथा एक हजार हाथियोंको तेज बाणोंसे मारडाला ॥२४ ॥ इस समय द्रोणाचार्य रणमें उद्यत होकर निर्धूम अग्निकी समान दमक रहे थे, जब उन्होंने क्षत्रियोंका संहार करनेके लिये ब्रह्मास्त्र उठाया ॥ २५ ॥ उस समय महात्मा धृष्टद्युम्न रणमें बिना रथके खडा था, उसके सब आयुध निबडगये थे और वह बहुत ही उदास होरहा था (परन्तु इस अनीके समय) भीमसेन दौडा२ उसके पास आपहुँचा ॥ २६ ॥ और धृष्टद्युम्नको अपने रथमें बैठाल कर, समीपमें ही बाणोंकी वर्षा करते हुए द्रोणाचार्यकी ओरको देखकर धृष्टद्युम्नसे कहा, कि–॥ २७ ॥ हे धृष्टद्युम्न ! तेरे सिवाय दूसरा कोई पुरुष भी द्रोणाचार्यके साथ नहीं लड़सकता, अब तू शीघ्रतासे इनका नाश कर, द्रोणाचार्यको मारनेका भार तेरे ऊपर ही है ॥ २८ ॥ भीमकी इस बातको सुनकर महाबाहु धृष्टद्युम्नने क्रोधमें भरकर, सब भारको सहने वाला, दृढ़ और वेगवाला धनुष हाथमें लिया और

शरानस्यन् द्रोणं दुर्वारणं रणे । विवारयिषुराचार्यं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३० ॥ तौ न्यवारयतां श्रेष्ठौ सरब्धौ रणशोभिनौ । उदीरयेतां ब्राह्माणि दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ॥ ३१ ॥ स महास्त्रैर्महाराज द्रोणमाच्छादयद्रणे । निहत्य सर्वाण्यस्त्राणि भारद्वाजस्य पार्षतः ॥३२॥ स वशातीन् शिवींश्चैव वाह्लिकान् कौरवानपि । रक्षिष्यमाणान् संग्रामे द्रोणं व्यधमदच्युतः ॥ ३३ ॥ धृष्टद्युम्नस्तथा राजन् गभस्तिभिरिवांशुमान् । बभौ प्रच्छादयन्नाशाः शरजालैः समन्ततः ॥ ३४ ॥ तस्य द्रोणो धनुश्छित्वा विध्वा चैनं शिलीमुखैः । मर्माण्यभ्यहनद्भूयः स व्यथां परमामगात् ॥ ३५ ॥ ततो भीमो दृढक्रोधो द्रोणस्याश्लिष्य तं रथम् । शनकैरिव राजेन्द्र द्रोणं वचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ यदि नाम न

जिनको युद्धमें पीछेको नहीं हटाया जासकता था ऐसे द्रोणको रणमेंसे पीछेको हटानेकी इच्छासे उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ करदिया ॥ २९–३० ॥ क्रोधमें भरे और रणमें दिपते हुए वे दोनों योधा एक दूसरेके ब्रह्मास्त्र मार रहे थे ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! धृष्टद्युम्नने बडे२ अस्त्रोंका प्रहार करके इस मारामारमें द्रोणाचार्यको ढकदिया और उनके सब अस्त्रोंके खंड२ कर डाले ॥३२॥ तथा वसाती, शिवी, वाह्लीक और कौरव, जो कि संग्राममें द्रोणाचार्यकी रक्षा कर रहे थे उनके भी बाण मारे ३३ हे राजन् ! इस समय दशों दिशाओंको बाणोंसे ढकता हुआ धृष्टद्युम्न किरणोंसे दिशाओंको उज्वल करते हुए सूर्यकी समान प्रकाशित होरहा था ॥ ३४ ॥ फिर द्रोणाचार्यने बाण मारकर धृष्टद्युम्नके धनुषको काट डाला, और उसके मर्मस्थानोंको घायल करदिया इससे उसको बडा पीडा होने लगी । ३५ । फिर दृढ क्रोध वाले भीमसेनने द्रोणके रथके पास जाकर धीरेसे यह बात कही, कि–हे आचार्य ! यदि अस्त्रविद्यामें चतुर नीच

युध्येरञ्छिक्षिता ब्रह्मबन्धवः । स्वकर्मभिरसन्तुष्टा न स्म क्षत्रं क्षयं व्रजेत् ॥ ३७ ॥ अहिंसां सर्वभूतेषु धर्मं ज्यायस्तरं विदुः । तस्य च ब्राह्मणो मूलं भवान् हि ब्रह्मवित्तमः ॥ ३८ ॥ श्वपाकवन्म्लेच्छगणान् हत्वा चान्यान् पृथग्विधान् । अज्ञानान्मूढवद् ब्रह्मन् पुत्रदारधनेप्सया ॥ ३९ ॥ एकस्यार्थे बहून् हत्वा पुत्रस्याधर्मविद्यया । स्वकर्मस्थान् विकर्मस्थो न व्यपत्रपसे कथम् ॥ ४० ॥ यस्यार्थे शस्त्रमादाय यमपेक्ष्य च जीवसि । स चाद्य पतितः शेते पृष्ठेनावेदितस्तव ॥ ४१ ॥ धर्मराजस्य तद्वाक्यं नाभिशङ्कितुमर्हसि । एवमुक्तस्ततो द्रोणो भीमेनोत्सृज्य तद्धनुः ॥ ४२ ॥ सर्वाण्यस्त्राणि

ब्राह्मण अपने काममें असन्तुष्ट होकर न लडें तो इस प्रकार क्षत्रियोंका नाश न हो ॥३६-३७॥ सकल प्राणियोंकी हिंसा न करना, इसको शास्त्रवेत्ता महान् धर्म मानते हैं, ब्राह्मण उस अहिंसा धर्मकी मूल हैं और आप तो उन वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो अर्थात् ब्रह्मज्ञान करानेका काम आपके अधीन है ॥ ३८ ॥ परन्तु हे ब्राह्मण ! तुमने तो पुत्र और स्त्रीके लिये धन इकट्ठा करनेकी इच्छासे। चाण्डालकी समान, अपने२ धर्मपर चलने वाले अनेकों म्लेच्छोंको तथा अनेकों राजाओंको मूढकी समान मोहके वशमें होकर मारडाला है ॥ ३९ ॥ एक पुत्रके लिये अधर्मसे भरी हुई विद्याके द्वारा अर्थात् क्षत्रियवृत्तिसे क्षत्रियधर्मका बर्ताव करनेवाले क्षत्रियोंको तुमने मारडाला है और मारडालनारूप हिंसाको तुम अपना धर्म मान बैठे हो, इस बातसे तुम्हें लज्जा क्यों नहीं आती ? ॥ ४० ॥ तुम जिसके लिये शस्त्र उठाकर लडरहे हो, जिसके लिये जीरहे हो, वह तो आज मराहुआ पृथ्वी पर सो रहा है जिसकी तुम्हें खबर भी नहीं है ॥ ४१ ॥ धर्मराजने तुमसे यही बात कही थी, कि-जिस पर तुम्हें सन्देह नहीं करना चाहिये था, भीमसेनके ऐसा कहने पर धर्मात्मा द्रोणाचार्यने धनुषको

धर्मात्मा हातुकामोऽभ्यभाषत । कर्ण कर्ण महेष्वास कृप दुर्योधनेति च ॥४३॥ संग्रामे क्रियतां यत्नो ब्रवीम्येष पुनः पुनः । पाण्डवेभ्यः शिवं वोऽस्तु शस्त्रमभ्युत्सृजाम्यहम् ॥४४॥ इति तत्र महाराज प्राक्रोशद् द्रौणिमेव च । उत्सृज्य च रणे शस्त्रं रथोपस्थे निविश्य च ॥ ४५ ॥ अभयं सर्वभूतानां प्रददौ ,योगमीयिवान् । तस्य तच्छिद्रमाज्ञाय धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥ सशरं तद्धनुर्घोरं संन्यस्याथ रथे ततः । खड्गी रथादवप्लुत्य सहसा द्रोणमभ्ययात् ॥ ४७ ॥ हाहाकृतानि भूतानि मानुषाणीतराणि च । द्रोणं तथा गतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवशङ्गतम् ॥ ४८ ॥ हाहाकारं भृशञ्चक्रुरहो धिगिति चाब्रुवन् । द्रोणोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य परम सांख्यमास्थितः ॥४९॥ तथोक्त्वा योगमास्थाय ज्योतिर्भूतो महातपाः ।

नीचे डालदिया ॥ ४२ ॥ फिर भरद्वाजके पवित्रात्मा पुत्र, सब शस्त्रोंके त्याग देनेकी इच्छासे कहने लगे, कि–हे कर्ण! ओ कर्ण! और हे कृप! हे दुर्योधन! तुमसे वारंवार कहता हूँ, कि–तुम संग्रामके लिये उद्योग करो और पाण्डवोंकी ओरसे तुम्हारा कल्याण हो, मैं अब शस्त्रोंका त्याग करता हूँ ॥४२ ४४॥ हे महाराज! महाधनुषधारी द्रोणाचार्यने ऐसा कहकर हाथमेंके शस्त्रको फेंक दिया, फिर वह अश्वत्थामाका नाम लेकर पुकारने लगे और रथकी बैठक पर योग साधनेके लिये चित्तको स्थिर करके बैठगये ४५ और सब प्राणियोंको अभयदान दिया, प्रतापी धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यके इस अवसरसे लाभ उठाया, हाथमेंके घोर धनुषको रथमें डालदिया और नङ्गी तलवार ले कूदकर रथमेंसे नीचे उतर पडा तथा एक क्षणमें द्रोणाचार्यके पास आपहुँचा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको घेरलिया, यह देखकर मनुष्य तथा दूसरे प्राणी हाहाकार करने लगे ॥ ४८ ॥ और धृष्टद्युम्नको धिक्कारके वचन कहने लगे, इधर महातेजस्वी द्रोणाचार्यने 'तथास्तु' कह शस्त्र

पुराणं पुरुषं विष्णुं जगाम मनसा परम् ॥ ५० ॥ मुखं किञ्चित् समुन्नाम्य विष्टभ्य उरमग्रतः। निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो निक्षिप्य हृदि धारणाम् ॥ ५१ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ज्योतिर्भूतो महातपाः। स्मरित्वा देवदेवेशमक्षरं परमं प्रभुम् ॥ ५२ ॥ दिवमाक्रामदाचार्यः साक्षात् सद्भिर्दुराक्रमाम्। द्वौ सूर्याविति नो बुद्धिरासीत्तस्मिंस्तथा गते ॥ ५३ ॥ एकाग्रमिव चासीच्च ज्योतिर्भिः पूरितं नभः। समपद्यत चार्काभे भारद्वाजदिवाकरे ॥ ५४ ॥ निमेषमात्रेण च तज्ज्योतिरन्तरधीयत। आसीत् किलकिलाशब्दः प्रहृष्टानां दिवौकसाम् ॥ ५५ ॥ ब्रह्मलोकं गते द्रोणे धृष्टद्युम्ने च मोहिते। वयमेव तदाद्राक्ष्म पञ्च

को त्यागकर ज्ञानस्वरूपका आश्रय किया और योगके बलसे तेजोमय मूर्त्ति धारण करके सनातन पुराणपुरुष विष्णुका मनमें ध्यान करने लगे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ज्योतिःस्वरूप महायशस्वी द्रोणाचार्यने अगले भागमेंसे मुखको जरा ऊँचा किया, वक्षःस्थलको स्थिर किया, आँखें मीचलीं और अन्तःकरणमेंके विषयोंको दूरकरके हृदयमें धीरज धर, सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कर्त्ता, देवदेवेश, ॐकाररूप, एकाक्षर परब्रह्मका स्मरण करके पूर्वोक्त ऋषिमण्डली के साथ, सत्पुरुषोंको भी दुर्लभ ऐसे स्वर्ग-लोकमें पाण्डव और कौरवोंके गुरु द्रोणाचार्य पधारगये, हे महाराज ! ज्योतिःस्वरूप द्रोण जिस समय स्वर्गको जानेलगे उस समय आकाशमें मानो दो सूर्य उदय होरहे हों ऐसा हमारे देखनेमें आया सूर्यकी समान तेजस्वी द्रोणरूप सूर्य जिस समय आकाशकी ओरको जाने लगे, उस समय तेजसे भराहुआ आकाश तेजोमय होगया था ॥ ५१-५४ ॥ द्रोणके मरणके समय सूर्यका प्रकाश अधिक था, परन्तु निमेषमात्रमें सूर्यका प्रकाश अदृश्य होगया, द्रोणाचार्य ब्रह्मलोकमें चलेगये, धृष्टद्युम्न मुग्ध होगया, देवता मनमें बड़े ही प्रसन्न होकर हर्ष और गर्जना करने लगे, हे महाराज ! योगयुक्त

मानुषयोनयः ॥ ५६ ॥ योगयुक्तं महात्मानं गच्छन्तं परमाङ्गतिम् । अहं धनञ्जयः पार्थो कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ५७ ॥ वासुदेवश्च वार्ष्णेयो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः । अन्ये तु सर्वे नापश्यन् भारद्वाजस्य धीमतः ॥ ५८ ॥ महिमानं महाराज योगयुक्तस्य गच्छतः । ब्रह्मलोकं महद्दिव्यं देवगुह्यं हि तत्परम् ॥ ५९ ॥ गतिं परमिकां प्राप्तमजानन्तो नृयोनयः। नापश्यन् गच्छमानं हि तं सार्द्धमृषिपुङ्गवैः ६० आचार्यं योगमास्थाय ब्रह्मलोकमरिन्दमम् । वितुन्नांगं शरव्रातैर्न्यस्तायुधमसृक्क्षरम् ॥ ६१ ॥ धिक्कृतः पार्षतस्तन्तु सर्वभूतैः परामृशत् । तस्य मूर्द्धानमालंब्य गतसत्त्वस्य देहतः ॥ ६२ ॥ किञ्चिदब्रुवतः कायाद्विचकर्त्तासिना शिरः । हर्षेण महता युक्तो भारद्वाजे निपातिते ॥ ६३ ॥ सिंहनादरवञ्चक्रे भ्रामयन् खड्ग-

---

महात्मा द्रोणाचार्य जिस समय परमगतिको प्राप्त हुए उस समय सब मनुष्योंमें केवल मैं, कुन्तीका पुत्र अर्जुन, शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य, वृष्णिपुत्र वासुदेव, और धर्मपुत्र युधिष्ठिर इन पाँच ही मनुष्यजातिके पुरुषोंको उनका दर्शन हुआ था, जिनको देवता भी नहीं जानसकते ऐसे परब्रह्मके लोकमें जानेवाले योगयुक्त बुद्धिमान् द्रोणाचार्यकी महिमाको दूसरा कोई पुरुष भी नहीं जानसका था, शत्रुओंका दमन करनेवाले आचार्य द्रोण परमगतिको प्राप्त होगये, इस बातको न जाननेवाले मनुष्य, द्रोणाचार्य योगबलसे महान् ऋषियोंके साथ ब्रह्मलोकको चलेगये यह नहीं देखसके थे ५५-६० इस समय धृष्टद्युम्नने बाणोंसे बिंधेहुए, शस्त्रोंको त्याग देनेवाले और रुधिर टपकानेवाले द्रोणके शरीरको पकड़लिया, इस बातको देखकर सब लोग उसको धिक्कार देनेलगे ॥६०॥ फिर धृष्टद्युम्नने प्राण और वाणीरहित हुए द्रोणाचार्यके मस्तकको पकडकर तलवार से काटलिया और बड़े हर्षमें भरगया तथा रणभूमिमें तलवारको घुमाता२ सिंहकी समान गर्जना करनेलगा, द्रोणाचार्यका शरीर

माहवे । आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः ॥६४॥ त्वत्कृते व्यचरत् संख्ये स तु षोडशवर्षवत् । उक्तवांश्च महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ ६५ ॥ जीवन्तमानयाचार्यं मा वधीर्द्रुपदात्मज । न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सैनिकाश्च ह ॥ ६६ ॥ उत्क्रोशन्नर्जुनश्चैव सानुक्रोशस्तमाद्रवत् । क्रोशमानेऽर्जुने चैव पार्थिवेषु च सर्वशः ॥ ६७ ॥ धृष्टद्युम्नोऽवधीद् द्रोणं रथतल्पे नरर्षभम् । शोणितेन परिक्लिन्नो रथाद्भूमिमथापतत् ॥ ६८ ॥ लोहिताङ्ग इवादित्यो दुर्द्धर्षः समपद्यत । एवं तं निहतं संख्ये ददृशे सैनिको जनः ॥ ६९ ॥ धृष्टद्युम्नस्तु तद्राजन् भारद्वाजशिरोऽहृत् । तावकानां महेष्वासः प्रमुखे तत्समाक्षिपत् ॥ ७० ॥ ते तु दृष्ट्वा शिरो राजन् भारद्वाजस्य तावकाः । पलायनकृतोत्साहा दुद्रुवुः सर्वतो

श्याम रङ्गका था, कानोंतकके बाल सफेद होगये थे और पिचासी वर्षकी अवस्था थी, तो भी वह तुम्हारे लिये युद्धमें सोलह वर्षके पुरुषकी समान घूमते थे, जिससमय धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यको मारनेको उद्यत हुआ उस समय महाभुजअर्जुनने कहा था, कि-अरे द्रुपदकुमार! तू आचार्यको जीताहुआ पकड ले आना, मारना नहीं, सैनिकोंने भी जोरसे पुकारकर कहा था, कि-तू आचार्यको मारना नहीं! मारना नहीं!!॥६२-६६॥ अर्जुन तो चिल्लाता२ धृष्टद्युम्नके पीछे भी दौडा, इसप्रकार अर्जुन और दूसरे राजे चिल्लाते ही रहगये और धृष्टद्युम्नने रथमें बैठेहुए महात्मा द्रोणको मारडाला, द्रोण रुधिरसे भीग कर रथमेंसे नीचे गिरपड़े ॥६७-६८॥ उस समय द्रोण लाल२ शरीरवाले सूर्यकी समान अपने तेजसे चौंधाये देते थे, योधाओंने इसप्रकार रणमें द्रोणको मराहुआ देखा ॥ ३६ ॥ द्रोणके मरजाने पर महाधनुषधारी धृष्टद्युम्नने उनके मस्तकको उछालकर तुम्हारे पुत्रोंके सामने फेंकदिया ॥ ७० ॥ तुम्हारे पुत्र और योधा द्रोणाचार्यके मस्तकको देखकर भागनेको तयार होगये

दिशः ॥ ७१ ॥ द्रोणस्तु दिवमास्थाय नक्षत्रपथमाविशत् । अहमेव तदाद्राक्षं द्रोणस्य निधनं नृप ॥ ७२ ॥ ऋषेः प्रसादात् कृष्णस्य सत्यवत्याः सुतस्य च । विधूमामिव संयान्तीमुल्कां प्रज्वलितामिव ॥ ७३ ॥ अपश्याम दिवं स्तब्ध्वा गच्छन्तं तं महाद्युतिम् । हते द्रोणे निरुत्साहाः कुरुपाण्डवसृञ्जयाः ॥ ७४ ॥ अभ्यद्रवन्महावेगास्ततः सैन्यं व्यदीर्यत । निहता हतभूयिष्ठाः संग्रामे निशितैः शरैः ॥ ७५ ॥ तावका निहते द्रोणे गतासव इवाभवन् । पराजयमथावाप्य परत्र च महद्भयम् ॥ ७६ ॥ उभयेनैव ते हीना नाविंदन् धृतिमात्मनः । अन्विच्छन्तः शरीरन्तु भारद्वाजस्य पार्थिवाः ॥७७॥ नान्वगच्छन्महाराज कबन्धायुतसंकुले । पांडवास्तु

और चारों दिशाओंमेंको भागनेलगे ॥ ७१ ॥ हे राजन् ! द्रोण आकाशमें जाकर नक्षत्रोंके मार्गमें प्रविष्ट होगए, उनको सत्यवतीके पुत्र व्यासजीके प्रसादसे मैंने देखा था, धुएँसे रहित प्रज्वलित हुआ उल्का जैसे आकाशमेंको जाता है तैसे ही महाकान्तिवाले द्रोणाचार्यको मैंने आकाशमें जातेहुए देखा था द्रोण ज्योंही रणमें गिरे, कि कौरव, पाण्डव और सृञ्जयोंका उत्साह भङ्ग होगया ७२-७४ और वे सब वड़े वेगसे भागनेलगे, सेनामें भागड पडगयी, इस संग्राममें तेज कियेहुए वाणोंके प्रहारसे तुम्हारे पक्षके वहुतसे योधा मारेगये थे और अधमरोंकी तो कुछ ठीक ही नहीं थी ॥ ७५ ॥ और मरते२ वचेहुए योधा द्रोणाचार्यके मारेजाने पर प्राणहीनसे होगये, एक तो तुम्हारे योधाओंकी हार होगयी थी दूसरे उन्होंने रणमेंसे भागजानेके कारण अपना परलोक भी नष्ट करडाला था, इसप्रकार दोनों लोकसे भ्रष्ट होजानेके कारण वे वडीभारी घवडाहटमें पडगये थे; हे महाराज ! और राजाओंने द्रोणाचार्यके शरीरको पानेकी इच्छा की, परन्तु हजारों लाखों धडोंसे भरी हुई रणभूमिमेंसे वे द्रोणके शरीरको ढूँढने पर भी नहीं पासके, दूसरी ओर

जयं लब्ध्वा परत्र च महद्यशः ॥ ७८ ॥ बाणशंखरवांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान्। भीमसेनस्ततो राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥७९॥ वरूथिन्यामनृत्येतां परिष्वज्य परस्परम् । अब्रवीच्च तदा भीमः पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ ८० ॥ भूयोऽहं त्वां विजयिनं परिष्वक्ष्यामि पार्षत । सूतपुत्रे हते पापे धार्त्तराष्ट्रे च संयुगे ॥ ८१ ॥ एतावदुक्त्वा भीमस्तु हर्षेण महता युतः । बाहुशब्देन पृथिवीं कम्पयामास पाण्डवः ॥ ८२ ॥ तस्य शब्देन वित्रस्ताः प्राद्रवंस्तावका युधि । क्षत्रधर्मं समुत्सृज्य पलायनपरायणाः ॥ ८३ ॥ पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा हृष्टा ह्यासन् विशांपते । अरिक्षयञ्च संग्रामे तेन ते सुखमाप्नुवन् ॥ ८४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्रोणवधे
द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥
॥ समाप्तञ्च द्रोणवधपर्व ॥

पाण्डव इस लोकमें जय और परलोकमें महान् यश पाकर धनुषोंके टङ्कार और सिंहनाद करनेलगे, दोनों सेनादल शोकमें और हर्षमें डूबगये थे, हे राजन् ! इस समय भीमसेन और धृष्टद्युम्न सेनाके बीचमें खड़े होकर आपसमें आलिङ्गन करतेहुए हर्षमें भर कर नाचे थे, इसके बाद भीमसेनने वैरियोंको सन्ताप देनेवाले धृष्टद्युम्नसे कहा, कि-॥७९-८०॥ हे धृष्टद्युम्न ! जब पापी कर्ण और दुर्योधन रणमें मरकर गिरेंगे तब फिर मैं तुझ विजय पानेवालेको इसप्रकार ही छातीसे लगाऊँगा ॥ ८१ ॥ इतना कहकर महाहर्षमें भरेहुए भीमसेनने दोनों भुजदंडोंको ठोककर उसके शब्दसे पृथिवीको कम्पायमान करदिया ॥८२॥ उसके भुजदण्डोंके शब्दको सुनकर तुम्हारे पक्षके योधा भयभीत होगये और क्षत्रियधर्मको त्यागकर रणमेंसे भागनिकले ॥ ८३ ॥ और पाण्डव वैरियोंका संहार करके तथा विजय पाकर प्रसन्नहुए और उनको परमसुख प्राप्त हुआ ॥ ८४ ॥ एकसौ बानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९२ ॥

अथ नारायणास्त्रमोक्षपर्व ।

सञ्जय उवाच । ततो द्रोणे हते राजन् कुरवः शस्त्रपीडिताः । हतप्रवीरा विध्वस्ता भृशं शोकपरायणाः ॥१ ॥ उदीर्णांश्च परान् दृष्ट्वा कम्पमानाः पुनः पुनः । अश्रुपूर्णेक्षणास्त्रस्ता दीनास्त्वासन् विशाम्पते ॥ २ ॥ विचेतसो हतोत्साहाः कश्मलाभिहतौजसः । आर्त्तस्वरेण महता पुत्रन्ते पर्यवारयन् ॥ ३ ॥ रजस्वला वेपमाना वीक्षमाणा दिशो दश । अश्रुकण्ठा यथा दैत्या हिरण्याक्षे पुरा हते ॥ ४ ॥ स तैः परिवृतो राजा त्रस्तैः क्षुद्रमृगैरिव । अशक्नुवन्नवस्थातुमपायात्तनयस्तव ॥५॥ क्षुत्पिपासापरिम्लानास्ते योधास्तव भारत । आदित्येनेव सन्तप्ता भृशं विमनसोऽभवन् ॥ ६ ॥

नारायणास्त्रमोक्षपर्व

सञ्जय कहता है, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! रणमें द्रोणाचार्यके मारेजानेके बाद शस्त्रोंसे पीडा पायेहुए तथा जिनके शूर मारेगये थे ऐसे कौरव बडा ही शोक करनेलगे ॥१॥ वैरियोंकी वृद्धिको देखकर वारम्वार कम्पायमान होनेलगे, उनकी आँखें आँसुओंसे भरगयीं, वे भयभीत होगये, भानशून्य और उत्साहहीन होगये, दुःखके मारे उनका ओज नष्ट होगया और तुम्हारे पुत्रके चारों ओर खड़े हो घवडाकर रोनेलगे ॥२-३॥ पहले हिरण्याक्षके मारे जाने पर जैसे दैत्य धूलिसे मलीन होकर काँपते और दशों दिशाओं को देखतेहुए गला रुँधकर रोनेलगे थे, वही दशा कौरवोंकी होगयी वे भयभीत हुए छोटे २ मृगोंकी समान तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको चारों ओरसे घेरकर खड़े होगये, परन्तु तुम्हारा पुत्र दुर्योधन रणमें खडा न रहसकनेके कारण वहाँसे भागगया ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! तुम्हारे योधा भूख और प्याससे बहुत ही घवड़ा रहे थे और मानो सूर्यकी तेजीसे झुलस गये हों इसप्रकार सन्ताप होनेसे वहुत ही खिन्न होगये थे ॥ ६ ॥ सूर्यका पतन,

भास्करस्येव पतनं समुद्रस्येव शोषणम् । विपर्यासं यथा मेरोर्वासवस्येव निर्जयम् ॥ ७ ॥ अमर्षणीयं तद् दृष्ट्वा भारद्वाजस्य पातनम् । त्रस्तरूपतरा राजन् कौरवाः प्राद्रवन् भयात् ॥८॥ गान्धारराजः शकुनिस्त्रस्तस्त्रस्ततरैः सह । हतं रुक्मरथं श्रुत्वा प्राद्रवत् सहितो रथैः ॥ ९ ॥ वरूथिनीं वेगवतीं विद्रुतां सपताकिनीम् । परिगृह्य महासेनां सूतपुत्रोऽपयाद्भयात् ॥ १० ॥ रथनागाश्वकलिलां पुरस्कृत्य तु वाहिनीम् । मद्राणामीश्वरः शल्यो वीक्ष्यमाणोऽपयाद्भयात् ॥ ११ ॥ हतप्रवीरैर्भूयिष्ठैर्ध्वजैर्बहुपदातिभिः । वृतः शारद्वतोऽगच्छत् कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् ॥ १२ ॥ भोजानीकेन शिष्टेन कलिङ्गारट्टबाल्हिकैः । कृतवर्मा वृतो राजन् प्रायात् सुजवनैर्हयैः ॥१३॥ पदातिगणसंयुक्तस्त्रस्तो राजन् भयार्दितः ।

समुद्रका सूखना, सुमेरुका डगमगाना और इन्द्रका पराजय जैसे सह्य नहीं होसकता ऐसे ही द्रोणाचार्यका मरण असह्य था यह देखकर कौरवपक्षके योधा बड़े ही घबडाये और डरके मारे भाग गये ॥७–८॥ सुवर्णके रथमें बैठनेवाले द्रोणाचार्य रणमें मारेगये, यह सुनकर गान्धार देशका राजा शकुनि भी डरगया और भयभीत हुए रथियोंके साथ रणमेंसे भागगया ॥९॥ सूतपुत्र कर्ण भी रणमें आँखें मीचकर भागती हुई पताकावाली बडीभारी सेनाको साथ लेकर डरके मारे भागगया ॥ १० ॥ मद्रराज शल्य भी रथ, हाथी और घोडोंसे भरी हुई सेनाको आगे करके (आसपासको) देखताहुआ रणमेंसे भागगया ॥ ११ ॥ जिसमेंके बहुतसे वीर पुरुष मारेगये थे ऐसी बहुतसी पताकाओंवाली महासेनासे घिरे हुए कृपाचार्य भी 'बहुत बुरा हुआ' 'बहुत बुरा हुआ' ऐसा कहते हुए रणमेंसे भागगये ॥ १२ ॥ कृतवर्मा भी मरनेसे बची हुई भोजकी, कलिङ्गकी, अरिट्टकी और वाह्लीककी सेनासे घिरकर बड़े वेगवाले घोडोंसे जुते रथमें बैठकर रणमेंसे भागगया ॥१३॥

उलूकः प्राद्रवत्तत्र दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १४ ॥ दर्शनीयो युवा चैव शौर्येण कृतलक्षणः । दुःशासनो भृशोद्विग्नः प्राद्रवद्गजसंवृतः ॥ १५ ॥ रथानामयुतं गृह्य त्रिसाहस्रांश्च दन्तिनः । वृषसेनो ययौ तूर्णं दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १६ ॥ गजाश्वरथसंयुक्तो वृतश्चैव पदातिभिः । दुर्योधनो महाराज प्रायात्तत्र महारथः ॥ १७ ॥ संशप्तकगणान् गृह्य हतशेषान् किरीटिना । सुशर्मा प्राद्रवद्राजन् दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १८ ॥ गजान् रथान् समारुह्य व्युदस्य च हयान् जनाः । प्राद्रवन् सर्वतः संख्ये दृष्ट्वा रुक्मरथं हतम् ॥१९॥ त्वरयन्तः पितॄनन्ये भ्रातॄनन्येऽथ मातुलान् । पुत्रानन्ये वयस्यांश्च प्राद्रवन् कुरवस्तथा ॥ २० ॥ चोद-

हे राजन् ! राजा उलूक भी रणमें द्रोणको मराहुआ देखकर भयभीत होगया और वह भी पैदल सेनाके साथ रणमेंसे भाग गया ॥ १४ ॥ देखने योग्य, तरुण अवस्थाका, शूरोंके लक्षणों वाला, दुःशासन भी द्रोणाचार्यके मारेजानेसे बहुत ही घबडा गया और हाथियोंकी सेनाके सहित भाग निकला ॥ १५ ॥ द्रोण मारेगये, यह देखकर वृषसेन भी दश हजार रथ और तीन हजार हाथियोंके साथ रणमेंसे फुरतीसे भागगया ॥१६॥ हे महाराज ! महारथी दुर्योधन भी हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सेनाके साथ रणमेंसे भागगया॥१७॥सुशर्मा भी रणमें द्रोणाचार्यको गिरा हुआ देखकर, अर्जुनकी मारकाटमेंसे बचेहुए संशप्तकगणोंको साथ लेकर रणमेंसे भाग निकला और द्रोणको रणमें मरा हुआ देख कितने ही हाथियों पर चढकर भाग गये और कितने ही घोडोंको रणमें ही छोडकर भागगये।१८-१९।और कौरवोंके कितने ही योधा पिताओंसे रणमेंसे भागनेके लिये शीघ्रता करके भागरहे थें,कितने ही भाइयोंसे शीघ्रता करनेको कहतेहुए भागरहे थे कोई कुरुवंशी मामाओंसे, कोई पुत्रोंसे और दूसरे मित्रोंसे शीघ्र ही भागनेको कहते हुए उस

यन्तश्च सैन्यानि स्वस्रीयांश्च तथा परे । सम्बन्धिनस्तथा चान्ये प्राद्रवन्त दिशो दश ॥ २१ ॥ प्रकीर्णकेशा विध्वस्ता न द्वावेकत्र धावतः । नेदमस्तीति मन्वाना हतोत्साहा हतौजसः ॥ २२ ॥ उत्सृज्य कवचानन्ये प्राद्रवंस्तावका विभो । अन्योऽन्यं ते समाक्रोशन् सैनिका भरतर्षभ ॥ २३ ॥ तिष्ठ तिष्ठेति न च ते स्वयं तत्रावतस्थिरे । धुर्यानुन्मुच्य च रथाद्धतसूतात्स्वलंकृतान् ॥ अधिरुह्य हयान् योधाः क्षिप्रं पद्भिरचोदयन् ॥ २४ ॥ द्रवमाणे तथा सैन्ये त्रस्तरूपे हतौजसि । प्रतिस्रोत इव ग्राहो द्रोणपुत्रः परानियात् २५ तस्यासीत् सुमहद्युद्धं शिखण्डिप्रमुखैर्गणैः । प्रभद्रकैश्च पञ्चालै-

---

समय भागे जा रहे थे ॥ २० ॥ कितने ही सेनाओंको भागनेकी प्रेरणा कर रहे थे कोई भानजोंसे भागने को कह रहे थे और कोई सगे संबन्धियोंको भागनेकी प्रेरणा करते हुए दशों दिशाओंको भाग रहे थे ॥ २१ ॥ इस समय योधाओंके शरीर घायल हो रहे थे और शिरोंके बाल खुल गये थे, रणमें इतने अधिक योधा थे कि परन्तु–दो जनोंको एक साथ भागना कठिन होरहा था, उत्साह और सामर्थ्यसे हीन हो रहे थे, और वे सब समझ रहे थे, कि–बस अब ये मारे गये ॥ २२ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे योधाओंमेंसे कितने ही कवचोंको उतार कर भाग रहे थे और आपसमें चिल्ला २ कर कह रहे थे कि–खडे रहो, ! खड़े रहो !! परन्तु वे स्वयं रणभूमिमें खडे नहीं रहसके थे, कितनेही रथी अपने सारथियोंके मारेजानेके कारण अपने सजे हुए रथोंमेंसे घोड़ोंको खोल कर उनके ऊपर सवार हो पैरोंकी एडियोंसे उनको हाँकनेमें लगे हुए थे ॥ २३–२४ ॥ इस प्रकार तुम्हारी सेना सामर्थ्यहीन तथा भयभीत होकर भागने लगी थी, उस समय जैसे नाका नदीके प्रवाहके सामनेको चढकर जाता है, तैसे ही अश्वत्थामाने वैरियोंके ऊपर धावाकिया ॥ २५ ॥ और उसका

श्चेदिभिश्च सकेकयैः ॥ २६ ॥ हत्वा वहुविधाः सेनाः पाण्डूनां युद्धदुर्मदः । कथञ्चित्सङ्कटान्मुक्तो मत्तद्विरदविक्रमः ॥ २७ ॥ द्रवमाणं वलं दृष्ट्वा पलायनकृतक्षणम् । दुर्योधनं समासाद्य द्रोणपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २८ ॥ किमियं द्रवते सेना त्रस्तरूपेव भारत । द्रवमाणाञ्च राजेन्द्र नावस्थापयसे रणे ॥ २९ ॥ त्वञ्चापि न यथा पूर्वं प्रकृतिस्थो नराधिप । कर्णप्रभृतयश्चेमे नावतिष्ठन्ति पार्थिव ॥ ३० ॥ अन्येष्वपि च युद्धेषु नैव सेनाद्रवत्तदा । कच्चित् क्षेमं महाराज तव सैन्यस्य भारत ॥३१॥ कस्मिन्निदं हते राजन् रथसिंहे वलं तव । एतामवस्थां सम्प्राप्तं तन्ममाचक्ष्व कौरव ३२ तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य भाषितम् । घोरमप्रियमाख्यातुं

शिखण्डी आदि योधाओंके समूहोंके साथ, प्रभद्रक, पाञ्चाल, चेदी तथा केकयोंके साथ वडा युद्ध हुआ ॥२६॥ मदमत्त हाथीकी समान पराक्रमी अश्वत्थामा युद्धमें मदोन्मत्तकी समान घूमरहा था, वह पाण्डवोंकी वड़ाभारी सेनाका संहार करनेके अनन्तर वडी कठिनतासे सङ्कटमेंसे छूटा ।।२७।। परन्तु जब उसने अपनी सेनाको भी भागनेको और भागती हुई देखा, तब उसने दुर्योधनके पास जाकर बूझा, कि-॥ २८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! तुम्हारी यह सेना भयभीत हुई सी घबडाकर क्यों भागरही है? हे राजेन्द्र! रणमेंसे भागती हुई सेनाको तुम रोकते क्यों नहीं हो ? ॥२९॥ हे राजन् ! तुम पहलेकी समान उत्साही क्यों नहीं मालूम होते और हे राजन् ! यह कर्ण आदि योधा भी क्यों नहीं जमरहे हैं? ॥३०॥ दूसरे युद्धोंके समय तो सेना इस प्रकार कभी नहीं भागती थी ? तो हे भरतवंशी महाबाहु राजन् ! तुम्हारी सेनाकी कुशल तो है ? ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! महारथियोंमेंसे सिंहकी समान कौनसे योधाके मरणसे ऐसी दशा हुई है, यह मुझे बताइये ३२ दुर्योधनने अश्वत्थामाकी यह बात सुनी, परन्तु तुम्हारा पुत्र टूटी

नाशक्नोत् पार्थिवर्षभः ॥३३॥ भिन्ना नौरिव ते पुत्रो मग्नः शोकमहार्णवे । बाष्पेणापिहितो दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं रथे स्थितम् ॥ ३४ ॥ ततः शारद्वतं राजा सव्रीडमिदमब्रवीत् । शंसात्र भद्रन्ते सर्वं यथा सैन्यमिदं द्रुतम् ॥ ३५ ॥ अथ शारद्वतो राजन्नार्त्तिमार्च्छन् पुनः पुनः । शशंस द्रोणपुत्राय यथा द्रोणो निपातितः ॥ ३६ ॥ कृप उवाच । वयं द्रोणं पुरस्कृत्य पृथिव्यां प्रवरं रथम् । प्रावर्त्तयाम संग्रामं पञ्चालैरेव केवलम् ॥ ३७ ॥ ततः प्रवृत्ते संग्रामे विमिश्राः कुरुसोमकाः । अन्योऽन्यमभिगर्जन्तः शस्त्रैर्देहानपातयन् ॥ ३८ ॥ वर्त्तमाने तथा युद्धे क्षीयमाणेषु संयुगे । धार्त्तराष्ट्रेषु संक्रुद्धः पिता तेऽस्त्रमुदैरयत् ॥ ३९ ॥ ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं विकुर्वाणो नरर्षभः । व्यहनच्छात्रवान् भल्लैः शतशोऽथ सह-

हुई नौकाकी समान शोकसागरमें डूबरहा था, इसलिये अश्वत्थामा से महाभयानक अप्रिय समाचार नहीं कहसका, वह रथमें बैठे हुए अश्वत्थामाको देखकर चौधार आँसू बहने लगा ३३-३४ फिर दुर्योधनने कृपाचार्यके सामने जाकर लज्जाके साथ कहा, कि-तुम्हार कल्याण हो ! जिस कारणसे यह सेना भागरही है, वह सब कारण अश्वत्थामाको बता दीजिये ॥ ३५ ॥ यह सुनकर शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य वारंवार खिन्न होते हुए अश्वत्थामासे द्रोणाचार्यके मरणका वृत्तान्त कहने लगे ॥ ३६ ॥ कृपाचार्यने कहा कि-पृथ्वी पर महारथी द्रोणाचार्यको ही अग्रणी करके हम केवल पांचालोंके साथ संग्राम कररहे थे ॥ ३७ ॥ संग्राम आरंभ हुआ, कि-कौरव और सोमक इकट्ठे होगये और गर्जना करते हुए शस्त्रोंसे एक दूसरेके शरीरोंको काट२ कर गिराने लगे ३८ इस युद्धमें हजारों कौरव योधा मारे गये, तब तुम्हारे पिता क्रोधमें भरकर शत्रुओंकी सेनाके ब्रह्मास्त्र मारनेको तयार होगये ! और ब्रह्मास्त्रको प्रकट करके उन्होंने रणमें भल्ल नामके बाणोंसे

स्रशः ॥ ४० ॥ पाण्डवाः केकया मत्स्याः पञ्चालाश्च विशेषतः । संख्ये द्रोणरथं प्राप्य व्यनशन् कालचोदिताः ॥ ४१ ॥ सहस्रं नरसिंहानां द्विसाहस्रञ्च दन्तिनाम् । द्रोणो ब्रह्मास्त्रयोगेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ४२ ॥ आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः. रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ४३ ॥ क्लिश्यमानेषु सैन्येषु वध्यमानेषु राजसु । अमर्षवशमापन्नाः पञ्चाला विमुखाभवन् ॥४४॥ तेषु किञ्चित्प्रभग्नेषु विमुखेषु सपत्नजित् । दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणो बभूवार्क इवोदितः ॥४५॥ स मध्यं प्राप्य पांडूनां शररश्मिः प्रतापवान् । मध्यं गत इवादित्यो दुष्प्रेक्ष्यस्ते पिताऽभवत् ॥ ४६ ॥ ते दह्यमाना द्रोणेन सूर्येणेव विराजता । दग्धवीर्या

सैकड़ों और सहस्रों शत्रुओंको काटडाला ॥ ३९॥४० ॥ पाण्डव, केकय, मत्स्य और विशेष कर पंचाल राजे—इस प्रकार जो जो राजे कालकी प्रेरणासे द्रोणके रथके समीप आते थे वे सब मारे जाते थे ॥ ४१ ॥ इस युद्धमें द्रोणने ब्रह्मास्त्र मार कर एक हजार बड़े २ योधाओंका और दो हजार हाथियोंका संहार कर डाला था ॥ ४२ ॥ जिनके कानोंतकमें झुर्रियें पड़गयी थीं जिनका शरीर श्याम था और अवस्था पिचासी वर्ष की थी ऐसे द्रोण वृद्ध होकर भी सोलह वर्षके तरुण पुरुषकी समान रणमें घूमरहे थे ॥ ४३ ॥ इनके संहारसे सेनायें खिन्न होगयीं और राजाओंका संहार होनेलगा, यह देखकर पञ्चाल देशके राजे घबड़ा कर रणमेंसे भागनिकले ॥ ४४ ॥ पंचाल राजे रणमेंसे भागनेलगे और उनमें जरा एक भागड़ पड़ी उसी समय शत्रुओंको जीतने वाले द्रोणने दिव्य अस्त्रको प्रकट किया, उस समय वह रणमें उदय हुए सूर्यकी समान दिपरहे थे ॥ ४५ ॥ बाणरूप-किरणधारी और प्रतापी तुम्हारे पिता द्रोण जिस समय पाण्डवोंकी सेनाके मध्यमें खड़े थे, उस समय मध्याह्नकालके सूर्यकी समान उनकी ओर

निरुत्साहा वभूवुर्गतचेतसः ॥ ४७ ॥ तान् दृष्ट्वा पीडितान् वाणैर्द्रोणेन मधुसूदनः । जयैषी पाण्डुपुत्राणामिदं वचनमब्रवीत् ॥४८॥ नैष जातु नरैः शक्यो जेतुं शस्त्रभृताम्वरः । अपि वृत्रहणा संख्ये रथयूथपयूथपः ॥ ४९ ॥ ते यूयं धर्ममुत्सृज्य जयं रक्षत पाण्डवाः । यथा वः संयुगे सर्वान्न हन्याद्रुक्मवाहनः ॥ ५० ॥ अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम । हतं तं संयुगे कश्चिदाख्यात्वस्मै मृषा नरः ॥ ५१ ॥ एतन्नारोचद्वाक्यं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः । अरोचयंस्तु सर्वेऽन्ये कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ॥ ५२ ॥ भीमसेनस्तु सव्रीडमब्रवीत् पितरं तव । अश्वत्थामा हत इति तं नाबुध्यत ते पिता५३

को देखना भी कठिन होरहा था ।४६। सूर्यकी समान दमकते हुए द्रोणाचार्य शत्रुओंको भस्म करने लगे, तब तो शत्रुओंका पराक्रम नष्ट होगया, उत्साह भङ्ग होगया और वे अचेतसे होगये ॥४७॥ विजय चाहनेवाले श्रीकृष्णने देखा कि द्रोण वाणोंसे शत्रु पाण्डवों की सेनाको दुःख देरहे हैं, इसलिये उन्होंने पाण्डवोंसे कहा कि-॥ ४८ ॥ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और महारथियोंके स्वामी द्रोणाचार्यको मनुष्य कभी जीत नहीं सकते, अधिक क्या कहूँ, रणमें इन्द्रभी इनका पराजय नहीं कर सकता ॥ ४९ ॥ इसलिये हे पाण्डवो ! यदि तुम्हें विजय प्राप्त करनी हो तो धर्मको छोडो, जिससे, कि-द्रोणाचार्य तुम सबोंका रणमें नाश न कर सकें ५० मेरी समझमें अश्वत्थामाके मारे जानेका समाचार सुनकर द्रोण रणमें नहीं लड़सकेंगे, इस लिए कोई पुरुष द्रोणको झूठी खबर सुनावे, कि-अश्वत्थामा रणमें मारा गया, यह विचार सबको तो अच्छा लगा, परन्तु कुन्तीपुत्र अर्जुनको अच्छा नहीं लगा, और युधिष्ठिरने भी इस बातको बड़ी कठिनाईसे माना ॥ ५१-५२॥ फिर भीमसेनने तुम्हारे पिताके पास जाकर लज्जित होतेहुए कहा कि-अश्वत्थामा रणमें मारागया, परन्तु तुम्हारे पिताने उसके

स शङ्कमानस्तन्मिथ्या धर्मराजमपृच्छत । हतं वाप्यहतं वाजौ त्वां पिता पुत्रवत्सलः ॥ ५४ ॥ तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः । अश्वत्थामानमायोधे हतं दृष्ट्वा महागजम् ॥ ५५ ॥ भीमेन गिरिवर्ष्माणं मालवस्येन्द्रवर्मणः । उपसृत्य तदा द्रोणमुच्चैरिदमुवाच ह ॥ ५६ ॥ यस्यार्थे शस्त्रमादत्से यमवेक्ष्य च जीवसि । पुत्रस्ते दयितो नित्यं सोऽश्वत्थामा निपातितः ॥ ५७ ॥ शेते विनिहतो भूमौ वने सिंहशिशुर्यथा । जानन्नप्यनृतस्याथ दोषान् स द्विजसत्तमम् ॥५८॥ अव्यक्तमब्रवीद्राजा हतः कुञ्जर इत्युत ॥५९॥ स त्वां विनतमाक्रन्दे श्रुत्वा सन्तापपीडितः । नियम्य दिव्यान्यस्त्राणि नायुध्यत यथा पुरा ॥६०॥ तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकातुर-

---

कहनेके ऊपर विश्वास नहीं किया ॥ ५३ ॥ उन्होंने, भीमकी बात मिथ्या है, इस सन्देहमें होकर धर्मराजसे बूझा, कि- अश्वत्थामा रणमें मारागया या जीवित है ? ॥ ५४ ॥ इसी बीचमें भीमसेनने युद्धमें, मालवेके राजा इन्द्रवर्माके पहाड़की समान कायावाले अश्वत्थामा नामके हाथीको मारडाला; उसको राजा युधिष्ठिरने देखा था इसलिये एक ओर असत्यभाषणके भयमें डूबे जारहे थे, परन्तु दूसरी ओर विजय चाहते थे, इतनेमेंही भीमसेनने द्रोणके पास जा चिल्ला कर कहा, कि–अरे द्रोणाचार्य ! तुम जिसके लिये अस्त्र धारण कियेहुए हो और जिसका मुख देख कर जीवन विताते हो वह तुम्हारा प्यारा पुत्र अश्वत्थामा तो युद्धमें मारागया, और जैसे वनमें मराहुआ सिंहका बच्चा पडा होता है तैसे ही वह मरकर रणभूमिमें पडा है ॥ ५५–५८ ॥ इस पर द्रोणाचार्यने इस बातकी सत्यताके विषयमें धर्मराजसे बूझा, युधिष्ठिर जानते थे कि–मिथ्याभाषणमें बड़ा दोष है, तो भी उन्होंने जिसमें स्पष्ट न मालूम हो, ऐसे शब्दोंमें कहा कि– "नरो वा कुञ्जरो वा" युधिष्ठिरकी बात सुनकर द्रोण तुम्हें रणमें

पचेतसम् । पाञ्चालराजस्य सुतः क्रूरकर्मा समाद्रवत् ॥ ६१ ॥ तं दृष्ट्वा विहितं मृत्युं लोकतत्त्वविचक्षणः । दिव्यान्यस्त्राण्यथोत्सृज्य रणे प्राय उपाविशत् । ततोऽस्य केशान् सव्येन गृहीत्वा पाणिना तदा । पार्षतः क्रोशमानानां वीराणामच्छिनच्छिरः ६३ न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सर्वतोऽब्रुवन् । तथैव चार्ज्जुनो वाहादवरुह्यैनमाद्रवत् ॥ ६४ ॥ उद्यम्य त्वरितो बाहुं ब्रुवाणश्च पुनः पुनः । जीवन्तमानयाचार्यं मा वधीरिति धर्मवित् ॥ ६५ ॥ तथा निवार्यमाणेन कौरवैरर्जुनेन च । हत एव नृशंसेन पिता तव नरर्षभ ॥ ६६ ॥ सैनिकाश्च ततः सर्वे प्राद्रवन्त भयार्दिताः ।

मारागया सुनकर शोक सन्तापसे भस्म होने लगे और अपने दिव्य अस्त्रोंको बन्द कर दिया तथा पहलेकी समान युद्ध करना रोक दिया ॥ ५९ ॥ ६० ॥ द्रोणाचार्यको परमखिन्न, शोकातुर और अचेत देखकर, क्रूर कर्म करने वाला पंचालराजका पुत्र बड़े वेगसे द्रोणाचार्यके सामने आपहुँचा ॥ ६१ ॥ लोकव्यवहारमें निपुण द्रोणने भी यह मेरा नाश करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है, ऐसा समझकर दिव्य अस्त्रोंको त्यागदिया और रणभूमिमें योग धारणासे चित्तको स्थिर करके वह अपने रथमें बैठगये ॥६२॥ धृष्टद्युम्न द्रोणके रथपर चढ़ गया और बायें हाथसे उनके शिरके केश पकड लिये, उस समय वीर योधा चिल्लाते ही रहगये और उसने तलवारसे द्रोणका शिर काटलिया ॥ ६३ ॥ उस समय सब योधा पुकार२कर कहरहे थे, कि-द्रोणको मारना नहीं!मारना नहीं !! और धर्मवेत्ता अर्जुन तो रथमेंसे नीचे उतर पडा, और तेरे पिताका शिर काटनेसे रोकनेके लिये उसके पीछे भी दौडा था और अपना हाथ ऊँचा करके वारंवार कहरहा था, कि-तू आचार्य को जीवित ही पकडला, मारे मत ॥ ६४ ॥ इस प्रकार कौरवोंके और अर्जुनके रोकने पर भी हे पुरुषश्रेष्ठ! क्रूर धृष्टद्युम्नने तेरे

वयञ्चापि निरुत्साहा हते पितरि तेऽनघ ॥६७॥ सञ्जय उवाच । तच्छुत्वा द्रोणपुत्रस्तु निधनं पितुराहवे । क्रोधमाहारयत्तीव्रं पदाहत इवोरगः ॥ ६८ ॥ ततः क्रुद्धो रणे द्रौणिर्भृशं जज्वाल मारिष । यथेन्धनं महत्प्राप्य प्राज्वलद्धव्यवाहनः ॥ ६९ ॥ तलं तलेन निष्पिष्य दन्तैर्दन्तानुपास्पृशत् । निःश्वसन्नुरगो यद्वल्लोहिताक्षोऽभवत्तदा ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अश्वत्थामक्रोधे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । अधर्मेण हतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन सञ्जय । ब्राह्मणं पितरं वृद्धमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १ ॥ मानवं वारुणाग्नेयं ब्राह्ममस्त्रञ्च वीर्यवान् । ऐन्द्रं नारायणञ्चैव यस्मिन्नित्यं

पिताको मारडाला, इस लिये ॥ ६६ ॥ हे निर्दोष अश्वत्थामा ! हम सव तथा सेनाके लोग भयभीत और उत्साहहीन होजानेके कारण रणमेंसे भागरहे हैं ॥ ६७ ॥ सञ्जयने कहा, कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! रणमें खड़े हुए अश्वत्थामाने अपने पिताके मरणका समाचार सुना, उस समय वह लातसे मारे हुए सर्पकी समान क्रोधमें भरगया ॥ ६८ ॥ हे राजन् ! जैसे वहुतसा ईंधन पाकर अग्नि धधक उठता है ऐसे ही रणमें खडा हुआ अश्वत्थामा इस समय क्रोधसे वहुत ही तमतमा उठा ॥६९॥ उसकी आँखें लाल लाल होगयीं, वह सर्पकी समान फुङ्कारें भरनेलगा, दोनों हाथोंमें हथेलियोंकी मसलने लगा और दाँतोंसे दाँतोंको पीसने लगा७०

एक सौ तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९३ ॥

धृतराष्ट्रने बूझा, कि–हे सञ्जय ! बूढे तथा ब्रह्मण जातिके मेरे पिता द्रोणाचार्यको धृष्टद्युम्नने अधर्मसे मारडाला, यह सुनकर अश्वत्थामा क्या वोला ? ॥१॥ जो द्रोणाचार्य मानवास्त्र, अग्न्यस्त्र, वारुणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, और नारायणास्त्रको जानते थे, उन

प्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥ तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे । श्रुत्वा निहतमाचार्यं सोऽश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ ३ ॥ येन रामादवाप्येह धनुर्वेदं महात्मना । प्रोक्तान्यस्त्राणि दिव्यानि पुत्राय गुणकांक्षिणा ॥४॥ एकमेव हि लोकेस्मिन्नात्मनो गुणवत्तरम् । इच्छन्ति पुरुषा पुत्रं लोके नान्यं कथञ्चन ॥ ५ ॥ आचार्याणां भवन्त्येव रहस्यानि महात्मनाम् । तानि पुत्राय वा दद्युः शिष्यायानुगताय वा ॥ ६ ॥ स शिष्यः प्राप्य तत्सर्वं सविशेषञ्च सञ्जय । शूरः शारद्वतीपुत्रः संख्ये द्रोणादनन्तरः ॥ ७ ॥ रामस्य तु समः शस्त्रे पुरन्दरसमो युधि । कार्त्तवीर्यसमो वीर्ये बृहस्पतिसमो मतौ ॥८॥

धर्मके प्रेमी द्रोणाचार्यको रणमें धृष्टद्युम्नने अधर्मसे मारडाला, यह सुनकर पराक्रमी अश्वत्थामाने क्या कहा ? ॥ २ ॥ ३ ॥ उन महात्माने तो परशुरामसे धनुर्वेद सीखकर अपने पुत्रको भी अपने समान ही गुणवान् बनानेकी इच्छासे उसको दिव्य अस्त्र सिखाये थे ? ॥ ४ ॥ हे सञ्जय ! पुरुष इस जगत्में पुत्रको ही अपनेसे भी अधिक गुणवान् बनाना चाहता है, किसी दूसरेको उससे अधिक देखना नहीं चाहता ॥ ५ ॥ महात्मा आचार्योंके पास जो कुछ रहस्य (गुप्ततत्त्व) होता है, वह सब वे पुत्रको अथवा प्रेमपात्र शिष्योंको बतलाते हैं ॥ ६ ॥ हे सञ्जय ! वीर अश्वत्थामा द्रोणाचार्यका पुत्र भी है और शिष्य भी है तथा उसने अपने पितासे विशेषरूपसे अस्त्रविद्याका सब रहस्य सीखा है, इसलिये उसने अपने पिता तथा गुरु द्रोणाचार्यके मरणका समाचार सुनकर क्या उत्तर दिया ? ॥ ७ ॥ द्रोणाचार्य शस्त्र धारण करनेमें रामकी समान, युद्ध करनेमें इन्द्रकी समान, पराक्रममें कार्त्तवीर्यकी समान, बुद्धिमें बृहस्पतिकी समान, स्थिरतामें पर्वतकी समान, तेजमें अग्निकी समान, अवस्थामें वरुण, गंभीरतामें सागरकी समान क्रोधमें विषधर सर्पकी समान थे वह जगत्में मुख्य रथी,

महीधरसमः स्थैर्ये तेजसाग्निसमो युवा । समुद्र इव गाम्भीर्ये क्रोधे चाशीविषोपमः ॥९॥ स रथी प्रथमो लोके दृढधन्वा जितक्लमः । शीघ्रोऽनिल इवाक्रन्दे चरन् क्रुद्ध इवान्तकः ॥ १० ॥ अस्यता येन संग्रामे धरण्यभिनिपीडिता । यो न व्यथति संग्रामे वीरः सत्यपराक्रमः ॥ ११ ॥ वेदस्नातो व्रतस्नातो धनुर्वेदे च पारगः । महोदधिरिवाक्षोभ्यो रामो दाशरथिर्यथा ॥ १२ ॥ तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे । श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत्१३धृष्टद्युम्नस्य यो मृत्युः सृष्टस्तेन महात्मना। यथा द्रोणस्य पाञ्चाल्यो यज्ञसेनसुतोऽभवत् ॥१४॥ तं नृशंसेन पापेन क्रूरेणादीर्घदर्शिना । श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥१५॥

इति श्रीमहाभोरते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि
धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९४॥

दृढ धनुषधारी,रोगरहित, अस्त्रोंका प्रयोग करनेमें फुरतीले,गर्जना करनेमें वायुकी समान तथा कालकी समान क्रोधी थे उन्होंने संग्राममें बाणोंके प्रहार करके पृथ्वीको बडा ही पीडित किया था वह वीर और सत्यपराक्रमी पुरुष रणमें युद्ध करते समय ज़रा भी खिन्न नहीं होते थे वह वेदमें प्रवीण,व्रतधारी धनुर्विद्यामें पारगामी और दशरथके पुत्र रामकी समान पराक्रमी तथा महासागरकी समान अक्षोभ्य थे८-१२ऐसे धर्मनिष्ठ द्रोणाचार्यको धृष्टद्युम्नने अधर्मसे मारडाला, यह सुनकर अश्वत्थामाने क्या कहा था१३ पाँचालके राजा यज्ञसेनका पुत्र जैसे द्रोणका नाश करनेके लिये उत्पन्न हुआ था, ऐसे ही महात्मा द्रोणने भी धृष्टद्युम्नका नाश करनेके लिये अश्वत्थामाको उत्पन्न किया था, उस अश्वत्थामाने क्रूर, पापी, भयङ्कर और धृष्टद्युम्नको, आचार्यका नाश कर डालनेकी बात सुनकर क्या कहा था,वह मुझे सुना॥१४-१५॥

एकसौ चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९४ ॥

सञ्जय उवाच । छद्मना निहतं श्रुत्वा पितरं पापकर्मणा । वाष्पेणापूर्यत द्रौणी रोषेण च नरर्षभ॥१॥ तस्य क्रुद्धस्य राजेन्द्र वपुर्दीप्तमदृश्यत । अन्तकस्येव भूतानि जिहीर्षोः कालपर्यये ॥ २ ॥ अश्रुपूर्णे ततो नेत्रे व्यपमृज्य पुनः पुनः । उवाच कोपान्निःश्वस्य दुर्योधनमिदं वचः ॥ ३ ॥ पिता मम यथा क्षुद्रैर्न्यस्तशस्त्रो निपातितः । धर्मध्वजवता पापं कृतं तद्विदितं मम ॥ ४ ॥ अनार्यं सुनृशंसञ्च धर्मपुत्रस्य मे श्रुतम् । युद्धेष्वपि प्रवृत्तानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥ ५ ॥ द्वयमेतद्भवेद्राजन् वधस्तत्र प्रशस्यते । न्यायवृत्तवधो यस्तु संग्रामे युध्यतो भवेत् ॥ ६ ॥ न स दुःखाय भवति तथा दृष्टो हि स द्विजैः । गतः स वीरलोकाय पिता मम न संशयः ७

सञ्जयने कहा, कि-हे नरश्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! पापी धृष्टद्युम्नने पिता द्रोणाचार्यको कपटसे मारडाला, यह समाचार सुनकर अश्वत्थामा क्रोधमें भर रोने लगा ॥ १ ॥ और हे राजेन्द्र ! प्रलयके समय प्राणियोंका संहार करना चाहनेवाले यमराजका शरीर जैसा तमतमाता हुआ दीखता है तैसे ही क्रोधमें भरेहुए अश्वत्थामाका शरीर प्रदीप्त दीखनेलगा ॥ २ ॥ अश्वत्थामाने आँसुओंसे भरे नेत्रोंको बार२ पोंछतेहुए कोपके साथ लंबे साँस लेकर दुर्योधनसे यह बात कही, कि-॥३॥ हे दुर्योधन ! मेरे पिताने रणमें हाथमेंसे शस्त्र डालदिये थे, तो भी क्षुद्र लोगोंने और धर्मध्वज धृष्टद्युम्नने उनको मारडाला ! ओः ! उसके इस अनार्य, क्रूर और पापकर्मको मैंने जानलिया तथा युधिष्ठिरने जो अनार्य और क्रूर कर्म किया है उसको भी मैंने सुनलिया ! हे राजन् ! युद्ध करनेवालोंकी रणमें जीत या हार दोनोंमेंसे एक होती ही है, रणमें योधाओंका युद्ध करतेहुए यदि नीतिके अनुसार मरण होजाय तो वह उत्तम माना जाता है४-६ उसके लिये दुःख नहीं होता है, ऐसा प्राचीन पण्डित कहते हैं, हे पुरुषव्याघ्र ! मेरे पिता रणमें मरण पाकर

न शोच्यः पुरुषव्याघ्र यस्तदा निधनं गतः । यत्तु धर्मप्रवृत्तः सन् केशग्रहणमाप्तवान् ॥ ८ ॥ पश्यतां सर्वसैन्यानां तन्मे मर्माणि कृन्तति । मयि जीवति यत्तातः केशग्रहणमाप्तवान् ॥ ९ ॥ कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् । कामात् क्रोधादथाज्ञानाद्दर्पाद्बाल्येन वा पुनः ॥ १० ॥ विधर्मकाणि कुर्वन्ति तथा परिभवन्ति च । तदिदं पार्षतेनेह महदाधर्मिकं कृतम् ११ अवज्ञाय च मां नूनं नृशंसेन दुरात्मना । तस्यानुबन्धं द्रष्टासौ धृष्टद्युम्नः सुदारुणम् ॥ १२ ॥ अकार्यं परमं कृत्वा मिथ्यावादी स पाण्डवः। यो ह्यसौ छद्मनाचार्यं शस्त्रं संन्यासयत्तदा१३ तस्याद्य धर्मराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम्। शपे सत्येन कौरव्य इष्टापूर्त्तेन चैव हि१४

अवश्य ही स्वर्गमें गये हैं ॥ ७ ॥ इसलिये उनके मरणके लिये मुझे शोक नहीं करना चाहिये, परन्तु मेरे पिता धर्मके अनुसार वर्त्ताव करनेवाले थे, तो भी उस दुष्ट पापीने सब योधाओंके सामने मेरे पिताके केश पकडकर खेंचे, यह बात मेरे मर्मस्थानोंको काटरही है, मैं जीवित बैठा हूँ, तो भी वैरीने मेरे पिताके केश पकडकर खेंचे ! तो अब दूसरे पिता पुत्रोंको किसलिये चाहेंगे ? जैसे मनुष्य कामसे, क्रोधसे, हर्षसे अथवा अज्ञानसे अधर्म करता है अथवा दूसरेका तिरस्कार करता है, ऐसे ही क्रूर कर्म करनेवाले दुष्टात्मा धृष्टद्युम्नने भी मेरा अपमान करके वास्तवमें बड़े अधर्मका काम किया है ! धृष्टद्युम्न भी अब इस कर्मके अतिदारुण फलको अवश्य ही भोगेगा ॥ ८–१२ ॥ और धर्मराजने भी असत्य बोलकर बडा ही बुरा काम किया है. उन्होंने भी उस समय कपटसे आचार्यको धोखा देकर उनके हाथमेंसे शस्त्र डलवा दिये थे १३ इसलिये अब यह पृथ्वी धर्मराजके रुधिरको पियेगी हे कौरववंशी राजन् ! मैं सत्यकी तथा बावडी कुए आदि इष्टापूर्त्तकी शपथ खाकर कहता हूँ, कि–मैं सकल पांचालोंका नाश किये बिना

अहत्वा सर्वपञ्चालान् जीवेयं न कथञ्चन । सर्वोपायैर्यतिष्ये'पि पञ्चालानामहं वधे ॥ १५ ॥ धृष्टद्युम्नञ्च समरे हन्ताहं पापकारिणम् । कर्मणा येन तेनेह मृदुना दारुणेन च ॥ १६ ॥ पञ्चालानां वधं कृत्वा शान्तिं लब्धास्मि कौरव ।यदर्थं पुरुषव्याघ्र पुत्रानिच्छन्ति मानवाः । ॥ १७ ॥ प्रेत्य चेह च सम्प्राप्तास्त्रायन्ते महतो भयात् । पित्रा तु मम सावस्था प्राप्ता निर्बन्धुना यथा ॥१८॥ मयि शैलप्रतीकाशे पुत्रे शिष्येऽत्र जीवति । धिङ् ममास्त्राणि दिव्यानि धिग्बाहू धिक्पराक्रमम् ॥ १९ ॥ यं स्म द्रोणः सुतं प्राप्य केशग्रहणमाप्तवान् । स तथाहं करिष्यामि यथा भरतसत्तम ॥ २० ॥ परलोकं गतस्यापि भविष्याम्यनृणः पितुः ।

कदापि जीवित नहीं रहूँगा, अब आगेको सकल उपायोंसे उनका नाश करनेके लिये उद्योग करूँगा ॥१४-१५॥ कोमल या क्रूर (अच्छा या बुरा, धर्मका या अधर्मका) हरएक काम करके मैं रणभूमिमें पापी धृष्टद्युम्नको मारडालूँगा ॥ १६ ॥ हे कुरुवंशी राजन् ! सकल पांचाल राजाओंका नाश करनेके बाद ही मैं शान्त होकर बैठूँगा, हे पुरुषसिंह ! मनुष्य इस जगत्में जिस कामके लिये पुत्रको चाहते हैं, वह यही है, कि-इस लोकमें तथा मरनेके बाद स्वर्गलोकमें गयेहुए पितरोंकी महाभयसे रक्षा करें, परन्तु यहाँ तो उससे उलटा ही काम हुआ है मैं पहाडकी समान ऊँचा पुत्र और शिष्य जीता बैठा हूँ तो भी मेरे पिताकी पुत्रहीन पिताकीसी दुर्दशा हुई ! इस दशामें मेरे दिव्य अस्त्रोंको, दोनों भुजदण्डोंको और पराक्रमको धिक्कार है॥१७-१९॥मुझ सरीखे पुत्रके होतेहुए भी मेरे पिताके केश खिचनेका अवसर आया,इस लिये हे भरतसत्तम ! अब मैं ऐसा काम करूँगा, कि-जिससे परलोकवासी हुए अपने पिताके ऋणसे छूटजाऊँ, आर्यपुरुषोंको अपनी प्रशंसा कभी नहीं करनी चाहिये, परन्तु आज अपने

आर्येण हि न वक्तव्या कदाचित् स्तुतिरात्मनः ॥ २१ ॥ पितुर्वधममृष्यंस्तु वक्ष्याम्यद्येह पौरुषम् । अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं पाण्डवाः सजनार्दनाः ॥ २२ ॥ मृद्नतः सर्वसैन्यानि युगान्तमिव कुर्वतः । न हि देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः ॥ २३ ॥ अद्य शक्ता रणे जेतुं रथस्थं मां नरर्षभाः । मदन्यो नास्ति लोकेऽस्मिन्नर्जुनाद्वास्त्रवित् क्वचित् ॥ २४ ॥ अहं हि ज्वलतां मध्ये मयूखानामिवांशुमान् । प्रयोक्ता देवसृष्टानामस्त्राणां पृतनागतः ॥ २५ ॥ भृशमिष्वसनादद्य मत्प्रयुक्ता महाहवे । दर्शयन्तः शरा वीर्यं प्रमथिष्यन्ति पाण्डवान् ॥ २६ ॥ अद्य सर्वा दिशो राजन् धाराभिरिव संकुलाः । आवृताः पत्रिभिस्तीक्ष्णैर्द्रष्टारो मामकैरिह ॥ २७ ॥ विकिरञ्छरजालानि सर्वतो भैरवस्वनान् । शत्रून्निपातयिष्यामि

पिताका मरण मुझसे सहा नहीं जाता इसलिये ही मैं उसके आवेशमें अपना पराक्रम तुम्हें कहकर सुनाता हूँ, आज मैं रणमेंकी सब सेनाका संहार करके प्रलयकालका स्वरूप दिखाऊँगा और कृष्ण तथा पाण्डव भी आज मेरे शारीरिक बलको अच्छे प्रकारसे देखलें ! मैं जिस समय रथमें बैठकर रणमें जाऊँगा, उस समय देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस तथा महापुरुष मेरा पराजय नहीं करसकेंगे, क्योंकि-इस लोकमें मुझसे वा अर्जुनसे बढ़कर अस्त्र-विद्याका जाननेवाला कोई नहीं है ॥२०—२४॥ जैसे किरणोंवाले पदार्थोंमें सूर्य तेजस्वी है, तैसे ही प्रकाशवान् पदार्थोंमें मैं तेजस्वी हूँ मैं सेनामें खड़ा होकर दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करूँगा ॥२५॥ और आज अतिशीघ्रतासे छोड़ेहुए मेरे बाण महारणमें अपना पराक्रम दिखातेहुए पाण्डवोंका संहार करडालेंगे ॥ २६ ॥ और हे राजन् ! आज मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे ढकीहुई दिशायें जलकी धाराओंसे भरी हुई सी दीखेंगी ॥ २७ ॥ जैसे महापवन वृक्षोंका संहार करडालता है, तैसे ही मैं रणमें चारों ओरको

महावात इव द्रुमान् ॥ २८ ॥ न हि जानाति बीभत्सुस्तदस्त्रं न जनार्दनः । न भीमसेनो न यमौ न च राजा युधिष्ठिरः ॥ २९ ॥ न पार्षतो दुरात्मासौ न शिखण्डी न सात्यकिः । यदिदं मम कौरव्य सकल्पं सनिवर्त्तनम् ॥३०॥ नारायणाय मे पित्रा प्रणम्य विधिपूर्वकम् । उपहारः पुरा दत्तो ब्रह्मरूप उपस्थितः ॥ ३१ ॥ तं स्वयं प्रतिगृह्याथ भगवान् स वरं ददौ । वव्रे पिता मे परममस्त्रं नारायणं ततः ॥ ३२ ॥ अथैनमब्रवीद्राजन् भगवान् देवसत्तमः । भविता त्वत्समो नान्यः कश्चिद्युधि नरः क्वचित्॥३३॥ न त्विदं सहसा ब्रह्मन् प्रयोक्तव्यं कथञ्चन । न ह्येतदस्त्रमन्यत्र वधाच्छत्रोर्निवर्त्तते ॥ ३४ ॥ न चैतच्छक्यते ज्ञातुं कं हि वध्ये-

---

बाण मारकर चारों ओरसे भयंकर स्वरवाले शत्रुओंका संहारकर डालूँगा ॥ २८ ॥ हे दुर्योधन ! नारायणास्त्रको छोडनेकी और लौटालेनेकी विद्या मुझे आती है, यह अस्त्र अर्जुन, कृष्ण, भीमसेन, नकुल, सहदेव, राजा युधिष्ठिर, दुष्टात्मा धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा सात्यकी इनमेंसे किसीको भी नहीं आता है ॥ २९-३० ॥ पहले मेरे पिताने विधिपूर्वक नारायणदेवको प्रणाम करके वेदमन्त्रोंसे उनकी पूजाकी थी ॥३१॥ तब भगवान् नारायणने स्वयं उनके ऊपर अनुग्रह करके उनसे वर माँगनेको कहा था, तब मेरे पिताने भगवान् नारायणसे नारायणास्त्र नामके परमअस्त्रकी याचना की थी ॥३२॥ हे राजन् ! देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् नारायणने स्वयं उनके ऊपर प्रसन्न होकर कहा था, कि-युद्धमें कोई भी मनुष्य तुम्हारी-समान नहीं होगा, लो तुम्हें मैं यह अस्त्र देता हूँ ॥३३॥ परन्तु हे ब्राह्मण ! इस अस्त्रको तू किसीके ऊपर बिना विचारे एकायकी न छोडना, क्योंकि-यह अस्त्र वैरीका नाश किये बिना पीछेको नहीं लौटता है ॥ ३४ ॥ तथा हे समर्थ द्रोण ! यह शस्त्र रणमें किसका नाश करेगा, यह भी कोई नहीं जानसकता, यह

द्धिति प्रभो । अवध्यमपि हन्याद्धि तस्मान्नैतत् प्रयोजयेत् ३५ अथ संख्ये रथस्यैव अस्त्राणाञ्च विसर्ज्जनम् । प्रयाचनाश्च शत्रूणां गमनं शरणस्य च ॥ ३६ ॥ एते प्रशमने योगा महास्त्रस्य परन्तप । सर्वथा पीडितो हिंस्यादवध्यान् पीडयन्रणे ॥ ३७ ॥ तज्जग्राह पिता मह्यमब्रवीच्चैव स प्रभुः । त्वं वधिष्यसि दिव्यानि शस्त्रवर्षाण्यनेकशः ॥ ३८ ॥ अनेनास्त्रेण संग्रामे तेजसा प्रज्वलिष्यसि । एवमुक्त्वा स भगवान् दिवमाचक्रमे प्रभुः ॥ ३९ ॥ एतन्नारायणादस्त्रं तत् प्राप्तं पितृबन्धुना । तेनाहं पाण्डवांश्चैव पञ्चालान्मत्स्यकेकयान् ॥४०॥ विद्रावयिष्यामि रणे शचीपतिरिवासुरान् । यथा यथाहमिच्छेयं तथा भूत्वा शरा मम ॥४१॥ निपतेयुः सपत्नेषु

अस्त्र तो अवध्यका भी नाश करडालता है, इसलिये एकायकी इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥ हे परन्तप ! यह महा अस्त्र रणमें रथरहितका, शस्त्रको त्यागनेवालेका, मेरी रक्षा करो ऐसी प्रार्थना करनेवालेका और शरणागत वैरीका नाश नहीं करता है, किन्तु स्वयं गिर जाता है, इसलिये मनुष्य जब महाभयानक पीडामें आपड़े तब ही वह रणमें सर्वथा अवध्य पुरुषको भी अच्छे प्रकारसे पीडित करके इस नारायणास्त्रसे उसका नाश करे ३६-३७ ऐसा कहकर मेरे पिताको नारायण अस्त्र दिया था, मेरे समर्थ पिताने उनसे नारायणास्त्र लेकर उसका प्रयोग करना उन्होंने मुझे सिखादिया था, नारायणने मेरे पिताको अस्त्र देकर कहा था, कि-तू इस अस्त्रसे संग्राममें दूसरे सब अस्त्रोंका संहार करसकेगा तथा महासंग्राममें अग्निकी समान तेजस्वी होकर दिपने लगेगा, इतना कहकर भगवान् नारायण स्वर्गमें चलेगये ३८-३९ यह नारायणास्त्र मुझे अपने पितासे मिला है और इस अस्त्रसे, जैसे इन्द्र रणमें असुरोंको भगादेता है तैसे ही मैं पांडव, पांचाल, मत्स्य और केकय राजाओंको रणमेंसे भगादूँगा, हे भरतवंशी

विक्रमस्त्वपि भारत। यथेष्टमश्मवर्षेण प्रवर्षिष्ये रणे स्थितः ४२ अयोमुखैश्च विहगैर्द्रावयिष्ये रथोत्तमान्। परश्वधांश्च विविधान्नुत्स्रक्ष्येऽहमसंशयम् ॥ ४३ ॥ सोऽहं नारायणास्त्रेण महता शत्रुतापनः। शत्रून् विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ॥ ४४ ॥ मित्रब्रह्मगुरुद्वेषी जाल्मकः सुविगर्हितः। पाञ्चालापसदश्चाद्य न मे जीवन् विमोक्ष्यते ॥ ४५ ॥ तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य पर्यवर्त्तत वाहिनी। ततः सर्वे महाशंखान् दध्मुः पुरुषसत्तमाः ॥४६॥ भेरीश्चाभ्यहनन् हृष्टा डिण्डिमांश्च सहस्रशः। तथा ननाद वसुधा खुरनेमिप्रपीडिता ॥ ४७ ॥ स शब्दस्तुमुलः खं द्यां पृथिवीञ्च व्यनादयन्। तं शब्दं पाण्डवाः श्रुत्वा पर्जन्यनिनदोपमम् ॥४८॥ समेत्य रथिनां

राजन् ! मैं जैसा२ करना चाहूँगा, उसप्रकार ही मेरे बाण, वैरी चाहे जैसा पराक्रम करेंगे, तब भी उनके ऊपर पड़ेंगे और मैं रणमें खड़ा होकर अपनी इच्छानुसार पत्थरोंकी वर्षा भी करूँगा ॥ ४०-४२ ॥ और आकाशचारी लोहेके मुखवाले बाण मारकर महारथियोंको रणमेंसे भगादूँगा और मैं तेज कियेहुए फरसे भी वैरियोंके ऊपर अवश्य छोड़ूँगा ॥ ४३ ॥ और नारायणास्त्र नामका महाअस्त्र मारकर पांडवोंका अपमान करता हुआ शत्रुओंका संहार करूँगा॥४४. मित्र, ब्राह्मण और गुरुओंसे द्रोह करनेवाला, धूर्त्त अत्यन्त निन्दाका पात्र और पंचालोंमें अधम धृष्टद्युम्न भी मेरे पाससे बचकर नहीं जायगा ॥ ४५ ॥ अश्वत्थामाकी ऐसी बातोंको सुनकर उसकी सेना उसके चारों ओर आकर खड़ी होगयी, उस सेनामेंके पुरुष हर्षमें भरकर बड़े२ शङ्ख हजारों भेरा तथा हजारों डिंडिम बजानेलगे तथा घोड़ोंकी टापें और रथोंके पहियोंकी धारसे पीडित होकर पृथ्वी गाजने लगी, उन सबोंके इकट्ठे हुए तुमुल शब्दने आकाश और पृथ्वीको भरकर गुञ्जार दिया, मेघकी गर्जनाकी समान इस ध्वनिको

श्रेष्ठाः सहिताश्चाप्यमन्त्रयन् । तथोक्त्वा द्रोणपुत्रोऽपि वार्युपस्पृश्य भारत ॥४९॥ प्रादुश्चकार तद्दिव्यमस्त्रं नारायणं तदा ॥५०॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अश्वत्थामक्रोधे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९५॥

सञ्जय उवाच । प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन्नस्त्रे नारायणे प्रभो । प्रावात् सपृषतो वायुरनभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥ १ ॥ चचाल पृथिवी चापि चुक्षुभे च महोदधिः । प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च गंतुं तत्र, समुद्रगाः२ शिखराणि व्यशीर्य्यंत गिरीणां तत्र भारत । अपसव्यं मृगाश्चैव पाण्डुपुत्रान् प्रचक्रिरे ॥ ३ ॥ तमसा चावकीर्य्यंत सूर्य्यश्च कलुषोऽभवत् । सम्पतन्ति च भूतानि क्रव्यादानि प्रहृष्टवत् ॥ ४ ॥ देवदानवगन्धर्वास्त्रस्ताश्चासन् विशाम्पते । कथं कथाभवत्तीव्रा दृष्ट्वा तद्व्याकुलं महत् ॥५॥ व्यथिताः सर्वराजानस्त्रस्ताश्चासन् विशा-

---

सुनकर रथियोंमें श्रेष्ठ पाण्डव इकट्ठे होकर विचार करने लगे, (कि-इस कोलाहलका क्या कारण है ?) हे भरतवंशी राजन्! द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने दुर्योधनसे ऐसा कहकर जलसे आचमन किया और नारायणअस्त्र नामके दिव्य अस्त्रको प्रकट किया ॥४९-५०॥ एक सौ पिचानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९५॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! जब नारायणास्त्र प्रकट होगया उससमय बादलोंसे हीन स्वच्छ आकाशमें मेघकी गर्जना होने लगी१ पृथ्वी काँप उठी, महासागर खलभला उठा, समुद्रकी ओरको जानेवाली नदियें पीछेको अपने स्रोतोंकी ओरको उलटी बहनेलगीं, हे भरतवंशी राजन् ! पर्वतोंके शिखर टूट२ कर नीचेको खिसकने लगे, हिरन पाण्डवोंकी सेनाके बाईं ओरको जानेलगे ३ चारों ओर अन्धकार फैल गया, सूर्य मलिन होगया, मांसाहारी प्राणी बड़े हर्षमें भरगये तथा रणमेंको आने लगे, महान् नारायणास्त्रको देखकर देवता, दानव और गन्धर्व भयभीत होगये और

म्पते । तद् दृष्ट्वा घोररूपन्तु द्रौणेरस्त्रं भयावहम् ॥६॥ धृतराष्ट्र उवाच । निवर्त्तितेषु सैन्येषु द्रोणपुत्रेण संयुगे । भृशं शोकाभितप्तेन पितुर्वधममृष्यता ॥ ७ ॥ कुरूनापततो दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य रक्षणे । को मन्त्रः पाण्डवेष्वासीत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ८ ॥ सञ्जय उवाच । प्रागेव विद्रुतान् दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान् युधिष्ठिरः । पुनश्च तुमुलं शब्दं श्रुत्वाऽर्जुनमथाब्रवीत् ॥ ९ ॥ युधिष्ठिर उवाच । आचार्य्ये निहते द्रोणे धृष्टद्युम्नेन संयुगे । निहते वज्रहस्तेन यथा वृत्रे महासुरे ॥ १० ॥ नाशंसन्तो जयं युद्धे दीनात्मानो धनञ्जय । आत्मत्राणे मतिं कृत्वा प्राद्रवन् कुरवो रणात् ॥ ११ ॥ केचिद् भ्रान्तै रथैस्तूर्णं निहतैः पार्ष्णियन्तृभिः । विपताकध्वजच्छत्रैः पार्थिवाः शीर्णकूबरैः ॥१२॥

व्याकुल होकर कहने लगे, अब कैसी करें ? ॥ ४॥५ ॥ हे राजन् ! और सब राजे भी अश्वत्थामाके भयानक अस्त्रोंको देख कर भय तथा त्रास पागये ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्रने बूझा, कि-हे सञ्जय ! अश्वत्थामा अपने पिताके वधको नही सहसका और शोकसे बहुत ही सन्ताप पाकर उसने अपनी सेनाओंको पीछेको लौटाया और कौरवोंने पांडवोंके ऊपर चढ़ायी करदी उस समय पाण्डवोंने धृष्टद्युम्नकी रक्षाके लिये क्या विचार किया था, यह मुझे सुना७॥८ सञ्जयने उत्तर दिया, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! राजा युधिष्ठिरने तुम्हारे पुत्रोंको पहलेसे ही भागते हुए देखा था, तो भी जब उन्होने कौरवी सेनाका घोर शब्द सुना, तब राजा युधिष्ठिरने अर्जुनसे यह बात बूझी कि-॥९॥ हे अर्जुन ! जैसे इन्द्रने हाथमें वज्र लेकर वृत्रासुरको मारडाला था, तैसे ही धृष्टद्युम्नने भी हाथमें तलवार लेकर रणमें द्रोणको मारडाला, इससे कौरव उदास हो गये थे और रणमें विजयकी आशा छोड़कर अपनी रक्षा करनेका विचार करतेर भागगये थे१०-११उस समय सब रथोंकी ध्वजायें, छत्र, पताकायें ढाँच आदि टूटगये थे, पृष्ठरक्षक और सारथी मर

भग्ननीडैराकुलाश्वैः प्रारुह्यान्यान् विचेतसः । भीताः पादैर्हयान् केचित् त्वरयन्तः स्वयं रथान् ॥ १३ ॥ भग्नाक्षयुगचक्रैश्च व्याकृष्यंत समंततः । रथान्विशीर्णानुत्सृज्य पद्भिः केचिच्च विद्रुताः १४ हयपृष्ठगताश्चान्ये कृष्यन्तेऽर्द्धच्युतासनाः । गजस्कन्धैश्च संस्यूता नाराचैश्चलितासनाः ॥१५॥ शरार्त्तैर्विद्रुतैर्नागैर्हृताः केचिद्दिशो दश । विशस्त्रकवचाश्चान्ये वाहनेभ्यः क्षितिङ्गताः ॥१६॥ संछिन्ना नेमिभिश्चैव मृदिताश्च हयद्विपैः । क्रोशन्तस्तात पुत्रेति पलायन्ते परे भयात् ॥ १७ ॥ नाभिजानन्ति चान्योऽन्यं कश्मलाभिहतौजसः । पुत्रान् पितॄन् सखीन् भ्रातॄन् समारोप्य दृढक्षतान् ॥१८॥ जलेन क्लेदयन्त्यन्ये विमुच्य कवचान्यपि । अवस्थां तादृशीं प्राप्य हते

गए थे,उनके भीतरी भाग, धुरी, पहिये और जुए भी टूटगए थे कितने ही राजे उस समय वेगके साथ इधर उधरको दौड़ते हुए रथों पर चढ़कर भागगए थे और कोई२ रथी टूटेहुए रथोंको छोड़ कर पैरोंके प्रहारसे घोडोंको हाँकते हुए रणमेंसे भाग गये थे और कितनोंहीके घोडोंके ऊपरसे आधी काठी खिसकगयी थीं तो भी वे उस दशामें ही घोड़ों पर बैठेहुए रणमेंसे भागे चले जारहे थे, कितने ही वीर पुरुष अपने पक्षके बाणोंके प्रहारसे आसनों परसे गिरपड़े थेऔर हाथियोंके कन्धोंसे चिपटे हुए थे और तेज बाणोंके प्रहारोंसे पीडा पाकर भागते हुए हाथी उनको दशों दिशाओंमेंको खेंचकर लेगये थे और इस समय शस्त्रोंसे तथा कवचोंसे हीन हुए अनेकों वीर पुरुष वाहनों परसे पृथ्वी पर गिरगये थे और रथोंके पहियोंसे कट गए थे और हाथियोंके तथा घोडोंके पैरोंसे कुचलगये थे, कितने ही दुःखके कारण सामर्थ्यहीन होगये थे और एक दूसरेको न पहचाननेके कारण ओ बाप ! अरे बेटे ! इस प्रकार चिल्लाते हुए भयभीत होकर रणमेंसे भागरहे थे और कितने ही योधा अत्यन्त घायल हुए

द्रोणे द्रुतं वलम् ॥ १९ ॥ पुनरावर्त्तितं केन यदि जानासि शंस मे । हयानां ह्रेषतां शब्दः कुञ्जराणां च वृंहताम् ॥ २० ॥ रथनेमिस्वनैश्चात्र विमिश्रः श्रूयते महान् । एते शब्दा भृशं तीव्राः प्रवृत्ताः कुरुसागरे ॥ २१ ॥ मुहुर्मुहुरुदीर्यन्ते कम्पयन्त्यपि मामकान् । य एष तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥ २२ ॥ सेन्द्रानप्येष लोकांस्त्रीन् ग्रसेदिति मतिर्मम । मन्ये वज्रधरस्यैष निनादो भैरवस्वनः ॥२३॥ द्रोणे हते कौरवार्थं व्यक्तमभ्येति वासवः । प्रहृष्टरोमकूपाश्च संविग्ना रथपुङ्गवाः ॥ २४ ॥ धनञ्जय गुरुं श्रुत्वा तत्र नादं विभीषणम् । क एष कौरवान् दीर्णानवस्थाप्य महारथः २५

पिता, पुत्र भाई, और मित्र आदिको रणमेंसे दूसरे स्थान पर लेजाकर उनके शरीरों परसे कवच उतार उनके ऊपर जल छिड़क रहे थे, हे अर्जुन ! द्रोणके मारे जाने पर ऐसी दशामें पड़कर कौरवोंकी सेना रणमेंसे भागगयी थी ॥ १२–१९ ॥ यह सेना अब पीछेको कैसे लौट रही है ? इस बातको यदि तू जानता हो तो मुझे बता, घोड़े हिनहिना रहे हैं, हाथी चिंघाड रहे हैं, रथके पहियोंकी घरघराहट होरही है, इन सबोंका मिलाहुआ यह महाशब्द सुनायी आरहा है, कौरवोंके सेनासागरमें वड़े ही तीव्र शब्द होरहे हैं ॥२०–२१॥ ये शब्द वारम्वार होरहे हैं और मेरे योधाओंको कम्पायमान किये देते हैं, यह ऐसा तुमुल शब्द सुनायी आरहा है, कि-सुनकर रोमाञ्च खड़ेहुए जाते हैं, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि–यह शब्द इन्द्रसहित तीनों लोकोंको निगल जायगा, मेरी समझमें तो यह भयानक शब्द इन्द्रका ही सुनायी आरहा है ॥ २२–२३ ॥ मैं समझता हूँ, कि-द्रोणाचार्यके मारे जानेसे कौरवोंका पक्ष लेकर राजा इन्द्र प्रकटरूपसे चढ़कर आरहा है, हे अर्जुन ! महाभयानक और वडीभारी गर्जनाको सुनकर हमारे महारथियोंके रोमाञ्च खड़े होगये हैं और वे घवडागये हैं,

निवर्त्तयति युद्धार्थं मृधे देवेश्वरो यथा । अर्जुन उवाच । उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे वीर्य्यमास्थिताः ॥२६॥ धमन्ति कौरवाः शंखान् यस्य वीर्य्यमुपाश्रिताः । यत्र ते संशयो राजन् न्यस्तशस्त्रे गुरौ हते ॥ २७ ॥ धार्त्तराष्ट्रानवस्थाप्य क एष नदतीति हि । ह्रीमन्तं तं महावाहुं मत्तद्विरदगामिनम् ॥ २८ ॥ व्याघ्रास्यमुग्रकर्माणं कुरूणामभयङ्करम् । यस्मिन् जाते ददौ द्रोणो गवां दशशतं धनम् २९ ब्राह्मणेभ्यो महार्हेभ्यः सोऽश्वत्थामैष गर्जति । जातमात्रेण वीरेण येनोच्चैःश्रवसा इव ॥३०॥ हेषता कम्पिता भूमिर्लोकाश्च सकलास्त्रयः । तच्छ्रुत्वान्तर्हितं भूतं नाम तस्याकरोत्तदा ॥ ३१ ॥ अश्वत्थामेति सोऽद्यैष शूरो नदति पाण्डव । यो ह्यनाथ इवाक्रम्य पार्षतेन

यह इन्द्रकी समान कौनसा महारथी भागतेहुए कौरवोंको खड़ा रखकर युद्ध करनेके लिये पीछेको लौटा रहा है? अर्जुनने कहा, कि–हे महाराज ! जिन्होंने शस्त्र त्याग दिये थे ऐसे गुरु द्रोणाचार्यके रणमें मारेजाने पर भागतेहुए कौरवपक्षके योधाओंको खड़ा रखकर कौन सिंहनाद कररहा है, ऐसा आपको जो सन्देह हुआ है वह ठीक है, कौरव जिसके पराक्रमका अवलम्ब लेकर महाउग्र कर्म करनेको तयार हो बड़े जोरसे शङ्ख बजारहे हैं, उस मदमत्त हाथीकी समान चाल चलनेवाले, लज्जाशील, उग्रकर्म करनेवाले, व्याघ्रकेसे मुखवाले, महाबाहु और कौरवोंको अभय देनेवाले पुरुषकी बात मैं तुम्हें सुनाता हूँ, जिसके जन्मके समय उसके पिताने एक हजार गौएँ बड़ी योग्यतावाले पूजनीय ब्राह्मणोंको दानमें दी थीं वह महात्मा अश्वत्थामा गरज रहा है, जिस वीरने जन्मके समय उच्चैःश्रवा घोड़ेकी समान हिनहिनाहट करके पृथ्वीको तथा तीनों लोकोंको कम्पायमान करदिया था, उसको सुनकर किसी अदृश्य रहनेवाले प्राणीने उसका नाम अश्वत्थामा रक्खा था, हे युधिष्ठिर ! वह वीर अश्वत्थामा ही गरज रहा है, धृष्टद्युम्नने

हतस्तदा ॥ ३२ ॥ कर्मणा सुनृशंसेन तस्य नाथो व्यवस्थितः। गुरुं मे यत्र पाञ्चाल्यः केशपक्षे परामृशत्॥ ३३॥ तन्न जातु क्षमेद्द्रौणिर्जानन् पौरुषमात्मनः। उपचीर्णो गुरुर्मिथ्या भवता राज्यकारणात् ॥ ३४ ॥ धर्मज्ञेन सता नाम सोऽधर्मः सुमहान् कृतः। चिरं स्थास्यति चाकीर्त्तिस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३५ ॥ रामे वालिवधाद्यद्वदेवं द्रोणे निपातिते। सर्वधर्मोपपन्नोऽयं मम शिष्यश्च पांडवः ३६ नायं वक्ष्यति मिथ्येति प्रत्ययं कृतवांस्त्वयि। स सत्यकंचुकं नाम प्रविष्टेन ततोऽनृतम् ॥ ३७ ॥ आचार्य उक्तो भवता हतः कुञ्जर इत्युत। ततः शस्त्रं समुत्सृज्य निर्ममो गतचेतनः ॥ ३८ ॥ आसीत् सुविह्वलो राजन् यथा दृष्टस्त्वया विभुः। स तु शोकसमाविष्टो

द्रोणाचार्यको अनाथकी समान केश पकडकर बडी ही क्रूरताभरी रीतिसे मारडाला है, इसलिये अब अश्वत्थामा पिताके वैरका बदला लेनेके लिये, नाथ (हिमायती) की समान आकर खडाहुआ है, धृष्टद्युम्नने मेरे गुरुकी चोटी पकडकर उनको पटकदिया था, उस अपराधको, अपने पराक्रमको जाननेवाला अश्वत्थामा कभी नहीं सहसकेगा, तुम धर्मको जानते हो, तो भी तुमने राज्यके लोभवश गुरुसे मिथ्या बात कही, यह तुमने धर्मको जाननेवाले बनकर बडाभारी अधर्म किया है, इसलिये जैसे वालिके वधसे रामकी सचराचर लोकमें अपकीर्त्ति हुई है, ऐसे ही द्रोणको मरवादेनेके कारण तुम्हारी भी सचराचर त्रिलोकीमें चिरकाल तक अपकीर्त्ति ही रहेगी, यह पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर सब धर्मोंको जाननेवाला है और मेरा शिष्य है तथा मिथ्या नहीं बोलता है, यह विचार कर द्रोणाचार्यने तुम्हारा विश्वास किया था, परन्तु तुमने सत्यके कञ्चुक (चोगे) में अर्थात् सत्यके आभासयुक्त असत्यमें प्रवेश करके आचार्यसे कहदिया, कि-'नरो वा कुञ्जरो वा' इस पर समर्थ द्रोणाचार्य ममता और चेतनारहित होगये,

विमुखः पुत्रवत्सलः ॥ ३९ ॥ शाश्वतं धर्ममुत्सृज्य गुरुः शस्त्रेण घातितः । न्यस्तशस्त्रमधर्मेण घातयित्वा गुरुं भवान् ॥४०॥ रक्षत्विदानीं सामात्यो यदि शक्तोऽपि पार्षतम् । ग्रस्तमाचार्यपुत्रेण क्रुद्धेन हतबन्धुना ॥४१॥ सर्वे वयं परित्रातुं न शक्ष्यामोऽद्य पार्षतम् । सौहार्दं सर्वभूतेषु यः करोत्यतिमानुषः ॥ सोऽद्य केशग्रहं श्रुत्वा पितुर्धक्ष्यति नो रणे ॥ ४२ ॥ विक्रोशमाने हि मयि भृशमाचार्यगृद्धिनि । अपाकीर्य स्वयं धर्मं शिष्येण निहतो गुरुः ४३ यदागतं वयो भूयः शिष्टमल्पतरञ्च नः । तस्येदानीं विकारोऽयमधर्मोऽयं कृतो महान् ॥ ४४ ॥ पितेव नित्यं सौहार्दात् पितेव हि च धर्मतः । सोऽल्पकालस्य राज्यस्य कारणाद्घातितो गुरुः ॥४५॥

उन्होंने रथमेंसे शस्त्र डालदिये और पुत्रके ऊपर प्रेम रखनेवाले द्रोण पुत्रके शोकसे अचेत और विह्वल होगये, उस समय उनको मैंने देखा था, इसप्रकार तुमने सनातनधर्मको त्यागकर शस्त्रोंका त्याग करनेवाले गुरुको अधर्मसे मरवाडाला है,इसलिये अब यदि तुम मंत्रियोंसहित धृष्टद्युम्नकी रक्षा करनेकी शक्ति रखते हो तो उसकी रक्षा करो, क्योंकि–पिताके मरणसे कोपमें भरेहुए अश्वत्थामाने उसके ऊपर चढाई करके उसको घेरलिया है ॥२४-४१॥ हम सब तो आज धृष्टद्युम्नकी रक्षा कर नहीं सकेंगे,जो अश्वत्थामा सब प्राणियोंके ऊपर प्रेम करनेवाला है और दिव्य पुरुष है वह आज पिताकी चोटी खेंचनेकी बात सुनकर रणमें हम सबोंको जलाकर भस्म करडालेगा ॥४२॥आचार्यके ऊपर प्रेम रखनेवाला मैं बार२ निषेध करता रहा, तो भी शिष्यने अपने धर्मको त्याग कर गुरुको मारडाला ॥ ४३ ॥ इस सबका कारण यह है कि–हमारी बहुतसी आयु बीतगई, थोडीसी शेष रही है, उसके कारण से अब हमारी बुद्धि ठिकाने नहीं रही है, उस विकारके कारणसे ही हमने यह महा अधर्म किया है ॥ ४४ ॥ जो गुरु सदा हमारे

धृतराष्ट्रेण भीष्माय द्रोणाय च विशाम्पते । विसृष्टा पृथिवी सर्वा सह पुत्रैश्च तत्परैः ॥ ४६ ॥ सम्भाव्य तादृशीं वृत्तिं सत्कृतः सततं परैः । अवृणीत सदा पुत्रान्ममेवाभ्यधिकं गुरुः ॥ ४७ ॥ अवेक्षमाणस्त्वां मां च न्यस्तास्त्रश्चाहवे हतः । न त्वेनं युध्यमानं वै हन्यादपि शतक्रतुः ॥ ४८ ॥ तस्याचार्यस्य वृद्धस्य द्रोहो नित्योपकारिणः । कृतो ह्यनार्यैरस्माभी राज्यार्थे लघुबुद्धिभिः ॥४९॥ अहो बत महत्पापं कृतं कर्म सुदारुणम् । यद्राज्यसुखलोभेन द्रोणोऽयं साधु घातितः ॥ ५० ॥ पितॄन् भ्रातॄन् सुतान् दारान् जीवितञ्चैव वासविः । त्यजेत् सर्वं मम प्रेम्णा जानात्येवं हि मे गुरुः ॥ ५१ ॥ स मया राज्यकामेन हन्यमानो ह्युपेक्षितः । तस्मा-

---

ऊपर पिताकी समान प्रेम रखते थे और धर्मसे अपना पुत्र समझते थे उन गुरुको अपने थोड़ेसे दिनोंके राज्यके लिए मरवादिया । ४५ हे राजन् ! धृतराष्ट्रने भीष्म तथा द्रोणको, उनकी सेवामें लगे रहने वाले पुत्रों सहित सब पृथ्वी अर्पण करदी थी ॥ ४६ ॥ शत्रुओं ने उनको ऐसी उत्तम आजीविका देकर सदा ही उनका बड़ा अच्छा आदर सत्कार किया था, तो भी गुरु द्रोणाचार्य मुझे अपने पुत्रसे अधिक मानते थे ॥ ४७ ॥ वह गुरु रणमें पुत्रके मरणको सुनकर शस्त्रोंको त्याग तुम्हारी तथा मेरी ओरको देखते हुए बैठगए थे, तो भी उनको मारडाला गया, यदि वह युद्ध करते तो इन्द्र भी उनको नहीं मार सकता था ॥ ४८ ॥ हमारा उपकार करनेवाले और वृद्ध अवस्थाके आचार्यका लोभबुद्धिवाले हम अनार्योंने राज्यके लोभवश द्रोह किया है ॥ ४९ ॥ ओः ! हमने बड़ा ही दारुण और पापकर्म किया है । हमने राज्यसुखके लोभ में पड़कर सद्गुणी द्रोण गुरुका नाश किया है ॥ ५० ॥ मेरे गुरु द्रोण यह जानते थे, कि—मेरा शिष्य अर्जुन मेरे ऊपर प्रेम रखता है, इस लिए मेरे कारणसे पुत्र, भाई, पिता, सगे सम्बन्धी और प्राणों

ह्यवाक्शिरा राजन् प्राप्तोऽस्मि नरकं प्रभो ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणं वृद्धमाचार्यं न्यस्तशस्त्रं महामुनिम् । घातयित्वाद्य राज्यार्थे मृतं श्रेयो न जीवितम् ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अर्जुनवाक्ये षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

सञ्जय उवाच । अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा नोचुस्तत्र महारथाः । अप्रियं वा प्रियं वापि महाराज धनञ्जयम् ॥ १ ॥ ततः क्रुद्धो महाबाहुर्भीमसेनोऽभ्यभाषत । कुत्सयन्निव कौन्तेयमर्जुनं भरतर्षभः ॥ २ ॥ मुनिर्यथारण्यगतो भाषते धर्मसंहितम् । न्यस्तदण्डो यथा पार्थ ब्राह्मणः संशितव्रतः ॥ ३ ॥ क्षत्रत्राता क्षताज्जीवन्

तकको त्यागदेगा ॥ ५१ ॥ परन्तु मैं तो राज्यके लालचमें लिपटकर उन गुरुका नाश होते हुए देखता रहा इस लिए हे राजन् ! अब मैं औंधे मुख होकर नरकमें पडूँगा ॥५२॥ ओ ! मेरे गुरु ब्राह्मण और वयोवृद्ध तिसपर भी आचार्य, उसपर भी शस्त्रोंको त्याग देनेवाले ऐसे महामुनि गुरु द्रोणाचार्यको राज्यके लिए मरवाकर अब मेरा जीवित रहने की अपेक्षा मरजाना अच्छा है ॥ ५३ ॥ एकसौ छियानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९६ ॥

सञ्जय कहता है कि–हे महाराज ! अर्जुनकी इस बातको सुनकर तहाँ खड़े हुए महारथियोंने अर्जुनसे भला या बुरा कुछ भी नहीं कहा ॥ १ ॥ परन्तु हे भरतसत्तम ! महाबाहु भीमसेन अर्जुनकी इस बातको सुनकर क्रोधमें भरगया और अर्जुनकी निन्दा करताहुआ कहनेलगा कि–॥२॥ हे कुन्तीनन्दन ! जङ्गलमें रहनेवाला मुनि जैसे धर्मका उपदेश करता है अथवा दण्डको त्यागनेवाला उत्तम व्रतधारी ब्राह्मण जैसे धर्मका उपदेश करता है तैसे ही तू भी धर्मका उपदेश करनेलगा है, (यह क्या लीला है ?) ॥३॥ जो क्षत्रिय भयमेंसे अपनी और दूसरेकी रक्षा करता

क्षन्ता स्त्रीष्वथ साधुषु । क्षत्रियः क्षितिमाप्नोति क्षिप्रं धर्मं यशः श्रियः ॥ ४ ॥ स भवान् क्षत्रियगुणैर्युक्तः सर्वैः कुलोद्वहः । अविपश्चिद्यथा वाक्यं व्याहरन्नाद्य शोभसे ॥ ५ ॥ पराक्रमस्ते कौन्तेय शक्रस्येव शचीपतेः । न चातिवर्त्तसे धर्मं वेलामिव महोदधिः ६ न पूजयेत्त्वां को न्वद्य यत्त्रयोदशवार्षिकम् । अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा धर्ममेवाभिकाङ्क्षसे ॥७॥ दिष्ट्या तात मनस्तेऽद्य स्वधर्ममनुवर्त्तते । आनृशंस्यञ्च ते दिष्ट्या बुद्धिः सततमच्युत ॥ ८ ॥ यत्तु धर्मप्रवृत्तस्य हृतं राज्यमधर्मतः । द्रौपदी च परामृष्टा सभामानीय शत्रुभिः ॥९॥ वनं प्रव्राजिताश्च स्म वल्कलाजिनवाससः । अनर्हमाणास्तं भावं त्रयोदश समाः परैः ॥ १० ॥ एतान्यमर्षस्थानानि

हैं, स्त्रियोंके और सत्पुरुषोंके ऊपर क्षमा करता है वह क्षत्रिय थोड़े ही समयमें पृथ्वी, धर्म, यश और लक्ष्मीको पाता है ॥४॥ कुलका उदय करनेवाला तू भी क्षत्रियोंके गुणोंसे युक्त है तो भी मूर्खकेसी बातें क्यों कररहा है ? इससे इस समय तेरी शोभा नहीं है ॥ ५ ॥ तेरा पराक्रम इन्द्रकी समान है, और जैसे समुद्र किनारेको नहीं लाँघता है तैसे ही तू धर्मका उल्लङ्घन नहीं करता है ॥ ६ ॥ परन्तु तेरह वर्षके क्रोधको पीठपीछे करके तू धर्मको ही चाहता है तो आज कौन तेरी पूजा नहीं करेगा ? ॥७॥ हे अचल स्वभाववाले अर्जुन ! तेरा मन स्वधर्मके अनुसार चलता है और तेरी बुद्धि नित्य दयालु है, यह बडी अच्छी बात है ॥८॥ परन्तु हम धर्मके अनुसार वर्त्ताव करते थे, तब भी वैरियोंने अधर्मसे हमारा राज्य छीनलिया, सभामें द्रौपदीको लाकर उसका अपमान किया ॥९॥ हमने वनवासका कोई अपराध नहीं किया था तो भी वैरियोंने हमें वृक्षोंकी छाल और मृगचर्म उढाकर तेरह वर्षके लिये वनको निकाल दिया, हे निर्दोष अर्जुन ! ये सब बातें सहने योग्य नहीं थीं, तो भी मैंने सहलीं, यह सब वैरियोंने क्या

मर्षितानि मयानघ । क्षत्रधर्मप्रसक्तेन सर्वमेतदनुष्ठितम् ॥ ११ ॥ तमधर्ममपाकृष्टं स्मृत्वाद्य सहितस्त्वया । सानुबन्धान् हनिष्यामि क्षुद्रान् राज्यहरानहम् ॥१२॥ त्वया तु कथितं पूर्वं युद्धायाभ्यागता वयम् । घटामहे यथाशक्ति त्वन्तु नोऽद्य जुगुप्ससे ॥१३॥ धर्ममन्विच्छसि ज्ञातुं मिथ्यावचनमेव ते । भयार्दितानामस्माकं वाचा मर्माणि कृन्तसि ॥ १४ ॥ वपन् व्रणे क्षारमिव क्षतानां शत्रुकर्षण । विदीर्यते मे हृदयं त्वया वाक्शल्यपीडितम् ॥ १५ ॥ अधर्ममेनं विपुलं धार्मिकः सन्न बुध्यसे । यत्त्वमात्मानमस्मांश्च प्रशंस्यान्न प्रशंससि ॥१६॥ वासुदेवे स्थिते चापि द्रोणपुत्रं प्रशंससि । यः कलां षोडशीं पूर्णां धनञ्जय न तेऽर्हति ॥१७॥ स्व-

---

क्षत्रियधर्ममें रहकर किया था, ऐसे वैरियोंके कियेहुए अधर्मको याद करके आज मैं तो तुझे साथमें लियेहुए, अपना राज्य छीन लेनेवाले क्षुद्र वैरियोंको उनके सहायकोंकेसहित मारडालूँगा १०-१२ पहले तूने कहा था, कि–हम युद्धके लिये इकट्ठे हुए हैं और शक्तिके अनुसार युद्धके लिये उद्योग भी करेंगे, वही तू आज हमारी निन्दा कररहा है! ॥ १३ ॥ और धर्मकी बातें करता है! तथा तूने जो पहले कहा था, उसको आज तू ही मिथ्या कररहा है, हे वैरियोंका संहार करनेवाले अर्जुन! हम इस समय भयभीत होगये हैं और घायल होगये हैं, इस दशामें जैसे कोई घावमें लवण लगादेता है तैसे ही तू वाणीसे हमारे मर्मस्थानोंको काटरहा है, तेरी वाणीरूप छुरेसे हमारा हृदय चिराजाता है ॥१४-१५॥ तू धार्मिक होकर भी इस बड़ेभारी अधर्मको नहीं समझता है, क्योंकि–तुझे अपनी और हमारी प्रशंसा करनी चाहिये, परन्तु तू प्रशंसा नहीं कर रहा है ॥१६॥ श्रीकृष्ण खड़े हैं और इनके सामने ही तू द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी प्रशंसा कररहा है, परन्तु अश्वत्थामा तो तेरा सोलहवाँ भाग भी नहीं है ॥१७॥ और हे धनञ्जय! तुझे अपने

यमेवात्मनो दोषान् ब्रुवाणः किन्न लज्जसे । दारयेयं महीं क्रोधाद्विकिरेयञ्च पर्वतान् ॥१८॥ आविध्यैतां गदां गुर्वीं भीमां काञ्चनमालिनीम् । गिरिप्रकाशान् क्षितिजान् भञ्जेयमनिलो यथा ॥१९॥ द्रावयेयं शरैश्चापि सेन्द्रान् देवान् समागतान् । सराक्षसगणान् पार्थ सासुरोरगमानवान् ॥ २० ॥ स त्वमेवंविधं जानन् भ्रातरं मां नरर्षभ । द्रोणपुत्राद्भयं कर्त्तुं नार्हस्यमितविक्रम २१ अथवा तिष्ठ बीभत्सो सह सर्वैः सहोदरैः। अहमेनं गदापाणिर्जेष्याम्येको महारणे ॥ २२ ॥ ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः पार्थमथाब्रवीत् । संक्रुद्धमिव गर्जन्तं हिरण्यकशिपुर्हरिम् २३ धृष्टद्युम्न उवाच । बीभत्सो विप्रकर्माणि विदितानि मनीषिणाम् । याजनाध्यापने दानं

दोष कहते हुए लज्जा क्यों नहीं आती है ? यदि मैं क्रोध करूँ तो पृथिवीको चीर डालूँ, पहाडोंको तोड गिरादूँ ॥१८॥ और भयानक तथा सुवर्णकी मालावाली इस बडीभारी गदाको घुमा कर पवनकी समान पहाडसे मोटे२ वृक्षोंको भी तोडडालूँ ।१९। अथवा इन्द्रके सहित आयेहुए देवताओंको, राक्षसोंके गणोंको, असुरोंको, नागोंको, और मनुष्योंको भी बाणोंकी वर्षा करके भगासकता हूँ ॥२०॥ हे अपारपराक्रमी अर्जुन ! तुझे अपने सहोदर भाईको ऐसा पराक्रमी जानकर अश्वत्थामासे जरा भी नहीं डरना चाहिये२१हे बीभत्सु ! तू और सब भाइयोंके सहित यहाँ ही बैठा रह, अकेला मैं ही हाथमें गदा लेकर महासंग्राममें अश्वत्थामाका पराजय करूँगा ॥ २२ ॥ भीमसेनके ऐसा कहने पर पांचालराजके पुत्र धृष्टद्युम्नने बड़े ही क्रोधमें भरकर गर्जना करतेहुए जैसे विष्णुसे हिरण्यकशिपुने कहा था तैसे अर्जुनसे कहा ॥ २३ ॥ धृष्टद्युम्न बोला' कि–हे अर्जुन ! ऋषि मुनियोंने ब्राह्मणोंके कर्म इस प्रकार कहे हैं—यज्ञ कराना, पढ़ाना, दान करना,यज्ञकरना,दान लेना और छठा वेद पढना, इन छहों कर्मों

तथा यज्ञप्रतिग्रहौ ॥ २४ ॥ षष्ठमध्ययनं नाम तेषां कस्मिन् प्रतिष्ठितः । हतो द्रोणो मया यत्तत् किं मां पार्थ विगर्हसे ॥ २५ ॥ अपक्रान्तः स्वधर्माच्च क्षत्रधर्ममुपाश्रितः । अमानुषेण हस्त्यस्वानस्त्रेण क्षुद्रकर्मकृत् ॥ २६ ॥ यथा मायां प्रयुञ्जानमसह्यं ब्राह्मणब्रुवम् । माययैव निहन्याद्यो न युक्तं तत्र पार्थ किम् ॥ २७ ॥ तस्मिंस्तथा मया शस्ते यदि द्रोणाय न रुषा । कुरुते भैरवं नादं तत्र किं मम हीयते ॥ २८ ॥ न चाद्भुतमिदं मन्ये यद्द्रौणिर्युद्धसंया । घातयिष्यति कौरव्यान् परित्रातुमशक्नुवन् ॥ २९ ॥ यच्च मां धार्मिको भूत्वा ब्रवीषि गुरुघातिनम् । तदर्थमहमुत्पन्नः पाञ्चाल्यस्य सुतोऽनलात् ॥ ३० ॥ यस्य कार्यमकार्यं वा युध्यतः स्यात्

मेंसे द्रोणमें कौनसा कर्म था, कि-जिसके लिये उनको मारडालने पर तू मेरी निन्दा करता है २४-२५ वह अपने धर्ममेंसे भ्रष्ट हो गये थे, उन्होंने क्षत्रियका धर्म स्वीकार करलिया था और वह दिव्य अस्त्रोंसे हमें मार रहे थे तथा क्षुद्र कर्म करनेवाले थे । २६ । मायाका प्रयोग करनेवाले, असह्य और अपनेको ब्राह्मण कहलानेवाले पुरुषको, हे अर्जुन ! यदि कोई माया (कपट) से ही मार डाले तो इसमें अनुचित क्या है ? ॥ २७ ॥ ब्राह्मणधर्मसे रहित हुए द्रोणको मैंने मारडाला इससे अश्वत्थामा क्रोधमें होकर भयानक रूपसे गरज रहा है इसमें मेरी क्या हानि है ? ॥ १८ ॥ यह अश्वत्थामा कुरुवंशके राजाओंकी रक्षा नहीं कर सकेगा, किन्तु युद्धके मिषसे कौरवोंका नाश करडालेगा, इसमें मुझे आश्चर्य नहीं मालूम होता ॥ २९ ॥ और दूसरे (द्रोणके वधरूप) कामको करनेके लिये ही मैं, अग्निमेंसे द्रुपदके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ हूँ, फिर तुम धर्मनिष्ठ होकर मुझसे क्यों कहते हो, कि-तू गुरुका घात करनेवाला है ? ॥ ३० ॥ हे अर्जुन ! जो पुरुष युद्ध करते समय रणमें कार्य अकार्य दोनोंको समान मानता हो, उसको तुम

समं रणे । ब्राह्मणं तं कथं ब्रूयाः क्षत्रियं वा धनञ्जय ॥ ३१ ॥ यो ह्यनस्त्रविदो हन्याद् ब्रह्मास्त्रैः क्रोधमूर्छितः । सर्वोपायैर्न स कथं वध्यः पुरुषसत्तमः ॥ ३२ ॥ विधर्मिणं धर्मविद्भिः प्रोक्तं तेषां विषोपमम् । जानन् धर्मार्थतत्त्वज्ञ किं मामर्जुन गर्हसे ॥ ३३ ॥ नृशंसः स मयाक्रम्य रथ एव निपातितः । तं मामनिन्द्यं बीभत्सो किमर्थं नाभिनन्दसे ॥ ३४ ॥ कालानलसमं पार्थ ज्वलनार्कविषोपमम् । भीमं द्रोणशिरश्छिन्नं न प्रशंससि मे कथम् ॥ ३५ ॥ योऽसौ ममैव नान्यस्य बांधवान् युधि जघ्निवान् । छित्त्वापि तस्य मूर्धानं नैवास्मि विगतज्वरः ॥ ३६ ॥ तच्च मे कृन्तते मर्म यन्न तस्य शिरो मया । निषादविषये क्षिप्तं जयद्रथशिरो यथा ॥ ३७ ॥

ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय कैसे कहते हो ॥ ३१ ॥ जो पुरुष क्रोधमें भरकर ब्रह्मास्त्र मारता हुआ ब्रह्मास्त्रके न जाननेवालेका नाश करता है ऐसे महापुरुषको सकल उपायोंसे क्यों नहीं मारना चाहिये ? ॥ ३२ ॥ हे धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले अर्जुन ! धर्मके ज्ञाता धर्मरहित पुरुषको विषकी समान कहते हैं, यह जानते हुए भी तुम मेरी निन्दा क्यों करते हो ? ॥ ३३ ॥ उस क्रूर योधाको मैंने रथमें ही दबाकर मारडाला है, इसके लिये हे अर्जुन ! तुम्हें मेरी सराहना करनी चाहिये, उसके बदलेमें तुम मेरी निन्दा क्यों करते हो ? ॥ ३४ ॥ मैंने कालाग्निकी समान तथा अग्नि, सूर्य और विषकी समान द्रोणके भयानक मस्तकको काट डाला है तो भी प्रशंसा करने योग्य मेरे कामकी तुम प्रशंसा क्यों नहीं करते ? ॥ ३५ ॥ उन्होंने दूसरेके नहीं, मेरे ही भाइयोंका संहार किया है इसलिये उनका शिर काटलेने पर भी अभीतक मेरा शोकज्वर शान्त नहीं हुआ है ॥ ३६ ॥ तुमने जैसे जयद्रथके शिरको काटकर निषादके देशमें डालदिया था तिस प्रकार मैंने द्रोणके शिरको निषादके देशमेंको नहीं उछाला यह बात मेरे

अथाऽधश्च शत्रूणामधर्मः श्रूयतेऽर्जुन । क्षत्रियस्य हि धर्मोऽयं हन्याद्धन्येत वा पुनः ॥ ३८ ॥ स शत्रुर्निहतः संख्ये मया धर्मेण पाण्डव । यथा त्वया हतः शूरो भगदत्तः पितुः सखा ॥ ३९ ॥ पितामहं रणे हत्वा मन्यसे धर्ममात्मनः । मया शत्रौ हते कस्मात् पापे धर्मं न मन्यसे ॥ ४० ॥ सम्बन्धावनतं पार्थ न मां त्वं वक्तुमर्हसि । स्वगात्रकृतसोपानं निषण्णमिव दन्तिनम् ॥४१॥ क्षमामि ते सर्वमेव वाग्व्यतिक्रममर्जुन । द्रौपद्या द्रौपदेयानां कृते नान्येन हेतुना ॥ ४२ ॥ कुलक्रमागतं वैरं ममाचार्येण विश्रुतम् । तथा जानात्ययं लोको न यूयं पाण्डुनन्दनाः ॥ ४३ ॥ नानृती पांडवो

मर्मस्थानों में खटकती है ॥ ३७ ॥ हे अर्जुन ! मैंने सुना है, कि-शत्रुको न मारना अधर्म है क्योंकि–क्षत्रियोंका तो यही धर्म है, कि-रणमें वैरीको मार डालना अथवा वैरीके हाथसे मर जाना ॥ ३८ ॥ हे पाण्डव ! तुमने जैसे अपने पिताके मित्र वीर भगदत्तको मारडाला था, तैसे ही मैंने भी रणमें धर्मके अनुसार वैरीका नाश किया है ॥३९॥ तुम जो भीष्म पितामहका रणमें नाश करके यह समझ रहे हो, कि–हमने धर्मका काम किया है, तब मैंने जो पापी वैरीको मारडाला, इसको धर्म क्यों नहीं समझते हो ? ॥ ४० ॥ हे अर्जुन ! जैसे हाथी, अपने शरीरको सोपान (पैंडी) रूप बनाकर नम्रतासे बैठजाता है तैसे ही मैं तुम्हारे सामने सम्बन्धके कारण नम्र होकर बैठा हूँ, इसलिये मुझे उलाहना देना तुम्हें उचित नहीं है ॥ ४१ ॥ हे अर्जुन ! द्रौपदी के लिये और द्रौपदीके पुत्रोंके लिये ही मैं तुम्हारे सब कठोर वचनोंको सहन किये चला जारहा हूँ, इसमें और कोई (मेरी निर्बलता या भय) कारण नहीं है ॥ ४२ ॥ द्रोणाचार्यके साथ कुलपरम्परासे मेरा द्रोह चला आता था, यह बात प्रसिद्ध है तथा सब लोग जानते हैं, परन्तु तुम पाण्डव इस बातको नहीं

ज्येष्ठो नाहं चाऽधार्मिकोऽर्जुन । शिष्यद्रोही हतः पापो युध्यस्व विजयस्तव ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नवाक्ये सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । साङ्गा वेदा यथान्यायं येनाधीता महात्मना । यस्मिन् साक्षाद्धनुर्वेदो ह्रीनिषेवे प्रतिष्ठितः ॥ १ ॥ यस्य प्रसादात् कुर्वन्ति कर्माणि पुरुषर्षभाः । अमानुषाणि संग्रामे देवैरसुकराणि च ॥ २ ॥ तस्मिन्नाक्रुशति द्रोणे समक्षं पापकर्मणा । नीचात्मना-नृशंसेन क्षुद्रेण गुरुघातिना ॥ ३ ॥ नामर्षन्तत्र कुर्वन्ति धिक्क्षात्रं धिगमर्षिताम् । पार्थाः सर्वे च राजानः पृथिव्यां ये धनुर्द्धराः ॥ ४ ॥ श्रुत्वा किमाहुः पाञ्चाल्यं तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ।

जानते ! ॥ ४३ ॥ इसलिये हे अर्जुन ! तुम्हारे बड़े भाई युधिष्ठिर मिथ्यावादी नहीं हैं और मैं भी अधर्मी नहीं हूँ, शिष्योंसे द्रोह करनेवाला पापी द्रोण अपने पापके ही कारण रणमें मारागया अब तुम युद्ध करो, तुम्हारी विजय होगी ॥ ४४ ॥ एक सौ सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६७ ॥ छ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! जिस महात्मा पुरुषने अङ्गोंके सहित वेद पढ़े थे, जिस लज्जाशील महात्मामें धनुर्वेद साक्षात् रूपसे रहता था, जिनकी कृपासे महात्मा पुरुष ऐसे अमानुषी कर्म करते हैं, कि-जिनको देवता भी नहीं करसकते, वह द्रोण चिल्लाते रहे और सब क्षत्रियोंके सामने पापी, नीच, क्रूर और क्षुद्रचित्त धृष्टद्युम्नने गुरु द्रोणको मारडाला, तो भी किसी क्षत्रियने उसके ऊपर क्रोध नहीं किया, ऐसे क्षत्रियपनको धिक्कार है और उनके सहिष्णुपने पर धिक्कार है, परन्तु हे सञ्जय ! तू मुझे यह तो बता, कि-कुन्तीके सब पुत्रोंने और पृथिवीके दूसरे धनुषधारी राजाओंने द्रोणके मारे जानेका समाचार सुनकर धृष्टद्युम्नको क्या कहा था ? सञ्जयने

सञ्जय उवाच । श्रुत्वा द्रुपदपुत्रस्य ता वाचः क्रूरकर्मणः ॥ ५ ॥ तूष्णीं बभूवू राजानः सर्व एव विशाम्पते । अर्जुनस्तु कटाक्षेण जिह्मं विप्रेक्ष्य पार्षतम् ॥६॥ सवाष्पमतिनिःश्वस्य धिग्धिगित्येव चाब्रवीत् । युधिष्ठिरश्च भीमश्च यमौ कृष्णस्तथापरे ॥ ७ ॥ आसन् सुव्रीडिता राजन् सात्यकिस्त्वब्रवीदिदम् । नेहास्ति पुरुषः कश्चिद् इमं पापपूरुषम् ॥८॥ भाषमाणमकल्याणं शीघ्रं हन्यान्नराधमम् । एते त्वां पाण्डवाः सर्वे कुत्सयन्ति विवत्सया ॥ ९ ॥ कर्मणा तेन पापेन श्वपाकं ब्राह्मणा इव । एतत् कृत्वा महद् पापं निन्दितः सर्वसाधुभिः ॥ १० ॥ न लज्जसे कथं वक्तुं समितिं प्राप्य शोभनाम् । कथञ्च शतधा जिह्वा न ते मूर्द्धा च दीर्यते ॥ ११ ॥ गुरुमाक्रोशतः क्षुद्र न चाधर्मेण पात्यसे । वाच्यस्त्वमसि पार्थश्च

कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! क्रूर कर्म करने वाले धृष्टद्युम्नकी बात सुनकर राजे चुप्प रहे, उस समय अर्जुन धृष्टद्युम्नकी ओरको तिरछी आँखसे देखने लगा, और आँसू बहाता तथा साँसें लेताहुआ कहनेलगा, कि-धिक्कार है ! धिक्कार है !! दूसरी ओर युधिष्ठिर, भीम नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण तथा दूसरे राजे बहुत ही लज्जित हुए, यह देखकर हे राजन् ! सात्यकीने इस प्रकार कहा, कि-यहाँ ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है, कि-जो इस पापी और अमङ्गल बात कहते हुए नराधमको झट मार डाले ? (अरे द्रुपदके पुत्र !) ये सब पाण्डव तेरे पापके कारणसे जैसे ब्राह्मण चाण्डालकी निन्दा करता है, तैसे ही तेरे स्वरूपको जाननेकी इच्छासे तेरी निन्दा करते हैं, ऐसा महापाप करके तू सब महात्मा पुरुषोंमें निन्दाका पात्र हुआ है ॥ १-१० ॥ श्रेष्ठ पुरुषोंकी सभामें बैठकर तुझे ऐसा कहते हुए लज्जा क्यों नहीं आती !? अरे ! तेरी जीभके सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं होजाते ? और तेरी खोपडी क्यों नहीं फटजाती ? ॥ ११ ॥ अरे

सर्वैश्चान्धकवृष्णिभिः ॥ १२ ॥ यत् कर्म कलुषं कृत्वा श्लाघसे जनसंसदि । अकार्यं तादृशं कृत्वा पुनरेव गुरुं क्षिपन् ॥ १३ ॥ वध्यस्त्वं न त्वयार्थोऽस्ति मुहूर्तमपि जीवता । कस्त्वेतद्व व्यवसेदार्यस्त्वदन्यः पुरुषाधम ॥ १४ ॥ निगृह्य केशेषु वधं गुरोर्धर्मात्मनः सतः । सप्तावरे तथा पूर्वे बान्धवास्ते निमज्जिताः ॥१५॥ यशसा च परित्यक्तास्त्वां प्राप्य कुलपांसनम् । उक्तवांश्चापि यत् पार्थं भीष्मं प्रति नरर्षभ ॥ १६ ॥ तथान्तो विहितस्तेन स्वयमेव महात्मना । तस्यापि तव सोदर्यो निहन्ता पापकृत्तमः ॥ १७ ॥ नान्यः पाञ्चालपुत्रेभ्यो विद्यते भुवि पापकृत् । स चापि सृष्टः

क्षुद्र ! तू गुरुकी निन्दा करता है, इसलिये अधर्मसे तेरा अधःपात क्यों नहीं होता है? पाण्डव तथा अन्धक और वृष्णिवंशके सब राजाओंको तेरी निन्दा करनी ही चाहिये ॥ १२ ॥ क्यों कि-तू पापकर्म कर मनुष्योंकी सभामें आप ही अपनी प्रशंसा करताहै तथा ऐसा खोटा काम करके उलटी गुरुकी निन्दा करता है ॥ १३ ॥ इसलिये तेरे दो घडीको भी जीवित रहनेसे कोई लाभ नहीं है, तुझे मार ही डालना चाहिये, अरे अधम पुरुष ! तेरे सिवाय और कौनसा आर्य पुरुष ऐसा नीच काम करेगा ?॥१४॥तूने तो धर्मात्मा श्रेष्ठ गुरुकी चोटी पकडकर उनको मार डाला है, इससे तूने अपने सात बीते हुए पूर्वजोंको और सात आगेको होने वाले वंशधरोंको नरकमें डुबो दिया है ॥ १५ ॥ और तुझसरीखे कुलको कलङ्क लगानेवालेके संबन्धसे उनका यश नष्ट होगया है, अरे उत्तम पुरुष ! तूने भीष्मके विषयमें जो अर्जुनको ताना मारा है, सो भीष्मने तो स्वयं ही इस प्रकार अपनी मृत्यु बनाली थी और सत्य कहा जाय तो उनको भी तेरे महापापी सहोदर भाई (शिखण्डी) ने ही मारा है । इस पृथिवी पर पांचालके पुत्रोंके सिवाय दूसरा कोई भी पुरुष पाप करनेवाला नहीं है (अर्थात्

पित्रा ते भीष्मस्यान्तकरः किल ॥ १८ ॥ शिखण्डी रक्षितस्तेन स च मृत्युर्महात्मनः । पञ्चालाश्चलिताः धर्मात् क्षुद्रा मित्रगुरुद्रुहः ॥१९॥ त्वां प्राप्य सहसोदर्यं धिक्कृतं सर्वसाधुभिः । पुनश्चेदीदृशीं वाचं मत्समीपे वदिष्यसि॥२०॥ शिरस्ते पोथयिष्यामि गदया वज्रकल्पया । त्वाञ्च ब्रह्महणं दृष्ट्वा जनः सूर्यमवेक्षते २१ ब्रह्महत्या हि ते पापं प्रायश्चित्तार्थमात्मनः । पाञ्चालक सुदुर्वृत्त ममैव गुरुमग्रतः ॥२२॥ गुरोर्गुरुं च भूयोऽपि क्षिपन्नैवेह लज्जसे । तिष्ठ तिष्ठ सहस्वैकं गदापातमिमं मम ॥ २३ ॥ तव चापि सहिष्येहं गदापातानेकशः । सात्वतेनैवमाक्षिप्तः पार्षतः परुषाक्षरम् २४ संरब्धं सात्यकिं प्राह संक्रुद्धः प्रहसन्निव । धृष्टद्युम्न उवाच ।

पाप करनेका ठेका पांचालके पुत्रोंने ही ले रक्खा है)तेरे पिताने ही उसको भी भीष्मका नाश करनेके लिये उत्पन्न किया था॥१६-१८॥ तेरे पिताने शिखण्डीको पालकर बड़ा किया, और वही महात्मा भीष्मका काल था, सब महात्मा पुरुषोंके धिक्कार दिये हुए तुझे और तेरे भाईको पुत्ररूपसे उत्पन्न करके क्षुद्रबुद्धि तथा मित्र और गुरुओंसे द्रोह करनेवाले पांचालराज धर्मसे भ्रष्ट होगये हैं, तूने आज कहा सो कहा, परन्तु अब आगेको यदि तू मेरे सामने ऐसी बात कहेगा तो मैं वज्रकी समान गदा मारकर तेरी खोपड़ीके टुकड़े२कर डालूँगा, तूने ब्रह्महत्यारूप महापाप किया है इसलिये लोग तुझसरीखे हत्यारेको देखकर प्रायश्चित्तके लिये सूर्यनारायणका दर्शन करते हैं, अरे दुराचारी पांचालपुत्र ! मेरे गुरुके ही सामने, मेरे गुरुके गुरुकी वारम्वार निन्दा करतेहुए तुझे लज्जा नहीं आती ? अरे खड़ा रह, खड़ा रह मेरी गदाकी एक चोटको सहता जा ॥ १९-२३ ॥ और मैं भी तेरी गदाकी बहुतसी चोटोंको सहूँगा, इस प्रकार सात्यकीने तीखे वचनोंसे धृष्टद्युम्नका तिरस्कार किया तब तो धृष्टद्युम्न क्रोधमें भरगया और उसने क्रोध

श्रूयते श्रूयते चेति लक्ष्यते चेति माधव ॥ २५ ॥ सदानार्यो शुभः साधुं पुरुषं क्षेप्तुमिच्छति । क्षमा प्रशस्यते लोके न तु पापोऽर्हति क्षमाम् ॥ २६ ॥ क्षमावन्तं हि पापात्मा जितोऽयमिति मन्यते । स त्वं क्षुद्रसमाचारो नीचात्मा पापनिश्चयः ॥ २७ ॥ आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्यो वक्तुमिच्छसि । यत् स भूरिश्रवाश्छिन्नभुजः प्रायगतस्त्वया ॥२८॥ वार्यमाणेन निहतस्ततः पापतरं तु किम् । गाहमानो मया द्रोणो दिव्येनास्त्रेण संयुगे ॥ २९ ॥ विसृष्टशस्त्रो निहतः किन्तत्र क्रूर दुष्कृतम् । अयुध्यमानं यस्त्वाजौ तथा प्रायगतं मुनिम् ॥ ३० ॥ छिन्नबाहुं परैर्हन्यात् सात्यके स

भरेहुए सात्यकीसे हँसतेहुएकीसी सूरत बनाकर कहा, धृष्टद्युम्न बोला, कि तूने जो कुछ कहा, यह सब शब्द मैंने सुन लिये ! और हे मधुवंशी ! इस सबकी मैं तुझे क्षमा करता हूँ;क्यों कि-जो पुरुष अनार्य और पापी होता है, वह सदा सत्पुरुषोंका तिरस्कार करना चाहा करता है, जगत्में क्षमाकी प्रशंसा होती है, परन्तु पापी पुरुष क्षमा करनेके योग्य नहीं होता है। २४-२६। क्योंकि-पापी पुरुष क्षमा करनेवालेको समझता है, कि मैंने इसको जीतलिया है.(इसलिये ही मैं तुझे उत्तर देता हूँ कि-) तू क्षुद्र आचरण वाला नीचचित्त और नखसे शिखा तक पापकर्मका निश्चय रखनेवाला है,धिक्कारका पात्र है । फिर भी तू दूसरेसे अनुचित शब्द कैसे कहता है ? भूरिश्रवाका हाथ कटगया था, वह युद्धको छोड़कर अन्नजलको त्याग मरनेका निश्चय करके बैठ गया था, उसको तूने, दूसरोंके निषेध करने पर भी मारडाला, इससे अधिक पापकर्म और कौनसा होगा ? द्रोणाचार्य युद्धमें दिव्य अस्त्रोंसे हमारी सेनाका संहार कररहे थे और कदाचित् उन्होंने हथियार डालदिये थे उससमय उनको मैंने मारडाला, तो इसमें अरे क्रूर ! मैंने पाप क्या किया ? जो मनुष्य रणमें,

कथं वदेत् । निहत्य त्वां यदा भूमौ स विकर्षति वीर्यवान् ३१ किं तदा न निहंस्येनं भूत्वा पुरुषसत्तमः । त्वया पुनरनार्येण पूर्वं पार्थेन निर्जितः ॥ ३२ ॥ यदा तदा हतः शूरः सौमदत्तिः प्रतापवान् । यत्र यत्र च पाण्डूनां द्रोणो द्रावयते चमूम् ॥ ३३ ॥ किरञ्छरसहस्राणि तत्र तत्र व्रजाम्यहम् । स त्वमेवं विधं कृत्वा कर्म चाण्डालवत् स्वयम् ॥ ३४ ॥ वक्तुमर्हसि वक्तव्यः कस्मात्त्वं परुषाण्यथ । कर्त्ता त्वं कर्मणो ह्यस्य नाहं वृष्णिकुलाधमः ॥ ३५ ॥ पापानाञ्च त्वमावासः कर्मणां मा पुनर्वद । जोषमास्व न मां भूयो वक्तुमर्हस्यतः परम् ॥ ३६ ॥ अधरोत्तरमेतद्धि न मां त्वं वक्तु-

---

दूसरोंने जिसका हाथ काटडाला हो ऐसे अनशन व्रतधारी मुनिको मारडालता है ऐसा मनुष्य,हे सात्यकी ! दूसरेको उलाहना कैसे देसकता है ? यदि तू महापुरुष था तो जिस समय पराक्रमी भूरिश्रवाने लात मार कर तुझे पृथिवी पर पटक कर घसीटा था, उस समय तूने उसको क्यों नहीं मारा? परन्तु जब अर्जुनने प्रतापी और वीर भूरिश्रवाको पहले जीतलिया, तब पीछेसे तूने उसको मारकर अपना अनार्यपना (नीचपन) ही दिखाया है, परन्तु मैं तो, जहाँ २ द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाको भगाते थे, तहाँ२जाकर हजारों बाणोंकी वर्षा करता था, तूने तो स्वयं,मेरा बताया हुआ चांडालकेसा काम किया है, इसलिये तूही निंदाका पात्र है, तो भी मुझे तीखे वचन क्यों कह रहा है ? अरे वृष्णिकुलाधम सात्यकी! तू ही ऐसे खोटे काम किया करता है, मैं तो कभी नहीं करता हूँ ॥ २७-३५ ॥ तू तो पापकर्मोंका घर है, इसलिये चुपका बैठा रह, अब आगेको तू मुझसे कुछ न कहना, तूने मुझे भली बुरी चाहे सो बातें कही हैं, परन्तु अब आगेको मूर्खतावश मुझसे ऐसी तीक्ष्ण बातें कहेगा तो मैं बाण मारकर तुझे यमलोकमें भेज दूँगा, अरे ओ मूर्ख ! ध्यान रख कि-केवल धर्मसे ही वैरीको

मर्हसि । अथ वक्ष्यसि मां मौर्ख्याद्‌ भूयः परुषमीदृशम्‌ ॥ ३७ ॥ गमयिष्यामि बाणैस्त्वां युद्धे वैवस्वतक्षयम्‌ । न चैवं मूर्खधर्मेण केवलेनैव शक्यते ॥ ३८ ॥ तेषामपि ह्यधर्मेण चेष्टितं शृणु यादृशम्‌ । वञ्चितः पाण्डवः पूर्वमधर्मेण युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥ द्रौपदी च परिक्लिष्टा तथाधर्मेण सात्यके । प्रव्राजिता वनं सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ॥ ४० ॥ सर्वस्वमपकृष्टञ्च तथाधर्मेण बालिश । अधर्मेणापकृष्टश्च मद्रराजः परैरितः ॥ ४१ ॥ अधर्मेण तथा बालः सौभद्रो विनिपातितः । इतोऽप्यधर्मेण हतो भीष्मः परपुरञ्जयः ४२ भूरिश्रवा ह्यधर्मेण त्वया धर्मविदा हतः । एवं परैराचरितं पांडवेयैश्च संयुगे ॥ ४३ ॥ रक्षमाणैर्जयं वीरैर्धर्मज्ञैरपि सात्वत । दुर्ज्ञेयः स परो धर्मस्तथाऽधर्मश्च दुर्विदः ॥ ४४ ॥ युध्यस्व कौरवैः सार्द्धं

नहीं जीता जा सकता, कौरवोंने भी ऐसा ही अधर्माचरण किया है, उसको तू सुन, पहले उन्होंने अधर्मसे पांडुपुत्र युधिष्ठिरको जुएमें जीतलिया था॥३६-३७॥ और हे सात्यकी ! मेरी बहिन द्रौपदीको भी अधर्मसे ही दुःखी किया था, सब पांडवोंको द्रौपदीके सहित वनवासमें भेजदिया था तथा हमारी सहायताके लिये आतेहुए मद्रराजको भी इन्होंने अधर्मसे ही अपने पक्षमें लेलिया था ॥४०-४१॥ उन्होंने अधर्मसे ही सुभद्राके बालक पुत्र अभिमन्युको मारडाला और इससे भी अधिक अधर्म हमारी ओरसे वैरियोंके नगरोंको जीतनेवाले भीष्मजीको मारडालनेमें हुआ ॥४२॥ तथा तू अपनेको धर्मज्ञ समझता है तो भी तूने अधर्मसे भूरिश्रवाको मारडाला इसप्रकार वैरीपक्षवाले तथा पाण्डव धर्मको जानते थे तो भी उन्होंने विजय पानेके लिये अधर्मका काम किया है, हे सात्वतवंशी सात्यकी ! जैसे परमधर्मको जानना कठिन है तैसे ही अधर्मको जानना भी बडा कठिन है ॥ ४३–४४ ॥ इसलिये तू कौरवोंके साथ युद्ध कर, यमपुरीमें जानेका काम न कर, सञ्जयने कहा, कि-

मा गाः पितृनिवेशनम् । सञ्जय उवाच । एवमादीनि वाक्यानि क्रूराणि परुषाणि च ॥ ४५ ॥ श्रावितः सात्यकिः श्रीमानाकम्पित इवाभवत् । तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षः सात्यकिस्त्वाददे गदाम् ४६ विनिःश्वस्य यथा सर्पः प्रणिधाय रथे धनुः । ततोभिपत्य पाञ्चाल्यं संरम्भेणेदमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ न त्वां वक्ष्यामि परुषं हनिष्ये त्वां वधक्षमम् । तमापतन्तं सहसा महाबलममर्षणम् ॥ ४८ ॥ पाञ्चाल्यायाभिसंक्रुद्धमन्तकायान्तकोपमम् । चोदितो वासुदेवेन भीमसेनो महाबलः ॥ ४९ ॥ अवसुत्य रथात्तूर्णं बाहुभ्यां समवारयत् । द्रवमाणं तथा क्रुद्धं सात्यकिं पाण्डवो बली ॥ ५० ॥ प्रस्यन्दमानमादाय जगाम बलिनं बलात् । स्थित्वा विष्टभ्य चरणौ भीमेन शिनिपुङ्गवः ॥ ५१ ॥ निगृहीतः पदे षष्ठे बलेन बलिना-

धृष्टद्युम्नने इसप्रकार सात्यकीको तीखे और कठोर वचन सुनाये, उनको सुनकर सात्यकी काँपउठा, उसकी आँखें क्रोधके मारे लाललाल होगयीं, उसने सर्पकी समान लम्बा साँस लेकर धनुषको हाथमेंसे नीचे डालदिया और हाथमें गदा उठाली फिर धृष्टद्युम्नके सामने जा क्रोधके साथ यह बात कही, कि–४५–४७मैं तुझसे तीखे वचन नहीं कहता, किन्तु तू वध करने योग्य है, इसलिये तुझे मारे डालता हूँ, इसप्रकार महाबली, असहनशील और कालकी समान महाक्रोधमें भरेहुए सात्यकीको धृष्टद्युम्नके ऊपर एकायकी चढ़ाहुआ देखकर श्रीकृष्णके कहनेसे महाबली भीमसेन तुरन्त रथमेंसे नीचे उतर पडा और दोनों हाथोंसे सात्यकीको आगे बढनेसे रोकलिया४८–५०तो भी सात्यकी क्रोधमें भराहुआ बड़े जोरसे दौडा, महाबली भीमसेन उसके पीछे दौडा और छठे पगपर सात्यकीको पकड़कर आगे बढ़नेसे रोका तथा भूमिपर दोनों पैर जमाकर उसको पकड लिया सहदेव भी तुरंत रथमेंसे नीचे उतरपडा और बली भीमके पकड़ेहुए सात्यकीसे मधुर वाणीमें कहनेलगा,

श्वरः । अवरुह्य रथात्तूर्णं ध्रियमाणं बलीयसा ॥ ५२ ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा सहदेवो विशाम्पते । अस्माकं पुरुषव्याघ्र मित्रमन्यन्न विद्यते ॥५३॥ परमन्धकवृष्णिभ्यः पञ्चालेभ्यश्च मारिष । तथैवान्धकवृष्णीनां तथैव च विशेषतः ॥ ५४ ॥ कृष्णस्य च तथास्मत्तो मित्रमन्यन्न विद्यते । पञ्चालानाञ्च वार्ष्णेय समुद्रान्तां विचिन्वताम् ॥५५॥ नान्यदस्ति परं मित्रं यथा पाण्डववृष्णयः । स भवानीदृशं मित्रं मन्यते च तथा भवान् ॥ ५६॥ भवन्तश्च यथास्माकं भवताञ्च तथा वयम् । स एवं सर्वधर्मज्ञ मित्रधर्ममनुस्मरन् ॥५७। नियच्छ मन्युं पाञ्चाल्यात्प्रशाम्य शिनिपुङ्गव । पार्षतस्य क्षम त्वं वै क्षमतां पार्षतश्च ते ॥५८॥ वयं क्षमयितारश्च किमन्यत्र शमाद्भवेत् । प्रशाम्यमाने शैनेये सहदेवेन मारिष ॥ ५९ ॥ पाञ्चालराजस्य सुतः प्रहसन्निदमब्रवीत् । मुञ्च मुञ्च शिनेः पौत्रं

कि हे मधुवंशी पुरुषव्याघ्र! अन्धक राजे, वृष्णिवंशके राजे और पांचाल राजे इन सबसे अधिक हमारा और कोई मित्र नहीं है५१-५४ तथा अन्धकवंशी, वृष्णिवंशी और श्रीकृष्णका हमसे अधिक कोई मित्र नहीं है ॥५५॥ इसीप्रकार पांचालराजे भी पृथ्वी पर समुद्र पर्यन्त खोजेंगे तब भी उनको वृष्णि और अन्धकोंकी समान कोई मित्र कहीं भी नहीं मिलेगा ॥५६॥ जैसे तुम हमारे मित्र हो और हम जैसे तुम्हारे मित्र हैं, ऐसे ही धृष्टद्युम्न भी तुम्हारा मित्र है और तुम इसके मित्र हो, हे सात्यकी! तुम सब धर्मको जाननेवाले हो, इसलिये मित्रके धर्मको याद करके अपने क्रोधको शान्त करो और धृष्टद्युम्नको क्षमा करो ॥५७-५८॥ हम क्षमा करारहे हैं, क्षमासे अधिक और क्या होसकता है? हे राजन्! जब सहदेवने इसप्रकार सात्यकीको शान्त करदिया तब ॥५९॥ पांचालराजका पुत्र धृष्टद्युम्न हँसताहुआ इसप्रकार कहनेलगा, कि-हे भीम! युद्ध करनेके मदमें भरेहुए सात्यकीको छोडदो, छोड़दो ॥ ६० ॥ जैसे

भीमयुद्धमदान्वितम् ॥ ६० ॥ आसादयतु मामेष धराधरमिवानिलः । यावदस्य शितैर्बाणैः संरम्भं विनयाम्यहम् ॥ ६१ ॥ युद्धश्रद्धाञ्च कौन्तेय जीवितञ्चास्य संयुगे । किन्तु शक्यं मया कर्त्तुं कार्यं यदिदमुद्यतम् ॥ ६२ ॥ सुमहत् पाण्डुपुत्राणामायान्त्येते हि कौरवाः । अथवा फाल्गुनः सर्वान् वारयिष्यति संयुगे ६३ अहमप्यस्य मूर्द्धानं पातयिष्यामि सायकैः । मन्यते छिन्नबाहुं मां भूरिश्रवसमाहवे ॥६४॥ उत्सृजैनमहञ्चैनमेष मां वा हनिष्यति । शृण्वन् पाञ्चालवाक्यानि सात्यकिः सर्पवत् श्वसन् ॥ ६५ ॥ भीमबाह्वन्तरे सक्तो विस्फुरत्यनिशं बली । तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ बाहुशालिनौ ॥ ६६ ॥ त्वरया वासुदेवश्च धर्मराजश्च मारिष । यत्नेन महता वीरौ वारयामासतुस्ततः ॥ ६७ ॥

पवन पहाड़के पास पहुँचता है तैसे ही इसको मेरे पास पहुँचनेदो, मैं अभी तेज़ बाण मारकर इसके घमण्डको दूर किये देता हूँ ६१ इतना ही नहीं किन्तु इसके युद्धके चावको नष्ट करके इसके जीवनको भी समाप्त कियेदेता हूँ और ये कौरव,पाण्डवोंके ऊपर चढ़कर आरहे हैं, यह बड़ा भारी काम मुझे सौंपागया है, यह काम मैं इसको मार डालनेके पीछे करूँगा अथवा इन सबोंको युद्धमें अर्जुन ही रोकलेगा ॥ ६२–६३ ॥ और मैं भी बाणोंके प्रहारसे इसके शिरको काट गिराऊँगा, यह मुझे युद्धमें टुण्टा भूरिश्रवा समझरहा है ! ॥ ६४ ॥ अब इसको छोड़ दो तो हम युद्ध करें, इस युद्धमें या तो मैं ही इसको मारडालता हूँ, नहीं तो यही मुझे मारडालेगा; बलवान् सात्यकी पांचालराजकुमारकी इन बातोंको सुनकर साँपकी समान फुङ्कारें भरनेलगा, और भीमकी दोनों भुजाओंके बीचमें बँधाहुआ था, तो भी उनमेंसे छूटनेका बारम्बार उद्योग करनेलगा, दोनों बली और भुजबल रखनेवाले थे वे साँडकी समान गरजनेलगे ॥६५–६६॥ तब श्रीकृष्ण और

निवार्य परमेष्वासौ क्रोधसंरक्तलोचनौ । युयुत्सूनपरान् संख्ये प्रतीयुः क्षत्रियर्षभाः ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नसात्यकिक्रोधे अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९८॥

सञ्जय उवाच । ततः स कदनञ्चक्रे रिपूणां द्रोणनन्दनः । युगान्ते सर्वभूतानां कालसृष्ट इवान्तकः ॥ १ ॥ ध्वजद्रुमं शस्त्रशृङ्गं हतनागमहाशिलम् । अश्वकिम्पुरुषाकीर्णं शरासनलतावृतम् २ क्रव्यादपक्षिसङ्घुष्टं भूतयक्षगणाकुलम् । निहत्य शात्रवान् भल्लैः सोऽचिनोद्देहपर्वतम् ॥ ३ ॥ ततो वेगेन महता विनद्य स नरर्षभः । प्रतिज्ञां श्रावयामास पुनरेव तवात्मजम् ॥ ४ ॥ यस्माद्युध्यन्तमाचार्यं धर्मकञ्चुकमास्थितः । मुञ्च शस्त्रमिति प्राह कुन्तीपुत्रो युधि-

---

युधिष्ठिरने वड़े परिश्रमसे इन दोनों वीरोंको शान्त किया ।६७। इसप्रकार क्रोधसे लाल २ आँखोंवाले महाधनुषधारी दोनों वीर पुरुषोंको लड़नेसे रोककर पाण्डवपक्षके वडे २ क्षत्रिय रणभूमिमें लड़नेकी इच्छासे वैरियोंके सामने जाडटे॥६८॥एकसौ अट्ठानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९८ ॥

❀ ॥ ❀ ॥

सञ्जयने कहा, कि—हे राजा धृतराष्ट्र ! तदनन्तर जैसे कालका रचाहुआ अन्तक प्रलयके समय सब प्राणियोंका संहार करता है, ऐसे ही अश्वत्थामा वैरियोंका संहार करनेलगा ॥ १ ॥ उसने भल्ल जातिके वाणोंसे वैरियोंका संहार करके, शरीरोंका एक ऐसा पहाड़ वनादिया, कि—जिसमें ध्वजायें ही वृक्ष थे, शस्त्ररूप शिखर थे, जिसके ऊपर मांसाहारी राक्षसरूप पक्षियोंके शब्द होरहे थे और जिसमें प्राणिरूप यक्षोंके गण भरेहुए थे ॥२॥३॥ तदनन्तर महात्मा अश्वत्थामाने वड़ी गर्जना करके फिर तुम्हारे पुत्रको अपनी प्रतिज्ञा सुनायी ॥ ४ ॥ धर्ममें ढकेहुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने युद्धमें घूमते हुए आचार्यसे कपट की वात कह कर उनसे अस्त्र

छिरः ॥ ५ ॥ तस्मात् सम्पश्यतस्तस्य द्रावयिष्यामि वाहिनीम् । विद्राव्य सर्वान् हन्तास्मि जाल्मं पाञ्चाल्यमेव तु ॥ ६ ॥ सर्वानेतान् हनिष्यामि यदि योत्स्यन्ति मां रणे । सत्यं ते प्रतिजानामि परिवर्त्तय वाहिनीम् ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्तु वाहिनीं पर्यवर्त्तयत् । सिंहनादेन महता व्यपोह्य सुमहद्भयम् ॥ ८ ॥ ततः समागमो राजन् कुरुपाण्डवसेनयोः । पुनरेवाभवत्तीव्रः पूर्णसागरयोरिव ॥ ९ ॥ संरब्धा हि स्थिरीभूता द्रोणपुत्रेण कौरवाः । उदग्राः पाण्डुपञ्चाला द्रोणस्य निधनेन च ॥ १० ॥ तेषां परमहृष्टानां जयमात्मनि पश्यताम् । संरब्धानां महावेगः प्रादुरासीद्विशाम्पते ११ यथा शिलोच्चयैः शैलः सागरैः सागरो यथा । प्रतिहन्येत राजेन्द्र

छुड़वादिये ॥ ५ ॥ इसलिये मैं उनके सामने ही उनकी सेनाको रणमेंसे पीछेको भगादूँगा और सबोंको भगा देनेके बाद पापी धृष्टद्युम्नको मारडालूँगा ॥ ६ ॥ यदि ये सब इकट्ठे होकर मेरे सामने लड़नेको आवेंगे तो मैं निःसन्देह इन सबोंको मारडालूँगा, मैं तेरे सामने यह सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ, इसलिये तू फिर सेनाको वैरीके सामने लेचल ॥ ७ ॥ अश्वत्थामाकी इन बातोंको सुन तुम्हारे पुत्रने निर्भय होकर सिंहकी समान गर्जना की और अपनी सेनाको फिर रणमें लेआया ॥ ८ ॥ और जैसे लबालब भरे हुए दो महासमुद्रोंका आपसमें मेल होता है तैसे ही कौरव और पाण्डवोंकी फिर महा भयानक भेट हो गयी ॥ ९ ॥ कौरव द्रोणाचार्यके पुत्रसे स्थिर होकर आवेशमें भर गये थे, पाण्डव तथा पाँचाल द्रोणाचार्यके मारेजानेसे सन्तप्त हो उठें ॥ १० ॥ हे राजन्! दोनों पक्षके योधा हमारी ही विजय होगी, ऐसा मानकर बड़े हर्षमें भर गये थे, फिर दोनों पक्षके योधा घमण्डमें भरकर बड़े वेगसे लड़ने लगे ॥ ११ ॥ जैसे पर्वत पर्वतके सामने लड़रहा हो जैसे समुद्र समुद्रके सामने युद्ध कररहा हो

तथासन् कुरुपाण्डवाः ॥ १२ ॥ ततः शंखसहस्राणि भेरीणामयुतानि च । अवादयन्त संहृष्टाः कुरुपाण्डवसैनिकाः ॥ १३ ॥ यथा निर्मथ्यमानस्य सागरस्य तु निःस्वनः । अभवत्तस्य सैन्यस्य सुमहानद्भुतोपमः ॥ १४ ॥ प्रादुश्चक्रे ततो द्रौणिरस्त्रं नारायणं तदा । अभिसन्धाय पांडूनां पञ्चालानाञ्च वाहिनीम् ॥ १५ ॥ प्रादुरासंस्ततो वाणा दीप्ताग्राः खे सहस्रशः । पाण्डवान् क्षपयिष्यन्तो दीप्तास्याः पन्नगा इव ॥ १६ ॥ ते दिशः खञ्च सैन्यञ्च समावृण्वन् महाहवे । मुहूर्त्ताद्भास्करस्येव राजन् लोके गभस्तयः १७ तथापरे द्योतमाना ज्योतींषीवामलाम्बरे । प्रादुरासन्महाराज कार्ष्णायसमया गुडाः ॥ १८ ॥ चतुश्चक्रा द्विचक्राश्च शतघ्न्यो बहुला गदाः । चक्राणि च क्षुरान्तानि मण्डलानीव भास्वतः १९ शस्त्राकृतिभिराकीर्णमतीव पुरुषर्षभ । दृष्ट्वान्तरिक्षमाविग्नाः पांडु-

---

ऐसे ही कौरव पाण्डव आपसमें युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥ कौरव और पाण्डवोंके योधा बड़ेही हर्षमें भरकर हजारों शङ्ख और हजारों भेरियें बजाने लगे ॥ १३ ॥ जैसे मथेजातेहुए महासागरका शब्द होता है ऐसे ही उस समय तुम्हारी सेनाका बहुत बडा और अद्भुत शब्द होने लगा ॥ १४ ॥ फिर अश्वत्थामाने पाण्डवोंकी और पांचालोंकी सेनाको ताककर नारायणास्त्र प्रकट किया १५ तुरन्त उसमेंसे बलते हुए मुखोंवाले साँपोंकी समान प्रदीप्त मुखों वाले सहस्रों बाण पाण्डवोंका संहार करनेके लिये आकाशमें दीखने लगे । १६ ॥ और हे राजन् ! जैसे सूर्यकी किरणें एक महूर्त मात्रमें दिशाओं और आकाशमें भरजाती हैं तैसे ही उन बाणोंने भी दिशाओंको, आकाशको और सेनाको ढकदिया ॥ १७ ॥ और उसी समय आकाशमें जैसे तारागण चमकने लगते हैं तैसे ही महातेजस्वी लोहेके गोले चतुश्चक्र द्विचक्र, शतघ्नी, गदायें, सूर्यके मण्डलके आकारके तथा जिनके इधर उधर छुरे बनेहुए थे

पञ्चालसृञ्जयाः ॥ २० ॥ यथा यथा ह्ययुध्यन्त पाण्डवानां महारथाः । तथा तथा तदस्त्रं वै व्यवर्द्धत जनाधिप ॥ २१ ॥ वध्यमानास्तथास्त्रेण तेन नारायणेन वै । दह्यमानानलेनेव सर्वतोऽभ्यर्दिता रणे ॥ २२ ॥ यथा हि शिशिरापाये दहेत् कक्षं हुताशनः। तथा तदस्त्रं पाण्डूनां ददाह ध्वजिनीं प्रभो ॥ २३ ॥ आपूर्यमाणेनास्त्रेण सैन्ये क्षीयति च प्रभो । जगाम परमं त्रासं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥ द्रवमाणं तु तत्सैन्यं दृष्ट्वा विगतचेतनम् । मध्यस्थताञ्च पार्थस्य धर्मपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥ धृष्टद्युम्न पलायस्व सह पाञ्चालसेनया । सात्यके त्वञ्च गच्छस्व वृष्ण्यन्धकवृतो महान् ॥ २६ ॥ वासुदेवोऽपि धर्मात्मा करिष्यत्यात्मनः

ऐसे चक्र प्रकट होने लगे पाण्डव और पांचाल राजे आकाशको शस्त्रोंसे भरा हुआ देखकर हे राजन्! घबड़ाहटमें पडगये १८-२० हे राजन्! इस समय पाण्डवोंके महारथी जैसे २ युद्ध करनेलगे तैसे २ नारायणास्त्र बढने लगा ॥२१॥ नाराणास्त्रसे मार खाते हुए पाण्डव-पक्षके योधा, जैसे अग्निसे जलजाने पर दुःखी होते हों, तैसे ही इस लडाईमें चारों ओरसे दुःखी होने लगे ॥२२॥ हे राजन्! जैसे गरमीके दिनोंमें अग्नि घासके ढेरको जलाकर भस्म करडालता है, तैसे ही वह नारायणास्त्र भी पाण्डवोंकी सेनाको जलाकर भस्म करनेलगा ॥ २३ ॥ हे राजन्! जिस समय वृद्धि पायेहुए नारायणास्त्रसे सेनाका संहार होने लगा, उस समय धर्मराज युधिष्ठिर बडा ही भय खाने लगे ॥ २४ ॥ वह अपनी सेनाको अचेत होकर रणमेंसे भागती हुई देखकर तथा अर्जुनको उदासीनरूपसे रणभूमिमें खड़ाहुआ देखकर इस प्रकार कहने लगे, कि-॥ २५ ॥ हे धृष्टद्युम्न! तू पांचालोंकी सेनाको लेकर भागजा! भागजा! अरे सात्यकी! तू भी वृष्णि और अन्धककुलके राजाओंको लेकर चलाजा ॥ २६ ॥ अब धर्मात्मा श्रीकृष्णसे

क्षमम् । श्रेयो ह्युपदिशत्येष लोकस्य किमुतात्मनः ॥२७॥ संग्रामस्तु न कर्त्तव्यः सर्वसैन्यान् ब्रवीमि वः । अहं हि सह सोदर्य्यैः प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् २८ भीष्मद्रोणार्णवं तीर्त्वा संग्रामे भीरुदुस्तरे । विमज्जिष्यामि सलिले सगणो द्रौणिगोष्पदे ॥ २९ ॥ कामः संपद्यतामस्य बीभत्सोराशु मां प्रति । कल्याणवृत्तिराचार्यो मया युधि निपातितः ॥ ३० ॥ येन बालः स सौभद्रो युद्धानामविशारदः । समर्थैर्बहुभिः क्रूरैर्घातितो नाभिपालितः ॥ ३१ ॥ येनाविब्रुवता प्रश्नं तथा कृष्णा सभां गता । उपेक्षिता सपुत्रेण दासभावं नियच्छती ॥ ३२ ॥ जिघांसुर्धार्त्तराष्ट्रश्च श्रान्तेष्वश्वेषु फाल्गुनम् ।

जो कुछ होसकेगा सो करलेंगे, जो सब जगत्को कल्याणका उपदेश देते हैं वह अपना कल्याण क्यों नहीं करेंगे ? मैं सब सेनादलोंसे कहता हूँ, कि–तुम युद्ध न करो और मैं तो अपने भाइयोंके सहित अग्निमें प्रवेश करके जलमरूँगा ॥ २७–२८ ॥ डरपोक जिसके पार नहीं पहुँच सकते ऐसे इस संग्राममें भीष्म तथा द्रोणरूप सागरको तरजानेके अनन्तर अश्वत्थामासरीखे गौके खुरके-गढ़ेमें मैं अपनी सेनासहित डूबजाऊँगा ॥२९॥ भले ही राजा दुर्योधनके मनकी कामनायें आज मेरे सामने ही सफल हों, क्योंकि–मैंने ही अपना कल्याण करनेवाले आचार्यको युद्धमें मरवा दिया है॥३०॥ जिन आचार्यने युद्ध न जाननेवाले सुभद्राके बालक पुत्र अभिमन्युको युद्ध करनेमें समर्थ बहुतसे क्रूर योधाओंके द्वारा मरवा डाला था और उसकी रक्षा नहीं की थी ॥ ३१ ॥ जिस समय द्रौपदी अप्रतिष्ठाके साथ सभामें लायीगयी थी, और दासी बनायी जारही थी उस समय उसके प्रश्न करने पर जिन द्रोणाचार्यने और अश्वत्थामाने उसकी उपेक्षाकी थी ॥३२॥ जिन आचार्यने दूसरे सब योधाओंके थकजाने पर अर्जुनको मारनेकी इच्छावाले दुर्योधनकी, सिन्धुराजकी रक्षा करनेके लिये, कवच

कवचेन तथा गुप्तः रक्षार्थं सैन्धवस्य च ॥ ३३ ॥ येन ब्रह्मास्त्रविदुषा पञ्चालाः सत्यजिन्मुखाः । कुर्वाणा मज्जये यत्नं समूला विनिपातिताः ॥ ३४ ॥ येन प्रव्राज्यमानाश्च राज्याद्वयमधर्मतः । निवार्यमाणेनास्माभिरनुगन्तुं तदेप्सिताः ॥ ३५ ॥ योऽसावत्यन्तमस्मासु कुर्वाणः सौहृदं परम् । हतस्तदर्थे मरणं गमिष्यामि सबान्धवः ॥ ३६ ॥ एवं ब्रुवति कौन्तेये दाशार्हस्त्वरितस्ततः । निवार्य सैन्यं बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ शीघ्रं न्यस्यत शस्त्राणि वाहेभ्यश्चावरोहत । एष योगोऽत्र विहितः प्रतिघाते महात्मनः ॥ ३८ ॥ द्विपाश्वस्यन्दनेभ्यश्च क्षितिं सर्वेऽवरोहत । एवमेतन्न वो हन्या-

---

पहराकर रक्षा की थी ॥ ३३ ॥ जिन ब्रह्मास्त्रको जाननेवाले आचार्यने, मेरी विजयके लिये उद्योग करतेहुए सत्यजित् आदि पांचाल राजाओंको एक साथमें मारडाला था॥३४॥ जब हमको अधर्मके द्वारा राज्यमेंसे वनमें निकाल दिया था, और विदुर आदि हमारे पक्षके मनुष्योंने कौरवोंसे ऐसा करनेका निषेध किया था, उस समय जिन आचार्यने कौरवोंको निषेध न करके संमति दी थी, शोक है (कहा जाता है) कि—आचार्य हमारे ऊपर बड़ा प्रेम रखते थे और इसलिये ही वह मारेगये ! इसलिये मुझे भी अब बान्धवोंसहित मरजाना चाहिये ! ॥ ३५-३६ ॥ कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर इस प्रकार द्रोणाचार्यके विषयमें (कटाक्षसे) बातें कररहे थे इतनेमें ही श्रीकृष्ण, शीघ्र ही दोनों भुजाओंसे सेनाको पीछेको हटाकर कहने लगे, कि–हे योधाओं ! तुम वाहनों परसे नीचे उतर पड़ो और शस्त्रोंको एक साथ नीचे डाल दो.महात्मा पुरुषोंने नारायणास्त्रके निवारणके लिये यही उपाय बताया है (कि–उसके सामने नहीं लड़ना चाहिये) ॥ ३७-३८ ॥ तुम सब हाथी, घोड़े और रथों परसे नीचे उतर पड़ो हाथोंमेंके शस्त्रोंको नीचे डालदो, ज्यों ही

दस्त्रं भूमौ निरायुधान् ॥ ३९ ॥ यथा यथा हि युध्यन्ते योधा ह्यस्त्रमिदं प्रति । तथा तथा भवन्त्येते कौरवा बलवत्तराः ॥४०॥ निक्षेप्स्यन्ति च शस्त्राणि वाहनेभ्योऽवरुह्य ये । तान्नैतदस्त्रं संग्रामे निहनिष्यति मानवान् ॥ ४१ ॥ ये त्वेतत् प्रतियोत्स्यन्ति मनसापीह केचन । निहनिष्यति तान् सर्वान् रसातलगतानपि४२ ते वचस्तस्य तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भारत । ईषुः सर्वे समुत्स्रष्टुं मनोभिः करणेन च ॥ ४३ ॥ तत उत्स्रष्टुकामांस्तानस्त्राण्यालोक्य पाण्डवः । भीमसेनोऽब्रवीद्राजन्निदं संहर्षयन् वचः ॥४४॥ न कथञ्चन शस्त्राणि मोक्तव्यानीह केनचित् । अहमावारयिष्यामि द्रोणपुत्रास्त्रमाशुगैः ॥ ४५ ॥ गदयाप्यनया गुर्व्या हेमविग्रहया रणे । कालवत् प्रहरिष्यामि द्रौणेरस्त्रं विशातयन् ॥४६॥

तुम शस्त्रहीन होकर पृथ्वी पर खड़े होजाओगे, कि-फिर नारायणास्त्र किसीको नहीं मारेगा ॥ ३९ ॥ किन्तु ज्यों २ योधा इस नारायणास्त्रके सामने युद्ध करेंगे त्यों २ कौरव तुमसे विशेष बलवान् होते चले जायँगे ॥४०॥ परन्तु जो वाहनों परसे उतर कर शस्त्रोंको नीचे डालदेंगे उन मनुष्योंको नारायणास्त्र नहीं मारेगा ॥ ४१ ॥ जो कोई योधा इस अस्त्रके सामने लडनेका मनमें भी विचार करेंगे वे रसातलमें होंगे तो वहाँ भी उन सबोंको नारायणास्त्र मारडालेगा ॥ ४२ ॥ हे भरतवंशी ,राजन् । सब योधाओंने श्रीकृष्णकी इस बातको सुनकर मनसे और हाथोंमेंसे शस्त्रोंको त्यागदेनेका विचार करलिया ॥ ४३ ॥ सब योधाओंको अस्त्रोंको त्यागनेके लिये उद्यत हुए देखकर भीमसेनने सबोंको प्रसन्न करते हुए कहा कि-कोई भी किसी प्रकार भी शस्त्रोंको नहीं डालना, मैं अकेला ही बाणोंकी मारसे अश्वत्थामाके अस्त्रको रोकदूँगा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इतना ही नहीं, किन्तु इस सोनेकी खोलवाली बडीभारी गदासे युद्धमें अश्वत्थामाके अस्त्रोंके टुकड़े २

न हि मे विक्रमे तुल्यः कश्चिदस्ति पुमानिह । यथैव सवितुस्तुल्यं ज्योतिरन्यन्न विद्यते ॥ ४७ ॥ पश्यतेमौ हि मे बाहू नागराजकरोपमौ । समर्थौ पर्वतस्यापि शैशिरस्य निपातने ॥ ४८ ॥ नागायुतसमप्राणो ह्यहमेको नरेष्विह । शक्रो यथाऽप्रतिद्वन्द्वो दिवि देवेषु विश्रुतः ॥ ४९ ॥ अद्य पश्यतु मे वीर्यं बाह्वोः पीनांसयोर्युधि। ज्वलमानस्य दीप्तस्य द्रौणेरस्त्रस्य वा रणे ॥ ५० ॥ यदि नारायणास्त्रस्य प्रतियोद्धा न विद्यते । अद्यैतत् प्रतियोत्स्यामि पश्यत्सु कुरुपाण्डुषु ॥ ५१ ॥ अर्जुनार्जुन बीभत्सो न न्यस्यं गाण्डिवं त्वया । शशाङ्कस्येव ते पंको नैर्मल्यं पातयिष्यति ॥ ५२ ॥ अर्जुन उवाच । भीम नारायणास्त्रे मे गोषु च ब्राह्मणेषु च ।

करडालूँगा और कालकी समान उसके शरीर पर भी प्रहार करूँगा ॥ ४६ ॥ जैसे सूर्यकी समान दूसरा तेज नहीं होता है, तैसे ही इस जगत्में मेरी समान पराक्रमी कोई भी पुरुष नहीं है ॥ ४७ ॥ बड़े हाथीके सूँडकी समान मेरे इन भुजदण्डोंको देखो, जो हिमालय पर्वतको भी तोड़ सकते हैं ॥ ४८ ॥ जैसे स्वर्गमें देवताओंमें इन्द्र इक्काड़ कहलाता है तैसे ही दशहजार हाथियोंकी समान बलवान् मैं मनुष्योंमें अद्वितीय हूँ मेरी बराबरी करनेवाला दूसरा कोई है ही नहीं ॥ ४९ ॥ अश्वत्थामाके प्रकाशमान जलते हुए अस्त्रको रोकनेके लिये आज मैं युद्धमें अपने बहुत मोटे खभे वाले भुजदण्डके पराक्रमको दिखाऊँगा, उसको तुम सब देखना ॥ ५० ॥ यद्यपि जो नारायणास्त्रके सामने लडसके ऐसा कोई भी नहीं है, तो कौरवपाण्डवों की दृष्टिके सामने आज मैं इसके सामने पडकर युद्ध करूँगा ५१ हे अर्जुन ! हे अर्जुन ! तू अपने गाण्डीव धनुषको नीचे न डाल देना, नहीं तो जैसे चन्द्रमामें कलङ्क लग गया है तैसे ही इस पङ्क का कलङ्क तेरी निर्मलताको नष्ट करदेगा ॥ ५२ ॥ जब भीमसेनने

एतेषु गाण्डिवं न्यस्यमेतद्धि व्रतमुत्तमम् ॥ ५३ ॥ एवमुक्तस्ततो भीमो द्रोणपुत्रमरिन्दमम् । अभ्ययान्मेघघोषेण रथेनादित्यवर्चसा ॥ ५४ ॥ स एनमिषुजालेन लघुत्वाच्छीघ्रविक्रमः । निमेषमात्रेणासाद्य कुन्तीपुत्रोऽभ्यवाकिरत् ॥ ५५ ॥ ततो द्रौणिः प्रहस्यैनं द्रवन्तमभिभाष्य च । अवाकिरत् प्रदीप्ताग्रैः शरैस्तैरभिमन्त्रितैः ॥ ५६ ॥ पन्नगैरिव दीप्तास्यैर्मर्मभिद्भिरलं रणे । अवकीर्णोऽभवत्पार्थः स्फुलिङ्गैरिव काञ्चनैः ॥ ५७ ॥ तस्य रूपमभूद्राजन् भीमसेनस्य संयुगे । खद्योतैरावृतस्येव पर्वतस्य दिनक्षये ॥ ५८ ॥ तदस्त्रं द्रोणपुत्रस्य तस्मिन् प्रति समस्यति । अवर्द्धत महाराज यथाग्निरनिलो-

ऐसा कहा, उस समय अर्जुनने उत्तर दिया, कि—हे भीम ! मेरा उत्तम व्रत है, कि—नारायणास्त्र, गौ और ब्राह्मणके सामने गाण्डीव धनुषको नीचे डालदूँगा (अर्थात् मैं नारायणास्त्रके सामने लडनेको नहीं जाऊँगा)॥५३॥ अर्जुनके ऐसा कहने पर भीमसेन, वैरियोंका दमन करने वाले अश्वत्थामाके सामने मेघकी समान गर्जना करनेवाले तथा सूर्यकी समान कान्तिवाले रथमें बैठकर लडनेको गया ॥ ५४ ॥ और निमेषमात्रमें उसके सामने पहुँचकर फुरतीले पराक्रम वाला भीमसेन झट अश्वत्थामाके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ५५ ॥ अश्वत्थामाने भी खूब हँसकर, लडनेको चढकर आये हुए भीमसेनके साथ बातकी और फिर जलती हुई अनीवाले बाणोंकी मंत्र पढकर उसके ऊपर वर्षा करना आरम्भ करदी ॥ ५६ ॥ उन बाणोंके मुख सर्पोंकी समान जलरहे थे और रणमें ऐसे मालूम होते थे मानों मुखोंमेंसे आग उगल रहे हैं, ऐसे सुवर्णके पतङ्गोंकी समान प्रतीत होनेवाले बाणोंसे भीमसेन ढकगया ॥५७॥ इस लडाईमें भीमसेनका स्वरूप रात्रिमें चमकते हुए पटबीजनोंसे घिरे हुए पर्वतकी समान होगया था ॥ ५८ ॥ हे महाराज ! भीमसेन नारायणास्त्रके सामने बाण

द्धतः ॥५९॥ आवर्द्धमानमालक्ष्य तदस्त्रं भीमविक्रमम् । पाण्डुसैन्यमृते भीमं सुमहद्भयमाविशत् ॥६०॥ ततः शस्त्राणि दिव्यानि समुत्सृज्य महीतले । अवारोहन् रथेभ्यश्च हस्त्यश्वेभ्यश्च सर्वशः ॥ ६१ ॥ तेषु निक्षिप्तशस्त्रेषु वाहनेभ्यश्च्युतेषु च । तदस्त्रं वीर्यविपुलं भीममूर्द्धन्यथापतत् ॥ ६२ ॥ हाहाकृतानि भूतानि पाण्डवाश्च विशेषतः । भीमसेनमपश्यन्त तेजसा संवृतं तदा ६३

इति श्रीमहाभारते नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि पाण्डवसैन्यास्त्रत्यागे
नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

सञ्जय उवाच । भीमसेनं समाकीर्णं दृष्ट्वास्त्रेण धनञ्जयः । तेजसः प्रतिघातार्थं वारुणेन समावृणोत्॥१॥नालक्षयत तत् कश्चिद्वारुणास्त्रेण संवृतम् । अर्जुनस्य लघुत्वाच्च संवृतत्वाच्च तेजसः२

छोड़रहा था, उस समय अश्वत्थामाका नारायणास्त्र, जैसे पवन से अग्नि बढता है तैसे बढता चला जाता था ॥ ५९ ॥ भयङ्कर पराक्रमवाले उस नारायणास्त्रको बढते हुए देखकर भीमसेनके सिवाय पाण्डवोंकी सेनाके सब योधाओंको भय लगनेलगा ६० सब योधा रथोंपरसे, हाथियोंके ऊपरसे और घोड़ोंके ऊपरसे नीचे उतर पड़े और सबोंने अपने२ शस्त्र नीचे भूमिपर डालदिये जब सब योधा वाहनों परसे नीचे उतर पड़े और उन्होंने अपने शस्त्रोंको नीचे फेंकदिया, उस समय वह महापराक्रमी अस्त्र भीमसेनके मस्तकपर आपड़ा और उससे ढके हुए भीमसेनका दीखना बंद होगया, तब सब लोग तथा पाण्डव हाहाकार करनेलगे६१-६३

एक सौ निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९९ ॥ छ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे राजा धृतराष्ट्र! भीमसेनको नारायणास्त्रसे ढकाहुआ देखकर अर्जुनने उस अस्त्रके तेजका नाश करनेके लिये भीमसेनको वारुणास्त्रसे छादिया ॥ १ ॥ अर्जुनका हाथ बड़ा ही फुरतीला था और तेजसे भीमसेन ढकाहुआ था, इसलिये अर्जुन

साश्वसूतरथो भीमो द्रोणपुत्रास्त्रसंवृतः । अग्नावग्निरिव न्यस्तो ज्वालामाली सुदुर्दृशः ॥ ३ ॥ यथा रात्रिक्षये राजन् ज्योतींष्यस्तंगिरिं प्रति । समापेतुस्तथा वाणा भीमसेनरथं प्रति ॥ ४ ॥ स हि भीमो रथश्चास्य हयाः सूतश्च मारिष । संवृता द्रोणपुत्रेण पावकान्तर्गताभवन् ॥ ५ ॥ यथा जग्ध्वा जगत्कृत्स्नं समये सचराचरम् । गच्छेदग्निर्विभोरास्यं तथास्त्रं भीममावृणोत् ॥६॥ सूर्यमग्निं प्रविष्टः स्याद्यथा चाग्निं दिवाकरः । तथा प्रविष्टं तत्तेजो न प्राज्ञायत पाण्डवम् ॥७॥ विकीर्णमस्त्रं तद्दृष्ट्वा तथा भीमरथं प्रति । उदीर्यमाणं द्रौणिञ्च निष्प्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥८॥ सर्वसैन्यं च पांडूनां

ने जो वारुणास्त्रसे भीमसेनको ढ़का यह किसीके देखनेमें नहीं आया ॥ २ ॥ अश्वत्थामाके नारायणास्त्रसे घोड़े, सारथी और रथसहित भीमसेन ढकगया था और वह ज्वालारूप मालावाले अग्निमें रहनेकी समान अत्यन्त अदृश्य होगया था, हे राजन् ! प्रातःकाल होने पर जैसे ताराओंका समूह अस्ताचल पर्वतकी ओरको जाता है तैसे ही अश्वत्थामाके वाण भीमसेनके रथकी ओरको चले जारहे थे ॥ ३ ॥ ५ ॥ हे राजन् ! भीमसेन, उसका रथ, घोड़े, सारथी इन सबोंको अश्वत्थामाने अस्त्रोंसे ढकदिया था, इसलिये सब आगके भीतर आपडे ॥ ५ ॥ जैसे प्रलयकालमें अग्नि स्थावर जङ्गम सब जगत्को जलाकर परमात्माके मुखमें प्रवेश कर जाता है तैसे ही नारायणास्त्रने भी भीमसेनके रथके चारों ओर प्रवेश किया (घेरलिया) था ॥ ६ ॥ जैसे अग्नि सूर्यमें और सूर्य अग्निमें इसप्रकार प्रवेश कर जाता है, कि–कोई जानने ही नहीं पाता, ऐसे ही नारायणास्त्रका तेज भीमसेनमें प्रवेश कर गया ॥ ७ ॥ अश्वत्थामाने भीमसेनके रथके ऊपर नारायणास्त्र मारा, यह देखकर तथा युद्धमें दूसरा जिसका सामना करनेवाला नहीं है ऐसे अश्वत्थामाको जोशमें आयाहुआ देखकर पाण्डवोंके

न्यस्तशस्त्रमचेतनम् । युधिष्ठिरपुरोगांश्च विमुखांस्तान्महारथान्९ अर्जुनो वासुदेवश्च त्वरमाणौ महाद्युती । अवप्लुत्य रथाद्वीरौ भीममाद्रवतां तदा ॥१०॥ ततस्तद् द्रोणपुत्रस्य तेजोऽस्त्रबलसम्भवम् । विगाह्य तौ सुबलिनौ मायामाविशतां तदा ॥११॥ न्यस्तशस्त्रौ ततस्तौ तु नादहत् सोऽस्त्रजोऽनलः । वारुणास्त्रप्रयोगाच्च वीर्यवत्त्वाच्च कृष्णयोः१२ततश्चकृषतुर्भीमं सर्वशस्त्रायुधानि च । नारायणास्त्रशान्त्यर्थं नरनारायणौ बलात् ॥ १३ ॥ आकृष्यमाणः कौन्तेयो वदत्येव महारवम् । वर्धते चैव तद् घोरं द्रौणेरस्त्रं सुदुर्जयम् ॥ १४ ॥ तमब्रवीद्ब्रवीद्वासुदेवः किमिदं पाण्डुनन्दन । वार्यमाणोऽपि कौन्तेय यद्युद्धान्न निवर्त्तसे॥१५॥यदि युद्धेन जेयाःस्यु-

---

सब योधाओंने अचेत होकर हाथोंमेंके शस्त्र फेंकदिये और युधिष्ठिर आदि सब महारथी रणमेंसे भागनेलगे, यह देखकर महाकान्तिवाले वीर अर्जुन तथा श्रीकृष्ण एकसाथ रथमेंसे नीचे कूदपडे और शीघ्रतासे भीमसेनके रथकी ओरको दौड़े॥८-१०॥ और वह दोनों बलवान् मायासे अश्वत्थामाके नारायणास्त्रके तेजमें समागये ॥ ११ ॥ इस समय अर्जुन और श्रीकृष्णने शस्त्र त्याग दिये थे,वारुणास्त्रका प्रयोग किया था और वे दोनों पराक्रमी थे,इसलिये नारायणास्त्रकी अग्नि उन दोनोंको जला नहीं सकी१२ (भीमसेनके पास जाकर) नारायणास्त्रकी शान्तिके लिये कृष्ण और अर्जुनने जोरावरी भीमसेनके सब शस्त्र खेंचना आरम्भ कर दिये और उसको रथमेंसे नीचे उतारने लगे ॥१३॥ परन्तु भीमसेनने शस्त्र नहीं छोड़े और रथमेंसे नीचे भी नहीं उतरा किन्तु वह बड़ी जोर२ से गर्जना करनेलगा और उस गर्जनाके साथ ही साथ अश्वत्थामाका महादुर्जय और घोर नारायणास्त्र भी बढनेलगा ॥१४। तब श्रीकृष्णने भीमसेनसे कहा, कि-अरे ओ भीम! यह क्या करता है? रोकने पर भी तू युद्धमेंसे पीछेको

रिमे कौरवनन्दनाः । वयमप्यत्र युध्येम तथा चेमे नरर्षभाः ॥१६॥ रथेभ्यस्त्ववतीर्णाः स्मः सर्व एव हि तावकाः । तस्मात्त्वमपि कौन्तेय रथात्तूर्णमपाक्रम ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वा तु तं कृष्णो रथाद्भूमिमवर्तयत् । निःश्वसन्तं यथा नागं क्रोधसंरक्तलोचनम् ॥ १८ ॥ यदापकृष्टः स रथान्न्यासितश्चायुधं भुवि। ततो नारायणास्त्रं तत् प्रशान्तं शत्रुतापनम् ॥१९॥ सञ्जय उवाच । तस्मिन् प्रशान्ते विधिना तेन तेजसि दुःसहे । बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशः प्रदिश एव च २० प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ता मृगपक्षिणः । वाहनानि प्रहृष्टानि प्रशान्तेऽस्त्रे सुदुर्जये ॥ २१ ॥ व्यपोढे च ततो घोरे तस्मिंस्तेजसि भारत । बभौ भीमो निशापाये धीमान् सूर्य इवोदितः ॥ २२ ॥

नहीं हटता है; यदि युद्धसे ही कौरवोंको जीतना हो तो हम तथा ये महापुरुष भी युद्ध करनेको तयार हैं ॥१५–१६॥ परन्तु यहाँ हठका काम नहीं है (चालका काम है) तेरे पक्षके सब योधा रथोंमेंसे नीचे उतर पड़े हैं, इसलिये हे भीम ! तू भी झट रथमेंसे नीचे उतर पड ॥ १७ ॥ ऐसा कहकर श्रीकृष्णने भीमसेनको रथमेंसे नीचे उतार दिया, इस समय भीमसेन सर्पकी समान फुंकारें भर रहा था और उसके नेत्र क्रोधके मारे लाललाल होरहे थे।१८। परन्तु भीम ज्योंही रथमेंसे नीचे उतरपडा और अपने शस्त्रोंको नीचे डाला, कि–उसी समय वैरीको सन्ताप देनेवाला नारायणास्त्र शान्त पडगया १९ सञ्जयने कहा, कि–हे राजा धृतराष्ट्र ! इस रीतिसे नारायणास्त्रका दुःसह तेज शान्त पडगया, सब दिशायें और कोने निर्मल होगये ॥ २० ॥ शान्तिकारी पवन चलनेलगे, पशु पक्षी परम शान्त होगये और हाथी घोड़े आदि वाहन भी प्रसन्न होगये २१ हे भरतवंशी राजन् ! उस घोर अस्त्रका तेज शान्त पडजाने पर जैसे प्रातःकालके समय उदय हुआ सूर्य शोभा पाता है तैसे ही बुद्धिमान् भीम शोभा पानेलगा ॥२२॥ पांडवोंकी

हतशेषं बलं तत्तु पाण्डवानामतिष्ठत । अस्त्रव्युपरमाद्धृष्टं तव पुत्रजिघांसया ॥२३॥ व्यवस्थिते बले तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते तथा । दुर्योधनो महाराज द्रोणपुत्रमथाब्रवीत् ॥२४॥ अश्वत्थामन् पुनः शीघ्रमस्त्रमेतत् प्रयोजय । अवस्थिता हि पञ्चालाः पुनरेव जयैषिणः ॥ २५ ॥ अश्वत्थामा तथोक्तस्तु तव पुत्रेण मारिष । सुदीनमभिनिःश्वस्य राजानमिदमब्रवीत् ॥ २६ ॥ नैतदावर्त्तते राजन्नस्त्रं द्विर्नोपपद्यते । आवृत्तं हि निवर्तेत प्रयोक्तारं न संशयः२७ एष चास्त्रप्रतीघातं वासुदेवः प्रयुक्तवान् । अन्यथा विहितः संख्ये वधः शत्रोर्जनाधिप ॥ २८ ॥ पराजयो वा मृत्युर्वा श्रेयान् मृत्युर्न निर्जयः । निर्जिताश्चारयो ह्येते शस्त्रोत्सर्गान्मृतो-

---

मरते२ बचीहुई सेना, शस्त्रके शान्त होजाने पर तुम्हारे पुत्रका नाश करनेके लिये फिर हर्षमें भरगयी ॥ २३ ॥ इसप्रकार वह अस्त्र शान्त होगया और पाण्डवोंकी सेनामें फिर व्यवस्था होगयी, हे महाराज ! उस समय दुर्योधनने अश्वत्थामासे कहा, कि-हे अश्वत्थामा ! ॥२४॥ तू शीघ्र ही इस अस्त्रका प्रयोग फिरकर, क्योंकि-यह पांचाल विजयकी इच्छासे हमारे साथ लडनेको तयार होकर खड़े हैं ॥ २५ ॥ तुम्हारे पुत्रने अश्वत्थामासे कहा, तब अश्वत्थामाने बडी दीनताभरा श्वास छोडकर राजा दुर्योधनसे कहा, कि-॥ २१ ॥ इस अस्त्रका दो बार प्रयोग नहीं होसकता, और यदि दो बार इसका प्रयोग कियाजाय तो वह निष्फल जाता है तथा यह अस्त्र उलटा प्रयोग करनेवालेके ही ऊपर आकर पडता है इसमें जरा भी सन्देह नहीं है ॥२७॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णने इस अस्त्रको निष्फल कर दिया है, क्योंकि-वह यदि इसका उपाय नहीं बतलाते तो यह अस्त्र वैरीका संहार ही करडालता ॥२८॥ युद्धमें पराजय या मरण दो ही बातें होती हैं, उनमें पराजयसे मरण अच्छा मानाजाता है ! हमने वैरियोंको जीतलिया है और

पमाः ॥ २९ ॥ दुर्योधन उवाच । आचार्यपुत्र यद्येतत् द्विरस्त्रं न प्रयुज्यते । अन्यैर्गुरुघ्ना वध्यन्तामस्त्रैरस्त्रविदाम्वर ॥ ३० ॥ त्वयि दिव्यानि चास्त्राणि त्र्यम्बके चामितौजसि । इच्छतो हि न मुच्येत् क्रुद्धो ह्यपि पुरन्दरः ॥ ३१ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते द्रोणे चोपधिना हते । तथा दुर्योधनेनोक्तो द्रौणिः किमकरोत् पुनः ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वा पार्थांश्च संग्रामे युद्धाय समुपस्थितान् । नारायणास्त्रनिर्मुक्तांश्चरतः पृतनामुखे ॥ ३३ ॥ सञ्जय उवाच । जानन् पितुः स निधनं सिंहलाङ्गूलकेतनः । सक्रोधो भयमुत्सृज्य सोऽभिदुद्राव पार्षतम् ॥ ३४ ॥ अभिद्रुत्य च विंशत्या क्षुद्रकाणां नरर्षभ । पञ्चभिश्चातिवेगेन विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ३५ ॥ धृष्ट-

---

जब उन्होंने शस्त्र डालदिये तो उनको मरा हुआ ही समझिये।२९। दुर्योधनने कहा, कि-हे अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा ! यदि इस अस्त्रका प्रयोग दो वार न होसकता हो तो दूसरे अस्त्रोंसे वैरियोंको मारो, क्योंकि-इन्होंने गुरु द्रोणाचार्यको मारडाला है ॥३०॥ तुम्हारे पास तथा अपार शक्तिवाले श्रीशङ्करके पास बहुतसे दिव्य अस्त्र हैं, यदि तुम चाहो तो कोपमें भराहुआ इन्द्र भी तुम्हारे हाथसे छूटकर नहीं जासकता ॥३१॥ धृतराष्ट्रने बूझा, कि-हे सञ्जय! द्रोणको कपटसे मार डाला गया और नारायणास्त्र निष्फल होगया तथा दुर्योधनने अश्वत्थामासे यह बात कही, इसके बाद नारायणास्त्रकी झपटसे बचेहुए पाण्डव युद्ध करनेके लिये सेनाके मुहाने पर आकर खड़े होगये, उस समय उनको देखकर अश्वत्थामाने फिर क्या किया! ॥ ३२-३३ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि-जिसकी ध्वजामें सिंहकी पूँछका चिह्न है ऐसा अश्वत्थामा, अपने पिताको मारागया सुनकर क्रोधमें भरगया और निर्भय होकर धृष्टद्युम्नके सामने लडनेको दौडा ॥ ३४ ॥ और हे श्रेष्ठपुरुष ! क्षुद्रक नामके वीस बाण तथा दूसरे पाँच बाण

द्युम्नस्ततो राजन् ज्वलन्तमिव पावकम् । द्रोणपुत्रं चतुःषष्ट्या राजन् विव्याध पत्रिणाम् ॥ ३६ ॥ सारथिञ्चास्य त्रिंशता स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः । हयांश्च चतुरोऽविध्यच्चतुर्भिर्न्निशितैः शरैः ३७ विध्वा विध्वानदद्द्रौणिं कम्पयन्निव मेदिनीम् । आददे सर्वलोकस्य प्राणानिव महारणे ३८ पार्षतस्तु बली राजन् कृतास्त्रः कृतनिश्चयः । द्रौणिमेवाभिदुद्राव मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥३९॥ ततो बाणमयं वर्षं द्रोणपुत्रस्य मूर्द्धनि । अवासृजदमेयात्मा पांचाल्यो रथिनाम्वरः ॥ ४० ॥ तं द्रौणिः समरे क्रुद्धं छादयामास पत्रिभिः । विव्याध चैनं दशभिः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥४१॥ द्वाभ्यां च सुविसृष्टाभ्यां क्षुराभ्यां ध्वजकार्मुके । छित्वा पाञ्चालराजस्य

बड़े वेगसे मारकर धृष्टद्युम्नको घायल करदिया ॥३५॥ हे राजन्! धृष्टद्युम्नने भी जलतेहुए अग्निकी समान तेजस्वी अश्वत्थामाके तिरेसठ बाण मारे ॥ ३६ ॥ फिर सोनेके परोंवाले और शिला पर घिसकर तेज कियेहुए बीस बाण उसके सारथीके मारे और तेज कियेहुए चार बाण उसके चारों घोडोंके मारे॥३७॥ धृष्टद्युम्न अश्वत्थामाको बाणोंसे घायल करताहुआ गर्जना करता जाता था तथा पृथ्वीको कम्पायमान कररहा था, इसप्रकार वह ऐसा युद्ध करनेलगा, कि–मानो सब ही लोगोंके प्राणोंको हरलेगा ३८ धृष्टद्युम्न बलवान्, अस्त्रविद्यामें कुशल और दृढ़ निश्चयवाला था वह इस समय मृत्युको पीछेको हटाकर अश्वत्थामाके सामने लडनेको गया ॥ ३९ ॥ महाबली और महारथी धृष्टद्युम्नने अश्वत्थामाके ऊपर बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ करदी ॥ ४० ॥ तब अश्वत्थामाने भी अपने पिताकी मृत्युको याद करके लडते २ कोपमें भरेहुए धृष्टद्युम्नके दश बाण मारे ॥ ४१ ॥ और फिर क्षुर जातिके दो बाण मार कर उसकी ध्वजा और धनुषको काटडाला तथा दूसरे दो बाण मार कर

द्रौणिरन्यैः समार्दयत् ॥ ४२ ॥ व्यश्वसूतरथञ्चैनं द्रौणिश्चक्रे महाहवे । तस्य चानुचरान् सर्वान् क्रुद्धः प्राद्रावयच्छरैः॥ ४३ ॥ ततः प्रदुद्रुवे सैन्यं पञ्चालानां विशाम्पते । सम्भ्रान्तरूपमार्त्तञ्च परस्परमुदैक्षत ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वा तु विमुखान् योधान् धृष्टद्युम्नञ्च पीडितम् । शैनेयोऽचोदयत्तूर्णं रथं द्रौणिरथं प्रति ॥ ४५ ॥ अष्टभिर्निशितैर्बाणैः सोऽश्वत्थामानमार्दयत् । विंशत्या पुनराहत्य नानारूपैरमर्षणः ॥ ४६ ॥ विव्याध च तथा सूतं चतुर्भिश्चतुरो हयान् । धनुर्ध्वजं च संयत्तश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ४७ ॥ स साश्वं व्यधमच्चापि रथं हेमपरिष्कृतम् । हृदि विव्याध समरे त्रिंशता सायकैर्भृशम् ॥ ४८ ॥ एवं स पीडितो राजन्नश्वत्थामा

बहुत ही पीडित किया ॥ ४२ ॥ इस प्रकार बहुतसे बाण मार कर रणमें धृष्टद्युम्नको घोड़े, सारथी और रथसे हीन करदिया और फिर क्रोधमें भर कर उसके सब अनुचरोंको बाण मारकर भगादिया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! इस समय पांचालोंकी सेना बड़ी ही व्याकुल होगयी तथा एक दूसरेको देखे विना ही भाग निकली ॥ ४४ ॥ सैनिकोंको रणमेंसे भागते हुए देखकर तथा धृष्टद्युम्नको दुःखी होते देखकर सात्यकीने तुरन्त ही अपने रथको अश्वत्थामाके रथके सामनेको दौड़ाया४५और बड़े क्रोध में आकर अश्वत्थामाके पास जा पहले आठ और फिर भिन्न २ जातिके बीस बाण उसके मारे॥४६॥फिर सारथीको घायल किया किया और तदनन्तर चार बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको घायल किया और फिर सावधान होकर कसीले हाथवाले पुरुषकी समान अश्वत्थामाके धनुष और ध्वजाको उडादिया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर उसके सोनेसे सजेहुए घोडों वाले रथको उडादिया।(तोड़डाला) और उसकी छातीमें जोरसे बीस बाण मारे ॥ ४८ ॥ इस प्रकार महाबली अश्वत्थामाको बाणोंके प्रहारोंसे पीडित करने लगा और

महाबलः । शरजालैः परिहृतः कर्तव्यं नान्वपद्यत ॥ ४९ ॥ एवं गते गुरोः पुत्रे तव पुत्रो महारथः । कृपकर्णादिभिः सार्धं शरैः सात्वतमावृणोत् ॥ ५० ॥ दुर्योधनस्तु विंशत्या कृपः शारद्वतस्त्रिभिः । कृतवर्माथ दशभिः कर्णः पञ्चाशता शरैः ॥ ५१ ॥ दुःशासनः शतेनैव वृषसेनश्च सप्तभिः । सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ५२ ॥ ततः स सात्यकी राजन् सर्वानेव महारथान् । विरथान् विमुखांश्चैव क्षणेनैवाकरोन्नृप ॥ ५३ ॥ अश्वत्थामा तु सम्प्राप्य चेतनां भरतर्षभ । चिन्तयामास दुःखार्तो निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ ५४ ॥ अथो रथान्तरं द्रौणिः समारुह्य परन्तपः । सात्यकिं वारयामास किरञ्छरशतान् बहून् ॥५५॥ तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य भारद्वाजसुतं रणे । विरथं विमुखञ्चैव पुन-

---

वह बाणोंके जालसे ढकगया, उस समय उसको नहीं सूझा, कि क्या करना चाहिये४९गुरुपुत्र अश्वत्थामाकी ऐसी दशा होगयी, उस समय तुम्हारा महारथी पुत्र, कृपाचार्य और कर्ण आदिके साथमें हो सात्यकीके बाण मारने लगा ॥ ५० ॥ दुर्योधनने बीस कृपाचार्यने तीन, कृतवर्माने दश, कर्णने पचास, दुःशासनने सौ और वृषसेनने सात इस प्रकार भिन्न२ महारथियोंने चारों ओर से तेज किये हुए बाण एकसाथ मारकर सात्यकीको घायल कर दिया ॥ ५१–५२ ॥ परन्तु हे राजन् ! सात्यकीने एक क्षणमें उन सब महारथियोंको रथहीन करके रणमें विमुख करदिया ५३ इतनेमें ही अश्वत्थामाको भान आया, वह दुःखसे आतुर होकर लंबे साँस लेता हुआ वारंवार विचार करने लगा, कि–अब क्या करना चाहिये ! ॥ ५४ ॥ परन्तप अश्वत्थामा फिर दूसरे रथ पर सवार होकर सात्यकीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करके उसको लड़ने से रोकनेलगा ॥ ५५ ॥ इस संग्राममें अश्वत्थामा ज्यों ही आया कि–महारथी सात्यकीने फिर रथके टुकड़े करके उसको रणमेंसे

रथके महारथः ॥ ५६ ॥ ततस्ते पाण्डवा राजन् दृष्ट्वा सात्यकिविक्रमम् । शंखशब्दान् भृशं चक्रुः सिंहनादांश्च नेदिरे ॥ ५७ ॥ एवं तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः । जघान वृषसेनस्य त्रिसाहस्रान् महारथान् ५८ अयुतं दन्तिनां सार्धं कृपस्य निजघान सः। पञ्चायुतानि चाश्वानां शकुनेर्निजघान ह ५९ ततो द्रौणिर्महाराज रथमारुह्य वीर्यवान्। सात्यकिं प्रति संक्रुद्धः प्रययौ तद्वधेप्सया ६० पुनस्तमागतं दृष्ट्वा शैनेयो निशितैः शरैः । अदारयत् क्रूरतरैः पुनः पुनररिन्दम ॥ ६१ ॥ सोऽतिविद्धो महेष्वासो नानालिंगैरमर्षणः। युयुधानेन वै द्रौणिः प्रहसन् वाक्यमब्रवीत् ॥ ६२ ॥ शैनेयाभ्युपपत्तिं ते जानाम्याचार्यघातिनीम् । न चैनं त्रास्यसि मया ग्रस्तमात्मानमेव च ॥ ६३ ॥ शपेत्मनाहं शैनेय सत्येन

विमुख करदिया ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! पाण्डव सात्यकीके ऐसे पराक्रमको देखकर वारम्वार शङ्खोंकी ध्वनि और गर्जनायें कर रहे थे ॥ ५७ ॥ पराक्रमी सात्यकीने अश्वत्थामाको रथसे हीन कर देनेके बाद वृषसेनके तीन हजार महारथियोंको मारडाला ५८ कृपाचार्यके पन्द्रह हजार हाथियोंको मारडाला तथा शकुनिके पचास हजार घोडों को मारडाला ॥ ५९ ॥ हे महाराज ! इतनेमें ही पराक्रमी अश्वत्थामा रथमें बैठकर क्रोधमें भरेहुए सात्यकीको मार डालनेकी इच्छासे उसके सामने आडटा ॥ ६० ॥ हे अरिंदमन राजन् ! अश्वत्थामाको फिर चढकर आया हुआ देखकर सात्यकी ने तेज किये हुए बड़े ही उग्र बाण उसके तले ऊपर मारना आरंभ करदिये ॥ ६१ ॥ महाधनुषधारी और असहनशील अश्वत्थामाको सात्यकीने बहुतसे बाण मार कर बींधदिया, तब उसने हँसकर सात्यकीसे कहा, कि–६२ हे सात्यकी ! तू आचार्यके मारने वालेका पक्ष करता है, यह मैं जानता हूँ, परन्तु मैंने तुझे घेरलिया है, इसलिये अब तू उसकी तथा अपनी रक्षा नहीं कर

तपसा तथा । अहत्वा सर्वपञ्चालान् यदि शान्तिमहं लभे ॥ ६४ ॥ यद्बलं पाण्डवेयानां वृष्णीनामपि यद्बलम् । क्रियतां सर्वमेवेह निहनिष्यामि सोमकान् ॥ ६५ ॥ एवमुक्त्वार्करश्म्याभं सुतीक्ष्णं तं शरोत्तमम् । व्यसृजत् सात्वते द्रौणिर्वज्रं वृत्रे यथा हरिः ६६ स तं निर्भिद्य तेनास्तः सायकः सशरावरम् । विवेश वसुधां भित्त्वा श्वसन् बिलमिवोरगः ॥ ६७ ॥ स भिन्नकवचः शूरस्तोत्रार्दित इव द्विपः । विमुच्य सशरञ्चापं भूरिव्रणपरिस्रवः ६८ सीदन्रुधिरसिक्तश्च रथोपस्थ उपाविशत् । सूतेनापहृतस्तूर्णं द्रोणपुत्राद्रथान्तरम् ६९ अथान्येन सुपुङ्खेन शरेणानतपर्वणा । आजघान भ्रुवोर्मध्ये धृष्ट-

---

सकेगा ६३ हे सात्यकी! मैं अपने सत्यकी और तपकी शपथ खाकर कहता हूँ, कि-सब पांचाल राजाओंका नाश किये बिना चैन नहीं लूँगा ॥ ६४ ॥ पाण्डवोंकी और सोमक राजाओंकी जितनी भी सेना हो, उस सब सेनाको इकट्ठी करलो, परन्तु मैं सोमकोंका बीजनाश ही करडालूँगा ॥ ६५ ॥ ऐसा कहकर, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरके ऊपर वज्रका प्रहार किया था तैसे ही अश्वत्थामाने बड़े तीखे और सूर्यकी किरणोंकी समान चमकते हुए बाण सात्यकी के ऊपर छोड़े ॥६६॥ अश्वत्थामाका मारा हुआ बाण सात्यकी के कवचसहित शरीरको फोड़कर जैसे साँप फुङ्कारें भरता हुआ बिलमें घुसजाता है तैसे ही पृथिवीको फोड़कर भीतर घुस गया ॥ ६७ ॥ वीर सात्यकीके कवचके चिथड़े होगये, इसलिये वह भालेसे मारेहुए हाथीकी समान होगया, उसने हाथमेंसे धनुष नीचे डालदिया उसके घावोंमेंसे बहुतसा रुधिर टपकनेलगा ६८ रुधिरमें भीगाहुआ सात्यकी वेदनासे दुःखित होता हुआ रथकी बैठक पर बैठगया, उस समय उसका सारथी तुरन्त उसको अश्वत्थामाके सामनेसे दूसरे स्थान पर लेगया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर वैरियोंको सन्ताप देनेवाले अश्वत्थामाने अच्छी पूँछवाला और

द्युम्नं परन्तपः ॥७०॥ स पूर्वमतिविद्धश्च भृशं पश्चात् सुमर्दितः ।
ससाद युधि पाञ्चाल्यो व्यपाश्रयत च ध्वजम् ॥७१॥ तं नाग-
मिव सिंहेन दृष्ट्वा राजन् शरार्दितम् । जवेनाभ्यद्रवञ्छूराः पञ्च
पाण्डवतो रथाः ॥७२॥ किरीटी भीमसेनश्च बृहत्क्षत्रश्च पौरवः।
युवराजश्च चेदीनां मालवस्तु सुदर्शनः ॥ ७३ ॥ एते हाहाकृताः
सर्वे प्रगृहीतशरासनाः । वीरं द्रौणायनिं वीराः सर्वतः पर्यवारयन्७४
ते विंशतिपदे यत्ता गुरुपुत्रममर्षणम् । पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणै-
रभ्यघ्नन् सर्वतः समम् ॥ ७५ ॥ आशीविषाभैःविंशत्या पञ्च-
भिश्च शितैः शरैः । चिच्छेद युगपद्द्रौणिः पञ्चविंशतिसाय-
कान् ॥ ७६ ॥ सप्तभिश्च शितैर्बाणैः पौरवं द्रौणिरार्दयत् । मालवं

नमे हुए पर्ववाला दूसरा बाण लेकर धृष्टद्युम्नकी दोनों भौंके बीच
में मारा ॥ ७० ॥ धृष्टद्युम्न पहलेसे ही बहुत घायल हो रहा था
और बादको भी अश्वत्थामाने उसको बहुत ही पीडा दी
थी, इस कारण वह निर्बल होगया था, तदनन्तर वह
ध्वजाके दण्डेका सहारा लेकर रथमें बैठगया ॥ ७१ ॥
हे राजन् ! जैसे सिंह हाथीको पीडा देता है,तैसे ही अश्वत्थामा
धृष्टद्युम्नको बहुत ही पीडित करनेलगा, यह देखकर पांडवोंकी
सेनामेंसे पाँच वीर महारथी बड़े वेगसे दौडआये ॥७२॥ धनञ्जय,
भीमसेन, पुरुवंशो वृद्धक्षत्र, चेदिका युवराज और मालवेका राजा
सुदर्शन ॥ ७३ ॥ इन सब महारथियोंने हो हो हो और हा हा हा
करतेहुए हाथमें धनुष लेकर वीर अश्वत्थामाको चारों ओरसे
घेरलिया ॥७४॥ और बीस पग पर दूर खड़ेहुए असनहशील
द्रोणपुत्रके उन सब महारथियोंने सावधान होकर एकसाथ पाँच२
बाण मारे ॥ ७५ ॥ अश्वत्थामाने भी उनके ऊपरको विषधर
सर्पोंकी समान, तेज कियेहुए पचीस बाण मारकर उनके पचीसों
बाणोंको काटडाला ॥ ७६ ॥ और फिर अश्वत्थामाने पुरुवंशी

त्रिभिरेकेन पार्थं षड्भिर्वृकोदरम् ॥ ७७ ॥ ततस्ते विव्यधुः सर्वे द्रौणिं राजन्महारथाः । युगपच्च पृथक् चैव रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ७८ ॥ युवराजश्च विंशत्या द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः । पार्थश्च पुनरष्टाभिस्तथा सर्वे त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ७९ ॥ ततोऽर्जुनं षड्भिरथाजघान द्रौणायनिर्दशभिर्वासुदेवम् । भीमं दशार्द्धैर्युवराजं चतुर्भिर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां मालवं पौरवञ्च ॥ ८० ॥ सूतं विद्ध्वा भीमसेनस्य षड्भिर्द्वाभ्यां छित्वा कार्मुकञ्च ध्वजञ्च । पुनः पार्थं शरवर्षेण विद्ध्वा द्रौणिर्घोरं सिंहनादं ननाद ॥ ८१ ॥ तस्यास्यतः सुनिशितान् पीतधारान् द्रोणेः शरान् पृष्ठतश्चाग्रतश्च । धरा वियद्द्यौः प्रदिशो दिशश्चच्छन्ना बाणैरभवन् घोररूपैः ॥ ८२ ॥ आसन्नस्य स्वरथं तीव्रतेजाः सुदर्शनस्येन्द्रकेतुप्रकाशौ । भुजौ

राजाके सात, मालवराजके तीन, अर्जुनके एक और भीमके छः वाण मारे ॥ ७७ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर उन सब महारथियोंने एकसाथ तथा अलग२ सोनेके परोंवाले और शिलापर घिसकर तेज कियेहुए वाण अश्वत्थामाके मारे ॥ ७८ ॥ चेदिके युवराजने अश्वत्थामाके बीस वाण मारे, अर्जुनने आठ वाण मारे और दूसरे सबोंने तीन२ वाण मारे ॥ ७९ ॥ अश्वत्थामाने छः वाण अर्जुनके, दश वाण श्रीकृष्णके, पाँच वाण भीमके, चार वाण चेदिके युवराजके और दो वाण मालवराजके तथा वृद्धक्षत्रके मारे ॥ ८० ॥ फिर भीमसेनके सारथीके छः वाण मारे, दो वाणोंसे उसके धनुषको और ध्वजाको काटडाला, फिर वाणोंकी वर्षा करके अर्जुनको बींधदिया और सिंहकी समान भयंकर गर्जना की ॥ ८१ ॥ अगले और पिछले भागमें पानी पिलाये हुए तीखी धारवाले वाणोंकी मारामार करतेहुए अश्वत्थामाके भयंकर वाणोंसे पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, दिशायें और कोने ढकगये ८२ तीव्र-तेजवाले और इन्द्रकी समान बलवान् अश्वत्थामाने अपने

शिरश्चेन्द्रसमानवीर्यस्त्रिभिः शरैर्युगपत् सञ्चकर्त्त ॥ ८२ ॥ स पौरवं रथशक्त्याभिहत्य छित्त्वा रथं तिलशश्चास्य बाणैः। छित्त्वा च बाहू वरचन्दनाक्तौ भल्लेन कायाच्छिर उच्चकर्त्त ॥ ८३ ॥ युवानमिन्दीवरदामवर्णञ्चेदिप्रभुं युवराजं प्रसह्य । बाणैस्त्वरावान् ज्वलिताग्निकल्पैर्विध्वा प्रादान्मृत्यवे साश्वसूतम् ॥ ८५ ॥ मालवं पौरवञ्चैव युवराजञ्च चेदिपम् । दृष्ट्वा समक्षं निहतं द्रोणपुत्रेण पाण्डवः ॥ ८६ ॥ भीमसेनो महाबाहुः क्रोधमाहारयत् परम् । ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः स क्रुद्धाशीविषोपमैः ॥ ८७ ॥ छादयामास समरे द्रोणपुत्रं परन्तपः । ततो द्रौणिर्महातेजाः शरवर्षं निहत्य तम् ॥ ८८ ॥ विव्याध निशितैर्बाणैर्भीमसेनममर्षणः । ततो भीमो महाबाहुर्द्रौणेर्युधि महाबलः ॥ ८९ ॥ क्षुरप्रेण धनु-

---

रथके पास खड़े हुए सुदर्शनकी इन्द्रकी ध्वजाकी समान प्रकाशवान् दोनों भुजाओंको तथा मस्तकको तीन बाण मारकर एकसाथ काटडाला ॥८२॥ फिर रथशक्तिसे वृद्धक्षत्रको मारडाला, बाणोंसे उसके रथके तिल२ की समान खण्ड करडाले, अच्छे प्रकारसे चन्दन लगीहुई दोनों बाहुओंको भी काट डाला और भल्ल नाम का बाण मारकर उसके शरीर परसे उसके शिरको उडादिया ८३ फिर कमलोंकी मालाकी समान कान्तिवाले चेदिदेशके तरुण युवराजको जोर लगाकर फुरतीसे अग्निकी समान प्रज्वलित बाण मारकर सारथी तथा घोडोंके सहित यमलोकमें भेजदिया ८५ अश्वत्थामाने मालवराज, पौरवराज और चेदिदेशके युवराजको हमारे सामने मारडाला, यह देखकर पाण्डुपुत्र भीमसेनको बडा ही क्रोध चढा, उसने कुपित हुए विषधर सर्पकी समान सैंकडों बाण मारकर रणमें अश्वत्थामाको ढकदिया, परन्तु अश्वत्थामाने उसकी बाण वर्षाका नाश कर डाला ॥ ८६-८८॥ और फिर असहनशील अश्वत्थामाने तेज बाणोंसे भीमसेनको घायल किया, महा-

छित्वा द्रौणिं विव्याध पत्रिणा । तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणपुत्रो महामनाः ॥९०॥ अन्यत् कार्मुकमादाय भीमं विव्याध पत्रिभिः । तौ द्रौणिभीमौ समरे पराक्रान्तौ महावलौ ॥ ९१ ॥ अवर्षतां शरवर्षं वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ। भीमनामाङ्किता वाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ ९२ ॥ द्रौणिं सञ्छादयामासुर्मेघौघा इव भास्करम् । तथैव द्रौणिनिर्मुक्तैर्भीमः सन्नतपर्वभिः ॥ ९३ ॥ अवाकीर्यत स क्षिप्रं शरैः शतसहस्रशः । सञ्छाद्यमानः समरे द्रौणिना रणशालिना ॥ ९४ ॥ न विव्यथे महाराज तदद्भुतमिवाभवत् । ततो भीमो महावाहुः कार्त्तस्वरविभूषितान् ॥ ९५ ॥ नाराचान् दश सम्प्रैषीद्यमदण्डनिभाञ्छितान् । ते जत्रुदेशमासाद्य द्रोणपुत्रस्य मारिष॥९६॥निर्भिद्य विविशुस्तूर्णं वल्मीकमिव पन्नगाः ।

बली और महावाहु भीमने क्षुरप्र नामके वाणोंसे अश्वत्थामाके धनुषको काट डाला और उसको वाणोंसे बींधकर बड़े मनवाले अश्वत्थामाने कटेहुए धनुषको फेंकदिया ॥ ८९–९० ॥ और दूसरा धनुष लेकर भीमसेनके वाण मारना आरम्भ करदिया, इस समय रणमें महावली और महावाहु अश्वत्थामा तथा भीमसेन जल वरसातेहुए दो मेघोंकी समान वाणोंकी वर्षा कररहे थे. भीमका नाम खुदेहुए, सोनेके परोंवाले और सान पर धरकर तेज कियेहुए वाण अश्वत्थामाको इसप्रकार ढकनेलगे जैसे मेघके पटल सूर्यको ढकदेते हैं और दूसरी ओर अश्वत्थामाके मारेहुए नमेहुए पर्ववाले वाण भीमको ढकनेलगे ॥९१–९३॥ युद्धमें कुशल अश्वत्थामाने सैंकडों और सहस्रों वाणोंसे भीमको ढकदिया, तो भी उसके मनमें जरा भी दुःख नहीं हुआ, यह एक अद्भुत वात हुई, तदनन्तर महावाहु भीमने सोनेसे सजायेहुए और यमराजके दण्डकी समान तेज दश वाण मारे, हे राजन् ! वे वाण अश्वत्थामाकी कण्ठकी हँसलीको वींधकर जैसे साँप विलमें घुसजाते,

सोऽनिविद्धो भृशं द्रौणिः पाण्डवेन महात्मना ॥ ९७ ॥ ध्वजयष्टिं समाश्रित्य न्यमीलयत लोचने । स मुहूर्त्तात् पुनः संज्ञां लब्ध्वा द्रौणिर्नराधिप ॥ ९८ ॥ क्रोधं परममातस्थौ समरे रुधिरोक्षितः । दृढं सोऽभिहतस्तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ ९९ ॥ वेगञ्चक्रे महाबाहुर्भीमसेनरथं प्रति । तत्र आकर्णपूर्णानां शराणां तिग्मतेजसाम् ॥१००॥ शतमाशीविषाभानां प्रेषयामास भारत । भीमोऽपि समरश्लाघी तस्य वीर्यमचिन्तयन् ॥ १०१ ॥ तूर्णं प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः । ततो द्रौणिर्महाराज छित्त्वास्य विशिखैर्धनुः ॥ १०२ ॥ आजघानोरसि क्रुद्धः पाण्डवं निशितैः शरैः । ततोऽन्यद्धनुरादाय भीमसेनोऽत्यमर्षणः ॥ १०३ ॥ विव्याध निशितैर्बाणैर्द्रौणिं पञ्चभिराहवे । जीमूताविव घर्मान्ते तौ शरौघप्रव-

---

है तैसे ही तुरन्त उसकी हँसलीके भीतर वैठगये, महात्मा पांडुपुत्र भीमने अश्वत्थामाको खूब ही घायल किया, इससे उसकी आँखें मिचगयीं और वह ध्वजाके दण्डेका सहारा लेकर वैठगया, कुछ देर वाद जब उसको होश आया तब हे राजन् ! ॥ ९४-९८ ॥ लोहूलुहान हुआ अश्वत्थामा कि-जिसको भीमसेनने वहुत ही घायल करदिया था वह वड़े क्रोधमें भरकर वेगसे भीमसेनके रथकी ओरको दौडा और धनुषको कानतक खेंचकर तीक्ष्ण तेजवाले विषधर सर्पोंकी-समान सौ वाण भीमसेनके मारे, हे भरतवंशी राजन ! युद्धमें प्रशंसा पानेवाला भीमसेन भी उसके पराक्रमका विचार करनेलगा और उसने भी तुरन्त उग्र वाणोंकी वृर्षा करना आरम्भ करदी, हे महाराज ! अश्वत्थामाने क्रोध करके वाणोंसे भीमके धनुषको काटडाला ॥ ९९-१०२ ॥ और फिर क्रोधमें भरकर उसकी छातीमें तेज कियेहुए वाण मारे, भीमसेन इस बातको सह न सका और दूसरा धनुष लेकर तेज कियेहुए पाँच वाण अश्वत्थामाके मारे और फिर दोनोंजने जैसे चौमासेमें मेघ

पिणौ ॥ १०४ ॥ अन्योन्यं क्रोधताम्राक्षौ छादयामासतुर्युधि । तलशब्दैस्ततो घोरैस्त्रासयन्तौ परस्परम् ॥ १०५ ॥ अयुध्येतां सुसंरब्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ । ततो विस्फार्य सुमहच्चापं रुक्मविभूषितम् ॥ १०६ ॥ भीमं प्रैक्षत स द्रौणिः शरानस्यन्तमन्तिकात् । शरद्यहर्मध्यगतो दीप्तार्चिरिव भास्करः ॥ १०७ ॥ आददानस्य विशिखान् सन्दधानस्य चाशुगान् । विकर्षतो मुञ्चतश्च नान्तरं ददृशुर्जनाः ॥ १०८ ॥ अलातचक्रप्रतिमं तस्य मण्डलमायुधम् । द्रौणेरासीन्महाराज बाणान् विसृजतस्तदा ॥ १०९ ॥ धनुश्च्युताः शरास्तस्य शतशोऽथ सहस्रशः । आकाशे प्रत्यदृश्यन्त शलभानामिवायतीः ॥ ११० ॥ ते तु द्रौणिधनुर्मुक्ताः शरा हेम-

वर्षा करते हैं तैसे ही एक दूसरेके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १०३–१०४ ॥ और क्रोधसे लाल लाल आँखें करके बाणोंसे एक दूसरेको ढकने लगे, हथेलियोंके घोर शब्दोंसे एक दूसरेको त्रास देने लगे तथा एक दूसरेसे बदला लेनेकी इच्छासे बड़े ही क्रोधमें भरकर लडने लगे, इस प्रकार युद्ध करते२ अश्वत्थामा सुवर्णसे शोभायमान बड़े भारी धनुष पर टङ्कार देरहा था और समीपमें ही बाण छोड़ते हुए भीमसेनकी ओरको देखता जाता था, इस समय अश्वत्थामा शरद् ऋतुमें मध्याह्नमें तपनेवाले कान्तिमान् सूर्यकी समान दिपरहा था ॥ १०५–१०७ ॥ अश्वत्थामा बाण लेता था, उनको चढाता था, उसको खेंचता था और बाणों को छोड़ता था, इन सब कामोंको वह किस समय करता है, इस बातको लोग देख नहीं सकते थे ॥ १०८ ॥ हे महाराज ! अश्वत्थामा जिस समय बाणोंको छोडता था, उस समय उसका मण्डलाकार धनुष घूमतीहुई बनैटीसा दीखता था ॥ १०९ ॥ उसके धनुषमेंसे सैंकडों और सहस्त्रों बाण छूटरहे थे, वे आकाशमें पहुँचनेपर टीडीदलसे मालूम होते थे ॥ ११० ॥ अश्वत्थामाके छोडेहुए

विभूषिताः । अजस्रमन्वकीर्यन्त घोरा भीमरथं प्रति ॥ १११ ॥ तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् । बलं वीर्यं प्रभावञ्च व्यवसायञ्च भारत ॥ ११२ ॥ तां समेघादिवोद्भूतां बाणवृष्टिं समन्ततः । जलवृष्टिं महाघोरां तपान्त इव चिन्तयन् ॥ ११३ ॥ द्रोणपुत्रवधप्रेप्सुर्भीमो भीमपराक्रमः । अमुञ्चच्छरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकः ॥ ११३ ॥ तद्रुक्मपृष्ठं भीमस्य धनुर्घोरं महद्रणे । विकृष्यमाणं विबभौ शक्रचापमिवापरम् ॥ ११५ ॥ तस्माच्छराः प्रादुरासञ्छतशोऽथ सहस्रशः । सञ्छादयन्तः समरे द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ ११६ ॥ तयोर्विसृजतोरेवं शरजालानि मारिष । वायुरप्यन्तरा राजन्नाशक्नोत् स विसर्पितुम् ॥ ११७ ॥ तथा द्रौणि-

---

सुवर्णसे सजे भयानक बाण भीमके रथपर तड़२ पड़ने लगे १११ हे भरतवंशी राजन् ! इस युद्धमें भीमसेनका अद्भुत पराक्रम, अद्भुत बल, अद्भुत वीरता, अद्भुत प्रभाव और अद्भुत व्यवसाय हमारे देखनेमें आया था ॥ ११२ ॥ जैसे चौमासेमें मेघोंमेंसे जलकी महाघोर वर्षा पडती है तैसे ही अश्वत्थामाके चारोंओरसे छूटते हुए बाणोंकी अद्भुत वर्षा होने लगी, उसको देखकर भीमसेन विचारमें पडगया ॥ ११३ ॥ फिर अश्वत्थामाको मार डालनेकी इच्छासे महापराक्रमी भीमसेन जैसे चौमासे में मेघ वर्षा करता है तैसेही बाण बरसाने लगा ॥ ११४ ॥ उस महारणमें सुवर्णकी पीठवाला महाभयानक भीमका धनुष जब भीमके हाथसे खिचता था, उस समय वह दूसरे इन्द्र धनुषकी समान शोभायमान मालूम होता था ॥ ११५ ॥ उस धनुषमेंसे सैंकडों और सहस्रों बाण बाहर निकल कर युद्धमें दिपते हुए अश्वत्थामाको ढकरहे थे ॥ ११६ ॥ हे राजन् ! दोनों जने ऐसी बाणवर्षा कररहे थे, कि उसके बीचमेंको वायु भी निकल कर नहीं जासकता था ॥ ११७ ॥ हे महाराज ! अश्वत्थामा भी, सोने

महाराज शरान् हेमविभूषितान्। तैलधौतान् प्रसन्नाग्रान् प्राहिणोद्वधकांक्षया ॥ ११८ ॥ तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत्। विशेषयन् द्रोणसुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ११९ ॥ पुनश्च शरवर्षाणि घोराण्युग्राणि पाण्डवः। व्यसृजद्‍ बलवान् क्रुद्धो द्रोणपुत्रवधेप्सया ॥ १२० ॥ ततोऽस्त्रमायया तूर्णं शरवृष्टिं निवार्य ताम्। धनुश्चिच्छेद भीमस्य द्रोणपुत्रो महास्त्रवित् १२१ शरैश्चैनं सुबहुभिः क्रुद्धः संख्ये पराभिनत्। स छिन्नधन्वा बलवान् रथशक्तिं सुदारुणाम् ॥ १२२ ॥ वेगेनाविध्य चिक्षेप द्रोणपुत्ररथं प्रति। तामापतन्तीं सहसा महोल्काभां शितैःशरैः१२३ चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन् पाणिलाघवम्। एतस्मिन्नन्तरे भीमो

से सजे, तेज किये हुए तीखी नोकवाले बाण भीमका नाश करने की इच्छासे छोडने लगा ॥ ११८ ॥ उस समय भीमसेनने सामने से बाण मारकर आकाशमार्गसे आते हुए अश्वत्थामाके एक २ बाणके एक२ बाणसे तीन२टुकड़े करडाले और अश्वत्थामासे अधिक होकर गरज उठा, कि–खडा रह ! खडा रह ! ॥११९॥ और फिर बलवान् भीमसेनने क्रोधमें भरकर अश्वत्थामाको मारने की इच्छासे बाणोंकी घोर और उग्र मार आरम्भ करदी॥१२०॥ फिर बड़े भारी अस्त्रवेत्ता द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने अस्त्रकी मायासे तुरन्त भीमकी बाणवर्षाको रोक दिया, भीमके धनुषको काट डाला ॥१२१॥ और बहुतसे बाण मार कर रणमें भीमको घायल करदिया, अपना धनुष कटजाने पर बलवान् भीमने बडी दारुण रथशक्ति हाथमें ली और वह रथशक्ति बड़े जोरसे अश्वत्थामाके रथ पर फेंकी, अश्वत्थामाने तेज किये हुए बाण मारकर बड़े भारी उल्काकी समान एकायकी अपने ऊपर आती हुई उस रथशक्तिके टुकड़े २ कर डाले और अपने हाथकी फुरती सबको दिखलाई इतनेमें ही भीमने दृढ धनुष लेकर हँसते २ अश्वत्थामा

दृढमादाय कार्मुकम् ॥ १२४ ॥ द्रौणिं विव्याध विशिखैः स्मयमानो वृकोदरः । ततो द्रौणिर्महाराज भीमसेनस्य सारथिम् १२५ ललाटे दारयामास शरेणानतपर्वणा । सोऽतिविद्धो बलवता द्रोणपुत्रेण सारथिः ॥ १२६ ॥ व्यामोहमगमद्राजन् रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम् । ततोऽश्वाः प्राद्रवंस्तूर्णं मोहिते रथसारथौ ॥ १२७ ॥ भीमसेनस्य राजेन्द्र पश्यतां सर्वधन्विनाम् । तं दृष्ट्वा प्रद्रुतैरश्वैरपकृष्टं रणाजिरात् ॥ १२८ ॥ दध्मौ प्रमुदितः शंखं बृहन्तमपराजितः । ततः सर्वे च पञ्चाला भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ १२९ ॥ धृष्टद्युम्नरथं त्यक्त्वा भीताः सम्प्राद्रवन् दिशः । तान् प्रभग्नांस्ततो द्रौणिः पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥ १३० ॥ अभ्यवर्त्तत वेगेन कालयन् पाण्डुवाहिनीम् । ते वध्यमाना समरे द्रोणपुत्रेण क्षत्रियाः । द्रोणपुत्रभयाद्राजन् दिशः सर्वाश्च भेजिरे ॥१३१॥ छ

के बहुतसे बाण मारे, तब हे महाराज ! अश्वत्थामाने भीमके सारथीके ललाटको नमेहुए पर्ववाला बाण मारकर चीरदिया, इस प्रकार बलवान द्रोणपुत्रने सारथीको बहुत ही बींध डाला, तब तो उसने घोड़ोंकी रासें हाथमेंसे छोडदीं, मूर्छित होगया, सारथीके अचेत होते ही भीमसेनके घोड़े सब धनुषधारियोंके देखते हुए इधर उधरको भागने लगे ॥ १२२-१२७ ॥ इस प्रकार घोड़े भीमसेनको खेंचकर रणमेंसे बाहर लेगये, उस समय अजित अश्वत्थामाने अपना बड़ा शङ्ख बजाया और सब पांचाल राजे तथा भीमसेन भयभीत होकर धृष्टद्युम्नके रथको छोड चारों ओरको भागनिकले, अश्वत्थामाने भागतेहुए योधाओंके पीछेसेबाण छोडना आरम्भ करदिये ॥ १२८-१३० ॥ और पाण्डवोंकी सेनाको घबडाकर भगादिया, पाण्डवोंकी सेनाके राजेभी युद्धमें अश्वत्थामाके हाथसे मार खानेलगे और उसके भयसे चारों दिशाओंमेंको भागनेलगे ॥ १३१ ॥ दोसौवाँ अध्याय समाप्त ॥ २०० ॥

सञ्जय उवाच। तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः। न्यवारयदमेयात्मा द्रोणपुत्रजयेप्सया ॥ १ ॥ ततस्ते सैनिका राजन्नैव तत्रावतस्थिरे। संस्थाप्यमाना यत्नेन गोविन्देनार्जुनेन च ॥ २॥ एक एव च बीभत्सुः सोमकावयवैः सह। मत्स्यैरन्यैश्च सन्धाय कौरवान् संन्यवर्त्तत ॥३॥ ततो द्रुतमतिक्रम्य सिंहलांगूलकेतनम्। सव्यसाची महेष्वासमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥ ४ ॥ या शक्तिर्यच्च विज्ञानं यद्वीर्यं यच्च पौरुषम्। धार्त्तराष्ट्रेषु या प्रीतिः द्वेषोऽस्मासु च यच्च ते ॥ ५ ॥ यच्च भूयोस्ति तेजस्तत् सर्वं मयि प्रदर्शय। स एव द्रोणहन्ता ते दर्पं छेत्स्यति पार्षतः ६ कालानलसमप्रख्यं द्विषतामन्तकोपमम्। समासादय पाञ्चाल्यं माञ्चापि सह केशवम्। दर्पं नाशयितास्म्यद्य तवोद्वृत्तस्य संयुगे७

सञ्जयने कहा, कि–हे राजा धृतराष्ट्र! अपार बलवाले अर्जुनने अपनी सेनामें भागड़ पड़ती देखकर अश्वत्थामाका पराजय करनेकी इच्छासे अपनी सेनाके भागनेसे रोका ॥ १ ॥ अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनोंने सैनिकोंको खड़े रखनेका उद्योग किया, तो भी वे रणमें खड़े न रहसके ॥२॥ तदनन्तर अर्जुनने सोमक वंशके राजे, माण्डलिक राजे, मत्स्यदेशके राजे तथा और भी कितने ही राजाओंको साथमें ले बाण मारकर कौरवोंको पीछेको हटादिया और तुरन्त ही अश्वत्थामाके समीपमें आकर महाधनुष-धारी अश्वत्थामासे कहा, कि–॥३-४॥ हे अश्वत्थामा! तुममें जितनी शक्ति, जितना विज्ञान, जितनी वीरता, जितना पुरुषार्थ, धृतराष्ट्रके पुत्रोंपर जितनी प्रीति और हमारे ऊपर जितना द्वेष हो वह सब इस समय दिखलाओ ॥५॥ तुममें जितना तेज हो, उस सबका हमारे ऊपर व्यवहार करो, द्रोणको मारनेवाला धृष्टद्युम्न तुम्हारे सब गर्वका नाश करदेगा ॥ ६ ॥ प्रलयकालकी समान और वैरियोंके कालकी समान धृष्टद्युम्नके, मेरे और श्रीकृष्णके

धृतराष्ट्र उवाच । आचार्यपुत्रो मानार्हो बलवांश्चापि संजय । प्रीतिर्धनञ्जये चास्य प्रियश्चापि महात्मनः ॥ ८ ॥ न भूतपूर्वं बीभत्सोर्वाक्यं परुषमीदृशम् । अथ कस्मात् स कौन्तेयः सखायं रूक्षमब्रवीत् ॥ ९ ॥ सञ्जय उवाच । युवराजे हते चैव वृद्धक्षत्रे च पौरवे । इष्वस्त्रविधिसम्पन्ने मालवे च सुदर्शने ॥ १० ॥ धृष्टद्युम्ने सात्यकौ च भीमे चापि पराजिते । युधिष्ठिरस्य तैर्वाक्यैर्मर्मण्यपि च घट्टिते ११ अन्तर्भेदे च सञ्जाते दुःखं संस्मृत्य च प्रभो । अभूतपूर्वो बीभत्सोर्दुःखान्मन्युरजायत ॥ १२ ॥ तस्मादनर्हमश्लीलमप्रियं द्रौणिमब्रवीत् । मान्यमाचार्यतनयं रूक्षं कापुरुषं यथा ॥ १३ ॥ एवमुक्तः श्वसन् क्रोधान्महेष्वासतमो नृप । पार्थेन परुषं वाक्यं सर्वमर्मभिदा

सामने लडनेको आ जा, आज युद्धमें तेरी उद्धतताके सारे गर्वको उतार दूँगा ॥७॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे सञ्जय! आचार्यका पुत्र अश्वत्थामा सन्मानका पात्र है, बलवान् है और उसकी महात्मा अर्जुनके ऊपर प्रीति है ॥८॥ तो भी जैसा पहले कभी नहीं कहा था ऐसा तीव्र वाक्य सखा अर्जुनने अश्वत्थामासे किस लिये कहा ? ॥ ९ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि–चेदिदेशके युवराजको, पुरुवंशके वृद्धक्षत्रको तथा धनुष और बाणके प्रयोगमें चतुर मालवके राजा सुदर्शनको अश्वत्थामाने मारडाला, उसके अनन्तर ।१०। धृष्टद्युम्नको सात्यकीको और भीमसेनको हरादिया तब युधिष्ठिरके वाक्योंसे मर्मस्थानोंमें चोट लगनेसे ॥११॥ तथा पुत्र अभिमन्युके मरणकी याद आते ही हृदयमें अतीव दुःख होनेके कारण अर्जुनको ऐसा क्रोध आया कि जैसा पहले कभी नहीं आया था १२ इसलिये ही अर्जुनने आचार्यके माननीय पुत्र अश्वत्थामासे ऐसे अप्रिय और अनुचित वचन कहे, कि–जैसे तीक्ष्ण वचन किसी क्षुद्र पुरुषसे कहे जाते हैं ॥ १३ ॥ हे राजन्! अर्जुनके तीक्ष्ण और मर्मभेदी वचनोंको सुनकर महाधनुषधारी अश्वत्थामा क्रोधमें

गिरा ॥ १४ ॥ द्रौणिश्चुकोप पार्थाय कृष्णाय च विशेषतः । स तु यत्तो रथे स्थित्वा वार्युपस्पृश्य वीर्यवान् ॥ १५ ॥ देवैरपि सुदुर्द्धर्षमस्त्रमाग्नेयमाददे । दृश्यादृश्यानरिगणानुद्दिश्याचार्यनन्दनः॥१६ ॥सोऽभिमन्त्र्य शरं दीप्तं विधूममिव पावकम् । सर्वतः क्रोधमाविश्य चिक्षेप परवीरहा ॥ १७ ॥ ततस्तुमुलमाकाशे शरवर्षमजायत । पावकार्चिः परीतं तत् पार्थमेवाभिपुप्लुवे ॥ १८ ॥ उल्काश्च गगनात् पेतुर्दिशश्च न चकाशिरे । तमश्च सहसा रौद्रं चमूमवततार ताम् ॥१९॥रक्षांसि च पिशाचाश्च विनेदुरभिसङ्गताः । ववुश्चाशिशिरा वाताः सूर्यो नैव तताप च ॥२०॥ वायसाश्चापि चाक्रन्दन् दिक्षु सर्वासु भैरवम् । रुधिरञ्चाभिवर्षन्तो विनेदुस्तोयदा दिवि ॥ २१ ॥ पक्षिणः पशवो गावो विनेदु-

---

आकर लम्बे२ साँस लेनेलगा और अर्जुन तथा कृष्णके ऊपर बड़े क्रोधमें होगया, फिर रथमें बैठ सावधान होकर आचमन किया और जिसको देवता भी न हटासकें ऐसा अग्न्यस्त्र हाथमें लिया, उसको मंत्रोंसे अभिमंत्रित करके दीखनेवाले तथा न दीखनेवाले सब वैरियोंको नष्ट करनेके लिये अग्निकी समान जलते हुए उस बाणको क्रोधमें भरकर वैरियोंके ऊपर छोड़ा १४-१७ तुरन्त ही आकाशमेंसे बाणोंकी घोर वर्षा होनेलगी, चारों ओरको फैलाहुआ अस्त्रका तेज अर्जुनके ऊपर आपड़ा ॥१८॥ आकाशमेंसे ऊके गिरनेलगे दिशाओंमें अन्धकार छागया और एकाएकी हुए उस अन्धकारने पाण्डवोंकी सेनाको ढकदिया १९ राक्षस और पिशाच बड़े आवेशमें आकर गरजनेलगे, कम्पायमान करदेनेवाले पवन चलनेलगे सूर्यका तपना बन्द होगया, सब दिशाओंमें कौए भयानकरूपसे काँव२ करनेलगे मेघ आकाशमेंसे रुधिरकी वर्षा करनेलगे, पक्षी, पशु और गौएँ धीरज रखने पर भी घबराहटमें पड़गये और जोर२ से शब्द करनेलगे, मनको वशमें

श्चापि सुव्रताः । परमं प्रयतात्मानो न शान्तिमुपलेभिरे ॥ २२ ॥ भ्रान्तसर्वमहाभूतमावर्तितदिवाकरम् । त्रैलोक्यमभिसन्तप्तं ज्वराविष्टमिवाभवत् ॥ २३ ॥ अस्त्रतेजोऽभिसन्तप्ता नागा भुविशयास्तथा । निःश्वसन्तः समुत्पेतुस्तेजो घोरं मुमुक्षवः ॥ २४ ॥ जलजानि च सत्त्वानि दह्यमानानि भारत । न शान्तिमुपजग्मुर्हि तप्यमानैर्जलाशयैः ॥ २५ ॥ दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यः खाद् भूमेः सर्वतः शरवृष्टयः । उच्चावचानि पेतुर्वै गरुडानिलरंहसः ॥२६॥ तैः शरैर्द्रोणपुत्रस्य वज्रवेगैः समाहताः । प्रदग्धाः शत्रवः पेतुरग्निदग्धा इव द्रुमाः ॥ २७ ॥ दह्यमाना महानागाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः । नदन्तो भैरवान्नादान् जलदोपमनिःस्वनान् ॥२८॥ अपरे प्रद्रुता

रखनेवाले व्रतधारी मुनिजन भी घबडागये ॥ २०-२२ ॥ सकल प्राणी चक्कर खानेलगे, सूर्य निस्तेज होगया और तीनों लोक ऐसे तपगये, कि-जैसे ज्वर चढआया हो ॥ २३ ॥ उस अस्त्रके तेजसे अत्यन्त ताप पायेहुए हाथी भी उसमेंसे बचनेकी इच्छासे साँस लेतेहुए पृथिवी पर लोटनेलगे ॥ २४ ॥ जलाशयोंके गरम होजानेसे जलचर प्राणी भी जलनेलगे, वे इतने अधिक तपगये, कि-उनको किसीप्रकार शान्ति ही नहीं मिलती थी ॥ २५ ॥ दिशाओंमेंसे, कोनोंमेंसे, आकाशमेंसे और भूमिपरसे इसप्रकार चारों ओर छोटी बडी गरुड और पवनकी समान वेगसे बाणोंकी वर्षा होनेलगी ॥ २६ ॥ अश्वत्थामाके वज्रकी समान वेगवाले बाणोंसे मरेहुए और अस्त्रके तेजसे झुलसेहुए वैरी अग्निसे जलेहुए वृक्षोंकी समान टूटकर पृथिवी पर गिरनेलगे ॥ २७ ॥ अस्त्रके तेजसे झुलसे हुए बड़े२ हाथी मेघकी समान भयानकरूपसे गरजतेहुए चारों ओरसे पृथिवी पर गिरनेलगे ॥२८॥ कितने ही हाथी पहले वनमें घूमते समय दावानलसे घिरकर जिसप्रकार दिशाओंमेंको भागते फिरे थे तिसप्रकार भयसे त्रस्त होकर रण-

नागा भयत्रस्ता विशांपते। त्रेसुर्दिशो यथापूर्वं वने दावाग्निसंवृताः॥२९ द्रुमाणां शिखराणीव दावदग्धानि मारिष । अश्ववृन्दान्यदृश्यन्त रथवृन्दानि वा विभो ॥ ३० ॥ अपतन्त रथौघाश्च तत्र तत्र सहस्रशः । तत्सैन्यं भयसंविग्नं ददाह युधि भारत ॥ ३१ ॥ युगान्ते सर्वभूतानि सम्वर्त्तक इवानलः । दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां दह्यमानां महाहवे ॥ ३२ ॥ प्रहृष्टास्तावका राजन् सिंहनादान् विनेदिरे । ततस्तूर्यसहस्राणि नानालिङ्गानि भारत ॥ ३३ ॥ तूर्णमाजघ्निरे हृष्टास्तावका जितकाशिनः । कृत्स्ना ह्यक्षौहिणी राजन् सव्यसाची च पाण्डवः ॥ ३४ ॥ तमसा संवृते लोके नादृश्यन्त महाहवे । नैवं नस्तादृशं राजन् दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥ ३५ ॥ यादृशं द्रोणपुत्रेण सृष्टमस्त्रममर्षिणा । अर्जुनस्तु महाराज ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ३६

भूमिमें इधर उधरको भागनेलगे ॥ २९ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! दावानलसे जलेहुए वृक्षोंके शिखर जैसे दीखा करते हैं, तैसे ही घोड़ोंका तथा रथोंका समूह दीखनेलगा ॥ ३० ॥ हजारों रथ और रथी भी आग्नेयास्त्रसे जलकर रणमें गिरनेलगे हे भारत ! रणमें भयभीतहुआ सेनादल सुलग उठा ॥ ३१ ॥ और जैसे प्रलयके समय संवर्त्तक नामका अग्नि सब प्राणियोंको जलाकर भस्म करता है तैसे ही इस युद्धमें पाण्डवोंकी सेना भी आग्नेयास्त्रसे जलनेलगी, हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र यह देखकर अपनी विजय होनेके कारण बड़ेभारी हर्षमें भरगये, वे सिंहकी समान गरजनेलगे, और तुरन्त अनेकों प्रकारके सहस्रों बाजे बजानेलगे, इस समय सब जगत् अन्धकारसे ढकगया था, इस कारण उस महायुद्धमें अर्जुन तथा उसकी अक्षौहिणी सेना यह कुछ भी नहीं दीखता था, अश्वत्थामाने अमर्षमें आकर जैसा अस्त्र मारा वैसा अस्त्र पहले हमने न देखा था, न सुना था॥३२-३५ फिर अर्जुनने सामने से सब प्रकारके अस्त्रोंका नाश करनेके लिये ब्रह्माका रचाहुआ

सर्वास्त्रप्रतिघाताय विहितं पद्मयोनिना । ततो मुहूर्त्तादिव तत्तमो व्युपशशाम ह ॥ ३७ ॥ प्रववौ चानिलः शीतो दिशश्च विमला बभुः । तत्राद्भुतमपश्याम कृत्स्नामक्षौहिणीं हताम् ॥ ३८ ॥ अनभिज्ञेयरूपाञ्च प्रदग्धामस्त्रतेजसा । ततो वीरौ महेष्वासौ विमुक्तौ केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥ सहितौ प्रत्यदृश्येतां नभसीव तमोनुदौ । ततो गाण्डीवधन्वा च केशवश्चाक्षतावुभौ ॥ ४० ॥ सपताकध्वजहयः सानुकर्षवरायुधः। प्रबभौ स रथो मुक्तस्तावकानाम्भयङ्करः ४१ ततः किलकिलाशब्दः शङ्खभेरीस्वनैः सह । पाण्डवानां प्रहृष्टानां क्षणेन समजायत ॥ ४२ ॥ हताविति तयोरासीत् सेनयोरुभयोर्मतिः । तरसाभ्यागतौ दृष्ट्वा विमुक्तौ केशवार्जुनौ ॥ ४३ ॥ ताव-

---

ब्रह्मास्त्र मारा, जिससे, कि–एक मुहूर्त्तमें ही अन्धकार शान्त हो गया ॥ ३६-३७ ॥ शीतल पवन चलने लगा और दिशायें निर्मल होकर प्रकाशित होने लगीं, फिर हमने तहाँ एक अद्भुत बात यह देखी, कि–पाण्डवोंकी एक अक्षौहिणी सेना अग्न्यस्त्रके तेजसे जलकर भस्म होगयी थी और अश्वत्थामाके अस्त्रके तेजसे जली हुई उस सेनाका चिह्नतक नहीं मालूम होता था, अन्धकार दूर होगया और महाधनुषधारी वीर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन, आकाशमें बादलोंसे ढके हुए सूर्य और चन्द्रमाकी समान एक साथ दीखने लगे श्रीकृष्ण और गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन दोनोंके शरीरों पर जरा भी चोट नहीं आयी थी ॥ ३८–४० ॥ तथा पताका, ध्वजा, घोड़े अनुकर्ष तथा उत्तम आयुधोंके सहित अर्जुनका रथ भी सेनाके मध्यमें शोभा पा रहा था, उसको देखकर तुम्हारे पुत्र डर गये, दोनों सेनादल यह समझ रहे थे, कि–अर्जुन तथा श्रीकृष्णका मरण होगया है, परन्तु अर्जुन और कृष्णको एक साथ एकायकी अन्धकारमेंसे बाहर निकले हुए देखकर पाण्डव हर्षमें भरगये और वे तुरन्त ही शङ्ख तथा भेरियोंके शब्दोंके साथ

त्तनौ प्रमुदितौ दध्मतुर्वारिजोत्तमौ । दृष्ट्वा प्रमुदितान् पार्थांस्त्वदीया व्यथिता भृशम् ॥ ४४ ॥ विमुक्तौ च महात्मानौ दृष्ट्वा द्रौणिः सुदुःखितः । मुहूर्त्तं चिन्तयामास किन्त्वेतदिति मारिष ॥ ४५ ॥ चिन्तयित्वा तु राजेन्द्र ध्यानशोकपरायणः । निःश्वसन् दीर्घमुष्णञ्च विमनाश्चाभवत्ततः ॥ ४६ ॥ ततो द्रौणिर्धनुर्न्यस्य रथात् प्रस्कन्द्य वेगितः । धिग्धिक् सर्वमिदं मिथ्येत्युक्त्वा सम्प्राद्रवद्रणात् ॥ ४७ ॥ ततः स्निग्धाम्बुदाभासं वेदावासमकल्मषम् । वेदव्यासं सरस्वत्यावासं व्यासं ददर्श ह ४८ तं द्रौणिरग्रतो दृष्ट्वा स्थितं कुरुकुलोद्वह । सन्नकण्ठोऽब्रवीद्वाक्यमभिवाद्य सुदीनवत् ४९

आनन्दकी ध्वनियें करने लगे ॥ ४१-४३ ॥ और जराभी चोट न खायेहुए अर्जुन तथा श्रीकृष्ण हर्षमें आकर उत्तम शंखोंको बजानेलगे, इस समय तुम्हारे पुत्र पाण्डवोंको हर्षमें भरेहुए देखकर बड़े ही खिन्न होगये ॥ ४४ ॥ दोनों महात्माओंको अग्न्यस्त्रसे जरा भी चोट न खायेहुए देख अश्वत्थामाको भी बड़ा खेद हुआ और वह एक महूर्त भर यही विचार करता रहा, कि-यह बात क्या है ?॥ ४५ ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार ध्यानमें और शोकमें डूबाहुआ अश्वत्थामा विचार करनेके अनन्तर गरम और गहरे साँस छोड़कर मनमें उदास होगया ॥ ४६ ॥ तुरन्त ही उसने हाथमेंके धनुषको नीचे फेंकदिया और एकायकी रथमें से नीचे उतरकर' धिक्कार है ! धिक्कार है ! यह सब मिथ्या है । ऐसा कहकर रणभूमिसे भागने लगा ॥ ४७ ॥ परन्तु इतनेमें ही उसको स्निग्ध घनघटाकी समान कान्तिवाले, वेदके निवासस्थान, दोषरहित, वेदका विस्तार करनेवाले, सरस्वती नदीके तटपर रहनेवाले वेदव्यासजीका दर्शन हुआ ४८ कुरुकुलका उद्धार करनेवाले वेदव्यासजीको सामने खड़े हुए देखकर अश्वत्थामाने बड़े दीन पुरुषकी समान गद्गद कंठसे प्रणाम करके कहा, कि ४९ अहो व्यास

भो भो माया यदृच्छा वा न विद्मः किमिदम्भवेत् । अस्त्रन्त्विदं कथं मिथ्या मम कश्च व्यतिक्रमः ॥ ५० ॥ अधरोत्तरमेतद्वा लोकानां वा पराभवः । यदिमौ जीवतः कृष्णौ कालो हि दुरतिक्रमः॥५१॥ नासुरा न च गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः। न सर्पा यक्षपतगा न मनुष्याः कथञ्चन ॥५२॥ उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुमेतदस्त्रं मयेरितम् । तदिदं केवलं हत्वा शान्तमक्षौहिणीं ज्वलत् ॥ ५३ ॥ सर्वघाति मया मुक्तमस्त्रं परमदारुणम् । केनेमौ मर्त्यधर्माणौ नावधीत् केशवार्जुनौ ॥ ५४ ॥ एतन्मे ब्रूहि भगवन् मया पृष्टो यथातथम् । श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन सर्वमेतन्महामुने ५५ व्यास उवाच । महान्तमेतमर्थं मां यत्त्वं पृच्छसि विस्मयात् । तम्म·

जी महाराज! इसको माया समझा जाय या दैवगति जानाजाय मेरी तो समझमें नहीं आता, कि–यह सब क्या हो रहा है? मुझसे क्या अपराध हुआ है जो मेरा नारायणास्त्र मिथ्या हुआ ॥५०॥ यह जो कृष्ण और अर्जुन जीते बचगये, इससे प्रतीत होता है, कि–लोकमें उत्तमके अधम होनेका और अधमके उत्तम होनेका समय आगया है अथवा लोकोंके नाशका ही समय आगया है, निःसन्देह कालकी गतिको कोई नहीं रोकसकता ! ॥५१ ॥ मैंने जो अस्त्र मारा था उसको तो असुर, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, सर्प, यक्ष, मनुष्य इनमेंसे कोई भी किसी प्रकार भी मिथ्या करनेका उत्साह नहीं करसकता, ओः ! मेरा धकधकाता हुआ अग्न्यस्त्र केवल एक अक्षौहिणी सेनाका ही नाश करके शांत होगया ५२-५३ मेरा अस्त्र सबका नाश करनेवाला और बडा ही दारुण था वह इन मरणधर्मवाले कृष्ण और अर्जुनको क्यों नहीं मारसका ॥५४॥ हे भगवन् ! आप मुझे इस मेरे प्रश्नका ठीक२ उत्तर दीजिये, हे महामुने ! मैं सबके कारणको ठीक२ सुनना चाहता हूँ ॥ ५५ ॥ व्यासजीने कहा, कि–तू आश्चर्यमें होकर जिस बातको बूझरहा है,

वक्ष्यामि ते सर्वं समाधाय मनः शृणु ॥ ५६ ॥ योऽसौ नारायणो नाम पूर्वेषामपि पूर्वजः । अजायत च कार्यार्थं पुत्रो धर्मस्य विश्वकृत् ॥ ५७ ॥ स तपस्तीव्रमातस्थे शिशिरं गिरिमाश्रितः । ऊर्ध्वबाहुर्महातेजा ज्वलनादित्यसन्निभः ॥ ५८ ॥ षष्टिं वर्षसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च । अशोषयत्तदात्मानं वायुभक्षोऽम्बुजेक्षणः ॥ ५९ अथापरं तपस्तप्त्वा द्विस्ततोन्यत् पुनर्महत् । द्यावापृथिव्योर्विवरं तेजसा समपूरयत् ॥ ६० ॥ स तेन तपसा तात ब्रह्मभूतो यदाभवत् । ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः पतिम् ॥ ६१ ॥ ददर्श भृशदुर्दर्शं सर्वदेवेशमीश्वरम् । अणीयांसमणुभ्यश्च बृहद्भ्यश्च महत्तरम् ॥ ६२ ॥ रुद्रमीशानमृषभं हरं शम्भुं कपर्दिनम् ।

यह बहुत बडी बात है, मैं तुझे यह सब बात सुनाता हूँ, तू मनको स्थिर करके सुन, श्रीनारायण भगवान् पूर्व पुरुषोंके भी पूर्वज हैं, उन विश्वके कर्त्ता परमात्माने कार्य साधनेके लिये धर्मके पुत्र होकर जगत्में अवतार लिया था॥५६॥५७॥उन अग्नि और सूर्यकी समान महातेजस्वी तथा कमलकी समान नेत्रवाले भगवान् नारायणने हिमालय पर्वत पर दोनों भुजाओंको ऊँची करके तीव्र तपस्या करनी आरम्भ करदी, उन्होंने छियासठ हजार वर्षतक केवल वायुका भक्षण करके शरीरको सुखाडाला ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ फिर उससे भी दूने वर्षतक बडी भारी तपस्या करके तेजसे आकाशको और पृथ्वीको भर दिया ॥ ६० ॥ हे तात ! जब तपस्या करके सिद्ध (ब्रह्म) होगये तब उनको विश्वके ईश्वर, जगत्के कारणरूप, जगत्पति, सब देवताओंके स्तुति किये हुए, छोटोंमें छोटे और बडोंसे भी बडे भगवान् श्रीशङ्करका दर्शन हुआ यह शंकर रुद्र-नामसे प्रसिद्ध हैं, वह ईशान, वृषभ, हर, शम्भु सर्वोंको चेतन करनेवाले, स्थावररूप जङ्गमरूप जगत्के परम अधिष्ठानरूप, जिनका धारण कोई नहीं कर सकता, जिनकी सेवा

चेकितानं परं योनिं तिष्ठतो गच्छतश्च ह ॥ ६३ ॥ दुर्वारणं दुर्दृशं तिग्ममन्युं महात्मानं सर्वहरं प्रचेतसम् । दिव्यञ्चापमिषुधी चाददानं हिरण्यवर्माणमनन्तवीर्यम् ॥ ६४ ॥ पिनाकिनं वज्रिणं दीप्तशूलं परश्वधिनं गदिनं स्वायतासिम् । शुभ्रं जटिलं मुसलिनं चन्द्रमौलिं व्याघ्राजिनं परिघिनं दण्डपाणिम् ॥ ६५ ॥ शुभाङ्गदं नागयज्ञोपवीतं विश्वैर्गणैः शोभितं भूतसंघैः । एकीभूतं तपसां सन्निधानं वयोतिगैः सुष्टुतमिष्टवाग्भिः ॥ ६६ ॥ जलं दिशं खं क्षितिं सूर्यचन्द्रौ तथा वाय्वग्नी प्रतिमाणं जगच्च । नालं द्रष्टुं यमजं भिन्नवृत्ता ब्रह्मद्विषघ्नममृतस्य योनिम् ॥ ६७ ॥ यं पश्यन्ति ब्राह्मणाः साधुवृत्ताः क्षीणे पापे मनसा वीतशोकाः । तं निष्टपन्तं तपसा

करना वडा कठिन है तीक्ष्ण क्रोधवाले, उदार मनवाले, सबका संहार करनेवाले, दिव्य धनुष और भाथेको धारण करनेवाले, सोनेका कवच पहरे, अनन्तपराक्रमी, पिनाक धनुषको धारण करने वाले वज्र, चमकताहुआ त्रिशूल, फरसा, गदा और तलवारको धारण करनेवाले, स्वेतवर्ण, शिर पर जटाओंको धारण करने वाले जिनके मुकुटमें चन्द्रमा है व्याघ्राम्बरधारी, परिघ धारण करने वाले और हाथमें दण्डको धारण करनेवाले ॥ ६१–६५ ॥ और कण्ठमें सर्पका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, सुन्दर वाजूवन्द पहरेहुए गणोंसे और भूतोंसे शोभायमान एक स्वरूप, तपके भण्डाररूप वृद्ध ब्राह्मणोंके द्वारा मधुर वाणीसे स्तुति कियेहुए, पृथ्वी जल आकाश वायु दिशा सूर्य चन्द्रमा अग्नि तथा जगत्के प्रमापक, अधर्माचरण करनेवाले मनुष्योंका तथा ब्रह्मद्वेषियोंका संहार करनेवाले और मोक्ष देनेवाले हैं तथा असदाचारी मनुष्य उन परमात्माका दर्शन नहीं पासकते ६६–६७ परन्तु सदाचारी और शोकरहित ब्राह्मण पाप क्षीण होजाने पर जिनका दर्शन पाते हैं ऐसे भगवान् शङ्करका जो नारायण भगवान् वासुदेव भक्त

धर्ममीड्यं तद्भक्तो वै विश्वरूपं ददर्श । दृष्ट्वा चैनं वाङ्मनोबुद्धिदेहैः संहृष्टात्मा मुमुदे वासुदेवः ॥ ६८ ॥ अक्षमालापरिक्षिप्तं ज्योतिषां परमं निधिम् । ततो नारायणो देवं ववन्दे विश्वसंभवम् ६९ वरदं पृथुचार्वङ्ग्या पार्वत्या सहितं प्रभुम् । क्रीडमानं महात्मानं भूतसंघगणैर्वृतम् ॥ ७० ॥ अजमीशानमव्यक्तं कारणात्मानमच्युतम् । अभिवाद्याथ रुद्राय सद्योऽन्धकनिपातिते ॥ पद्माक्षस्तं विरूपाक्षमभितुष्टाव भक्तिमान् ॥ ७१ ॥ श्रीनारायण उवाच । त्वत्सम्भूता भूतकृतो वरेण्यं गोप्तारोऽस्य भुवनस्यादिदेव । आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्षन् पुरा पुराणीं तव देव सृष्टिम् ॥ ७२ ॥ सुरासुरान्नागरक्षःपिशाचान्नरान् सुपर्णानथ गन्धर्वयक्षान् । पृथग्विधान् भूतसंघान् सविश्वांस्त्वत्सम्भूतान् विद्म सर्वांस्तथैव ।

थे वह, तपके प्रभावसे तेजसे दिपनेवाले, साक्षात् धर्ममूर्ति, जगत्के वन्दनीय और विश्वरूप श्रीशंकरका दर्शन कर सके, इससे उनको बडा हर्ष हुआ ॥६८॥ हे महाराज ! कमलकी समान नेत्रोंवाले नारायण ऋषि, तेजके निधानरूप, रुद्राक्षकी मालाको धारण करनेवाले विश्वको उत्पन्न करनेवाले, वरदान देनेवाले अतिमनोहारी अङ्गोंवाले, पार्वती देवीके साथ विहार करनेवाले, भूतगणोंसे घिरे, अजन्मा, ईशान, अव्यक्त, कारणात्मा महात्मा रुद्र शङ्करका दर्शन करके अन्धक दैत्यका नाश करनेवाले रुद्रदेवको प्रणाम करके विरूपाक्ष श्रीशङ्करकी भक्ति भावसे कमलकी समान नेत्रोंवाले नारायणदेव स्तुति करने लगे ॥ ६९–७१ ॥ श्रीनारायणने कहा, कि–हे वरेण्य ! हे आदिदेव ! जो इस विश्वके रक्षक हैं, सब प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, देवगणोंके भी पूर्वज प्रजापति हैं, वह आपसे उत्पन्न होकर पृथ्वीमें प्रवेश करते हैं और तुम्हारी रचीहुई पुरातन सृष्टिको रचते हैं ॥७२॥ देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग, पक्षी आदि सब प्राणी आपसे

ऐन्द्रं याम्यं वारुणं वैत्तपाल्यं पैत्रं त्वाष्ट्रं कर्म सौम्यञ्च तुभ्यम् ७३ रूपं ज्योतिः शब्द आकाशवायुः स्पर्शः स्वाद्यं सलिलं गन्ध उर्वी। कालो ब्रह्मा ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च त्वत्संभूतं स्थास्नु चेरिष्णु चेदम् ७४ अद्भ्यस्तोका यान्ति यथा पृथक्त्वं ताभिश्चैक्यं संक्षये यान्ति भूयः। एवं विद्वान् प्रभवञ्चाप्ययञ्च मत्वा भूतानां तव सायुज्यमेति ॥ ७५ ॥ दिव्यावृत्तौ मानसौ द्वौ सुपर्णौ वाचा शाखाः पिप्पलाः सप्त गोपाः। दशाप्यन्ये ये पुर धारयन्ति त्वया सृष्टास्त्वं हि तेभ्यः परो हि ॥ ७६ ॥ भूतं भव्यं भविता चाप्यधृष्यं त्वत्संभूता भुवनानीह विश्वाः। भक्तञ्च मां भजमानं भजस्व मारीरिपो मा-हिताहितेन ॥ ७७ ॥ आत्मानं त्वामात्मनानन्यबोधं विद्वानेवं

उत्पन्न होते हैं, इस वातको हम जानते हैं, इन्द्र,यम, वरुण, कुबेर चन्द्रमा आदि दिक्पाल और प्रजापति भी आपके प्रभावसे ही अपने२ अधिकारोंके काम करते हैं शब्द,स्पर्श, रूप,ज्योति, स्वादु जल,पृथ्वी, गन्ध, आकाश, वायु, काल,ब्रह्मा, वेद और ब्राह्मण अर्थात् स्थावर जङ्गमरूप सव जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है ॥ ७३-७४ ॥ और यह जगत् जैसे जलमेंसे उत्पन्न होकर जलमें ही लीन होजाता है तैसे ही यह सव जगत् भी प्रलयके समय आपमें ही लीन होजाता है, तत्त्वको जाननेवाले पण्डित इस प्रकार आपको प्राणिमात्रकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण जानकर आपके सायुज्यको पाते हैं ॥ ७५ ॥ हे देव ! आपने ही मानसरूप वृक्ष पर वैठनेवाले जीव तथा ईश्वर रूप दो पक्षी चार अश्वत्थ (वेद) और वहुतसी शाखाओंसे युक्त सप्तलोकरूप (पाँच तत्त्व, मन और वुद्धि) फलके भोक्ता तथा द्रष्टा और सव शरीरका परिपालक दश इन्द्रियें इन सवोंको तुमही रचते हो, तो भी इन सवोंसे तुम परमात्मा भिन्न रहते हो ७६॥तुम भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान कालरूप हो ये सव लोक तुमसे ही

गच्छति ब्रह्म शुक्रम् । अस्तौषं त्वां तव सम्मानमिच्छन् विचिन्वन् वै सदृशं देववर्य ॥ सुदुर्लभान् देहि वरान् ममेष्टानभिष्टुतः प्रतिकार्षीश्च मायाम् ॥ ७८ ॥ व्यास उवाच । तस्मै वरानचिन्त्यात्मा नीलकंठः पिनाकधृत् । अर्हते देवमुख्याय प्रायच्छदृषिसंस्तुतः ॥७९॥ श्रीभगवानुवाच । मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयोनिषु । अप्रमेयबलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि ॥ ८० ॥ न च त्वां प्रसहिष्यन्ति देवासुरमहोरगाः । न पिशाचा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः ॥ ८१ ॥ न सुपर्णास्तथा नागा न च विश्वे वियोनिजाः । न कश्चित्त्वाञ्च देवोऽपि समरेषु विजेष्यति ८२ न

उत्पन्न हुए हैं, मैं तुम्हारा भक्त हूँ और तुम्हारा भजन करता हूँ ऐसे मेरे ऊपर आप दया करिये तथा मेरे मनमें काम आदि अहित करनेवाली वस्तुओंको उत्पन्न करके मेरा नाश न करिये, हे देववर्य! तत्त्वदर्शी पुरुष आपको (आत्मस्वरूपको) अपने आत्मासे अभिन्न जानकर निष्काम परब्रह्मको पा जाते हैं, मैं आपको आत्मारूप जानकर केवल तुम्हारे समान होनेकी इच्छासे ही तुम्हारी स्तुति करता हूँ. मेरे स्तुति किये हुए आप मुझे इच्छित दुर्लभ वर दीजिये, मायाको मेरे प्रतिकूल न होने दीजिये॥७८॥ व्यासजीने कहा, कि—नारायण ऋषिके इस प्रकार स्तुति करने पर पिनाकधनुषधारी नीलकण्ठ अचिन्त्य स्वरूप शङ्करने पूज्य तथा देवताओंमें मुख्य नारायणको वरदान दिया॥७९॥ श्रीशङ्कर भगवान्‌ने कहा, कि-हे नारायण! तुम मेरी कृपासे ऐसे बलवान् होओगे, कि-मनुष्य, देवता और गन्धर्वोंकी जातिमें तुम्हारी बराबरी कोई नहीं कर सकेगा ॥ ८० ॥ देवता असुर, बड़े२ नाग, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण नाग तथा सिंह व्याघ्र आदि सब प्राणी इनमेंसे कोई भी युद्धमें तुम्हारे सामने आकर टक्कर नहीं झेलसकेगा तथा युद्धमें देवता भी तुम्हारा पराजय नहीं

शस्त्रेण न वज्रेण नाग्निना न च वायुना।न चार्द्रेण न शुष्केण त्रसेन स्थावरेण च८३कश्चित्तत्र रुजां कर्त्ता मत्प्रसादात् कथञ्चन ।अपि वै समरं गत्वा भविष्यसि ममाधिकः ८४एवमेते वरा लब्धा पुरस्ताद्‌ विद्धि शौरिणा। स एष देवश्चरति मायया मोहयन् जगत्८५ तस्यैव तपसो जातं नरं नाम महामुनिम् । तुल्यमेतेन देवेन त्वं जानीह्यर्जुनं सदा ॥ ८६ ॥ तावेतौ पूर्वदेवानां परमौ पठितावृषी । लोकयात्राविधानार्थं सञ्जायेते युगे युगे ॥ ८७ ॥ तथैव कर्मणः कृत्स्नं महतस्तपसोऽपि च । तेजो मन्युश्च विभ्रत्त्वं जातो रौद्रो महामुने ॥ ८८ ॥ स भवान् देववान् प्राज्ञो ज्ञात्वा भवमयं जगत् । अपाकर्षस्त्वमात्मानं नियमैस्तत् प्रियेप्सया ॥ ८९ ॥ शुभ्रं स तु

करसकेंगे,मेरी कृपासे कोई भी पुरुष शस्त्रसे,वज्रसे, अग्निसे,वायुसे गीलेसे,सूखेसे, जङ्गमसे तथा स्थावरसे तुम्हें पीडा नहीं देसकता, तुम युद्धमें पहुँचजाने पर मुझसेभी अधिक बलवान् होजाओगे॥ ८१-८४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णने पहले ही शङ्करसे ये वरदान पालिये हैं और यह देव अपनी मायासे जगत्को मोहित करते हुए जगत्में विचरते हैं ॥ ८५ ॥ और यह जो अर्जुन है यह नारायणके तपसे ही उत्पन्न हुआ है,यह नर नामका महामुनि है और इसको तू नारायणकी समान ही जान ॥ ८६ ॥ ब्रह्मा,विष्णु और रुद्र इन देवताओंमें ये नर नारायण नामके दोनों ऋषि तपस्यामें पूर्ण हैं और ये लोकोंको मर्यादामें रखनेके लिये युग२में अवतार धारण करते हैं॥८७॥तथा हे महामतिमान् अश्वत्थामा! तूबडीभारी तपस्याके कारण,एवं धर्मकर्मसे तेज और क्रोधको धारण करनेवाले रुद्रका अंशावतार है८८ऐसा तू देवता की समान और अतिबुद्धिमान् है, तूने इस जगत्को शङ्करमय जानकर शङ्करको प्रसन्न करनेकी इच्छासे नियमोंके द्वारा पूर्वकाल में अपने शरीरको दुर्बल करडाला था ॥ ८९ ॥ हे मान

भक्तान् कृत्वा महापुरुषविग्रहम्। ईजिवांस्त्वं जपैर्होमैरुपहारैश्च मानद ॥९०॥ स तथा पूज्यमानस्ते पूर्वदेवोऽप्यतूतुषत्। पुष्कलांश्च वरान् प्रादात्तव विद्वन् हृदि स्थितान् ॥ ९१ ॥ जन्मकर्मतपोयोगास्तयोस्तव स पुष्कलाः। ताभ्यां लिङ्गेऽर्चितो देवस्त्वयार्चायां युगे युगे ॥९२॥ सर्वरूपं भवं ज्ञात्वा लिङ्गमर्चयति प्रभुम्। आत्मयोगाश्च तस्मिन् वै शास्त्रयोगाश्च शाश्वताः ॥ ९३ ॥ एवमेवायजन् देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः। प्रार्थयन्ति परं लोके स्थाणुमेकं स सर्वकृत् ॥ ९४ ॥ स एष रुद्रभक्तश्च केशवो रुद्रसम्भवः। कृष्ण एव हि यष्टव्यो यज्ञैश्चैव सनातनः ॥ ९५ ॥ सर्वभूतमयं ज्ञात्वा लिंगमर्चति यः प्रभुः। तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभ-

---

देनेवाले अश्वत्थामा ! तूने तेजस्वी दिव्य शरीर धारण करके जप होम और बलिदानोंके द्वारा महापुरुष श्रीशङ्करका पूर्व जन्ममें यजन किया था और शङ्कर तेरे ऊपर प्रसन्न होगये थे और हे विद्वन् ! तुम्हे तेरे मनचाहे बहुतसे वरदान दिये थे ॥९०।९१॥ श्रीकृष्ण और अर्जुनकी समान तेरे भी जन्म, कर्म और तप बहुत हैं, परन्तु उन दोनोंने सूक्ष्म शरीरसे श्रीशङ्करकी उपासना की थी और तूने प्रतिमाके विषैं युग २ में श्रीशङ्करका पूजन किया था९२ जो पुरुष प्रभु शङ्करके सर्वस्वरूपको जानकर लिङ्गमें उनका पूजन करता है उस पुरुषको सनातन आत्मज्ञानकी तथा सनातन शास्त्र ज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ ९३ ॥ इसप्रकार विश्वके देवता, सिद्ध और परमऋषि, अविकारी एक शङ्कर भगवान्का पूजन करके उनकी प्रार्थना करते हैं, क्यों कि-भगवान् शङ्कर सब जगत्को उत्पन्न करने वाले, पालन करने वाले और संहार करनेवाले हैं ९४ यह श्रीकृष्ण रुद्रसे उत्पन्न हुए हैं और रुद्रके परमभक्त हैं, इस लिये सनातन श्रीकृष्णका यज्ञोंके द्वारा यजन करना चाहिये ९५ और सब प्राणियोंकी उत्पत्तिका स्थान समझकर जो मनुष्य

ध्वजः ॥ ९६ ॥ सञ्जय उवाच । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा द्रोणपुत्रो महारथः । नमश्चकार रुद्राय बहु मेने च केशवम् ॥ ९७ ॥ हृष्टरोमा च वश्यात्मा नमस्कृत्य महर्षये । वरूथिनीमभिप्रेक्ष्य ह्यवहारमकारयत् ॥९८॥ ततः प्रत्यवहारोऽभूत् पाण्डवानां विशाम्पते॥ कौरवाणाञ्च दीनानां द्रोणे युधि निपातिते ॥ ९९ ॥ युद्धं कृत्वा दिनान् पञ्च द्रोणो हत्वा वरूथिनीम् । ब्रह्मलोकं गतो राजन् ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ १०० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि व्यासवाक्ये शतरुद्रीये एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै । मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वन्नतः परम् ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । तस्मि-

श्रीशङ्करके लिङ्गका पूजन करता है उसके ऊपर वृषभध्वज श्रीशङ्कर अधिक प्रसन्न होते हैं ॥ ९६ ॥ सञ्जय कहता है, कि–श्रीवेदव्यासजीकी इसबातको सुनकर महारथी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने रुद्रको नमस्कार किया और श्रीकृष्णको महान् पुरुष जाना ९७ व्यासजीसे इस प्राचीन वृत्तान्तको सुनकर मनको वशमें रखनेवाले अश्वत्थामाके रोमाञ्च खड़े होगये, उसने महर्षि वेदव्यासको नमस्कार किया और फिर सेनाकी ओर जाकर उसको छावनीकी ओरको लौटनेकी आज्ञा दी ॥ ९८ ॥ युद्धमें द्रोणाचार्यके मारे जानेके अनन्तर हे राजन् ! उदास हुए कौरवोंकी और पाण्डवोंकी सेना अपनी २ छावनीमें चलीगयीं ॥ ९९ ॥ इस प्रकार वेदके पारगामी द्रोणाचार्य पाँच दिन तक युद्ध करते हुए एक अक्षौहिणी सेनाका संहार करके ब्रह्मलोकमें चले गये ॥ १०० ॥ दो सौ एकवाँ अध्याय समाप्त ॥ २०१ ॥ छ ॥ छ

धृतराष्ट्रने बूझा कि–हे सञ्जय ! धृष्टद्युम्नने अतिरथी द्रोणाचार्यको युद्धमें मारडाला, उसके बाद मेरे पुत्रोंने और पाण्डवोंने

न्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै । कौरवेषु च भग्नेषु कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा सुमहदाश्चर्यमात्मनो विजयावहम् । यदृच्छया गतं व्यासं पप्रच्छ भरतर्षभ ॥ ३ ॥ अर्जुन उवाच । संग्रामे न्यहनं शत्रून् शरौघैर्विमलैरहम्। अग्रतो लक्षये यान्तं पुरुषं पावकप्रभम् ॥ ४ ॥ ज्वलन्तं शूलमुद्यम्य यां दिशं प्रतिपद्यते । तस्यां दिशि विशीर्यन्ते शत्रवो मे महामुने ॥ ५ ॥ तेन भग्नानरीन् सर्वान्मद्भग्नान्मन्यते जनः । तेन भग्नानि सैन्यानि पृष्ठतोऽनुव्रजाम्यहम् ॥६॥ भगवांस्तन्ममाचक्ष्व को वै स पुरुषोत्तमः । शूलपाणिर्मया दृष्टस्तेजसा सूर्यसन्निभः ॥ ७ ॥ न पद्भ्यां स्पृशते भूमिं न च शूलं विमुञ्चति । शूलाच्छूलसहस्राणि निपेतुस्तस्य तेजसा ८॥

क्या किया, यह मुझे सुना ॥ १ ॥ सञ्जय कहता है, कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् धृतराष्ट्र!धृष्टद्युम्नने अतिरथी द्रोणाचार्यको मारडाला, उसके बाद कौरवोंकी सेनामें भागड़ पड़गयी, और अपनी विजय कराने वाले अति अद्भुत परिणामको देखकर अर्जुनने दैवेच्छासे वहाँ आये हुए व्यासजीसे बूझा ॥२ ॥ ३॥ अर्जुनने कहा, कि-हे महर्षे!मैं जिस समय संग्राममें निर्मल बाणोंसे वैरियोंको मार रहा था, उस समय अग्निकी समान तेजस्वी एक पुरुषको मैं हर समय अपने आगे २ चलता हुआ देखा करता था ॥ ४ ॥ और हे महामुने ! वह पुरुष जलते हुए त्रिशूलको उठा कर जिस दिशामेंको चलाजाता था, उस दिशामें ही मेरे वैरी काँपकर पृथिवी पर गिरपडते थे ॥ ५ ॥ वास्तवमें तो वह पुरुष सेनाओंका संहार करता था, परन्तु लोग समझते थे अर्जुन सेनाओंका संहार कररहा है,परन्तु मैं तो केवल उसके पीछे२ ही जाता था ॥ ६ ॥ हे भगवन्!सूर्यकी समान तेजस्वी तथा हाथमें त्रिशूल लिये हुए जो पुरुष मेरे देखनेमें आया था वह महापुरुष कौन था ? ॥ ७ ॥ वह पैरोंसे पृथिवीको नहीं छूता था, किन्तु अधर

व्यास उवाच । प्रजापतीनां प्रथमं तैजसं पुरुषं प्रभुम् । भुवनं भूर्भुवं देवं सर्वलोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ९ ॥ ईशानं वरदं पार्थ दृष्टवानसि शङ्करम् । तं गच्छ शरणं देवं वरदं भुवनेश्वरम् ॥१०॥ महादेवं महात्मानमीशानं जटिलं विभुम् । त्र्यक्षं महाभुजं रुद्रं शिखिनं चीरवाससम् ॥ ११ ॥ महादेवं हरं स्थाणुं वरदं भुवनेश्वरम् । जगत्प्रधानमजितं जगत्प्रीतिमधीश्वरम् ॥ १२ ॥ जगद्योनिं जगद्द्वीपं जयिनं जगतो गतिम् । विश्वात्मानं विश्वसृजं विश्वमूर्त्तिं यशस्विनम् ॥ १३ ॥ विश्वेश्वरं विश्वनरं कर्मणामीश्वरं प्रभुम् ।

ही चलता था और वह अपने हाथमेंसे त्रिशूलको नहीं छोड़ता था तो भी उसके तेजके प्रभावसे उस त्रिशूलमेंसे हजारों त्रिशूल उत्पन्न होते थे ८ व्यासजीने कहा, कि-हे अर्जुन ! यह तो तुझे श्रीशङ्करका दर्शन हुआ था, वह प्रजापति ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके आदिकारण हैं, तेजोमय हैं, सकल शरीररूप पुरीमें शयन करते हैं इसलिये ही अन्तर्यामी रूपसे सब जगत्का शासन करते हैं, वही भूर्, भुवर्, स्वर्, इन तीनों लोकोंके शरीररूप हैं, सब लोकोंके ईश्वर हैं और राजाकी समान बाहर रहकर भी सबको नियमोंमें रखते हैं, वही सबके स्वामी हैं और वरदान देनेवाले हैं, वही तीनों भुवनोंके ईश्वर श्रीशङ्कर हैं तू उनकी शरण लो॥९-१०॥ वह महादेव हैं, बड़े मननशील हैं जटाधारी और व्यापक हैं, तीन नेत्रवाले और महाबाहु हैं, रुद्र, शिखावाले और वल्कलवस्त्रधारी हैं ॥ ११ ॥ सब जगत्का संहार करनेवाले, विकारसे रहित, वरदान देनेवाले, चौदह लोकोंके ईश्वर, जगत्के कारण, किसीके जीतनेमें न आनेवाले, आनन्ददायक, उपाधिरहित और चैतन्यमात्र हैं ॥ २ ॥ जगत्के कारणरूप, जगत्के बीजरूप, विजय पानेवाले, जगत्की गति, विश्वके आत्मा, विश्वके रचनेवाले, विश्वमूर्ति, यश पानेवाले विश्वके ईश्वर, विश्वके नेता, कर्मोंका फल

शम्भुं स्वयम्भुं भूतेशं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ १४ ॥ योगं योगेश्वरं सर्वं सर्वलोकेश्वरेश्वरम् । सर्वश्रेष्ठं जगच्छ्रेष्ठं वरिष्ठं परमेष्ठिनम् ॥ १५ ॥ लोकत्रयविधातारमेकं लोकत्रयाश्रयम् । शुद्धात्मानं भवं भीमं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥ १६ ॥ शाश्वतं भूधरं देवं सर्ववागीश्वरेश्वरम् । सुदुर्जयं जगन्नाथं जन्ममृत्युजरातिगम् ॥१७॥ ज्ञानात्मानं ज्ञानगम्यं ज्ञानश्रेष्ठं सुदुर्विदम् । दातारञ्चैव भक्तानां प्रसादविहितान् वरान् ॥ १८ ॥ तस्य पारिषदा दिव्या रूपैर्नानाविधैर्विभो । वामना जटिला मुण्डा ह्रस्वग्रीवा महोदराः॥१९॥ महाकाया महोत्साहा महाकर्णास्तथा परे । आननैर्विकृतैः पादैः पार्थ वेशैश्च वैकृतैः ॥ २० ॥ ईदृशैः स महादेवः पूज्यमानो महेश्वरः । स शिवस्तात तेजस्वी प्रसादाद्याति तेऽग्रतः ॥ २१ ॥

देनेवाले, कल्याणकर्त्ता, स्वयम्भू भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानको उत्पन्न करनेवाले, योगरूप, योगके ईश्वर, सब लोकपालोंके ईश्वर सबसे श्रेष्ठ, वरिष्ठ, परम स्थानमें रहनेवाले, तीनों लोकोंको धारण करनेवाले, तीनों लोकोंके आधार रूप, शुद्धस्वरूप, भवरूप, भयानक मूर्त्ति, चन्द्रमाको मुकुटरूपसे धारण करनेवाले, सनातनमूर्त्ति पृथ्वीको धारण करनेवाले, सब वागीश्वरोंकेभी ईश्वर, अजित, जगत्के नाथ, जन्म मरण और जरासे रहित, ज्ञानमूर्त्ति, ज्ञानके द्वारा जाननेमें आने वाले चैतन्यरूपसे ही प्रशंसा करने योग्य, महाकष्टसे जाननेमें आनेवाले और भक्तोंको अनुग्रह करके वर देनेवाले हैं १३-१८ उन व्यापक शङ्करके दिव्य पार्षद अनेकों रूपोंको धारण करने वाले हैं—कोई ठिगने, कोई जटाधारी, कोई शिरमुण्डे, कोई छोटी गरदनवाले, कोई बड़े पेटवाले १९ कोई महाकाय कोई बहुत ऊँचे कोई बड़े२ कानोंवाले, कोई विकराल मुखवाले और हे पार्थ कोई भयानक पैर तथा भयानक पोशाक वाले हैं ॥ २० ॥ ऐसे पार्षद महादेवजीकी पूजा किया करते हैं और हे तात ! उन

तस्मिन् घोरे सदा पार्थ संग्रामे लोमहर्षणे । द्रौणिकर्णकृपैर्गुप्तां महेष्वासैः प्रहारिभिः ॥ २२ ॥ कस्तां सेनां तदा पार्थ मनसापि प्रधर्षयेत् । ऋते देवान्महेष्वासाद्बहुरूपान्महेश्वरात् ॥ २३ ॥ स्थातुमुत्सहते कश्चिन्न तस्मिन्नग्रतः स्थिते । न हि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ २४ ॥ गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः । विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ति च पतन्ति च ॥ २५ ॥ तस्मै नमस्तु कुर्वन्तो देवास्तिष्ठन्ति वै दिवि । ये चान्ये मानवा लोके ये च स्वर्गजितो नराः ॥ २६ ॥ ये भक्ता वरदं देवं शिवं रुद्रमुमापतिम् । अनन्यभावेन सदा सर्वेशं समुपासते ॥ २७ ॥ इह लोके सुखं प्राप्य ते यान्ति परमां गतिम् । नमस्कुरुष्व कौन्तेय तस्मै शान्ताय

तेजस्वी शङ्करकी तेरे ऊपर बड़ी कृपा थी, इसलिये युद्धमें वह तेरे आगे२ चला करते थे ॥ २१ ॥ हे अर्जुन! महाभयानक और रोमाञ्च खड़े करनेवाले इस युद्धमें महाधनुषधारी अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्यकी रक्षाकी हुई सेनाका महाधनुषधारी और अनेकों रूप धारण करनेवाले भगवान् शङ्करके सिवाय दूसरा ऐसा कौन पुरुष है जो मनसे भी पराजय कर सके? २२-२३ भगवान शङ्कर आकर खड़े होजायँ तब ऐसा कौनसा पुरुष है जो उनके सामने खड़ा होनेका साहस करसके? त्रिलोकीमें उनकी बराबरी करनेवाला कोई प्राणी नहीं है जब भगवान शङ्कर कोप करते हैं तब रणमें शत्रु उनकी गन्धसे भी मूर्छित और मरेहुएसे होजाते हैं काँपने लगते है और पृथिवी पर ढह पड़ते हैं २४-२५ स्वर्गमें रहनेवाले देवता, स्वर्गको जीतनेवाले मनुष्य तथा दूसरे साधारण मनुष्य, वे सब भगवान् शंकरको प्रणाम करते हैं जो भक्त अनन्यभावसे सदा सबके ईश्वर, वरदान देनेवाले और कल्याणकर्त्ता, उमापति भगवान् शंकरकी उपासना करते हैं वे इस लोकमें सुख पाकर अन्तमें परमगतिको पाते हैं इसलिये

वै सदा ॥ २८ ॥ रुद्राय शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे । कपर्दिने करालाय हर्यक्षवरदाय च ॥ २९ ॥ याम्यायाव्यक्तकेशाय सद्वृत्ते शङ्कराय च । काम्याय हरिनेत्राय स्थाणवे पुरुषाय च ॥ ३० ॥ हरिकेशाय मुण्डाय कृशायोत्तारणाय च । भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥ ३१ ॥ बहुरूपाय सर्वाय प्रियाय प्रियवाससे । उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे ॥ ३२ ॥ गिरिशाय प्रशान्ताय पतये चीरवाससे । हिरण्यबाहवे राजन्नुग्राय पतये दिशाम् ॥ ३३ ॥ पर्जन्यपतये चैव भूतानां पतये नमः । वृक्षाणाम्पतये चैव गवाञ्च पतये नमः ॥ ३४ ॥ वृक्षैरावृतकायाय सेनान्ये मध्यमाय च । स्रुवहस्ताय देवाय धन्विने भार्गवाय च ३५

हे कुन्तीनन्दन ! तू भी उन शान्तमूर्त्ति श्रीशंकरको सदा नमस्कार कर ॥२६–२८॥ इन रुद्रदेवका कण्ठ श्यामवर्ण है. वह सूक्ष्मसे सूक्ष्म और महातेजस्वी हैं, जटाजूटवाले भयानकरूपधारी और कुबेरको वर देनेवाले हैं॥२९॥ कालमूर्त्ति, मायासे अनेकों प्रकारके रूप धारण करनेवाले, सदचारी, भक्तोंका कल्याण करनेवाले कामना करनेयोग्य श्याम नेत्रोंवाले स्थाणु और पुरुष हैं॥ ३० ॥ हरिकेश, यजमान होनेपर मुण्ड रूप तप करनेसे दुर्बल, संसारसे तारनेवाले, सूर्यरूप, उत्तम तीर्थरूप देवताओंके भी देवता और बड़े वेगवाले हैं ॥ ३१ ॥ अनन्तरूपधारी, उत्तम प्रकारके सब यज्ञों पर प्रेम रखनेवाले, चन्द्रमाके ऊपर प्रीति रखनेवाले, मस्तकपर मुकुट धारण करनेवाले, सुन्दर मुखवाले, हजारों नेत्रोंवाले और मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले हैं ॥ ३२ ॥ पर्वतपर शयन करनेवाले परम शान्त, सबके पालक और वल्कलवस्त्रोंको धारण करनेवाले हैं और हे राजन् ! सुवर्णसे शोभित भुजाओंवाले, उग्ररूप और दिशाओंके स्वामी हैं ॥ ३३ ॥ उन पर्जन्यपति और भूतोंके पतिको प्रणाम है, वृक्षोंके पति और गौओंके पतिको प्रणाम है ३४।

बहुरूपाय विश्वस्य पतते मुञ्जवाससे । सहस्रशिरसे चैव सहस्रनयनाय च ॥ ३६ ॥ सहस्रबाहवे चैव सहस्रचरणाय च । शरणं गच्छ कौन्तेय वरदं भुवनेश्वरम् ॥ ३७ ॥ उमापतिं विरूपाक्षं दक्षयज्ञनिबर्हणम् । प्रजानाम्पतिमव्यग्रं भूतानां पतिमव्ययम् ३८ कपर्दिनं वृषावर्त्तं वृषनाभं वृषध्वजम् । वृषदर्पं वृषपतिं वृषशृङ्गं वृषर्षभम् ॥ ३९ ॥ वृषाङ्कं वृषभोदारं वृषभं वृषभेक्षणम् । वृषायुधं वृषशरं वृषभूतं वृषेश्वरम् ॥ ४० ॥ महोदरं महाकायं द्वीपिचर्मनिवासिनम् । लोकेशं वरदं मुण्डं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम् ॥४१॥

जिनका स्वरूप शरीरोंमे ढकाहुआ है ऐसे सेनाओंके पति, अन्तर्यामी, हाथमें स्रुवेको धारण किये अध्वर्यु रूप, देवरूप धनुषधारी और परशुरामरूप हैं ॥ ३५ ॥ अनेकरूप विश्वपति मूँजका वस्त्र धारण करनेवाले सहस्र मस्तकोंवाले और सहस्रों नेत्रवाले हैं३६ हे अर्जुन ! तू सहस्र भुजा और चरणोंवाले, वरदान देनेवाले और भुवनपति शंकरकी शरणमें जा ॥ ३७ ॥ उमापति, विरूप नेत्रवाले दक्षके यज्ञके नाशक, प्रजाओंके पति शान्तमूर्त्ति, भूतोंके पति, निर्विकार ॥ ३८ ॥ जटाजूटधारी, ब्रह्मादिको भी मायासे भ्रमानेवाले, सब लोकोंके आश्रयदाता होनेसे उत्तम गर्भरूप, नन्दीश्वरके ऊपर बैठनेवाले, तीनों लोकोंका संहार करनेमें समर्थ धर्मके फलदाता होनेसे धर्मको ही श्रेष्ठ माननेवाले, कर्मका फल देनेवाले और इन्द्रादिकोंमें श्रेष्ठ ॥ ३९ ॥ जिनकी ध्वजामें वृषभ का चिह्न है, जो धर्माचरण करनेवालोंको बहुत फल देनेवाले हैं उन धर्मसे साक्षात् दर्शन देनेवाले और जो वृषकी समान नेत्रों वाले हैं उन उत्तम आयुधोंवाले, विष्णुरूप बाणवाले, धर्मरूप देह को धारण करनेवाले, यज्ञके नियंता ॥ ४० ॥ अनेक कोटि ब्रह्मांडों को उदरमें धारण करनेवाले, त्रिलोकीरूप बड़ी कायावाले बाघाम्बर ओढनेवाले, तीनों लोकोंके ईश्वर, वरदान देनेवाले, मुण्ड-

त्रिशूलपाणिं वरदं खड्गचर्मधरं प्रभुम् । पिनाकिनं खड्गधरं लोकानां पतिमीश्वरम् ॥ ४२ ॥ प्रपद्ये शरणं देवं शरण्यं चीरवाससम् । नमस्तस्मै सुरेशाय यस्तु वैश्रवणः सखा ॥ ४३ ॥ सुवाससे नमस्तुभ्यं सुव्रताय सुधन्विने । धनुर्द्धराय देवाय प्रियधन्वाय धन्विने ॥ ४४ ॥ धन्वन्तराय धनुषे धन्वाचार्याय ते नमः । उग्रायुधाय देवाय नमः सुरवराय च ॥ ४५ ॥ नमोऽस्तु वहुरूपाय नमोस्तु वहुधन्विने । नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं नमस्तस्मै तपस्विने ॥ ४६ ॥ नमोस्तु त्रिपुरघ्नाय भगघ्नाय च वै नमः । वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ॥ ४७ ॥ मातृणाम्पतये चैव गणानाम्पतये नमः । गवाञ्च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥ ४८ ॥ अपाञ्च पतये नित्यं देवानां पतये नमः ।

मूर्त्ति ब्राह्मणोंके रक्षक ब्राह्मणोंके प्यारे ॥ ४१ ॥ हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले, वरदाता ढाल तलवारधारी, शम्भु, पिनाकधारी खड्गधारी लोकोंके स्वामी, जगत्पति ॥४२॥ शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले और वल्कलवस्त्रधारी शंकरकी मैं शरण लेता हूँ, जिनका सखा कुवेर है ऐसे देवताओंके पति शंकरको प्रणाम है ॥ ४३ ॥ सुन्दर वस्त्रधारी, श्रेष्ठ व्रतधारी, सुन्दर पिनाक धनुषको धारण करनेवाले, पार्षदोंके ऊपर और धनुषके ऊपर प्रीति रखनेवाले धनुषकी प्रत्यञ्चारूप, धनुषरूप, धनुर्वेदके आचार्य, उग्र आयुधवाले और देवताओंमें श्रेष्ठ शंकरको नमस्कार है ॥ ४४-४५ ॥ अनेक रूपधारीको नमस्कार है वहुतसे धनुषधारी पार्षदोंवालेको नमस्कार है, स्थाणुमूर्त्तिको नमस्कार है और उन तपस्वी शंकरको प्रणाम है ॥ ४६ ॥ त्रिपुरासुरका नाश करनेवालेको नमस्कार है भगदेवताके नेत्रोंका नाश करनेवालेको नमस्कार है, वनस्पतियोंके और नरोंके पतिको नमस्कार है ॥ ४७ ॥ मातृकाओंके और गणोंके पतिको प्रणाम है, गायोंके पति और यज्ञोंके पति

पूष्णो दन्तविनाशाय त्र्यक्षाय वरदाय च ॥ ४९ ॥ नीलकण्ठाय पिंगाय स्वर्णकेशाय वै नमः। कर्माणि यानि दिव्यानि महादेवस्य धीमतः ॥ ५० ॥ तानि ते कीर्त्तयिष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् । न सुरा नासुरा लोके न गन्धर्वा न राक्षसाः ॥ ५१ ॥ सुखमेधन्ति कुपिते तस्मिन्नपि गुहागताः । दक्षस्य यजमानस्य विधिवत्संभृतं पुरा ॥ ५२ ॥ विव्याध कुपितो यज्ञं निर्दयस्त्वभवत्तदा । धनुषा बाणमुत्सृज्य सघोषं विननाद च ॥ ५३॥ ते न शर्म कुतः शान्ति लेभिरे स्म सुरास्तदा । विद्रुते सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ५४ तेन ज्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः । बभूवुर्वशगाः पार्थ निपेतुश्च सुरासुराः ॥ ५५ ॥ आपश्चुक्षुभिरे सर्वाश्चकम्पे च

शङ्करको नित्य प्रणाम है॥४८॥जलोंके स्वामी और देवोंके देवको नित्य नमस्कार है, पूषा देवताके दाँत तोडनेवाले, त्रिनेत्र, वरदाता, नीलकण्ठ, पीले वर्णवाले,सुवर्णकी समान चमकतेहुए केशोंवाले श्रीशंकरको प्रणाम है, अब मैं तुमसे बुद्धिमान् महादेवजीके जो दिव्य कर्म हैं, जिस प्रकार मैंने सुने हैं और जैसी मेरी बुद्धि है, उसके अनुसार तुमसे कहता हूँ. सुन ! श्रीशंकर जब कोप करते हैं उस समय देवता, दैत्य, गन्धर्व और राक्षस पातालमें घुसजाते हैं तो भी सुखसे नहीं रहने पाते, पहले यज्ञ करनेवाले दक्षने विधिपूर्वक यज्ञ किया था ॥५०-५२॥ उसमें निमंत्रण न होनेसे शंकरको क्रोध आगया, उन्होंने निर्दयी हो धनुषमेंसे बाण छोड कर दक्षको घायल करदिया और फिर बडी गर्जना की थी ५३ शंकरके क्रुद्ध होने पर उस समय देवता सुख वा शान्ति कैसे पासकते थे ? महेश्वरके कुपित होते ही यज्ञमें एकसाथ गडबडी पडगयी ॥५४॥ धनुषकी प्रत्यञ्चासे तथा हाथकी हथेलीके शब्दसे सब लोक व्याकुल होगये और हे अर्जुन ! देवता तथा दानव सब घबडाकर गिरगये और शंकरके वशमें होगये ॥ ५५ ॥ बहते हुए जल रुकगये, पृथिवी काँप उठी, पर्वत डगमगागये, दिशायें

वसुन्धरा । पर्वताश्च व्यशीर्यन्त दिशो नागाश्च मोहिताः ॥ ५६ ॥ अन्धेन तमसा लोका न प्राकाशन्त संवृताः । जघ्निवान् सह सूर्येण सर्वेषां ज्योतिषां प्रभाः ॥५७॥ चुक्षुभुर्भयभीताश्च शान्तिञ्चक्रुस्तथैव च । ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च सुखैषिणः ॥५८॥ पूषाणमभ्यद्रवत शङ्करः प्रहसन्निव । पुरोडाशं भक्षयतो दशनान् वै व्यशातयत् ॥५९॥ ततो निश्चक्रमुर्देवा वेपमाना नताः स्म ते । पुनश्च सन्दधे दीप्तान् देवानां निशिताञ्छरान् ॥ ६० ॥ सधूमान् सस्फुलिङ्गांश्च विद्युत्तोयदसन्निभान् । तं दृष्ट्वा तु सुराः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥ ६१ ॥ रुद्रस्य यज्ञभागञ्च विशिष्टं तेऽन्वकल्पयन् । भयेन त्रिदशा राजन् शरणञ्च प्रपेदिरे ॥६२॥ तेन चैवातिकोपेन स यज्ञः सन्धितस्तदा । भयाच्चापि सुरा आसन् भीताश्चाद्यापि तं प्रति ॥ ६३ ॥ असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां

और हाथी मोहमें पडगये ॥ ५६ ॥ सब लोग गाढ़ अन्धकारसे ढकजानेके कारण स्पष्टरूपसे दीखना बन्द होगये, श्रीशंकरने सूर्यके सहित सब तेजस्वी पदार्थोंकी प्रभाका भी नाश करदिया ५७ सब प्राणियोंको और अपनेको सुखी करनेकी इच्छावाले ऋषि भयभीत होकर क्षोभमें पडगये और शान्तिपाठके पढ़नेलगे॥५८॥ फिर शंकर मानो हँसरहे हों इसप्रकार पुरोडाश खातेहुए पूषा देवताके सामनेको दौडगये और उसके दाँत तोडडाले ॥ ५९ ॥ इस पर देवता काँपते२ 'आपको प्रणाम करते हैं' ऐसा कहतेहुए भागनेलगे, शंकरने धुएँ और चिनगारियोंवाले अग्निकी समान और बिजली तथा मेघकी समान तेज किये और जलतेहुएसे बाण देवताओंकी ओरको चढाये, यह देखकर सब देवताओंने महेश्वरको प्रणाम किया ॥६०—६१॥ रुद्रके लिये यज्ञमें अलग भाग निकाला और हे राजन् ! जब वे भयके मारे शंकरकी शरणमें गये॥६२॥ उसी समय श्रीशंकर शान्त होगये, तब उन्होंने उस यज्ञको पूरा किया था, देवता डरके मारे उस समय भागगये थे और अब तक वे

दिवि । आयसं राजतं चैव सौवर्णं परमं महत् ॥ ६४ ॥ सौवर्णं कमलाक्षस्य तारकाक्षस्य राजतम् । तृतीयन्तु परं तेषां विद्युन्मालिन आयसम् ॥ ६३ ॥ न शक्तस्तानि मघवा भेत्तुं सर्वायुधैरपि । अथ सर्वे सुरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः ६६ ते तमूचुर्महात्मानं सर्वे देवाः सवासवाः । ब्रह्मदत्तवरा ह्येते घोरास्त्रिपुरवासिनः ॥६७॥ पीडयन्त्यधिकं लोकं यस्मात्ते वरदर्पिताः । त्वदृते देवदेवेश नान्यः शक्तः कथञ्चन ॥ ६८ ॥ हन्तुं दैत्यान्महादेव जहि तांस्त्वं सुरद्विपः । रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु ॥ ६९ ॥ निपातयिष्यसे चैतानसुरान् भुवनेश्वर । स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा देवानां हितकाम्यया ॥ ७० ॥ गन्धमादनविन्ध्यौ च कृत्वा वंशध्वजौ हरः । पृथ्वीं ससागरवनां रथं कृत्वा

शंकरसे भयभीत रहते हैं ॥ ६३ ॥ पहले तीन पराक्रमी असुर आकाशमें फिरा करते थे, उनका, लोहेका, चाँदीका और सोनेका ये तीन बड़े२ नगर थे ॥ ६४ ॥ इनमें कमलाक्षका नगर सोनेका, ताराक्षका चाँदीका और विद्युन्मालीका नगर लोहेका था ॥६५॥ इन्द्रमें भी यह शक्ति नहीं थी, कि-किसी अस्त्र शस्त्रसे उन नगरोंको तोड़सके, इसकारण इन्द्रादि सब देवता दुःखित होकर रुद्रकी शरणमें गये और सबोंने महात्मा रुद्रसे कहा, कि–त्रिपुरके निवासी भयानक दैत्य ब्रह्माजीसे वरदान पाकर गर्वमें भरगये हैं, वे सब लोकोंको बड़ा ही दुःख देते हैं, इसलिये हे देवदेवेश ! हे महादेव ! आपके सिवाय दूसरा कोई भी इन देवताओंके शत्रु दैत्योंको नहीं मार सकता, इसलिये आप इनका नाश करिये, हे रुद्र ! वे भयानक असुर सब कर्मोंमें पशुओंकी समान होंगे ॥ ६६-६९ ॥ इसलिये हे लोकनाथ ! आप इन असुरोंका संहार करिये, इसप्रकार देवताओंने शंकरसे कहा, तब शंकरने 'तथास्तु' कहकर देवताओंका हित करनेकी इच्छासे गन्धमादन और विन्ध्याचलको रथके दोनों ओरकी छोटी ध्वजायें बनाकर सागर और वनोंसहित पृथ्वीको

तु शङ्करः ॥७१॥ अक्षं कृत्वा तु नागेन्द्रं शेषं नाम त्रिलोचनः । चक्रे कृत्वा तु चन्द्रार्कौ देवदेवः पिनाकधृक् ॥ ७२ ॥ अणीकृत्वैलपत्रञ्च पुष्पदन्तञ्च त्र्यंबकः । यूपं कृत्वा तु मलयमवनाहञ्च तक्षकम् ॥७३॥ योक्त्राङ्गानि च सत्त्वानि कृत्वा शर्वः प्रतापवान् । वेदान् कृत्वाथ चतुरश्चतुरोऽश्वान् महेश्वरः ॥ ७४ ॥ उपवेदान् खलीनांश्च कृत्वा लोकत्रयेश्वरः । गायत्रीं प्रग्रहं कृत्वा सावित्रीं च महेश्वरः ॥७५॥ कृत्वोंकारं प्रतोदञ्च ब्रह्माणञ्चैव सारथिम् । गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा च वासुकिम् ॥ ७६ ॥ विष्णुं शरोत्तमं कृत्वा शल्यमग्निं तथैव च । वायुं कृत्वाथ वाजाभ्यां पुङ्खं वैवस्वतं यमम् ॥ ७७ ॥ विद्युत् कृत्वाथ निश्राणं मेरुं कृत्वाथ वै ध्वजम् । आरुह्य स रथं दिव्यं सर्वदेवमयं शिवः ॥७८॥ त्रिपुरस्य

रथ बनाया ॥७०-७१॥ त्रिदेव शंकरने नागराज शेषको रथकी धुरीके स्थान पर रक्खा, चन्द्रमा और सूर्यको दोनों पहिये बनाया, इलापत्रके पुत्रको तथा पुष्पदन्तको जुएके अन्तके बन्धन बनाया, मलयाचलको रथका जुआ बनाया, तक्षकको तीन लकड़ियोंवाले जुएके बाँधनेकी डोरी बनाया, सब प्राणियोंको रासोंके अङ्गोंके स्थानमें नियत किया, चारों वेदोंको चार घोड़े बनाया, उपवेदोंको लगामें बनाया, महेश्वरने गायत्री और सावित्रीको डोरी बनाकर ओङ्कारको चाबुक, ब्रह्माको सारथी, मन्दराचलको गांडीव धनुष, वासुकीको धनुषकी प्रत्यञ्चा, विष्णुको उत्तम बाण, अग्निको बाणका फलक, वायुको दोनों ओरके पङ्ख, वैवस्वत यमको बाणकी पूँछ, बिजलीको फलककी धार और मेरुको ध्वजा बनाया, इस प्रकार सर्वदेवमय दिव्य रथको तयार किया, तदनन्तर अतुल-पराक्रमी, असुरोंका संहार करनेवाले महान् योधा श्रीशंकर त्रिपुरका वध करनेके लिये उस रथ पर सवार होगये, हे अर्जुन ! उस समय तपको धन माननेवाले ऋषि और देवता उनकी स्तुति करने लगे, विकाररहित भगवान् शंकरने माहेश्वर नामका व्यूह बनाया

वधार्थाय स्थाणुः प्रहरताम्बरः । असुराणामन्तकरः श्रीमानतुलविक्रमः ॥ ७९ ॥ स्तूयमानः सुरैः पार्थ ऋषिभिश्च तपोधनैः । स्थानं माहेश्वरं कृत्वा दिव्यमप्रतिमं प्रभुः ॥ ८० ॥ अतिष्ठत स्थाणुभूतः स सहस्रं परिवत्सरान् । यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे पुराणि च ॥८१॥ त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तदा तानि बिभेद सः । पुराणि न च तं शेकुर्दानवाः प्रतिवीक्षितुम् ॥८२॥ शरं कालाग्निसंयुक्तं विष्णुसोमसमायुतम् । पुराणि दग्धवन्तं तं देवी याताः प्रवीक्षितुम् ॥ ८३ ॥ बालमंकगतं कृत्वा स्वयं पञ्चशिखं पुनः । उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत् सुरान् ॥ ८४ ॥ असूयतश्च शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः । बाहुं सवज्रं तं तस्य क्रुद्धस्यास्तम्भयत् प्रभुः ॥८५॥ प्रहस्य भगवांस्तूर्णं सर्वलोकेश्वरो विभुः । ततः संस्तम्भितभुजः शक्रो देवगणैर्वृतः ॥८६॥ जगाम ससुरस्तूर्णं

फिर एक हजार वर्ष तक उस रथमें स्थाणुरूपसे रहकर तीनों पुरोंके इकट्ठे होनेकी बाट देखते रहे, जब तीनों नगर अन्तरिक्षमें इकट्ठे हुए तब शंकरने तीन पर्ववाले और तीन शल्यवाले बाणसे उन तीनों नगरोंको तोडदिया, इस समय शंकरका ऐसा दिव्य तेज था, कि-उसके सामनेको दानव आँख उठाकर देख भी न सके ७९-८२ विष्णु और सोमके तेजसे भरा कालाग्निकी समान बाण जिस समय उन तीनों नगरोंको जलाने लगा, उस समय देवी उमा बालक पंचशिखको गोदीमें लेकर देखनेके लिये तहाँ आयी थीं और उसने देवताओंसे बूझा था, कि-इन तीनों नगरोंको कौन जला रहा है ॥८३॥८४ यह सुनकर इन्द्रको असूया उत्पन्न हुई और वह वज्रका प्रहार करनेको उद्यत होगया, तब सब लोकोंके ईश्वर और समर्थ परमात्माने हँसकर क्रोधके आवेशमें आयेहुए इन्द्रकी भुजाको जड बनादिया ॥ ८५ ॥ इन्द्रका हाथ जड होते ही वह देवताओंको साथ लेकर तुरन्त अविनाशी ब्रह्मदेवकी शरणमें गया और देवताओंने दोनों हाथ जोड मस्तकसे

ब्रह्माणं प्रभुमव्ययम् । ते तं प्रणम्य शिरसा प्रोचुः प्राञ्जलयस्तदा८७ किमप्यङ्कगतं ब्रह्मन् पार्वत्या भूतमद्भुतम् । बालरूपधरं दृष्ट्वा नास्माभिरभिलक्षितः ॥८८॥ तस्मात्त्वां प्रष्टुमिच्छामो निर्जिता येन वै वयम् । अयुध्यता हि बालेन लीलया सपुरन्दराः ॥८९॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा ब्रह्मविदाम्वरः । ध्यात्वा स शम्भुं भगवान् बालञ्चामिततेजसम् ॥ ९० ॥ उवाच भगवान् ब्रह्मा शक्रादींश्च सुरोत्तमान् । चराचरस्य जगतः प्रभुः स भगवान् हरः ॥ ९१ ॥ तस्मात् परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति महेश्वरात् । यो दृष्टो ह्युमया सार्द्धं युष्माभिरमितद्युतिः ॥ ९२ ॥ स पार्वत्याः कृते देवः कृतवान् बालरूपताम् । ते मया सहिता यूयं प्रापयध्वं तमेव हि॥९३॥ स एव भगवान् देवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः । न सम्बुबुधिरे चैनं देवास्तं भुवनेश्वरम् ॥९४॥ सप्रजापतयः सर्वे बालार्कसदृशप्रभम्।

प्रणाम करके ब्रह्माजीसे कहा कि–हे ब्रह्मदेव ! पार्वतीकी गोदीमें बालकका रूप धारण किये कोई अद्भुत पुरुष बैठा था, उसको हमने प्रणाम नहीं किया, इसलिये हम आपसे बूझना चाहते हैं कि–जिस बालकने युद्धके बिना ही क्रीड़ामात्रमें हमारा तथा हमारे राजा इन्द्रका पराजय किया है वह कौन है ? ॥ ८६ ॥ ८९ ॥ ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने उनकी बात सुन ध्यान धरकर देखा तो अपार तेजवाला वह बालक स्वयं भगवान् शङ्कर ही थे ॥९०॥ फिर भगवान् ब्रह्माजीने उन श्रेष्ठ देवताओंसे कहा, कि– वह तो स्थावर जङ्गम जगत्के प्रभु भगवान् शङ्कर ही थे ९१ इन महेश्वरसे श्रेष्ठ कोई भी देवता नहीं है, तुमने उमाके साथ जिस अपार कान्ति वाले बालकको देखा है, वह भगवान् शङ्कर थे, उन्होंने पार्वतीके लिये ही बालकका स्वरूप धारण किया था, इसलिये अब तुम मेरे साथ उन ही बालरूपधारी शङ्करकी शरण लो ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ वह भगवान् महादेव सब लोकोंके ईश्वर हैं, प्रभु हैं, परन्तु देवता उन भुवनपतिके

अथाभ्येत्य ततो ब्रह्मा दृष्ट्वा च स महेश्वरम् ॥ ९५ ॥ अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तं पितामहः । ब्रह्मोवाच । त्वं यज्ञो भुवनस्यास्य त्वं गतिस्त्वं परायणम् ॥ ९६ ॥ त्वम्भवस्त्वं महादेव त्वं धाम परमं पदम् । त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥९७॥ भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते । प्रसादं कुरु शक्रस्य त्वया क्रोधार्दितस्य वै ॥९८॥ व्यास उवाच । पद्मयोनेर्वचः श्रुत्वा ततः प्रीतो महेश्वरः । प्रसादाभिमुखो भूत्वा अट्टहासन्तथाकरोत् ९९ ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रञ्च ते सुराः । अभवच्च पुनर्बाहुः प्रकृतिस्थो हि वज्रिणः ॥ १०० ॥ तेषां प्रसन्नो भगवान् सपत्नीको वृषध्वजः देवानां त्रिदशश्रेष्ठो दक्षयज्ञविनाशनः ॥ १ ॥ स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः सर्वः स सर्ववित् । स चेन्द्रश्चैव

स्वरूपको पहचान नहीं सके ९४ फिर ब्रह्माजीके सहित सब देवता बालसूर्यकी समान कांतिवाले महेश्वरके पास गये और ब्रह्माने महेश्वर शङ्करका दर्शन कर यही शङ्कर हैं ऐसा जानकर उनको प्रणाम किया और फिर स्तुति करने लगे, ब्रह्माजीने कहा, कि–तुम यज्ञरूप, तीनों लोकोंकी गति और परम आश्रयस्थान हो ९५।९६ तुम भव, महादेव, परमधाम और परमपदरूप हो, इस स्थावर जङ्गमरूप सब जगत्में तुमही व्याप रहे हो, हे भगवन्! हे भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान कालके नेता ! हे लोकनाथ ! हे जगत्पति ! तुमने क्रोध करके इन्द्रको पीड़ा दी है, अब इसके ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥९७॥९८। व्यासजी कहते हैं, कि-ब्रह्माजीकी इस बातको सुनकर महेश्वर प्रसन्न हुए प्रसन्नताकी ओरको झुककर उन्होंने अट्टहास किया॥९९॥फिर देवताओंने उमाको और रुद्रको प्रसन्न किया और इन्द्रका जो हाथ सुन्न हो गया था फिर वह अच्छा होगया ॥१००॥ और दक्षके यज्ञका ध्वंस करनेवाले, देवताओंमें श्रेष्ठ उमापति, भगवान् शंकर देवताओंके ऊपर प्रसन्नहुए ॥१॥ वह शंकर, रुद्र, शिव, अग्नि, सर्ववेत्ता, इन्द्र, वायु, अश्विनीकुमार

वायुश्च सोऽश्विनौ स च विद्युतः ॥ २ ॥ स भवः स च पर्जन्यो महादेवः सनातनः । स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः ॥ ३ ॥ स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो रात्र्यहानि च । मासार्द्धमासा ऋतवः सन्ध्ये सम्वत्सराणि च ॥ ४ ॥ धाता च स विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत् । सर्वासां देवतानाञ्च धारयत्यवपुर्वपुः ॥ ५ ॥ सर्वैर्देवैः स्तुतो देवः सैकधा बहुधा च सः । शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ॥६॥ द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः । घोरा चान्या शिवा चान्या ते तनू बहुधा पुनः ॥ ७ ॥ घोरा तु या तनुस्तस्य सोऽग्निर्विष्णुः स भास्करः । सौम्या तु पुनरेवास्य आपो ज्योतींषि चन्द्रमाः ॥८॥ वेदांगा सोपनिषदः पुराणाध्यात्मनिश्चयाः । यदत्र परमं गुह्यं स

और विजलीरूप हैं ॥ २ ॥ वही भव, मेघ, सनातन महादेव हैं, वही चन्द्रमा, वही सबके अधिपति, वही सूर्य और वही वरुण हैं ॥३॥ वही काल, वही अन्तकरूप मृत्यु, वही यम रात्रि और दिन हैं, वही मास, पक्ष, ऋतु, प्रभात और सायङ्कालकी सन्ध्या तथा संवत्सररूप हैं ॥४॥ वही धाता, विधाता, विश्वात्मा, विश्वके कर्मोंके कर्त्ता तथा देहरहित होने पर भी सब देवताओंके शरीरोंको धारण करनेवाले हैं॥५॥ सब देवता उनकी एक प्रकारसे, बहुत प्रकारसे, सैकड़ों प्रकारसे, हजारों प्रकारसे, और लाखों प्रकारसे अनेकबार स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥ उन महादेवकी दो मूर्त्तियोंको वेदवेत्ता ब्राह्मण ही जानते हैं, एक मूर्त्ति घोरा (भयङ्कर) और दूसरी शिवा (कल्याणकारिणी) है, ये दोनों मूर्त्तियें भी अनेकों प्रकारकी हैं ॥ ७ ॥ अग्नि, और व्यापक सूर्य शंकरकी घोरमूर्त्ति है और उसकी पूजा यातुधान करते हैं, चन्द्रमा, जल और ज्योति उनकी सौम्यमूर्त्ति है ॥ ८ ॥ पुराण, वेद, वेदके अङ्ग, आत्मज्ञानका निश्चय करनेवाले उपनिषद् इन सब ग्रन्थोंमें जो परमरहस्य है वह महेश्वर देव ही हैं, अजन्मा भगवान् महादेवके ये और

तेन लिंगमस्यार्चयन्ति स्म तच्चाप्यूर्ध्वं समास्थितम् ॥ २५ ॥ पूज्यमाने ततस्तस्मिन् मोदते स महेश्वरः । सुखी प्रीतश्च भवति प्रहृष्टश्चैव शङ्करः ॥२६॥ यदस्य बहुधा रूपं भूतभव्यभवत्स्थितम् । स्थावरं जङ्गमञ्चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः ॥२७॥ एकाक्षो जाज्वलन्नास्ते सर्वतोऽक्षि[illegible]पि वा । क्रोधाद्यश्चाविशल्लोकांस्तस्मात् सर्व इति स्मृतः ॥ २[illegible] ॥ धूम्ररूपञ्च यत्तस्य धूर्जटिस्तेन चोच्यते । विश्वे-देवाश्च यत्त[illegible]स्मिन् विश्वरूपस्ततः स्मृतः ॥ २९ ॥ तिस्रो देवीर्यदा च[illegible] भुवनेश्वरः । द्यामापः पृथिवीं चैव त्र्यम्बकस्तु ततः स्मृतः ॥ १३० ॥ समेधयति यन्नित्यं सर्वार्थान् सर्वकर्मसु । शिव-मिच्छन् मनुष्याणां तस्मादेष शिवः स्मृतः ॥ ३१ ॥ सहस्राक्षोऽ-

करती है, इसलिये वह महेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ २४ ॥ ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सरायें ये सब उनके ऊपरके लोकमें रहने वाले लिङ्गका पूजन करते हैं ॥२५॥ क्योंकि—इन शंकरके लिङ्गकी पूजा करनेसे महेश्वर अत्यन्त प्रसन्न और सुखी होते हैं ॥२६॥ यह स्थावर जङ्गमरूप जगत् तथा भूत भविष्यत् और वर्त्तमान रूप काल इन शंकरका रूप है इस प्रकार बहुतसे रूप होनेसे शंकर बहुरूपी कहलाते हैं ॥ २७ ॥ शंकरके सब स्थानोंमें नेत्र हैं तो भी उनका अत्यन्त जाज्वल्यमान अग्निरूप एकनेत्र है जो नेत्र क्रोधसे सबलोकमें प्रवेश करके सब जगत्का संहार करता है इसलिये वह 'सर्व' नाम से कहेजाते हैं ॥ २८ ॥ उनका स्वरूप क्रोधमय है इसलिये धूर्जटि कहलाते हैं और विश्वदेवता उनमें रहते हैं इसलिये वह विश्वरूप कहलाते हैं ॥ २९ ॥ भुवनपति शंकर आकाश, जल और पृथिवी इन तीन देवियोंका अर्थात् स्वर्ग, मृत्यु और पाताल इन तीनों लोकोंका पालन करते हैं, इसलिये त्र्यम्बक कहलाते हैं ॥ ३० ॥ वह सब लोगोंके कार्योंमें सब अर्थोंकी वृद्धि करते हैं और मनुष्योंका कल्याण चाहते

ब्रह्माणं प्रभुमव्ययम् । ते तं प्रणम्य शिरसा प्रोचुः प्राञ्जलयस्तदा ॥८७॥ किमप्यङ्कगतं ब्रह्मन् पार्वत्या भूतमद्भुतम् । बालरूपधरं दृष्ट्वा नास्माभिरभिलक्षितः ॥८८॥ तस्मात्त्वां प्रष्टुमिच्छामो निर्जिता येन वै वयम् । अयुध्यता हि बालेन लीलया सपुरन्दराः ॥८९॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा ब्रह्मविदाम्वरः । ध्यात्वा स शम्भुं भगवान् बालञ्चामिततेजसम् ॥ ९० ॥ उवाच भगवान् ब्रह्मा शक्रादींश्च सुरोत्तमान् । चराचरस्य जगतः प्रभुः स भगवान् हरः ॥ ९१ ॥ तस्मात् परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति महेश्वरात् । यो दृष्टो ह्युमया सार्द्धं युष्माभिरमितद्युतिः ॥ ९२ ॥ स पार्वत्याः कृते देवः कृतवान् बालरूपताम् । ते मया सहिता यूयं प्रपद्यध्वं तमेव हि ॥९३॥ स एव भगवान् देवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः । न सम्बुबुधिरे चैनं देवास्तं भुवनेश्वरम् ॥९४॥ सप्रजापतयः सर्वे बालार्कसदृशप्रभम् ।

प्रणाम करके ब्रह्माजीसे कहा कि–हे ब्रह्मदेव ! पार्वतीकी गोदीमें बालकका रूप धारण किये कोई अद्भुत पुरुष बैठा था, उसको हमने प्रणाम नहीं किया, इसलिये हम आपसे बूझना चाहते हैं कि–जिस बालकने युद्धके बिना ही क्रीडामात्रमें हमारा तथा हमारे राजा इन्द्रका पराजय किया है वह कौन है ? ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने उनकी बात सुन ध्यान धरकर देखा तो अपार तेजवाला वह बालक स्वयं भगवान् शङ्कर ही थे ॥९०॥ फिर भगवान् ब्रह्माजीने उन श्रेष्ठ देवताओंसे कहा, कि– वह तो स्थावर जङ्गम जगत्के प्रभु भगवान् शङ्कर ही थे ९१ इन महेश्वरसे श्रेष्ठ कोई भी देवता नहीं है, तुमने उमाके साथ जिस अपार कान्ति वाले बालकको देखा है, वह भगवान् शङ्कर थे, उन्होंने पार्वतीके लिये ही बालकका स्वरूप धारण किया था, इसलिये अब तुम मेरे साथ उन ही बालरूपधारी शङ्करकी शरण लो ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ वह भगवान् महादेव सब लोकोंके ईश्वर हैं, प्रभु हैं, परन्तु देवता उन भुवनपतिके